Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible]

Vol 25 1996-97 Vol 24 1996 Vol 23 1995 Vol 22 1993-94 Vol 21 1992-93 Vol 20 199[illegible]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

130320H

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

130320

दयानन्द-सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

नवम्बर, १९९६

वर्ष २५ : अंक १
दयानन्दाब्द : १७२
विक्रम संवत् : कार्तिक २०५३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९७

Vol. 25 1996-97
Vol. 24 1996
Vol. 23 1995
Vol. 22 1993-94
Vol. 21 1992-93
Vol. 20 1992

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०
वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya LIBRARY HARDWAR

❑ दयानन्द की पावन वाणी २
❑ वेदोपदेश ३
❑ शंका-समाधान ४
❑ पाठकों के पत्र तथा सम्मतियां ५
❑ साहित्य-समीक्षा ६
❑ औचित्य ६
❑ शारदीय नवशस्येष्टि-दीपावली की प्राचीनता (अनादित्व-अनन्तत्व) ७
❑ परमात्मा की सर्वव्यापकता पर प्रहार और उसका उत्तर ९
❑ भारत पुकार रहा है—अपने इतिहास को पहचानो १४
❑ राष्ट्रीय एकता में आर्यसमाज का योगदान १५
❑ धर्म-निरपेक्षता का यथार्थ १७
❑ सुख दुःख जीवात्मा के गुण हैं प्रकृति के नहीं २०
❑ हिन्दू नाम कसौटी पर २४

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द की पावन वाणी

—सतीश चन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

आर्यवंश की विजय पताका, युग-युग में लहरायेगी।
दयानन्द की पावन वाणी, कल्मष दूर भगायेगी॥

परिवर्तन की नवल-चेतना, यज्ञ धूम का नर्तन होगा,
तन्द्रा तोड़ उठेगा मानव, मानवता का सर्जन होगा।
गत की कालिख धोकर सारी, युग भविष्य का दर्पण होगा,
देश-धर्म चन्दन सा महके, खल समूह का मर्दन होगा॥

क्रान्ति केतु युगपुरुष बनेगा, सब पीड़ा मिट जायेगी।
दयानन्द की पावन वाणी, कल्मष दूर भगायेगी॥

साम-गान गायेगी कोयल, देवों का आवाहन होगा,
संस्कृति, ज्ञान, सभ्यता दाता, देश हमारा पावन होगा।
वेद दिखायेंगे सद् राहें, लक्ष्य सतत मनभावन होगा,
जीवन ज्योति जगेगी मन में, फलदायी हर पाहन होगा।

हर वैदिक मान्यता हमारी, घर-घर ज्योति जलायेगी।
दयानन्द की पावन वाणी, कल्मष दूर भगायेगी॥

तिमिर समस्त मिटायें युग के, पुनर्जागरण करना होगा,
स्वर्णिम युग के आदर्शों को जन-मन में फिर भरना होगा।
सकल धरा पर आर्य शंखध्वनि करें, न किंचित् डरना होगा,
निज संकुचित विचार त्याग कर, हठ से हमें उबरना होगा।

बुद्धि-शक्ति होकर वेदों सी निर्मल, शान्ति लुटायेगी,
दयानन्द की पावन वाणी, कल्मष दूर भगायेगी॥

ग्राम-विजयनगर (बजेहरा)
पोस्ट-रामपुर मथुरा
जिला-सीतापुर (उ०प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- दीर्घतमाः ऋषिः। आत्मा (परमात्मा) देवता। अनुष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ मनुष्याः परमात्मानं विज्ञाय किं कुर्युरित्याह॥

मनुष्य परमात्मा को जानकर क्या करें, यह उपदेश दिया गया है॥

ओ३म् **ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।**
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

(यजु० ४०।१)

पदार्थः—(ईशा) ईश्वरेण=सकलैश्वर्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना (वास्यम्) आच्छादयितुं योग्यं=सर्वतोऽभिव्याप्यम् (इदम्) प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तम् (सर्वम्) अखिलम् (यत्) (किम्) (च) (जगत्याम्) गम्यमानायां सृष्टौ (जगत्) यद् गच्छति तत् (तेन) (त्यक्तेन) वर्जितेन तच्चित्तरहितेन (भुञ्जीथाः) भोगमनुभवेः (मा) निषेधे (गृधः) अभिकांक्षीः (कस्य) (स्वित्) कस्यापि स्विदिति प्रश्ने वा (धनम्) वस्तुमात्रम्॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य! त्वं (यत्) (इदम्) प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तं (सर्वम्) अखिलं (जगत्याम्) गम्यमानायां सृष्टौ (जगत्) यद् गछति तत् (ईशा) ईश्वरेण=सकलैश्वर्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना (वास्यम्) आच्छादयितुं योग्यं=सर्वतोऽभिव्याप्यम् अस्ति। (तेन) (त्यक्तेन) वर्जितेन तच्चित्तरहितेन (भुञ्जीथाः) भोगमनुभवेः। किंच (कस्य) स्वित् कस्यापि (धनं) वस्तुमात्रं (मा) (गृधः) न अभिकांक्षीः।

भाषार्थः—हे मनुष्य! तू (यत्) जो (इदम्) प्रकृति से लेकर पृथिवीपर्यन्त (सर्वम्) सब (जगत्याम्) चलायमान सृष्टि में (जगत्) जड़-चेतन जगत् है, वह (ईशा) ईश्वर अर्थात् सकल ऐश्वर्य से सम्पन्न सर्वशक्तिमान् परमात्मा के द्वारा (वास्यम्) आच्छादित अर्थात् सब ओर से अभिव्याप्त किया हुआ है। (तेन) इसलिए (त्यक्तेन) त्यागपूर्वक अर्थात् जगत् से चित्त को हटा के (भुञ्जीथाः) भोगों का उपयोग कर।

(किंच) और (कस्यस्वित्) यह धन किसका है अर्थात् किसी का नहीं, अतः किसी के भी (धनम्) धन अर्थात् वस्तुमात्र की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर॥

भावार्थः—ये मनुष्या ईश्वराद् बिभ्यत्ययमस्मान् सर्वदा सर्वतः, जगदिदम् ईश्वरेण व्याप्तम्, सर्वत्रेश्वरोऽस्तीति व्यापकमन्तय..मणं निश्चित्य कदाचिदप्यन्यायाचरणेन कस्यापि किञ्चिदपि द्रव्यं ग्रहीतु नेच्छेयुस्ते धार्मिका भूत्वाऽत्र परमाऽभ्युदयनिःश्रेयसे फले ..प्य सदाऽऽनन्देयुः॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हम को सब काल में सब ओर से देखता है, यह जगत् ईश्वर से व्याप्त है अर्थात् सब स्थानों में ईश्वर विद्यमान है। इस प्रकार उस व्यापक अन्तर्यामी को जानकर कभी भी अन्याय आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण करना नहीं चाहते। वे धार्मिक होकर इस लोक में अभ्युदय और परलोक में निःश्रेयस रूप फलों को भोग कर सदा आनन्द में रहते हैं।

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका-समाधान

१ निराकार परमेश्वर का ध्यान बिना मूर्ति के कैसे करें, जिससे उसमें ध्यान लगने लगे। (वैद्य धन्नालाल सेने, बधाल)

समाधान—इसका उत्तर पूना प्रवचन में महर्षि दयानन्द ने यह दिया है।

(प्रश्न) मूर्त पदार्थों के बिना ध्यान कैसे करते बनेगा?

(उत्तर) देखो, शब्द का आकार नहीं तो भी शब्द ध्यान में आता है वा नहीं। आकाश का आकार नहीं तो भी आकाश का ज्ञान करने में आता है वा नहीं? जीव का आकार नहीं तो भी जीव का ध्यान होता है वा नहीं? ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये नष्ट होते ही जीव निकल जाता है, यह किसान भी समझता है। ध्यान यह ऐसा ही पदार्थ है। योग आदि शास्त्रों में ध्यान का लक्षण यह किया है—

रागोपहतिर्ध्यानम्॥ (सांख्य०)
ध्यानं निर्विषयं मनः॥ (सांख्य०)
तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्॥ (योग०)

विचार करो—साकार का ध्यान कैसे करोगे? साकार के गुणों का ज्ञानाकार होने तक ध्यान नहीं बनता अर्थात् सम्भव नहीं होता कि ज्ञान के पहले ध्यान हो जाये। देखो—एक सूक्ष्म परमाणु के भी अधम, मध्यम, उत्तम ऐसे अनेक विभाग ज्ञान बल से कल्पना में आते हैं। अब कोई ऐसा कहे कि मेरी मुट्ठी में क्या पदार्थ है? तो विदित होने तक मुट्ठी की ओर देखने ही से केवल उस पदार्थ का ध्यान कैसे करें? तो इसमें मेरा यही कहना है कि प्रत्यक्ष के सिवाय उस पदार्थ को जानने के लिए और भी दृढ़तर सबल उपाय हैं। देखो! अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव, ये **आठ उपाय** हैं। अनुमान ज्ञान के सम्मुख प्रत्यक्ष की क्या प्रतिष्ठा है। अब यह विचारणीय है। अस्तु। (पूना प्रवचन ४ प्रवचन)

प्रश्न—परमेश्वर निराकार है वह ध्यान में नहीं आ सकता, इसलिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये।

उत्तर—जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है, तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती…। जो तुम कहते हो कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है, यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वर स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी, जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहाँ मुझे कोई नहीं देखता। इसलिये वह अनर्थ करे बिना नहीं चूकता…।

जो पाषाणादि मूर्तियों को न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है। वह पुरुष… कुकर्म करना तो कहाँ रहा, किन्तु मन में चेष्टा भी नहीं कर सकता। (स०प्र० एकादश समु०)

एक बार उदयपुर के महाराणा ने स्वामी दयानन्द से प्रश्न किया कि—जब किसी मूर्तिमान् वस्तु को चाहे वह कैसी ही हो, आप नहीं मानते तो ध्यान किस का करें? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि—कोई चीज मानकर (ईश्वर का) ध्यान नहीं करना चाहिए। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वसृष्टिकर्त्ता, सृष्टि को एक क्रम में चलाने वाला, नियन्ता, पालनकर्त्ता और ऐसे ही अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी और नियन्ता है। ऐसी-ऐसी उसकी महिमा का स्मरण करके अपने चित्त में उसकी महानता (महत्ता) का ध्यान करना चाहिए। अर्थात् इसी प्रकार समस्त विशेषणों से युक्त परमेश्वर को स्मरण करके उसका ध्यान करना और उसकी अपार महिमा का वर्णन करना… यह ध्यान है। (लेखराम कृत महर्षि जीवनी से, पृष्ठ ५५६)

ध्यान का स्वरूप और शास्त्रों की मान्यता—

उपासना काण्ड के प्रमुख योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि ध्यान का स्वरूप बताते हुए लिखते हैं—

(१) तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्॥ (योग० विभूति० २ सूत्र) (तत्र) ध्यान से पूर्व जिन स्थानों में धारणा की है उनमें चित्त की (प्रत्ययैकतानता) परस्पर दोनों की एकता, चित्त आत्मा से भिन्न न रहे तथा आत्मा चित्त से पृथक् न रहे, उस ज्ञान के सदृश प्रवाह का नाम ध्यान है। महर्षि इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

"(तत्र प्रत्यय०) धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमात्मा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम शक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे—समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना, इसी का नाम ध्यान है।''

(ऋ०भा०भू० उपासना०)

(२) और महर्षि कपिल ने सांख्य में ध्यान का स्वरूप बताते हुए लिखा है—

रागोपहतिर्ध्यानम्॥ (सां० ३ । ३०)

ध्यानं निर्विषयं मनः॥ (सां० ६ । २५)

अर्थात् ध्यान का अर्थ है जिसमें सांसारिक रागों=विषयों की निवृत्ति हो जाये। अथवा मन में किसी भी विषय (रूपादि) का जब अभाव हो, तब ध्यान होता है॥

ध्यान के स्वरूप पर मनन—

उपरोक्त ध्यान के स्वरूप पर मनन करने से स्पष्ट है कि ध्यान तब होता है जब समस्त इन्द्रियाँ बाह्यमुखी न होकर अन्तर्मुखी हो जायें। और मन की एकाग्रता भी तभी सम्भव है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी रहस्य को समझाते हुए लिखा है—

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचितेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये॥ गीता ६ । १२॥

अर्थात् जिस स्थान पर धारणा में चित्त को एकाग्र किया है, उसी स्थान पर (बाह्यमूर्ति आदि के बिना ही) इन्द्रियों तथा चित्त को संयम करके योग का अभ्यास करे। इससे आत्मा की शुद्धि होती है। जब तक उपासक नेत्रादि इन्द्रियों के व्यापार में रत रहता है, तब तक ध्यान सम्भव ही नहीं है। इसलिये यह सोचना मूर्ति के बिना ध्यान करना सम्भव ही नहीं, बिल्कुल नासमझी की बात है। महर्षि दयानन्द ने ध्यान को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

''जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियें को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर आत्मा और परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवे॥'' (स०प्र० सप्तम समु०)

''धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेमभक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे—समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना, इसी का नाम ध्यान है।'' (ऋ०भा०भू० उपासना०)

(राजवीर शास्त्री)

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

'दयानन्दसन्देश' के पिछले अंकों में आर्य और हिन्दू के विवेचन में श्री डा० वीरेन्द्र शर्मा का जो लेख प्रकाशित हुआ है, वह अत्यन्त प्रामाणिक, युक्ति-युक्त तथा संग्राह्य है। विद्वान् लेखक शतशः बधाई के पात्र हैं।

ओंकार मिश्र 'प्रणव', रामनगर (आगरा)

मैंने जब से 'दयानन्दसन्देश' पत्रिका पढ़ना शुरू किया है तब से मेरी पुरानी रूढ़िवादी मान्यताएँ एवं धारणाएँ, जो मेरे मस्तिष्क में भरी हुई थीं, समाप्त हो गईं तथा वैदिक ज्ञान की ज्योति का प्रकाश प्राप्त हुआ। वस्तुतः यह पत्रिका दिशाहीनों को सत्यमार्ग दिखाती है और महर्षि के अमर सन्देशों की अलख [illegible]ी है और आर्यों का सन्मार्ग प्रशस्त करती है। मैं इस पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

वैद्य धनालाल सेने,
बधान, जयपुर (राज.)

'दयानन्दसन्देश' मासिक पत्र के माध्यम से मा० श्री भगवानदेव जी चैतन्य की लेखमाला गत ३, ४ अंकों में 'सद्बुद्धि की कामना' शीर्षक से प्रकाशित हो रही है। लेखमाला अति उत्कृष्ट है, अनेक प्रमाण ग्रंथों के उद्धरणों से समृद्ध है। गायत्री मन्त्र पर ऐसी व्याख्या शायद ही अन्यत्र पढ़ने को मिले। अनेक रहस्यों का उद्घाटन इससे होता है और साधक की साधनागत समस्याओं का समाधान भी होता है। मैंने गायत्री मन्त्र की महत्ता के बारे में अनेकों लेखकों की कृतियों का स्वाध्याय किया है। गायत्री परिवार वालों के अर्थ भी पढ़े हैं। पर इस लेखमाला में बुद्धिवाद के साथ भक्ति का भी अभूतपूर्व संगम है। संभव है दयानन्दसन्देश के पाठकों ने इसे मनोयोग से पढ़ा हो और लाभ भी लिया हो। इस लेखमाला का पुस्तकाकार संस्करण बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

भगवान राय आर्य भोसीकर
आर्य निवास, कंधार जिला नांदेड़, महाराष्ट्र-४३१७१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औचित्य

—कमलेश कुमार आर्य अग्निहोत्री

तृप्त धरा को कर न सके, वे श्याम सु घन किस काम के हैं।
दीन हीनता हर न सके, वे लाल-रतन किस काम के हैं॥

सत्य ज्योति ना जगा सके, नहीं भ्रान्ति भय भगा सके।
जो न सुपथ पर लगा सके, वे-विद्वद्जन किस काम हैं॥

राही चैन नहीं पाये, पक्षी जहाँ नहीं जाये।
जो न किसी के मन भाये, वे वन-उपवन किस काम के हैं॥

नैनों में गर शर्म नहीं, जीवन में सत्कर्म नहीं।
ज्ञात धर्म का मर्म नहीं, वे व्रत-बन्धन किस काम के हैं॥

तर्क तुला पर जो न तुले, साथ सत्य के जो न घुले।
ज्ञान नेत्र जिनसे न खुले, वे मधुर वचन किस काम के हैं॥

जिनमें करुणा भाव नहीं, परहित हेतु लगाव नहीं।
जिनके भरते घाव नहीं, वे पावन मन किस काम के हैं॥

धुले हृदय के दाग नहीं, बुझे द्वेष की आग नहीं।
हो दुरितों का त्याग नहीं, वे जप-सुमिरन किस काम के हैं॥

गर परिग्रह का पाप पले, मन विषयों की ओर चले।
जिन्हें कष्ट अपमान खले, वे त्याग-तपन किस काम के हैं॥

मन पर व्यर्थ भार धर दे, हीन भावनाएँ भर दे।
जो ''कमलेश'' अहित कर दे, वे सत्य कथन किस काम हैं॥

कुबेरनगर, अहमदाबाद (गुजरात)

साहित्य-समीक्षा

१. मनुस्मृति में महिला का स्थान—

मूल लेखक— श्री पं० एन० रङ्गनाथ शर्मा

अनुवादक— श्री आचार्य आनन्दप्रकाश

प्रकाशक— महर्षि दयानन्द मिशन, आर्यसमाज मन्दिर, पंजाबी बाग, नई दिल्ली।

प्राप्तिस्थान— २२०३/७३, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११० ०६३

प्राचीन संविधान तथा धर्मशास्त्र मनुस्मृति में महिलाओं को कितना गौरव व प्रतिष्ठा दी है, यह सामान्य मनुष्य नहीं जान पाते और मनु के विरोधी मनुष्य कैसी-कैसी मनगढ़न्त कल्पनाओं का सहारा लेकर ऐसी बातें कहते रहते हैं कि मनु ने 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' स्त्रियों को भोग का साधन मानकर बहुत ही निम्न स्थान दिया है।

इस लघु पुस्तिका को पढ़कर ऐसी मिथ्या भ्रान्तियों का तो निराकरण होगा ही, इसके अतिरिक्त पाठकों को यह भी परिचय मिलेगा कि महर्षि मनु ने प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों को बहुत ही प्रतिष्ठा प्रदान की है। विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत पुस्तिका में मनुस्मृति के २५-३० ऐसे उद्धरण दिये हैं कि जिनसे पता लगता है कि मनु जैसा महर्षि तथा वेदों का विद्वान् ऐसी त्रुटि कदापि नहीं कर सकता। कतिपय उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

(१) यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

(२) शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।

(३) पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमभीप्सुभिः॥

इनके अतिरिक्त 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' यह बात भी किस प्रसंग में मनु ने कही है, उसे पढ़कर मनु के प्रति सम्मान की भावना ही बढ़ेगी। अतः प्रत्येक मननशील मानव को इसको अवश्य पढ़ना चाहिये और लेखक व प्रकाशक का उत्साह-वर्धन करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द के निर्वाण-दिवस पर
शारदीय नवशस्येष्टि-दीपावली की प्राचीनता (अनादित्व-अनन्तत्व)

मानव उत्सवप्रिय प्राणी है और सदा से ही उत्सवप्रिय रहा है। जब इसकी यह उत्सवप्रियता सामाजिक-सामूहिक रूप धारण कर लेती है, तो पर्व रूप में प्रस्फुटित हो जाती है। मानव की इस उत्सवप्रियता रूप प्रस्फुरणा से ही अनेक पर्वों का सृजन हुआ है, जिनकी आर्यों में लम्बी शृङ्खला है। किन्तु दीपावली पर्व के विषय में मानव की यह प्रस्फुरणा कल्पना-मूलाधार नहीं है, सहायक है और उतनी ही पुरानी है, जितना कि मानव हृदय को प्राप्त ईश्वरीय ज्ञान वेद। ईश्वरीय ज्ञान वेद शाश्वत-सनातन है। इसलिए वेदमूलक-वेदाधार होने से दीपावली भी शाश्वत-सनातन है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान-काव्य का सिद्धान्तरूप है और संसार क्रियात्मक रूप। वेद में कहा है—"इषे त्वोर्जे त्वा··· श्रेष्ठतमाय कर्मणे··· (यजुः ०१।१)"। यदि तुम ऊर्जा (शक्ति, बल, विद्या, बुद्धि) प्राप्त करना चाहते हो तो अन्न के द्वारा श्रेष्ठतम कर्म अर्थात् यज्ञ करो।

वर्ष में दो बार नवान्न पैदा होता है। आर्य यज्ञशेष खाते हैं। आर्यों में आज भी यज्ञशेष खाने की परम्परा है। "मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥ (ऋग्वेद)" "विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वाऽमृतभोजनः। विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथाऽमृतम्॥ मनु० ३।८४॥" "यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ गीता॥"—में यज्ञशेष खाने का विधान एवं महत्त्व दर्शाया है। "अन्नं वै प्राणाः" अर्थात् अन्न मानव का प्राण है और कृषि-कर्म अन्न का प्राण (आधार) है। इसलिए कृषिप्रधान कृषि-जीवनाधार आर्यावर्त्त भारतदेश में आर्यों ने अपनी उर्वरा भूमि में सब को पुलकित करती शस्यश्यामल पकी फसल देखकर अत्यन्त उल्लसित होकर कहा—"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ ऋ० १।१।१॥ यज्ञ के पुरोहित ऋत्विक् होता सब के धारक अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं, उसकी आज्ञा का पालन-होम करते हैं। क्योंकि "अग्निर्देवो देवानामभवत् पुरोहितः। (ऋग्वेद)" वह अग्नि सब देवताओं का पुरोहित है। नवीन पक्वान्न का होम समर्पण करने के लिए हम उस देव पुरोहित अग्नि को बुलाते हैं, अपने घरों में सादर आमन्त्रित करते हैं—"अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥ साम० १।१।१॥" हे स्तुति किए हुए होता-हविर्दाता अग्ने! वायु आदि देवों को हविः (अन्न, घृत, साकल्य आदि अणुरूप सूक्ष्म पदार्थ) प्रदान करने-पहुँचाने के लिए तुम हमारे यज्ञों में आओ। अग्निदेव के प्रकट हो जाने पर मानो गहन अन्धकारमयी कार्त्तिक अमावस्या के अवसर पर मानव ने अपनी उत्सवप्रियता अग्निदेव के सामने हृदय खोलकर रख दी और वेद की दैवी भाषा में कहा—"व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्तां स्वाहा॥ यजु० १८।१२॥" चतुर्दिक् हर्षमय वातावरण में "अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।" "प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम।"—इत्यादि मन्त्रों का पाठ करते हुए धान-चावल, उड़द, तिल, मूँग··· की हविः से घर-चौपाल, हर जगह, जहाँ देखो वहीं, अग्निहोत्र की सप्तरङ्गी ज्वालाएँ मानसपटल को आलोकित-पुलकित करने लगीं तो मानो स्वयं अग्निदेव भगवान् बोले—"देहि मे ददामि ते। (यजु०)" मैं तुझे देता हूँ, तू मुझे दे। तू एक देगा, मैं तुझे एक, दो, तीन··· अनेक··· असङ्ख्य दूँगा। इस प्रकार भक्त और भगवान् में होम-दान आदान का क्रम चल पड़ा, भगवान् ने भक्त का भण्डार भर दिया तो वह प्रसन्नचित्त होकर प्रभु का धन्यवाद करने लगा—"अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥ यजु० ११।८३॥" हे अन्नपते! अन्न आदि पदार्थों के स्वामी परमेश्वर आप ही रोगरहित, सुखकारी, बलवर्धक अन्न आदि पदार्थ द्विपात्-चतुष्पात् सब जीवों को देने वाले हैं। यह सब आपकी ही कृपा का फल है। बस, नवशस्येष्टि यज्ञ प्रारम्भ हो गया, जो निरन्तर चल रहा है, पहले भी चल रहा था, आगे भी चलता रहेगा। किन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत के बाद यज्ञों का प्रचार न्यून होने से यह पर्व दीपावली दीपोत्सव मात्र बनकर रह गया। और यदि प्रारम्भ में भी घृतदीप जलाये जाते हों तो कोई अतिशयोक्ति—आश्चर्य नहीं, क्योंकि यज्ञ में घृतदीप जलाने का विधान तो वैदिक ही है तो फिर कालान्तर में लोगों ने यज्ञ न करके घृत दीप जलाकर ही यह पर्व मनाना प्रारम्भ कर दिया होगा। खैर, जो भी हो, पर इतना तो निश्चित ही है कि वेद की संस्कृति त्याग प्रधान है। वहाँ "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।" "यूयं जीव्यास्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वयं जीव्यास्म।'', ''केवलाघो भवति केवलादी।'' (वेद) का दिव्य सन्देश दिया गया है। इसलिए यह पर्व वैदिक है, सांस्कृतिक है। इस पर्व पर नवान्न का होम सर्वथा उचित ही है।

''आर्या ईश्वरपुत्राः। (निरुक्त)'' आर्य अर्थात् श्रेष्ठजन ईश्वर-पुत्र होते हैं और वेद ईश्वरप्रदत्त सनातन, अनादि अनन्त ज्ञान है। जो कि आर्यों का प्रेरणा स्रोत एवं कर्त्तव्यपथ-प्रदर्शक है। इस प्रकार वसुन्धरा पर जब तक एक भी आर्य (श्रेष्ठ-धर्मात्मा-वेदानुयायी) मनुष्य रहेगा, तब तक वह अपने परम प्रेरक परम पिता की आज्ञापालन के रूप में शारदीय नवशस्येष्टि-दीपावली का पावन पर्व मनाता रहेगा।

सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने ''धाता यथापूर्वमकल्पयत्। (ऋग्वेद)'' पूर्व-कल्प के समान ही यह सृष्टि रची है। प्रत्येक प्रलय के अनन्तर इसी रूप में वह सृष्टि रचना करेगा तथा वेद-ज्ञान भी देगा, जिसमें एतत् तुल्य ही नवशस्येष्टि-दीपावली आदि सांस्कृतिक पर्व ईश्वर पुत्र आर्यों द्वारा पुनः पुनः मनाये जाते रहेंगे और पूर्व सृष्टियों में भी मनाये जाते रहेंगे और पूर्व सृष्टियों में भी मनाये गये होंगे। इसलिए नवशस्येष्टि-दीपावली पर्व प्रवाह से अनादि-अनन्त सृष्टि में अनादि काल से प्रचलित है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा। यही स्थिति अन्य सांस्कृतिक पर्वों होली आदि के विषय में भी समझनी चाहिए।

कुछ लोगों का आज लोक में ऐसा मत है कि श्री रामचन्द्र जी लंका विजयोपरान्त कार्त्तिक अमावस्या के दिन बनवास से अयोध्या वापस लौटे थे तो लोगों ने हर्षोल्लास में घर-घर घृत के दीप जलाए। तभी से यह दिन दीपावली के रूप में मनाया जाने लगा। किन्तु यह मान्यता इतिहास-(वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीकृत रामचरितमानस) सम्मत न होने से कपोल कल्पित ही है। श्रीराम अयोध्या आगमन एवं दीपावली का तो परस्पर कोई सम्बन्ध ही नहीं है। हाँ यह तो सम्भव है कि इतिहास वर्णित जिस किसी तिथि को भी श्री रामचन्द्र जी वन से अयोध्या वापस आये हों, तो उस दिन लोगों ने उनके स्वागत-सत्कार-प्रसन्नता में घृतदीप जलाये हों। लेकिन यह तो निश्चित ही है कि वे कार्त्तिक अमावस्या के दिन वन से अयोध्या वापस नहीं लौटे थे। पता नहीं इन निर्मूल-निराधार विचारों को कहाँ से जन्म मिला। इस प्रकार के प्रचार ने वर्तमान आर्यों को उनके अपने पूर्वजों के सत्य इतिहास से गुमराह कर रखा है। इसके लिए विशेष रूप से रामायण एवं श्री अमर स्वामी जी महाराज का ''क्या रावण वध विजयादशमी को हुआ था?'' ग्रन्थ द्रष्टव्य है॥

—पं० मनुदेव भारद्वाज आचार्य

महर्षि दयानन्दार्ष गुरुकुल कृष्णपुर नञ्झना, फर्रुखाबाद (उ०प्र०) २०७५०४

आर्यसमाज चावला कालोनी बल्लभगढ़-फरीदाबाद (हरयाणा) १२१००४

योगदर्शन-भाष्यम्

(महर्षि व्यास-भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द व्याख्योपेत)

व्याख्याता : **आचार्य राजवीर शास्त्री**

- योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
- व्यास-भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
- महर्षि-दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
- दर्शनों की परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
- क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियाँ, अनेक चित्त-निर्माण, इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

विशेष जानकारी के लिए सूची-पत्र मँगायें।

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा की सर्वव्यापकता पर प्रहार और उसका उत्तर

—ब्रह्मचारी वेदमुनि आर्य; पाणिनि महाविद्यालय, बहालगढ़ (हरि०)

पूर्व प्रकाशित मेरे लेख पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्री चन्द्रगुप्त जी योगमुनि ने मेरे पास दो पत्र भेजे हैं। जिनका उत्तर सम्प्रति इस लेख में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(१) आपने लिखा है कि "मैं केवल वेद और गीता को प्रामाणिक मानता हूँ तीसरी पुस्तक की आवश्यकता नहीं है।"

तो क्या ब्रह्मकुमारी मत संस्थापक लेखराज (ब्रह्मा) के प्रवचनों के संग्रहरूप ग्रन्थ (साप्ताहिक पाठ्यक्रम) को आप प्रामाणिक नहीं मानते? मानते हैं तो उसका नाम क्यों नहीं लिखा? कहीं अवाक् होने का भय तो नहीं लगा? आप वेद को ईश्वरीय ग्रन्थ मानते हैं अथवा नहीं? क्या वेद का ज्ञान अपूर्ण है? जिसकी पूर्ति वेद में गीता और सा०पा० के माध्यम से की जा रही है। आप वेद का प्रादुर्भाव किस समय मानते हैं? यह भी स्पष्ट कीजिये। वेद के साथ-साथ आपको वेद के व्याख्यान रूप ग्रन्थ ब्राह्मणों को तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरणादि षडङ्ग और उपाङ्ग आदि ऋषिकृत ग्रन्थों को भी प्रामाणिक मानना पड़ेगा। अन्यथा आप वेद के एक शब्द का भी वास्तविक अर्थ कदापि नहीं जान सकते। इन ग्रन्थों की सहायता के बिना आप के द्वारा किया अर्थ प्रामाणिक नहीं होगा। क्योंकि न तो आप साक्षात्कृतधर्मा ऋषि हैं, न ही आपके लेखराज। आपके कथनानुसार सम्प्रति मैं केवल वेद और गीता के ही प्रमाण दूँगा। आपको केवल वेद का ही प्रमाण देना है, क्योंकि गीता हमारे लिए कोई प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है।

(२) आपने लिखा है कि "ईशावास्यमिदं सर्वं०" में "ईशा" शब्द आकारान्त स्त्रीलिङ्ग है; जो कि ईश की शक्ति का वाचक है। "ईश की शक्ति ईशा ही सर्वव्यापी है, न कि ईश।"

समीक्षा—यदि आप व्याकरणादि ग्रन्थों को पढ़े हुए होते तो "ईशा" शब्द को स्त्रीलिङ्ग मानकर अर्थ न करते। आपने "ईशा" शब्द को स्त्रीलिङ्ग लिखकर व्याकरण की सर्वथा अनभिज्ञता को दर्शाया है। मन्त्र में "वास्यम्" शब्द है; जो कृत्य संज्ञक "ण्यत्" (अष्टा० ३।१।१२४) प्रत्ययान्त है। "तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः।" (अष्टा० ३।४।७०) नियम से कृत्य प्रत्ययान्त शब्द कर्म और भाव वाच्य में होते हैं। यहां मन्त्र में भी कर्मवाच्य है। अतः अनभिहित कर्त्ता (ईश्) में तथा उनके साथ तृतीया विभक्ति होती है (अष्टा० २।३।१८)। अब शब्द सिद्धि देखिये-क्विप् प्रत्ययान्त "ईश्" शब्द से तृतीया-विभक्ति "टा" होकर "ईशा" शब्द बनता है। यदि आप कहते हैं कि यहां अकारान्त "ईश" शब्द ही है; जिससे स्त्रीलिङ्ग में "टाप्" हो जायेगा। यदि तृतीया है तो "ईशेन" बनेगा। ऐसा नहीं है; अकारान्त से भी "ईशा" ही बनेगा। "ईश" शब्द से परे स्थित "टा" के स्थान पर "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडा०" (अष्टा० ७।१।३९) से "डा" आदेश होता है। डित्करण सामर्थ्य से "टि" भाग का अर्थात् "श" के "अ" का लोप होकर "ईशा" शब्द बनता है। इस प्रकार यह तृतीया-विभक्त्यन्त शब्द है; न कि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग। "भवता ग्रामो गन्तव्यः" ऐसे वाक्यों में आकारान्त के दर्शनमात्र से स्त्रीलिङ्ग का ज्ञान कुपढ को ही होता है। महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने ठीक ही कहा है—"रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। लोपागमवर्णविकारज्ञो हि सम्यग्वेदान्परिपालयिष्यतीति।" (पस्पशा०)।

अब देखिये मन्त्रांश का वास्तविक अर्थ-(ईशा) ईश्वरेण सकलैश्वर्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना (वास्यम्) आच्छादयितुं योग्यं सर्वतोऽभिव्याप्तम् (इदम्) प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तरम् (सर्वम्) अखिलम्...।

हे मनुष्य! तू (यत्) जो (इदम्) प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त (सर्वम्) सब (जगत्याम्) चलायमान सृष्टि में (जगत्) जड़ चेतन जगत् है, वह (ईशा) ईश्वर अर्थात् सकल ऐश्वर्य से सम्पन्न, सर्वशक्तिमान् परमात्मा के द्वारा (वास्यम्) आच्छादित अर्थात् सब ओर से अभिव्याप्त किया हुआ है।... (महर्षि दयानन्द भाष्य)

यदि आप महर्षि दयानन्द के अर्थ को प्रामाणिक नहीं मानते हैं; तो अन्य भाष्यकारों का अर्थ भी देखिये—

सायणभाष्य—तेन ईशा ईश्वरेण सत्यभूतेन परमात्मना इदं पराक् प्रत्यक्षविषयभूतं सर्वं जगत् नामरूपक्रियात्मकम् अनृतं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्यम् आच्छादनीयम्। (शुक्लयजु०; काण्व सं०)

उव्वटभाष्य—इदं सर्वम् ईशा 'ईश ऐश्वर्ये' तृतीयान्तस्यैतद्रूपम्। यदीशनेन। वास्यं वसनीयम् ममेदमित्यनया भावनया आच्छादनीयम्। इदं सर्वमिति प्रत्यक्षतो निर्दिश्यत इति···।

महीधरभाष्य—तेन स्वेनात्मनेशा इदं प्रत्यक्षतो दृश्यमानं सर्वं वास्यं 'वस आच्छादने' 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) इति ण्यत्प्रत्ययः। आच्छादनीयं परमात्माहमेवेदं सर्वमिति परमार्थसत्यरूपेणात्मना सर्वमिदमनृतमाच्छादनीयम्। परमात्माहमेवास्मि नान्यदस्तीति चिन्तयेदित्यर्थः।

मैंने पूर्व लेख में इस मन्त्र से अतिरिक्त और भी कुछ प्रमाण दिये थे। जिनमें स्पष्ट बताया गया था कि ईश्वर सर्वव्यापक है और सर्वान्तर्यामी है। पर इनका कोई उत्तर नहीं मिला। उन प्रमाणों को पुनः स्मरण करा रहां हूँ— 'विश्वतश्चक्षुरुत०'; (यजु० १७। १९); 'तदेजति०' (यजु० ४०। ५) 'सर्वत: पाणि०'; 'बहिरन्तश्च भूतानां०'; 'अविभक्तञ्च०' (गी० १३।१३, १५;१६); 'ईश्वर: सर्व०' (गी० १८।६१)। इनका विवेचन पूर्व लेख में ही देख लेवें। अब और भी प्रमाण देता हूँ। लीजिये—'वेद नाव: समुद्रिय:०' (ऋ० १।२५।७)—यहां ईश्वर को समुद्र में भी व्याप्त बताया गया है। 'त्वं हि विश्वतो मुख०' (ऋ० १।९७।६); 'सविता पश्चात् सविता पुरस्तात्०' (ऋ० १०। २६।१४); 'स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठत्' (ऋ० १०।९०।१); 'स ओत: प्रोतश्च विभू: प्रजासु०' (यजु० ३२। ८); 'परीत्य सर्वा: प्रदिशो दिशश्च०' (यजु० ३२।११); 'स पर्यगात्०' (यजु० ४०।८); 'योऽग्नौ रुद्रो यो··· आविवेश' (अ० ७।८७।१); 'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्' (गी० १३।१६); -यहां भी १८।६१ के सदृश स्पष्ट कर दिया गया कि वह ईश्वर सब के हृदय में विराजमान है। यजु० ४०।५ में भी स्पष्ट है कि वह परमात्मा इस सब जगत् वा जीवों के अन्दर भी है और वही बाहर भी है। 'यो मां पश्यति सर्वत्र०' (गी० ६।३०); 'सर्वभूतस्थितं यो मां' (गी० ६।३१)। आप लिखते हैं कि 'परमात्मा बिन्दुस्वरूप है और बृह्मलोक-वासी है'। अब मैं ऐसे प्रमाण देता हूँ, जहाँ यह बताया गया कि परमात्मा बिन्दुस्वरूप नहीं है अपितु वह इतना व्यापक है कि न उसका आदि है; न अन्त। 'अनन्तं विततं०' (अ० १०। ८।१२) अन्तरहित ब्रह्म सर्वत्र फैला हुआ है। और भी द्र०ऋ० (१।५२।१४); (१।१००।१५)। 'वायुमुत्वामपूर्व्य०' (सा० उ० १।१।२२)-यहां ईश्वर को अपूर्व्य (=अनादि) कहा है। और भी द्रष्टव्य यजु० (३२।२) और देखिये-'यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्०' (अ० ११।४।१)—जिसमें सब भूत प्रतिष्ठित हैं विद्यमान हैं। 'सर्वं च मयि पश्यति' (गी० ६।३०)— सब भूतों को जो मुझ में देखता है। अब बताइये कि-ब्रह्मलोक वासी बिन्दु-स्वरूप में सब कुछ कैसा समा रहेगा? जब परमात्मा को सर्वव्यापक मानेंगे तभी इस प्रकार के वाक्य सार्थक होंगे।

आपने यह जो लिखा कि—'ईश की शक्ति ईशा ही सर्वव्यापी है, न कि ईश'। यह अज्ञानियों की सी बात है। क्योंकि जिसका स्वरूप ही सच्चिदानन्द है और सर्वशक्तिमान् है, सर्वज्ञ है। भला! वे गुण उससे पृथक् हो कैसे सकते हैं। स्वाभाविक गुण कदापि गुणी से पृथक् नहीं होते। जो गुण गुणी से पृथक् होते हैं; वे उसके स्वाभाविक गुण नहीं कहलाते, बल्कि नैमित्तिक गुण कहलाते हैं। जो आग्नेय शक्ति विशेष बिजली है; क्या आप उसको यह सिद्ध कर सकेंगे कि—बिजली किसी वस्तु का नाम है और उसकी शक्ति उससे पृथक् सत्ता है? क्या आप एलक्ट्रान और प्रोटान से ऋणात्मक और धनात्मक शक्ति को अलग कर सकेंगे? दुर्जनतोष न्याय से मान भी लें कि ये शक्तियां उनसे पृथक् हो सकती हैं; तो क्या आप ऋणात्मक और धनात्मक शक्ति रहित उन परमाणुओं को एलक्ट्रान और प्रोटान कह सकेंगे? कदापि नहीं। जहां बिजली आदि हैं वहीं उनकी शक्तियां हैं; जहां उनकी शक्तियां हैं वहां वे भी रहेंगे। ऐसा ही परमात्मा को जान लीजिये। परमात्मा का स्वरूप विस्तृतरूप से आर्यसमाज के द्वितीय नियम में देखिये।

(३) आपने लिखा है कि—'वह परमात्मा हमारे दुःख दूर करने व ज्ञान देने अवश्य आता है'।

समीक्षा—इस की पुष्टि में आप अभी तक एक भी वेद का प्रमाण नहीं दे सके। साप्ताहिक पाठ्यक्रम में और आपके लेख तथा पत्रों में केवल एक ही प्रमाण दृष्टिपथ में आया है। वह है—'यदा यदा हि धर्मस्य०' (गी० ४।७)। जो कि हमारे लिए अप्रामाणिक ग्रन्थ है। '**न हि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते**' अर्थात् साध्य की सिद्धि में साध्यसम हेतु नहीं दिया जाता है। आपको प्रथम इस बात को वेद से सिद्ध करना है कि ईश्वर अवतार लेता है। श्री कृष्ण को ईश्वर और उनकी वाणी गीता को ईश्वरीय ग्रन्थ सिद्ध करने में गीता का ही प्रमाण देना अनुचित है। क्योंकि वे ही आपके साध्य हैं। ईश्वर अवतार नहीं लेता है, वह अजन्मा है, जन्म-मरण से रहित है। प्रमाण लीजिये—'शन्नो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज०' (ऋ० ७।३५।१३; य० ३४।५३); 'अजो नक्षां०' (ऋ० १।६७।३); 'प्रजापतिः····· अजायमानो०' (य० ३१।१९); 'स पर्य्यगाच्छुक्रमकायम्०' (य० ४०।८)। अब ब्रह्माकुमारियों के मान्य ईश्वरीयग्रन्थ का प्रमाण देता हूँ—'हम परमात्मा शब्द किसी शरीरधारी मनुष्य के लिए प्रयोग नहीं करते बल्कि जो जन्म-मरण से न्यारा, ज्ञान, शान्ति और आनन्द का सागर····· है, उसी के लिए इसका प्रयोग करते हैं।' (सा० पा० पृ० २२)। जन्म-मरण से न्यारा और शरीर से रहित (एवं निराकारी) को परमात्मा मानते हुए परमात्मा जन्म धारण करता है, अवतरित होता है; ऐसा मानना परस्पर विरोध की बात है। विरोध इतना ही नहीं, और देखिये—'यह ब्रह्म तत्त्व चेतन नहीं है बल्कि प्रकृति का छठा तत्त्व है जो सत्, रज, तम से न्यारा है।' (पृ० ३९)। बताइये जो चेतन नहीं है, जड़ है; वह ज्ञान, शान्ति, आनन्द का सागर, सर्वशक्तिमान् आदि कैसे होगा?

(४) आपने लिखा है कि—'ओ३म् खं ब्रह्म' का अर्थ ऐसा नहीं है; जैसे आपने किया है, यहां ओ३म् और ब्रह्म दो बार परमात्मा के नाम की क्या आवश्यकता थी? वास्तव में ओ३म् तो परमात्मा का निज नाम है, ब्रह्म पद ब्रह्मलोक का वाचक है। अब अर्थ इस प्रकार हुआ—वह ओ३म् (परमात्मा) आकाश [सदृश निराकार और] ब्रह्मलोकवासी है'।

समीक्षा—*तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।*
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥
(यजु० ३२।१)

जैसे इस मन्त्र में एक ही ईश्वर के आठ नामों का उल्लेख है, वैसा ही 'ओ३म् खं ब्रह्म.' में दो नामों का उल्लेख है। एक ही परमात्मा के दो वा अनेक नामों के उल्लेख की आवश्यकता इसलिए है कि—अल्पज्ञ लोग, अनेक नामों के दर्शनमात्र से ईश्वर भी अनेक हैं; ऐसा न समझ लेवें। जैसे आप लोगों ने समझ लिया कि—'परम पिता परमात्मा शिव अलग है और ब्रह्म, विष्णु, शंकर अलग-अलग हैं।' (सा० पा० पृ० ८६, ८७)। परमेश्वर की वाणी वेद का अन्तःसाक्ष्य भी अन्यत्र स्पष्ट करता है कि—विद्वान्, योगी जन एक ही परमात्मा को इन्द्र, मित्र, वरुण आदि कहते हैं—'इन्द्रं मित्रं···· एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' (ऋ० १।१६४।४६)। 'ब्रह्म' शब्द से ब्रह्मलोक का मिथ्याज्ञान न होवे; इसीलिए वेद ने स्पष्ट कर दिया है कि—'तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म०' (य० ३२।१)—वही एक परमात्मा शुक्र, ब्रह्म आदि नामधारी है। ऋषिकृत ग्रन्थों को प्रामाणिक नहीं मानते हैं; तो कम से कम वेद को वेद से ही समझने का पुरुषार्थ तो कीजिये। जिससे निर्भ्रान्त विशुद्ध अर्थ का ज्ञान हो जाये।

अब पूर्ण मन्त्र पर विचार करते हैं—'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं' प्रकाशस्वरूप रक्षक के द्वारा सत्य का (अविनाशी प्रकृति का) मुख ढका हुआ है। अर्थात् परमात्मा से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। मन्त्र के पूर्वार्द्ध में ईश्वर अपने सर्वव्यापकत्व को बताकर; उत्तरार्द्ध में सर्वान्तर्योमित्व को बता रहा है। 'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्'—जो सूर्यादि में परमात्मा है; वह मैं ही हूँ। अब परमात्मा अपना निज नाम बता रहा है—'ओ३म्' मैं सब जगत् का रक्षक 'ओ३म्' हूँ। इसके पश्चात् अन्त में अपना रूप बता रहा है 'खम्' आकाश के समान व्यापक हूँ। 'ब्रह्म' गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से सब से बड़ा हूँ। अर्थात् उस ईश्वर से महान् कोई भी दूसरी सत्ता नहीं है। यहां 'ब्रह्म' पद ब्रह्मलोक का वाचक नहीं है; परमेश्वर का ही वाचक है और वह आकाश के समान सर्वव्यापक है। इसके लिए विविध आचार्यों के भाष्यों का अवलोकन कीजिये—

दयानन्द भाष्य—सर्वान् मनुष्यान् प्रतीश्वर उपदिशति-हे मनुष्याः! योऽहमत्रऽस्मि, स एवाऽन्यत्र सूर्यादौ; योऽन्यत्र सूर्यादावस्मि स एवात्रास्मि; सर्वत्र परिपूर्णः, खवद् व्यापको न मत्तः किञ्चिदन्यद् बृहद्, अहमेव सर्वेभ्यो महानस्मि।

उव्वटभाष्य—'ओमिति नामनिर्देशः॥ आकाशस्वरूपं ब्रह्म ध्यायेत् आत्मत्वेन। नन्वचेतन आकाशः चेतन आत्मा।····आकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ओतप्रोतसामान्यात् आकाशेनैवेतद्रूपं ब्रह्माभिहितं स्यादिति। (शुक्ल यजु०)।

महीधर भाष्य—'ओमिति नामनिर्देशो ब्रह्मणः खं ब्रह्मेत्याकाशरूपमन्ते ब्रह्म ध्यायेत्। यद्यपि ब्रह्म चेतन-माकाशस्त्वचेतनस्तथाप्येकदेशे सादृश्यम्।' नभोवद्व्यापकं ब्रह्म ओमिति जपन् ध्यायेदित्यर्थः। (शु०य०)।

(५) 'जिस प्रकार शरीर में आत्मा सुई की नोक के बराबर होता हुआ क्या नहीं कर सकता।······ वैसे ब्रह्माण्ड रूपी शरीर में बैठा वह भी सब कुछ कर सकता है, इसलिए उसे सर्वशक्तिमान् कहा है।'

समीक्षा—सुई की नोक के बराबर परिमाण वाला सूक्ष्म जीवात्मा सब कुछ नहीं कर सकता। (ध्यातव्य है-जीवात्मा परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म है), क्योंकि वह एकदेशी है, सर्वव्यापक नहीं है। (द्र० ऋ० १।१६४।३८); अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं (द्र० ऋ० १।१६४।३७); अल्प सामर्थ्य वाला है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वशक्तिमान् नहीं। इसीलिए वह जहां पर विद्यमान है, वहीं पर कार्य करता है और वहीं का ज्ञान रखता है। जीवात्मा को उपस्थिति से अन्यत्र कार्य करने के लिए और दूर देशस्थ वा परोक्ष विषय की जानकारी के लिए कुछ सहायकों वा उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। इतना ही नहीं, जिस शरीर में जीवात्मा विराजमान है, उसमें भी सब कुछ नहीं कर पाता। जैसे—दिन में पचासों रोगियों के दिल की गति की परीक्षा करने वाला डाक्टर; अपने ही दिल की परीक्षा बिना साधन के नहीं कर पाता। जबकि हृदय में ही जीवात्मा स्थित है। और वैद्य भी अपनी नाड़ी की परीक्षा दूसरे हाथ से करता है। जब शरीर में जीवात्मा है; और वह सब कुछ कर सकता है, जान सकता है तो अन्दर से ही हृदय वा नाड़ी की गति को क्यों नहीं जान लेता? इतना ही नहीं किसी भी प्रकार की आभ्यन्तरिक क्रिया को नहीं जान सकता है। अपने ही गर्भ में बनने वाली सन्तान के विषय में माता कुछ भी नहीं जानती है—वह कैसी है? बालक अथवा बालिका? इसका कारण है—ये सभी क्रियाएँ जीवात्मा के द्वारा नहीं की जातीं हैं। यदि की जातीं तो अवश्य जान लेता।

बिना चेतन के जड़ में किसी भी प्रकार की क्रिया नहीं हो सकती है। इस नियम को अधिकांश वैज्ञानिक भी स्वीकार कर चुके हैं। इतने बड़े ब्रह्माण्ड में और एक छोटे से परमाणु में भी जो क्रियाएँ चल रही हैं; वे किसी महान् चेतन शक्ति के बिना नहीं हो सकती हैं। वह शक्ति ही परमात्मा है। जो स्थानविशेष ब्रह्मलोक में स्थित तथाकथित शिव है; उसे जगत् की रचना, पालन और विनाश के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शंकर की आवश्यकता पड़ती है। तब वह कैसे सर्वशक्तिमान् होगा? जब बिना मुख, हस्तादि के ब्रह्मादि को बना दिया था और उन्हें समझा दिया था कि जगत् की रचनादि कैसे करनी है; तब पूरे जगत् को ही क्यों नहीं बनाता? हतभाग्य मनुष्य ने अपनी अल्पज्ञता के कारण ईश्वर को भी अपने सदृश एकदेशी बना दिया, और उसके साधनों वा सहायकों की कल्पना की है। अतः यह वेद विरुद्ध मत है।

आपने यहां लिख दिया कि—'ईश्वर सर्वशक्तिमान् होने के कारण सब कुछ कर लेता है' और इसी पत्र में आगे लिख दिया कि 'सर्वशक्तिमान् का अर्थ ऐसा नहीं है कि वह सब कुछ बिना नियम के कर सकता है'। यह परस्पर विरोध की बात है। अब देखिये सर्वशक्तिमान् का वास्तविक अर्थ—'ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय और सब जीवों के पुण्य, पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किञ्चिद् भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।'

(महर्षि दयानन्द, सत्यार्थ० ७ समु०)

(६) 'विश्व के सब से महान् व्यक्ति (सम्राट्) वा महर्षि (दयानन्द आचार्य) को भी अपना कर्म करने ब्रह्मलोक से यहाँ पृथिवी पर आना पड़ता है, तो परमात्मा अपना कर्त्तव्य कर्म करने क्यों नहीं हम मनुष्यों के बीच आ सकता है?'

समीक्षा—क्या आप आत्मा और परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव एक समान मानते हैं? जिससे आप सिद्ध करते हैं कि ऋषि, महर्षियों को जन्म लेना पड़ा है; तो परमात्मा को भी जन्म लेना पड़ेगा। यह आपकी अज्ञानता का द्योतक है। ऋषि, महर्षि तो योगाभ्यास के माध्यम से सांसारिक सुख-दुःखों वा जन्म-मरण आदि से छूटकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। और उस मोक्षावधि को पूर्ण करके पुनः जन्म लेते हैं और कर्म करते हैं। परन्तु परमात्मा तो सदा ही आनन्दमय है। वह कभी दुःखों में फंसता ही नहीं; फिर किससे मुक्त होगा? जो मुक्त नहीं हुआ, वह कैसे मोक्षावधि को समाप्त करके पुनः ऋषियों के तुल्य जन्म धारण करेगा? मुक्त होना और जन्म लेना तथा कर्म करना आदि जीवात्मा के कर्म हैं। परमात्मा को इस कर्म-चक्र में फंसाना, उसकी निन्दा करना है। परमात्मा के कर्त्तव्य कर्म तो महर्षि के शब्दों में सर्वशक्तिमान् अर्थ पर बता चुका हूँ।

(७) 'उसे (परमात्मा को) कल्प में एक संगम युग पर पृथिवी माता के सामने आना है तो वह अवश्य आयेगा कोई उसे रोक नहीं सकता है। यह वाक्य मेरा नहीं है, वेदमाता का है'।

समीक्षा—यहां आपने वेद का एक भी प्रमाण नहीं दिया। आने-जाने के लिए वह एकदेशीय नहीं है। इसकी पुष्टि अनेक प्रमाणों से कर चुका हूँ। संगमयुग की कल्पना नितान्त कपोल कल्पित है। इतना ही नहीं तथाकथित आपके परमपिता शिव और प्रजापिता ब्रह्मा (=लेखराज) भी महाझूठे निकले। सो कैसे? संक्षेप में लिखता हूँ—''**कलियुग के अन्त और सतयुग के** आदि के बीच के इस थोड़े से समय को '**पुरुषोत्तम युग**' अथवा '**संगम युग**' कहते हैं। इस शुभ कल्याणमय युग में शिव अवतरित होकर भारत को फिर से स्वर्ग बनाते हैं।'' (पृ० १०७)। 'अब संगमयुग का कल्याणकारी समय चल रहा है। इसका भी बहुत समय तो बीत चुका है, थोड़ा ही समय शेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।'(पृ० १०८)।'अब सतयुगी एक-मत वाली सृष्टि स्थापन हो रही है·····' (पृ० ११६)।'भारत फिर नरक से स्वर्ग बन रहा है।'(पृ० १३०)।'परम पिता परमात्मा शिव कहते हैं—वत्स, जन्म-जन्मान्तर तो तू विषय-भोग करता रहा, क्या अब मेरी खातिर भी तुम इस अन्तिम जन्म में शेष थोड़े समय के लिए, **कुल आठ वर्षों के लिए** भी पवित्र नहीं रह सकते? हे वत्स, क्या तुम्हें काम रूप घातक विष ही अच्छा लगता है कि अब तुम मुझ से ज्ञानामृत पीकर अमर पद को भी प्राप्त नहीं करना चाहते?····· मैं इस कलियुगी सृष्टि रूपी वेश्यालय से निकाल कर सतयुगी, पावन सृष्टि रूपी शिवालय में ले जाने के लिए आया हूँ·····।' (पृ० १६९)

लेखराज के शरीर में अवतरित शिव के ये सब उपदेश वा घोषणाएँ साप्ताहिक पाठ्यक्रम ग्रन्थ की दूसरी आवृत्ति में की गई हैं। जो कि जनवरी, १९६९ को छपी थी। अगस्त, १९६८ में छपी हुई प्रथम आवृत्ति में भी ये ही बातें हैं। (उद्धृत पृष्ठ संख्याएँ दूसरी आवृत्ति की हैं)। घोषणा की गई है कि कलियुग समाप्त हो गया, सतयुग आने ही वाला है, संगमयुग चल रहा है; उसका भी थोड़ा ही समय (=आठ वर्ष) रह गया है। पर प्रथम आवृत्ति के अनुसार २८ वर्ष एक माह बीत चुका है, अभी तक न ही कलियुग समाप्त हुआ, न ही सतयुग आया। न ही एक मत (=ब्रह्मकुमारीमत) स्थापित हुआ। बल्कि नये-नये सैकड़ों मतों का उदय हुआ और हो रहे हैं। ८ वर्षों में ही सतयुग की स्थापना और भारत को स्वर्ग अर्थात् अपने पुत्रों को स्वर्ग में ले जाना अथवा देवी-देवता पद दिलाने की जो घोषणा की थी, लालच दिखाया था; उसे २८ वर्षों में भी आपके शिव साकार नहीं कर सके। इससे सिद्ध होता है कि—शिव मिथ्याभाषी था; इतना ही नहीं वह सर्वशक्तिमान् नहीं था; शक्तिहीन था। ब्रह्मकुमारियों ने अपने ईश्वर के विषय में ठीक ही लिखा है कि—ब्रह्मलोकवासी, बिन्दुस्वरूप शिव चेतन नहीं है (द्र० पृ० ३९)। आप लोगों के आठ वर्ष कभी समाप्त होते हैं कि नहीं? क्या इस समय भी आठ वर्ष का ही उपदेश देते हो? सब ब्रह्मकुमारी, कुमार लेखराज के साथ मरकर स्वर्ग में क्यों नहीं गये? जब कि उसी ग्रन्थ में अन्यत्र कहा गया है कि 'प्रलय के समय सब पुत्रों को शिव ब्रह्मलोक में ले जाता है (चाहे वह शिशु हो, बूढ़ा हो, स्त्री हो वा अधर्मी)। अतः विनाश तो गुप्त रूप में कल्याणकारी है।' (पृ० ९०; ९१)। ब्रह्मकुमारियों ने उसकी आज्ञा का तिरस्कार क्यों किया? क्या ब्रह्मकुमारी और ब्रह्मकुमारों को विषयवासनाओं से लिप्त कलियुगरूपी वेश्यालय में ही शिवालय की अपेक्षा अधिक आनन्द आ रहा है।

(८) 'जब आप कण-कण में परमात्मा को मानते हो; तो कितने परमात्मा हुए'? 'जब कण-कण में भगवान् मानते हो तो भगवान् असंख्य हुए, जबकि परमात्मा एक है'।

समीक्षा—आकाश सर्वव्यापक (कण-कण में) है; तो आकाश कितने हुए? इस प्रकार का प्रश्न तो विवेकहीन ही कर सकता है। पर आश्चर्य की बात है कि आप सामवेद के भाष्यकार होते हुए भी उसी प्रकार का प्रश्न किया। देखिये—परमात्मा सर्वव्यापक है अर्थात् कणों में पूर्ण व्यापक और कणों के बाहर भी ओत-प्रोत है। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहां परमात्मा न हो। परमात्मा कितने हैं? ऐसा प्रश्न तो तब उठता है जब वह कणों में तो व्याप्त हो और बाहर न हो। पर वास्तविकता वैसी नहीं है।

(९) 'यदि वह (परमपिता) सर्वव्यापक है, तो सब (=आत्माएँ) परस्पर पिता हुए'।

समीक्षा—इस प्रश्न को देखने से प्रतीत होता है कि आप विवेकता के विशुद्ध वैरी हैं। चेतन हीन शिव के उपदेश रूपी चश्मा को उतारिये, फिर सत्य को परखिये। कदापि सब परस्पर पिता नहीं हो सकते हैं। 'पिता' शब्द 'पुत्र' की अपेक्षा रखता है। बिना पुत्र के कोई पिता नहीं कहलाता। किसी लोहे की छड़ में बिजली का तार बान्धकर, उसमें बिजली प्रवेश करा दिया जाय; तो क्या वह छड़, छड़ न कहलाकर बिजली कहलायेगा? कदापि नहीं। जैसे छड़ के कण-कण में बिजली सर्वव्यापक होने पर भी छड़ की संज्ञा नहीं बदलती है; वैसे ही जीवात्मा में परम पिता सर्वव्यापक होने पर जीवात्माएँ पिता नहीं कहलाते हैं।

(१०) आपने प्रथम लेख में लिखा था कि 'त्रैतवाद में आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का इन तीनों शक्तियों को मिलाकर ही उसे परमेश्वर कहा जाता है'।

मैं पुनः स्मरण करा रहा हूँ, इस प्रतिज्ञा को वेद के प्रमाणों से सिद्ध कीजिये। और विपक्षी मित्र को परामर्श देता हूँ कि समस्त शंकानिवारणार्थ, वैचारिक क्रान्ति के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, वेद के भावों को समझने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित '**सत्यार्थप्रकाश**' '**ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका**' पढ़ें।

इत्यो३म् शम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत पुकार रहा है-अपने इतिहास को पहचानो!

आज हमारा देश प्रगति-पथ पर दौड़ रहा है। अब मोटर कार तो क्या हवाई जहाज, युद्ध, टैंक और मिशाईल तक भारत में बनने लगी हैं। आंकड़े पेश किये जा रहे हैं—अमुक उत्पादन में हमारा देश फलां नम्बर पर पहुंच गया है, अमुक उत्पादन में फलां नम्बर पर। आंकड़ों के इस मकड़ जाल में फंस कर आज हर नागरिक अपने देश पर गर्व कर रहा है।

लेकिन ये सिर्फ आंकड़े हैं, और आंकड़े सदा यथार्थ से परे होते हैं। आज हम प्रगति नहीं कर रहे बल्कि बरबादी के रास्ते पर जा रहे हैं। क्योंकि आंकड़ों से हटकर यदि हम देखें तो यथार्थ इससे बिलकुल भिन्न है, और इसके लिए कुछ ही उदाहरण काफी होंगे। जैसे कि हम रोज अखबारों में पढ़ते हैं—बलात्कार, जातीय हिंसा और बड़े-बड़े घोटाले। और इन कार्यों में संलग्न भी पाये जाते हैं देश के बड़े-बड़े सम्मानित नागरिक व देश के नेतृत्व को सम्भालने वाले लोग।

अब प्रश्न उठता है कि हम मान लें कि हमारा देश प्रगति कर रहा है, या आगे बढ़ रहा है? यदि ध्यान से सोचा जाये तो इसका उत्तर हमें नकारात्मक ही मिलेगा। क्योंकि हमने बड़ी-बड़ी फैक्टरियां लगाईं, बड़े-बड़े कारखाने लगाये, हम हवाई जहाज, युद्ध टैंक व ऐसी-आराम की बड़ी-बड़ी वस्तुएँ तो बनाने लगे, लेकिन मेरे देश में कोई ऐसी फैक्टरी, कोई ऐसा कारखाना नहीं है जिसमें इन्सान बनाये जाते हों, मनुष्य बनाये जाते हों। जिस मनुष्य के लिए ये सब कुछ बनाया जा रहा है वह मनुष्य नहीं बनाया गया। कोई ऐसी फैक्टरी मेरे देश में नहीं लगाई गयी जिसमें नैतिकता, देश-प्रेम व चरित्र-निर्माण की वस्तुएँ बनाई जाती हों।

इसी सब का नतीजा है कि राम और कृष्ण का यह देश नैतिक पतन की चरम सीमा तक पहुँच चुका है। आज इस देश के लोगों के पास न तो कोई चरित्र है, न देश-प्रेम और न ही भाई-चारा जो कि इस देश के समाज की सब से बड़ी विशेषता व सम्पत्ति होती थी। और आज सारा देश भ्रष्टाचार, जातीय विद्वेष व नफरत की आंधी में झुलस रहा है। इस सब का उत्तरदायित्व है उन लोगों पर जो कि अपने आपको राम और कृष्ण के उत्तराधिकारी बताते हैं। जिस राम और कृष्ण ने अपनी सभ्यता, संस्कृति और धर्म को बचाने के लिए युद्ध किये आज उनके तथाकथित उत्तराधिकारी इन सब मर्यादाओं को खत्म करने के लिए ही युद्ध छेड़े हुए हैं।

विश्व को मनुर्भव (हे मनुष्य तू मनुष्य बन) का सन्देश देने वाला यह देश आज खुद मनुष्यता से दूर होता जा रहा है। आज हम अपने सब आदर्श और सिद्धान्त भूलकर भौतिकता के पीछे भाग रहे हैं। जब पश्चिम के देश भौतिकता से तंग आकर आध्यात्मिकता की तरफ झुके हैं, तब हमारा भौतिकता की दलदल की तरफ आकर्षण एक खतरनाक संकेत है। इसका फायदा भी आसुरी शक्तियां उठा रही हैं। अब हमारा समाज लगभग संस्कार विहीन व दिग्भ्रमित हो चुका है। किसी को नहीं मालूम कि मां बाप, भाई-बहन, गुरु आदि के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है। आज प्रगति की अन्धी दौड़ में सब रिश्ते नाते भुला दिये गये हैं। बेटा बाप को मार रहा है व बाप बेटे को, भाई-भाई का कत्ल कर रहा है। आज आदमी अपने अस्तित्व को भूल चुका है, और उसे अब अपनी छाया से भी डर लगने लगा है।

ज्यादा दिन नहीं हुए जब सुभाषचन्द्र बोस, सरदार भगत-सिंह, चन्द्रशेखर आजाद महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी जैसे बलिदानियों ने अपने अस्तित्व को मिटाकर इस देश को आजादी दिलाई थी। इन्होंने देश व समाज को व्यक्तिगत हितों से सदा ऊपर समझा था। लेकिन हमारे शहीदों ने आजादी की जंग में जो कष्ट सहे थे उन सब को हम ने बहुत ही जल्दी भुला दिया। विश्व इतिहास में भी शायद ही कोई उदाहरण हो, जब किसी देश में अपनी आजादी के बाद गुलामी के वक्त सहे कष्टों को इतनी जल्दी भुला दिया हो।

लेकिन अभी भी वक्त है, जब हम सम्भल सकते हैं। इसके लिए जरूरी होगा कि हम अपने गौरवमय इतिहास को पहचानें व उसी रास्ते पर चलें जिस पर चलकर हमारे पूर्वजों ने भारतीय सभ्यता व संस्कृति को विश्व में प्रतिष्ठित किया था। अब समय आ गया है जब हम खुद जगकर नई पीढ़ी को जगायें व उन्हें संस्कारित करें। अब देशवासियो उठो अपने प्यारे भारत की करुण पुकार को सुनो वह तुम्हें बार-बार पुकार रहा है, उठो और अपने आपको पहचानो।

गौरवमय संस्कृति है हमारी, पहचानो गौरवमय इतिहास को।
कुसंस्कार मिटा डालो-जला दो अन्ध विश्वास को॥

—जितेन्द्र कुमार आर्य
जिला मन्त्री, केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् (मेरठ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय एकता में आर्यसमाज का योगदान

—डा० सत्यदेव आजाद

राजस्थान प्रवास के समय स्वामी दयानन्द उदयपुर में ठहरे हुए थे। अपने प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का कुछ भाग वह यहीं लिख रहे थे। महाराणा उदयपुर के आग्रह पर राजमहलों में स्वामी जी के भाषण चल रहे थे। राजमहल की रानियां भी उनके प्रवचनों से लाभ उठा रही थीं। उन दिनों रियासत के दीवान, मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या जो स्वामी जी के साथ छाया की तरह रहते थे, एक दिन स्वामी जी से पूछ बैठे, "**महाराज इस देश की एकता कैसे मजबूत हो सकती है?**" स्वामी जी बोले, "**जब तक एक भाषा, एक धर्म और समाज में सब को एक जैसा सम्मान नहीं मिलेगा,** तब तक एकता आनी कठिन है।"

लगभग सवा सौ वर्ष पहले आर्यसमाज की स्थापना करते समय भी स्वामी जी ने इसका विशेष ध्यान रखा। वह स्वयं गुजराती थे और उनके अध्ययन का माध्यम संस्कृत थी। इतने पर भी स्वामी जी ने हिन्दी को ही अपने ग्रन्थों और भाषणों की भाषा चुना। कई स्थानों पर उन्होंने इसके लिए कहा भी, "**जब तक किसी राष्ट्र में अभिव्यक्ति का माध्यम कोई एक सशक्त भाषा नहीं होती जिसे सारा देश समझ सके, तब तक एकता की चर्चाएं आकाश में ही घूमती रहेंगी।**" इस तथ्य से स्वामी जी भली भाँति परिचित थे। उन्होंने हिन्दी के लिए अपने ग्रन्थ में "आर्यभाषा" शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान आदि शब्द तो मुगलकाल से चले। उससे पहले जब देश का नाम आर्यावर्त था, और उसके निवासी आर्य कहलाते थे, भला उनके काम-काज की भाषा को आर्यभाषा के अतिरिक्त कहा भी क्या जा सकता था।

ब्रह्मसमाज के एक संस्थापक नेता ने स्वामी दयानन्द की कलकत्ता यात्रा में एक बार उनसे कहा, "**यदि आपने अंग्रेजी पढ़ी होती तो कमाल हो जाता।**" उन्होंने पूछा, "**वह कौन सा कमाल है जो अंग्रेजी पढ़ने से ही होता है?**" इस पर वह बोले, "**वेद का जो सन्देश आज आप भारत में दे रहे हैं, उसे इंगलैंड, अमरीका और दूसरे उन देशों में भी फैलाया जा सकता था, जिनकी भाषा अंग्रेजी है।**" इस पर ब्रह्मसमाज के उस नेता की आत्महीनता पर हंसते हुए स्वामी जी ने कहा, "**मुझ से बड़ी भूल आपने अपने जीवन में यह कर रखी है जो संस्कृत और हिन्दी नहीं जानते। यदि आप इन दोनों भाषाओं को जानते होते तो हम एक और एक ग्यारह हो जाते।** दोनों मिलकर पहले भारत में इस ज्ञान का प्रकाश करते और बाद में बाहर चलने की सोचते। जिनके घर में कूड़ा-करकट भरा है, वे पड़ोसियों को सफाई के उपदेश कैसे दे सकते हैं?"

आर्यसमाज के गुरुकुलों, डी० ए० वी० कालेजों और कन्या विद्यालयों में शुरू से ही अध्ययन का माध्यम हिन्दी रहा है। संस्कृत अतिरिक्त विषय के रूप में पढ़ायी जाती थी और शिक्षा हिन्दी में दी जाती थी। गांधी जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय के रजत जयन्ती समारोह में भाषण देते हुए कहा था, "**जब हरिद्वार के जंगलों में बैठकर स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दी के माध्यम से गुरुकुलों में विज्ञान, साहित्य और आयुर्वेद की शिक्षा दे सकते हैं तो गंगा के किनारे बैठकर आप लोग इन बच्चों को टैक्स का पानी क्यों पिला रहे हैं?**" भारत भर में और दूसरे देशों में भी, जहां आर्यसमाज की शाखाएं अथवा संस्थाएं हैं, वहां हिन्दी का सामान्य ज्ञान और व्यवहार आवश्यक है। आश्चर्य है कि पराधीन भारत में तो हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में देश के सभी भागों में लोकप्रिय हुई, पर स्वाधीनता के बाद कुछ राज्यों में हिन्दी-विरोध को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाने लगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ला प्रतिपदा संवत् १९३२ को बंबई नगर में की। जिस धर्म के शुद्ध स्वरूप की रक्षा के लिए यह स्थापना हुई, वह कोई संकुचित धर्म नहीं था। जिस धर्म को वह पूरे भारत में और विश्व में फैलाना चाहते थे, वह भी सब के लिए समान रूप से ग्राह्य था। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन ने अंग्रेजी के "सैक्युलर" शब्द का अर्थ धर्म निरपेक्ष की तुलना में समझाते हुए कहा था, "**धर्म एक शाश्वत सत्य है जो प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करता है। सैक्युलर शब्द का अर्थ**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदाय और मत-निरपेक्ष तो हो सकता है, धर्म-निरपेक्ष नहीं। सम्प्रदाय और मत व्यक्ति-विशेष और परिस्थितियों की पैदावार होते हैं। धर्म से इनकी तुलना नहीं की जा सकती।''

एक समय ऐसा भी था जब धर्म की आड़ में व्यक्तिगत द्वेष, तनाव और उपद्रवों को बहुत प्रश्रय मिला। कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने मिलकर धर्म के असली स्वरूप को ढक दिया। उन्हें जो अनुकूल लगा, उसी के अनुसार धर्म की व्याख्या कर दी। जब कहीं उनका विरोध और आलोचना हुई, उन्होंने वेद का सहारा ले लिया। वह भगवान् का ज्ञान है, वह असत्य नहीं हो सकता-यह युक्ति दे दी जाती थी। गौतम बुद्ध को इसीलिए वेदों के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ी। लेकिन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों का सही और युक्तिसंगत अर्थ करके समाज में चल रही उन भ्रान्तियों का दृढ़ता से निराकरण किया। आर्यसमाज के जो दस नियम उन्होंने बनाये हैं, वे भी मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी हैं। इनमें कहीं संकुचितपन की झलक देखने को नहीं मिलेगी। यदि कहीं आर्यसमाज के कार्यक्रमों में संकुचितपन की कोई गंध मिलेगी, तो वह आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं का अपना दोष हो सकता है, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित आर्यसमाज के सिद्धान्तों का नहीं।

जिस समय स्वामी जी देश में घूम-घूम कर आर्यसमाज की स्थापना कर रहे थे, उस समय भारत भौगोलिक और भावनात्मक दृष्टि से भी अनेक भागों में विभक्त था। लगभग ६०० देशी रियासतें थीं, जो अपनी अहंमन्यता और विलासिता में मस्त थीं। देश का ६० प्रतिशत से कुछ अधिक भाग रियासतों से बाहर था। उस पर अंग्रेजों ने आधिपत्य कर रखा था। सामाजिक कुरीतियों को बढ़ावा देने में विदेशी शासन का भी बहुत बड़ा हाथ रहा। जन्ममूलक जात-पात और छूआछूत को उभारने में कोई कसर नहीं रखी गयी। स्वामी दयानन्द ने देखा कि यदि यही स्थिति देश में देर तक चलती रही तो पराधीनता के बन्धन कड़े हो जायेंगे और समाज टुकड़ों-टुकड़ों में बंट कर पतन के गर्त में जा गिरेगा।

जात-पात उन्मूलन : आर्यसमाज ने जन्मगत जात-पात को मिटाने और हरिजन समस्या के समाधान में भी पूरी शक्ति लगायी है। यद्यपि यह समस्या समाप्त होने में तो अभी और कुछ समय लगेगा, क्योंकि इसकी जड़ें बहुत गहरी पहुंच चुकी हैं, पर देश ने इसके भयंकर परिणामों को समझना शुरू कर दिया है। जो काम आर्यसमाज इस देश में कर रहा था, वह सरकार ने भी अपने हाथों में ले लिया है। छूआछूत के इस विष को समाप्त करने के लिए संविधान में स्पष्ट व्यवस्था की गई है, लेकिन आर्यसमाज की मान्यता है कि जब तक जात-पात को मूल से ही मिटाया नहीं जाएगा, तब-तक छूआछूत की भावना समाप्त होनी बहुत मुश्किल है।

राष्ट्रीय एकता का जो स्वप्न आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने पहले देखा था, यदि शासन ने भी उस समय उनको सहयोग दे दिया होता तो आज देश का चित्र दूसरा होता। पर ब्रिटिश शासन का हित तो भारतवासियों को आपस में लड़ाने में ही था। आर्यसमाज ने राष्ट्रीय एकता के लिए जो प्रयास किये, इनमें महिला जागरण, पिछड़े क्षेत्रों और आदिवासी क्षेत्रों में प्रचार आदि के अतिरिक्त धार्मिक क्षेत्रों में वैचारिक क्रांति लाना भी था।

बम्बई नगर के गिरगांव मुहल्ले में सब से पहला आर्यसमाज बना। इस आर्यसमाज के न्यासियों और दानदाताओं में रहमतुल्ला नाम के मुसलमान भी थे। अन्य न्यासियों में जस्टिस गोविन्द रानाडे और बम्बई के कुछ दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आर्यसमाज के प्रवर्तक का ध्येय सभी सम्प्रदायों में व्याप्त कुरीतियों को दूर करके सच्चे धर्म में आस्था जगाना था, किसी के प्रति घृणा पैदा करना नहीं था। एक दो बार इसके लिए सभी मतों के प्रतिनिधियों को बुलाकर उच्चस्तरीय सम्मेलन भी उन्होंने किये। बम्बई के एक सम्मेलन में मुसलमानों के प्रतिनिधि सर सैयद अहमद खां और ब्रह्म-समाज की ओर से केशवचन्द्र सेन तथा ईसाइयों की ओर से भी दो प्रतिनिधि पहुंचे। सम्मेलन के प्रमुख विचारणीय विषयों में राष्ट्रीय एकता के लिए धार्मिक संगठनों की भूमिका पर विस्तार से चर्चा चली। ऐसा ही एक सम्मेलन दिल्ली दरबार के समय भी उन्होंने बुलाया था। आर्यसमाज को आज इन विचारों को आगे बढ़ाने में अपनी प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए। धर्म की आड़ में जो निजी दुकानें खुल रही हैं, उन्हें रोकना है और धर्म के उस उदार स्वरूप की प्रतिष्ठा करनी है जो सब को साथ लेकर चल सके।

२३१३, अर्जुनपुरा,
डीगगेट, मथुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म-निरपेक्षता का यथार्थ

—आचार्य सुधांशु, इन्दौर

जब से अयोध्या-कांड हुआ, तब से देश में चारों ओर चाहे वे राजनेता हों या धार्मिक नेता हों या समाजसेवी सब के अन्दर धर्म-निरपेक्षता को लेकर तीव्र मंथन चल रहा है। आर्यसमाज की प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर लेख निकलते रहते हैं। प्रायः जितनी भी धार्मिक संस्थाएं हैं वे और कुछ एक राजनीतिक दल भी संवैधानिक धर्म-निरपेक्षता का तीव्र विरोध करने में लगे हुए हैं।

आइये! थोड़ा हम इस विषय पर खुले मन से विचार करें कि भारतीय धर्म-निरपेक्षता का क्या अर्थ है? क्या धर्म-निरपेक्षता अनिवार्य है?

'धर्म-निरपेक्ष' शब्द अंग्रेजी के 'सेक्युलर' शब्द का हिन्दी अनुवाद है, परन्तु सेक्युलर शब्द का अर्थ 'धर्म निरपेक्ष' न होकर मत निरपेक्ष होना चाहिए। धर्म और मत मजहब में बड़ा भारी अन्तर है। धर्म और मत अलग-अलग अर्थ वाले हैं। दर्शन कहता है कि "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सः धर्मः।" जिससे लौकिक और पारलौकिक सिद्धि हो वह धर्म है। भगवान् मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

ये धर्म के दस लक्षण सार्वभौम हैं। इनका सम्बन्ध किसी मत-मजहब और पन्थ से नहीं है। किसी भी मत के व्यक्ति को इन धर्म के लक्षणों से कोई आपत्ति नहीं हो सकती। वह बिना संकोच के इन्हें अपना सकता है। वस्तुतः नैतिक आदर्शों को जीवन में उतारना ही धर्म है।

मत तो पन्थ या सम्प्रदाय का नाम है। मतवादी व्यक्ति को दूसरे का मत असत्य प्रतीत होता है। धर्म जोड़ता है, तो मजहब विभेद उत्पन्न करता है। धर्म एक ऐसी वस्तु है, जिसका विरोध कोई भी नहीं कर सकता। संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो किसी न किसी अंश में धार्मिक न हो, चाहे वह नास्तिक हो या आस्तिक। कम्युनिष्ट ही क्यों न हो, वह भी धार्मिक हो सकता है। भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ईश्वर की सत्ता स्वीकार न करते हुए भी धार्मिक थे। कार्ल मार्क्स और लेनिन भी धार्मिक थे। कार्ल मार्क्स और लेनिन ने कभी भी धर्म का विरोध नहीं किया। हर व्यक्ति धार्मिक होता है। कोई कम, कोई ज्यादा। कोई दस प्रतिशत, कोई बीस-पचास-सौ प्रतिशत धार्मिक होता है। चाहे युगाण्डा का ईदीअमीन (नरमांसभक्षी) ही क्यों न हो, उसके अन्दर भी कुछ न कुछ धार्मिकता अवश्य विद्यमान है। चोर भी ईमानदार (धार्मिक) साथी की अपेक्षा रखता है।

मत-मजहब एक विचारधारा का नाम है। मत मजहब में धर्म होता है। धर्म में मजहब नहीं। जो मत जितना ही अधिक धार्मिक होगा, वह उतना ही उत्कृष्ट और मानवतावादी होगा।

जब धर्म जीवन का एक आवश्यक अंग है, तब भारतीय संविधान में भारत को धर्म-निरपेक्ष क्यों घोषित किया गया? 'धर्म-निरपेक्षता' का शाब्दिक अर्थ सीधा सा है कि भारत धर्म के प्रति तटस्थ रहेगा, अर्थात् सत्य हो या असत्य। अहिंसा हो या हिंसा, अस्तेय हो या स्तेय आदि का भारत न तो समर्थन करेगा और न ही विरोध। क्या ऐसा ही है? नहीं, ऐसा नहीं है। हम देखते हैं कि संविधान असत्य, स्तेय, हिंसा आदि का व्यवहार करने वाले को दण्ड का विधान करता है तथा सत्य के पालन का सुझाव देता है। **'सत्यमेव जयते'** का उद्घोष करता है। राजनेता मन्त्री आदि ईमानदारी (धर्मपूर्वक) से कार्य करने की शपथ लेते हैं। भारत का आदर्श वाक्य ही यह प्रेरणा देता है कि विजय सदैव सत्य (धर्म) की होती है।

इस तरह देखते हैं कि संविधान धर्म के प्रति तटस्थ अर्थात् निरपेक्ष न होकर, सब को धार्मिक अर्थात् ईमानदार और कर्त्तव्य परायण होने का निर्देश करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु संविधान भारत को 'धर्म-निरपेक्ष देश' क्यों घोषित करता है? इस पर हम विचार करते हैं तो देखते है कि 'धर्म' शब्द 'मत' अर्थ में रूढ़ हो गया है और इसी रूढ़ शब्द का प्रयोग संविधान में हुआ है। धर्म शब्द को मत-मजहब के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता रहा है। धर्म शब्द की तरह अन्य बहुत से शब्द हैं जिनका प्रयोग अन्य अर्थों में किया जाता है। जैसे हिन्दु शब्द आर्य के लिए रूढ़ हो गया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बहुत प्रयत्न किया कि आर्य लोग अपने को हिन्दु कहना छोड़ें। क्योंकि हिन्दु शब्द विदेशी लोगों का दिया हुआ है; जिसका अर्थ काला, चोर डाकू होता है। लेकिन जो लोग अपने को हिन्दु कहते हैं। यह जानते हुए भी कि हिन्दु शब्द का अर्थ काला, चोर, डाकू होता है। वह अपने को काला, चोर, डाकू नहीं मानते हैं। जो संवैधानिक 'धर्म-निरपेक्षता' का अर्थ 'मत-निरपेक्षता' नहीं समझते हैं, क्या वे लोग स्वामी विवेकानन्द जी के इस वक्तव्य—"**हमें हिन्दु होने का गर्व है।**" का अर्थ यही लेते हैं कि स्वामी विवेकानन्द जी को चोर, काला होने का गर्व था? स्वामी विवेकानन्द जी महाराज 'हिन्दु' शब्द का प्रयोग 'आर्य' अर्थ में ही करते थे। विश्व हिन्दु परिषत् का यह अर्थ नहीं लिया जाता कि यह संगठन संसार के काले, चोर लोगों का संगठन है। ऐसा भाव कभी किसी के भी अन्दर नहीं आता। आर्यसमाज के भी बड़े-बड़े विद्वान् कभी-कभी अपने को हिन्दु कहते रहे हैं। इसी तरह जाति शब्द भी अन्य अर्थ में रूढ़ हो गया है। शास्त्र में जाति की परिभाषा करते हुए बताया गया है—"**समानाकृतिर्जातिर्लिङ्गाख्या।**" "**समानप्रसवात्मिका जातिः।**" जिनकी आकृति समान हो, जिनका प्रसव समान हो वे एक जाति के हैं। इस प्रकार मनुष्य की एक जाति, घोड़ा, हाथी, गाय आदि की अलग-अलग एक-एक जाति हुई। यह जाति ईश्वरकृत है। इन्हें बदला नहीं जा सकता, परन्तु जाति शब्द का प्रयोग अन्य (वर्ण) अर्थ में होता रहा है। आर्यसमाज के लोग भी रूढ़ अर्थ में इसका प्रयोग करते रहे हैं। जैसे श्री सन्तराम बी०ए० ने जात-पात तोड़क मण्डल बनाया था उन्होंने मनुष्य, गाय, घोड़ा आदि जो जातियां हैं, उनको तोड़ने के लिए अपना संगठन नहीं बनाया था। इसी प्रकार सगुण-निर्गुण शब्द भी अन्य अर्थ में रूढ़ हो गये हैं। सगुण-गुण सहित निर्गुण-गुण रहित। परन्तु हिन्दी के बड़े-बड़े कवि, साहित्यकार और आर्यसमाज को छोड़कर प्रायः सब लोग सगुण और निर्गुण का अर्थ साकार और निराकार करते रहे हैं।

इसी प्रकार धर्म शब्द भी मजहब के अर्थ में रूढ़ हो गया है। प्रायः सब लोग हिन्दु धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म आदि कहते और लिखते हैं। प्रायः सभी विद्वान् एक मत से यह स्वीकार करते हैं कि धर्म और मत में जमीन-आसमान का अन्तर है, परन्तु जब हिन्दु मत या इस्लाम मत कहना होता है, तब हिन्दु धर्म, इस्लाम धर्म कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय और श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' आदि के साहित्य को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि ये लोग मजहब के स्थान पर 'धर्म' शब्द का प्रयोग करते रहे हैं।

सब का धर्म एक होता है। धर्म न तो हिन्दु होता है न मुस्लिम। जब कोई 'हिन्दु धर्म' इस्लाम धर्म कहता है तब उसका आशय मत-मजहब से होता है। क्योंकि धर्म शब्द मजहब के स्थान पर रूढ़ हो गया है। प्रायः सभी आर्यसमाजों में यह उद्घोष किया जाता है 'वैदिक धर्म की जय' जब हम वैदिक शब्द को धर्म शब्द के पहले जोड़ देते हैं, तब इसका तात्पर्य यह निकलता है कि 'धर्म' वैदिक के अलावा और भी है और वे हैं—पौराणिक, जैन, बौद्ध आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'धर्म' शब्द का दुरुपयोग देश के स्वतन्त्र होने से पूर्व और प्रायः सब लोगों से होता रहा है, (चाहे वे धार्मिक हों या राजनीतिक)। जब समाज में सर्वत्र मजहब के स्थान पर 'धर्म' शब्द का प्रयोग होने तो संविधान में भी मत के स्थान पर धर्म शब्द का प्रयोग हुआ। संवैधानिक 'धर्म-निरपेक्षता' का विरोध करने वाले बतायें जब उन्हें अपना धर्म लिखना होता है तो वे क्यों हिन्दु धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म लिखते हैं? क्या धर्म भी हिन्दु, मुसलमान होता है?

धर्म-निरपेक्षता का सब से मुखर होकर विरोध भाजपा और उसके समान विचार वाले संगठन आर० एस० एस० और वि० हि०प० आदि करते हैं। उनका कहना है कि भारत को धर्म सापेक्ष होना चाहिए। क्योंकि "बिना धर्म के राजनीति भ्रष्ट होती है।" उनका आशय तो भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को 'मत सापेक्ष' करने का है। भारत तो सदैव से धर्म-सापेक्ष है। संसार में कोई भी देश ऐसा नहीं है जो धर्म-सापेक्ष न हो। पाकिस्तान को 'धर्म-सापेक्ष' और चीन आदि साम्यवादी देशों को धर्म-विरोधी माना जाता है, परन्तु सत्य तो यह है कि चीन आदि देश पाकिस्तान की अपेक्षा कहीं अधिक धार्मिक हैं, क्योंकि वहां भ्रष्टाचार अति न्यून है। धर्म की सुन्दर व्याख्या करने वाले न मालूम किस बुद्धि से भारत को धर्म-निरपेक्ष और पाकिस्तान को धर्म-सापेक्ष कहते हैं। क्या पाकिस्तान में धर्म का पालन भारत से अधिक होता है? कोई यह कहे कि यदि भारत धर्म-सापेक्ष होता तो इतना भ्रष्टाचार नहीं होता, परन्तु जो इस देश को धर्म-सापेक्ष करना चाहते हैं, उन संगठनों में भी खूब भ्रष्टाचार है। धर्म का सब से बड़ा शत्रु शराब है। शराबी अपना, अपने परिवार की हानि करता ही है, उससे अन्य लोग भी परेशान होते हैं। जितने भी कत्ल, बलात्कार आदि दुर्घटनाएं होती हैं, उन सब में शराब का हाथ अवश्य होता है। क्या भाजपा शासित राज्यों में शराब पर प्रतिबन्ध है? गोहत्या सब से अधिक बम्बई में होती है। वहाँ की सरकार गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाकर धर्म का पालन क्यों नहीं कर रही है? ये लोग इन बातों का पालन नहीं करेंगे, क्योंकि शराब-बन्दी आदि इनके धर्म में है ही नहीं। इनका धर्म मन्दिर जाना वर्ण-व्यवस्था और पोपों की पूजा है। इनका तो मूल उद्देश्य इस देश को 'पुराणमत सापेक्ष' करना है। अशोक सिंघल कह चुके हैं कि हम देश को कुरान, बाइबिल और सत्यार्थप्रकाश के अनुसार नहीं चलायेंगे। अशोक सिंघल जी सत्यार्थप्रकाश को कुरान आदि की तरह अवैदिक मानते हैं। यह मानें भी क्यों न क्योंकि सत्यार्थप्रकाश अखण्ड मानवता और समानता की बात करता है। इन लोगों को आर्यसमाज से चिढ़ इसलिए है कि आर्यसमाज सब को समान अधिकार की बात करता है। ये देश को आदि शङ्कराचार्य के अनुसार चलायेंगे, जिनका औरङ्गजेबी फतवा है कि "इतश्च न- शूद्रस्याधिकारः। अथास्य वेदमुपशृण्वतः त्रपुजतुभ्याम् श्रोत्रपरिपूरणम्। भवति- वेदोच्चारणे जिह्वाछेदः धारणे शरीरभेदः। वेदपूर्वकस्तु नास्त्यधिकारः शूद्राणामिति स्थितम्।"

(वेदान्तदर्शनशाङ्करभाष्य).

तुलसीदास के अनुसार चलायेंगे, जिनका उपदेश है—

सापत ताड़त परुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता।।
पूजिअ विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।।
ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।।

और वाल्मीकि रामायण के अनुसार रामराज्य लायेंगे, जिसमें यह वर्णन है कि राम ने एक शूद्र (शम्बूक) की मात्र इसलिए हत्या कर दी, कि वह भगवान् का ध्यान कर रहा था। यह कहानी कल्पित है, परन्तु लेखक का उद्देश्य यह था कि जब भी कोई शूद्र तपस्या करे तो लोग उसे राम की तरह दण्ड दें।

ये लोग अब कहते हैं कि हिन्दु धर्म में छुआछूत नहीं है। ये लोग ऐसा इसलिए नहीं कहते हैं कि इन लोगों को वैदिक ज्ञान हो गया है कि यह प्रथा वैदिक (वास्तविक हिन्दु धर्म) में नहीं है या अमानवीय है या इनके अन्दर दलितों के प्रति प्रेम उमड़ पड़ा हो। वास्तविकता यह है कि 'हिन्दु समाज' को अल्प होते देख इनके विचार बदले हैं। वैसे किन्हीं भी कारणों से ये लोग छुआछूत न मानें तो अच्छा ही है। परन्तु इनका यह परिवर्तन अल्पकालिक व छद्म है। यदि स्थायी होता तो आर्य-समाज की तरह छुआछूत को शास्त्र विरुद्ध मानकर छुआछूत का विधान करने वाले अंश को प्रक्षिप्त मानकर निकाल क्यों नहीं देते?

यथार्थतः ये लोग इस देश में 'पुराणमत सापेक्ष' राजतन्त्र लागू करना चाहते हैं। यदि ये अपने अभियान में सफल हो गये तो अन्य मतों का सफाया हो या न हो आर्यसमाज का सफाया निश्चित है। जो आर्यसमाज अंग्रेजों के शासन में फला-फूला, निजाम शासन ने भी जिसके सामने घुटने टेक दिये, उसी आर्य-समाज का अस्तित्व हिन्दु शासन में समाप्त होगा। तब पुनः जन्मना वर्ण-व्यवस्था, स्त्रियों की शिक्षा पर प्रतिबन्ध आदि लागू होंगे, तब इन लोगों द्वारा शासित भारत और पाकिस्तान में कोई अन्तर नहीं होगा। पाकिस्तान में गैर मुस्लिम पीड़ित हैं और यहां गैर सवर्ण पीड़ित होंगे। भगवान् बचाये ऐसे हिन्दु देश से।

देश के धर्म-सापेक्ष (मत-सापेक्ष) होने के दुष्परिणाम पर हमने विचार किया। भारत जैसे भिन्न-भिन्न विचार वाले देश के लिए धर्म-निरपेक्षता (मत-निरपेक्षता) अनिवार्य है और इस देश के लिए हितकारी है, परन्तु प्रशासक तुष्टीकरण करके धर्म-निरपेक्षता को खतरे में न डालें। धर्म-निरपेक्षता का सच्चाई से पालन करें। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख दुःख जीवात्मा के गुण हैं—प्रकृति के नहीं

—आचार्य वेदप्रकाश 'श्रोत्रिय' एम०ए०

एक दार्शनिक प्रतिपत्ति—

प्रमाण के पदार्थ प्रमिति में हेतु होने से प्रमाण के बिना पदार्थ की प्रतिपत्ति अर्थात् प्रमिति नहीं होती। और प्रवर्त्तमान पदार्थ प्रतिपत्ति के ही फलोपलब्धि में कारण होने से पदार्थ प्रतिपत्ति के बिना प्रवृत्ति साफल्य भी नहीं होता। यही प्रवृत्ति साफल्य फलोपलब्धि कहाती है। इससे सिद्ध हुआ कि प्रथम प्रमाण के द्वारा प्रमिति होती है, ततः प्रवृत्ति और उसके अनन्तर फलोपलब्धि होती है। यह एक निश्चित क्रम है। प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा प्रमाण विपयीभूत पदार्थ को जानकर यदि वह इष्ट होता है तो ज्ञाता उस पदार्थ की अभीप्सा अर्थात् ग्रहण करने की इच्छा करता है और यदि वह अनिष्ट होता है तो त्यागने की इच्छा करता है। इससे यह क्रम सिद्ध हुआ कि प्रथम जानता है फिर इच्छा करता है ततः यत्न करता है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रवृत्ति क्या है? ज्ञाता की ग्रहण वा त्याग करने की इच्छा से प्रयुक्त अर्थात् प्रेरित की समीहा अर्थात् ग्रहणानुकूल वा त्यागानुकूल चेष्टा को प्रवृत्ति कहते हैं। और इस प्रवृत्ति का जो फल से सम्बन्ध अर्थात् फलप्रदत्व है, वही प्रवृत्ति सामर्थ्य कहा जाता है। प्रवृत्त पुरुष उस प्रमितित पदार्थ को ग्रहण करने की इच्छा होने पर ग्रहण करता है। और त्याग की इच्छा होने पर छोड़ देता है। इसलिए प्रमाण के द्वारा पदार्थ प्रतिपत्ति, पदार्थ प्रतिपत्ति के द्वारा ही प्रवृत्ति सामर्थ्य अर्थात् ग्रहण वा त्याग करने की इच्छा होती है। और इस प्रवृत्ति सामर्थ्य से ही प्रामाण्य ग्रहण और इसका ही अप्रामाण्य ग्रहण दोनों होते हैं।

पदार्थ की विद्या क्या है? अर्थ्यते समीह्यते इत्यर्थः= पदार्थः अर्थात् जिसकी समीहा की जाती है वह अर्थ= पदार्थ है। यह अर्थ यथाऽनुकूल पदार्थ सम्बन्ध जन्य आत्मधर्म विशेप हर्षपर्य्याय सुख रूप है। और यथा प्रतिकूल पदार्थ सम्बन्ध जन्य क्लेश पर्य्याय दुःख रूप है। सो यह प्रमाण विपयीभूत पदार्थ अपरिसंख्येय है। इसमें हेतु क्या है? **'प्राणभृद् भेदस्याऽपरिसंख्येयत्वात्'** अर्थात् जीवों के असंख्य भेद प्राप्त होने से तद्वेष सुखादिकों का भी असंख्यत्व प्राप्त हुआ।

ज्ञान प्रामाण्य के होने पर ही प्रमाता प्रमेय और प्रवृत्ति साफल्य होते हैं। प्रमाता ज्ञात पदार्थ की फलोपलब्धि से सफल प्रवृत्ति होता है। प्रमेय उपलब्धि कर्मत्व से सफल होता है और प्रमिति प्रमेय प्रकाशक होने से सफल होती है। यही इनका साफल्य है। ज्ञान के प्रामाण्याभाव में इनका साफल्य संभव नहीं होगा। जैसे-शुक्ति रजत ज्ञानकाल में ज्ञात रजत वहाँ नहीं होता है तो शुक्ति रजत ज्ञान का प्रामाण्य नहीं तो ज्ञातादि का भी साफल्य नहीं हुआ। प्रमिति क्या है? प्रमाणजन्य आत्मसमवेत यथार्थ ज्ञान को प्रमिति कहते हैं। इसमें हेतु क्या है? ज्ञान प्रामाण्य के अपाय अर्थात् अभाव होने पर प्रमातादि का साफल्य असंभव होने से, क्योंकि ज्ञान प्रामाण्य के अधीन ही प्रमातादि का साफल्य है, उसके बिना नहीं। ग्रहण वा त्याग करने की इच्छा जिसमें हो वह प्रमात्मक ज्ञान विशिष्ट प्रमाता कहाता है। **'येन प्रत्यक्षादिना पदार्थं प्रमिणोति तत् प्रमाणम्'** अर्थात् ज्ञाता जिस प्रत्यक्षादि के द्वारा पदार्थ को यथार्थ रूप से जानता है वह प्रमाण है। प्रमाण के द्वारा जिस अर्थ का ज्ञान हो वह प्रमेय और प्रमाणजन्य आत्मसमवेत यथार्थ पदार्थ-ज्ञान=पौरुपेय बोध ही प्रमिति कहाती है। इन्हीं चार विधाओं के अन्तर्गत जितने भी लोक में पदार्थ हैं उनमें कोई प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण व प्रमिति निश्चित होंगे। उदाहरण—घटमहं जानामि। इस वाक्य में अहं प्रमाता है। घटं प्रमेय है। धात्वर्थ प्रमिति है। और प्रमितिजनक प्रमाण है। उक्त प्रमातादि चतुष्टय से पृथक् किसी पदार्थ के ज्ञान में कुछ भी अवशिष्ट नहीं है। सब अर्थतत्त्व इन्हीं के अन्तर्भूत है।

सत् का सद्भाव और असत् का असद्भाव होता है। सत् घटादि पदार्थ का सद्भाव सत्त्व=विद्यमानत्व तत्त्व अर्थात् स्वरूप है। असत् शशविपाणादि का असद्भाव असत्त्व=अविद्यमानत्व तत्त्व शशविपाणादि कहीं भी उपलब्ध नहीं है। विद्यमान घटादि सत् है। अपने सत्त्व रूप के द्वारा ज्ञायमान विद्यमान स्वरूप विशिष्ट सत् ही है, असत् नहीं है। और शशविपाणादि असत्त्वरूप से असत् ही है। वह सत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। असत् का असत्त्व ही तत्त्व है। यह कैसे होता है? उत्तर है—प्रमाण के द्वारा। जैसे प्रदीप विद्यमान घटादि का प्रकाश करता हुआ अविद्यमान पटादि जो नहीं है, उसको भी प्रकाशित करता है। वैसे ही प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा सत् और असत् दोनों का प्रकाश हाता है। अब हम निगमन करते हैं जैसे दर्शक के द्वारा दीप प्रमाण से दृश्य घटादि में गृह्यमाण होने पर गृह्यमाण घटादिक की तरह जिस पटादि का ज्ञान नहीं होता क्योंकि वह पटादिक यहाँ नहीं है। यह ज्ञान होता है। यदि पट होता तो घटादिक की तरह ज्ञान होता। विज्ञानाभाव से पट यहाँ नहीं है; यह निश्चय किया जाता है। इसी प्रकार प्रमाणादि के प्रकाश में सुख-दुःख जीवात्मा के गुण हैं या प्रकृति के गुण हैं, यह निश्चय किया जायेगा। क्योंकि यह ध्रुव सिद्धान्त है कि '**न हि स्वतः-प्रकाशस्य प्रदीपस्य प्रकाशः प्रकाशान्तरेण जिज्ञास्यते भवति**' ज्ञान-विषयता को प्राप्त होने पर उसके उपादान व हानार्थ प्रवृत्ति होती है, और उस प्रवृत्ति से उस पदार्थ में उपलब्धि व निरस्ति से उत्पन्न ज्ञान का प्रामाण्य अवधारण किया जाता है। जैसे—चक्षु-सन्निकर्ष होने पर रजत की उपलब्धि से रजत-ज्ञान का प्रामाण्य होता है तथा जैसे आत्मज्ञान होने पर संसार परित्याग से आत्मज्ञान-प्रामाण्य होता है। जहाँ प्रवृत्ति का फलाभि सम्बन्ध नहीं होता है, वहाँ वैसी फलानुपलब्धि से ज्ञान का अप्रामाण्य ही अवधारित होता है। जैसे—शुक्ति रजतादि ज्ञान का। उत्तरोत्तर प्रामाण्य ज्ञान की अपेक्षा में अनवस्था होती है क्योंकि फल की उपलब्धि होने पर उसके द्वारा अविश्वास निवृत्ति से वही विश्राम=समाप्ति होती है।

यहाँ तक हमने प्रतिपत्ति की दार्शनिक प्रस्तावना इसलिए लिखी कि दर्शन विषय के सूक्ष्म विवेचक हमारे प्रस्तुत विषय को अपनी बुद्धि-तुला पर सम्यक् तोल सकें।

अब हम अविज्ञात में संशय करके कि सुख दुःख जीवात्मा के गुण हैं अथवा प्रकृति के गुण हैं, निश्चय रहित ज्ञान का विमर्श अर्थात् न्याय प्रवृत्ति द्वारा निर्णय करते हैं। प्रथम सुख दुःख जीवात्मा के गुण हैं, इसको उद्घाटित करते हैं।

'अस्तीत्यात्मा' आत्मा है। यह शब्द-बोध्यत्व अर्थात् आप्तोदेशमात्र है। इसका प्रत्यक्ष कैसे है? युञ्जान योगी का योग समाधिजन्य प्रत्यक्ष आत्मा में प्रवर्त्तित होता है। आत्मा और मन का संयोग विशेष ही आत्म प्रत्यक्ष है। फिर पूछते हैं कि अनुमान कैसे हो? तब कहते हैं—

'इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥'
न्याय १।१।१०

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानादि आत्मानुमापक लिङ्गभूत षड्गुण हैं। इच्छादिज्ञानान्त समूह प्रकाश समवेत पदार्थ है, उसी की संज्ञा जीव है। देहेन्द्रिय प्राणान्तःकरणभिन्न चेतन जीव है। जहाँ यह जीव नहीं है वहां ये गुण भी अनुमित नहीं होते।

जैसा मधुरादि पदार्थ का इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से आत्मा ने सुख पाया, तज्जातीय मधुरादि पदार्थ को देखता हुआ उसको ग्रहण करने की इच्छा करता है। यह उपादान इच्छा पूर्वापर मधुरादि पदार्थ-द्रष्टा एक के उस पदार्थ जन्य पूर्व सुख ज्ञान के स्मरण से संभव हुआ यह लक्षण आत्मानुमान में लिङ्ग है। इसमें हेतु यह है कि जिसके द्वारा निश्चय से देखा जाता है, उसके द्वारा ही कालान्तर में स्मरण-किया जाता है, अन्य के द्वारा नहीं। जैसे पूर्व जन्म में स्तन्यपान से आत्मा ने सुख पाया जन्मान्तर में उसके स्मरण से स्तन्यपानादि में इच्छा होती है। इस शरीरादि द्वारा पूर्व जन्म में स्तन्यपान जन्य सुख के न पाने से इस जन्म में उसके स्मरण का असंभव होने से। और स्तन्यपानादि में इच्छा होती है, उसकी उपपत्ति के लिए नित्य आत्मा अनेक शरीर-ग्राही होता है। इस प्रकार इच्छा लक्षण लिङ्ग से आत्मा शरीरादि अतिरिक्त ही सिद्ध हुआ।

'प्रेत्याऽऽहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।'
(न्याय ३।१।२२)

पूर्व शरीर के त्यागानन्तर शरीरान्तर ग्रहण करने पर जातमात्र बालक की जो स्तन्य अभिलाषा है, वह पूर्व आहारानुभव जन्य ही है, क्योंकि जातमात्र बालक के इस जन्म में अनुभव न होने से। यह प्रवृत्त्यनुमेय ही स्तन्याभिलाषा है। स्तन्यपान में प्रवृत्ति से स्तन्याभिलाषा अनुमित होती है स्तन्याभिलाषा के बिना स्तन्य पान में प्रवृत्ति की अनुपपत्ति होने से।

बुद्धि में यह इच्छा उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि बुद्धि नियतविषया होती है जैसे जो बुद्धि घटविषया होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह पटविषया नहीं होती और बुद्धि के क्षणिकत्व तथा अनेकार्थग्राहकत्व अभाव से। अन्य बुद्धि व्यक्ति द्वारा देखे हुए का अन्य बुद्धि व्यक्ति द्वारा स्मरण अशक्य है। पूर्वदृष्ट स्मरण के बिना इच्छा के न होने से अनित्य बुद्धि में यह इच्छा लक्षणघटित नहीं होता। जैसे देहान्तर राम के द्वारा देखे हुए को श्याम के द्वारा स्मरण नहीं किया जा सकता। इसका हेतु क्या है? द्रष्टा के भेद से ऐसा है। अन्य बुद्धि से दृष्ट का अन्य बुद्धि से स्मरण नहीं होता है। स्मरण के बिना इच्छा भी उत्पन्न नहीं होती। अतएव यह इच्छा मात्र नित्य आत्मा में होती है।

अनेकार्थदर्शी एक नित्य आत्मा के जिस शत्रु आदि के द्वारा इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष से जो दुःख प्राप्त हुआ तज्जातीय को देखता हुआ उस पदार्थ जन्य पूर्व दुःख अनुभव के स्मरण से वैसा दुःख हेतु में द्वेष पैदा करता है। नित्य आत्मा के उस दर्शन स्मरण का कर्तृत्व संभव होने से द्वेष भी आत्मा का लक्षण सिद्ध हुआ!

जो पदार्थ सुखहेतु प्रसिद्ध है उसी जातीय पदार्थ को देख यह आत्मा ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। सो यह प्रयत्न पूर्व सुख अनुभव करने वाले के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। सुख जनक पदार्थ के ग्रहण करने विषयक प्रयत्न की तरह ही दुःख जनक पदार्थ के त्याग करने विषयक प्रयत्न भी नित्य आत्मा का लिङ्ग है। आत्मा ने पूर्व जैसे पदार्थ से सुख व दुःख अनुभव किया है। उसी सदृश पदार्थ को देखता हुआ पूर्वज्ञात सुख व दुःख का स्मरण कर सुख व दुःख को ग्रहण करने से उनकी वेदना करता है।

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षशोकसम्प्रतिपत्तेः।

(न्याय ३।१।१९)

नवजात शिशु को हर्षभय और शोक की प्राप्ति अनुभूति नवजीवन में उनके हेतुओं के बिना जो होती है, वह पूर्व जन्म में अभ्यस्त विषयों की स्मृति के कारणभूत संस्कारों से होती है। संस्कार से स्मृति, पुनः स्मृति से हर्ष, भय और शोक होता है। क्योंकि वर्तमान नव शैशव काल में अभी कुछ किया ही नहीं। हम देखते हैं कि नवजात शिशु सो रहा है, वह सोता हुआ कभी हँसता स्मित-मुस्कराता और कभी रोता या सुबकता है, कभी भय मानता अर्थात् उचक जाता या कम्पता है। अभी तो नवजीवन में कुछ किया ही नहीं और न ही देखा है। फिर यह स्वप्न कैसे? तब यही निश्चय है कि पूर्व जन्म के संस्कार वश उन उन विषयों की स्मृति से वैसे वैसे स्वप्न आया करते हैं क्योंकि जिन पदार्थों का हर्षादि हेतुत्व इस जन्म में गृहीत नहीं है। फिर भी लिङ्गानुमेय हर्षादि को प्राप्त करता है, इसमें हेतु क्या है? स्मृत्यनुबन्ध ही कारण है। दर्शनान्तर में भी कहा है-

आत्ममनसोः संयोगविशेषात्संस्काराच्च स्मृतिस्तथा स्वप्नः।

(वै० ८।२।६,७)

अर्थात् आत्मा और मन के संयोग विशेष से संस्कार और संस्कार से स्मृति तथा स्वप्न हुआ करते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि नित्य आत्मा ही सुख दुःख का अनुभव करता है। इसलिए नित्यात्मपक्ष में यह लक्षण घटित हैं। जिज्ञासमान यह आत्मा विमर्श अर्थात् विचार करता है, तर्क से जानता या निश्चय करता है कि यह है अर्थात् यह निश्चयात्मक ज्ञान है। जिज्ञासमानता=बुभुत्सा, विमर्श=विचार ये दोनों अभिन्न कर्तृक होने से ज्ञान आत्मा का ही लिङ्ग है। हेतु यह है कि जिसकी बुभुत्सा होती है, उसी का विमर्श और उसी का ज्ञान होता है। अनेकक्षणस्था बुद्धि के ये तीनों लिङ्ग नहीं हो सकते। इसमें दर्शन-प्रतिसन्धान ही पूर्वोक्त हेतु है। अर्थात् दृश्यमान सजातीय से जन्य पूर्व सुखादि अनुभव के स्मरण से ही बुभुत्सा पैदा होती है और वैसा ही स्मरण बिना नित्य आत्मा के नहीं होता है। बुभुत्सानन्तर विमर्श और विमर्शानन्तर जायमान ज्ञान नित्यात्मा का ही लक्षण है। वैशेषिक दर्शनकार ने ये बाह्य लक्षण भी प्रस्तुत किए हैं—

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छा-द्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि॥

(वै० ३।२४)

कोष्ठ्य के वायु का निस्सारण प्राण। बाह्य वायु का आचमन अपान, नेत्र का आवरण निमेष, उसका उद्घाटन उन्मेष, प्राण-धारण जीवन, ज्ञान-मन, उत्क्षेपणादि अनुष्ठान गति, किसी विषय से निवर्त्तन-अन्तर्हृदय में व्यापार करण, क्षुत्तृड्ज्वरादि रोग विकार धर्माधर्म का अनुष्ठान आदि विशेष हैं। शेष पूर्ववत् हैं।

कुछ वेदमन्त्रों द्वारा जीवात्मा के इन गुणों का निर्धारण—

यद्यपि समग्र रूप से भी एक सूक्त के मन्त्रों में जीव के गुणों का वर्णन विद्यमान है। परन्तु उससे पूर्व महर्षि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सरस्वती ने प्राचीन ऋषियों की सूत्र शैली की आधार स्वरूप अपनाई परम्परा द्वारा इन गुणों की सिद्धि में प्रत्यक्ष उदाहरण देखिए—

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
(यजु० ४०।२)

इस मन्त्र के 'जिजीविषेत्' पद का अर्थ है—जीने की इच्छा कर! इससे जीव का इच्छा धर्म है! क्योंकि इस 'जिजीविषेत्' पद में 'सन्' प्रत्यय का 'ष' भाग उदात्त है। यह पद 'जीव' का सन्नन्त रूप है। अन्य सन्नन्त रूपों से स्वर में भिन्नता है। जैसे—चिकीर्षति, चिखादिषति इन पदों में तिप्, सिप, मिप् प्रत्ययों के परे सन् प्रत्यय के नित् होने से आद्युदात्त स्वर होता है। और मूल धातु में उदात्तत्व रहता है। सन् प्रत्यय का अर्थ इच्छा होता है। इस प्रकार इन पदों का अर्थ होगा—करने की इच्छा करता है, खाने की इच्छा करता है। इन प्रयोगों के उच्चारण करने वाले का तात्पर्य करने की इच्छा मात्र करके कार्यान्तर में व्यापृत होना नहीं अपितु भाव यह होता है कि शीघ्र ही इन क्रियाओं के करने में प्रवृत्ति होगी। इन प्रयोगों में अर्थ की प्रधानता नहीं अपितु इच्छापूर्वक कृ-खाद धातुओं के अर्थों की प्रधानता है। अतएव सन् प्रत्यय के सकार में उदात्तत्व न होकर मूल धातु में है। परन्तु 'जिजीविषेत्' पद में 'सन्' प्रत्यय का 'ष' भाग उदात्त है। इस स्वरानुसार सन् अर्थात् इच्छा अर्थ की प्रधानता है। जीव धातु का अर्थ प्राणधारण है। खाना, करना क्रियाएं कर्त्ता के आधीन हैं चाहे वह करे या न करे। परन्तु प्राण धारण क्रिया जीवात्मा के आधीन नहीं। यह क्रिया तो सुषुप्ति व मूर्च्छना में भी निरन्तर होती रहती है। इससे स्पष्ट है कि प्राणधारण क्रिया पर जीवात्मा का अधिकार नहीं है। 'जिजीविषेत्' क्रिया का कर्त्ता केवल इच्छा मात्र कर सकता है, पर प्राणधारण नहीं कर सकता। इसलिए 'जिजीविषेत्' पद के सन् प्रत्यय में उदात्तत्व है। धातु में नहीं। इसलिए 'जिजीविषेत्' पद के इच्छा प्राधान्य अर्थ से इच्छा धर्म सिद्ध होता है। एतद्विषयक निज मान्यता व चिन्तना को अपने शब्दों में अभिव्यक्त करने के स्थान पर हम सीधे ही महर्षि के ही शब्दों का प्रयोग कर अपने व ऋषियों के पक्ष की सबल पुष्टि किए देते हैं—

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणीति जीवस्य शतवर्षपर्यन्तं **प्रयत्नकरणं धर्म्मः**। जिजीविषेत् जीवितु**मिच्छेदितीच्छाधर्म्मः।**

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु।
दुर्मित्रियास्तस्मै योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥
(यजु० अ० ६।२२)

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्त्विति **सुखेच्छाकरणाद् सुखं धर्मः**। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्त्विति **दुःखत्यागेच्छाकरणाद् दुःखं धर्मः**। योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति **द्वेषो धर्मः**। वेदाहमेतं पुरुषं० यजु० अ० ३१।१८ **इति ज्ञानं धर्मः।**

जीवश्चेतनस्वरूपत्वाद्यद्यनुकूलं तत्सुखमिति विदित्वा सदेच्छति। यद्यत् प्रतिकूलं तत्तद्—दुःखमिति ज्ञात्वा सदा द्वेष्टि सुखप्राप्तये दुःखहानये च सदा प्रयतते।

शतवर्षपर्यन्त कर्म करना प्रयत्न-पुरुषार्थ है। 'कर्म करते हुए ही' इस वाक्य से यह भी प्रकट होता है कि जीवात्मा बिना कर्म किए रह ही नहीं सकता। कर्म और जीव का अनादि सम्बन्ध है। इसलिए वेद प्रतिपादित धर्म्य कृत्यों को ही करे! 'जिजीविषेत्' के इच्छा प्राधान्य अर्थ से इच्छा धर्म जीवात्मा का सिद्ध होता है। आप=जल और ओषधियाँ सुमित्र हों—ऐसी सुखेच्छा करण से सुख तथा ये दुर्मित्र हों ऐसी दुःखत्यागेच्छाकरण से दुःख धर्म है। जो हम को द्वेष करता है और जिसको हम द्वेष करते हैं इससे द्वेष धर्म है। वेदोक्त निष्काम धर्म्यकृत्यों को प्रयत्न=पुरुषार्थ से सौ वर्ष जीने की इच्छा मात्र करते हुए यथाऽनुकूल ग्रहण से सुख, यथा प्रतिकूल के त्याग से दुःख-हान और अन्तिम लक्ष्य 'मैं ईश्वर को जानता हूँ' कहकर ज्ञान धर्म की ओर संकेत किया है।

उक्त लक्षणों में तीन परस्पर प्रतिद्वन्द्वी युगल हैं—(१)—इच्छा-द्वेष (२) सुख-दुःख (३) प्रयत्न-ज्ञान! अनुकूल की इच्छा प्रतिकूल से द्वेष, अनुकूल की अनुभूति सुख और प्रतिकूल की अनुभूति दुःख है। शरीर-इन्द्रियों की बाह्य चेष्टा प्रयत्न और मन या आन्तरिक विकास ज्ञान कहलाता है। मनो ज्ञानम्। सुख एवं सुख साधनों के लिए इच्छा और दुःख एवं दुःख कारणों के लिए द्वेष की प्रवृत्ति होती है। तथा प्रयत्न या पुरुषार्थ का अन्तिम लक्ष्य ज्ञान-यथार्थज्ञान है। सिद्ध हुआ कि इच्छा द्वेष, सुख दुःख प्रयत्न-ज्ञान जीव के ही गुण हैं।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगस्त ९६ से आगे—

'हिन्दू' नाम कसौटी पर (५)

(यह नाम गर्व की नहीं, लज्जा की बात है)

—डॉ० वीरेन्द्र शर्मा, साधु आश्रम, होशियारपुर

(७) **अन्त में स्वामी विज्ञानानन्द जी कहते हैं**—"स्वामी दयानन्द जी एवम् आर्यसमाजी बन्धुओं का हिन्दुत्व के प्रति नकारात्मक विचार पढ़ा। अब आगे इनके सकारात्मक विचार भी प्रस्तुत हैं—पं० लेखराम जी द्वारा विरचित स्वामी दयानन्द जी की प्रथम प्रामाणिक—"जीवनी में से कुछ अंश लेकर" आर्ष-साहित्यप्रचार ट्रस्ट ने एक पुस्तक "दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह" के नाम से छापा है। उसमें दो प्रसङ्गों का वर्णन है जिसे मैं प्रस्तुत करता हूँ—

एक बार पादरी पारकिंस ने स्वामी दयानन्द जी से कहा कि हिन्दू धर्म कच्चे धागे के समान है। स्वामी दयानन्द जी का उत्तर सारगर्भित है। उस पर विचार करें—

स्वामी दयानन्द—"हिन्दूधर्म लोहे के समान वज्र है।" **पादरी एच० पारकिंस**—"वह कैसे?" **स्वामी दयानन्द**—"देखो इसमें वेद और ईश्वर को मानने वाले आस्तिक भी हैं तो निरीश्वरवादी वेद विरोधी जैन और बौद्ध भी हैं। यहाँ कोई शैव, शाक्त, वैष्णव, गणपति हैं तो कोई वाममार्गी, कोई मूर्तिपूजा-करता है तो कोई निराकार की पूजा करता है। सब साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से एक-दूसरे के विरोधी हैं, फिर भी आपस में एक साथ सौहार्द से रहते हैं। खान-पान, शादी-विवाह, मिलना-जुलना, एक-दूसरे के धार्मिक कार्यों में सम्मिलित होना आदि व्यवहार करते हैं। अधिकांशतः तो एक घर में विभिन्न मत वाले पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पिता के रूप में मिल सकते हैं। ये सब हिन्दू हैं। इन्हें हिन्दू धर्म से पृथक् नहीं कर सकता। इसलिए हिन्दू धर्म सागर के समान गुण रखता है। यह सागर की तरह विशाल और गम्भीर है। समुद्र की लहरें सागर में उठती हैं और उसी में विलीन हो जाती हैं, उसी तरह हिन्दूधर्म में विभिन्न मत-मतान्तर तरंगवत् उठते हैं और पुनः धीरे-धीरे उसकी विशालता में समाहित हो जायेंगे। इस कारण हिन्दूधर्म लोहे के समान वज्र-अटूट और सागर के समान विशाल और गम्भीर है।"

आगे चलकर स्वामी विज्ञानानन्द जी कहते हैं—"दुर्भाग्य से स्वामी के हिन्दुत्व के प्रति इन विचारों को आज के अनेक आर्यसमाजी शायद नहीं पढ़ते। इन्हें क्या हो गया है।"

समीक्षा—यहाँ उपर्युक्त प्रसङ्ग में श्री विज्ञानानन्द जी ने स्वामी दयानन्द जी के हिन्दुत्व-विषयक मन्तव्य का सकारात्मक विचार भी उपस्थित किया है। इससे उन्होंने यह लिखने का प्रयत्न किया है कि इस विषय में स्वामी दयानन्द एक ही विषय में एक साथ विरोधी विचार रखते थे। इसका अर्थ तो यही होता है कि स्वामी दयानन्द का इस बारे में मन्तव्य परस्पर विरोधी है। सो, स्वामी दयानन्द जैसे महाविद्वान्, सत्यैकनिष्ठ, आप्त पुरुष को इस प्रकार के दूषित विचार के लांछन से लांछित करने से पूर्व दस बार विचार कर लेना आवश्यक था कि ऐसा गलत, असम्भव, मूर्खतापूर्ण विचार क्यों लिख रहा हूँ। परन्तु यह स्पष्ट है कि उनका हिन्दुत्व के प्रति दुराग्रह उन्हें सत्यासत्य का निर्णय करने में बाधक बन बैठा है और अपने दूषित विचार के पक्ष में स्वामी दयानन्द को भी घसीटने का निष्फल दुष्प्रयास किया है। आप तो वर्णाश्रमी वैदिक-परम प्रमाणी आर्यों को तथा वर्णाश्रम-विरोधी, वेद-विरोधी, जैन, बौद्ध तथा अन्य नास्तिकों को; निराकार और साकार परमात्मा के उपासकों को; गुण, कर्म, स्वभावानुसारी वर्णाश्रमियों और केवल जन्मानुसारी वर्णाश्रम मानने वाले परस्पर-विरोधियों को एक ही कठघरे-बेड़े में घेर कर हिन्दू नाम से देश और जाति की एकता और अखंडता का व्यर्थ कीर्तन करते नहीं अघाते तो स्वामी दयानन्द को हिन्दुत्व के प्रति नकारात्मक और सकारात्मक विचार रखने वाला कहते आपको क्या देर लगेगी। अस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आर्प साहित्य प्रचार ट्रस्ट" से छपी "दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह" नाम की पुस्तक मुझे पढ़ने को नहीं मिली परन्तु पं० लेखराम द्वारा विरचित स्वामी दयानन्द की जीवनी उसी ट्रस्ट से छपी (संवत् २०३४ वि०) मेरे पास है जिसमें से, स्वामी विज्ञानानन्द जी के कथनानुसार, उक्त प्रसङ्ग उद्धृत किया गया है। यह प्रसङ्ग उक्त जीवनी के पृष्ठ ३४२ में उल्लिखित है। जो भी इस प्रसङ्ग को पूरा पढ़ेगा वह स्वामी विज्ञानानन्द जी के ज्ञान और भाव-शुद्धता पर तरस खाये बिना न रहेगा। इसे पढ़कर स्वामी दयानन्द द्वारा विरचित सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखित उनके वचन रह-रहकर मेरे मन में उठ रहे हैं जो यहाँ उन्हें उद्धृत करने का लोभ-संवरण नहीं कर पा रहा। स्वामी दयानन्द कहते हैं—

"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।" वे आगे भी लिखते हैं—

"वाक्यार्थ-बोध में चार कारण होते हैं—आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है तब उसको ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है। ....बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं जो कि वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेष कर मतवाले लोग; क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस के नष्ट हो जाती है।"

स्वामी विज्ञानानन्द जी इस कथन के अच्छा-खासा उदाहरण हैं क्योंकि उक्त प्रसंग को पढ़ें तो स्पष्ट है कि कमिश्नर (न कि पादरी जैसा कि स्वामी जी ने उक्त प्रसंग में लिखा है) एच० पारकिंस तो स्वामी दयानन्द के कथन को यथार्थ समझ रहा है परन्तु हमारे स्वामी विज्ञानानन्द जी हैं जो नहीं जान रहे। क्योंकि स्वामी दयानन्द का उक्त उत्तर सुनकर एच० पारकिंस ने स्वामी जी से पुनः प्रश्न किया—"आप किस प्रकार का मत बढ़ाना चाहते हैं।" तब स्वामी जी ने पारकिंस को उत्तर दिया—"हम केवल यह चाहते हैं कि **सब लोग** पवित्र वेद की आज्ञा का पालन करें और केवल निराकार अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें। शुभ गुणों को ग्रहण करें और अशुभों को त्याग करें"।

इस द्वितीय प्रश्नोत्तर से एकदम स्पष्ट है कि एच० पारकिंस कमिश्नर (अमृतसर) को स्वामी दयानन्द जी ने हिन्दू धर्म के बारे में जो बात कही वह उनका अपना अभिमत कदापि नहीं था, अन्यथा कमिश्नर के द्वारा फिर प्रश्न का उठाना कि "आप किस प्रकार का मत बढ़ाना चाहते हैं।" और इसका स्वामी दयानन्द द्वारा प्रथम दिये उत्तर से भिन्न उत्तर देने का अवकाश ही कोई नहीं था। अतः स्वामी विज्ञानानन्द ने अपने इस लेख में केवल प्रथम प्रश्नोत्तर को उद्धृत करके स्वामी दयानन्द का मत बताया है। उनका यह कथन एकदम झूठा है। और यदि "आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट" से प्रकाशित "दयानन्द शास्त्रार्थसंग्रह" में पारकिंस-सम्बन्धी पूर्वोक्त दोनों प्रश्नोत्तर छपे हैं तो मुझे यह भी लिखने का पूरा अधिकार है कि स्वामी विज्ञानानन्द ने इस लेख में द्वितीय प्रश्नोत्तर को छिपा कर पाठकों को धोखा देने का अपराध भी किया है। यदि लिखते तो धोखा कैसे दे सकते। द्वितीय प्रश्नोत्तर को पढकर तो हर एक जान लेता कि स्वामी दयानन्द को पुराणों, तन्त्रों तथा ऐसे ही अन्य मतों के ग्रन्थों की खिचड़ी वाली हिन्दुधर्म की वेदविरुद्ध स्थिति कदापि सह्य नहीं थी क्योंकि वे तो परमेश्वर की आज्ञास्वरूप वेदों के धर्म के स्वयम् अनुष्ठाता तथा प्रचारक "आर्य" संन्यासी थे।

हाँ! यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि यदि दयानन्द को "हिन्दू" नामक धर्म अभीष्ट नहीं था तो कमिश्नर एच० पारकिंस के समक्ष हिन्दू धर्म को लोहे से भी अधिक पक्का और समुद्र जैसा विशाल और गम्भीर क्यों कहा। इसका उत्तर बहुत स्पष्ट है। स्वामी जी और कमिश्नर का वार्तालाप एक गुरु-शिष्य का अथवा सतीर्थ्य सहपाठियों का नहीं था कि जिससे संवाद ही होता। यह तो विदेशी एवं विधर्मी और शासक बना कमिश्नर था और दूसरी ओर वेदेश्वर का परमाराधक, स्वातन्त्र्य के स्वप्न लेने वाला सच्चा आर्य संन्यासी था। धर्म के स्वरूप को आधार बना कर जब कमिश्नर ने देश और जाति के अपमान के लहजे में स्वामी जी से प्रश्न किया तो स्वाभिमानी दयानन्द क्या उसके साथ संवाद-कथा में प्रवृत्त होता? नहीं। कमिश्नर की मनीषा को ताड़ कर जल्प-कथा के अनुरूप कमिश्नर को जवाब दिया कि हिन्दू-धर्म कच्चा धागा नहीं, यह तो लोहे से भी अधिक दृढ़ है—इसे तोड़ा नहीं जा सकता॥ स्वामी जी का यह उत्तर जल्प-कथा के सर्वथा ही अनुरूप था। स्वामी जी जैसा "महापुरुष" "वितण्डा" कथा में प्रवृत्त नहीं हो सकता। कमिश्नर ने भी कोई कदम नहीं उठाया। जल्पकथा में, जब एक पक्ष स्थापित किया जाता है तो प्रतिपक्षी उसके विरुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपक्ष स्थापित करता है? स्वामी जी तथा कमिश्नर के बीच यही हुआ। जब कमिश्नर ने कहा कि हिन्दु धर्म कच्चे सूत के धागों के समान कच्चा क्यों है।'' तो स्वामी जी से मुँह-तोड़ जवाब मिला—''हिन्दूधर्म कच्चे धागे के समान नहीं प्रत्युत लोहे से भी अधिक मज़बूत है। लोहा टूट जाय परन्तु यह नहीं टूटता''। जब कमिश्नर ने स्वामी जी से उनके दावे को स्पष्ट करने को कहा तो एक अत्यन्त कुशल वकील की तरह प्रत्युत्पन्न-मति स्वामी दयानन्द ने इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी कमिश्नर इस मुद्दे पर अवाक् रह गया और तब सहज भाव से उनके मत के विषय में प्रश्न किया। स्वामी जी महाराज ने भी तदनुरूप उत्तर से उसे सन्तुष्ट कर दिया। (अस्तु)

इस वार्तालाप से भी एकदम स्पष्ट है कि हिन्दूधर्म नामक परस्पर-विरुद्ध मत अन्य चीज है और स्वामी जी को अभिमत वैदिक मत इससे भिन्न है।

इससे स्पष्ट है कि एच० पारकिंस और स्वामी दयानन्द के वार्तालाप से स्वामी विज्ञानानन्द जी का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

काशी की धर्म सभा द्वारा हिन्दु नाम की अमान्यता

अन्त में यह तथ्य भी सब का विदित होना चाहिए कि 'हिन्दु'' नाम के विरोध के बारे में स्वामी दयानन्द और उनके अनुयायी आर्यसमाजी लोगों ने ही आन्दोलन किया—ऐसी बात नहीं है। क्योंकि स्वामी दयानन्द के मन में अभी आर्यसमाज की स्थापना का विचार तक नहीं आया था कि १८७० ई० में काशी के वर्णाश्रमी सनातनी, काशी के तथा देश के ४५ विद्वानों ने जो काशीराज के अधीन धर्मसभा के सदस्यों ने डेढ़-नीम नामक स्थान पर बहुत विचार-विमर्श के अनन्तर यह व्यवस्था दी कि 'हिन्दु'' नाम हमारा नहीं है और यवनों (मुसलमानों) की भाषा का है और अधर्मी का वाचक है अतः इस नाम को कोई भी वर्णाश्रमी स्वीकार न करे। यह व्यवस्था चोटी के देश के धर्मशास्त्रियों ने एक प्रश्न के उत्तर में दी थी। इससे यह स्पष्ट है ''हिन्दु'' नाम का विरोध स्वामी दयानन्द के आर्यसमाज की स्थापना से ५ वर्ष पूर्व काशी के सनातनी विद्वानों ने भी कर दिया था। इस घटना का ज्ञान अचानक स्वामी श्रद्धानन्द जी को १९२५ ई० में पुराने कागज-पत्रों से प्राप्त हुआ था। उन्होंने यह घटना ''विचार-वाटिका'' खण्ड द्वितीय में पृ० १३७-१३८ पर छपवा दी। वह प्रश्न और उत्तरस्वरूप व्यवस्था निम्न प्रकार है—

प्रश्न—''श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्ध, सत्रहवें अध्याय में लिखा है कि सतयुग में हंसवर्ण सब कोई कहावते थे और त्रेता में हंसावत चार वर्ण, चार आश्रम का विभाग होता गया। इस कारण वर्णाश्रमी कहाये। अब सब कोई 'हिन्दु' नाम करके ख्याल करते हैं। सो, हिन्दु शब्द की चर्चा कोई शास्त्र में नहीं मिलती। इस हेतु हम यह जानना चाहते हैं कि हिन्दु कहावना उचित वा अनुचित है॥''

उत्तर—वर्णाश्रमी देश-बोधक जो हिन्दु शब्द है सो यवन-संकेतित है। वर्णाश्रमी-बोधक जो हिन्दु शब्द है, वह भी यवन संकेतित है। इस कारण हिन्दु कहावना सर्वथा अनुचित है। यह निर्णय श्री काशी-मध्य टेढ़नीम तले श्री महाराजाधिराज काशीराज महाराज संरक्षित धर्मसभा में सब लोगों ने किया। हस्ताक्षर—
(१) श्री विश्वनाथ शर्मा.............. (४५) श्री बाबा शास्त्री

हिन्दु-शब्दो हि यवनेष्वधर्मिजनबोधकः।
अतो नार्हति तच्छब्दबोध्यतां सकलो जनः॥
पापिनां पापी यवनः संकेतं कृतवान्नरः।
नोचितः स्वीकृतोऽस्माभिर्हिन्दु-शब्द इतीरितः॥
काफिर को हिन्दू कहत, यवन स्वभाषा मांहि।
ताते हिन्दू नाम यह, उचित कहइवो नांहि॥

इससे स्पष्ट है कि काशी के सनातनी विद्वानों की दृष्टि में भी हिन्दु नाम यवनों (मुसलमानों) द्वारा दिया गया है और उनकी भाषा में अधर्मी (काफिर) का वाचक है। यह स्वामी दयानन्द के कथन से पूर्व ही काशी के पंडितों ने भी घोषित किया और व्यवस्था दी कि वर्णाश्रमी (आर्य) को यह हिन्दु नाम स्वीकृत नहीं करना चाहिए। सभी वर्णाश्रमी आर्य नाम से जाने जाते हैं यह तथ्य वेद तथा तदनुयायी ऋषि मुनियों के शास्त्रों एवम् इतिहास से स्पष्ट है। इससे यही अर्थ निकलता है वर्णाश्रमी को आर्य ही कहना चाहिए, इसी प्रकार वर्णाश्रमी के देश का भी नाम हिन्दु (स्थान) नहीं प्रत्युत आर्यावर्त्त कहना चाहिए। यह भी सर्वसम्मत है। अस्तु॥

●●

: भारतीय ऋषि-मुनियों ने प्रमाणों के द्वारा सत्य की प्राप्ति के लिए न्यायशास्त्र का प्रवचन किया है। इसमें न्याय-दर्शन नामक शास्त्र के रचयिता गौतम ने तीन प्रकार की कथाओं का वर्णन किया है—वाद, जल्प और वितण्डा। इनके स्वरूप और उद्देश्यों को इन सूत्रों में बताया है—

(१) तं शिष्य-गुरु-सब्रह्मचारि-विशिष्टश्रेयोऽर्थिभिरभ्युपेयात्।
ज्ञानग्रहणाभ्यासस्तद्विधैश्च संवादः॥

(२-३) तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टक-शाखावरणवत्॥
ताभ्यां विगृह्य कथनम्॥ ४।२।४७; ४८; ५०; ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष ''दयानन्दसन्देश'' पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुंचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनाएँ। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

८१७ Uppula Laxminarayan 1-3-127/4 Uttam Nilayam Shastri Nagar Nirmal (AP) 504106
८१८ कैलाली जन पुस्तकालय कैलाली धनगढ़ी नेपाल, पो० पलिया कलां, जि० खीरी लखीमपुर-(UP)
८१९ डॉ० जयनारायन जी यादवार्य म० दयानन्द पुस्तकालय कमीर अकबरपुर, कानपुर देहात-(UP)
८२० सूबेदार हरिसिंह यादव ग्राम बजाउ, पो० गनियार, जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)
८२१ श्रीमती माता प्रेमवती जी आर्य C/o श्री रविदेव गुप्त 25, मंगल नगर, लिंक रोड, बेरी वाला बाग, सहारनपुर-(UP)
८२२ श्री अनिलकुमार आर्य, मु०पो० चामधेड़ा, जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)
८२३ श्री धर्मपुरि सीतारामुलु जी, 10-4-139/16, सीताराम नगर, निजामाबाद-(AP)
८२४ श्री सत्यप्रकाश जी त्यागी, 115, सिविल लाइन (उत्तरी), मु० नगर-(UP)
८२५ श्री नरेशकुमार महता, एफ-22, दिलशाद कालोनी, शाहदरा, दिल्ली-95
८२६ श्री प्रदीपकुमार माथुर S/o श्री राजसिंह, 21, वीसमैन, मु०पो० कराला, दिल्ली-81
८२७ श्री सुमनकुमार जी, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, चोटीपुरा, पो० रजबपुर, जि० मुरादाबाद-(UP)
८२८ श्री रविन्द्रकुमार S/o श्री भंवरसिंह, मु०पो० दतियाना, जि० मु०नगर-(UP)
८२९ Kishore Chandarkar At Bhikharipada P.O. Sarankul Distt. Nayagarh
८३० श्री मंत्री जी, आर्यसमाज, फिरोजपुर, झिरका, जि० गुड़गांव (हर०)
८३१ श्री कर्णसिंह जी, आर्य मु०पो० गुन्दाना वाया मुस्तफाबाद, जि० यमुनानगर (हर०)
८३२ श्रीमती माता कान्ता जी आर्य, 20-बी पाकेट A L.I.G. फ्लैट, हरिनगर डिपो के सामने, हरिनगर, नई दिल्ली
८३३ श्री योगीराज दत्तात्रेय भारती, आर्य भवन, सिंचाई रोड, विद्यानगर, परली बैजनाथ जि० बीड़-(M.R)
८३४ श्री हितेशार्य (भावसार), पोस्ट आफिस के पीछे, मु०पो० धनसुरा, ता० मोडासा, जि० साबरकांठा
८३५ श्री वीरव्रत शास्त्री जी, एम.ए., 48/34, नई बस्ती, 8, आनन्द पर्वत, नई दिल्ली-5
८३६ श्री ओमप्रकाश सपरा, एन-22, डॉ० मुखर्जी नगर, नई दिल्ली-9

धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/96
आर/आर/नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 7-8/11/96

नवम्बर १९९६

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९६
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/96

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आकर्षक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्यः लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाषः- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में........................
ग्राम........................
डा०........................
जिला........................

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(५९)

ओ३म्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द-सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जनवरी, १९९७

वर्ष २५ : अंक ३
दयानन्दाब्द : १७३
विक्रम संवत् : पौष २०५३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९७

संस्थापक : स्व॰ दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०
वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

- सत्संग की महिमा २
- वेदोपदेश ३
- शंका-समाधान ४
- आर्यवीरों को उद्बोधन ५
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियां ५
- शाकाहार श्रेष्ठ है मांसाहार से ७
- वेदमन्त्रों के विनियोग में ओंकार का प्रयोग ८
- योग मुनि की अयोग्यता १३
- दान देवें, पर परख कर १५
- गहरे अन्धकार से परे १६
- अद्वैतवादियों का मत निराधार तथा मिथ्या है २२
- क्या ईश्वर सर्वव्यापक नहीं है ? २३

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ रुपये और सजिल्द सोलह सौ रुपये सैंकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्संग की महिमा

—राजेश कुमार आर्य, आट्टा (पानीपत) हरि०-१३२ १२२

जग में सत्संग की महिमा महान् है।
सत्संग से बहुतों का हुआ कल्याण है॥

एक रोज ऋषि दयानन्द, बरेली में धाए थे,
नानकचन्द जी पुलिस, अधिकारी वहाँ लगाए थे।
नानकचन्द ने कहा पुत्र से, बेटा चलो उपदेश में,
बहुत बड़े विद्वान् आए हैं, संन्यासी के वेश में।
ऋषियों के उपदेश से, होता बड़ा कल्याण है॥१॥

मुन्शीराम वकील थे, वकालत का अभिमान था,
अंग्रेजीयत भरी थी मन में, अंग्रेजी का ज्ञान था।
संस्कृत भाषा है गंवारों की, वे ऐसा ही मानते थे,
सभ्य हमें बनाया अंग्रेजों ने, इतना ही जानते थे।
भारत का सामान्य साधु, नहीं कोई विद्वान् है॥२॥

मात्र संस्कृत जानता साधु, अंग्रेजी का नहीं ज्ञान,
चलूँ साथ में यदि मेरे, प्रश्नों का कर दे समाधान।
कहा पिता ने—पुत्र चलो तुम, आज तो सुन लो व्याख्यान,
प्रश्न पूछकर फिर अपना, कर लेना समाधान।
पिता के संग व्याख्यान में, चला मुन्शीराम है॥३॥

बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी, देखे मुन्शीराम ने,
हो गया चकित देख, साधु जी को सामने।
तेज था निराला उसका, वेदों का विद्वान् था,
सरस्वती नाचती जिह्वा पर, नहीं अभिमान था।
योग साधना के द्वारा ही, मिलता भगवान् है॥४॥

हुआ प्रवचन, सुनने लगे जन, झड़ी लगी प्रमाणों की,
स्वयं प्रश्न और स्वयं ही उत्तर, वर्षा हुई तर्क के बाणों की।
सुन प्रवचन, होने लगी धन्य धन्य, ऋषि ने धूम मचाई है,
कहा मुन्शीराम ने, अब बात समझ में आई है।
पर नहीं मानता मन मेरा, दुनिया में भगवान् है॥५॥

बोले ऋषि प्रश्न करो, वत्स! उत्तर तुम्हें बतलाता हूँ,
सभी समस्याएँ तुम्हारी, पल भर में सुलझाता हूँ।
उत्तर सुन्कर भी मुन्शीराम के, मन में नहीं विश्वास हुआ,
बोले ऋषि—तब होगा ऐसा, जब प्रभु का दृष्टिपात हुआ।
प्रभु की सत्ता से ही, सूर्य होता भास्वान् है॥६॥

उसी दिन से मुन्शीराम, दयानन्द का शिष्य खास हुआ,
पढ़ा सत्यार्थप्रकाश मिटा अन्धकार, ज्ञान का प्रकाश हुआ।
तज के अण्डे मांस, कबाब, शराब पीना भी छोड़ दिया,
कुछ दिन बाद तजी वकालत, फिर 'महात्मा' नाम जोड़ लिया।
हरिद्वार में गुरुकुल खोला, जहाँ जंगल बियाबान है॥७॥

एक दिन शेर गरजा दिल्ली में, अड़ा दिया था छाती को,
तोपों ने थी करी सलामी, कौन मारे ईश्वर-साथी को।
श्रद्धानन्द बन चमका जग में, जामा मस्जिद में दिया व्याख्यान,
शुद्धि का प्रचार करके, हिन्दु बनाए जो थे मुसलमान।
पता नहीं किस घड़ी, बदल जाता इन्सान है॥८॥

जालन्धर में सब से पहले, कन्या विद्यालय खोला था,
दुष्टों में मच गया तहलका, शुद्धि मन्त्र जब बोला था।
श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने सींचा, ऋषि दयानन्द का यह बाग,
हिन्दुओं की बढ़ती संख्या से, मुसलमानों में लग गई आग।
अब्दुल रशीद भी अपनी गोली का चलाता निशान है॥९॥

हाय पापी रशीद तेरे, मन में क्या समाई थी,
बूढ़े शेर को मारा तूने, यह कौन सी वीरताई थी।
श्रद्धानन्द चले गए जहाँ से, माँ की सूनी गोद हुई,
तभी गुरुकुल वाटिका से, तैयार वीरों की फौज हुई।
ऐसे वीर संन्यासी का, अब 'राजेश' गाता गान है॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश— ईश्वर सृष्टि के कण कण में व्यापक है। और सब का रक्षक तथा महान् है। ईश्वर का मुख्य नाम ओ३म् है। उसी की उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये।

दीर्घतमाः ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

अथान्ते मनुष्यान् ईश्वर उपदिशति॥

अब अन्त में मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है॥

ओ३म् हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म॥

(यजु० ४०। १७)

पदार्थः—(हिरण्यमयेन) ज्योतिर्मयेन (पात्रेण) रक्षकेण (सत्यस्य) अविनाशिनः यथार्थस्य कारणस्य (अपिहितम्) आच्छादितम् (मुखम्) मुखवदुत्तमाङ्गम् (यः) (असौ) (आदित्ये) प्राणे सूर्यमण्डले वा (पुरुषः) पूर्णः परमात्मा (सः) असौ (अहम्) (ओ३म्) योऽवति सकलं जगत्तदाख्या (खम्) आकाशवद् व्यापकम् (ब्रह्म) सर्वेभ्यो गुणकर्मस्वरूपतो बृहत्॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! येन (हिरण्मयेन) ज्योतिर्मयेन (पात्रेण) रक्षकेण यथा (सत्यस्य) अविनाशिनः यथार्थस्य कारणस्य (अपिहितम्) आच्छादितम् (मुखम्) मुखवद् उत्तमाङ्गं विकाश्यते (यः) (असौ) (आदित्ये) प्राणे सूर्यमण्डले वा (पुरुषः) पूर्णः परमात्मा अस्ति (सः) (असौ) (अहम्) (खम्) आकाशवद् व्यापकं (ब्रह्म) सर्वेभ्यो गुणकर्म-स्वरूपतो बृहत् अस्मि (ओ३म्) योऽवति सकलं जगत् तदाख्या इति विजानीत॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो! जिस (हिरण्मयेन) ज्योति से परिपूर्ण (पात्रेण) सब के रक्षक मेरे द्वारा (सत्यस्य) कभी नष्ट न होने वाले सत् रूप कारण (प्रकृति) का (अपिहितम्) ढके हुए (मुखम्) मुख के समान उत्तम अंग का विकास किया जाता है (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) प्राण वा सूर्यमण्डल में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है (सः) वह (असौ) परोक्ष (अहम्) मैं (खम्) आकाश के समान व्यापक (ब्रह्म) गुण कर्म स्वभाव की दृष्टि से सब से बड़ा (ओ३म्) मैं सब जगत् का रक्षक 'ओ३म्' हूँ, ऐसा जानो॥

भावार्थः—सर्वान् मनुष्यान् प्रतीश्वर उपदिशति—हे मनुष्याः योऽहम् अत्रास्मि, स एवान्यत्र सूर्यादौ योऽन्यत्र सूर्यादावस्मि स एवत्रास्मि सर्वत्र परिपूर्णः खवद् व्यापको न मत्तः किञ्चिदन्यद् बृहद् अहमेव सर्वेभ्यो महानस्मि।

मदीयं सुलक्षणपुत्रवत् प्राणप्रियं निजस्य मम नाम ओ३मिति वर्तते। यो मम प्रेम सत्याचरणभावाभ्यां शरणं गच्छति। तस्यान्तर्यामि रूपेणाऽहमविद्यां विनाश्य तदात्मानं प्रकाश्य शुभगुणकर्मस्वभावं कृत्वा सत्यस्वरूपाचरणं स्थापयित्वा, शुद्धं योगजं विज्ञानं दत्त्वा सर्वेभ्यो दुःखेभ्यः पृथक्कृत्य मोक्षसुखं प्रापयामीत्यो३म्॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है। हे मनुष्यो! जो मैं यहाँ हूँ, वही अन्यत्र सूर्य आदि में हूँ और जो अन्यत्र सूर्यादि में हूँ, वही यहां हूँ। मैं सर्वत्र परिपूर्ण, आकाश के समान व्यापक हूँ। मुझ से कोई भी दूसरा बड़ा नहीं है। मैं ही सब से महान् बड़ा हूँ।

सुलक्षण पुत्र के तुल्य प्राणों से प्रिय मेरा अपना नाम ओ३म् है। जो मेरी प्रीति और सत्याचरण के भावों से शरण-भक्ति को प्राप्त होता है तो मैं उसके अन्तर्यामी रूप से अविद्या को विनष्ट करके उसकी आत्मा को प्रकाशित कर, उसके शुभ गुण, कर्म, स्वभाव बनाकर, सत्य के स्वरूप का आचरण स्थापित कर, योग से उत्पन्न हुए शुद्ध विज्ञान को देकर सब दुःखों से छुड़ाकर मोक्ष, सुख को प्रदान करता हूँ। ओ३म् शब्द यजुर्वेद की समाप्ति नाम-स्मरण रूप में किया है।

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका-समाधान

ब्रह्मचारी वेदमुनि आर्य की कतिपय शंकाएँ—

१—ओ३म् शब्द परमात्मा का मुख्य नाम व वाचक नहीं है क्योंकि यह शब्द जैन, चार्वाक आदि नास्तिक मतों में भी प्रयोग होता है। यह शब्द तीन अक्षरों से बना है और उनसे लोकत्रय का ग्रहण होता है।

समाधान—ओ३म् शब्द परमात्मा का मुख्य नाम है। इसकी पुष्टि महर्षि पतञ्जलि ने 'तस्य वाचक:प्रणव:' कहकर की है। जैन, चार्वाक आदि को हम नास्तिक कहते हैं क्योंकि वे वेद को नहीं मानते। '**नास्तिको वेदनिन्दक:**' कहकर महर्षि मनु ने भी माना है। परन्तु ये लोग कुछ बातों को न मानने से नास्तिक हो गये, यह तो सत्य है। परन्तु आदि काल से चली आई परम्परागत बातों को ये भी मानते रहे हैं। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। ये नास्तिक मत वाले वेद और वेदोक्त बातों को पहले मानते रहे हैं। और 'ओ३म्' शब्द में तीन अक्षर लोकों को भी बताते हैं। इससे इसके ईश्वर के नाम तथा वाचक होने में किसको क्या आपत्ति हो सकती है?

२—मन्त्रों के द्रष्टाओं को ऋषि संज्ञा दी है, पर आर्यसमाजियों ने तो श्रद्धावश दयानन्द को महर्षि बना दिया। ऐसा क्यों?

समाधान—मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि होते हैं, इस परिभाषा में यह तो नहीं बताया कि सर्ग के आदि काल में ही यह संज्ञा होती है। बाद में भी नहीं। अत: जिसने भी मन्त्रार्थ के दर्शन किये वह ऋषि कहला सकता है। और आप तो व्याकरण पढ़ते हैं, व्याकरण में एक सूत्र है—तदधीते तद् वेद। इसके अनुसार जो व्याकरण पढ़ रहा है और जिसने पूर्णत: पढ़ लिया है, दोनों ही वैयाकरण कहलाते हैं। और जो पहले पढ़ चुके हैं, वे भी वैयाकरण नाम के अधिकारी हैं। इसी नियम को ध्यान में रखकर मन्त्रार्थ के द्रष्टा चाहे वे सर्ग के प्रारम्भ में हुए हैं, अथवा हो रहे हैं और भविष्य में भी होंगे, वे सब ऋषि कहलायेंगे। इस तथ्य को आर्यसमाजियों ने ही नहीं माना अपितु स्वामी जी ने भी स्वयं स्वीकार किया है। आप ऋ०भा०भू० में पढ़ें। महर्षि से किसी ने प्रश्न किया कि आप वेद का भाष्य कैसा बनाओगे? उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि मेरा वेदभाष्य कर्मकाण्ड आदि विषयों पर नहीं होगा। क्योंकि कर्मकाण्ड पर तो शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थों में भाष्य किया है और यदि मैं भी वैसा बनाता तो यह भाष्य अनृषिकृत हो जायेगा। ऋषि लोग विश्लेषण नहीं किया करते हैं।

और आप स्वयं ही विचार करें कि महर्षि के आने से पूर्व चारों वेद भी थे और उनको कण्ठस्थ करने वाले विद्वान् भी थे। परन्तु वेद की विद्या लुप्त हो चुकी थी। महर्षि ने आकर मन्त्रार्थ-द्रष्टा होकर '**यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य:**' इत्यादि मन्त्रों को समझा और उपदेश किया। क्या ये ऋषि नहीं कहला सकते?

३—मनुस्मृति में प्रारम्भ के श्लोकों में प्रश्न करने वाले भी महर्षि थे और मनु को भी महर्षि कहकर सम्बोधन किया। क्या ये वर्ण-धर्म या आश्रम-धर्म की सामान्य बातें बताने वाले भी महर्षि कहला सकते हैं?

समाधान—मनुस्मृति वर्णाश्रम धर्म का पहला संविधान व शास्त्र है। जो बातें हमें सामान्य लग रही हैं, क्या प्रथम ज्ञान के अवसर पर वेदों व वेदमन्त्रों को बिना जाने ही उनका उत्तर दिया जा सकता था। और जिज्ञासा करने वाले क्या साधारण व्यक्ति थे? प्रश्न करने वाले जिज्ञासु ऋषि कल्प ही थे। 'ऊहा' जिनके अन्दर है वे भी ऋषि थे क्योंकि ऊहा व तर्क को भी ऋषि माना है। क्या आप 'ऊह' कहकर महाभाष्य में नहीं पढ़ते रहे हैं। क्या महर्षि दयानन्द ने ऊहित मन्त्रों को सं०वि० में नहीं रखा है? आपने पत्र में जो शंका रखी हैं उसका भी उत्तर इसी से समझ लेना अर्थात् कपिल, कणाद, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य दयानन्द को श्रद्धावश ही ऋषि नहीं माना, वे यथार्थ में ही मन्त्रार्थद्रष्टा थे।

और कपिल, कणाद आदि तो पदार्थ विद्या के साक्षात्कर्त्ता थे। जिन्होंने जीवन भर एक-एक पदार्थ की खोज की और उसके गुणों को समझा। वास्तव में ये अपने समय के वैज्ञानिक थे, जिनके ज्ञान का अवमूल्यन आज तक कोई न कर सका। मन्त्रार्थद्रष्टाओं में कोई एक मन्त्र का, दो या चार का द्रष्टा है, इससे यह तो स्पष्ट होता है कि उन्हें अन्य मन्त्रों का ज्ञान न था। यह भी आप और हम कल्पना ही कर रहे हैं और सन्देह होने लगता है। परन्तु उनके ऋषित्व पर क्या आपत्ति हो सकती है? और जिस व्यक्ति ने विशेष खोज की है, उसे अन्य विषयों का सर्वथा ही ज्ञान न था, यह कल्पना निराधार कहलायेगी। ऐसा हम व्यवहार में भी देख सकते हैं। जैसे खेल की एक टीम है, उसमें सभी खिलाड़ी एक से नहीं हैं। उनकी भी कुशलता की परख करके खेल में विशेष संज्ञाएँ कही जाती हैं। परन्तु उन विशेष नामों के व्यवहार में भी वे खेल के सामान्य नियमों को सर्वथा ही नहीं जानते ऐसा कहना अनुचित ही होगा। इसी प्रकार मन्त्रार्थद्रष्टाओं में भी सामान्य-विशेषता के आधार पर ऋषियों की संज्ञाओं का व्यवहार हुआ है। आप उनको अन्य मन्त्रों से सर्वथा ही अनभिज्ञ नहीं कह सकते।

—राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यवीरों को उद्बोधन

धर्मपालसिंह, सिरोली, कासिमपुर (अलीगढ़)

उठो आर्यवीरो हलचल मचा दो।
दयानन्द का सन्देश घर घर में सुना दो॥
तूफानी सागर यदि रास्ता घेरे।
कड़कड़ाती बिजुली बादल जो मेरे॥
रुकना नहीं जान की बाजी लगा दो॥ १॥ उठो आर्यवीरो ···
सूर्य उगले शोले निकलना हो दुष्कर।
वर्षा पड़े इतनी तन कांपे थर थर॥
वेदों की खातिर तन मन लुटा दो॥ २॥ उठो आर्यवीरो ···
रास्ते के पर्वत को ठोकर से तोड़कर।
आंधियों के रुख को भुजाओं से मोड़कर॥
सच्चाई का मार्ग विश्व को दिखा दो॥ ३॥ उठो आर्यवीरो ···
विश्व को बनाना आर्य लक्ष्य है तुम्हारा।
वेद का सन्देश घर घर देकर दुबारा॥
'सिरोही' ऋषि का कर्जा चुका दो॥ ४॥ उठो आर्यवीरो ···

भूल सुधार

'दयानन्दसन्देश' के जुलाई ९६ के अंक में डॉ० रामकृष्ण आर्य के नाम से कुछ पुस्तकों का परिचय दिया गया था, किन्तु भूल से पुस्तक-प्राप्ति का पता नहीं छपा था। पाठकों के कई पत्र भी आये, जिसके उत्तर में भी नाम सम्य से गलती होती रही। कृपया उनका पता यह लिखें—

डॉ० रामकृष्ण आर्य, चिकित्सा अधिकारी, जौनपुर
प्रकाशक—वैदिक पुस्तकालय, ग्राम माधोरामपुर, पो० परसीपुर, जि० भदोही (उ०प्र०)

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

अगस्त ९६ का श्रावणी अंक अति उपयोगी है शोध की दृष्टि से। वैदिक सोमरस शराब नहीं, मन्त्रार्थ में ब्राह्मण ग्रन्थों, वेदांगों का महत्त्व, वेदों में नरबलि नहीं आदि लेख अति गम्भीर हैं। 'वेद ही ईश्वरीय ज्ञान' निबन्ध में सन्त लाबी के बाद भी जिन-जिन अरब के सन्तों ने वेद के लिए जो कुछ कहा है, उसको भी बढ़ाना अच्छा रहेगा। इस लेखक के अन्तिम परिच्छेदों में 'अहःसु निब्दास' शब्द आया है, इसके बाद कुछ छूट गया है····· जानना है।

रामस्वरूप
पर्यावरण सुख (गोलाई) धाँवला-३०५ ०२६ (नागौर जिला)

दिनांक २७।११।९६

आपका भेजा हुआ 'मनु का विरोध क्यों' पुस्तक प्राप्त हुई। तदर्थ धन्यवाद। पुस्तक पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि डॉ० सुरेन्द्रकुमार जी ने राजस्थान के उच्च न्यायालय में वाद कर स्टे (Stay) प्राप्त किया, एतदर्थ वे अतीव प्रशंसा के पात्र हैं। इस पुस्तक से सुरेन्द्रकुमार जी की विद्वत्ता तथा इतिहास के गहन अध्ययन का परिचय प्राप्त होता है। और इसने वैदिक संस्कृति का सिर ऊँचा किया है। उनका हम बहुत धन्यवाद करते हैं और उनके उत्तम स्वास्थ्य व आयु की कामना करते हैं।

आर्यसमाज
मा० नारायण सरस्वती
३५/१०३, Aroppukottoi Road,
Near Padma Theater, Madurai-625012

आर्यसमाज (संयोगिता गंज) इन्दौर में आर्य महासम्मेलन सम्पन्न

इस अवसर पर महायज्ञ के ब्रह्मा श्री आचार्य विशुद्धानन्द (बदायूं) थे। २३ नवम्बर को विशाल शोभायात्रा में प्रान्त भर के आर्यजनों ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन म०प्र० के उपमुख्यमन्त्री माननीय सुभाष यादव ने किया। और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार व नैतिक पतन पर गहन चिन्ता प्रकट की और आर्यसमाज के सिद्धान्तों की महत्ती आवश्यकता पर बल दिया। इस अवसर पर अनेक वैदिक विद्वान् व भजनोपदेशकों ने भाग लिया।

गायत्रीप्रसाद शर्मा
प्रान्ताध्यक्ष—आर्य युवक परिषद्

आपके यहाँ से प्रकाशित 'आर्य मान्यता' नामक पुस्तक पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। बहुत ही सुलझे हुए और देश के लिए हितकर विचारों को लेखक ने इसमें रखा है। इस प्रकार के सतत प्रयासों से बहुत उपयोगी साहित्य जनसामान्य के हाथों में पहुंच सकता है। धन्यवाद।

आर्य भूदेव पाण्डे
ग्रा. रहराना, जि० फरीदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाकाहार श्रेष्ठ है मांसाहार से

—रमेशकुमार पाण्डेय, पचोरी (चाम्पा), बिलासपुर-४९५६६०

प्रकृति ने मनुष्य के भोजन के लिए फल, शाक, सब्जियों की रचना तो की ही है तथापि उसकी सहायता के लिए पशु, पक्षियों की भी रचना की। ईश्वर ने मनुष्य की शारीरिक संरचना का सृजन ही शाकाहार के अनुकूल किया है। उसके आहार में मात्र शाक, सब्जी, फल, अनाज आदि ही सरलता से पचते हैं। उसके शरीर की संरचना जिस प्रकार हुई है उसके अनुसार तो मांसाहार पूर्ण प्रतिकूल है। मनुष्य की आदि प्रकृति ही शाकाहार है। लोगों की यह धारणा नितान्त गलत है कि मांसाहार स्वास्थ्य के लिए लाभदायक और शक्तिवर्धक है। वस्तुतः सच्चाई तो यह है कि मनुष्य के शरीर में होने वाली अनेक बीमारियां मांसाहार से ही उत्पन्न होती हैं।

विश्व में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे यह बात प्रमाणित होती है कि शाकाहार से ही विशिष्ट शक्ति और तन्दुरुस्ती की प्राप्ति होती है। पश्चिमी आयरलैण्ड के लोगों का मूल भोजन जौ, छाछ, फल और शाक है तथा वे अत्यन्त ही तन्दुरुस्त पाये जाते हैं। स्काटलैण्ड के लोगों का स्वस्थ शरीर एवं ताकत विश्वविख्यात है। वे अपने आहार में प्रायः जौ की रोटी का ही प्रयोग करते हैं। फ्रांस के निवासी प्रायः फलाहारी होते हैं। वे चेस्टनट नामक फल खाया करते हैं। इटलीवासी मक्के एवं फल के प्रेमी होते हैं। खाद्यान्न के रूप में वे प्रायः मेकरोनी नामक अनाज का उपयोग करते हैं। भारतवर्ष अपनी मानसिक और शारीरिक सर्मथता की दृष्टि से विश्व विजेता रहा है। इतिहास भी इस बात का गवाह है कि यहाँ के निवासी मूलतः शाकाहारी ही थे। आज भी यहाँ की अधिसंख्य जनता फल, शाक-सब्जियों तथा अनाज पर ही निर्भर है और मांसाहारियों की तुलना में स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन का आनन्द उठा रही है। दुःख की बात है कि शहरी सभ्यता के नाम पर अब भारतवर्ष में मांसाहार का प्रचलन बढ़ रहा है जो सचमुच चिन्ता की बात है।

प्रकृति ने पशु-पक्षियों का सृजन मनुष्य की सहायता के लिए किया है न कि उसकी निर्मम हत्या के लिए। वे पशु, पक्षी जो एक ओर प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होते हैं तो दूसरी ओर मनुष्य की किंचित् मात्र भी दया पाकर मनुष्यों से भी अधिक स्वामी-भक्ति तथा वफादारी का परिचय प्रस्तुत करते हैं। बावजूद इसके भी आज मनुष्य पशु-पक्षियों की निरन्तर हत्या कर रहा है केवल अपने स्वार्थ के लिए। केवल अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए। आज मनुष्य स्वयं का नैतिक पतन इतना कर चुका है कि उसके अन्दर के समस्त मानवोचित गुण समाप्त होते जा रहे हैं। लोगों के मन में केवल एक भ्रान्तिमात्र है कि मांसाहार, शाकाहार से अधिक पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक है। आधुनिक शोधकर्ताओं, वैज्ञानिकों और चिकित्सकों के अन्वेषणों से साफ स्पष्ट होता है कि शाकाहारी भोजन से न केवल उच्च कोटि की प्रोटीन और विटामिन तथा आवश्यक पोषक तत्त्व प्राप्त होते हैं अपितु मन भी पवित्र तथा साफ रहता है। डॉ० राबर्ट मैकेरियन के शब्दों में—''मनुष्य को जीवित रहने के लिए अल्प एवं सात्त्विक भोजन की आवश्यकता है। विटामिन, कैल्सियम, फास्फोरस से युक्त शाकाहारी भोजन से ही मनुष्य अधिक स्वस्थ व प्रसन्न रह सकता है।'' उनके अनुसार ''मांसाहार करने वाले लोग शायद यह भूल जाते हैं कि मांस का केवल साठ प्रतिशत भाग ही पोषक होता है। शेष चालीस प्रतिशत भाग में ऐसा विकृत पदार्थ रहता है जो नस, नाड़ियों और रक्त में घुला रहता है जिसे पृथक् कर पाना संभव ही नहीं है। वह भी पौष्टिक समझकर उदरस्थ कर लिया जाता है।'' यदि हम निम्नलिखित तालिका पर दृष्टिपात करें तो यही निष्कर्ष सामने आएगा कि शाकाहार मांसाहार से अनेक गुना बेहतर है।

आगे दी गई सारणी से यह स्पष्ट होता है कि 100 ग्राम दालों में जिनका मूल्य करीब 1 रुपये से 3 रुपये तक है उसमें 350 कैलोरी होती है जबकि 100 ग्राम अंडे में 173 कैलोरी, मछली में 91 कैलोरी, मांस में 194 कैलोरी, गोमांस में 114 कैलोरी होती है जिनका मूल्य करीब पांच रुपये से नौ रुपये प्रति 100 ग्राम होता है। अतएव यह तो स्पष्ट ही है कि मांसाहारी खाद्य पदार्थों की अपेक्षा दालों एवम् अनाजों से बहुत कम खर्च में प्रोटीन एवम् ऊर्जा प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पदार्थ का नाम	प्रोटीन	चिकनाई	खनिज लवण	कार्बोहाइड्रेट्स	कैल्सियम	फास्फोरस	लोहा	कैलोरी
शाकाहारी खाद्य (१०० ग्राम में)								
मूंग	२४.००	१.३	३.०	१६.६	०.१४	०.२८	८.४	३३४
उड़द	२४.००	१.४	३.४	६०.३	०.२०	०.३७	९.८	३५०
अरहर	२२.३०	१.८	३.६	५७.२	०.१८	०.२६	८.८	३३३
मसूर	२५.१	०.७	२.१	५९.७	०.१३	०.२५	२.०	३४६
मटर	२२.९	१.४	२.१	६३.५	०.०३	०.३६	५.०	३५८
नारियल	४.५	४९.६	१.०	१३.०	०.०१	०.२४	१.२	४४४
तिल	१८.३	४३.३	५.२	२५.२	१.४४	०.५७	१०.५	५६४
मूंगफली	३१.९	३१.८	२.३	१९.३	०.०५	०.३१	१.६	५४९
दूध पाऊडर	३८.३	०.१	६.८	५१.०	१.३७	१.००	१.०४	३५७
पनीर	२४.१	२५.१	४.२	६.३	०.७९	०.५२	२.१	३४८
पिस्ता	१९.८	५३.५	२.८	१६.२	०.१४	०.४३	१३.७	६२६
अखरोट	१५.६	६४.५	१.८	११.०	०.१०	०.३८	४.८	६८७
शाकाहारी खाद्य (१०० ग्राम में)								
अंडा	१३.३	१३.३	१.९	—	०.०६	०.२२	२.१	१७३
मछली	२२.६	०.६	०.८	—	०.०२	०.१९	०.९	९१
बकरे का मांस	१८.५	१३.३	१.३	—	०.९५	०.१५	२.५	१९४
सूअर का मांस	१८.७	४.४	१.०	—	०.०३	०.२	२.३	११४
गाय का मांस	२२.६	२.६	१.०	—	०.०१	१.१९	०.८	११४

सर्वाधिक शक्तिशाली, परिश्रमी तथा अधिक सहनशीलता वाले पशु जो लगातार कई दिन तक काम कर सकते हैं जैसे हाथी, घोड़ा, ऊंट, बैल आदि पशु शाकाहारी ही हैं। इंग्लैण्ड में परीक्षण करके देखा गया है कि स्वाभाविक मांसाहारी शिकारी कुत्तों को भी जब शाकाहार में रखा गया तो उनकी सहनशक्ति एवं क्षमता में वृद्धि हुई।

वास्तव में मांसाहार ही मनुष्य के शरीर में पाये जाने वाले रोगों का जन्मदाता है। मांसाहार से होने वाले प्रमुख रोगों में हृदयरोग, उच्च रक्तचाप, कैंसर, गुर्दे की बीमारी, आंतों का सड़ना आदि प्रमुख हैं। देखा गया है कि मांसाहारी व्यक्ति शाकाहारी की तुलना में काम करते समय जल्दी हांफ जाता है। वर्तमान समय में यूरोपीय देशों में शाकाहार बहुत तेजी से फैल रहा है। इंग्लैण्ड और जर्मनी में खासकर विशेष रूप से इसके क्षेत्र में विस्तार हो रहा है। ज्यादातर पश्चिमी देशों में मांसाहारी अपना भोजन संतुलित करने के लिए अधिक मात्रा में दूध का उपयोग करते हैं।

मांसाहार के विषय में भगवान् महावीर ने कहा था कि—"यह एक नरकगामी प्रवृत्ति है। इसमें इसका उपयोग तथा इसके व्यवसाय करने वाले, दोनों ही पाप के अधिकारी बनते हैं।" मांसाहार का मनुष्य पर बहुत ही दुष्प्रभाव पड़ता है। इसकी पुष्टि करते हुए जब आधुनिक वैज्ञानिक भी कहते हैं कि ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, चिड़चिड़ापन व हिंसक प्रवृत्ति के उत्तरोत्तर वृद्धि का एक प्रमुख कारण मांसाहार है।

(शेष पृष्ठ १४ पर)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

वेदमन्त्रों के विनियोग में ओंकार का प्रयोग

—आचार्य विश्वदेव शास्त्री

प्रारम्भ में ओ३म् शब्द का उच्चारण न करने से अध्ययन स्थिर नहीं रहता तथा अन्त में ओ३म् शब्द का उच्चारण न करने से वह पूर्णत: नष्ट हो जाता है।

—डॉ० वीरेन्द्रकुमार वर्मा

शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य १६ वां सूत्र

वेद पारायण यज्ञों में वेदपाठी और ब्रह्मा आदि ध्यान दें कि स्वाहा से पूर्व मन्त्रभाग स्वभावत: प्लुत बोला जाता है। उसी का ऋषियों ने 'प्रणवष्टे:' के रूप से नियम कर दिया है। यथा आप ध्यान करें लोक व्यवहार में जब हम किसी को बुलाते हैं तो उसका लगभग आधा नाम ही बोला जाता है। यथा—देवदत्त को बुलाना हो तो बुलायेंगे—'देव३ यहां आ।' इसी को व्याकरण ने 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादच:' के नियम में बांध दिया है। उसी प्रकार का यह 'प्रणवष्टे:' का नियम यज्ञों में किया गया है।

ओंकार के प्रयोग के पक्ष में वैद्य मूलचन्द्र आर्य ने अपने प्रकाशित 'ओंकारप्रकाश' नामक पुस्तक में कुछ प्रसिद्ध आर्य विद्वानों की सम्मतियां एकत्र कर अपनी पुस्तक में दी थीं। उन्हें आवश्यक जान कर यहां दे रहे हैं।

ओ३म्कार प्रयोग के समर्थन में सम्मतियाँ

पूज्यपाद १०८ श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती

ओंकार प्रयोग पर सार्वदेशिक सभा भवन में एक दिन हम ने यह चर्चा आरम्भ की। वहां पर बाहर से आये कुछ भाई बैठे थे। उन्होंने हमारी बात सुनकर कहा प्रसंग तो उत्तम है इसका निर्णय होना चाहिये। उसी स्थान पर एक ऐसे महाविद्वान् बाल ब्रह्मचारी स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती जिन्होंने अपने विद्या बल से बड़े-बड़े राजाओं के पुरोहितों से शास्त्रार्थ करके उन राजाओं को वैदिक धर्म में दीक्षित किया, जिनका ललाट सूर्य के सम्मुख दर्पणवत् चमकता था। महर्षि दयानन्द के पश्चात् आदित्य ब्रह्मचर्य की दिव्य मूर्ति, जिनके कठोर तप की प्रतिमा से आर्यजगत् प्रभावित हो रहा था, उन तपोमूर्ति के जो शब्द उनके मुखारविन्द से निर्भ्रान्त ईश्वर की भक्ति भाव से पूर्ण एक प्रश्न के उत्तर में निकले। वे इस प्रकार हैं—

प्रश्न—स्वामी जी महाराज आपका इस 'ओ३म्' उच्चारण के विषय में क्या मत है?

उत्तर—"भाई मैं तो स्वयं सन्ध्या के १९ उन्नीसों मन्त्रों के आगे 'ओ३म्' उच्चारण करके आज तक सन्ध्या करता आया हूँ और क्या कहूँ?" ये शब्द अपने सामने बैठे हुए पूज्यपाद १०८ श्री स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती जी महाराज से अपने कानों से सुने थे। वे ही शब्द लिखे हैं जो आर्यसमाज के सर्वशिरोमणि महाविद्वान् एवं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ने कहे थे।

श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक

श्री माननीय वैद्य मूलचन्द्र जी आर्य! सादर नमस्ते।

आपका पत्र मिला। उत्तर में निवेदन है कि वर्तमान में मन्त्र के आरम्भ में 'ओ३म्' के पाठ पर जो विचार चल रहा है उसमें दो पक्ष हैं।

जहां एक कर्म के लिए मन्त्र समूह हो तो वहां प्रथम मन्त्र के साथ 'ओ३म्' लगता है परन्तु प्रत्येक मन्त्र के टि भाग को 'ओ३म्' आदेश अवश्य होता है। जैसे—

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारम् रत्नधातमो३म्॥
स नः पितेव .... स्वस्तयो३म्॥ स्वस्ति नो मिमीता .... ।

यह टि भाग से सम्बद्ध ओ३म् देहली दीपक न्याय से उभयस्थानी हो जाता है। हां प्राणायाम मन्त्रों में प्रति मन्त्र 'ओम्' निर्देश क्यों किया है यह अभी मेरी समझ में नहीं आया। हां इसे ऋषि दयानन्द जी के मत में प्रति मन्त्र के आदि में 'ओम्' के प्रयोग करने में ज्ञापक मान सकते हैं।

ऋषि दयानन्द की संवत् १९३२ वाली पञ्च महायज्ञ-विधि में स्थिति इस प्रकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनसा परिक्रमा के प्रत्येक मन्त्र के साथ ओ३म् छपा है। उपस्थान के प्रत्येक मन्त्र के साथ भी ओ३म् है। संवत् १९३२ की सन्ध्योपासनादि पञ्च महायज्ञ-विधि के प्रकाश में एक कर्म के लिए प्रयुक्त मन्त्र के साथ आरम्भ में भी ओ३म् लगाया जा सकता है। यही ऋषि दयानन्द जी महाराज का मत समझना चाहिये।

युधिष्ठिर मीमांसक
ता० ११/११/६२ *रामगंज, अजमेर*

निम्नलिखित सारे विद्वान् लिखते हैं कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज की यही आज्ञा है। अर्थात् ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द तक इस भांति 'ओंकार' का प्रयोग करते कराते आये।

१. श्री स्वामी अमृतानन्द जी सरस्वती व्याकरण सूर्य, हल्द्वानी, नैनीताल
२. श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी यज्ञतीर्थ — गुरुकुल एटा
३. श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती एम० पी०, गुरुकुल घरौंडा. करनाल
४. श्री स्वामी आनन्द भिक्षु जी याज्ञिक — नया बांस, देहली
५. श्री सत्य मुनि जी सरस्वती — वैदिक साधनाश्रम
६. श्री पं० सातवलेकर जी — स्वाध्याय मंडल पारडी, जि० सूरत
७. श्री पं० भगवद्दत्त जी — पंजाबी बाग, नई दिल्ली
८. श्री पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति जी — गुरुकुल कांगड़ी
९. श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड — गुरुकुल कांगड़ी
१०. श्री पं० अलगू राय जी शास्त्री एम० पी० — लखनऊ
११. श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री एम० पी० — दिल्ली
१२. श्री उदयवीर जी शास्त्री — गाजियाबाद (मेरठ)
१३. श्री हरिदत्त जी शास्त्री नव-तीर्थ — कानपुर
१४. श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु — काशी
१५. श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक — अजमेर
१६. श्री सूर्यदेव जी शर्मा सिद्धान्तवाचस्पति — अजमेर
१७. श्री देवप्रकाश जी पातंजल — लाजपत नगर, दिल्ली
१८. श्री रामचन्द्र जी देहलवी — हापुड़ (मेरठ)
१९. श्री सुरेन्द्र जी शर्मा, काव्य-वेदतीर्थ — शाहदरा, दिल्ली
२०. श्री श्रीकृष्ण जी शास्त्री — आदर्शनगर, दिल्ली
२१. श्री रामगोपाल जी शास्त्री वैद्यराज — करोलबाग, दिल्ली
२२. श्री रामानन्द जी शास्त्री — आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना
२३. श्री अमरसिंह जी आर्योपदेशक — हिसार
२४. श्री बिहारीलाल जी शास्त्री — सुभाषनगर, बरेली
२५. श्री शिवकुमार जी शास्त्री — आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब
२६. श्री शान्तिप्रकाश जी शास्त्री — महोपदेशक प्रतिनिधि सभा, पंजाब
२७. श्री मुनीश्वरदेव जी सिद्धान्तशिरोमणि — प्रतिनिधि सभा, पंजाब
२८. श्री ज्योतिस्वरूप जी — आचार्य गुरुकुल, एटा
२९. श्री ईश्वरचन्द जी दर्शन-केसरी — बम्बई-४
३०. श्री शिवपूजन जी अवस्थी — आचार्य गुरुकुल किरठल, मेरठ
३१. श्री उदयभानु जी — मन्त्री आर्यसमाज, इन्दौर
३२. श्री भगवानदास जी — प्रिंसीपल दयानन्द कालेज, शोलापुर
३३. श्री भगवानदेव जी — आचार्य गुरुकुल झज्झर, रोहतक
३४. श्री विश्वदेव जी शास्त्री — आचार्य गुरुकुल टटेसर-जौन्ती, दिल्ली
३५. श्री डॉ० श्रुतिकान्त जी आयुर्वेदाचार्य, धन्वन्तरि — गुरुकुल टटेसर-जौन्ती, दिल्ली
३६. श्री पं० पद्मनाथ जी शर्मा — होशियारपुर (पंजाब)
३७. श्री भवानीलाल जी भारतीय — गवर्नमेण्ट कालेज, पाली (राज०)
३८. श्री सुधीरकुमार जी गुप्त, राजस्थान विश्वविद्यालय पुरी, जयपुर (राज०)
३९. श्री पं० रामचन्द्र लक्ष्मण जी शर्मा — लाजपतनगर, नई दिल्ली
४०. श्री कविराज धर्मसिंह जी कोठारी, वैद्यवाचस्पति — अजमेर, (राज०)
४१. श्री स्वामी विद्यानन्द जी विदेह — राजौरी गार्डन, नई दिल्ली
४२. श्री विद्याव्रत जी शास्त्री — देहली
४३. श्री वैद्यराज प्रह्लाददत्त जी, प्रधान आर्य युवक संघ, सदरबाजार, दिल्ली
४४. श्री कविराज महावीर जी आयुर्वेदाचार्य, धन्वन्तरि — देहली
४५. श्री प्रिंसिपल चन्द्रदेव जी एम० ए० बी० टी० — देहली
४६. श्री पं० श्यामसुन्दर जी स्नातक, आर्य महोपदेशक — देहली
४७. श्री पं० सोमकीर्ति जी पुरोहित — आर्यसमाज अनारकली, नई दिल्ली
४८. श्री स्वर्गीय पं० बस्तीराम जी — हरियाणा
४९. श्री स्वर्गीय स्वामी अच्युतानन्द जी — दिल्ली
५०. श्री स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी — दिल्ली

आप्तोपदेशः शब्दः

हमारे छोटे भ्राता श्री प्रह्लाददत्त जी के पुत्र वामदेव जी के नामकरण संस्कार में श्री पं० बस्तीराम जी ने यज्ञ में मन्त्र के अन्त में 'ओ३म्' स्वाहा बोल के कर्म कराया। तब हम ने प्रश्न पूछा कि संस्कारविधि में 'ओ३म्' नहीं छपा है। वह बोले कि महर्षि ऐसे ही करते थे, हम ने सन्ध्या करते समय उन्हें देखा, वह प्रत्येक मन्त्र के आगे 'ओ३म्' का उच्चारण करते थे। यह भी पूछा कि श्री स्वामी जी कैसे करते थे? उन्होंने कहा कि स्वामी जी बड़ी लम्बी ध्वनि से 'ओ३म्' ऐसे बोल कर सन्ध्या करते थे।

हम ने संस्कारविधि का यज्ञ-प्रकरण देखा तो वहां मन्त्रों के बाद में 'ओ३म्' मुद्रित नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जांच करने को एक बार श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी से दिल्ली आकर पूछा कि स्वामी जी एक बात पूछें? तब वे हंसते हुए बोले कि एक नहीं दो बात पूछो। हम ने पं० बस्तीराम जी का सारा वृत्तान्त सुनाया। हम ने पूछा आपने सन्ध्या किससे पढ़ी? वह बोले कि हम ने श्री स्वामी जी से पढ़ी थी। वह प्रत्येक मन्त्र के साथ बड़ी लम्बी ध्वनि से 'ओ३म्' उच्चारण करते थे। **पाठकों के लाभार्थ महर्षि दयानन्द के मत का ज्ञापक जो उनका पत्र 'परोपकारी' पत्रिका में छपा था, इसी लेख के अन्त में ज्यों का त्यों दे रहे हैं।**

शुद्धि सभा में वहीं श्री स्वामी अच्युतानन्द जी बैठे थे। वे हम को देहाती सा देखकर बोले— चौधरी कहाँ से आये हो। हम ने कहा जि० रोहतक में जयतपुर ग्राम से।

तब उन्होंने कहा कि हम ने श्री स्वामी जी से दीक्षा ली थी। वे जब 'ओ३म्' उच्चारण करते थे तब आकाश गूंज उठता था। उन्होंने भूले भारत को पुनः 'ओ३म्' नाम का स्मरण बतलाया है। यह तीनों प्रत्यक्षदर्शी आप्त पुरुष थे। यह घटना सन् १९२३ की 'आप्तोदेशः शब्दः' की है।

अन्य प्रमाण

हमारे पास श्री पं० विश्वश्रवा जी का लिखा 'यज्ञपद्धति-मीमांसा' ग्रन्थ इन के कथन का खण्डन करता है। जिस में यज्ञ के 'विश्वानि' से 'अग्ने नय सुपथा राये' तक आठों मन्त्रों के आगे 'ओ३म्' प्लुत विद्यमान है। और एक 'नित्यकर्मविधिः' वैदिक पुस्तकालय, अजमेर ने प्रकाशित किया। वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपा, अष्टमावृत्ति (१००००)। विक्रमी संवत् २००७ का छपा हुआ हमारे पास विद्यमान है। इसी भांति श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के पास संवत् १९३२ की विधि सुरक्षित है, उस में प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ओंकार' मुद्रित है।

धर्मार्य सभा मन्त्री जी बार-बार यह कहते रहे कि जैसा मुद्रित है वहां वैसा ही बोलना ऋषि-भक्ति है। ये सब प्रमाण हमारे पास प्रत्यक्ष मुद्रित हैं।

जहां कहीं सन्ध्या में छपा हुआ नहीं मिलता वहां कम्पोजीटर तथा प्रूफ देखने वाले भी आलस्य प्रमादवश भूल कर सकते हैं।

यदि थोड़ी देर के लिए यह भी मान लें कि ऋषि ने सन्ध्या में कुछ मन्त्रों के आगे 'ओ३म्' नहीं लगाया तो बताओ, अन्य ९ मन्त्रों के आगे क्यों लगाया है?

क्योंकि मूल वेद में तो एक स्थान छोड़ कर किसी भी मन्त्र के आगे 'ओ३म्' मुद्रित नहीं है, स्वामी जी ने वहां क्यों लगाया? और महर्षि ने कहीं पर 'ओ३म्' लगाना मन्त्र में वर्जित भी नहीं किया। उन्हीं सन्ध्या के मन्त्रों के आगे संस्कारविधि में प्रयोग मिलता है। जहाँ धर्मार्य सभा मन्त्री जी जैसे कहते हैं कि उपस्थान के 'तच्चक्षुः' मन्त्र के आगे 'ओम्' मुद्रित नहीं, वह सन्ध्या में मत बोलो, उसी 'तच्चक्षुः' के आगे संस्कारविधि के निष्क्रमण संस्कार तथा विवाह संस्कार में **'ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितम्'** के आदि में 'ओ३म्' मुद्रित है।

—'ओंकारप्रकाश' से देखें पृष्ठ १४० से १४६

कुछ अन्य प्रमाण भी देखें—

१. *तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रिया।*
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥
-गीता १७। २४॥

२. ***प्रणवपूर्वमुद्धृत्य सच्चित्पदमुदाहरेत्।***
एकपदान्ते ब्रह्मेति मन्त्रोद्धारः प्रकीर्तितः॥

३. ***माङ्गल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकामप्रसादनम्।***
ओङ्कारः परम् ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः॥ *याज्ञ०*

४. ***अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः।***
तस्योङ्कारो स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति॥ *याज्ञ०*

५. ***मुद्रण में प्रमाण—*** *संस्कारविधि में ओ३म् ६३५ वार*
सत्यार्थप्रकाश में ओ३म् १९०३ वार
आर्याभिविनय में ओ३म् १५४ वार
—'ओंकारप्रकाश' पेज ५२, ५३

ओ३म् का महत्त्व

उपनिषत् के पहले प्रपाठक के चौथे खण्ड में उपनिषत्कार ने स्पष्ट किया है—'ओ३म्' अक्षर ही उद्गीथ है। उसी की उपासना गान करना चाहिए। देवता लोग मृत्यु भय से छन्दों से आच्छादित ऋक् यजुः साम ऋचाओं में प्रविष्ट हो गये, जब देवों ने अनुभव किया कि मृत्यु ने उन्हें देख लिया, तब वे ऋचाओं से ऊपर स्वरों में प्रविष्ट हो गए। वेदों की ऋचाओं का उच्चारण 'ओ३म्' इस स्वर का ही उच्चारण है। 'ओ३म्' का दीर्घ स्वर से उच्चारण ही अमृत है—**'एतद् अमृतम्'** उसी से अभय पद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकारी को कहीं कभी कुछ मिला नहीं है। आज तो व्यक्ति चार अक्षर पढ़कर भी अपने आप को अहंकार में डुबा देता है। केनोपनिषद् में इस सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर कहा गया है—

यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ (2-3)

जो ब्रह्म के सम्बन्ध में यह अभिमान नहीं रखता कि, वह ब्रह्म को अच्छी तरह जानता है, वही कुछ जानता है, परन्तु जो यह अभिमान रखता है कि वह उसे जानता है, वह कुछ नहीं जानता। ज्ञानाभिमानियों के लिए वह अज्ञात और अज्ञान स्वीकार करने वालों के लिए कुछ ज्ञात है।

ज्ञान का अभिमानी कभी भी विद्या के वास्तविक रहस्य को नहीं जान सकता है। उपनिषत् के ऋषियों के पास जब कोई शिष्य ब्रह्म के बारे में जानने के लिए जाता था तो वे बड़ी विनम्रता के साथ कहते थे कि यदि मैं जानता हूँगा तो अवश्य बताने का प्रयास करूँगा। उन ऋषियों में कितनी अधिक विनम्रता थी, कितनी अहंकारशून्यता थी। वास्तव में ज्ञान से रूपान्तरित हुए व्यक्ति की यही स्थिति होती है। विद्या का अहंकार उन्हें छू भी नहीं जाता है। अहंकारी में कभी श्रद्धा नहीं आ सकती और बिना श्रद्धा के समर्पण नहीं हो सकता। समर्पणहीन व्यक्ति न तो किसी गुरु का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और न ही ब्रह्म का ही सामीप्य उसे प्राप्त हो सकता है। कहते हैं एक बार महर्षि दयानन्द जी की विद्वत्ता की किसी ने प्रशंसा की तो महर्षि जी ने तुरन्त उत्तर दिया कि यदि मैं गौतम और कणाद जैसे विद्वानों के युग में होता तो साधारण विद्वानों में भी मेरी गिनती न होती। चारों वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् और अठारह-अठारह घण्टे समाधिस्थ रहने वाले योगी की यह अहंकारशून्यता देखते ही बनती है।

भर्तृहरि जी लिखते हैं कि जब मैं थोड़ा जानता था तब भी मैं अपने ज्ञान के अहंकार में रहता था मगर वास्तव में विद्वानों की संगति प्राप्ति हुई तो पता चला कि मैं तो कुछ जानता ही नहीं। आधुनिक वैज्ञानिक न्यूटन और आईंस्टीन जैसी विभूतियां भी बहुत ही विनम्र रही हैं। कहते हैं कि एक श्रद्धाहीन व्यक्ति योग ध्यान की बातें पूछने के लिए तथा आत्मा-परमात्मा की शंकाएँ दूर करने के लिए बहुत से लोगों के पास गया मगर उसकी शंकाओं का समाधान नहीं हो सका। अन्ततः वह एक और महात्मा के पास जा पहुँचा। जाते ही उसने बहुत से प्रश्नों की बौछार कर दी और साथ ही यह सूचना भी दे दी कि इससे पहले मैं लगभग सौ के पास अपनी शंकाएँ लेकर जा चुका हूँ मगर कोई मेरी इन शंकाओं का समाधान नहीं कर सका है। उस व्यक्ति ने पहले ही महात्मा को सचेत कर दिया कि जरा सोच समझ कर उत्तर देना क्योंकि इससे पहले मैं सौ के पास जा चुका हूँ। उसे मानो इस बात का भी अहंकार है कि पहले वाले सौ मेरे प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाए हैं तो तुम भला क्या दोगे। ज्ञानी तो अपने अहंकार में देखे ही गए हैं मगर अज्ञानी भी अपने अज्ञान के अहंकार में निमग्न होते हैं, तभी तो वे अज्ञानी हैं। न जानने और न मानने का भी लोगों को अहंकार होता है। जीवन में ऐसे बहुत से लोग मिल जाते हैं जो परमात्मा या आत्मा को न मानने का अहंकार करते हैं। वे अपने आपको सुपर समझते हैं और आत्मा-परमात्मा के चक्कर में फंसे हुए लोगों को बड़ी ही दया की दृष्टि से देखते हैं। वह व्यक्ति भी ऐसा ही रहा होगा। कुछ भी न मानने का अहंकारी रहा होगा नहीं तो सौ के पास जाकर भी ऐसे खाली न रहता। खैर महात्मा तो थे पहुँचे हुए तुरन्त समझ गए कि दोष कहाँ है। उन्होंने बड़ी शान्ति से कहा कि बेटा इतना उतावलापन दिखाना ठीक नहीं, अभी मैंने स्नान करना है। तुम भी मेरे साथ कूएं पर चलो। नहा धोकर लौटने पर चर्चा करते हैं। युवक महात्मा के साथ हो लिया। महात्मा जी अपने साथ एक आटा छानने वाला छानना भी साथ लेकर चल पड़े। कूएं पर पहुँचने पर महात्मा जी ने पानी निकालने वाली बाल्टी को एक ओर खोलकर रख दिया और उसके साथ छानने को बांध दिया। अब वे पानी निकालने के लिए बार-बार रस्सी से बन्धे छानने को पानी में डुबाते और खींचकर वापस ऊपर लाते। भला उस छानने में पानी तो क्या आना था अतः पुनः कुएं में डुबाते और पुनः बाहर निकालते। ऐसा करते-करते बहुत समय हो गया तो पास में खड़े युवक से न रहा गया। उसके धैर्य का बांध टूट गया और उठकर जाने लगा। महात्मा ने कहा बेटा कहां चल दिए अभी तो मैंने स्नान करना है और फिर लौटकर कुटिया में आपकी शंकाओं का समाधान भी करना है। युवक ने कहा कि महात्मा जी अब उसकी आवश्यकता नहीं रही। क्यों? क्या कुछ सन्देश मिल गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्यात्।' यज्ञकर्त्ता यजमान का लोक कहां है? उसे क्या फल मिलता है। वह यजमान व होता उसे न जाने तो कैसे यज्ञ करे और यदि फल को जानता हो तो तभी यज्ञ करे? जैसे फूलों का सार रस मधु (शहद) होता है। दूध का सार घृत होता है वैसे ही वेदमन्त्रों सा सार ओ३म् है।

अपरं च कठोपनिषद् में कहा है—**एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥** यह ओम् नाम प्रभु का परम आश्रय है। इस ओम् नाम के सहारे को जानकर तथा धारण करके ब्रह्मलोक में मनुष्य महिमा को पाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति ओम् व वेद के बिना नहीं होती। **अतः प्रत्येक मन्त्र के आदि में ओ३म् अवश्य बोलें। यज्ञकर्म में अन्त में भी अवश्यमेव बोलें। ऋषियों के लेख व आदेश में इसमें कोई विकल्प नहीं है।**

महर्षि देव दयानन्द जी ने भी कहीं नहीं लिखा कि प्रत्येक मन्त्र के आदि में ओ३म् न बोलें वा मन्त्रों के समुदाय के आदि में ही ओ३म् बोलें।

अन्त में जो विद्वान् इसके विपक्ष में हैं वे तर्क व प्रमाण प्रस्तुत करें। जिन महानुभावों ने ओ३म् के आदि अन्त के उच्चारण में अपना अभिमत ओ३म् के न बोलने के लिए अभिव्यक्त किया है, उसमें कोई प्रमाण न होने से वह मान्य नहीं किया जा सकता।

विश्वास है कि हम ऋषियों के वचनों पर ध्यान देकर इस विषय में अपने दुराग्रहों से मुक्त हो सकेंगे। ऋषि-भक्ति का यह अर्थ नहीं होता कि हम मर्म को समझे बिना छपे हुए ग्रन्थों को प्रमाण बताकर 'मक्खी पर मक्खी' मारते चले जाएं।

अन्त में निवेदन है कि यह प्रतिक्रिया-लेख मूलतः दयानन्दसन्देश में आये लेखों के उत्तर में लिखा गया था। अब यह श्री वेदव्रत जी आलोक के निर्देशानुसार प्रकाशन को दिया जा रहा है। यदि सुधीजन अपनी प्रतिक्रिया से अवगत करायेंगे तो आगे भी सम्भव समाधान विचार कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायेगा।

जो विद्वान् अपने द्वारा कराये पारायण-यज्ञों में ओ३म्-उच्चारण का प्रत्येक मन्त्र के प्रारम्भ व अन्त में सर्वत्र निषेध करते हैं, केवल यज्ञारम्भ में ही ओ३म् का पाठ करवाते हैं, उनसे विशेष निवेदन है कि अपना अभिमत अवश्य भेजें।

वैदिक प्रेस, कैलाशनगर, दिल्ली-३१

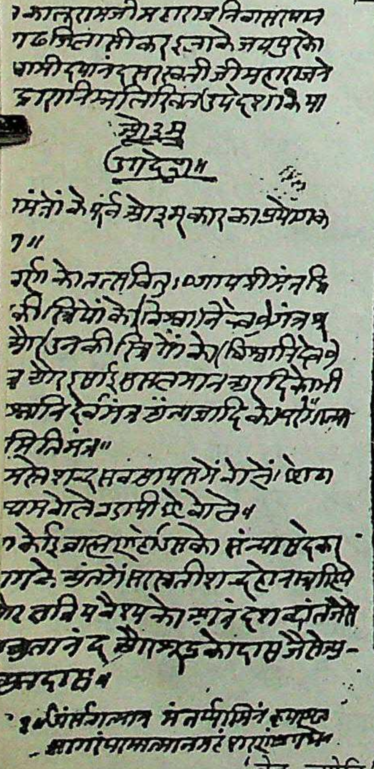

'ओ३म्' उच्चारण में महर्षि का अभिमत

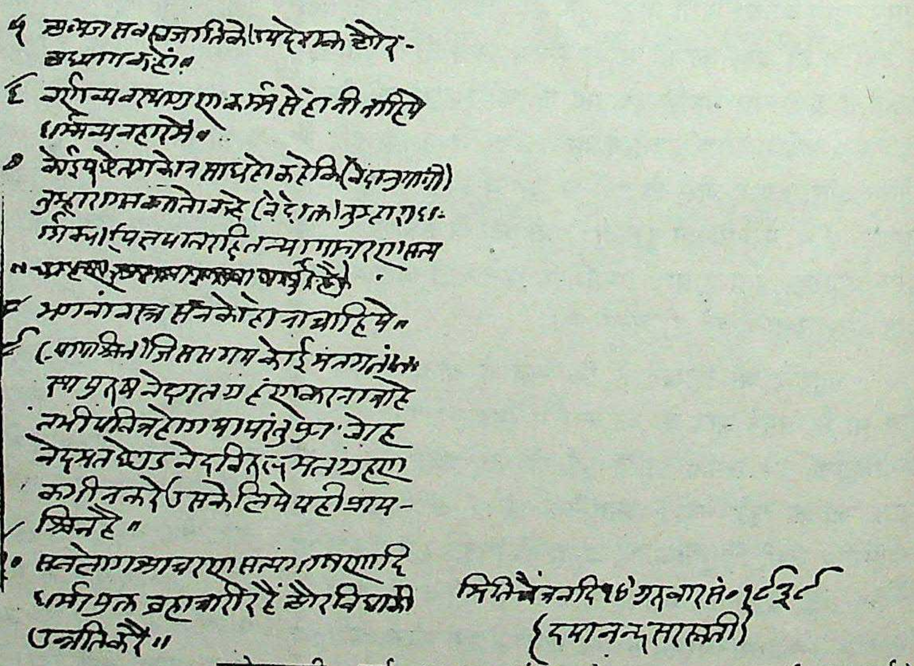

परोपकारी, मई 1990 अंक से एम०आर०शर्मा (आर्य)

'वेद-ज्योति' 13, आनंद सोसाइटी, महर्षि दयानन्द मार्ग, तरसाली, बड़ौदा-३९० ००९ से साभार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग मुनि की अयोग्यता
(पहली किस्त)

—स्वामी परमानन्द सरस्वती

विचारशील सज्जनो

आज मेरे समक्ष श्री चन्द्रगुप्त योगमुनि द्वारा लिखित वेद और परमात्मा नामक पुस्तक है। जिसके अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक दादा लेखराज द्वारा स्थापित ब्रह्मकुमारी संस्था का अनुयायी है। तो यह स्वाभाविक है कि वह अपना समस्त बुद्धि-बल उसी संस्था की मान्यता के अनुरूप प्रदर्शित करे। इनकी मान्यता है कि ईश्वर सर्वव्यापी नहीं है वह परम धाम में रहता है, उसका नाम शिव है, बुलाने पर आता है। इसी दुराग्रह के कारण पुस्तक के पृष्ठ ६ पर महर्षि दयानन्द पर आक्षेप करते हुए लिखा है कि दयानन्द ने परमात्मा को अर्ध सत्य के रूप में प्रस्तुत किया। **यः विश्वान् देवान् मदेन सह परि गच्छति।** (सामवेद-५५२) अर्थात् जो परमात्मा सब देवों के समीप हर्ष-कारक ज्ञान के साथ आता है। इस वेद मन्त्र के अर्थ का सही मूल्यांकन न हो सका था।

समीक्षा—सामवेद ५५२ का पूरा मन्त्र इस प्रकार है। **परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति करेण। यो देवान्विश्वां इत्यहि मदेन सह गच्छति॥ ८ ॥**

इन्होंने जो पुस्तक लिखी है उसका नाम पवित्र सामवेद रखा है। सामवेद पर विशेष पवित्र शब्द लगाना इनके बुद्धि के दिवालियेपन का ही सबूत है क्योंकि पवित्र की अर्थापत्ति अपवित्र होती है। भाष्य पवित्र और अपवित्र हो सकते हैं, परन्तु वेद नहीं। इन्होंने जो भाष्य लिखा है वह निश्चित ही अपवित्र है इसलिए इन्होंने उसे पवित्र लिखकर लोगों को धोखा देने का असफल प्रयास किया है। अब इनके भाष्य का अवलोकन करें जो इन्होंने पुस्तक के पृष्ठ ४७६-४७७ में ५५२ मन्त्र का किया है।

''उस विकारों में गए हुए कौरवों को दुःखों के हरण करने वाले अर्थात् विकारों को दूर करने वाले पाण्डव जन को, गहरे भूरे रंग वाले यादव को, शिव परमात्मा सब प्रकार से इन सब को पवित्र करते हैं। जो शिव परमात्मा सोम परमात्मा ही सब देवों के पास मद-कारक हर्ष-कारक ज्ञान के साथ समीपता से जाते हैं। ज्ञान यज्ञ के स्थान विशेष के समीप जाते हैं।'' कितना सुन्दर है इनका यह अर्थ लोग इसे पढ़कर शेखचिल्ली को भूल जायेंगे। अब इसी मन्त्र का अर्थ श्री स्वामी तुलसीराम जी ने यज्ञ परक किया है अवलोकन करें—''उस सब से चाहने योग्य हरे और श्वेत वर्ण सोम को वाल से रचे हुए दशापवित्र से सब प्रकार शोधते हैं। जो सोम सब ही वायु आदि देवताओं को इस के साथ सब ओर जाता है।'' यही मन्त्र ऋग्वेद ९। ९८। ७ में आया है जिसका अर्थ वैद्यनाथ शास्त्री जी ने ईश्वर परक किया है—''उक्त परमात्मा जो अनन्त प्रकार की सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता है। जो सर्वप्रिय ज्ञान स्वरूप वरणीय से वरणीय पदार्थों द्वारा जिसकी उपासना करते हैं और जो विद्वानों को ही परमानन्द के साथ पवित्र करता है वह सर्वत्र प्राप्त है।'' योग मुनि को अपनी अयोग्यता से गच्छति शब्द से यह भ्रान्ति हो गई कि जो परमात्मा आता जाता है वह सर्वव्यापी नहीं हो सकता। दुराग्रह के कारण इन्हें गम् धातु के और अर्थ नहीं दीखे। गम् धातु के तीन अर्थ हैं। ज्ञान, गमन और प्राप्ति। पौराणिकों के प्रसिद्ध आचार्य पं० सुदर्शनाचार्य जो कि न्यायदर्शन के टीकाकार हैं उन्होंने भी न्याय ४। ४। ४। में लिखा है—निःश्रेयसाधिगमः—यहां पर गम् धातु है जिसका अर्थ मोक्ष की प्राप्ति है। **सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्थाः।** (स्कन्दस्वामी निरुक्त टीका २। ४६ **गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वाद् गमेर्ज्ञानार्थता**) ऋग्भाष्य टीका जयतीर्थ पृ०२।

दूसरा आक्षेप—यजुर्वेद ३२-४२ के अनुसार—**परिद्यावा पृथिवी सद्यः इत्वा परि लोकान् परिदिशः परिस्वः।** अर्थात्—वह परमात्मा द्यावा पृथिवी लोकों से परे है, दिशाओं से परे है और स्वर्ग लोक से भी परे है और सब जगह शीघ्र गति करके समर्थ होता है। इस मन्त्र को भी पूर्णतया न समझ कर परमात्मा को सर्वव्यापी मान लिया गया है।

समीक्षा—मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि-गर्वी, दुर्वचनी तथा हठी, चाप्रियवादी च हितोक्तं नैव मन्यते। मूर्खता के इन पाँच चिह्नों में से दो चिह्न गर्वी और हठी (दुराग्रही) को ही चरितार्थ करते हुए ही महर्षि दयानन्द के भाष्य को त्रुटि- पूर्ण लिख दिया। इसमें मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ क्योंकि मैं जानता हूँ कि आधा भरा घड़ा ज्यादा छलकता है और कौआ, कोयल के स्वर को कठोर कहता है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप वैदिक व्याकरण से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसलिए परि शब्द को परे लिख कर मन्त्र के आशय को विपरीत अर्थ लगा लिया परि शब्द की व्याकरण की दृष्टि से चार संज्ञाएँ हैं।

निपात संज्ञा १, उपसर्ग संज्ञा २, गति संज्ञा ३, कर्मप्रवचनीय संज्ञा ४, उपसर्ग संज्ञक परि शब्द का सर्वतो भाव अर्थ है। निरुक्त में यास्काचार्य ने उपसर्गों के बीस अर्थ किये हैं। परीति सर्वतो भावम्॥ का भाष्य श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार पाली रत्न जी ने वेदार्थ दीपक के पृष्ठ २४ पर किया है। परि—यह सब ओर होने को कहता है। जैसे स पर्यगात्—वह परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है। और जो तुम ने परि शब्द की जगह परे लिखकर ईश्वर को एकदेशीय सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है वह तुम्हारा बाल विनोद ही है। परे शब्द भी ईश्वर के सर्वव्यापक स्वरूप को ही दर्शा रहा है। जैसे घी दूध से परे है और दूध में व्यापक भी है। इसी तरह अग्नि लकड़ी से परे है और उसमें भी है। योग मुनि ने अपनी अयोग्यता से महर्षि दयानन्द के जिस भाष्य को त्रुटि पूर्ण निरूपित किया है। पाठक अब उस पूरे मन्त्र के भाष्य का अवलोकन कर निर्णय करें। यजुर्वेद ३२-४२ **परि द्यावा पृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः। ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्॥** पदार्थः हे मनुष्यो! जो परमेश्वर (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि को (सद्यः) शीघ्र (इत्वा) प्राप्त होके (परि अपश्यत्) सब ओर से देखता है जो (लोकान्) देखने योग्य सृष्टिस्थ भूगोलों को शीघ्र प्राप्त होके (परि अभवत्) सब ओर से प्राप्त होता जो (दिशः) पूर्वादि दिशाओं को शीघ्र प्राप्त होके (परि) सब ओर से देखता है जो (ऋतस्य) सत्य के (विततम्) विस्तृत (तन्तुम्) कारण को (विचृत्य) विविध प्रकार से (तत्) उस सुख को देखता जिससे (तत्) वह सुख हुआ और जिससे (तत्) वह विज्ञान हुआ है उसको यथावत् जान के उपासना करो॥ ***(क्रमशः)***

(पृष्ठ ७ का शेष)

इससे मनुष्य के अन्दर क्रूरता का, अहंकार का विकास होता है, जिससे वह अत्यन्त निकृष्ट कार्य करने पर भी उतारू हो जाता है। गहराई से सोचा जाय तो वास्तव में शाकाहार ही मानव के अनुकूल है। शाकाहार के बल पर ही मनुष्य पुरुषार्थ को प्राप्त करता है। शाकाहार से ही उसके मौलिक गुणों का विकास होता है। इस संदर्भ में एक घटना याद आती है—

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती उन दिनों लन्दन प्रवास पर थे। उनके प्रवचन सभाओं में वहां के प्रसिद्ध समाचार पत्र "डेली टेलीग्राफ" के सम्पादक भी आते थे। स्वामी जी के स्वस्थ शरीर से आकर्षित होकर एक दिन उन्होंने स्वामी जी से पूछा—स्वामी जी, आपकी आयु कितनी है?

स्वामी जी ने पलटकर पूछ लिया—आपके विचार से कितनी होनी चाहिये?

सम्पादक ने कहा—अधिक से अधिक पैंसठ वर्ष, स्वामी जी ने कहा—मेरे बड़े बेटे की उम्र इस समय 61 वर्ष है और मेरी आयु पचासी वर्ष। सम्पादक ने कहा—आश्चर्य है।

आप क्या भोजन करते हैं? कौन सी ब्राण्डी कौन सा मांस खाते हैं? स्वामी जी ने कहा—मांस-मदिरा तो मेरे माता/पिता और दादा/दादी भी नहीं खाते थे मैं तो इससे बहुत दूर हूँ क्योंकि मेरा पेट कब्रिस्तान नहीं है। हाँ! भोजन में मैं दाल, सब्जी एवं रोटी जरूर लेता हूँ। स्वस्थ शरीर का राज शाकाहार है।

जार्ज बर्नार्डशा का एक कविता का भाव कुछ इस तरह है उन मांसाहारियों के लिए—"हम मांस खाने वाले वे चलती फिरती कब्रें हैं, जिनमें वध किए हुए जानवरों की लाशें दफन की गयी हैं। जिन्हें हम ने अपने मुंह के स्वाद के चाव के लिए मारा है।"

मांसाहार के सेवन से पैदा होने वाली बीमारियों को देखते हुए डॉ० एडवर्ड सौंदर्स ने कहा कि—

"आने वाली दुनिया मांसाहार के नाम मात्र से ही भयभीत हो उठेगी। भावी युग के लोगों को शाकाहार के लिए बाध्य होना पड़ेगा।"

अन्त में मैं यही कहूंगा कि हम, आप और समस्त मानव समाज उस राह का अनुसरण करें जो यह सिद्धान्त कहता है—

'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि।'

आइये! हम संकल्प लें कि मांसाहार का बिल्कुल त्याग करें।

(नवभारत ९।१०।९६ से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान देवें, पर परख कर

—आचार्य सुधांशु

हिन्दू समाज में दान के नाम पर जैसा अन्धेर है, वैसा सम्भवतः किसी समाज में नहीं होगा। पौराणिक लोग मठ-मन्दिरों में आँख मूंदकर दान देते ही हैं, आर्यसमाजी भी जो अन्यों की अपेक्षा अधिक जागरूक हैं, वे भी आँख मूँदकर दान देने लगे हैं। दान के विषय में महर्षि दयानन्द जी का कथन है कि—**''उत्तम दाता उसे कहते हैं जो देश, काल और पात्र को जानकर सत्य, विद्या और धर्म की उन्नति रूप परोपकारार्थ देवें।'' दान करें।**

पौराणिक भाई मठ-मन्दिरों में ही दान देते हैं। वे लोग सम्पन्न ब्राह्मण को दान देना तो पुण्य मानते हैं परन्तु अत्याधुनिक गरीब शूद्र को दान देना पुण्य नहीं मानते। एक बार साध्वी ऋतम्भरा ने अपने भाषण में कहा था कि ''हिन्दू शूद्र को दान देना पुण्य नहीं मानता।'' ऐसा ही महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी अपनी 'दान' कविता में चित्रित करते हुए कहते हैं कि 'एक ब्राह्मण जो मन्दिर का पुजारी है मन्दिर में रहने वाले बन्दरों को मालपुए खिलाता है और जब एक गरीब व्यक्ति जो भूख से व्याकुल है, खाने को कुछ माँगता है, तब वह अद्वैतवाद का उपदेशक, **सर्वे भवन्तु सुखिनः** से **वसुधैव कुटुम्बकम्** की बात करने वाला पुजारी उसे यह कहकर भगा देता है कि न मालूम तू किन कर्मों का फल भोग रहा है। आज आर्यसमाज में भी पौराणिक हवा प्रवेश कर गयी है, आज आर्यसमाजी भी प्रायः उन्हीं जैसा दान देने लगे हैं। आज आर्यसमाज के जलसों, मन्दिरों, विद्यालयों पर करोड़ों रुपये व्यय हो रहे हैं। परन्तु लाभ कुछ भी नहीं। फिर भी लोग आँख मूंदकर दान देते जा रहे हैं। कितनी ऐसी संस्थाएँ हैं जहाँ आवश्यकता से अधिक दान दिया जाता है और कुछ ऐसी भी संस्थाएं हैं जहाँ धन का अभाव सदैव रहता है।

आर्यसमाज का सब से अधिक धन आर्यसमाज के जलसों पर बर्बाद होता है। सभी आर्यसमाजों के उत्सवों पर कुल मिलाकर लगभग एक-आध करोड़ रुपया व्यय होता ही है, परन्तु लाभ कुछ भी नहीं।

उत्सव करवाने वाले लोग जनता से धर्म-प्रचार के लिए धन इकट्ठा करते हैं, परन्तु आर्यसमाज का प्रचार न करके सारा धन हलुआ पूड़ी साज-बाज और दक्षिणा पर खर्च कर देते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि आर्यसमाज का प्रचार न तो उत्सवों से हो रहा है और न शिक्षण-संस्थाओं से। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उत्सव आदि बन्द कर दिये जायें। बल्कि प्रचार के नाम पर जो धन बर्बाद किया जाता है, उस पर विचार किया जाये कि उस धन से वास्तव में आर्यसमाज का प्रचार कैसे हो?

आज भी कोई आर्यसमाजी बनता है तो वह 'सत्यार्थ-प्रकाश' पढ़कर ही बनता है न कि किसी उपदेशक के उपदेश से। ऐसा नहीं है कि आर्यसमाज के प्रचार में उपदेशकों की भूमिका बिल्कुल नहीं रही है। पहले उपदेशकों का अच्छा प्रभाव पड़ता था, अब उपदेशक प्रभावहीन हैं। आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में जो भूमिका महर्षि दयानन्द सरस्वती के 'सत्यार्थप्रकाश' की रही है, वैसी शायद आर्यसमाज के सारे ग्रन्थों और सारे विद्वानों की नहीं रही है। आज भी आर्यसमाज के प्रचार का सब से अच्छा साधन 'सत्यार्थप्रकाश' है। यदि उत्सवों पर धन खर्च न करके 'सत्यार्थप्रकाश' बांटा जाय तो आर्यसमाज का प्रचार अच्छी तरह हो सकता है। मान लें कि यदि एक आर्यसमाज के उत्सव पर तीस हजार रुपये खर्च होते हैं, उन तीस हजार में से पाँच हजार का भी 'सत्यार्थप्रकाश' बांटा जाये तो वह पाँच हजार पचीस हजार रुपयों से अधिक आर्यसमाज का प्रचार कर सकता है। परन्तु ऐसा रचनात्मक कदम कोई भी आर्यसमाज उठाने को तैयार नहीं है। आज आर्यसमाजें राजनीति का अड्डा बन चुकी हैं। वे लोग ऐसा नहीं कर सकते। कितनी आर्यसमाजों पर अनार्य लोगों का प्रभाव है, वे कदापि नहीं चाहेंगे कि सत्यार्थ-प्रकाश का वितरण हो। आज प्रायः किसी में प्रचार की भावना नहीं है। बहुत से विद्वानों का लक्ष्य सिर्फ गाड़ी,

(शेष पृष्ठ २१ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहरे अन्धकार से परे

—भगवान देव 'चैतन्य'

अन्धतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः॥
(यजु० ४०।१२)

जो अविद्या (ज्ञान की उपेक्षा करके कर्म, अज्ञान, विपरीत ज्ञान, क्षर प्रकृति) की उपासना करते हैं वे गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं। और (कर्म की उपेक्षा करके) विद्या (कोरे शास्त्र ज्ञान के अंहकार) में रमते हैं वे उससे भी अधिक गहरे अन्धकार को प्राप्त होते हैं।

वेद के इस मन्त्र में परमात्मा ने मानव के लिए बहुत ही गूढ़ रहस्य प्रकट किया है। साधारण व्यक्ति की समझ में यह बात तो आ जाती है कि जो अविद्या का सहारा लेते हैं वे गहरे अन्धकार में जाते हैं मगर जो विद्या में रत रहते हैं वे और भी अधिक गहरे अन्धकार को प्राप्त करते हैं। यह बात बुद्धि संगत नहीं लगती है। मगर वास्तव में यहाँ पर बहुत ही गहरी बात कही गई है और अत्यधिक सार्थक भी। आज के युग में विद्या का अर्थ लिया जाता है पढ़ा लिखा और अविद्या का भाव लिया जाता है अनपढ़। मगर वेद यहां पर ऐसी साधारण सी बात नहीं कह रहा है। योगदर्शन में अविद्या आदि पांच क्लेश बताए गए हैं—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः॥ योग-दर्शन २-३) अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। ये पाँच क्लेश हैं। महर्षि दयानन्द जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं—उनमें से अस्मितादि चार क्लेशों और मिथ्याभाषणादि दोषों की माता अविद्या है, जो कि मूढ़ लोगों को अन्धकार में फंसा के जन्म-मरणादि-दुःख-सागर में सदा डुबाती है। परन्तु जब विद्वान् और धर्मात्मा उपासकों का सत्य विद्या से (अविद्या) विच्छिन्न अर्थात् छिन्न-छिन्न हो के (प्रसुप्ततनु) नष्ट हो जाती है, तब वे जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं। (ऋ०भा०भू० मुक्तिविषय) महर्षि जी का कथन स्पष्ट है कि अविद्या में पड़ा व्यक्ति बार-बार जन्म-मरण आदि के दुःखों फंसा रहता है मगर विद्या के रहस्य को जानने व अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। विद्या-अविद्या का यहां पर पढ़ा-लिखा या अनपढ़ नहीं है और न ही है कि विद्या से व्यक्ति गहरे अन्धकार में चला ज है बल्कि वेद मन्त्र का भाव है कि अविद्या से तो जन्म मरण आदि के चक्कर में व्यक्ति पड़ा ही रहेगा बल्कि जो केवल कोरे ज्ञानी हैं, ज्ञान का जिन्हें अहंकार जिनके व्यवहार में ज्ञान नहीं है वे विद्या के रहस्य न जानकर और भी अधिक अन्धकार में चले जा वास्तव में विद्या वही है जो व्यवहार में हो और जीवन-मरण के चक्कर से मुक्ति दिला दे। उपनिषत् व में कर्म-काण्ड का बहुत बोलबाला था। व्यक्ति आडम्बरों में ही फंसा रहता था तथा विद्या की सार्थ इतनी भर ही समझता थां। इसलिए उपनिषदों की र हुई ताकि कोरे कर्मकाण्ड से व्यक्ति को बाहर निकाल मुक्ति का रास्ता दिखाया जा सके।

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमू
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेव लोकं हीनतरं वा विश
(मुण्डकोपनि

अर्थात् कर्म और उनके फलों में फंसे हुए के अनुकूल यज्ञ और स्मार्त कर्म-धर्मशाला, कुआं बनाने को श्रेष्ठ मानते हुए इससे भिन्न श्रेय-मोक्ष कुछ नहीं जानते हैं। वे सकाम कर्म के फल को के ऊपर भोग कर इस लोक को और इससे भी लोक को प्राप्त करते हैं। उपनिषदों में स्पष्ट कहा है कि यज्ञादि कर्म ऐसे बेड़े हैं जिनके द्वारा संसार को पार नहीं किया जा सकता। इसका भाव यही है ये कर्म मुक्ति तक ले जाने वाले नहीं हैं क्योंकि सभी सकाम कर्म हैं इसलिए इन कर्मों में ही उलझे वाले व्यक्ति पुनः पुनः जन्म-मरण के चक्कर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं। बाह्य कर्मों की होड़ में आज संसार में कितने ही पाखण्ड पनप रहे हैं। ये सब कर्म तो हैं मगर ज्ञानहीन कर्म हैं। इनसे अनेक प्रकार की भोग सामग्री तो मिल सकती है मगर परमात्मा का आनन्द नहीं। वास्तव में कामनाओं में फंसे रहने का मार्ग अविद्या का मार्ग है और कामना रहित होकर आत्मा को जानना ही विद्या का सही स्वरूप है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है—'**क्षरं तु अविद्या**' अमरता के मार्ग में यह अविद्या टिकने वाली नहीं है। इसके विपरीत—**हि अमृतं तु विद्या** और निश्चय से विद्या अमरता देने वाली है। इस दृष्टि से हम देखें तो समस्त नैतिक पदार्थ और सांसारिक सम्बन्ध अविद्या में ही आ जाते हैं। यह सब ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में साधन तो हैं मगर केवल इन्हीं का होकर रह जाना अपने आप को अविद्या के अर्पित कर देने वाला है। इनका संग्रह करने से केवल अन्धकार ही हाथ आएगा, तृप्ति ही सामने आएगी। वास्तव में आनन्द और अमरत्व प्रदान करने वाली तो विद्या है मगर विद्या का भी केवल अहंकार करने से काम नहीं चलेगा बल्कि उसे व्यवहार में लाना होगा। विद्या यदि व्यवहार में नहीं है तो वह किसी काम की नहीं है।

मन्त्र में कहा गया है कि अविद्या का सहारा लेने वाले तो अन्धकार में जायेंगे मगर विद्या में रत रहने वाले तो और भी अधिक गहरे अन्धकार को प्राप्त होंगे। इसका भाव यही है कि विद्या वास्तव में वही सार्थक है जो व्यवहार में है, विद्या यदि व्यवहार में नहीं है तो उसका होना न होना एक समान है। बल्कि अज्ञानी में तो सुधरने के अवसर हैं भी क्योंकि वह जानता है कि मैं कुछ जानना चाहता हूँ। उसने अपने मस्तिष्क के कपाट खुले तो रखे हैं मगर जो इस घमण्ड में है कि वह सब कुछ जानता है उसके सुधार की कम ही संभावना है। वह तो निश्चित रूप से और भी अधिक गहरे अन्धकार में जायेगा क्योंकि वह अपने अहंकार में ही उलझकर समाप्त हो जायेगा। विद्या के उस घमण्डी से जो व्यावहारिक नहीं है, तो अज्ञानी व्यक्ति ही कहीं अधिक अच्छा है क्योंकि वह कहीं न कहीं श्रद्धा के साथ झुकने का गुण तो रखता है। वह कुछ जानने के लिए किसी का दरवाजा तो कभी न कभी खटका सकेगा। अहंकारी व्यक्ति न तो किसी गुरु के सामने नतमस्तक हो सकेगा और न ही उस परमात्मा के सामने, क्योंकि उसका अहंकार निश्चित रूप से आड़े आ जायेगा।

महाभारत में एक बड़ा सुन्दर प्रसंग आता है। पाण्डव और कौरव सभी आचार्य द्रोण जी के यहां शिक्षा ग्रहण कर रहे होते हैं। एक दिन आचार्य जी उन्हें सबक देते हैं। अगले दिन जब उस सबक को सुनते हैं तो कौरव और पाण्डव सभी अपना सबक ज्यों का त्यों सुना देते हैं मगर युधिष्ठिर जी पूरा सबक नहीं सुना पाते हैं। सभी शिष्य दोहरा देते हैं-सदा सत्य बोलना चाहिए, क्रोध नहीं करना चाहिए आदि-आदि, मगर युधिष्ठिर कहते हैं कि क्रोध नहीं करना चाहिए यह मुझे अभी याद नहीं हुआ है। अन्य सभी सहपाठी इस बात पर हंसते हैं। गुरु जी भी रहस्य को नहीं समझ पाते और उस पर क्रोधित हो जाते हैं। युधिष्ठिर गुरु जी की मार बहुत देर तक चुपचाप हंसते-हंसते सहन करते रहे और फिर कुछ देर बाद प्रसन्न होकर बोले कि गुरु जी अब याद हो गया। गुरु जी ने शायद इस पर कहा होगा कि मार खाकर तो सभी को याद हो जाता है मगर युधिष्ठिर जी ने बड़ी ही गहरी बात कही। उन्होंने कहा कि गुरुदेव शाब्दिक रूप से तो मुझे इतना सा वाक्य स्मरण करने में कोई कठिनाई नहीं थी मगर मैं यह देखना चाहता था कि क्या मैं इसे व्यवहार में भी ढाल पाया हूँ या नहीं। अब आपकी मार खाकर भी मैं अपने आप को शान्त और संयमित रख पाया तो मुझे इस बात का पता चल गया कि इस वाक्य को मैंने जीवन में धारण कर लिया है। गुरु जी निश्चित रूप से इस अद्भुत शिष्य की यह बात सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए होंगे और उसे अपने गले से लगा लिया होगा। विद्या तो वह है जिसे हम ने अपने व्यवहार में समेट लिया है अन्यथा ज्ञान का कोई लाभ नहीं। जैसा वह आलमारी में या बन्द पुस्तकों में भरा पड़ा है वैसा ही यदि मस्तिष्क में भी बिना व्यवहार के पड़ा रहा तो उसका कोई लाभ नहीं। वह तो निश्चित रूप से केवल अहंकार का ही कारण बनेगा और व्यक्ति को अन्धकार से नहीं बचा पायेगा। व्यक्ति बार-बार दोहराता चले कि शराब पीना बुरा है, मांस खाना बुरा है, सिगरेट पीना बुरा है, कुसंगति में जाना बुरा है, मगर इन बुराइयों को वह करता भी रहे तो ऐसे ज्ञान का भला क्या लाभ है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण में कोई बहुत बड़े सन्त हुए हैं। बचपन से ही उनमें वैराग्य के भाव थे। प्रभु-भक्ति और परमात्मा के चिन्तन मनन में ही उनका अधिकतर समय व्यतीत होता था। परिवार वालों ने जब उनकी ऐसी वृत्ति देखी तो उन्होंने जैसे-तैसे उन्हें सांसारिक बन्धनों में बांधने का प्रयास आरम्भ कर दिया। उनका कहीं पर रिश्ता पक्का कर दिया। युवक को भी इस सब का पता तो चला मगर वह अनिर्णय की जैसी स्थिति में ही रहा। एकतरफा निर्णय नहीं लिया जा रहा था। कहते हैं कि विवाह का समय भी आ पहुँचा मगर युवक के हृदय में सांसारिकता के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं था। एक रस्म के लिए वर और वधू को आमने-सामने खड़ा किया गया और पण्डित जी ने उच्च स्वर में कहा 'सावधान'। यह सावधान शब्द सुनते ही युवक विवाह मण्डप से एकदम भाग खड़ा हुआ। ऐसा भागा कि फिर कभी वापस लौटने का नाम नहीं लिया। यह सावधान शब्द तो कोई वैवाहिक प्रक्रिया ही थी मगर युवक के भीतर जो वैराग्य के भाव बचपन से थे उन्हें मानो यह अन्तिम चेतावनी मिली। सावधान युवक के अन्तर्मन ने सोचा कि अब नहीं जागे तो फिर कभी जागना नहीं हो सकेगा। बस वह भाग खड़ा हुआ और कालान्तर में बहुत बड़े सन्त के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यह है व्यावहारिकता। यदि हम शराब से, कुसंगति से, काम से, क्रोध से, लोभ से, मोह से, ठीक इसी प्रकार भाग खड़े होते हैं तब तो मानो कि हम ने कुछ पढ़ा है मगर यदि नहीं भाग पाते हैं तो समझना चाहिए कि हमने विद्या का रहस्य नहीं जाना। वैसी रही विद्या तो हमें गहरे अन्धकार में ले जाकर ही पटकेगी। घर में आग लग जाए तो व्यक्ति कितनी तेजी से बाहर निकलता है। वह सोचने नहीं लगता कि अभी थोड़ा ठहर के चलूंगा। कुछ पल और ठहर लूँ। वह जानता है कि थोड़ी देर का रुकना भी मेरी मृत्यु का कारण बन सकता है। किसी स्थान पर लोग बैठे हों और अचानक सांप आ जाये तो कितनी फुर्ती से लोग उठ भाग खड़े होते हैं। जिसको जिधर मार्ग मिलता है तुरन्त अपने बचाव के लिए भाग खड़ा होता है। क्या इतनी ही फुर्ती से हम काम से, क्रोध और अन्य विषय-वासनाओं से पीछा छुड़ाने के लिए भाग खड़े होते हैं? यदि नहीं तो हमारे जानने या न जानने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। ज्ञानी और अज्ञानी में फिर अन्तर ही क्या रह जाता है। बल्कि वेद मन्त्र का कहना है कि अज्ञानी तो फिर भी कभी न कभी सुधर जायेगा मगर ज्ञान के अहंकार में डूबे व्यक्ति का सुधरना अधिक कठिन है। बड़ा ही आश्चर्य है कि दुनिया में पढ़े लिखे ज्ञानी तो बहुत हैं जो संसार की निःसारता के राग अलापते मिलेंगे। धन दौलत को कोसते हुए दिखाई देंगे। काम, क्रोध और लोभ आदि की बड़ी बड़ी व्याख्या करते मिलेंगे मगर जो इन सब से ऊपर उठकर परमात्मा को समर्पित हो पाते हैं, ऐसे बहुत कम हैं क्योंकि विद्या या ज्ञान उनके व्यवहार में नहीं आ पाया है। महर्षि दयानन्द जी ने ऐसी रटन्त भक्ति को बिल्कुल भी श्रेयस्कर नहीं कहा है। उन्होंने धर्म को, ज्ञान को जीवन के साथ अर्थात् व्यवहार के साथ जोड़ने पर सब से अधिक बल दिया है।

हम योग ध्यान की बातें पढ़ते रहें, सुनते रहें मगर उन पर आचरण न करें तो ऐसे पढ़ने और सुनने का कोई लाभ ही नहीं है। वेद के उपदेश, उपनिषत् के उपदेश हों या गीता के उपदेश हों यदि व्यवहार में नहीं तो कुछ भी नहीं। हम प्रतिदिन प्रातः उठकर इन्हें दोहराते रहें। हे अर्जुन! यह आत्मा अजर है, अमर है..... इस शरीर को त्यागना तो ऐसा ही है जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्र को त्याग कर नये वस्त्र धारण कर लेता है.....। हे अर्जुन! तू सब झंझटों को छोड़कर योगी बन जा....। सत् रज, तम से ऊपर उठकर जो व्यक्ति अनन्यचित्त होकर, अन्य किसी वस्तु में चित्त को न लगाकर, निरन्तर प्रभु का ही स्मरण करता है, ऐसे नित्ययुक्त योगी के लिए परमात्मा सुलभ है.....। यह सब हम कितनी ही बार क्यों न दोहराते रहें मगर परमात्मा का मिलना असंभव है जब तक हम इस सब को व्यवहार में नहीं लायेंगे। गीता का पढ़ना तभी सार्थक है जब हम व्यावहारिक रूप में योगी बनकर उसे पा लेते हैं, जिसकी बात गीता कह रही है। ऐसा ही उपनिषदादि का ज्ञान भी है। विद्या का वास्तविक अर्थ है स्वयं को रूपान्तरित कर लेना। पढ़े हुए को, सुने हुए को आत्मसात् कर लेना। यदि ऐसा हम नहीं कर पाते तो चाहे कितनी ही बार गीता को दोहरा लें, वेद और उपनिषदादि का पाठ कर लें मगर कोई लाभ नहीं होगा। व्यवहार में न लाई गई विद्या तो केवल अहंकार को ही पुष्ट करने वाली होती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होता है—'**अभयम्**'। जब देवताओं ने ओ३म् अक्षर में प्रवेश किया और ऊंचे स्वर से ओंकार का उच्चारण करने लगे, तब वे अमृत और अभय हो गए। '**तत् प्रविश्य देवाः अमृताः अभयाः अभवन्।**' इस समस्त विवरण का यही आशय जान पड़ता है कि मात्र छन्दों के पाठ से अमर पद की उपलब्धि सम्भव नहीं, उसके लिए पहले छन्दों में फिर छन्दों के पाठ से ऊपर उठ कर ओंकार के स्वर में जब डूब गए तब उन्हें अमृत-अभय पद की प्राप्ति हुई।

व्यवहार की दृष्टि से धर्म और कर्म शास्त्र द्वारा 'विहित' या 'अविहित' दोनों प्रकार के हैं। 'विहित' वे जिनका विधान किया गया हो, और 'अविहित' वे जिनका निषेध न किया गया हो। ऊपर दिये प्रमाणों से वेद-मन्त्रों में ओंकार-प्रयोग शास्त्र-विहित सिद्ध होता है। साथ ही, किसी शास्त्र द्वारा अथवा स्वयं महर्षि द्वारा इसका कहीं निषेध नहीं किया गया है। अतः 'विहित' 'अविहित' एवं 'व्यवहृत' सभी दृष्टियों से मन्त्रों में ओंकार-प्रयोग आवश्यक है।

यहां हम आचार्य दिनेशचन्द्र शास्त्री जी के लेख से उनकी प्रासंगिक सम्मति सहमति उद्धृत करते हैं—

वेदो वृक्षस्तस्य मूलं प्रणवः॥ अ० १०। ३०॥

वेद वृक्ष है और उसका मूल प्रणव है। 'प्रणवात्मको वेदः। वेद की आत्मा प्रणव है।

प्रणवो ब्रह्म प्रणवं ध्यायेत्। प्रणव ही ब्रह्म है, प्रणव का ही ध्यान करे। '**तज्जपस्तदर्थभावनम्।**' उसी का मनोयोग से जाप करे।

प्रणवाद्यास्तथा वेदाः प्रणवे पर्यवस्थितिः।
प्रणवो व्याहृतयश्चैव नित्यं ब्रह्म सनातनम्॥

बौधायन धर्मसूत्र

वेद प्रणव ओ३म् से ही आरम्भ होते हैं। उसका अन्त भी प्रणव ओ३म् से होता है।

ओङ्कारः स्वर्गद्वारंतस्माद् ब्रह्माध्येषमाण एतदादि प्रतिपद्येत्॥

आपस्तम्ब धर्मसूत्र

ओ३म् स्वर्ग का द्वार है। अतः स्वर्ग के साधन वेद का अध्ययन पारायण एवं वेदपाठ करने वाला ओंकार उच्चारण पूर्वक ही वेदपाठ का आरम्भ करे।

विचार करिये वेद के मन्त्र ही पवित्र और ईश्वर के गुण-वर्णन करने वाले हैं। फिर भी वे मन्त्र ओम् शब्द उच्चारण के बिना प्रयोग में नहीं आते। इससे बढ़कर ओम् शब्द की पवित्रता और श्रेष्ठता क्या होगी। ओम् ब्रह्म परम पवित्र है, उसका वेद ज्ञान भी परम पवित्र है, कल्याणकारी है। अतः यज्ञकर्म में क्यों न ओम् शब्द का उच्चारण मन्त्र के आदि और अन्त में अवश्य करें।

अतः सभी मन्त्रों के आदि और अन्त में ओंकार का उच्चारण करना परमावश्यक ही है। श्रीकृष्ण जी गीता में कहते हैं— *तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रिया।*
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥

—गीता १७। २४॥

इसी कारण ओ३म् पद का उच्चारण करके ब्रह्मवेत्ता पुरुषों की विधिपूर्वक यज्ञ, दान, तपस्या आदि सकल क्रियाएं होती हैं। अर्थात् ओ३म् के उच्चारण सहित ही ब्रह्मवादियों के सकल कर्म होते हैं। अन्त में ओ३म् के उच्चारण की विधि को लोग कुछ भूल से गये हैं। जो कोई जानते हैं वे ही करते करवाते हैं। यतः

नोम् कुर्याद्धोममन्त्राणां पृथगादिषु कुत्रचित्॥

कात्यायन छन्दोगपरिशिष्ट।

होम मन्त्रों के समूह में पृथक् आदि में कभी ओम् का प्रयोग न करें। अपितु प्रत्येक मन्त्र के आदि में ओम् का प्रयोग करे।

जीवन के आदि अन्त में ओ३म्

जातकर्म संस्कार में (जो बालक के उत्पन्न होने के बाद ही किया जाता है।) बालक की जिह्वा पर ओ३म् लिखने का विधान है। मनुष्य जब मरता है तब अन्त में भी उसे ओ३म् के उच्चारण की शिक्षा यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में 'ओ३म् क्रतो स्मर।' से दी गई है। अतएव मनुष्य जीवन के आदि और अन्त में भी ओ३म् का विधान है। तात्पर्य यह है कि मनुष्यों को अपना जीवन ओ३म् से प्रारम्भ करके ओम् के स्मरण के साथ ही समाप्त करना चाहिए। तद्वत् वेदपाठ में भी यज्ञ में मन्त्र के आदि अन्त में भी ओंकार का प्रयोग आवश्यक रूप से करना ही चाहिए।

महर्षि ने तो जातकर्म संस्कारविधि में लिखा है कि बालक के दायें व बायें कर्ण में नौ वार—'**ओ३म् मेधां ते देवः०।**' इत्यादि मन्त्रों को ओंकार सहित बालक के कर्ण में मुख लगाकर बोले। ओम् व वेद ही हम सब की आत्मा का जीवन व प्राणशक्ति है।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा है—'**क्व तर्हि यजमानस्य लोकः इति। स यस्तु न विद्यात् कथं कुर्यात् अथ विद्वान्**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या……। सन्देश तो क्या मिलना मगर मुझे तो लगता है मैं गलत जगह पर आ गया हूँ। आपको तो इतना सा भी ज्ञान नहीं कि इस छानने से कभी नहाने के लिए कूएं से पानी नहीं निकल सकता है। और जब तक आपका स्नान नहीं होगा मेरी शंकाओं का समाधान नहीं होगा, इसलिए मैं चलता हूँ किसी और के पास। रुको मेरे प्यारे युवक तुम्हें कहीं कुछ नहीं मिल सकेगा। तुमने कहा है कि इस छानने से नहाने के योग्य पानी नहीं निकल सकता, क्या तुम इसका कारण बता सकोगे कि ऐसा क्यों है? महात्मा ने उस युवक से पूछा। युवक ने तुरन्त उत्तर दिया महाराज इतना तो साधारण से साधारण व्यक्ति भी जानता है कि छानने में पानी नहीं भरा जा सकता। वही तो मैं पूछ रहा हूँ कि क्यों नहीं भर सकता—महात्मा जी ने पुन: कहा। इसलिए कि इसके पैन्दा नहीं है और छिद्रों से पानी नीचे रिस जाता है। बस मेरे प्यारे युवक यही बात मैं तुम्हें समझाना चाहता था। कभी तुमने सोचा है कि सौ महात्माओं के पास जाकर भी तुम खाली के खाली क्यों लौट आये हो? तुम्हारे पास भी श्रद्धा का पैन्दा नहीं है इसलिए अच्छे से अच्छा ज्ञान भी छिद्रों से नि:सृत हो जाता है। यदि तुम अपने भीतर श्रद्धा का पैन्दा लगा लो तो तुम्हारी शंकाओं का समाधान किसी एक सन्त के पास जाकर ही हो जायेगा मगर यदि ऐसा नहीं किया तो सौ क्या हजार और लाख महात्मा भी तुम्हारी शकाएँ दूर नहीं कर सकेंगे। युवक के भीतर कुछ विवेक जागृत हुआ। उसे लगा कि यह महात्मा कोई साधारण नहीं है। इन्होंने बहुत बड़ी बात कह डाली है। युवक ने बड़े विनम्र होकर कहा कि महात्मन् यह बात तो आप कुटिया में भी कह सकते थे, बेटा गहराई से यदि कोई बात समझनी या समझानी हो तो कुछ न कुछ कौतुक भी करना ही पड़ता है। वहीं कुटिया में ही यह बात कह देता तो इतनी गहराई से तुम्हारे मस्तिष्क में शायद ही यह बात आती? बल्कि तुम खाली ही चले जाते और किसी और जगह जाकर कहते कि अब तक मैं एक सौ एक महात्माओं के पास जा चुका हूँ मगर कोई मेरी शंका का समाधान नहीं कर सका है। युवक के बात समझ आ गई और कुटिया में आकर महात्मा जी ने उसकी शंकाओं का समाधान किया।

किसी भी आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए श्रद्धा, अंहकारशून्यता और समर्पण की बड़ी आवश्यकता है। नचिकेता की तरह विनम्र और आस्थावान् होकर जानने की आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द जी जैसे अपने गुरु विरजानन्द जी के पास गए थे, उनमें कितना समर्पण और दृढ़ आस्था थी। गुरु ने कहा अब तक जो पढ़ा है उन ग्रन्थों को यमुना में फैंक आओ। कितनी बड़ी चुनौती दयानन्द के सामने थी मगर गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करके अनार्ष ग्रन्थों का त्याग करके आर्ष का ज्ञान प्राप्त किया। महर्षि नारद जी सनत् कुमार के पास बड़ी श्रद्धा के साथ जाते हैं, मैंने लगभग सभी वेद और शास्त्र आदि पढ़े हैं मगर मैं तृप्त नहीं हुआ। मैंने ब्रह्म का भी केवल नाम सुना है, उसे जाना नहीं है। महाराज मैं मन्त्रवित् तो हूँ मगर आत्मवित् होने के लिए आपकी शरण में आया हूँ। जैसे महाराजा जनक ज्ञाता थे मान्यवर याज्ञवल्क्य जी के पास जैसी श्रद्धा और आस्था की जरूरत है फिर आत्मज्ञान की उपलब्धि हो सकती है। वास्तविक विद्या व्यक्ति को अंहकारी नहीं बल्कि विनम्र बनाती है—**सा विद्या या विमुक्तये।** अविद्या की उपासना यदि अन्धकार में ले जाती है तो विद्या में रत रहना, उसके अहंकार में ही डूबे रहना तथा व्यवहार में न लाना यह भी अन्धकार में ही ले जाता है। व्यक्ति जिसकी भी उपासना करता है वह वैसा ही बन जाता है। इसलिए काम की, क्रोध की, लोभ की, धन की, पद की, रिश्ते नाते की जिसकी भी उपासना करेगा वह उसी का होकर रह जायेगा। इसलिए अविद्या का उपासक भौतिकता में ही रमा रहता है। जो वस्तुएं हमारे साथ नहीं जानी हैं उन्हीं के लिए तमाम जिन्दगी अर्पित कर देता है। जो वास्तविक है, सत्य है, शाश्वत है, उसकी ओर जरा सा देख भी नहीं पाता है। छोटे-छोटे प्रलोभनों में आकर इस जीवन का विनाश कर लेता है मगर कोई-कोई होता है दयानन्द जैसा, बुद्ध जैसा, कृष्ण जैसा, नचिकेता जैसा, जिसके लिए ये प्रलोभन, प्रलोभन नहीं रहते हैं। वे न अविद्या में भटकते हैं और न ही विद्या में रत रहते हैं इसलिए वे अमृत को प्राप्त कर लेते हैं। नचिकेता को जब यम ऋषि दुनिया भर के प्रलोभन देते हैं और देखते हैं कि यह युवक तो किसी भी प्रलोभन से डिगने वाला नहीं तो बड़े प्रसन्न होते हैं और बड़े रहस्य की बात कहते हैं—

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याऽभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त॥
अविद्यायामन्तरे वर्तमाना: स्वयं धीरा: पण्डितम्मयमाना:।
दन्द्रम्यमाणा: परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा:॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविद्या और विद्या के ये दोनों मार्ग एक दूसरे से विपरीत विरुद्धार्थ सूचक और दूर हैं। तुझ नचिकेता को विद्या का चाहने वाला मानता हूँ क्योंकि तुझको बहुत सी कामनाएं प्रलोभित नहीं करती हैं। अविद्या में पड़े हुए अपने को धीर और विद्वान् मानते हुए, उलटे रास्ते पर चलते हुए, ऐसे घूमते हैं मानो अन्धों को अन्धा ले जा रहा हो।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

ऐसे अविद्या अर्थात् ऐसे धन दौलत के मोह में पड़े हुए मूढ़, प्रमादपूर्ण विवेकरहित पुरुष को परलोक की बात पसन्द नहीं आती। यही लोक है, परलोक नहीं ऐसा मानने वाला बार-बार मृत्यु के वश में आता रहता है।

इसलिए ऐसे अज्ञान में व्यक्ति को नहीं पड़ना चाहिए मगर शास्त्र ज्ञान का कोरा अभिमान भी नहीं होना चाहिए। शास्त्र ज्ञान का जो परम लक्ष्य अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति है, वह यदि प्राप्त नहीं किया तो वेद आदि शास्त्रों का ज्ञान भी किसी काम का नहीं। इसलिए वेद में लिखा है--

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते॥

(ऋ० १।१६४।३९)

ऋग्वेदादि वेदों में वर्णित कभी नाश न होने वाले, सब से बड़े आकाश के समान व्यापक जिस ब्रह्म में सब दिव्य आत्मा, विद्वान्, शक्तियां व पदार्थ स्थित हैं। उस ब्रह्म को जो पुरुष नहीं जानता वह वेद से क्या लाभ उठा सकता है? अर्थात् उसके लिए वेद मानो बेकार ही वस्तु हैं। परन्तु जो लोग उस ब्रह्म को भली भांति जान जाते हैं ऐसे वे लोग अच्छी स्थिति में रहते हैं। महर्षि दयानन्द जी ने वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक कहा है मगर उनकी दृष्टि में भी वेद का मुख्य विषय ईश्वर ही है। उसे नहीं जाना तो क्या जाना, क्योंकि मनुष्य शरीर मिला ही उसके साक्षात्कार के लिए है। केवल ज्ञान को रट लेने से कुछ लाभ नहीं। जिस प्रकार अनेक व्यंजन बनाने वाली कड़छी उन व्यंजनों के स्वाद को नहीं जान पाती वैसे ही केवल ईश्वर का वर्णन आदि पढ़ लेने से कुछ आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अन्धेरी कोठरी में कोई यदि प्रकाश के गीत भर गाता रहे या रटता रहे कि प्रकाश ऐसा होता है···· प्रकाश ऐसा होता है आदि-आदि तो क्या अन्धेरा उससे दूर हो जायेगा। नहीं उसके लिए तो दीपक जलाना पड़ेगा। यदि दीपक नहीं जलाया तो राग अलापने से कुछ नहीं मिल सकता है। इसलिए अविद्या से मोह न करें मगर विद्या का मोह करना भी उतना ही खतरनाक है। विद्या अविद्या से परे परब्रह्म परमात्मा है उसे जानना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

(क्रमशः)

(पृष्ठ १५ का शेष)

अच्छा आश्रम रह गया है। वे उपदेश को धन संग्रह का अच्छा साधन मानते हैं।

इसलिए मेरे भाइयो! सोचो कि आप का दान निष्फल तो नहीं हो रहा है? आपके पसीने की कमाई सिर्फ हलुआ, पूड़ी और साज-बाज पर ही तो नहीं खर्च होती है? क्या आप साज-बाज, हलुआ-पूड़ी के लिए दान देकर पुण्य की आशा कर सकते हैं? सच तो यह है कि हर व्यक्ति दान वेद-प्रचार के लिए ही देता है। इसलिए अब किसी आर्य-समाज को दान दें तो इसी शर्त पर दें कि आप के दान का आधा या चौथाई भाग 'सत्यार्थप्रकाश' वितरण पर खर्च होगा। जो आर्यसमाज ऐसा नहीं कर सकती उस आर्यसमाज को बिल्कुल दान न दें। आप अपने रुपये से 'सत्यार्थप्रकाश' बांटें। कुछ लोग सोचेंगे कि इस तरह यश नहीं होगा, परन्तु ऐसा नहीं है। आप अपना पता पुस्तक पर लिख दें। इस तरह आपका यश भी फैलेगा और ऋषि का सच्चे अर्थों में कार्य होगा। आप स्वयम् आर्यसमाज के प्रचारक बन जायेंगे।

हम सभी लोग आर्यसमाज की दुर्गति देख रहे हैं और आर्य नेताओं को भी देख रहे हैं। देश की तेरह राजनीतिक पार्टियां मिलकर देश चला सकती हैं, परन्तु आर्यसमाज के भिन्न-भिन्न घटकों के नेता मिलकर आर्यसमाज नहीं चला सकते। जबकि ये लोग धर्मनेता हैं और वे राजनेता हैं, तो क्या आर्यसमाज के प्रचार-उत्थान की अपेक्षा इनसे कर सकते हैं? इसलिए मेरे भाइयो! अब आर्यसमाज का प्रचार हम लोग स्वयं करें। दान बहुत समझ-बूझकर दें। यदि आपके दान का दुरुपयोग होता है, तो आप पाप के भागी भी बनेंगे। इसलिए इस पर गम्भीरता से विचार करें और इधर-उधर दान न देकर 'सत्यार्थप्रकाश' बांटें।

ओमानन्द योगाश्रम
ग्रा० देवधर्म, पो० गांधी नगर, जि० इन्दौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्वैतवादियों का मत निराधार तथा मिथ्या है

—उमा शंकर आर्य, 'प्रधानाचार्य' महर्षि दयानन्द सरस्वती बाल मंदिर, तेघड़ा, बेगूसराय (बिहार)

अद्वैतवादियों का मत है—"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।"

ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है। जगत् स्वप्नवत्, रज्जु में सर्प, सीप में चाँदी, मृगतृष्णिका में जल, गन्धर्व नगर इन्द्रजालवत् झूठा है, एक ब्रह्म ही सच्चा है।

जो पदार्थ जैसा है, उसका वैसा ही जानना ज्ञान या विद्या है। इसके विपरीत जो वस्तु जैसी नहीं है उसका वैसा दीखना अविद्या है। अनित्य को नित्य अथवा नित्य को अनित्य और इसी प्रकार अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख तथा अनात्म देह, जगत् आदि को आत्मा, ब्रह्म समझना अविद्या का स्वरूप है। रज्जु को सर्प समझना और तुलसीदास की तरह सर्प को रज्जु समझना दोनों ही भ्रान्तिरूप हैं। इसी प्रकार जगत् का ब्रह्म मानना वास्तविकता से उतना ही दूर है जितना ब्रह्म को जगत् मानना। दोनों ही अविद्या, अज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान का परिणाम हैं। इसीलिए दोनों का ही प्रत्याख्यान अपेक्षित है।

किसी भी वस्तु का सत्य होना उसके साधक प्रमाणों के होने और बाधक प्रमाणों के न होने पर निर्भर करता है। इस रूप में जगत् एक यथार्थ सत्ता है। उसे मिथ्या कहना असंगत है। त्रिगुणात्मका प्रकृति के मूल उपादान तत्त्वों से जीवात्मा के भोग तथा अपवर्ग की सिद्धि के लिए जगत् का प्रादुर्भाव हुआ है। चेतन आत्म तत्त्व तथा प्रकृति दोनों सत्य हैं, नित्य हैं। तब उन दोनों से बना संसार कैसे मिथ्या हो सकता है? मूल उपादान से उत्पन्न होने के कारण जगत् की वास्तविकता का अपलाप नहीं किया जा सकता। जब उपादान सत्य है तो उसका विकार नश्वर भले ही हो, उसे मिथ्या या कल्पित नहीं कहा जा सकता।

भ्रम की प्रतीति किसी वस्तु की वास्तविकता का अपलाप नहीं कर सकती। स्वप्न तथा भ्रान्ति-स्थलों में प्रतीति का कारण आरोपित वस्तु की अवास्तविकता नहीं है। मृगतृष्णिका में बालू में जल की प्रतीति, रज्जु में सर्प का भ्रम अथवा सीप में चांदी की भ्रान्ति होने से जल, सर्प तथा चांदी को अभाव रूप नहीं माना जा सकता। जब तक वास्तविक जल, सर्प तथा चांदी का अस्तित्व न हो, तब तक उनकी कहीं भी प्रतीति होना असंभव है। ऐसे स्थलों में भ्रान्ति केवल इतना है कि हम जल आदि की कल्पना वहाँ कर बैठते हैं, जहाँ वे उस समय नहीं हैं, किन्तु इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि जल आदि अभावरूप है अथवा उनका सर्वत्र अभाव है।

अभावमात्र तो सर्वत्र समान है फिर क्या कारण है कि रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है बैल की नहीं, बालू में जल का भ्रम होता है पीतल का नहीं? वस्तुतः रज्जु और सर्प, बालू और जल सभी का अस्तित्व है और परस्पर सादृश्य के कारण एक में दूसरे की प्रतीति होती है। इस प्रकार यदि दुर्जनतोषन्याय से यह मान लिया जाय कि हमें ब्रह्म में जगत् की प्रतीति हो रही है तो भी भ्रान्ति स्थल के अतिरिक्त कहीं न कहीं जगत् की सत्ता को स्वीकार करना पड़ेगा। ऐसा किये बिना आधेय जगत् को आधार ब्रह्म पर आरोपित करने की कल्पना नहीं की जा सकती। ब्रह्म में जगत्, भ्रान्ति का आधार चेतन को अचेतन समझना है। इसी प्रकार देहादि को आत्मा समझना अचेतन में चेतन की भ्रान्ति होना है। रज्जु को सर्प समझना और सर्प को रज्जु समझना दोनों भ्रान्ति रूप हैं। इसी प्रकार चेतन को अचेतन समझना और अचेतन को चेतन समझना दोनों भ्रान्ति रूप हैं। जबकि चेतन को चेतन और अचेतन को अचेतन समझना यथार्थ दर्शन है। अतः जगत् को मिथ्या अथवा उसकी सत्ता को केवल भ्रम स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अतः अद्वैतवादियों का मत निराधार तथा मिथ्या है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ईश्वर सर्वव्यापक नहीं है ?

—राजवीर शास्त्री

> पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि लेखक ब्रह्मकुमारी मत को मानता है और लेखक ने इन विचारों से ओतप्रोत होकर सामवेद का भाष्य किया है। ऐसे व्यक्ति के तर्कों पर विचार अवश्य करना चाहिए। अन्यथा वैदिक सिद्धान्तों की इतिश्री में लगे ऐसे व्यक्ति वैदिक धर्म को धराशायी करने में लगे रहेंगे। **(सम्पादक)**

श्री चन्द्रगुप्त योगमुनि (३२२-ए, गली-४, श्रीनगर कालोनी, दिल्ली) का एक लेख आया है, जो ईश्वर की सर्वव्यापकता के विरोध में लिखा गया है। वेद के अनुसार ईश्वर सर्वव्यापक सत्ता है। और लेख के अन्त में लिखा है—कृपया ईश्वर को साक्षी मानकर मानव कल्याण के लिए और वेदमाता की सत्य कामना हेतु आप इसे दयानन्दसन्देश में प्रकाशित अवश्य करें। द्रोणाचार्य आदि की भांति भयभीत न होवें। सत्य को उजागर करें। उनकी भावना के अनुसार यह लेख लिखा गया है। इसमें पूर्वपक्ष श्री चन्द्रगुप्त जी का है और उत्तर पक्ष हमारा है। जहाँ तक सत्य के उजागर करने की बात है तदर्थ निवेदन है हम तो ऋषि दयानन्द के अनुयायी हैं जिसने हम यही सिखाया है—**सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।**

पूर्वपक्ष : एकदेशी ईश्वर सृष्टि का रचयिता नहीं हो सकता, इस युक्ति का उत्तर देते हुए आप लिखते हैं—लोक लोकान्तरों का निर्माण प्रकृति (Nature) द्वारा होता है। इस कार्य में जीवात्मा में साधारण कारण और परमात्मा निमित्त कारण बना रहता है।

इस निर्माण कार्य में परमात्मा के बृहद् रूप की कल्पना अर्थात् सर्वव्यापी कहना निरर्थक है।

उत्तरपक्ष : इस सृष्टि में जितने भी लोक-लोकान्तर हैं वे संयोगजन्य हैं। उनका निर्माण प्रकृति से होता है किन्तु प्रकृति उनको बनाने वाली नहीं है। क्योंकि प्रकृति जड़ है, अतः अपने आप न बन सकती और न बिगड़ सकती है। किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास न रखने वाले ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानते उनको यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि कर्त्ता के बिना कोई भी क्रिया व क्रिया-जन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जो एक देश में रहता है वह सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा व धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता। क्योंकि अप्राप्त देश में कर्त्ता की क्रिया का होना सम्भव ही नहीं है। और उस सर्वव्यापकता में यह भी प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जब आत्मा किसी बुरे काम को करना चाहता है तो उसी क्षण आत्मा के अन्दर बुरे कार्य के प्रति भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में निर्भयता, निःशंकता, आनन्दोत्साह पैदा हो जाता है। यह प्रेरणा जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु ईश्वर की ओर से उठती है। और प्रकृति का स्वरूप यही बताया है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः अर्थात् सत्त्व, रजस, तथा तमस् तीनों वस्तुओं के संघात का नाम प्रकृति है। अतः प्रकृति कर्त्ता नहीं हो सकती

पूर्वपक्ष : कितना भी बड़ा शक्तिमान् हो, एकदेशी की शक्ति अनन्त नहीं हो सकती, इस तर्क का खण्डन करते हुए लेखक लिखता है—उदाहरण के लिए माना कि एक सभा में 60 बोल्टेज का बल्ब पर्याप्त नहीं होगा, परन्तु 1000 बोल्ट का लगाओगे तो भी सिद्धान्त तो वही होगा कि न तो उसकी एलिमेण्ट और न बल्ब ही सर्वव्यापी हैं केवल प्रकाश ही व्यापी है और बल्ब में जो विद्युत् करण्ट आ रहा है, वह तो पॉवर हाउस से आ रहा है। परमात्मा ही पॉवर हाउस है।

उत्तरपक्ष : लेखक का ईश्वर के एकदेशी होने में दिया तर्क निराधार है और तर्काभास ही है। बल्ब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा हो या बड़ा, उसमें जो पावर हाउस का सम्पर्क-सूत्र तार है, उसके बिना तो प्रकाश कदापि नहीं आ सकता। इसे पढ़कर पाठक मन ही मन हंसने लगेंगे कि लेखक बिना तार के ही विद्युत् बल्ब को कैसे जलाने की चेष्टा कर रहा है। ऐसे एकदेशी किसी पदार्थ की भी व्यापकता नहीं बना सकते। अतः लेखक का मन्तव्य मिथ्या है।

पूर्वपक्ष : ईश्वर की व्यापकता में दिये प्रमाणों के विषय में लेखक का विचार है कि—मैं पुराणों को प्रामाणिक नहीं मानता हूँ। जहाँ कण-कण की बात है वहाँ इस बात से ही सिद्ध हो जाता है कि वह सर्वव्यापी नहीं है। क्या कण-कण में व्याप्त परमात्मा पूर्ण है या अपूर्ण है? यदि प्रत्येक कण-कण में परमात्मा पूर्ण रूप से है तो ब्रह्माण्ड में कितने परमात्मा हो जायेंगे।

उत्तरपक्ष : यथार्थ में लेखक को सूक्ष्म-स्थूल पदार्थों के भेद का भी ज्ञान नहीं है। अन्यथा ईश्वर के विषय में ऐसी मिथ्या बात कभी न लिखता। दर्शन विद्या को बिना समझे वेद-भाष्य करने का दुस्साहस करने से ही यह भ्रान्ति हुई है। जैसे कोई प्राथमिक कक्षा का छात्र एम०ए० के स्तर की पुस्तक की व्याख्या करने लगा हो। इसलिए ऐसे शास्त्रीय प्रज्ञा से विहीन के लिए नीतिकार ने ठीक कहा है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

अर्थात् जैसे अन्धे व्यक्ति को दर्पण (शीशा) क्या दिखा सकता है वैसे ही शास्त्रीय ज्ञान के बिना मति-विहीन को वेद भी क्या समझा सकेगा। अतः थोड़ा ध्यान देकर कहीं गुरुचरणों में बैठकर प्रथम अज्ञान को दूर करने का यत्न करना चाहिये।

विश्व के पांचभौतिक जगत् में ईश्वर के स्वरूप को समझाने के लिए वेद में कहा है—ओं खं ब्रह्म। (यजु० ४० अ०) अर्थात् ईश्वर आकाश की भांति व्यापक है। अतः इस वाक्य को समझने का प्रथम यत्न करो। आकाश सब से सूक्ष्म है और सूक्ष्म के गुण स्थूल में रहते हैं। यह विज्ञानसम्मत नियम है। पंच भूतों में यह नियम देखना चाहिये—आकाश से स्थूल वायु है, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी स्थूल है। अब इनके गु[ण] पर ध्यान दें—आकाश का गुण है शब्द और वायु [के] गुण हैं शब्द-स्पर्श क्योंकि आकाश का गुण अपने [से] स्थूल वायु में रह सकता है। इसी प्रकार अग्नि में ती[न] गुण हैं—शब्द, स्पर्श और रूप। और जल में शब्द, स्पर्श रूप और रस। और पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस औ[र] गन्ध। इस दार्शनिक ज्ञान के बिना वेद को समझ पा[ना] असम्भव है।

जब वेद में ईश्वर को आकाश के तुल्य बताय[ा] है, तो कोई व्यक्ति क्या आकाश के खण्ड खण्ड क[र] सकता है? आकाश में कोई व्यवधान डाल सकता है[?] फिर सर्वव्यापक ईश्वर में अनेक ईश्वरों की कल्पना तुम्हार[ी] मूर्खतापूर्ण ही कहनी चाहिये। आकाश आदि गुणों के विज्ञान को बिना जाने आकाश और वायु रूप रहित होने मे[ं] क्या रहस्य हो सकता है?

पूर्वपक्ष : लेखक ने ईश्वर की व्यापकता में दिये प्रमाणों को भी सत्य न मानते हुए लिखा है कि मैं पुराण[ों] को नहीं मानता हूँ। मेरा विश्वास वेद और गीता प[र] ही है।

उत्तरपक्ष : वेद में लिखा है—**स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु॥** (यजु० ३२।८) अर्थात् वह ईश्वर कपड़े में सूत की तरह ओत प्रोत-ताने बाने की भांति रमा हुआ है। लेखक वेद के प्रमाणों को माने तो सत्यासत्य का निर्णय हो जायेगा।

वैदिक प्रमाणों पर विचार

(१) ***विश्वतश्चक्षुः०(यजु० १७।१९)***

लेखक ने इस मन्त्र में ईश्वर की शक्तियाँ अथवा विभूतियों का वर्णन माना है। लेखक की यह धारणा मिथ्या है कि शक्तिमान् तो एकदेशी हो और शक्ति व्यापक हो। वह ईश्वर विश्वतश्चक्षुःचारों तरफ देख रहा है, इसका अभिप्राय है कि ईश्वर की नेत्रादि इन्द्रियां न होने पर भी वह सब जीवों के कर्मों को जानता है और उन्हें कर्मफल की व्यवस्था भी कर रहा है। जो जानता [न] होता तो कर्मफल की व्यवस्था कदापि नहीं कर सकता। शक्ति व शक्तिमान् के अभेद को समझकर निर्णय करें।

(२) ***तदेजति तन्नैजति (यजु० ४०।५)***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र का देवता आत्मा है, यह तो सत्य है। किन्तु वेदार्थ दीपक निरुक्त शास्त्र के अनुसार (आत्मा अततेः आप्तेर्वा) 'आत्मा' शब्द अत सातत्य गमने धातु से जीवात्मा के लिए आता है और 'आप्लृ व्याप्तौ' धातु से आत्मा शब्द ईश्वर के लिए आता है क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। मन्त्रोक्त समस्त वर्णन को देखकर ईश्वर परक ही अर्थ संगत होता है। जीवात्मा परक नहीं, क्योंकि जीवात्मा सब के निकट नहीं हो सकता।

पूर्वपक्ष : अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए लिखता है·····मेरा ईश्वर भयभीत होकर परम धाम में रहता है। ·····परन्तु लेखक का ईश्वर तो सूअर, सर्प आदि में भी रहता है। किसको श्रेष्ठ कहेंगे? पाठक ही निर्णय करें। लेखक का ईश्वर बहादुर है तो दुष्टों, अत्याचारियों को क्यों नहीं मारता? घर में रहकर भी वह ईश्वर घर की बालिका के साथ होते हुए बलात्कार को देखता रहता है, यह कैसी बहादुरी और सर्वव्यापकता है?

उत्तरपक्ष : ईश्वर सर्वत्र व्यापक, सर्वद्रष्टा, कर्मफल व्यवस्थापक है, और जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर किसी जीव को भी कर्म करते में रोकता नहीं। हाँ, अच्छे कर्म करने में उत्साह, निर्भयता अवश्य देता है और बुरे कर्म करते समय भय, शंका तथा लज्जा पैदा करता है। ईश्वर इस अपनी अटल शाश्वत व्यवस्था को कभी नहीं तोड़ता है। लेखक का यह आरोप मिथ्या है कि ईश्वर दुष्टों व अत्याचारियों को क्यों नहीं रोकता। लेखक ने ईश्वर को भी अपने सदृश धैर्यहीन और अपनी ही व्यवस्था को स्वयं ही पालन न करने वाला समझ रखा है। और अपने एकदेशी ईश्वर के विषय में भी कभी विचार शान्त बुद्धि से करने का प्रयास नहीं किया कि जो एकदेशी है, वह बिना जाने जीवों के कर्मफल की व्यवस्था कैसे करेगा? उसे लौकिक पुरुषों की भांति अपने गुप्तचर रखने होंगे और उनकी झूठी-सच्ची बातों पर ही विश्वास करके कार्य का निर्वाह करना पड़ेगा तथा फिर भी कर्मफल की व्यवस्था ठीक नहीं कर सकेगा। इसलिए एकदेशी ईश्वर को मानकर वह सृष्टि का रचयिता, धर्त्ता तथा कर्मफल का व्यवस्थापक कदापि नहीं हो सकता। फिर ऐसी लंगडी, लूली मान्यताओं से क्यों लोगों को धोखा दे रहे हो।

पूर्वपक्ष : 'ओ३म् खं ब्रह्म।' वाक्य का मिथ्या व असंगत अर्थ करते हुए लेखक लिखता है—यहाँ ओ३म् और ब्रह्म किस के वाची हैं, दो पद क्यों हैं, वास्तव में इसका अर्थ—ओ३म् (परमात्मा) आकाश सदृश निराकार और ब्रह्मलोक (ब्रह्म) का वासी है। एवम् (आकाश) निराकारी है और वायु आकारी है।

उत्तरपक्ष : एकदेशी ईश्वर की भांति लेखक ने वैदिक वाक्य का भी अनर्थ कर दिया है, इससे वेदार्थ दीपक निरुक्तशास्त्र से लेखक की अनभिज्ञता ही प्रकट होती है। निरुक्त शास्त्र के अनुसार वेद के समस्त पद यौगिक प्रक्रिया से अर्थ बोध कराते हैं। वेद के पद रूढ नहीं हैं, जो कि लौकिक प्रसिद्ध अर्थों का बोध कराते हैं। अतः ब्रह्म का अर्थ ब्रह्मलोक निवासी अर्थ करना, सर्वथा मिथ्या है। और ब्रह्मलोक है भी कहाँ, यह निराधार मिथ्या कल्पना ही तो है। ब्रह्म-परमेश्वर का नाम है, क्योंकि वह सब से बृहत् महान् है। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ ब्रह्म की सत्ता न हो। और वाक्यार्थ बोध में यदि कहीं दो पर्यायवाची पद हों भी, वहाँ विशेषण-विशेष्य होकर अर्थ बोधन कराते हैं, लेखक इस व्याकरण नियम से भी सर्वथा अनभिज्ञ है। और आकाश तो निराकार है, किन्तु वायु को आकारी कह कर लेखक ने आश्चर्य चकित ही कर दिया। क्या वे बता सकते हैं कि वायु का आकार कैसा है? और जिस वायु में रूप गुण ही नहीं है उसे आकारी कैसे कहा जा सकता है। क्या रूप रहित वायु को आकारी मानते हो तो रूप रहित आकाश भी आकारी क्यों नहीं है। अतः लेखक के द्वारा किया वाक्यार्थ सर्वथा भ्रान्त तथा मिथ्या है।

पूर्वपक्ष : व्याप् धातु का प्रयोग परमेश्वर के लिए ही होता है, इसका निषेध करते हुए लेखक लिखता है—'वेद में कोई शब्द व्याप् धातु का बना हुआ परमात्मा के लिए नहीं है। विश् धातु से ही अनेक क्रिया पद वेद में हैं। यथा साम० ११८५, सा० १०३७, सा० ८२१, सा० ८६१, सा० १२३० सर्वव्यापक शब्द वेद में नहीं है। यह शब्द पौराणिक है और स्वामी दयानन्द जी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वमत में अपनाया है। मुझे आप वेद में दिखा दीजिये।

उत्तरपक्ष : 'विष्लृ व्याप्तौ धातु से बना विष्णु शब्द वेद में अनेक बार आया है, जिसका अर्थ है सर्वत्र ईश्वर व्यापक है। जैसे—**विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।** (ऋ० २।१।१९) अर्थात् व्यापक ईश्वर की रचना को देखो। वेद में ईश्वर के लिए कहा है—**परिभूरेषि** (ऋ० १। ४। १४। १२) अर्थात् हे सर्वव्यापक ईश्वर! तुम सब को प्राप्त हो। **विभूरसि प्रवाहणः।** (यजु० ५।३१) हे व्यापकेश्वर आप विभु हो अर्थात् सर्वत्र वैभव ऐश्वर्य युक्त हो। **जातवेदसे सुनवाम सोमम्।** (ऋ० १७।७।२) हे जातवेदः हे उत्पन्न मात्र प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान **(जाते जाते विद्यत इति जातवेदः।)** हम आपके लिए सोम आदि पदार्थों को अर्पित करते हैं। **त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि** (ऋ० १।७।५।६) हे परमेश्वर। आप सब स्थानों पर व्याप्त हो रहे हो। **स पर्यगात्** (यजु० ४०।८) वह परमेश्वर आकाश की भांति सर्वत्र व्यापक हो रहा है। **परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्।** (यजु० ३२।११) वह ईश्वर समस्त जीवों में समस्त भूतों प्रकृति से लेकर पृथ्वी पर्यन्त समस्त संसार में व्याप्त होके परिपूर्ण हो रहा है।

इत्यादि वैदिक प्रमाणों से ईश्वर की व्यापकता स्पष्ट है। पुनरपि दुराग्रहवश रट लगाते रहना ईश्वर को वेद में कहीं भी व्यापक नहीं माना है, यह तो सामने खड़े हाथी को देखकर भी इन्कार करना है। और अपने को वेदभाष्यकार मानने वाले की मूर्खता भरी बात ही है और व्यापक शब्द के ही पौराणिक बताकर वेदार्थ से अनभिज्ञता प्रकट करना ही है।

पूर्वपक्ष : सभी योगी तपस्वी यही चाहते हैं कि हम देहरूपी नरक से हटकर स्वर्ग, मोक्ष प्राप्त करें। इसके उत्तर में लेखक लिखता है—आपका वह स्वर्ग आनन्दमय भण्डार कहाँ पर है? यदि कहीं पर है तो आत्मा रूप से ही वहाँ जाया जा सकता है। जब शरीर और इन्द्रियाँ ही नहीं होंगी तो वहाँ कोल्ड स्टोर में बैठी अकेली आत्मा का क्या लाभ और फिर यह मुक्ति सदा काल की नहीं होती है, केवल एक कल्प तक के लिए है फिर उसे पुनः इसी संसार में आना है। ज्ञान को पूर्णतया न समझने के कारण वे ऐसा व्यर्थ का परिश्रम करते रहते हैं।

उत्तरपक्ष : स्वर्ग की प्राप्ति अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए योगी या तपस्वी व्यर्थ श्रम करते हैं, इसका रहस्य समझने के लिए दो बातों का जानना अत्यन्तावश्यक है १-मोक्ष की अवधि कितनी है? २-मुक्ति का सुख जीव कैसे भोगता है? लेखक की अल्पज्ञता इसीलिए है कि उसने दोनों बातों को ही समझने में भूल की है। मुक्ति काल की अवधि बताते हुए वेदों के महान् विद्वान् तथा योगी महर्षि दयानन्द लिखते हैं—**ते ब्रह्मलोके परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे॥** (यह मुण्डक उपनिषद् का वचन है) वे मुक्त जीव मुक्ति को प्राप्त हो के ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति-सुख को छोड़ के संसार में आते हैं इसकी संख्या यह है कि तेतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का परान्त काल होता है।.........इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है

मुक्ति का सुख कैसे भोगा जाता है, इसको समझा हुए महर्षि लिखते हैं—मोक्ष में उसके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं, भौतिक संग नहीं रहता। जैसे—**शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति पश्यन् चक्षुर्भवति।** (शतपथ ब्राह्मण) अर्थात् मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलिक जीवात्मा के सा नहीं रहते, किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु......संकल्पमान श होता है। (स०प्र

इस स्पष्टीकरण के पश्चात् लेखक की बातों विचार करें कि उसे मुक्ति को लेश मात्र भी बो नहीं है। मुक्ति सदा काल की नहीं होती, वहाँ जीवा कोल्ड स्टोर में बैठी रहेगी, उसका क्या लाभ और मुक्ति के लिए परिश्रम व तपस्या करना व्यर्थ है। इत्यादि व्यर्थालाप ही हैं। जो कि विद्वत्समाज में प्रतिष्ठा के यो कभी नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुंचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनायें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

८५७ श्री कृष्णचन्द्र जी वर्मा, निकट इस्लाम टेलर पास जी.टी. रोड, पो. महोली जि० सीतापुर, यू०पी०
८५८ श्री हीरासिंह जी आर्य, अध्यापक, मु.पो. पूनसीका जि० रेवाड़ी (हरियाणा)
८५९ आचार्य दर्शन योग महाविद्यालय आर्य वन रोजड पो. सागरपुर जि० साबरकांठा (गुजरात)
८६० श्री धर्मेन्द्रकुमार आर्य C/o श्री रामचन्द्र जी B&O मु.पो. नांगल सिरोही जि० महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)
८६१ A.K. Arya, Near C.R.A. College, Sonepat (Har.)
८६२ श्री सत्यप्रकाशसिंह मु. रानीपुर वहेरा, पो. सिलमी जनपद फतेहपुरी (उ०प्र०)
८६३ श्री मन्त्री जी आर्यसमाज खैरेंटी वाया लाखन माजरा जनपद रोहतक (हरि०)
८६४ S.K. Chillar AEE/SSE 132, K.V. Sub Station H.S.E.B. Jhajjar Distt. Rohtak (Har.)
८६५ श्रीमती कविता शर्मा 101, यू०बी० जवाहर नगर, दिल्ली-7
८६६ श्री मन्त्री जी आर्यसमाज सैजपुर बोघा अहमदाबाद (गुजरात)
८६७ श्री बन्देश्वरार्य म.नं. 82 सी, सरकारी आवास, सी.पी.डब्ल्यू.डी. कम्पलैक्स, बसंत विहार, नई दिल्ली-57
८६८ श्री कृष्णकुमार C/o श्री जयसिंह सैनी RZ-723-A पूर्ण नगर गली नं. 1, नियर मारुति सर्विस स्टेशन, पालम, नई दिल्ली-45
८६९ श्रीमती उर्मिला देवी वर्मा C/o श्री ओमप्रकाश वर्मा मु. परसुडिह बाजार, पो. टाटा नगर, जमशेदपुर (बिहार) 831 002
८७० श्रीमती सद्गुणा आर्या सम्पर्क सरकारी कर्मचारी सोसायटी के पास मु.पो. गांधीधाम, जूनागढ़-362009 गुजरात
८७१ श्री उमेदसिंह जी शर्मा 657/7, मोहल्ला बाजरान, कैथल (हर०)
८७२ श्री कर्णसिंह जी आर्य, आर्य वैल्डिंग वर्क्स, काठमंडी, चक्कर रोड, जींद (हर०)
८७३ श्री लावन्य दिलीप वेलाणी, 7, अम्बिका भुवन, मानिकलाल इस्टेट, घाटकोपर, मुम्बई-86
८७४ श्री विजय आर्य S/o श्री मामचन्द जी, मु.पो. धवाना, जि० रेवाड़ी (हर०)
८७५ श्री खखरु शर्मा मु. अकबरपुर, काली स्थान पो. मथुरापुर, जि० समस्तीपुर, बिहार-840101
८७६ श्री मिस्त्री चन्द्रसिंह जी, देवीपुरा, बरौदा रोड, निकट देवी मन्दिर, गोहाना, जि० सोनीपत (हर०)

धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/96
आर/आर/नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/1/97

जनवरी १९९७

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९६
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/96

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।**

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आकर्षक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्यः लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान : **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाषः- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपा पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.................................
ग्राम.................................
डा०.................................
जिला.................................

मुद्रकः ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

दयानन्द-सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

फरवरी, १९९७

वर्ष २५ : अंक ४
दयानन्दाब्द : १७३
विक्रम संवत् : माघ, २०५३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९७

संस्थापक : स्व॰ दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु॰

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- स्वामी दयानन्द-महिमा २
- वेदोपदेश ३
- वैदिक विद्वानों से कतिपय प्रश्न ४
- बालक हकीकतराय ५
- हवन (यज्ञ) पर विदेशों में अनुसन्धान ६
- न्याय का उद्देश्य क्या है ? ७
- हिन्दु-समाज और आर्यसमाज १०
- गहरे अन्धकार से परे १३
- भारत माता का पश्चात्ताप! १६
- विद्वद्-विचारणीय बातों पर विचार १७
- प्रकृति एवं पुरुष का विवेक—अर्थात् सुख दुःख जीवात्मा के नैमित्तिक गुण हैं १९
- सुख-दुःख जीवात्मा के गुण हैं, प्रकृति के नहीं २२

LIBRARY 1/3/97
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ रुपये और सजिल्द सोलह सौ रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानन्द-महिमा

—नरेशकुमार मीणा, एम.ए., बी.एड, ग्रा०+पो० कोटसुवाँ, जि. कोटा, (राज०)

धन्य गुजरात प्रान्त, शिवपुर ग्राम धन्य,
धन्य पितु-मातु जाने ऐसो सुत जायो है।
रूढ़ियां पाखंड खंड-खंड करि डारे सब,
शोधि के अखंड ज्ञान वेद को बतायो है॥ १॥
धर्म धुरिन, गुन ज्ञान में प्रवीण,
हुए ब्रह्म-पद लीन यश चहुँ दिशि छायो है।
धन्य दयानन्द, तेरी महिमा अनंत, तूने,
ज्ञान-गरिमा की खान ऋषि पद पायो है॥ २॥

दयानन्द अभिनन्दन—

जो न होते दया के निधान दयानन्द आप,
कवन मिटाता मातु भारती के साल को।
वैदिक विचार के प्रचार से हटाता कौन,
कपट कुटिल कलिकाल की कुचाल को।
समुचे विकार ज्ञान-अग्नि में जार दिए,
तोड़ के विशाल मोह ममता के जाल को।
कहत नरेश करबद्ध हो विनति करूँ,
कोटिशः नमन मात भारती के लाल को।

दयानन्द दिग्विजय

जाके तप त्याग के समीर ने विभिन्न मत-
वाद की घटाएँ छिन्न-भिन्न कर डारी हैं।
वाके गुन ज्ञान के प्रचण्ड मार्तण्ड ने,
उदित होय जग में फैलाई उजियारी है॥ १॥
ढोंग व पाखण्ड, मिथ्यावाद की विशाल सैन्य,
वैदिक विचार के प्रचार सो पछारी है।
घूम-घूम वाद व विवाद की मचाई धूम,
छाई दयानन्द ऋषि कीर्ति तुम्हारी है॥ २॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—मानव मात्र का यह परम धर्म है कि वह जब तक जीवे, तब तक जिजीविषा-जीने की इच्छा करता रहे और वेदोक्त धर्मयुक्त कर्मों को करते हुए अधर्मयुक्त कर्मों से सदा बचता रहे।

दीर्घतमाः ऋषिः। आत्मा-परमात्मा देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ वैदिककर्मणः प्राधान्यमुच्यते॥

अब वैदिक कर्मों की प्रधानता का उपदेश किया जाता है।

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(यजु० ४०। २)

पदार्थः—(कुर्वन्) (एव) (इह) अस्मिन् संसारे (कर्माणि) धर्म्याणि वेदोक्तानि निष्कामकृत्यानि (जिजीविषेत्) जीवितुमिच्छेत् (शतम्) (समाः) संवत्सरान् (एवम्) अमुना प्रकारेण (त्वयि) (न) निषेधे (अन्यथा) (इतः) अस्मात् प्रकारात् (अस्ति) भवति (न) निषेधे (कर्म) अधर्म्यमवैदिकं मनोऽर्थसम्बन्धिकर्म (लिप्यते) (नरे) नयनकर्तरि।

सपदार्थान्वयः—मनुष्यः (इह) अस्मिन् संसारे (कर्माणि) धर्म्याणि वेदोक्तानि निष्कामकृत्यानि (कुर्वन्नेव) (शतं समाः) संवत्सरान् (जिजीविषेत्) जीवितुमिच्छेत्। (एवम्) अमुना प्रकारेण धर्म्ये कर्मणि प्रवर्त्तमाने (त्वयि) (नरे) नयनकर्त्तरि (न) (कर्म) अधर्म्यमवैदिकं मनोरथसम्बन्धिकर्म (लिप्यते) (इतः) अस्मात् प्रकाराद् (अन्यथा) नास्ति=न भवति लेपाभावः।

भाषार्थः—मनुष्य (इह) इस संसार में (कर्माणि) धर्मयुक्त, वेदोक्त निष्काम कर्मों को (कुर्वन्नेव) करता हुआ ही (शतम् समाः) सौ वर्ष (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे। (एवम्) इस प्रकार से धर्मयुक्त कर्म में लगे हुए (त्वयि) तुझ (नरे) व्यवहारों के नायक नर में (कर्म) अपने मनोरथ से किये अधर्मयुक्त अवैदिक कर्म का (न) (लिप्यते) लेप नहीं होता है। (इतः) इस वेदोक्त प्रकार से भिन्न (अन्यथा) अन्य प्रकार से कर्म के लेप का अभाव (न अस्ति) नहीं है।

भावार्थः—मनुष्या आलस्यं विहाय सर्वस्य द्रष्टारं न्यायाधीशं परमात्मानं कर्त्तुमर्हं तदाज्ञां च मत्वा शुभानि कर्माणि कुर्वन्तोऽशुभानि त्यजन्तो ब्रह्मचर्येण विद्या सुशिक्षे प्राप्योपस्थेन्द्रियनिग्रहेण वीर्यमुन्नीयाल्पमृत्युं घ्नन्तु, युक्ताहार-विहारेण च शतवार्षिकमायुः प्राप्नुवन्तु। यथा यथा मनुष्याः सुकर्मसु चेष्टन्ते, तथा तथैव पापकर्मतो बुद्धिर्निवर्तते। विद्याऽऽयुः सुशीलता च वर्धते।

भावार्थः—मनुष्य लोग आलस्य को छोड़ कर सब के द्रष्टा न्यायाधीश परमात्मा को और आचरण करने योग्य उसकी आज्ञा को मानकर शुभ कर्मों को करते हुए और अशुभ कर्मों को छोड़ते हुए, ब्रह्मचर्य के द्वारा विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त करके उपस्थ-इन्द्रिय के संयम से वीर्य को बढ़ाकर अल्पायु में मृत्यु को हटायें और युक्त आहार-विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त करें। जैसे जैसे मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों की ओर बढ़ते हैं, वैसे वैसे ही पाप कर्मों से उनकी बुद्धि हटने लगती है। जिसका फल यह होता है कि विद्या, आयु और सुशीलता आदि गुणों की वृद्धि होती है।

अन्यत्र व्याख्यातः—जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की इच्छा है, उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी न पावेगा। जैसे—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः (य० ४०/२) परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो। (स०प्र० सप्तम समु०)

''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक विद्वानों से कतिपय प्रश्न

१. ऋग्वेद—ऋषिक्रम से गठित क्यों किया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में पहला ऋषि मधुच्छन्दा है और पहला सूक्त अग्नि देवता के लिए दो वर्गों में विभक्त किया है। ऋग्वेद के ९ वें मण्डल में पहला ऋषि मधुच्छन्दा और देवता पवमान सोम है तो क्या पहले और ९ वें मण्डल के पहले सूक्तों का आपस में कुछ सम्बन्ध है?

२. ऋग्वेद के प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में क्या अग्नि विशेषों का परिचय नहीं दिया गया है? वैदिक शोध-संस्थान होशियारपुर द्वारा प्रकाशित वैदिक व्याकरण पदसूचियों को देखने से और उनसे ऋषि, देवता, छन्द और स्वरों को देखने से स्वत: प्रमाणित नहीं होते।

३. दैनिक यज्ञों में अग्नि, वायु और आदित्य के साथ प्राण, अपान और व्यान का स्वाहा क्रिया के साथ क्या स्थान है? स्पष्ट करें।

४. ओ३म् प्रत्येक वेदमन्त्र के प्रत्येक अक्षर में व्याप्त बतलाते हैं। मन्त्र में अकार के स्थूल रूप, अकार के सूक्ष्म रूप, मकार के कारण तत्त्वों की किन किन अक्षरों से पहचान होती है?

५. ऋ० १०/१३०/४ मन्त्रानुसार जहाँ गायत्री छन्द हो वहाँ विद्या की सहायक अग्नि हुआ करती है, अग्नि का प्रयोग किस तरह से किया जाता है?

६. यजुर्वेद के अनुसार जहाँ गायत्री छन्द हो वहाँ उसका ब्राह्मण वर्ण सिद्धान्त भी होता है। ब्राह्मण वर्ण के अनेक पदार्थों का विवरण मिलता हैं। इन सब पदार्थों का इन सब के साथ किस तरह से प्रयोग होता है? दिशा निर्देश करें।

७. गायत्री छन्द से ही वसन्त ऋतु और उसके महीनों के अनुसार स्वरों से वसन्त ऋतु में होने वाले पदार्थों का भी पता लगता है, इसका भी स्पष्टीकरण करें।

८. उपरोक्त मन्त्र में प्राण, महाप्राण, संवृत और विवृत कण्ठ के अक्षरों को मन्त्र के अर्थों के साथ कब और किस तरह से लगायेंगे? जानकारी देकर स्पष्ट करें।

(उपरोक्त प्रश्न श्री छैलबिहारीलाल जी गोयल, हाथरस ने पूछे हैं। प्रश्न गम्भीर तथा अनुसन्धान के योग्य हैं। परन्तु इनमें कतिपय प्रश्न अनावश्यक भी हैं। पुनरपि विद्वानों से जिस नम्रतापूर्ण भाषा का प्रयोग होना चाहिये, उसका अभाव है। जो खटकता है।—सम्पादक) ●●

योगदर्शन-भाष्यम्

(महर्षि व्यास-भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द व्याख्योपेत)

व्याख्याता : **आचार्य राजवीर शास्त्री**

- योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
- व्यास-भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
- महर्षि-दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
- दर्शनों की परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
- क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियाँ, अनेक चित्त-निर्माण, इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

विशेष जानकारी के लिए सूची-पत्र मँगायें।

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसन्त पंचमी की चिरस्मृति

बालक हकीकतराय

—श्री मुनि वसिष्ठ आर्य वानप्रस्थ

सियालकोट की घटना है, एक मौलवी मकतब में, कुछ बच्चों को अरबी फारसी पढ़ाया करता था। एक दिन मौलवी कुछ काम के लिए बाहर गया था। मकतब में मुसलमानी लड़कों ने हकीकतराय जो एक क्षत्रिय का बेटा था, उसे छेड़ना आरम्भ कर दिया। मुसलमान लड़कों ने सती शिरोमणि सीता जी को भद्दी गालियाँ काढ़ीं और उसके चरित्र पर कलंक लगाया। जब सभी मुसलमान लड़के सीता जी को गालियाँ काढ़ कर हकीकतराय को चिढ़ा कर उसके इर्द-गिर्द नाच रहे थे तो उससे सहा न गया। संयम का बांध टूट गया उसने भी मोहम्मद साहब की फातिमा को उसी शब्द-प्रयोग से भला बुरा कह दिया। यह बात होती ही थी कि मौलवी मकतब पहुँचा, सारे मुसलमान लड़कों ने मौलवी से शिकायत की कि काफिर हकीकत ने रसूलअल्लाह की साहबजादी फातिमा को गालियाँ दी हैं। मौलवी ने हकीकत से पूछा कि क्या तूने गालियाँ दी हैं? तो हिन्दु मासूम हकीकत लड़के ने कहा कि पहले इन सारे मुस्लिम बच्चों ने माता सीता पर कीचड़ उछाला, तो मैंने भी वही शब्द फातिमा के लिए कहे। यह सुनते ही मौलवी ने पहले तो हकीकत की लात मुक्कों से और लकड़ी से खूब पिटाई की। इतने पर भी काम पूरा न हुआ तो सब हाल लिखकर काजी के पास भेज दिया। काजी ने हुक्म दिया यदि हकीकतराय तोबाह करके इस्लाम कबूल कर ले तो छोड़ दिया जाय, नहीं तो उसकी गर्दन उड़ा दी जाये। मुकदमा तामील के लिए सियालकोट के हाकीम अमीर बेग के पास भेज दिया गया। हकीकतराय के पिता भागमल जी ने अमीर बेग से कहा—बच्चे आपस में लड़ते हैं, फिर एक हो जाते हैं, आपस में गाली-गलौच करते हैं, इतनी सी बात पर गर्दन छांटने का सख्त जुर्म नहीं होना चाहिये। अमीर बेग ने कहा ठीक तो है, परन्तु काजी ने अमीर बेग की एक भी नहीं मानी और उसे धमका कर कहा तुम्हें कुरान की बातों पर दखल देने का कोई अखत्यार नहीं है। अमीर बेग ने इस घोर अन्याय और अत्याचार को टालने के लिए, हकीकतराय का चालान लाहौर के सूबेदार के पास कर दिया। हकीकतराय के साथ उसके माता पिता, छोटी-सी अजान मासूम वधू और नगर के सैकड़ों आदमी लाहौर पहुँचे। जब काजियों ने किसी तरह भी न माना तो सूबेदार ने हकीकत का सिर काटने की आज्ञा दे दी। सुनते ही हकीकतराय की माँ चीख मारकर हकीकत से चिपट गयी और फूट-फूट कर रोने लगी। रोकर कहने लगी—बेटा तू मुसलमान हो जा, मेरी आँखों के सामने तो रहेगा। हकीकत ने साहस और वीरतापूर्ण जवाब दिया—माता जी! जिस मल-मूत्र वाले शरीर के लिए आप इतना रुदन कर रही हो और मुझ को मेरे पवित्र धर्म से पतित करना चाहती हो, वह शरीर एक न एक दिवस जरूर खाक होने वाला है। माता जी! अपने धर्म को छोड़ कर मैं तेरे गर्भ को और पिता जी के वंश को कलंकित करना नहीं चाहता, मैं क्षत्रिय वीर पुत्र हूँ। गीदड़ की मौत मरकर जाति को बदनाम करना नहीं चाहता। अब आप मेरे इस खाक से बने शरीर की चिन्ता छोड़ दें और परमात्मा में ध्यान लगायें।

जल्लाद (हत्यारा) हकीकत का हाथ पकड़ कर ले गया, मां तो बेहोश होकर गिर पड़ी। परन्तु हकीकत की गोरी, भोली भाली सूरत, विशाल निष्पाप नेत्र, हँसते हुए मुख को देख कर जल्लाद के हाथ से तलवार गिर पड़ी। हकीकत ने तलवार उठाकर जल्लाद के हाथ में दे दी और कहा—इस में तेरा कोई दोष नहीं, तू अपने मालिक के हुक्म की तामील कर। जल्लाद ने आँखें मीच कर तलवार के एक ही वार से हकीकत का सिर अलग कर दिया और उसको सदा के लिए अमर कर दिया।

ऐ भारत के आर्यवंशीय बच्चो, क्या तुम भी इसी प्रकार धर्म से प्यार करोगे, तब वह दिन दूर नहीं जब सारे संसार में पूर्व की भांति प्यारा आर्य धर्म ही राज करेगा।

('धर्म के पंच प्यारे' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवन (यज्ञ) पर विदेशों में अनुसन्धान

---मुकेश कुमार, एम. एस. सी.-I

(प्रस्तुत लेख बहुत ही सामयिक है। और एक गम्भीर समस्या के दूरीकरण का एकमात्र उपाय है। इस लेख में युवा मनीषी ने आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में यज्ञ का महत्त्व दिखाने का अच्छा प्रयास किया है। —सम्पादक)

पर्यावरण प्रदूषण आज विश्व की ज्वलन्त समस्या है। जल, थल एवं नभ सभी अवांछित अपशिष्टों से परिपूर्ण हो गये हैं। इस प्रदूषण के कारण मनुष्यों का स्वास्थ्य अनेक व्याधियों से युक्त हो गया है। पर्यावरण में प्रदूषकों के परिमाण में निरन्तर वृद्धि हो रही है। जल-स्रोतों के परीक्षण से पता चलता है कि विश्व की दस प्रतिशत नदियाँ बुरी तरह प्रदूषित हो चुकी हैं। वायुमण्डल में कार्बन डाई-आक्साइड का परिमाण अधिक हो गया है। पृथ्वी की उर्वरा शक्ति भी धीरे-धीरे कम हो रही है। यह प्रदूषण केवल मनुष्यों के लिए ही हानिकर नहीं है, अपितु इससे सम्पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र ही असन्तुलित हो गया है। प्रकृति के अनेक मनोहर दृश्य इसके प्रभाव से विकृत हो गये हैं। प्राचीन अट्टालिकाओं तथा पुरावशेषों की भव्यता भी क्षीण हो गयी है। प्रकृति की खाद्य शृंखला, नाइट्रोजन चक्र, कार्बन-डाई-आक्साइड चक्र सामान्य प्रक्रियाएँ भी अस्थिर हो गयी हैं। वृक्षों की लगातार कटाई वन्य प्राणियों के लिए घातक सिद्ध हुई है। हम अपने स्वार्थ में अन्धे होकर पर्यावरण संरक्षण के लिए कुछ भी नहीं सोचते हैं। आगे यदि यह सिलसिला जारी रहा तो एक दिन सम्पूर्ण जीवमण्डल ही पृथ्वी से रोग ग्रस्त होकर नष्ट हो जायेगा। आज वह समय आ गया है जब हम अपने अस्तित्व के लिए ही पर्यावरण की सुरक्षा करना अनिवार्य समझने लगे हैं।

प्राचीन भारत के ऋषियों ने अपनी प्रखर एवं पैनी दृष्टि से पर्यावरण परिष्करण के लिए एक अत्यन्त उत्तम प्रक्रिया का आविष्कार किया था। विभिन्न गुणों से युक्त सुगन्धित पदार्थों को अग्नि में जलाने से उत्पन्न धुआँ पर्यावरण की रक्षा करता है। यज्ञ की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए यजुर्वेद में कहा गया है—हे यज्ञ! तुम सुखदायक एवम् आश्रय लेने योग्य हो, तुम से रोग समूल विनष्ट होते हैं तथा उनके कीटाणु भी ध्वस्त होते हैं। तुम पृथ्वी के लिए त्वचा की तरह रक्षक हो। तुम हरीतिमा से पूर्ण वनस्पतियों से आच्छादित पर्वत के समान सुन्दर, सुहावने और हितकारी हो। इस सुविस्तृत आकाश में जल से भरे वर्षा वाले बादलों के समान हो।

केवल हमारे देश में ही नहीं वरन् विश्व के कई देशों में यज्ञ से सम्बन्धित काफी अनुसन्धान किये गये हैं। सोवियत रूस के वैज्ञानिक शिरोविच महोदय ने एक पुस्तक में लिखा है कि **हम लोगों ने गव्य (दूध, मक्खन, घी, गोमूत्र, गोबर इत्यादि) के संपरीक्षण से निष्कर्ष निकाला है कि गाय के दूध में आणविक विकिरण के प्रभाव से रक्षा करने की अद्भुत शक्ति है, गाय के गोबर से लिपा हुआ स्थान आणविक विकिरण के प्रभाव से पूर्ण सुरक्षित रहता है, गाय के घी को अग्नि में डालने से उससे उत्सर्जित धुआँ आणविक विकिरण के प्रभाव को काफी हद तक कम कर देता है। भारतीय भाषा में इस प्रक्रिया को यज्ञ कहा जाता है।** लकड़ी, कोयला एवं खनिज तेल को जलाने पर वातावरण में कार्बन मोनो आक्साइड एवं कार्बन डाइ-आक्साइड का उत्सर्जन होता है। जिससे ग्रीन हाउस इफेक्ट (G.H.E.) की वृद्धि होती है। यज्ञ में समिधाओं (विशिष्ट लकड़ियों) के प्रज्वलन से दहन की क्रिया मन्द गति में होती है। इस प्रक्रिया में वायुमण्डल से आक्सीजन अत्यल्प मात्रा में खर्च होती है तथा उत्सर्जित Co_2 की मात्रा भी अल्प ही होती है जो चतुर्दिक् फैली हरियाली के द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। इस प्रकार यज्ञ से Co_2 का चक्र सदैव स्थिर रहता है। एक दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यज्ञ से उत्सर्जित Co_2 सुगन्धित तेलों एवं कीटाणु नाशक पदार्थों की गैसों का मिश्रण होता

(शेष पृष्ठ १२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय का उद्देश्य क्या है?

—विवेकभूषण दर्शनाचार्य

भारतीय मनीषियों की परम्परा में महान् न्यायविद् दार्शनिक महर्षि गौतम जी न्याय का उद्देश्य केवल सांसारिक झगड़ों को सुलझाने तक ही सीमित नहीं मानते थे। इसके साथ-साथ वे न्याय का उद्देश्य मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) भी मानते थे। परन्तु क्या आज का न्याय इन दोनों उद्देश्यों में से किसी में भी सफल हो पा रहा है?

हमारे इस भारत देश में प्राचीन काल से ही बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, तपस्वी, विद्वान् आदि होते रहे हैं, जिन्होंने मानव-मात्र के कल्याण के लिए विद्या, धर्म और न्याय का सन्देश देकर मनुष्य जाति व अन्य प्राणियों पर भी महान् उपकार किया है। उसी श्रृंखला में न्याय के क्षेत्र में एक महान् ऋषि हुए हैं, जिनका नाम था—'महर्षि गौतम।' इन्होंने वेदादि शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करके वेदों के आधार पर 'न्याय विद्या' को मानव मात्र के लिए प्रस्तुत किया। इस विद्या को इन्होंने जिस शास्त्र में बाँधा, उसका नाम है—'न्यायदर्शन।' इन्होंने इस न्यायदर्शन में सूत्रों की रचना की। इन सूत्रों पर एक अन्य मनीषी ने संस्कृत भाषा में बड़ा उत्तम भाष्य लिखा। इस भाष्यकार का नाम है—'महर्षि वात्स्यायन।' इनका भाष्य न्यायदर्शन पर प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है तथा 'वात्स्यायन भाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। 'न्याय' की परिभाषा करते हुए महर्षि वात्स्यायन लिखते हैं—''प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः।'' (न्यायभाष्य, सूत्र १।१।१) अर्थात् प्रमाणों से किसी पदार्थ का परीक्षण करके सत्य की खोज करना न्याय है। परन्तु प्रश्न उपस्थित होता है कि इस न्याय का उद्देश्य क्या है? विचार करने पर इस प्रश्न का उत्तर हमें मिलता है कि—न्याय का उद्देश्य सुख की प्राप्ति करना है। **जो व्यक्ति समाज में श्रेष्ठ कर्म करता है, उसे पुरस्कार, और जो दुष्ट कर्म करता है, उसे दण्ड मिलना ही चाहिये, यही न्याय है।** इससे समाज में सुख-शान्ति और व्यवस्था बनी रहती है। समाज के लोग सेवा, परोपकार, दान आदि श्रेष्ठ कर्मों की ओर बढ़ते हैं। दण्ड के भय से चोरी, डकैती, हत्याओं आदि दुष्ट कर्मों से निवृत्त होते हैं। परिणाम स्वरूप समाज में अपराध कम होते हैं और लोग सुख से रहते हैं। परन्तु समाज में कितना ही सुख हो, तब भी मानव पूर्णतया दुःखों से छूट गया हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। महान् न्यायविद् महर्षि गौतम जी का कहना है कि जीवन में अनेक प्रकार के छोटे-बड़े दुःखों की प्राप्ति होते रहने के कारण संसार में जन्म लेना ही दुःखस्वरूप है।[१] अर्थात् संसार में शरीरधारी कोई भी व्यक्ति पूर्ण सुखी नहीं है, उसके जीवन में कोई न कोई दुःख आता ही रहता है। तो क्या यह जन्म-मरण और विविध दुःखों का क्रम अनन्त काल तक चलता ही रहेगा या इससे छूटने का कोई उपाय भी है? इस प्रश्न का उत्तर है कि—यदि मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से छूटना चाहता है तो उसे संसार के पदार्थों का ठीक-ठीक ज्ञान करना होगा। यही तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का उपाय है। और इस तत्त्वज्ञान के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कराना ही न्याय का उद्देश्य है। न्याय के इस उद्देश्य को (मोक्ष-प्राप्ति को) महर्षि गौतम जी ने अपने न्यायदर्शन में इन शब्दों में व्यक्त किया है—

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः॥ न्यायसूत्र-१।१।१

अर्थात् प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान, इन सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान (यथार्थज्ञान) से मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु संसार में ठीक प्रकार से अपना कर्तव्य निभाये बिना मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं हो सकती। इसीलिये इस सूत्र में जो सोलह पदार्थ बताये गये हैं, उनको ठीक-ठीक

१. विविधबाधनायोगाद् दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः॥ न्यायसूत्र ४।१।५५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ लेने और उसके अनुसार आचरण करने से हमारे दोनों प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं कि—हम संसार में भी सुखपूर्वक जी सकें और मोक्ष को भी प्राप्त कर सकें। आइये, इन सोलह पदार्थों को संक्षेप से समझने का प्रयत्न करें।

१. **प्रमाण**—जिस 'साधन' से किसी पदार्थ का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त किया जाये, उसे 'प्रमाण' कहते हैं। जैसे—आँख से देखकर जाना, कि सामने एक पुस्तक रखी है। यहाँ 'आँख' ज्ञान-प्राप्ति का साधन होने से 'प्रमाण' है।

२. **प्रमेय**—प्रमाण से जिस 'पदार्थ' का ज्ञान प्राप्त होता है, उस पदार्थ को 'प्रमेय' कहते हैं। ऊपर के उदाहरण में 'पुस्तक' प्रमेय है।

३. **संशय**—किसी पदार्थ के सम्बन्ध में निश्चयात्मक ज्ञान न होना 'संशय' कहलाता है। जैसे—ईश्वर है या नहीं। बाज़ार में वस्तु मिलेगी या नहीं। संशय के कारण व्यक्ति सत्य की खोज के लिए प्रयत्न करता है।

४. **प्रयोजन**—लक्ष्य या उद्देश्य को 'प्रयोजन' कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य या प्रयोजन है—"मैं सदा सुखी रहूँ, दुःखी कभी न होऊँ।"

५. **दृष्टान्त**—उदाहरण को 'दृष्टान्त' कहते हैं। किसी बात को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण दिया जाता है। जैसे—अमुक गायक की आवाज़ कोयल की तरह मीठी है। यहाँ 'कोयल' दृष्टान्त है।

६. **सिद्धान्त**—'अमुक वस्तु ऐसी है' इस प्रकार से किसी वस्तु के बारे में कहना 'सिद्धान्त' कहलाता है। जैसे—ईश्वर के बारे में कहना कि 'ईश्वर न्यायकारी है।' यह एक सिद्धान्त हुआ।

७. **अवयव**—परोक्ष पदार्थों की सिद्धि करने के लिए जो वाक्य-समूह प्रस्तुत किया जाता है, उसके पाँच भाग होते हैं। इन्हीं पाँच भागों को 'अवयव' कहा जाता है। वे पाँच अवयव ये हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन।

८. **तर्क**—किसी पदार्थ का सामान्य ज्ञान होने पर, किसी कारण को देख कर, उस पदार्थ के सत्य स्वरूप के सम्बन्ध में जो ऊहा की जाती है, उसे 'तर्क' कहते हैं। जैसे—आत्मा के सम्बन्ध में ऐसी ऊहा करना कि—आत्मा शरीर के साथ ही नष्ट नहीं हो सकता, वह तो नित्य होना चाहिये। क्योंकि आत्मा (व्यक्ति) के ऐसे बहुत से कर्म देखे जाते हैं, जिनका फल उसे इस जन्म में नहीं मिल पाता। यदि उन कर्मों का फल उसे अगले जन्म में न मिले, तो उसके कर्म व्यर्थ हो जाएँगे और यह अन्याय होगा।

९. **निर्णय**—किसी विषय में दो पक्ष बनाकर, प्रमाण और तर्क से विचार करके अन्त में सत्य का निश्चय करना, 'निर्णय' कहलाता है। जैसे—'ईश्वर है या नहीं।' इन दोनों पक्षों पर प्रमाण और तर्क से विचार करके अन्त में निश्चय होना कि 'ईश्वर है', यह निर्णय कहलायेगा।

१०. **वाद**—प्रमाण और तर्क आदि की सहायता से सत्य की खोज के लिए जो ईमानदारी से शुद्ध बातचीत की जाती है, उसे 'वाद' कहते हैं।

११. **जल्प**—उक्त वाद में जब छल, कपट आदि की मिलावट करके दूसरे पक्ष वाले व्यक्ति को जैसे-तैसे हराने का लक्ष्य बनाकर जो अशुद्ध बातचीत की जाती है, उसे 'जल्प' कहते हैं।

१२. **वितण्डा**—यह भी जल्प के समान ही अशुद्ध बातचीत है। जल्प में जल्पी व्यक्ति अपने पक्ष की स्थापना कर देता है—'कि मैं ऐसा मानता हूँ।' परन्तु वितण्डा में वितण्डावादी व्यक्ति अपने पक्ष की स्थापना भी नहीं करता और केवल दूसरे पक्ष वाले व्यक्ति का खण्डन ही करता जाता और उसे हराने का प्रयत्न करता है।

विशेष—जल्प और वितण्डा का प्रयोग दुष्ट प्रकृति (स्वभाव) वाले व्यक्ति किया करते हैं। उनकी दुष्टता को रोकने के लिए हमें यह ज्ञान तो होना ही चाहिए कि दूसरा व्यक्ति किस प्रकार से छल, कपट आदि का प्रयोग करके हमें हानि पहुँचाना चाहता है। इसलिए हानि से बचने के लिए जल्प, वितण्डा आदि का सत्य स्वरूप जानना आवश्यक है। यही बात आगे आने वाले हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये। इसीलिए सूत्रकार महर्षि गौतम जी ने इन सब का स्वरूप ठीक-ठीक जानने का निर्देश किया है।

१३. **हेत्वाभास**—जो वाक्य वास्तव में सत्य कारण तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो, परन्तु 'सत्य कारण बताया गया है', ऐसा आभास होता हो, उसे 'हेत्वाभास' कहते हैं। जैसे—'यह घोड़ा है, क्योंकि इसके सींग हैं।' यह कारण ठीक न होने से हेत्वाभास है।

१४. **छल**—शब्दों के अर्थ अनेक होते हैं। इस परिस्थिति में वक्ता ने जिस अर्थ में शब्दों का प्रयोग किया था, उसे बदलकर (भिन्न अर्थ की कल्पना करके) वक्ता का खण्डन करना 'छल' कहलाता है। जैसे किसी ने कहा—'मैंने सारी मिठाई खाली।' उसका तात्पर्य था कि—'रसोई में जितनी मिठाई रखी थी, वह सारी खा ली।' परन्तु छलवादी उसका खण्डन इस प्रकार से करता है—'पूरे देश में इतनी मिठाई है कि कोई भी एक व्यक्ति नहीं खा सकता, तुम कैसे कहते हो कि मैंने सारी मिठाई खा ली।'

१५. **जाति**—जब एक व्यक्ति अपना सत्य पक्ष प्रस्तुत कर चुका हो और दूसरा व्यक्ति समझ चुका हो कि मेरे पास इसका सही उत्तर अब कुछ नहीं है, तब वह चालाकी से किसी समानता या भिन्नता का सहारा लेकर सत्य पक्ष वाले को धोखा देने का जो प्रयास करता है, उसे 'जाति' कहते हैं। जैसे—सत्य पक्ष वाले का कथन—ध्वनि नष्ट हो जाती है। क्योंकि वह उत्पन्न होती है। जो-जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह-वह नष्ट होने वाली देखी जाती है, जैसे—कार। कार उत्पन्न होती है तथा नष्ट हो जाती है, ऐसे ही ध्वनि भी है। इसलिए उत्पन्न होने के कारण ध्वनि नष्ट हो जाती है। अब दूसरे पक्ष वाले का (जातिवादी का) कथन—आपने कार का उदाहरण दिया। कार तो दीखती है, परन्तु ध्वनि तो दिखती नहीं। इसलिए दिखने वाली कार नष्ट हो सकती है, न दिखने वाली ध्वनि क्यों नष्ट हो, क्योंकि वह तो कार से भिन्न विशेषता वाली है। यहाँ जातिवादी ने चालाकी से कार तथा ध्वनि की एक भिन्नता का सहारा लेकर अनुचित रूप से खण्डन किया है। इसने सत्यवादी के हेतु—उत्पन्न होने से का कोई उत्तर नहीं दिया, जो कि इसे देना चाहिये था।

१६. **निग्रहस्थान**—इसका अर्थ है पराजय की अवस्था। और यह तब होती है जब व्यक्ति कुछ उल्टा उत्तर देवे अथवा बिल्कुल चुप रहे। जैसे—किसी सत्य पक्ष वाले ने ऊपर के उदाहरण के अनुसार ध्वनि को नष्ट होने वाली सिद्ध कर दिया। तब दूसरे पक्ष वाला व्यक्ति बिल्कुल चुप रहे, कुछ भी उत्तर न दें, तो 'निग्रहस्थान' कहलायेगा। अथवा इस प्रकार से गलत उत्तर दे कि—'कौन कहता है कि ध्वनि सदा रहती है, मैं भी यही मानता हूँ कि ध्वनि नष्ट हो जाती है, जैसा आप मानते हैं।' यहाँ अपने पक्ष को ही छोड़ देने के कारण यह उत्तर गलत है, इसलिये 'निग्रहस्थान' कहलाता है।

इन सोलह पदार्थों के सत्य स्वरूप को जानकर हम मिथ्याज्ञान और बुरे कर्मों (पापों=अपराधों) से बच सकते हैं। समाज में प्रमाणों के आधार पर वास्तविक अपराधियों को खोज कर उन्हें दण्ड दे कर न्याय की स्थापना कर सकते हैं। **दण्ड कठोर ही होना चाहिये, जिसको देख या जानकर अन्य लोग भी अपराध न करें, जैसा कि अरब देशों में होता है। कठोर दण्ड के बिना अपराधों को रोकना असंभव है।** परन्तु यह कठोर दण्ड प्रमाणों के द्वारा वास्तविक अपराधी को खोज कर ही दिया जाना चाहिये, अन्यथा न्याय के स्थान पर अन्याय होगा। परिणामस्वरूप जनता में विद्रोह होगा और शासन-व्यवस्था ही भंग हो जायेगी। अतः दण्ड का प्रयोग बड़ी सावधानी से न्यायपूर्वक ही होना चाहिये। इन्हीं सोलह पदार्थों के यथार्थ ज्ञान से हम समाज में न्याय, सुख, समृद्धि की स्थापना करते हुए मोक्ष की प्राप्ति भी कर सकेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि—भारतीय मनीषियों की परम्परा में महान् न्यायविद् दार्शनिक महर्षि गौतम जी न्याय का उद्देश्य केवल सांसारिक झगड़ों को सुलझाने तक ही सीमित नहीं मानते थे। इसके साथ-साथ वे न्याय का उद्देश्य मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) भी मानते थे। परन्तु क्या आज का न्याय इन दोनों उद्देश्यों में से किसी में भी सफल हो पा रहा है?

आर्य वन रोजड,
पो० सागपुरा, जि० साबरकांठा, गुजरात

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दु-समाज और आर्यसमाज

—आचार्य, सुधांशु—इन्दौर

संसार में लगभग एक अरब बीस करोड़ ईसाई, एक अरब दस करोड़ मुसलमान हैं। हिन्दु सम्पूर्ण जगत् में साठ-सत्तर करोड़ हैं। सैकड़ों ईसाई देश हैं और पचास पचपन मुस्लिम देश हैं, बौद्धों के भी बहुत देश हैं, परन्तु इतने देशों के ईसाइयों में एक भी पादरी ऐसा नहीं जो अपने को ईसा मसीह का अवतार कहता हो, जब कि ईसाइयों की मान्यता है कि 'ईसा मसीह का पुनरागमन होगा'। कोई भी मुल्ला या मुस्लिम अपने को 'पैगम्बर' या 'इमाम मेहंदी' नहीं घोषित करता जबकि मुसलमानों की मान्यता है कि 'ईसा मसीह और इमाम मेहंदी प्रकट होंगे और इस्लाम का प्रचार करेंगे'। इसी तरह कोई भी बौद्ध अपने आप को भगवान् बुद्ध का अवतार घोषित नहीं करता।

जब हम हिन्दु-समाज पर विचार करते हैं तो देखते हैं कि यहाँ सैकड़ों लोग अपने को साक्षात् परमात्मा का अवतार घोषित किये हुए हैं।

जैसे-जैसे अवतारों की संख्या बढ़ रही है, वैसे-वैसे देश में भ्रष्टाचार और पाखण्ड भी बढ़ता जा रहा है। पुराणमतानुसार जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब ईश्वर मनुष्य रूप में अवतरित होता है। संसार के देशों पर विचार किया जाये तो जितना भ्रष्टाचार भारतीय उपमहाद्वीप में है तथा अन्यत्र शायद ही हो। सारे के सारे भगवान् हिन्दु और हिन्दुस्तान को उठाने की बात करते हैं, परन्तु हिन्दु और हिन्दुस्तान की स्थिति निरन्तर शोचनीय होती जा रही है। कितने शर्म की बात है कि पाकिस्तान में हिन्दु मुसलमान बन जाते हैं, परन्तु भारत और नेपाल में भी हिन्दु मुसलमान और ईसाई बन जाते हैं। जबकि भारत और नेपाल में हिन्दुओं की संख्या बढ़नी चाहिए। यह तो सर्वविदित है कि जहाँ हिन्दुओं की संख्या न्यून है, वहीं देश-द्रोह की बातें उभरती हैं।

हम अपनी कमजोरी छिपाने के लिए कह देते हैं कि ईसाइयत और इस्लाम के प्रचार के लिए विदेशों से अकूत धन आता है। यह सत्य है, परन्तु हम यह भी देखें कि इन भगवानों और नये नये सम्प्रदायों को विदेशों से कितना धन आता है। महेश योगी, सतपाल, बालयोगेश्वर, सतसाईं, जय गुरुदेव, चन्द्रा स्वामी, रजनीश, ब्रह्मकुमारी, आनन्द मार्ग, इस्कान, गायत्री परिवार, राधा-स्वामी, निरंकारी मिशन आदि भगवानों और संस्थाओं को विदेशों से जितना धन प्राप्त होता है, उतने में इस देश की काया पलटी जा सकती है। ईसाई और मुसलमान विदेशों से धन लाकर यहाँ के हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बनाते हैं, परन्तु भगवान् लोग विदेशों से धन लाकर महल बनाते हैं। पैसा मनुष्य पर खर्च न करके पत्थरों पर खर्च करते हैं। कइयों के पास विमान हैं। इनके आश्रम (महल) ऐसे होते हैं कि वैसे किसी सम्राट् के भी न होंगे। सम्भवतः भारत में किसी पादरी के पास न तो विमान होगा और न इनके जैसे महल होंगे। इनके आश्रमों मठों में रहने वाले कुत्ते-बिल्ली दूध-दही नहीं पूछते, परन्तु उसी आश्रम के बाहर गेट पर फूल बेचने वाला हिन्दु सूखी रोटी खाता है। हिन्दु-समाज जितना धन पत्थर को सजाने पर खर्च करता है, यदि उसका सौवां भाग भी निर्धन हिन्दु पर खर्च करे तो विधर्मियों की संख्या इतनी न बढ़े।

ऐसा लगता है कि जातिवाद हिन्दु-समाज के लिए ईश्वर, जीव और प्रकृति की तरह नित्य हो गया है। कथन में अतिशयोक्ति है, परन्तु आप विचार करें कि इस प्रथा को समाप्त करने के लिए कितना संघर्ष हुआ। गौतम बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक, दयानन्द, विवेकानन्द, श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी और विनोबा भावे आदि महापुरुषों की एक लम्बी शृंखला है। शायद ही ऐसी कोई बुराई हो, जिसको समाप्त करने के लिए इतने महापुरुषों ने इतने प्रयत्न किये हों।

हम देखते हैं कि इतने प्रयत्न के पश्चात् भी जातिवाद ज्यों का त्यों बना हुआ है। भारत में जितने भी महापुरुष हुए हैं उनमें आर्यसमाजी विचार के महापुरुषों ने जितना रचनात्मक ढंग से इस कुरीति को समाप्त करने का प्रयत्न किया, उतना शायद ही किसी ने किया हो। आर्यसमाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जितनी सफलता मिली, उतनी किसी को भी नहीं। परन्तु खेद है कि आर्यसमाज जातिवाद समाप्त करते-करते आज स्वयं जातिवाद से ग्रस्त है। आर्यसमाज के अधिकतर लोग व्यावहारिक रूप से जन्मना वर्ण-व्यवस्था मानते हैं। कितने ही बेशर्म, पाखण्डी आर्यसमाजी सब की जाति पूछते रहते हैं।

कोई कह सकता है कि छुआछूत आदि पूर्व की भांति नहीं है। परन्तु वे नहीं समझते कि जातिवाद अपना रूप बदल कर बढ़ रहा है। आज से एक-दो दशक पहले जाति के नाम पर भगवान् नहीं बटे थे, परन्तु आज जाति के नाम पर महापुरुषों को बांटे दिया गया है। ब्राह्मण महासभा वाले 'परशुराम' को, क्षत्रिय महासभा वाले 'राम' को यादव महासभा वाले 'श्रीकृष्ण' को अग्रवाल सभा वाले 'अग्रसेन' को वाल्मीकी सभा वाले 'वाल्मीकी' को तथा हरिजन आदि भगवान् 'बुद्ध' और 'अम्बेडकर' को अपना आदर्श पुरुष और भगवान् मान रहे हैं। इन सभाओं के बनने के पहले सभी जाति के लोग सभी महापुरुषों को अपना और आदर्श पुरुष मानते थे परन्तु अब धीरे-धीरे तथाकथित अपनी जाति से भिन्न महापुरुषों के प्रति लोगों की श्रद्धा कम होती जा रही है। अब तो जातीय सभा के लोग तथाकथित अपनी जाति के कुख्यात पुरुष को भी अच्छा और अपना मान रहे हैं।

यात्रा में एक सज्जन से मेरी राम आदि महापुरुषों पर चर्चा चल रही थी। वह व्यक्ति राम के बजाय परशुराम की प्रशंसा कर रहा था, रावण के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहा था। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह ब्राह्मण महासभा का पदाधिकारी है। सभा बनने के पूर्व उसे रावण में बुराइयाँ दिखाई दे रही थीं, अब जाति के नाम पर रावण में अच्छाइयाँ दिखायी देने लगीं। ऐसे लोगों की धीरे-धीरे तथाकथित अन्य जाति के महापुरुषों के प्रति श्रद्धा कम हो रही है और अपनी जाति के कुख्यात व्यक्ति के भी प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो रही है। हर सभा वाले अपने जाति के गरीब असहायों की सहायता कर रहे हैं। सम्पूर्ण मानव समाज या सम्पूर्ण हिन्दु-समाज की हितचिन्ता को छोड़कर तथाकथित अपनी जाति के हित की सोचते हैं। हरियाणा का व्यक्ति असम, बंगाल में भी अपनी जाति के नीच से भी नीच व्यक्ति को मन्त्री-मुख्यमन्त्री देखना चाहता है, दूसरी जाति का व्यक्ति क्यों न कितना ही योग्य हो, पर उसको पसन्द नहीं करता। जाति के नाम पर जो सेनाएँ बनी हैं, वे किनसे युद्ध की सम्भावना को दृष्टिगत करके बनी हैं? क्या वे पाकिस्तान या चीन से लड़ने के लिए बनी हैं? या हिन्दु-मुसलिम दंगों में हिन्दुओं की रक्षा के लिए बनी हैं? नहीं, वे हिन्दुओं के ही संहार के लिए बनी हैं। अब तो बिहार में सेनाएँ अपना तांडव नृत्य प्रदर्शित भी कर रही हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के काल में जाति के नाम पर सभा और सेनाएँ नहीं थीं। पाखण्ड था, परन्तु भगवान् नहीं थे। आज की स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक विकट है, आज देश और समाज की स्थिति अधिक नाज़ुक है। देश में जिस गति से शिक्षा का प्रसार हो रहा है उसी गति से भगवानों और नये-नये पन्थों की संख्या भी बढ़ रही है।

ऐसी स्थिति में आर्यसमाज का दायित्व बढ़ जाता है, क्योंकि आर्यसमाज जितना उत्कृष्ट, तर्क संगत और व्यावहारिक विचार किसी के पास नहीं है। आज आर्य-समाज के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता पहले की अपेक्षा अधिक है। लेकिन दुःख है कि हिन्दु-समाज की स्थिति जैसे दिन-प्रति दिन दयनीय होती जा रही है, उससे दोगुनी गति से आर्यसमाज की भी स्थिति दयनीय होती जा रही है।

आर्यसमाज में मंदिर, गुरुकुल, विद्यालय, उपदेशक, लेखक, साहित्य (साहित्य आर्यसमाज का इतना उत्कृष्ट और विशाल है, उतना संसार में किसी संस्था के पास नहीं होगा)। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी की कमी नहीं है। सिर्फ़ कमी है आर्यसमाज के रचनात्मक ढंग से संचालन की। आर्यसमाज में सारे साधन उपलब्ध हैं पर साधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है।

वर्तमान में आर्यसमाज का अधिकतर धन जलसों और भवनों पर खर्च हो रहा है। हर वर्ष करोड़ों रुपये यूं ही बर्बाद किये जायें और हम अपने को बुद्धिवादी कहें, यह कितनी हास्यास्पद बात है। आज संसार में जितने भी मत सम्प्रदाय हैं, उन सब से घटिया प्रचार तन्त्र आर्यसमाज का है। कोई आँख में धूल झोंकने का असफल प्रयत्न करने वाला कह सकता है कि ये नये-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये पन्थ तेजी से बढ़ रहे हैं, पुराना होने पर इनकी भी गति आर्यसमाज जैसी होगी। उन्हें मालूम होना चाहिए कि ईसाई, मुसलमान, राधास्वामी और प्रणामी मत वाले नये तो नहीं हैं, वे पुराने होकर भी नये पन्थ की तरह प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। फिर कितने निराशावादी क्वालिटी और क्वांटिटी की बात करते हैं, पर पहले तो क्वालिटी और क्वांटिटी दोनों पर ध्यान दिया जाता था, परन्तु आज न तो क्वालिटी है और न क्वांटिटी। हरियाणा के रोहतक जिले में एक भपड़ौदा ग्राम है, उस में कभी आर्यसमाज का ऐसा प्रचार हुआ कि गाँव वालों ने मन्दिरों की मूर्तियां जोहड़ (तालाब) में फेंक दी थीं और उसी गाँव में एक बार आर्य महासम्मेलन और एक बृहद्वृष्टि यज्ञ हुआ था, पर आज पुनः उन्हीं मन्दिरों में गाँव वाले मूर्ति स्थापित कर रहे हैं। यह घटना ऐसे स्थान की है जिसके आस-पास चार गुरुकुल हैं।

आर्यसमाज के उत्सवों पर काफी धन व्यय किया जाता है, पर लाभ कुछ नहीं। हलुवा-पूड़ी, साजबाज और दक्षिणा के अलावा और कुछ नहीं होता। उत्सव कराने वाले जनता से धन धर्मप्रचार के लिए मांग कर लाते हैं, परन्तु प्रचार न करके अंट-शंट कार्यों पर खर्च क[रते] हैं। यदि आर्यसमाज का प्रचार होता तो सदस्यों की सं[ख्या] अवश्य बढ़ती, परन्तु देखा जाय तो सभी समाजों [में] सदस्यों की संख्या प्रतिवर्ष कम होती जा रही है। फि[र] भी हम आत्मनिरीक्षण करके अपने कार्यक्रमों में सुध[ार] नहीं करते। यदि उत्सव पर व्यय होने वाले धन [का] कुछ भाग सत्यार्थप्रकाश आदि पुस्तकों के वितरण [पर] खर्च किया जाय तो वह सत्यार्थप्रकाश उत्सव से ज्य[ादा] कार्य करेगा, पर ऐसा रचनात्मक कदम कोई भी आर्यसम[ाज] नहीं उठा रहा है।

आप मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च आदि में जायें तो देख[ेंगे] कि वहाँ हर वर्ग का व्यक्ति है, धनाढ्य से धनाढ्य [और] निर्धन से निर्धन। मन्त्री, उद्योगपति भी दिखाई देंगे [और] रिक्शा चालक और मजदूर भी दिखाई देगा। क्या आप [ने] आर्यसमाज मन्दिर में किसी रिक्शा चालक को भी देख[ा] है? नहीं, हम तो यह मान कर चलते हैं कि आर्यसमाज पढ़े-लिखे लोगों की संस्था है, और हम उसी ढंग [से] पढ़े-लिखे धनाढ्य लोगों में ही प्रचार कर रहे हैं।

(पृष्ठ ६ का शेष)

है। जिसका स्वल्प परिभाव विभिन्न सुवासयुक्त रसायनों में परिवर्तित होकर पर्यावरण के परिशोधन में सहायता करते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसे समझने के लिए थोड़ी अधिक गहराई से विचार करना होगा। यज्ञाग्नि का सुगन्धित धुआँ पर्यावरण में फैले विषाणुओं का विनाश करता है। यज्ञ में मुख्य रूप से प्रयुक्त होने वाली सामग्रियां हैं—आम, पलाश, चन्दन, अगर, तगर, देवदार, बेल, बरगद, पीपल, गूलर, इत्यादि की लकड़ियाँ, कस्तूरी, कर्पूर, चन्दन चूर्ण, जायफल, इलायची, जावित्री, गुग्गुल इत्यादि। सुगन्धित पदार्थ, घी, दूध, सूखे नारियल की गिरि जैसे पौष्टिक वसा युक्त पदार्थ, चावल गेहूँ, जौ, मूँग, चना, मटर इत्यादि। अनाज, शक्कर, मधु, किशमिश, छुआरा, मखाना इत्यादि। मीठे पदार्थ जैसे सोमलता, अमृता, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, सोंठ, लौंग, हल्दी, मुलैठी, रक्त चन्दन, बहेड़ा, दालचीनी इत्यादि। यज्ञ में प्रयुक्त पदार्थों का विविध रासायनिक परिवर्तन होता है। इसलिए इसका सूक्ष्म परीक्षण आवश्यक है। सामान्यतः यज्ञाग्नि का ताप 250 से 600 डिग्री सेल्सियस के मध्य रहता है। प्रज्ज्वलि[त] पदार्थों के ताप में 1200 से 1300 डिग्री सेल्सियस के म[ध्य] वृद्धि होती है। पदार्थों में उपस्थित सेल्यूलोज [एवं] कार्बोहाइड्रेट्स का दहन होता है। कार्बनिक पदार्थों [में] उपस्थित हाइड्रोजन वायुमण्डल की आक्सीजन के स[ाथ] संयोग कर अधिक मात्रा में वाष्प H_2O का निर्माण कर[ता] है। इसके साथ ही उसके दहन से धूम्र भी अधिक परिम[ाण] में उत्सर्जित होता है। घी वसा युक्त पदार्थ होने के का[रण] लकड़ियों के सेल्यूलोज के तीव्र दहन में सहायक होता [है] तथा अग्नि को प्रज्वलित रखता है। इस अभिक्रिया से उत्स[र्जित] हाइड्रोकार्बन का भी धीरे-धीरे दहन होता है जिस[के] फलस्वरूप मिथाइल एवं इथाइल अल्कोहल, एसिटल्डिहाइ[ड], फार्माल्डिहाइड, फार्मिक अम्ल और एसिटिक अम्ल [का] निर्माण होता है। उत्सर्जित धूम्र कलिलमान (कालोडि[यल] व्हिकल) के सदृश कार्य करता है जिससे सुगन्धित पद[ार्थ] वाष्पीकृत होकर वायु के साथ विसरित होते हैं। एवं यज्ञ[...] परिवेश में सुगन्धि की अनुभूति होती है। *(क्रमशः)*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे :

गहरे अन्धकार से परे

—भगवान् देव "चैतन्य"

इसलिए मुण्डकोपनिषत् के ऋषि ने समस्त ग्रन्थों को अपरा विद्या के अन्तर्गत रखा है:--

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तः छन्दो ज्यौतिषमिति अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

अंगिरा ऋषि ने स्पष्ट किया कि दो विद्याएं जानने योग्य हैं जिन्हें ब्रह्म के जानने वाले परा और अपरा विद्या कहते हैं। उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः शास्त्र, ज्योतिष विद्या ये सब अपरा हैं और जिससे वह अविनाशी ब्रह्म जाना जाता है वह परा विद्या है।

वेद में भी परा और अपरा विद्या की चर्चा आई है—

अधिश्रियंनिदधुश्चारुम स्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अथ क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः पुनीचीरग्ने अरुषीरजानन्॥
(ऋ०१।७२।१०)

इस मन्त्र में ज्ञान-प्राप्ति को ही जीवन का सौन्दर्य बताते हुए कहा गया है कि प्रकृति विद्या (अपरा विद्या) इस सुन्दर शरीर की एक आँख है तो आत्म-विद्या (परा विद्या) दूसरी है। जीवन की शोभा इन दोनों के समन्वय में ही है।

अवः परेण पितरं यो अस्यानु वेद पर एनावरेण।
कवीयमानः क इह प्रवोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम्॥
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ परा च आहुर्ये पराञ्चस्ता उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति॥
(ऋ०१।१६४।१८, १९)

पर अपरा विद्या के मेल से मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार करता है। ऐसा मनुष्य सदा आनन्द में रहता है और मिले हुए उस प्रकाश को सर्वत्र फैलाता है। इन परा और अपरा विद्याओं का साथ-साथ अभ्यास करने से जीवन-रथ आगे बढ़ता है और मनुष्य रजोगुण से ऊपर उठकर सत्त्वगुण में स्थित रहता है। यहाँ भी अविद्या और विद्या को अपरा और परा विद्या के रूप में वर्णित करते हुए दोनों से परे अर्थात् उस ब्रह्म को ही जानने की बात कही गई है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए तमोगुण, रजोगुण से ऊपर उठकर सत्त्वगुणी बनने की परम आवश्यकता है। विद्या और अविद्या का लक्ष्य ही यह है कि इनके माध्यम से उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया जाए। गीता में इस विद्या को राजविद्या कहा गया है—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥
अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥
(गीता ९।२, ३)

हे अर्जुन जो रहस्य मैं तुझे बताने जा रहा हूँ यह विद्याओं में राजविद्या है, और गुह्य विद्याओं में अत्यन्त गुह्य विद्या है। यह पवित्र विद्या है, अति उत्तम विद्या है, प्रत्यक्ष फल देने वाली विद्या है, धर्म के अनुकूल विद्या है, साधन करने में बड़ी सुगम विद्या है और यही वास्तव में अविनाशी विद्या है। परन्तु इस विद्या का रहस्य एक ऐसा धर्म है जिसे श्रद्धा न रखने वाले पुरुष नहीं पा सकते और उसे न पा सकने के कारण मृत्युमय संसार के मार्ग में बार-बार लौट आते हैं।

श्री कृष्ण महाराज जी का कथन है कि इस विद्या को उपासना चाहिए। पूर्ण श्रद्धा के साथ इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना चाहिए। इसे साधने से व्यक्ति बार-बार के जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है। इसके विपरीत जो केवल कर्मकाण्ड आदि में उलझा रहता है जिसे अविद्या भी कहा गया है। उसके बारे में श्री कृष्ण जी कहते हैं—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥
(गीता ९।२०, २१)

जो इस विद्या का सही भाव लेकर परमात्मा की उपासना करके मुक्ति को प्राप्त नहीं होते हैं। वे लोग वे हैं जो केवल कर्मकाण्डों तक तथा सकाम कर्मों को लेकर ही जीवन व्यतीत करते रहते हैं। उनके बारे में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि तीनों वेदों को जानने वाले, सोमरस का पान करने वाले, पाप से रहित कर्मकाण्डी लोग यज्ञों द्वारा मेरी उपासना करते हुए स्वर्ग प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं। वे अपने पुण्य कर्मों को लेकर इन्द्रलोक में पहुँचते हैं, वहाँ द्युलोक में दिव्य देव दुर्लभ भोगों को भोगते हैं। परन्तु वे उस विशाल स्वर्ग लोक का आनन्द भोग लेने के बाद, जब उनका संचित पुण्य क्षीण हो जाता है-समाप्त हो जाता है, तब फिर मृत्यु लोक में आ जाते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों की शरण में जाने वाले कर्मकाण्डी लोग कामनाओं की कामना करते रहने के कारण जन्म-मरण के चक्कर काटा करते हैं।

केवल शाब्दिक ज्ञान ~~भर~~-प्राप्त कर लेना व्यक्ति का लक्ष्य नहीं रहना चाहिए, क्योंकि ये सब वास्तविक ज्ञान अर्थात् अन्तर्ज्ञान में बाधक ही बनते हैं। इस सम्बन्ध में उपनिषद् में कहा है—

नानुध्यायात् बहून शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्...
(बृहदारण्यक उप० ४।४।२१)

अर्थात् देह-वासना, लोक-वासना और शास्त्र-वासना ये सब ज्ञान में रुकावट डालती हैं। यहाँ पर अन्य वासनाओं के समान शास्त्र-ज्ञान को भी एक वासना के रूप में वर्णित किया गया है। इसका कारण यही है कि कभी-कभी व्यक्ति की स्थिति ऐसी हो जाती है, कि वह अपने ज्ञान में ही अहंकार करने लग जाता है और उसे व्यवहार में लाने की बात तक उसके मस्तिष्क में नहीं आती है। हालांकि उस ज्ञान के कारण वह मान प्रतिष्ठा आदि भी प्राप्त कर लेता है, दुनिया की दृष्टि में बहुत बड़ा ज्ञानी भी बन जाता है मगर अपने भीतर झांक कर स्वयं का रूपान्तरण करने की ओर उसका ध्यान नहीं जाता है। इसका वह कभी पल भर के लिए चिन्तन तक नहीं कर पाता है। ऐसे व्यक्ति के लिए यह विद्या केवल वासना ही तो है। असली बात तो अन्तर्यात्रा करके मोक्ष को प्राप्त होना है। शंकराचार्य जी अपने ग्रन्थ विवेकचूडामणि में लिखते हैं कि विद्वानों की वाणी की कुशलता, शब्दों का धारा-प्रवाह प्रयोग, शास्त्र-व्याख्यान की कला और विद्वत्ता केवल भोग ही का कारण हो सकती है मोक्ष का नहीं। आचार्य जी ने यहाँ पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही है। बहुत अधिक शास्त्रवेत्ता, धाराप्रवाह बोलने वाला भी भीतर से कोरा हो सकता है। ऐसी विद्या तो वास्तव में अविद्या ही है, क्योंकि वह हमें अमरत्व तक नहीं पहुँचा रही है। असली बात तो है अमरत्व प्राप्त करने की। इसलिए इसी के लिए जो प्रयत्नशील है वास्तव में वही विद्या के रहस्य को समझने वाला है।

इसीलिए यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के अगले मन्त्रों में कहा गया है—

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥
(यजु० ४०।१३)

ज्ञान का और ही फल कहते हैं और कर्म का और ही फल कहते हैं। ऐसा हम धीर पुरुषों से सुनते हैं जो हमारे लिए उपदेश करते हैं। अर्थात् विद्या और अविद्या की अपनी अलग-अलग सीमाएं हैं। अविद्या हमें सांसारिक भोग दे सकती है मगर विद्या का सही उपयोग करके हम मोक्ष तक को प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान और कर्म, भौतिक और आध्यात्मिक के अपने-अपने लक्ष्य हैं। भौतिकता भी जीवन के लिए आवश्यक है मगर यह हमें मुक्ति तक नहीं पहुँचा पाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ महापुरुषों ने इसी लिए इस भौतिकता को माया कहा है। निःसार कहा है, क्योंकि यह बहुत दूर तक हमारा साथ देने वाली नहीं है। एक न एक दिन सब के जीवन में ऐसा आता है जब सभी भौतिक सम्पदाएं धरी की धरी रह जाती हैं और न चाहते हुए भी सब कुछ छोड़ छाड़ कर इस संसार से जाना पड़ता है। सभी सम्बन्धी टुकर-टुकर देखते भर रह जाते हैं और व्यक्ति की देखते-देखते मृत्यु हो जाती है। वह और किसी स्थान को प्रस्थान कर जाता है। इसलिए कहा गया कि भौतिकता का अपना अलग ही महत्त्व है और आध्यात्मिकता वही है जो मरने के बाद भी हमारा साथ देती है। भौतिकवादी केवल जो दिखता है उसे ही सत्य मानते हैं मगर इससे परे भी कुछ सत्य है, बल्कि वही वास्तविक सत्य है, इस पर उनकी दृष्टि नहीं जाती है। भौतिकता हमें सुख समृद्धि दे सकती है मगर शान्ति नहीं। बार-बार जन्म देकर भोग सामग्री दे सकती है मगर जन्म मरण के बन्धन से छुड़ाकर मुक्ति नहीं। ज्ञानरहित कर्म हमें भटका सकते हैं मगर ज्ञानसहित कर्म हमें सही दिशा देकर अमरत्व दिला सकते हैं। यही विद्या और अविद्या के अपने क्षेत्र हैं और अपनी सीमाएं हैं। जो हमें इन आँखों से दिखाई देता है वही सत्य नहीं है बल्कि इसके पीछे एक और महान् शक्ति है जो अदृश्य होते हुए भी सभी कुछ है। यह पहचानने की आँख हमें केवल आध्यात्मिकता ही देती है। इस आध्यात्मिकता के बिना एक नहीं चाहे व्यक्ति करोड़ों जन्मों में भटकता रहे मगर उसे शान्ति नहीं मिल सकती है। शान्ति तो उसे परमात्मा की शरण में जाने से ही मिलेगी और कोई रास्ता नहीं है। इसलिए वेद कहता है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

(यजु० ३१।१८)

अर्थात् मानव यदि दुःखों से, कष्टों से और बार-बार मृत्यु और जन्म आदि के कष्टों से बचना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह उस महान् प्रकाशस्वरूप और अन्धकार से परे रहने वाले परमात्मा को जाने, उसे प्राप्त करे। वह परमात्मा ही अविद्यादि दोषों को दूर करने वाला है। अतः उसी को पाकर व्यक्ति मृत्यु का उल्लंघन कर सकता है और अन्य कोई मार्ग नहीं है। उस परमात्मा को प्राप्त करना ही हमें विद्या सिखाती है।

यदि व्यक्ति अविद्या में ही भटकता रहे तो वह कभी भी उस अदृश्य शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। अविद्या से जब व्यक्ति उपराम होगा तभी वह परमात्मा को पाने की दिशा में चल सकता है, जो कि मानव जीवन का परम लक्ष्य है। परमात्मा ही सत्य है मगर वह सत्य इस भौतिकवाद के पीछे छुपा हुआ है। केन उपनिषत् कहता है कि जो आँखों से नहीं दिखता मगर जिसके कारण आँखें देखती हैं वह परब्रह्म ही जानने के योग्य है और कोई नहीं। उसे जानने के लिए भीतर की आँखें खोलनी पड़ेंगी। यह भीतर की आँख यदि नहीं खुली तो बड़े बड़े ग्रन्थ रट लेने का भी कोई लाभ नहीं है। धन-दौलत के अम्बार हों उनका भी कोई लाभ नहीं। उपनिषद् में इसकी चर्चा करते हुए कहा गया है—

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु मम इयं भगोः स वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृता स्यामिति, नेति होवाच याज्ञवल्क्यः यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यात् अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन।

(बृहदारण्यक उपनिषद् ४।५ ब्राह्मण)

अर्थात् हे मैत्रेयी सच बात तो यह है कि अगर मनुष्य के पास इतना धन इकट्ठा हो जाए जितना सारी पृथ्वी पर है तब भी उसका जीवन उतना ही सुखी हो सकता है जितना साधन सम्पन्न व्यक्तियों का जीवन सुखी होता है। ऐसे व्यक्ति को रहने खाने-पीने आदि की कमी नहीं होगी, उसे चलने फिरने के लिए घोड़े गाड़ी, हवाई जहाज आदि मिल जायेंगे परन्तु इससे अधिक कुछ नहीं मिलेगा। ये सब तो साधन हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है कि जीवन भर व्यक्ति इन साधनों के लिए ही पागल बना रहता

(शेष पृष्ठ १८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत माता का पश्चात्ताप!

—कवि कस्तूरचन्द 'घनसार', कवि कुटीर, पीपाड़ शहर (राज०)

भारत माता असमंजस में,
रह-रह के पछताये।
जो था पावन विशद सनातन, वैदिक ईश्वर ज्ञान।
था वो आर्य पुत्रजनों हित, सम्यक् रूप समान॥
किया मनोमत भिन्न-भिन्न सब, अपनी रुचि अनुरूप।
छोड़ दिया वेदों का पढ़ना, ईश्वर ज्ञान-अनूप॥
ईश्वर की वाणी कल्याणी, दी उनको विसराय।
भारत माता असमंजस में, रह-रह के पछताय॥

(२)

"भूयिष्ठां ते" वही अखिलेश्वर, नहीं आकार-विकार।
न प्रतिमा न स्थूल धरे तन, नित्य रहा निराकार॥
क्यों? बनाईं पत्थर प्रतिमाएँ, जड़ को चेतन जान।
क्या? हमारी है समझदारी, ज्ञान में भरा अज्ञान॥
ऋषि दयानन्द समझाया फिर, जिसको रहे भुलाय।
भारत माता असमंजस में, रह-रह के पछताय॥

(३)

"एष एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः" छोड़ पिता जगदीश।
"एको विश्वस्य भुवनस्य राजा" वो अखिलेश वरीश॥
लक्ष्य जमा कर क्योंनी, जपता, तज करके अज्ञान।
ये मानुष तन दुर्लभ माना, मिले इसी से ज्ञान॥
ईश्वर-वाणी सत्य सनातन, जानी न रहा जनाय।
भारत माता असमंजस में, रह-रह के पछताय॥

(४)

सत्य सन्देश दयानन्द दे के, सब को दिया जनाय।
अब तो खोल चक्षु से देखो, कितना तिमिर विलाय॥
करो प्रचण्ड प्रचार देश में, कृत्रिम लक्षण त्याग।
ऋषि नियम दश लेकर चलते, हो इनसे अनुराग॥
भ्रम-भुलाया रहा जाल में, भ्रमित देश रहाय।
भारत माता असमंजस में रह-रह के पछताय॥

(५)

सुख सरिता कब बहें देश में, कब दुःख नाशे भेद।
भ्रम-भेद भरमाया सब को, भुला तत्र सद्-वेद॥
जैमिनि तक तो रहा वेद मत, पीछे स्वमत थोपा।
स्वच्छ विशद था पथ अतिपावन, जिसमें मत्तारोपा॥
आज मिटाना मुश्किल पाया, आर्यसन्देश बढ़ाय।
भारत माता असमंजस में, रह-रह के पछताय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वद्-विचारणीय बातों पर विचार

—राम निवास 'गुणग्राहक', पुरोहित आर्यसमाज श्रीगंगानगर (राज०)

परोपकारी के नवागत अंक (आश्विन सं० २०५३) में श्रीयुत भावेश जी द्वारा प्रस्तुत सुख दुःख के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के कतिपय उद्धरण दृष्टिगत हुए। यहाँ प्रश्न पक्ष-पोषण का नहीं बल्कि उस यथार्थ को खोजने का व उसे सहृदयता पूर्वक यथार्थ को स्वीकारने का है, जिसके लिए वैचारिक मन्थन में प्रवृत्त हुआ जाता है। यही एकमात्र मन्तव्य सभी मनीषियों का होना चाहिए। मैं इस सन्दर्भ में पिछले एक लम्बे काल से दार्शनिक परम्परा से यथामति अध्ययन व चिन्तन कर रहा हूँ। जब से मान्य जिज्ञासु जी ने मेरे ऊपर एतद्विषयक एक पुस्तक लेखन का भार डालकर स्वयम् उसके प्रकाशन का दायित्व दिया है, तब से तो दर्शन ही मेरे स्वाध्याय के पर्याय बन गए हैं, और उनमें भी अर्जुन की चिड़िया की आँख की तरह केवल जीवात्मा के सुख दुःख विषयक तथ्यों का संकलन व उन पर चिन्तन। इस अन्तराल में मुझे लगा कि यह विषय उतना सहज व सरल नहीं कि इसे सामान्य स्वाध्यायीजन समझ सकें व इस पर विचार दे सकें। पदे-पदे संशयोत्पादक बातें मिल जाती हैं। अनायास ही मुझे गीता का एक श्लोक स्मरण हो आता है।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्?

मान्य लेखक महोदय ने जिन विद्वानों के उद्धरण दिये हैं उनके विषय में अधिक न कहता हुआ केवल एक निवेदन कर देना चाहता हूँ कि हमें हमारे श्रद्धेय विद्वान् संन्यासियों के ऐसे उद्धरणों से यथासम्भव बचना चाहिए। हमारे पास तर्क है, उसे आद्य ऋषि कहा गया है। **तर्केण वस्तुसिद्धिः न तु सङ्कल्पेन।** इस सन्दर्भ में हमें सुख-दुःख को प्रकृति का गुण मानने से पूर्व विचारना चाहिए कि सुख-दुःख कौन से प्राकृतिक द्रव्य के गुण हैं? पृथिव्यादि की गुण-गणना में तो कहीं मिलते नहीं। हाँ कुछ विद्वान् कुछ प्रमाणादि देकर सुख को सत्त्व का व दुःख को तम का गुण सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। यहाँ सोचने वाली बात तो ये है कि सत्त्व, रज व तम स्वयं गुण हैं। इन्हें प्रायः सभी जगह सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण के नाम से कहा जाता है, जबकि गुण के लक्षण करते समय महर्षि ने लिखा है—जो द्रव्य के आश्रय रहे, अन्य गुण का धारण न करे ......आदि। तब फिर सुख-दुःख को किस द्रव्य का स्वाभाविक गुण मानें? नवों द्रव्यों के सभी स्वाभाविक व नैमित्तिक गुण वैशेषिक दर्शन में दे रखे हैं अन्यों में भी मिलते हैं मगर कहीं भी आत्मा (जीवात्मा) को छोड़ कर किसी दूसरे द्रव्य में उक्त गुणों (सुख-दुःख) का संकेत भी सूत्र रूप से प्राप्त नहीं होता।

मैं इस लेख को लम्बा नहीं करना चाहता, इसलिए कुछ अत्यावश्यक तथ्य ही रख रहा हूँ! अभी हमें यह निश्चय करने में भी समय लगेगा कि जीव के कौन-कौन से गुण स्वाभाविक हैं, कौन-कौन से नैमित्तिक? क्योंकि जीव के गुणों में कटौती करने वालों ने अभी अवशिष्ट जीव की कोई परिभाषा नहीं दी है कि जीव में ये गुण स्वाभाविक हैं। कुछ विद्वानों की मान्यतानुसार तो इच्छा-द्वेष भी जीव के स्वाभाविक गुण नहीं हैं, वे केवल ज्ञान व प्रयत्न को ही स्वाभाविक ठहराते हैं। अब आपको कैसा लगेगा जब इच्छा-द्वेष को भी प्रकृति के गुण सिद्ध करने वाले विद्वान् विलक्षण प्रमाण व तर्क देकर विद्वत्ता प्रदर्शित करेंगे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी स० प्र० के नवम समुल्लास में जीव की शक्ति कै प्रकार की होती है? प्रश्न उठाकर उत्तर देते हैं मुख्य एक प्रकार की शक्ति है; परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भाषण, विवेचन, क्रिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्ध ग्रहण तथा ज्ञान इन चौबीस प्रकार के सामर्थ्य युक्त जीव हैं। इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है।

यहाँ महर्षि ने लिखा है इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है। अर्थात् ये मुक्तावस्था के गुण गिनाए हैं जिनमें इच्छा-द्वेष स्पष्ट लिखे हैं। एक रोचक तथ्य आपके सम्मुख और रखते हैं, वह यह है कि न्याय व वैशेषिक आदि में कहीं भी जीवात्मा के भोक्तृत्व गुण का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता जबकि ये गुण मुक्ति व बन्धनावस्था (जन्म-मरण) दोनों में स्वयं सिद्ध हैं। केवल ज्ञान और प्रयत्न को जीव का स्वाभाविक गुण मानकर चलें तो भोक्तृत्व को किसका निमित्त कहोगे? ये कुछ तथ्य हैं जो हमें पुनः-पुनः गहन स्वाध्याय व चिन्तन-मनन के लिए उत्प्रेरित करते हैं। दार्शनिक चर्चाएं कही सुनी बातों पर नहीं चलतीं। वैसे तो इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है व लिखना भी चाहिए, मगर यहाँ केवल संकेत मात्र देना ही अभीष्ट है। विवेकशील पाठक यदि सत्यार्थ-प्रकाश के उक्त उद्धरणों को ही ध्यान पूर्वक पढ़ जाएं तो अधिकांश भ्रमोच्छेदन हो ही जाता है।

आशा है विचारवान् पाठकों को उचित दिशा में सोचने विचारने में किञ्चित् सहायता मिलेगी, शेष निर्णय उनके विवेकाधारित है। ●●

(पृष्ठ १५ का शेष)

है मगर साध्य की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता है। साध्य की ओर ध्यान देना ही विद्या का सही लक्ष्य है। वास्तव में अविद्या और विद्या दोनों के ही क्षेत्र सीमित हैं मगर इनसे परे उस असीमित को पहचानने की आवश्यकता है जिसे उपनिषदों ने भूमा सुख कहा है। भूमा सुख ही परमात्मा को पा जाना है। वही घर वापसी है वैसे तो हम सभी मानो कहीं परदेश में ही युगों युगों से भटक रहे हैं। इसीलिए विद्या और अविद्या के समन्वय की बात कही गई है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयः सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥
(यजु०४०।१४)

जो व्यक्ति ज्ञान और कर्म को, भौतिकता और आध्यात्मिकता को साथ-साथ जानता है वह कर्म और उपासना से मृत्यु को तैरकर ज्ञान से आध्यात्मिकता से अमरता को प्राप्त कर लेता है। मन्त्र में कहा है कि जो दोनों को साथ-साथ जान लेता है वह मृत्यु से भी पार हो जाता है और अमरता को भी प्राप्त कर लेता है। दोनों को जान लेना आवश्यक है, नहीं तो इनके रहस्य को नहीं जाना जा सकता है। ज्ञान रहित कर्म व उपासना से मृत्यु से पार नहीं हुआ जा सकता है। मृत्यु क्या है? समग्र रूप से इसे जान लेने से ही मृत्यु से पार हुआ जा सकता है। मृत्यु का भय हर किसी को सताता रहता है, मगर जब व्यक्ति मृत्यु की वास्तविकता को जान लेता है कि मृत्यु वास्तव में चोला बदलने के सिवा और कुछ भी नहीं है तो वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। भौतिक सम्पदाएं अन्ततः हमारा साथ देने वाली नहीं हैं। इस रहस्य को जान लेने के बाद, व्यक्ति आध्यात्मिकता की ओर दृढ़ता के साथ कदम बढ़ाता है और इस आध्यात्मिकता से वह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। उपनिषद् में भी कहा है—

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥
(केनो०२।४)

प्रतिबोध द्वारा प्राप्त हुए ज्ञान से निश्चित ही अमरत्व प्राप्त होता है। प्रतिबोध का अर्थ है भीतरी बोध। जब व्यक्ति बाहर अर्थात् भौतिकता की ओर से उपराम होकर भीतर की ओर मुड़ता है और साधना के द्वारा उसे बोध होता है, उसी भीतरी बोध को यहाँ पर प्रतिबोध कहा है। और यह प्रतिबोध होना ही वास्तविक विद्या है, आनन्द है, अमरत्व है।

२१५/एस-३ सुन्दर नगर-१७४४०२ (हि०प्र०) ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति एवं पुरुष का विवेक — अर्थात् सुख-दुःख जीवात्मा के नैमित्तिक गुण हैं

—आचार्य वेदव्रत मीमांसक, आर्य गुरुकुल वडूर कामारेड्डी, आन्ध्रप्रदेश

वैदिक दर्शनों में जड़ चेतन के विषय में विशेष विश्लेषण हुआ है। विशेष करके साङ्ख्य योग में अधिक विचार किया गया है और जड़ एवं चेतन के लक्षणों को स्पष्ट किया है। उसी के आधार पर इस लेख में जड़ चेतन के विषय में कुछ विचार करेंगे।

साङ्ख्य में जड़ चेतन को मुख्य रूप में प्रकृति पुरुष के नाम से व्यवहृत किया है और योग में दृश्य द्रष्टा के नाम से। गौण रूप से योग में भी द्रष्टा को पुरुष के नाम से व्यवहृत किया है। योगदर्शन में प्रकृति (दृश्य) के स्वरूप को बतलाते हुए लिखा है कि—**प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्** ॥२।१८॥ इस पर व्यासभाष्य में लिखा है कि—**प्रकाशशीलं सत्त्वम् क्रियाशीलं रजः। स्थितिशीलं तमः। एते गुणाः** ·······। सत्त्व गुण प्रकाशशील है। रजोगुण क्रियाशील है। तमोगुण प्रकाश एवं क्रिया को स्थिर करने वाला है। ये गुण कहे जाते हैं।

गुणों के विषय में साङ्ख्य में लिखा है—

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ॥ सां० १।१२७।

गुण नामक सत्त्व, रजस् एवं तमस्, द्रव्य प्रीति, अप्रीति विषाद आदि के रूप में एक दूसरे से वैधर्म्य वाले हैं। सूत्रगत आदि शब्द की व्याख्या महर्षि पञ्चशिख के शब्दों में निम्न प्रकार होगी—

सत्त्वं नाम प्रसादलाघवाभिष्यङ्गप्रीतितितिक्षा-सन्तोषादिरूपानन्तभेदं समासतः सुखात्मकम्। एवं रजोऽपि शोकादिनानाभेदं समासतो दुःखात्मकम्। एवं तमोऽपि निद्रादिनानाभेदं समासतो मोहात्मकमिति।

सत्त्व प्रसन्नता, लघु आश्लेष, स्नेह, सहिष्णुता, सन्तोष आदि रूप अनन्त भेद वाला है। संक्षेप से कहने के लिए सुखात्मक कहा है। इसी प्रकार रजस् शोक आदि नानाभेदों से युक्त है। संक्षेप के लिए दुःखात्मक कहा है। इसी प्रकार तमस् भी निद्रा आदि नानाभेद से युक्त है। संक्षेप से कहने के लिए मोहात्मक कहा है।

पञ्चशिख ने आदि शब्द के द्वारा उसके भेदों की ओर संकेत किया है। स्वाध्यायशील लोगों की जिज्ञासा की पूर्ति के लिए नीचे इन नामों का विस्तार पूर्वक उल्लेख करूँगा।

LIBRARY Gurukul Kangri ... HARIDWAR

सत्त्व—आनन्द, सुख, ज्ञान, श्रद्धा, सहिष्णुता, क्षमा, धैर्य, शौर्य, एकाग्रता, नम्रता, शालीनता, समता, वैराग्य, सहानुभूति, सदाचरण आदि का कारण है।

(भारतीय मनोविज्ञान पृ० ८८)

रजस्—विवाद, पश्चात्ताप, उन्माद, क्रोध, आसक्ति, असूया, पैशुन्य, अहङ्कार, अत्याचार, स्वार्थपरता, हिंसा, वाणिज्यादि की इच्छा, दुर्विचार, सन्देह, निन्दा, दोषारोपण आदि का स्वभाव, असत्य, धोखेबाजी, अनिश्चायी वृत्ति द्वेष, लापरवाही अनियमित आचरण, कृतघ्नता, अनादर, चौर्य-प्रदर्शन, निर्लज्जता, द्यूत, कलह और इन्द्रियसुख, लोलुपता आदि का कारण है। (······ पृ० ८८)

तमस्—चेतना का अभिभव तथा क्रिया का अवरोध करता है। आलस्य, लापरवाही, श्रम, अज्ञान, अनिश्चय, निद्रालुता, भय, दुःख, लोभ, लम्पटता, अश्रद्धा, घमण्ड, औद्धत्य आदि का जनक है। अविवेक, विस्मृति, कार्पण्य आदि का भी कारण है।

सत्त्व, प्रकाश, शान्त, सुख ये सत्त्व के पर्याय हैं।
रजस्, क्रिया, घोर, दुःख ये रजस् के पर्याय हैं।
तमस्, स्थिति, मूढ, मोह ये तमस् के पर्याय हैं।

सत्त्व नामक द्रव्य में विद्यमान कुछ गुणों का ऊपर नामोल्लेख किया है। इसी प्रकार रजस् एवं तमस् नामक जड़ द्रव्यों में विद्यमान कुछ गुणों का भी किया है। ऊपर लिखित गुण सङ्केतमात्र हैं। यह नामोल्लेख सामान्य व्यक्तियों के परिज्ञान के लिए एवं विद्वानों के लिए निदर्शनार्थ है।

सत्त्व, रजस् एवं तमस् नामक ये तीन द्रव्य अपना स्वरूप प्रदर्शित करते हैं और यह पुरुष के माध्यम से करते हैं न कि स्वतन्त्रता से। जब सत्त्व पुरुष के माध्यम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अपने स्वरूप को दिखाता है तब पुरुष में सुखादि उल्लिखित गुण प्रकट होते हैं। जब रज अपने स्वरूप को प्रदर्शित करता है तब पुरुष में दुःखादि गुण प्रकट होते हैं। इसी प्रकार तमस् के विषय में जान लेवें।

योगदर्शन में पुरुष का लक्षण—द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥२।२०॥ द्रष्टा-पुरुष, दृशिमात्र-दर्शनशक्तिमात्र है, शुद्धः अपि-निर्मल अपरिणामी होने पर भी प्रत्ययानुपश्यः-बुद्धिस्थ वृत्तियों को देखने वाला है। इस पर व्यास-भाष्य देखिए—

दृशिमात्र इति दृक्शक्तिरेव विशेषणापरामृष्टेत्यर्थः। द्रष्टा दृशिमात्र है अर्थात् दृक्शक्ति विशेषणों से असम्बद्ध है। विशेषण से धर्मादि अभिप्रेत हैं ऐसा वाचस्पति ने लिखा है। सूत्रोक्त शब्द मात्र से पूर्वसूत्रोक्त प्रकाश क्रिया आदि गुण अभिप्रेत हैं ऐसा विज्ञानभिक्षु ने लिखा है। अर्थात् उस द्रष्टा में सत्त्व, रजस्, तमस् के सुख, दुःख, मोहादि गुण नहीं हैं। इससे सिद्ध है कि पुरुष में सुख, दुःखादि धर्म नहीं हैं।

शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः का अर्थ खोलते हुए भाष्यकार ने कहा है कि **शुद्धोऽपि असौ प्रत्ययानुपश्यः। यतः प्रत्ययं बौद्धमनुपश्यति। पश्यन्न तदात्मापि तदात्मक इव प्रत्यवभासते।** पुरुष शुद्ध है, अर्थात् अपरिणामी है तथापि वह सुख दुःख रहित अर्थात् स्वभाव से सुख दुःखरहित होता हुआ भी सुखी दुःखी के समान प्रतीत होता है।

साङ्ख्यकार द्वारा प्रतिपादित पुरुष के लक्षण—**त्रिगुणादिविपर्ययात्** ॥१।१४१॥ प्रकृति शान्त, घोर, मूढ वा सुख दुःख मोह आदि से युक्त है। आदि से विवेकरहितता आदि अभिप्रेत हैं। पुरुष इससे विरुद्ध है। अर्थात् पुरुष में सुख, दुःख, मोह नहीं हैं। अचेतनता नहीं है।

इस सूत्र में स्पष्ट कहा है कि पुरुष में सुख, दुःख मोह नहीं हैं। **इससे सिद्ध हुआ कि सुख दुःख प्रकृति अथवा प्रकृति के गुण हैं जीवात्मा के स्वाभाविक गुण नहीं हैं।**

इस विषय को योगदर्शन व्यास भाष्य में और भी स्पष्ट किया गया है। देखिए—**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः** ॥१।२४॥ इस पर महर्षि व्यास का भाष्य देखिए—**अविद्यादयः क्लेशाः, कुशलाकुशलानि कर्माणि, तत्फलं विपाकः तदनुगुणा वासना आशयः। ते च मनसि वर्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते। स हि तत्फलस्य भोक्तेति।** अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश क्लेश हैं। **ये सब मन में रहते हैं किन्तु पुरुष में कहे जाते हैं क्योंकि उसके फल का वह भोक्ता है।**

इसी प्रकार **प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्** ॥२।१८॥ सूत्र भाष्य में भाष्यकार ने लिखा है कि **तावेतौ भोगापवर्गौ बुद्धिकृतौ बुद्धावेव वर्तमानौ कथं पुरुषे व्यपदिश्येते इति?** भोगापवर्ग बुद्धि में ही बुद्धिवृत्ति की क्रियाओं से उत्पन्न होते हैं। और बुद्धिवृत्ति में ही रहते हैं। इनका पुरुष में व्यवहार क्यों होता है? इसका उत्तर महर्षि ने इस प्रकार दिया है—**यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते स हि तत्फलस्य भोक्तेति एवं बन्धमोक्षौ बुद्धावेव वर्तमानौ पुरुषे व्यपदिश्येते स हि तत्फलस्य भोक्तेति।** ......**ग्रहणधारणमोहतत्त्वज्ञानाभिनिवेशा बुद्धौ वर्तमानाः पुरुषेऽध्यारोपितसद्भावाः स हि तत्फलस्य भोक्तेति।**

जिस प्रकार योद्धाओं में विद्यमान जय पराजय स्वामी में कहा जाता है उसके फल का भोक्ता स्वामी है। इसलिए इसी प्रकार बुद्धि में वर्तमान बन्ध-मोक्ष पुरुष में कहे जाते हैं क्योंकि उनके फल का भोक्ता स्वामी होता है। इस प्रकार बुद्धि में वर्तमान ग्रहण-ज्ञान, धारणा-स्मृति, ऊहा=ऊहा, अपोह=अज्ञान का निराकरण, तत्त्वज्ञान, अभिनिवेश-मृत्युभय पुरुष में कहे जाते हैं।

इसमें भाष्यकार के दो विशेष शब्द बुद्धिकृतौ, बुद्धावेव वर्तमानौ ध्यान देने योग्य हैं। ये सुख दुःख बुद्धि के द्वारा-बुद्धि की वृत्ति से उत्पन्न होते हैं और बुद्धि में ही रहते हैं। इससे असन्दिग्ध रूप से सिद्ध हो गया है कि सुख-दुःख जीवात्मा में हैं ही नहीं। जो जीव में कहे जाते हैं वे नैमित्तिक हैं आरोपमात्र हैं। इसी प्रकार महर्षि कपिल पुरुष के लक्षण को बतलाते हुए लिखते हैं कि—**भोक्तृभावात्** ॥१।१४३॥

भोक्तृभाव होने से। अर्थात् भोज्य पदार्थों को देखकर इनके भोक्ता का ज्ञान होता है। इसी प्रकार शरीरादि महत्त्वपर्यन्त भोग्य पदार्थों को देखकर अनुमान प्रमाण से भोक्ता का ज्ञान होता है। प्रकृति भोक्ता नहीं हो सकती संहत होने से। इस प्रकार पुरुष की सिद्धि हुई।

यह ध्यातव्य है कि पुरुष भोक्ता है। चिदवसानो भोगः सां०१।१०४॥ सुख दुःख रूपी भोग का पर्यवसान जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है वह चित्-पुरुष है। भोक्ता पुरुष है। भोग्य प्रकृति है। यह सिद्ध है। सुख दुःख ही भोग्य हैं। इससे भिन्न भोग्य और कुछ नहीं है। यदि पुरुष में सुख दुःख को स्वाभाविक मानें तो पुरुष स्वयं ही भोक्ता होगा और स्वयं ही भोग्य। पुरुष स्वयं भोक्ता और भोग्य होने से जड़ से विलक्षण न होता। तब पुरुष को जड़ से भिन्न तत्त्व सिद्ध करने के लिए भोक्तृत्व यह हेतु असम्भव होने से दिया ही नहीं जा सकता। यदि दिया जाता तो अनैकान्तिक होता। इससे सिद्ध है कि भोग्य सुख दुःख जीवात्मा के स्वाभाविक गुण नहीं हो सकते। जीवात्मा सुख दुःख से रहित होने से ही भोक्ता है। पुरुष में सुख दुःख मानेंगे तो पुरुष को भोग्य से कोई पृथक् नहीं कर सकता क्योंकि वह अपने में विद्यमान सुख को भोगता ही है। इसलिए वह भोक्ता भोग्य दोनों होगा। अपने में विद्यमान सुख को भोगता है तो क्या वह सुख के लिए प्रयत्न करता है? क्या आत्मस्थ सुख-आत्मा में विद्यमान नित्य सुख की अपेक्षा विषय जनित क्षणिक एवं दुःख मिश्रित सुख को श्रेष्ठ मानता है? संसार में ऐसा कोई नहीं होगा जो आत्मस्थ नित्य सुख के रहते हुए क्षणिक एवं दुःखमिश्रित परस्थ-जड़स्थ-सुख को चाहे।

यदि यह मान भी लिया जाए कि आत्मस्थ सुख को भोगता हुआ बाह्य विषय सुख को चाहेगा तो बाह्य सुख को क्यों चाहता है इसका कारण बतलाना पड़ेगा। यह भी बतलाना पड़ेगा कि दोनों सुखों को पर्याय से भोगता है वा एक साथ आत्मस्थ नित्य सुख को किस प्रकार भोगता है उस भोग के प्रकार को भी बतलाना पड़ेगा। अस्तु।

यदि दुःख को जीव का स्वाभाविक गुण मानेंगे तो जीव से पृथक होगा भी नहीं। द्रव्यगत नित्यगुण यावद्-द्रव्यभावी होते हैं उसके दूरीकरण के लिए प्रयत्न करना, प्रयत्न करने के लिए उपदेश करना दोनों ही व्यर्थ हैं। प्रत्यक्ष भी इसके विरुद्ध है। समस्त प्राणी दुःख निवृत्ति के लिए प्रयत्न करते हुए दिख रहे हैं। **स्वभावस्यानपायित्वात् अननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्, नाशक्योपदेशविधिरुप-दिष्टेऽप्यनुपदेशः** ॥ सां०१।८,९॥ स्वभाव दूर नहीं होता। अनुष्ठान के अयोग्य उपदेश का कोई मूल्य नहीं, अशक्य कर्तव्य का कोई उपदेश नहीं करता। उपदेश करने पर भी वह उपदेश न करने के समान है।

जैसा कि ऊपर बतलाया है इस पक्ष में बड़ा दोष होगा कि सुख दुःख को जीवात्मा का स्वाभाविक गुण मानेंगे तो उस सुख दुःख को भोगने वाला भी वही होगा। तब वही भोक्ता होगा और वही भोग्य। स्वयं भोक्ता स्वयं भोग्य का मन्तव्य किसी को मान्य नहीं होगा। यह पक्ष यत्किञ्चित् है।

महर्षि व्यास ने "**परिणामतापसंस्कारदुःखै**........२/१५ के भाष्य में लिखा है कि "**तदस्य महतो दुःखसमुदायस्य प्रभवबीजमविद्या। तस्याश्च सम्यक् दर्शनमभावहेतुः**"........ अर्थ—इस महान् दुःख समुदाय का उत्पत्ति कारण अविद्या है और सम्यक् दर्शन-यथार्थ ज्ञान इस अविद्या को दूर करने का हेतु है।

इससे सिद्ध होता है कि दुःख नित्य नहीं है उसका विनाश होता है, इससे सुख दुःख जीव के स्वाभाविक गुण नहीं हैं यह सिद्ध हो गया।

अपने में विद्यमान सुख को भोगने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु लोक में हम इससे विरुद्ध देखते हैं। समस्त प्राणी सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। इस सर्वलोक प्रसिद्ध सत्य को कैसे मिथ्या कहें?

महर्षि दयानन्द सरस्वती सुख दुःख को जीव के नैमित्तिक गुण मानते हैं स्वाभाविक नहीं। इस विषयक उन्हीं के वाक्यों को उद्धृत करता हूँ।

(क) सब जीव स्वभाव से सुख प्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग होना चाहते हैं परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उनको सुख का मिलना और दुःख का छूटना न होगा, क्योंकि जिसका कारण अर्थात् मूल होता है वह कभी नष्ट नहीं होता।

(स०प्र०४ समु०)

(ख) एक ही धर्म का फल जो सुख और अधर्म का जो दुःखरूप फल उसको भोगता है। (स०प्र०४ समु०)

इससे सिद्ध होता है कि दुःख छूटने योग्य है और दुःखफल भोग है। भोक्ता से भिन्न है। ऋषि के मन्तव्यानुसार सुख दुःख जीव के नैमित्तिक गुण हैं स्वाभाविक नहीं। इस प्रकार के प्रमाण बहुत हैं। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि सुख दुःख जीव के स्वाभाविक गुण नहीं हैं केवल नैमित्तिक हैं। जहाँ कहीं भी ये जीव के गुण कहे गये हैं वहाँ सर्वत्र नैमित्तिक मान कर कहे गये हैं। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

सुख-दुःख जीवात्मा के गुण हैं, प्रकृति के नहीं

—आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय एम० ए०

अब हम जीव के सर्वगुण समन्वित वेदमन्त्रों के प्रभाव से प्रमेय का ज्ञान करते हैं—

नूचित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः । विसाधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥

॥ १ ॥

सपदार्थान्वय :—हे मनुष्यो (यत्) जो (चित्) विद्युत् के समान स्वप्रकाश (अमृतः) स्वरूप से नाशरहित (सहोजाः) बल का उत्पादन करने हारा (होता) कर्मफल का भोक्ता सब मन और शरीरादि का धर्त्ता (दूतः) सब को चलाने हारा (अभवत्) होता है (देवताता) दिव्य पदार्थों के मध्य में दिव्य स्वरूप (साधिष्ठेभिः) अधिष्ठानों से सह वर्तमान (पथिभिः) मार्गों से (रजः) पृथिवि आदि लोकों को (नु) शीघ्र बनाने हारे (विवस्वतः) स्वप्रकाश स्वरूप परमेश्वर के मध्य में वर्तमान होकर (हविषा) ग्रहण किए हुए शरीर के सहित (नि-तुन्दते) निरन्तर जन्म-मरण आदि में पीड़ित होता और अपने कर्मों के फलों को (विवासति) सेवन और अपने कर्म (व्याम में) सब प्रकार से वर्त्तता है। सो जीवात्मा है ऐसा तुम लोग जानो॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य लोगो! तुम अनादि अर्थात् उत्पत्ति रहित, सत्यस्वरूप, ज्ञानमय, आनन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, स्वप्रकाश, सब को धारण और सब विश्व के उत्पादक देश, काल और वस्तुओं के परिच्छेद से रहित और सर्वत्र व्यापक परमेश्वर में नित्य, व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध से जो अनादि नित्य, चेतन अल्प एकदेशस्थ और अल्पज्ञ है। वही जीव है ऐसा निश्चित जानो॥ १॥

आस्वद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति। अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत्।

॥ २ ॥

हे मनुष्यो! तुम जो (युवमानः) संयोग और वि[भाग] कर्त्ता (अजर) जरादिरोग रहित देह आदि की (अविष्य[न्]) रक्षा करने वाला होता हुआ (अतसेषु) विस्तृत आ[काश] पवनादि पदार्थों में (तिष्ठति) स्थित होता (प्रुषितस्य) परमात्मा में कार्य का सेवन करता हुआ (न) जैसे (अत्[यः]) घोड़ा (पृष्ठम्) अपनी पीठ पर भार को वहाता है वैसे दे[ह] को वहाता है (न) जैसे (दिवः) प्रकाश से (सानु) प[र्वत] के शिखर वा मेघ की घटा प्रकाशित होती है वैसे (रोच[ते]) प्रकाशमान होता है जैसे (स्तनयन्) बिजुली शब्द करती वैसे (अचिक्रदत्) सर्वथा शब्द करता है जो (स्वम्) अ[पने] किए हुए (अद्म) भोक्तव्य कर्मों को (तृषु) शीघ्र (अ...) सब प्रकार से भोगता है वह देह का धारण करने वाला ... है॥ २॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है ... पूर्ण ईश्वर ने धारण किया, आकाशादि तत्त्वों में प्रयत्न... सब बुद्धि आदि का प्रकाशक, ईश्वर के न्याय नियम ... अपने किए शुभाशुभ कर्म के सुख दुःख स्वरूप फल ... भोगता है सो इस शरीर में स्वतन्त्र कर्त्ता भोक्ता जीव ... ऐसा सब मनुष्य जानें।

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः । रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥

हे मनुष्यो! तुम जो (रुद्रेभिः) प्राणों और (वसु[भिः]) वास देने हारे पृथिवी आदि पदार्थों के साथ (निसत्तः) ... चलता फिरता (होता) देहादि का धारण करने ... (पुरोहितः) प्रथम ग्रहण करने योग्य (रयिषाड्) धन का ... कर्त्ता (अमर्त्यः) मरण धर्म रहित (क्राणा) कर्मों का ... (ऋञ्जसानः) जो किए हुए कर्म को प्राप्त होता (वि[क्षु]) प्रजाओं में (रथो न) रथ के समान शरीर सहित ... (आयुषु) बाल्यादि जीवनावस्थाओं में (अमानुषक्) अनु...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वर्तमान (वार्या) उत्तम पदार्थ और सुखों को (व्युण्वति) विविध प्रकार सिद्ध करता है वही (देवः) शुद्ध प्रकाश स्वरूप जीवात्मा है, ऐसा जानो॥ ३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है, जो पृथिवी में प्राणों के साथ चेष्टा, मन के अनुकूल रथ के समान शरीर के साथ क्रीड़ा, श्रेष्ठ वस्तु और सुख की इच्छा करते हैं वे सब जीव हैं। ऐसा सब लोग जानें॥ ३ ॥

विवातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर॥ ४॥

हे (रुशदूर्मे) अपने स्वभाव की (उर्मियां-ज्वालाएं) लहरीयुक्त (अजर) स्वयं जरादिदोष रहित (अग्ने) बिजुली तुल्य वर्तमान जीव। जो तू (अतसेषु) आकाशादि व्यापक पदार्थों (व्याप्तव्य तृण काष्ठ भूमि जलादि) में (तिष्ठते) ठहरता (यत्) जो (वातजूतः) वायु का प्रेरक और वायु के समान वेग वाला (तुविष्वणिः) बहुत पदार्थों का सेवक (जुहूभिः) ग्रहण करने के साधन रूप क्रियाओं और (सृण्या) धारण तथा हनन-रूप बलवान् होता है जिससे (ते) तेरे (कृष्णम्) कर्षण रूप गुण को हम लोग (एम) प्राप्त होते हैं सो तू (वृथा) वृथा अभिमान को छोड़कर अपने आत्म स्वरूप को जान॥ ४॥

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः॥
॥५॥

हे मनुष्य लोगो! जो (वंसगः) भिन्न भिन्न पदार्थों को प्राप्त होता (वातचोदितः) प्राणों से प्रेरित (तपुर्जम्भः) जिसका मुख के समान प्रताप वह जीव अग्नि के सदृश जैसे (यूथे) सेना में (साह्वान्) सहनशील जीव (आववाति) सब शरीर को चेष्टा करता है जो विस्तृत होके दुःखों का हनन करता जो (अभिव्रजन्) जाता आता हुआ (चरथम्) चरने हारे (अक्षितम्) क्षयरहित (रजः) कारण के सहित लोक समूह को (पाजसा) बल से धरता जो (स्थातुः) स्थिर वृक्ष में बैठे हुए (पतत्रिणः) पक्षी के समान (भयते) भय करता है। सो तुम्हारा आत्मस्वरूप है इस प्रकार तुम लोग जानो।

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार, प्राण अर्थात् दश वायु इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्रादि दश इन्द्रियों का प्रेरक इनका धारण और नियन्ता स्वामी, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख ज्ञानादि गुण वाला है, वह इस देह में जीव है ऐसा निश्चित जानो।

इन सब मन्त्रों का अभिप्राय यह है कि अनादि, नित्य, चेतन, अल्प-एकदेशस्थ, अल्पज्ञ, विद्युत् के समान स्वप्रकाश, शुद्ध अपने स्वरूप से जीर्णावस्था रहित होने से अजर, क्षय रहित होने से अक्षय, नाशरहित होने से अमर, ईश्वर के न्याय नियम से अपने किए शुभ अशुभ कर्म के सुख दुःख स्वरूप फल का भोक्ता, आकाश-भूमि जल पवनादि तत्त्वों में प्रयत्न कर्त्ता, सब बुद्धि आदि का प्रकाशक, मन शरीरादि का धर्त्ता व चालक तथा ग्रहण किए हुए शरीर से सहित निरन्तर जन्म मरण आदि में पीड़ित होने वाला, संयोग विभाग कर्त्ता, यथा अश्व अपने पीठ पर भार वहन करता वैसे देहादि का वाहक, विद्युत् जैसे शब्द करती है वैसे शब्द करने वाला, अतिथि के सदृश देह देहान्तर प्राप्त कर्त्ता, शरीर में जागृत, स्वप्न व सुषुप्ति का भोक्ता, स्थिर वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी के समान भय करने वाला, शरीर पृथिवी आदि में प्राणों के साथ चेष्टा व मन के अनुकूल रथ के समान शरीर के साथ क्रीडा, सुख की इच्छा वा दुःख का त्याग करने वाला, अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार, प्राण अर्थात् प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय दश वायु, इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्रादि दश इन्द्रियों का प्रेरक इनका धारक, नियन्ता स्वामी, वायु के समान वेग वाला कर्षणादि गुण युक्त शरीर में कर्मों का स्वतन्त्र कर्त्ता सुखदुःख इच्छाद्वेष प्रयत्न ज्ञानादि गुण वाला जो अनादि अर्थात् उत्पत्ति रहित, सत्यस्वरूप, ज्ञानमय, आनन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, स्वप्रकाश सब को धारण और विश्व के उत्पादक, देश, काल, वस्तु परिच्छेद से रहित और सर्वत्र व्यापक परमेश्वर में नित्य व्याप्य व्यापक सम्बन्ध से वर्त्तमान रहता है, वह जीव है।

स्वतः प्रमाण वेद का प्रमाण उपस्थित होने के पश्चात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब भ्रान्तियाँ निर्मूल हो जानी चाहिए। यद्यपि इसके अलावा भी अन्य प्रमाण भी वेदों में उपलब्ध हैं पुनरपि अन्यों की आवश्यकता नहीं।

अब वेदों से अनुस्यूत एक दार्शनिक विधा जिसे अन्वय-व्यतिरेक का सिद्धान्त कहते हैं, उसके आधार पर सुखदुःख जीवात्मा के ही गुण हैं, सिद्ध किया जाता है। अन्वय-व्यतिरेक का बल इतना प्रबल है कि जिसके रहते मिथ्या सिद्धान्त से निर्मित प्रिय आकर्षक भव्य भवन भी ध्वस्त हुए बिना नहीं रह सकता। यह अन्वय-व्यतिरेक क्या है? किसी पदार्थ के होने पर किसी पदार्थ का होना अन्वय कहलाता है और किसी पदार्थ के न रहने पर किसी पदार्थ का न होना व्यतिरेक कहलाता है। जैसे—सूर्य के होने पर प्रकाश का होना और सूर्य के न होने पर प्रकाश का न होना।

आत्मा इतना सूक्ष्म है कि बिना त्रैगुण्यावस्था के इसका कोई लक्षण स्थापित नहीं हो सकता है। अतः उक्त सुखदुःखेच्छादि सभी गुण सशरीर प्रकाशित होते हैं। जब तक आत्मा देहान्तर्गत रहता है तभी तक इन गुणों का प्रकाश व प्राकट्य होता है। आत्मा के न रहने पर शरीरादि में इन गुणों का अभाव दिखाई देता है। यही अन्वय-व्यतिरेक है।

इसी सिद्धान्त के आधार पर ऋषि ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार लिखा है—

"इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी क्योंकि वह स्थूल नहीं है। जब तक आत्मा इस देह में रहता है तभी तक ये गुण प्रकाशित होते हैं। और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। **जिसके होने से जो हो और न होने से जो न हो वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।** यह गुण-गुणी का विज्ञान भी कहाता है। यह कार्य कारण भाव, अन्वय व्यतिरेक की सुदृढ़ लौह रज्जु से सम्बद्ध है, इस शक्तिशालिनी शृंखला को तोड़ना सुखदुःख को प्रकृति के गुण बताने वालों की शक्ति से सर्वथा बाहर की बात है।

इस अन्वय-व्यतिरेक के माध्यम से यह सिद्ध है कि सुखदुःख जीवात्मा के ही गुण हैं—मृतेष्वनुपलम्भात्, यत्... तन्नैवमिति।

आत्मा सब का द्रष्टा, सुख दुःख का भोक्तानुभवी... और यह प्रसिद्ध शरीर भोगायतन है। इन्द्रियाँ भोगक्रियाक... चक्षु आदि पंचकर्मेन्द्रियों का बाह्य क्रिया करणत्व भोग सा... है। भोक्तव्य अर्थात् शब्द, रूप, रस, गन्धादि अर्थ वि... अर्थात् इन्द्रियों के विषय हैं। और आत्मा का भोग अर्थ... सुख दुःखादि का ज्ञान है, वह बुद्धि है। इन्द्रियों का सर्ववि... ज्ञान जनन में सामर्थ्याभाव से सर्वविषयक ग्राहक अन्तःक... मन है। जो सब इन्द्रियों का प्रकाशक है। पदार्थों को उद्दे... करके वह जैसे पदार्थ की ईप्सा वा जिहासा के द्वारा आत्... का पदार्थ प्राप्ति वा परित्याग के उपाय के अनुष्ठान स्वरू... समीहा चेष्टा या प्रवृत्ति कहाती है। आत्मा की जहाँ चेष्... होती है वह शरीर कहाता है। अतः यह चेष्टा का आश्र... हैं। शरीरानुविधान ही इन्द्रियों का अर्थाश्रयत्व है न ... आधार-आधेय भाव से इन्द्रियाँ शरीर में रहती है। अर्थाश्रय... क्या है? कैसे? अर्थात् गन्धादि भोग्य पदार्थ पुष्पादिनि... है और तज्जन्य सुखादि आत्मनिष्ठ होते हैं शरीरस्थ नहीं... यह जिज्ञासा है। इसका उत्तर है—शरीर में स्थित आत्... की चेष्टा संभव होने से। जिस शरीर स्थित आत्मा ... इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से उत्पन्न दोनों अर्थ पदवाच्य सुख दुः... के प्रत्येक ज्ञान द्वारा स्मरण या भोग से है। यह आत्मा प्रवृत्ति... होता है। इस हेतु से शरीर का अर्थाश्रयत्व है कि वा शरी... में ठहर कर ही सुखाद्यर्थ भोग संभव होने से शरीर ... अर्थाश्रयत्व है। गन्धादि अर्थ-विषय शरीर की वृत्तियाँ न... हैं अपितु उनका कार्य सुख दुःखोपलब्धि निमित्तत्व उस शरी... में होता है। इसलिए शरीराश्रय कहे जाते हैं। अर्थ शब्द ... विषय व तज्जन्य भोग ग्रहण करने योग्य है। सुखादि भो... करण जो इन्द्रियाँ हैं वे घ्राण रसन चक्षु त्वक् श्रोत्र यथासं... पृथिव्यादि महाभूतों के कार्य हैं। जिससे गन्ध सूँघता है वह घ्राण, जिससे रस लेता है वह रसन, जिससे देखता है वह चक्षु, जिससे स्पर्श करता है वह त्वक्, जिससे सुनता है वह श्रोत्र। यह लक्षण इन इन्द्रियों व मन में उत्पन्न न...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता। हेतु यह है कि उन इन्द्रियों के गन्धस्पर्शरूपादि सुख दुःख ज्ञानों में यथायथ करणत्व से क्रियाओं के सकरणकत्व नियम से और करणों के सकर्तृकत्व नियम से ज्ञानादि क्रियाओं का कर्त्ता एक आत्मा ही है। अतः जिघ्रति आदि क्रियाओं का कर्त्ता देहेन्द्रियप्राणान्तःकरण भिन्न चेतन आत्मा है, अनेक अर्थों के युगपत् संधातृत्व से।

दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात्॥

(न्याय ३। १। १)

मैंने जो श्रोत्र से सुना उसको चक्षु से देखता हूँ। मैंने जो आँख से देखा उसको हस्त से स्पर्श करता हूँ। मैंने जो हस्त से स्पर्श किया उसके रसना से चखता हूँ। मैंने जो रसना से चखा उसको घ्राण से सूँघता हूँ। मैंने जो घ्राण से सूँघा उसको मन से जानता हूँ। मैंने जो मन से जाना उसको चित्त से स्मरण करता हूँ। जो चित्त से स्मरण किया उसको बुद्धि से निश्चय करता हूँ। जो बुद्धि से निश्चय किया उसको अंहकार से मान कर इत्यादि प्रत्यभिज्ञा के साथ वर्त्तमान जो है वही आत्मा अहंस्वरूप सब से पृथक् जीवात्मा है। क्यों? जो अपने अपने विषय में वर्त्तमान अन्य विषय से भिन्न में वर्त्तने हारे श्रोत्रादिकों के द्वारा पृथक् पृथक् गृहीत शब्दादि विषयों के सुख दुःखादि ज्ञानों में वर्तमान समय में जो सन्धाता है वही जीव है। अन्य दृष्ट का अन्य स्मरण नहीं करता। न श्रोत्र के स्पर्श ग्रहण में साधकत्व है। न त्वचा के शब्द ग्रहण में, परन्तु श्रोत्र के द्वारा श्रुत पदार्थ है उसी को हस्त से स्पर्श करता हूँ जिसका पूर्वकाल दृष्ट है उसी का अनुसन्धान के द्वारा पुनः उसी विषय की प्रत्यभिज्ञा से वर्तमान में दर्शन है। वह उभयदर्शी सर्वसाधनों के द्वारा अभिव्यापक सर्वाधिष्ठाता का सुख दुःखादि की ज्ञानस्वरूपता ही जीव का धर्म है। ऐसा निश्चय से जानना चाहिए। एवमादिप्रकार से बहुत आप्त आर्यों के वेदशास्त्र बोध समाधियोग विचार से जीव के स्वरूप का ज्ञान हुआ है। (महर्षि दयानन्द)

इससे भिन्न महाभारत में मोक्षधर्म्मान्तर्गत भरद्वाज की उक्ति देखिए— '**मानसोऽग्निर्जीव इति**' अर्थात् **यो मनस्यन्तःकरणे भव इच्छादिज्ञानान्तसमूहप्रकाशसमवेतः पदार्थोऽस्ति तस्य जीवसंज्ञेति बोध्यम्। अयं खलु देहेन्द्रिय-प्राणान्तःकरणाद्भिन्न श्चेतनोऽस्ति।** जो अन्तःकरण में होने वाले इच्छादि ज्ञानान्त समूह प्रकाश समवेत पदार्थ हैं उसी की संज्ञा जीव है। यह निश्चय से देहेन्द्रिय प्राणान्तःकरण भिन्न चेतन है। इससे भी सिद्ध हुआ ये सुख दुःखादि गुण जीव के ही हैं। सुश्रुत का प्रमाण भी देखिए: जिसमें सुखदुःख जीव के ही लक्षण स्थापित किए हैं—

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराः षोडशैव तु।
क्षेत्रज्ञश्च समासेन स्वतन्त्रपरतन्त्रयोः॥
सुश्रुत शारीरस्थान १। २३।

तस्य सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नाः प्राणापाना-वुन्मेषनिमेषौ बुद्धिर्मनः सङ्कल्पो विचारणास्मृतिर्विज्ञान-मध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च गुणाः। (सुश्रुतशा० १। १८)

संक्षेप में आठ प्रकृतियाँ और १६ विकार कहे गए हैं और क्षेत्रज्ञ जीवात्मा भी। उस जीवात्मा के सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राण, अपान, उन्मेष, निमेष, बुद्धि, मनन शक्ति, संकल्प, विचारणा, स्मृति, विज्ञान, अध्यवसाय और विषय की उपलब्धि ये गुण हैं।

वैशेषिक में पूर्वपक्षी की ओर शंका उठाते हुए कि सुखदुःख ज्ञान की निष्पत्ति हर एक आत्मा को एक सी होती है अतः आत्मा का एकत्व है। इस पर सूत्र है—

सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम्।

(वै० ३। २१। १)

इसके परिहार में समाधानार्थ उत्तर पक्ष में '**व्यवस्थातो नाना**' सूत्र देकर कहा कि सुख दुःख आदि की व्यवस्था से नाना है, आत्मा का एकत्व नहीं। कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई उत्पन्न होता, कोई मरता इत्यादि भेद पाये जाने से जीव नाना हैं। इस कथन से भी सुख, दुःख जीव के गुण हैं। यह सिद्ध हुआ।

इतने पर भी कोई कहे कि सुख, दुःख जीवात्मा के गुण नहीं होंगे कर्म निरपेक्ष मत सिद्ध होगा। प्रत्यक्ष, आगम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व अनुमान विरोध होने से। सांसारिक शरीरादि पदार्थों की उत्पत्तियों का कर्म निरपेक्षत्व स्वीकार करने में '**अकृताभ्यागम दोष**' अर्थात् फलभोग में निर्हेतुकत्व आपत्तिदोष होगा। शरीरादिकों की उत्पत्तियों का निर्हेतुकत्व साध्य है, सिद्ध नहीं है। क्योंकि इस मत की पुष्टि में प्रत्यक्षादि प्रमाण नहीं होने से साध्यसमदोष हैं। कर्मनिरपेक्षत्व मत में सुख दुःखादिक सब अकारण होंगे जो युक्त नहीं हैं। कार्यभाव के सकारणत्व नियम से। प्रत्यात्मवेदनीय होने से यह सुख दुःख भिन्न हैं। यह प्रत्यक्ष है। वहाँ अकृताभ्यागम पक्ष में सुख दुःखादि के निर्हेतुकत्व के द्वारा भेद संभव नहीं है। कारण भेद के बिना कार्य भेद की अनुपपत्ति से। सुखादिकों के भेद क्या हैं? कुछ सुखादिक तीव्र हैं, कुछ मन्द हैं, कुछ चिरस्थायी हैं, कुछ अचिरस्थायी हैं। कर्मों के तीव्रत्व मन्दत्व से सुखादिकों के तीव्रत्व मन्दत्व में कर्मसंचयों के उत्कर्ष और शीघ्र अपकर्ष से चिर सुखादिक होते हैं। कर्मों के नानाविधत्व से सुखादि का नाना प्रकारत्व तथा एकविधत्व होने से एक प्रकारत्व उपपन्न होगा। हेतु भेद के बिना अर्थात् कर्मों के भेद अभाव से-कर्मों के अकारणत्व से प्रत्यक्ष सुख दुःख के भेद भी संभव नहीं हो सकते। कार्य भेद का कारण भेद के अधीन होने से। यह प्रत्यक्ष विरोध है।

पुरुष गुण अर्थात् आत्मा के गुणभूत यत्न की व्यवस्था से सुख दुःख की व्यवस्था है। यत्नानुसार सुखादिक होता है। यह ज्ञानवान् जीव सुखसाधन साध्य को जानकर उस सुख को चाहता हुआ सुख साधन की प्राप्ति के लिए यत्न करता है, वह सुख को प्राप्त करता है, विपरीत नहीं। जो जीवात्मा किसी साधन के द्वारा निवर्त्तनीय दुःख को जानकर दुःख निवृत्ति की इच्छा वाला दुःख साधन के परित्याग के लिए यत्न करता है वह दुःख से छूट जाता है, विपरीत नहीं। यह सुख दुःख व्यवस्था चेतनों के यत्न के बिना संभव नहीं है। यहाँ सुख दुःख यत्नानुसार सिद्ध हुआ। पुरुष गुणभूत यत्न के बिना सुखादिक संभव नहीं हैं। वैसे ही वह यत्न भी विविधरूप होने से चेतन गुणान्तरभूत कर्म के बिना संभव नहीं है। कर्म के द्वारा अनुमान सिद्ध है। अतः ये सुख दुःख जीवात्मा के हुए। आगम विरोध भी पूर्व दिए प्रमाणों से जानना चाहिए। और इस प्रकार भी—

स्ववर्णाश्रम आनुकूल्य से अनुष्ठानलक्षणा जो प्रवृत्ति है, वही धर्मोपदेशफल है, जैसे सोमयागादि में ब्राह्मण का अधिकार है, राजसूय में क्षत्रिय राजा का, गृहस्थ धर्मों में गृहस्थ का ही अधिकार है। स्ववर्णाश्रमानुकूल्य से जो परिवर्जन लक्षण जो निवृत्ति है, वही अधर्मोपदेशफल है यथा ब्राह्मण के द्वारा मद्यपानादि त्याज्य है और ब्रह्मचारियों के द्वारा भी मद्यपानादि त्याज्य है। यह आगम है। यह कहकर विरोध प्रदर्शित करते हैं। पुरुषों के सुख दुःख योग पुण्य रूप और पापरूप कर्महेतुक नहीं हैं अर्थात् कर्म नहीं है। यह प्रवृत्ति लक्षण उपदेशफल का विरोध है। क्योंकि पुण्य पाप के अभाव में उसकी प्रवृत्ति दोनों के असंभव होने से। किंवा कर्म नहीं है, कर्मफल नहीं है, दोनों का आगम के द्वारा विरोध किया जाता है। और भी ऋषियों के धर्माधर्म प्रतिपादन करने से **नास्ति कर्मसुचरितं दुश्चरितं वा,** इस नास्तिक दर्शन मत में कर्मनिमित्त से सुख दुःख योग है इस हेतु से विरोध है। सो यह पापिष्ठियों की मिथ्यादृष्टि ही है कि सुख दुःख अकर्म निमित्त है। हेतु यह है कि सुख दुःख कर्म निमित्त होने से अकर्म निमित्तकत्व स्वीकार्य नहीं हो सकता है। प्रकृति के गुण मानने में प्रत्यक्ष, अनुमान व आगम विरोध होने से नास्तिकत्व ही सम्पादित होता है।

अन्त में एक उदाहरण चरक ऋषि का उद्धृत कर इस प्रकरण को विराम देते हैं :—

शरीरं हि गते तस्मिन् शून्यागारमचेतनम्।
पञ्चभूतावशेषत्वात्पञ्चत्वं गतमुच्यते॥ चरक शा० १/८३

उस चेतन जीव के शरीर से निकल जाने पर शून्यागार अचेतन यह शरीर केवल पंचभूत मात्र अवशिष्ट रहने से पंचत्व को प्राप्त हुआ मृत अर्थात् निश्चेष्ट, निष्क्रिय सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष प्रयत्न-ज्ञानादि गुणों से रहित कहा जाता है। सिद्ध है कि सुखदुःख जीवात्मा के ही गुण हैं। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष ''दयानन्दसन्देश'' पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुंचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनायें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

८७७ पं० मनुदेव अभय सम्पादक युग प्रभात, साप्ताहिक अ 13 सुदामा नगर, इन्दौर (एम०पी०)
८७८ श्री डा० बालकृष्ण वर्मा C/o गायत्री एक्सचेंज एण्ड पैथोलोजी सैंटर, रेलवे रोड, नजीबाबाद, जि० बिजनौर
८७९ श्री मंत्री जी आर्यसमाज डा० राजेन्द्रप्रसाद मार्ग, सैंट्रल एवेन्यु रोड, नागपुर, महा०
८८० श्री बृजकिशोर वानप्रस्थ, 114 आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर, हरिद्वार, यू०पी०
८८१ श्री मदनलाल सैनी, 1301, बाजार संगतराशान, पहाड़गंज, नई दिल्ली-55
८८२ श्री बालचन्द जी आर्य C/o श्री मंगतराम मु० विशोखर, पो. गोबिन्दपुरी, मोदीनगर, यू०पी०
८८३ श्री कालूराम आर्य, मु०पो० धोलड़ी जनपद मेरठ, यू०पी०
८८४ प्रियंवदा वेद भारती पुत्री श्री गोविन्दराम ओमनगर, नहर कालोनी के पीछे, नजीबाबाद, बिजनौर
८८५ श्री के०सी० जैन, एडवोकेट वार्ड नं० 13, मौड़ मंडी, जि० भटिण्डा, पंजाब
८८६ श्री प्रवीणकुमार मित्तल, C/o श्री विजेन्द्रपाल गुता, म०नं० 365, न्यू डिफेंस कालोनी, स्टेशन रोड, मुरादनगर, जि० गाजियाबाद
८८७ श्री प्रह्लाद परीदा C/o प्रह्लाद आर्य, सबलोक तंबाकू, प्लाट नं० 163, दुकान नं० 2, जी०टी०डी०सी पांडेशरा, सूरत, गुजरात
८८८ श्री नरेन्द्र जी शर्मा शास्त्री ग्राम खानपुर पो० कासना जि० बुलन्दशहर, ग्रेटर नौएडा
८८९ श्री जगदीशसिंह चौहान, भगवती आर्ष कन्या गुरुकुल जसात जि. गुड़गांव (हर०)
८९० श्री हरीशचन्द, डब्ल्यू.जैड 13/2, नांगल राया, दिल्ली-46
८९१ श्री प्रधान आरक्षक, 518, श्रीराम वर्मा सी समवाय 29वीं बटालियन, वि०स०बल कैम्प, विजयघाट, नई दिल्ली-66
८९२ श्री रामनिरंजन मंत्री आर्यसमाज मेन बाजार, नारायणगढ़, जनपद अम्बाला (हर०)
८९३ श्री विद्याराम विद्या भिक्षु गांधी मंडी सिरसागंज जनपद फिरोजाबाद, यू०पी०
८९४ श्री भूतेश्वरसिंह आर्य मु०पो० अस्करीपुर वाया हसुपुरा, जनपद बिजनौर, यू०पी०
८९५ श्री एल०पी० साहू, शिक्षक मु०पो० पोंडी (बचरा) भाया चिरमिरी जि० सरगुजा, एम०पी०
८९६ श्री सूर्यप्रकाश शर्मा C/o आदर्श पब्लिक स्कूल, न्यू डिफेंस कालोनी, रेलवे रोड, मुरादनगर, जि० गाजियाबाद, यू०पी०

धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/97
आर/आर/नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/2/97.

फरवरी १९९७

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/97

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।**

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आकर्षक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्यः लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान : **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष:- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में..........
ग्राम..........
डा०..........
जिला..........

मुद्रकः ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

दयानन्द-सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मार्च, १९९७

वर्ष २५ : अंक ५
दयानन्दाब्द : १७३
विक्रम संवत् : फाल्गुन, २०५३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९७

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०
वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

LIBRARY Gurukul Kangri Vishwavidyalaya HARDWAR

- होली की धूम २
- वेदोपदेश ३
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ ४
- शंका-समाधान ५
- श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी अपने लिखे पर पुनर्विचार करें ६
- नवान्न के आगमन और शीत समापन का सुखद पर्व-होलिकोत्सव ७
- उद्बोधन ८
- उपकार ही उपकार ९
- साहित्य-समीक्षा १०
- गुरु-दक्षिणा दण्डी स्वामी विरजानन्द को ११
- शिवरात्रि का सच्चा देवता और उसके निष्क्रिय अनुयायी १२
- सुख-दुःख प्रकृति के गुण नहीं १४
- मत व्यर्थ जाने देना १९
- द्विजों के लिए १९
- खुद को 'खुदी' ने खुदा को क्यों सौंपा? २०
- राष्ट्रीय एकता में आर्यसमाज का योगदान २३
- ईसाइयों से दो प्रश्न २५

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द ... जिल्द पन्द्रह सौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होली की धूम

—चन्द्रपालसिंह 'मयंक' एडवोकेट व नोटरी कानपुर

जाड़े का फीका पड़ा रंग!
है जन-जन के मन में उमंग!

मुस्करा उठे हैं वन-उपवन!
हंस दी धरती; हंस रहा गगन!

पेड़ों के पत्ते हुए नये!
हैं पीले पत्ते चले गये!

खिलकर कोमल सुकुमार फूल!
अपनी डालों पर रहे झूल!

भौंरे करते गुन··गुन··गुन··गुन!
हैं छेड़ रहे मतवाली धुन!

चुनिया-मुनिया हैं बड़ी मगन!
खिल रहे खुशी से उनके मन!

मोहन-सोहन- रजिया- पीटर!
घूमें रंग-पिचकारी लेकर!

है होली की मच गई धूम!
सब आज खुशी से रहे झूम!

हंसती-गाती आयी होली!
खुशियों की है लाई झोली!

यह हेल-मेल सरसाती है!
रस की वर्षा बरसाती है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—परमेश्वर की उपासना का सर्वोत्तम लाभ मेधाबुद्धि की प्राप्ति तथा शुद्ध विज्ञान का लाभ होना।

मेधाकामः ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यैरीश्वराद् बुद्धिर्याचनीयेत्याह॥

मनुष्यों को ईश्वर से बुद्धि की याचना करनी चाहिये, यह फिर उपदेश किया जाता है॥

ओ३म् **यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।**
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥

(यजु० ३२। १४)

पदार्थः—(याम्) (मेधाम्) प्रज्ञां धनं वा। मेधेति धननाम। (निघं० २।१०) (देवगणाः) देवानां=विदुषां समूहाः (पितरः) पालयितारो विज्ञानिनः (च) (उपासते) प्राप्य सेवन्ते (तया) (माम्) (अद्य) (मेधया) (अग्ने) स्वप्रकाशत्वेन विद्याविज्ञापकः। (मेधाविनम्) प्रशस्ता मेधा विद्यते यस्य तम् (कुरु) (स्वाहा) सत्यया वाचा॥

सपदार्थान्वयः—हे (अग्ने) विद्वन्! अध्यापक! जगदीश्वर! वा स्वप्रकाशत्वेन विद्या विज्ञापक! (देवगणाः) देवानां=विदुषां समूहाः (पितरः) पालयितारो विज्ञानिनः (च) (याम्) (मेधाम्) प्रज्ञां धनं वा (उपासते) प्राप्य सेवन्ते (तया) (मेधया) (माम्) (अद्य) (स्वाहा) सत्यया वाचा (मेधाविनम्) प्रशस्ता मेधा विद्यते यस्य तम् (कुरु)॥

भाषार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! अध्यापक! वा स्वप्रकाश स्वरूप होने से विद्या के विज्ञापक जगदीश्वर। (देवगणाः) विद्वानों के वृन्द (च) और (पितरः) पालन करने वाले विज्ञानी लोग (याम्) जिस (मेधाम्) प्रज्ञा अथवा धन को (उपासते) प्राप्त करके सेवन करते हैं (तया) उस (मेधया) प्रज्ञा वा धन से (माम्) मुझे (अद्य) शीघ्र (स्वाहा) सत्य वाणी से (मेधाविनम्) प्रशस्त मेधावाला (कुरु) बनाओ॥

भावार्थः—मनुष्याः परमेश्वरमुपास्याप्तं विद्वांसं संसेव्य शुद्धं विज्ञानं धर्मजं धनं वा प्राप्तुमिच्छेयुरन्यांश्चैवं प्रापयेयुः।

भाषार्थः—मनुष्य परमेश्वर की उपासना एवं विद्वान् की सेवा करके शुद्ध विज्ञान और धर्म से अर्जित धन को प्राप्त करने की इच्छा करें और दूसरों को भी इसी प्रकार प्राप्त करायें॥

अन्यत्र व्याख्यात—

(क) हे अग्ने! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान् ज्ञानी और योगी लोग करते हैं, उसी बुद्धि से युक्त हम को इसी वर्तमान समय में आप बुद्धिमान् कीजिये। (स०प्र० सप्तम समु०)

(ख) (यां मेधां) इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि हे परमात्मन्! आपकी कृपा से जो अत्यन्त उत्तम सत्य विद्या आदि शुभ गुणों को धारण करने के योग्य बुद्धि है, उससे युक्त हम लोगों को कीजिये कि जिसके प्रताप से देव अर्थात् विद्वान् और पितर अर्थात् ज्ञानी होके हम लोग आपकी उपासना सब दिन करते रहें। (स्वाहा) इस शब्द का अर्थ निरुक्तकार यास्क मुनि जी ने अनेक प्रकार से कहा है सो लिखते हैं कि—

(सु आहेति वा) सब मनुष्यों को अच्छा, मीठा, कल्याण करने वाला और प्रिय वचन सदा बोलना चाहिये। (स्वा वागाहेति वा) अर्थात् मनुष्यों को यह निश्चय करके जानना चाहिए कि जैसी बात उसके ज्ञान के बीच में वर्तमान हो, जीभ से सदा वैसा ही बोलें, उसके विपरीत नहीं (स्वं प्राहेति वा) सब मनुष्य अपने ही पदार्थ को अपना कहें दूसरे के पदार्थ को कभी नहीं अर्थात् जितना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना धर्मयुक्त पुरुषार्थ से उनको पदार्थ प्राप्त हो उतने ही में सदा सन्तोष करें। (स्वाहुतं हवि०) अर्थात् सर्व दिन अच्छी प्रकार सुगन्धादि द्रव्यों का संस्कार करके सब जगत् के उपकार करने वाले होम को किया करें और स्वाहा शब्द का यह भी अर्थ है कि सब दिन मिथ्यावाद को छोड़ के सत्य ही बोलना चाहिए। (ऋ०भा०भू० प्रार्थनायाचनासमर्पणविषय)

(ग) हे सर्वज्ञ अग्ने परमात्मन्! जिस विज्ञानवती, यथार्थ धारणा वाली बुद्धि को देव (विद्वानों) के वृन्द (उपासते) धारण करते हैं तथा यथार्थ पदार्थ विज्ञान वाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं, उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझ को मेधावी कर। "स्वाहा" इस को आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो। (आर्याभिविनय २।५३)

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता-श्री **आचार्य सुदर्शनदेव**

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

आशा है कि आप स्वस्थ व सानन्द होंगे। **'दयानन्द-सन्देश'** एक उत्कृष्ट कोटि की पत्रिका है। पाखण्ड तथा अज्ञान-निवारण में अद्वितीय है। इसका वेद विशेषांक मुझे इसी मास प्राप्त हुआ है। इसमें आप का वेद विषयक लेख बहुत ही गहन अध्ययन का सूचक है। आप जैसे कतिपय विद्वानों से ही आर्यसमाज कुछ गतिशील है। अन्यथा आर्यत्व रहा ही नहीं। आर्यसमाज के शास्त्रार्थ तथा पाखण्ड खण्डन के अभाव में अनेक मत-मतान्तरों की बाढ़ सी आ गई है। कुछ अनधिकारी लोग वेद पर लेखनी उठाकर वेदों के प्रति अनास्था उत्पन्न करने में लगे हैं। और उन लेखों को आर्यसमाज की ही पत्रिकाओं में ही छपवाया जा रहा है। परमेश्वर आपको दीर्घजीवी बनाये यही हमारा कामना है।

और वेदवाणी में पुरुषसूक्त का परिशीलन लेख छपा है। आप इसे अवश्य पढ़ें और उसकी समीक्षा भी करें। धन्यवाद।

दिनांक ६।१२।९६ —*धर्मदेव शास्त्री,*
खतौली, मु० नगर

आपका पत्र मिला। रसीद भी मिल गई। दिसम्बर का अंक भी मिल गया। पत्रिका में अपने नाम के अनुरूप लेख पढ़कर प्रसन्नता होती है। आपको पौन:पुन्येन धन्यवाद।

२७।१२।९६ *रामेश्वर,*
काठीपाली, ग्राहक संख्या आर-७३

आपसे विनम्र निवेदन है कि आप 'वेदप्रकाश' के जनवरी ९७ के अंक में प्रकाशित स्वामी जगदीश्वरानन्द जी द्वारा महर्षि के ग्रन्थों पर विरोधाभास मूलक टिप्पणी का उत्तर दयानन्दसन्देश में प्रकाशित कर आर्यजनता का मार्गदर्शन अवश्य करें।

रा.प्र.सुर्वे, ग्राहक संख्या आर-३३०

आप द्वारा भेजी गई 'मनु का विरोध क्यों' पुस्तक प्राप्त हुई। तदर्थ धन्यवाद। पुस्तक पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। प्रशंसा की बात यह है कि डॉ० सुरेन्द्रकुमार जी ने दिल्ली से राजस्थान जाकर उच्च न्यायालय में वाद कर स्टे (स्थगन) प्राप्त किया और मनु की प्रतिमा को न हटने दिया। इससे उनकी प्राचीन ऋषियों के प्रति आस्था परिचय और उनके गहन अध्ययन का पता लगता है। ऐसा करके उन्होंने आर्य जगत् व संस्कृति का गर्व से मस्तक उन्नत किया है। परेश से प्रार्थना है कि उन्हें दीर्घ जीवन व उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करें।

—नारायण सरस्वती
आर्य प्रतिनिधि सभा, मदुराई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका-समाधान

यज्ञ में चार मन्त्रों से तीन समिधाएँ क्यों

शंका—समिधा के चार मन्त्र हैं। फिर भी यज्ञ कुण्ड में तीन समिधा ही क्यों डाली जाती हैं? पौराणिक पण्डित तो चार डालते हैं।

समाधान—समिधा तीन और मन्त्र चार प्रकार यही ठीक है। यह विश्व ब्रह्माण्ड एक ईश्वरीय यज्ञ है। उसी की अनुकृति हमारा यज्ञ है। विश्व ब्रह्माण्ड यज्ञ की तीन समिधाएं हैं। एक पृथिवी, दूसरा अन्तरिक्ष और तीसरा द्यौ लोक। यज्ञ में जिन मन्त्रों से समिधाएं डालते हैं उन्हें सामिधेनी ऋचाएं कहते हैं। उपरोक्त ब्रह्माण्ड यज्ञ की तीनों समिधाओं की चार सामिधेनी ऋचाएं हैं। पृथिवी की सामिधेनी ऋचा अग्नि। अन्तरिक्ष की रूप समिधा की दो सामिधेनी—एक वायु और एक विद्युत्। ये दो ऋचाएं तथा द्यौ रूप तीसरी समिधा की सामिधेनी ऋचा सूर्य है। ठीक इसी प्रकार हमारे यज्ञ में पहली समिधा की सामिधेनी ऋचा एक, दूसरी समिधा की सामिधेनी ऋचा दो तथा तीसरी समिधा की सामिधेनी ऋचा एक है। समझे कि नहीं? सर्वत्र समिधा तीन और सामिधेनी ऋचा चार ही हैं। चाहे संस्कारविधि हो या कात्यायन श्रौतसूत्र। सर्वत्र पहली तीसरी तथा चौथी ऋचा से समिधा अग्नि में रखी जाती हैं और दूसरी ऋचा का मात्र जप करने का विधान है। प्रत्येक कार्य में मन्त्रों का विनियोग शाखाभेद से भिन्न-भिन्न अवश्य है। संस्कारविधि में पहला मन्त्र **अयन्त इध्म आत्मा०** मिला कर चार मन्त्र हैं तो कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार '**उप त्वा अग्ने दिवे दिवे,**' इस मन्त्र को चौथे स्थान में पढ़ा गया है। वहां भी ऐसा ही लिखा है कि प्रथम तृतीय तथा चतुर्थी ऋचा से तीन घृताक्त समिधाएं अग्नि में रखें और दूसरे मन्त्र का मात्र जाप करें।

आपने लिखा है कि पौराणिक पण्डित चार ही डालते हैं तो फिर आप भी वैसा ही कीजिए। पौराणिक पण्डित तो मूर्ति पूजा भी करते हैं, भंग भी पीते हैं, देवी पर बकरे भी चढ़ाते हैं, ईश्वर का अवतार भी मानते हैं, मृतक श्राद्ध भी करते हैं। जब आप उनका उदाहरण देते हैं तो फिर कहिए ये सब आर्यसमाजी क्यों नहीं करते?

मजबूती से दयानन्द का पल्ला पकड़ो, सुख पाओगे, अन्यथा अज्ञान सागर में गोते खाते रहोगे। करो वह जो दयानन्द ने बताया है। मानो वह जो दयानन्द ने कहा है। इसी में आपका कल्याण है। इधर-उधर देखना छोड़ के **दयानन्दः शरणं मम** का पाठ किया करो यदि कल्याण चाहते हो।

—स्वामी मुनीश्वरानन्द (परोपकारी से साभार)

२. श्री हीरालाल जी आर्य (रिवाड़ी) से लिखते हैं—

शंका—विवाह संस्कार में परिक्रमा के समय वर-वधू में से कन्या आगे रहे अथवा वर, इस विषय में उचित समाधान करें।

समाधान—यद्यपि लोगों में परम्परा यह है कि विवाह में प्रथम कन्या आगे चलती है और फिर वर। किन्तु यह ठीक नहीं है। शास्त्रों के अनुसार परिक्रमा में वर आगे और वधू उसका अनुगमन करे। परोपकारी के १२। १९९५ के अंक में श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी का लेख इस विषय में प्रमाण के योग्य है।

३. नजफ़गढ़ (दिल्ली) से श्री सत्यदेव शास्त्री लिखते हैं—

शंका—जीव एकदेशी व अल्पज्ञ है। तो क्या वह साकार भी है? यदि है तो उसका आकार कितना हो सकता है। यदि निराकार है तो परमात्मा की भांति विभु या सर्वव्यापक क्यों नहीं?

समाधान—जीव एकदेशी व अल्पज्ञ है और वह निराकार है विभु नहीं। महर्षि दयानन्द ने स०प्र० में यह बात स्पष्ट रूप में लिखी है। वहाँ देखकर जीव और ब्रह्म के स्वरूप को समझना चाहिये।

४. श्री आर०सी० सक्सेना शास्त्रीनगर (मेरठ) से लिखते हैं—

शंका—महर्षि-दयानन्द की दया लेख में (दिसम्बर ९६) विद्वान् लेखक ने लिखा है—एक समय जब महर्षि को विचार आया कि जिस लिए शरीर मिला था वह कार्य पूर्ण हो गया तो वे शरीर त्यागने के लिए पर्वत की चोटी पर कूदने को चढ़ गये। यह घटना कपोलकल्पित लगती है क्योंकि महर्षि को यजु० ४०। ३ का मन्त्र स्मरण नहीं आया कि आत्महत्या करना पाप है।

समाधान— यह बात सत्य है कि घटना सत्य नहीं है। इसके स्थान में अलखनन्दा को पार करते समय ऐसा विचार अवश्य आया था, परन्तु फिर ईश्वरीय प्रेरणा मिली कि, दयानन्द! अभी तो बहुत कार्य करने हैं। परन्तु महर्षि के जीवन की इस घटना में काल का बहुत अन्तर है। उस समय तक सद्ज्ञान का अभाव था।

—राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी—
अपने लिखे पर पुनर्विचार करें

'वेदप्रकाश' नामक पत्रिका के जनवरी, ९७ के अंक में श्री स्वामी जगदीश्वरनन्द जी सरस्वती लिखते हैं—'महर्षि तो चाहते थे कर्मकाण्ड में एकता। यहाँ आर्यसमाज में विविधता हो रही है। कुछ को पञ्च महायज्ञविधि का आग्रह है तो कुछ संस्कारविधि को अन्तिम ग्रन्थ मानकर केवल उसी की दुहाई देते हैं।'

इस लेख की असंगत बातें जो अत्यन्त विवादास्पद हैं—

१. **उत्तरोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्** इस वाक्य को संस्कार-विधि के पक्षधर उद्धृत करते हैं। यदि इस वाक्य पर स्वामी जी विचार करते तो भ्रान्तिग्रस्त न होते। इस वाक्य में षष्ठी विभक्ति निर्धारण में है। अर्थात् पाणिनि, पतञ्जलि और वार्तिककार इन तीनों मुनियों में पूर्ववर्ती के अपेक्षा परवर्ती प्रामाणिक है। यह वाक्य महाभाष्य के टीकाकार कैय्यट ने लिखा है। इस वाक्य की संगति ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों पर बिल्कुल चरितार्थ नहीं होती। क्योंकि महर्षि अनेक नहीं हैं। अतः स्वामी जगदीश्वरानन्द का यह कथन अयुक्तियुक्त एवम् असंगत है कि "**जिस सन्दर्भ का यह वचन है वहाँ ग्रन्थों की बात नहीं है, अपितु वार्त्तिककारों की बात है।**" यहाँ तो दोनों ही ग्रन्थ महर्षि कृत हैं।

२. **ओम् का प्रयोग**—इस विषय में आर्य विद्वान् एक मत नहीं हैं, यह तो सत्य है। परन्तु श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, जिन्हें व्याकरण का ज्ञान है कितना है, यह वे ही जानें किन्तु इतना अवश्य है कि उन्हें व्याकरण की सामान्य-अपवाद प्रक्रिया का भी बोध नहीं है। और दूसरों पर आक्षेप करते हैं कि **ऐसा अर्थ वही कर सकता है जिसने बरामदे में बैठकर पढ़ा हो।** (९ पृ०) आपने लिखा है—"यह सूत्र एक प्रकार से इकोयणचि (अ० ६। १। ७४) का अपवाद सूत्र है। इस सूत्र के अनुसार—जिन्वति+ओम् की सन्धि 'जिन्वत्योम्' होगी, परन्तु 'प्रणवष्टेः' सूत्र से यज्ञकर्म में यह सन्धि न होकर 'जिन्वतोम्' ऐसी सन्धि होगी।"

पाठक विचार करें कि 'प्रणवष्टेः' सूत्र क्या 'इको यणचि' का अपवाद है? दोनों सूत्रों का क्षेत्र पृथक्-पृथक् है एक अच् के परे रहने पर इक् को यण् करता है। और दूसरा सूत्र टि को प्लुत करता है।

३. स्वामी जी स्वयं ही लिखते हैं—**महर्षि के सिद्धान्त मन्तव्यों और पद्धतियों का निर्णय करने के लिए मह के समस्त ग्रन्थों का अवलोकन और आलोडन क चाहिये।** (पृ० ३)

और दूसरे स्थान पर लिखते हैं—**जो विधि-विधान म ने पंचमहायज्ञविधि में दिया है वह संस्कार विधि की अपे अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रमाणित है।** (पृ० ५)

इन दोनों कथनों में परस्पर विरोध है। क्या महर्षि की संस्का विधि को अन्तिम ग्रन्थ मानते हुए वह भी प्रमाण कोटि में न है? स्वामी जी बतायेंगे—क्या संस्कारविधि के बिना यज्ञपद के कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। महर्षि के ग्रन्थों में किसी वि का विस्तार से उल्लेख कहीं है और कहीं नहीं, यह सत्य है कि प्रामाणिक सभी ग्रन्थ हैं। महर्षि के जीवन में उत्तरोत्तर सिद्धा में स्वच्छता तथा दृढ़ता आई है इस दृष्टि से अन्तिम ग्रन्थों अधिक सम्मान देना चाहिये। आशा है स्वामी जगदीश्वरानन्द निरर्थक विवादों को उठाने का प्रयास न करके महर्षि के गौ बढ़ाने का ही प्रयास करें तो अच्छा रहेगा।

वि

—राजवीर शा

पाठक भूल सुधार करें

१. जनवरी ९७ के अंक में पृ० १० के बाद ११ न होक १९ छपा है, जो गलत है इसी भांति १९ पृ० के स्था पर ११ पृ० छप गया है। जो पढ़ने-पढ़ाने में असंग लगता है। कृपया इसे मिलाकर पढ़ें।

२. इसी प्रकार ७ पृ० पर शाकाहारी व मांसाहारी खा में दोनों स्थानों पर प्रेस की गलती से शाकाहा छप गया है। इसे भी ठीक करें।

एतदर्थ श्री बी.के. श्रीवास्तव जी रायपुर का औ श्री धर्मवीर आर्य, अलवर का धन्यवाद करते हैं, जिन्हों हमारा ध्यान दिलाया। (सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवान्न के आगमन और शीत समापन का सुखद पर्व-होलिकोत्सव

—श्री डा० प्रशस्यमित्र शास्त्री (महोपदेशक) बी० २१ आनन्दनगर, रायबरेली

फाल्गुन की समाप्ति के साथ ही शीत ऋतु की समाप्ति हो जाती है। असहाय निर्वस्त्र दरिद्र लोगों के लिए यह एक राहत का दिन होता है। प्राचीन काल में वसन्तोत्सव का आरम्भ इन्हीं दिनों होता था। सुन्दर आम्र की मञ्जरियां शनैः शनैः वृक्षों में आने लगती हैं। पतझड़ के कारण गिरे हुए पत्तों की जगह शाखाओं में नई कोंपलें अंकुरित होकर मधुमास के आगमन की घोषणा करती हैं। मधुमास के आगमन के साथ ही वसन्त की चरम परिणति का निदर्शन इन्हीं दिनों उपलब्ध होता है।

यह समय न केवल आम, जामुन, बिल्व आदि सुन्दर रसीले फलों की उत्पत्ति का सन्देश लाता है अपितु अर्थ-व्यवस्था को प्राण रबी की फसल के पकने और कटने का भी यही समय है। कृषि प्रधान भारतवर्ष की अर्थव्यवस्था पहले और आज भी इस रबी की मुख्य फसल पर ही केन्द्रित होती है। मनुष्य जब गेहूं, जौ, चना, मटर, सरसों आदि नाना प्रकार के अन्न भण्डार को अपने खेत में पकता हुआ देखता है तो प्रसन्नता से नाच उठता है।

होलिका दहन : यज्ञ का विकृत रूप

आज चौराहों पर तथा गांव के समीप खुले जगहों पर कूड़ा-करकट घास-फूस इकट्ठा करके उसे जलाने की एक निन्द्य परम्परा प्रचलित हो गयी है। वस्तुतः यह सब प्राचीन काल में किये जाने वाले पवित्र यज्ञ का ही विकृत रूप है। नये अन्न भण्डार के खेतों से आने के बाद लोग अपने गांव में सामूहिक यज्ञ किया करते थे, जिसमें नये पके हुए अनाज की बालियों का हवन सामग्री में प्रचुर मात्रा में उपयोग करते थे। आज भी यह प्राय: देखने में आता है कि जब गली-चौराहों पर होली की अव्यवस्थित समिधाएं लोग फूंकने जाते हैं तो साथ में कुछ लोग अपने घरों से जौ-गेहूं की बालियों को भी भूनने की दृष्टि से साथ में ले जाते हैं। अस्तु, कुछ भी हो प्राचीन काल में नवान्न की प्राप्ति के बाद नये वर्ष के आगमन से पूर्व जो विशाल देव-यज्ञ होता था जिसमें घृतादि सुगन्धित व पौष्टिक पदार्थों के साथ परिपक्व नवान्न की आहुतियां प्रदान की जाती थीं उसका ही भ्रष्ट रूप आजकल हमें होलिका-दहन में प्राप्त हो रहा है।

संस्कृत में भुने हुए अन्न का नाम 'होला' भी है। बिहार में भोजपुरी बोली में 'होरहा' उस अन्न को कहते हैं जिसे खेत से उखाड़ कर तुरन्त ही भूनकर खाया जाता है। 'होरहा' चना या मटर का ही प्रायः होता है।

शीत समाप्ति के बाद इसी फाल्गुन पूर्णिमा के अवसर पर किए जाने वाले वसन्तोत्सव में मध्यकाल में एक नई परम्परा प्रारम्भ हुई, और वह थी लोगों द्वारा पारस्परिक अनुराग एवम् अतिशय द्योतित करने के लिए एक दूसरे के वस्त्रों को सुन्दर रंगों द्वारा रंग देने की। इस वसन्तोत्सव में सभी लोग एकत्र होकर नृत्य वाद्य आदि करते हुए वसन्तोत्सव का भरपूर आनन्द उठाते थे। सुन्दर सुगन्धित रंगीन पदार्थों का प्रक्षेपण एक दूसरे पर करते थे। मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में भी राजाओं द्वारा आयोजित इस प्रकार के वसन्तोत्सवों का बहुशः उल्लेख उपलब्ध होता है। इस उत्सव में राजपरिवार के सदस्य भी सम्भ्रान्त नागरिकों एवं भद्र लोगों के साथ मिलजुल कर वसन्तोत्सव का पर्याप्त आनन्द लूटते थे।

उस समय परस्पर ऊंच-नीच की भावना भी नहीं होती थी तथा सभी लोग अत्यन्त शालीनता के साथ एक दूसरे की प्रतिष्ठा के अनुरूप व्यवहार व सौम्य आचरण भी करते थे।

गर्हित परम्पराएं त्याग दें

किन्तु आजकल वसन्तोत्सव का वह सात्त्विक रूप भी जुगुप्सित हो गया है। कीचड़, तारकोल और पेण्ट आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों को लोग एक दूसरे पर फेंक देते हैं तथा न छूटने वाले रंगों से मुख आदि के स्वरूप को भ्रष्ट करने में ही होली का उद्देश्य समझते हैं। अब तो अनेक स्थलों पर होली पारस्परिक प्रेम व सौहार्द का द्योतक न होकर शत्रुता का कारण भी बन जाती है। ट्रेन में कीचड़ फेंकना, ईंट पत्थर मारना, शीशे तोड़ देना आम बात है। एक बार होली के दिन एक कार में किसी गंभीर रोगी को अस्पताल ले जाते समय उच्छृंखल लोगों ने इतना परेशान किया कि रोगी तो मर ही गया साथ ही कार का ड्राइवर और एक अन्य व्यक्ति भी बुरी तरह घायल हो गया तथा कार का शीशा आदि भी नष्ट हो गया।

अराजकता और उच्छृंखलता का नाम होली नहीं है। बेचारे दरिद्र निर्धनों की चारपाइयां, उनके झोंपड़े, छोटे होटल वालों के दुकानों की बेंचें, कुर्सियां आदि भी लोग मात्र मनोरंजन के लिए उठाकर होली की आग में झोंक देते ये सब प्रवृत्तियां निन्दित एवं गर्हित होने से त्याज्य हैं। अपनी संस्कृति को इस तरह विकृत नहीं करना चाहिए इस होलिकोत्सव के यथार्थ स्वरूप का जनता में विश के साथ प्रचार करना चाहिए।

आर्यसमाज मन्दिरों में आज के दिन जो सामूहि यज्ञ होता है इसमें निकटस्थ नागरिकों को निमन्त्रित क इस वसन्तोत्सव, नवसंवत्सरोत्सव तथा नवान्नेष्टि के में मनाये जाने वाले सौम्य व सात्त्विक देवयज्ञ की वास्तवि भावना को परिचित कराना चाहिए। क्योंकि आर्यसमाज प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं को यथार्थ रूप जनता के मध्य उपस्थित कर उसके उद्देश्य व महत्त्व समझाने में समर्थ हो सकता है।

उद्बोधन

—गोविन्दार्य "निशात" सिद्धांतालंकार G-3/110, 1100 क्वार्टर्स, भोपाल

वेद पढ़ते रहो, सुनते रहो,
झूठ-सच का तुम्हें ज्ञान हो जाएगा।
तुम मनन तो करो, सारी शंकाओं का,
होते-होते समाधान हो जाएगा॥१॥

वेद की सत्य शिक्षा है सब के लिए,
वेद-विद्याओं पर सब का अधिकार है।
विश्व वेदों के पथ पर अगर चल पड़े,
सारा जग स्वर्ग-उपमान हो जाएगा॥२॥

ईर्षा - द्वेष - दुर्भाव के ये रास्ते,
कष्टदायी हैं, भयपूर्ण हैं।
इनसे बचकर चलोगे तो संसार का,
हर कठिन काम आसान हो जाएगा॥३॥

दुःख-दारिद्र्य का मूल अज्ञान है,
इसलिए ज्ञान अर्जित करो यत्न से।
धर्म अनुसार व्यवहार करते रहो,
हर समस्या का अवसान हो जाएगा॥

स्वार्थ त्यागें, पर उपकार करते रहें,
सब ही अपने हैं किसको पराया कहें।
विश्व को अपना परिवार समझें अगर,
दूर निज-पर अज्ञान हो जाएगा॥

आओ "गोविन्द" जग को जगाने चलें,
वेद-सन्देश सब को सुनाने चलें।
चल पड़े हम अगर क्रान्ति के मार्ग पर,
सुप्त संसार गतिमान हो जाएगा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपकार ही उपकार

—अशोकपाल "सिंह" सुन्दरनगर, मण्डी

वेदों वाला ऋषि निराला था, पिया उसने ज़हर का प्याला था।
उनके आगमन से पहले, भारत में पड़ गया, भुखमरी का पाला था।
जन्म होने पर पिता ने उनको, मूलशंकर नाम दिया।
इसी रूप में जीवन भर, मानवता का उपकार किया।
विद्या का सत्य अर्थ जानकर, फिर उसे स्वीकार किया।
एक अकेला था वो जिसने, वेदों का प्रचार किया।
इतिहास साक्षी है, वो आज़ादी का दिवाना था॥
वेदों वाला ऋषि ---

आंखों देखी उसने, भारत की बे-बहार को।
उसी ने ही तो स्वीकार किया था, काल की इस ललकार को।
अपने ही चमत्कार से, बनाया 'श्रद्धानन्द', मुन्शीराम को।
यात्रा अपनी पूर्ण की, दीपावली की शाम को।
उसी की देन ही तो, 'भगत', 'आज़ाद', और 'लाला' था॥
वेदों वाला ऋषि ---

सच्चे ज्ञान के लिए भटका, वो सारा हिन्दोस्तान।
अन्त समय में पहुँचा, "गुरु विरजानन्द" के धाम॥
शिक्षा पाकर ग्रहण किया, 'दयानन्द' उसने नाम।
'सिंह' की गर्जना सुनकर, खड़े हुए सब के कान।
इसीलिए तो पाखंडियों का, निकल गया दिवाला था॥
वेदों वाला ऋषि ---

उस शेर की गर्जना ने, अंग्रेजियत को भी हिला दिया।
सन् सत्तावन की क्रान्ति में, घृत का उसने काम किया।
सत्य के प्रकाश के लिए, दुनियाँ को "सत्यार्थप्रकाश" दिया।
कोई ना जिसे कर सका "अशोक" ने उसे अन्जाम दिया।
जगन्नाथ रसोईये ने दिया उसे, मृत्युलोक निकाला था॥
वेदों वाला ऋषि निराला था, पिया उसने ज़हर का प्याला था॥

●●

"दयानन्दसन्देश" के स्वामित्वादि का विवरण

१. प्रकाशन स्थान	२-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७
२. प्रकाशन की अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-६
क्या भारतीय है ?	भारतीय
पता	ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्ली मारान, दिल्ली-६
४. प्रकाशक	धर्मपाल आर्य
क्या भारतीय है ?	भारतीय
पता	२-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७
५. सम्पादक	राजवीर शास्त्री
क्या भारतीय है ?	भारतीय
पता	भूपेन्द्र पुरी, मोदी नगर (२०१२०४) गाजियाबाद
६. स्वामित्व	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, २-एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपरोक्त समस्त विवरण सत्य है।

दिनांक १०/३/९७ हस्ताक्षर

(धर्मपाल आर्य)
प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीक्षा

राजर्षि मनु—मनुस्मृति : एक अध्ययन, **लेखक**—डॉ० भवानीलाल भारतीय, **प्रकाशक**—समर्पण शोध संस्थान, ४/४२, सै० ५ राजेन्द्रनगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद, **मूल्य**—५ रुपये, **प्राप्ति-स्थान**—समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद, गाजियाबाद।

उपर्युक्त संस्थान ने सं० २०५३ वि० को मनु वर्ष घोषित किया है। इसलिए इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। और प्रतिमास महर्षि मनु पर एक पुस्तिका प्रकाशन करने का निश्चय किया गया। जन सामान्य की जानकारी के लिए और महर्षि मनु के विषय में भ्रान्त धारणाओं के उन्मूलन के लिए यह आवश्यक भी था। इसी प्रसंग में चैत्र मास में 'मनु' नामक लेख और 'मनुस्मृति का समय इतिहास' लेखों का प्रकाशन संस्थान ने किया। उसी क्रम में श्री डॉ० भवानीलाल भारतीय का यह लेख पाठकों को समर्पित किया है।

मानव के कल्याण के लिए धर्म का ज्ञान परमावश्यक है, और धर्म को जानने के लिए श्रुति को परम प्रमाण माना गया है। मनुस्मृति के विषय में ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा है—**"मनुर्वै यत् किञ्चिदवदत् तद् भेषजं भेषजतायाः।"** अर्थात् मनु ने जो कुछ कहा है वह समस्त ओषधियों का परमौषध है। मनुस्मृति के जो आदर्श शिक्षा-वचन हैं वे शाश्वत तथा आधुनिक समय में भी परमोपयोगी हैं। कतिपय वचन द्रष्टव्य हैं-

१. **पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।**
पितरों, विद्वानों तथा मनुष्यों के लिए वेद शाश्वत चक्षु हैं।

२. **अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।**
धर्म का ज्ञान उन्हीं मनुष्यों को होता है जो अर्थ और काम में आसक्त नहीं हैं।

३. **वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते॥**
वेद समस्त ज्ञान का स्रोत है अतः उसका स्वाध्याय करना और लोक से अज्ञानान्धकार को दूर करना ही ब्राह्मण का परम तप कहाता है।

४. **सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।**
संसार के समस्त दानों में विद्या का दान उत्कृष्ट है।

५. **आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः॥**
संसार में ज्ञान उत्तम प्रकाश है और जो ज्ञानवान् होकर भी क्रियाहीन है उसे वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

६. **आचाराद् विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।**
सदाचरण से रहित विद्वान् को वेद ज्ञान का कोई लाभ नहीं मिलता।

७. **सर्वेषां शौचानामर्थशुचिर्विशिष्यते।**
संसार में समस्त शौच=पवित्रताओं में अर्थ की शुद्धि सब से बढ़कर कहलाती है।

८. **स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।**
भारत के ही नहीं अपितु समस्त भूमण्डल के निवासी मनुस्मृति से सदाचार की शिक्षा ग्रहण करते रहें।

अतः मनु के विषय में भ्रान्त व्यक्ति इस पुस्तिका से अवश्य लाभ उठायें। सती दाह, जैसी अवैदिक प्रथाओं को हटाने में सहयोग करें। मनुस्मृति मानव धर्म-शास्त्र है अतः जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्यों के लिए सब कार्य व सभी अवस्थाओं में करणीय कर्त्तव्यों का इसमें उल्लेख मिलता है। शूद्र कौन होता है। शूद्र कुल में उत्पन्न मनुष्य भी ब्राह्मण बन सकता है और ब्राह्मण कुल में उत्पन्न मनुष्य भी आचरण भ्रष्ट होकर शूद्र हो जाता है। अतः आधुनिक समय में प्रत्येक बुद्धिजीवी मनुष्य को पूर्वाग्रह-रहित होकर इसका अध्ययन करके लाभान्वित होना चाहिये। हम संस्था के संचालकों का हृदय से आभार प्रकट करते हैं कि उन्होंने जनहित में ऐसी पुस्तिकाओं का प्रकाशन करके महान् उपकार का कार्य किया है।

—राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु-दक्षिणा दण्डी स्वामी विरजानन्द को

संकलनकर्ता : स्वामी केवलानन्द सरस्वती, साधक-समर्पण शोध-संस्थान

प्यारे दयानन्द प्रणवीर जग में वैदिक नाद गुंजा दे॥ टेक॥

पढ़-पढ़ गये बहुत जन आज, तू ही आया मोर समान।
मांगू तुझे योग्य शिष्य जान, मेरी है यह भेंट चढ़ा दे॥ १॥

मैंने गुण जाने सार, तू विद्या का अमूल्य भण्डार।
मेरी यही दक्षिणा धार, जो विद्या का स्रोत बहा दे॥ २॥

जग को पाखण्डी रहे लूट, फैला रहे स्वार्थ की फूट।
तेरी युक्ति तर्क अटूट भू से भ्रम के भूत भगा दे॥ ३॥

दुःखिया रोते फिरें अधीर, सुखिया सुने न उनकी पीर।
कस के कमर सुसेव सुधीर, दारुण दुःख को मार भगा दे॥ ४॥

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalay
HARDWAR

हा! यह आर्यभूमि सुखधाम कैसी हुई कुरीति-ठाम।
मिट रहे आर्य ओम् चिह्न नाम, वैदिक संस्कृति साज सजा दे॥ ५॥

बेटा दया क्षमा उर धार, मन का मान अपमान विसार।
करना परहित पर उपकार, जीवन भर इस भाँति बिता दे॥ ६॥

वैदिक ग्रन्थों का सुप्रचार, कर ऋषि-शैली के अनुसार।
भ्रामक मत पंथों को जार, जग में वेद-ध्वजा फहरा दे॥ ७॥

कैसी हुई पतित आर्य सन्तान, कैसा बना अन्ध अज्ञान।
अपना रहा न कुछ भी भान, इनको ध्वनि प्राचीन सुना दे॥ ८॥

मेरी सेवा की भरपूर, तूने बड़ी दयानन्द शूर।
पीछे हटते कायर क्रूर, वीर पीछे पग न हटा दे॥ ९॥

रखना ज्ञान कर्म को साथ, फेरूँ वत्स शीश पर हाथ।
जीयत कभी हाथ पर हाथ, रख मम गुरुवाहि न लजा दे॥ १०॥

जो कुछ था सुत मेरे पास, तुझ को सौंपा हृदय निकाल।
जो कुछ कष्ट हुआ इह वास, उसको जाते हुए भुला दे॥ ११॥

प्यारे दयानन्द प्रणवीर, जग में वैदिक नाद गुंजा दे॥

4/42, सेक्टर-5 राजेन्द्र नगर
पो०-साहिबाबाद, यू०पी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवरात्रि का सच्चा देवता और उसके निष्क्रिय अनुयायी

यावन्नगा भुवि दिवीन्दु-दिवाकरौ च
यावच्च भूः सलिलनाथसनाथितेयम्।
तावन्महामहिमदेवदयार्णवस्य
सत्स्वामिनो भवतु शान्तिकरी समृद्धिः॥

सरस्वती भवन (आनासागर, अजमेर) के ताम्र पट्ट पर अंकित।

महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में स्व० जयदेव शर्मा विद्यालंकार के ये वचन शिवरात्रि के महापर्व पर स्मरण आते हैं। जब तक पृथिवी पर पर्वत, चांद-सूर्य, भूमि की सत्ता रहेगी, तब तक दया के सागर स्वामी दयानन्द की कीर्ति फैलती रहेगी।

आज शिवरात्रि है, यह महान् पर्व समस्त भारत में बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है। आज से १५९ वर्ष पूर्व १४ वर्षीय बालक मूलशंकर ने भी इस पर्व को मनाने का संकल्प अपने पिता के कहने पर किया था। काठियावाड़ प्रदेश के मौर्वी राज्य के सम्पन्न श्री किरसन जी तिवारी के घर टंकारा नामक ग्राम में बच्चे ने जन्म लिया। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" इस लोकोक्ति के अनुसार बालक ने सम्पूर्ण यजुर्वेद कण्ठस्थ कर लेना आदि कठिन कार्य बचपन में कर लिये। बालक ने शिवरात्रि का व्रत अपनी कुल की परम्परा के अनुसार बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ रक्खा। पिता, पुजारी आदि के निद्रास्थ होने पर भी बालक जल की छींटें मार-मारकर जागता रहा। परन्तु शिव के विषय में जो बातें सुनी थीं, उन पर प्रश्न-चिह्न लग गया। रात्रि में ही बालक घर पर आया और माता से कहा—

त्रिशूलधारी बहुरुद्ररूपः कैलाशवासी किमयं महेशः।
यो मूषकेभ्योऽपि विरक्षितुं स्वां मूर्तिं न शक्तो निजभक्तलोकान्॥
(द० दिग्विजय से)

जो बालक अत्यन्त स्नेह करने वाली बहन तथा परम हितैषी चाचा की मृत्यु होने पर भी स्तब्ध ही रहा, वह शिव के चमत्कारी स्वरूप को न समझ सका। और रात दिन शिव के सच्चे स्वरूप को जानने की इच्छा करने लगा। इधर-उधर पूछने पर जिज्ञासा के शान्त न होने पर वैराग्य के बीज अंकुरित होने लगे। घर का मोहजाल और पैतृक सम्पत्ति का आकर्षण बालक को बांधने में समर्थ न हो सका। घने-घने जंगलों तथा बीहड़ पहाड़ों पर सच्चे योगियों की तलाश में भटकता फिरा। कोई भी गुरु ऐसा नहीं मिला जो बालक की जिज्ञासा को शान्त कर सके। कोई विद्वान् मिला तो योगी न था, कोई योगी था पर विद्वान् नहीं था। कोई विरक्त संन्यासी था वह ज्ञान शून्य था, कोई ब्रह्मचारी था किन्तु वैरागी न था। ढोंगी, साधु और ठग तो बहुत मिले! किन्तु पूर्व जन्म का संस्कारी बालक सच्चे शिव को प्राप्त किये बिना कैसे शान्त रह सकता था। एक विद्वान् प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द की चरण-शरण में ही आकर शान्ति मिली। जिसने पहला प्रश्न यही किया था—

गुरु—तुम कौन हो और किस प्रयोजन से यहाँ आये हो?

शिष्य—मैं एक जिज्ञासु हूँ और मैं कौन हूं, यही जानने तो आया हूँ।

महर्षि ने देखा—समस्त देश अज्ञान अन्धकार में डूबा हुआ है। प्रकाश की कोई किरण दिखाई न देती थी। महर्षि का जीवन चरित्र लिखने वाले देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने तत्कालीन परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है—

"ये हैं भारत दिवाकर दयानन्द, जिन्होंने इस परि- परिपुष्ट-युग में जन्म लेकर जीवनभर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। विद्या में, वाक्पटुता में, तार्किकता में, शास्त्रदर्शिता में, वेदनिष्ठा में, वेद-व्याख्या में, वेद-ज्ञान की गम्भीरता में जिनका नाम व्यास आदि महर्षियों के तुल्य है, जिसने मृतप्राय आर्य जाति को जगाने में संजीवनी औषध लेकर भरतखण्ड में चतुर्दिक् भ्रमण किया।"

महर्षि का समस्त जीवन प्रगतिशीलता का रहा, वे सत्य के अन्वेषक थे। उत्तरोत्तर उन्होंने अपने मन्तव्यों और विचारों में परिमार्जन किया। प्रारम्भ में वे भागवत धर्म का खण्डन और शैव मत का समर्थन करते रहे। प्रारम्भ में अद्वैतवादी भी रहे। फिर धीरे-धीरे विचारों, सिद्धान्तों में दृढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रखरता आई। वे धर्म और अधर्म की, पाप व पुण्य की पूर्ण व्याख्या करना चाहते थे। उन्होंने ज्ञान और विज्ञान का सुन्दर समन्वय करने का प्रयास किया। वे जगत् और जगत्कर्त्ता को सत्य मानते थे। समस्त दर्शन ग्रन्थों में समन्वय किया और कहा—ऋषि-महर्षि साक्षात् द्रष्टा होते हैं, उनके ग्रन्थों में जो कोई विरोध बताता है, वह उसका अज्ञान है। सत्य एक होता है, अनेक नहीं। देश में फैले धार्मिक उन्माद आदि को दूर करने के लिए वेद की पुस्तकें हाथ में लेकर शास्त्रार्थ के लिए विद्वानों का आह्वान किया। धर्म-सम्मेलन बुलाकर विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों को समझाने का प्रयास किया। उन्होंने वेदों के विषय में जो वितण्डावाद फैला रखा था, उसे समझाने का सतत प्रयास किया, पौराणिकवाद को धराशायी किया और मोहम्मद व ईसाइयों की मिथ्या बातों का खण्डन करके सन्मार्ग दिखाया।

महर्षि अकेले थे, उनका कोई चेला न था और न सहयोगी। उनके एक हाथ में तर्क का दुधारा खाण्डा था तो दूसरे हाथ में दया तथा हितभरा सच्चा धर्म का पिटारा था। उनकी शरण में जो आया, वही सच्चा ईमानदार तथा ज्ञानी बन गया। नास्तिक भी सच्चा आस्तिक बन गया, डाकू व नृशंस विधर्मी भी दयालु नागरिक बन गया। उन्होंने अनेकेश्वरवाद को हटाकर एकेश्वर का पाठ पढ़ाया, मिथ्या अन्धविश्वास को हटाकर सच्ची भक्ति सिखाई। ईश्वरीय वेद ज्ञान को पढ़ने का मानवमात्र को अधिकार दिलाया। जाति-पांति के कुचक्र में फंसे मिथ्यामानी जन्म के ब्राह्मणों की पोल खोली। ईर्ष्या, द्वेष के दावानल में दग्ध मनुष्यों में समानता, सहृदयता का पाठ सिखाकर प्रेम का पाठ पढ़ाया। बाल विवाह बन्द कराकर और विधवा विवाह प्रचलित कराकर रोती-बिलखती विधवाओं को आश्रय दिया और शुद्धि आन्दोलन प्रचलित कराकर फूट की बेल को नष्ट-भ्रष्ट करके समस्त मानव जाति को एकता की माला में पिरोने का प्रयास किया। जिससे भयभीत होकर आर्य जाति को ईसा-मूसा की भेड़-बकरियों से मिलाने वाले मुल्ला व पादरी बिस्तर बांधकर भागने लगे थे। परतन्त्रता के कारणों को दूर कर के स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया जिसके कारण हम आज स्वतन्त्र भारत में स्वाभिमान से जी रहे हैं। क्या हम आर्यजन ऋषि-बोधोत्सव पर दृढ़ संकल्प लेने का प्रयास करेंगे कि हम सब मिलकर ऋषि-ऋण को अवश्य उतारेंगे और सच्चे आर्य बनेंगे। ●●

योगदर्शन-भाष्यम्

(महर्षि व्यास-भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द व्याख्योपेत)

व्याख्यांता : **आचार्य राजवीर शास्त्री**

- योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
- व्यास-भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
- महर्षि-दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
- दर्शनों की परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
- क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियाँ, अनेक चित्त-निर्माण, इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

विशेष जानकारी के लिए सूची-पत्र मँगायें।

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

सुख-दुःख प्रकृति के गुण नहीं

अब तक हम ने वेदादिशास्त्रों के विविध प्रमाणयुक्त विवेचन से सिद्ध किया है कि 'सुख-दुःख जीवात्मा के गुण हैं'। वैसे प्रमाण सत् और असत् दोनों का प्रकाशक होने से यह स्वतः सिद्ध है कि सुख-दुःख प्रकृति के गुण नहीं हैं। पुनरपि इस को—'सुख-दुःख प्रकृति के गुण नहीं है' प्रमाणों से सिद्ध किया जाता है कि सुख-दुःख जीवात्मा के ही गुण हैं। जैसे आत्मा क्या है? प्रश्न उठाकर शास्त्र ने लक्षण उपस्थित किया था। ठीक उसी प्रकार प्रकृति क्या है? इसका लक्षण उपस्थित करते हैं।

'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।' (सांख्य)

(सत्त्व) शुद्ध (रजः) मध्यम (तमः) जाड्य तीनों वस्तु मिलकर जो एक संघात है, उसका नाम प्रकृति है। सत्त्व प्रकाशात्मक, रजः क्रियाशील और तमः स्थितिशील है। अतः समस्त संसार में प्रकाशात्मकता, क्रियात्मकता और स्थिति रूपता इन सत्त्व-रज और तमोगुणों के कारण हैं। ये सत्त्वादि गुण मूल प्रकृति में साम्यावस्था में रहते हैं तथा सर्गकाल में इन गुणों की विषमता होने से गौण मुख्य भाव से स्थित होकर सभी प्रकृति के कार्यों में अनुगत रहते हैं। साम्यावस्था में चिह्न न होने से अलिङ्गावस्था होती है। इसी अलिङ्गावस्था को अव्यक्त प्रधान प्रकृति आदि नामों से व्यवहृत करते हैं। इसका उपादान कारण कोई नहीं बल्कि यही सब का मूलोपादान नित्य कहाता है।

पृथिवी आदि भूतों के अणु सूक्ष्मभूतों (तन्मात्राओं) के कार्य हैं। सूक्ष्मभूत अंहकार के कार्य हैं और अहंकार महत्तत्त्व का कार्य हैं। महत्तत्त्व मूल प्रकृति का कार्य है। इसी को निःसत्तासत्तं निःसदसत् निरसत् अव्यक्तं अलिङ्गं प्रधानं कहा है। यह प्रकृति व्यक्त न होने से निःसत्ता है। और असत्तं=सत्ताविहीन भी नहीं है क्योंकि इसकी सत्ता कार्यतत्त्वों से जानी जाती है। निःसत् अर्थात् सत्=अकारणवत् नित्य निश्चय से जो जगत् का कारण है। फिर उसका कोई कारण नहीं है इसलिए असत् भी कहा है। इस की अलिंगावस्था अव्यवहार्य है। स्थूल कार्य ही पुरुष अर्थ सिद्धि में हेतु है। महर्षि सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—"प्रकृति परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं वह जड़ होने से आप से आप न बन और न बिगड़ सकता है, किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है।" जो संयोग से उत्पन्न होता है सो बनाने वाले की अपेक्षा रखता है। जैसे कर्म, नियम और कार्य ये सब कर्त्ता, नियन्ता और कारण को ही सदा जनाते हैं तथा जिस वस्तु से संयोग आरम्भ होता है; वह वस्तु संयोग और वियोग से अलग ही होता है। वह संयोग और वियोग के नियमों का कर्त्ता और आदिकारण होता है तथा आदि कारण के अभाव से संयोग और वियोग होना ही असम्भव है। उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण रहने से यह समस्त भूतेन्द्रियात्मक दृश्य जगत् जड़ ही है। अगर प्रकृति सुख-दुःख लक्षण वाली है तो वेदादि सत्य-शास्त्रों में कोई लक्षण प्रतिपादित होता। सो इस विषय में लक्षणाभाव ही है। ज्ञाता, ज्ञेय और उपास्य भेद से तीन सत्ताएं होती हैं। जो चेतन सुख-दुःखादि गुण युक्त है वह जानने वाला, जो अविद्यारूप जड़ है वह जानने योग्य और जो चेतन ब्रह्म तथा विद्वान् का आत्मा है, वह उपासना व सेवन योग्य है। प्रमाण—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो यउ विद्यायां रताः॥ यजु० ४०।९

(ये) जो मनुष्य (अविद्याम्) अनित्य में नित्य, अशुद्ध में शुद्ध, दुःख में सुख, अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धि रूप अविद्या उसकी अर्थात् ज्ञानादि गुण रहित कार्यकारणात्मक प्रकृतिआख्य परमेश्वर से भिन्न जड़-जगत् की (उपासते) उपासना करते हैं, वे (अन्धम्-तमः) दृष्टि को रोकने वाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को (प्र-विशन्ति) प्राप्त होते हैं। और जो अपने आत्मा को पण्डित मानने वाले (विद्यायाम्) शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध के जानने मात्र अवैदिक आचरण में (रताः) रमण करते (ते) वे (उ) भी (ततः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे (भूय इव) अधिकतर (तमः) अज्ञान रूपी अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

भावार्थ—यद्यच्चेतनं ज्ञानादिगुणयुक्तं वस्तु तज्ज्ञातृ यदविद्यारूपं तज्ज्ञेयं चेतनं ब्रह्म विद्वदात्मस्वरूपं वा तदुपासनीयं सेवनीयं च यदतो भिन्नं तन्नोपासनीयं किन्तूपकर्त्तव्यम्। ये मनुष्या अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशैः क्लेशैर्युक्तास्ते—परमेश्वरं विहायातो भिन्नं जडं वस्तूपास्य महति दुःखसागरे मज्जन्ति। ये च शब्दार्थान्वयमात्रं संस्कृतमधीत्य सत्यभाषण-पक्षपातरहितन्यायाचरणाख्यं धर्मं नाचरन्ति-अभिमानारूढाः सन्तो विद्यां तिरस्कृत्य विद्यामेव मन्यन्ते ते चाऽधिकतमसि दुःखार्णवे सततं पीडिता जायन्ते।

जो जो चेतन ज्ञानादिगुणयुक्त वस्तु है वह जानने वाला, जो अविद्यारूप है वह जानने योग्य है और जो चेतन ब्रह्म तथा विद्वान् का आत्मा है, वह उपासना के योग्य है जो इससे भिन्न है वह उपास्य नहीं है किन्तु उपकार लेने योग्य है। जो मनुष्य अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेशों से युक्त हैं वे परमेश्वर को छोड़ इससे भिन्न जड़-वस्तु की उपासना कर महान् दुःखसागर में डूबते हैं और जो शब्द अर्थ का अन्वयमात्र संस्कृत पढ़कर सत्यभाषण पक्षपातरहित न्याय का आचरण रूप धर्म नहीं करते अभिमान में आरूढ़ हुए विद्या का तिरस्कार कर अविद्या को ही मानते हैं वे अत्यन्त तमोगुण रूप दुःखसागर में निरन्तर पीड़ित होते हैं।

इसमें अत्यन्त स्पष्ट है कि जो चेतन ज्ञानादिगुण युक्त वस्तु है वह जानने वाला है। ज्ञानादि गुण युक्त शब्द से पूर्वोक्त सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान तथा प्राणापान, निमेषोन्मेष, जीवन, मन गति, इन्द्रियान्तरविकार सब गुण जीवात्मा चेतन के स्पष्ट रूप से कहे गए हैं। यह जीवात्मा जानने वाला है। ज्ञेय कार्यकारणात्मक प्रकृतिआख्य जड़ जगत् है जिसकी यथार्थता से ही परमेश्वर उपास्य का ज्ञान होता है। जो इससे विपरीत जानते हैं वे पंच क्लेशों से युक्त जड़ वस्तु की उपासना कर परमेश्वर को छोड़कर महान् दुःखसागर में डूबते हैं। इससे भी बड़ी अविद्या और मूर्खता की बात यह है कि प्रकृति के सुख-दुःख गुण मानने वाले केवल सत्त्व से सुख और रजः से ही दुःख मानते हैं। (इसको पाठक 'सुख-दुःख जीवात्मा के स्वाभाविक गुण नहीं हैं—ले० स्वा० सत्यपति पारिव्राजक की प्रतिपद की गई समीक्षान्तर्गत उद्धृतांश में देखेंगे'।) इन विचारों को यह विदित नहीं कि दुःख तमोगुण रूप ही होता है। जैसा कि महर्षि ने इस मन्त्र के 'जो शब्द अर्थ का अन्वय मात्र संस्कृत पढ़कर सत्यभाषण पक्षपातरहित न्याय का आचरण रूप धर्म नहीं करते अभिमान में आरूढ़ हुए विद्या का तिरस्कार कर अविद्या को ही मानते हैं वे अत्यन्त तमोगुण रूप दुःखसागर में निरन्तर पीड़ित होते हैं। लगता है कि इस मत के लोग भी जड़वत् ही हैं।'

कारण कार्यात्मक जड़ प्रकृति साधनभूत है। जैसा कि ऋषि ने यजु० ४०।१४ के भाष्य में स्पष्ट लिखा है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्या को उनके स्वरूप से जानकर इनके जड़ चेतन साधक हैं ऐसा निश्चय कर सब शरीरादि जड़ पदार्थ और चेतन आत्मा को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए साथ ही प्रयोग करते हैं वे लौकिक दुःख को छोड़ परमार्थ सुख को प्राप्त होते हैं, जो जड़ प्रकृति आदि कारण व शरीरादि कार्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति और जीव कर्म उपासना और ज्ञान के करने को कैसे समर्थ हों। इससे न केवल जड़, न केवल चेतन अथवा न केवल कर्म से तथा न केवल ज्ञान से काई धर्मादि पदार्थों को सिद्धि करने में समर्थ होता है।

इससे सिद्ध है कि प्रकृति सुख-दुःख लक्षण वाली नहीं है अपितु जीवात्मा के परमार्थ सुख=अपवर्ग सिद्धि में साधन भूत है इसके बिना जीवात्मा मोक्ष सुख प्राप्त नहीं कर सकता। यही पतञ्जलि जी महाराज इसका लक्षण स्थापित करते हैं—कि यह दृश्य भोगापवर्गार्थ ही है। यह भूतेद्रियात्मक दृश्य सकर्तृक है जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञानयुक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना है। इसके दो प्रयोजन हैं—कि एक ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होता है। ईश्वर के सामर्थ्य की भी सफलता सृष्टि करने में ही है क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का कर्त्ता अवश्य होता है। द्वितीय जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि। यह प्रकृति स्वतन्त्र होते हुए भी भोग अपवर्गार्थ परतन्त्र अर्थात् पुरुष के आधीन है। संघात-परार्थत्वात्। कोई कहे कि ये सुख-दुःख धर्म अन्तःकरण और देह के हैं, जीव के नहीं। जीव तो पुण्य पाप से रहित साक्षी मात्र है। शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म हैं आत्मा तो निर्लेप है। इसका उत्तर यह है कि देह और अन्तःकरण जड़ हैं उनको शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जैसे—पत्थर को शीत और उष्ण का भान व भोग नहीं हैं। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसका स्पर्श करता है उसी को शीत व उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ है। न उसको भूख न पिपासा किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है। न उसको हर्ष न शोक हो सकता है किन्तु मन से हर्ष, शोक, सुख-दुःख का भोग जीव करता है। जैसे—बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी व दुःखी होता है। वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से संकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमान का करने वाला दण्ड और मान्य का भागी होता है।

जैसे तलवार से मारने वाला दण्डनीय होता है, तलवार नहीं होती, वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का कर्त्ता जीव सुख-दुःख का भोक्ता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है; साक्षी ईश्वर नहीं।

(सत्यार्थप्रकाश नवसमुल्लास)

'भोक्तृभावात्।', 'चिदवसानो भोगः।' और **'प्राणवता च शब्दात्।'** इन सांख्य सूत्रों का भी यही भाव है।

यदि सुख-दुःख को इन्द्रियों व अन्तःकरण का धर्म मान भी लें तो इनके विनाश होने पर ज्ञान का अभाव होना चाहिए और सुख-दुःख अन्तःकरणादि के धर्म मान लेने पर जड़ के धर्म हो जायेंगे। इस पर महामुनि गौतम जी कहते हैं—

ज्ञस्येच्छाद्वेषनिमित्तत्वादारम्भनिवृत्त्योः। न्याय ३।२।३५

ज्ञानविशिष्ट के जो इच्छा द्वेष हैं उनके निमित्त से आरम्भ निवृत्ति होते हैं। आरम्भ अर्थात् इच्छा से प्रवृत्ति होती है और द्वेष से निवृत्ति होती है। और इच्छा, द्वेष ज्ञान के बिना नहीं होते। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि का समानाधिकरण्य सिद्ध ज्ञान आत्म-धर्म ही है। इच्छा, द्वेष, प्रयत्नादि और उनके फल भूत सुखदुःखादि का आत्मधर्मत्व सिद्ध हो गया। इच्छा सुख-दुःखादि का ज्ञान समानाधिकरण्य होने से आत्मधर्मत्व ही है। आत्मसमवेत ज्ञान का उदाहरण—जानता है, इच्छा करता है और फिर यत्न करता है। यह क्रम सदा स्मरण रखना चाहिए। ज्ञानानन्तर इच्छा का उदाहरण देखिए—यह मेरा सुख-साधन है, यह मेरा दुःख-साधन है। सुख-साधन प्राप्त करने की इच्छा करता है, दुःख-साधन छोड़ने की इच्छा करता है। प्राप्त करने की इच्छायुक्त आत्मा की समीहा=चेष्टा विशेष प्रयत्न ही आरम्भ शब्द वाच्य है। छोड़ने की इच्छा प्रेरित आत्मा की दुःख-साधन परिवर्जन समीहा विशेष प्रयत्न ही निवृत्ति है। एवं **ज्ञानेच्छा, प्रयत्न, द्वेष, सुख-दुःखों का समवाय सम्बन्ध है।** ज्ञानेच्छा-प्रवृत्तियों का एककर्तृकत्व और समाना श्रयत्व सिद्ध है। उक्त सामानाधिकरण्य से ज्ञान आत्मधर्म ही है और **ज्ञान समानाधिकरण से सुख-दुःखादि का आत्मधर्मत्व सिद्ध हुआ।** आरम्भ निवृत्ति के जीवात्मा में देखने व सिद्ध होने से उनके अर्थात् आरम्भ निवृत्ति के जीवात्मा के कारणीभूत इच्छा सुखादि में आत्मसमवेतत्व अनुमान कार्यकारण के सामानाधिकरण्य नियम से जानना चाहिए। अतः सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष आदि अचेतन अन्तःकरण के धर्म नहीं हैं।

फिर भी सुख-दुःख को प्रकृति का गुण मानने वाले कोई चार्वाक मतस्थ भूत चैतनिक यह कहें कि पार्थिव शरीरादि में प्रवृत्ति निवृत्ति प्रत्यक्ष देखी जाती हैं। उसके द्वारा इन दोनों से उत्पन्न इच्छा, द्वेष, पार्थिव, आप्य, तैजस, वायवीय चतुर्विध शरीरों में भी सिद्ध है तो उनसे ज्ञान शरीरों का चैतन्य सिद्ध होता है। इसका उत्तर इस प्रकार है—

'परश्वादिष्वारम्भनिवृत्तिदर्शनात्।'

यदि प्रवृत्ति निवृत्ति से इच्छा द्वेष ज्ञान के द्वारा शरीर चैतन्य है तो परशु आदि का भी प्रवृत्ति निवृत्तियुक्त होने से छेदनादि कारण का चैतन्य होगा। लेकिन परशु आदि में चैतन्य उपलब्ध नहीं होता तो फिर शरीर का भी प्रवृत्ति निवृत्ति चैतन्य सिद्ध नहीं होता। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। परशु आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जो प्रवृत्ति निवृत्ति है वह चैतन्य व्यभिचरित है। प्रवृत्ति निवृत्ति युक्तत्व शरीर चैतन्य साधक हेतु—इस प्रकार नहीं हो सकता—परशु आदि में चैतन्य व्यभिचरित होने से।

इस कथन से यदि शरीर चैतन्य सिद्ध नहीं होता तो यह एक अन्य नवीन अर्थ प्रतिपादित किया जाता है जिससे शरीर चैतन्य सिद्ध होगा। शरीरवर्त्ति भूतों में जो आरम्भ है वह परशु आदि की तरह साधारण ग्रहण नहीं है जिससे परश्वादि की चैतन्य आपत्ति हो किन्तु शरीर असाधारण है। भूतावयवों का जो शरीर रूप से परिणाम है उसकी अनुमेय प्रवृत्ति विशेष ही आरम्भ है और वह शरीर में ही होता है। लोष्ठादि और परश्वादि में लिङ्ग का अभाव होने से नहीं। प्रवृत्ति विशेष का अभाव ही निवृत्ति है। आरम्भ और निवृत्ति से जो इच्छा, द्वेष, अनुमेय हैं, शरीरवर्त्ति पार्थिव परमाणुओं में दर्शन, होने से इच्छा, द्वेष का योग प्राप्त हुआ। इच्छा, द्वेष योग से ज्ञान योग अर्थात् चैतन्य प्राप्त हुआ। इससे भूत चैतन्य सिद्ध हो गया। इस सिद्धान्त का पराकरण इस प्रकार है—पार्थिवादि भूत अवयवों का परिणाम लक्षण आरम्भ दिखाई देता है परन्तु सिकतादि में उसका अभाव भी दिखाई देता है। इसलिए शरीरादि का चैतन्य प्राप्त नहीं हुआ। मिट्टी के अवयवों में आरम्भ और सिकतादि में अभाव होने से निवृत्ति के होने पर मृदादि का चैतन्य नहीं हुआ। जिस प्रकार मृदादि का चैतन्य नहीं, उसी प्रकार शरीरादि का भी चैतन्य प्राप्त नहीं हुआ। यह हेतु शरीर चैतन्य साधक सम्भव नहीं है।

शरीर चैतन्यवाद में क्या क्या दोष हैं इस का वर्णन करते हैं—

नियमानियमौ च तद्विशेषकौ। न्याय ३।२।३९

शरीर को चेतन मानने वालों के मत में पदार्थ मात्र में प्रवृत्ति निवृत्ति होते हैं, इस नियम से ज्ञान भी हुआ और ज्ञान से चैतन्य प्राप्त होता है। यही प्रवृत्ति निवृत्ति नियम का इच्छादि विशेषकत्व है और इससे पदार्थ मात्र चैतन्य प्राप्त नहीं होता। इस प्रवृत्ति निवृत्ति से शरीर का भी चैतन्य नहीं हुआ। भूत चैतनिक मत में भूत चैतन्य स्वीकार करने से पदार्थ मात्र में प्रवृत्ति निवृत्ति नियम प्राप्त होता है। यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है क्योंकि भूत चैतन्य सम्भव नहीं है। न्याय में भूतातिरिक्त आत्मा का ही चैतन्य स्वीकार करने से प्रवृत्ति नियम का अनियम प्राप्त होता है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है।

स्पष्ट करते हैं—आत्मा के इच्छा, द्वेष जन्य प्रवृत्ति निवृत्ति स्वाश्रय नहीं हैं अपितु आत्मा के प्रयोज्य शरीराद्याश्रित हैं। आत्मा के द्वारा प्रयोग होने वाले परश्वादि और शरीरादि में प्रवृत्ति निवृत्ति होते हैं, प्रयोग न होने वालों में नहीं, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसलिए यह प्रवृत्ति निवृत्ति का अनियम उपपन्न हुआ। इच्छा ज्ञान द्वेषाधार शरीर नहीं है अपितु परश्वादि की तरह इच्छाजनित स्पन्दाधारत्व से शरीराश्रित हैं।

भूतचैतन्य अर्थात् सुख-दुःख ज्ञानेच्छा को प्रकृति जड़ के गुण मानने वालों के मत में भूतों के ज्ञानवान् होने से भूतों का चेतनत्व होने से इच्छा द्वेष भी भूतों को प्राप्त हुए। उससे इच्छा द्वेष जन्य प्रवृत्ति-निवृत्ति भी भूतआश्रित हुए। इससे भूतमात्र में प्रवृत्ति निवृत्ति का यह नियम प्राप्त हुआ न कि प्रयुज्यमान मात्र भूत का आश्रिततत्व प्राप्त हुआ। जैसे—पदार्थों के गुणोत्तरनिमित्त अर्थात् गुरुत्वादि है निमित्त, जिसका ऐसी पतनादि लक्षण वाली प्रवृत्ति और वैसे ही इस गुण के प्रतिबन्ध से पतनादि निवृत्ति नियम से भूतमात्र में होती है। कारणीभूत गुरुत्वादि का और उसके प्रतिबन्ध का भूतमात्र में सम्भव होने से। वैसे ही इच्छा, द्वेष जन्य प्रवृत्ति निवृत्ति का भी भूतमात्र में नियम प्राप्त होता है। कारणीभूत ज्ञानेच्छा द्वेषों का भूतमात्र में सत्त्व स्वीकार होने से। उक्त नियम का प्रत्यक्ष विरोध है क्योंकि भूतमात्र में प्रवृत्ति निवृत्ति नहीं होती किन्तु प्रयुज्यमान पदार्थों में ही होती है। इसलिए निगमन इस प्रकार है कि जिससे भूतमात्र=पदार्थ मात्र में प्रवृत्ति निवृत्ति नियम नहीं है उससे पदार्थों में ज्ञानेच्छा द्वेष भी स्वीकार्य नहीं है। **किन्तु ज्ञानेच्छा द्वेष प्रयोजक अर्थात् आत्मा के आश्रित है** और प्रवृत्ति निवृत्ति जो इच्छा द्वेषजनित है प्रयुज्यमान=प्रयोग करने वाले पदार्थों में स्वीकार करने चाहिए। हेतु यह है कि जब-जब प्रयुज्यमानत्व है तभी प्रवृत्ति निवृत्ति भी होंगे, अन्यथा नहीं होंगे। जो-जो पृथिव्यादि धर्म हैं वे वे यावत्-पृथिव्यादिभावी दृष्ट हैं जैसे गुरुत्वादि। यदि ज्ञानेच्छा द्वेषादि भी पृथिवी आदि के धर्म हैं उनके द्वारा पृथिव्यादि से होने वाले घटादि में दिखाई नहीं देते इसलिए ज्ञानेच्छादि पृथिव्यादि के धर्म नहीं हैं।

भूतचैतनिक मत में—एक शरीर में बहुत ज्ञाता हैं। ऐसा प्रतिपादित किया जाता है। शरीरावयवों में भी पृथक्-पृथक् चैतन्य है। इसलिए एक शरीर में ज्ञातृ बहुत्व हैं। बहुत चैतन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट शरीरावयवों का ज्ञातृत्व होने से एक शरीर में बहुत ज्ञाता होने से यह हेतु अप्रामाणिक है। एक ही ज्ञाता के द्वारा सर्व सम्भव है। यदि बहुत ज्ञाता मान भी लिये जायें तो अपने-अपने आश्रयों में स्थित ज्ञाताओं का परस्पर कलह होना चाहिए परन्तु एक शरीर में उस प्रकार का कलह दिखाई नहीं देता। अतः एक ही ज्ञाता एक शरीर में है। ठीक व्यवस्था चलने से। पूछते हैं कि बहुत ज्ञाता होने में प्रमाण क्या है? कहते हैं प्रमाण नहीं है। प्रतिशरीर में बहुत ज्ञाता मानने में ज्ञान भेद आता है। शरीर के किसी अवयव में विकार होने पर उसके देखे हुए का स्मरण नहीं होगा। अन्य दृष्ट का अन्य के द्वारा स्मरण अशक्य ही है। इससे शरीर चैतन्य सिद्ध नहीं होता। इसलिए शरीरादि व परश्वादि में प्रवृत्ति विशेष=क्रिया लक्षण प्रवृत्ति अन्य गुण निमित्त अर्थात् शरीरादि गुण अतिरिक्त जो आत्मा है उसके गुणभूत इच्छादिजन्य दृष्ट है। स्पष्ट करते हैं—भूतकार्य परशु आदि का छेदन करना और घड़े आदि का मृत्तिका का उपादानत्व प्रसिद्ध है। इन परशु आदि में जो छेदनकरण प्रवृत्ति है वह जीवनिष्ठ इच्छादि गुण जन्य है। मनुष्यादि शरीरों में जो उसके अवयवों में प्रवृत्ति विशेष है वह भी जीव की ही है। जीव भोग सम्पादन के लिए धर्माधर्म समाख्यात सर्व सम्पादक प्रयत्न समानाश्रय=(आत्मवृत्तिः) प्रयोजक है। इससे ही शरीरों में क्रियाजन्य परिणाम होते हैं। अतः ज्ञानेच्छादि शरीरातिरिक्त जीवात्मा के ही गुण हैं यह सिद्ध हुआ। शरीर का चैतन्य निरस्त हुआ। इससे भी सिद्ध है कि इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख, प्रयत्न, ज्ञान आदि जीव के ही गुण हैं। दूसरा हेतु भी प्रस्तुत करते हैं। **इच्छाद्वेषप्रयत्नसुख-दुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।** १।१।१० **दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात्** ३।१।१ इत्यादि आत्मा के अस्तित्व में हेतुओं के द्वारा जीव के ही गुण हैं। यदि प्रकृति व तत्कार्यादिकों का चैतन्य हो तो भूतातिरिक्त आत्मा का सत्त्व=होना ही नहीं होगा। इसलिए आत्मा के अस्तित्व में हेतुओं के द्वारा इन भूतादिकों का चैतन्य प्रतिषेध जानना चाहिए। इससे एक बात और स्पष्ट है कि शरीर अनित्य है—यदि इसका चैतन्य हो तो आत्मा का भी अनित्यत्व जानना चाहिए। जबकि आत्मनित्यत्व हेतुओं के द्वारा अनित्य शरीर का आत्मत्व=चैतन्य प्रतिषेध किया गया है।

'इच्छाद्वेषप्रयत्नसुख-दुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।' इत्यादि सूत्रों के द्वारा आत्मा की चेतनता में जो हेतु कहा है उससे मन की भी चेतनता निरस्त कर दी। आत्मा की चेतनता से मन की चेतनता कहना व्यर्थ ही है क्योंकि मन परतन्त्र अर्थात् आत्माधीन है और आत्मा का चैतन्य स्वतन्त्र है। अगर मन को चेतन मान लिया जाये तो मन से किए कर्म का फल जीव ने भोगा ऐसे कथन से अकृत कर्म का फल भोग प्राप्त हुआ जो युक्त नहीं है। अन्य के द्वारा किए कर्मों का फल अन्य के द्वारा भोगना अशक्य ही है। भूतेन्द्रियाँ और मन आत्मकृत प्रयत्न से ही धारणादि क्रियाओं में प्रवर्त्तित होते हैं परतन्त्र होने से। इन्द्रिय और मन को चेतन मानने पर जो कर्म होगा वह इन्द्रिय-मन का ही होगा और उस का सुखादि रूप फल जीव के द्वारा उपभोग किया जाए तो यह परकृत अर्थात् इन्द्रियादि का कर्मों का फल होगा। जो अकृताभ्यागम दोष होगा। यदि शरीर अचेतन जड़ है तो शरीरादि के द्वारा सम्पादित कर्म का भोग जीव के द्वारा ही होता है। चेतनत्व और स्वतन्त्रत्व होने से और उसके साधन इन्द्रियादिक कर्म साधन जिसके हैं उसी जीवात्मा के स्वकृत कर्मों का फलोपभोग होगा, परकृत कर्मों का फलोपभोग की उपपत्ति नहीं होगी और न ही अकृताभ्यागम दोष ही होगा। इन प्रतिपादित हेतुओं से भूतेन्द्रिय मनों के चैतन्य का अभाव सिद्ध हुआ। **इसलिए इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख, प्रयत्न, ज्ञानादि सब चेतन आत्मा के ही गुण हैं, अचेतन जड़ प्रकृति व तत्कार्य शरीर इन्द्रियों मन के नहीं।** अब देखिए कि ज्ञान चेतन आत्मा का ही गुण है प्रकृति जड़ का हो ही नहीं सकता है।

स्मरणं त्वात्मनः—ज्ञस्वाभाव्यात्। न्याय ३।२।४२

आत्मा का ज्ञातृत्वादि गुण होने से स्मृति भी आत्मा के ही आश्रित हैं। ज्ञान के समानाधिकरणत्व से स्मरण ज्ञातृधर्म अर्थात् आत्मा का धर्म है, न कि ज्ञान का। ज्ञाता का ज्ञान स्वभाव अर्थात् स्वधर्म है। आत्मा त्रैकालिक ज्ञान से ज्ञानवान् होता है जैसे जानूँगा, जानता हूँ, जाना। ऐसा त्रिकाल विषयक ज्ञान सर्वजन प्रत्यक्ष है। जब ज्ञान स्वधर्म है तब स्मरण भी आत्मा का धर्म है। जड़ का नहीं। स्मृतियां भी २५ प्रकार की हैं। जिनमें सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्म-अधर्म से उत्पन्न हैं। सुख-दुःखों से उनका हेतु स्मरण किया जाता है। इच्छा-द्वेष से जिसको चाहता है और द्वेष करता है, उसको स्मरण करता है और अधर्म से पहले अनुभूत दुःख साधन को स्मरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। अधर्म से पूर्वजन्मवृत्तान्त स्मरण करता है।

अतः नितान्त स्पष्ट है कि सुख-दुःख चेतन ज्ञानवान् आत्मा के गुण हैं, जड़ प्रकृति जो ज्ञानादि गुण रहित है उसके नहीं हैं। ज्ञानादि गुण रहित साधन जीवात्मा के द्वारा उपकार लेने योग्य है। इसलिए जड़ अन्तःकरण, प्राण, भूतेन्द्रियाँ मन आदि जो प्रकृति के विकार हैं उनके भी लक्षण सुख-दुःख घटित नहीं होते, उपादान कारण के गुण कार्य में अनुगत होने से।

अब योग-बल से कोई योगी कहे कि सुख-दुःख प्रकृति के गुण हैं तो वे जड़ को चेतन और चेतन को जड़ करने का सामर्थ्य परमेश्वर की व्यवस्था के विपरीत रखते हैं। अब तक कोई भी पण्डितम्मन्य प्रकृति सुख-दुःख लक्षण वाली है, आर्ष वाङ्मय में नहीं दिखा सके। अतः वेद प्रतिपादित व तदनुकूल आप्तों की मान्यता यही है कि सुख-दुःख आत्मा के ही गुण हैं, प्रकृति के नहीं।

●●

मत व्यर्थ जाने देना

(१)

हे ईश! मम विनय को मत व्यर्थ जाने देना।
उपदेश ईश वन्दन के गीत हमें गाने देना॥
जो मैं लिखूँ वो ही बोलूं जो बोलूं वो करूं मैं।
हर कष्ट में हे भगवन्! नहीं सत्य से टरूं मैं।
श्रम बिन्दु से शुभार्जित भोजन ही पाने देना॥
उपदेश.....

(२)

सब जीव स्वात्मवत् हैं, सुख दुःख जो मेरा उनका।
तम अधम है, रज प्रवर्तक, इच्छुक हूँ सत्त्व गुण का॥
पथ-विघ्न दूर-कर प्रभु निज पास आने देना॥
उपदेश.....

(३)

दुरितों से दूर होकर गधों से काम लूँ मैं।
बहने लगूं जो जग में तेरा हाथ थाम लूं मैं।
स्वर आर्त हो पुकारूँ तो बह न जाने देना॥
उपदेश.....

(४)

तू बन्धु है पिता तू रक्षक भी तू है मेरा।
इतने हैं नाते तुझ से तब ही तो तुझ को टेरा॥
'गुणग्राहक' सत्य पथ से मत डगमगाने देना॥
उपदेश.....

—रामनिवास 'गुणग्राहक' पुरोहित,
आर्यसमाज श्री गंगानगर (राज०)

द्विजों के लिए

सभ्यता हृदय की धड़कन है,
संस्कृति नाभि का नाल है।
इन दोनों से वंचित रह,
मानव जीवन कंगाल है॥

पोष पाकर बढ़ता रहता,
जिसके कारण तन निशि वासर।
मूक-बधिर-अन्धा लंगड़ा बन,
इसके बिन रहता है कातर।
सभ्यता कमी को पूरा कर,
करती सचमुच खुशहाल है।।

शक्ति-भक्ति चिन्तन विचार,
ज्यों मां से शिशु को मिल जाता।
हाव-भाव-बर्ताव सुपोषण,
उदर बीच बालक पाता।
बिना हृदय की धड़कन के,
मृत्यु वरण तत्काल है॥

सद्नीति के बीज पनपते,
संस्कारित हो मूल्य बढ़े।
अनुकरण-व्यवहार आचरण,
सद्गति के सोपान चढ़े॥
स्वाध्याय-इतिहास, भविष्य का,
पराक्रम 'मरुत्' कमाल है॥

—सत्यदेवप्रसाद आर्य 'मरुत्',
प्रेमनगर, नेमदार गंज, नवादा, बिहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुद को 'खुदी' ने खुदा को क्यों सौंपा?

—उमाशंकर आर्य "प्राचार्य", महर्षि दयानन्द सरस्वती बाल मन्दिर, तेघड़ा बेगूसराय, बिहार-८५११३३

एक बार विदाय दे माँ घुरे आसि।
हाँसि-हाँसि पोरबो फाँसी, देखिबे भारतबासी॥

खुदीराम बोस के बलिदान पर गाये जाने वाले इस गीत की पंक्ति आज भी बंगाल के घर-घर में माताएँ गाती हैं, गुनगुनाती हैं। बंगाल के बीहड़ तराई इलाकों में प्रवेश करने पर यह आज भी सुना जाता है। किसानों के कंठों से यह अमर गीत बलिदान के ८८ वर्षों के बाद भी खुदीराम के जीवन के कदम-कदम पर प्रेम श्रद्धा और बलिदान के फूल खिला रहे हैं और खिलते रहेंगे।

११ अगस्त १९०८ को प्रातः ६ बजे मुज़फ़्फ़रपुर जेल में फाँसी के तख्ते पर खुदीराम जा चढ़े। फाँसी के समय उपस्थित एक संवाददाता उपेन्द्रनाथ सेन ने उस क्षण का वर्णन करते हुए लिखा है—"खुदीराम तेजी के साथ आगे-आगे चलकर मानो सिपाहियों को खींचे आ रहे हों, (हम लोगों को देखकर वह मुस्कुराये, फिर एक बार और हम लोगों को देखा। इसके बाद) दृढ़ कदमों से बढ़ते हुए फाँसी के तख्ते की ओर बढ़ गये।"

२०वीं सदी में सर्वप्रथम खुदीराम बोस ने ही हँसते हुए फांसी के तख्ते पर प्राण न्योछावर कर सम्पूर्ण राष्ट्र को मृत्यु से मुक्त होने का संकेत दिया था। खुदी के बुलन्द, संकल्प के दृढ़, बुद्धि से विवेकपूर्ण, उम्र से आवेशपूर्ण, भक्ति से मातृभूमि को समर्पित, इरादे के सच्चे और धुन के पक्के खुदीराम ने अग्नि की चिनगारी के रूप में विद्रोही बनकर भारत माँ की गोद में जन्म लिया और उसी क्रान्ति की अग्निज्वाला के साथ जल गया। फाँसी पर झूल गया। खुद को खुदा के हवाले कर दिया। गीता ही जिसकी मार्गदर्शिका थी, आजादी ही जिसकी आराध्या थी, जो न गोली से डरता था, न बम के बिना चलता था, जो मातृभूमि की आजादी का सपना लिये कदम-कदम, तेज कदम बढ़ता जा रहा था। गुलाम बनाने वालों को गुलाम बनाने का सपना लिये, सर काटने वालों का सर काटने का सपना लिये। उसी जलते हुए शोले को हम खुदीराम के नाम से जानते हैं।

आग का गोला था खुदीराम, धधकता हुआ शोला था खुदीराम, एक उबलता हुआ ज्वालामुखी, एक उफनता हुआ जोश का दरिया, एक उबलता हुआ क्रान्ति का तूफ़ान और मातृभूमि की शान के लिए मर मिटने वाला कोई आल्हा, कोई ऊदल, कोई शिवा, कोई राणा, कोई तात्या, कोई कुँवरसिंह था खुदीराम। जिसके पीछे कोई कातिल नहीं चलता था जो स्वयं कातिल का पीछा करता था और उस कातिल का नाम था किंग्सफोर्ड। जो किंग्सफोर्ड कलकत्ते का चीफ़ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट था और जिसने २६० देशप्रेमियों को देशद्रोही करार देकर फाँसी की सजा दी थी। १९०८ ई० में किंग्सफोर्ड ने बिहार की धरती पर कदम रखा तथा मुज़फ़्फ़रपुर के जिला एवं सत्र न्यायाधीश की कुर्सी पर आसीन हुआ।

किंग्सफोर्ड ने राष्ट्रभक्तों के दमन के साथ-साथ राष्ट्रीयता जगाने वाले अखबारों के दमन में भी प्रभूत बदनामी अर्जित की थी। 'युगान्तर' के सम्पादक के रूप में स्वामी विवेकानन्द के अनुज भूपेन्द्रनाथ दत्त को डेढ़ वर्ष की सजा दी थी। 'वन्दे मातरम्' के सम्पादक के रूप में विपिनचन्द्रपाल को ६ मास की सश्रम कारावास दी थी किंग्सफोर्ड ने। हालाँकि 'वन्दे मातरम्' के सम्पादक थे अरविन्द घोष, लेकिन यह साबित नहीं हो सका था। सन्ध्या के सम्पादक 'ब्रह्मबान्धव' को जेल में इतनी यातना दी गई थी कि वे जेल में ही मर गए। किंग्सफोर्ड ने एक १६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षीय छात्र सुशीलकुमार को आन्दोलन में भाग लेने का दोषी करार देकर १५ बेंतों की सजा दी थी। किंग्सफोर्ड ने अपने सामने ही जल्लाद के द्वारा कपड़े उतरवाकर टिकटी से बँधवाकर १५ बेंत लगवाये थे। जल्लाद ने उछल-उछलकर इतने जोरों से प्रहार किया था कि उस छात्र के पीठ तथा नितम्बों की खाल उधड़कर मांस निकल आया था और वह अचेत हो गया था।

किंग्सफोर्ड के अन्याय की पराकाष्ठा को देखते हुए क्रान्तिकारियों के सिरमौर अरविन्द घोष और चारुदत्त ने निर्देश दिये—किंग्सफोर्ड को खत्म कर देना चाहिए। क्रान्तिकारियों के भय से अंग्रेज पदाधिकारियों ने किंग्सफोर्ड का तबादला मुज़फ़्फ़रपुर सेशन जज के रूप में कर दिया। किंग्स को समाप्त करने के लिए खुदीराम बोस और प्रफुल्लचन्द्र को चुना गया। दोनों को एक-एक डायनामाइट बम जिसमें लकड़ी का हत्था था तथा जो टिन के डिब्बे में बन्द था और दो रिवाल्वर सौंपे गए ताकि जरूरत पड़ने पर उनका उपयोग किया जा सके।

मार्च १९०८ के अन्त में खुदीराम बोस अपने क्रान्तिकारी साथी प्रफुल्लचन्द्र चाकी के साथ मुज़फ़्फ़रपुर आये और एक धर्मशाला में छद्मनाम से ठहर गए। फिर दोनों ने वह स्थान देखा जहाँ किंग्सफोर्ड रहता था। दोनों ने दिन-दिन भर घूमकर नगर के रास्तों की पहचान कर ली। किंग्सफोर्ड पर उन दोनों की निगाहें रहती थीं। किंग्सफोर्ड की कोठी के निकट गोरों का एक क्लब चलता था। किंग्सफोर्ड भी प्रतिदिन सायंकाल वहाँ पहुँचता था और देर रात में वापस लौटता था। किंग्सफोर्ड घोड़े वाली फिटन से क्लब जाता था। ठीक उसी रंग की फिटन शहर में एक अमरीकी वकील पी० कैनेडी के पास भी थी। वे भी प्रतिदिन अपनी फिटन से क्लब जाते थे।

३० अप्रैल सन् १९०८। अमावस्या की रात। गहरा अँधेरा सब ओर घनीभूत था। खुदीराम बोस और प्रफुल्लचन्द्र चाकी बम रिवाल्वरों से लैस वहीं किंग्सफोर्ड के बंगले के निकट इंतजार में खड़े थे, एक पेड़ की ओट में। तभी ८ बजे एक फिटन क्लब की ओर से लौटी। खुदीराम ने उसे किंग्सफोर्ड का फिटन मानकर उस पर बम फेंक दिया। भयंकर विस्फोट गूँजा। फिटन का एक भाग ध्वस्त हो गया। दो अमेरिकी महिलाएँ घायल होकर गिर गयीं। वे पी० कैनेडी की पत्नी और बेटी थीं। कोचवान जख्मी होकर बच गया लेकिन दोनों महिलाएँ मर गईं। दोनों पेड़ की ओट में आगे बढ़े तो वहाँ एस०पी० तैनात था। दो सिपाही तहसीलदार खाँ और फैजुद्दीन ने उन्हें देख लिया था। परन्तु भय वश पीछा नहीं किया और दोनों निकल भागे। सिपाहियों ने थाने में रिपोर्ट की। हर जगह नाकेबन्दी कर दी गई। क्रान्तिकारियों की खोज होने लगी। चारों ओर सनसनी फैल गई। दोनों वीर रेलपटरी के किनारे-किनारे भागते रहे और रात-भर भागते-भागते २५ मील चलकर 'बैनी गाँव' आये। प्रफुल्ल एक आम के बाग में बैठ गया और खुदीराम एक मोदी की दूकान पर चिउरा लेने गया। भोर हो चुका था और दोनों के हुलिए भी हर जगह जा चुके थे। उसी मोदी की दूकान पर दो सिपाही खड़े थे- 'शिवप्रसाद और फतेहसिंह'। इन दोनों को खुदीराम पर शक हो गया और दोनों ने मिलकर खुदीराम को दबोच लिया। गोली चलाने का मौका भी न पा सका यह तरुण वीर। पुलिस वाले इसे रेल में बिठाकर मुजफ्फरपुर रवाना हो गये। खुदीराम को पकड़ाया हुआ देख प्रफुल्ल वहाँ से समस्तीपुर की ओर भागा। ३२ मील चलकर समस्तीपुर पहुँचा। कॉलोनी के एक देशभक्त व्यक्ति ने प्रफुल्ल को रोककर भोजन करा विश्राम के लिए स्थान दिया और फिर नये कपड़े और नये जूते खरीदकर दिये और कलकत्ता तक का टिकट कटाकर उसे इंटर क्लास में बिठा दिया। उसी डिब्बे में नन्दलाल बेनर्जी नामक एक दारोगा भी सफर कर रहा था। उसकी नज़र में चाकी चढ़ गया। उसे मुज़फ्फरपुर बम कांड की ख़बर थी तथा क्रान्तिकारियों के हुलिये का भी पता था। बेनर्जी दारोगा ने स्टेशन मास्टर को तार द्वारा सूचना मोकामा भेज दी। मोकामा स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्मस्ट्रांग दारोगा ने चाकी को घेर लिया। अन्य सिपाहियों के साथ दारोगा चाकी को पकड़ने बढ़ा ही था कि चाकी ने दारोगा पर गोली चला दी। दारोगा सिर झुकाकर निशाना बचा गया। चाकी ने देखा अब पकड़ा जाना निश्चित है तो उसने बिना एक क्षण की देर किये एक गोली अपने माथे पर दागी तथा दूसरी गोली अपनी छाती पर दागी। खून से लथपथ हो प्लेटफॉर्म पर गिर गया और तत्काल शहीद हो गया। चाकी का सिर काटकर मुज़फ्फरपुर लाया गया, खुदीराम बोस को दिखाकर पहचान कराने के लिए!

मुज़फ्फरपुर पहुँचकर खुदीराम उदास नहीं हुआ। लोगों ने उसे हमेशा प्रसन्नचित्त पाया। भारी भीड़ उमड़ पड़ी खुदीराम के दर्शन हेतु। आधी धोती घुटनों पर चढ़ी, आधी कन्धे पर, उलझे से घुंघराले बाल, साधारण सा कुरता। चेहरे पर भय का कोई चिह्न नहीं। खुदीराम पर मुकदमा चला लेकिन खुदीराम ने मुकदमे में कोई रुचि न ली। न बचाव की ही कोशिश की। १० दिनों तक मुकदमा चला। जिला जज कर्नडफ की अदालत से खुदीराम को फांसी की सजा दी गई। फांसी की सजा सुनकर खुदीराम मुस्कुरा पड़ा। जज ने पूछा—"खुदीराम! क्या तुम्हें फांसी की सजा सुनकर कोई गम नहीं।" खुदीराम ने मुस्कुराते हुए जज को जवाब दिया—"मुझे दो बातों का दुःख है जज साहब! एक तो यह है कि मिस्टर किंग्सफोर्ड बच गया और व्यर्थ ही दो महिलाएँ मरीं। दूसरी बात यह कि जब मेरी अपरूपा दीदी को पता चलेगा कि खुदीराम अब संसार में नहीं है तो उन्हें बड़ा दुःख होगा क्योंकि मैं ही अकेला उनका एक भाई था।"

अंग्रेज जज यह सुनकर दांतों तले कलम दबाकर रह गया और अवाक् निहारता रहा उस मुस्कुराते हुए बालक को कि किस धातु का बना है यह लड़का।

११ अगस्त १९०९ को मुजफ्फरपुर जेल में खुदीराम बोस हाथ में गीता लिये हँसता हुआ फांसी पर चढ़ गया। उसके अन्तिम बोल थे—वन्दे मातरम्। वकील कालीदास बोस ने उसका अन्तिम संस्कार किया श्मशान में। उस समय ऐसी भीड़ थी कि उस शहीद की चिता-भस्म की एक चुटकी राख के लिए छीना-झपटी मच गई।

खुदी ने खुद को खुदा को क्यों सौंपा?

यह ज्वलन्त प्रश्न समस्त मानव समुदाय को उद्विग्न बनाने के लिए पर्याप्त है। जिस बालक ने अभी जीवन के मार्ग पर कदम भी न रखा था। जिसे अभी मूँछ की रेखा तक न आई थी। उस १८ वर्षीय तरुण को आखिर बम फेंकने तथा फांसी पर झूलने की क्या जरूरत थी? ढूंढिए इस ज्वलन्त प्रश्न का उत्तर! शायद आपको राष्ट्रहित में बलिदानी परम्परा की एक चमक दिखाई पड़ेगी। उस मासूम खुदीराम के हृदय की भावनाओं को चिन्तन की लहरों में प्रवाहित कर जरा विचार करिये। भावुक हृदय में तूफान खड़ा कर देगा खुदीराम की प्रचण्ड देशभक्ति का भाव! खुदीराम ने खुद को मिटाया, खुद को लुटाया, खुद को जलाया, खुद को खुदा को सौंप अमरत्व को प्राप्त कर राष्ट्र को एक संदेश दे गया कि अन्याय और अधर्म की पंक में डूबा हुआ जालिम प्रशासक को समाप्त कर देने में ही राष्ट्र का उद्धार होगा। भारत-माता चैन की सांस ले सकेगी।

मेरे देश के नौनिहालो! तरुणो!! वीरो!!! राष्ट्रभक्तो!!!! आज तुम्हें अपने अन्दर खुदीराम को जन्म देना होगा। खुदीराम बनकर हाथ में तीव्रतम धमाका वाला बम लेकर किंग्सफोर्ड जैसे अन्यायकारी और जालिम अधिकारियों के चिथड़े उड़ाकर भारत-माता की तड़पती आत्मा को शान्ति प्रदान करानी होगी। यदि आज भारत का एक-एक तरुण खुदीराम जैसा इस देश में वर्तमान किंग्सफोर्ड पर धावा बोल दे तो माँ भारती कितना खुश होगी? लेकिन, हाँ, जोश में भरकर होश न खोना ताकि किंग्सफोर्ड की जगह मिस कैनेडी और कुमारी कैनेडी के चिथड़े न उड़ जायें। आज भारत के प्रत्येक तरुणों को खुदीराम बनना होगा, प्रफुल्लचन्द्र चाकी बनना होगा तभी राष्ट्रमाता का कल्याण सम्भव है। भारत के प्रत्येक घर में पुनः यह गीत गुञ्जायमान करना होगा—

एक बार विदाय दे माँ घुरे आसि।
हाँसि-हाँसि पोरबो फाँसी देखिबे भारतबासी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय एकता में आर्यसमाज का योगदान

—डॉ० सत्यदेव आजाद, 2313, अर्जुनपुरा, डीगगेट, मथुरा

राजस्थान प्रवास के समय स्वामी दयानन्द उदयपुर में ठहरे हुए थे। अपने प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का कुछ भाग वह यहीं लिख रहे थे। महाराणा उदयपुर के आग्रह पर राजमहलों में स्वामी जी के भाषण चल रहे थे। राजमहल की रानियां भी उनके प्रवचनों से लाभ उठा रही थीं। उन दिनों रियासत के दीवान—मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या, जो स्वामी जी के साथ छाया की तरह रहते थे, एक दिन स्वामी जी से पूछ बैठे—"महाराज, इस देश की एकता कैसे मजबूत हो सकती है?" स्वामी जी बोले—**"जब तक एक भाषा, एक धर्म और समाज में सब को एक जैसा सम्मान नहीं मिलेगा, तब तक एकता आनी कठिन है।"**

लगभग सवा सौ वर्ष पहले आर्यसमाज की स्थापना करते समय भी स्वामी जी ने इसका विशेष ध्यान रखा। वह स्वयं गुजराती थे और उनके अध्ययन का माध्यम संस्कृत था। इतने पर भी स्वामी जी ने हिन्दी को ही अपने ग्रन्थों और भाषणों की भाषा चुना। कई स्थानों पर उन्होंने इसके लिए कहा भी—**"जब तक किसी राष्ट्र में अभिव्यक्ति का माध्यम कोई एक सशक्त भाषा नहीं होती, जिसे सारा देश समझ सके, तब तक एकता की चर्चाएं आकाश में ही घूमती रहेंगी।"** इस तथ्य से स्वामी जी भली-भांति परिचित थे। उन्होंने हिन्दी के लिए अपने ग्रन्थ में 'आर्यभाषा' शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान आदि शब्द तो मुगलकाल से चले। उससे पहले जब देश का नाम आर्यावर्त था, और उसके निवासी आर्य कहलाते थे, भला उनके कामकाज की भाषा को आर्यभाषा के अतिरिक्त कहा भी क्या जा सकता था।

ब्रह्मसमाज के एक संस्थापक नेता ने स्वामी दयानन्द की कलकत्ता यात्रा में एक बार उनसे कहा—"यदि आपने अंग्रेजी पढ़ी होती तो कमाल हो जाता।" उन्होंने पूछा—"वह कौन सा कमाल है जो अंग्रेजी पढ़ने से ही होता है?" इस पर वह बोले, "वेद का जो सन्देश आज आप भारत में दे रहे हैं, उसे इंग्लैंड, अमरीका और दूसरे देशों में भी फैलाया जा सकता था, जिनकी भाषा अंग्रेजी है।" इस पर ब्रह्मसमाज के उस नेता की आत्महीनता पर हंसते हुए स्वामी जी ने कहा—"मुझसे बड़ी भूल आपने अपने जीवन में यह कर रखी है जो संस्कृत और हिन्दी नहीं जानते। यदि आप इन दोनों भाषाओं को जानते होते तो हम एक और एक ग्यारह हो जाते। दोनों मिलकर पहले भारत में इस ज्ञान का प्रकाश करते और बाद में बाहर चलने की सोचते। जिनके घर में कूड़ा-करकट भरा है, वे पड़ोसियों को सफाई के उपदेश कैसे दे सकते हैं?"

आर्यसमाज के गुरुकुलों, डी०ए०वी० कालेजों और कन्या विद्यालयों में शुरू से ही अध्ययन का माध्यम हिन्दी रहा है। संस्कृत अतिरिक्त विषय के रूप में पढ़ाई जाती थी और शिक्षा हिन्दी में दी जाती थी। गांधी जी ने हिन्दु विश्वविद्यालय के रजत जयन्ती समारोह में भाषण देते हुए कहा था, "जब हरिद्वार के जंगलों में बैठकर स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दी के माध्यम से गुरुकुलों में विज्ञान, साहित्य और आयुर्वेद की शिक्षा दे सकते हैं तो गंगा के किनारे बैठकर आप लोग इन बच्चों को टैम्स का पानी क्यों पिला रहे हैं?" भारत भर में और दूसरे देशों में भी, जहां आर्यसमाज की शाखाएं अथवा संस्थाएं हैं, वहां हिन्दी का सामान्य ज्ञान और व्यवहार आवश्यक है। आश्चर्य है कि पराधीन भारत में तो हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में देश के सभी भागों में लोकप्रिय हुई, पर स्वाधीनता के बाद कुछ राज्यों में हिन्दी-विरोध को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाने लगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ला प्रतिपदा संवत् १९३२ को बम्बई नगर में की। जिस धर्म के शुद्ध स्वरूप की रक्षा के लिए यह स्थापना हुई, वह कोई संकुचित धर्म नहीं था। जिस धर्म को वह पूरे भारत में और विश्व में फैलाना चाहते थे, वह भी सब के लिए समान रूप से ग्राह्य था। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् ने अंग्रेजी के 'सैक्युलर' शब्द का अर्थ 'धर्मनिरपेक्ष' की तुलना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में समझाते हुए कहा था—"धर्म एक शाश्वत सत्य है जो प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करता है। सैक्युलर शब्द का अर्थ सम्प्रदाय और मतनिरपेक्ष तो हो सकता है, धर्मनिरपेक्ष नहीं। सम्प्रदाय और मत व्यक्ति-विशेष और परिस्थितियों की पैदावार होते हैं। धर्म से इनकी तुलना नहीं की जा सकती।"

एक समय ऐसा भी था जब धर्म की आड़ में व्यक्तिगत द्वेष, तनाव और उपद्रवों को बहुत प्रश्रय मिला। कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने मिलकर धर्म के असली स्वरूप को ढक दिया। उन्हें जो अनुकूल लगा, उसी के अनुसार धर्म की व्याख्या कर दी। जब कहीं उनका विरोध और आलोचना हुई, उन्होंने वेद का सहारा ले लिया। वह भगवान् का ज्ञान है, वह असत्य नहीं हो सकता—यह युक्ति दे दी जाती थी। गौतम बुद्ध को इसीलिए वेदों के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ी। लेकिन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों का सही और युक्तिसंगत अर्थ करके समाज में चल रही उन भ्रान्तियों का दृढ़ता से निराकरण किया। आर्यसमाज के जो दस नियम उन्होंने बनाये हैं, वे भी मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी हैं। इनमें कहीं संकुचितपन की झलक देखने को नहीं मिलेगी। यदि कहीं आर्यसमाज के कार्यक्रमों में संकुचितपन की कोई गन्ध मिलेगी, तो वह आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं का अपना दोष हो सकता है, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित आर्यसमाज के सिद्धान्तों का नहीं।

जिस समय स्वामी जी देश में घूम-घूम कर आर्यसमाज की स्थापना कर रहे थे, उस समय भारत भौगोलिक और भावनात्मक दृष्टि से भी अनेक भागों में विभक्त था। लगभग ५८० देशी रियासतें थीं, जो अपनी अहम्मन्यता और विलासिता में मस्त थीं। देश का ६० प्रतिशत से कुछ अधिक भाग रियासतों से बाहर था। उस पर अंग्रेजों ने आधिपत्य कर रखा था। सामाजिक कुरीतियों को बढ़ावा देने में विदेशी शासन का भी बहुत बड़ा हाथ रहा। जन्ममूलक जात-पांत और छुआछूत को उभारने में कोई कसर नहीं रखी गयी। स्वामी दयानन्द ने देखा कि यदि यही स्थिति देश में देर तक चलती रही तो पराधीनता के बन्धन कड़े हो जायेंगे और समाज टुकड़ों-टुकड़ों में बंट कर पतन के गर्त में जा गिरेगा।

जात-पांत उन्मूलन : आर्यसमाज ने जन्मगत जात-पांत को मिटाने और हरिजन समस्या के समाधान में भी पूरी शक्ति लगायी है। यद्यपि यह समस्या समाप्त होने में तो अभी और कुछ समय लगेगा, क्योंकि इसकी जड़ें बहुत गहरी पहुंच चुकी हैं, पर देश ने इसके भयंकर परिणामों को समझना शुरू कर दिया है। जो काम आर्यसमाज इस देश में कर रहा था, वह सरकार ने भी अपने हाथों में ले लिया है। छुआछूत के इस विष को समाप्त करने के लिए संविधान में स्पष्ट व्यवस्था की गई है, लेकिन आर्यसमाज की मान्यता है कि जब तक जात-पांत को मूल से ही मिटाया नहीं जाएगा, तब तक छुआछूत की भावना समाप्त होनी बहुत मुश्किल है।

राष्ट्रीय एकता का जो स्वप्न आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने पहले देखा था, यदि शासन ने भी उस समय उनको सहयोग दे दिया होता तो आज देश का चित्र दूसरा होता। पर ब्रिटिश शासन का हित तो भारतवासियों को आपस में लड़ाने में ही था। आर्यसमाज ने राष्ट्रीय एकता के लिए जो प्रयास किये—इनमें महिला जागरण, पिछड़े क्षेत्रों और आदिवासी क्षेत्रों में प्रचार आदि के अतिरिक्त धार्मिक क्षेत्रों में वैचारिक क्रान्ति लाना भी था।

बम्बई नगर के गिरगांव मुहल्ले में सब से पहला आर्यसमाज बना। इस आर्यसमाज के न्यासियों और दानदाताओं में रहमतुल्ला नाम के मुसलमान भी थे। अन्य न्यासियों में जस्टिस गोविन्द रानाडे और बम्बई के कुछ दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे! आर्यसमाज के प्रवर्तक का ध्येय सभी सम्प्रदायों में व्याप्त कुरीतियों को दूर करके सच्चे धर्म में आस्था जगाना था, किसी के प्रति घृणा पैदा करना नहीं था। कुछ समय के बाद इसके लिए सभी मतों के प्रतिनिधियों को बुलाकर उच्चस्तरीय सम्मेलन भी उन्होंने किये। बम्बई के एक सम्मेलन में मुसलमानों के प्रतिनिधि सर सैयद अहमद खां और ब्रह्म-समाज की ओर से केशवचन्द्र सेन तथा ईसाइयों की ओर से भी दो प्रतिनिधि पहुंचे। सम्मेलन के प्रमुख विचारणीय विषयों में राष्ट्रीय एकता के लिए धार्मिक संगठनों की भूमिका पर विस्तार से चर्चा चली। ऐसा ही एक सम्मेलन दिल्ली दरबार के समय भी उन्होंने बुलाया था। आर्यसमाज को आज इन विचारों को आगे बढ़ाने में अपनी प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए। धर्म की आड़ में जो निजी दुकानें खुल रही हैं, उन्हें रोकना चाहिए और धर्म के उस उदार स्वरूप की प्रतिष्ठा करनी है जो सब को साथ लेकर चल सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाइयों से दो प्रश्न

—भारतेन्दु, C/o स्वामी श्रद्धानन्द पुस्तकालय, आर्यसमाज मन्दिर, बेतिया, बिहार

आज विश्व में शक्ति, सम्पत्ति और साम्राज्य का अकूत भण्डार जिन जातियों के पास है, उनमें ईसाई जाति का स्थान अग्रगण्य है। यही कारण है कि धर्म और ज्ञान के नाम पर ईसाई राष्ट्र और संस्थाएं बाइबिल में कही गयी बातों को ईश्वरीय ज्ञान मान कर पूरे विश्व में उसके प्रचार हेतु अपरिमित धन और जनशक्ति लगा रही हैं। मानवता का एक बड़ा हिस्सा आज बाइबिल के प्रचार-प्रसार में अपना श्रम व समय खर्च कर रहा है। परन्तु इससे मानव जाति को क्या लाभ प्राप्त हो रहा है? निश्चित ही कुछ भी नहीं। क्योंकि बाइबिल नामक जिस ग्रन्थ को ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक बताया जाता रहा है, उसमें अनर्गल और युक्तिहीन बातों की शृंखला भरी पड़ी है। आइए, इस सम्बन्ध में कुछ बिन्दुओं पर विचार करें।

ईसाई—आदम और हव्वा के दो पुत्र थे—काइन और हाबिल। हाबिल भेड़ बकरियों का चरवाहा बना और काइन खेतिहर। समय पाकर काइन ने खेत की उपज में से प्रभु को भेंट चढ़ाई। हाबिल ने भी अपनी बकरियों से पहली बार पैदा हुए बच्चों में से कुछ का चरबीदार मांस चढ़ाया। प्रभु हाबिल और उसकी भेंट से बहुत प्रसन्न हुए। इससे काइन बहुत क्रुद्ध हो गया।

इसके पश्चात् काइन ने अपने भाई हाबिल से कहा, "चलो, हम खेत में चलें। और जब वे दोनों खेत में थे; वह अपने भाई हाबिल पर टूट पड़ा और उसे मार डाला।"

तब प्रभु ने काइन से पूछा, "तुम्हारा भाई हाबिल कहां है?" उसने उत्तर दिया—"मैं नहीं जानता। क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ?" तब प्रभु ने उसे शॉपित करते हुए कहा, "तुम पृथ्वी पर मारे-मारे फिरोगे।" काइन ने प्रभु से कहा—"मुझे दिया गया दण्ड मेरी सहन-शक्ति से परे है। मुझे पृथ्वी पर मारा-मारा फिरना पड़ेगा और मुझे जो कोई भी पाएगा मार डालेगा।" तब प्रभु ईश्वर ने उससे कहा—"नहीं, यदि कोई काइन को मार डालेगा, तो उससे सात गुणा बदला लिया जाएगा।"

—उत्पत्ति—४।३।१६

समीक्षा—इस प्रसंग के अनुसार आदम और हव्वा के दो पुत्र हुए थे। कुछ दिनों पश्चात् आदम और हव्वा के पुत्र हाबिल ने अपनी बकरियों के पहिलौठे बच्चों में से कुछ का चरबीदार मांस चढ़ाया और काइन ने खेत की उपज में से भेंट चढ़ाया। प्रभु हाबिल और उसकी भेंट से प्रसन्न हुआ लेकिन काइन और उसकी भेंट से प्रसन्न नहीं हुआ। यह ईश्वर के मांसाहारी होने को इंगित करता है। काइन ने अपनी भेंट स्वीकार नहीं होने से काफी क्रुद्ध होकर हाबिल का वध कर दिया। इस घटना के बाद ईश्वर ने काइन को शॉपित करते हुए कहा—"तुम पृथ्वी पर मारे-मारे फिरोगे।" काइन ने प्रभु से कहा—"मुझे दिया गया दण्ड मेरी सहनशक्ति से परे है। मुझे पृथ्वी पर जो कोई भी पाएगा मार डालेगा।" काइन का यह कथन कि—"जो कोई भी मुझे पाएगा मार डालेगा।" पृथ्वी पर चौथे व्यक्ति की उपस्थिति का प्रमाण देता है। लेकिन बाइबिल के ईश्वर द्वारा किये गये सृष्टि-रचना के अनुसार इस पृथ्वी पर केवल तीन व्यक्ति होने चाहिए। आदम, हव्वा और काइन (चूंकि काइन ने हाबिल का वध कर दिया है)। चौथे व्यक्ति का पृथ्वी पर उपस्थित होना बाइबिल के सम्पूर्ण सृष्टि-क्रम को असत्य बताता है तथा पूरे घटनाक्रम को कपोल-कल्पित सिद्ध करता है। प्रसंग को लिखने वाला स्वयम् एक विद्वान् नहीं है, न ही वह दार्शनिक चिन्तक ही। ईसाई और मुसलमानों के विद्वानों के अनुसार बाइबिल को आकाशीय पुस्तक माना जाता है तथा इसके सारे प्रसंग ईश्वरकृत माने जाते हैं। लेकिन ईश्वर जो सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना जाता है वह ऐसी गलती कभी कर ही नहीं सकता।

ईसाई—यीशु के जन्म की घोषणा के सन्देश जन्म से पूर्व छठे महीने में देवदूत गाब्रिएल द्वारा ईश्वर की ओर से गलीलिया के नाजरेत नगरी में एक कुंवारी के यहां भेजे गए; जिसकी मंगनी दाऊद के वंशज यूसुफ नामक पुरुष से हुई थी; और उस कुंवारी का नाम था मरियम। देवदूत ने मरियम के सामने जाकर कहा—"प्रणाम कृपापूर्ण प्रभु आपके साथ हैं। धन्य हैं आप स्त्रियों में।" यह सुनकर वह बहुत घबरा गई और विचारने लगी— "यह कैसा अभिवादन है?" तब देवदूत ने उससे कहा, "मरियम, आप डरिये नहीं, आपको ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हुआ है। देखिए, आप गर्भवती होंगी और पुत्र जनेंगी। आप उसका नाम येशु रखियेगा। प्रभु परमेश्वर उनके पूर्वज दाऊद का राजसिंहासन उनको प्रदान करेंगे; वे याकूब के घराने पर सदा-सर्वदा राज्य करेंगे और उनके राज्य का अन्त कभी नहीं होगा।" तब मरियम ने देवदूत से पूछा—"यह कैसे होगा; मैं किसी पुरुष को नहीं जानती?" देवदूत ने उत्तर दिया, पवित्र आत्मा आप पर उतरेगा और सर्वोच्च की सामर्थ्य की छाया आप पर पड़ेगी। इस कारण जो पवित्र शिशु जनमेंगे, वह ईश्वर पुत्र कहलाएंगे।

(—लूकस १:२६-३८)

ख्रीस्त ही यहूदियों के मसीह हैं, जिनमें इब्राहीम तथा दाऊद के दिए गए ईश्वर के वचन पूरे हो जाएंगे।

(—मत्ती रचित सुसमाचार)

जिनके विषय में मूसा ने व्यवस्था में और नबियों ने भी लिखा है, वे हमें मिल गये हैं। वे नाजरेत निवासी यूसुफ के पुत्र येशु हैं।

(—योहन-१:३४-५१)

समीक्षा—बाइबिल के नये विधान में यीशु की वंशावली की चर्चा है। उन्हें दाऊद के वंश का दिखाया गया है। देवदूत गाब्रिएल के अनुसार मरियम को कुंवारी ही गर्भवती होना था और यीशु को जन्म देना था। इस पर मरियम ने यह भी कहा कि मैं किसी पुरुष को नहीं जानती। बाइबिल के अनुसार मरियम कुंवारी ही माँ बनी। किसी भी बालक का वंश उसके पिता के वंश पर निर्भर करता है, जब मरियम का यूसुफ के साथ संसर्ग ही नहीं हुआ तो यीशु दाऊद के वंश के कैसे हो गये। जबकि नबियों द्वारा यही भविष्यवाणी की गई थी कि यीशु दाऊद के वंश में आयेंगे। यहां तक कि ईश्वर ने इब्राहीम और दाऊद को यह वचन भी दिया था। अगर थोड़ी देर के लिए हम यह मान लें कि यीशु मरियम और यूसुफ के संसर्ग से उत्पन्न हुए थे तो यह भी असत्य है क्योंकि अगर ऐसा होता तो यूसुफ मरियम को चुपके से तलाक देना नहीं चाहते और देवदूत गाब्रिएल को यूसुफ को यह सन्देश नहीं देना पड़ता कि "यूसुफ दाऊद की सन्तान! अपनी पत्नी मरियम को अपने यहां लाने में नहीं डर, क्योंकि उनको जो गर्भ है वह पवित्र आत्मा से है। वे पुत्र प्रसव करेंगी और उसका नाम ईसा रखेंगे। इस प्रकार ईसा के जन्म को बाइबिल में अवैज्ञानिक दिखाया गया जो विश्वास योग्य नहीं है और इस प्रकार भविष्यवाणी भी उन पर असत्य साबित हो रही है। यहाँ तक कि बहुत से यहूदियों ने अभी तक ईसा पर विश्वास नहीं किया है, वे आज भी अपने मसीह की प्रतीक्षा में हैं जिसके बारे में मूसा ने अपने व्यवस्थान में चर्चा की है। देखिए कब तक पूरी होती है यहूदियों की आकांक्षा।"

ये दो बिन्दु केवल दृष्टान्त मात्र हैं। सम्पूर्ण बाइबिल की समीक्षा श्रम एवं समय साध्य कार्य हैं, परन्तु सत्यान्वेषियों को इस क्षेत्र में और प्रयत्न करने की आवश्यकता है। यह कार्य वास्तव में मानव-कल्याण का कार्य होगा। क्योंकि यदि सम्पूर्ण मानव जाति बाइबिल की यथार्थता से परिचित हो जाएगी, तो विश्व में व्यर्थ हो रही बहुत बड़ी धनराशि एवं जन-शक्ति को हम पृथ्वी से भय, भूख और अज्ञानता को दूर करने में खर्च कर सकेंगे। इस हेतु विशेषकर मेरी प्रार्थना यीशु के अनुयायियों से है कि वे अन्धविश्वास को त्यागकर विवेक से काम लें और सच्चे मानव कल्याण के कार्यों में संलग्न होंवें। पाठकों को ऐसे अनेक बिन्दुओं पर भविष्य में दृष्टिपात करने का अवसर मिलेगा। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुंचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनायें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

८९७ श्री गोरखनाथसिंह S/o श्री राजनसिंह यादव, ग्राम नवाडेरा पो० पुराना भोजपुर जनपद बक्सर (बिहार)
८९८ श्री नारायणप्रसाद मिश्र मरक्यूरी लैबोरेटरीज लिमिटेड गोरवा इण्डस्ट्रियल स्टेट, बड़ोदरा (गुजरात)
८९९ श्री ओमदत्त भारद्वाज पूर्णानन्द भवन, जूना ब्यावरा जनपद राजगढ़ (एम०पी०) 465674
९०० श्री भूपसिंह चौहान भूतपूर्व सूबेदार ग्राम + पो० नानू कलाँ, जि० गुड़गांव (हर०)
९०१ श्री मुन्नालाल गुप्ता (व०अ०) निशि कुंज जय हनुमान कालौनी, बृजलाल नगर मालपुरा वाया जयपुर टोंक (राज०)
९०२ श्री महेन्द्रकुमार कामदार श्री गिरिराज ट्रेडर्स, सदर बाजार, मदनगंज किशनगढ़ (राज०) 305601
९०३ श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, नवलखा महल, परिसर गुलाब बाग, उदयपुर (राज०)
९०४ श्री रामपत जी आर्य ग्राम पृथ्वीपुरा, पो० ताजपुर वाया अटेली मंडी, जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)
९०५ श्री विपिनबिहारी मु०पो० बाद जि० मथुरा-281006
९०६ श्री मेधाव्रत जी वर्मा S/o श्री युद्धेन्द्रकुमार वर्मा मु० रंगमहल, कैथल (हर०) 136027
९०७ श्री धर्मदेव आर्य बाहेतियों की गली, दरियाव भवन, जि० पो० नागौर (राज०) 341001
९०८ श्रीमती राजवती देवी ग्राम हेमपुर पो० भुसाया जनपद बदायूं (यू०पी०) 202523
९०९ श्री मन्त्री जी, आर्यसमाज रुस्तमपुर महावतपुर बावली, ग्राम बावली, जनपद मेरठ-250621
९१० श्री शिवमंगलसिंह प्रधान मु० नंगला अड़ू, पो० बरहन जनपद आगरा (यू०पी०)
९११ श्री मुकेश बाबू आर्य S/o श्री गणेशीलाल मु० + पो० हरदोई जि० अलीगढ़ (यू०पी०)
९१२ श्री पं० देवव्रत गुरुकुल वैदिकाश्रम पो० वेदव्यास जि० राउरकेला (उड़ीसा) 769041
९१३ श्री भावेश मेरजा टाउनशिप 12/23, नर्मदा नगर, जि० भरुच-392015, गुजरात
९१४ श्री राघव जी अरोड़ा 68/एक्स-सी-7, सह विकास सोसायटी, स्वामी दयानन्द मार्ग, पटपड़गंज डिपो, दिल्ली-92
९१५ श्री राहुल S/o श्री चन्द्रसिंह आर्यसमाजी, मु०पो० झबीरण, जनपद सहारनपुर (यू०पी०)
९१६ श्री हरिमोहनजी S/o श्री दिनेश मोहनलाल मु० पो० फन्दपुरी, जनपद सहारनपुर (यू०पी०)

धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/97
आर/आर/नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/3/97

मार्च १९९७

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/97

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।

५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।**

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आकर्षक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्यः लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान : **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाषः- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में...........................
ग्राम...........................
डा०...........................
जिला...........................

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Gurukul Kangri ... HARDWAR

अप्रैल, १९९७

वर्ष २५ : अंक ६

दयानन्दाब्द : १७३

विक्रम संवत् : चैत्र, २०५४

सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९८

संस्थापक : स्व॰ दीपचन्द आर्य

सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य

व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)

आजीवन सदस्यता २५०)

विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- आर्यसमाज स्थापना दिवस — २
- वेदोपदेश — ३
- क्या इसी का नाम आजादी है? — ४
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ — ६
- मृतक के विषय में महर्षि दयानन्द के निर्देश — ६
- एक आदर्श तपस्वी ब्राह्मण का देहावसान — ७
- शङ्का समाधान — ८
- साहित्य-समीक्षा — ९
- हवन पर विदेशों में अनुसन्धान — १०
- ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः — ११
- कामना — १२
- सुख दुःख मिथ्याज्ञान जनित हैं — १३
- आओ, संकल्प लें — १५
- अपने मन की शक्ति को पहचानो — १७
- वेदों का स्वतः प्रामाण्य और महर्षि दयानन्द — १८
- सुख-दुःख जीवात्मा के नैमित्तिक और प्रकृति के स्वाभाविक गुण हैं — २०
- सत्यार्थप्रकाश क्यों पढ़ें? — २३
- सतीदाह अशास्त्रीय और अवैदिक है — २४

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द बीस सौ रुपये, कपड़ा जिल्द इक्कीस सौ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चैत्रशुक्ला पंचमी सं० २०५४ (१२ अप्रैल, १९९७)
आर्यसमाज के (१२२वें) स्थापना दिवस पर

आर्यसमाज-स्थापना-दिवस

—रजनी भाटिया, दिल्ली सुइंग मशीन, लुधियाना

जब चारों दिशाओं में अन्धेरा था, आडम्बरों ने डाला घेरा था।
दब गई थी आर्य संस्कृति मानव सभ्यता का न कोई बसेरा था।
पोप लीला थी जोरों पर बुद्धिजीवियों पर लगा हुआ पहरा था।
त्राहि-त्राहि मची थी चारों ओर आवाज न कोई सुनने वाला था॥

इज्जत लुटती थी मन्दिरों के बीच पूछता न था कोई तेरा मेरा था
देवदासी बन के लुटती कन्याएँ, कन्या होना अभिशाप हुआ था
वेद बने थे अलमारियों की शोभा पुजारियों का लगा ताला था
सुन लिया यदि मन्त्र स्त्री ने, जालिमों ने कान में सिक्का डाला था

ऐसे में महर्षि दयानन्द आये, जिन्होंने भारत में किया सवेरा था।
अन्धेरा भागा उज्ज्वल हुआ दीप, मानव आत्मा में हुआ सवेरा था।
शास्त्रार्थ किये घमण्डी पण्डितों से, आ गया उनको खूब पसीना था।
आधे भागे पण्डिताई छोड़कर, आधों ने डाला शरण में डेरा था॥

महिलाओं को दिया उच्च अधिकार, अक्षर बोध का सामान किया
दलितों का फिर किया उद्धार, महाराजों को खूब झुठलाया था
अन्धविश्वास को फिर दूर गया कर, वर्ण को कर्म से बतलाया था
पाखण्डियों की पोल खोलने फिर हरिद्वार में झण्डा लहराया था

कार्य-क्षेत्र बढ़ गया इतना चलाने के लिए संगठन का विचार किया।
आर्यसमाज रखा नाम उसका, बूटा मानकचन्द वाटिका में लगाया था।
चैत्र शुदि पंचमी सं० १९३१ को बाम्बे में उसे स्थापित कराया था।
मेरे नाम को न बनाना गुरुमन्त्र महर्षि ने फिर स्वयं फरमाया था॥

संगठन बना है यह आर्यसमाज, जो निभायेगा सारा कार्य-भार
यही है मेरा उत्तराधिकारी प्रसन्नता से सब को यह समझाया था
बतलाने हर वर्ष आता है यह दिन पर भूल जाते हैं हम इस को हमेशा
इसकी उन्नति का नया मार्ग ढूंढो, इसलिए **'दयानन्दसन्देश'** छपवाया था

यह पर्व खुशी का है लेकिन, जिम्मेदारियां भी हैं इसके साथ बंधी।
तुम वचन करो इसकी उन्नति का, महर्षि ने खून से जिसे सींचा था।
धरती सूर्य का चक्कर काटकर आरम्भ कर रही है नये चक्कर की।
नये संवत् में विचार करो, स्थापना पर महर्षि ने जो बतलाया था॥

दस नियम बनाये आर्यसमाज के घर-घर जाकर इसका प्रचार करो
निष्काम सेवा करो आप लोगों की, धर्म हित उसे बतलाया था
उन्नति चाहते हो यदि तुम अपनी, वैदिक धर्म तुम स्वीकार करो
अन्यथा हाथ कुछ भी न आयेगा, सत्यार्थप्रकाश में यह बतलाया था

प्रतिज्ञा करो आज सभी मिलकर, तन, मन, धन से करेंगे समाजसेवा।
मिलकर बैठो इस की छाया में, जिस वृक्ष को महर्षि ने लगाया था।
बधाई हो स्थापना दिवस की, फलो-फूलो बढ़ाओ इस को भी।
मानव निर्माण में जुट जाओ 'भाटिया' महर्षि ने यही समझाया था॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—मरणोत्तर जीव की गति तथा कुछ काल के पश्चात् दूसरा जन्म प्राप्त होता है। और शरीर के बिना कर्मफल नहीं प्राप्त होता है।

दीर्घतमाः ऋषिः। सवितादयः (सूर्यप्रकाशादयः) देवता। विराड्धृतिः छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अन्त्येष्टि कर्म का फिर उपदेश किया है॥

ओ३म् **सविता प्रथमे ऽ हन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय ऽ आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशम ऽ इन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे॥** (यजु० ३९। ६)

पदार्थः—(सविता) सूर्यः (प्रथमे) आदिमे (अहन्) दिने (अग्निः) वह्निः (द्वितीये) द्वयोः पूर्णे (वायुः) (तृतीये) (आदित्यः) (चन्द्रमाः) (पञ्चमे) (ऋतुः) (षष्ठे) (मरुतः) मनुष्यादयः (सप्तमे) (बृहस्पतिः) बृहतां पालकः सूत्रात्मा (अष्टमे) (मित्रः) प्राणः (नवमे) (वरुणः) उदानः (दशमे) (इन्द्रः) विद्युत् (एकादशे) (विश्वे) सर्वे (देवाः) दिव्यगुणाः (द्वादशे)।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्या! अनेन जीवेन (प्रथमे) आदिमे (अहन्) दिने (सविता) सूर्यः (द्वितीये) द्वयोः पूर्णे (अग्निः) वह्निः (तृतीये) (वायुः) (चतुर्थे) (आदित्यः) (पञ्चमे) (चन्द्रमाः) (षष्ठे) (ऋतुः) (सप्तमे) (मरुतः) मनुष्यादयः (अष्टमे) (बृहस्पतिः) बृहतां पालकः सूत्रात्मा (नवमे) (मित्रः) प्राणः (दशमे) (वरुणः) उदानः (एकादशे) (इन्द्रः) विद्युत् (द्वादशे) अहनि (विश्वे) सर्वे (देवाः) दिव्यगुणाः च प्राप्यन्ते॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो! यह जीव (प्रथमे) पहले (अहन्) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीये) दूसरे दिन (अग्निः) अग्नि (तृतीये) तीसरे दिन (वायुः) वायु (चतुर्थे) चौथे दिन (आदित्यः) आदित्य (पञ्चमे) पांचवें दिन (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (षष्ठे) छठे दिन (ऋतुः) ऋतु (सप्तमे) सातवें दिन (मरुतः) मनुष्यादि (अष्टमे) आठवें दिन (बृहस्पतिः) बड़ों का पालक सूक्ष्म वायु (नवमे) नवमे दिन (मित्रः) प्राण (दशमे) दशमे दिन (वरुणः) उदान (एकादशे) ग्यारहवें दिन (इन्द्रः) विद्युत् और (द्वादशे) बारहवें दिन (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य गुणों को प्राप्त करता है॥

भावार्थः—हे मनुष्याः! यदेमे जीवाः शरीरं त्यजन्ति तदा सूर्यप्रकाशादीन् पदार्थान् प्राप्य किञ्चित् कालं भ्रमणं कृत्वा, स्वकर्मानुयोगेन गर्भाशयं गत्वा शरीरं धृत्वा जायन्ते, तदैव पुण्यपापकर्मणा सुखदुःखादिफलानि भुञ्जते॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जब ये जीव शरीर छोड़ते हैं, तब सूर्य प्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त करके कुछ काल भ्रमण करके अपने कर्मों के अनुसार गर्भाशय को प्राप्त करके शरीर को धारण करके उत्पन्न होते हैं, तभी पुण्य-पाप कर्म के द्वारा सुख दुःख रूप फलों को भोगते हैं॥

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या इसी का नाम आज़ादी है ?

—राजेशकुमार आर्य, आट्टा (पानीपत), हरि०

मेरा भारतवर्ष कभी विश्व गुरु की पदवी से अलंकृत हुआ था। अपने दुर्भाग्य (आपसी भेदभाव) से फिर यह आक्रान्ताओं द्वारा पददलित किया गया। परन्तु इसके वीर पुत्रों ने अपने जीवन के सुखों पर लात मार कर इसकी स्वतन्त्रता के लिए कभी जंगलों में घास की रोटियाँ खाईं, कभी अपनी चढ़ती जवानी को जेलों में ही गला दिया, अपने जीवन की सुकुमार कलियों को स्वयम् अपने ही हाथों से मसलकर माता के चरणों पर अर्पित कर दिया। माताओं ने अपने बेटे दिये, बहनों ने भाई और वीराँगनाओं ने पति। अगणित पुष्प भारत माँ के हार में सुशोभित हुए। स्वतन्त्रता के यज्ञ में याजकों ने अपने सिरों की आहुतियाँ दीं। जिस स्वतन्त्रता रूपी वृक्ष के हम फल खा रहे हैं और शीतल वायु में सांस ले रहे हैं, यह वृक्ष वीरों ने अपने खून से सींचा था। यह आज़ादी की नैया उन वीर शहीदों के खून पर तैर कर आई है। इतना होने पर भी हृदय में उस समय असहनीय वेदना होती है और हृदय रो उठता है। जब सुनते हैं-

लिये अहिंसा अस्त्र हाथ में और हृदय में गीता।
बिना खून की बूंद बहाए स्वतन्त्रता का रण जीता॥

क्या यह सत्य है ? इस स्वतन्त्रता के लिए हमारे वीर शहीदों ने काला पानी में तथा और भी वे असहनीय यातनाएँ झेली थीं, जिनके स्मरण मात्र से ही हृदय काँप उठता है। फिर कैसे कहते हैं कि गाँधी जी ने बिना खून बहाए आज़ादी दिलाई ? तो और कितना बहाना था ? परन्तु सत्य तो यह है-

मिलती नहीं आज़ादी, ली जाती है मीत।
तलवारों के साये के नीचे, गाने पड़ते हैं गीत॥

खैर, आज़ादी मिली और वह सौभाग्यशाली दिन भी आ गया, जिसकी हम वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे थे, जिसके लिए देशभक्त हथकड़ियों और जंजीरों की झनझनाहट से मन बहलाते हुए बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे थे और कितने ही दोबारा जन्म लेकर फिर इस देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने की इच्छा से हँसते-हँसते शहीद हुए। जिसके विषय में कभी गाँधी जी ने कहा था- "जब अपना राज्य होगा, अपनी जमीं और आसमाँ होगा। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होगी। शराब और गोहत्या कलम की नोक से बन्द कर दी जाएगी।" परन्तु गाँधी के उत्तराधिकारी आज अर्ध शताब्दी के बाद भी कुछ भी नहीं कर पाए हैं। आज हम अपनी स्वतन्त्रता की अर्ध-शताब्दी मनाने जा रहे हैं और कहते हैं कि हमने बहुत प्रगति की है। तनिक इन विषयों पर भी ध्यान दें जिन्हें गाँधी जी प्राथमिकता देते थे-

सर्वप्रथम हिन्दी को ही लेते हैं। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का पद मिलने पर पं० नेहरू ने उसे पन्द्रह वर्ष का वनवास दिया। उन्हें क्या हक था कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा होने पर भी संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त चौदह भाषाओं से भी अलग, गुलामी की निशानी अंग्रेजी में राजकाज करने का ! यदि वे हिन्दी नहीं जानते थे तो यह उनके लिए लज्जा की बात थी, क्योंकि वे ऐसे देश के प्रधानमन्त्री बने जिसकी वे राष्ट्रभाषा भी नहीं जानते और या तो उन्हें हिन्दी सीखनी चाहिये थी या प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे देना चाहिये था। खैर, हिन्दी ने वह वनवास भी पूरा किया। परन्तु हमारे नेता आज भी निर्वासित हिन्दी को अंगीकार करने को तत्पर नहीं हैं। उसे धक्के देकर निकाल दिया। मेरे राष्ट्र के तन्द्रित प्रहरी नेताओं को सोचना चाहिए कि किसी भी राष्ट्र का विकास राष्ट्रभाषा से ही सम्भव है। (इस विषय में हमारे वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री एच०डी० देवगौड़ा जी का हिन्दी सीखने का प्रयास प्रशंसनीय है)। हम आज भी अंग्रेजी की गुलामी में जकड़े मानसिकता के शिकार हो रहे हैं। फिर स्वतन्त्र कहाँ हुए ?

दूसरे स्थान पर आती है- अंगूर की बेटी, शरारत का पानी, राक्षसों का सर्वप्रिय पेय पदार्थ, शराब। इसके विषय में गांधी जी कहते थे कि यह कलम की नोक से बन्द हो जाएगी। कैसी बन्द हुई ? यह आप जानते ही हैं (हरियाणा में शराबबन्दी के लिए श्री बंसीलाल जी का प्रयास प्रशंसनीय एवं धन्यवाद के योग्य है।) अपितु उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई है। महात्मा बुद्ध ने कहा था।-

तुम सिंह के सामने जाने से भयभीत न होना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह साहस की कसौटी है।
तुम पर्वत शिखर से कूद पड़ना,
यह पराक्रम की निशानी है।
तुम धधकती आग में कूद पड़ना,
यह अग्नि-परीक्षा है।
परन्तु, शराब से सदा भयभीत रहना,
क्योंकि यह पाप और अनाचार की जननी है॥

और हमारे धर्म-शास्त्र भी इसकी निन्दा करते हैं। इसी के आशीर्वाद से राजाओं के महलों में उल्लू बोल रहे हैं। मुगल राजवंश की सन्तान इसी की मेहरबानी आज बाजार में लहसुन और प्याज बेचकर या रिक्शा चलाकर निर्वाह कर रहे हैं। केवल प्राचीन इतिहास ही नहीं अपितु आज भी इसके आशीर्वाद की छाया शराबी के घर देखी जा सकती है। मैं पूछता हूँ इस देश के नेताओं से कि मात्र आय के लोभ से ही इस पापों की जननी का प्रचार-प्रसार क्यों हो रहा है? अधिकांश दुर्घटनाएं इसी के कारण हो रही हैं और बलात्कार जैसी कुचेष्टाओं को प्रोत्साहन मिल रहा है।

अब रही गोरक्षा की बात। इसे तो गाँधी जी ने ही समाप्त कर दिया था। देश आज़ाद होते ही असंख्य तार, पत्र आदि गाँधी जी के पास आने लगे कि गोहत्या बन्द करो। गाँधी ने अपने एक वक्तव्य में कहा था- **"मैं बता देना चाहता हूँ कि हम किसी पर बलात् गोहत्या न करने के कानून को थोप नहीं सकते। उन लोगों को समझना चाहिए कि इस देश में मुसलमान, ईसाई तथा पारसी भी बसते हैं, हम उनके साथ जबरदस्ती नहीं कर सकते।"**

बाबा गाँधी के प्रिय शिष्य जवाहरलाल नेहरू ने गोरक्षा अभियान चलाने वाले लोगों को कहा था- **"तुम लोग यह नहीं जानते कि हमें मांस व खालों से कितना बड़ा आर्थिक लाभ विदेशों से होता है, इसलिए मैं किसी भी कीमत पर तुम्हारे इस गोरक्षा अभियान से सहमत नहीं हो सकता।"**

(इस विषय में श्रीमती मेनका गाँधी जी का प्रयास (लेखन द्वारा) प्रशंसनीय है।)

जनता गम्भीरता से विचारे कि क्या ऐसी विचारधारा से पनपी सरकार गो-रक्षा कर सकती है? गाँधी जी तो दूध पीने को भी माँस खाने के समान मानते थे। अतः उन्होंने गाय का दूध तो कभी पीया ही नहीं। परन्तु काम न चलने पर अन्त में बकरी का दूध पीना ही पड़ा। क्योंकि दूध तो पूर्ण आहार है। गाय दूध के लिए तो पाली भी जा सकती है। फिर जिसका कोई उपयोग ही न हो उसे कौन पाले! (यद्यपि गाय का गोबर, मूत्र भी औषधि निर्माण में प्रयुक्त होता है।) अब आप अनुमान लगा सकते हैं, गाँधी जी कैसी गोरक्षा चाहते थे।

अकबर के राज्य में गोहत्या नहीं होती थी। रणजीतसिंह के राज्य में गोहत्यारे को फाँसी मिलती थी। परन्तु राम, कृष्ण के देश में आज एशिया महाद्वीप का सब से बड़ा बूचड़खाना है। जहां से हजारों टन गाय का मांस विदेशों में भेजा जाता है। किसी भी देश के लिए दोहरी नियमावली हानिकारक ही सिद्ध होती है। गीत गाया जाता है-

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर वर्ष मेले।
वतन पर मिटने वालों का, यही बाकी निशां होगा॥

परन्तु, कहाँ लगते हैं शहीदों की चिताओं पर मेले? और वह भी वर्ष में केवल एक ही बार। मेले तो लगते हैं सिनेमाघरों पर, मयखानों (शराबघरों) पर और फर्जी नेताओं के जलसों पर। भूल गए लोग शहीदों को जो आजादी की दुल्हन से शादी की इच्छा से हंसते-हंसते फांसी के हार पहन गए। हम इतने कृतघ्न हो गए कि उन नरशार्दूलों के चित्र भी अपने घरों में नहीं लगा पाए। दुष्ट एक्टर और वेश्याओं के, अश्लील और नग्न चित्र ही हमारे अंग-संग घूम रहे हैं।

जो दूरदर्शन हमारे ज्ञान के विकास हेतु निर्मित हुआ था। आज वह नग्नता का प्रचार करके और हमारे धर्म, संस्कृति और चरित्र पर प्रहार कर रहा है। इसके माध्यम से पश्चिमी सभ्यता का प्रचार-प्रसार किया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप छोटे-छोटे बच्चों में ही यौन भाव उत्पन्न हो जाते हैं। बलात्कार, फैशन, हत्या, डकैती आदि इसके ही परिणाम हैं। मेरे देश के रक्षक भक्षक होते जा रहे हैं। मेरे देश की नैया के मल्लाह ही इसे डुबाने का कु-प्रयास कर रहे हैं। इतने वर्षों की आजादी से हम ने क्या पाया? किसी ने हत्या की। दो महीने जेल काटकर यहीं घूमता है। कितने ही कुकर्म करो। रिश्वत देवी के आशीर्वाद से सदैव सुरक्षित रहते हैं। क्या इसी का नाम आजादी है। मुझे समझ नहीं आता कि मैं इसे आजादी कहूँ या बरबादी। परन्तु-

प्रण करते हैं संस्कृति की शाम नहीं होने देंगे,
वीर शहीदों की समाधि बदनाम नहीं होने देंगे।
जब तक रग में गरम लहू की एक बूँद भी बाकी है।
भारत देश की आजादी को गुमनाम नहीं होने देंगे॥

इत्योम शम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृतक के विषय में महर्षि दयानन्द के निर्देश

भस्मान्तः शरीरम्॥ यजु० ४०।१५॥

इस शरीर का संस्कार (भस्मान्तम्) अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है। [इससे स्पष्ट है शरीर तथा उससे समस्त सम्बन्ध भस्म करने के बाद समाप्त हैं।] इसके आगे मृतक के लिए कुछ भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है।

प्रश्न— जो गरुड़ पुराण आदि में दशरात्र, द्वादशाह, सपिण्डी कर्म, मासिक, वार्षिक गया-श्राद्ध-क्रिया लिखी है, क्या ये सब असत्य हैं?

उत्तर— हाँ, अवश्य मिथ्या हैं, क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है। इसलिये अकर्त्तव्य हैं। और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न इन जीते हुए सम्बन्धियों का। यह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है।

प्रश्न— मरण के पीछे जीव कहाँ जाता है?

उत्तर— यमालय को।

प्रश्न— यमालय किसको कहते हैं?

उत्तर— वाय्वालय को।

प्रश्न— वाय्वालय किसको कहते हैं?

उत्तर— अन्तरिक्ष को जो कि यह पोल है।

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः॥ मनु०॥

इस शरीर का आरम्भ ऋतुदान और अन्त में श्मशान अर्थात् मृतक कर्म है। *('संस्कारविधि' से उद्धृत)*

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

'दयानन्दसन्देश' पत्रिका इस देश में ही नहीं अपितु सारे संसार में सत्यार्थ-प्रकाश का प्रचार और वेदविद्या का प्रकाश करता है, यह अतीव प्रशंसनीय कार्य है। परन्तु वर्तमान समय में विभिन्न सम्प्रदायों की संख्या बढ़ती जा रही है। अनेक व्यक्ति गुरुडम का प्रचार करके स्वयं भगवान् बनकर भोली-भाली जनता से धन लूटते रहते हैं और सत्संग के नाम से ईश्वर से विमुख करते रहते हैं। ऐसे पाखण्डी मिथ्यावादों की पोल खोलते रहो। परमेश्वर आपको शक्ति दे।

दिनांक १६।२।९७ — ***चौ० ताराचन्द्र आर्य,***
महेन्द्रगढ़

'दयानन्दसन्देश' के पिछले अंक में आचार्य सुधांशु (इन्दौर) लेख छपा है वह बहुत ही उत्तम एवं संग्राह्य है। लेखक बधाई के पात्र हैं।

दिनांक १०।२।९७ — ***ताराचन्द्र आर्य,***
पलसापाली, जि० रामपुर (म०प्र०)

मैंने अपने पिता जी से 'दयानन्दसन्देश' के कुछ अंक लेकर पढ़े पत्रिका पठनीय है। पत्रिका वस्तुत: अन्धविश्वासी असत्य विचारों और रूढ़ीवादी गुरुडम रूपी जीर्ण वृक्षों को झकझोर कर समूल उखाड़ फैंकने के लिये सत्य का एक झंझावात है।

दिनांक २०।२।९७ — ***डा० देवेन्द्रकुमार सेन***
बधाल, जि० जयपुर (राजस्थान)

फरवरी ९७ का 'दयानन्दसन्देश' यथासमय मिला। बहुत अच्छा लगा। ईश्वर से प्रार्थना है कि यह सन्देश संसार में फैलता चला जाये। वर्तमान समय में विज्ञान का विकास हुआ है और चरित्र का ह्रास हुआ है। अत: दयानन्दसन्देश जैसी पत्रिकाओं को जन-जन तक पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है।

दिनांक २१।२।९७ — ***उदयरंजन सिन्हा***
विक्रम गंज-८०२२१२

'दयानन्दसन्देश' एक सराहनीय पत्रिका है। जिसके प्रत्येक अंक में धर्म की सत्य बातें जानने को मिलती हैं और प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों के भेजने का मौका मिलता है। ***मुकेश बाबू आर्य***
हरदोई (अलीगढ़)

'दयानन्दसन्देश' पत्रिका बहुत अच्छी है। इसमें सैद्धान्तिक लेख होते हैं। निरर्थक बातें भी नहीं होतीं। प्रत्येक अंक में शंका-समाधान भी होता है जो कि संग्रहणीय होता है। शंका सम्बन्धी लेखों का संग्रह करके एक पुस्तक बना दी जाये तो श्रेष्ठ रहेगा।

दिनांक १२।२।९७ — ***सत्यप्रकाश सुखजा***
डुइन्द्रा कालोनी, सोनीपत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आदर्श तपस्वी ब्राह्मण का देहावसान
(एक अपूरणीय क्षति)

—मन्त्री डॉ० प्रमोद कुमार

परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्॥ भर्तृहरि॥

संसार परिवर्त्तनशील है। इसमें जो भी जीवात्मा जन्म लेता है, वह मृत्यु को अवश्य प्राप्त करता है। प्रभु की सृष्टि की यह शाश्वत अटल व्यवस्था है। इसीलिए गीता में यह उपदेश दिया गया है—

जातस्य ध्रुवं मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ गीता॥

हे अर्जुन! जिसने जन्म लिया है उस की मृत्यु अवश्य होती है और जिसकी मृत्यु हुई है उसका जन्म अवश्य होता है। यह एक ध्रुव सत्य है और प्रभु की सृष्टि की अपरिहार्य=न टलने वाली व्यवस्था है। इस व्यवस्था का उल्लंघन कोई जीव नहीं कर सकता है।

श्री बालमुकुन्द मुनि जी की चिरस्मृति

आप का जन्म मेरठ जनपद में बागपत तहसील में 'कुराली' ग्राम के एक धार्मिक परिवार में हुआ था। महर्षि दयानन्द ने लिखा है—वे बालक बड़े भाग्यशाली होते हैं जिनके माता-पिता धार्मिक होते हैं। माता-पिता की धार्मिकता का प्रभाव आपको जन्म से ही मिला था। जीवन भर आपने एक तपस्वी ब्राह्मण की वृत्ति से जीवन बिताया था। और एक सद्गृहस्थी रहकर अपने परिवार का पालन-पोषण करते रहे। सेवा से निवर्त्तमान होकर सामाजिक सेवा में लगे रहे। १९४२ में स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण अनेक मास कठोर कारावास में भी रहना पड़ा। किन्तु सरकारी पेंशन नहीं ली। वर्ष के कई मास तक मौनव्रत रखना, संयम से रहना और उपवास रखना तो आप के जीवन में आत्मसात् हो गये थे। याज्ञिक कार्यों में अत्यधिक श्रद्धा व आस्था रखते थे। ३५ वर्षों से तो आप आर्यसमाज के विचारों में ही संलग्न रहे। गुरुकुल प्रभात आश्रम भोलाझाल (मेरठ) अथवा संन्यास-आश्रम गाजियाबाद में रहकर ही आपने अन्तिम वर्ष मुनिवृत्ति में रहकर बिताये। सादा जीवन एवम् उच्च-विचार तो आपके जीवन के आर्दश चिह्न थे। अहर्निश स्वाध्यायनिरत रहना, छोटी छोटी पुस्तकें लिखकर जन-साधारण का हित करना और परमात्मा की भक्ति में लगे रहना यह आप की दिनचर्या बन गये थे। आप की ज्योतिष में विशेष रुचि थी। उसी के अनुरूप आप पंचांगों का भी प्रतिवर्ष प्रकाशन कराते रहते थे। आज के चकाचौन्ध के संसार में रहकर भी संसार के सुनहरी जीवन से अलग रहना कोई सरल कार्य नहीं होता। आपके जीवन का परम लक्ष्य था—

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते॥ मनु०॥

अर्थात् जो मनुष्य अर्थ और काम में आसक्त नहीं होते, उन्हें ही धर्म का यथार्थ ज्ञान होता है। १२ फरवरी, १९९७ (माघ-शुदि पंचमी सं० २०५३) को आप प्रातः ५.३० बजे इस नश्वर शरीर को छोड़कर चले गये। आप अपने परिवार में तीन पुत्र, ४ पुत्रियाँ, ४ पौत्र व ३ पौत्रियाँ को छोड़ गये हैं। आपके जीवन का समस्त परिवार पर अमिट प्रभाव है सभी बच्चे वैदिक विचारों से प्रभावित तथा सुसंस्कृत हैं। हमारी परम पिता परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को सद्गति व शान्ति तथा उनके परिवारजनों को उनके बताये मार्ग पर चलने की शक्ति एवं सम्मति प्रदान करें।

आर्यसमाज, आयुध निर्माणी क्षेत्र,
मुरादनगर, गाजियाबाद।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का-समाधान

१. शंका—ईश्वर तो सर्वव्यापी है, किन्तु पृथ्वी पर रात घोर अन्धकार है। ईश्वर को ज्योतिस्वरूप भी कहा जाता है फिर ईश्वर का प्रकाश रात्रि में तथा गुफाओं में क्यों नहीं ? क्योंकि यह सत्य है कि जहाँ प्रकाश होगा वहाँ अन्धकार नहीं रह सकता। ईश्वर को वेद में ''आदित्यवर्णं तमस: परस्तात्'' कहा है फिर वह प्रकाश अन्धकार में क्यों नहीं रहता। कृपया इस संशय को दूर करने की कृपा करें। *(आर्य प्रह्लाद गिरि, निंगा, आसनसोल)*

समाधान—आप की शंका बहुत ही सामयिक है। ऐसा संशय अन्य पुरुषों को भी अवश्य होता होगा अथवा कभी विचार नहीं किया हो। ईश्वर अदृश्य है इन नेत्रों से हम उसको देख नहीं सकते। ईश्वर सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने से इन्द्रिय-गोचर ही नहीं हो सकता। यह प्रकाश तो ईश्वर के प्रकाश से स्थूल है। वेद में अथवा लोक में समझाने के लिए ही कहा जाता है—ईश्वर 'आदित्यवर्णम्' है। जैसे वेद में ईश्वर को 'खं ब्रह्म' आकाश के समान व्यापक कहा गया है, वैसे ही ईश्वर को आदित्य वर्ण बताया है। जैसे शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञात पदार्थ की सहायता से अज्ञात को जनाते हैं। वैसे ही अदृश्य ईश्वर के प्रकाश को दृश्य प्रकाश से समझाया गया है। ईश्वरीय प्रकाश तो योगिजनों के अनुभव का विषय हो गया है।

२. शंका—जोधपुर में एक विद्वान् संन्यासी आये थे। उनसे मैंने यजु० के ३९ अध्याय का ६ मन्त्र पूछा था वे इसका उत्तर देने में असमर्थ थे। क्योंकि आप लम्बे समय से महर्षि के विचारों का प्रचार करते रहे हैं, अत: मन्त्रोक्त बात को समझाने का प्रयास करें। (सम्पादक 'पंचपुत्र' मारुति नगर, जयपुर)

समाधान—इस अंक में वेदोपदेश में हम ने यजुर्वेद का वही मन्त्र महर्षि के भाष्य तथा उन के मन्तव्यों के साथ दिया है। उसमें महर्षि के भाष्य से मृतक के बारहवें दिन वाली बात संगत नहीं लगती। महर्षि ने इसीलिए भावार्थ में 'किञ्चित् कालं भ्रमणं कृत्वा' कुछ समय भ्रमण करके जन्मान्तर ग्रहण की बात लिखी है। और दिनों की बात इसलिए भी संगत नहीं लगती। मन्त्र में सप्तम दिन मरुत: मनुष्यादि लिखा है। क्या जन्म से पहले ही मनुष्यादि की प्राप्ति हो सकती है। मरणोत्तर जीव के साथ ११ रुद्र रहते हैं, जिनमें प्राण और उदान भी है फिर नौवें दिन और दशवें दिन प्राण व उदान क्यों लिखा है ? इसी प्रकार प्रथम दिन सविता (सूर्य) और चौथे दिन आदित्य की संगति नहीं लगती। अत: मन्त्रार्थ में स्पष्टीकरण तो चाहता है। महर्षि से स्पष्ट निर्देश करना रह गया हो ऐसा लगता है। फिर भी हम सभी ऋषि भक्तों को समाधान ढूंढते रहना चाहिये। आप भी प्रयास करें, मेरे उत्तर से कुछ सन्तोष हो जाये तो अच्छा रहेगा।

३. शंका—श्री डॉ० मुरलीधर मिश्र व्याकरणाचार्य बेतिया (चम्पारण) बिहार, निवासी लिखते हैं—'शुक्र' शब्द की भांति शूद्र शब्द (शुच दीप्तौ) धातु से रक् प्रत्यय करने से शूद्र शब्द सिद्ध होता है। उणादिकोष के 'शुचो दश्च' सूत्र से चकार को दकार तथा रेफ आगम और ह्रस्व को दीर्घ होकर शूद्र शब्द सिद्ध होता है। इस प्रकार धात्वर्थ के अनुसार शूद्र शब्द का अर्थ होगा प्रकाशित करने वाला, दीप्त करने वाला, प्रकाशक, अन्वेषक आदि है। कृपया आप पत्रिका के माध्यम से दिखाने की कृपा करें कि शूद्र शब्द का मूर्ख, अनाड़ी, जो पढ़ाने से न पढ़ सके, उसे शूद्र कहते हैं, यह कैसे हुआ ?

समाधान—आप की शंका उचित है। आप व्याकरण शास्त्र के आचार्य हैं अत: समझ सकते हैं। महर्षि ने जो अर्थ दिखाये हैं वे व्याकरण सम्मत हैं, अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार भी हैं। जैसे गायत्री मन्त्र के अर्थ में भू:=प्राण, भुव:=दु:ख विनाशक, स्व:=सुखस्वरूप। ये अर्थ व्याकरण के अनुसार न होकर 'भूर्वै प्राण:' 'भुव इति व्यान:' इत्यादि ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्यों के अनुसार महर्षि ने अर्थ दिखाये हैं। अथवा 'देवदत्त: पीन: दिवा न भुंक्ते' इस वाक्य से प्रतीत होता है देवदत्त रात्रि में अवश्य खाता है। इसी प्रकार काशी-शास्त्रार्थ में महर्षि ने विद्वानों से पूछा—धर्म के लक्षण बताओ। विद्वानों का उत्तर सुनकर महर्षि ने फिर पूछा—अधर्म के लक्षण बताओ। तो कोई उत्तर न दे सका। महर्षि ने अपने ग्रन्थों में धर्म की व्याख्या करते हुए अधर्म के भी लक्षण दिखाये हैं। इस से स्पष्ट होता है—शब्दों के अर्थ व्याकरण, ब्राह्मणग्रन्थ, अर्थापत्ति, प्रमाण आदि से भी होते हैं। वेद में आया है—**'पद्भ्यां शूद्रोऽजायत'** पैर से शूद्र की उत्पत्ति सम्भव नहीं है सृष्टि नियम के विरुद्ध होने से। अत: पैर के तुल्य जो हो वह शूद्र होता है। यहाँ शूद्र का अर्थ उपमा से स्पष्ट हुआ है। इसी प्रकार अन्य अर्थों की व्याख्या समझनी चाहिये। लोक में भी ऐसे अर्थों का स्पष्टीकरण होता है। जैसे—केले बेचने वाला कह रहा है—मलाई हो रहे हैं केले। शाब्दिक अर्थ के अनुसार केले मलाई नहीं हो सकते। यहाँ लक्षणा से आप समझ लेते हैं—केले मलाई की तरह मधुर व कोमल हैं। ऐसे ही शूद्र शब्द का अर्थ भी समझ लेवें। *—राजवीर शास्त्री*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीक्षा

१. परिवार नियोजन एक राष्ट्रीय संकट

संग्रहकर्त्ता—स्वामी केवलानन्द सरस्वती साधक **प्रकाशक**—ज्ञान-सागर वैदिक साहित्य प्रचार केन्द्र। **मूल्य**—५ रुपये। **पुस्तक में पढ़िये**—राष्ट्र के महान् पुरुषों की चेतावनी, आयुर्वेद में सन्तान प्राप्ति एवम् आपत्ति काल में सन्तान निरोध के चमत्कारी प्रयोग। गर्भपात-भ्रूण हत्या तथा एक महापाप है। परिवार नियोजन हिन्दू समाज को नष्ट-भ्रष्ट कर अल्पसंख्यक बनाने का भयंकर षड्यंत्र है। भोला हिन्दू है हम दो हमारे चार। चालाक मुसलमान कहता है हम पांच और हमारे पच्चीस। भारत के ईसाई-मुसलमानों ने परिवार नियोजन का बहिष्कार किया है। अत: भारतवासी हिन्दुओ जागो और राष्ट्र को जगाओ।

२. नशा शराब—
सत्यानाश स्वयम् और परिवार का—

लेखक—श्री डॉ० रामकृष्ण आर्य। **प्रकाशक**—एस.एफ.सी. (श्रीराम फर्टिलाइजर्स एण्ड केमिकल्स, कामगार सभा, कोटा, राजस्थान)। **पुस्तक-प्राप्ति का पता**—४-अ-२७, विज्ञान नगर, कोटा (राजस्थान) **मूल्य**—५.०० रुपये मात्र।

इस पुस्तक में, शराब और धर्म, शराब और वर्ण-व्यवस्था, सभी मत तथा उनके ग्रन्थों के विचार, शराब और राजे रजवाड़े, शराब एक पूँजीवादी षड्यन्त्र, शराब और मजदूर वर्ग, शराब और बाल मजदूरी, शराब से हानियाँ, शारीरिक हानियाँ, मानसिक हानियाँ, धार्मिक व सामाजिक हानियाँ। आर्थिक हानियाँ, राष्ट्रीय हानियाँ, शराब और महिलाएं, शराब और राजस्व, शराब अन्दर अक्ल बाहर इत्यादि विषयों पर लेखक ने बहुत उत्तम ढंग से प्रकाश डाला है। लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है। इसका जितना हो सके प्रचार तथा प्रसार करके लेखक का उत्साहवर्धन करना चाहिये।

३. वैदिक-आख्यानों का वैदिक स्वरूप

लेखक—डॉ० सुरेन्द्रकुमार। **प्रकाशक**—सत्यधर्म प्रकाशन, गुरुकुल कंवरपुरा, पो० गोरधनपुरा, कोट पुतली, जि० जयपुर (राज०)। **मूल्य**—१५० रुपये। पुस्तक-प्राप्ति-स्थान प्रकाशक का ही है।

वैदिक तथा लौकिक संस्कृत वाङ्मय में वैदिक आख्यानों के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना अतीव दुष्कर कार्य है, पुनरपि विद्वान् लेखक ने आख्यानों के विवादास्पद पक्षों का संग्रह करके वेदमन्त्रों के अन्त:साक्ष्यों के आधार पर आख्यानों को स्पष्ट करने का जो कार्य किया है, एतदर्थ वे धन्यवाद के योग्य हैं। जिन आख्यानों को पढ़कर विदेशी विद्वानों के लेखों व भाष्यों से। वेद को 'जादू की पिटारी' अथवा उनमें इतिहास की दुर्गन्ध आ रही थी और जिसे पढ़कर अपौरुषेय वेदों के विषय विभिन्न प्रकार के सन्देह होने लगे थे, और वेदों को अपौरुषेय मानने में भी विवाद उत्पन्न हो गया था, उन को दूर करके पाठकों को आख्यानों को समझने के लिए विवश कर दिया है और वे भविष्य में नवीन शैली से विचार करने को अवश्य उद्यत होंगे। अब निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आख्यानों के ऐतिहासिक पक्ष विद्वान् इस पुस्तक को पढ़कर असंगत होने से त्याज्य ही मानने को विवश होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में वेदों के अन्त:साक्ष्य देकर तथा वेदाङ्गों के प्रमाणों से तथा वैय्याकरणिक संरचना के आधार पर आख्यानों के सत्य स्वरूप को समझने में बहुत कुछ सहायता मिल सकेगी, ऐसी हमें आशा है। जैसे समुद्र में डुबकी लगाने वाला गोताखोर कभी अभीप्सित वस्तु प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो कभी असफलता ही मिलती है। वैसे ही वेदाख्यान के वारिधि में शोध करने वाला कभी मोती हस्तगत करने में सफल हो जायेगा तो कभी मुक्ताशुक्तियों से ही सन्तोष कर सकेगा। लेखक का श्रम कितना सफल है यह तो विद्वान् जौहरी ही परख कर सकते हैं।

विद्वान् लेखक ने प्रसंगानुगत कुछ अवान्तर वैदिक मन्तव्यों को भी स्पष्ट करने का अच्छा प्रयास किया है। जैसे वैदिक पदों का विवेचन, वैदिक-लौकिक भाषाओं में अन्तर, स्वर प्रक्रिया और छन्द: प्रयोग का अन्तर, देवता का मन्त्रार्थ ज्ञान में महत्त्व, ऋषि का मन्त्रार्थ में महत्त्व, मन्त्रार्थ ज्ञान में स्वरों का महत्त्व, इत्यादि विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला है। ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् पदों की व्याख्या करके आख्यानों को समझाने में सहायक सामग्री का भी संकलन किया गया है। पुस्तक अनुसन्धान करने वालों को विशेषकर संग्रह करने योग्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(फरवरी, ९७ से आगे)

हवन (यज्ञ) पर विदेशों में अनुसन्धान-II

—मुकेश कुमार, एम.एस.सी.।

जब सारे वाष्पशील पदार्थ विसरित हो जाते हैं तब सूर्य के प्रकाश में प्रकाश रासायनिक (फोटोकैमिकल) अभिक्रिया प्रारम्भ होती है। यही कारण है कि यज्ञ सूर्य के प्रकाश की पूर्ण उपस्थिति में ही सम्पन्न किये जाते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन पराबैंगनी तथा अन्य लघु तरंग-दैर्घ्य वाले क्षेत्रों में होते हैं। सुगन्धित धुंआ युक्त पदार्थों का रासायनिक संगुणन, उपचयन एवम् अपचयन होता है। दहन-प्रक्रिया में उत्पन्न कार्बन डाई-आक्साइड का भी कुछ सीमा तक अपचयन होता है। वायुमण्डल में व्याप्त कार्बनमोनो-आक्साइड, कार्बन डाई-आक्साइड एवं नाइट्रोजन के आक्साइड इत्यादि प्रदूषकों को यज्ञ के द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। आक्सीजन के परिमाण में वृद्धि होती है। पर्यावरण में उपस्थित धनविद्युतीय आवेश बढ़कर उसे प्रदूषित करता रहता है। यज्ञ में पदार्थों की अपचयन क्रिया द्वारा वायुमण्डल में ऋण विद्युतीय आवेश (इलेक्ट्रान) का आधिक्य हो जाता है। बादलों के साथ संयुक्त होने पर वे इलेक्ट्रान उसके विषांश को समाप्त कर देते हैं। वर्षा के रूप में भूमि पर गिरता हुआ वह जल बिलकुल शुद्ध एवं स्वास्थ्यप्रद होता है। जल में जैविक आक्सीजन मांग (बायलॉजिकल आक्सीजन डिमांड) तथा रासायनिक आक्सीजन मांग (केमीकल आक्सीजन डिमांड) की मात्रा तेजी से नियन्त्रित होती है। जो जल जीवों हेतु अत्यावश्यक है। इसके अतिरिक्त और कई जलप्रदूषक पैरामीटर भी नियन्त्रित हो जाते हैं। यही कारण है कि यज्ञ के द्वारा परिशोधित जल एवं वायु मनुष्यों के अतिरिक्त वृक्षों, लताओं इत्यादि के लिए भी वृद्धि कारक और कीटाणुनाशक हो जाते हैं। जिससे हरीतिमा संवर्धन भी होता है। यज्ञ से उत्सर्जित गैसों में अनेक रोगों के रोगाणुओं को नष्ट करने की पूर्ण क्षमता है। पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्री एम० मोनियर ने अपनी पुस्तक 'एनशिएन्ट हिस्ट्री ऑन मेडिसिन' में लिखा है कि रोगों के कीटाणुओं को समाप्त करने के लिए यज्ञ से सरल एवं सुलभ कोई पद्धति नहीं है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक-संहिता' में लिखा है कि क्षयरोग (टी०बी०) के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए सर्वसफल चिकित्सा-पद्धति यज्ञ ही है। फ्राँस के वैज्ञानिक प्रो० टिलवर्ट ने यह निष्कर्ष निकाला है कि शक्कर के दहन से उत्पन्न धुँए में पर्यावरण परिशोधन की विचित्र शक्ति है। इससे क्षय रोग, बड़ी चेचक, छोटी चेचक, हैजा एवं तपेदिक के विषाणु नष्ट हो जाते हैं। ब्रिटिश शासनकाल में मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर डॉ० कर्नल किंग ने वहाँ प्लेग फैलने पर विद्यार्थियों को घी, केसर तथा चावल को मिलाकर हवन करने का परामर्श दिया था। सूरत में १९९४ में प्लेग फैलने पर वहाँ भी चिकित्साधिकारियों ने वातावरण को विषाणुरहित बनाने के लिए घी मिश्रित धूप, हल्दी तथा कपूर जलाने को कहा था तथा हवन सामग्रियों के लाखों पैकेट भी बाँटे गये थे। किशमिश, मुनक्का, मखाना इत्यादि सूखे मेवों से हवन करने पर डॉ० टीलिट ने पाया कि इससे उत्सर्जित धुआं सन्निपात ज्वर (टायफायड) के विषाणुओं को मात्र आधा घण्टे में तथा अन्य रोगों के विषाणुओं को दो घण्टे में समाप्त कर देता है। अवसाद, तनाव, उन्माद, भ्रमि, मिरगी, स्नायु-दौर्बल्य इत्यादि मानसिक बीमारियां भी यज्ञ की ऊष्मा के प्रभाव से कम अथवा नष्ट हो जाती हैं। फ्रांसीसी चिकित्सक डॉ० हॉफकिन ने यह प्रतिपादित किया है कि शक्कर एवं घी के मिश्रण को जलाने से सभी प्रकार के रोगाणुओं का विनाश हो जाता है और हमारे स्वयन्त्र, नाड़ी-गुच्छक (ग्लैण्ड्स), हृदय तथा मस्तिष्क नैसर्गिक सुखों से परिपूर्ण हो जाते हैं। मन्त्रों के प्रभाव से होम किये गये पदार्थ औषधियों से भी अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। दहन की सामान्य प्रक्रिया में अग्नि में डाला गया हविष्य केवल सुगन्धि ही नहीं फैलाता है परन्तु यज्ञ-प्रक्रिया में मन्त्र के

(शेष पृष्ठ २६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः

—डा० भवानीलाल भारतीय

यज्ञादि कृत्यों के अन्त में जब आशीर्वाद तथा स्वस्ति-कामना के श्लोकादि बोले जाते हैं तो प्रायः यह श्लोक हम बोलते हैं—

काले वर्षतु पर्जन्यो पृथ्वी शस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितोऽस्तु ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥

बादल समय पर वर्षा करें, पृथिवी धन-धान्य से परिपूर्ण हो, इस देश में किसी प्रकार का दुःख, क्लेश तथा कष्ट न रहे तथा ब्राह्मण लोग निर्भय रहें। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि केवल ब्राह्मण ही निर्भय क्यों रहें? क्या क्षत्रिय, वैश्यादि के लिए निर्भीक होना आवश्यक नहीं है? इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। वस्तुतः ब्राह्मण समाज का मुख है (**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्।** [यजु० ३१।११]) वह समाज को आगे ले चलने तथा उसका नेतृत्व करने में सक्षम व समर्थ है। वह अग्रजन्मा है। उसके कारण ही समाज की उन्नति और प्रगति सम्भव है। यदि ब्राह्मण को डराया धमकाया जायेगा, उसे अपने कर्त्तव्य-पालन से विरत किया जायेगा, तो वह न तो अपना कर्त्तव्य-पालन ही कर सकेगा और न अपने समाज को आगे ले चलने में ही समर्थ होगा। जब-जब ब्राह्मण का उत्पीड़न किया गया, उसकी प्रखर एवं लोकहितकारी वाणी को अवरुद्ध करने की चेष्टा की गई, तब-तब समाज और राष्ट्र सर्वनाश के कगार पर पहुंचा है। भारतीय इतिहास के घटनाचक्र से यह तथ्य पदे-पदे सिद्ध हुआ है।

महर्षि विश्वामित्र यद्यपि जन्मना क्षत्रिय थे, किन्तु अपनी तपस्या के बल पर उन्होंने ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया था। जब वे अपने आश्रम में लोकहितार्थ यज्ञ का सम्पादन करते हैं तो समाज का अहित चिन्तन करने वाले, दुष्ट प्रवृत्ति के लोग इस यज्ञ कर्म में बाधक बनते हैं। इस प्रकार यह ब्राह्मण निर्भय होकर स्वकर्म का सम्पादन नहीं कर पाता। इस समय आवश्यकता है कि कोई क्षत्रिय आगे आये और अपने पराक्रम से असुर समूह का समूल विनाश कर यज्ञ कर्म में प्रवृत्त ब्राह्मण को निर्भय बनाये ताकि वे सर्व-लोकहितकारी यज्ञ को पूरा करें। ब्राह्मण को निर्भीक होकर यज्ञ पूरा करने में भगवान् राम का सहयोग मिला, यह राम कथा से सर्वविदित है।

महाभारत काल में भी यही स्थिति आई थी। व्यास एवं विदुर जैसे ब्राह्मण स्वभाव वाले महापुरुषों की बात कहाँ सुनी जा रही थी? कृष्ण यद्यपि जन्मना क्षत्रिय (यादव) थे, किन्तु उन्होंने ब्राह्मणत्व के गुणों को भी अर्जित किया था। जब वे कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों पक्षों की सेनाओं के बीच में अर्जुन के सारथी बनकर गीता का उपदेश करते हैं तो उनका ब्राह्मणत्व ही उजागर होता है। जब हस्तिनापुर जाकर कौरव सभा में वे दुर्योधन को युद्ध न करने तथा पाण्डवों को उनका अभीष्ट राज्य दे देने के लिए नाना प्रकार से समझाते हैं तो वे एक महान् ब्राह्मण उपदेष्टा और अनुशास्ता की भूमिका में आते हैं। परन्तु दुर्योधन की धृष्टता तथा उद्दण्डता की भी कोई सीमा नहीं। वह वासुदेव की इस पवित्र वाणी की अवहेलना ही नहीं करता अपितु सभा से बाहर जाने पर उन्हें पकड़ लेने का भी षड्यन्त्र करता है। इस प्रकार जब कृष्ण की लोकहित में प्रयुक्त वाणी का तिरस्कार और अवहेलना होती है तो उसका परिणाम समस्त धरती को भारत युद्ध के रूप में भोगना पड़ता है।

महामति चाणक्य की नीति निपुणा वाणी को भी नन्दवंशी स्वेच्छाचारी राजाओं ने कहां सुना था? यदि वे भगवान् कौटिल्य की राष्ट्रहित की योजनाओं में बाधक नहीं बनते और चन्द्रगुप्त के राजनैतिक हितों को विनष्ट नहीं करते तो शायद उनका भी विनाश नहीं होता। चाणक्य की वाणी, उनकी रीति-नीति उत्कृष्ट थी कि उसकी विजय तो निश्चित ही थी। उन्होंने निर्भीक होकर अपनी योजना को क्रियान्वित किया और मनस्वी चन्द्रगुप्त को पाटलिपुत्र के सिहांसन पर आसीन किया।

यदि शंकर स्वामी निर्भीक होकर उपनिषद् आधारित ब्रह्मवाद का प्रचार नहीं करते तो यह निश्चित था कि सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यावर्त्त बौद्ध, जैन तथा अन्य लोकायत मतों द्वारा प्रचारित नास्तिकता के जाल से कभी मुक्त नहीं होता। यह उस तेजस्वी ब्राह्मण की ही शक्ति थी, जिसने अवैदिक मतों को देश से बाहर निकाल दिया तथा वाममार्ग, कापालिक एवं तन्त्राधारित शक्ति जैसे अनैतिक तथा कुपथगामी सम्प्रदायों का मूलोच्छेद करने में सफलता पाई। यदि शंकर की वाणी को जोर जबरदस्ती से अवरुद्ध किया जाता तो भारत में सर्वत्र वैदिकवाद का विजयनाद करने में वे असमर्थ ही रहते।

यही स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी में ऋषि दयानन्द की भी थी। वे तो ब्राह्मणोचित तेज, वर्च, ओज तथा मनस्विता के साक्षात् प्रतिमान ही थे। उन्हें भी डराने, धमकाने तथा कर्त्तव्य-पथ से विचलित करने के न जाने कितने प्रयास किये गये, किन्तु उसी धीर, वीर, स्वकर्त्तव्य निरत ब्राह्मण को अपने अभीष्ट मार्ग से हटाना सम्भव ही नहीं था। तभी तो स्वस्ति वाक्य में कहा गया है—हमारे ब्राह्मण निर्भय रहें। स्वामी दयानन्द तथा उनके महान् सुधार आन्दोलन आर्यसमाज की प्रगति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने के कितने प्रयास किये गये थे। अमेरिकन विचारक एण्ड्रू जैक्सन डेविस के शब्दों में इस संन्यासी के हृदय में उत्पन्न क्रान्ति-ज्वाला को बुझाने के लिए सारे साम्प्रदायिक तत्त्व आगे आये। जब दयानन्द सरस्वती के समानधर्मी पौराणिक विद्वानों ने ही उनका विरोध करने में कोई कोर कसर उठा नहीं रखी तो उन ईसाई, मुसलमान आदि परमतावलम्बियों का तो कहना ही क्या, जो उनके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। दयानन्द की निर्भीकता स्वोपार्जित थी। यह उनके प्रबल ईश्वर विश्वास तथा अपने लक्ष्य की सत्यता में उनकी अटल आस्था का परिणाम थी। उन्होंने महाकवि भर्तृहरि के शब्दों में अपने जीवन का उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित किया था—

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

एक आदर्श ब्राह्मण का चरित्र ऐसा ही होता है। निन्दा और स्तुति को तुल्य मानने वाला, ऐश्वर्य और लक्ष्मी का तिरस्कार करने वाला, मृत्यु की भी चिन्ता न करने वाला ब्राह्मण जिस दिन निर्भय होकर स्वधर्म के आचरण में लगेगा, संसार के लिए वह सौभाग्य का दिन होगा।

८/४२३, नन्दनवन, जोधपुर

●●

कामना

—मुकेश कुमार, अलीपुर कला

प्रभु-दर्शन पा लें हम, यदि ऋषिवर की राह अपना लें हम।
छल-धन में रुचि ना लें हम, चारित्रिक धन कमा लें हम॥ टेक॥

भारत था भूल चुका निज-गौरव, दयानन्द ने फिर से संभाले हम।
पशु-हत्या पर रोक लगायें, जीव मात्र पर दया दिखायें।
इसका जो भी करे विरोध, उसको मिल के समझा लें हम।

केवल एक धर्म अपनायें, वैदिक धर्म के सब गुण गायें।
धर्म एक नहीं जब तक होगा, कैसे कश्मीर में वेद मन्त्र गा लें हम?

भाषा सरल-सुबोध चाहिये, दयानन्द ने कहा जिसे आर्यभाषा।
उस हिन्दी को अपना लें हम, जन-सम्पर्क मधुर बना लें हम।

वेशभूषा वीरों वाली हो, प्राकृतिक आनन्द देने वाली हो।
पैंट-कमीज गोरे बंदरों का पहनावा, स्वदेशी वस्त्र सिला लें हम।

हिन्दु का अर्थ जानते हो? मुस्लिम जिसे काफ़िर कहते।
गन्दी उपमाओं का त्याग करें, आर्यजन कहला लें हम।

भ्रष्ट लोगों को सत्ता मत दो, वरना प्यारा वतन जल जायेगा।
बोयेंगे पेड़ बबूल के तो, आम कहाँ से खा लें हम?

सामाजिक अन्ध-विश्वास भगायें, जिनसे दयानन्द जूझ गये।
दहेज के कारण जली आज तक कन्या, आज दहेज जला लें हम।

योगासन-प्राणायाम करें, ओ३म् नाम का ध्यान धरें हम।
शीतल जल से स्नान करें, हीरा-सा शरीर तपा लें हम।

प्रभु-दर्शन पा लें हम, यदि ऋषिवर की राह अपना लें हम।
छल-धन में रुचि ना लें हम, चारित्रिक धन कमा लें हम॥

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

सुख दुःख मिथ्याज्ञान जनित हैं

—पं० वेदप्रकाश श्रोत्रिय

मिथ्याज्ञान अनेक प्रकार से है। जैसे-विद्यमान सत् आत्मा नहीं है ऐसा ज्ञान असत्त्वग्राहकत्व के द्वारा विपरीत होने से मिथ्याज्ञान है। अनात्म शरीर में आत्मा होने का ज्ञान विपरीत होने से मिथ्याज्ञान है। दुःख रूप संसार में सुख है ऐसा ज्ञान मिथ्याज्ञान है। अनित्य पृथिवी आदि में नित्यत्व ज्ञान, अरक्षक में रक्षकत्व ज्ञान, सभय संसार में निर्भयत्व ज्ञान विपरीत होने से मिथ्याज्ञान है। मलमूत्रादि से पूर्ण अशुद्ध शरीर में शुद्धत्व ज्ञान, त्याज्य संसार में अत्याज्यत्व ज्ञान विपरीत होने से मिथ्याज्ञान है। प्रवृत्ति अर्थात् धर्माधर्म लक्षण वाली प्रवृत्ति विषयक मिथ्याज्ञान के विषय में- सृष्टि की उत्पत्ति धर्माधर्म कर्म के बिना मानना अर्थात् कर्म नहीं है और उसका फल भी नहीं है, ऐसा ज्ञान मिथ्याज्ञान है। राग द्वेषादि के प्रत्यक्ष होने पर भी इनका नहीं होना, मानना मिथ्याज्ञान है क्योंकि दोष ही संसार में कारण हैं। दोष प्रेरित जीवात्मा कर्म करता है और उसी कर्म के द्वारा संसार का संसरण होता है। अतः राग द्वेष दोषादि में अदोषत्वज्ञान मिथ्याज्ञान है। आत्मा के साथ जन्म मरण का सम्बन्ध होने पर भी जन्म मरण का न होना भी मिथ्याज्ञान है। जन्म मरण के प्रत्यक्ष सिद्ध होने पर सकारणक न मानकर कर्म का अकारणकत्व ज्ञान अर्थात् प्रेत्यभाव नैमित्तिक न मान कर अकर्मनिमित्तक मानना मिथ्याज्ञान है। अपवर्ग के द्वारा सान्त जन्म मरण को अनन्त मानना मिथ्याज्ञान; आत्मा के बिना जन्म मरण का स्वीकार्य मिथ्याज्ञान तथा अपवर्ग अर्थात् मोक्ष पदार्थ नहीं है, ऐसा ज्ञान मिथ्याज्ञान है। अपवर्ग में पुत्र कलत्रादि पदार्थ सम्बन्ध रहित होने पर सुख का लोप हो जायेगा क्योंकि सुख का कारण पुत्र कलत्रादि का संयोग है, ऐसा मानना मिथ्याज्ञान है। इस मिथ्याज्ञान का परिणाम यह है कि अनुकूल में राग और प्रतिकूल में द्वेष होता है। राग द्वेष के अधिकार अर्थात् उद्रेक से असत्य= मिथ्याभाषण, ईर्षा अर्थात् दूसरे गुणों में दोषारोपण, माया= दम्भ और लोभ अर्शात् बहुत संग्रह की इच्छा आदि दोषों की उत्पत्ति होती है। इन्हीं दोषों से प्रेरित आत्मा शरीर के द्वारा प्रवर्त्तमान हिंसा-स्तेय प्रतिषिद्ध मैथुनादि का आचरण करता है। वाणी से असत्य, परुष भाषण, पिशुनादि तथा मन से अन्याय से परद्रव्य-ग्रहणेच्छा, वेदनिन्दा आदि का निषिद्ध आचरण करता है। शरीर से दान, परित्राण, परिचरण अर्थात् वृद्ध-सेवा, वाणी से सत्य, हित, प्रियवचन, स्वाध्याय= वेदाभ्यास आदि आचरण करता है। तथा मन से दया, अस्पृहा श्रद्धा आदि करता है। इन्हीं धर्माधर्म= पुण्यपापानुसार कर्मों से ही जाति, आयु, भोग होते हैं। पुण्यपाप ही जन्म के कारण होते हैं। शरीर इन्द्रिय बुद्धि आदि का निकायविशिष्ट अर्थात् परस्पर सम्बन्धों का जो प्रादुर्भाव है, वही जन्म कहाता है। उसमें होने वाला दुःख जो प्रतिकूल वेदनीय अर्थात् प्रतिकूल पदार्थ संयोग जन्य प्रतिकूलत्व से ज्ञायमान मनोविकार विशेष ही दुःख है जिसको बाधना, ताप, पीड़ा कहते हैं।

अभिप्राय यह है कि मिथ्याज्ञान से दोष, दोषों से प्रवृत्ति, प्रवृत्ति से जन्म, जन्म से दुःख ही संसार है। इस का उलट क्रम अपवर्ग है। अर्थात् मिथ्याज्ञान निवृत्ति, परदोष-निवृत्ति. दोष-निवृत्ति से प्रवृत्ति अपाय, अर्थात् धर्माधर्म निवृत्ति, प्रवृत्ति के अपाय होने पर जन्म अपाय और जन्म के अपाय होने पर दुःख अपाय होता है। दुःख निवृत्ति से अपवर्ग होता है। दुःख निवृत्ति से संसार सम्बन्ध का अभाव हो जाता है। तब यथार्थज्ञान से आत्मा में आत्मत्व ज्ञान, अनात्म अर्थात् आत्मभिन्न शरीरादि में अनात्म ज्ञान होता है। दुःख में दुःख, अनित्य में अनित्य, अत्राण में अत्राण, सभय में सभय, जुगुप्सित में जुगुप्सित, हेय में हेय ऐसा ज्ञान तत्त्वज्ञान कहलाता है। कर्म भी है और कर्मफल भी है ऐसा प्रवृत्ति विषयक तत्त्वज्ञान है। दोष निमित्त यह संसार है। जन्ममरण का आत्मा से सम्बन्ध है। कर्म निमित्त से जन्म है, निमित्तक जन्म का उपरम ही अपवर्ग है। अनादि प्रेत्यभाव का अपवर्ग अन्त है। देहेन्द्रियबुद्धिवेदनासन्तानोच्छेद प्रतिसन्धान से प्रवर्त्तमान प्रेत्यभाव निरात्मक नहीं है अपितु आत्मा के सहित ही है। आत्मा का देहेन्द्रिय बुद्धि वेदनासन्तान के उच्छेद से मरण और आत्मा का इनसे प्रतिसन्धान अर्थात् संयोग से जन्म है इसलिए प्रेत्यभाव आत्मा के सहित है बिना आत्मा के नहीं। अपवर्ग में सर्वदुःख का उच्छेद होगा अर्थात् आत्यन्तिक अभाव होगा। ऐसा ज्ञान तत्त्वज्ञान होता है। प्रश्न करते हैं कि संसार में तो सुख भी है परन्तु केवल दुःख की ही बात क्यों कही गई? इसका उत्तर देते हैं कि यथा विष सम्पृक्त मधु मिश्र भी अन्न अग्राह्य है-त्याज्य है। वैसे ही सांसारिक सुख भी दुःख मिश्रित होने पर= दुःखानुषक्त त्याज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है और अपवर्ग सर्व-दु:खरहित है। वहाँ यथार्थज्ञान होने के कारण सांसारिक न सुख है न दु:ख है। अपितु नित्यानन्द है।

सिद्ध हुआ कि जहाँ आत्मा में मिथ्याज्ञान होता है वहीं आत्मा में उस मिथ्याज्ञान से राग द्वेष मोहादि दोष उत्पन्न होते हैं। राग विशिष्ट रक्त, द्वेष विशिष्ट द्विष्ट और मोह विशिष्ट मूढ़ ये क्रिया प्रधान अर्थात् कर्मप्रधान होते हैं। जो रागविशिष्ट रक्त पुरुष उस कर्म को करता है जिससे सुख व दु:ख प्राप्त करता है। वैसे ही द्विष्ट तथा मूढ़ भी सुख व दु:ख प्राप्त करता है। इसलिए कर्मप्रधान होने से ये सुख व दु:ख फल ही हैं। कर्म से ही संसार अनुवृत्ति होती है, अपवर्ग प्राप्ति नहीं होती! इसलिए ये दोष हेय हैं। यह सुख दु:खोपभोग रूपी फल भी पीड़ा स्वरूप होता हुआ दु:ख ही है। वस्तुत: यह शरीर भी फल होने से दु:ख ही है। इसलिए यह जीवात्मा सर्वदु:खयुक्त ही है, जानता हुआ दु:ख को छोड़ने की इच्छा से संसार से खिन्न हुआ विरक्त हो जाता है। संसार में सुख होने पर भी अपवर्ग की प्राप्ति के लिए सब दु:खमय ही है। यह दु:ख बाधना= ताप पीड़ा का ही नाम है। यह पीड़ा होना, मध्यमा और उत्कृष्टा भेद से विविध प्रकार की है। वीतरागदेवों की हीनतरा, मनुष्यों की हीना, तिर्यगों की मध्यमा तथा नारकियों की उत्कृष्टा होती है! सब उत्पत्तिस्थान अर्थात् जन्ममरणादि विविध बाधना= दु:ख युक्त है। सुख और उसके साधनों में भी दु:खसंज्ञा ही शास्त्रों में ठहराई है। दु:ख संज्ञा के व्यवस्थान से अर्थात् ज्ञान की स्थिरता से अनभिरति अर्थात् अप्रियत्व ज्ञान होता है। इस अप्रियत्व ज्ञान से तृष्णा की निवृत्ति होती है और तृष्णा की निवृत्ति से सर्वदु:ख निवृत्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है कि विषयोग से पय भी विष ही है यह जानकर उसे ग्रहण नहीं करता और ग्रहण न करने पर मरण दु:ख नहीं होता। वैसे दु:खयोग से सुख वाला संसार भी दु:ख ही है यह जानकर संसार के परित्याग से जन्ममरणादि दु:ख नहीं होता। प्रश्न उत्पन्न होता है कि सुख का प्रत्याख्यान क्यों नहीं किया जब कि संसार में सुख भी उपलब्ध है। इसका उत्तर इस प्रकार है कि यह आत्मा यह जानता हुआ यह मेरा सुख साधन है, यह मेरा दु:ख साधन है। सुखसाधन के ग्रहण करने दु:ख साधन छोड़ने के लिए यत्न करता है। सुखसाधन में प्राप्ति के लिए यतमान पुरुष को अनेकविध मानस सन्ताप होते हैं। इसलिए ताप अनुभव से सब दु:ख ही दु:ख है ऐसा कहा न कि सुख के अभाव से।

पूर्वोक्त विवेचित सुख दु:ख फल के हानोपादान अर्थात् गृहीत फल-त्याग एवम् अगृहीत फल-त्याग का पर्यवसान ही अपवर्ग है। प्रलय में सुख दु:ख की निवृत्ति होती है परन्तु प्रलयानन्तर सृष्टि में पुन: सुख दु:खोपभोग से यह नहीं कहा जा सकता कि प्रलय में दु:ख निवृत्ति हो जाती है। परन्तु अपवर्ग= मोक्ष के अनन्तर तो सुख दु:ख भोग संभव ही नहीं है। इसलिए आत्यन्तिक निवृत्ति तो दु:ख की अपवर्ग होने पर ही होती है जन्म मरण के न होने से। जन्म ग्रहण कराने वाले कर्मों के क्षय होने से तत्त्वज्ञान के माहात्म्य से अन्य जन्म का ग्रहण नहीं होता। यही विमुक्ति है। ध्यातव्य यह है कि मुक्ति में केवल दु:ख निवृत्ति ही नहीं होती अपितु ईश्वर के नित्य सुख की प्राप्ति भी होती है।

सिद्ध हुआ कि मिथ्याज्ञान विपरीत ज्ञान, दुष्ट ज्ञान अविद्या ही है। यही अविद्या सुख दु:ख का कारण अर्थात् निमित्त है। इसके हटते ही सुख दु:ख का अभाव ही नहीं अपितु अत्यन्ताभाव अर्थात् पुनरुत्पादन नहीं होता। जीव की अल्पज्ञता से ही मिथ्याज्ञान का आवरण आता है और ईश्वरीय निमित्त से हट भी जाता है। ईश्वरीय ज्ञान की निमित्तता से मिथ्याज्ञान नष्ट हो जाता है।

इसी भाव को सांख्यदर्शनकार ने स्पष्ट किया-कि जीवात्मा का बद्धत्व और मुक्तत्व दोनों रूप नहीं हैं।

व्यावृत्तोभयरूप:। सांख्य १।१६० जीवात्मा अविवेक= मिथ्याज्ञान से बद्ध होता है और यथार्थ ज्ञान से मुक्त होता है।

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते। सांख्य ३।८१ आत्मा का बन्ध पुन: मोक्ष ये दोनों स्वरूपत: नहीं हैं क्यों कि अविवेक के बिना बन्ध पुन: उससे छूटना नहीं बन सकता। अविवेक से ही बंधता है और विवेक से मुक्त हो जाता है। और जीवात्मा अविवेक से ही कर्त्ता कहाता है।

अविवेकाद्वा तत्सिद्धि: कर्तु: फलावगम:। सांख्य १।१०६. अविवेक से आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता है। कर्म कर्त्ता होने से फल का भोग भी होगा। धर्माधर्म- पुण्यापुण्य कर्माशय वाला जीव ही सुख दु:ख रूपी फल का भोक्ता है। समस्त शास्त्रों के अनेकविध प्रमाण इस विचारणा की पुष्टि करते हैं परन्तु विस्तार भय से वर्णन नहीं किया जा रहा है।

अत: जीव का स्वरूप अल्प होने से अविद्या मिथ्याज्ञान के आवरण में आता और शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता और सुख दु:खों को भोगता है। प्रयत्नपूर्वक ईश्वराज्ञा पालन धर्मयुक्त व्यवहारों को कर मिथ्याज्ञान को हटा सांसारिक सुख दु:ख से छूटकर परमानन्द को प्राप्त करता है। इसलिए सुख दु:ख मिथ्याज्ञान जनित हैं। प्रकृति के गुण नहीं हैं। जीवात्मा के ही गुण हैं। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आओ, संकल्प लें

—भगवान देव "चैतन्य"

पक्षियों से भी तेज गति से आकाश में विमान द्वारा उड़ने वाला व्यक्ति इस बात पर तनिक भी विचार नहीं करता है कि वास्तव में उसे इस स्थिति तक पहुंचाने के लिए कितने लोगों ने कठिन परिश्रम किया तथा अपने बलिदान दिए। समुद्र की छाती को चीरता हुआ आज का मानव जब आगे बढ़ता है तब उसका चिन्तन इस ओर नहीं मुड़ता कि किन वैज्ञानिकों के तप, त्याग और परिश्रम का यह सुफल है। ठीक इसी प्रकार आज स्त्री, शूद्र, समाज तथा राष्ट्रोद्धार के पीछे सब से प्रमुख भूमिका किस मनीषी की रही है इस ओर भी किसी की चिन्तन-धारा नहीं मुड़ती है। एक समय था जब स्त्री को पैरों की जूती समझा जाता था, उसे वेदादि सत्य शास्त्र पढ़ने तो दूर रहे सामान्य शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार नहीं था। शूद्रों की स्थिति तो इससे भी अधिक निकृष्ट थी। समाज कुनीतियों का अखाड़ा बना हुआ था। धर्म के नाम पर शोषित और प्रताड़ित होना पड़ता था। प्यारा राष्ट्र परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ कर अपने आलसी और प्रमादी नागरिकों को देख देख मानो खून के आंसू बहाता था। ऐसे ही विकट समय में महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने तत्कालीन सभी समस्याओं का सूक्ष्मता से अवलोकन किया और बड़े से बड़ा संकट तथा घोर विरोध होने के बावजूद अपनी पूरी शक्ति से इन्हें दूर करने के लिए कार्यक्षेत्र में उतर पड़े। यह कैसी विडम्बना है कि सर्वप्रथम जिन सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को दूर करने के लिए महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा चलाए गए आन्दोलन आर्यसमाज ने अपना खून पसीना एक कर दिया। उसका श्रेय कुछ अन्य व्यक्ति या संस्थाएँ अपनी झोली में डाल रही हैं। क्या आर्यसमाज को उसके बलिदानों का यही उपहार मिलना था। आज तो स्थिति यह है—

उनकी तुरब्बत पर एक दीया नहीं,
जिनके खूं से जले थे चिरागे वतन।
आज दमकते हैं, उनके मकबरे जो,
बेचते थे शहीदों का कफन॥

आज साम्प्रदायिकता की आड़ में सब अपना अपना उल्लू सीधा करने की ताक में हैं। इसीलिए आर्यसमाज जैसी असाम्प्रदायिक संस्था को कोई महत्त्व नहीं दिया जा रहा है। बल्कि उसके विरुद्ध बहुत सा दुष्प्रचार किया जा रहा है। विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति तुष्टीकरण की नीति क्या राष्ट्रीय एकता और मानव मूल्यों की स्थापना की दिशा में सार्थक हो सकती है? महर्षि दयानन्द सरस्वती ने एकेश्वर, एक भाषा, एक जाति, एक राष्ट्र और एक ही मानव धर्म का जो मूलमन्त्र दिया था क्या उसे कार्यरूप दिए बिना भावात्मक एकता स्थापित हो सकती है। हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि से ऊपर उठकर मानव मात्र के लिए वैदिक धर्म का उपदेश ही वास्तव में असाम्प्रदायिक है। महर्षि दयानन्द एवम् उनके विचार ही समन्वयवादी हैं। एक भाव जब तक नहीं होगा तब तक भावात्मक एकता स्थापित होगी कैसे? इस तुष्टीकरण की नीति ने आज राष्ट्र को बिखरने की कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। कीचड़ से कीचड़ धोने से कोई लाभ नहीं केवल स्वच्छ जल ही सफाई का कार्य कर सकता है। पत्तों को पानी देने से वृक्ष को हरा भरा नहीं रखा जा सकता है बल्कि इसके लिए जड़ों को पानी देकर राष्ट्ररूपी वृक्ष को सींचना पड़ेगा। महर्षि का प्रयास जड़ों को पानी देकर राष्ट्ररूपी वृक्ष को हरा भरा रखने का था। इस प्रयास की सार्थकता को समझकर कार्यरूप देने की आज परम आवश्यकता है अन्यथा राष्ट्र की स्थिति और भी अधिक भयंकर हो जाने की संभावना है। आज नारी मुक्त तो हुई मगर दिशाहीन और उछृङ्खल होकर अपनी मर्यादाओं से भटक गई है। शूद्र आज अमानवीय यातनाओं से मुक्त तो हुआ मगर राष्ट्र के लिए एक नई समस्या बनकर उभर रहा है। देश परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़कर स्वतन्त्र तो हुआ मगर इस स्वतन्त्रता का आज क्या रूप बन गया है यह विचारणीय ही नहीं चिन्तनीय है। यह सब इसीलिए हुआ है कि जिन लोगों ने नींव के पत्थर बनकर, अपना अस्तित्व मिटाकर इन उपलब्धियों को हमारी हथेलियों पर रखा था, हम उनकी वास्तविक विचारधाराओं, मन्तव्यों तथा आदर्शों को भूलकर कुछ स्वार्थी, संकुचित एवं तथाकथित धर्म, समाज और सुधारकों के चंगुल में फंस गए हैं। अपने अपने संकुचित स्वार्थों सम्प्रदायों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतों और विचारधाराओं को जब तक हम मानवता का जामा पहनाकर राष्ट्रीय एकता की पावनधारा में नहीं बह जाते हैं, तब तक ऊपर से भले ही लगे मगर भीतर और अधिक विस्फोटक स्थिति बनती चली जायेगी। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० सीताराम पट्टाभि रमैया ने लिखा है कि स्वतन्त्रता संग्राम में 85 प्रतिशत से भी आधिक बलिदान आर्यसमाजियों का रहा है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है मगर आर्यसमाज ने कभी इस बात का ढिंढोरा नहीं पीटा और न ही अपने स्वार्थों के लिए गद्दियाँ मांगीं मगर इसका अर्थ यह नहीं है कि आर्यसमाज की मौजूदगी को बिल्कुल ही नज़र अन्दाज कर दिया जाए। स्वतन्त्रता और स्वराज्य का सर्वप्रथम उद्घोष पहले ही सुनिश्चित कर दिया था— ''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है···'' तथा ''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सतुंष्ट नहीं रहना चाहिए परन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।'' इस प्रकार समूचे राष्ट्र की व्यथा को आर्यसमाज अपनी व्यथा समझता है। कोई भी व्यक्ति, संस्था, मत मज़हब राष्ट्र से बड़ा नहीं हो सकता है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए इन सब को ताक पर रखा जा सकता है मगर इनके लिए राष्ट्र को नहीं। मगर आज तो उल्टी ही गंगा बह रही है—

देश पड़े चूल्हे में राष्ट्र जाए भाड़ में।
खेलते शिकार सभी कुर्सियों की आड़ में॥

आज सभी अपनी अपनी रोटियां सेकने की ताक में बैठे हुए हैं। राष्ट्र की किसी को भी हृदय से चिन्ता नहीं है। सभी अपने अपने दायरों को बढ़ाने में ही लगे हुए हैं जबकि आवश्यकता सभी दायरों से बाहर निकल कर राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ने की है। इसके लिए हमें निश्चित रूप से महर्षि दयानन्द की मानवतावादी विचारधारा को अपनाना पड़ेगा। उन्होंने व्यक्ति की सच्चरित्रता पर सब से अधिक बल दिया है। उनका एक ही उद्घोष था— ''**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।**'' अर्थात् समूचे विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाया जाए। व्यक्ति में श्रेष्ठता आए बिना कभी भी उदारता और उत्कृष्टता नहीं आ सकती है। श्रेष्ठ व्यक्ति ही उदार और परोपकारी हो सकता है। वही सच्चा मानव बन सकता है। जब व्यक्ति श्रेष्ठ व्यक्ति बन जाता है तो वह केवल अपने गुणों से पहचाना जाता है— ''किसी मजहब, सम्प्रदाय, जाति या विशेष चिह्न आदि के द्वारा नहीं! ऐसा व्यक्ति ही राष्ट्र या मानवता का सच्चा हितैषी बन सकता है। यही है राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द की पहचान। मैं समझता हूं ऐसी कट्टर राष्ट्रीयता के पथ पर जब तक हम नहीं चलेंगे तब तक राष्ट्रीय एकता के नारे तो लगाये जा सकते हैं, भावात्मक एकता के स्वांग तो रचाए जा सकते हैं मगर अनेक स्थानों पर हुई शर्मनाक घटनाओं से देश को उबारा नहीं जा सकता है। लाला लाजपतराय ने ठीक कहा था—'आर्यसमाज कट्टर राष्ट्रीयता में विश्वास रखता है।' सचमुच उसे ढुलमुल नीति पसन्द नहीं है। आर्यसमाज ने यदि राष्ट्र के लिए सब से अधिक बलिदान दिये हैं तो इस राष्ट्र के प्रति उसका असीम स्नेह होना स्वभाविक ही है। राष्ट्रपिता महर्षि दयानन्द जी के बोधोत्सव पर आज भी सभी आर्य प्रण लेते हैं—

प्रण करते हैं संस्कृति की शाम नहीं होने देंगे।
वीर शहीदों की समाधि बदनाम नहीं होने देंगे।
जब तक रग में एक बूंद भी गर्म लहू की बाकी है।
भारत की आज़ादी को हम नीलाम नहीं होने देंगे॥

[78/एस-4 सुन्दर नगर (हि०प्र०)]

चैत्र शुक्ला नवमी

(श्रीराम जयन्ती के पावन अवसर पर)

परम प्रतापी प्रजारञ्जन शत्रु-विजयी श्रीराम थे,
ज्ञानी, सदाचारी सुधी-धर्मज्ञ दानी-धीर थे।
कल्याणकर उनके सभी शुभ गुणों को धार लो,
पढ़ मित्र पूर्ण-पवित्र रामचरित्र से जन्म सुधार लो॥
श्रद्धा सहित हम उस महात्मा का निरन्तर नाम लें,
इस लोक में जन्म सुधार कर स्वर्ग में विश्राम लें।

—कविवर श्री रामनरेश त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने मन की शक्ति को पहचानो

—अरुण शास्त्री, आर्यसमाज, जामनगर, (गुजरात)

मनुष्य के शरीर में ईश्वर द्वारा प्रदत्त कोई अमूल्य वस्तु है, तो वह मन है। मन न होता तो शायद हम अपना कल्याण भी न कर सकते, कारण कि परमात्मा का ध्यान भी मन के द्वारा ही किया जा सकता है। स्मरण उसके द्वारा ही होता है और किसी प्रकार का आनन्द भी उसी के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य जब अपने अन्तरमन के साथ तदात्मकता सिद्ध करता है, तब वह अन्तरात्मा की आवाज को अच्छी तरह सुन सकता है। संक्षेप में कहा जाये तो जीवन के मूलभूत मूल्यों का ज्ञान प्राप्त कर के सत्य अर्थ में मनुष्य बन सकता है।

उपनिषत् काल में धौम्य नाम के एक ऋषि हो गए हैं। उनके शिष्य को दुःसंग से मद्यपान का व्यसन लग गया। अतः इस बात का उसे पश्चात्ताप होता था कि वह व्यसनी है। एक बार उसने गुरु जी से कहा—गुरुदेव! मेरा यह व्यसन छुड़ा दीजिए। गुरु धौम्य बोले—वत्स! यह मेरा काम नहीं है। शिष्य ने कहा—आपके सिवाय मेरा यह व्यसन कौन छुड़ा सकता है? गुरु ने कहा—तू स्वयं ही छुड़ा सकता है। शिष्य ने कहा—किस तरह? गुरु धौम्य ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, केवल शुभ संकल्प करने की जरूरत है। मुझे सदाचारी बनना है, ऐसा संकल्प यदि तू करेगा तो अवश्य सफल होगा, क्योंकि शुभ संकल्प हमेशा भगवान् पूर्ण करते हैं।

कोई मनुष्य अशक्त हो अथवा दुर्बल हो तो उसे ऐसा कभी नहीं मान लेना चाहिये कि मेरे संकल्प भी दुर्बल होंगे। वे संकल्प दूसरों का क्या भला करेंगे? ध्यान रखिये- दुर्बल मनुष्य के संकल्प भी रोगी व स्वस्थ मनुष्य के जैसे ही बलवान् और श्रेयस्कर होते हैं, यदि वे शुभ हों तो।

इतिहास हमें बताता है कि तेनसिंग और हिलेरी सर्वप्रथम जब हिमालय पर चढ़े थे, तब उनके पास किसी प्रकार का कोई साधन सामग्री ऐसी नहीं थी कि, जिसके द्वारा वे हिमालय पर चढ़ सकते। परन्तु अपने मन में उन्होंने शुभ संकल्प किया कि हम ने हिमालय पर चढ़ना ही है। तो ईश्वर ने उनकी सहायता की और परिणाम स्वरूप वे उस सिद्धि को प्राप्त कर सके।

ठीक इसी प्रकार बालक मूलशंकर ने शिवरात्रि (कल्याणी रात्रि) घनघोर अन्धेरी रात्रि में अपने मन रूपी नन्हे से दीपक के माध्यम से मूर्ति पर चूहे की उथल-पुथल देखकर उस शिवमन्दिर (कुबेरनाथ मन्दिर) में शिव संकल्प अर्थात् शुभ संकल्प किया कि मैंने (सच्चे शिव) उस सम्पूर्ण संसार के कल्याण करने वाले शिव को प्राप्त करना है। अतः ईश्वर ने अपने कल्याणकारी स्वरूप का दर्शन उस क्रान्तद्रष्टा ऋषि को दिया। जिसका दर्शन करने के पश्चात् ऋषि की कल्याणमयी दृष्टि जिस किसी पर भी पड़ी उसका कल्याण हुए बिना नहीं रहा। आज भी महर्षि के सत्यार्थप्रकाश नामक अमर ग्रन्थ का जो कोई स्वाध्याय करता है, उसे उस "शिव" (कल्याण) का दर्शन अवश्यमेव होता है।

अतः हे आर्यो! अपने आपको उस शिवस्वरूप महर्षि दयानन्द के अनुयायी कहलाने वाले संसार के श्रेष्ठ पुरुषो! वही शिवरात्रि आई है तथा टंकारा के शिव-मन्दिर में आपको बुला रही है, इसलिए अपने मन की शक्ति को पहचानो। टंकारा जाकर उस मन्दिर का दर्शन करो। (जहाँ मूलशंकर ने शिवसंकल्प किया था) और संकल्प करो कि हम उस कर्मयोगी के स्वप्नों को साकार करने में कोई कसर शेष नहीं रहने देंगे। तब देखना वह परम शिव आपके शुभ संकल्प को पूरा करने में आपकी सहायता अवश्य करेंगे और तब "कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्" की ध्वनि सारे संसार में गूंजेगी। हाँ! जरूरत है केवल शुभ संकल्प की।

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों का स्वतः प्रामाण्य और महर्षि दयानन्द

—प्रियंवदा वेदभारती, आचार्या गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ, नजीबाबाद

भारतीय आर्ष मनीषा वेदों को स्वतःप्रमाण और अन्य ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानती आई है। ये गम्भीर विषय पुराकाल में वटु-समुदाय में तथा जन-साधारण में भी चर्चित रहते थे। उदाहरणार्थ यहाँ शङ्करदिग्विजय का निम्न श्लोक प्रस्तुत किया जा सकता है—

स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥[1]

वेदों के स्वतः प्रामाण्य की ओर यद्यपि सभी दर्शनकार अपने-अपने दर्शनों में संकेत करते हैं पर सर्वाधिक स्पष्ट संकेत सांख्यदर्शन प्रणेता आचार्य कपिल का प्राप्त होता है। वे लिखते हैं—

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम् (५।५१)

वेद चूँकि परमेश्वर की स्वाभाविक शक्ति से अभिव्यक्त हुए हैं इसलिए वेदों का स्वतः प्रामाण्य है। स्पष्ट हुआ कि वैदिक मन्त्रगत किसी वर्ण्य विषय को अधिक स्पष्ट या पुष्ट करने के लिए किसी मनुष्य रचित ग्रन्थ को उद्धृत करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान मूर्खता का काम होगा। 'सूर्य उदित हो गया है' इस बात को सु-पुष्ट एवं प्रमाणित करने का सामर्थ्य स्वल्प प्रकाश वाले दीपक में कहाँ? गगन में फैले अपने प्रचुर प्रकाश द्वारा जैसे सूर्य ही अपनी सत्ता का बोध स्वयं कराता है, उसी प्रकार वैदिक मन्त्रों की पुष्टि में, स्पष्टता में मात्र वेद-वाक्यों को ही उद्धृत किया जा सकता है किसी अन्य ग्रन्थ को नहीं। वेद से ही वेदार्थ करने की इस शैली का निर्वहन अपने-अपने ग्रन्थों में प्रायः सभी ऋषियों ने किया है। महर्षि यास्क अपने निरुक्त शास्त्र में पदे-पदे इस सिद्धान्त को पल्लवित करते हैं। द्रष्टव्य हैं कुछ स्थल—

१. *वीहि शूर पुरोडाशमिति खादतिकर्मा, वीतं पातं पय उस्रियायाः, अश्नीतं पिबतं पय उस्रियायाः। उस्रियेति गोनाम।* (निरु० ४।४२)

यहाँ वीहि में वी धातु को खादनार्थक सिद्ध करने के लिए महर्षि यास्क ने ऐसा मन्त्र प्रस्तुत किया जहाँ 'पिबतम्' का साहचर्य उपलब्ध है सो वहाँ खादन के सिवाय दूसरा अर्थ संगत हो ही नहीं सकता। लोक में भी इनका साहचर्य खाना-पीना, खाओ-पियो इस रूप में देखा जाता है।

२. *अस्ति आदित्यस्तुतिरश्वस्य आदित्यादश्वो निरतष्ट इति। सूरादश्वं वसो निरतष्ट इत्यपि निगमो भवति।* (निरु० ४।१४)

ईर्मान्तासः सिलिंकमध्यमासः ऋ० १।१६३।१ मन्त्र में जिस दिव्य अश्व का वर्णन है वह आदित्य की ही स्तुति है क्योंकि इसमें अन्य मन्त्र प्रमाण है—**सूरादश्वं वसवो निरतष्ट** १।१६३।२ इस मन्त्र में सूर्य से निकलने वाली रश्मियों को अश्व की संज्ञा स्पष्ट दी गई है। तद्वान् होने से सूर्य भी अश्व है।

३. *रात्रीव वासस्तनुते सिमस्मै इति तथापि निगमो भवति "पुनः समव्यद् विततं वयन्ती* (निरु० ४।११)

यहाँ मन्त्रार्थ लुप्तोपमा[2] के कारण अधिक स्पष्ट नहीं हो रहा था तो ऐसा मन्त्र महर्षि यास्क द्वारा पुष्टि में दिया गया जहां पर उपमा बड़े स्पष्ट रूप से उपलब्ध होती है।

---

१. श्लोकार्थ इस प्रकार है—आचार्य शंकर शास्त्रार्थ करने के लिए जब पं० मण्डनमिश्र के घर की खोज में माहिष्मती नगरी में पहुँचे तो वहाँ के निवासियों ने बताया कि जिस घर के द्वार पर घोंसले में बैठी शुक-सारिकाएँ वेदों के स्वतःप्रमाण एवं परतःप्रमाण के विषय में परस्पर विवाद कर रही हों वही घर मण्डनमिश्र का समझना॥

२. पाठकगण ऋ० २।३८।४ में आई इस वैदिक उपमा का रसास्वादन करें—जैसे वस्त्र बुनने वाली स्त्री सूर्यास्त के समय फैलाये हुए वस्त्र को इकट्ठा कर लेती है वैसे ही रात्रि फैले हुए रश्मिजाल को फिर समेट लेती है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की परम्परा के संवाहक महर्षि दयानन्द वेदों के स्वतः प्रामाण्य को भला कैसे उपेक्षित कर सकते थे? अपने वेदभाष्यों में बड़ी सतर्कता से उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपालन किया है। ऋग्वेद भाष्य के प्रारम्भिक सूक्तों में ही देखें कतिपय स्थल—

अग्निमीडे० १।१।१ में अग्नि शब्द का ईश्वरार्थ करते समय शतपथ ब्राह्मणादि से पूर्व **इन्द्रं मित्रं वरुणम्०** (ऋ० १।१६४।४६) **तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्०** (यजु० ३२।१) इन दो मन्त्रों को ऋषिवर ने प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। इसी प्रकार आगे भी मित्र शब्द के सूर्यार्थ में "**मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः**" (ऋ० ३।५९।१) इन्द्र शब्द को वायु अर्थ में '**विश्वेभिः सोम्यं मधु०**' (ऋ० १।१५।१०) इन्द्र शब्द के सूर्यार्थ में '**इन्द्रेण रोचना दिवः**' (ऋ० ८।१४।९) अश्विनौ के जलाग्नि अर्थ में '**या सुरथा रथीतमोभा**' (ऋ० १।१२।२) आदि-आदि मन्त्र प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं।

उपरि प्रदत्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि वेदों का स्वतःप्रामाण्य एक महत्त्वपूर्ण सुरक्षणीय सिद्धान्त है। महर्षि दयानन्द ने इस सिद्धान्त को अपने ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं रखा कार्यक्षेत्र का मुख्य आधार भी इसी को बनाया। इस अस्त्र से उन्होंने ऐसे सभी ग्रन्थों को जो तत्कालीन समाज में वेदतुल्य प्रतिष्ठा को प्राप्त हो रहे थे या इति श्रुतिः इति श्रुतिः के द्वारा जिनकी दुहाई देकर पण्डितम्मन्य लोग अनुचित बातों को भी वेद के नाम मढ़ देते थे। परतःप्रमाण की कोटि में डालकर अज्ञान की परतों को छिन्न-भिन्न कर दिया। उन्होंने बड़े सबल शब्दों में घोषणा की कि मात्र चार संहिताएँ ही वेद हैं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि ग्रन्थ वेद नहीं, वेद के व्याख्यान ग्रन्थ हैं। वेद को प्रमाणित करने के लिए किसी अन्य ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं पर अन्य ग्रन्थों में कही गई बात को वेद द्वारा प्रमाणित करना परम आवश्यक है। वेद विरुद्ध कोई भी बात चाहे वह किसी पूजास्पद मनुष्य की ही क्यों न हो मानने योग्य नहीं।[१]

यदि ग्रन्थ शुद्धि का यह उपाय ऋषिवर न बताते तो निस्सन्देह हम सब आज भी संशयास्पद स्थिति में ही रहते। आर्ष ग्रन्थों में स्त्री शूद्रों का विधानाधिकार, पशुबलि, मांसभक्षणादि अवैदिक बातों का समावेश देखकर जन साधारण क्या विद्वानों का भी दिग्भ्रान्त हो जाना स्वाभाविक था। मनुस्मृति के प्रक्षेपों की चर्चा करते हुए उपदेश मञ्जरी में संकलित अष्टम उपदेश में ऋषिवर कहते हैं—अब मनु जी का धर्मशास्त्र कौन-सी स्थिति में है इसका विचार करना चाहिये। जैसे ग्वाले दूध में पानी डालकर उस दूध को बढ़ाते हैं और मोल लेने वाले को फंसाते हैं उसी प्रकार मानव धर्मशास्त्र की अवस्था हुई है। उसमें बहुत से दुष्ट क्षेपक श्लोक हैं, वे वस्तुतः भगवान् मनु के नहीं हैं।" कतिपय धूर्त्त लोग प्रक्षेप करके ही सन्तुष्ट न थे ऋषियों के नाम पर मनगढ़न्त रचनाएँ करने में भी लिप्त थे। ऐसी अन्धमयी तमिस्रा में प्रकाश करना प्रकाशपुञ्ज ऋषियों का ही कार्य होता है। आज हम बड़े साहस के साथ आर्ष ग्रन्थों में आई अनर्गल बातों को वेदविरुद्ध कहकर बहिर्भूत कर देते हैं। यह साहस, प्रकाश केवल उस ऋषिवर की ही देन है। विषसम्पृक्त अन्न की भाँति सब अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन त्याज्य बताते तो शायद भारतीयों के पास चार वेदों के अतिरिक्त एक भी ग्रन्थ शेष न रहता इसलिए आर्ष अनार्ष बातों के परीक्षण के लिए वेदाविरुद्धता ही एकमात्र सुन्दर कसौटी है।

यहाँ एक शङ्का की जा सकती है कि जब वेदों का स्वरूप ही स्पष्ट न हो तब किसी बात को वेद विरुद्ध या वेदाविरुद्ध कैसे सिद्ध किया जाये? समाधान में संक्षेप से मात्र इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि वेदों के यथार्थ स्वरूप का अवधारण आचार्य सायण, उव्वट-महीधर, मैक्समूलर आदि वेदभाष्यकारों के आधार पर न करके यास्क, व्यास, जैमिनि दयानन्दादि महर्षियों के आलोक में ही करना समुचित होगा अन्यथा वेदों का स्वरूप अस्पष्ट ही रहेगा। महाभारत मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में वर्णित वेदों का माहात्म्य, वेदों का नित्यत्व, वेदों का सर्वविद्यानिधानत्व भी तभी सुरक्षित रह पायेगा। **नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**

●●

१. महर्षि जैमिनि का भी यही आदेश है—**विरोधे तु अनपेक्षं स्यात् असति ह्यनुमानम्।** (मी०द० १।३।३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-दुःख जीवात्मा के नैमित्तिक और प्रकृति के स्वाभाविक गुण हैं

—वानप्रस्थ गुरुदयाल साधक दर्शनाचार्य, आर्यसमाज मन्दिर के सामने, सरदारनगर, अहमदाबाद (गुज०)

नवम्बर ९६ की मासिक पत्रिका "दयानन्दसन्देश" में श्री वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय द्वारा एक लेख लिखा गया है, जिसका शीर्षक "सुख दुःख जीवात्मा के गुण हैं प्रकृति के नहीं"। इस मान्यता में अनेक दोष प्रतीत होते हैं, जिनमें से कुछ दोषों पर प्रमाणों के आधार पर विचार किया जाता है।

१. प्रथम दोष तो यह है कि लेखक ने शीर्षक में जो प्रतिज्ञा की है वह ठीक नहीं है, क्योंकि जीवात्मा के सुख और दुःख गुण के विषय में मुख्य रूप से दो मत मिलते हैं। प्रथम मत, कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि सुख दुःख जीवात्मा के नैमित्तिक गुण हैं, और कुछ यह मानते हैं कि सुख-दुःख जीवात्मा के स्वाभाविक गुण हैं। उपर्युक्त दोनों पक्षों में जीवात्मा के गुण स्वीकार करने में कोई मतभेद नहीं है अर्थात् दोनों ही पक्ष सुख-दुःख को जीव के गुण तो मानते ही हैं परन्तु मतभेद इस विषय में है कि एक पक्ष सुख दुःख को जीव के स्वाभाविक गुण मानता है और दूसरा पक्ष इन्हें नैमित्तिक गुण बतलाता है। इन दो मतभेदों में से शीर्षक अथवा लेखक द्वारा की गई स्वपक्ष की सिद्धि में प्रतिज्ञा क्या है? यह विस्पष्ट नहीं होता। लेखक ने "सुख-दुःख जीवात्मा के गुण हैं" कहकर पाठकों को भ्रम में डाल दिया, यह प्रतिज्ञा दोष है।

२. द्वितीय दोष यह है कि श्री वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय ने अपने पक्ष की पुष्टि में बहुत से प्रमाण तो दिये, परन्तु जो विद्वान् सुख-दुःख को जीव के स्वाभाविक गुण मानने में प्रमाणों के द्वारा दोष दिखाते हैं **पहले उनका तर्क और प्रमाणों से खण्डन[1] नहीं किया। विपक्ष के प्रमाणों का खण्डन किए बिना अपने पक्ष की स्थापना करना यह न्यायदर्शन के अनुसार वाद के नियमों का परित्याग है।**

वाद का लक्षण महर्षि गौतम जी न्यायदर्शन में इस प्रकार करते हैं:—

प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः। (न्याय १।२।१)

इस वाद के लक्षण सूत्र में एक यह बात कही गई है कि अपने विषय की सिद्धि में पूर्व पक्ष द्वारा दिये प्रमाणों का प्रमाण और तर्क से खण्डन करे तत्पश्चात् प्रमाण और तर्क के माध्यम से अपने पक्ष की स्थापना करे। न्याय के इस सिद्धान्त को विस्मृत[2] कर श्री वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय ने अपने लेख में मुख्य सिद्धान्त की अवहेलना कर अनावश्यक विषय पर अधिक बल दिया है।

३. तीसरा दोष अर्थान्तर निग्रह स्थान का है। लेखक अपने लेख के शीर्षक में तो प्रतिज्ञा करते हैं कि "सुख दुःख जीवात्मा के गुण हैं प्रकृति के नहीं।" उन्हें करना तो चाहिए यह था कि प्रमाण और तर्क से जीवात्मा के गुण सुख-दुःख को स्वाभाविक सिद्ध करते और प्रकृति के सुख दुःख गुण स्वाभाविक होने का खण्डन करते। परन्तु उन्होंने अपनी पूर्ण शक्ति को जीवात्मा के अस्तित्व नित्यत्व और उसके इच्छा द्वेष प्रयत्न व ज्ञान गुण की सिद्धि में लगाया। जिन्हें विपक्ष भी स्वीकार करता है। यथार्थ विषय की सिद्धि में अर्थात् सुख दुःख **जीवात्मा के स्वाभाविक गुण हैं** और **प्रकृति के नैमित्तिक एतद् विषयक कोई** भी प्रमाण और तर्क प्रस्तुत नहीं किये अतः लेख न्यायदर्शन के अनुसार अर्थान्तर नामक निग्रह स्थान के दोष से युक्त हो जाता है।

४. चौथा दोष लेखक का अपने ही कथन में विरोधाभास सिद्ध होता है।

एक स्थल पर आप लिखते हैं— "यथा प्रतिकूल पदार्थ सम्बन्ध जन्य क्लेश पर्याय दुःख रूप है।" इस अनुच्छेद में दुःख को पदार्थ जन्य बतलाया है, पदार्थ जन्य गुण आत्मा का नैमित्तिक माना जा सकता है स्वाभाविक नहीं। फिर सुख दुःख गुण स्वाभाविक किस द्रव्य के हैं? अर्थापत्ति से पदार्थ

---

१. प्रथम अपने लेख पर ध्यान देना था क्या आपने श्रोत्रिय जी के प्रमाणों का खण्डन किया है। क्या आप न्याय के विरुद्ध नहीं चल रहे हैं? *(सम्पादक)*

२. क्या लेखक ने इस सूत्र पर आचरण किया है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रकृति) के ही स्वाभाविक गुण सिद्ध होते हैं।

एक अन्य स्थल पर लेखक महोदय लिखते हैं—"जैसा मधुरादि पदार्थ का इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से आत्मा ने सुख पाया, तज्जातीय मधुरादि पदार्थ को देखता हुआ उसको ग्रहण करने की इच्छा करता है। यह उपादान इच्छा पूर्व पर मधुरादि पदार्थ द्रष्टा एक के उस पदार्थ जन्य पूर्व सुख ज्ञान के स्मरण से संभव हुआ।" इस कथन से सुख दुःख गुण पदार्थ के ही सिद्ध होते हैं आत्मा के नहीं।

आगे फिर आप लिखते है—"जैसे पूर्वजन्म स्तन्यपान से आत्मा ने सुख पाया।" यहाँ भी आत्मा को सुख अन्य भौतिक पदार्थ से मिलता है यह स्पष्ट सिद्ध होता है।

फिर आगे भी इसी प्रकार लेखक ने जीवात्मा के इच्छा द्वेष प्रयत्न आदि गुणों की सिद्धि करते हुए सुख दुःख को पदार्थ जन्य ही बताया है। आप लिखते हैं—"जिस शत्रु आदि के द्वारा इन्द्रियार्थसन्निकर्ष से जो दुःख प्राप्त हुआ है।" यह बात लेखक ने द्वेष की सिद्धि में लिखी है।

आगे फिर प्रयत्न गुण की सिद्धि में लिखते हैं—"जो पदार्थ सुख हेतु प्रसिद्ध है उसी जातीय पदार्थ को देख यह आत्मा ग्रहण करने का प्रयत्न करता है सो यह प्रयत्न पूर्व सुख अनुभव करने वाले के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता।" यहाँ भी सुख दुःख गुण पदार्थ के ही सिद्ध होते हैं और अनुभव करने वाला जीवात्मा है।

अब प्रमाण और तर्क से यह सिद्ध किया जाता है कि सुख दुःख गुण जीव के स्वाभाविक[1] नहीं, नैमित्तिक हैं।

महर्षि कपिल जी सांख्य दर्शन में लिखते हैं—

"स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्"।

(सांख्य १।८)

अर्थात् किसी भी पदार्थ का स्वभाव कभी भी नहीं छूट सकता, यदि छूट जाये तो वह स्वभाव नहीं बल्कि किसी निमित्त=(कारण) से प्राप्त गुण है।

आर्योद्देश्यरत्नमाला में महर्षि दयानन्द[2] सरस्वती जी ने स्वभाव की परिभाषा की है—"जिस वस्तु का जो स्वाभाविक गुण है, जैसे—अग्नि में रूप, दाह अर्थात् जब तक वह वस्तु रहे तब तक उसका वह गुण भी नहीं छूटता इसलिए इसको 'स्वभाव' कहते हैं।" (अङ्क ७८)

सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में ऋषि लिखते हैं—"जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसे अग्नि उष्ण, जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुण वाले ईश्वर भी नहीं कर सकता।"

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि सुख दुःख जीवात्मा के स्वाभाविक गुण नहीं किन्तु नैमित्तिक हैं। सुख दुःख जीव के नैमित्तिक गुण होने से ही तो ऋषि लिखते हैं—"**अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।**" (सां० १।१)

इस सूत्र में महर्षि कपिल जी ने जीवात्मा का सर्वोच्च लक्ष्य त्रिविध दुःखों से पूरी तरह से छूटकर मोक्ष प्राप्त करना बताया है।

महर्षि गौतम जी ने पहले दुःख का लक्षण कर पश्चात् बताया '**तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।**' (न्याय १।१।२२) अर्थात् दुःख से पूर्णतया छूट जाना ही मोक्ष है। म० दयानन्द सरस्वती जी तदत्यन्त-पद का अर्थ करते हैं— फिर उस दुःख के अत्यन्त अभाव और परमात्मा के नित्य योग करने से जो सब दिन के लिए (अर्थात् जब तक मोक्ष में रहता है) परमानन्द प्राप्त होता है उसी सुख का नाम मोक्ष है।

यदि दुःख स्वाभाविक हो तो ऋषि और वेद इनसे छूटने का उपदेश ही क्यों करते।

सांख्यकार ने स्पष्ट ही कह दिया—

"न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः।"

(सा० १।७)

अर्थात् यदि जीवात्मा स्वभाव से ही दुःख मृत्यु आदि से बन्धा होता तो वेदादि शास्त्रों में जीवात्मा के लिए मोक्ष का उपदेश ही नहीं होना चाहिए था। परन्तु मोक्ष का उपदेश है **इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवात्मा स्वभाव से दुःखी नहीं है।**

जब दुःख स्वाभाविक नहीं है किसी कारण (निमित्त) से होता है तो कारण को हटा देने से कार्य (दुःख) हट जायेगा।

ऐसा ऋषि मानते हैं इस विषय में वैशेषिककार का भी

---

१. लेखक को ऐसा प्रतीत होता कि वे अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये हैं। अथवा विपक्ष मत को ही स्वीकार कर प्रतिज्ञा हानि ग्रस्त हो गये हैं। (सम्पादक)

२. जिस महर्षि के लेख को न मानकर आप लिख रहे हैं उसी को प्रमाण न मानना क्या निग्रह स्थान में आना नहीं है? (सं०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही मत है—"**कारणाभावात् कार्याभावः।**" (वै० १।२।१)

दुःख का कारण अविद्या अधर्म आदि है उनके हट जाने पर दुःख हट सकता है।

महर्षि गौतम जी लिखते हैं—"*दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तराऽपाये तदनन्तरापायादपवर्गः।*" (*न्याय० १।१।२*)

अर्थात्—दुःख को कारण जन्य बताया है। दुःख का कारण जन्म, जन्म का कारण प्रवृत्ति, प्रवृत्ति का कारण दोष और दोष का कारण मिथ्याज्ञान है, इनके हट जाने पर जीवात्मा दुःख से छूट जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि दुःख जीवात्मा को निमित्त से प्राप्त होता है अपना स्वाभाविक गुण नहीं।

सुख दुःख को जीव के नैमित्तिक गुण सिद्ध कर अब सुख दुःख गुण प्रकृति के स्वाभाविक हैं। इसे प्रमाण और तर्क से सिद्ध किया जाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं—इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा नहीं फंसता और न ही भोग करता। (स०प्र० अष्टम समुल्लास) जीव जो प्रकृति का भोग करता है तो वह प्रकृति का क्या भोगता है? यही उत्तर होगा सुख[1]-दुःख। यदि सुख-दुःख जीव के अपने ही गुण होते तो प्रकृति को भोगने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सांख्यकार महर्षि कपिल जी कहते हैं—

"*तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः।*" (*सां० ६।८*)

अर्थात् सांसारिक पदार्थों में जो सुख है वह दुःख से मिश्रित है। तत्त्ववेत्ता उसे भी दुःख पक्ष में मानकर छोड़ देते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि प्राकृतिक पदार्थों में सुख है और वह दुःख मिश्रित है।

यह दुःख मिश्रित सुख जिसे तत्त्ववेत्ता छोड़ देते हैं प्रकृति वा प्राकृतिक पदार्थों के ही हैं यदि सुख दुःख जीव के स्वाभाविक गुण होते तो विद्वान् इन्हें छोड़ ही नहीं सकते थे। क्योंकि अपने स्वभाव को छोड़ा ही नहीं जा सकता[2]।

महर्षि दयानन्द जी के शब्दों में प्रस्तुत है—"पांचवां आनन्दमय कोश, जिसमें प्रीति[3] प्रसन्नता न्यून आनन्द अधिक आनन्द और आधार कारण रूप प्रकृति है।" (स०प्र० ९ स०) यहाँ महर्षि ने आनन्द (सुख) प्रकृति को बतलाया है। जिससे स्पष्ट है कि महर्षि सुख (आनन्द) गुण को प्रकृति का मानते हैं जीव का नहीं। आगे इसी प्रसङ्ग में महर्षि लिखते हैं—"इन सब कोश अवस्थाओं से जीव पृथक् है।" यदि आनन्द अथवा आनन्दमय कोश जीव में ही होता तो महर्षि ऐसा क्यों लिखते कि जीव इन सब कोशों से पृथक् है।

इससे अतिरिक्त वेद में भी कहा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

(ऋ० १।१६४।२०)

इस मन्त्र में कहा गया है ईश्वर और जीव रूपी दो पक्षी संसार (प्रकृति) रूपी वृक्ष पर बैठे हैं। इन दोनों में से एक-जीव उस वृक्ष (प्रकृति) के फलों को खाता है, अर्थात् अपने कर्मों का फल सुख दुःख भोगता है। दूसरा (ईश्वर) नहीं खाता उसे साक्षी भाव से देखता है। यहाँ भी नितान्त स्पष्ट कहा है कि जीव वृक्ष (प्रकृति) के फलों को भोगता है। इससे सिद्ध हुआ कि सुख दुःख जो जीव को प्राप्त होते हैं वे वृक्ष (प्रकृति) के हैं जीव के अपने नहीं।

फिर छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि ने कहा—

"**न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः।**" (छान्दो० ८।१२।१)

इस उपनिषद् वचन में स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि शरीरधारी जीव के सुख दुःख भोग का पूर्णतया विनाश नहीं होता, और शरीर रहित मोक्षावस्था में उसे सांसारिक

---

१. यह बात सुख दुःख के शब्दार्थ से विरुद्ध है—जो ख=इन्द्रियों को अच्छा लगे वह सुख होता है और जो इन्द्रियों के प्रतिकूल हो वह दुःख होता है। (सं०)

२. यह सत्य है कि स्वाभाविक गुण नहीं छूटता। परन्तु भूख के बिना स्वादिष्ठ वस्तु से सुख क्यों नहीं मिलता? (सं०)

३. यह सत्य है कि स्वाभाविक गुण नहीं छूटता। परन्तु भूख के बिना स्वादिष्ठ वस्तु से सुख क्यों नहीं मिलता? (सं०)

(क) प्रीति=प्रसन्नता तथा आनन्द जड़ प्रकृति का गुण कदापि नहीं हो सकता। क्या किसी ने जड़ प्रकृति को खुश अथवा आनन्दित होता देखा है?

(ख) "जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं।" जिसके होने से जो हो और न होने से न हो, वे गुण उसी के होते हैं। (सत्यार्थप्रकाश ७ समु०) इस अन्वय व्यतिरेक न्याय पर क्या कभी विचार किया है? (सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख दुःख नहीं छूते। इससे भी यही सिद्ध होता है कि बद्ध अवस्था में भोगे जाने वाले **सुख दुःख प्रकृति के थे जीव के नहीं। यदि जीव के होते तो मोक्ष में भी रहते।** इसी उपनिषद् वाक्य का अर्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने भी ऐसा ही किया है। "जो शरीर रहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख दुःख का स्पर्श भी नहीं होता।" (स०प्र० ९ सं०)।

मोक्ष में दुःख का अत्यन्त अभाव रहता है। इस सिद्धान्त की पुष्टि में पं० विशुद्धानन्द जी ने दयानन्दसन्देश पत्रिका के मई ९६ के अंक में अनेक प्रमाण दिये हैं, वे अपने निष्कर्ष वाक्य में लिखते हैं—"निष्कर्ष यह है कि मुक्ति में आनन्द ही आनन्द होता है और दुःख का अत्यन्ताभाव रहता है।"

सांसारिक (प्रकृति के) सुख दुःख के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—"जो सृष्टि के सुख दुःख की तुलना की जाए तो सुख कई गुना अधिक होता है और बहुत से पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं।" यहाँ ऋषि ने स्पष्ट लिखा है कि सुख दुःख सृष्टि से मिलते हैं।

आर्योद्देश्यरत्नमाला के क्रम संख्या चौदह और पन्द्रह अंक पर स्वर्ग नरक की परिभाषा करते हुए महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—**स्वर्ग**-जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है वह 'स्वर्ग' कहाता है।

नरक-जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है उसको 'नरक' कहते हैं। परिभाषा से स्पष्ट सिद्ध है सुख और सुख के साधन और दुःख के साधन प्रकृति से प्राप्त होते हैं और ***स्वर्ग व नरक जीव के कर्मों*** का फल है।

इस लेख में श्री वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय के द्वारा "सुख दुःख जीवात्मा के गुण हैं प्रकृति के नहीं" नामक लेख में की गई सैद्धान्तिक त्रुटियों का वर्णन कर सुख दुःख गुण जीवात्मा के स्वाभाविक नहीं नैमित्तिक हैं और सुख दुःख प्रकृति के स्वाभाविक गुण हैं, प्रमाण और तर्क से सिद्ध किया है। इस विषय में अन्य भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं परन्तु विस्तार न हो अतः यहीं विराम दिया जाता है।

॥ इत्योम्॥

सत्यार्थप्रकाश क्यों पढ़ें ?

—आशानन्द भजनोपदेशक

सत्यार्थप्रकाश को पढ़ने से यह बुद्धि निर्मल होती है।
अज्ञान नष्ट हो जाता है सद् ज्ञान की जलती ज्योति है॥

कल का भूखा शंकर मन्दिर में कहे सृष्टिकर्ता यह शंकर है।
शिवरात्रि को जब लीला देखी तो कहने लगे यह तो कंकर है।
इस अंधविश्वास के कारण ही सोमनाथ की धरती रोती है॥ १॥

भूले समुल्लास में 'मूल' नहीं सृष्टि का मूल दर्शाया है।
चौथे सातवें पर रहता नहीं, ना गंग-जमन में पाया है।
पत्ता-पत्ता दे पता रहा, दुनिया जंगलों में जोहती है॥ २॥

दुनिया के सारे ग्रन्थों को योगी ने खूब निचोड़ा है।
झूठे मत मतान्तरों का भांडा चौराहे पर फोड़ा है।
तर्कों के तीरों से तीर हुए तरकंस में वेद कसौटी है॥ ३॥

ऋषि से बातें करनी हो तो रोजाना सत्यार्थप्रकाश पढ़ो।
जो जो मन में संशय उठे, इस ग्रन्थ में फौरन उत्तर ढूंढो।
इसका पन्ना-पन्ना 'पन्ना' है अक्षर-अक्षर 'मोती' है॥ ४॥

यह चौदह गोली का पिस्टल, जिसकी पाकेट में आयेगा।
भय भूत सभी भग जायेंगे जादूगर वह बन जायेगा।
चन्द्रशेखर भगतसिंह की भांति सिर फांसी दुल्हन होती है॥ ५॥

श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने भी अपना सर्वस्व लुटाया है।
लेखराम मुसाफिर ने अपना बच्चा भी भेंट चढ़ाया है।
आज की हालत देखता हूँ तो गर्दन नीची होती है॥ ६॥

सत्यार्थ के इस लेखक ने जो लिख करके दिखाया है।
शिवरात्रि को वह आया था दीवाली ने उसे बुलाया है।
प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो ओम् का नाद बजाया है।
आशानन्द भारत माता आज अंसुवन के हार पिरोती है॥ ७॥

आर्यसमाज, रोहतास नगर,
शाहदरा, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतीदाह अशास्त्रीय और अवैदिक है

—आचार्य विष्णुमित्र आर्य आर्यनगर, नजीबाबाद (बिजनौर)

जिस प्रकार अर्थ और शरीर, काम और मन तथा मोक्ष और आत्मा का परस्पर सम्बन्ध है उसी प्रकार धर्म और बुद्धि परस्पर सम्बद्ध हैं। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की अनेक मान्यताओं का बुद्धि से लेशमात्र सम्बन्ध नहीं होता किन्तु धर्म का बुद्धि के साथ सर्वदा अभिन्न सम्बन्ध रहता है। हम जिसे धर्म कह सकते हैं वह केवल वैदिक धर्म है। वैदिक धर्म बुद्धिपूर्वक है। भगवान् कणाद मुनि कहते हैं **'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'** अर्थात् वेद में वाक्यरचना बुद्धिपूर्वक है। वेदविरुद्ध प्रत्येक मान्यता बुद्धिविरुद्ध होती है। उसे धर्म मानना भयङ्कर भूल है। ऐसी भूलें करने पर मानवता आर्तनाद करने लगती है। ऐसी ही एक भूल सतीप्रथा की भी है, जिससे मतवादी भले ही सन्तुष्ट व प्रसन्न हों पर मानवता कराहती है। सतीदाह धर्म नहीं अधर्म है। धर्म से लाभ होता है और सतीदाह से केवल हानि होती है। सतीदाह की पृष्ठभूमि में एक बड़ा अन्धविश्वास है कि मृतपति के साथ आत्मदाह करने वाली नारी स्वर्ग में उसी पति को प्राप्त करके सुखों का उपभोग करती है। पर **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'** के अनुसार जो मनुष्य जैसा कर्म करता है ठीक वैसा ही फल पाता है। पति व पत्नी का सम्बन्ध लौकिक है नैसर्गिक नहीं। आत्मा न किसी का पति होता है और न पत्नी। जन्म धारण करने के पश्चात् सम्बन्ध बनते हैं और मृत्यु के उपरान्त शरीर छूट जाने से आत्माएँ स्व-स्वकर्मानुसार यथोचित योनियों, देशदेशान्तरों व लोकलोकान्तरों में जन्म ग्रहण करती हैं। व्यावहारिक दृष्टि से भी एक परिवार के जितने सदस्य हैं वे सब वाहन के यात्रियों की भाँति हैं जिसकी यात्रा जहाँ पूरी होती है वह वहाँ उतर जाता है। परम दयालु परमात्मा ने यह अमूल्य शरीर मोक्षानन्द की सिद्धि के लिए दिया है, इसे मोक्ष के लिए तत्पर न करके व्यर्थ ही अग्नि में अर्पित कर देना बुद्धिमानों का कर्म नहीं है। **'उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितं याचत इति बाधित न्यायः।'** के अनुसार प्राप्त दैवी नाव इस शरीर को छोड़कर अप्राप्त मनुष्य-शरीर की कामना करना अनुचित है। यदि किन्हीं मनुष्यों ने मृतपति के साथ पत्नी के दाह का विधान किया है तो उन्होंने मृतपत्नी के साथ जीवित पति के दाह का विधान क्यों नहीं किया? वस्तुतः किसी का भी आत्मदाह अशास्त्रीय है। सत्याचरण ही मरणोपरान्त सहायक होता है। महर्षि मनु जी सावधान करते हैं—

नामुत्र सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

मरणोपरान्त पिता, माता, पुत्र, पत्नी व सम्बन्धी आदि कोई सहायक नहीं होता अपितु एक धर्म ही सहायक है।

किसी कर्म के औचित्यानौचित्य को जानने के लिए महर्षि मनु जी ने परामर्श दिया है—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

वेद, वेदानुकूल आप्तग्रन्थ, आप्तों का आचार और आत्मानुकूल व्यवहार किसी कर्म के औचित्य को परखने की साक्षात् कसौटियाँ हैं। इन कसौटियों पर रखकर देखें कि सतीदाह कैसा कर्म है। मध्यकाल में विधर्मी शत्रुओं के क्रूर हाथों में पड़ जाने तथा उनकी दुष्टदृष्टि से क्षत्राणियों के द्वारा जब जीवन जीने के धर्म का पालन किया जाना सम्भव ही न हो सका, तब अपने सतीत्व की रक्षा के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ होकर आत्मदाह किये गये। इतिहास में क्षत्राणियों के ये जौहर सतीदाह नहीं हैं अपितु किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर किये गये आपद्धर्म हैं। अलाउद्दीन की दुष्टदृष्टि से रक्षा के लिए चित्तौड़ की रानी पद्मिनी ने सहस्रों महिलाओं के साथ ऐसा ही जौहर किया था। जब किसी भी प्रकार से धर्म का पालन नहीं हो पाता तब अधर्म से बचने के लिये आपद्धर्म का आश्रय लेते हैं। किन्तु, तत्पश्चात् आपत्काल समाप्त होने पर इन जौहरों को सतीदाह के रूप में स्वीकार कर लेना अनुचित है। अपने समय में सतीदाह की क्रूरता से खिन्न होकर राजा राममोहनराय सदृश सुधारकों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधारवादी सफल आन्दोलन किये थे। विगत समय दिवराला (राजस्थान) में रूपकुंवर को चिता में जला दिया गया था। तब भी सम्पूर्ण देश में तीव्र विरोध हुआ था। धर्मध्वजी पाखण्डियों के षड्यन्त्र तथा अन्धविश्वास के अतिरिक्त यह कुरीति दृष्टिगोचर नहीं होती है। रामायणकाल में पता चलता है कि मेघनाद की पत्नी सुलोचना अपने पति का सिर लेने राम के पास पहुँची जिससे वह सती हो जाये किन्तु ऐसा लगता है कि मध्ययुग में इस प्रथा के चल जाने पर इसके पक्षपातियों ने अपने समर्थन में रामायण जैसे महत्त्वपूर्ण आर्य-इतिहास में प्रक्षेप किया है; अन्यथा मन्दोदरी, तारा और राजा दशरथ की पत्नियों—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी के सतीदाह का कोई वर्णन नहीं है। महाभारत में भी कोई महिला सती नहीं हुई थी। वस्तुतः सतीदाह चोरी आदि कुकर्मों की भाँति त्याज्य कर्म है धर्म नहीं। संसार के ऐतिहासिक गवाक्ष से एक भी उदाहरण नहीं दीखता कि किसी आप्त महिला ने स्वस्थ मन से धार्मिक कर्म के रूप में कभी कोई आत्मदाह किया हो, पुनः आप्ताचार के बिना सतीदाह का औचित्य कैसे सिद्ध हो सकता है।

ऋषि मुनियों के नाम पर रचित व्यास स्मृति, विष्णु धर्मसूत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति और पराशर इत्यादि कुछ अनार्ष पुस्तकों में सतीदाह का समर्थन या विधान पाया जाता है किन्तु **वेद तथा ऋषिप्रोक्त ग्रन्थों के मन्तव्यों के विपरीत एतादृश पुस्तकें तीव्र ज्वर के वेग में किये गये असम्बद्ध प्रलाप की भाँति प्रमाण की कोटि में नहीं होती हैं। ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त किसी ऋषिप्रोक्त ग्रन्थ में सती प्रथा का लेशमात्र भी समर्थन या विधान नहीं है।** ऋषिरचित ग्रन्थों में सतीदाह का वर्णन न होने से आप्तग्रन्थों की कसौटी पर भी सतीदाह अधर्म ही सिद्ध होता है।

वेदों में भी सतीदाह का कहीं कोई विधान नहीं है। पुरी के शङ्कराचार्य श्री निरञ्जनदेव तीर्थ ने अपनी मिथ्या मान्यता को सिद्ध करने के लिए एक समय जिस मन्त्र को उद्धृत किया था उस मन्त्र में सतीदाह और विधवा नारी की कहीं कोई चर्चा ही नहीं है। मन्त्र निम्नलिखित है—

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे।
(ऋग्वेद १०।१८।७)

इस मन्त्र का पदार्थ निम्न प्रकार से है—(इमाः) ये (अविधवाः) सधवा=पतियुक्त (नारीः) नारियां (सुपत्नीः) उत्तम पतिव्रता बनकर (आञ्जनेन सर्पिषा) घृतादि उत्तम सुगन्धित पदार्थों से शोभित होकर (संविशन्तु) [अपने स्थलों में] प्रवेश करें। और (अनश्रवः) अश्रुरहित (अनमीवाः) रोगरहित (सुरत्नाः) उत्तम रत्नों से अलङ्कृत (जनयः) माताएँ (अग्रे) [आदर सहित] अग्रणी होकर (योनिम्) घर, सभास्थल आदि में (आ रोहन्तु) प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश करें।

यह मन्त्र थोड़े से पाठभेद से अथर्ववेद में भी प्राप्त है। वहाँ पर 'विशन्तु' के स्थान पर 'स्पृशन्ताम्' का पाठ है। इस मन्त्र में न सतीदाह की चर्चा है और न विधवा नारी का वर्णन। मन्त्र में ध्यातव्य पद है—नारीरविधवाः (नारीः अविधवाः इति नारीरविधवाः)। इतना स्पष्ट मन्त्र होते हुए साश्चर्य कहना पड़ता है कि जहाँ विधवा नारी और सतीदाह की कोई चर्चा ही नहीं है वहाँ विधवा नारी के लिए अग्नि में जल जाने का अर्थ कैसे कर दिया? वस्तुतः गृहस्थ धर्म का पालन कर रही पतियुक्त नारियाँ गृहादि स्थलों में सुन्दर व्यवहार किया करें यह मन्त्र का वर्ण्यविषय है।

विगत दिनों २ जनवरी ९७ को अमर ज्वाला मेरठ संस्करण में सतीदाह को वेदानुकूल मानते हुए निम्नलिखित मन्त्र उद्धृत किया गया है—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥
(अथर्व० १८।३।१)

इस मन्त्र में भी सतीदाह का नहीं नियोग का विषय है। मन्त्रार्थ देखें—(मर्त्य) हे मनुष्य! (इयम्) यह (नारी) स्त्री (पतिलोकम्) पतिलोक=गृहाश्रम के सुख को (वृणाना) चाहती हुई (पुराणम्) पुरानी (नित्य) (धर्मम्) धर्म को (अनुपालयन्ती) निरन्तर आचरण करती हुई (प्रेतम्) मरे हुए (पति) की [गुणगरिमा से कृतज्ञ होकर] (उप) स्तुति करती हुई (त्वा) तुझ (जीवित) पति को (निपद्यते) प्राप्त होती है (तस्यै) उस नारी के लिए (प्रजाम्) सन्तान (च) और (द्रविणम्) धन (इह) यहाँ (इस वर्तमान लोक में)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(धेहि) धारण कर।

इस मन्त्र का 'इह' पद ध्यातव्य है—नियोगविधि में नियुक्त पुरुष को वेद का परामर्श है कि हे नियुक्त पुरुष! तू नियुक्त नारी के लिए (इह) इस वर्त्तमान जीवन में सन्तान और धन को धारण कर। वेद ने मृत्यु के पश्चात् भावी जन्म में प्रजासुख दिलाने की बात नहीं कही है अपितु वेद कहता है इह=वर्त्तमान जीवन में कर। जीवित नियुक्त पति ही वर्त्तमान जीवन में प्रजा, धन आदि का भौतिक सुख प्रदान कर सकता है मृतपति नहीं। नियोग के इसी विषय को क्रमपूर्वक अगले मन्त्र में जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है उससे यह विषय और भी स्पष्ट हो जाता है—

उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूव॥

अथर्व० १८।३।२

यह मन्त्र ऋग्वेद में भी उपलब्ध है। स्वामी दयानन्द जी महाराज सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास में इसे ऋग्वेद से उद्धृत कर मन्त्रार्थ करते हैं—(नारि) विधवे तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से (अभिजीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्तपति के सम्बन्ध के लिए नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक (उसी नियुक्त) (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिए नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। ऐसे निश्चययुक्त (अभि सं-बभूव) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करें।

यहाँ पर मन्त्र का प्रत्येक पद पूर्वमन्त्र से सङ्गति करते हुए नियोग का विधान कर रहा है। इसलिए पूर्वमन्त्र का नियोगपरक अर्थ स्वकल्पित नहीं है अपितु प्रकरणानुकूल व पूर्वापर से सम्बद्ध है।

ईश्वरीय ज्ञान वेद सम्पूर्ण धर्म का मूल है। वेद की महत्ता किसी इयत्ता में नहीं बांधी जा सकती है। वेद का प्रमाण परम प्रमाण है और सतीप्रथा वेदों के प्रतिकूल है। 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' के अनुसार भी कोई विचार कर देख ले, तब सतीप्रथा की असारता का ज्ञान अवश्य हो जायेगा। अस्तु, हमें ऐसी घृणित मान्यता व प्रथाओं को समूल नष्ट करने में सर्वदा तत्पर रहना चाहिये तभी धर्म की मर्यादा स्थिर रहकर समाज सुखी रह सकेगा। ●●

(पृष्ठ ८ का शेष)

साथ अग्नि को समर्पित सामान्य हविष्य भी असामान्य शक्ति वाला हो जाता है। यज्ञ में प्रयुक्त सभी वस्तुएँ, पात्र और जल मन्त्रों के द्वारा पवित्र किये जाते हैं। कीटाणु रहित समिधाओं को धोकर स्वच्छ कर लिया जाता है तथा उन्हें सुखाकर ही उपयोग में लाया जाता है। वेदी-पूजन तथा यज्ञशाला पूजन कर्मों का सम्पादन किया जाता है। मन्त्रों के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि एवम् अग्नि देवता के पूजन से उत्पन्न ऊष्मा दो ऊर्जाएँ संयुक्त रूप से भौतिक, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक लाभ देती हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ० हावर्ड स्टिगुल ने अपने परीक्षण के दौरान यह पाया कि गायत्री मन्त्र के सस्वर उच्चारण से एक सेकेण्ड में 110000 तरंगें उत्पन्न होती हैं जो दुर्भावनाओं को काफी हद तक शान्त कर देती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि यज्ञ पर्यावरण के हरित प्रभाव को कम कर देता है। सामयिक पर्यावरणीय विकृतियों में कमी लाने तथा विश्व के सभी प्राणियों को स्वस्थ एवं सुखी बनाने में यज्ञ परम सहायक है। इसीलिए 'यजुर्वेद' में कहा गया है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।

(यजु० ३१।१६)

अर्थात् श्रेष्ठ धर्मपरायण देवताओं ने प्रथम बार यज्ञ से यज्ञ रूपी विराट् सत्ता का यजन किया। इससे यज्ञीय जीवन जीने वाले महात्मा पूर्वकाल के साध्य देवताओं के निवास, स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष ''दयानन्दसन्देश'' पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुंचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनायें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

९१७ श्री दीपक जी S/o श्री विजयपालसिंह सीमेंट वाले मण्डी समिति दु०नं० १,२,३ चिलकाना रोड सहारनपुर-यू०पी०

९१८ श्री अर्पित अग्रवाल S/o श्री अनन्त अग्रवाल M.S. नेत्र रोग विशेषज्ञ चर्च रोड सहारनपुर-यू०पी०

९१९ श्री युक्तेश्वरानन्द सरस्वती मानव सेवा केन्द्र आश्रम गंगवा हिसार (हर०)

९२० HAV/CLK S.P. Sharma S/o Sh. Sadhu Ram Sharma Vill+Post. Rasulpur Distt. Mahendargarh (Haryana) 123027

९२१ श्रीमती राजमोहन जी बी 2/98 जनकपुरी नई दिल्ली-110 058

९२२ श्री मन्त्री जी, आर्यसमाज मन्दिर बी ब्लाक जनकपुरी नई दिल्ली-58

९२३ श्री सत्यवान आर्य (समाज-सेवक) मु०पो० जेवली, वाया चरखी दादरी, भिवानी (हर०)

९२४ श्री हर्षवर्धन आर्य S/o श्री महेन्द्र आर्य मु०पो० इमलौटा जि० भिवानी (हर०)

९२५ Sh. Vinod Kumar Rana (S.L.A) Centre for Energy Studies Indian Institue of Technology Hauz Khas, New Delhi-16

९२६ प्रा० दयाल आर्य प्रणव टंकारा जि० राजकोट 363650 गुजरात

९२७ श्री तीव्रचन्द शर्मा A-563 संचार विहार मनकापुर गोण्डा (यू०पी०) 271308

९२८ श्रीमती मधु आर्या W/o राजेन्द्रकुमार (Advocate) गोवर्धन दरवाजा भरतपुर (राज०)

९२९ कुमारी संगीता सुभाष आर्या, आर्ष कन्या गुरुकुल दाधिया मु०पो० दाधिया, जि० अलवर (राज०)

९३० श्री कामताप्रसाद शर्मा आर्य, आर्य-निवास भलुहिपुर, आरा, भोजपुर (बिहार) 802301

९३१ श्री पवनकुमार आर्य आटा चक्की मिल इचाक बाजार मु०पो० इचाक जनपद हजारी बाग (बिहार) 825402

९३२ श्री मन्त्री जी, आर्यसमाज मन्दिर, आर्यसमाज गली, गाँधीनगर, दिल्ली-31

९३३ श्री कुँवरपालसिंह जी मन्त्री आर्यसमाज खेड़ा अफगान जि० सहारनपुर-यू०पी०

९३४ श्री मन्त्री जी, आर्यसमाज परमानन्द बस्ती (रथखाना) बीकानेर (राज०) 334001

धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/97
आर/आर/नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/4/97

अप्रैल १९९७

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/१९९७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/97

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।**

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आकर्षक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्यः लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान : **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाषः- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में.................................
ग्राम.................................
डा०.................................
जिला.................................

मुद्रकः ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मई, १९९७

वर्ष २५	:	अंक ७
दयानन्दाब्द	:	१७३
विक्रम संवत्	:	वैशाख, २०५४
सृष्टि-संवत्	:	१,९६,०८,५३,०९८

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARIDWAR

संस्थापक : **स्व॰ दीपचन्द आर्य**
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- पावन पीयूष वेदज्ञान की जय हो — २
- वेदोपदेश — ३
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ — ४
- शंका-समाधान — ५
- सुख-दुःख जीवात्मा के ही गुण हैं — ६
- मिलकर चलने का मार्ग ही सुखद है — १०
- पुनः नया निर्माण करो — १५
- 'वेदवाणी' के परिशीलन विशेषाङ्क के विचारणीय विषय — १६
- नवलखा महल में 'सत्यार्थप्रकाश' सम्मेलन — १९
- गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में वैदिक विषयों के साथ आधुनिक विषयों का समावेश — २३
- हमारा प्यारा आर्यसमाज — २४
- सद्गृहस्थ की महान् साधना — २५
- सहायक प्रभु का वरदान — २६
- यद् भद्रं तन्न आसुव — २६

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द बीस सौ रुपये, कपड़ा जिल्द इक्कीस सौ रुपये और सजिल्द बाइस सौ रुपये सैंकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पावन पीयूष वेदज्ञान की जय हो।

—श्री बाबूरामसिंह "कवि"

सत्कर्म, सत्संग, सद्गुण, भक्ति-भक्त, भगवान् की जय हो॥
भक्ति, प्रपति, शरणागति दाता पावन पीयूष वेदज्ञान की जय हो॥ टेक॥

सर्वोत्तम शुभ वैदिक धर्म महान के लिए।
मातृभाषा हिन्दी की सतत उत्थान के लिए।
गोरक्षा, सत्य, स्वतन्त्रता अभियान के लिए।
ऋषि दयानन्द जी जिये-मरे वेदज्ञान के लिए।
विष पी सुधा दिया जब-मन को ऋषिवर जीवनदान की जय हो॥
भक्ति, प्रपति, शरणागति दाता पावन पीयूष वेदज्ञान की जय हो॥ १॥

स्वतन्त्रता के लिए जिन्होंने दी अपनी कुर्बानी।
गोरों की संगीन के आगे सीना अपनी तानी।
निज लहू से लिखी जिन्होंने अपनी अमर कहानी।
सत्य-धर्म पर शहीद हुए पर मिथ्या एक न मानी।
लेखराम, गुरुदत्त, श्रद्धानन्द भारती सपूत सन्तान की जय हो॥
भक्ति, प्रपति, शरणागति दाता पावन पीयूष वेदज्ञान की जय हो॥ २॥

मानवता बिन महक मधु मुस्कान न रहने पायेगा।
वेद ज्ञान बिन आर्यावर्त का मान न रहने पायेगा।
वैदिक धर्म विन सत्य-धर्म का भान न रहने पायेगा।
आर्य, आर्यावर्त, आर्य संस्कृति, वैदिक धर्म महान् की जय हो॥
भक्ति, प्रपति, शरणागति दाता पावन पीयूष वेदज्ञान की जय हो॥ ३॥

चुप क्यों बैठे कर्म प्रधान कुछ करके सही दिखाओ।
वेदज्ञान की अचूक ज्योति सदा जन-जन में फैलाओ।
बैठे हो जिस डाली पर मत उसे ही काट गिराओ।
वैदिक धर्म जाग अन्दर से यथाशीघ्र अपनाओ।
सत्य पथिक 'कवि बाबूराम' स्वामी दयानन्द अगुआन की जय हो॥
भक्ति, प्रपति, शरणागति दाता पावन पीयूष वेदज्ञान की जय हो॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—संन्यासियों के लिए 'अनग्नि' शब्द का क्या अर्थ है? मरने के बाद अग्नि में जलाना या नहीं? अतः यज्ञ तो सभी को करना चाहिये। यज्ञ के विषय में गीता में भी लिखा है—यज्ञ-दान-तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्॥

लोपामुद्रा ऋषिः। प्राणः (संन्यासी) देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ संन्यासिभिः किं कार्यमित्याह॥

अब संन्यासियों को क्या करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

ओ३म् **ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानां संवत्सरीणमुप भागमासते।**
अहुतादो हविषो यज्ञेऽअस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य॥

(यजु० ३९। ६)

पदार्थः—(ये) (देवाः) विद्वांसः (देवानाम्) विदुषाम् (यज्ञियाः) ये यज्ञ मर्हन्ति ते (यज्ञियानाम्) यज्ञसम्पादनकुशलानाम् (संवत्सरीणम्) यः संवत्सरं भृतस्तम् संपरिपूर्वात् ख च ॥ अ० ५।१।९२। इति भृतार्थे खः (भागम्) सेवनीयम् (उप+आसते) (अहुतादः) येऽहुतमदन्ति ते (हविषः) होतव्यस्य (यज्ञे) संगन्तव्ये (अस्मिन्) (स्वयम्) (पिबन्तु) (मधुनः) क्षौद्रस्य (घृतस्य) आज्यस्य जलस्य वा॥

सपदार्थान्वयः—(ये) (देवानाम्) विदुषां मध्ये (अहुतादः) येऽहुतमदन्ति ते (देवाः) विद्वांसः (यज्ञियानाम्) यज्ञ-सम्पादनकुशलानां मध्ये (यज्ञियाः) ये यज्ञमर्हन्ति ते विद्वांसः (संवत्सरीणम्) यः संवत्सरं भृतस्तं (भागम्) सेवनीयम् (उपासते) ते (अस्मिन्) (यज्ञे) संगन्तव्ये (मधुनः) क्षौद्रस्य (घृतस्य) आज्यस्य जलस्य वा (हविषः) होतव्यस्य (भागम्) सेवनीयम् (स्वयम्) (पिबन्तु)॥

भाषार्थः—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानों में (अहुतादः) बिना होम के भोजन करने वाले (देवाः) विद्वान् संन्यासी हैं तथा (यज्ञियानाम्) यज्ञ करने वालों में कुशल लोगों में (यज्ञियाः) यज्ञ करने वाले विद्वान् हैं, वे (संवत्सरीणम्) वर्ष भर में तैयार हुए (भागम्) सेवन करने योग्य पदार्थों का (उपासते) सेवन करते हैं, वे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (मधुनः) मधु (घृतस्य) घृत वा जल (हविषः) होम के योग्य द्रव्य के (भागम्) भाग का (स्वयम्) स्वयं (पिबन्तु) पान किया करें।

भावार्थः—येऽस्मिन् संसारे अनग्नयोऽर्थादा-हवनीय-गार्हपत्य-दक्षिणाग्निसम्बन्धि-बाह्यकर्माणि विहायान्तरग्नयः संन्यासिनः सन्ति ते होममकुर्वन्तो भुञ्जानाः सर्वत्र विहृत्य सर्वान् जनान् वेदार्थान् बोधयन्तु॥

भावार्थः—जो इस संसार में अनग्नि अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि सम्बन्धी बाह्य कार्यों को छोड़कर अन्तरग्नि संन्यासी हैं, वे होम को न करते हुए भोजन करके सर्वत्र भ्रमण करके सब लोगों को वेदार्थ का बोध करायें॥

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

'दयानन्दसन्देश' का वेद विशेषाङ्क अत्यधिक रुचिकर लगा। विभिन्न विद्वानों के लेख पढ़ने को मिले। आपका मैं अत्यधिक आभार मानता हूँ जिन्होंने यह हितकर आयोजन किया है। **ज्ञानसिंह, शिलौंग, मेघालय**

अब तक मैं अनेक सम्प्रदायों में घूमता रहा हूं। अब आपके ट्रस्ट से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश पढ़ रहा हूं। इसे पढ़कर मुझे जो मार्गदर्शन मिला है वह अभूतपूर्व है। इसे पढ़कर मेरे समस्त संशयों का निवारण हो गया है। धन्यवाद

ब्र० भरतकुमार आर्य
गुरुकुल रामलिंग वेदश्री (येडसी), धाराशिव, उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)

'दयानन्दसन्देश' में खुदीराम बोस की बलिदान की कहानी पढ़ने को मिली। तदर्थ अतीव धन्यवाद। आप पत्रिका में किसी न किसी बलिदानी की अमरगाथा देते रहा करो। जिससे वर्तमान युवापीढ़ी को प्रेरणा तथा देशभक्ति की भावना प्राप्त होती रहे।

बाबूलाल आर्य, सोनारों की बड़ी गवाड़, बीकानेर

फरवरी, '९७ के 'दयानन्दसन्देश' में गुण-ग्राहक जी का लेख पढ़कर कुछ शंका उत्पन्न हुई है। कृपया समाधान देवें। 'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा' यह श्लोक गीता में कहां पर है। और सत्त्व, रजस्, तमस् गुण क्या हैं। वैशेषिक के समान द्रव्याश्रयी अगुणवान् ही हैं अथवा जगत् के मूल उपादान कारण हैं।

आचार्य आनन्दप्रकाश
न्यू बोईनपल्ली, सिकन्दराबाद, (आन्ध्रप्रदेश)

हरियाणा प्रदेश में महर्षि दयानन्द की जयन्ती मनाई जा रही है। आपसे आग्रह है कि आप महर्षि जन्मतिथि/मिति ईस्वी से मानी जाये अथवा विक्रमी संवत् के अनुसार स्पष्ट करें।

मा० आजादसिंह पुरुषार्थी, खुर्रमपुर, बरोना (सोनीपत)

'दयानन्दसन्देश' पत्रिका यथासमय प्राप्त हो रही है। शंका-समाधान और सुख-दुःख जीवात्मा के गुण हैं अथवा प्रकृति के, इस विषय में विद्वानों के लेख पढ़ रहा हूं। आर्य विद्वानों में बहुत मतभेद हैं। मेरे विचार से ऐसे विचारों का समाधानात्मक उत्तर नहीं मिलता।

चन्द्रपालसिंह सिरोही (पूर्वमन्त्री आर्यसमाज विद्युत् गृह)
२२, कासिमपुर, अलीगढ़

मैं सत्यार्थप्रकाश में मूर्तिपूजा निषेध प्रकरण पढ़ रहा हूं। 'सम्भूति' का अर्थ कारण से उत्पन्न कार्यरूप पृथ्वी आदि भू पाषाण···· किया है। परन्तु गीताप्रेस (गोरखपुर) से प्रकाशित उपनिषद् भाष्य में सम्भूति का अर्थ परमेश्वर किया है। आपसे प्रार्थना है कि आप इसको स्पष्ट करें।

अश्विनीकुमार द्विवेदी, चपुन्ना, फर्रुखाबाद (उ०प्र०)

आपकी पत्रिका यथासमय प्राप्त हो रही है। समस्त पत्रिका को पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता होती है। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। मिथ्या मान्यताओं तथा मिथ्यावादों के खण्डन करने में दयानन्दसन्देश पत्रिका ने सतत जागरूक होकर जो ख्याति प्राप्त की है, वह अतीव प्रशंसनीय है।

बाबूरामसिंह, खुटहांघाट, गोपालगंज (बिहार)

संन्यासियों के लिए प्रयुक्त 'अनग्नि' शब्द का अर्थ और पौराणिक जगत् की महाभ्रान्ति का निवारण

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।
उपदेशकोऽसङ्कुसुको मुनिर्भावसमाहितः॥

इसकी व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—जब सब कामों को जीत लेवे और उनकी अपेक्षा न करे, पवित्रात्मा और पवित्रान्तःकरण मननशील हो जावे, तभी गृहाश्रम से निकलकर संन्यासाश्रम का ग्रहण करे अथवा ब्रह्मचर्य ही से संन्यास का ग्रहण कर लेवे—

वह संन्यासी (**अनग्निः**) आहवनीयादि अग्नियों से रहित और कहीं अपना स्वाभिमत घर भी न बांधे और अन्न वस्त्रादि के लिये ग्राम का आश्रय लेवे, बुरे मनुष्यों की उपेक्षा करता और स्थिर-बुद्धि मननशील होकर परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरे॥ (सं०वि० संन्यास०)

संस्कारविधि में विशेष टिप्पणी में लिखते हैं—

(अनग्नि) इसी पद से भ्रान्ति में पड़ के संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि को छूते नहीं। यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया। यहाँ आहवनीय आदि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है। स्पर्श वा दाहकर्म छोड़ना नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का-समाधान

● राजवीर शास्त्री

१. शंका—दयानन्दसन्देश पर आप जो सृष्टि संवत् देते हैं। वह अशुद्ध प्रतीत होता है। आपने दिया है १,९६,०८,५३,०९७। इसके स्थान पर १,९७,२९;४९,०९७ होना चाहिए।

हीरालाल आर्य, कमालपुर, रिवाड़ी (हरयाणा)

समाधान—'दयानन्दसन्देश' पर जो सृष्टिसंवत् छपता है, वह महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के अनुसार सही है। आप ऋषि के ग्रन्थों को पढ़कर तो देखें। सत्यार्थप्रकाश में आठवें समु० तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में तो महर्षि ने वेदोत्पत्ति विषय पर विस्तार से लिखा है और एक-एक वर्ष की गणना की है और गणना में तो एक अंक की भी कमी गलती मानी जाती है। आज इन ग्रन्थों को पढ़कर पुनः लिखना कि सत्य क्या है।

२. शंका—आप वायु की अपेक्षा अग्नि को स्थूल मानते हैं। किन्तु मुझे तो अग्नि की अपेक्षा वायु ही स्थूल लगती है। जैसे चारों तरफ से बन्द लोहे के बक्से या डिब्बे के अन्दर हवा नहीं घुस सकती है किन्तु उसे यदि अग्नि में डाल दिया जाये तो लोहे का आवरण लाल होकर अग्नि अन्दर चली जाती है।

—आर्य गिरि, निंगा, आसनसोल

समाधान—जो सूक्ष्म है वह अपने से स्थूल में रह सकता है, ऐसा सर्वत्र नियम चरितार्थ है। परमात्मा सूक्ष्मतम होने से सर्वत्र विद्यमान है। इसीलिए वह जीवात्माओं में भी विद्यमान है। 'यस्यात्मा शरीरम्' यह बृहदारण्यक का वचन प्रमाण है। इसी भांति आकाश सूक्ष्म है वह अपने से स्थूल में विद्यमान रहता है। इस बात को समस्त शास्त्रकार स्वीकार करते हैं। आकाश का गुण शब्द है, वह अपने से स्थूल पदार्थों में विद्यमान है। इसलिए कहा गया है—

त आकाशे न विद्यन्ते॥ वै० १।१।५॥

अर्थात् रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, आकाश में नहीं हैं। परन्तु आकाश से स्थूल वायु है। उसमें स्पर्श तथा शब्द दो गुण हैं। वायु से स्थूल अग्नि है, उसमें रूप, स्पर्श तथा शब्द तीन गुण हैं। अग्नि से स्थूल जल है, अतः रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द चार गुण जल के हैं। जल से स्थूल पृथ्वी है अतः उसके गुण गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द हैं। इसी बात को 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी·····' उपनिषद् ने स्पष्ट किया है।

इन शास्त्रीय प्रमाणों से आपकी बात विरुद्ध होने से माननीय नहीं हो सकती। आप अपने लिखे उदाहरण पर पुनः विचार करें। गन्ध यदि पृथ्वी का ही गुण है तो जल में गन्ध क्यों? इसका भी उत्तर आप विचार सकते हैं क्योंकि दर्शनकारों ने गुणों का निर्धारण बहुत ही सूक्ष्मता से विवेचन किया है, इसमें सूक्ष्म-स्थूल का भेद हो सकता है। जल में गन्ध की प्रतीति स्थूल जल में मानी जा सकती है परन्तु सूक्ष्म जल का अपना गुण रस ही है। इसमें स०प्र० में आप ध्यान से पढ़ें—**"जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण हैं, ये सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं और जो इसके कारण रूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादि गुण हैं वे नित्य हैं।"**

(स०प्र० तृतीय समु०)

३. शंका—श्री चेतराम जी (ग्राम बावली, जिला मेरठ) की शंकाओं का समाधान—

(क) दिसम्बर ९६ के अंक पर दयानन्दाब्द १७३ छपा है जो कि ठीक नहीं प्रतीत होता।

(समा०) आपकी बात सत्य है। नवम्बर ९६ के अंक पर दयानन्दाब्द १७२ छपा है अतः उसके बाद के अंक पर १७३ गलत छपा है। दिसम्बर में इसका बदलने का कोई कारण ही नहीं।

(शेष पृष्ठ ९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-दुःख जीवात्मा के ही गुण हैं

—रामनिवास 'गुणग्राहक' ग्राम—सरौता, पत्रा०-अवार, जनपद शतपुर-३२१००१ (राज०)

मैं आभारी हूं श्री रामचन्द्र जी का उन्होंने इस सन्दर्भ में मुझे मेरा मन्तव्य सुस्पष्ट करने में अपने पुरुषार्थ का भी सदुपयोग करने का अवसर दिया। इस सन्दर्भ में जहाँ मुझे कई सज्जिज्ञासुओं का सहयोग मिला वहीं स्व मस्तिष्क में बनी धारणाओं के आस-पास दौड़ लगाने वाले महानुभावों से विचार विनिमय में भी मुझे बहुत कुछ मिला है। मेरा मानना है कि किसी विवेच्य के सन्दर्भ में एक भी प्रश्न का अनुत्तरित रहना या उससे मुंह मोड़ना उक्त विषय के साथ अन्याय ही होगा। हर जटिलता पर खुले मस्तिष्क से विचार करना, तर्क साध्य व हृदय मान्य तथ्य को उदारता पूर्वक निराग्रह प्रस्तुत करना चाहिए। वर्तमान में आर्य विद्वानों में भी सहृदयता व सदाशयता की कमी अनुभव में आती है। हम हर बात को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर पक्ष पोषण में ही प्रवृत्त रहते हैं। इस विषय पर पत्र-पत्रिकाओं से हटकर व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार द्वारा या परस्पर मिल बैठकर प्रीतिपूर्वक जिज्ञासा भाव से विचार करना उचित रहेगा। प्रति-पक्षी के विचार को भी वही सम्मान दो जितना अपने विचार के लिए दूसरों से करो, तभी निर्णय तक पहुँचा जा सकता है।

श्री आर्य जी के लेख के सन्दर्भ में एक बात स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं कि—'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।' का जो आशय श्री आर्य जी ने प्रकट किया है वह सत्य के अधिक निकट प्रतीत होता है। पुनरपि इस प्रकरण से आत्मा के गुण सुख-दुःख का निषेध किसी दृष्टि से नहीं होता। यहां एक बात यह भी कहना चाहेंगे कि लेखक महोदय ने जिस सूक्ष्म बुद्धि से काम लिया है, उसका इस लेख में अन्यत्र नितान्ताभाव खटकने वाला है। जल की शीतता-उष्णता की समीक्षा करते समय वहां लगा प्रश्न वाचक चिन्ह (?) भी नहीं दिखा। वहाँ हमारा आशय था जैसे उबलते हुए जल में जल के स्वाभाविक गुण 'शीतता' का निषेध नहीं किया जा सकता वैसे ही मुक्त जीव में 'दुःख' गुण का निषेध उचित नहीं। जैसे अग्नि संयोग से जल की शीतता तिरोहित रहती है व वियोग होने पर अनुभव में आ जाती है, वैसे ही प्रभु आश्रय (अत्यन्त सामीप्य) से दुःख तिरोहित रहता है जो मुक्ति के बाद पुनः देखा जा सकता है।

ऐसा ही अटपटा सा निष्कर्ष वहाँ लिया है जहाँ हम ने ज्ञान की नैमित्तिकता व स्वाभाविकता ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता का विवेचन देकर सुख-दुःख को जीव का स्वाभाविक गुण सिद्ध किया है। वहाँ आर्य जी लिखते हैं—"उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो गया कि सुख-दुःख को प्रकृति के गुण पं० जी ने स्वीकार कर लिये हैं।" मैं पाठकों के लिए उक्त लेख का वह अंश शब्दशः दे रहा हूं। "**इस प्रकार दोनों ज्ञानों (मिथ्या ज्ञान व शुद्ध ज्ञान) को नैमित्तिक मानने पर भी जीव के स्वाभाविक गुण ज्ञान का निषेध नहीं होता। नैमित्तिक ज्ञानों (शुद्ध व मिथ्या) के ग्रहण की पात्रता रूपी स्वाभाविक ज्ञान जीव में है। इस प्रकार स्वामी जी की तर्ज पर सांसारिक सुख-दुःख का हेतु भौतिक पदार्थों व मुक्ति का हेतु ईश्वर को मान लेने पर भी इनके ग्रहण करने की पात्रता रूपी सुख-दुःख जीवात्मा का स्वाभाविक गुण मानना ही पड़ेगा।**" इन शब्दों से ही स्पष्ट है कि मैंने स्वामी जी के शब्दों की ही उचित विवेचना करके सुख-दुःख को जीव का स्वाभाविक गुण सिद्ध किया है। रही बात सांसारिक पदार्थों को निमित्त मानने की सो हम प्रारम्भ से ही ऐसा कहते आ रहे हैं, मगर इस नैमित्तिकपन से हम ने यह आशय कदापि प्रकट नहीं किया कि ये प्रकृति के गुण हैं। एक व्यक्ति लाठी से किसी का सिर फोड़ देता है, इस कार्य में लाठी भी साधन होने से निमित्त ही कही जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लेखक महोदय लिखते हैं—"हां जीव में 'ज्ञातृत्व'... यह ज्ञातृत्व सत्य भी नहीं, मिथ्याज्ञान भी नहीं, किन्तु दोनों के ग्रहण करने का सामर्थ्य है। इसी प्रकार जीव में भोक्तृत्व गुण है जो सुख भी नहीं है, दुःख भी नहीं है।" अब सुधी पाठक गण स्वयं विचारें कि जिसे हमारे आर्य जी ज्ञातृत्व कह रहे हैं उसे सर्व शास्त्र-ज्ञान नाम से ही परिभाषित कर रहे हैं। स्वयं लेखक भी इसे स्वीकारते हैं। क्या यही नियम (परिभाषा) 'भोक्तृत्व' पर नहीं लग सकती? नहीं तो क्यों? देखो उपाध्याय जी 'मुक्ति से पुनरावृत्ति' पुस्तक में लिखते हैं- "आत्मा को सुख न होगा तो दुःख होगा या दुःख न होगा तो सुख होगा! इससे पता चलता है कि सुख-दुःख आत्मा के किसी एक ही गुण के दो प्रकारों के नाम हैं। इस गुण को हम 'भोक्तृत्व' कहते हैं। इससे आत्मा कभी पृथक् नहीं हो सकता।"

पृष्ठ ५१३ पर आर्य जी लिखते हैं—'सब जीवों के गुण, कर्म, स्वभाव समान मात्रा में एक जैसे ही हैं, और सुख-दुःख का अधिष्ठान जीव ही है तो जिस वस्तु के भोग से एक जीव सुखी हुआ है इसी वस्तु के उतने ही भोग से सभी जीवों को उतना ही सुख मिलना चाहिए।' यही प्रश्न हम ने सांसारिक वस्तुओं के सन्दर्भ में किया था कि यदि सांसारिक पदार्थों में सुख होता तो उस पदार्थ विशेष से सभी जीवों को समान रूप से सुख प्राप्त होता मगर ऐसा होता नहीं! इसका उत्तर न मिला तो कोई बात नहीं, हमारी प्रकृति (स्वभाव) किसी प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ने की नहीं सो हमारा उत्तर इस प्रकार है—सुख दुःख. पर तो अभी विवाद ही है मगर जीव के ज्ञान गुण पर तो नहीं। यह सर्व स्वीकार्य है कि सब जीव स्वभावतः समान हैं, ज्ञान की मात्रा में भी समान ही होंगे। मैं इससे एक कदम आगे बढ़ कर यह भी कहना चाहूँगा कि प्रभु ने उन्हें बुद्धि आदि साधन भी पक्षपात रहित समान ही दिये होंगे। दिये हैं! तो क्या कारण है कि विद्वान् भी एक ही वक्तव्य के भिन्नार्थ लेते हैं? एक व्यक्ति संकेत मात्र से बहुत कुछ जान लेता है दूसरा दस बार बताने पर भी नहीं सीख पाता। इस प्रकार क्या जीव ज्ञान का कभी अधिष्ठान नहीं है? यदि हाँ तो सुख-दुःख पर कोप का कारण हमारी समझ से बाहर है। ध्यान रहे ये उत्तर सांसारिक पदार्थों के प्रति उठाए गए हमारे प्रश्न का समाधान नहीं हो सकता उसका उत्तर शेष है।

एक प्रश्न—'सुख-दुःख से रहित जीव की व सहित किसी अन्य द्रव्य की परिभाषा.....' के उत्तर में आर्य जी ऋषि वाक्य..... 'और प्रलय में जीवों का क्या सुख वा दुःख? जो सृष्टि के सुख-दुःख की.....।' को उद्धृत करते हैं! मेरी प्रार्थना है कि यहाँ आप 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः' के विवेचन वाली बुद्धि को लगाकर देखें कि आप यहाँ कितने प्रकरण-वित् हैं? अस्तु! आप जिस प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं उसके अनुसार तो आपके उत्तर से यही आशय लेना चाहिए कि ये जीव की सुख-दुःख से रहित परिभाषा है, क्योंकि आगे आपने प्रकृति की सुखादि सहित परिभाषा देने का भी प्रयास किया है। श्रीमन्! प्रलय में तो जीव के ज्ञान प्रयत्न व इच्छादि के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता क्या मुक्त जीव की २४ प्रकार की शक्तियों (गुणों) को आप प्रलय में सिद्ध कर सकोगे? यदि नहीं तो सुखादि को इतना तूल क्यों? आगे जो प्रकृति को सुखादि से युक्त सिद्ध करने का प्रयास किया है वहाँ हमारा निवेदन यह है कि गुण सदैव द्रव्य के आश्रय रहते हैं। आत्मा के अतिरिक्त पृथिव्यादि आठों द्रव्यों में किसी के स्वाभाविक गुण सुख-दुःख कहे हों तो प्रकट करें। हाँ यहाँ एक प्रश्न और उठाया जा सकता है खट्टा-मीठा श्वेत-श्यामादि भी तो किसी द्रव्य के गुण नहीं कहें, पुनः सुख-दुःख पर ही ये आक्षेप क्यों? इसके समाधान में हम कहेंगे कि प्राकृत पदार्थों के क्रिया विशेष पूर्वक मिश्रण 'विकृति' से परिणामतः ये गुण स्पष्टतः अनुभव में आते हैं; सुख-दुःख के बारे में ये निर्विवाद सत्य नहीं! मीठे स्वादिष्ठ पदार्थ में प्रारम्भ में जो सुखानुभूति होती है उसके सतत सेवन से वह न्यून होती जाती है। अन्त में पूर्व प्राप्त होने वाला सुख-दुःख बन जाता है मगर उसकी मिठास में अन्तर नहीं आता।

सुख-दुःख को जीव का नैमित्तिक गुण कहने का कारण स्पष्ट करते हुए लिखा है कि हैं तो अस्मितादि से युक्त बद्ध जीव के ही दर्शन होते हैं, अतः इन नैमित्तिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों द्वारा भी····। 'यह नियम सर्वत्र नहीं कहा जा सकता' तीसरे समुल्लास में महर्षि की शैली से नितान्त प्रकट है कि वहाँ वे सभी द्रव्यों का शुद्ध स्वरूप प्रकट कर रहे हैं। देखो इस प्रकरण के प्रारम्भ में ऋषि लिखते हैं—'**धर्मविशेष-प्रसूताद्**·····' सूत्र देकर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखा है— 'इसी प्रकार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्त्व ज्ञान अर्थात् स्वरूप ज्ञान से 'निःश्रेयसम्' मोक्ष को प्राप्त होता है।' स्पष्ट है कि द्रव्यों के शुद्ध स्वाभाविक गुणों को भी प्रकट किया है। चलो यहाँ न सही तो क्या दर्शनों में कहीं भी जीव के स्वाभाविक गुण का परिचय नहीं दिया?

'**तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा**····' के स्पष्टीकरण में आगे चलकर आर्य जी मात्र आलोचना पर ही उतर आए हैं। '**इष्टानिष्टकारणविशेषाद्**····' (वै०१०।१।१) सूत्र तो हमने भी पढ़ा है। प्रकरण के हृदयंगमार्थ कुछ आगे पीछे से भी मनन पूर्वक पढ़ा है। लेखक महोदय ने भाष्यकार के प्रारम्भिक व अन्तिम वक्तव्य को भलीभाँति समझने का प्रयास नहीं किया। वहाँ निमित्तोत्पन्न होते हुए भी सुख-दुःख को आत्मा से बहिर्भूत नहीं कहा! वहाँ तो इन (इष्ट पदार्थ सुख के अनिष्ट दुःख के) निमित्त पृथक्-पृथक् बता कर इन दोनों के अस्तित्व की पृथक्ता कही है। चूंकि इनका निमित्त कारण (उद्भव साधन) पृथक् है। यही भाष्यकार व सूत्रकार के आशय के अविरुद्ध है! अधिक पिष्टपेषण ही होगा।

अब एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करते हैं— "**स्वभावस्यानपायित्वाद्**····" (सां०१।८) में कहा है— 'किसी वस्तु के स्वरूप को हटाया नहीं जा सकता। अतः स्वभाव से बद्ध आत्मा के लिए मोक्ष शास्त्र का आरम्भ व्यर्थ होगा!" वैसे तो हम ने इस बद्ध-मोक्ष के प्रश्न को छेड़ा ही नहीं था, मगर अब छिड़ ही गया तो अछूता भी न छोड़ेंगे। यदि आप दुःख को ही पूर्ण बद्धता के रूप में ले रहे हो तो महाशय जी हम ने तो सुख भी स्वाभाविक माना है। हाँ यदि मुक्ति दुःख का अत्यन्ताभाव (नष्ट होना) मानते तब हम पर भी यह आरोप सार्थक होता। हम तो मुक्ति में भी दुःख का अस्तित्व उसी प्रकार मानते हैं जिस प्रकार उबलते जल में शीतलता इसकी सिद्धि (पुष्टि) के लिए हम एक उदाहरण औ दे रहे हैं। महर्षि ने मुक्त जीव के गुणों में द्वेष भी लिखा है। कृपया कहें वह मुक्त जीव में कैसे सिद्ध करोगे या किस रूप में कहोगे? यदि कहो कि प्रतिकूल भो या पदार्थों के प्रति द्वेष रहता है तो बताएँ कि क्या मुक्ति में भी अनिष्ट प्राप्ति की आशंका बनी रहती है? ई ईश्वर की व्यवस्थानुसार उसे पूर्णानन्द मिलना तय है मुक्ति में द्वेष के अस्तित्व और उपयोग को स्पष्ट करें पुनः हम दुःख की अस्तित्व-सिद्धि करेंगे।

आओ अन्त में आर्य जी के अन्तिम प्रश्न पर भी विचार करें। प्रश्न है—'यदि सुख-दुःख जीव के ही गुण हैं तो ईश्वर देता कैसे है।' बड़ा भोला-भाला प्रश्न है। इस पर हम कुछ स्पष्टीकरण दें उससे कहीं अधिक अच्छा रहेगा कि लेखक महोदय अपने ही लेख पर मनन करें। जहाँ मुक्त जीव के गुण लिखे हैं। वहाँ बल, पराक्रम, प्रेरणा, उत्साह व ज्ञान भी लिखे हैं। अब क्या इनके सन्दर्भ में भी व प्रश्न करोगे जो सुख-दुःख के सन्दर्भ में किया है? ईश्वर से इन्हें माँगने वाले शताधिक मन्त्र आपने भी पढ़े होंगे महर्षि दयानन्द का प्रमाण····'अच्छे कामों के करने में अभय निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है।' (सप्तम समु०) है। यही नहीं लेख के अन्त में आपने जो प्रार्थना की है— 'आप ही अत्मदा हो' उसी मन्त्र में उस प्रभु को 'बलदा' भी कहा है। अस्तु॥

प्रस्तुत लेख में मैंने प्रायः सभी आवश्यक व महत्त्व पूर्ण तथ्यों पर अपने स्वल्प से स्वाध्याय के ही बल पर बिना किसी पूर्वाग्रह के विचार रखे हैं। मैं दर्शनों का गहन अध्येता पारङ्गामी व लेखनी कुशल भी नहीं हूं। पुनरपि आत्मा के स्वरूप जैसे सूक्ष्म व व्यापक विषय पर लिखना तो निश्चि रूप से अत्यन्त दुष्कर है। ऐसे में भूलवश कहीं शाब्दिक शैथिल्य या असंगति का होना सरल सम्भाव्य है। इस लेख में कुछ ऐसे स्थल भी हैं जिन पर लिखना मुझे उचित नहीं लगा। पृष्ठ ५१२ के अन्तिम अनुच्छेद में 'समस्त जीवों के स्वाभाविक ज्ञान व बलादि गुण एक ही प्रकार के होंगे। इस वक्तव्य का मैं विवेच्य प्रकरण से कोई सामञ्जस्य बिठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में असमर्थ रहा। दूसरा पृष्ठ ५१३ के अन्तिम अनु० में व्यंग्य पूर्वक जो प्रश्न 'अच्छा पं० जी महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में यह नियम कहाँ रखा है कि जो कुछ प्रश्न के रूप में रखा जाएगा वह अमान्य, उत्तर पक्ष में रखेंगे तो वह मान्य?' रखा है भला इसके औचित्य व प्रश्नकर्त्ता की मानसिकता पर किस को दया न आएगी? 'तदत्यन्त-विमोक्षो...' सूत्र की प्रकरणानुकूल संगति लगाकर लेखक महोदय ने जो निष्कर्ष प्रकट किया है उसे सत्य के निकट कहने में हमें किञ्चिदापत्ति नहीं है। हमें चाहिए कि जो बात हमारे हृदय को छू जाए उस पर योग्य रीति से विचार कर निःसंकोच स्वीकारें। हमारा कल्याण सत्य को स्वीकारने में है पक्ष-पोषण की भावना से उसे दुत्कारने में नहीं। अन्त में एक वेद मन्त्र—

ओ३म् उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥
(ऋ० १०।७१।४)

पदार्थ—

जो जन अविद्या ग्रस्त हो विद्या रहस्य न जानते।
बोलत भये बोलें न वे देखते भये न पहिचानते॥
सुनते हुए बहिरे हैं वो ऐसे कहे ऋग्वेद है।
अज्ञानी और ज्ञानी जनों में वेद करता भेद है॥
ज्ञानी, ऋषि, विद्वान् को विद्या लगे प्यारी बड़ी।
शृङ्गार किये कामिनी पति कामना से हो खड़ी॥

●●

(पृष्ठ ५ का शेष)

(ख) यज्ञ में पत्नी किधर बैठे, इसमें संस्कारविधि में गर्भाधान, नामकरण, निष्क्रमण इन तीन संस्कारों में पत्नी को यज्ञ में वाम भाग में बैठाने का विधान किया है। इससे स्पष्ट होता है महर्षि वाम भाग में बैठाने के पक्षधर हैं परन्तु प्रायः आर्यसमाज के पुरोहित पत्नी को दक्षिण भाग में बैठाते हैं। ऐसा क्यों?

(समा०) आपकी शंका उचित है। जिन संस्कारों में महर्षि का लेख है, उनमें वैसे ही बैठाना उचित है। किन्तु जिनमें स्पष्ट नहीं लिखा है, उनमें दक्षिण भाग में बैठाना चाहिये। अन्यथा इन तीनों संस्कारों में वाम भाग में बैठाने को क्यों लिखते?

(ग) महर्षि दयानन्द ने जलकुम्भ का विधान विवाह संस्कार में किया है। परन्तु विशिष्ट यज्ञों में वेदी के चारों कोनों पर जब कुम्भ रखे जाते हैं इसका क्या कारण है?

(समा०) यह सत्य है कि महर्षि ने जलकुम्भों का विधान नहीं किया परन्तु आप यज्ञ करने बैठते हैं जल प्रोक्षण के लिए जल पात्रों की आवश्यकता होती है और यज्ञकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित की है। अग्नि का पतंगा इधर-उधर आ पड़े तो आपके पास जलपात्र होगा तो जल से शान्त कर सकते हो। अग्नि के पास जल होना ही चाहिये। और यज्ञवेदी अलंकृत होनी चाहिये। इसीलिए इसे मण्डप भी कहते हैं। जलकुम्भों से वेदी की शोभा भी बढ़ती है।

(घ) विवाह संस्कार में बहुत से पुरोहित परिक्रमा के समय कन्या को आगे चलाते हैं जबकि ऋषि दयानन्द ने ऐसा कहीं नहीं लिखा।

(समा०) इसका समाधान मार्च ९७ के अंक में दिया है आप वहां देखें तो अच्छा रहेगा।

(ङ) महर्षि दयानन्द ने **'त्वं नो अग्ने...'** से ले **'भवतं नः'** तक आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देने का विधान किया है। जो कि घी से दी जानी चाहिये परन्तु सर्वत्र सामग्री से क्यों दी जाती है?

(समा०) महर्षि का स्पष्ट उल्लेख न होने से भ्रम रहता ही है। 'आज्य' शब्द घी का भी पर्यायवाची है जिससे आपकी बात की पुष्टि होती है। यज्ञ के प्रारम्भ में कुछ आहुतियां घी की होती हैं जिससे अग्नि प्रज्वलित हो सके। परन्तु बाद में घी और सामग्री की आहुतियां उचित हैं। केवल सामग्री से नहीं। मुझे स्मरण है कि श्री माननीय स्व० जगदेवसिंह सिद्धान्ती इस शंका का समाधान ऐसे किया करते थे—'आज्य' शब्द अञ्जू धातु से बना है जिसका अभिप्राय यह है कि घृत मिश्रित सामग्री से आहुति देनी चाहिये। अञ्जू धातु का अर्थ मिश्रण करना भी है। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलकर चलने का मार्ग ही सुखद है

—भगवानदेव 'चैतन्य'

आज समूचा विश्व ही अशान्ति और कई प्रकार के लड़ाई-झगड़ों में उलझ कर रह गया है। व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत जीवन अलग मुसीबत बना हुआ है तो परिवार और समाज भी अनेक प्रकार की विकृतियों का शिकार बने हुए हैं। इन सब विकृतियों का उपचार ज्यों-ज्यों खोजा जा रहा है, वैसे-वैसे ही ये और भी अधिक भयंकर बनती जा रही हैं। इसका कारण यह है कि उपचार ठीक ढंग से नहीं किया जा रहा है। वास्तव में समस्याएं चाहे व्यक्तिगत हों, पारिवारिक हों, सामाजिक हों, राष्ट्र की हों या विश्व की हों, उनका सही उपचार हमें वेद की छत्रछाया में जा कर ही मिल सकता है। वेद सार्वभौमिक हैं और वेद की शिक्षाएं भी सार्वभौमिक हैं। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों या वर्षों बाद भी समस्त समस्याओं का हल वेद के निर्देशानुसार ही खोजा जा सकता है। वेद की सत्यता ही यह है कि एक न एक दिन सारे विश्व को वेद की शरण में आना ही पड़ेगा। तरह-तरह से लोगों ने व्यक्ति से लेकर विश्व तक की समस्याओं के समाधान खोजे, मगर उन समाधानों का कार्यान्वयन और भी अधिक भयानक सिद्ध हुआ है। भयंकर युद्ध हुए, खूनी क्रान्तियां हुईं मगर समस्याएं हल होने के स्थान पर और भी अधिक भयंकर होती चली गईं। वेद तो अन्तिम सत्य है। इसलिए उस सत्य के आधार पर ही स्थिर और सच्ची शान्ति प्राप्त की जा सकती है। ऋग्वेद में एक संगठन सूक्त है। इस सूक्त में परमात्मा ने कुछ ऐसे सूत्र हमारे समक्ष रखे हैं जिनके आधार पर हम सुख और शान्ति का सृजन कर सकते हैं। यह सूक्त व्यक्ति से लेकर विश्व तक की समस्त समस्याओं का सटीक हल हमारे सामने प्रस्तुत करता है। संगठन सूक्त ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में उस परमात्मा से ही प्रार्थना की गई है कि—

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।

(ऋ० १०।१९१।१)

हे सुखों के वर्षक, सब के स्वामी, प्रकाशस्वरूप परमात्मा! आप संसार के सब पदार्थों को अपनी उचित व्यवस्था के अनुसार परस्पर मिलाते हो और फिर उनका वियोग भी आप ही करते हो, आप अपनी शक्तियों से इस धरती पर चमक रहे हो। हे ऐसे महान् सामर्थ्य वाले परमात्मा आप हमें सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान कीजिए।

अब यह स्थिरता, व्यवस्था, परस्पर का मिलन तथा सब प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी हम कैसे बन सकते हैं इसका दिशा-निर्देश भी परमात्मा ने अगले मन्त्र में प्रस्तुत कर दिया है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते॥

(ऋ० १०।१९१।२)

अब परमात्मा मनुष्यों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे मनुष्यो! तुम परस्पर मिलकर चलो, मिलकर बातचीत करो, ज्ञानी बनकर तुम अपने मनों को भी एक बनाओ जैसे कि तुम से पूर्व विद्वान्, देव पुरुष, सम्यक् ज्ञानवान् और एक मति वाले होकर अपना भाग प्राप्त करते रहे हैं।

इस मन्त्र में इतना सुन्दर उपदेश दिया गया है कि यदि इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन बिताना आरम्भ कर दे तो सब प्रकार की समस्याओं का अन्त हो सकता है। व्यक्ति का पतन इसलिए होता है क्योंकि उसका अपनी वृत्तियों पर तालमेल नहीं रहता है इसलिए व्यक्ति का व्यक्तित्व खण्डित हो जाता है। परिवार में तालमेल बिगड़ जाता है तो परिवार में कलह क्लेश पनपता है। इसी प्रकार समाज और राष्ट्र या विश्व में भी जब उचित तालमेल की कमी हो जाती है, व्यक्ति अपने कर्तव्यों को भूल जाता है तो सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो जाता है। वेद का यह उपदेश सब पर लागू होता है। सब से पहली बात कही है कि संसार के लोगो तुम मिलकर चलो। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आपसी फूट को सब से बड़ा पतन का कारण बताया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आपसी झगड़े के कारण ही बाहर का कोई व्यक्ति पंच बनकर आ बैठता है, इसलिए आपसी फूट से बचने के लिए आपसी मेल की परम आवश्यकता है। आपसी वैर वैमनस्य और फूट के कारण कितनों को ही बर्बाद होते हुए देखा गया है। कौरव और पाण्डव यदि मिलकर रहते तो संभवत: न तो इतना बड़ा भयंकर युद्ध होता, न इतने बड़े-बड़े योद्धा मारे जाते और न ही भारतवर्ष की यह पतनावस्था देखनी पड़ती। राजपूत राजाओं में यदि आपस में मेल-मिलाप होता तो कोई विदेशी आकर उनके राज्य को उनसे हड़पने में समर्थ नहीं हो सकता था मगर आपसी फूट के कारण, एक दूसरे को नीचा दिखाने की लालसा में अपना सब कुछ गंवाकर बैठ गए। मुसलमानों की भी आपसी फूट ही उन्हें मार गई। उनमें यदि आपस में मेल मिलाप रहा होता तो अंग्रेज इस राष्ट्र को नहीं हथिया सकते थे। इसलिए वेद कहता है— **सं गच्छध्वम्,** मिलकर चलो। मिलकर चलने से जहां एक ओर उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है वहीं दूसरी ओर सुख और शान्ति की स्थापना हो सकेगी। इससे परिवार, राष्ट्र और विश्व में एक अनुशासन की स्थापना भी हो सकेगी। किसी भी अभियान द्वारा सफलता प्राप्त करने के लिए सामूहिक अनुशासन और मिलकर चलने की बड़ी आवश्यकता होती है। सैनिकों को देखें उन्हें किस प्रकार एक साथ चलने का प्रशिक्षण दिया जाता है। सैनिकों में आपसी तालमेल और साथ-साथ चलने का अभ्यास नहीं होगा तो वे अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो सकेंगे। ऐसे ही परिवार और समाज में भी एक-दूसरे को साथ लेकर चलने की बात वेद कह रहा है। इससे एक और भी गम्भीर भाव प्रकट होता है कि सब को उन्नति के बराबर अवसर प्रदान करो। केवल अपनी ही उन्नति का ध्यान मत रखो। महर्षि दयानन्द जी ने एक वाक्य दिया है—**'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए बल्कि सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।'** महर्षि की यह शिक्षा कितनी सार्थक और उज्ज्वल है। इस पर गहराई से चिन्तन करने की आवश्यकता है। इस बात को यदि समूचे समाज में लागू कर दिया जाए तो समाज में बहुत ही सुन्दर व्यवस्था स्थापित हो सकती है। 'जीओ और जीने दो' का यह सब से उत्तम आधार है। आज समाज या परिवार में इससे बिल्कुल ही उल्टा हो रहा है, इसलिए वैर-वैमनस्य भी बढ़ गया है। आज तो घोर स्वार्थ की लपेट में आकर दूसरे की उन्नति की बात तो दूर रही बल्कि दूसरे का सब-कुछ हड़प कर जाने के लिए होड़ लगी हुई है। भौतिकवादी चकाचौंध में व्यक्ति अन्धा हो गया है। उसके सामने एक ही लक्ष्य है कि वह अधिक से अधिक सम्पन्न बन जाए। इसके लिए नैतिक-अनैतिक सभी प्रकार के साधनों का उपयोग किया जा रहा है। केवल अपनी ही उन्नति का लक्ष्य रह गया है और सब की उन्नति की किसी को भी चिन्ता नहीं है। जिस समाज या राष्ट्र और विश्व में व्यक्ति स्वार्थ की इस सीमा तक पहुंच जाए वहां लड़ाई-झगड़े और वैर विरोध भला कैसे न होगा।

इसके विपरीत चलकर ही सुख और शान्ति का साम्राज्य किया जा सकता है। अर्थात् जब तक प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की उन्नति में अपनी उन्नति नहीं समझेगा तब तक सामाजिक व्यवस्था और सामूहिक अनुशासन की बात केवल स्वप्न बनकर ही रह जाएगी। आज व्यक्ति के पास दूसरे की प्रतीक्षा करने का समय ही नहीं है। दूसरा चाहे कितना ही पिछड़ जाए इसकी किसी को चिन्ता नहीं है। बस केवल अपना ही स्वार्थ पूरा होना चाहिए। परिवार, समाज, राष्ट्र या विश्व की समस्त समस्याओं के मूल में यह नितान्त स्वार्थ काम कर रहा है। वेद तो कहता है—

सहृदयं साम्मनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योऽअन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥
(अथर्व० ३। ३०। १, ३)

अर्थात् हे मनुष्यो! मैं तुम्हें सौहार्द, साम्मनस्य तथा अविद्वेष का उपदेश करता हूं। तुम एक-दूसरे से वैसे ही प्रेम करो जैसे नवजात बछड़े से गाय प्यार करती है। कोई भाई दूसरे भाई से द्वेष न करे, कोई बहिन दूसरी बहिन से द्वेष न करे। तुम मिलकर चलते हुए सहकर्मी होते हुए एक-दूसरे के प्रति भद्र वाणी बोला करो।

इस प्रकार की भद्रता का व्यवहार और सहयोग की भावना जहां पर हो वहीं पर स्वर्ग जैसा वातावरण बन सकता है। वाणी का अत्यधिक महत्त्व है। इसलिए भद्र ही वाणी का प्रयोग करना चाहिए। कटुतापूर्ण वाणी सदा ही अनिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कारण बनती है। परिवार में हम एक-दूसरे के प्रति मीठी और भद्र वाणी का प्रयोग करेंगे तो कई प्रकार के झगड़ों से हमारा छुटकारा हो सकता है। जरा-जरा से व्यंग्य-बाण गहरी शत्रुता का कारण बन जाते हैं। इसलिए छोटी-छोटी बातों में भी इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कहीं मेरे मुंह से अनजाने में भी कटु वचन न निकल जाए। समाज और राष्ट्र जैसे व्यापक क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों को तो और भी अधिक सावधानी बर्तने की आवश्यकता है क्योंकि उनकी एक ही गलत बात समूचे समाज या राष्ट्र को तबाह कर सकती है। विश्व स्तर पर भी ऐसी ही मीठी, संयमित और भद्र वाणी के प्रयोग की आवश्यकता है। इसलिए वेद मन्त्र ने जहां कहा है कि मिलकर चलो वहीं आगे कहा— **संवदध्वम्।** हम मिलकर बातचीत करें। एक-दूसरे के साथ बातचीत करने के लिए किसी प्रकार की विरोधी वाणी का प्रयोग न करके ऐसी वाणी बोलें जो सभी के अनुकूल हो। ऐसी वाणी तभी हो सकती है जब एक-दूसरे के प्रति हृदय से प्यार होगा। एक-दूसरे को हृदय के स्तर पर समझने की भावना हो। यदि एक व्यक्ति भी वाणी का दुरुपयोग कर दे तो उसकी प्रतिक्रिया समूचे समाज या परिवार को झेलनी पड़ती है। वाणी के बल पर जब हमारे हृदय एक जैसे हो जायेंगे तो संगठन मजबूत बनेगा।

मन्त्र ने आगे कहा है—**'सं वो मनांसि जानताम्',** अर्थात् हम सब के मन एक हों। ये सभी गुण क्रमशः हमारे भीतर आते चले जायेंगे। जब हम मिलकर चलना सीख जायेंगे तो वाणी से भी एक दूसरे को पीड़ा नहीं पहुंचायेंगे। जब वाणी के स्तर पर एक दूसरे का आदर करेंगे तो हमारे मन भी एक दूसरे के समीप आते चले जायेंगे। मानसिक एकता बहुत ही आवश्यक है। मानसिक एकता की स्थापना के लिए एक-दूसरे को गहराई से समझने की आवश्यकता है। संसार में अधिकतर झगड़े **गलतफहमियों** के कारण ही होते हैं। ये **गलतफहमियां** और संशय तभी पैदा होते हैं जब हम एक-दूसरे को समझने का प्रयास नहीं करते हैं। पति-पत्नी में यदि कोई मनमुटाव हो जाता है तो सब से अच्छा उपाय तो यही है कि वे दोनों ही मिल बैठकर उस समस्या का हल कर लें। एक दूसरे की भावनाओं को समझें और जीवन के समूचे आधार को समक्ष रखकर सकारात्मक निर्णय लें। जब भी कोई तीसरा बीच में पड़ता है तो बिगाड़ के अधिक आसार होते हैं। इस प्रकार से गलतफहमियाँ और भी अधिक बढ़ जाने की संभावना होती है। इसी प्रकार चाहे झगड़ा मां-बेटी का हो, बाप-बेटे का हो, भाई-भाई का हो उसका समाधान आपस में मिल-जुलकर ही निकाला जा सकता है। सामाजिक संगठनों के झगड़े भी मानसिक दुराग्रहों को दूर करके ही हल किए जा सकते हैं। राष्ट्रव्यापी समस्याओं का समाधान भी इसी प्रकार से निकालने की आवश्यकता है। लड़ाई-झगड़े से आज तक कहीं भी शान्ति स्थापित नहीं हो सकी है। जहाँ भी शान्ति और समझौता हुआ है, मिलजुलकर तथा एक दूसरे की भावनाओं के समझने के बाद ही हुआ है। यहां तक कि बड़े-बड़े मनमुटाव के बाद भी अन्ततः बातचीत का रास्ता ही अपनाया जाता है।

यहाँ पर हम पुनः कौरवों और पाण्डवों का ही दृष्टान्त लेते हैं। यदि सभी भाई आपस में मिल बैठकर कोई समाधान निकाल लेते तो क्या बात बहुत सहजता के साथ नहीं बन जानी थी? श्रीकृष्ण जी महाराज इस प्रयास में अन्तिम क्षणों तक लगे भी रहे मगर दुर्योधन की मूर्खता के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो सका! दुर्योधन यदि मानसिक स्तर पर सोचकर कोई ना कोई दोनों पक्षों को अनुकूल लगने वाली बात मान जाता तो इतना बड़ा भयंकर युद्ध एकदम टाला जा सकता था। सभी भाई प्रेम के साथ रहकर अपने राज्य का और अधिक विस्तार कर सकते थे। इसीलिए वेद कह रहा है कि हमारे मन एक हों। एक दूसरे की भावनाओं को समझने वाले हों। इससे अगले भाग में वेद और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात कह रहा है। **'देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।'** जैसे हम से पूर्व विद्वान्, देव पुरुष ज्ञानवान् और एक मति वाले होकर अपना-अपना भाग प्राप्त करते रहे हैं वैसा ही हम भी करें। लड़ाई झगड़े होते ही इसलिए हैं कि हम लोग अपना हिस्सा छोड़कर किसी और का हिस्सा लेने का प्रयास करते हैं। मन्त्र कह रहा है कि जिस प्रकार पूर्वज हमारे अपना हिस्सा स्वीकार करके शेष दूसरों के लिए छोड़ देते थे, वैसा ही यदि हम भी करें तो इसमें सार्थकता है। ऐसा यदि करें तो हमारे हाथ जीवन के कुछ शाश्वत सूत्र लग सकते हैं जिनके कारण हमारा परिवार या समाज और राष्ट्र सुख समृद्धि से परिपूर्ण हो जायेंगे। समाज में एक व्यवस्था स्थापित हो जाएगी। इस प्रकार की अपनी वृत्ति बनाने के लिए हमें ज्ञानवान् और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् बनना पड़ेगा। विद्वान् या ज्ञानी वह नहीं है जिसने बहुत सारे शास्त्र स्मरण कर लिये हैं बल्कि वह है जिसने अपने जीवन में उन बातों को धारण कर लिया है। जिसका जीवन व्यावहारिक है। ज्ञान यदि व्यवहार में नहीं है तो वह किसी काम का नहीं है। धर्म है ही आचरण की वस्तु। धर्म के नियमों को जिस व्यक्ति ने आत्मसात् कर लिया है वही धार्मिक और ज्ञानी है। मुख्य रूप से मानव को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—देवता और असुर। देवताओं का काम है अपने हिस्से का सामान लेकर शेष दूसरों को छोड़ देना। इसी को परोपकार कहते हैं। देवता परोपकारी होते हैं। मगर असुर उसके एकदम विपरीत होते हैं। वह सदा दूसरों की वस्तुओं पर ही दृष्टि जमाए रखते हैं। इन असुरों के कारण ही सारी अव्यवस्था है, लड़ाई झगड़े हैं, मार-काट है। देवताओं के कारण लड़ाई झगड़े नहीं हैं। केवल असुरों के कारण ही यह सब हो रहा है क्योंकि वे ही दूसरों के घर डाका डालने में विश्वास रखते हैं। वे अपने भाग से सन्तुष्ट नहीं हैं। वे लोभी हैं और सदा 'और ला और ला' की कामना में ही लगे रहते हैं। इन कामनाओं के कारण ही वे नित नये-नये पाप कर्म करने में लगे रहते हैं। देवता पाप नहीं करते हैं क्योंकि वे धर्म के नियमों पर आरूढ़ रहते हैं; असुर ही पाप करते हैं क्योंकि वे तृप्त होते ही नहीं हैं। समस्त पापों की जड़ राक्षस वृत्ति ही तो है। इसलिए देवता के गुण अपने भीतर धारण करने की आवश्यकता है। फिर हम से किसी दूसरे की वस्तु उठाई ही नहीं जा सकेगी। अपने पूर्वजों के समान हमें धर्म-पथ पर चलने वाला बनना पड़ेगा। असुरों के कारण ही यह संसार नरक बना हुआ है। असुर जहां भी होंगे वह परिवार या समाज और राष्ट्र निश्चित रूप से नरक बनेगा ही।

शतपथ में एक कहानी आती है कि एक बार देवों और असुरों को भोजन पर बुलाया गया। जब पहले देवताओं को भोजन परोसा जाने लगा तो असुरों ने इसका विरोध यह करके किया कि हमारे साथ हमेशा से ही अन्याय होता आ रहा है। सब जगह पहले देवताओं को ही बुलाया या खिलाया जाता है, आज हम यह अन्याय सहन नहीं करेंगे। उनके इस आग्रह पर यह निर्णय हुआ कि आज पहले असुरों को ही भोजन करा लिया जाए बाद में देवता जायेंगे। असुर इस बात से बड़े प्रसन्न हुए। जब उन्हें भोजन परोस दिया गया तो उनके सामने खाने से पहले यह शर्त रखी गई कि कोहनी से आगे और पीछे से लेकर पूरे बाजू पर लकड़ी की एक पट्टी सब के बांध दी जायेगी फिर भोजन खाने की अनुमति दी जायेगी। असुरों और देवताओं में इसी बात से अन्तर पता चल जायेगा। कहा गया कि बाद में देवताओं के भी इसी प्रकार की पट्टियां बांधी जायेंगी। असुरों के पट्टियां बांध दी गईं। बड़ा स्वादिष्ट भोजन सामने परोसा गया। असुरों ने लालच में आकर भोजन उठाकर मुंह में डालना चाहा मगर कोहनी से बाजू न मुड़ने के कारण भोजन या तो पीछे गिरे या शरीर पर इधर-उधर। बड़ी परेशानी में असुरों ने अपना समय बर्बाद कर दिया। समय समाप्त होने पर उन्हें उठने के लिए कह दिया गया। बेचारे असुर भूखे ही उठ गए। अब वे एक ओर हो गए क्योंकि अब देवों को भोजन कराने की बारी थी देवताओं के भी उसी प्रकार की पट्टियां बांध दी गईं। अब असुर प्रसन्न होकर देवताओं का तमाशा देखने के लिए उत्सुक होकर खड़े हो गए। देवता तो देवता थे। निःस्वार्थी, परोपकारी और यज्ञमय जीवन जीने वाले। वे आमने-सामने पंक्तियों में बैठ गए। स्वादिष्ठ भोजन परोसा गया। देवताओं ने चुपचाप अपने-अपने सामने बैठे देवों को भोजन खिलाना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार आपसी तालमेल के आधार पर उन्होंने खूब भरपेट भोजन किया और तृप्त होकर उठ खड़े हुए। असुरों को अपनी कमजोरी का पता चल गया और साथ ही देवों की श्रेष्ठता का भी।

ऋग्वेद के इस संगठन सूक्त में आगे और शिक्षाएं दी गईं हैं। संगठन सूक्त के अगले मन्त्र में कहा गया है—

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन को हविषा जुहोमि॥
(ऋ० १०।१९१।३)

अर्थात् तुम्हारे गुप्त विषयों के गम्भीर विचार मिलकर हों, विचार के लिए तुम्हारी सभाएं एक जैसी हों जिनमें तुम सब मिलकर बैठ सको, तुम्हारा मनन मिलकर हो, मैं तुम्हें मिलकर विचार देने का उपदेश देता हूँ और तुमको पारस्परिक उपकार के जीवन में नियुक्त करता हूँ।

इस मन्त्र में बहुत सी मूलभूत बातों की ओर संकेत किया गया है जिनके कारण स्वर्ग जैसा वातावरण बनाया जा सकता है। पहली बात कही गई कि सभी निर्णय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलकर किए जाएं और इस प्रकार के मिलकर किए गए निर्णय ही स्थायी, सुखप्रद और सर्वमान्य हो सकते हैं। विचारों की विपरीतता ही सब प्रकार के झगड़ों की जड़ होती है। चाहे वे झगड़े पति-पत्नी में हों, बाप-बेटे में हों, समाज की संस्थाओं में हों या राष्ट्र की सरकारों में हों। विचारों की विभिन्नता को समाप्त करने के लिए कहा गया है कि तुम्हारी सभाएं भी संयुक्त हों। अलग-अलग सभाओं के अलग-अलग निर्णय ले लिये जाएं और उन्हें थोपने का प्रयास किया जाए तो उन्हें कोई भी मानने के लिए तैयार नहीं होता है। मिलकर एक ही निर्णय किया जाएगा तो ही वह सर्वमान्य भी होगा। फिर कहा गया है कि तुम्हारे मन भी तो समान हों। यदि मन समान न होंगे तब भी वैर-विरोध चलता ही रहेगा। आज परिवारों और संस्थाओं की जो चिन्तनीय स्थिति है उसका सब से बड़ा कारण ही यह है कि मन से कोई आपस में तालमेल नहीं है। चिन्तन में समन्वय आवश्यक है। मन से जब सभी समान रूप से बनेंगे तो निश्चित रूप से चिन्तन में भी समन्वय होगा अन्यथा बड़ी-बड़ी सभाओं में जूते तक चलते हुए देखे जाते हैं। परिवार के लोग आपस में एक जमीन के छोटे से टुकड़े के लिए आजीवन कचहरिओं के चक्कर काटते रहते हैं। संस्थाएं जनता के धन को आपसी गद्दियां बचाने के लिए पानी की तरह बहाती हैं। राष्ट्र एक-दूसरे को हड़पने के लिए खून की नदियां बहा देते हैं। वेद तो हमें बहुत ही पवित्र और सुन्दर उपदेश दे रहा है कि भाई सुख शान्ति और सम्पन्नता के लिए आप लोगों के मन और चिन्तन के निर्णय एक समान होने चाहिएं। इस प्रकार के निर्णय ही चिरस्थायी और सब का भला करने वाले होते हैं। इसीलिए आगे कहा गया है कि मैं तुम को पारस्परिक उपकार के जीवन में नियुक्त करता हूँ। परोपकार की भावना ऊपर-ऊपर से तो आने वाली नहीं है, इसके लिए हृदय से एक-दूसरे के भले की कामना करनी पड़ेगी। इसलिए संगठन सूक्त में आगे निर्देश दिया गया है कि—

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

(ऋ० १०।१९१।४)

अर्थात् तुम्हारे संकल्प और प्रयत्न मिलकर हों, तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हों, तुम्हारे अन्तःकरण मिले रहें जिनमें परस्पर सहायता से तुम्हारी भरपूर उन्नति हो।

यह है वेद द्वारा प्रदत्त उन्नति का सूत्र। व्यक्ति को संकल्पशील होना परम आवश्यक है और फिर उस संकल्प के लिए प्रयास भी मिल-जुलकर ही करने अपेक्षित हैं। जब इस प्रकार का वातावरण बनेगा तो निश्चित रूप से हृदयों में मिलन हो सकेगा। हम अपने विगत इतिहास में देखते हैं। रामायण काल में ऐसे भाइयों को देखते हैं जो हृदय से मिले हुए हैं। कहावत है कि चोट एक भाई को लगती है तो दर्द दूसरे को होता है। ऐसा इसीलिए हो सकता है जब हृदय से एक-दूसरे के साथ मिले हुए हों। राम जी को बनवास का आदेश हुआ तो लक्ष्मण भी साथ चलने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसा इतिहास में बहुत ही कम देखने को मिलता है मगर क्योंकि हृदय मिले हुए थे अतः स्वेच्छा से दूसरा भाई जंगल की खाक छानने के लिए तैयार हो जाता है। वैसे यदि इस बात पर चिन्तन न करें तो यह सामान्य सी बात लग सकती है मगर गहराई से चिन्तन करें तो मालूम होगा कि यह कितना बड़ा त्याग है। राजपाट के सुख और पत्नी का सुख त्याग कर अपने भाई के साथ चौदह वर्ष के वनवास को चल देना कोई सामान्य बात नहीं है। आज के तथाकथित भाइयों से यदि हम तुलना करें तो पता चल सकेगा कि यह कितना बड़ा त्याग था। आज तो कोई चार कदम चलने के लिए भी तैयार नहीं है और यहां तो चौदह वर्ष का वनवास है। यही नहीं जब भरत जी को ननिहाल से आने पर पता चलता है कि मेरी मां ने यह सब षड्यन्त्र केवल उसे राजगद्दी देने के लिए किया है तो उसे बड़ा दुःख होता है। वह लालच में आकर प्रसन्नता से उछलने-कूदने नहीं लगा। इतना बड़ा अयोध्या का राज पाकर भी उसे बहुत दुःख हुआ। कैसा आदर्श है? अपनी माँ को कोसता है वह। राम जी की माता के पास जाता है अपनी सफाई देने के लिए और कई तरह से विलाप करता है। यही नहीं वह तो जंगल से अपने भाई को मनाने के लिए चल पड़ता है कि मैं तो राज्य नहीं करूंगा, आप ही चलकर इस राज्य को संभालिए। इतना बड़ा राज्य और एक-दूसरे के लिए उसे गेंद के समान ठुकरा रहे हैं। यह कोई कम बात नहीं है बल्कि उन लोगों के जीवन वेदानुकूल थे। वे वेद आज्ञा का हृदय से पालन करने वाले थे। दूसरी ओर इतिहास में हमें ऐसे भी तो उदाहरण मिलते हैं कि राज्य हथियाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने भाइयों की हत्या कराई जाती है और बाप तक को कैद में कर लिया जाता है। औरंगजेब का उदाहरण हमारे सामने है। उनका जीवन वेदानुकूल नहीं था, इसलिए उनके सामने केवल और केवल मात्र अपना ही स्वार्थ था। फिर भी हम देखते हैं कि सच्चाई पर चलने वालों का जीवन उत्कृष्ट है। अन्त सुखद है और बुराई पर चलने वाले का अन्त भी दुःखद ही होता है। राम वनवास से आकर पुनः राज्य करते हैं मगर भाइयों और बाप को सताने वाला पश्चात्ताप की आग में जलता हुआ ही दिखाई देता है। मुगल साम्राज्य के पतन का कारण यह आपसी फूट ही तो थी। मुगल साम्राज्य के अन्तिम बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र का अन्त किन परिस्थितियों में हुआ यह सब के सामने है। उनके अपने ही बेटों और पत्नी में राज्य हथियाने के लिए कितने षड्यन्त्र चले। किस प्रकार एक-दूसरे की हत्याएं करवाईं मगर अपने हाथ से राज्य ही जाता रहा। वेदानुसार यदि जीवन को चलाया होता तो साम्राज्य का सुख सभी मिल जुलकर भोग सकते थे।

रामायण में और भी कितने ही आदर्श हमें दिखाई देते हैं मगर वे आदर्श हृदय की गहराइयों से निकले हुए थे, बाहरी दिखावा मात्र नहीं। श्रीराम जी की पत्नी भी तो अपने पति का साथ देने के लिए राज्य और सब प्रकार के सुखों को ठुकरा देती है। जिसने भी संसार में अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर कार्य किया है, उसने अपना जीवन तो सुखी बनाया ही मगर साथ-साथ वह अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और समूचे विश्व का भी कल्याण कर जाता है। इसके विपरीत जिसने अपने स्वार्थों को सामने रखकर ही जीवन-यापन किया। वह अपना भी भला नहीं कर पाता और न ही किसी अन्य का। उसका जीवन जहां अपने लिए एक अभिशाप बन जाता है वहीं वह दूसरों के लिए भी मुसीबत बन जाता है। इसलिए आइए, अपने-अपने परिवार, अपने समाज और समूचे विश्व के भले के लिए इस वेद मन्त्र की शरण में आकर अपने जीवन को बिताने का प्रयास करें। यही सब प्रकार की समृद्धियों का मूल मन्त्र है।

२१५/एस-३, सुन्दरनगर (हि०प्र०)
१७४४०२

●●

पुनः नया निर्माण करो

राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति

उठो। युवाओ अब भारत के,
पुनः नया निर्माण करो।
टूट रहे परिवार हमारे,
टूट रहा सम्पूर्ण समाज।
क्षत विक्षत हो रही मनुजता,
दानवता बढ़ती है आज।
त्राहि-त्राहि कर रही मनुजता-
का बढ़ करके त्राण करो॥
पुनः नया निर्माण करो॥
नैतिकता मिट रही यहाँ पर,
हुआ चरित्र हमारा नष्ट।
स्वार्थ सिन्धु में डूब रहे हैं,
है आचरण हमारा भ्रष्ट।
वैदिक सत्य सनातन संस्कृति-
में फिर से नव प्राण भरो॥
पुनः नया निर्माण करो॥
सारे जग को हमने ही था-
दिया धर्म का शुचि सन्देश।
भूमण्डल पर गूँज उठे थे-
अपने ऋषियों के उपदेश।
कर्णार्जुन के वंशज जागो-
दानवता निष्प्राण करो॥
पुनः नया निर्माण करो॥
बढ़ती है रावण की सेना-
अट्टहास करते हैं निशिचर।
सीताएँ हैं अब स्वराष्ट्री की-
अपहृत की जाती हैं सत्वर।
राम लखन के बढ़ो वंशजो-
धनु पर तीखे बाण धरो॥
पुनः नया निर्माण करो॥
काँप रहा देवत्व धरा पर,
यह कैसा युग आया है।
असुरों ने इस देवभूमि पर
फिर आंतक मचाया है।
ऋषि दधीचि के वंशज जागो।
दान शरीर का हाड़ करो।
पुनः नया निर्माण करो॥

मुसाफिरखाना, सुलतान (उ०प्र०)

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वेदवाणी' के वेद-परिशीलन विशेषाङ्क के विचारणीय विषय

स्व० श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक के उत्तराधिकारी श्री विजयपाल जी विद्यावारिधि द्वारा सम्पादित यह अंक पढ़ने को मिला। वेद के विद्वानों के द्वारा गहन अध्ययन एवं स्वाध्याय को इस अंक में देखकर प्रसन्नता हुई। परन्तु महर्षि दयानन्द, जो इस युग के महान् वेदों के विद्वान् तथा भाष्यकार हुए हैं, उनका विरोध पढ़कर अतीव दुःख भी हुआ। विद्वान् मनीषी किसी विषय पर मतभेद रखते हैं। परन्तु विद्वानों ने ज्ञान-उन्मेष ही जिस क्षेत्र में रहकर किया हो वे ही उसके मूल का उन्मूलन करने लगें, यह अत्यन्त चिन्तनीय विषय हो जाता है। जैसे महर्षि दयानन्द ने सृष्टि-उत्पत्ति तथा उसके वर्षों के विषय पर ऋ०भा०भू० में बहुत विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार—

प्र०—वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गये हैं?

उ०—एक अरब छानवे करोड़ आठ लाख बावन हज़ार नव सौ छिहत्तर अर्थात् १,९६,०८,५२,९,७६ वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं और यह संवत् ७७ सत्तहत्तरवां वर्त्त रहा है। (ऋ०भा०भू०)

महर्षि ने मनु के प्रमाण से इसके एक-एक वर्ष की गणना की है और इस गणना में एक अंक की भी भूल नहीं की है। परन्तु श्री पं० चन्द्रकान्त बाली लिखते हैं—**''यहाँ यह बात भी स्पष्टतया समझ लेनी चाहिये कि देवसृष्टि पहले हुई, तदनन्तर मानवसृष्टि अस्तित्व में आई। यह हमारा तर्क नहीं है, यह थोथा अनुमान भी नहीं है। यह श्रुति वचन है—**

ऋषिभ्यः पितरो जाताः देवेभ्यश्च मानवाः।

समीक्षा : प्रथम यह श्रुतिवचन ही नहीं है। इसीलिए सम्पादक महोदय को खटका होगा। इसीलिए नीचे टिप्पणी दे दी है—श्रुतिप्रमाण हमें ज्ञात नहीं। और उन्होंने स्मृति वचन कहकर सन्तोष कर लिया है। और स्मृतिवचन में भी भेद है—

ऋषिभ्यः पितरो जाता पितृभ्यो देवमानवाः।

परन्तु कोई विद्वान् इस बात से कैसे सहमत होगा कि मानवों से भिन्न देवसृष्टि क्या है? यदि देव से अभिप्राय मानवों में ही व्यक्ति विशेष हैं, तब तो ठीक हो सकता है। परन्तु लेखक ने तो **''हम सृष्टि इतिहास को त्रिधा विभक्त मानते हैं—१. प्राग्देवसृष्टि, २. देवसृष्टि, ३. मानवसृष्टि।''** ऐसा लिखकर और आगे उनके वर्षों की जो गणना की है, उससे अपनी सहमति प्रकट की है जो महर्षि दयानन्द के लेख से स्पष्ट विरुद्ध तथा असंगत है—

लेखक के अनुसार--

प्राग्देवसृष्टि =	१,२९,६०,०००	वर्ष
देवसृष्टि =	१,८५,२४,१६०००	सौर वर्ष
मानव सृष्टि =	१२०५,२८०००	सौरवर्ष
सृष्टि संवत्	१,९७,२९,४९,०९७	

उपरोक्त सृष्टि संवत्	(१,९७,२९,४९,०९७)
महर्षि परिगणित सृष्टि संवत्	१,९६,०८,५३,०९७
अन्तर =	०१,२०,९६०००

प्रस्तुत लेख में मानव जीवन का आविर्भाव १२ करोड़, ०५ लाख तथा २८ हजार कलिपूर्व में माना है जो कि महर्षि लेख से ही नहीं, प्रत्युत आधुनिक विज्ञान के भी विरुद्ध है।

२. इसी प्रकार महर्षि ने वेदों में मन्त्रों से पूर्व अंकित ऋषियों के विषय में स्पष्ट लिखा है—**ये ऐतिहासिक व्यक्ति थे, जिन्होंने मन्त्रार्थ का दर्शन किया है।** परन्तु इसी अंक में **श्री बलदेव जी आर्य का ऋषि के सम्बन्ध में लेख** छपा है, जिसमें आप लिखते हैं—**''परन्तु ये व्यक्तिवाची नाम नहीं हैं। फिर ये मन्त्रद्रष्टा ऋषि कैसे हो सकते हैं? विद्वानों ने अनेक प्रकार परिकल्पनाएँ की हैं।''** और अन्त में लेखक ने अपना आशय स्पष्ट करते हुए लिखा है—**''वेद की भाषा में ऋषि का मुख्य अर्थ परमेश्वर है।''** इस अपने मन्तव्य की पुष्टि करने में लेखक सर्वथा असमर्थ रहे हैं। लेखक ने ऋषि सम्बन्ध में जो ३७ मन्त्रतन्त्र उनके अर्थ दिये हैं, उनमें भी परमेश्वर परक अर्थ नहीं हैं। (२१ से २५ मन्त्र द्रष्टव्य है)

(२) श्री बी०के० श्रीवास्तव ने 'वेदवाणी' के उक्त लेख के विषय में लिखा है—''वेदवाणी'' मासिक नवम्बर ९६ के अङ्क में पृष्ठ २ से २१ तक श्री बी० उपेन्द्र राव जी (ई-६/

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५८ प्राइवेट सेक्टर, ओए कालोनी, भोपाल-४६२०१६) का एक लेख "**पुरुष सूक्त का पाठ परिशीलन**" नाम से प्रकाशित हुआ है—जिसमें चारों वेदों में आये "पुरुष सूक्त" के निम्न पाठों की विवेचना की गई है—

१. ऋग्वेद संहिता..................=दशम मण्डल का ९०वाँ सूक्त "पुरुषसूक्त"

२. शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिन संहिता=अध्याय ३१वाँ सूक्त "पुरुषाध्याय"

३. सामवेदीय कौथुम संहिता·····=पूर्वार्चिक के छठे अध्याय, खण्ड चार की चौथी दशति में पठित ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त के पांच मन्त्र

४. अथर्ववेदीय शौनक संहिता·····=१९वें काण्ड का छठा सूक्त

विवेचना काफी विस्तार से है—यानि पत्रिका के २० पृष्ठ इसी लेख के हैं। विवेचना लगभग सभी दृष्टियों से की गई है। जैसे पुरुष सूक्त के पूर्व का सूक्त पुरुष सूक्त के बाद के सूक्त का "पुरुष सूक्त" से सम्बन्ध, मन्त्रों का देवता, छन्द, ऋषि भेद, पाठभेद, क्रमभेद, मन्त्रभेद, अर्थभेद, पाठ-परिवर्तन, अर्थ-विस्तार, भाषा-विस्तार तथा मन्त्रों की आनुपूर्वी की नित्यता आदि।

लेखक के उपरोक्त लेख से वेद सम्बन्धी निम्न मुख्य अवधारणाएँ वांछित होती हैं—

१. चारों वेद अपौरुषेय हैं—यानि वर्तमान में उपलब्ध चारों वेद संहिताएँ ईश्वरोक्त हैं।

२. वेद मन्त्रों की आनुपूर्वी नित्य है—यानी मन्त्रों का अनुक्रम भी ईश्वरोक्त है।

३. मन्त्रों में विद्यमान पाठभेद और मन्त्रों की भागशः पूर्णतः एवं पाठभेद युक्त पुनरुक्ति भी ईश्वरोक्त है।

लेखक का विचार है कि मन्त्रों के देवता, छन्द, स्वर परिवर्तनशील हैं। प्राचीन ऋषियों द्वारा निर्धारित होने के कारण।

ऋषि सम्बन्धी विचार इस प्रकार है—

ऋषि दो प्रकार के होते हैं—

१. वास्तविक यानि ऐतिहासिक　　२. कल्पित

वास्तविक ऋषि दो प्रकार के होते हैं—

१. मन्त्र-द्रष्टा　　२. मन्त्रकृत

मन्त्र-द्रष्टा ऋषि दो प्रकार के होते हैं—

१. मन्त्र का साक्षात् करने वाले　　२. मन्त्रार्थ का साक्षात् करने वाले

मन्त्रार्थ का साक्षात् करने वाले ऋषि दो प्रकार के होते हैं—

१. स्व आत्मा द्वारा अर्थ प्रेरित　　२. अन्य द्वारा अर्थ प्रेरित

अन्य द्वारा अर्थ प्रेरित ऋषि दो प्रकार के होते हैं—

१. ईश्वर द्वारा अर्थ प्रेरित　　२. मनुष्य द्वारा अन्य निमित्त द्वारा अर्थ प्रेरित

मन्त्रकृत ऋषि दो प्रकार के होते हैं

१. मन्त्रों के संकलनकर्त्ता　　२. मन्त्रों के संशोधक या छायामात्र निर्मापक

लेखक ने अपनी कई अवधारणाएँ इस प्रकार निश्चित की हैं—

LIBRARY

१. चारों वेद मन्त्रों के चार संकलन हैं। किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा बाद में अथर्ववेद का संकलन किया गया है। इन चारों संकलनों के कर्त्ता प्राचीन ऋषि हैं।

२. विशिष्ट उद्देश्य के अलावा भी अन्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु, एक वेद के कुछ मन्त्रों को कुछ सूक्तों के अन्य वेद में/अन्य वेदों में स्थान दिया गया है। इस प्रयास के कर्त्ता भी ऋषि हैं। किन्तु कुछ अर्वाचीन/ऋषियों ने एक वेद के कुछ मन्त्रों को उसी वेद में पुनः उद्धृत भी किया है।

३. जिन प्राचीन ऋषियों ने मन्त्रों का संकलन करके चार वेद निर्मित किये, उन्हें मन्त्र अपने पूर्वज ऋषियों से प्राप्त हुए, जिन्होंने सहज रूप से ईश्वर से मन्त्रों का साक्षात्कार किया। ये पूर्वज ऋषि वे नहीं हैं जिन्हें आजकल मन्त्रों के साथ पढ़ा जाता है।

४. जिन कुछ अर्वाचीन ऋषियों ने जिन मन्त्रों की उसी वेद में, अन्य वेद में, अन्य वेदों में पुनरावृत्ति की, उनमें से अधिकांश मन्त्रों में उन्होंने इच्छानुसार विभिन्न परिवर्तन किये। इनके कई प्रयास असफल एवम् असंगत भी सिद्ध हुए।

५. जब मन्त्रद्रष्टा ऋषियों को अर्थ-विस्तार अथवा विषय-विस्तार की प्रेरणा मिली, तब इन्होंने दृष्ट मन्त्रों की छाया में स्वप्रेरणा से अन्य मन्त्रों की रचना की तथा उन्हें वेद में प्रविष्ट कराया। विषय विस्तार एवं प्रायोगिक रूप से प्रयुक्त करने के उद्देश्य से उन मन्त्रों के उत्तर भागों की रचना की तथा उन्हें मन्त्रों के साथ जोड़ दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. जो मन्त्रार्थद्रष्टा अवर थे—उन्होंने मन्त्र के पीछे भी जोड़ा और आगे भी।

लेखक ने ऋग्वेदोक्त "पुरुष सूक्त" को आधार/मूल पाठ मानकर—अन्य वेदों में आये पाठ की तुलना प्रतिमन्त्र करते हुए बड़ी विचित्र टिप्पणियां दी हैं। उनमें बानगी के रूप में २-४ नीचे लिखे दे रहा हूँ, जिससे लेखक के आशय की थोड़ी बहुत झलक मिल जाये—

१. ऋग्वेद (१०।९०।१) का मन्त्र "सहस्रशीर्षा" यजुर्वेद (३१।१) में भी है—लेकिन इसमें "विश्वतो वृत्या" के स्थान पर "सर्वतः स्पृत्वा" पाठ है। सामवेद (पू० ६।४।४।३) में "विश्वतो" के स्थान में "सर्वतो" है। यजु० एवं साम० ने "विश्वतः" का अर्थ "सर्वतः" किया है। इस प्रकार अर्थ करते समय वैदिक पदों के मूल्य एवं व्यापकता को हम घटाते हैं, बढ़ाते नहीं॥

इसी प्रकार ऋग्० के "वृत्या" शब्द में जो व्यापकता है वह यजु० के "स्पृत्वा" अर्थ में नहीं।

अथर्व में "सहस्रशीर्षा के स्थान पर "सहस्रबांहुः" पाठ है। अथर्व० ने "सहस्रपात्" के कारण "सहस्रबाहुः" की कल्पना की—क्योंकि "सहस्रशीर्षा" के कारण "सहस्राक्षः" (१९।६।१) पद अनावश्यक समझा गया। सम्भवतः अथर्व० ने अलंकरणयुक्त शब्द-प्रयोग के स्थान में वास्तविकता की कल्पना की। तब यह उचित होता है कि "सहस्रशीर्षा" को न त्यागते हुए "सहस्राक्षः" के स्थान में "सहस्रबाहुः" का प्रयोग किया जाता।

२. ऋ० (१०।९०।२) के मन्त्र "पुरुष एवेदं" के "भव्यम्" पद को यजु० (३१।२) साम० (पू० ६।४।४।६) एवम् अथर्व० (१९।६।४) में "भाव्यम्" बनाकर केवल अर्थ का विस्तार कर दिया गया है।

सामवेद ने ऋ० के दूसरे एवं तीसरे मन्त्र को तोड़कर पूर्वार्ध-उत्तरार्धों की अदला-बदली की है तथा पाठभेद भी किया है—जो साधारण अर्थ-विस्तार एवं भाषा विस्तार को दिखाने की दृष्टि से ठीक हो सकते हैं—पर सामवेद ने जो मन्त्रभेद यहाँ किया है, वह ऊपरी दृष्टि से ठीक जँचते हुए भी वास्तव में असफल सिद्ध हुआ है।

जो विद्वान् वेदों की आनुपूर्वी को नित्य मानते अर्थात् ईश्वरोक्त मानते हैं—वे केवल श्रद्धावश ऐसा मानते हैं-स्वविवेचना पूर्वक नहीं। यदि उनके अनुसार वेद एक नहीं-चार हैं, तो चारों वेदों की आनुपूर्वी नित्य होनी चाहिये। इस नित्यता में विरोधाभास नहीं होना चाहिये—यही विवेचना की कसौटी है। इस कसौटी से वेदों को दूर रखकर, जैसा है, वैसे को नित्य मानना उचित नहीं।

यदि ऋग्० की मन्त्रानुपूर्वी नित्य हैं तो उसके तोड़ने वाले यजु० साम० अर्थवेदों की आनुपूर्वी कैसे नित्य हो सकती है? अर्थ करना अथवा अर्थ विस्तार की दृष्टि से पाठ-भेद करना उचित हो सकता है। प्रसंगतः मन्त्रों की पुनरुक्ति भी ठीक हो सकती है। किन्तु एक ही सूक्त के मन्त्रों के पुनरावृत्ति करते समय मन्त्रों के क्रम को बदल देना और मन्त्रों के पूर्वार्ध-उत्तरार्ध के भागों को तोड़कर अन्य मन्त्रों में अदला-बदली कर देना उचित कैसे हो सकता है? फिर इस परिवर्तन को ऋषिकृत न कहते हुए ईश्वरोक्त या नित्य क्यों कहा जाये?

सामवेद ने जो यह परिवर्तन किया है—वह सर्वथा असाधु है।

अथर्व० ने ऋग्वेदिक वाक्य "यदन्नेनातिरोहति" के स्थान में "यदन्येनाभवत् सह" कहकर ऋग्वेदिक वाक्य एवं शब्द-प्रयोग की गरिमा को नष्ट कर दिया है। **अथर्ववेद का वाक्य नितान्त मानुष वाक्य** है। "अन्नेन" के स्थान में "अन्येन" तथा "अतिरोहति" के स्थान में "अभवत् सह" जैसे साधारण पद प्रक्षेपण वांछनीय नहीं हैं।

३. ऋग्वेद (१०।९०।७) के मन्त्र "तं यज्ञं बर्हिषि" को, अथर्ववेद (१९।६।११) में "बर्हिषि" के स्थान में "प्रावृषा", "जातमग्रतः" के स्थान पर "जातमग्रशः" तथा "ऋषयश्च" के स्थान में "वसवश्च" पाठभेद करके अर्थभेद कर दिया है। "बर्हिषि" अधिकरण कारक शब्द है—इसको हटाकर करणकारक अन्य शब्द "प्रावृषा" को कैसे रखा जा सकता है? क्या अथर्ववेद ऋग्वेद की गलती को सुधार रहा है? "अग्रशः" पाठ में अर्थ विस्तार है—लेकिन ऋग्वेदिक पाठ ही अधिक उपयुक्त है।

इससे यह प्रतीत होता है कि जो चारों वेदों के पाठ को ईश्वरोक्त स्वीकार करते हैं—वे केवल एक वेद के अध्ययन से अधूरे ज्ञान वाले रह जायेंगे। जब तक वे चारों वेदों का अध्ययन नहीं कर लेंगे, तब तक किसी विषय के प्रतिपादन के लिए कैसे लेखनी उठा सकेंगे? (जैसे केवल ऋग्वेदिक मन्त्रों के आधार पर

(शेष पृष्ठ २२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवलखा महल में 'सत्यार्थप्रकाश'-सम्मेलन

—मनमोहनकुमार आर्य

राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री भैरोंसिंह शेखावत ने आह्वान किया कि सत्यार्थप्रकाश का सन्देश इस नवलखा महल से पूरी दुनिया में पहुंचना चाहिये। उन्होंने कहा कि सत्यार्थप्रकाश का निरन्तर पाठ एवम् इसकी एक-एक बात का विश्लेषण होना चाहिये। मुख्य मन्त्री ने श्रोताओं को कहा कि वह स्वामी दयानन्द से कुरीतियों से जूझने की प्रेरणा लें। आगे कहा कि सत्यार्थ-प्रकाश से लाभ तब होगा जब इसका जन-जन में प्रचार होगा। श्री शेखावत उदयपुर में सत्यार्थप्रकाश न्यास एवम आर्यसमाज सान्ताक्रूज, मुम्बई के सयुंक्त तत्त्वावधान में आयोजित स्वामी विद्यानन्द सम्मान समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में बोल रहे थे। समारोह की अध्यक्षता हनुप्रसाद चौधरी एवं संचालन प्रसिद्ध आर्यनेता कैप्टेन देवरत्न आर्य ने किया। श्री शेखावत ने नवलखा महल के पुनरुद्धार कार्य को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की तथा कहा कि वह बचपन में वैदिक पाठशाला में पढ़े हैं जहां प्रतिदिन सन्ध्या एवं साप्ताहिक यज्ञ होता था। उन्होंने बताया कि उस विद्यालय में सत्यार्थप्रकाश व्याख्यानमाला भी चलती थी। आपने कहा कि आर्यसमाजियों की ही तरह वह भी संस्कारी हैं। समाज में ऊंच-नीच तथा सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख कर मुख्यमन्त्री ने कहा कि यदि स्वामी दयानन्द 10 वर्ष और जीवित रहते तो लोग इन्हें न केवल खत्म ही कर देते अपितु भूल ही जाते। स्वामी दयानन्द एवम् आर्यसमाज के परिप्रेक्ष्य में श्री शेखावत ने कहा कि समाज, निष्ठा से मार्गदर्शन करने वाले मनीषियों का, अनुकरण करने के लिए तैयार है। उन्होंने लोगों का मन परिवर्तन करने की आवश्यकता बताई।

श्री शेखावत ने कहा कि नवलखा महल ही पर्याप्त नहीं है, वह अन्य आवश्यकताएँ भी पूरी करेंगे। उन्होंने लोगों को कहा कि वह महल को ऐसा रूप दें जिससे महल में प्रविष्ट होते ही सत्यार्थप्रकाश की भावना मन में पैदा हो। देश के कोने कोने से आये लगभग 15 हजार लोगों के जनसमूह को उन्होंने कहा कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा किया है, किसी को कृतज्ञ नहीं किया। आगे भी जब जो सहयोग आर्यसमाज चाहेगा, उसे वह पूरा करेंगे।

इससे पूर्व मुख्यमन्त्री ने आर्य जगत् के शिरोमणि, मनीषि, अपरिग्रहवर्ती, सत्यासत्य मीमांसक स्वामी विद्यानन्द सरस्वती को 31 लाख रुपये का चैक, एक ट्राफी तथा अभिनंदन पत्र भेंट किये। स्वामी विद्यानन्द जी ने अपने धन्यवाद में कहा कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं जबकि इसके विपरीत, राजस्थान के स्कूलों में पढ़ाया जाता है कि आर्य बाहर से आये थे। इसके दुष्प्रभाव का उल्लेख कर स्वामी जी ने पाठ्यक्रम में संशोधन की मांग की। मुख्यमन्त्री ने कहा कि वह पुस्तकों को स्वयं पढ़कर निर्णय करेंगे। स्वामी जी ने सम्मान से पूर्व मुम्बई के विद्वान् डा० सोमदेव शास्त्री ने उनका विस्तृत परिचय दिया तथा आर्यसमाज, सान्ताक्रूज, मुम्बई के मन्त्री संगीत शर्मा ने स्वामी जी को दिये प्रस्तुत अभिनन्दन पत्र का पाठ किया। समारोह एवं ट्रस्ट के मन्त्री श्री गोपीलाल एरन ने पुष्पहार से उनका सम्मान किया।

सम्मान समारोह का आरम्भ स्वागत गीत से हुआ। कैप्टेन देवरत्न आर्य ने कहा कि नवलखा महल आर्यसमाज के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अंग है। महल के पुनरुद्धार एवं विकास के लिए बनाई गई 51 लाख रुपये की योजना की सूचना देते हुए उन्होंने बताया कि 40 लाख रुपया एकत्र कर लिया गया है। प्रसिद्ध अन्वेषक आर्य विद्वान् प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु के अनुसार किसी एक कार्यक्रम में एकत्रित 40 लाख रुपये की यह राशि आर्यसमाज के इतिहास में सर्वाधिक है। स्वागत भाषण में प्रथम आर्यसमाज, काकड़वाड़ी के प्रधान झाऊलाल शर्मा ने मुख्यमन्त्री को देवपुरुष कहा। उन्होंने कहा कि कपड़े को काटकर सिलने की ही तरह मण्डन से पूर्व खण्डन आवश्यक है। सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम चार समुल्लासों को उन्होंने सत्यार्थप्रकाश की शोभा बताया। समारोह के अध्यक्ष हनुप्रसाद चौधरी ने न्यास का परिचय देते हुए न्यास की आवश्यकताओं का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि न्यास का पुनरुद्धार ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। सार्वदेशिक सभा के मन्त्री स्वामी सुमेधानन्द, प्रधान स्वामी धर्मानन्द सरस्वती सहित अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों ने स्वामी विद्यानन्द जी का पुष्पहार से सम्मान किया। समारोह में मुख्यमन्त्री श्री भैरोसिंह शेखावत का भी सम्मान किया गया। उन्हें दिए गए अभिनन्दन पत्र का पाठ अशोक आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने किया जिसमें मुख्यमन्त्री को राष्ट्रीय कमल दिवाकर, क्षत्रिय वंशावतंस, आर्य ज्येष्ठ तथा राष्ट्रीय मूल की राजनीतिक विधा के सजग प्रहरी उल्लेखित किया गया।

समारोह के प्रथम दिन 26 फरवरी को नवलखा महल के अन्दर परिसर में यज्ञ एवं ध्वजारोहण के पश्चात् स्वामी विद्यानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में सत्यार्थप्रकाश सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में सांसद रासासिंह, झाऊलाल शर्मा, मनुस्मृति के भाष्यकार डा० सुरेन्द्रकुमार (रोहतक) सहित अनेक विद्वानों के प्रवचन हुए। अध्यक्षीय भाषण में स्वामी विद्यानन्द ने कहा कि सत्यार्थप्रकाश में सिद्ध किया गया है कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आये। आर्यों को उन्होंने भारत का मूल निवासी बताकर कहा कि आर्यों ने ही विश्व के सभी देशों को बसाया है। उन्होंने मांग की कि संविधान में संशोधन कर देश का नाम "आर्यावर्त" किया जाये। स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए स्वामी जी ने कहा कि उन्होंने हर समस्या के मूल पर आक्रमण किया और सत्य व यथार्थ को स्थापित करने का प्रयास किया। "दयानन्द की बात मानी होती तो कश्मीर का हिस्सा पाकिस्तान में नहीं जाता।" सरदार पटेल के इस वाक्य का उल्लेख कर स्वामी जी ने कश्मीर को पाकिस्तान का अंग बनाने की दिशा में किये गये माउण्ट बेटन के कुत्सित प्रयासों को बताया। स्वामी जी ने कहा कि सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास की शिक्षा के विरुद्ध, एक विदेशी राजनयिक माउण्टबेटन को गवर्नर जनरल बनाने की गलती ही कश्मीर समस्या का मूल थी। आचार्य वेदव्रत मीमांसक ने अपने प्रवचन में कहा कि संसार की हर बात का समाधान सत्यार्थप्रकाश में मिल जाता है। इस सम्मेलन के बाद नवलखा महल में महर्षि दयानन्द की जीवन की घटनाओं पर आधारित एक भव्य "चित्र दीर्घा" का उद्घाटन सम्भागीय आयुक्त श्री के०ए० मणि ने किया।

आयोजन के प्रथम दिन 26 फरवरी के अपराह्न 2.30 बजे गुलाबबाग स्थित नवलखा महल से एक भव्य एवं विशाल शोभायात्रा आरम्भ हुई। इस शोभायात्रा में राजस्थान के अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, हरयाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, आंध्र एवं मध्यप्रदेश सहित देश के अनेक भागों से आये हजारों की संख्या में लोग शामिल थे। शोभायात्रा के आरम्भ में सार्वदेशिक सभा के मन्त्री स्वामी विश्वानन्द एवं स्वामी सम्पूर्णानन्द जी सत्यार्थप्रकाश हाथ में लिये हुए जनता को दिखा रहे थे। इनके पीछे कुछ दूरी पर, एक रथ पर स्वामी विद्यानन्द सरस्वती (दिल्ली), स्वामी धर्मानन्द सरस्वती एवं स्वामी ओमानन्द (चित्तौड़) थे। रथ के पीछे एक बग्घी पर हनुप्रसाद चौधरी एवं दानवीर सत्यनारायण लाहोटी थे। इसी बग्घी पर इस समारोह के प्राण एवं यशस्वी नेता कैप्टेन देवरत्न आर्य भी रथी के आसन पर धोती, कुर्ते एवं सिर पर गांधी की टोपी में विराजमान थे। शोभा यात्रा में विभिन्न स्थानों से आये आर्यवीर शौर्य एवं वीरता के प्रदर्शन कर रहे थे। वहीं भिन्न भिन्न आर्यसमाजों के जत्थे अपने-अपने बैनरों सहित भजन एवं उद्घोष करते हुए आगे बढ़ रहे थे। शोभा यात्रा के मार्ग पर जगह-जगह, बड़े-बड़े द्वार सजाये गये थे। लोगों का उत्साह देखकर ऐसा लगता था कि यदि इस शक्ति का उचित रूप से संयोजन किया जाये तो "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन नहीं है।

तीन दिवसीय समारोह में मनुस्मृति, शहीद स्मृति, राष्ट्र-रक्षा एवम् आर्य संगीत सम्मेलन सहित व्यायाम प्रदर्शन का आयोजन भी किया गया। मनुस्मृति सम्मेलन के मुख्य वक्ता मनुस्मृति के भाष्यकार डा० सुरेन्द्रकुमार, झज्जर ने डा० अम्बेदकर द्वारा हिन्दु समाज में जन्मना जाति के कारण सहन की गई यातनाओं के प्रति संवेदना प्रदर्शित कर उनके पाश्चात्य संस्कृति के प्रति प्रेम एवं विश्ववरेण्य वैदिक संस्कृति की उपेक्षा की आलोचना की। महर्षि मनु आदि राजा थे तथा वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप वेदों में मिलता है। मनु ने किसी को शूद्र नहीं कहा, उन्होंने तो वर्णों के कर्म बताये हैं। जो व्यक्ति शिक्षा ग्रहण नहीं करता उसे शूद्र बताया चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य की ही सन्तान क्यों न हो। मनु के शूद्रों के प्रति अच्छे व्यवहार का उल्लेख कर उन्होंने कहा कि मनु विधान करते हैं कि द्विज अपने घरों में भोजन से पूर्व शूद्रों को भोजन करायें। उन्होंने कहा—

कि मनु के विरुद्ध पक्षपात का आरोप निराधार है। दण्ड-व्यवस्था में शूद्रों को नाममात्र एवं ब्राह्मणों को सर्वाधिक दण्ड देकर भी मनु ने शूद्रों के प्रति न्याय, दया एवं सहानुभूति व्यवहार का परिचय दिया है।

मनुस्मृति सम्मेलन में बोलते हुए दिल्ली के आर्य विद्वान् वेदप्रकाश श्रोत्रिय ने सत्यार्थप्रकाश के आधार पर कहा कि मनुस्मृति सृष्टि के आरम्भ में हुई है। वेदों को श्री श्रोत्रिय ने अपौरुषेय बताया। उन्होंने कहा कि मानवता के इतिहास में मनुस्मृति मनुष्य-रचित प्रथम ग्रन्थ है। और आगे कहा कि मनु ने सर्वप्रथम राजव्यवस्था को प्रचलित किया। उन्होंने आगे कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जाति-व्यवस्थां परमेश्वर तथा वर्ण की व्यवस्था आचार्य करता है। विद्वान् वक्ता ने कहा कि मनुस्मृति भेषज ग्रन्थ है। एक ही गोत्र के सभी वर्णों में पाये जाने को वर्ण परिवर्तन का द्योतक बताकर उन्होंने कहा कि सूर्य की तरह परमात्मा द्वारा प्रदत्त वेद-ज्ञान भी सभी वर्णों एवं मानवमात्र के लिए हैं। उन्होंने कहा कि कोई माने या न माने परन्तु यह सत्य है कि आर्यसमाज की छत्रछाया में ही डा० भीमराव अम्बेदकर का निर्माण हुआ। बड़ौदा नरेश की आर्थिक सहायता एवं महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण द्वारा उन्हें गोद लेने का उन्होंने उल्लेख किया।

सम्मेलन में कादियां के स्वामी सम्पूर्णानन्द ने कहा कि यदि मनुपोषित वर्ण-व्यवस्था को देश ने माना होता तो वर्तमान के दुर्दिन न देखने पड़ते। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, (दिल्ली) के प्रधान श्री धर्मपाल आर्य ने जयपुर उच्च न्यायालय में मनु के समर्थन में रखे अपने पक्ष का विवरण दिया। न्यायालय ने उन्हें १० मिनट में १४ मुद्दों पर अपना पक्ष प्रस्तुत करने को कहा था। प्रतिवादी पक्ष के अधिवक्ता श्री रामनाथ आर्य में जुड़े आर्य शब्द का उल्लेख कर श्री धर्मपाल ने न्यायालय में माननीय न्यायाधीश को बताया था कि इनके नाम के साथ जुड़ा आर्य शब्द, महर्षि मनु की व्यवस्था के अन्तर्गत प्रयोग किया गया है। उन्होंने कहा कि ब्राह्मण आदि चार वर्ण आर्य शब्द के भेद हैं। श्री धर्मपाल आर्य ने कहा कि मनुस्मृति के अनुसार गुरुकुल का आचार्य, पुरुष का २५ वर्ष एवं स्त्री का 16 वर्ष की आयु के पश्चात् वर्ण निर्धारण करता है। उन्होंने कहा कि सामाजिक मान्यता के अनुसार भंगन का दिखना शकुन तथा ब्राह्मण का दिखना मनहूस कहा जाता है। ऐसा इसलिए है कि प्रातः का समय ब्राह्मण के लिए यज्ञ एवं सन्ध्या आदि कार्यों के लिए नियत है। विद्वान् वक्ता ने बताया कि प्रातः शूद्र का अपने कार्यों में संलग्न रहना गौरव की बात है। श्री धर्मपाल ने कहा कि अदालत में गलत चीज पेश करने वाले को दण्ड मिलता है। मनु को उन्होंने निर्दोष बताया और कहा की प्रक्षेप करने वाले अपराधी हैं, मनु नहीं। अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर उनके निष्कर्ष रूप में स्वामी धर्मानन्द ने कहा कि समतावादी होने से समस्या हल नहीं होगी। ***उन्होंने कहा कि हमारी सन्तानें गोमांस खायेंगी। वेद नष्ट हो जायेगा।***

शहीद सम्मेलन में पं० लेखराम एवं रामप्रसाद बिस्मिल को स्मरण कर डा० भवानीलाल भारतीय ने कहा कि शहीदों का गुणानुवाद ही पर्याप्त नहीं है। इस सम्मेलन के मुख्य वक्ता प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर ने शहीदों को भूलने की प्रवृत्ति पर पीड़ा व्यक्त की। ओजस्वी भाषण में उन्होंने कहा कि पं० लेखराम को इतिहास का सब से अधिक ज्ञान था। पं० लेखराम के साहस एवं शास्त्रार्थों के लोमहर्षक उदाहरण प्रस्तुत कर आर्यसमाज के प्रमुख विद्वानों के जीवनी लेखक एवं तड़प के धनी प्रो० जिज्ञासु ने उन्हें *प्रतिष्ठा का पर्वत* बताया। लेखराम जी के फारसी एवम् उर्दू ज्ञान का उल्लेख कर ओजस्वी वक्ता ने कहा कि—

लेखराम जी ने मिर्जा गुलाम अहमद के चुनौतीपूर्ण पद्यात्मक आक्रमणों का उसी छन्द में उत्तर देकर अपने विपुल फारसी व उर्दू ज्ञान का परिचय दिया था। उन्होंने पं० लेखराम की वैदिक धर्म के प्रति अटूट निष्ठा, उन्हीं के शब्दों-"चाहे कोई मुझे काट दे, चाहे जीवित जला दे, परन्तु मैं वेद-मार्ग से नही हटूंगा।" में प्रस्तुत की। अपने भाषण के आरम्भ में श्री जिज्ञासु ने समारोह को ऐतिहासिक अवसर बताकर एवं इकतीस-इकतीस लाख रुपये की धनराशि से स्वामी ओमानन्द, स्वामी सर्वानन्द एवं स्वामी विद्यानन्द जी का सम्मान करने एवं समाज को इन प्रभूत साधनों को उपलब्ध कराने के लिए कैप्टेन देवरत्न आर्य को आर्यसमाज का गौरव बताया।

राष्ट्र-रक्षा-सम्मेलन : २८ फरवरी में स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती जी ने कहा कि देश को आजाद कराने के लिए हजारों नौजवानों ने अपने जीवन भेंट किए तथा आर्यसमाज ने आजादी में मुख्य भूमिका निभाई। प्रभावशाली वक्ता वेदप्रकाश श्रोत्रिय ने एक राजा, बूढ़े हाथी एवं निर्धन प्रजा की कथा सुनाकर राष्ट्र को एक बूढ़े मरणासन्न हाथी का संज्ञा दी। विवेचना कर उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय एकता एवम् अखण्डता के लिए देश में केवल एक भाषा संस्कृत का होना आवश्यक है। वेशभूषा की एकता एवं समानता की भी उन्होंने वकालत की। देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त बताकर श्री श्रोत्रिय ने इतिहास ठीक करने का आह्वान किया। सम्मेलन में बोलते हुए राजस्थान के शिक्षामन्त्री गुलाबसिंह कटारिया ने शहीदों का गुणानुवाद कर अच्छाइयों को बढ़ाने का आह्वान किया।

राष्ट्र-रक्षा-सम्मेलन के अध्यक्ष कैप्टेन देवरत्न आर्य ने कहा कि आर्यसमाजों में शहीदों के चित्र लगाये जाने चाहियें। उन्होंने कहा कि आर्यसमाज एक ऐसी मशीन है जिसमें बुरा आदमी अच्छा बनाया जा सकता है। अपने पक्ष में श्री आर्य ने अमीचन्द एवं स्वामी श्रद्धानन्द जी के नामों का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि विगत १०० वर्षों में ऐसे लोग भी आर्यसमाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आये, जो अच्छों को बुरा बताते हैं। उनसे सतर्क रहने की श्री आर्य ने आवश्यकता बताई।

कैप्टेन देवरत्न आर्य ने भारत द्वारा पाकिस्तान एवं चीन के साथ हुए युद्धों की पृष्ठभूमि एवं भारत को हुई हानि की विस्तार से चर्चा एवं समीक्षा की। उन्होंने कहा कि स्वामी दयानन्द देश रक्षा के लिए एक भाषा एवम् एक धर्म को आवश्यक मानते थे। श्री आर्य ने कहा कि आर्यसमाज जातिवाद में फंस गया है। इस पर रोष व्यक्त कर उन्होंने एक जाति बनाने की अपनी इच्छा व्यक्त की। कैप्टेन आर्य ने कहा कि देश की भाषा एक होनी चाहिये। अवतारवाद का उल्लेख कर उन्होंने कहा कि आज देश में ६०० जीवित भगवान् हैं एवं मूर्तिपूजा का उल्लेख कर उन्होंने इससे समाज को होने वाली हानि पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा— कि एक पूजा-पद्धति होने पर ही राष्ट्र की रक्षा हो सकती है। कैप्टेन देवरत्न आर्य ने कहा कि मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए स्वामी दयानन्द का जीवन बीता। आर्यसमाज की अपनी एक अलग पहचान रही है। वह पहचान अब खोती जा रही है। बच्चों को देशभक्त बनाने का आह्वान कर प्रख्यात आर्यनेता ने अपने व्याख्यान को विराम दिया। अपने प्रवचन में झज्जर के स्वामी ओमानन्द जी ने कहा कि आर्यसमाज का इतिहास बलिदानियों का इतिहास है। स्वामी जी ने कहा कि देश व धर्म की रक्षा के लिए जितने बलिदान आर्यसमाज ने दिये हैं उतने अन्य किसी ने नहीं दिये। आयोजन में ब्र० आर्य नरेश एवं स्थानीय विधायक श्री सनाढ्य ने भी विचार व्यक्त किये।

समारोह में प्रसिद्ध भजनोपदेशक ब्रजपाल कर्मठ एवं सत्यपाल सरल ने अपने भजनों से श्रोताओं का मनोरंजन किया। श्रोताओं में सर्वत्र अपूर्व उत्साह दृष्टिगोचर हुआ। श्री सत्यानारायण लाहोटी ने इस आयोजनार्थ लगभग ५ लाख रुपये से अधिक दान दिये। उनका एवं प्रमुख दानियों का सम्मान किया गया। गोपीलाल एरन आदि ने पुरुषों एवं बहिन श्रीमती सुनीता आर्य ने स्त्रियों को माल्यार्पण, शाल एवं श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया।

२५ फरवरी को दिल्ली से चेतक एक्सप्रेस से उदयपुर के लिए प्रस्थान के अवसर पर गाड़ी में समारोह में भाग लेने वाले आर्यों की भारी संख्या एवम् रेल के प्रत्येक डिब्बे में भजनों एवं सामूहिक सन्ध्या ने वेद एवम् अध्यात्म सरिता प्रवाहित कर दी। आर्यसमाज के क्षेत्र में विगत २८ वर्षों से सक्रिय जीवन में ऐसा उत्साह और श्रद्धा पहली बार देखने को मिली।

(समाप्त)

(पृष्ठ १८ का शेष)

"वैदिक सृष्टि (विद्या) रहस्य" ग्रन्थ पूरी बात नहीं कहता)।

प्रस्तुत सन्दर्भ में ऋग्वेद एवम् अथर्ववेद के दोनों मन्त्रों को मिलाकर उनके आशय का क्रोडीकरण इस प्रकार करना होगा—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रावृषा प्रोक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। (शः)
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयो वसवश्च ये॥

"तब यह एक पूर्ण मन्त्र बनेगा, जो दो वेदों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर निर्मित है। यदि यही कसौटी जारी की जाये, तो वेदों पर बोलने-लिखने वाले कम होते जायेंगे।"

"वास्तव में चारों वेदों एवम् उनकी शाखाओं में विद्यमान पाठान्तर पुनरुक्तियाँ, मन्त्रक्रमों में परिवर्तन, शब्दों के प्रक्षेप आदि के कारण वेदों के आधार पर भी वेदपाठियों एवं वेदानुयायियों के सम्प्रदाय बन गये हैं—जो ईर्ष्या, द्वेष और कलह के निमित्त बने हुए हैं।"

"यह एक विडम्बना ही है कि इनको दूर करने के बजाये, विद्वान् इनका समर्थन ही करते रहे हैं।"

४. ऋग्वेद (१०।९०।९) का मन्त्र "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः" यजु० (३१।७) में बिना किसी पाठभेद के है— लेकिन अथर्व० (१९।६।१३) में "छन्दांसि" के स्थान पर "छन्दो ह" पाठ भेद के साथ है।

अथर्व० ने बहुवचन वाले पद "छन्दांसि" को एकवचन में परिवर्तित किया है—जिससे भाषा का विस्तार प्रदर्शित हुआ है। तथा निपात "ह" का आगम कराके निश्चयात्मकता भी दर्शायी है। किन्तु "जज्ञिरे" क्रिया को "जज्ञे" करना भूल गया। वास्तव में विषय प्रतिपादन में तथ्य की ओर अधिक ध्यान रखना पड़ता है। इस दृष्टि से ऋग्वेदिक बहुवचन पद "छन्दांसि" को एकवचन नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि "ऋचः" एवं "सामानि" भी बहुवचन में हैं।

ऋग्वेद में "यजु०" पद एकवचन वाला है। क्या तथ्य यही है? क्या "यजूंषि" उत्पन्न नहीं हुए थे? तो तथ्यकथन की दृष्टि से ऋड्मन्त्र भी दोष पूर्ण हैं?

(२२ स्टेट बैंक कालोनी, सुन्दरनगर, रायपुर) ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में वैदिक विषयों के साथ आधुनिक विषयों का समावेश

—डा० प्रदीपकुमार जोशी, जन-सम्पर्क अधिकारी, गु०कां०वि०वि० हरिद्वार

यह सर्वविदित है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार की स्थापना का मूल उद्देश्य भारत को साक्षर बनाना ही नहीं अपितु भारत की प्राचीन संस्कृति को अक्षुण्ण रखना तथा वेद का प्रचार-प्रसार करने हेतु विद्वान् तैयार करना और तत्कालीन आवश्यकतानुसार देशभक्त तैयार करना था। अपने इस उद्देश्य में संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द पूर्ण सफल भी रहे। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि स्वामी जी ने उस समय भी केवल वेदपाठी पण्डितों की जमात इकट्ठी करने की कल्पना नहीं की थी अपितु संसार की भौतिक प्रगति को देखते हुए विज्ञान विषयों को भी संस्कृत, वेद के साथ जोड़कर रखा।

देश की आजादी के बाद भारत प्रगति के उस पथ पर अग्रसर हुआ जब केवल प्राचीन विषयों को ही लेकर आगे नहीं बढ़ा जा सकता था। अतः गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के लिए भी यह आवश्यक था कि वह केवल वहीं तक सीमित ना रह जाता जिसके बाद विश्व में उसे गुरुकुल के अलावा जानने वाला कोई और न हो। आज़ादी के आन्दोलन में इस संस्था ने विशेष रूप से सहयोग किया। अतः राष्ट्रीय स्तर की संस्था होने के नाते सन् १९६२ में इसे Deemed To Be University का दर्जा मिला। तब से ही विश्वविद्यालय में आधुनिक विषयों का समावेश भी साथ-साथ होता चला गया।

हर किसी संस्था की प्रगति में नेतृत्व बहुत महत्त्व रखता है। इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय का यह सौभाग्य है कि उसे मनसा, वाचा, कर्मणा आर्यसमाज को समर्पित जौलाई, ९३ से ऐसा नेतृत्व मिला जिसने विश्वविद्यालय को आधुनिकतम विषयों से सुसज्जित कर उस जगह लाकर खड़ा कर दिया है जिसके बाद संस्था के कार्यकर्ताओं को या तो नये शोध करने हैं या फिर नये प्रयोगों को जोड़ना है। कुलपति डा० धर्मपाल जो अहं से तो दूर हैं ही, साथ ही विश्वविद्यालय की प्रगति से अपने को नहीं अपितु अपने सहयोगी शिक्षक शिक्षकेतर कर्मचारियों को जोड़कर देखते हैं।

यह शोचनीय है कि भारत में अपनी संस्कृति की उपेक्षा तथा पाश्चात्य की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है। जबकि जर्मनी, अमेरिका जैसे देश वेदान्त संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति की ओर उन्मुख हो रहे हैं। ऐसे समय में आर्य विद्वानों का यह कर्तव्य है कि इस ओर विशेष ध्यान दिया जाये। केवल आलोचना-प्रत्यालोचना से काम नहीं चलेगा अपितु प्रायोगिक रूप में कुछ करना होगा। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए इस विश्वविद्यालय में कुलपति डा० धर्मपाल के प्रयास विशेष उल्लेखनीय हैं।

सत्र १९९६-९७ से एम०ए० वेद में प्रवेश लेने के समय जिन छात्रों की आयु २५ वर्ष से कम तथा पूर्व परीक्षा में ६० प्रतिशत अंक हों उन्हें ५००/- प्रति छात्रवृत्ति दी जाएगी तथा अन्य सभी छात्रों को बिना भेदभाव के २५०/- प्रतिमाह छात्रवृत्ति दी जाएगी जो कि पहले मात्र १००/- दी जाती थी।

विद्यालंकार के छात्रों को ६०/- के स्थान पर २००/- तथा वेदालंकार के उन सभी छात्रों को जिन्होंने पूर्व परीक्षा में ६० प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं, आर्य विद्या सभा, आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली तथा हरियाणा के सहयोग से ५००/- प्रतिमास छात्रवृत्ति दी जाएगी।

अलंकार स्तर पर नये पाठ्यक्रमों जैसे समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र आदि विषयों में वैदिक मान्यताओं का समावेश किया गया है।

गणित विषय में वैदिक गणित एक अलग से प्रश्नपत्र चलाया जा रहा है। भौतिकशास्त्र में वैदिक फिजिक्स नाम से अलग प्रश्नपत्र उत्तीर्ण करना अनिवार्य किया गया है। रसायन शास्त्र, पर्यावरण विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान में कुछ पाठ्यक्रम वेद ज्ञान पर आधारित है।

नये पाठ्यक्रम एम०सी०ए० (Master of Computer Application) में एक पूरा प्रश्नपत्र Applecation of Computer in Nirukta एम०बी०ए० का पहला प्रश्न पत्र ही Vedic Management रखा गया है।

विश्वविद्यालय में निम्न विषयों का नियमित पठन-पाठन चल रहा है—

वेद, संस्कृत, दर्शन, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व, योग, हिन्दी, अंग्रेजी, मनोविज्ञान, भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति, गणित, भौतिकी, रसायन, कम्प्यूटर, जन्तु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, औद्योगिक सूक्ष्म जीव विज्ञान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्यावरण विज्ञान, सूक्ष्म जीव विज्ञान, एम०सी०ए०, पी०जी० डिप्लोमा-कार्मिक प्रबन्धन एवम् औद्योगिक सम्बन्ध तथा एम०बी०ए०।

गत वर्ष ९६ के अतिरिक्त नये भवनों का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ हुआ जिनमें अधिकांश भवन पूर्णता की ओर हैं। जैसे पर्यावरण भवन, रसायन की नई प्रयोगशाला, पुरातत्त्व संग्रहालय में तीसरी मंजिल का निर्माण प्रारम्भ, वेद/कला महाविद्यालय का मुख्य द्वार, व्यावसायिक हिन्दी एवम् अंग्रेजी प्रयोगशालाएं, माइक्रोबायोलॉजी के लिए नया भवन, योग के लिए नया भवन इत्यादि।

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार जो कि हरिद्वार की एक आवश्यकता थी तथा अब तक अन्यों के भवन में चलाया जा रहा था। अब पूर्ण स्वतन्त्र रूप ले रहा है। इस हेतु गत वर्ष ही प्रयास प्रारम्भ कर दिए गए थे। विज्ञान तथा प्रबन्धन के सभी पाठ्यक्रम नये भवन में प्रारम्भ कर दिए गये हैं।

नये स्थान पर ३६ कक्षों का निर्माण लगभग हो चुका है। आगामी सत्र से कला विषयों सहित सम्पूर्ण पठन-पाठन यहीं प्रारम्भ हो जाएगा।

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून में आधुनिक सुख-सुविधाओं से सुसज्जित छात्रावास का निर्माण हो चुका है, जिसमें वार्डन के निवास के अतिरिक्त १०० छात्राओं के रहने की व्यवस्था है।

छोटी कक्षाओं तथा अलंकार स्तर तक की छात्राओं के लिए पहले से ही आश्रम है। उनमें भी सभी पुराने प्रसाधन कक्षों का पुनर्निर्माण किया गया है तथा एक जलगत टैंक छात्राओं की सुविधा के लिए बनाया गया है। छोटे बच्चों के लिए झूले तथा टी०टी० टेबल आदि अन्य सभी खेलने के सामान की व्यवस्था की गई है। पुस्तकालय को भी समृद्ध किया गया है।

द्वितीय परिसर देहरादून में स्नातकोत्तर स्तर पर अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत तथा एम०सी०ए० के पाठ्यक्रम भी संचालित हैं। विद्यालंकार स्तर पर वे सभी विषय पढ़ाए जा रहे हैं जो हरिद्वार में मुख्य परिसर में संचालित हैं।

कन्या गुरुकुल हरिद्वार में एम०ए० स्तर पर विश्वविद्यालय में संचालित सभी पाठ्यक्रम पढ़ाए जा रहे हैं।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में मुण्डका निवासी श्री दयानन्द जी के सहयोग से इस वर्ष एक नया अतिथिगृह का निर्माण किया गया है।

विश्वविद्यालय में रक्षाबन्धन, दीपावली, होली, आदि त्यौहारों के साथ दयानन्द दिवस, श्रद्धानन्द बलिदान दिवस, शिक्षक दिवस तथा छात्रों के शैक्षिक तथा गैर शैक्षिक सर्वांगीण विकास हेतु अनेक कार्यक्रमों का आयोजन होता रहता है। इस वर्ष श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के अवसर पर विज्ञान विभाग ने विशेष झाँकियाँ प्रस्तुत की।

अपनी संस्कृति-सभ्यता को सुरक्षित रखते हुए विकास-पथ पर अग्रसर होने के लिए परिवर्तन व्यष्टि और समष्टि दोनों रूपों से आवश्यक है। छात्रों को गुरुकुलीय व्यवस्था के अनुसार प्राचीनता के साथ अर्वाचीन का ज्ञान कराना ही विश्वविद्यालय का ध्येय है जिसमें वह निरन्तर आगे बढ़ रहा है। ●●

हमारा प्यारा आर्यसमाज

प्रशान्त कुमार शास्त्री, एम०ए० (संस्कृत)

हमारा प्यारा आर्यसमाज।
हमारा प्यारा आर्यसमाज॥

जगद् का आदि मूल भगवान्।
वेद का दिया उसी ने ज्ञान॥
वह तो एक, अनेक हैं नाम।
बताता रहस्य ये आर्यसमाज॥
हमारा प्यारा ॥ १ ॥

साधने मानव का कल्याण।
शरीर, मन, आत्मा का हो ध्यान॥
तभी तो विश्व बनेगा महान्।
ध्येय यह रखता आर्यसमाज॥
हमारा प्यारा ॥ २॥

भगतसिंह, बिस्मिल रामप्रसाद।
कराने माता को आजाद।
दिये हैं पूत इसी ने महान्।
देश में किया है क्रान्ति का काज॥
हमारा प्यारा ॥ ३ ॥

धर्म हो सब का केवल एक।
सब चलें वेदमार्ग पर नेक॥
न रहे ऊँच-नीच का भेद।
बढ़ाओ अन्य प्राणि अनुराग।
हमारा प्यारा ॥ ४॥

गायिकाः—कु० प्रेरणा शास्त्री
आर्यसमाज, परली वैद्यनाथ,
जि० बीड-४३१५१५ (महाराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद् गृहस्थ की महान् साधना

—गोपबन्धु आर्य

गृहस्थाश्रम समुद्र का नाम है, जिसका सन्तरण किये बिना संसार पारावार तरना कठिन ही नहीं अपितु दुस्तर एवं दुःसाध्य भी है। विवेक पूर्वक संयम, सदाचार, तप एवं परोपकार की जीवनोपयोगी साधना सम्पन्न करते हुए ही इस महार्णव का सम्यक् संतरण किया जा सकता है। अन्यथा सद्ग्रन्थ, सद्गुरु मार्गदर्शक के अभाव में न जाने कितने ही जन इसमें प्रविष्ट होकर अपने ही अविवेक अनाचार से दुःख शोक और सन्ताप के भंवर जाल में चक्कर खाते हुए मानव जीवन रूपी अमूल्य निधि को नष्ट कर लेते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

गृहस्थाश्रम वह तपोवन है जिसके आत्मसाधना रूपी निर्मल जल से अपने को सर्वदा परिसिंचित करना होता है। तभी यह पल्लवित पुष्पित एवं फलित होकर साधक को संतृप्त एवं सफल बना देता है। गृहस्थाश्रम सचमुच स्वर्गाश्रम है। गृहस्थाश्रम को स्वर्गीय बनाने हेतु साधकों को इसमें तत्परता पूर्वक संयम, सदाचार, तप, सविवेक पुरुषार्थ की साधना करनी होती है। अन्यथा यह गृहस्थाश्रम तप, श्रम एवं संयम के अभाव में नरकाश्रम भी है, जिसमें डूबा व्यक्ति नाना जञ्जालों में उलझता हुआ महादुःखों को सहते हुए जीवन लीला को समाप्त कर देता है। उसे मात्र वेदवेत्ता, तत्वदर्शी अनूचान पथ-प्रदर्शक ब्रह्मनिष्ठ की तपोमयी वाणी ही किनारे लगा सकती है (नान्यःपन्था) और दूसरा मार्ग नहीं है। गृहस्थाश्रम वह परीक्षास्थली है, जहाँ व्यक्ति के संयम सदाचार, विद्या तप एवं योग्यता की भली प्रकार परख होती है। तद्तुरूप ही वह ऐश्वर्यवान् होता है।

गृहस्थाश्रम वह कल्पवृक्ष है, जहाँ साधक को अपनी प्रखर प्रतिभा, सजगता, सावधानी एवं विवेक पूर्वक शिवसंकल्प एवं दृढ़संकल्प की साधुसाधना करनी पड़ती है। यह साधना उसे आप्तकाम बनाकर मानव जीवन को धन्य बना देती है। महर्षि मनु महाराज गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थैनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥

(मनु० अ० ३ ‍२ श्लो०)

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

(मनु०६ अ०२सोक ९)

गृहस्थ ही ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रमियों का अन्न-वस्त्रादि से पालन पोषण करता है। इस प्रकार सब का पालक तथा पोषक होने से गृहस्थाश्रम ही सब का आधार सब से ज्येष्ठ। जैसे सभी बड़े-बड़े नदी नाले एंव छोटी-छोटी नदियाँ समुद्र में जाकर समाहित हो जाती हैं। इन सभी का आधार एवम् उत्पत्तिस्थान समुद्र ही है। ऐसा ही गृहस्थाश्रम सब का आधार उत्पत्तिस्थल एवम् आश्रयस्थल है। अतः गृहस्थ का सुधार ही समस्त सुधारों का मूल है। गृहस्थ में ही सभी आश्रमी समाहित हैं। यही सब का आश्रय केन्द्र है।

जब गृहस्थ जीवन में ग्रहणीय गुण धर्म को प्रधानता देते हुए ऋतुगामी पत्नीव्रत एवं संयत जीवन का निर्वाह करता है तब वह गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारी है। इस विषय पर मनु जी का प्रमाण है—

ऋतुकालगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा।
ब्रह्मचारी एव भवति तत्र गृहस्थाश्रमे वसन्॥

(मनु०)

आगे गीता में भी इसका वर्णन उपलब्ध होता है-

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥

(श्रीमद्भगवत गीता० ५ ।३)

अर्थात् हे अर्जुन! उस गृहस्थ को नित्य संन्यासी ही समझना जो ईर्षा, द्वेषरहित एवं एषणाओं से मुक्त है, द्वन्द्वों से रहित निर्द्वन्द्व अर्थात् सुख-दुःख, मान, अपमान, हर्ष, शोक में सम रहने वाला गृहस्थ सुखपूर्वक संसार बन्धन से मुक्त होकर मोक्षसिद्ध मुक्तात्मा बन जाता है। उपर्युक्त बातों को विचार करके भली प्रकार गृहस्थाश्रमी की सब से ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ होने की महत्ता समझ में आती है। वस्तुतः गृहस्थ का अर्थ मात्र केवल दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करना ही नहीं है। वस्तुतः गृहस्थ का यदि दाम्पत्य जीवन सफल एवं सार्थक है तो समस्त साधनाएँ घर में ही भली प्रकार से सम्पन्न की जा सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थ के सुव्यवस्थित दाम्पत्य जीवन की अवहेलना एवम् उपेक्षा करने वालों को पदे-पदे पतन एवं विविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जिस गृहस्थ परिवार में सभ्य एवं सुसंस्कृत सदस्यों का संयुक्त संयत परिवार है, वातावरण सुमर्यादित एवं पवित्र है, वहीं आत्म कल्याण और लोक कल्याण की सभी साधनाएँ संभव हैं। मात्र घर त्यागकर भागने से अथवा हतोत्साहित होने से या निराश होने से कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। वेद विद्या एवम् आत्मसाधना तथा ऋषिकर्म का उत्तम प्रशिक्षण प्राप्त करके गृहस्थ रूपी गाड़ी को सोत्साह सविवेक सही ढंग से चलाने की आवश्यकता है। इसी से आत्मोन्नति एवं विश्व-कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा।

सफल गृहस्थ के दाम्पत्य जीवन के प्रकाशस्तम्भ उदाहरणस्वरूप ब्रह्मर्षि जनक, महर्षि वेदव्यास, महर्षि उद्दालक, महर्षि सत्यकाम जाबाल, महर्षि कश्यप, महर्षि जमदग्नि, महर्षि वसिष्ठ-अरुन्धती, महर्षि अत्रि-अनसूया, महर्षि अगस्त्य-लोपामुद्रा, महर्षि याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी, राम-सीता, कृष्ण-रुक्मिणी आदि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। ये अपने गृहस्थ जीवन में ही महर्षि, ब्रह्मर्षि, योगीराज आदि पद को प्राप्त किये हुए मुक्त महामानव वैश्वानर शुद्ध-बुद्ध बने थे।

गृहस्थ की पुण्य भूमि को सद्विवेक एवं शुभ कार्यों की आत्मसाधना से जीवन को उत्कर्षमय बनाते हुए इसे पुष्पित पल्लवित एवं दिव्यफलों को सुफलित करें।

इत्योम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सहायक प्रभु का वरदान

सत्यदेवप्रसाद आर्य 'मरुत्'

है प्रभु अपना सच्चा सहायक हितु-
स्नेह बाहें बढ़ाये हमारे लिए।
बन्द होता है द्वार कोई अगर,
खोल देता हजारों सहारे लिये॥

मकड़ी का जाल अन्दर समेटे हुए,
खींचते और फैलाते हैं हम जिसे।
सारा संसार है सह आकर्षण भरा,
कौन ललचाता है ना इसे देख के।
ईंट पर ईंट सज जाता कैसे अहो।
बनती अट्टालिका थोड़ा गारे लिये॥

भाग्य का छींका टूटा किसी का यहाँ,
फाड़ छप्पर है मिल जाती दौलत कभी।
छोड़ संशय तू उसकी शरण में तो जा,
मूढ़ रोता है क्यों तू बना आलसी।
सिहं सबल उद्यमी भी धरा पर लखो,
दौड़ता क्यों? विवश, अपने चारे लिये॥

है बियावान सुनसान भयानक जगह
उसकी कृपा वहीं पर अधिक दीखती।
वृक्ष खुशहाल फैले वहाँ ही बहुत,
स्नेह वारि भला किसको है सींचता।
कौन भरता उदर है कृमि कीट का,
रेंग सकते न वो बे सहारे जिये॥

प्रेम नगर, नेमदार गंज (नबादा-बिहार) ८०५१२१

यद् भद्रं तन्न आसुव

सत्यदेवप्रसाद आर्य 'मरुत्'

गाऊँ तेरे गीत मीत मैं, होकर प्रीत विभोर।
अन्धकार से ले चल मुझ को, शुभ्र प्रकाश की ओर॥
त्राता-भ्राता-पथ प्रदर्शक,
कुशल क्षेम देने वाले।
हों उन्नायक सुख संवर्द्धक,
सब की सुधि लेने वाले।
बिना शर्त और भेद-भाव बिन, मिले कृपा की कोर।
अन्धकार से ले चल मुझ को, शुभ्र प्रकाश की ओर॥
सवितर्दुरितानि परासुव, यद् भद्रं तन्न आसुव॥
अन्तस्तल में हो व्यापक तुम
भ्रम-भय-कुण्ठा दूर हटा दो।
मैं हूँ अन्धा-व्यसनी-पातक,
जैसा भी हूँ अब अपना लो।
कर दो अब तो इस मूरख को, भगवन् भाव-विभोर॥
अन्धकार से ले चल मुझ को, शुभ्र प्रकाश की ओर॥
सवितर्दुरितानि परासुव, यद् भद्रं तन्न आसुव॥
ऋषि-तपस्वी-सिद्ध पुरुष ने,
तुझे कसौटी पर परखा।
दिग्दिगन्त में तेरी छवि को,
बार-बार देखा निरखा।
मेरी नजर क्यों नहीं पहुँचती, तुझ तक ओ चित चोर।
अन्धकार से ले चल मुझ को, शुभ्र प्रकाश की ओर॥
यद् भद्रं तन्न आसुव।
सवितर्दुरितानि परासुव॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष ''दयानन्दसन्देश'' पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुंचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनायें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

१ आचार्य गुरु विरजानन्द संस्कृत महाविद्यालय, करतारपुर, जालन्धर, PB-144801
२ श्री बसन्तकुमार न० मदनसूरे (विद्यार्थी) श्रुति सौरभ इंजीनियर कालोनी राष्ट्रीयशाला के पास बड़ी उमरी अकोला
३ श्री मन्त्री जी आर्यसमाज भरुच नवा डेरा भरुच (गुजरात)-392000
४ श्री जीवनराज जी राजौर्मा मैडिकल हाल अरमौर जि० निजामाबाद (AP)
५ **M/s. Savita Traders, 6-1-630/5 Khairtabad Hyderabad-500004 (AP)**
६ श्रीमती बुद्धिमती आर्या वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर हरिद्वार-यू०पी०
७ श्री दयानन्द शास्त्री S/o श्री जगतसिंह आर्य ग्राम+पो० टोटोली जि० रोहतक (हर०)
८ श्री रतनलाल राय ४२ प्रेमपुरी गाजियाबाद-201001, यू०पी०
९ श्री प्रेमचन्द गोयल C/o रामकुटीर लाल कोठी यज्ञशाला वैदिक मंदिर ब्रज घाट गाजियाबाद-यू०पी०
१० श्री चेतन नारायण कपूर, ब्लाक 14/28 ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-8
११ श्री के०बी०लाल, 93 शिवाजी मार्ग, देहरादून-यू०पी०-248001
१२ श्रीराम गोयल आर्य स्टेशन रोड, गंगापुर, सिटि (राज०)
१३ श्री योगेश्वर स्वरूप भटनागर ऐडवोकेट बारा कोटा (राज०)
१४ डॉ० हरिश्चन्द्र जी बंगे M/s संत ज्ञानेश्वर हास्पिटल परली बैजनाथ जि० बीड़ MR
१५ डॉ० मु०ब० काले वैद्यनाथ कालेज परली बैजनाथ जि० बीड़ (एम०आर०)
१६ श्री कौसल किशोर जी C/o मै० नारायणदास लक्ष्मणदास रामगंज शाहजहांपुर (यू०पी०)
१७ श्री जगदीशप्रसाद वैदिक, वैदिक सदन महू रोड विष्णुपुरी के सामने इन्दौर (म०प्र०)
१८ श्री बिट्ठलेश आर्य वेद मन्दिर बहु चराजी रोड करोल बाग बड़ौदा
१९ श्री लालमन आर्य, 305 माडल टाउन हिसार (हरि०)

धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/97
आर/आर/नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/4/97

मई १९९७

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/97

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।**

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आकर्षक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्यः लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान : **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाषः- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.............................
ग्राम.............................
डा०.............................
जिला.............................

मुद्रकः ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ओ३म्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

सितम्बर, १९९७

FREE COPY

वर्ष २५ : अंक ११

दयानन्दाब्द : १७३

विक्रम संवत् : भाद्रपद, २०५४

सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९८

संस्थापक : स्व. दीपचन्द आर्य

सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य

व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)

आजीवन सदस्यता २५०)

विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- ईश्वर-स्तुति २
- वेदोपदेश ३
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ ४
- वह आर्यसमाज है ५
- शंका समाधान ६
- ब्रह्मर्षि महामना विरजानन्द ७
- स्वामी दयानन्द सरस्वती और हिन्दी भाषा ९
- भव बन्धन काट ले १०
- स्वामी दयानन्द जन्म-तिथि ११
- यांज्ञवल्क्य-मैत्रेयी आर्यों के ऐतिहासिक आदर्श १२
- हिन्दी का कार्यान्वयन : संवैधानिक उत्तरदायित्व है १५
- उपनियमों की यात्रा १७
- भारत माता के मस्तक से : अंग्रेजी के कलंक को मिटाओ १९
- मानव निर्माण : प्रथम सोपान २२
- पौराणिक मान्यताओं के : वैदिकीकरण के औचित्य की प्रवृत्ति २५

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द अठारह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द उन्नीस सौ रुपये और सजिल्द बीस सौ रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर-स्तुति

–डा० राघवानन्द मस्करी, काव्य रचयिता, सिकरौदा, जि० भिण्ड (म०प्र०)

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।। (कठोपनिषद् २१ मं० १५)

अर्थ–सब वेद सर्व धर्मानुष्ठान रूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उसका नाम ओम् है।

हैं वेद मिल जिस तत्त्व का, गुणगान सब ही कर रहे।
तप योग साधन सिद्धजन, हैं ध्यान जिसका धर रहे।।
होकर व्रती यति धर्म के हैं, कामना जिसकी करें।
ओंकार है संक्षिप्त वह, जिसको विबुध अधिगत करें।।१।।

अवलम्ब बिन अवलम्ब का है सुष्ठुतर होता वही।
अवलम्बनों का अन्ततः अवलम्ब भी होता वही।।
विज्ञान के अवलम्ब के, निज इष्ट मुनि अवगत करें।
आधार है बस एक ही, जिसको बिबुध अधिगत करें।।२।।

है सर्वगत नभतुल्य वह, सर्वेश सर्वाधार है।
गा गा जिसे कोविद थके, पाया न पारावार है।।
प्रणिधान जिसका ध्यानगत, योगी मुदित मन हो करें।
वह ध्येय एक महान् है, जिसको विबुध अधिगत करें।।३।।

गतिशील जिसकी प्रेरणा से, है निखिल जग हो रहा।
प्रस्फुरण तक भी पर्ण का, जिसके बिना नहीं हो रहा।।
नियमित उसी के तन्त्र से, गति सूर्यादिक हैं करें।
वह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है, जिसको विबुध अधिगत करें।।४।।

जैसे व्यवस्थित है प्रगति, घटिका में घटिकाकार से।
वैसे प्रगति नियमित करे, शशि सूर्य जिसमें हार से।।
कैसा नियन्त्रण है, अहो, जो क्षण न व्यतिक्रम है करे।
वह है नियामक विश्व का, जिसको विबुध अधिगत करें।।५।।

देता कर्म गत जीव को, शुभ वा अशुभ फल भोग जो।
सुख-दुःख से है जोड़ता, अदभुत महा संयोग जो।।
सब कीट कुञ्जर-वृत्ति निज, जिसकी व्यवस्था से करें।
है एक विश्वम्भर वही, जिसको विबुध अधिगत करें।।६।।

भोगायतन है तन कथन, निर्लेप ईश्वर को कहा।
परिपूर्ण अनवच्छिन्न जो, दिग्देश कालिक हो रहा।।
उसका बता अवतार वर, निज बाल्य का द्योतन करें।
'होलस' स्वयम्भू-तन रहित, जिसको विबुध अधिगत करें।।८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश– एक परमेश्वर ही उपास्य देव है। 'उपासना' शब्द का अर्थ समीपस्थ होना। उपासना का लाभ—पर्वत के समान दुःख आने पर भी न घबराना और सब को सहन कर लेना।

श्यावाश्वः ऋषिः। सविता (ईश्वरः) देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः।।

अथ योगाभ्यासविषयमाह।।

अथ योगाभ्यास का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म् युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽ इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः।। (यजु० ३६।२)

पदार्थः–(युञ्जते) समादधति (मनः) सङ्कल्प-विकल्पात्मकम् (उत) अपि (युञ्जते) (धियः) प्रज्ञाः कर्माणि वा (विप्रा) विविधमेधाव्यापिनो मेधाविनः (विप्रस्य) विशेषेण सर्वत्र व्याप्तस्य (बृहतः) सर्वेभ्यो महतः (विपश्चितः) अनन्तविद्यस्य (वि) (होत्रा) ये जुह्वत्याददति ते (दधे) दधाति (वयुनावित्) यो वयुनानि = प्रज्ञानानि वेति सः (एकः) अद्वितीयः (इत्) एव (मही) महती (देवस्य) सकल-जगत् प्रकाशकस्य (सवितुः) सर्वान्तर्यामिणः (परिष्टुतिः) परितः सर्वतः स्तुति = प्रशंसा।।

सपदार्थान्वयः–हे मनुष्याः ! यः (एकः) अद्वितीयः (वयुनावित्) जगदीश्वरः, जो वयुनानि = प्रज्ञानानि वेत्ति सः सर्वं (वि + दधे) दधाति, यस्य (सवितुः) सर्वान्तर्यामिणः (देवस्य) सकलजगत्प्रकाशकस्य इयं (मही) महती (परिष्टुतिः) परितः = सर्वतः स्तुतिः = प्रशंसा अस्ति, (होत्राः) ये जुह्वत्याददाति ते (विप्राः) योगिनो विविधमेधाव्यापिनो मेधाविनः यस्य (बृहतः) सर्वेभ्यो महतः (विपश्चितः) अनन्तविद्यस्य (विप्रस्य) विशेषेण सर्वत्र व्याप्तस्य मध्ये (मनः) सङ्कल्प-विकल्पात्मकं (युञ्जते) समादधति (उत) अपि (धियः) प्रज्ञाः कर्माणि वा (युञ्जते) तम् (इत्) एव यूयमुपाध्वम्।।

भाषार्थ–हे मनुष्यो ! जो (एक) अद्वितीय (वयुनावित्) वयुन = प्रज्ञानों को जानने वाला जगदीश्वर सब को (वि + दधे) विशेष रूप से धारण कर रहा है, जिस (सवितुः) सर्वान्तर्यामी (देवस्य) सकल जगत् के प्रकाशक ईश्वर की यह (मही) विशाल पृथिवी (परिष्टुतिः) स्तुति = प्रशंसा है, (होत्राः) जो ईश्वर को ग्रहण करने वाले (विप्राः) विविध मेधाओं में व्यापक मेधावी लोग जिस (बृहतः) सब से महान् (विपश्चितः) अनन्त विद्या से युक्त (विप्रस्य) विशेष रूप से सर्वत्र व्यापक ईश्वर के मध्य में (मनः) संकल्प विकल्पात्मक मन को (युञ्जते) समाहित करते हैं, (उत) और (धियः) प्रज्ञा वा कर्मों को (युञ्जते) लगाते हैं, उसकी (इत्) ही तुम उपासना करो।

भावार्थः–हे मनुष्याः ! यो योगिभिर्ध्येयो यस्य प्रशंसा-दृष्टान्ताः सूर्यादयो वर्त्तन्ते, यः सर्वज्ञोऽसहायः सच्चिदानन्द-स्वरूपोऽस्ति, तस्मै सर्वे धन्यवादा दातुमर्हा वर्त्तन्ते, तमेवेष्ट-देवं यूयम् मन्यध्वम्।।

भावार्थः–हे मनुष्यो ! जो योगी जनों का ध्येय है, जिसकी प्रशंसा के दृष्टान्त सूर्यादि हैं, जो सर्वज्ञ, असहाय, सच्चिदानन्दस्वरूप है, उसके लिए सब धन्यवाद देने योग्य हैं, उसे ही इष्टदेव तुम मानो।।

(दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर से उद्धृत,
व्याख्याता–**श्री पं० सुदर्शनदेव आचार्य)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

मैं लगभग १८-२० वर्षों से 'दयानन्दसन्देश' का पाठक रहा हूँ और आजीवन सदस्य हूँ। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आजीवन वेदानुसन्धान में खोज करके यह सिद्ध किया कि वेद ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त ज्ञान है। इसलिए वेदों का पढ़ना-पढ़ाना आर्यों का परम धर्म है। और उन्होंने वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को दिलाया, चाहे वे शूद्र तथा स्त्री हों। उन्होंने वेदविरुद्ध मतों का भी खण्डन किया। इस कार्य में राजा-महाराजाओं के प्रलोभनों को ठुकराकर वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार किया। यही कार्य 'दयानन्दसन्देश' भी कर रहा है। 'सृष्टि-संवत्' के सम्बन्ध में प्रमाणों व युक्ति सिद्ध करके महर्षि लिखित सृष्टि संवत् को ही ठीक सिद्ध किया और शरीर में जीवात्मा का स्थान विषय में विवाद उठा और इसमें, महर्षि के पक्ष को ही सत्य सिद्ध किया और अब सुख-दुःख प्रकृति के गुण हैं या जीवात्मा के, यह विवाद चल रहा है। यदि इस विषय में दर्शनों, उपनिषदों का गम्भीर स्वाध्याय किया जाये तो सत्यपक्ष उजागर ही हो जाता। सुख-दुःख-मीमांसा विशेषांक पढ़कर तो किसी प्रकार का सन्देह ही नहीं रहता। मैं शास्त्री जी का लेख पढ़ता हूँ तो आनन्द मिलता है। मैंने श्री शास्त्री जी को कभी देखा नहीं, मगर चिन्तनरूप में वे मेरे पास हैं।

श्रीराम निनाजी चवरे, किल्लावार्ड, 99, अलकापुर जि० बुलडाणा (महा०)

'दयानन्दसन्देश' के लेखराम बलिदान शताब्दी अंक में उत्तमोत्तम लेख व कविताएँ है, जो कि प्रशंसनीय हैं।

कपिलदेव शर्मा, ७६, श्री गऊशाला रोड, नई मण्डी, मुज० नगर

'दयानन्दसन्देश' का पं० लेखराम बलिदान शताब्दी विशेषांक एक सराहनीय प्रयास है। जीवन में प्रेरणा तथा उत्साह की उमंग भरने वाले आर्य महापुरुषों के जीवन कृत्यों की अच्छी जानकारी मिलती है। आपके सत्प्रयास से इस पत्रिका ने उच्चश्रेणी का स्थान प्राप्त किया है। आर्य जगत् के किसी न किसी महापुरुष की जीवनियाँ अवश्य प्रकाशि[त] करने का प्रयास करें। ऐसा करने से भावी नवयुवा पीढ़ी [को] सन्मार्ग दर्शन मिलता रहेगा।

सत्यप्रकाश त्यागी, मुजफ्फरन[गर]

'दयानन्दसन्देश' का पं० लेखराम शताब्दी विशेषा[ंक] देखकर अति प्रसन्नता हुई। यह अंक भी पूर्व के अंकों [की] भांति नई जानकारी देता है। अतः ऐसे ज्ञानवर्धक अ[ंक] प्रकाशित करने पर शतशः धन्यवाद। क्या मैत्रेयी याज्ञवल्क[्य] काल्पनिक हैं। विषय पर मेरी प्रतिक्रिया छापेंगे, एक ले[ख] भेज रहा हूँ।

अजेय ब्रह्मचारी, गुरु ब्रह्मानन्द आश्रम, पिला[नी] रोड, पुण्डरी (कैथल)

जुलाई ९७ का दयानन्द-सन्देश पठनीय, सराहनीय ए[वं] संग्रहणीय सामग्री से सुसज्जित अंक है। पं० लेखराम जै[से] जन-सेवकों के शताब्दी विशेषांक प्रकाशित कर आप लोगों [ने] बहुत ही प्रशंसनीय तथा प्रेरणाप्रद कार्य किया है। इस अ[ंक] को पढ़कर मैं तो अत्यधिक प्रभावित हुआ हूं।

वीरेन्द्र शर्मा कौशि[क] मऊरानीपुर (झांसी)

उपासना क्यों करनी चाहिये?

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे ही परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष, दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये।

जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है। (स० प्र० सप्तम०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आर्यसमाज है

भगवान देव "चैतन्य", 78/एस-4, सुन्दरनगर,-1744021 (हि०प्र०)

हिमालय से भी ऊचें विचार हैं जिसके,
सिन्धु से भी गहरे उद्‌गार हैं जिसके।
वेदवाणी का जो निर्भय प्रचारक–
दीन-दुःखियों की सर्वदा आवाज है।।
वह आर्यसमाज है.........

नारी का उत्थान किया है जिसने,
शूद्रों को परवान किया है जिसने।
विधवा, प्रताड़ित जनों का उद्धारक–
नग्न होती मानवता की लाज है।।
वह आर्यसमाज है.........

स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर लाल दिए,
भगत, बिस्मिल, लाजपत और आजाद दिए।
विदेशी संस्कृति मिटाकर स्वदेशी हेतु–
आहुत हो क़टिबद्ध मरे मिटने को आज है।।
वह आर्यसमाज है.........

गहन तम में जो सूर्य एक चमकता है,
पाखण्ड अज्ञान को जो खटकता है।
विश्व एकता का सन्देश वाहक जो–
तब भी, अब भी जो आगे भी सरताज है।।
वह आर्यसमाज है.........

स्व देश, भाषा का सजग प्रहरी है,
नीतियां जिसकी अति गहन गहरी हैं।
सार्वभौमिक उपदेश लेकर चला है–
शान्ति गीत प्रसारक, एकमात्र साज है।।
वह आर्यसमाज है.........

जून तथा जुलाई के विशेषांकों को पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। यह पत्रिका सज्ज्ञान के प्रसार तथा पाखण्डों को दूर करने का बहुत अच्छा कार्य कर रही है। मैं इसकी उत्तरोत्तर प्रगति के लिए शुभकामनाएँ करता हूं।

सी०बी० अग्रवाल, प्रोफेसर फिजिक्स, ग्वालियर

जब तक मुझे दयानन्द-सन्देश का अंक प्राप्त नहीं होता तब तक मैं एकाकीपन सा महसूस करता हूं। सुख-दुःख जीव अथवा प्रकृति के गुण हैं, यह लेख मुझे बहुत रुचिकर लगता है और विद्वानों द्वारा परामर्शदायी अनुभव शिक्षाप्रद हैं। जो भी मान्य विद्वान् इस विषय पर विचार विमर्श कर रहे हैं, उन सभी का प्रयास सराहनीय ही नहीं बल्कि इस युग में सम्मान देने के योग्य है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी वे हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे।

नरेन्द्र शर्मा शास्त्री, खानपुर (ग्रेटर-नौएडा)
(आजीवन सदस्य ८८८)

मैं ने आचार्य से निवेदन किया था और आपसे भी साग्रह निवेदन कर रहा हूं कि स्वामी जगदीश्वरानन्द जी से शास्त्रार्थ करके सत्यार्थप्रकाश के विवाद का जैसे संकट कट गया वैसे ही सुख-दुःख किसके गुण हैं, यह विवाद भी बिना शास्त्रार्थ के नहीं कटेगा। सो मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं कि आप दयानन्द-सन्देश में शास्त्रार्थ की सूचना देवें क्योंकि लेखन से कभी भी निर्णय नहीं हो पायेगा। महर्षि जी ने भी लिखा है–जब तक वादी प्रति वादी दोनों पक्ष आमने सामने होकर विचार-विमर्श न करते, तब तक विवाद समाप्त नहीं होता। स्थान तथा तिथि का निर्णय उनकी इच्छा पर छोड़ देवें। वे हमारे निमन्त्रण को स्वीकार करके हमें लिखें। शास्त्रार्थ शास्त्रानुकूल तथा सभ्यभाषा में होगा ऐसी हमारी प्रार्थना है।

वेदप्रकाश श्रोत्रिय, कालकाजी, नई दिल्ली-19,
(डी.डी.ए. फ्लैट्स)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका-समाधान

—राजवीर शास्त्री

१. **शंका**—इसके चार सींग है, तीन पैर हैं, दो सिर और सात हाथ हैं। तीन स्थान से बंधा हुआ वृषभ निरन्तर उपदेश देता है। इसका रहस्य क्या है ?

(ऋ० मं० ४। सू० ५८। मन्त्र ३)

समाधान—यह निरन्तर बोलने वाला वृषभ लोक प्रसिद्ध बैल नहीं है। महर्षि यास्क ने इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखा है—यह वृषभ यज्ञ हैं। जो इस प्रकार है—यज्ञ ब्रह्म के चार वेद ही सींग हैं, तीन लोक ही पैर हैं, सृष्टि और प्रलय ये दो इसके सिर हैं, गायत्री आदि सात छन्द ही हाथ हैं, यह यज्ञ-ब्रह्म वृषभ = सुखवर्षक है। ऋक्, यजु और साम अर्थात् स्तुति, प्रार्थना और उपासना, इन तीनों प्रकारों से बंधा हुआ तीनों लोकों में मानो गर्जना करता है। (द्रष्टव्य निरुक्त १०वाँ अध्याय खं० ७)

२. **शंका**—जो यज्ञ करते हुए इन्द्रियों या पंचभूतादि द्रष्टा चेतन पुरुष को बांध लेते हैं। उस समय जीव की सात परिधियाँ और २१ समिधाएँ क्या हैं ? (यजु० ३१। १५)

समाधान—इस मन्त्र की व्याख्या में महर्षि दयानन्द ने लिखा है—जिस मानसिक यज्ञ को विस्तृत करते हुए विद्वान् लोग पशु = दर्शन करने योग्य पुरुष = परमात्मा को हृदय में बांधते हैं उस यज्ञ की गायत्री आदि भी सात छन्द परिधियाँ हैं और २१ समिधा प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, ५ सूक्ष्मभूत, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, सत्त्व, रज, तम तीन गुण, ये २१ समिधाएँ = सामग्री रूप में बनाए हैं।

३. **शंका**—पाँच के अन्दर परमात्मा अपनी व्याप्ति से अच्छी प्रकार व्याप्त हो रहा है। वे पाँच भी पूर्ण परमात्मा के भीतर स्थापित हैं वे पाँच क्या हैं ? (यजु० २३।५२)

समाधान—इस मन्त्र की व्याख्या भी महर्षि दयानन्द कृत द्रष्टव्य है। वे लिखते हैं—हे मनुष्यो ! मैं ही अपनी व्याप्ति में पाँच भूतों में व्याप्त हो रहा हूँ और वे पाँच भूत भी मुझ पूर्ण परमात्मा में स्थापित हैं अर्थात् मैं ही सब का आधार हूँ।

४. **शंका**—हम लोग इस लोक में, परलोक में और तृतीय लोक में ऋण रहित हो जायें। वे तीनों लोक कौन से हैं ? (अथर्व० ६। ११७।

समाधान—मन्त्र में तीनों लोकों में ऋणरहित होने के कहा है। इस शरीर में बाल्यावस्था, युवा तथा वृद्धावस्था, ये ही तीन लोक हैं अथवा जन्म से पूर्व और मरने के बाद और वर्तमान ये तीन लोक हैं।

५. **शंका**—चेतन-अचेतन पदार्थों को धारण करते हुए घूमने वाले २१ पदार्थ कौन से हैं ? (अथर्व० ११।

समाधान—पांच महाभूत, पाँच सूक्ष्म भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तीन काल और सत्त्व, रज, तम, ये सभी मिलकर २१ पदार्थ होते हैं।

६. **शंका**—यह एक ज्योति है, इससे भी उत्कृष्ट एक दूसरी ज्योति है और तीसरी ज्योति के साथ मग्न रहे। ये तीन ज्योतियाँ कौन-सी हैं ? (ऋ० १०। २६।

समाधान—यह संसार, जीवात्मा तथा परमात्मा ये तीन ज्योतियाँ है और इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।

नोट—१-६ तक सभी शंकाएँ श्री नरेन्द्र शर्मा शास्त्री खानपुर, ग्रेटर नौएडा ने भेजी थीं।

7. **शंका**—ऋ० भा० भू० में वेदों के विषय में महर्षि ने लिखा है कि वेदों का प्रकाश अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के हृदय में किया। तो वे जड़ पदार्थ सृष्टि के आदि में देहधारी—कैसे हुए और आज कल फिर वे जड़ पदार्थ कैसे हो गये ? मुकेश बाबू, हरदोई (अलीगढ़)

समाधान—लोक में अग्नि, वायु आदि जड़ पदार्थों के भी नाम हैं। किन्तु सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु आदि नाम के ऋषि थे। जिनको वेदों का प्रकाश मिला और 'अग्निमीळे' मन्त्र में अग्नि परमेश्वर का नाम है क्या यह भी जड़ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आश्विन कृष्णा त्रयोदशी की पुण्य-तिथि पर)

ब्रह्मर्षि महामना विरजानन्द

आचार्य विष्णुमित्र आर्य, आदर्शनगर, नजीबाबाद, जनपद–बिजनौर

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी महाराज के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी का जन्म पंजाब प्रान्त के जॉलन्धर जनपद में वर्तमान गंगापुर नामक ग्राम में श्री नारायणदत्त जी के घर हुआ था। परमात्मा की लीला अपार है कि जिसे समाज-सुधार के महावृक्ष के बीज का वपन करना है, जो क्रान्ति का प्रथम संक्रामयिता होगा, जिसे राष्ट्र की सर्वविध स्वतन्त्रता का मार्ग परिष्कृत करना है उस दिव्यात्मा को पाँच वर्ष की अल्पायु में बाह्यचक्षुओं से हीन कर दिया। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में शीतला रोग से पीड़ित होने पर नेत्र-ज्योति सदा के लिए चली गयी। नेत्रों की बहुमूल्यता तथा महत्ता के कारण नेत्रों को प्राण कहा जाता है। नेत्रों के चले जाने पर मानो जीवन का सर्वस्व चला जाता है, किन्तु कभी-कभी विपत्तियाँ भी बड़ी तीव्रता से आया करती हैं, नयनहीन बालक का सब से बड़ा आश्रय माता-पिता होते हैं किन्तु आः !!! विधि ने उससे यह अवलम्ब भी शीघ्र ही सहसा छीन लिया। अब बड़े भ्राता व भाभी का ही सहारा लेना पड़ा। परन्तु उनके तिरस्कार पूर्ण व्यवहार से विवश बारह वर्ष के नेत्रहीन विरजानन्द जी को गृह-त्याग करना पड़ा।

गृह-त्याग करके यातायात की सुविधाओं से रहित पग-पग पर डाकुओं और चोरों से युक्त मार्ग में त्रिविध दुःख-बाधाओं का आलिङ्गन करते हुए तीन वर्ष पश्चात् हृषीकेश पहुंचे। आज का हृषीकेश आधुनिक समस्त सुख-सुविधाओं से सम्पन्न है। किन्तु तब उस अरण्यस्थली में तपस्या-निरत महात्मा और हिंसक सिंह, व्याघ्र आदि ही निवास किया करते थे। ये भी कन्दमूल से उदरपूर्ति करते हुए गायत्री साधना में लग गये। विरजानन्द जी जन्म से ही तीव्र बुद्धि के धनी थे। गायत्री जप के अनुष्ठान से प्रभु की कृपा हुई और प्रतिभान्वित होकर बुद्धि वैभव से प्रज्ञाचक्षु कहलाये जाने लगे। कुछ समय पश्चात् प्रज्ञाचक्षु ने एक दिन सोये-सोये सुना कि विरजानन्द! तुम्हारा यहाँ जो कुछ होना था, हो चुका। अब तुम यहाँ से चले जाओ। इन्होंने अन्तरात्मा के सन्देश-परमात्मा की प्रेरणा को सुना और हरिद्वार कनखल पहुँचे। वहाँ दण्डी स्वामी पूर्णानन्द जी से संन्यास दीक्षा लेकर विद्याअध्ययन करने लगे। कुछ काल के पश्चात् कनखल से प्रस्थान करके वाराणसी रहकर अध्ययनाध्यापन करते रहे। वाराणसी से गया, कलकत्ता इत्यादि स्थलों पर कुछ-कुछ समय रहकर एटा जनपद में गङ्गातीर स्थित सोरों नगर पहुँचे। सोरों से अलवर नरेश महाराजा विनयसिंह अनुनय-विनय करके स्वामी जी को अलवर ले गये। स्वामी जी ने अलवर नरेश से कहा कि "हम आपके साथ तभी चलेंगे जब आप नियमित रूप से प्रतिदिन हम से पढ़ना स्वीकार करें।" और कहा कि **"जिस दिन भी आप न पढ़ेंगे हम अलवर छोड़ देंगे।"** महाराजा विनयसिंह नियमित रूप से स्वामी जी से पढ़ते रहे किन्तु एक दिन यह राजछात्र अनुपस्थित हो गया। सम्भवतः राज्य के कार्यों में उलझकर गुरुचरणों में उपस्थित होना स्मरण न रहा। स्वामी जी भी अपनी प्रतिज्ञानुसार अलवर से प्रस्थान करके पुनः सोरों होते हुए मथुरा पहुँच गये।

दण्डी स्वामी विरजानन्द जी जहाँ-जहाँ रहे अध्यापन भी करते रहे। मथुरा में भी पाठशाला की स्थापना की गयी। पाठशाला का व्यय भार अलवर नरेश, भरतपुर के राजा तथा जयपुराधिपति वहन करते थे। एक बार जब स्वामी जी ने अष्टाध्यायी के पाठ का श्रवण किया तो आर्षग्रन्थों में श्रद्धा गहरी हो गयी। आर्ष ग्रन्थों के प्रति स्वामी जी की आस्था का परिचय उन्हीं का रचित एक पद्य स्वयं कराता है–

अष्टाध्यायीमहाभाष्ये द्वे व्याकरणपुस्तके।
अतोऽन्यत्पुस्तकं यत्तु तत्सर्वं धूर्तचेष्टितम्।।

अर्थात् पाणिनिप्रणीत अष्टाध्यायी तथा उस पर महर्षि पतञ्जलिरचित महाभाष्य आर्ष पुस्तकें हैं, अन्य कौमुदी इत्यादि अनार्ष पुस्तकें धूर्तों की रचनाएँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डी जी ने स्वातन्त्र्य संग्राम के बीज वपन रूप पुनीत कर्म में भी अपना अमूल्य योगदान किया। महाराजा रामसिंह आदि राजाओं को भाँति-भाँति प्रकार से देशभक्ति का पाठ पढ़ाकर विविध उपाय भी समझाये। स्वामी जी को अपने लिए कोई अभिलाषा नहीं थी, वे देश की स्वाधीनता और आर्ष ग्रन्थों ही का पठन-पाठन सर्वत्र देखना चाहते थे। इस अभिलाषा पूर्ति के लिए विद्या, बुद्धि आदि सब अपेक्षित सामग्री उनके पास थी किन्तु नेत्रों के अभाव के कारण असमर्थ हो रहे थे। बड़े लोगों की कामनाएँ भी बड़ी होती हैं। संसार-हित की अपनी शुभ कामना की पूर्ति के लिए किसी सहारे की आवश्यकता थी। सच्चे भक्त परमात्मा को जिस-जिस कामना के साथ पुकारते हैं वह पूर्ण हो ही जाती है। उनकी पाठशाला में एक दिन एक अद्वितीय ब्रह्मचारी आया, जिसे प्राप्त करके इस अन्धे महामानव ने एक दिन कहा था, "अन्धे को लाठी मिल गयी।"

गुजरात प्रान्त के टंकारा ग्राम में उत्पन्न विद्याभिलाषी दयानन्द स्वामी विरजानन्द जी महाराज का द्वार खटखटाते हैं। तब भीतर से प्रश्न हुआ कौन हो ? दयानन्द ने विनयभाव से कहा—यही जानने के लिए आपकी शरण में आया हूँ। द्वार अब भी न खुला प्रत्युत प्रश्न हुआ—क्या पढ़े हो ? तब दयानन्द ने पठित ग्रन्थों को बता दिया। उन ग्रन्थों को सुनकर आर्ष ग्रन्थों के प्रहरी गुरु विरजानन्द कहते हैं कि—तुमने जो कुछ पढ़ा है, वह अनार्ष होने से त्याज्य है, अतः जो पढ़ा है उसे भुला दो और उन ग्रन्थों को भी यमुना में डाल आओ। अकिञ्चन विद्यार्थी ने अपनी पुस्तकें यमुना में बहा दीं, ऐसा करना विद्या के तीव्र अभिलाषी विलक्षण आत्मा का ही कार्य है तथा पुस्तकों को यमुना में बहाने के साथ-साथ पढ़े हुए को भी भुलाकर निस्सन्देह अपने असाधारण होने का परिचय दिया क्योंकि ऐसा कर पाना योगियों के अतिरिक्त और कौन कर सकता है ? और गुरु विरजानन्द भी अपने शिष्य के पारखी थे तभी तो उन्होंने पहले पढ़े हुए को भूलने का असाधारण आदेश दिया। दण्डी जी लोकोत्तर महामानव का शिष्य रूप में सान्निध्य पाकर मन ही मन प्रसन्न हो विद्यादान में तत्पर थे।

एक दिवस नित्य नियमानुसार दयानन्द जी मथुरा से दूर एकान्त में ध्यानावस्थित बैठे थे। ध्यानावस्था से उठने ही वाले थे कि यमुना से स्नान करके लौट रही एक देवी ने भक्ति भाव से अपना सिर दयानन्द के चरणों पर रख दिया। दयानन्द ने विनम्रता से देवी को परे हटने को कहा और स्वयं तभी वस्त्रों सहित यमुना में स्नान किया, तथा वहीं निर्जन स्थान पर तीन दिन निराहार रहकर व्यतीत किये। दूसरी ओर गुरुवर दण्डी जी दयानन्द की अकारण अनुपस्थिति से व्यग्र हो गये। उनका मन चिर अभिलषित अपने प्रिय शिष्य के प्रति नाना क्लिष्ट कल्पनाओं से आक्रान्त हो गया। चतुर्थ दिवस दयानन्द जब गुरु के चरणों में अभिवादन करके उपस्थित हुए, तब सहसा उपस्थित शिष्य के शरीर को स्पर्श करके पूछते हैं—दयानन्द ! तुम इतने दिन कहाँ रहे ? कृशाङ्ग प्रतीत हो रहे हो। गुरुवर की इस जिज्ञासा के उत्तर में अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रती दयानन्द अथ से इति पर्यन्त सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना देते हैं। इस वृत्तान्त को सुनकर जो वृद्ध अभी बहुत व्याकुल था वही अत्यन्त हर्षित होकर शिष्य को गले लगाकर सहसा कह देता है कि "अन्धे को लाठी मिल ही गयी।"

दण्डी जी के आश्रम में दयानन्द के समावर्त्तन संस्कार का अवसर आता है। सामान्यतः दण्डी जी कोई दक्षिणा लिये बिना ही शिष्यों को आशीर्वाद देकर समावर्तित कर देते थे। विरजानन्द जी लौंगों का सेवन अधिक किया करते थे, अतः दयानन्द दक्षिणास्वरूप लौंगों को ही गुरुचरणों में अर्पित करते हैं। गुरु जी ने पूछा दयानन्द क्या लाये हो ? गुरु की इस अपूर्व जिज्ञासा को सुनकर अन्य शिष्य अपनी दक्षिणा की अल्पता के कारण घबरा गये और सोचने लगे कि दक्षिणारूप में एक कण भी न स्वीकार करने वाले गुरु जी आज अकिञ्चन संन्यासी से दक्षिणा की जिज्ञासा क्यों कर रहे हैं ? किन्तु दयानन्द जी बिना किसी सङ्कोच के धीर भाव से कहते हैं कि कुछ लौंग लाया हूँ। तब विरजानन्द जी कहते हैं कि क्या हमारे घोर परिश्रम का यही पारिश्रमिक है? गुरु जी के इस विलक्षण परिवर्तित भाव से सभी छात्र घबरा गये, किन्तु दयानन्द शान्त और विनम्र होकर निवेदन करते हैं कि मैं अकिञ्चन संन्यासी भिक्षा करके ये लौंग लाया हूँ, मेरे पास अन्य क्या है ? जो आपको समर्पित करूँ। तब स्नेहसिक्त विरजानन्द कहते हैं कि मैं तुम से वही वस्तु चाहता हूँ जो

(शेष पृष्ठ १६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी दिवस पर—

स्वामी दयानन्द सरस्वती और हिन्दी भाषा

—डॉ० परमेश्वरदत्त शर्मा, ८३, जानकी नगर, इन्दौर

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध पुनर्जागरण काल था। विदेशी दासता से मुक्ति के लिए इस काल में भारत की जनता ने घोर संघर्ष किये। दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, राजा राममोहन राय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, नवीनचन्द्र राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी, लाला लाजपत राय जैसे अनेक नेता हुए, जिन्होंने भारत को विदेशी सत्ता से मुक्त कराने तथा देश की एकता के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, किन्तु इनमें एक ही महापुरुष ऐसा हुआ जो विदेशी भाषा नहीं जानता था, जिसने स्वदेश से बाहर एक कदम भी नहीं रखा था, जो स्वदेश के अन्न-जल से पला था, जो विचारों में स्वदेशी था, जो आचारों में स्वदेशी था, जो भाषा और वेश में स्वदेशी था, परन्तु जो वीतराग था, परम विद्वान् था। सब का श्रद्धा-भाजन था, जिसे देशी-विदेशी सभी मानते थे, वह महापुरुष था—महर्षि दयानन्द सरस्वती, आर्य समाज का संस्थापक।

महर्षि दयानन्द 'एक देश, एक भाषा' के सूत्र के प्रबल समर्थक थे। वे संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनकी मातृभाषा गुजराती थी। प्रारम्भ में वे संस्कृत भाषा में अपने प्रवचन करते थे, किन्तु १८७४ ई० में ब्रह्मसमाज के नेता पं० केशवचन्द्र सेन से जब वे कलकत्ता में मिले, तो उन्होंने स्वामी जी को देश की एकता के लिए हिन्दी अपनाने की सलाह दी। स्वामी जी ने हिन्दी भाषा में बोलना शुरू किया, उन्हें अनुभव हुआ कि उनकी बात सब सरलता और सहजता से समझ जाते हैं। देवनागरी लिपि की महत्ता तो उन्हें बचपन से ही ज्ञात थी। अतः उन्होंने वेदों के भाष्य और आत्मचरित्र हिन्दी में लिखे। उन्होंने अपने गौरव ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के द्वितीय समुल्लास में लिखा कि 'बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा देवनागरी लिपि और आर्यभाषा में शुरू की जाये।'

स्वामी जी के निर्देशानुसार १० अप्रैल १८७५ ई० को बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना हुई। आर्यसमाज के अनुयायियों, आर्य विद्यालयों और आर्यसमाजी समाचारपत्रों की भाषा आर्यभाषा हिन्दी स्वीकार की गई। परिणामतः आर्यसमाज का सारा कामकाज सन् १८७५ ई० के बाद हिन्दी भाषा में होने लगा। स्वामी जी से जब यह कहा गया कि उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों का अनुवाद उर्दू, अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में कर दिया जाये तो उनकी उपयोगिता में वृद्धि होगी, इस पर स्वामी जी ने कहा, "नहीं भाई, मेरी आँखें तो उस दिन को देखने को तरस रही हैं जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का ही प्रयोग और प्रचार हो। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा की एकता सम्पादन करने के लिए अपने सारे ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं। जिन्हें मेरे ग्रन्थों को जानने की इच्छा हो, वे आर्यभाषा सीखें। अनुवाद तो विदेशियों के लिए होते हैं। अनुवादों से हिन्दी और संस्कृत का अहित ही होगा।"

यह प्रसिद्ध मान्यता है कि किसी देश की भाषा और इतिहास को नष्ट कर देने से उस देश की सभ्यता और संस्कृति स्वयमेव नष्ट हो जाती है। इसलिए स्वामी जी भारत के नव-निर्माण में विदेशी भाषा, देशी भिन्न-भिन्न भाषा और पृथक्-पृथक् शिक्षा को एक बड़ी रुकावट मानते थे। वे इस रुकावट को दूर करने के लिए एक भाषा हिन्दी को अपनाने के पक्षधर थे। उन्होंने अपने ग्रन्थों को हिन्दी में लिखा और प्रत्येक आर्यसमाजी को हिन्दी में शिक्षा लेने और देने का निर्देश दिया। परिणामतः पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात हिन्दी प्रचार के केन्द्र बन गये।

स्वामी जी ने हिन्दी प्रचार के लिए अन्य धार्मिक संगठनों को भी प्रेरित किया। थियासॉफिकल सोसायटी के और सनातन धर्मसभा के नेताओं को उन्होंने हिन्दी अपनाने का परामर्श दिया। साथ ही देशी राजा-महाराजाओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-अपने राज्य की भाषा हिन्दी कर देने का आग्रह किया। उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह, जोधपुर के महाराजा प्रतापसिंह और इन्दौर के महाराजा तुकोजी राव ने उनके परामर्श से अदालती भाषा हिन्दी करने के आदेश निकाले थे। वे हिन्दी पत्रकारिता के भी पक्षधर थे। उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'कवि-वचन-सुधा' में विज्ञापन देकर हिन्दी प्रचार की प्रेरणा दी तथा 'आर्य-दर्पण' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन करवाकर हिन्दी भाषा को बढ़ावा दिया। उनके प्रवचनों, व्याख्यानों और शास्त्रार्थों से हिन्दी का प्रचार व्यापक होता गया।

स्वामी जी सरल और शुद्ध हिन्दी के समर्थक थे। वे लोक-व्यवहार में प्रचलित अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी, फ्रांसीसी बोलियों के शब्दों के प्रयोग को बढ़ावा देते थे। दस्तख़त, नक़ल, क़लम, ज़रूरत, मौजूद, मंजूर, दस्तावेज़, वहशत, रजिस्ट्री, कार्ड, मेमोरेण्डम, तुपक, बटन जैसे आम व्यवहार के शब्दों के प्रयोग के पक्षपाती थे, किन्तु वे उच्चारण सौन्दर्य के लिए शब्दों के संस्कृतीकरण को स्वीकार करते थे। अलेक्ज़ेण्डर को अलक्षेन्द्र, मैक्सम्यूलर को मोक्षमूलर, शैक्सपीयर को शिक्षाप्रिय बोलना उन्हें पसन्द था। वे विदेशीपन के विरोधी थे। अंग्रेजी-हिन्दी के पचड़े में न पड़कर वे दुभाषियों की मदद से विदेशियों से बातचीत करने का आग्रह करते थे।

स्वामी जी ने हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-भाषा के प्रचार, प्रसार और अभिवर्द्धन में महान् योगदान किया है। उनकी स्वतन्त्र और निर्भीक आलोचनाएँ, उनके भाष्य और खण्डन-मण्डन-परक ग्रन्थ, उनके प्रवचन और व्याख्यान, उनके शास्त्रार्थ चुटीले व्यंग्य, उनके दृष्टान्त और पत्रकारिता तथा उनकी प्रश्नोत्तर और शास्त्रार्थ शैली हिन्दी की अमूल्य निधियाँ हैं। दयानन्द की वाग्मिता और मेधा का प्रकाशन जिस हिन्दी में हुआ है, वह अखण्ड और विशाल भारत की राष्ट्रीय हिन्दी है। यह हिन्दी देश की पर्याय है, जिसे गर्व से कहा जाता है—हिन्दी भारत है और भारत हिन्दी है। यह वह हिन्दी है, जिसने ब्राह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन, सनातन धर्मसभा, थियासॉफिकल सोसायटी और देशप्रेमी संस्थाओं को एक मंच पर खड़ाकर राष्ट्रोत्थान के महामन्त्र का उद्घोष किया है।

भव बन्धन काट ले

प्रभु-भक्ति का रस चख ले ओ मन बावले।
मानव तन मिला है, तू भव बन्धन काट ले।।

देव दुर्लभ जीवन भोगों में बर्बाद न कर,
काम क्रोध लोभ तू घर में आबाद न कर।
मोह और अहंकार ये सब तुझे ले डूबेंगे—
छोड़ दे इनको पल भर भी प्रमाद न कर।।

योग ध्यान से अपने आप को अब संभाल ले।
प्रभुभक्ति का रस...........................।।

अल्प को त्याग कर भूमा सुख अपना ले,
मन्त्रवित् नहीं-आत्मवित् का सपना ले।
चिर तृप्ति होगी शाश्वत शान्ति मिलेगी—
तृप्ति की छाया छोड़, तृप्ति के गीत गा ले।।

अभ्यास व वैराग्य पर स्वयं को डाल ले।
प्रभुभक्ति का रस...........................।।

भोगों को नहीं भोग तुम्हें भोग जायेंगे,
तृष्णा नहीं तुम स्वयं जीर्ण हो जायेंगे।
आग में घी पड़ने से ऐसी ज्वाला धधकेगी—
युगों-युगों के सुकर्म पगले ध्वस्त हो जायेंगे।।

परब्रह्म की शरण आ मुंह मोड़ इस जंजाल से।
प्रभुभक्ति का रस...........................।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य विद्वानों के विचारार्थ

स्वामी दयानन्द जन्मतिथि

सुदर्शनदेव आचार्य, स० सम्पादक सर्वहितकारी, आर्यप्रतिनिधि सभा हरियाणा, दयानन्द मठ (रोहतक)

स्वामी दयानन्द ने पूना-प्रवचन में तथा थियोसोफिस्ट को भेजे आत्मवृत्तान्त में अपना जन्म सं० १८८१ में हुआ लिखा है। निश्चित जन्मतिथि का उल्लेख नहीं किया है। डॉ० भवानीलाल भारतीय ने 'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' नामक ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द की जन्म-तिथि विषयक निम्नलिखित विवरण दिया है—

१. पण्डित लेखराम सं० १८८१ का अन्तिम चरण-माघ अथवा फाल्गुन मास।

२. केशवराम-विष्णुराम पाण्ड्या—भाद्रपद शुक्ला नवमी सं० १८८१ गुरुवार। श्री मामराजसिंह गवेषणकर्त्ता के अनुसार इन जीवन की पाण्डुलिपि आर्यसमाज गणेशगंज लखनऊ में विद्यमान है। ये जीवन चरित्र लेखक स्वामी जी के समकालीन थे और उनके सम्पर्क में भी थे।

३. पं० श्रीकृष्ण शर्मा आर्य मिश्नरी (राजकोट) भाद्रपद शुक्ला नवमी सं० १८८१ (२० सितम्बर १८२४ ई०)। आपने अपने पक्ष की पुष्टि में 'महर्षि दयानन्द का वंश-परिचय' में निम्नलिखित प्रमाण दिये हैं—(१) स्वामी दयानन्द की प्राप्त जन्म-कुण्डली में उक्त तिथि तथा मूल नक्षत्र, धनु राशि, प्रातः ३ बजकर ३० मिनट लिखा है। (२) मोरवी नगर के सेठ श्री सुन्दर जी, शिव जी की बही में लिखा है—१८८१ विक्रमी भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को उनकी तरफ से टंकारा महाल के जमीदार (राजस्व अधिकारी) के घर पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में भेंट स्वरूप सौगात (झबला) के रूप में ११६) रु० का सामान भेजा गया। उक्त भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के दिन दयानन्द के जन्म दिवस का छठा दिन (छठी) था।

४. दीवान बहादुर हरविलास शारदा— आश्विन कृष्णा अमावस्या १८८१ वि० बुधवार-(१५ सित०१८२४ ई०) Life of Swami Dayanand Saraswati.

५. इन्द्रदेव अखिल भारतीय आर्यसभा पीलीभीत—फाल्गुन कृष्णा ९, १८८१ वि० (१६ फरवरी १८२५) पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र, नाम दयाराम।

६. पं० भीमसेन शास्त्री (कोटा)— फाल्गुन कृष्णा दशमी सं० १८८१, मूल नक्षत्र, शनिवार (१२ फरवरी १८२५)। यह मत सार्वदेशिक सभा की धर्मार्यसभा द्वारा २८ अप्रैल १९५६ की बैठक में स्वीकृत है। इस मत की स्वीकृति में प्रमाण की आवश्यकता है।

७. पं० अखिलानन्द शर्मा— भाद्रपद शुक्ला नवमी, सं० १८८१ ई०।

८. डा० भवानीलाल भारतीय— भाद्रपद शुक्ला नवमी सं० १८८१ ई०।

९. पं. मेधाव्रताचार्य ने दयानन्ददिग्विजय (सर्ग ३७ श्लोक ४९-५१) में भाद्रपद शुक्ला नवमी, मूल नक्षत्र, गुरुवार लिखा है।

यदि किसी आर्य बहिन-भाई के पास कोई और प्रमाण अथवा लेख हो तो उसे अधोलिखित पते पर भेजने की कृपा करें, जिससे स्वामी दयानन्द की निश्चित जन्म-तिथि का निर्णय किया जा सके।

महर्षि की निर्वाण-स्थली : भिनाय कोठी

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सन् १८८३ ई० दीपावली के दिन जहां निर्वाण हुआ था, वह राजा भिनाय की कोठी अजमेर (राज०) में है। उसका बहुत थोड़ा भाग आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं के पास है। दिनांक ८।३।९७ को गुरुकुल झज्जर (रोहतक) के महोत्सव पर आर्य नेता श्री हरिसिंह सैनी, प्रधान-आर्यसमाज नागोरी गेट, हिसार ने अपने भाषण में यह अभिलाषा प्रकट की कि यह सम्पूर्ण कोठी आर्यसमाज के अधिकार में रहनी चाहिए क्योंकि यह आर्यसमाज का विशिष्ट ऐतिहासिक भवन है। जहां अजमेर में अन्य मतावलम्बी जनों

शेष पृष्ठ १६ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी आर्यों के ऐतिहासिक आदर्श हैं

(अजेय ब्रह्मचारी, प्रवक्ता ध्यानयोग विद्यापीठ) 'ब्रह्मानन्दाश्रम (बणी) पूण्डरी (हरियाणा) ३६०२६

आर्यजगत् की सुप्रसिद्ध पत्रिका दयानन्दसन्देश के पिछले अंक में– क्या मैत्रेयी याज्ञवल्क्यादि काल्पनिक हैं? विषय पर प्रियम्वदां वेदभारती जी ने आर्य कोविदों के विचार आमन्त्रित किये थे। ज्ञातव्य है कि महिला आर्यसमाज नयागंज गाजियाबाद के वार्षिकोत्सव में प्रियम्वदा जी ने अपने व्याख्यान में मैत्रेयी-कात्यायनी महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नियों की चर्चा की थी, जिस पर आपत्ति करते हुए प्रो० रत्नसिंह (गाजियाबाद) ने कहा कि ज़ब हमारे ऋषियों की ही दो-दो पत्नियाँ थीं तो (क्या) सामान्य व्यक्ति चार-चार नहीं रखेंगे क्या? वस्तुतः याज्ञवल्क्य नाम का न कोई व्यक्ति हुआ, न ही मैत्रेयी, कात्यायनी नाम की ही कोई महिलाएँ हुई हैं। वाजश्रवसू नचिकेता सब काल्पनिक हैं, ये उपनिषदों की कहानी मात्र हैं। प्रो० रत्नसिंह ने आगे यह भी कहा कि शतपथ के प्रणेता तो और हैं, वे काल्पनिक नहीं हैं।

समीक्षा- याज्ञवल्क्य भारतीय आदर्श परम्परा के तेजस्वी ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। भारतीय इतिहास के महान् अन्वेषक तथा चिन्तक पं० भगवद्दत्त रिसर्च स्कालर ने भी याज्ञवल्क्य को एक महान् तेजस्वी ब्राह्मण के रूप में चित्रित करते हुए लिखा है-

याज्ञवल्क्य एक तेजस्वी ब्राह्मण था। याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थीं। एक थी ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी, दूसरी थी स्त्री प्रज्ञावाली कात्यायनी। महाराजा जनक की सभा में उसने अनेक ऋषियों से महान् संवाद किया था। जनक के साथ उसकी मैत्री थी। इसीलिए यह बहुधा मिथिला में रहा करता था। वह योगीश्वर अपितु परम योगीश्वर था। उसने संन्यास धर्म पर बड़ा बल दिया था और वह स्वयं भी संन्यासी हो गया था।[1]

महर्षि दयानन्द सरस्वती, गार्गी-मैत्रेयी, कात्यायनी आदि उपनिषद् वर्णित सुशिक्षित महिलाओं को भारतीय इतिह का गौरव मानते हैं। वे लिखते हैं–

भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषण रूप गार्गी आदि वेदा शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं।[2]

अपने पूना प्रवचन में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं-

पूर्वकाल में आर्य लोगों में स्त्रियाँ उत्कृष्ट रीति से पढ़ थीं। आर्य लोगों के इतिहास की ओर देखो–स्त्रियाँ आज ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर रहती थीं और साधारण स्त्रियों के उपनयन और गुरुगृह में वास इत्यादि संस्कार होते थे यह सब को विदित है ही।

गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायनी आदि बड़ी-बड़ी सुशिक्षि स्त्रियाँ होकर बड़े-बड़े ऋषि मुनियों की शंकाओं का समाधा करती थीं।[3] इन स्थलों के अवलोकन से यह सुस्पष्ट है मैत्रेयी, कात्यायनी और याज्ञवल्क्य ऐतिहासिक व्यक्ति काल्पनिक नहीं। प्रतीत होता है कि प्रो० रत्नसिंह ने इ (सत्यार्थप्रकाश एवं उपदेशमंजरी) सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की भी दृष्टिपात नहीं किया। महर्षि दयानन्द जी महाराज उपरोक्त वाक्यों की विद्यमानता में प्रो० रत्नसिंह का आर्यसम के मंच से ही– मैत्रेयी, कात्यायनी नाम की कोई महिला हुई, ये सब काल्पनिक हैं, उपनिषदों की कहानी मात्र कहना न केवल भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के विरु है। अपितु यह महर्षि वचनों के भी सर्वथा विरुद्ध है। मह दयानन्द सरस्वती के अकाट्य प्रमाणों से युक्त सिद्धा (जिनको विधर्मी भी न झुठला सके) की तभी अवहेलना क उन्हें झुठलाने का दुस्साहस करने वाला व्यक्ति महर्षि अनुयायी हो ही नहीं सकता।

प्रो० रत्नसिंह का उपनिषत् तथा शतपथ के याज्ञवल् और (भिन्न) हैं कहना भी एक निराधार कल्पना मात्र ही है

१. वैदिक वाङ्मय का इतिहास पृ० २१०,
२. सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास पृ० ५०
३. उपदेशमंजरी प्रवचन- २, पृ० १८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली बात जब उपनिषदों के याज्ञवल्क्य हुए ही नहीं वे कल्पना मात्र हैं तो शतपथी याज्ञवल्क्य को और भिन्न कहने का अर्थ ही क्या? जो हुआ ही नहीं उससे भिन्नता का प्रदर्शन वा तुल्यता कैसे?

वस्तुतः बृहदारण्यकोपनिषद्वर्णित तथा शतपथी याज्ञवल्क्य एक ही हैं। सुतरां प्रसिद्ध तथ्य तो यह है कि बृहदारण्यकोपनिषत् शतपथ का ही एक भाग है। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद दो स्थलों में वर्णित हैं।[1] दोनों स्थलों में समानता है। यहाँ स्पष्ट लिखा है।[2] अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुर्मैत्रेयी कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्रीप्रज्ञेव तर्हि कात्यायनी...... । यही पाठ शतपथ का० १४ अ० ४।३।१ में है।

इस स्थल के पढ़ने मात्र से ही स्पष्ट हो जाता है कि बृहदारण्यकोपनिषत्स्थ याज्ञवल्क्य शतपथ ब्राह्मण के याज्ञवल्क्य से सर्वथा अभिन्न अर्थात् एक ही हैं। शतपथ के चतुर्दश काण्ड के आरम्भ में स्पष्ट ही लिखा है— अथोत्तराख्ये भागे चतुर्दशे काण्डे षडध्यायी बृहदारण्यकोपनिषद्। अन्त में भी इति षडध्यायी बृहदारण्यकोपनिषत्समाप्ता, का स्पष्ट उल्लेख है।

महर्षि दयानन्द शतपथ ब्राह्मण के विषय में लिखते हैं-"ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के अर्थ और इतिहासादि से युक्त बनाये गये हैं...... । ऐतरेय शतपथ आदि प्राचीन सत्य ग्रन्थ हैं।[3] सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में स्वामी दयानन्द सरस्वती, ब्राह्मणानितिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति इस गृह्यसूत्र के वचन को उद्धृत कर शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों को ही इतिहास पुराण, कल्प गाथा नाराशंसी कहकर स्पष्ट ही ऐतिहासिक ग्रन्थ माना है। प्रो० साहब के कथन में एक झूठ को छिपाने के लिए १७ झूठ की कल्पना करनी पड़ती है, वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है।

प्रसंगवश यह भी बता दूँ कि किन्हीं विद्वानों को शतपथ के कर्त्ता याज्ञवल्क्य को मानना अभीष्ट नहीं, वे अपनी आपत्ति का आधार (कारण) बताते हैं कि शतपथ में याज्ञवल्क्य का नाम पदे पदे देखा जा सकता है। शास्त्र में याज्ञवल्क्य के नाम तथा उनकी विचार धारा को सादर प्रथम पुरुष (उत्तम पुरुष के स्थान पर) का आश्रय लेकर प्रस्तुत किया गया है जो किसी भी लेखक द्वारा अपने लिए अभीष्ट नहीं। वेद तथा शतपथ के मर्मज्ञ विद्वान् पं० बुद्धदेव विद्यालंकार इसका समाधान करते हुए लिखते हैं—

यथार्थरूपेण इस ग्रन्थ के उपज्ञाता याज्ञवल्क्य हैं, और उपनिबन्धक उनका कोई अज्ञात नामा शिष्य है। अर्थात् विचार याज्ञवल्क्य के हैं और उनको ग्रन्थ रूप में परिणत करने वाला उनका कोई शिष्य है।...... इसमें प्रमाण यह है कि इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर याज्ञवल्क्य के वाक्यों को प्रमाणरूपेण उपन्यस्त किया गया है। जहाँ विवाद उपस्थित हुआ है वहाँ सिद्धान्त पक्ष याज्ञवल्क्य के नाम से उपस्थित किया जाता है। यहाँ तक ही नहीं, कहीं कहीं तो याज्ञवल्क्य के अधूरे विचार भी पवित्र समझकर उल्लिखित कर दिये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि "तदुहोवाच याज्ञवल्क्यः" इत्यादि वाक्यों में उत्तम पुरुष का परित्याग करके प्रथम पुरुष और परोक्षभूत वाचक लिट् लकार के आश्रय लेने से याज्ञवल्क्य इन विचारों के लिए उत्तरदाता तथा उनका कोई परम्परागत सम्प्रदायाधिकारी शिष्य ग्रन्थ के इस रूप के लिए उत्तरदायी है। वह शिष्य कौन है यह बात उस शिष्य की प्रगाढ़ गुरुभक्ति के प्रवाह में विलीन हो गयी है। इस गुरुभक्ति को प्रणाम है।[4] "शतपथ के प्रथम काण्ड में ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। (शतपथ तथा उपनिषत् के याज्ञवल्क्य को भिन्न-भिन्न कहना उनके (प्रो० रत्नसिंह के) बुद्धि-स्वाध्यायदौर्बल्य का ही परिणाम है।)

याज्ञवल्क्य भारत के उन महिमा मण्डित मनीषियों में से एक हैं, जिनके जीवन तथा उदात्त चरित्र के हर कोने में ब्रह्मतेज बसता है। शास्त्रों में उनकी महिमा भरी पड़ी है, वहाँ उनके जीवन की झलक देखी जा सकती है। मैत्रेयी भारतीय आदर्श नारी इतिहास का गौरवपूर्ण अध्याय है। इन्हें काल्पनिक

१. बृहदारण्यकोपनिषद् द्वि० अध्याय 4, 5, ब्राह्मण, 4 अध्याय 5, 6 ब्राह्मण
२. बृह० ४ अध्याय, ५ ब्राह्मण-1
३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ग्रन्थप्रमाण्याप्रामाण्यविषयः।
४. शतपथ में एक पथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना मात्र एक दुस्साहस तथा निराधार गपोड़े के सिवाय और हो क्या सकता है? वस्तुतस्तु प्रो० साहब पाश्चात्य विद्वानों के उस षड्यन्त्र के शिकार हुए हैं, जिसके तहत भारत के इतिहास तथा पूर्व पुरुषों के उदात्त-चरित्र तथा ज्ञान को सर्वथा विकृत करके भारतीय जनमानस को स्व-संस्कृति-सभ्यता तथा देश के प्रति सन्देहजनक स्थिति पैदा करके गुमराह करना था।

थॉमस बैबिंगटन मैकाले (भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रवर्त्तक) ने अपनी पूर्वोक्त षाड्यन्त्रिक धारणा को मूर्त्तरूप देने हेतु भारतीय वेदादि सच्छास्त्रों के विकृत अर्थ कराये तथा भारतीय इतिहास को नष्ट भ्रष्ट करना आरम्भ किया था. अपने षड्यन्त्र का पुरोधा उसने मैक्समूलर (एवम् उसके सदृश संस्कृतज्ञ समझे जाने वाले अन्य विद्वानों) को बनाया. उसी ने ही मैक्समूलर को आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में नौकरी दिलवायी थी। मैक्समूलर द्वारा किये गये वेदादि सच्छास्त्रों के भाष्यों का सत्य से दूर का भी सम्बन्ध नहीं। उसने तो मात्र ईसाईयत के भारत में प्रचार का द्वार ही खोला था। इसी से मैक्समूलर के मित्र रैवरेण्ड एडवर्ड बौनवीरि पुसे, डॉक्टर ऑफ डिविनिटी ने लिखे अपने एक धन्यवाद-पत्र में लिखा था-

Your work well from a new era in the efforts for the conversion of India and oxford well have reason to be thankful for that; by giving you a home, it will facilitate a work of such primary and lasting importance for the conversion of India.[1]

(तुम्हारा यह (हिन्दू शास्त्रों का अनुवाद करने का कार्य हिन्दुस्तान को ईसाई बनाने के प्रयासों में एक नये युग का निर्माण करेगा। इसके लिए आक्सफोर्ड तुम्हारा सदा के लिए कृतज्ञ रहेगा। तुम को अपने यहाँ स्थान देकर आक्सफोर्ड ने एक ऐसे कार्य में सहायता दी है, जो भारत को ईसाई बनाने में चिरस्थायी और प्रारम्भिक प्रभाव उत्पन्न करेगा।)[1]

इस पत्र को पढ़ लेने के पश्चात् पाश्चात्य लेखकों (एवं मैकाले) के विचारों, लेखों तथा भाष्यों की यत्किञ्चित् भी समीक्षा करने की आवश्यकता नहीं रहती। पत्र में उनकी मंशा सर्वथा सुस्पष्ट है। इसका कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति प्रमाण नहीं कर सकता। इन्हीं के विचारों को पढ़, प्रमाणित मान प्रो० रत्नसिंह जैसे व्यक्ति अपनी विद्वत्ता का दम्भ भरके भारतीय संस्कृति-सभ्यता तथा इतिहास पर कीचड़ उछाल उसके शुभ्र रूप को मलीन करने की चेष्टा करते रहते हैं। इसी पीड़ा को ले महर्षि ने कहा था— जो संस्कृत विद्या को नहीं पढ़े वे कुछ का कुछ लिखते तथा बकते हैं उसका विद्वान् लोग प्रमाण नहीं कर सकते।

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियों के विषय में प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार लिखते हैं—संभवतः दूसरा विवाह उन्होंने इसलिए किया हो कि प्रथम पत्नी से उनकी कोई सन्तान न हुई हो, पर द्वितीय विवाह से भी ईश्वर की कुछ ऐसी करनी कि उनकी कोई सन्तान न हुई।

इसी विचार को विद्वान् स्वीकार करते हैं, यही बुद्धिगम्य भी प्रतीत होता है। ऋषि द्वारा दूसरा विवाह करना, आपद्धर्म था न कि यह उनकी कोई दिली इच्छा का ही परिणाम था। उपनिषत् कल्पना-प्रसूत कहानी नहीं, भारतवर्ष की अध्यात्मवादी शिक्षाओं एवं तत्सम्बन्धी घटनाओं का संग्रह है। अतएव महर्षि सदृश अद्भुत ऊहा सम्पन्न व्यक्ति ने इनकी (एकादशोपनिषद्) सच्छास्त्रों में गणना की है। कल्पनाएँ सत्य नहीं हुआ करतीं।

आशा है, प्रो० साहब अपने वक्तव्य तथा उसके आधार पर चिन्तन (निष्पक्षतया) करके आर्यजनता के सम्मुख अपनी विचारधारा को स्पष्ट करेंगे।

अन्त में प्रियम्वदा जी को धन्यवाद कि उन्होंने इन विचारों का प्रतिवाद किया, चुप न रहीं तथा निर्णय के लिए आर्यविद्वानों के विचार आमन्त्रित किये।

प्रभु हमें ज्ञान-विज्ञान, शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करें, जिससे हम अपनी संस्कृति सभ्यता तथा राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन सजग हो कर सकें।

1. Qtd. by Brahma Dutta Bharti in Maxmuler Exposed P. 25.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का कार्यान्वयन-सांवैधानिक उत्तरदायित्व है

-भगवान देव ''चैतन्य'' ''78/एस-4, सुन्दरनगर (हि०प्र०) - १७४४०२.

यह वर्ष स्वाधीनता की स्वर्णजयन्ती के रूप में मनाया जा रहा है। इस वर्ष जहां हम अन्य बातों पर चिन्तन करें वहीं सब से बड़ा चिन्तन इस बात का करें कि हमने शहीदों के सपनों को कहां तक साकार किया है। स्वतन्त्रता का अर्थ केवल जमीन का टुकड़ा हासिल कर लेना नहीं होता बल्कि जब तक हम अपनी संस्कृति, अपनी भाषा और वेश-भूषा एवं अपनी मिट्टी से नहीं जुड़ते तब तक स्वतन्त्रता की परिभाषा सार्थक नहीं हो सकती है, इसलिए यह वर्ष आत्मनिरीक्षण का एक पर्व है। हम आत्मनिरीक्षण करें कि शहीदों के सपने हम किस रूप में साकार कर रहे हैं। हम सभी जानते हैं कि भारत के संविधान में हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया है मगर इसके कार्यान्वयन के लिए जो प्रयास किये जाने चाहिए थे, वे पूरे मन से नहीं हो सके हैं। होना तो यह चाहिए था कि संविधान की गरिमा को सुरक्षित रखने के लिए तत्काल समूचे राष्ट्र में हिन्दी का प्रयोग अनिवार्य हो जाता मगर आज तक इसमें सफलता नहीं मिली है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी सहित सभी अग्रणी नेताओं ने इसे पूर्णतया सक्षम और विकसित भाषा माना है और शीघ्रता से इसके कार्यान्वयन पर बल दिया है। महात्मा गांधी जी ने तो यहां तक कहा था कि स्वतन्त्र भारत में कलम की पहली नोक से राष्ट्रभाषा हिन्दी को समूचे राष्ट्र में लागू कर दिया जाएगा। यह सर्व सिद्ध है हिन्दी में कार्य करना राष्ट्र प्रेम और गौरव का प्रतीक है, इसलिए इसके कार्यान्वयन को हमें गम्भीरता से लेना चाहिए।

जब भी किसी से हिन्दी में कार्य करने की बात की जाती है तो कहा जाता है कि हिन्दी में काम करना कठिन है। जबकि वास्तविकता यह नहीं है इसके विपरीत अंग्रेजी हमारी संस्कृति और जीवन के इतना समीप नहीं है जितना कि हिन्दी। अतः हिन्दी में अभिव्यक्ति अधिक सरल और स्वाभाविक है। हिन्दी में काम करना कठिन तब लगता है जब हम हिन्दी के प्रति एक डर या पूर्वाग्रह मन में बिठा लेते हैं यदि इस डर और पूर्वाग्रह से हम मुक्त हो जाएं तो हिन्दी में अभिव्यक्ति बहुत ही सरल है जब हम अपने दैनिक जीवन में अधिकतम हिन्दी का प्रयोग करते हैं तो उसे लिखने में हमें कठिनाई नहीं आनी चाहिए। केवल झिझक और भय ही है जो हमें हिन्दी में कार्य करने से रोकता है अन्यथा "I would like to see the file" के स्थान पर यदि, ''मैं फाईल रखना चाहूंगा'' कहने या लिखने में क्या कठिनाई है?

एक और बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि हिन्दी में कार्य करने के लिए हमें शब्दकोशों से भारी भरकम शब्द खोजने की आवश्यकता नहीं है बल्कि आम बोल-चाल में हम जिस भाषा या शब्दों का प्रयोग करते हैं, सरकारी कामकाज में भी उन्हीं का प्रयोग निःसंकोच करें। प्रारम्भ में जहां आपको शीघ्रता में हिन्दी का कोई शब्द याद नहीं आये तो अंग्रेजी शब्द को ही देवनागरी लिपि में लिख दें। जब हिन्दी में काम करना आपका स्वभाव बन जायेगा तो स्वतः ही आपको अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी विकल्प मिल जायेंगे। शब्दों के पीछे भागने की अपेक्षा भावों को प्रकट करने पर ही ध्यान देने की आवश्यकता है। आप ''File may be Pending" के स्थान पर ''फाईल पैंडिंग रख दी जाये'' लिख सकते हैं। शब्दकोशों का सहयोग लेना आवश्यक तो हो सकता है मगर परम आवश्यक नहीं। अपने मन की अभिव्यक्ति के लिए यदि भाव सशक्त हो तो मस्तिष्क में शब्द स्वयं पैदा हो जाते हैं, अतः शब्दों के पीछे भागने की आवश्यकता नहीं।

जिस प्रकार शब्दों के दास बनने की आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार मात्र अनुवाद के बल पर हिन्दी का कार्यान्वयन नहीं हो सकेगा। प्रत्येक भाषा की अपनी शैली और संरचना होती है, अतः अनुवाद के स्थान पर उस की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति होनी चाहिए। अनुवाद के लिए भी शब्दकोशों पर ही निर्भर न रह कर हिन्दी भाषा की शैली, मूल सरंचना और स्वाभाविक शब्दों के प्रयोग पर ध्यान देना आवश्यक है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यथा अनुवाद से हिन्दी भाषा बहुत ही बोझिल लगने लगेगी। अक्षरशः अनुवाद वाक्य-विन्यास भी हास्यप्रद सा बन जाता है अतः किसी भाषा का प्रयोग इस ढंग से किया जाना चाहिए ताकि उसका अपना स्वरूप बिगड़ कर न रह जाये।

कुछ अंग्रेजी भक्त लोगों का यह भी आरोप है कि हिन्दी और उसके शब्द बहुत कठिन हैं उन्हें सरल बनाना चाहिए। यह तो ठीक है कि हिन्दी के सरल से सरल शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए मगर यह सरलीकरण इस सीमा तक नहीं होना चाहिए कि हिन्दी भाषा का स्वरूप और गरिमा ही समाप्त हो जाये। वास्तविकता यह है कि कोई भी शब्द सरल या कठिन नहीं होता है, वह तो मात्र परिचित या अपरिचित होता है। यदि वह परिचित है तो वह सरल है चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो और वह अपरिचित है तो वह कठिन है चाहे वो कितना ही सरल क्यों न हो। अतः जब तक हिन्दी के शब्दों को व्यवहार में नहीं लायेंगे तब तक हमें वे कठिन लग सकते हैं मगर व्यवहार में लाने से जब उन से हमारा परिचय हो जायेगा तो वह ही शब्द हमारे लिए सहज और सरल हो जाएंगे। अतः जहां तक आवश्यक हो अंग्रेजी एवम् उर्दू आदि अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए मगर इतना सर्वदा ध्यान रहे कि हिन्दी की मूल संरचना सुरक्षित रह सके।

उपरोक्त संक्षिप्त विवेचना से यह सिद्ध हो जाता है कि हिन्दी में कार्य करना जरा भी कठिन नहीं है, मात्र शुभारम्भ करने की देर है। यदि मन में किसी कार्य को करने की भावना दृढ़ हो जाये तो साधन और सुविधाएं स्वयं जुड़ती चली जाती हैं। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है अतः इसमें कार्य करना हमारे लिए गौरव की बात है। अंग्रेजी पर निर्भर होने के मोह को छोड़कर हमें हिन्दी में कार्य करने के लिए कलम उठा लेनी चाहिए। निरन्तर अभ्यास ही है जो व्यक्ति को सफलता प्रदान करता है अतः हिन्दी में कार्य करने की झिझक और भय को दूर भगा कर प्रत्येक अधिकारी और कर्मचारी को आज से, बल्कि अभी से अपना प्रत्येक कार्य हिन्दी में आरम्भ कर देना चाहिए क्योंकि यह एक संवैधानिक उत्तरदायित्व और शहीदों के सपनों को साकार करने की दिशा में एक रचनात्मक कार्य है। हिन्दी भाषा के माध्यम से ही हम अपने संस्कारों एवं संस्कृति से जुड़ पायेंगे।

पृष्ठ ७ का शेष

तुम्हारे पास है। यह सुनकर आदर्श शिष्य महागुरु के समक्ष नतमस्तक होकर कहता है कि मेरा सर्वस्व आपको अर्पित है। विरजानन्द ने दयानन्द को उठाकर कहा—**वत्स दयानन्द! संसार में नाना मत-मतान्तरों की अविद्या से वैदिक धर्म का लोप हो गया है। तुम जाओ, वेद तथा आर्ष ग्रन्थों का पुनः प्रचार करके संसार का उद्धार करो यही गुरु दक्षिणा चाहता हूँ।** इस प्रकार विरजानन्द का दक्षिणा चाहना तथा दयानन्द द्वारा अखिन्न मन होकर दक्षिणा देना अपूर्व है। दयानन्द जब जाने लगे तब भी वे अपनी समस्त आशाओं के केन्द्र प्रिय शिष्य को सावधान करते हैं—**हे दयानन्द ! सदा स्मरण रखना "ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में ईश्वर और वेद की निन्दा नहीं मिलती।"**

वेद और ईश्वर के परम भक्त, समाज-सुधारक स्वामी विरजानन्द जी यावज्जीवन आर्ष वाङ्मय के लिए समर्पित रहे। आर्ष ग्रन्थों के प्रहरी, जीवन्मुक्त स्वामी जी आश्विन कृष्णा त्रयोदशी संवत् १९२५ विक्रमी को अपना भौतिक शरीर त्यागकर पञ्चतत्त्व को प्राप्त हो गये। मृत्यु का समाचार जानकर दयानन्द के मुख से निःसृत यह स्वभावोक्ति थी **"आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया"** उनकी सर्वोच्च महत्ता की परिचायिका है।

पृष्ठ ११ का शेष

के लिए ख्वाजा चिश्ती की दरगाह आदि अनेक दर्शनीय स्थल हैं। वैसे आर्यजगत् के लिए यह भी एक दर्शनीय स्थल एवं प्रेरणाधाम बन सकता है। जैसे कि स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती महामन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के पुरुषार्थ से राणा जी का उदयपुर में विराजमान सत्यार्थप्रकाश लेखन की पावन स्थली नवलखा महल आर्यसमाज के अधिकार में आ चुका है और उसे एक आर्यो का प्रेरक स्थल बनाये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

श्री हरिसिंह सैनी इस धर्म-यज्ञ में पुष्कल अर्थाहुति देने के लिए तैयार हैं। आज मूर्धन्य आर्य नेता स्वामी ओमानन्द सरस्वती, प्रो० शेरसिंह, स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती और कैप्टन देवरत्न आदि श्री हरिसिंह सैनी के पुण्य प्रस्ताव पर विचार करके इसे कार्यान्वियन में परिणत कर सकते हैं। आर्यजगत् को इस ओर अवश्य शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनियमों की यात्रा :

उमाकान्त उपाध्याय, सम्पादक, 'आर्यसंसार' आर्यसमाज कलकत्ता

संगठन का पथ-अवरोध

परोपकारिणी सभा के मासिक मुख-पत्र, 'परोपकारी,' जून १९९७, में श्री अश्विनीकुमार पाठक, वेद प्रचारक के विचार 'अब आर्यसमाज कैसे आगे बढ़े? प्रकाशित हुए हैं। श्री पाठक जी के हृदय में संगठन की स्थिति के सम्बन्ध में एक पीड़ा का बोध होता है। आर्यसमाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए जो भी आर्यसमाज के शुभचिन्तक हैं, संगठन के भक्त हैं, समाज के आदर्शों के लिए समर्पित हैं, उन सब को पीड़ा भी है, चिन्ता भी है और कुछ करने की छटपटाहट भी है।

श्री पाठकजी ने ठीक ही लिखा है

१. कुछ प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाएं और सर्वोच्च संगठन, सार्वदेशिक सभा, परस्पर झगड़ों में और मुकदमेबाजी में फँसे हुए हैं।

२. इसमें कुछ तो उपनियमों का सहारा लिया जाता है और कुछ नियमों की अवहेलना भी कर दी जाती है।

३. चुनाव अधिकारी की प्रायः नियुक्ति नहीं होती–विशेष रूप से प्रतिनिधि सभाओं के चुनाव में।

इस सन्दर्भ में इतना और कहने का मन होता है कि प्रतिनिधि सभाओं में प्रायः मतदाता सूची अधिकारियों की जेब में अन्तिम समय तक बनती बिगड़ती रहती है। बोगस समाज और मनोनुकूल प्रतिनिधि बनाना तो निर्वाचनों में समझा समझाया खेल सा हो गया है। यह स्व-अनुकूलता इकाइयों से लेकर सार्वदेशिक तक व्याप्त हो चुकी है।

४. उपनियम ऐसे बन गये हैं कि इकाइयों का सार्वदेशिक में सीधा कोई अधिकार नहीं रह गया है।

जो कुछ अधिकार या कर्तव्य है, उसका स्वरूप प्रतिनिधि स्वरूप (Delegated) है। उपनियमों ने प्रतिनिधि को, प्रतिनिधिक के पद पोस्ट से (Delegate) की जगह स्वामी, शासक, तानाशाह बना दिया है। अब ऊपर के संगठनों से निवेदन, अपील या सूचना की जगह आदेशात्मक परिपत्र जारी किए जाते हैं।

नीचे से लेकर ऊपर तक निर्वाचन पद्धति कम से कम, उसका क्रियात्मक स्वरूप अत्यन्त चिन्ताजनक हो गया है। बड़े संकोच के साथ, लिखने में पीड़ा भी होती है, कि कई बार संगठन में अधिकारी वे लोग बन जाते हैं जो न आर्य सभासद हैं, न आर्यसमाज के भक्त हैं, न मिशन के लिए उनमें कोई व्यग्रता है। अधिकार लिप्सा ही मुख्य प्रेरक तत्त्व है।

एक अत्यन्त दुःखद दुश्चक्र

मुझे व्यक्तिगत रूप से कुछ विश्वासी निर्भरयोग्य सूचनाएं प्राप्त हुई हैं जिनसे यह निदित होता है कि आर्यसमाज के झगड़ों, दलबन्दियों, बोगस मतदाताओं की स्थिति को देखकर अन्य संगठन आर्यसमाज पर अधिकार कर लेने के लिए आतुर हो उठे हैं। आर्यसमाज के पास सम्पत्ति है, भवन है, स्कूल, पाठशालाएं हैं और आन्तरिक झगड़ों से लाभ उठाकर बाह्य तत्त्व समाज पर अधिकार करने की चेष्टा में है। ऐसी चेष्टाएं राजनीतिक भी हैं, अन्य संगठनों की ओर से सामूहिक रूप में भी हैं, और व्यक्तिगत तो हैं ही। समय रहते समाज के निःस्पृह, निःस्वार्थ महानुभावों को सचेत हो जाने की बड़ी भारी आवश्यकता है।

उपाय

आर्यसमाज को विघटन से बचाने के लिए श्री अश्विनी-कुमार पाठक जी ने एक सुझाव प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं —

''मेरी तुच्छ सम्मति में तो एक ही रास्ता नजर आता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के महामन्त्री श्री गजानन्द आर्य जो अच्छे, समझदार, विद्वान् तथा विचारक हैं, आर्यसमाज के विद्वानों, संन्यासियों तथा नेताओं का एक सम्मेलन शीघ्रातिशीघ्र बुलाकर विचारमन्थन करवायें और उसका निष्कर्ष आर्य जनता के सामने रखें, तभी आर्यसमाज बच सकता है अन्यथा, आर्यसमाज के विघटन में अब कोई सन्देह नहीं रहा। आशा है कि महामन्त्री जी अपने व्यस्त कारोबार के होते आर्यसमाज को बचाने के लिए अवश्य आगे आएंगे।"

निःसन्देह, श्री पाठक जी का सुझाव बहुत सुन्दर है। श्री गजानन्द जी आर्य, महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के पूर्ण रूप से भक्त भी हैं और मिशन के लिए सर्वात्मना समर्पित भी हैं। उनकी निष्ठा भी किसी अन्य दल या राजनीति आदि में नहीं है। प्रभु-कृपा से वे समझदार और साधन-सम्पन्न भी हैं। दलीय जोड़-तोड़ में वे दलगत भावनाओं से ऊपर उठकर आर्यसमाज के एकनिष्ठ हितैषी हैं। परोपकारिणी सभा के प्रधान, परम पूजनीय स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के निर्देशन में यह गुरुतर और कष्टसाध्य कार्य परोपकारिणी सभा, उसके समर्पित प्रधान, महामन्त्री और सदस्यगण सम्पन्न करने का प्रयास करें तो हमें इस अन्धकार में भी एक आशा की किरण दिखाई पड़े।

मुझे इतिहास की वे घटनाएं स्मरण हो रही हैं जब प्रतिनिधि सभाओं का निर्माण नहीं हुआ था। उस समय स्थान-स्थान पर महर्षि के भक्त, आर्यसमाज की इकाइयाँ स्थापित करते जा रहे थे। इतिहास के उस आरम्भिक काल में परोपकारिणी सभा के वार्षिक अधिवेशनों में इकाइयों के पुरुषार्थ को संयुक्त, संगठित करने के सक्रिय प्रयास होते रहे हैं। उस समय परोपकारिणी सभा के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर इकाइयों के कार्यकर्ता बुलाये जाते थे और प्रतिनिधि सभाओं के गठन पर सक्रिय विचार विमर्श होता था। इस प्रकार प्रतिनिधि सभाओं के संगठन में परोपकारिणी सभा ने महर्षि की उत्तराधिकारिणी की भूमिका अच्छी तरह निभाई थी।

आज संगठन अपने मार्ग से भटक कर विघटन की ओर बढ़ रहा है। सार्वदेशिक में विघटन और मुकदमाबाजी हो रही है। अनेक प्रतिनिधि सभाओं में यही संघर्ष है। कई जगह एक ही राज्य में दो-दो प्रतिनिधि सभाएं उभर कर आपस में टकरा रही है। इकाइयों में भी अनेकत्र संघर्ष और मुकदमे की स्थिति है। विघटन की इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में महर्षि की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की ओर दृष्टि जाती है। आशा है विद्वान् अधिकारी और सदस्यगण हमारे निवेदन पर विचार करेंगे।

हमें यह पूरा ध्यान है कि ऐसा कोई सांवैधानिक प्रावधान नहीं है। किन्तु महर्षि की उत्तराधिकारिणी होने का सर्वश्रेष्ठ नैतिक प्रावधान परोपकारिणी सभा के पास है और संगठन को विघटन से बचाने के लिए अन्य कोई मार्ग सूझ नहीं रहा है। एकमात्र इस समय परोपकारिणी सभा पर ही निगाह टिकती है।

यह भी लगभग निश्चित सा ही लगता है कि सब ओर से इस तरह के प्रयास का स्वागत नहीं होगा। आलोचना भी होगी, प्रयास का विरोध भी होगा। किन्तु आलोचनाओं और विरोधों में न जाकर आर्य जनता के सम्मुख विचार आने चाहिए; दिशा देनी चाहिए। जनमत की धारा अभी भी उचित मार्ग पर ले आने की सम्भावना है। प्रयास करना अपना धर्म है। इतिहास का यह कालखण्ड हमें निरुद्यमी न कह सके। हमें अभी भी पूर्ण विश्वास है कि सर्वसम्मान्य संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, उपदेशक, भजनोपदेशक, बुद्धिजीवी और अधिकारी एवम् कार्यकर्ता बहुत बड़ी बहुसंख्या में महर्षि और संगठन के भक्त हैं। आज की विघटनकारी परिस्थितियों से चिन्तित भी हैं। किन्तु उन्हें दिशा नहीं मिल रही है। यह दिशादान परोपकारिणी सभा के प्रधान, महामन्त्री, अधिकारी और सदस्यगण कर सकें तो संगठन पुनः अपने मार्ग पर आ सकेगा।

जब ये केन्द्रीय संगठन नहीं बने थे उस समय परोपकारिणी सभा की भूमिका इनका निर्माण कराकर समाज के पुरुषार्थ को संयोजित करने में थी, अब जब ये संगठन अपने मार्ग से भटककर पुरुषार्थ-वियोजन और विघटन की ओर बढ़ रहे हैं, तो परोपकारिणी सभा की भूमिका का सक्रिय होना संगठन की आकांक्षा और अपेक्षा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत माता के मस्तक से अंग्रेजी के कलंक को मिटाओ

–जगदीशप्रसाद वैदिक, राष्ट्रीय अध्यक्ष, अ०भा० अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन

हमारा देश भारत अंग्रेजों का १५० वर्षों तक गुलाम रहा। १८५७ से लेकर १९४७ तक सतत स्वतन्त्रता-आन्दोलन चलता रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही १५ अगस्त १९४७ को दिल्ली के लाल किले पर अंग्रेजों के ध्वज यूनियन जैक को हटाकर हमारा भारत का ध्वज अशोक चक्र वाला तिरंगा फहराया। अपने देश के शीर्षस्थ नेताओं का मन्त्रिमण्डल बनाया और जवाहरलाल नेहरू ने प्रधानमन्त्री पद की शपथ ग्रहण की। हमने अंग्रेजों के द्वारा बनाया गया संविधान हटाकर अपना संविधान बनाया। अंग्रेजों का सिक्का हटायां, अंग्रेजों के टिकट हटाये, अंग्रेजों के पुतले हटाये, सरकारी उच्च स्थानों पर पदस्थ अंग्रेज अधिकारियों को हटाया, न्यायालयों से अंग्रेज न्यायाधीश हटाये। इस प्रकार हमने अनेक स्तरों पर अंग्रेजीयत को हटाया, किन्तु हमारी भारतीय भाषाओं तथा भारत के ४०% नागरिकों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा द्वारा और ६०% नागरिकों की समझी जाने वाली भाषा हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया, परन्तु व्यावहारिक रूप में हिन्दी को तथा भारतीय भाषाओं को अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त नहीं करा सके। अंग्रेजी को महारानी के सिंहासन पर विराजित कर राष्ट्र भाषा हिन्दी एवम् अन्य भारतीय भाषाओं को दासी का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। तत्कालीन देशभक्त नेताओं द्वारा ३ वर्ष तक विचार मन्थन करने के पश्चात् अंग्रेजी भाषा के स्थान पर हिन्दी को राष्ट्र भाषा के स्थान पर सर्वानुमति से स्वीकार किया गया. विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि १९२० से कांग्रेस का कार्य हिन्दी में किया जाने लगा था। १९२८ में मोतीलाल जी नेहरू ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी कि स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिये।

अगस्त १९४९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर सेठ गोविन्ददास जी की अध्यक्षता में पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की घोषणा की थी। इस पर संविधान सभा में प्रभावशाली बहस हुई और २६ जनवरी, १९५० को भारत का अपना नया संविधान लागू किया तथा हिन्दी को भारत की राजभाषा स्वीकार किया गया। रविशंकर जी शुक्ल, सेठ गोविन्ददास जी, डॉ० रघुवीर जी, प्राध्यापक श्री शिव्बनलाल जी सक्सेना, पुरुषोत्तमदास जी टंडन, घनश्यामदास जी गुप्त आदि नेताओं का आग्रह था कि ५ से ७ वर्ष में अंग्रेजी को पूर्ण रूप से सभी स्तर से हटा दिया जाये। किन्तु जवाहरलाल जी की विदेशी मानसिकता के कारण १५ वर्ष यानी १९६५ तक राजकाज एवं शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी चलती रहने की सुविधा मिली और १० मई, १९६३ को राष्ट्रपति जी ने २६ जनवरी, १९६५ के पश्चात् भी राज-काज में प्रयोग की अनिश्चित-कालीन समय के लिए स्वीकृति दे दी।

विशेष महत्त्वपूर्ण घटना है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव तमिल भाषी श्री गोपालस्वामी आयंगर ने किया था। समर्थन और अनुमोदन करने वाले मराठी-भाषी शंकरराव जी देव तेलगु-भाषी दुर्गावती, उर्दू-भाषी मोलाना अबुलकलाम आजाद, गुजराती-भाषी कन्हैयालाल जी माणिकलाल जी मुंशी, कन्नड़-भाषी श्रीकृष्णमूर्ति थे। इस प्रकार गहराई से विचार मन्थन करके हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया। किन्तु महान् आश्चर्य है कि ५० वर्ष की स्वतन्त्रता के पश्चात् भी संसार का एक मात्र राष्ट्र भारत ही है। जो विदेशी भाषा अंगेजी का गुलाम बना हुआ है।

एक ऐतिहासिक महापुरुष लार्ड मेकाले पर इंगलैंड के नागरिक गौरवान्वित हो रहे हैं। लार्ड मेकाले ने अपने माता-पिता को पत्र लिखा था कि मेरे द्वारा भारत के बालकों के लिए दी जाने वाली शिक्षा-पद्धति बनायी गई है। उसका परिणाम यह होगा कि भारत का नागरिक शरीर से तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय होगा परन्तु मन से वह अंग्रेज होगा। भाइयो ! लार्ड मेकाले की योजना सत्य सिद्ध हो रही है। हमारे दैनिक व्यवहार में अंग्रेजी रग-रग में समा गई है। भारतीयता की समस्त पहचान समाप्त होती जा रही है। भारतीय महीने चैत्र, बैसाख आदि तिथि, एकम् दूज आदि और अपने संवत् तो हम भूल ही गये हैं। रिश्तों के सम्बोधन माता, पिता, ताऊ, काका, चाचा, जीजा, फूफा, साला, ससुर, सास, साली, बुआ, मौसी आदि का स्थान अंकल-आंटी ने ले लिया है। वेशभूषा (पहनावा) धोती, कुर्ता, अंगरखा, शेरवानी, पायजामा, पगड़ी, साफा, टोपी का स्थान कोट, पेंट, शर्ट, बुशर्ट, टी शर्ट आदि ने लिया है। शिक्षा तो प्रारम्भ ही से अंग्रेजी में दी जा रही है। देवनागरी के अंकों को सम्पूर्ण व्यवहार से समाप्त कर रोमन अंकों को व्यवहार में लाया जा रहा है। इसी प्रकार भोजन में भी अंग्रेजी समा गई है, पशुओं के समान खड़े-खड़े भोजन करते हैं।

हमारी प्रजातान्त्रिक सर्वोच्च संस्था संसद् में भी अंग्रेजी का बोलबाला है। प्रधानमन्त्री सहित अनेक मन्त्री और सांसद अंग्रेजी में बोलते हैं। लगभग ८०% संसद सदस्य अंग्रेजी के कारण क्या बोला जा रहा है उनकी समझ में आता ही नहीं है लगभग ६०% संसद सदस्य हिन्दी समझने वाले होते हैं फिर भी राजनेताओं की अंग्रेजी की मानसिक गुलामी के कारण हिन्दी का प्रयोग नहीं किया जा रहा है।

परतन्त्र भारत से अंग्रेजों को भगाने के लिए सभी भारतीय भाषाओं में भाषण देकर आन्दोलन चलाया गया था। गांधी जी की मातृभाषा गुजराती थी फिर भी उन्होंने सम्पूर्ण देश में हिन्दी में ही भाषण दिये थे। १९४७ में भारत के स्वतन्त्र होते ही बी०बी०सी० लन्दन के आकाशवाणी केन्द्र द्वारा गांधी जी से सन्देश मांगा गया था। उस समय गांधी जी ने कहा था कि दुनिया से कह दो की गांधी अंग्रेजी भाषा भूल गया है। गांधी जी ने अपनी पुस्तक "मेरे सपनों का भारत" में लिखा हैं कि जो लोग अपनी भाषा छोड़ देते हैं वे "देशद्रोही हैं" और जनता के साथ विश्वासघात करते हैं। भाइयो ! गांधी के कथनों के अनुसार हमारे राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री एवं राजनेता तथा जो नागरिक अंग्रेजी के पक्षधर हैं वे सब देशद्रोही एवं विश्वासघाती हैं।

गांधी जी के पूर्व स्वामी दयानन्द ने गुजराती भाषी होते हुए भी अपना समस्त साहित्य हिन्दी में लिखा और सम्पूर्ण भारत में हिन्दी में ही भाषण दिये।

अंग्रेजी के समर्थक तथा व्यवहार में लाने वाले भाइयो ! थोड़ा तो विचार करके देखिये कि अंग्रेजीयत में घुल मिलकर हमने क्या प्राप्त किया है—भ्रष्टाचार, बेईमानी, मिलावट, वर्ग भेद, सामन्तवाद, गरीबी, आर्थिक गुलामी, तकनीकी गुलामी और अराष्ट्रीयता।

आश्चर्य तो यह है कि अंग्रेजों से देश को स्वतन्त्र कराने के लिए सम्पूर्ण देश में हिन्दी भाषा में ही आन्दोलन किया गया था। उन देशभक्तों ने जेल की यातनाएँ सहीं, अनेकों के घर उजड़ गये, अनेक फाँसी पर लटक गये उनमें से अभी भी कुछ आन्दोलनकारी देशभक्त जीवित हैं। वे भी मौन धारण कर अंग्रेजी भाषा की गुलामी में जीवन बिता रहे हैं।

सत्ता में मदान्ध, देशभक्ति से विमुख सत्ताधारी और बुद्धिजीवी, गुलाम मानसिकता वाले नागरिक मातृ भाषा में शिक्षा देने का विरोध करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान् विचारक न्यायाधीशों की सलाह को ठुकरा रहे हैं।

भारत के मुख्य न्यायाधीश एम०एन० वेंकट चलैया और न्यायमूर्ति ए० मोहन की खण्डपीठ ने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा है कि सभी शिक्षा विशेषज्ञों का मत है कि बच्चों को ४थीं कक्षा तक शिक्षा केवल मातृभाषा में ही दी जानी चाहिये। इसके पीछे गहरी सोच और शरीर विज्ञान का आधार है। बच्चों के सुकोमल मस्तिष्क को मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा में पढ़ाने का यत्न किया जाना उनके ऊपर अत्याचार है। इस निर्णय के साथ ही उच्चतम न्यायालय ने इंगलिश मीडियम स्टूडेंटस, पेरेण्ट्स, एसोसिएशन की विशेष याचिका को खारिज कर दिया।

भाइयो ! केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी को ही अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त कराने की आवश्यकता के साथ समस्त भारतीय भाषाओं, तमिल, तेलुगु, मलयालम, मराठी, कन्नड़, गुजराती, बंगाली, उड़िया, काश्मीरी, पंजाबी, सिन्धी, उर्दू, संस्कृत, असमिया, कोंकणी, नेपाली, मणिपुरी को भी अपने-अपने प्रान्तों में अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त करवाना है।

हिन्दी-प्रदेश के भाई लोग बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज लोग मांग कर रहे हैं कि हिन्दी लाओ अंग्रेजी हटाओ। इस मांग को गैर हिन्दी भाषी अर्थात् ऊपरलिखित भारतीय भाषाएं जो हिन्दी की सहोदर (बहिन) हैं वे यह मान रहे हैं कि हमारे ऊपर हिन्दी को जबरदस्ती थोपा जा रहा है, इसी कारण गैर हिन्दी-भाषी प्रान्तों में हिन्दी का विरोध हो रहा है।

गैर हिन्दी-भाषी प्रान्तों को जन्म सिद्ध अधिकार है कि वे अपनी मातृभाषा का अपने दैनिक व्यवहार में तथा उच्च शिक्षा तक उपयोग करें और वे लोग राष्ट्रभाषा हिन्दी को राष्ट्रीय स्तर पर सम्पर्क भाषा के रूप में उपयोग करें। यदि गैर हिन्दी भाषी प्रान्तों पर हिन्दी लादने की बात कहते रहे तो कभी भी हिन्दी को अथवा हमारी अन्य भाषाओं को अंग्रेजी की गुलामी से मुक्ति नहीं मिलेगी। इसलिए हमारी प्रबल मांग तथा हमारा प्रयत्न यह होना चाहिये कि हिन्दी लाओ का नारा छोड़कर हम सब देशवासियों को एक ही नारा लगाना चाहिये कि "अंग्रेजी हटाओ भारतीय भाषाएं लाओ" जिसने हिन्दी को राष्ट्रभापा बनाने का निर्णय लिया था, उसका मुख्य कारण है कि भारत के ४० करोड़ नागरिकों की मातृभाषा हिन्दी है और शेष १८ प्रान्तों के ५५ करोड़ नागरिकों की भिन्न-भिन्न भाषाएं हैं।

आज भारत माता रुदन कर रही है कि मेरे सपूत बेटे-बेटियों ने हंसते-हंसते फाँसी का फन्दा चूमते हुए प्राणों की आहुति देकर तथा जेलों की घोर यातनाएँ भोगकर मुझे अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त करा दिया और राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, मन्त्री, सांसद, विधायक एवं नेता बनकर सत्ता की राजशाही का सुख भोग रहे हैं। लेकिन मेरी वाणी आज तक विदेशी एवं गुलामी की प्रतीक अंग्रेजी भाषा की गुलाम है। मुझे विश्वास था कि मेरे सपूत मेरे साथ विश्वासघात नहीं करेंगे। लगातार ५० वर्ष से याचना कर रही हूँ कि मुझे अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त कराओ। किन्तु ये विश्वासघाती सत्ता के नशे में चूर सुनते ही नहीं हैं।

सज्जनो ! भारत माता हम सब की है। ये "सपूत" ? राजनेतागण तो माता को अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त नहीं करा सके हम इन बहरे सपूत, राजनेताओं को माता की पुकार सुनाने के लिए संकल्प करें जिस प्रकार अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त कराने के लिए हमारे देशभक्त पूर्वजनों ने प्राणों की आहुति दी और जेल की यातनाएँ भोगीं, उसी प्रकार इन काले अंग्रेजों की जेल की यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी तभी भारत माता अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त होगी।

भाइयो ! हम नागरिकों में भी राष्ट्रभक्ति नहीं है। हम भी अपने दैनिक व्यवहार में अंग्रेजी का उपयोग कर रहे हैं, अपने बालकों को अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पढ़ाकर अंग्रेजी का जहर पिला रहे हैं। हम अपनी मातृभाषाओं का अपमान कर रहे हैं। हम सभी भारतवासियों का नैतिक कर्त्तव्य है कि हम सभी क्षेत्रों पर अपनी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रयोग करें।

हमारी आने वाली पीढ़ी हम को देशभक्त नहीं कहेगी और इतिहासकार भी हमारे लिए यही लिखेंगे। इसलिए हम सब संकल्प करें कि दैनिक जीवन के व्यवहार से अंग्रेजी को हटायें और भारतीय भाषाओं को लाकर भारत माता के मस्तक पर लगे कलंक को मिटायें।

विशुद्ध-मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोक रहित हिन्दी भाष्य, प्रक्षिप्त श्लोकों को सप्रमाण एवम् अन्तःसाक्षी पूर्वक समीक्षा सहित ओर विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

- वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवम् अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी।
- प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित होने पर भी अध्याय या प्रकरण के अनत में प्रक्षिप्त समीक्षा सहित।
- अवैदिक एवम् असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों के विषय में भ्रान्त धारणाओं से रहित।
- महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यात श्लोकार्थों से अलंकृत।
- अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति की भांति।

विशेष जानकारी के लिए सूची पत्र मंगायें

मूल्य : १००/- रु०

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,

४५५, खारी बावली, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास)

मानव-निर्माण : प्रथम सोपान

–भगवान देव ''चैतन्य'', सुन्दरनगर, मण्डी

महर्षि दयानन्द सरस्वती एकमात्र ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने मानव-निर्माण की सही योजना संसार के समक्ष रखी। महर्षि जी संसार के समस्त महापुरुषों में कई दृष्टियों से अपना अलग और विशेष स्थान रखते हैं। उनकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने धर्म को व्यावहारिकता के साथ जोड़ा। उनकी दृष्टि में धर्म केवल बाहरी दिखावे की वस्तु नहीं है बल्कि उन्होंने धर्म को व्यक्ति के आचरण के साथ जोड़ने का सत्प्रयास किया। अन्य लगभग सभी महापुरुषों ने धर्म को केवल बाहरी चिह्नों और नियमों आदि तक ही सीमित रखा। इसीलिए धर्म की हानि हुई और सामूहिक मानवता बिखर गई। धर्म में पाखण्ड और आडम्बरों का समावेश होकर मज़हब एवं सम्प्रदायों ने जन्म लिया। ये अलग-अलग सम्प्रदाय और तथाकथित धर्म ही मानवता का हनन करने वाले हैं। इन्हीं के कारण आज धर्म के नाम पर अत्याचार हो रहे हैं। महर्षि दयानन्द जी ने मनु महाराज के स्वर में स्वर मिलाकर स्पष्ट शब्दों में कहा–**न लिङ्गम् धर्म-कारणम्।** अर्थात् ये बाहरी चिह्न धर्म नहीं हैं। धर्म तो व्यक्ति के चहुँमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। वैशेषिक दर्शन का कथन है–**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसृसिद्धिः स धर्मः।** अर्थात् जिससे अभ्युदय (सांसारिक) उन्नति और निःश्रेयस् (मोक्ष) की सिद्धि हो वह धर्म है। महर्षि ने भी वेद एवं ऋषि-मुनियों द्वारा अनुमोदित धर्म का यही स्वरूप हमारे समक्ष रखा। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उनका कोई नया मत या सम्प्रदाय चलाने का बिल्कुल भी विचार नहीं है, वल्कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि तक की परम्परा को ही उन्होंने हमारे समक्ष रखा है। इसीलिए उन्होंने सम्प्रदायवादियों से अलग हटकर मानवतावाद को व्यावहारिकता प्रदान करने के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की। ''संस्कारविधि'' में महर्षि जी ने मानव निर्माण का विशद विवेचन किया है। उनका अमर ग्रन्थ ''सत्यार्थप्रकाश'' मानवीय उत्थान के सूत्रों का एक अद्भुत दस्तावेज है।

उनकी दृष्टि में सत्य और असत्य देव और दानव की कसौटी है। उनका मुख्य आदेश दानवता से देवत्व की ओर ले जाने वाला है। इसीलिए उन्होंने सत्य के ग्रहण करने और असत्य को त्यागने की बात कही है। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में महर्षि लिखते हैं–''मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना सत्य अर्थ-प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। ''सत्य की उनकी यह कसौटी व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक, सार्वभौमिक एवं निर्भान्त है। सत्य के आचरण से ही व्यक्ति मानव बनता है। सत्य-असत्य का निर्णय करने के लिए ही उन्होंने अपने ग्रन्थ में अन्य मतों की समालोचना पक्षपात रहित होकर की है। इस प्रकार अन्तिम सत्य की ओर पहुंचने का मार्ग प्रशस्त किया है। क्योंकि यह सार्वभौमिक सत्य ही मानव को मानव बना सकता है। इसी प्रसंग में वे लिखते हैं–''यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथा-तथ्य प्रकाश करता हूँ। वैसे ही दूसरे देशस्थ व मतवालों के साथ भी वर्तता हूं...... । क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते हैं और दूसरे मत की निन्दा व हानि करने में तत्पर होते हैं वैसे ही मैं भी होता परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन के बाहर हैं।''.

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि का लक्ष्य मनुष्य को मत एवं संम्प्रदायों की समस्त काराओं से मुक्त करके मनुष्यत्व तक पहुंचाना था। उन्होंने परमात्मा प्रदत्त वेद-ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ही एकमात्र धर्म मानते हुए समूची मानवता का उपकार किया है। उनका ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश भी वैदिक शिक्षाओं से ओत-प्रोत एक अनमोल निधि है। लाखों-करोड़ों लोगों ने इसके मनन-चिन्तन से दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है। सत्यार्थप्रकाश का लक्ष्य है मानव-निर्माण। एक ऐसा मानव जो स्वयम् अपने लिए, परिवार के लिए, समाज और राष्ट्र के लिए तथा पूरे विश्व के लिए सुख और शान्ति प्रदान करने वाला है। मनुष्यता के अंकुर यदि प्रत्येक मानव के हृदय में प्रस्फुटित हो जायें तो आज राष्ट्र, समाज और पूरे विश्व में फैला हुआ आतंकवाद स्वतः ही ध्वस्त हो सकता है। आज मानव-निर्माण की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है। मानव निर्माण के बिना शेष समस्त योग्यताएँ मानव को सुख और शान्ति प्रदान नहीं कर सकती हैं। मगर यह मानव का निर्माण स्वतः किसी प्रकार के चामत्कारिक ढंग से होने वाला नहीं है। इसके लिए हम सभी को सामूहिक प्रयास करना होगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में मानव-निर्माण की दिशा में बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक विचार प्रस्तुत किये हैं। इस समुल्लास का शुभारम्भ करते हुए वे लिखते हैं–अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः। अर्थात् अब हम शिक्षा के सम्बन्ध में कहेंगे। यहां महर्षि का शिक्षा शब्द केवल किताबी शिक्षा देने का संकेत नहीं करता है बल्कि शिक्षा शब्द से महर्षि का बहुत गूढ़ आशय है। व्यक्ति की मानसिक और आत्मिक उन्नति का विकास समुचित रूप से जब तक नहीं होता है तब तक व्यक्ति का व्यक्तित्व एकांगी है। शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्णता देने वाली होनी चाहिये। इस शिक्षा का निर्देश बच्चे को बहुत प्रारम्भ से ही मिलना चाहिए। बल्कि गर्भाधान और उससे भी पूर्व माँ-बाप को बच्चे के भीतर मानवीय गुण आरोपित करने की दिशा में कुछ ठोस कदम उठाने चाहियें। भाग्यवान् सन्तान बनाने के लिए महर्षि ने शतपथ ब्राह्मण का वचन प्रस्तुत किया है–**मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।** अर्थात् बालक को ज्ञानवान् बनाने के लिए तीनों गुरुओं को अपने तन, मन, धन से प्रयास करना चाहिए और ये हैं–माता-पिता और आचार्य।

महर्षि लिखते हैं कि– "धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे। माँ-बाप को गर्भाधान से पूर्व ही बच्चे को सही मानव बनाने की दिशा में ठोस चिन्तन करना चाहिए। आज हमारी सन्तानें बिगड़ रही हैं। इसका सब से प्रमुख कारण यही है कि आज सन्तानें योजनाबद्ध रीति से न होकर आकस्मिक रूप से पैदा हो रही हैं। माँ-बाप के समक्ष न कोई लक्ष्य है और न ही बच्चों को सुसंस्कारित करने की योजना। यह एक ध्रुव सत्य है कि माँ-बाप के खान-पान एवम् आचार-विचार का बच्चों पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता है। इसलिए महर्षि दयानन्द जी ने इस ओर विशेष ध्यान देते हुए कहा है–"माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति आरोग्य, बल, बुद्धि और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करायें, वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें, कि जिससे रजस्-वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों।" महर्षि के कथन का आशय है कि जैसे उत्तम बीज से उत्तम फसल होती है। ठीक वैसे ही शुद्ध व पुष्ट रज-वीर्य से उत्तम सन्तान पैदा होगी। महर्षि ने गर्भाधान के लिए ऋतुगमन के पश्चात् रात्रियों का निर्देश भी शास्त्रों के आधार पर किया है। उनका कथन है कि ऋतुदान के चार दिन छोड़कर आगे के १२ दिन गर्भाधान के लिए अति उत्तम हैं। मगर उनमें से भी एकादशी और त्रयोदशी के दिन गर्भाधान न करें। उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से सभी बातों का विवेचन किया है, क्योंकि अच्छी सन्तान पैदा करने के लिए फूँक-फूँक कर कदम रखने की आवश्यकता है। चरक और सुश्रुत के आधार पर खान-पान और आचार व्यवहार पर उन्होंने विशेष बल दिया है। सुश्रुत संहिता में लिखा है–

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ।
स्त्रीपुरुषौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः।।

अर्थात् स्त्री-पुरुष जैसे आहार-विहार तथा चेष्टा आदि से युक्त होकर परस्पर समागम करते हैं उनकी सन्तान भी वैसी ही होती है। यही नहीं गर्भाधान के पश्चात् भी स्त्री को इस सम्बन्ध में विशेष सावधानी रखने का निर्देश देते हुए वे कहते हैं कि गर्भाधान के बाद एक वर्ष तक स्त्री-पुरुष का संग न करें। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहे, कि जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तान का जन्म न हो।

महर्षि ने इन विचारों के माध्यम से बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने रखे हैं। जो लोग समझते हैं कि गर्भाधान और उसके बाद गर्भ-स्थिति के काल को इतनी गम्भीरता से लेने की आवश्यकता नहीं है वे बहुत बड़ी भूल में हैं। जिस प्रकार गर्भाधान व्यभिचार नहीं बल्कि एक पवित्र प्रक्रिया है ठीक उसी प्रकार गर्भ-स्थिति के पूरे समय में स्त्री को विशेष सावधानी की आवश्यकता है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने जो तथ्य सिद्ध करके हमारे समक्ष रखे हैं, उन्हीं तथ्यों को आज पाश्चात्य जगत् भी अक्षरशः सत्य मान रहा है। मनोवैज्ञानिकता के प्रमुख विद्वान् फ्रायड का कथन है कि बच्चा गर्भाधान से लेकर छः-सात वर्ष तक की आयु में जो भी संस्कार ग्रहण करता है अपने भावी जीवन में उन्हीं का विकास करता है। यह बात प्रसिद्ध है कि वीर अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्रव्यूह का भेदन सीख लिया था। अर्जुन जब अपनी पत्नी को चक्रव्यूह के भेदन की कला सुना रहे थे तो अभिमन्यु गर्भ में ही था। विदुषी मदालसा के बारे में प्रसिद्ध है कि उसने अपनी इच्छानुसार अपने बच्चों को ब्रह्मवेत्ता बनाया और फिर अपने पति की इच्छा पूरी करने के लिए एक बच्चे को राजा बनने के संस्कार दिये। नेपोलियन जब गर्भ में था तो उसकी माँ सैनिकों की परेड देखा करती थी, इसीलिए बाद में वह महान् योद्धा बना। माँ के संस्कारों के कारण ही बिस्मार्क फ्रांस का शत्रु बन गया था। प्रेजीडेंट गारफिल्ड के हत्यारे गीट् की माँ ने गर्भ गिराना चाहा था और उस कुसंस्कार ने उस बच्चे को हत्यारा बना दिया। सम्भवतः इसीलिए मनु महाराज लिखते हैं–

यादृशं भजते नारी सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात् प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत् प्रयत्नतः।।

अर्थात् गर्भवती स्त्री जिस प्रकार की तस्वीर मन (मनु० ९।९) में खींच लेती है, उसी प्रकार की सन्तान को जन्म देती है। इसलिए उत्तम सन्तान के लिए स्त्री को ऐसे वातावरण में रखना चाहिए जिससे सन्तान उत्तम और शुद्ध विचारों वाली बने। चरक संहिता (शरीरस्थान ८।२१) में निर्देश दिया गया है कि सन्तान के हित की इच्छा करती हुई गर्भवती स्त्री अहितकारी आहार-विहार का त्याग दे तथा श्रेष्ठ आचार और विहार से शरीर की रक्षा करती रहे।

आहार के महत्त्व को यहाँ तक प्रमुखता दी गई है कि–आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः। (छान्दो०) अर्थात् आहार शुद्धि से सत्त्व (मन) की शुद्धि होती है, तथा समस्त ग्रन्थियाँ खुलकर आत्मा की स्मृति हो जाती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस अन्न को ही भर्ग अर्थात् पवित्रता का आधार माना है। इसलिए महर्षि दयानन्द जी ने भी आहार पर विशेष बल दिया है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि माता के जैसे-जैसे विचार होंगे वैसे-वैसे ही गर्भस्थ सन्तान के भी होंगे। संस्कारविधि में इसीलिए गर्भाधान के पश्चात् तथा जातकर्म से पूर्व दो और संस्कारों का विधान है। गर्भस्थिति का निश्चय हो जाने पर दूसरे या तीसरे मास में "पुंसवन-संस्कार" किया जाता है। उस समय गर्भस्थ सन्तान के शरीर का निर्माण होना आरम्भ हो जाता है। पुंसवन-संस्कार का मुख्य लक्ष्य माता का ध्यान उसके गर्भ में पल रही सन्तान के शारीरिक विकास की ओर खींचना है। संस्कारविधि में महर्षि ने इस संस्कार के अन्तर्गत गर्भवती के खान-पान पर विशेष निर्देश दिये हैं। जिन मन्त्रों के माध्यम से इस संस्कार में आहुतियाँ दी जाती हैं उनके भाव भी गर्भ को सुरक्षित रखने और सन्तान को पुष्ट करने सम्बन्धी हैं–

आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान् बाण इवेषुधिम्।
आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा।।

(अथर्व० ३-२३-२)

इस मन्त्र में दो महत्त्वपूर्ण बातें कहीं गयी हैं। पहली यह कि जैसे बाण तरकस में सुरक्षित रहता है ऐसे ही गर्भवती के गर्भ में संतान सुरक्षित रहे। दूसरी बात मन्त्र में कही गई है कि सन्तान दुर्बल नहीं बल्कि बलवान् पैदा हो।

एक अन्य संस्कार जो गर्भकाल में ही किया जाता है वह है–सीमन्तोन्नयन संस्कार। जहाँ शारीरिक विकास के लिए पुंसवनसंस्कार का विधान किया गया है, वहीं संतान के मानसिक विकास के लिए गर्भमास से चौथे महीने महर्षि ने सीमन्तोन्नयन संस्कार का विधान किया है। सुश्रुत के आधार पर सीमन्तोन्नयन का अर्थ है मस्तिष्क का उन्नयन अर्थात् विकास। यह संस्कार विशेष रूप से माता का ध्यान सन्तान के मानसिक विकास की ओर ले जाने के लिए किया जाता है। हमारे मनीषियों ने माँ के गर्भ को एक ऐसा सांचा माना है जिसमें वह चाहे जैसी सन्तान समाज के लिए दे सकती है। सुश्रुत में इसकी चर्चा विस्तार से की गई है। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक मान्यताओं के वैदिकीकरण के औचित्य की प्रवृत्ति

डॉ० भवानीलाल भारतीय, 8/423, नन्दन वन, जोधपुर

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि ऋषि दयानन्द वर्तमान में प्रचलित अठारह पुराणों तथा उनमें वर्णित विचारों को अवैदिक, अनार्ष तथा आर्य आदर्शों को कलंकित करने वाला मानते थे। वे इन ग्रन्थों को न तो महर्षि व्यास कृत ही मानते थे, साथ ही साम्प्रदायिक विद्वेष से पूर्ण इन ग्रन्थों की मान्यताओं को वे जनसमाज के लिए अहितकर भी ठहराते थे। जब किसी पूर्व पक्षी ने उनसे पूछा कि क्या पुराणों में कुछ भी वेदानुकूल या सत्य नहीं है तो उसके उत्तर में उन्होंने यही कहा कि घुणाक्षर न्याय से इनमें जो कुछ सत्यता है वह तो वेदादि सत्य शास्त्रों में पहले से ही वर्णित है, किन्तु इनमें असत्य, मिथ्या तथा युक्ति, तर्क एवं विज्ञान विरुद्ध बातों का इतना बाहुल्य है जिसके कारण इनमें पाई जाने वाली सत्य बातें भी विषाक्त हो गई हैं। फलतः वे पुराणों को विष मिश्रित अन्न की भाँति ठहराते हैं। विष सम्पृक्त भोजन त्याज्य ही होता है।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने पुराणों के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द की मान्यताओं को यथार्थरूप में, बिना लाग लपेट पेश किया है। एक समय था जब आर्यसमाज के विद्वानों ने इन पुराणों के खण्डन में अपना समग्र शास्त्र एवं युक्ति बल लगाया था तथा पुराणों की आलोचना में उत्कृष्ट साहित्य लिखा गया था। पं० मनसाराम वैदिक तोप, पं० बुद्धदेव मीरपुरी, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार तथा लोकनाथ तर्कवाचस्पति जैसे विद्वानों ने वाणी एवं लेखनी द्वारा पौराणिक मतवाद पर प्रबल प्रहार किये थे। हमारे युग में भी अमर स्वामी सरस्वती तथा पं० बिहारीलाल शास्त्री जैसे मूर्धन्य विद्वानों ने पौराणिक दुर्ग को धूलिसात् करने में कोई कमी नहीं रखी थी। तथापि आर्यसमाज में विद्वानों का एक वर्ग ऐसा भी रहा है जो यदा-कदा अपनी कल्पना शक्ति अथवा ऊहा के बल पर कतिपय पौराणिक मान्यताओं की सत्यता तथा तात्त्विकता सिद्ध करने का असफल प्रयास करता रहा है। इन विद्वानों की यह चेष्टा ऋषि के मूल मन्तव्यों के नितान्त प्रतिकूल है, यह कहने में हमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है।

इस लेखमाला में हम कतिपय आर्य विद्वानों द्वारा पुराण वर्णित मान्यताओं को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने के प्रयासों की छानबीन करने की चेष्टा कर रहे हैं। इस समय मेरे समक्ष स्वामी समर्पणानन्द जी लिखित गीता का भाष्य है। मैंने पं० बुद्धदेव विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द जी) को आर्यसमाज के मंचों से पौराणिक मिथ्या गाथाओं पर कट्टर प्रहार करते हुए सुना है तथा शास्त्रार्थों में शिवपुराण की दारुवन कथा तथा शिवदूती प्रसंग की नंगाई का खुलेआम पर्दाफाश करते हुए भी देखा है। जिसे सुनकर पौराणिक जगत् में त्राहि-त्राहि मच जाती थी। किन्तु वे ही पं० बुद्धदेव अन्यत्र अपनी ऊहा दिखाने के लिए यदा-कदा पौराणिक मान्यताओं पर उसी प्रकार सफेदी करने लग जाते थे जैसी आपात रमणीय पुराण व्याख्याएँ स्वामी विवेकानन्द भारत धर्म महामण्डल के उपदेशक या थियोसोफी वाले किया करते थे। पुराणों में वर्णित कृष्णचरित्र के अध्येता इस तथ्य से सहमत हैं कि राधा नाम की कृष्णा की प्रेयसी का भागवत, विष्णु पुराण आदि में कहीं भी उल्लेख नहीं है। बहुत बाद में (सम्भवतः १६वीं शताब्दी में विरचित) ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का अवतरण होता है जहाँ उसे रायाण वैश्य की विवाहिता पत्नी के रूप में उल्लिखित किया गया हैं। यह रायाण यशोदा का भाई तथा कृष्ण का मामा था। इस प्रकार तथाकथित राधा-कृष्ण की मामी (माता तुल्य पूज्य) सिद्ध होती है। इसी राधा को लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मवैवर्त के लेखक ने परकीया नायिका वाले अमर्यादित, उद्दाम विलास से युक्त जिस श्रृंगार का वर्णन किया है उसे सभ्य समाज में व्याख्यात करना तो दूर रहा, उन श्लोकों को उद्धृत करना भी शिष्टता के प्रतिकूल माना जाएगा।

तथापि समर्पण भाष्य में पुराण कथित बातों को ताक पर रखकर कुल स्वकल्पित ऊहायें इस प्रकार लिखी गई हैं–१ रायाण नामक गोपाल परम बुद्धिमान् था। २. उसने कंस के गोवध के विरोध में विद्रोह का बीज बोया। ३. राधा नाम की एक गुप्त मण्डली बनाई गई। ४. पुराण वर्णित रास वास्तव में वीर रस का प्रतीक था। हमारा निवेदन है क्या उपयुक्त स्थापनाओं के लिए स्वयं पुराणों या अन्य किसी ग्रन्थ में कोई आधार है या यह सब भाष्यकार की मनःकल्पित बातें हैं। क्या राधा कृष्ण के भक्त आज के पौराणिक आर्यसमाजी विद्वानों द्वारा किये गये इस वैदिकीकरण को स्वीकार करेंगे। क्या वे कृष्ण प्रिया राधा को कंस के विरोध में गुप्त मण्डली मानने के लिए तैयार होंगे ? कदाचित् नहीं। गीता का भाष्यकार स्वयम् इस तथ्य से अवगत है कि राधा कृष्ण की घोर शृंगार लीलाओं का प्रथम उत्स तो ब्रह्मवैवर्त पुराण ही है। उसी के अनुकरण पर आगे चलकर जयदेव ने अश्लीलता से युक्त गीत गोविन्द लिखा जिसमें 'कमलाकुंचमण्डनं' जैसे पदों का प्रयोग हुआ तथा वल्लभ सम्प्रदाय के ग्रन्थों में राधा के कुचों में मोदक की भावना की गई। (द्रष्टव्य–स्वामी दयानन्द कृत वेदविरुद्ध मत खण्डन)। इस स्थिति में यह कहकर राधा काण्ड पर पर्दा डाल देना कोई अर्थ नहीं रखता कि–इस घटना की ब्रह्मवैवर्त पुराण में जो दुर्दशा की गई है उसे पढ़कर सिर लज्जा से झुक जाता है। (समर्पण भाष्य की भूमिका) जब ब्रह्मवैवर्त का राधाप्रसंग है ही इतना कुरुचिपूर्ण तथा अश्लील तो उसे रूपक सिद्ध करने में क्या औचित्य है?

गीता में कृष्ण (अथवा विष्णु) के लिए चतुर्भुज शब्द का प्रयोग हुआ है। (अध्याय ११। ४६) विष्णु के चतुर्भुज रूप की कल्पना को पुराणों में आये अन्य संदर्भों से पृथक् का नहीं देखा जा सकता। यदि विष्णु को चतुर्भुज मानते हैं तो– १. उनका क्षीर समुद्र में शेषशायी होना। २. लक्ष्मी द्वारा उनकी पाद सेवा। ३. नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति। ४. भृगु की लात से उनके वक्षःस्थल का सुशोभित होना। ५. गरुड़ रूपी वाहन। ६. जय विजय द्वारपाल तथा एतत् सदृश सभी पुराण प्रसंगों को यथार्थतः स्वीकार करना होगा। अब हमारे आर्य विद्वानों ने विष्णु की चार भुजाओं तथा उनमें ग्रहण की गई वस्तुओं शंख, चक्र, गदा तथा पद्म की आपात रमणीय व्याख्याएँ स्वयम् ऊहा के बल पर की हैं। व्याख्याएँ प्रथम बार समर्पण भाष्य में ही की गई हैं। ऐसी बात भी नहीं है। यह सिलसिला तो आर्यसमाज की पहली पीढ़ी के विद्वान् पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ ने अपने ग्रन्थ त्रिदेव निर्णय से ही आरम्भ कर दिया था। हमारे अंग्रज तुल्य स्वर्गीय विद्वान् पं० क्षितीश वेदालंकार भी विष्णु के इन चार आयुधों की इसी प्रकार की व्याख्या कर चुके हैं। समर्पण भाष्यकार के विचार से शंख किसी महान् उद्देश्य के लिए सब को एकत्र करने वाले उद्घोष का प्रतीक है। चक्र तीव्र यात्रा साधन का ज्ञापक है। गदा शत्रु का विनाश करने में समर्थ शस्त्र शक्ति का वाचक है तथा पद्म लक्ष्य पूर्त्यर्थ धन की देवी लक्ष्मी का संकेतक है।

कहने को ये बातें निर्दोष प्रतीत होती हैं, किन्तु क्या स्वयं पुराणों में ऐसी प्रतीकवादी व्याख्याओं का कोई संकेत है? यदि नहीं तो पौराणिक गाथावाद को सत्य सिद्ध करने की आवश्यकता आर्य विद्वानों को क्यों महसूस हुई ? यह कार्य तो माधवाचार्य आदि वे सनातनी पण्डित पहले से ही कर रहे थे जिनसे शास्त्रार्थ युग में स्वयं पं० बुद्धदेव विद्यालंकार जैसे अप्रतिम मेधावी ने लोहा लेकर इन पौराणिक प्रवादों की बखिया उधेड़ दी थी। यथावकाश इसी क्रम में हम पुराणों के अभिनव व्याख्याकार अन्य आर्यसमाजी विद्वानों की स्थापनाओं की भी परीक्षा करेंगे। अभी तो इतना ही। ◻◻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

81 श्रीमती कान्ता बत्रा, ए-2/27, जनकपुरी, नई दिल्ली-58

82 श्री शूरवीर सेठ, 253 आर, माडल टाउन, यमुनानगर अम्बाला (हरियाणा)

83 श्री बसन्तकुमार राठौर, स्वापन नालन्दा सोसाइटी कालवाड़ रोड, स्वरन राजकोट (गुजरात)

84 श्री गुलाबचन्द बसंल, 19 सिविक सेंटर, इन्दिरा पैलेस, भिलाई नगर (म.प्र.)

85 श्री जगदीश चन्द्र सुरेन्द्रकुमार नागर ढोलक वाले, मेन मार्केट छीपा बड़ौत कोटा (राजस्थान)

86 ी नेवन्दराज महेश किराना स्टोर, गुमानपुर कोटा (राजस्थान)

87 श्री लक्ष्मणदास आर्य, 5 भाई साबुन कालोनी, बल्लभगढ़, फरीदाबाद (हरियाणा)

88 श्री वैदिक कोष वाचनालय आर्यसमाज मन्दिर, परली बैजनाथ, जि० बीड, (MR)

89 श्री जेष्ठ बर्मन मैसर्स आर्यन टैक्नोक्राटस, वी-112/3 स्टेज पीनया औद्योगिक स्टेट, बैंगलूर (कनार्टक)

90 श्री जनकलाल गुप्त द्वारा भारत आर्ट स्टुडियो, 93 डायमंड हारवर रोड, खिदिरपुर कलकत्ता-23

91 श्री मोहन चरन साहु असिस्टेंट फोरमेन (इलेक्ट्रिकल), रामभाई, पो० कान्तपलि, जि० सम्बलपुर

92 श्री ब्रह्मदेव आर्य सुपुत्र श्री भरतसिंह शास्त्री, शास्त्री निवास, आर्यसमाज मार्ग, लोहारू, भिवानी (हरियाणा)

93 श्री लालबहादुर शास्त्री महिला कालेज, बरनाला (पंजाब)

94 श्री महर्षि दयानन्द धर्मार्थ प्रतिष्ठान द्वारा गंगाराम वानप्रस्थी, 5-3-387, तोपखाना मार्ग, हैदराबाद (आंध्र प्रदेश)

95 श्री प्राचार्य दयानन्द कालेज, मु० पो० लातूर, जिला लातूर (MR)

96 श्री प्राचार्य बैद्यनाथ कालेज, मु० पो० परली बैजनाथ, जिला बीड (MR)

97 श्री प्राचार्य लालबहुदुर शास्त्री महाविद्यालय, मु. पो. धर्माबाद, जिला नान्देड़

98 श्री रामराव बैंकटराव बधूलकर, विद्यानगर परली बैजनाथ, जिला बीड (MR)

99 श्री आचार्य गुरुकुल वैदिक संस्कृत महाविद्यालय, रामालिंग एडशी धाराशिव, उस्मानाबाद

100 श्री रामचन्द्र शर्मा, विवेकीराय मार्ग बड़ी बाग, गाजीपुर (उ० प्र०)

—धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/97
आर/आर/नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
2-3/9/97

सितम्बर १९९७

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/97

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आकर्षक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्यः लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाषः- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में.......................
ग्राम.......................
डा०.......................
जिला.......................

मुद्रकः ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

दयानन्द-सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जून, १९९६

वर्ष २४ : अंक ८
दयानन्दाब्द : १७२
विक्रमसंवत् : आषाढ़, २०५३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९७

संस्थापक : **स्व० दीपचन्द आर्य**
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- स्तुता मया वरदा वेदमाता — २
- वेदोपदेश — ३
- परमात्मा का स्वरूप — ४
- साहित्य-समीक्षा — ५
- 'ऋग्वेद' में 'देवृकामा' या 'देवकामा'? — ६
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ — ७
- अभिवादन में श्रेष्ठतम 'नमस्ते' — ८
- शंका-समाधान — १०
- जापानी स्कूलों में वेदों की शिक्षा — ११
- दैनिक संस्कृत-वार्ता-लेखन का अभिनव उपक्रम — ११
- रुद्राक्ष की माला धारण करना जंगली पुरुषों का काम है — १२
- ईश्वर दो हम को वरदान — १२
- दिल्ली राजभाषा बिल में संशोधन की मांग — १३
- अमर शहीद पं० लेखराम बलिदान शताब्दी-समारोह — १३
- मनु की वर्ण-व्यवस्था पर संगोष्ठी — १४
- सत्यार्थप्रकाश प्रतियोगिता के नाम पर लूट — १६
- निराधार और असत्य है आर्य आक्रमण परिकल्पना — १७
- 'हिन्दु' नाम कसौटी पर — १९
- सद्बुद्धि की कामना — २४

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ रुपये और ... प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुता मया वरदा वेदमाता

(संसार का आदिकाव्य वेद)

—रामफलसिंह, ग्रा. व डा. टिटौली, जि. रोहतक (हरियाणा)

गायें वेद ऋचाएँ।
युग-युग गूँजें गीत हमारे,
मानव मन हर्षायें।।

ईश पिता की वाणी प्यारी,
इसको गाये सृष्टि सारी।
दुःख संताप मिटाने वाली,
मुक्ति मार्ग बतलाने वाली।
हम इस को अपनायें।
गायें वेद ऋचाएँ।।

इसमें निहित हैं सब सत्य विद्या,
खुलें ज्ञान-चक्षु मिटे अविद्या।
ज्ञान-विज्ञान का हैं भण्डार,
भौतिक, अभौतिक, तत्त्व सार।
ये हम को बतलायें।
गायें वेद ऋचाएँ।।

हर दुःख का उपचार यही हैं,
सत्य धर्म-आधार यही हैं।
ऋषियों मुनियों ने इन को गाया,
भोगा आनन्द परम पद पाया।
क्यों इन को बिसरायें।
गायें वेद ऋचाएँ।।

इनसे पुलकित धरा व्योम हो,
मानव मन में रचा 'ओम्' हो।
बहे ज्ञान की पावन धारा,
जो श्रुति-सुधा पीये जग सारा।
इसे जन-जन तक पहुंचायें।
गायें वेद ऋचाएँ।।

वर देने वाली यह माता,
महान् ऐश्वर्य की प्रदाता।
द्विजों को पावन कर देती,
अक्षय आनन्द से भर देती।
अमर पावमानी ऋचाएँ।
गायें वेद ऋचाएँ।।

वेदमाता की कर ले स्तुति,
मानव कर ले इससे प्रीति।
सदा सर्वदा सर्व सुख हितकारी,
अन्त में बनायें मोक्ष अधिकारी।
स्तुति इस की गायें।
गायें वेद ऋचाएँ।
युग-युग गूँजें गीत हमारे।
मानव मन हर्षायें।।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। -महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- परमेश्वर कभी उत्पन्न नहीं होता, कोई देवता उसके समान नहीं है और अनन्त विद्या वाला है। उस महान् तथा समग्र ऐश्वर्य वाले देव की सब को उपासना करनी चाहिए। उससे भिन्न कल्पित देव उपास्य नहीं है।

अगस्त्यः ऋषिः। इन्द्रः ईश्वरः देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।।

अथेश्वरविषयमाह।।

अब ईश्वर विषय का उपदेश किया जाता है।

ओ३म्- अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ऽअस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध।।

(यजु० ३३।७९)

पदार्थः-(अनुत्तम्) अप्रेरितम्। नसत्तनिषत्तानुत्त० अ० ८।२।६१ इति निपातनम् (आ) स्मरणे (ते) (मघवन्) बहुधनयुक्त! (नकिः) आकांक्षायाम् (नु) सद्यः (न) (त्वावान्) त्वया सदृशः (अस्ति) (देवता) देव एव देवता। स्वार्थे तल्। (विदानः) विद्वान् (न) (जायमानः) उत्पद्यमानः (नशते) व्याप्नोति। नशदिति व्याप्तिकर्मा। निघं० २।१९। (नः) (जातः) उत्पन्नः (यानि) जगदुत्प त्यादिकर्भाणि (करिष्या) करिष्यसि। सिवलोपः दीर्घश्चात्र छान्दसः। (कृणुहि) करोषि। लडर्थे लोट्। (प्रवृद्ध)।।

सपदार्थान्वयः- हे (प्रवृद्ध मघवन्!) बहुधनयुक्त ईश्वर! यस्य (ते) (अनुत्तम्) अप्रेरितस्वरूपम् अस्ति, (न) (त्वावान्) त्वया सदृशः (देवता) देव एव देवता (विदानः) विद्वान् नु सद्यः अस्ति। भवान् (न) (जायमानः) उत्पद्यमानः अस्ति। यानि जगदुत्पत्त्यादि-कर्माणि (करिष्या) करिष्यसि (कृणुहि) करोषि च तानि कश्चिद् (नकिः) आकांक्षायाम् (आ+नशते) स्मरणे न व्याप्नोति, स त्वं सर्वोपास्योऽसि।।

भाषार्थः- हे (प्रवृद्ध) सब से बड़े (मघवन्) बहुत धन से युक्त ईश्वर! (ते) तेरा (अनुत्तम्) अप्रेरित=गतिरहित स्वरूप है। (न) न कोई (त्वावान्) तेरे सदृश (देवता) देवता है। (विदानः) विद्वान् (नु) निश्चय से है। आप (न जायमानः) उत्पन्न होने वाले नहीं हो (न जातः) और न उत्पन्न हुए हो। (यानि) जगत् की उत्पत्ति आदि जिन कर्मों को (करिष्या) तू करेगा और (कृणुहि) करता है उन्हें कोई (नकिः) ही (आनशते) स्मृति से व्याप्त करता है, सो तू सब का उपास्य है।

भावार्थः- हे मनुष्याः! यः परमेश्वरोऽखिलैश्वर्योऽसदृशोऽनन्तविद्यो नोत्पद्यते नोत्पन्नो नोत्पस्यते सर्वेभ्यो महान् अस्ति, तमेव यूयं सततमुपासीत।

भावार्थः- हे मनुष्यो! जो परमेश्वर अखिल ऐश्वर्य वाला, असदृश, अनन्त विद्या वाला है जो न उत्पन्न होता है, न उत्पन्न हुआ है और न उत्पन्न होगा और सब से महान् है, उसकी ही तुम सदा उपासना किया करो।।

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा का स्वरूप

(१) सपर्यगात् = वह परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है,
शुक्रम् = वह सर्वशक्तिमान् है,
अकायम् = सूक्ष्म, स्थूल तथा कारण तीनों शरीरों से रहित हैं,
अव्रणम् = अखण्ड, एक रस
अस्नाविरम् = नाड़ी आदि बन्धनों से रहित,
शुद्धम् = सदा शुद्ध पवित्र है,
अपापविद्धम् = कभी पाप से युक्त नहीं होता है,
कविः = सर्वज्ञ है,
मनीषी = समस्त जीवों की मनोवृत्तियों का ज्ञाता है,
परिभूः = दुष्टात्माओं का तिरस्कार करने वाला,
स्वयम्भूः = जो अनादि स्वरूपवाला, जिसकी उत्पत्ति व विनाश नहीं होता, जिसके माता-पिता कोई नहीं हैं अर्थात् जन्म, वृद्धि तथा क्षय से रहित है। वह सदा उपासना के योग्य है।

(यजुर्वेद ४०।८)

(२) और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया व मुट्ठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता। क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता। वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। (स॰प्र॰)

मित्र का लक्षण-(समानशीलव्यसनेषु सख्यम्)

(१) **धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।**
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते॥१॥ (अनु॰)

अर्थात्-धर्म के जानने वाला, कृतज्ञ=किए हुए उपकार को मानने वाला, प्रसन्न स्वभाव, अनुरागी, कार्यों को स्थिरता से करने वाला छोटा भी मित्र प्रशंसित होता है।

(२) **परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।**
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥

(हितोपदेश)

जो सामने तो मधुरतापूर्ण बातें करता है और पीछे कार्य को बिगाड़ता है, ऐसे मित्र को छोड़ देना चाहिए। क्योंकि ऐसा मित्र जहर से भरे घड़े की तरह होता है जिनके मुख पर थोड़ा सा दूध डाल रखा होता है।

(३) **पापान् निवारयति योजयते हिताय,**
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटी करोति।
आपद्गतं न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥ नीति॰॥

सन्त पुरुष सच्चे मित्र की पहचान यह बताते हैं-जो पापों (बुराइयों) से रोकता है, हितकारक कार्यों में प्रेरणा करके लगाता है, छिपाने योग्य बात को छिपाता है, अच्छे गुणों को दूसरे के सामने प्रकट करता है, आपत्ति आने पर सदा साथ देता है और सब प्रकार की सहायता करता है।

(४) **केनामृतमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्।**
आपदां च परित्राणं शोकसन्तापभेषजम्॥

मित्र शब्द दो अक्षर का है किन्तु इनमें अमृत भरा हुआ है। मित्र आपत्ति में रक्षा करता है और शोक व दुःख की उत्तम औषध है।

(५) **आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा।**
निर्दोषश्च सुदोषश्च वयस्यः परमा गतिः॥

(वाल्मीकि)

मित्र चाहे धनवान् या दरिद्र, दुःखी हो या सुखी, दोषरहित हो या दोषी, परन्तु मित्र तो मित्र ही होता है जो सदा सहायक होता है। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीक्षा

महाकवि शंकर स्मृति ग्रन्थ—सम्पादक-श्री देशराज-सिंह, प्रबन्ध सम्पादक-श्री मोहनसिंह रावत, **प्रकाशक :** महाकवि शंकर स्मारक-समिति, **प्राप्तिस्थान :** हरदुआगंज, अलीगढ़। मूल्य-दो सौ पचास रुपये।

यह ग्रन्थ छः खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में महाकवि शंकर के स्तवन सम्बन्धी लेखों का संग्रह है। तत्कालीन महाकवियों तथा लेखकों के हृदयोद्‌गार हैं, जो कि पठनीय हैं। दूसरे खण्ड में संस्मरण हैं, जिनमें महाकवि के काव्य सौष्ठव पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय खण्ड में महाकवि शंकर का जीवन-परिचय तथा उनके व्यक्तित्व पर लिखे लेखों का संकलन है। चतुर्थ खण्ड में समीक्षा, जिसमें शंकर कवि की कृतियां और काव्यवैशिष्ट्य, काव्यप्रतिभा दर्शायी गई है। शंकर-काव्य में राष्ट्रीय चेतना, दार्शनिकता व सांस्कृतिक चेतना दिखाई गई है। राष्ट्रभक्ति की झलक द्रष्टव्य ही है—

(क) **जिनको सब देश मानते थे, अपना सिरमौर जानते थे।**
जिनके हम हाय वंशधर हैं, पूरे परतन्त्र तुच्छतर हैं।।

(ख) **भेद हीन हो जाईये हिन्दू-मुस्लिम एक।**
देशभक्ति पै कीजिये, प्यार टिकाकर टेक।।

(ग) **जेलों में स्वदेश भक्त हिंसाहीन सज्जनों के।**
पेट पाल पातकी पिशाच मटकत हैं।।
कौन पै पुकारें अब, शंकर ही बचा ले हमें।
और और गोरों के गुलाम अटकत हैं।।

दार्शनिकता भी द्रष्टव्य है—

(क) **ओम् अनेक बार बोल प्रेम के प्रयोगी,**
है यही अनादिनाद निर्विकल्प निर्विवाद।
वेद को प्रमाण मान अर्थ योजना बखान।
गा रहे गुणी सुजान साधु सन्त भोगी।
भूलते न पूज्यपाद वीतराग योगी।।

(ख) **ओमक्षर अखिलाधार जिसने जान लिया।**
एक अखण्ड, अकाय, अरोगी, अद्वितीय,
अविकार, को पहचान लिया।

आर्यसमाज का अमिट प्रभाव

(क) **द्विजवेद पढ़ें, सुविचार बढ़ें,**
बल पाय चढ़ें सब ऊपर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता
कर दे कविता कवि शंकर को।।

(ख) **विज्ञान पाठ वेद पढ़ों को पढ़ा गया,**
विद्याविलास विज्ञवरों को बढ़ा गया।
सारे संसार पंथ मतों को हिला गया,
आनन्द सुधासार दया कर पिला गया।।
अब कौन दयानन्द यति के समान है।
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान् है।।

(ग) **जो न हटा मुख फेर बढ़ा जीवन भर आगे,**
जिसका साहस देख विघ्न भय संकट भागे।
सत्य सुभट की हार अनृत की जीत न होगी,
ऐसे अटल विचार सहित विचरा जो योगी।।

(घ) **आनन्द सुधासार दया कर पिला गया,**
भारत को 'दयानन्द' दुबारा जिला गया।
डाला सुधार वारि बढ़ी बेल मेल की,
देखो समाज फूल फबीले खिला गया।।

इत्यादि अनेक सामयिक रचनाएँ शंकर कवि ने लिखीं, जो हमें सदा ही स्मरणीय रहेंगी। पंचम खण्ड में श्री पद्मसिंह शर्मा को लिखे पत्र तथा उत्तर का संकलन है। षष्ठ खण्ड में बानगी, जिसके अन्तर्गत निम्न कविताओं का संग्रह है—हमारा अध: पतन, वसन्त सेना, नौकरशाही, प्रार्थना पंचक, प्रशस्ति पाठ, ब्रह्मविवेकाष्टक, काल का वार्षिक विलास और कंगाल की कुगति।

नाथूराम शंकर शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल इन तीन कवियों ने खड़ी बोली के पद्य भाग को संवारा है। शंकर-स्नेही-मैथिली शरण गुप्त ने खड़ी बोली को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। ऐसे राष्ट्रीय स्तर के महान् कवियों के संस्मरण सदा ही प्रेरणा, उत्साह व स्फूर्ति प्रदान करते हैं। अतः उनका सम्मान प्रत्येक देशप्रेमी को करना चाहिए। ऐसे अमूल्य ग्रन्थों के सम्पादक व प्रकाशक सदा ही सम्माननीय रहेंगे। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैद्धान्तिक चर्चा

'ऋग्वेद' में 'देवृकामा' या 'देवकामा'?

लेखक–वैदिक गवेषक डा॰ शिवपूजन शास्त्री, एम॰ए॰, सिद्धान्तवाचस्पति,
प्राध्यापक–श्रीमद्दयानन्द वेद विद्यालय, ११७ गौतम नगर, नई दिल्ली)

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ''संस्कारविधि'' विवाह संस्कार-प्रकरण में लिखते हैं–

''ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।
(ऋग्वेद १०।८५।४४)

हे वरानने! (अपतिघ्नि) पति से विरोध न करनेहारी तू जिसके (ओम्) अर्थात् रक्षा करने वाला, (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखों को दूर करनेहारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों का दाता आदि नाम हैं, उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से (अघोरचक्षुः) प्रिय दृष्टि (एधि) हो। (शिवा) मंगल करनेहारी (पशुभ्यः) सब पशुओं को सुखदाता (सुमनाः) पवित्रान्तःकरणयुक्त प्रसन्नचित्त (सुवर्चाः) सुन्दर, शुभ गुण, कर्म, स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करनेहारी (देवृकामा) देवर की कामना करती हुई। अर्थात् नियोग की भी इच्छा करनेहारी (स्योना) सुखयुक्त होवे; (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिए (शम्) सुख करने हारी (भव) सदा हो और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओं को भी (शम्) सुख देने हारी हो। वैसे मैं तेरा पति भी वर्त्ता करूँ।''

'संस्कारविधि' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ९१ पंक्ति ९ में ऋङ् मन्त्र-पाठ में 'देवृकामा' पाठ छप गया, परन्तु संशोधन- पत्र पृष्ठ ९ कालम २ में 'देवका' का 'देवृका' शुद्ध पाठ दर्शाया है। प्रथम संस्करण पृष्ठ ८०७ पंक्ति २३ में पारस्कर गृह्यसूत्र के पाठ में भी प्रकृत मन्त्र में 'देवकामा' पाठ ही मिलता है।

यही मन्त्र अथर्ववेद काण्ड १४ अनु॰ २। मन्त्र १८ (१४।२।१८) अर्थ– हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवर को दुःख न देने वाली स्त्री! तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिए (शिवा) कल्याण करने-हारी (सुयमा) अच्छे प्रकार धर्म-नियम में चलने वाली (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्र-विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र-पौत्रादि से सहित (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को जनने वाली (देवृकामा) देवर की कामना करने वाली (स्योना) और सुख देनेहारी'' पति या देवर को (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्र को (सपर्य) सेवन किया कर।।''
(सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास)

सर्वप्रथम पं॰ श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी ने आक्षेप किया था। उन्होंने एक पुस्तिका भी प्रकाशित की थी।

आप लिखते हैं कि ''विवाह के दिन यह अमंगल सूचक है।''

आप 'देवकामा' मानते थे। आपके आक्षेपों का सप्रमाण उत्तर पं॰ लक्ष्मीशंकर मिश्र शास्त्री ने ''ऋग्वेद में देवृकामा पाठ प्राचीन तथा देवकामा नूतन इस पर विचार'' नामक पुस्तक[१] में दिया था।

पं॰ भीमसेन शर्मा आगरा तथा उनके सुपुत्र पं॰ हरिदत्त शास्त्री, एम॰ए॰, पी॰एच॰डी॰, व्रयोदशतीर्थ द्वारा सम्पादित ''संस्कार-चन्द्रिका'' में 'देवकामा' ऋग्वेदानुसार मानते हैं।[२]

पं॰ प्रियरत्नजी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि जी विद्यामार्तण्ड) ने सर्वप्रथम 'देवृकामा' पर एक पुस्तिका प्रकाशित की थी जिसमें महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के लेख की पुष्टि की गई थी।

जब आपने ''ऋग्वेदभाष्यम् (दशममण्डलम्) द्वितीयो भागः किया था, तब आपने ऋ॰ १०।८५।४४ का संस्कृत

---

१. *संवत् १९९८ वि॰ में श्री प्रभुदयाल उपप्रधान, आर्यसमाज, सुल्तान बाजार, हैदराबाद द्वारा प्रकाशित।*
२. *मासिक पत्रिका ''तपोभूमि'' मथुरा का विशेषांक ''संस्कार-विधि व्याख्याङ्क'' (२) अप्रैल १९८३ ई॰।*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व आर्यभाषा में अर्थ किया था–

"......(देवकामा) निजपतिदेवं कामयमाना 'देवृकामा' पाठे तु देवृन् कामयमाना......" = (देवकामा) पतिदेव की हितकामना करने वाली तथा देवरों की हितकामना करने वाली भी"..... [3]

जब मूल ऋग्वेद में '**देवकामा**' पाठ नहीं है और आप सदैव '**देवृकामा**' मानते आये थे तब आपने यह गड़बड़-घोटाला क्यों किया? स्वामी जी तो दिवंगत हो गए अब कौन उत्तर देगा?

आपने अपनी पुस्तिका में प्रो॰ पानरोध और प्रो॰ वोट-लिंका कृत **"सेंट पीटर्स वर्ग"** नामक एक महान् कोष का प्रमाण भी दिया था कि वहाँ भी 'देवृकामा' पाठ है।

अथर्ववेद काण्ड १४, सूक्त २, मन्त्र १८ में ऋग्वेद वाला मन्त्र कुछ भेद से आता है। वहाँ स्पष्ट "देवृकामा' है। मन्त्र १७ में भी 'देवृकामा' शब्द है। वेदों में परस्पर विरोध नहीं है। पं॰ क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी ने 'देवृकामा' का अर्थ संस्कृत टिप्पणी में लिखा है–"देवृषु पतिभ्रातृषु प्रीतियुक्ता=देव में (पति के छोटे भाइयों) से प्रीति रखने वाली किया है।[4]

अत: महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का सिद्धान्त नितान्त उचित है कि ऋग्वेद व अथर्ववेद दोनों में '**देवृकामा**' ही है।

मेरा भी यह निश्चित मत है कि महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का मत समुचित है।

इत्यलम्

---

३. *सन् १९८८ ई॰ (वि॰ संवत् २०४५) में वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, केसर गंज, अजमेर द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४५*

अभी २०४१ विक्रम संवत् में जो मूल ऋग्वेद संहिता प्रकाशित हुआ है उसमें भी 'देवृकामा' ही है।

४. *"अथर्ववेदभाष्यम्" चतुर्दशं काण्डम्, प्रथमावृत्तौ संवत् १९७५ वि॰ (सन् १९१८ ई॰) पृष्ठ ३०८६-८७।*

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका वेद ज्योति का प्रसार करता है। महर्षि के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की ज्ञान-गंगा में डुबकी लगवाता है। भूले-भटकों को मार्ग दिखाता है। मेरी तो यह जीवनी खुराक है।

१४।४।९६

चौ॰ ताराचन्द आर्य

महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

आप 'दयानन्द-सन्देश' तथा 'आर्य साहित्य' के प्रकाशन से जो वैदिक धर्म प्रचार का सत्प्रयास कर रहे हो, वह अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। आप अपनी पत्रिका में राजभाषा जागृति मंच से भेजे गये परिपत्रादि को अवश्य छपवायें।

१८।२।९६

श्यामलाल, संयोजक

दिल्ली राजभाषा समिति मंच

आर्यसमाज सरस्वती विहार, दिल्ली

'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका को एक जीवन्त पत्रिका कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। मैं इस पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। स्वामी जगदीश्वरानन्द का सत्यार्थ-प्रकाश पर आक्रमण नामक लेख मुझे बहुत अच्छा लगा। एतदर्थ आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

१४।४।९६

रंजीतकुमार आर्य,

नारायण पीपर, बेगूसराय (बिहार)

अप्रैल ९६ के 'दयानन्द-सन्देश' में 'क्या वेद का परमात्मा सर्वव्यापक नहीं? ईश्वर की व्यापकता में भ्रान्ति क्यों? सत्यार्थप्रकाश पर स्वामी जगदीश्वरानन्द का आक्रमण ये तीनों लेख मुझे बहुत ही अच्छे लगे और मैं इनसे पूर्णत: सहमत हूँ। यथार्थ में महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों तथा मन्तव्यों को अक्षुण्ण रखने में इस पत्रिका तथा ट्रस्ट का कार्य प्रशंसनीय है। स्व॰ दीपचन्द जी के चलाये कार्यों को आप बड़ी निष्ठा व श्रद्धा से कर रहे हैं। एतदर्थ बधाई के पात्र हैं।

२५।३।९६

सम्भाजी पवार,

प्रधान आर्यसमाज घंटाघर, जि॰ परभणी (महाराष्ट्र)

आपके पास 'देवृकामा' विषय पर एक लेख भेजा था। वह अभी तक छपा नहीं है। अगले अंक में प्रकाशित कराने की कृपा करें।

१४।३।९६

शिवपूजन शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिवादन में श्रेष्ठतम 'नमस्ते'

—ब्रह्मचारी व्यासनन्दन शास्त्री 'वैदिक' विद्यारत्न, एम॰ए॰ (संस्कृत)

नमस्ते शब्द वैदिक है। वैदिक होने के कारण यौगिक है। यौगिक कदापि रूढ़ि-अर्थक नहीं होता अत: इसके विभिन्न अर्थ विभिन्न परिस्थिति में होते हैं। इसके अर्थ सारगर्भित और विशेष हैं।

'नमस्ते' शब्द दिन दूनी, रात चौगुनी प्रगति कर रहा है। एक समय था कि यह शब्द अभिवादन के रूप में सब वर्णों और सब आयु के लोगों को प्रिय नहीं लगता था। पर, महर्षि दयानन्द सरस्वती की महती कृपा है कि उनका प्रभाव अब चारों ओर छा रहा है। घर-घर वेद-ध्वनि और नमस्ते का अभिवादन चलने लगा है। फिल्मी दुनिया से लेकर संसद् व राष्ट्रपति भवन तक इसका सम्मान हो रहा है। गुरुकुलों, आर्य-समाज की डी॰ए॰वी॰ संस्थाओं आदि में नमस्ते अभिवादन ही प्रचलित है। सर्वश्रेष्ठ राजकीय विद्यालय में भी नमस्ते अभिवादन ही चल पड़ा है।

'नमस्ते, इस शब्द में दो पद हैं—'नम:, और ते'। आपके प्रति हम झुकते हैं, नमन करते हैं—ऐसा सुन्दर अर्थ है इसका।

वेद में तो परम पिता परमात्मा को भी नमस्ते कहा गया है। यथा—'नमो ब्रह्मणे नमस्ते।' अन्य श्लोकों में—'नमस्ते, सते ते जगत्कारणाय। देवी-देवताओं को भी नमस्ते कहा गया है। यथा 'भगवती भारती देवी नमस्ते। वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों व स्मृति-ग्रन्थों में यह नमस्ते बारम्बार आया है। इतना ही नहीं वेद में 'नमस्ते' सूक्त, भी है। यह शब्द वैदिक आर्य साहित्य के अतिरिक्त लौकिक ग्रन्थों—रामायण, महाभारत, गीता, पुराण, संस्कृत के अनेक काव्यों तथा नाटकों में आया है।

वेदों में मानवों को आर्य कहा गया है। समस्त आर्यों के लिए प्रभु ने एक ही अभिवादन दिया है—'नमस्ते'। अत: प्रभु की आज्ञा का पालन करना मनुष्य-मात्र का परम कर्त्तव्य है।

विश्व-धर्म सम्मेलन में 'नमस्ते' को प्रसिद्धि

यह सर्वविदित है कि अमेरिका, शिकागो में 'विश्व धर्म सम्मेलन' हुआ था। उसमें सत्य सनातन वैदिक धर्म के अनेक धर्माचार्य, विश्व के विभिन्न मतों तथा सम्प्रदायों के गण्यमान्य वक्ता व उपदेशक पधारे हुए थे। सभी ने अपने-अपने ढंग से परस्पर अभिवादन किया। पर, आर्यसमाज के पण्डित आचार्य अयोध्याप्रसाद जी ने अभिवादन में बड़ी नम्रतापूर्वक सभी को 'नमस्ते' कहा। समागत धर्माचार्यों ने एक स्वर में कहा—

"Best of all Best of all" एक अंग्रेज सज्जन ने पण्डित जी से कहा—

"Please, explain in English about Namaste' तब पण्डित जी ने निम्नरूपेण 'नमस्ते' की व्याख्या अंग्रेजी में की—

'With all powers of my hand, with all powers of my hert and with all powers of my head, I pay respect to you.'

अर्थात् हाथ की समस्त शक्तियों के साथ हृदय की समस्त शक्तियों के साथ तथा मस्तक की समस्त शक्तियों के साथ में आप सब का आदर करता हूँ।

उपर्युक्त व्याख्या से समस्त श्रोता मण्डली अति हर्षित तथा मन्त्रमुग्ध हो गयी। सभी धर्माचार्यों ने इन्हें बड़ा सम्मान दिया। पश्चात् परस्पर अभिवादन में 'नमस्ते' ही कहा जाने लगा।

'नमस्ते' अभिवादन आबालवृद्ध सब के लिए उपयुक्त है। यदि कोई पुत्र अपने पिता को नमस्ते कहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो पिता भी उसे नमस्ते ही कहकर आशीर्वाद देता है। पुत्र ने तो सम्मान भाव से पिता को नमस्ते किया। इस पर पिता ने आशीर्वादात्मक नमस्ते किया।

ये दोनों भाव प्रयोजनवश 'नमस्ते' पद में ही अन्तर्निहित हैं। कोई समवयस्क व मित्र अपने मित्र को नमस्ते करता है तो यहाँ समानात्मक भाव है। अतः नमस्ते शब्द के तीन अन्तः प्रयोजन सम्मानात्मक और आशीर्वादात्मक हैं।

'नमस्ते' के पूर्व प्रयुक्त कतिपय विशेषणों पर आक्षेप–

आये दिन पत्रों, पत्रिकाओं, स्मारिकाओं तथा परस्पर पत्र-व्यवहारों में नमस्ते के पूर्व सादर, सप्रेम, सादर-सप्रेम, सश्रद्ध, सस्नेह आदि विशेषण प्रयुक्त मिलते हैं। किन्तु ऐसा लिखना 'नमस्ते' की कमी उजागर करना है। विशेषतः विशेषण जोड़ा तो उसमें जाता है, जिसमें कुछ कमी हो। 'नमस्ते' वैदिक शब्द होने के नाते यह सर्वाङ्गपूर्ण तथा सर्वगुणसम्पन्न है। इस शब्द में अपेक्षाकृत सारे विशेषणों का समावेश स्वतः है ही। पुनः विशेषण जोड़ना पुनरुक्ति दोष से जुड़ना है। वक्ता की विवक्षा जैसी हो, उसी अनुरूप अर्थ स्वतः धारण कर लेता है। यथा–यदि हम बड़े बुजुर्गों को नमस्ते करते हैं तो स्वतः आदरभाव (सम्मानार्थक) आ जाता है। उसमें पुनः सादर शब्द जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, नमस्ते के बाद में या पहले 'महाशय' जी आदि शब्द जोड़ना अच्छा है।

नमस्ते की अनुशासनशीलता

आये दिन ऐसा देखते हैं कि छात्र अपने शिक्षक को, छोटे अपने से बड़े को हाथ से कोई हरकत न करते हुए भी अभिवादन करते हैं, कभी-कभी हाथ थोड़ा ऊपर उठाकर; तो कभी चलते-चलते केवल मुंह से ही 'प्रणाम' या 'नमस्ते' शब्द कहकर या सिर हिलाकर अभिवादन कर लेते हैं। पर, यह उचित नहीं होता। 'नमस्ते' शब्द का अपना अनुशासन है। यह अनुशासन का पालन किये बिना नमस्ते करना 'नमस्ते' शब्द की महत्ता को कम करना है। नमस्ते अभिवादन करने के पहले हाथों को जोड़कर, उन्हें हृदय से सटाकर तब मस्तक को झुकाना चाहिये। इस प्रकार हाथ, हृदय और मस्तक (Hand, heart & head) तीनों से एक श्रद्धापूर्वक नमस्ते करनी चाहिये। तभी हमें विद्वज्जनों को नमस्ते अभिवादन करने से चार चीज़ों की वृद्धि स्वतः होगी। आयु, विद्या, यश और बल। द्रष्टव्य है–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥

मनु॰ अ॰२

आजकल के प्रयुक्त अभिवादन के विभिन्न प्रकार

सैकड़ों वर्षों की गुलामी, नाना मत-पंथ व सम्प्रदायों के चलते हम अपनी वैदिक संस्कृति सभ्यता की मर्यादा को भूलकर अनेकानेक अभिवादन परस्पर करते हैं। यथा–**प्रणाम, नमस्कार, जय गुरु, जय रामजी की, गुड मोर्निंग, गुड इवनिंग, गुड नाइट, सलाम, अस्सलावालेकुम, वालेकुम अस्सलाम, आदाब** इत्यादि इनसे हमारी कमी, हमारी एकता की कमी, आपसी मतभेद आदि परिणाम सामने आते हैं। हम क्यों न पुनः अपनी पुरानी वैदिक संस्कृति की शरण लें और एकमात्र वैदिक अभिवादन 'नमस्ते' को ग्रहण करें।

उपर्युक्त तमाम अभिवादन विश्व के प्राचीनतम धर्मग्रन्थ वेद में प्राप्त नहीं होते। इनके कोई प्रामाणिक प्रमाण नहीं। वेद ही स्वतः प्रामाणिक ग्रन्थ है, ईश्वरीय वाणी है। अतः इन्हें ही परम प्रमाण मानना चाहिये। वेद में 'नमस्ते' है, जैसा पूर्वकथित है। इसलिए समस्त मानवों के लिए परम प्रामाणिक अभिवादन 'नमस्ते' ही होता है। क्योंकि–

"धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।" मनु॰

धर्म को जानने की इच्छा करने वालों के लिए श्रुति अर्थात् वेद परम प्रमाण है।

वेदों की रक्षा, पारस्परिक एकता व सद्भावना हेतु समस्त मानव अभिवादन में 'नमस्ते' कहें। इसी से हमारी सभ्यता व संस्कृति की एक झलक सहसा सामने आती है।

('पुण्यलोक' से साभार)

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका-समाधान

शंका—ईश्वर की न्याय-व्यवस्था के अनुसार जीवों को कर्मों का फल अवश्य मिलता है। यह सिद्धान्त निश्चित है। यदि मुझे मेरे द्वारा किये दुष्कर्म का परिणाम वातरोग हो गया या अन्य रोग हो गया तो क्या किसी दवाई से उस रोग की निवृत्ति सम्भव है? यदि नहीं तो ऋ० ७।६१।२ इत्यादि मन्त्रों में शारीरिक रोगों की चिकित्सा क्यों लिखी है। अथवा उसका क्या प्रयोजन है? (टीकाराम आर्य, ग्राम डिमौली)

समाधान—ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के ६१वें सूक्त के २ मन्त्र में तो वायुकृत रोगों की निवृत्ति का वर्णन नहीं किया। हाँ! इससे अगले मन्त्र में (ऋ० ७।६१।३) में मानस रोगों तथा शारीरिक रोगों की निवृत्ति का वर्णन किया गया है। जैसे-'स्पर्श दधाये ओषधिषु विशु०'। इत्यादि विचार करने से स्पष्ट होता है—जो रोग ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त होता है, उसकी निवृत्ति की प्रार्थना करना अथवा उसे दूर करने का उपाय करना निरर्थक ही है, क्योंकि ईश्वरीय व्यवस्था अटल होती है। उसको टालने का सामर्थ्य किसी भी मनुष्य का नहीं हो सकता। परन्तु जो शारीरिक रोग मानवकृत भूलों अथवा त्रुटियों के कारण हो जाते हैं उनको दूर करने के उपाय ही वेदादि शास्त्रों में वर्णन किये गये हैं। किन्तु इस अन्तर को जानना या समझना मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर की बात है इसीलिए भ्रान्तियाँ पैदा हो जाती हैं। मनुष्य रोग ग्रस्त होकर रोग दूर करने का प्रयास करता रहता है, किन्तु कभी सफल हो जाता है और कभी असफल। असफल दशा में अपने प्रयत्नों की कमी मान बैठता है। परन्तु ईश्वर-विश्वासी कभी दुःखी न होकर उसे ईश्वर प्रदत्त ही समझकर सन्तोष कर लेता है।

शंका—स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में अनपढ़ मूर्ख को शूद्र कहा है फिर शूद्र वेद कैसे पढ़ सकता है। क्योंकि वह तो अनपढ़ और मूर्ख है?

समाधान—जन्मना जायते शूद्रः अर्थात् मनुष्य मात्र जन्म से सब शूद्र होते हैं। इस बात को ध्यान में रखकर ५-१० वर्ष का होने पर माता-पिता बच्चे को पढ़ने भेज देते हैं और गुरुजन उसे शिक्षित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि वह पढ़ जाता है तो उसके तीन भेद होते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। माता-पिता व गुरुजनों के प्रयास करने पर भी यदि बच्चा अनपढ़ रहता है तो वह शूद्र कहलाता है, जन्म से नहीं।

वर्ण-व्यवस्था की इस मौलिकता को समझने पर ही शंका का समाधान मिल सकता है। जन्म मूलक व्यवस्था में उत्तर मिलना सम्भव नहीं। महर्षि दयानन्द ने इसीलिए लिखा है—'वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' अर्थात् जो अनपढ़ है, वह वेद को पढ़ नहीं सकता, परन्तु सुन तो सकता है। और इस मान्यता में वेद पढ़ने का सब को अधिकार है, इसका विरोध नहीं आता। क्योंकि अधिकार पाकर भी जो पढ़ न सके उसको कौन पढ़ा सकता है। जैसे कहा है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

अर्थात् जिसकी अपनी बुद्धि नहीं है उसे वेद या शास्त्र भी क्या करेगा वह अधिकार प्राप्त करके भी न पढ़ सके, तो कौन क्या कर सकता है। जैसे नेत्रों से हीन को दर्पण भी कैसे दिखा सकता है?

शंका—आजकल बहुत से व्यक्ति बहुकुण्डीय यज्ञ कराते रहते हैं। यह शास्त्रानुकूल है?

समाधान—यह बहुकुण्डीय यज्ञ कराना शास्त्र विरुद्ध तथा महर्षि के लेख के भी विरुद्ध है। यथार्थ में धन के लालच में अनेक यजमानों को यज्ञ में बैठाने के लिए यह प्रचलित हुआ है। अनेक यजमान होंगे तो दक्षिणा अधिक मिलेगी इस विषय में संस्कारविधि को पढ़कर भ्रान्ति को दूर किया जा सकता है। वहाँ पर लिखा है—"जो लक्ष आहुति करनी हो तो चार-चार हाथ चारों ओर समचौरस कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में एक-एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हो उतना ही गहरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो-दो हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण चौड़ा और समचौरस कुण्ड बनाना" इत्यादि।

(सं०वि० सामान्य प्रकरण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानी स्कूलों में वेदों की शिक्षा

विद्यार्थी काल में ऐसा सुना करते थे–

आयेंगे पत्र अरब से उनमें लिखा यह होगा।
गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।।

अब पत्र ही नहीं, अपितु विश्व के पुस्तकालय का सब से प्रथम पुस्तक तथा सृष्टि के प्रारम्भ में चार ऋषियों की आत्मा में ईश्वरप्रदत्त पवित्र वेद को पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति संसार के अनेक देशों में बढ़ रही है। जर्मनी तथा रूस में तो इसका पठन-पाठन विश्वविद्यालयों में विशेष रुचि से हो रहा था, वेद को रूपान्तरित करके भी छापा गया था। वेद विश्व का सार्वभौम, निर्भ्रान्त, ज्ञान-विज्ञान का पावन ग्रन्थ है जिसके विषय में महर्षि मनु (प्रथम संविधान निर्माता) लिखते हैं–

(१) *सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।*
(२) *सर्वज्ञानमयो हि सः।।*
(३) *धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।*
(४) *एतद्देशप्रसूतस्य सकाशदग्रजन्मनः।*
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। (मनु०)

आज विश्व में जितना भी ज्ञान-विज्ञान फैला है, उसका मूल वेद ही है। इस तथ्य को अब विश्व के निष्पक्ष विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं। जो अज्ञानवश वेदों को गडरियों के गीत कहते थे, अब वे अपने कथन पर पछताने लगे हैं। इसलिए नार्वे की राजधानी ओस्लो से प्रकाशित एक हिन्दी पत्रिका 'शान्ति दूत' के सितम्बर-अक्टूबर ९५ के अंक में यह समाचार छपा है–

"जापानी स्कूलों में वेदों की शिक्षा दी जा रही है। वेदों के वैज्ञानिक चरित्र ने जापानी शिक्षाविदों को इतने गहरे तक प्रभावित किया है कि जापान की स्कूली शिक्षा में वेदों के आसान अध्यायों को शामिल किया जा रहा है। प्रायोगिक तौर पर शुरू होने वाली यह योजना अगर अच्छे नतीजे सामने लाई तो कॉलिज स्तर पर भी वेदों का अध्ययन शुरू किया जायेगा। याकाहोमा यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर तासुआ नेती कहते हैं–

"वेद तो जीवन की शिक्षा है। जब तक जीवन है तब तक आप इन्हें (वेदों को) अनदेखा नहीं कर सकते। पता नहीं कैसे ज्ञान के इस अथाह भण्डार का मूल इनका जनक देश भारत ही नहीं जान पा रहा है।"

२६ दिसम्बर, १९९५

प्रेषकः– डॉ० *हरिश्चन्द्र*

●●

दैनिक संस्कृत-वार्ता-लेखन का अभिनव उपक्रम

सुरभारती स्वाध्याय केन्द्र, सीताराम नगर, लातूर (महाराष्ट्र) के संचालक श्री ज्ञानकुमार तात्याराव आर्य ने १ जनवरी १९९६ से प्रतिदिन संस्कृत-वार्ता-लेखन का एक अभिनव उपक्रम आरम्भ किया है।

श्री आर्य, जि०प० प्रशाला खरोला, तह० रेणापुर, जि० लातूर में माध्यमिक अध्यापक के पद पर कार्यरत हैं तथा हिन्दी और संस्कृत इन दोनों विषयों में एम०ए० हैं। अपनी नौकरी तथा गृहस्थी के उत्तरदायित्व को संभालते हुए वे संस्कृत के प्रचार-प्रसार हेतु बालक, प्रौढ़ और छात्रों के लिए विविध प्रकार की संस्कृत की कक्षाएँ चलाते हैं। दैनिक व्यवहार में संस्कृत का प्रयोग हो इस उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने सुरभारती स्वाध्याय केन्द्र के वार्ता-फलक पर प्रतिदिन नियमित रूप से संस्कृत-सुभाषित, सुविचार, लोकोक्तियाँ इन के साथ-साथ संस्कृत में वार्ता लेखन का विशेषतापूर्ण उपक्रम शुरू किया है। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुद्राक्ष की माला धारण करना जंगली पुरुषों का काम है

जो रुद्राक्ष अर्थात् एक वृक्ष के फल की गोठली और राख धारण से मुक्ति मानते हैं तो राख में लोटने हारे गदहा आदि पशुओं की मुक्ति क्यों नहीं होती?

(प्रश्न) रुद्र की आंख के अश्रुपात से जो वृक्ष हुआ उसी का नाम रुद्राक्ष है। इसलिए उसके धारण में पुण्य लिखा है। एक भी रुद्राक्ष धारण करें तो सब पापों से छूट स्वर्ग को जायें, यमराज और नरक का डर न रहे।

(उत्तर) (क) भला यह कितनी मूर्खता की बात है कि आंख के अश्रुपात से भी वृक्ष उत्पन्न हो सकता है? क्या परमेश्वर के सृष्टिक्रम को कोई अन्यथा कर सकता है? जैसा जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रचा है उसी से वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इससे जितना रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है, वह सब जंगली पशुवत् मनुष्य का काम है।

(ख) जब रुद्राक्ष भस्म धारण करने वालों से कुत्ता, सिंह, सर्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो न्यायाधीश (यमराज) के गण क्यों डरेंगे।

(स॰प्र॰से)

ईश्वर दो हम को वरदान

दूर हमारा हो अज्ञान।
ईश्वर दो हम को वरदान।
अवगुण का होवे अवसान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

वेदों को पढ़ आर्य कहायें।
यज्ञ हवन नित करते जायें।
सन्ध्या करें लगाकर ध्यान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

पाखण्डी हम से घबरायें।
निर्भय हम बढ़ते ही जायें।
देश, धर्म पर वारें प्राण।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

तुम ही माता पिता हमारे।
तुम ही बन्धु सखा हो प्यारे।
तुम ही हो विद्या, धन, ज्ञान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

वैदिक धर्मध्वजा फहराएं।
अखिल विश्व को आर्य बनाएं।
गूंजे हर घर वैदिक गान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

कर्मठ बन शत वर्ष जिएं हम।
वेदामृत शत वर्ष पिएं हम।
सत् कर्मों में रहे रुझान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

काम क्रोध से दूर रहें हम।
सब से वैदिक वचन कहें हम।
मन में तनिक न हो अभिमान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

वेद, ज्ञान के अक्षय सागर।
भर लो अपनी खाली गागर।
अखिल सृष्टि का हो कल्याण।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

दयानन्द के हम दीवाने।
छुआछूत का भूत न मानें।
सब मानव हैं एक समान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

निराकार ईश्वर को ध्यायें।
उसकी सन्ध्या में सुख पायें।
जगत् पिता की सब सन्तान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

वैदिक पथ पर बढ़ते जाएं।
जीवन अपना सफल बनाएं।
कृपा करो हे कृपा निधान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

आर्य बनें, शुभ कार्य करें हम।
बाधाओं से नहीं डरें हम।
सफल हमारा हो अभियान।
ईश्वर दो हम को वरदान।।

—**हरिकुमार साहू,** मन्त्री, आर्यसमाज, बिलासपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली राजभाषा बिल में संशोधन की मांग

शकूर बस्ती, केशवपुरम, शालीमार बाग, बादली तथा शाहबाद विधान सभा क्षेत्रों के जागरूक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन रानीबाग में विधायक श्री गौरीशंकर भारद्वाज के सानिध्य में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में व्यापारी, दुकानदार, वकील, इंजीनियर, शिक्षाविद्, विद्यार्थी, महिला तथा अन्य वर्गों के कार्यकर्ताओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया। अध्यक्षता दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग में आचार्य डॉ० कृष्णलाल ने की। इस सम्मेलन में दिल्ली विधान सभा में पेश किए गए बिल पर विचार किया गया। अनुभव किया गया कि इस बिल में अनेक विसंगतियां हैं। सम्मेलन में पास किए गए एक प्रस्ताव द्वारा दिल्ली के मुख्यमन्त्री से राजभाषा बिल के वर्तमान प्रारूप में आवश्यक संशोधन करने की प्रबल मांग की गई। विधायक श्री भारद्वाज जी ने मुख्यमन्त्री से मिलकर विधेयक में संशोधन कराने का आश्वासन दिया।

प्रस्ताव

"उत्तरी पश्चिमी दिल्ली के जागरूक नागरिकों और कार्यकर्ताओं का यह सम्मेलन, दिल्ली विधानसभा में विचाराधीन राजभाषा में, हिन्दी को दिल्ली की राजभाषा बनाए जाने के लिए मुख्यमन्त्री को बधाई देता है। परन्तु विधेयक की धारा-३ में अंग्रेजी के प्रयोग की छूट का जो रास्ता छोड़ा गया है वह आशंकापूर्ण और प्रतिगामी है। दिल्ल के "क" अर्थात् हिन्दी प्रदेश होने के कारण, इस धारा केन्द्र सरकार की राजभाषा नियमावली १९७६ के आदेशों क भी स्पष्ट उल्लंघन होता है। धारा-६ में समस्त वैधानि दस्तावेज़–प्रस्ताव, अध्यादेश, संशोधन आदि मूल रूप अंग्रेजी में तैयार किए जाने का प्रस्ताव भी अनुचित है विधेयक में विधान सभा और प्रदेश की अदालतों की भा हिन्दी किए जाने के बारे में भी स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए

अत: यह सम्मेलन मुख्यमन्त्री से दृढ़तापूर्वक मां करता है कि विधेयक की इन कमियों को दूर करने के लिए इसमें आवश्यक संशोधन किए जाएं, ताकि दिल्ली जैसे हिन्द प्रदेश की सरकार के सभी प्रकार के काम-काज हिन्दी बेरोकटोक व्यवहार का मार्ग प्रशस्त हो सके।"

सरदारीलाल बजाज
अध्यक्ष,
दिल्ली राजभाषा जागृति मंच
दिल्ली-११००३४
दूरभाष : ७२७४७१८

श्यामला
संयोज
दिल्ली राजभाषा जागृति म
आर्यसमाज, सरस्वती विहा
दिल्ली-११००
दूरभाष : ७१८०९

अमर शहीद पं० लेखराम बलिदान शताब्दी-समारोह

९ जून, १९९६, रविवार, स्थान गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

आर्यसमाज के प्रचारार्थ आर्य मुसाफिर अमर शहीद रक्तसाक्षी पं० लेखराम का बलिदान हुए सौ वर्ष होने को जा रहे हैं। आगामी वर्ष उनका शताब्दी समारोह मनाया जायेगा परन्तु बलिदान शताब्दी का प्रथम महोत्सव प्र. आषाढ़ कृष्णा नवमी तदनुसार ९ जून रविवार को अत्यन्त समारोह के साथ अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी की तप:स्थली गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में आर्यसमाज के ओजस्वी लगनशील होनहार आर्य युवकों के प्रेरणास्रोत आर्य-समाज सान्ताक्रूज बम्बई के प्रधान श्री कै. देवरत्न आर्य की अध्यक्षता में मनाया जायेगा। इस अवसर पर आर्य जगत् के प्रमुख साधु संन्यासी प्रसिद्ध विद्वान् एवं लेखक तथा सभी प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं के प्रधान, मन्त्री एवम् अन्य अधिकारियों को पधारने के लिए आमन्त्रित किया गया है। आप सभी से अनुरोध है कि अपनी दिवंगत विभूति को श्रद्धाञ्जलि देने तथा अपनी एकता एवं संगठन शक्ति का परिचय देने के लिए प्रात: ९ बजे ही गुरुकुल भूमि में सपरिवार पहुंचने का कष्ट करें। आयोजन की सफलता के लिए अपना सात्विक दान देकर पुण्य लाभ करें।

निवेदक : स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, कार्यकर्ता प्रधान ★ धर्मपाल आर्य, कोषाध्यक्ष ★ स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती मन्त्री
उपप्रधान :–प्रो० शेरसिंह, केशवदेव वर्मा, रमेशचन्द्र श्रीवास्तव, सत्यवीर शास्त्री, विट्ठलराव आर्य
उपमन्त्री :–विनोदबिहारी भटनागर, रणजीत सिंह, सत्यव्रत शास्त्री, सम्भाजी माणिकराव पवार।
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली — *अस्थायी पता : आर्यसमाज, नया बांस, दिल्ली-६*
नोट :–(१) भोजन एवं निवास की व्यवस्था गुरुकुल में होगी, (२) फरीदाबाद वाली बसों से गुरुकुल पहुंच सकते हैं (३) विस्तृत कार्यक्रम शीघ्र भेजा जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु की वर्णव्यवस्था पर संगोष्ठी

भारतीय नववर्ष व सृष्टि संवत्सर के अवसर पर गत वर्ष की भांति इस वर्ष आर्यसमाज श्रीगंगानगर के सत्संग भवन में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि मेले पर इस वर्ष को मनुवर्ष के रूप में मनाने के संदर्भ में लिये निर्णयानुसार इस गोष्ठी का विषय मनु की (वर्ण- व्यवस्था वेदोक्त है, सर्वकालिक है, सर्वग्राह्य एवम् पूर्ण वैज्ञानिक है) रखा गया। इस गोष्ठी में आर्य समाजेतर विद्वानों व विचारकों को बुलाने का विशेष लाभ यह रहा कि कई नये तथ्य व विचार सामने आये। जो मनु की वर्ण-व्यवस्था के प्रचलन में अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होंगे। विडम्बना यह है कि हर विचार-मंथन के बाद बात आर्यसमाज की अकर्मण्यता पर आकर रुक जाती है। इसके आगे का मार्ग दिखाई नहीं देता। कभी आर्यसमाज पर मात्र एक ही दोष बलात् थोपा जाता था कि वह खण्डन करता है, पर आज हम पर अकर्मण्यता का या अपने महापुरुषों के अपमान करने का लज्जाजनक आरोप जो एक कटु सत्य है, लगाया जाता है। ऐसी गोष्ठियों में हमें आर्यसमाजेतर कुछ सौम्य विद्वानों को अवश्य बुलाना चाहिए ताकि उनकी कटूक्तियां हमारी तन्द्रा को किसी अंश में तोड़ सकें तथा उन्हें भी वेद, ईश्वर व दयानन्द को समझने का अवसर मिले।

सायं ३ बजे से लगभग ६ बजे तक इस विचार गोष्ठी की अध्यक्षता श्री खैरायतीराम जी ने की तथा इसका संयोजन तथा संचालन आर्यसमाज के पुरोहित श्री रामनिवास जी 'गुण-ग्राहक' ने किया। गोष्ठी पूर्व भूमिका के रूप में राज० उच्च न्यायालय से मनु की प्रतिमा को हटाने के न्यायालय के आदेश तथा श्री धर्मपाल जी आर्य मन्त्री आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली व उनके सहयोगी एवम् मनुस्मृति के प्रामाणिक व्याख्याकार डा० सुरेन्द्रकुमार जी के सत्प्रयासों से उक्त प्रतिमा की पुनः प्रतिष्ठा का पूर्ण विवरण रखा गया। मनु महाराज की वर्ण-व्यवस्था के औचित्य पर कुछ ठोस विचार माननीय संचालक द्वारा रखे गये। प्रथम वक्ता के रूप में श्री हर्षवर्द्धन शास्त्री जी ने कहा कि मनु की वर्ण-व्यवस्था का आधार यजुर्वेद का यह मन्त्र है -

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था वेदोक्त है। दूसरे वर्ण शब्द वृञ् वरणे धातु से बना है जिसका अर्थ ही चुनना या वरण करना है। समाज में ज्ञान का प्रतिनिधि होने से ब्राह्मण मुख, बल पराक्रम के कारण क्षत्रिय को बाहु की उपमा मिली है। खाद्यान्न उगाकर, पशु पालन व समाज को यथावत् वितरण करने के कारण वैश्य को पेट कहा गया है तथा जो इनमें से किसी भी गुण को धारण नहीं कर पाता वह शूद्र कोटि अर्थात् पैरवत् कहा गया है। दूसरे वक्ता आर्यसमाज के नवागत पुरोहित पं० देशराज 'सत्येच्छु' ने कहा के ईश्वर ने सृष्टि के आदि में अपने अमृत पुत्र मानव को इस संसार में रहने की तथा भोगापवर्ग को पाने की पूर्ण प्रक्रिया वेद के द्वारा दी। वेद ईश्वरीय ज्ञान होने से नित्य है। तथा उसी वेद के अनुकूल होने से मनुस्मृति सार्वकालिक एवम् सर्वग्राह्य है। समाज के तीन प्रबल शत्रु होते हैं–अज्ञान, अन्याय और अभाव। जो वेदादि शास्त्रों को पढ़-पढ़ाकर अज्ञान रूपी शत्रु से समाज की रक्षा करने में जीवन लगा देता है वह ब्राह्मण और अपने शक्ति साहस व पौरुष के द्वारा समाज के शत्रु अन्याय को दूर करने में समर्पित होने वाला क्षत्रिय तथा कृषि कार्य, पशुपालन, कल-कारखानों द्वारा आवश्यक सामान तैयार कर कला-कौशल वाणिज्य चातुर्य से समाज के तीसरे शत्रु अभाव को दूर करता है वह वैश्य कहाता है। जो पढ़ाने से भी न पढ़े, शारीरिक शक्ति व व्यवस्था कार्य से रहित तथा व्यापार के भी अयोग्य रह जाता है, वह शूद्र कोटि में गिना जाता है। यहां प्रश्न योग्यता और सामर्थ्य व गुण कर्म स्वभाव का है जन्म का नहीं।

गोष्ठी को गंभीरता की ओर ले जाते हुए डॉ० रविकुमार भटनागर जी वरिष्ठ उप जिला शिक्षा अधिकारी श्री गंगानगर ने कहा–वर्ण-व्यवस्था ने जब से प्रथा का रूप ले लिया है तभी से यह समस्याएँ पैदा हुई हैं। उत्तमता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सदुपयोग अनिवार्य है। वर्ण-व्यवस्था के मन्वोक्त प्रचलन से संसार से साम्प्रदायकिता को मिटाया जा सकता है। इन गोष्ठियों की सार्थकता इसे व्यावहारिक बनाने में है। अन्यथा शब्दाडम्बर या वाग्विलास से अधिक कुछ भी नहीं है। महर्षि दयानन्द महाविद्यालय के प्रवक्ता श्री ओ३म् जी अरोड़ा ने कहा कि मनुस्मृति समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था को परिभाषित करने वाला ग्रन्थ है। इसके वर्तमान स्वरूप की आलोचना करने वाले भी अपने स्थान पर गलत नहीं हैं। कारण कि हम ने मनु के मिलावटी स्वरूप को ही व्यवहार में अपनाकर यथार्थ को गौण कर दिया है। अतः उनका विरोध प्राप्त अनुभवों की अभिव्यक्ति ही है। आगे उन्होंने कहा कि कोई भी मानवीय व्यवस्था सार्वकालिक नहीं हो सकती। उन्होंने शंका व्यक्त की ऐसे आयोजनों के पीछे समाज में स्वस्तर को ऊंचा उठाने के स्वार्थ पर आधारित चिन्तन तो नहीं मगर अपने वक्तव्य के अन्त में इसे खंडित करते हुए कह डाला कि आज ब्राह्मणों द्वारा अपने जात्यभिमान को बनाये रखते हुए वर्ण-व्यवस्था को केवल कर्माधारित बताकर उन शोषितों, दलितों व समाज को बहलाना असम्भव है। उन्होंने कहा-इस विचार मन्थन का श्रेय कांशीराम व मायावती को देना चाहिये जिनके कटु विरोध के कारण ऐसा हो रहा है। उनके इस वक्तव्य के स्पष्टीकरण का उल्लेख भी आवश्यक लग रहा है ताकि पाठकों को किसी प्रकार का भ्रम न हो। प्रथम सार्वकालिकता का समाधान वेदोक्त होने में है। यह सत्य है कि मानवीय व्यवस्था सार्वकालिक नहीं हो सकती। मगर मनु ने स्पष्ट लिखा है-

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्-पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।।

।।१२,४९।।

अर्थात् चार वर्ण, तीन लोक, अलग-अलग चारों आश्रम तथा भूत, भविष्य एवम् वर्तमान सब वेदों से ही प्रसिद्ध है। इसी अध्याय में वेद बाह्य स्मृति को निष्फल कहा है। वेद ईश्वरीय ज्ञान होने से नित्य व सार्वकालिक ही हैं। वर्गीकरण की अनिवार्यता इसलिए है कि संस्कृत भाषा में किसी वस्तु या प्राणी का नामकरण उसके गुण, कर्म, स्वभावानुसार ही होता है। तभी तो भर्तृहरि जी ने 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति' कहा है व वेद में स्पष्टतः हम मनुष्यों को भी मनुष्य बनने का आदेश दिया है "मनुर्भव"। ये ब्राह्मणादि वर्ण भी वैसे ही गुण, कर्म के अनुसार कहे जाते हैं। इन नामों या विशेषणों में उक्त विशेषता निहित है। वर्गभेद में विद्वेष तो वर्तमान में राजनीति जन्य है अन्यथा इनका अस्तित्व ही एक-दूसरे के लिए है। इनमें परस्पर अन्योऽन्याश्रितता इतनी है वह समर्पण पर, स्नेह, सहृदयता व सामञ्जस्य पर ही टिकी है। स्तर उठाने के निहित स्वार्थ व जात्याभिमान बनाये रखना दोनों 'वदतो व्याघात' से ग्रस्त हैं। रही बात कांशीराम व मायावती की इसका श्रेय देने की तो इस कथन से पूर्वेतिहास की अनभिज्ञता ही प्रकट होती है। जब डाक्टर अम्बेडकर आर्यसमाज द्वारा वर्ण-व्यवस्था को कर्माधारित मानने की प्रशंसा करते हैं तथा पंडित तुलसीराम जी द्वारा १९१२ में मनुस्मृति का संशोधन किया गया। पंडित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय द्वारा ऐसा प्रयास हो चुका है व अन्य भी ऐसे ही प्रयास देखे जा सकते हैं तो इसका श्रेय कल के कांशीराम आदि को किस आधार पर दिया जा सकता है।

खालसा महाविद्यालय के विधि प्रवक्ता श्री चन्द्रभान जी त्यागी ने बड़े गंभीर विचार रखते हुए स्व वक्तव्य को तीन भागों में बांटा। प्रथम वैज्ञानिकता के दो भाग-प्राकृतिक विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान। प्राकृतिक विज्ञान को "है" तथा सामाजिक विज्ञान को "चाहिए" का विज्ञान कहा। इनका अन्तर बताते हुए स्पष्ट किया कि दो और दो चार ही होते हैं यह प्राकृतिक विज्ञान है तथा सामाजिक विज्ञान है-सत्य बोलना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, सब से प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए आदि। उन्होंने कहा कि मनु की वर्ण-व्यवस्था को कभी भी नकारा ही नहीं जा सकता। मनु संसार के लिए सब से उत्तम एवम् सब से प्रथम सामाजिक व्यवस्था देने वाले महापुरुष हैं। ब्राह्मण घर में जन्म लेने मात्र से कोई शिक्षा देने का अधिकारी नहीं हो जाता। क्षत्रिय कुल में जन्मा कोई व्यक्ति सीधे सेना या राज-व्यवस्था में नहीं चला जाता। पहले वर्ण निर्णय गुरुकुल करते थे। अब विद्यालय प्रमाणित करते हैं। मगर विडंबना यह है कि जहाँ कुछ जात्याभिमानी व्यापार करके चमड़े के कारखाने में काम करके भी ब्राह्मण ही बने रहते हैं। वहीं आरक्षण के लालची अध्यापन कार्य करके भी दलित,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूद्र बने रहते हैं। उन्होंने कहा कि संशोधन करने वाले भी मिलावट करने वालों में ब्राह्मणों से ही निकल कर आते हैं। अतः यह कार्य उस स्तर पर नहीं हो पाता जिसकी आज आवश्यकता है। विरोध करने वालों का पक्ष लेते हुए श्री त्यागी जी ने कहा कि उन्होंने मनु का विरोध नहीं किया बल्कि उसका विरोध किया है जिसका हम सभी कर रहे हैं। जिसे आज हम प्रक्षिप्त या मिलावट कहते हैं। मनु की प्रतिमा के हटाने वाले प्रकरण पर उन्होंने बड़ी स्पष्टता के साथ कहा कि मनु की मूर्ति की पुनः प्रतिष्ठा का अभियान मनु के सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा पर जाकर पूर्ण होगा। इसे सिद्धान्तों तक न बढ़ाया गया तो यह एक अनर्थ बन कर रह जायेगा। उन्होंने एक बड़ा उत्तम व प्रभावी सुझाव दिया जिस पर आर्यसमाज को बड़ी गंभीरता से विचार करना चाहिए। श्री त्यागी जी ने कहा कि आज अपनी बात को समाज में प्रचारित या स्थापित करने के लिए न्यायालय एक सर्वोत्तम मंच है। हमें मनु की छवि को दूषित करने वाली प्रक्षिप्त मनुस्मृति के विरुद्ध न्यायालय में जाना चाहिए। जब तक प्रक्षिप्त मनुस्मृति का प्रकाशन होता रहेगा तब तक यह कार्य पूर्णतः सफल नहीं हो पायेगा। यह न्यायालय वाला कार्य प्रक्षिप्त मनुस्मृति के प्रकाशन के चलते हुए उसके यथार्थ स्वरूप को प्रचारित करते रहने वाले कार्य की अपेक्षा कम समय व कम श्रम साध्य है। मेरा यह व्यक्तिगत निवेदन वेदों क संदर्भ में भी है। हमारे उच्च शिक्षा केन्द्रों में भी सायण व महीधर के भाष्यों को पढ़ाया जाता है। आर्यसमाज के लिए किसी चुनौती से कम नहीं है। स्वीकार करना ही पड़ेगा।

अन्त में श्री वेदप्रकाश जी ने भी अपने संक्षिप्त वि[illegible] रखे। मनुस्मृति के सिंहावलोकन मात्र से यह निर्विवाद प्र[illegible] है कि यदि मनु की वेदोक्त वर्ण व्यवस्था को जनता [illegible] सामने रखा जाये तो इसका विरोध आज का कथित ब्राह्[illegible] उतनी ही शक्ति व सामर्थ्य के साथ विरोध करेगा जि[illegible] की आज का कथित शूद्र कर रहा है। सत्यशील, निष्प[illegible] चिन्तक चाहे किसी वर्ण का हो, किसी देश का, कि[illegible] सम्प्रदाय या मत-मजहब का हो। मनुस्मृति का उस[illegible] वर्ण-व्यवस्था का कदापि विरोध नहीं कर सकता। आर्यसमाज को ऐसी संगोष्ठियां करके नये विचारों [illegible] सम्मान करना चाहिए। 'मनु वर्ष' की सार्थकता इसी में [illegible] परम पिता से हार्दिक विनय है कि आर्यों को सत्-पुरुष[illegible] की शक्ति व सामर्थ्य व मानव मात्र को सच्चाई को हृदयं[illegible] करने की प्रेरणा प्रदान करें।

संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि।।

(अथर्व-१.[illegible]

रामनिवास 'गुण-ग्राहक'

पुरोहित आर्यसमाज, श्री गंगानगर (राज.)

सत्यार्थप्रकाश प्रतियोगिता के नाम पर लूट

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने ९३ में सत्यार्थप्रकाश प्रतियोगिता का शुभारम्भ किया। मुझे इस अखिल भारतीय स॰प्र॰ प्रतियोगिता में बैठने का सौभाग्य मिला। मैं प्रतियोगिता में विजयी घोषित हुआ। परन्तु पुरस्कार अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में मैंने रजिस्ट्रार महोदय एवं श्री सच्चिदानन्द शास्त्री को कई पत्र (रजि॰) लिखे। परन्तु उनके कान पर जूं नहीं रेंगी। मैं श्री सच्चिदानन्द शास्त्री से दिल्ली मिला भी परन्तु कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इससे सार्वदेशिक वालों की धूर्तता सिद्ध होती है।

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा स॰प्र॰ प्रतियोगि[illegible] के नाम पर फार्म बेचकर केवल पैसे बटोर रही है। उसे सत्यार्थप्रकाश के प्रचार से कोई मतलब नहीं है।

अतः आर्य भाइयों और बहनों को सावधान कि[illegible] जाता है कि वे किसी भी प्रकार की धूर्तता में न फंसें। हाँ! सत्यार्थप्रकाश का स्वाध्याय करें।

—रामकृष्ण आर्य, *मन्त्री*

जिला आर्य प्रतिनिधि सभा, भदोही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराधार और असत्य है आर्य आक्रमण परिकल्पना

—डेविड फ्राले

आर्य आक्रमण की कल्पना की मूल स्थापना यह है कि १५ सौ ईसापूर्व में **वैदिक आर्य नामक बर्बर न्तु कबीलों ने उत्तर भारत पर आक्रमण किया और यहां की द्रविड़ सभ्यता को तहस-नहस कर ला। हड़प्पा या सिन्धु सभ्यता को तहस-नहस** र डाला। यद्यपि परम्परागत हिन्दू दृष्टि में ऐसी कोई मान्यता कभी भी नहीं रही है और हिन्दू लोग दिक ऋषियों को तथा वैदिक काल के अपने अधिकांश र्वजों को ऋषि, योगी, वीर, उदार और आदर्श सत्यपुरुष नते हैं।

१९वीं शताब्दी के यूरोपीय विद्वानों ने आर्य क्रमण की कल्पना की। लोकमान्य तिलक, स्वामी नन्द सरस्वती, श्री अरविन्द और स्वामी विवेकानन्द महापुरुषों ने इस कल्पना को सदा ही निराधार द्ध किया लेकिन तब भी यूरोपीय विद्वानों और उनके तीय शिष्यों ने इसे एक तथ्य की तरह प्रचारित या। बाद में अनेक विद्वानों ने आर्य आक्रमण की ल्पना को निराधार पाया। लेकिन भारत में अभी भी से एक सत्य की तरह बताने वाले लोग मौजूद हैं योंकि इस सिद्धान्त के पक्ष में कोई भी उल्लेखनीय क्ष्य नहीं मिला और इसके विपरीत साक्ष्य बहुत से ले हैं।

यह देखकर बहुत आचर्श्य होता है कि आर्य क्रमण सिद्धान्त पर गंभीर शंका व्यक्त करने वाली ली विश्वविद्यालयीन पाठ्य पुस्तक न्यूयार्क के श्वविद्यालय ने छापी है। न कि भारत के श्वविद्यालय ने। प्रोफेसर क्लास क्लास्टरमेएर ने अपनी स्तक "सर्वे आफ हिन्दूइज्म" में इस सिद्धान्त पर भीर आपत्तियां व्यक्त की हैं और कहा है कि साक्ष्य से इसके विरुद्ध ही हैं। लेकिन भारत के किसी विश्वविद्यालय के किसी प्राध्यापक को अथवा पाठ्यक्रम समिति को ऐसी पुस्तक लिखने की कोई इच्छा और प्रवृत्ति नहीं हुई। **क्लास्टरमेएर एक कैथोलिक ईसाई पादरी हैं और हिन्दू आस्थाओं के वे समालोचक भी हैं। कोई प्रबल प्रशंसक नहीं हैं। तब भी वे आर्य आक्रमण सिद्धान्त को अप्रामाणिक मानते हैं। भारत में विश्वविद्यालय से बाहर तो अनेक विद्यावान् पुरातत्त्वविद्, इतिहासवेत्ता, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विभूतियों ने आर्य आक्रमण सिद्धान्त को गलत ठहराया है।** किन्तु विश्वविद्यालय में अभी तक ऐसी कोई बात पढ़ाई नहीं जाती।

ऐसा लगता है कि इन दिनों भारत में अपने अतीत को लेकर सत्य जानने की पर्याप्त इच्छा नहीं है। भारत में भारत के अतीत की निन्दा करने वाले बड़े शक्तिशाली समूह विद्यमान हैं और उन्होंने अब तक भारत के अतीत के विरुद्ध लोगों में भावनाएं फैलाई हैं। अब इसमें ही उनका राजनीतिक स्वार्थ पैदा हो गया है और सत्य के प्रति उनमें कोई उत्सुकता नहीं बची है। मार्क्सवादी विद्वानों और राजनीतिज्ञों, द्रविड़ नस्लवादियों और ईसाई मिशनरियों तथा मुस्लिम समूहों ने आर्य आक्रमण सिद्धान्त को हिन्दुत्व के विरुद्ध प्रचार का एक मुख्य शस्त्र बना लिया है। **यहां तक कि ऐसे नारे भी लिखे जाते हैं कि ब्राह्मण अपने देश दक्षिण एशिया और मध्य एशिया वापस जाओ।** द्रविडवादी, शूद्रवादी और मुसलमान लोग अपने को इन ब्राह्मणों से पहले का भारतीय सिद्ध करते हैं और आर्यों को आक्रामक सिद्ध करते हैं। ऐसे लोगों को सत्य में अधिक रुचि नहीं है। उनके लिए तात्कालिक राजनीति का अधिक महत्त्व है। ऐसा केवल भारत में ही सम्भव है। सच्चाई यह है कि आर्य आक्रमण सिद्धान्त अभी तक उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सत्य नहीं सिद्ध होता और इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत विश्व का प्राचीनतम राष्ट्र और भारतीय सभ्यता विश्व की ऐसी प्राचीनतम सभ्यता सिद्ध होते हैं जो सभ्यता अभी तक विद्यमान है। अपने इस अतीत पर गौरव स्वाभाविक है।

द्रविड़ों को एक अलग नस्ल बताने वाले जो सिद्धान्त गढ़े गए हैं, वे अभी तक परीक्षण में ठहर नहीं पाए है। साम्राज्यवादियों ने सोचा कि जिस प्रकार हम ने भारत पर आक्रमण किया वैसे ही उत्तर भारत के लोगों ने दक्षिण भारत के लोगों पर आक्रमण किया होगा।

जब से भारतीय भाषा परिवार में समानताएं दिखीं तब से उन्हें उत्तर भारतीयों को अपने जैसा दिखाने का एक आधार हाथ लग गया। उन्होंने समझा कि भारतीय भाषा के मूलत: व्यवहार करने वाले लोग निश्चय ही श्वेत नस्ल के होंगे। बाद में नाजियों ने इस आर्य सिद्धान्त को अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का एक आधार बनाया।

इसके लिए वेदों के झूठे अर्थ किए गए और वर्ण तथा जाति को एक बताया गया। इसके लिए कहा गया कि ब्राह्मण लोग श्वेत रंग के हैं, क्षत्रिय लोग रक्त वर्ण के, वैश्य लोग पीत वर्ण के और शूद्र कृष्ण वर्ण के। वास्तविकता यह थी कि सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का लाक्षणिक वर्णन था लेकिन ब्राह्मणों को श्वेत वर्ण का ठहराने वालों को इससे मतलब नहीं था। वे तो केवल अपना नस्लवाद आरोपित कर रहे थे। इस उत्साह में वे यह बताना भूल गए कि अगर ब्राह्मण सफेद चमड़ी वाले हैं और शूद्र काली चमड़ी वाले तो पीली और लाल चमड़ी वाले लोग भारत में कौन हैं? ये नस्लवादी यह भी नहीं देख सके कि वेदों में आर्यों ने अपने शत्रुओं को अनास और अपाद भी कहा है यानि बिना नाक वाले और बिना पैर वाले।

इतना ही नहीं वेद में तो अग्नि को भी बिना पैर का और बिना सिर का देवता कहा है। तो क्या बिना पैर और सिर वाले भी कोई आर्य होते थे? आर्यों की कोई ऐसी नस्ल कभी थी? नस्लवादी विद्वानों को इन प्रश्नों का उत्तर देने का समय ही नहीं है।

आगे चलकर यह भी कहा गया कि कृष्ण और शिव द्रविड़ देवता हैं जिन्हें आर्यों ने अपना लिया लेकिन कृष्ण और शिव काले नहीं नीले थे। इसी प्रकार लक्ष्मी को पीले रंग की, सरस्वती को श्वेत वर्ण की और काली को नीले काले रंग की तथा यम को हरे कि मृत्यु के देवता हैं, हरे रंग का कहा गया है। तो क्या यह माना और बताया जाएगा कि इन सब रंगों वाली नस्लें भारत में कभी रही हैं। सविता देवता के सुनहरे बाल और सुनहरी चमड़ी है। यह पढ़कर नस्लवादियों ने कह दिया कि यह तो प्राचीन भारत में गोरी नस्ल के लोगों के रहने का प्रमाण है। बेचारों को यह भी पता नहीं है कि सविता तो सूर्य देवता हैं और सूर्य को सुनहरे रंग का प्राचीन भारत में ही नहीं, प्राचीन मिश्र सभ्यता, मय सभ्यता तथा इंका सभ्यता में भी कहा गया है। बेचारे नस्लवादियों को इन सब तथ्यों पर विचार का समय नहीं है।

तथ्य तो यह है कि संस्कृत में आर्य किसी नस्ल का द्योतक नहीं है। वहां यह एक आदर सूचक संबोधन है जैसे कि अंग्रेज़ी में ''सर'' है। आर्य धर्म का अर्थ है सुसंस्कृत लोगों का उपदेश अथवा अच्छे लोगों का आचरण। यदि इसी तरह की व्याख्या इंग्लैंड के इतिहास से की जाए तो फिर वहां भी यह पढ़ाया जाना चाहिए कि ''सर'' नाम की नस्ल ने इंग्लैंड में मध्य युग में कब्जा कर लिया था। लेकिन ऐसी ऊटपटांग बातें इंग्लैंड के बारे में कभी नहीं कही जा सकतीं। ऐसी सब बातें तो भारत के लिए ही सुरक्षित हैं।

(डेविड फ्राले की पुस्तक ''एराइज अर्जुन'' के अध्याय ३.२ के एक अंश का पंकज कृत अनुवाद। पुस्तक के प्रकाशक हैं—वाइस आफ इंडिया, दिल्ली)

(२८ अप्रैल, १९९६ के जे०वी०जी० टाईम्स, नई दिल्ली से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दु' नाम कसौटी पर
(यह नाम गर्व की नहीं, लज्जा की बात है)

–डॉ॰ वीरेन्द्र शर्मा, साधु आश्रम, होशिआरपुर (पंजाब)

गतांक से आगे

(१) पारस में हिन्दु शब्द की प्राचीनता–

पारसी लोग भी अपने आप को **''आर्य''** नाम से पुकारते थे और इस नाम को श्रेष्ठ अर्थ में ही प्रयुक्त करते थे। यह तथ्य पारस के प्राचीनतम ग्रन्थ **ज़ेन्दावस्ता** से ज्ञात होता है। ज़ेन्दावस्ता के सिराज १,२५ में कथन है कि मज़्दा (महान्-परेमश्वर) ने **आर्यों** की प्रतिष्ठा में जिन्हें बनाया है। २.८ में फिर कहा है कि **''आर्यों''** के सम्मानार्थ हम होम करते हैं। उन्हें मज़्दा ने बनाया है। अस्तद यश्त का पूरा का पूरा ही १८वाँ अध्याय आर्यों की प्रशंसा को समर्पित है। (द्रष्टव्य Zend Avesta, II, P. 283)। आर्य शब्द के विद्यमान होने पर भी यह सब होते हुए यह ज्ञातव्य है कि ज़ेन्द-अवेस्ता में सिन्धु शब्द का विकृत ''हिन्दु'' शब्द उपलब्ध है। यह नदी-विशेष और प्रदेश का वाचक है। पारसियों की धर्मपुस्तक **'शातीर'** में भी एक रोचक प्रसङ्ग द्रष्टव्य है जिस में भारत के लिए ''हिन्द'' और भारतीयों के लिए ''हिन्दु'' शब्द का प्रयोग है–

''अकनूँ बिरहमने व्यास नाम आज **हिन्द** आमद, बस दाना कि अकल चुना नस्त'' (=व्यास नामक एक ब्राह्मण **हिन्द** (भारत) से आया जिसके बराबर कोई दूसरा अक्लमन्द न था।)[1] क्या ये व्यास कृष्ण-द्वैपायन थे?

इसी पुस्तक में भारतीय के अर्थ में **हिन्दी** शब्द का भी प्रयोग है। यथा– चूं व्यास **हिन्दी** वलख़ आमद, गस्ताशप ज़रदुश्त रावं खवान्त।–जब हिन्दु वाला व्यास बलख में आया तो ईरान के बादशाह गश्ताश्प ने जरदुश्त को बुलाया।

फिर आगे लिखा–''मन मरदे अम **हिन्द** निजाद'' मैं हिन्द में उत्पन्न पुरुष हूँ। आगे भी है–''व हिन्द वाज गश्त'' फिर वह हिन्द को वापस लौट गया।

इस शातीर के उल्लेख से एकदम स्पष्ट है कि पारस देश में हजरत मुहम्मद से हज़ारों वर्ष पूर्व **''हिन्द''** और **हिन्दी** शब्द भारत से पश्चिम के देशों में प्रचलित हो गये थे।

(२) अरब में हिंदू शब्द

उनके साथ सम्पर्क होने से अरब देश वालों के व्यवहार में भी भारत और भारतीयों के लिए **''हिन्द''** और **''हिन्दी''** शब्दों का प्रचलन अशक्य नहीं था। अरब देश में भारत के लिए **''हिन्द''** शब्द का प्रयोग लावी नामक अरबी कवि ने किया भी है। यह कवि हजरत मुहम्मद से १७०० वर्ष पूर्व विद्यमान बताया गया है। यह कवि अख़ताब का पुत्र और तुर्फ़ा का पौत्र था। इसकी एक अरबी कविता का संकलन अब्बासी खलीफा हारूं रशीद (७८८-८०८ ई॰) के दरबार में विद्यमान अस्माई मलेकुस शरा नामक कवि ने किया था। लावी कवि ने यह कविता अरबी भाषा में भारत की और उसमें प्रचलित वेदों की प्रशंसा में लिखी थी। उसमें लावी ने भारत के लिए ''हिन्दु'' शब्द का ही प्रयोग किया था। यथा–

१. ''अया मुकारकल् अर्ज़े योशेय्ये तुहामिनत् हिन्दे फाराद्-कल्लाहो मैय्योनज़्ज़ेला जिक्रतुन्''।

अंग्रेज़ी अनुवाद–

"Oh blessed land of Hind (India) thou art worthy of reverence, for in thee has God revealed true knwoledge of Himself."

हिन्दी छाया– ओ धन्य **'हिन्दभूमि!** तू निश्चय ही हमारे सम्मान के योग्य है, जिसमें परमेश्वर ने अपना सच्चा ज्ञान (वेद) प्रकाशित किया है।

२. वहल तनल्लेयतुन् ऐनाने सहबी अरबातुन् हाज़ही

---

१. ''हिन्दु'' शब्द का प्रयोग ज़रदुश्त ने अपनी ज़ेन्द-अवेस्ता में किया है। ज़रदुश्त का समय अरस्तू ने (प्लाइनी के अनुसार) प्लेटो से भी ६००० वर्ष पूर्व का बताया है। प्लाइनी ने स्वयं मूसा से हज़ारों वर्ष पूर्व का कहा है–यह विवरण मैक्समूलर ने दिया है (देखिए L.S.L. Vol. I, P. 242) अतः लावी का ऊपर लिखा काल आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु आज के ऐतिहासिक विद्वान् ज़रदुश्त को १५००-२००० ई॰पू॰ तक का अनुमान करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युनज्ज़ेल रसूलो जिक्रतान मिनल् हिन्दतुन्।

What a pure light do these four revealed books afford to our mind's eyes like the (charming cool) lustre of the dawn! These four, God revealed unto His prophet (Rishis) in Hind."

हिन्दी छाया–उषा के (लुभाते एवं शीत) चमकते उजाले की उपमा वाला यह क्या ही पवित्र-पावन प्रकाश इन अपौरुषेय चारों (वेदों) ने हमारे मन की आँखों के लिए प्रदान किया है। ये चार (वेद) परमात्मा ने अपने (प्रिय) ऋषियों पर **हिन्द** में ही प्रकाशित किये हैं।

यहाँ लावी कवि ने प्रशंसित भारत को **"हिन्द"** नाम से ही पुकारा है। इस प्रकार अरब देश में भी भारत को "हिन्द" शब्द से और वहाँ के निवासियों को "हिन्दु" शब्द से पुकारा है।

(३) अरब में सभी मूर्ति-पूजकों के प्रति अपमान की भावना–

अरब देश में हिन्दु शब्द आरम्भ में घृणित अर्थ को सूचित नहीं करता था। वह केवल हिन्द (भारत) देश के निवासी का वाचक था। परन्तु जब अरब देश में इस्लाम-मत चला तो इस के परिणामस्वरूप हिन्दु शब्द भी 'काफ़िर' का वाचक हो गया। ऐसा हो जाने से यह मुसलमानों में निन्दा का सूचक बन गया। हज़रत मुहम्मद (५७१-६३२ ई०) के समय अरब, मिस्र, टर्की, मैसोपोटानिया, सीरिया, ईराक, ईरान, अफगानिस्तान आदि देशों में मूर्तिपूजक बौद्धों का बाहुल्य था। फिलिस्तीन आदि प्रदेशों में मूसा के अनुयायी यहूदी तथा ईसा के अनुयायी ईसाई भी थे। मुहम्मद का जन्म मक्का के जिस कुरैशी कबीले में हुआ उसी में मक्का में ही ३६० मूर्तियों की पूजा होती थी। वहाँ मूर्तियों को "बुत" कहने से ही स्पष्ट हो जाता है कि ये मूर्तियाँ महात्मा "बुद्ध" की ही थीं। इनकी पूजा से ही इन मूर्तियों वालों की आजीविका चलती थी। मुहम्मद इस मूर्ति-पूजा का विरोध करते थे। सो मूर्तिपूजकों से मुहम्मद का विरोध हो गया। प्राणों का भय हो जाने पर ६२२ ई० में मुहम्मद भागकर मदीना में चले गये और वहीं अपने जीवन के अन्तिम १० वर्ष बिताए। वहीं उन्होंने कुर्आन की रचना की और अपने मत का प्रचार किया। वहाँ उनके हजारों अनुयायी हो गये तो उन्होंने सोचा कि अपने मत के प्रचार और मूर्तिपूजा के विनाश के लिए तलवार का भी सहारा लेना चाहिए। सो, दल बनाकर एक हाथ में कुरान और दूसरे में तलवार लेकर मक्का पर आक्रमण किया और विरोधियों को हराकर मूर्तिपूजा का विध्वंस किया और अपना मत चलाया। ऐसा ही अन्यत्र भी किया गया। उन्होंने उपदेश किया कि अल्लाह एक है। उसी की इबादत करनी चाहिए। उन्होंने घोषित किया कि मैं खुदा का पैगम्बर हूँ और कुर्आन उस अल्लाह का पैग़ाम है जिसे मैं लेकर आया हूँ। जो कुर्आन में कहे गये अल्लाह को, उसके पैगम्बर (मुहम्मद) को और कुर्आन की किसी भी बात को न मानना है वह "कुफ्र" है और जो भी इस "कुफ्र" का दोषी है वह "काफ़िर है" और एक मुस्लिम का कर्त्तव्य है कि ऐसे काफ़िर को कत्ल कर दे क्योंकि कुफ्र कत्ल से बड़ा है।[1]

---

१. इस विषय में शाह रफ़ीउद्दीन देहलवी द्वारा उर्दू में किए कुर्आन के अनुवाद से हिन्दी में अनूदित कुछेक वचन देखिए–

१) "ऐ लोगो! निश्चय तुम्हारे पास सत्य के साथ खुदा की ओर से पैग़म्बर आया है। बस, तुम उस पर ईमान लाओ"।
–कुर्आन, मंजिल १, सिपारा ६, सूरत ४, आयत १७०

२) "आज्ञा मानो अल्लाह की और आज्ञा मानो रसूल की"।
मं० २, सि० ७, सू० ५, आ० ९२

३) "जो अल्लाह फरिश्तों, किताबों, रसूल और क़यामत के साथ कुफ्र करे निश्चय वह गुमराह है। निश्चय जो लोग ईमान लाए, फिर काफ़िर हुए, फिर-फिर ईमान लाए, पुनः फिर गये और कुफ्र में बढ़े, अल्लाह उन्हें कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलाएगा।"
मं० १, सि० ५, सू० ४, आ० १३६, १३७

४) अल्लाह के मार्ग में लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं।। मार डालो तुम उनको जहाँ पाओ।। कत्ल से कुफ्र बुरा है।। यहाँ तक लड़ो उनसे कि कुफ्र न रहे और दीन हो अल्लाह का।। –मं० १, सि० २, सू० २, आ० १९०; १९१; १९३;

५) "ये अल्लाह की हद्दें हैं जो अल्लाह और उसके रसूल का कहा मानेगा वह बहिश्त में पहुँचेगा जिसमें नहरें बहती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है।।
जो अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा भङ्ग करेगा और उसकी हद्दों से बाहर हो जायेगा वह सदैव रहने वाली आग में जलाया जायेगा और उसके लिए खराब करने वाला दुःख है। मं० १, सि० ४, सू० ४, आ० १३; १४;

६) बस, अब तुम मिलो उन लोगों से कि काफ़िर हुए; बस मारो गर्दन उनकी यहाँ तक कि जब चूर कर दो उनको, बस, दृढ़ करो क़ैद करना"।।
–मं० ६, सि० २६, सू० ४७, आ० ४

ऐसे ही वचन कुर्आन में बहुत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुफ़्र" शब्द अरबी भाषा में मूलत: "सचाई को छिपाना" का वाचक था। परन्तु हजरत मुहम्मद ने इसे अपने मत में पूर्वोक्त अर्थ में परिभाषित कर डाला[1]। इससे सभी मूर्तिपूजक कुफ़्र करने वाले "काफ़िर" कहे[2] गये और "वाजिबुल्क़त्ल" अर्थात् क़त्ल के दोषी ठहराये गये। वे या तो इस्लाम का वरण करें, नहीं तो मौत के घाट उतार दिये जायेंगे। यही हुआ। फलस्वरूप मुहम्मद के बाद केवल २० वर्षों में ही मिस्र एवं टर्की से लेकर अफगानिस्तान तक के विशाल प्रदेश में इस्लाम की पताका फहराने लगी जिसमें मूर्तिपूजक बौद्धों का नामोनिशान न रहा। जो मूसा के अनुयायी यहूदी और ईसा के अनुयायी ईसाई यद्यपि "काफ़िर" ही होते हैं परन्तु न तो उनका बलात् इस्लामीकरण किया गया और ना ही उनका वध किया गया और न उनके पूजा-स्थानों को छेड़ा गया। वे केवल जज़िया-नामक कर को देने वाले माने गये। "काफ़िर" होने पर भी यहूदी और ईसाइयों को ऐसी छूट इसलिए मिली क्योंकि इनके पैग़म्बर मूसा और ईसा को पैग़म्बर और उनके मौज़िजों को कुर्आन में स्वीकारा गया था।[3]

सन् ६५१ ई० में अरबों द्वारा ईरान की बरबादी की गई। उस से बचे हुए कुछ पारसियों का विनाश पहले मुसलमान तुर्कों ने किया। बाद में मंगोलों के कोप से बचकर उन्होंने भारत में शरण ली जो गुजरात और बम्बई में आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् के सौ वर्षों में ही मिस्र से लेकर अफगानिस्तान तक के विशाल प्रदेश पर इस्लाम का साम्राज्य स्थापित हो गया। और उन देशों को काफ़िरों से विहीन कर दिया गया। इससे स्पष्ट होता है कि इन मुस्लिमों की भाषा में भारतीयों के लिए प्रयुक्त 'हिन्दु' शब्द काफ़िर का वाचक कैसे हो गया क्योंकि अभारतीय थे तो मुस्लिम थे या इसाई थे या यहूदी थे—जो उन की दृष्टि में काफ़िर नहीं थे। केवल भारतीय लोग ही मूर्तिपूजक रह गये थे। जो काफ़िर थे।

भारत में हिन्दु शब्द और इसका अर्थ

अभी पीछे यह प्रतिपादन किया गया है कि हिन्दु शब्द अरब देश में पारस से आया परन्तु कुर्आन की मान्यता के अनुसार इस्लाम-मत वालों ने इसे घृणास्पद अर्थ दे डाला। ये ही अरब के मुस्लिम मुहम्मद बिन-कासिम के नेतृत्व में सिन्ध प्रदेश में आठवीं शताब्दी ई० के आरम्भ में (७१०-४) जब प्रविष्ट हुए और वहाँ के निवासी तथा शासकों को पराजित करके उन्होंने सिन्ध प्रदेश को अपना उपनिवेश बना लिया। तभी उन्हीं अरबी मुसलमानों के द्वारा भारत-भूमि में "हिन्दु" शब्द का प्रयोग भारतवासियों के लिए प्रचलित हुआ। यह पहले ही यह बताया जा चुका है कि "हिन्दु" या "हिन्द" शब्द पारसी भाषा का है—किसी भी भारतीय भाषा का शब्द नहीं है। इन मुसलमानों के भारत में प्रवेश के समय भारत में न तो धार्मिक एकता थी और ना ही सामाजिक एवं राजनैतिक एकता थी। सारा ही भारतीय समाज प्रत्येक दृष्टि से दीर्घ काल से ही ऐसा खण्ड-खण्ड हुआ पड़ा था कि अपने समूचे भारतीय समाज के लिए एक सामान्य नाम तक भूला जा चुका था। तब कोई बौद्ध था तो कोई जैन था या फिर कोई शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत आदि विभिन्न नाम से अपने को बताता था। या फिर कोई "कश्मीरी" था तो कोई अपने को "पंजाबी, सिन्धी, मराठा, बंगाली, मद्रासी आदि बताता था। या फिर अपनी किसी जाति-नाम से अपना परिचय

---

1. देखिए Thomas Patric Hughes कृत *Dictionary of Islam* में 'Kufr' : ***"literally, that which covers the truth" Infidelity; Blosphamy; Disbelieving in the Quran or in any of the tenets of the Muslim religion. The word (Kufr) is generally used by the Muhammadans to 'define' one who is an unbeliever in the ministery of Muhammad and his Quran and in this seems to have been used by Muhammad himself.***

2. वहीं; 'Kafr: *"Kafrs are those who are idolaters".*

3. कुर्आन में **मूसा** और **ईसा** के मौजिजों (=चमत्कार या दैवी शक्तियों) के उल्लेख–

(१) "हमने मूसा को किताब और मौज़िजे दिये हैं।

मं० १, सि० १, सू० २, आ० ५३;

(२) "वही की हमने तर्फ़ मूसा की, यह कि ले चल रात को बन्दों मेरे को, निश्चय तुम पीछा किए जाओगे।"

मं० ५, सि० १९, सू० २६, आ० ५२;

(३) "निश्चय हमने मूसा को किताब दी और उसके पीछे पैग़म्बर भेजे और मरियम के पुत्र ईसा को प्रकट मौजिजे दिये। उसके साथ रूहुलकुदुस (जिबराइल) के"। मं० १, सि० १, सू० २, आ० ८७;

(४) "अल्लाह, फरिश्तों, पैग़म्बरों, जिबराईल और मीकाईल का जो शत्रु है अल्लाह भी ऐसे काफ़िरों का शत्रु है।।"

मं० १, सि० १, सू० २, आ० ९८;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता था। सम्पूर्ण भारतीय समाज के लिए जो आदि-काल से चला आया नाम 'आर्य' था वह एकदम भुला दिया जा चुका था। हर दृष्टि से सारा समाज विखण्डित था। इससे एकता के अभाव में उसके लिए एक सामान्य-शब्द की आवश्यकता नहीं रह गई थी। परन्तु जब अरबी मुसलमान भारत में प्रविष्ट हुए तब उन्हें इस देश की एक भौगोलिक एकता के साथ-साथ एक विचित्र एकता और भी दिखाई दी कि ये सभी भारतीय किसी न किसी मूर्ति के पूजक थे–चाहे जैन हों, बौद्ध हों या शैव आदि विभिन्न सम्प्रदायों के हों। मुसलमानों को इन धार्मिक भेदों को जानने और समझने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उन को यह जान लेना ही पर्याप्त था कि ये सभी इस देश में रहने वाले मूर्तिपूजक हैं एवं काफिर हैं और अतएव सभी भारतीयों को अपनी भाषा के आधार पर सभी के लिए ''हिन्दु'' नाम से पुकारा। अपना सामान्य-शब्द भुला देने से वही सामान्य-शब्द सभी के लिए किसी अवरोध के बिना ही आसानी से चल पड़ा। भारतीय बौद्ध और जैनों को भी आरम्भ में मुसलमानों ने ''हिन्दु'' शब्द से ही पुकारा था। यह तो केवल अंग्रेज़ ही थे जिन की नीति थी की फूट डालो और राज्य करो। अत: उन्होंने शैव, वैष्णव आदि वर्णाश्रमियों को ''हिन्दु'' कहा और उन से पृथक् बौद्ध और जैनों को अ-हिन्दु कहा और कुछ समय हुआ कि मैकालिफ़ ने सिखों को भी उनसे पृथक् प्रसिद्ध किया और अब ये भी अपने आपको पृथक् ही मानने लगे हैं। यह तो दूसरी कहानी है। अस्तु।

आठवीं ईस्वी शताब्दी के आरम्भ में भारत के सिन्ध-प्रदेश को अपना उपनिवेश बनाकर रहने वाले अरबी मुसलमानों ने जब सभी भारतीयों को एक सामान्य नाम ''हिन्दु'' से कहकर संबोधित किया तो उनका ''हिन्दु'' शब्द काफ़िर, डाकू, चोर आदि कुत्सित अर्थ को लेकर ही किया, केवल भारतवासी अर्थ को लेकर नहीं। उस समय फारस (ईरान) का भी पूर्ण इस्लामीकरण हो चुका था। अत: वहाँ भी इस्लाम की वासना के अधीन ''हिन्दू'' शब्द काफ़िर, डाकू, बटमार आदि निन्दित अर्थ को लेकर प्रचलित हो गया था। फारसी भाषा के शब्द-कोश ग़यासुल्लुगात में ''हिन्दु'' शब्द का अर्थ ''काला, काफ़िर, चोर, बदमाश, बटमार, मस्सा, छछुन्दर'' लिखा है। भारत में ही जन्मी उर्दू भाषा के शब्द-कोश (२) ''करीमुल्लुगात'' में भी हिन्दु शब्द का अर्थ इसी प्रकार का लिखा है। इसी प्रकार सईदुल्लुग़ात (सन् १९४०) में लिखा है-''हिन्दु: हिन्दुस्तान की वाशिन्दा कौम जो बुतों को पूजती है; हिन्दुस्तान का रहने वाला; चोर; राहजन; लुटेरा; गुलाम; हब्शी; काला आदमी।'' इससे पूर्व छपी (सन् १९३१ ई॰ लाहौर) फिरोजुल्लुग़ात में भी यही अर्थ है। जवाहरुल्लुगात ''नामक फारसी के शब्दकोष (प्रकाशक-सैयद सखावत हुसैन अख़्बारअली, सब्जी मंडी, आगरा) में भी लगभग यही अर्थ किया गया है।

सो, जब पहले अरब मुसलमानों ने सिन्ध को अपना उपनिवेश (७१२ ई॰) बनाया तब वे भी घृणित अर्थ वाले ''हिन्दु'' शब्द को साथ लेकर आये। उसके पश्चात् तुर्क मुसलमान ११वीं शती तथा १२वीं शती में पंजाब की ओर से आये तब वे भी हिन्दू शब्द का प्रयोग घृणित अर्थ को लेकर ही आये थे। कारण इस्लाम की कुफ़्र और काफ़िर की दूषित भावना ही थी। सो, भारत में हिन्दु शब्द जब आया मुसलमानों के द्वारा ही दूषित अर्थ को लेकर ही आया। इसका प्रमाण यही है कि छठी शती ई॰ से पूर्व भारत की किसी भी भाषा में ''हिन्दु'' और ''हिन्दुस्तान'' शब्दों का प्रयोग नहीं है जबकि फ़ारस और अरब आदि देशों में इसका प्रयोग पर्याप्त काल पूर्व से प्रचलित रहा। भारत में हिन्दु और हिन्दुस्थान का सर्वप्रथम लिखित प्रयोग १२वीं शती के उत्तरार्द्ध में राजा पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चन्दरबरदाई के ''पृथ्वीराज रासो'' में प्राप्त होता है। इससे पूर्व नहीं।

---

१. कवि चन्दबरदाई के पृथ्वीरासो में प्रयुक्त ''हिन्दु'' शब्द-

१) *किए सलाम तिन वार, जाहु अपने सुथानहं।*
मति हिन्दु पर साहि, सज्जि आवौ स्वस्थानहं॥

२) *निर्लज म्लेच्छ लाजै नहीं, सम हिन्दु लजवान।*

*तुर्की मुसलमानों के भारत पर आक्रमण ११-१२वीं ई॰ शती में हुए। १२वीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखित पृथ्वीराजरासो में हिन्दु शब्द के प्रयोग से यही प्रतीत होता है कि यह नाम चन्दबरदाई की भाषा से कुछ समय पूर्व ही प्रतिष्ठित हो चुका था। अत: यही मानना उचित प्रतीत होता है कि यह नाम ८वीं शती के आरम्भ में आये अरबी **मुसलमानों** के द्वारा ही भारत में लाया गया।*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि "हिन्दू" नाम भारत में आठवीं शताब्दी ईस्वी के आरम्भ से पूर्व अज्ञात था। भारत में यह नाम प्रथम अरब के आक्रमणकारी मुसलमानों ने सिन्ध प्रदेश को अपना उपनिवेश बना लेने पर प्रचलित किया। तदनन्तर ११-१२वीं शताब्दी में पश्चिमोत्तरी पंजाब से जो तुर्क आये वे भी मुसलमान ही थे। इन मुसलमान आक्रमणकारियों ने ही यह नाम हमारे लिए प्रचलित किया। अतः इस नाम को अपनी ही परम्परा का बताना सरासर मिथ्या है। यह इतिहास से विरुद्ध है। भाषाविज्ञान से भी विरुद्ध है। अभी तक के सभी भाषाओं के शब्दकोषों ने भी इस नाम को पर्शियन भाषा का ही स्वीकार किया है।

(६) आर्य नाम ही उचित है–

अतः स्वामी दयानन्द सरस्वती का यह कथन प्रमाण-सिद्ध एक तथ्य है कि हिन्दू और हिन्दुस्थान ये नाम मुसलमानों ने हमें दिये हैं और काफ़िर, चोर आदि बुरे भाव को लेकर प्रयुक्त हुए हैं। इसके विपरीत यह भी इतिहास-सिद्ध होता है कि आदि-काल से ही चला आता हमारा नाम **आर्य** है और हमारे देश का नाम "आर्यावर्त्त" है। चूँकि "आर्य" और "आर्यावर्त्त" शब्द हमारे हैं, सृष्टि के आरम्भ से ही चले आ रहे हैं और इनका अर्थ भी श्रेष्ठ है। इसके विपरीत "हिन्दू" एवं "हिन्दुस्तान" शब्द हमारी भाषा-परम्परा के नहीं हैं, फारसी एवम् अरबी भाषा के शब्द हैं। इनके अर्थ भी उनकी ही भाषा में अत्यन्त अपमानजनक अर्थ में मुसलमानों के द्वारा माने गये हैं अतः उनके इन नामों को छोड़कर अपनी ही भाषा के आर्य तथा आर्यावर्त्त शब्दों का ही प्रयोग करना सर्वथा युक्ति-युक्त तथा समुचित है। परम गुरु परमेश्वर से प्राप्त हुए अपौरुषेय वेदों की आज्ञा के अनुसार हमारा नाम "आर्य" है। इस से विपरीतार्थक नाम "दस्यु" है। वेद में दस्युओं को "अव्रत" कहने से अर्थापत्ति प्रमाण से आर्यों को "सव्रत" कहा गया है। और साथ ही "व्रत-रहित" अथवा "व्रत-विरुद्ध" आचरण करने वाले इन दस्युओं को शासनीय और "सव्रत" आर्यों को इन पर शासन करने वाला भी कहा है[1]। वेदों में "सत्य" आदि आचरणों को ही (अर्थात् धर्माचरण को ही) "व्रत" बताया गया है।[2] तदनुसार सत्य आदि धर्माचरण करने वाले आर्य और इसके विपरीत "दस्यु" ठहरते हैं। यहां धर्माचरणी आर्यों को शासक और अधर्माचरणियों को शासनीय भी कहा है। "शासन" सदा ही "विद्या" और सुशिक्षा के द्वारा होता है। ऐसा संभव न हो सके तो "दण्ड-प्रयोग" से होता है। समाज में विद्या और सुशिक्षा के द्वारा लोगों को अपने "शासन" के द्वारा "शिष्ट" (=शासित) बनाने वाले मनुष्य-समुदाय को वेदों में "ब्रह्मन्"=ब्राह्मण कहा है और "दण्ड-प्रयोग" के द्वारा लोगों को शासित करने वालों को "क्षत्र=क्षत्रिय" नाम से पुकारा है और परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि हमारे समाज में "ब्रह्मवर्चसी" ब्राह्मण और महारथी योद्धा क्षत्रिय पैदा होते रहें। इसके लिए यह अनिवार्य है कि समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामक चार वर्णों में सुव्यवस्थित किया जाए। और चूँकि इस वर्ण-व्यवस्था का मूल "ब्रह्मचर्य" आश्रम ही है–एकमात्र यही वेदोक्त वर्ण-व्यवस्था का मूल स्रोत है, अन्य मार्ग नहीं है–अतः प्रथम गुरुकुल में ब्रह्मचर्य, तत्पश्चात् ही गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास नामक वेदोक्त आश्रमों का होना भी अतीव आवश्यक हो जाता है; अन्यथा वर्ण-व्यवस्था दूषित होकर छिन्न-भिन्न अवश्य हो जायेगी। जैसे कि वर्तमान में एक लम्बे समय से यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न होकर दूषित हो चुकी है।

(क्रमशः)

---

१. ऋग्वेद १।५१।८ :
विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ताते सधमादेषु चाकन।।

२. यजुर्वेद १/५:
अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।।

३. यजुर्वेद २२/२२:
आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्....।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्‌बुद्धि की कामना

–भगवान् देव चैतन्य

(गतांक से आगे)

अब हम गायत्री महामन्त्र पर थोड़ा विस्तार से विचार करते हैं :–

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। (यजु॰ ३६-३)

(ओ३म्) परमात्मा का निज नाम (भूः) सत् (भुवः) चित् और (स्वः) आनन्द है। (तत्) परमात्मा (सवितुः) सविता-जगदुत्पादक, जगत्शासक, जगत् को सुप्रेरणा देने वाले (देवस्य) दिव्यगुणयुक्त, प्रकाशकों के प्रकाशक, आनन्द दायक परमात्मा के (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ वरण करने योग्य (भर्गः) मलरहित, पाप नाशक तेज का (धीमहि) हम धारण करते हैं, तथा ध्यान करते हैं, (यः) जो सविता देव (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरित करे।।

अर्थात् वह परम पिता परमात्मा सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। वही प्रेरक है, दिव्य गुणों से परिपूर्ण है और मलरहित है। उसी का वरण करके ध्यान करना चाहिए क्योंकि वही कृपा करके हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है।

परमात्मा के बारे में लोगों ने बहुत से भ्रम पाल रखे हैं। नास्तिकों को तो हम एक ओर रख दें, मगर आस्तिकों के कारण परमात्मा के बारे में बहुत अधिक भ्रम फैले हैं। साधारण बुद्धि के व्यक्ति को समझ नहीं आता है कि हम किस प्रभु को मानें। परमात्मा के नाम पर आज धड़ा धड़ दुकानें सज रही हैं। कुछ लोगों ने तो परमात्मा को ही पीछे धकेल दिया है। वे स्वयं ही भगवान् बन बैठे हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेदादि सत्य शास्त्रों के आधार पर लोगों के सामने परमात्मा की सही व्याख्या प्रस्तुत की। अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के पहले समुल्लास में उन्होंने परमात्मा के नामों की जो विस्तृत व्याख्या की है उससे परमात्मा के प्रति सभी भ्रम दूर हो जाते हैं। परमात्मा को हम अनेक नामों से पुकार सकते हैं। मगर उनका स्पष्ट मत है कि परमात्मा एक है और उसका निज नाम 'ओम्' है। अपने ग्रन्थ के प्रथम समुल्लास में वे लिखते हैं:–'ओम् यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। क्योंकि इसमें जो अ उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओ३म् समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं। जैसे–अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि, मकार से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्यांख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

जैसा कि महर्षि जी ने स्वयं कहा है कि उन्होंने ब्रह्मा से लेकर जैमनि तक जो ऋषियों-महर्षियों का मत था उसे ही जन-साधारण के समक्ष रखा है। यह ईश्वर का निज नाम भी उसी परम्परा से उन्होंने हमारे सामने रखा है। माण्डुक्योपनिषद् के आरंभ में ही कहा गया है:–ओम् इति एतद् अक्षरम् इदम् सर्वम्॰......ओम् यह एक छोटा सा अक्षर है मगर यह सारा संसार इस ओम् की ही छोटी सी व्याख्या है। केवल वर्तमान ही नहीं बल्कि जो था, जो है और जो होगा सब उसी की व्याख्या है। यह सब ओंकार ही है। भूत, वर्तमान तथा भविष्य से बाहर भी यदि कुछ रह जाता है तो वह भी यह ओंकार ही है। आगे ओम् की मात्राओं का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा गया है:–सः अयम् आत्मा अध्यक्षरम्, ओंकारः अधिमात्रं पादाः·····, जागरितस्थानः वैश्वानर अकारः प्रथमा मात्रा···, स्वप्नस्थानः तैजसः उकारः द्वितीया मात्रा·····, सुषुप्तस्थानः तृतीया मात्रा····। यहां पर अ, उ और म् की बड़ी ही सुन्दर और हृदयग्राही व्याख्या की गई है। अ परमात्मा के वैश्वरानर रूप, जागृत अवस्था का परिचायक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अ को वैश्वानर, जागरूक, क्रियाशील तथा सर्वव्यापक रूप में जानता है उसकी सभी अभिलाषाएं पूरी हो जाती हैं। उ मात्रा परमात्मा के तैजस्, स्वप्न स्थान का बोध कराती है। यह मात्रा व्यक्ति के उत्कर्ष की परिचायक है। स्वप्न का सम्बन्ध मन से है और मन की वृतियां ज्ञान के द्वारा ही पवित्र होती हैं। इस रूप में जो इस मात्रा को जानता है उसके ज्ञान का विस्तार होता है और उसके कुल में कोई अब्रह्मवित् नहीं होता। म् मात्रा परमात्मा की सुषुप्ति–प्राज्ञ का बोध कराती है। जो इस रूप में इस मात्रा को जानता है वह 'अपीति' हो जाता है अर्थात् वह जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है। 'अमात्र: चतुर्थ' इन तीनों मात्राओं को लांघ जाता है वह चतुर्थ स्थिति है। वास्तव में यहां व्यक्ति की जागृत, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीया अवस्था का वर्णन किया गया है। तुरीयावस्था में व्यक्ति बाहर न भटक कर आत्म-ज्ञान द्वारा अन्तरात्मा में प्रवेश कर जाता है। वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। इन्हीं मात्राओं का महर्षि दयानन्द जी ने प्रथम समुल्लास में विस्तार से वर्णन किया है।

कठोपनिषद में यम ऋषि नचिकेता से कहते हैं:–

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति पांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।
(२।१५)

अर्थात् चारों वेद जिस पद का वर्णन करते हैं। सारे तप और नियमादि जिस पद का कथन करते हैं। जिस पद की इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हैं उस पद को तेरे लिए संक्षेप से कहते हैं कि वह 'ओम्' है।

इसी ओम् के बारे में आगे कहा गया है कि:–

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म...एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।
(२।१६।१७)

अर्थात् निश्चय यह ओम् ही नाश न होने वाला ब्रह्म है। यह ही सर्वश्रेष्ठ अक्षर है। निश्चय इसी अविनाशी ब्रह्म को जानकर जो कोई जिस विषय को चाहता है उसको वह प्राप्त हो जाता है। यह ओम् का आश्रय ही श्रेष्ठ है। यह आश्रय सर्वोपरि है। इस आलम्बन को जानकर व्यक्ति ब्रह्मलोक में आनन्दित होता है।

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं 'तस्य वाचक: प्रणव:।' (योग द० १।२७) परमेश्वर का वाचक प्रणव है। ओम् के जप का विधान करके इसका फल वे बताते हैं:–तत: प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। (योग द० १।२९) अर्थात् उस ओम के जप से आत्म-प्राप्ति तथा विघ्नों का अभाव हो जाता है।

मुण्डकोपनिषद में इस प्रणव के बारे में कहा गया है–

प्रणवो धनु: शरो हि आत्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।
(२।४)

अर्थात् यह ओंकार धनुष है निश्चय ही जीवात्मा बाण है और वह ब्रह्म लक्ष्य कहा जाता है। बाण के तुल्य उसमें एकाग्र होकर तथा प्रमाद रहित होकर उसे बींधना चाहिए।

अस्मिन्०......, अमृतस्यैष सेतु:।। (२।५) अर्थात् इस पुरुष में प्रकाश वाले समस्त लोक, प्रकाशरहित समस्त लोक और आकाश तथा समस्त प्राणों के साथ मन समर्पित है। उस ही एक आत्मा को जानो, उससे भिन्न अन्य बातों को छोड़ो, यही मोक्ष का पुल है।

छान्दोग्योपनिषद में लिखा है:–ओम् इत्येतदक्षरमुद्गीथ-मुपासीत, ओम् इति ह्युद्गायति०......, स एष रसानां रसतम: परम: पराध्योऽष्टमो यदुद्गीथ:।। (१-१-१,२,३) अर्थात् ओम् इस अक्षर को ही उद्गीथ समझकर मनुष्य को उपासना करनी चाहिए, क्योंकि उद्गाता उद्गीथ के समय 'ओम्' का गान करता है। उसका यह उपाख्यान है–सब भूतों का रस पृथ्वी है, पृथ्वी का रस जल है। जलों का रस अर्थात् सार औषधियाँ हैं। औषधियों का सार मानव देह है। मानव देह का सार वाणी है। वाणी का सार वेद है। वेद का सार सामवेद है और सामवेद का सार यह उद्गीथ है। यह जो उद्गीथ है यह सब रसों में सर्वोत्तम रस है। इसी उपनिषद् में आगे कहा है–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओम् इत्येतदक्षरमुद्‌गीथमुपासीत, ओम् इति ह्युद्‌गायति। ·····अथ खलु य उद्‌गीथः स प्रणवः, यः प्रणवः स उद्‌गीथः इति·····एष प्रणव ओम् इति·····

अर्थात् 'ओम्' इस अक्षर को उद्‌गीथ समझकर मनुष्य को उपासना करनी चाहिए। उसका यह छोटा सा व्याख्यान है–मृत्यु से भयभीत हुए देवता वेदत्रयी में घुसे, उन्होंने स्वयं को छन्दों से ढक लिया। जैसे मनुष्य मच्छली को जल में देख लेता है, वैसे ही मृत्यु ने उन्हें छन्दों में देख लिया। इसके बाद देवता स्वर में प्रविष्ट हुए। यह जो ओम् अक्षर है यही स्वर है। इस ओम् स्वर में प्रविष्ट होकर देवता अमृत तथा अभय हो गए। जो मनुष्य इस रहस्य को जानकर ओम् अक्षर की स्तुति करता है, वह इसी अमृत, अभय, अविनाशी स्वर में प्रवेश करता है। उसमें प्रवेश करने पर जैसे देवता लोग अमृत हुए। वैसे ही वह भी अमृत हो जाता है। सचमुच जो उद्‌गीथ है वही प्रणव है, जो प्रणव है वही उद्‌गीथ है·····यह प्रणव ही ओम् है।

प्रश्नोपनिषद् में सत्यकाम ने पिप्पलाद मुनि से प्रश्न किया–

स यो ह वै तद्भगवन् मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमाभिध्यायीत। कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति।।

भगवन् जो मनुष्य मृत्यु के अन्त समय में उस ओंकार का ध्यान करे निश्चित रूप से वह किस लोक को जीतता है? उत्तर में ऋषि कहते हैं–

तस्मै सहोवाच। एतद् वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः तस्मादिदानेतेन वाऽऽयतनेनैनं कतरमन्वेति।।

हे सत्यकाम जो पर और अपर ब्रह्म है यही ओंकार है इसीलिए इसके आश्रय से व्यक्ति पर और अपर दोनों में से एक के प्राप्त होता है। आगे इसी प्रश्न का विस्तार से उत्तर देतें हुए उपनिषत् का ऋषि ओम् की तीन मात्राओं का वर्णन करते हुए फिर कहता है कि–

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतनैवाक्षरेण तदेतौ श्लोकौ भवतः।। (प्रश्नोप० तृतीयः प्रश्नः)

जो तीन मात्रा से इस ओम् अक्षर से उस परम पुरुष का ध्यान करता है वह तेजस्वी सूर्यलोक को प्राप्त होता है। जैसे सांप केंचुली से पृथक् हो जाता है, निश्चित रूप से वह व्यक्ति भी पाप से छूट जाता है। वह सामवेद के मन्त्रों से ब्रह्मलोक को ले जाया जाता है। वह इस सूक्ष्म जीव समूह से सूक्ष्म व्यापक ईश्वर को देखता है।

और तैत्तिरीयोपनिषद् में इसी ओम् के बारे में कहा गया है :–ओम् इति ब्रह्म, ओम् इतिइदं सर्वम्, ओम् इति एतद् अनु॰ति ह स्म। अर्थात् यह ओम् ही ब्रह्म है, ओम् ही य॰ सब कुछ है और यह संसार ओम् की ही अनुकृ॰। है।

बृहदारण्यकोपनिषत् के प्रथम ही अध्याय में एक बड़ा सुन्दर कथानक आतां है जिसमें बताया गया है कि एक बार देवताओं को असुरों ने पाप से नष्ट करना चाहा मगर देवताओं ने प्राण द्वारा ओंकार की उपासना की और असुर उन्हें नष्ट नहीं कर सके बल्कि वे असुर ही टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट हो गए।

वेद भी इसी ओम् का स्मरण करने के लिए जीवात्मा को आदेश देता है–ओ३म् क्रतो स्मर। (यजु० ४०।१५), ओम् ही सर्वतो महान् और उस परमात्मा का नाम है–ओ३म् खं ब्रह्म (यजु० ४०।१७), व्यक्ति को इस ओम् पर ही आस्था रखकर इसी की प्रतिष्ठा करनी चाहिए–ओम् प्रतिष्ठः। (यजु० २।१३)।

वास्तविकता यह है कि ब्रह्मा, गौतम, कणाद, पतञ्जलि, मनु, शिव, राम; कृष्ण आदि ही नहीं बल्कि समस्त श्रेष्ठ पुरुषों ने इस ओम् का आश्रय लेकर ही अपने जीवन को सार्थक बनाया है। गुरु नानक देव जी भी कहते हैं–ओंकार शब्द जप रे ओंकार, गुरुमुख तेरे। ओम् अखर सुनह विचार ओम् अखर त्रिभुवन सार।।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनायें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

७३३ श्री व्यवस्थापक महोदय, वैदिक साहित्य निकेतन वांगर मऊ जि०-उन्नाव (यू०पी०)
७३४ Smt. E.S. Vani B.P. Colony Garividi Sree Ramnagar Distt. Vijaingaram (A.P.)
७३५ श्री विजय किराना स्टोर श्री पवनकुमार जी गोयल म०न० 1433 गोमती गली जगाधरी जि० यमुनानगर (हर०)
७३६ श्री विजेन्द्र सिंह C/o ओमेरा इंजीनियर वर्क्स E47/48 औद्योगिक एरिया हरिद्वार (U.P.) 245410
७३७ श्री कोटनीश जी संगल 21 गंगारामपुर जि० मुज़फ़्फ़र नगर (यू०पी०) 251001
७३८ श्री अम्बाभाई भवान भाई पटेल C/o संतोषशरण गार्डिंग 4/5 भा: ती फ्लोर मौरवी गुजरात-363641
७३९ आचार्य श्री भद्रकाम वर्णी आर्यसमाज बिड़ला लाईन्स कमला नगर दिल्ली-7
७४० ब्र० भरतकुमार जी आर्य पाणिनि महाविद्यालय बहालगढ़ सोनीपत (हर०) जि० सोनीपत-131210
७४१ To, Sunil Kumar Kashyap (Advocate) H.No. 149, Lane No. 4, Aruna Park, Vikas Marg, Shakarpur, Delhi-92
७४२ To, Birendar Kar Editor Bedarashiri H-196, A.G. Colony Bhubaneshwar-751001
७४३ To, Umesh Rathi C/o Friends Enterprises Near Gandhi Putla Central Avenue. Nagpur-440002
७४४ श्रीमती सुमना गुप्ता C/o वीरेन्द्रकुमार जी गुप्ता 423 गोपाल भवन, 43 कैलाश वोपरा स्ट्रीट 4th फ्लोर कलकत्ता (W.B.)700005
७४५ श्री कान्तिलाल अग्निमित्र, आर्यपुरोहित, खुशहाल नगर मुरादाबाद (यू०पी०)
७४६ श्री मन्त्री जी आर्यसमाज जोधपुर C/o नया बाँस महामंदिर जोधपुर (राज०)
७४७ श्रीमती माता प्रकाशदेवी आर्या C/o डा० बलवंतसिंह जी म०न० 1928 से० 7 डी फरीदाबाद (हर०)
७४८ श्री विजयकुमार जी गुप्ता गोहड़िया (Advocate) गंगोह सहारनपुर (यू०पी०)
७४९ कुमारी ज्योत्सना गुप्ता D/o श्री जितेन्द्रकुमार जी गुप्ता म०न० 5158 माल गोदाम रोड भटिण्डा (Pb.)
७५० डॉ० बालकृष्ण ग्रन्थालय आर्यसमाज रामनगर लातूर (M.R.) 413531
७५१ श्री हरीराम जी पटेल मु०पो० भरकावाड़ी जि० बैतूल (M.P.)
७५२ श्री राजेन्द्र यादव S/o श्री रामसिंह जी यादव 4/47 राजनगर जि० गाजियाबाद (U.P.)

—धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/96
आर/ आर/ नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/6/96

जून १९९६

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९६
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/96

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलव यें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु० ५०/– प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान :- **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली – ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक / पत्रिका
श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा० ....
जिला ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ओ३म्
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द-सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जुलाई, १९९६

वर्ष २४ : अंक ९
दयानन्दाब्द : १७२
विक्रमसंवत् : आधिक आषाढ़ २०५३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९७

EXCHANGE

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- पल-पल याद कर ले प्रभु पावन — २
- वेदोपदेश — ३
- मोक्ष में दुःख का सर्वथा अभाव नहीं — ४
- शंका-समाधान — ४
- साहित्य-समीक्षा — ५
- खुदगर्जी भूल रहे हैं — ६
- श्रावणी पर वेद का विशेषांक — ६
- महर्षि दयानन्द की स्तुति — ७
- दयानन्द की शूद्रों को डाकू कहने की बात सर्वथा मिथ्या है।
- एक मुनि (?) का परमात्मा की सर्वव्यापकता पर प्रहार — ११
- सद्बुद्धि की कामना — १६
- 'हिन्दु' नाम कसौटी पर (३) — २२
- पाठकों के पत्र — २६
- वेद आज्ञा निभाते चलें हम — २६
- केन्द्र की सरकार का ईसाई-दलितों का आरक्षण एक खतरनाक निर्णय — २६

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya HARDWAR
Reference G. K. V Lib., Haridwar
EXCHANGE

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ रुपये और सजिल्द सोलह सौ रुपये सैंकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पल-पल याद कर ले प्रभु पावन

—श्री बाबूराम सिंह कवि, मारोवी (गुजरात)

छोड़ जगत् जाना है एक दिन करनी का फल पायेगा।
पल-पल याद कर ले प्रभु पावन कुछ भी साथ ना जायेगा।।टेक

जिसने याद किया सुख पाया करने वाला पायेगा।
धन, वैभव, तन सदुपयोग कर कुछ भी साथ ना जायेगा।
जो कुछ देना जगत्, जीव को हक्क में तेरे आयेगा।
कर ले उत्तम काम नहीं तो फिर पीछे पछताएगा।
पकड़ डोर सतनाम, सुखी निष्काम, अभय बन जायेगा।
पल-पल याद कर ले प्रभु पावन कुछ भी साथ ना जायेगा।।१

वीरता, बुद्धि, विवेक, भक्ति, साहस, धैर्य कभी ना त्यागो।
योग्य-अयोग्य का सदा विचार रख आलस्य, अवगुण से भागो।
अतिशय नम्रता, आत्म-विलोचन, आत्म-त्याग में तत्पर जागो।
परमात्मा की सतत प्रार्थना, याद, भक्ति में पल-पल लागो।।
छोड़ फ़रियाद, याद कर प्रभु को प्रभु का दर्शन पायेगा।
पल-पल याद कर ले प्रभु पावन कुछ भी साथ ना जायेगा।।२

तज कुसंग, आत्मस्थ रह, अभिवृद्धि कर आत्म-सुधार में।
माता-पिता, बन्धु, सुत-दारा पालन कर परिवार में।
जन-सेवा प्रभु-भक्ति सर्वोपरि जीत है प्रभु के प्यार में।
पावन प्रभु का नाम 'सार' है इस असार संसार में।।
अपनी कहो, सुनो और देखो दिव्य सद्गुण सुख छायेगा।
पल-पल याद कर ले प्रभु पावन कुछ भी साथ न जायेगा।।३

लख चौरासी का भ्रमण, दुःख-द्वन्द्व व माया जाल से।
जग से पार हो जाता मानव प्रभु की याद व ख्याल से।
सब जग जान हरिमय निर्भय बन जाता है काल से।
अस्तु! जतन, कर जाग अन्दर से, सतनाम तत्काल से।।
तन-मन, धन पावन कर प्यारे पावन पथ से जायेगा।
पल-पल याद कर ले प्रभु पावन कुछ भी साथ ना जायेगा।।४

मिलता वही सदा जो जग में नर निज कर्मों का बीज बोता।
दिव्य गुणों का समावेश सदा ही पल-पल प्रभु याद से होता।
आत्मनिरीक्षण, प्रभु याद से जो निज मन को निर्मल धोता।
सकल आश-विश्वास प्रभु में रखकर वह प्रभुवर का होता।।
प्रभु समर्पित 'बाबूराम कवि' अग-जग से तर जायेगा।
पल-पल याद कर ले प्रभु पावन कुछ भी साथ ना जायेगा।।५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- जिस राजा के सभी कर्मचारी धार्मिक कर्म स्वभाव वाले हैं और कर का संग्रह ईमानदारी से करते हैं वह राजा श्रेष्ठ लक्ष्मीपति होता है।

मेधातिथिः ऋषिः। विश्वेदेवाः (राज्यसेवकाः) देवताः। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को कहा जाता है॥

ओ३म्- **यस्यायं विश्वऽआर्यो दासः शेवधिपाऽअरिः।**
तुरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽअज्यते रयिः॥

(यजु० ३३।८२)

पदार्थः—(यस्य) (अयम्) (विश्वः) सर्वः (आर्यः) धर्म्यगुणकर्म-स्वभावः (दासः) सेवकः (शेवधिपाः) यः शेवधिं निधिं पाति=रक्षति धर्मादिकार्ये करे च न व्येति स शेवधिपाः। निधिः शेवधिरिति यास्कः (निरुक्त २।४)। (अरिः) शत्रुः (तिरः) अन्तर्धानं गतः (चित्) अपि (अर्ये) धनस्वामिनि वैश्यादौ (रुशमे) हिंसके (पवीरवि) यो धनादिरक्षायै पवीरं=शस्त्रं वाति=प्राप्नोति तस्मिन् (तुभ्य) तुभ्यम्। अत्र वा छान्दसो वर्णलोपः। (इत्) एव (सः) (अज्यते) (रयिः) धनमिव॥

अन्वयः—हे राजन्! यस्य तवायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः पवीरवि-रुशमे आर्ये तिरश्चित् तुभ्येत् स त्वं रयिरज्यते॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन्! (यस्य) (तव) (अयम्) (विश्वः) सर्वः (आर्यः) धर्म्यगुणकर्मस्वभावः (दासः) सेवकः (शेवधिपाः) यः शेवधिं=निधिं पाति=रक्षति धर्मादिकार्ये करे च न व्येति स शेवधिपाः (अरिः) शत्रुः (पवीरवि) यो धनादिरक्षायै पवीरं=शस्त्रं वाति=प्राप्नोति तस्मिन् (रुशमे) हिंसके (अर्ये) धनस्वामिनि वैश्यादौ (तिरः) अन्तर्धानं गतः (चित्) अपि (तुभ्य) तुभ्यम् (इत्) एव स त्वं (रयिः) धनमिव (अज्यते) प्राप्यते॥

भाषार्थः—हे राजन्! (यस्य) जिस आपका (अयम्) यह (विश्वः) सब (आर्यः) धार्मिक गुण, कर्म स्वभाव वाला (दासः) सेवक (शेवधिपाः) शेवधि=निधि का रक्षक अर्थात् धर्म आदि कार्य और राजकर में धन को व्यय न करने वाला (अरिः) शत्रु है उस (पवीरवि) धनादि की रक्षा के लिए पवीर=शस्त्र को प्राप्त करने वाले (रुशमे) हिंसक तथा (अर्ये) धन के स्वामी वैश्य आदि के रूप में (तिरः) तिरोहित होकर (चित्) भी (तुभ्य) तेरे लिए (इत्) ही है, सो तुझे (रयिः) धन के तुल्य (अज्यते) प्राप्त करता है॥

भावार्थः—यस्य राज्ञः सर्व आर्या राज्यरक्षकाः सेवकाः सन्ति, धनादिकरस्यादाता च शत्रुस्तस्मादपि येन भवता धनादिकरो गृह्यते, स सर्वोत्तमश्रीः स्यात्॥

भावार्थः—जिस राजा के सब आर्य राज्य के रक्षक सेवक हैं और जो धनादि कर न देने वाला शत्रु है, उससे भी जो आप धनादि कर ग्रहण करते हैं, अतः सर्वोत्तम श्री=लक्ष्मी वाले हो॥

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्ष में दुःख का सर्वथा अभाव नहीं

दुःख और सुख महर्षि दयानन्द ने जीवात्मा के गुण माने हैं—

जिसमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण हों, वह जीवात्मा कहाता है। (स॰ प्र॰ तृतीय समु॰)

और यही बात अन्यत्र भी लिखी है—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है, उसी को जीव मानता हूँ॥ (स्वमन्तव्यामन्तव्य॰)

और अनादि पदार्थ तीन हैं—एक ईश्वर, द्वितीय जीव तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण। इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। **जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।** (स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश) इनके अतिरिक्त—"जो पदार्थ सत्य है, उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी सत्य होते हैं॥" (स॰ प्र॰ प्रथम समु॰)

अतः जीवात्मा नित्य है और उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं। और जहाँ तक मोक्षदशा की बात है, इसमें हमें महर्षि के लेख पर विश्वास करना चाहिये। देखिये—

(१) **(प्रश्न)** जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद होता है, वही मुक्ति कहाती है....।

उत्तर—यह आवश्यक नहीं है कि अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभाव ही का नाम होवे। जैसे—अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्तते-बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्य को है। इससे यही विदित होता कि इसको बहुत सुख व दुःख है। इसी प्रकार यहाँ भी अत्यन्त शब्द का अर्थ जानना चाहिये (स॰ प्र॰ नवम॰)

(२) महर्षि के इस स्पष्ट लेख को भी न समझकर यदि यह लिखें—

"परन्तु यहाँ पर यह अर्थ करना कि मोक्ष में दुःख का अत्यन्त नाश नहीं होता, दुःख शेष रह जाता है, असंगत है।" (मई ९६ सुधारक)

हमें आश्चर्य होता है, पक्षपात के आग्रह में महर्षि की भाषा को असंगत बताने लगे हैं।

(३) महर्षि दयानन्द ने मुक्तात्माओं की भी भिन्न-भिन्न तथा उनके ज्ञान में भी भिन्नता मानी है। देखिये—

"वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टि विद्या को क्रम से देखता हुआ सब लोक लोकान्तरों में अर्थात्.... इन सब में घूमता है। ......जितना ज्ञान अधिक होता है, उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है।" (स॰ प्र॰ नवम समु॰)

इस लेख से स्पष्ट है कि समस्त मुक्तात्माओं का ज्ञान भी न्यूनाधिक होता है। अतः जितना ज्ञान होता है, उसी के अनुरूप आनन्द भोगता है। इसलिए 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः' सूत्र की व्याख्या असंगत नहीं अपितु सर्वथा संगत है।

—राजवीर शास्त्री

महापापी राजा कैसा होता है

जिसकी सभा में अन्याय होते देखकर राजा मौन रहता है अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध कहा जाता है वह राजा महापापी होता है॥

(महर्षि दयानन्द)

पवित्र राजा की पहचान

जिसकी सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और सम्माननीय का सम्मान होता है वह राजा पवित्र और धर्मात्मा होता है।

(महर्षि दयानन्द)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका-समाधान

देहरादून से श्री मनमोहनकुमार आर्य लिखते हैं—

"सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में महर्षि लिखते हैं—वेद पढ़ने के पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं।"

इसका अभिप्राय यह है—अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि ग्रन्थों की रचना सृष्टि उत्पत्ति के सुदीर्घकाल के पश्चात् की गई। क्या सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषि-मुनियों ने विना व्याकरणादि के वेदों को पढ़ा। जबकि वेदाध्ययन के क्रम में व्याकरणादि का अध्ययन आवश्यक बताया है।

समाधान—यह आपकी बात सत्य है। क्योंकि सृष्टि उत्पत्ति के बाद वेदों को व्याकरणादि के बिना पढ़ते रहे। व्याकरणादि की रचना वेदों को पढ़कर ही की गई। आदिकाल के ऋषि-मुनि मेधावी होते थे। फिर पढ़ने-पढ़ाने में (साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के बाद) बाधा होने लगी, तब यह क्रम बनाया कि व्याकरणादि पढ़कर वेदों को पढ़ा जाये। इस बात को समझने के लिए कुछ प्रमाण देखिये—

(१) **साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः** (निरुक्त १।१९) प्रारम्भ में साक्षात्कृतधर्मा ऋषि हुए, उन्होंने बाद में आसाक्षात्कृतधर्मा मनुष्यों को उपदेश द्वारा शिक्षाएं दीं और वेद-वेदांगों को पुस्तक रूप में बनाया।

(२) प्रारम्भ में वेदों का श्रुति नाम था, और एक दूसरे से सुन-सुनकर ही वेद का ज्ञान परम्परा से पढ़ते रहे। इसलिए वेदों का श्रुति नाम था।

(३) जो लोग वेद शास्त्रादि पढ़ने को कम समर्थ हैं वे जिससे सुगमता से वेदार्थ जान लेवें इसलिए निघण्टु और निरुक्त आदि ग्रन्थ बना दिये हैं। (ऋ॰ भा॰ भू॰ प्रश्नोत्तर॰) और आपने अष्टाध्यायी के समस्त सूत्रों की संख्या पूछी है। तदर्थ ३९६४ की जगह ३९९६ संख्या होनी चाहिये।

—राजवीर शास्त्री

साहित्य-समीक्षा

डा॰ रामकृष्ण आर्य द्वारा लिखित लघु पुस्तकमाला। यह विद्यालय स्तर पर छात्रों के लिए उपयोगी तथा शिक्षाप्रद हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) **स्वामी दयानन्द सरस्वती**—महर्षि दयानन्द की जीवनी से संगृहीत विशिष्ट महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संकलन किया गया है। मूल्य : तीन रुपये मात्र।

(२) **फलित ज्योतिष अन्धविश्वास है**—इसमें जन्मपत्री शोकपत्री है। नौ ग्रह कौन से हैं? ग्रह किसे कहते हैं? और इनकी शान्ति के लिए बोले जाने वाले मन्त्रों के यथार्थ अर्थों का परिचय और ग्रहों का प्रभाव कैसा होता है। हस्तरेखा दिखाना एक ठग विद्या है। मुहूर्त्त दिखाना और मानना दोनों ही पाखण्ड हैं। दिशाशूल क्या होता है? इत्यादि बातों के परिचयार्थ यह पुस्तक उपयोगी है। २/- रु॰ मूल्य।

(३) **मूर्तिपूजा क्या क्यों कैसे**—इसमें मूर्तिपूजा को वेद विरुद्ध दर्शाया गया है। मूर्तिपूजा से हानियाँ दिखाकर इसे पाखण्ड दिखाया गया है। राम और कृष्ण स्वयं भगवान् के उपासक थे। मूर्तिपूजकों की विभिन्न शंकाओं का भी निवारण किया गया है। २/- रु॰ मूल्य।

(४) **गायत्री मन्त्र**—गायत्री मन्त्र भक्ति के क्षेत्र में एक प्रसिद्ध मन्त्र है। इसमें मन्त्र की व्याख्या दिखाकर गायत्री विषय में विभिन्न शंकाओं का भी समाधान किया गया है। २/- रु॰ मूल्य।

(५) **ईश्वर क्या, क्यों, कैसे**—इस लघु पुस्तक में ईश्वर का सच्चा स्वरूप दर्शाकर मूर्तिपूजा पर अच्छे प्रश्नोत्तर किये गये हैं।

(६) **वेद क्या, क्यों, कैसे**—इसमें वेद कितने हैं, वेद ज्ञान की आवश्यकता, वेदों का आविर्भाव कब हुआ, क्या वेद अपौरुषेय हैं, क्या वेद पढ़ने का अधिकार सब को है, इत्यादि बातों को प्रश्नोत्तर रूप में समझाया गया है।

(७) **एक ही रास्ता वैदिक धर्म**—धर्म क्या है, धर्म एक ही होता है, वैदिक धर्म के सिद्धांत इत्यादि आवश्यक बातों पर अच्छा प्रकाश डाला है। लेखक ऐसे बालोपयोगी साहित्य के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

—राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुदगर्जी भूल रहे हैं

—सत्यदेवप्रसाद आर्य 'मरुत्' प्रेमनगर, नेमदार गंज (नवादा)

खुदगर्जी भूल रहे हैं–ईश्वर निराकार–
नजरिया बन्द करके।।
मनमर्जी पूजें क्यों? मूर्तियाँ साकार–
नजरिया बन्द करके।।

जिसका ना कोई रूप है
सब विधि सदा अनूप है।
छोड़ रहे हैं उसका ही आधार–
नजरिया बन्द करके।।

सब का रक्षक पालक है
दुःखों का सबल निवारक है।
मन सत्यस्वरूप क्यों भटक रहे बेकार–
नजरिया बन्द करके।।

सब मस्त हैं तिलक भभूत लगा,
और व्यस्त हैं भांग व दूध पिला।
आडम्बर में उलझा सारा संसार–
नजरिया बन्द करके।।

अरबों खरबों के मन्दिर मठ
जहाँ चढ़े चढ़ावा निशिवासर।
वहीं मरता भूखा लाचार–
नजरिया बन्द करके।।

गति जिससे हो जड़ चेतन में,
जो ओत-प्रोत हर कण-कण में।
क्या 'मरुत्' कभी वह हो सकता बेकार–
नजरिया बन्द करके।।

श्रावणी पर वेद का विशेषांक

पाठकों को यह जानकर अतीव हर्ष होगा कि श्रावणी पर्व पर 'दयानन्दसन्देश' का वेद विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। इस अवसर पर स्वेच्छा से वैदिक विषयों में किसी भी विषय पर वैदिक विद्वानों से लेख आमन्त्रित किये जाते हैं। विद्वानों के पास समय का अभाव होता है पुनरपि उन से प्रार्थना है कि आप लेखों के माध्यम से जन-सामान्य में वैदिक भावनाएँ संजोते रहते हैं और हमारी प्रार्थना पर विचार करके ३१ जुलाई ९६ तक अपने विचारों को लेखबद्ध करके प्रेषित करने की कृपा करके अनुगृहीत करेंगे।

धन्यवाद के साथ — विनीत

राजवीर शास्त्री
(सम्पादक)

विचार-विमर्श के लिए ऐसे विषयों का चयन कर सकते हैं

१. वेद संज्ञा विचार
२. वेद और ब्राह्मण में अन्तर
३. वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हैं (कुरान और बाईबिल क्यों नहीं)
४. महर्षि-दयानन्द की वेदभाष्य में देन और उनके भा[ष्य] की विशेषता
५. वेदाध्ययन में वेदांगों का महत्त्व
६. व्याकरण की वेद ज्ञान के लिए आवश्यकता
७. वेदों की अपौरुषेयता क्यों?
८. क्या वेदों में पुनरुक्ति दोष है
९. सायण और महर्षि के वेदभाष्य की तुलना
१०. वेदार्थ बोध के लिए निरुक्त का मूल्यांकन
११. वेद सर्वज्ञानमय क्यों
१२. पुनर्जन्म की वैदिक मान्यता
१३. वैदिक कर्म फल-व्यवस्था
१४. वैदिक वर्ण-व्यवस्था की प्रासंगिकता
१५. वैदिक शिक्षा तथा उसकी उपयोगिता (इत्यादि)

विशेष– अन्त में यह भी ध्यान रखें कि लेख का कलेवर लम्बा न होकर संक्षिप्त, सप्रमाण तथा तर्कयुक्त हो। लेख का सुवाच्य वा स्पष्ट होना परमावश्यक है। लेखकों को आर्थिक सहायता भी दी जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द की स्तुति

—स्व॰ पण्डित अखिलानन्द शर्मा कृत
"दयानन्ददिग्विजय" से

यशो यदीयं जगतीतले ततम्,
तमो नितान्तं तनिमानमानयत्।
शरन्मृगाङ्कादधिकं विशोभते,
विशोभितान्तःकरणैरभिष्टुतम्।।

विश्वं में जिस महर्षि दयानन्द का यश फैल गया है। जिसकी प्रशंसा पवित्र हृदय वाले सत्पुरुष कर रहे हैं। और जिसके फैलाये हुए पवित्र ज्ञान से समस्त अज्ञानान्धकार पतला होता जा रहा है और वे शरत्कालीन चन्द्रमा से भी अधिक शोभित हो रहे हैं।

तुषारपातोत्तर - काल - लालिता,
नवीनवल्लीव लसद्दलोदया।
जगत्त्रये येन विकासमापिता,
विवर्धते वेदमयी सुवल्लरी।।

हेमन्त ऋतु के बाद वसन्तकाल में जिस लता पर नये-नये पत्ते अंकुरित हो जाते हैं, उसी प्रकार वेद रूपी लता को तीनों लोकों में विकास को प्राप्त कराया, वह लता भी उत्तरोत्तर निरन्तर बढ़ती जा रही है।

दयामयानन्द - विशेषवर्धनाद्,
भुवस्तले यो नितरामुदारधीः।
ततान नामानुगुणां निजाभिधाम्,
गुरुर्दयानन्द इति प्रकल्पितम्।।

जिस उदार बुद्धि दयानन्द ने अपने नाम के अनुरूप दया और आनन्द का वर्धन किया, उससे स्पष्ट है दयानन्द ने अपने दयानन्द नाम को चरितार्थ करके दिखाया।

सरस्वती यस्य सदावतिष्ठते,
सुनामधेयाग्रपदे ऽतिशोभना।
समस्तवेदार्थपटीयसी कथम्,
न तिष्ठताद् ब्रह्मपदे स देवराट्।।

जिसके नाम के साथ समस्त वेदार्थ को बोध कराने वाली सरस्वती सदा विद्यमान रहती है। फिर भी वे समस्त विद्वानों में श्रेष्ठ होने पर ब्रह्मा की पदवी क्यों नहीं प्राप्त कर सके?

न विश्वमध्ये निखिला गुणाः क्वचिद्,
भवन्ति नित्यं मनुजे विधेर्वशात्।
इमं परीवादलवं निनीषवो
गुणा यदीयं वपुरापुरादरात्।।

समस्त संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो सब गुणों वाला हो। प्रत्येक में कोई न कोई न्यूनता अवश्य रहती है। परन्तु इस मानवीय कलंक को धोने के लिए ही मानो महर्षि दयानन्द समस्त गुणों की खान बन गये थे।।

उपासनां पार्थिवमूर्त्तिसङ्गताम्,
निवार्य वेदोदितमातृपूजनम्।
गुरोः सपर्यां जनकस्य सत्क्रियाम्,
अबोधयद् यः परमार्थसन्मतिः।।

जिस महर्षि ने पाषाण की पूजा को हटाकर सब को यह बात समझाई कि हमें वेदोक्त माता, पिता, आचार्य की पूजा करनी चाहिये, वह दयानन्द परोपकार तथा सब के कल्याण की भावनाओं से पूर्ण था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द की शूद्रों को डाकू कहने की बात सर्वथा मिथ्या है। शूद्रों के विषय में महर्षि दयानन्द की मान्यता और उसके समझने में भयंकर भूल।

—राजवीर शास्त्री, सम्पादक दयानन्दसन्देश

हम प्रथम विचार करें

(१) महर्षि दयानन्द ने अपनी मान्यता के विषय में स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त ऋषियों का मत ही मेरा मत है। इसलिए महर्षि मनु आदि की मान्यता ही महर्षि दयानन्द की मान्यता है।

(२) ब्राह्मणकुल में जन्म लेकर भी प्रथम ब्राह्मणवाद के मिथ्या पाखण्डों का समूल उन्मूलन करने वाले महर्षि दयानन्द ही हैं।

(३) महात्मा गान्धी आदि समाज-सुधारकों से भी प्रथम गुरु और दलित जाति के उठाने और शिक्षा व उन्नति के समान अवसर देने का भी प्रथम श्रेय महर्षि दयानन्द को ही है। जिसने सब से प्रथम शिक्षा के क्षेत्र में यह घोषणा करके महान् क्रान्ति का बिगुल बजाया था–

"चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों सब को तपस्वी होना चाहिये, सब को तुल्य वस्त्र, खान-पान आसन दिये जायें।"

परन्तु वे व्यक्ति महाकृतघ्नी हैं जो आज से १०० वर्ष पहले की स्थिति को बिना जाने व समझे ही उस महर्षि के महान् उपकारों को तो भूल गये। आज दो अक्षर सीखकर ऐसी-ऐसी अण्डबण्ड बातें विक्षिप्त व्यक्तियों की भाँति बड़बडाते रहते हैं– **"आर्य विद्वान् उत्तर देने की कृपा करें– दयानन्द ने शूद्रों को डाकू (दस्यु) क्यों कहा?"**

महर्षि पर यह आक्षेप किसी अनपढ़ ने नहीं किया, यह किया है–श्री चन्द्रप्रकाश प्रियदर्शी सचिव बहुजन समाज पार्टी, प० चम्पारण (बिहार) ने। मैं इनसे विनम्र शब्दों में पूछना चाहता हूँ कि कम से कम लेखनी उठाने से पूर्व महर्षि के ग्रन्थों को और उनके विचारों को जानने का कुछ तो प्रयास करते?

शूद्र कौन हैं? शूद्र को एक जाति मानकर जातिवाद के दलदल में धंसे ऐसे व्यक्ति महर्षि की मान्यता को आंखें खोलकर पढ़ें। अन्यथा यही कहना पड़ेगा–

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

अर्थात् जैसे अन्धे व्यक्ति को दर्पण (शीशा) दिखाना निरर्थक है, वैसे ही बुद्धिहीन को शास्त्रों की बातें सुनाना भी निरर्थक है। अस्तु, महर्षि लिखते हैं–

"जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे, वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है॥

स०प्र०तृ०समु०॥

इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि जो पढ़-लिख गया है, वह शूद्र ही नहीं। फिर भी श्री चन्द्रप्रकाश जी अपने को शूद्र मानते रहे हैं तो इसमें महर्षि का क्या दोष?

लेखक के विचारों पर विचार–

(१) मेरे प्यारे आर्यसमाजी बन्धुओ! आपके मंचों से रोज-रोज चिल्ला-चिल्लाकर उद्घोष हो रहा है कि आर्यसमाज ने हिन्दुजाति से ऊँच-नीच, छुआछूत और जातपांत को मिटाकर शूद्रों को अत्यन्त प्रतिष्ठित किया है। स्वामी दयानन्द को दलितोद्धारक का मुखौटा पहनाकर पिछले १२० वर्षों से लाखों आर्यसमाजियों ने दलित समाज को छला है।

(जनवरी १९९६, की 'आर्यसम्पदा' से)

समीक्षा–लेखक आर्यसमाज व गुरुकुलों के इतिहास से थोड़ा भी परिचित होता तो इतना महाझूठ नहीं बोलता। आज से १५० वर्ष पूर्व की स्थिति का यदि लेखक थोड़ा भी सिंहावलोकन करे तो उसकी आंखें आँश्चर्य से चकाचौंध हो जायेंगी। शिक्षा के क्षेत्र में तथाकथित इन शूद्रों को एक साथ बैठाकर बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेदभाव के खाने-पीने और पढ़ने का अधिकार देने का यदि श्रेय जाता है तो सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द को और उनकी संस्थाओं को ही है। अन्यथा कपड़ा भी छू जाता तो लोग इतनी घृणा करते थे कि गंगाजल छिड़का करते थे। आज कम से कम उत्तर भारत से तो छुआछूत का सफाया हो ही गया है। आज यदि कहीं किसी के अन्धकारपूर्ण हृदय में ऐसी कलुषित भावना हो भी तो वह भी बाहर प्रकट नहीं कर सकता। जिसने हजारों शूद्र बालकों को बिना किसी खर्च के पढ़ा-लिखाकर पण्डित बनाया, उस संस्था या संस्थापक पर छलने के आरोप लगाते हुए लेखक को लेशमात्र भी शर्म नहीं आई, यह कितने आश्चर्य की बात है। यह बात तो बहुत पुरानी नहीं है, इसलिए अपने पूर्वजों से शान्ति से बैठकर पूछकर तो देखो।

(२) दूसरा आरोप लेखक ने यह लगाया है-दयानन्द ने शूद्रों को डाकू (दस्यु) क्यों कहा?

समीक्षा-महोदय! सत्य बात सदा ही कड़वी लगती है, इसमें आपका भी क्या दोष है। (ऋ० १।५१।८) मन्त्र का अर्थ करते हुए महर्षि ने लिखा है कि समस्त संसार के मनुष्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है-**एक आर्य दूसरे दस्यु।** इसको ऐसा भी कहा जा सकता है-सज्जन व दुर्जन। जो धार्मिक व्यक्ति हैं विद्वान् हैं उन्हें आर्य तथा इनसे विपरीत दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् हैं। आप बताओ इसमें आपको किस बात पर आपत्ति है? समझ में नहीं आता सज्जनों से निम्न कौन-कौन हो सकते हैं-इनमें डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान्। आप कहेंगे कि हमें इस बात पर आपत्ति नहीं है किन्तु इससे अगले वाक्य को भी पढ़िये। हम आपका धन्यवाद करते हैं और आगे भी पढ़ते हैं-

"तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है।"

(स०प्र० ८ समु०)

इसमें भी दो ही वर्ग किये हैं-जिनका दूसरा जन्म विद्या का होता है वे द्विज कहलाते हैं। जैसे पक्षियों को भी द्विज कहते हैं, क्योंकि उनके दो जन्म होते हैं। प्रथम अण्डे रूप में, दूसरा जन्म अण्डे से बाहर आने पर। और जिनका दूसरा जन्म नहीं हो सका उन एकजन्मा मनुष्यों को शूद्र कहा गया है। शूद्र को डाकू कहीं भी नहीं कहा है। लेखक को पढ़ना नहीं आता तो दूसरों से पढ़वा लेते। धन्य है आप की बुद्धि को जो निर्दोष महर्षि को भी दोषी बनाकर महापापी बनने का प्रयास कर रहे हो। आज तुम्हारी दशा विक्षिप्त व्यक्तियों की भांति हो गई है जो दूसरों के बहकाने पर फूलों की माला को भी विषैला सर्प समझकर फेंकने में लगे हो।

(३) "जो आर्यावर्त देश से भिन्न देश वो दस्यु देश और म्लेच्छ देश कहाते हैं।" इससे तो यह सिद्ध होता है कि आर्यावर्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर, ईरान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है। **ये लेखक के मनगढ़न्त विचार हैं और उनके विचार पढ़िये**-"वाह जी दयानन्द महाराज! पहले तो शूद्रों को दस्यु, डाकू, मूर्ख, अनार्य कहा और अब उनका आर्यावर्त में रहने का अधिकार भी छीन लिया? अब ये करोड़ों शूद्र भारत छोड़कर ईरान और अन्य देशों में चले जायें आप भारत भर में अपनी मनमानी करते रहें?

समीक्षा-वक्ता वा लेखक की भावना से विपरीत भाव से जो व्यक्ति पुस्तक को पढ़ता है उसके विषय में महर्षि ने ग्रन्थ के आरम्भ में ही लिखा है-**जो कोई इस ग्रन्थकर्ता के तात्पर्य से विरुद्ध भावना से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा।"** (स.प्र. की भूमिका से) यहां लेखक ने अपने दुर्भावनाग्रस्त होने के कारण **"कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा।"** वाली कहावत को ही चरितार्थ किया है। फिर भी विचारणीय बात यह है कि महर्षि ने शूद्रों को कहीं डाकू नहीं कहा। हम महर्षि के लेख को फिर याद कराते हैं-**"आर्य नाम धार्मिक आप्त पुरुषों का है और इनके विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् हैं।"** इस वाक्य से यही स्पष्ट होता है कि संसार के मनुष्यों को दो भागों में बांट सकते हैं। एक अच्छे श्रेष्ठ पुरुष (आर्य) तथा दूसरे कौन हैं, उनमें कौन-कौन आ सकते हैं? यह बताया है। यहां कहीं भी शूद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चर्चा नहीं है और न ही शूद्रों को डाकू या दस्यु कहा गया है। शूद्र को तो आर्यों के अन्तर्गत माना गया है। देखिये–

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः।।
(मनु० १०।४५)

अर्थात् (मुख, बाहु, उरु, पज्जात) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों से बहिष्कृत जो जातियाँ हैं उनका नाम दस्यु है। जो कि म्लेच्छ-भाषाभाषी हैं अथवा आर्यभाषा बोलने वाले हैं।

इसलिए शूद्रों के विषय में कहीं भी यह नहीं कहा कि ये डाकू हैं या दस्यु हैं। यह लेखक की अपनी दुर्भावना है जिसे महर्षि के नाम पर थोपा जा रहा है। क्योंकि इस भावना-वैरभावना को भड़काने के लिए कतिपय व्यक्ति अपनी नेतागिरी चमकाने के लिए लगे हुए हैं, हमारा ऐसे देशगद्दारों से बचने में ही कल्याण है। सन् १९४७ तक सभी वर्णों के लोग परस्पर स्नेह से, एक दूसरे के दुःख-सुख में मिलकर रहते रहे हैं, उनको अपना उल्लू सीधा करने वालों ने ही भड़काया है और फूट डालो और राज्य करो की कूटनीति पर चलकर देश को विद्रोह की आग में धकेला जा रहा है जो कि बहुत खतरनाक बात है।

उपसंहार–यह तो हमने महर्षि की मान्यता तथा उनके लेख पर किये आरोप का उत्तर दिया है। अब यथार्थ स्थिति को भी जानना व समझना आवश्यक है, जहाँ हम भूल करते रहे हैं और भ्रान्तिवश वैमनस्य की प्रबल भावना बढ़ाते रहे हैं। उस को समझ लें तो मैं समझता हूँ आधी दुर्भावना तो अवश्य समाप्त हो जायेगी।

वर्तमान काल में जो सामाजिक वर्ण-व्यवस्था चल रही है उसे जन्म-मूलक कहा जाता है। जन्म से मूर्ख ब्राह्मण भी पण्डित कहलाता है, पेशाब करने के लिए भी बाहर जाकर डरने वाला क्षत्रिय कहलाता है, और शर्मा होकर भी जूतों की दुकान कर रहे हैं। क्षत्रिय वर्ण भी तरह-तरह के व्यापारों में ही रत हैं और शूद्रों का यही हाल है। सब वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। एक तरफ हम शास्त्रमूलक कर्मानुसार वर्णों की बात करते हैं और व्यवहार में उससे विपरीत हैं। एक आई.ए.एस. आफिसर होकर भी शूद्र है और करोड़ों की सम्पत्ति का मालिक होकर भी हरिजन कहाता है। जब तक हम इस जन्ममूलक व्यवस्था में धंसे रहेंगे, तब तक शास्त्रमूलक व्यवस्था की बात करना निरर्थक है। और हमारी समझ में आने वाली बात भी नहीं है। जिस व्यवस्था के बारे में महर्षि मनु ने लिखा है–

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा।।
(मनु० २।१४८)

अर्थात् वर्णों का निर्धारण कौन करे। जिस गुरु के पास छात्र ने २० वर्ष तक नियमित रूप से निवास करके विद्याध्ययन किया है, वही वेद का आचार्य अपने शिष्य के गुण, कर्म तथा स्वभाव की भली-भाँति परीक्षा करके वर्णों की दीक्षा देता है और वह वर्ण ही सत्य, अजर और अमर है। आज हमारा समाज गुण व कर्म प्रधान व्यवस्था को भूलकर जन्ममूलक व्यवस्था में फंसकर त्राहि-त्राहि कर रहा है और हमने इसे नहीं सुधारा तो याद रखें परस्पर पशुओं की भांति लड़ते रहेंगे और दुःखसागर में गोते लगाते रहेंगे। हमें कोई बचाने वाला नहीं है। और खूनी क्रान्ति भी हो जाये तो असम्भव नहीं।

अन्त में मैं लेखक महोदय का धन्यवाद करते हुए विनम्र विनति करता हूँ, हमारा कोई आपसे व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। आपके किये मिथ्या आक्षेपों का उत्तर आप की भाषानुरूप भाषा में ही दिया है। आप विचार करें और सहृदयता करें। सत्य को सत्य कहने का साहस करें। हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। मेरे लेख में कोई शब्द आपको रुचिकर न लगे उस पर ध्यान न देकर मेरी भावना का आदर करेंगे, इसी में हमारा कल्याण है। और सदा ध्यान रखें–**गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न लिङ्गं न च वयः।** अर्थात् संसार में जब से सृष्टि बनी है और जब तक रहेंगी, तब तक गुणों व विद्या का ही सम्मान होगा और आयु के कारण वा बाह्यचिह्नों के कारण नहीं। और इस लेख के एक-एक अक्षर का उत्तरदायित्व मेरा है। आप को कोई बात मिथ्या लगे आप क्षमा न करके मेरे को लिखें और उत्तर प्राप्त करें, और हिम्मत हो तो सामने आयें। धन्यवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक मुनि (?) का परमात्मा की सर्वव्यापकता पर प्रहार

माघ शु० १५।२०५२ (४ फरवरी, ९६) को प्रकाशित सार्वदेशिक पत्रिका में **"क्या वेद का परमात्मा सर्वव्यापी है?"** शीर्षक लेख छपा है जो कि वैदिक मान्यता के विरुद्ध है। इसके लेखक हैं–श्री चन्द्रगुप्त 'योगमुनि' जी। इसका उत्तर इस लेख में प्रस्तुत किया जा रहा है। पर इससे पूर्व मैं लेखक को यह ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि–वेद और वेदानुकूल सत्यशास्त्रों के एवं ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त महर्षियों की मान्यताओं के विरुद्ध विचार रखने वाले जन, महर्षि देव-दयानन्द सरस्वती से लेकर अब तक आर्य जगत् के विभूषित पूज्य विद्वानों से हार का काला मुँह देखते रहे हैं और देखते रहेंगे। लेखक लिखते हैं कि **'काल प्रभाव से सर्वव्यापक का अर्थ बदल गया है। जिसको सभी मानने लगे हैं।'** अर्थात् महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी आर्यसमाजी मानने लगे हैं, क्योंकि सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी आदि ईश्वर का स्वरूप आर्यसमाज से अतिरिक्त और कोई पूर्णतः नहीं मानता। अतः आपका आपत्तिजनक आक्षेप आर्यसमाज के द्वितीय नियम पर है। किन्तु ध्यातव्य है कि महर्षि जी ने रूढ़ि अर्थ को नहीं लिया। उन्होंने प्राचीन महर्षियों की मान्यता को ही अपनाया है। यदि रूढ़ि अर्थ लेते और पाषण्ड का विरोध न करते तो भारत के सब मत सम्प्रदायों के पूज्य बन सकते थे। किन्तु ऋषि ने सत्य के प्रकाश के लिए यथार्थता को दर्शाया।

विद्वान् लेखक ने स्वलेख में कुछ भ्रमित विचार लिखकर अपने को महिमा मण्डित करने का प्रयास किया है। जो निम्न प्रकार है–

(१) परमपिता परमात्मा को सर्वव्यापक (सर्वत्र व्याप्य) कहना एक भावना है, सिद्धान्त नहीं, क्योंकि जो स्वरूप आत्माओं का है, वही स्वरूप तो आत्माओं के पिता परमात्मा का होना चाहिए।

(२) वास्तव में वह परमात्मा तो परम धाम अर्थात् ब्रह्मलोक का रहने वाला है।

(३) हम उसे अपनी रक्षा के लिए पुकारते हैं, आह्वान करते हैं (अग्न आ याहि····) हमारे समीप आइये। इस कथन से ही यह सिद्ध हो जाता है कि वह कहीं अन्यत्र रहता है।

(४) त्रैतवाद में आत्मा, परमात्मा और प्रकृति की इन तीनों शक्तियों को मिलाकर ही उसे परमेश्वर कहा जाता है। परमात्मा की ये शक्तियां तो सर्वव्यापी हैं, जैसे कि सूर्य का प्रकाश सर्वव्यापी है, न कि सूर्य भी सर्वव्यापी है। मोमबत्ती का प्रकाश ही कमरे में व्याप्त होता है न कि जलता हुआ धागे का कण भी व्यापक रूप है।

(५) परमात्मा सब जगह स्वयं ही प्रवेश कर सकता है, उसको कोई शक्ति रोक नहीं सकती है, परन्तु इस शब्द का अर्थ ऐसा नहीं है कि वह सर्वत्र व्याप्त है। उपदेशक उपदेश करने वाला है, न कि सब जगह व्याप्त है। काल के प्रभाव से इस प्रकार सर्वव्यापक शब्द की भी भावना बदलकर सर्वव्यापी अर्थ में हो गई और सभी उसे इसी भाव से मानने लगे।

(६) वह (परमेश्वर) सब आत्माओं का परम पिता है, माता है, बन्धु है और सखा है····तब फिर वह किस प्रकार 'सर्वत्र व्याप्त" हो सकता है? कैसे हम उसे कहेंगे कि वह सर्प, सुअर, कीड़े-मकोड़े में भी विद्यमान है? वह सदा पवित्र है, इसलिए वह किसी अपवित्र वस्तु में कभी प्रवेश नहीं करता है।

(७) वह सर्वव्यापी है तो वह कैसे देवताओं के पास ज्ञान सुनने जायेगा?

(८) वस्तुतः वह परमात्मा जल की बूंद के समान रूप वाला है····हिरण्यमयी ज्योति बिन्दु स्वरूप है····वह परमात्मा सूई की नोक के समान परमाणु रूप है।····इस प्रकार वेद का परमात्मा सर्वव्यापी नहीं है।

(९) चींटी की आत्मा और हाथी की आत्मा एक समान रूप वाली हैं, वैसे परमात्मा की आत्मा भी मनुष्य की आत्मा के समान ही है। सूक्ष्म तत्त्व कैसे व्यापेगा? वह प्रवेश तो कर सकता है।

(१०) ·······उन्हीं देवताओं को फिर से देव-देवता पद प्राप्त कराने के लिए इच्छा की थी। इस कार्य को करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए उसे किसी मनुष्य का तन चाहिए, जिसमें वह प्रवेश कर सके, क्योंकि वह निराकार जन्म-मरण से रहित है। अपना ज्ञान कैसे मनुष्यों के प्रति आकर प्रदान करेगा?

समीक्षा—ये सब तर्क उक्त लेख के लेखक की नासमझी को प्रकट करते हैं। यह उनकी अज्ञानता का द्योतक है और शास्त्रीय ज्ञान का अभाव सिद्ध करता है। सम्पूर्ण लेख का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि लेखक कुपढ़ ब्रह्मकुमारी एण्ड कम्पनी के एजेण्ट हैं। क्योंकि ब्रह्मकुमारियों की भी यही मान्यता है कि **"जैसे आत्मा एक ज्योति बिन्दु है, वैसे ही आत्माओं का पिता अर्थात् परमात्मा भी ज्योति बिन्दु ही है। उसका अण्डाकार रूप है। ज्योति बिन्दु स्वरूप परमात्मा ब्रह्मलोकवासी है। पिता कभी अपने पुत्रों में व्यापक नहीं होता है। वहां से धर्मग्लानि के समय इस मनुष्य सृष्टि में आता है।"** (द्र० साप्ताहिक सत्संग) इस प्रकार उन्मत्त के प्रलापवत् उपदेश देने वाला (ब्रह्मकुमारी मत का संस्थापक) शेखचिल्ली ही होगा। अस्तु....।

अब लेखक के लेख पर विचार करते हैं। परमात्मा और जीवात्मा का स्वरूप कदापि एक नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों पृथक्-पृथक् सत्ताएं हैं। यह त्रैतवाद लेखक को भी मान्य है। इन तीनों के गुण, कर्म, स्वभाव अलग-अलग हैं। हाँ! लेखक यदि अद्वैतवाद को मानते हैं तो यह सवाल सार्थक होगा। क्योंकि परमात्मा से ही जीव, प्रकृति का प्रादुर्भाव होगा तो परमात्मा और जीवात्मा का स्वरूप एक हो सकता था। यतोहि जो कारण में गुण, कर्मादि होंगे वही कार्य में दिखाई देते हैं। परन्तु त्रैतवाद की वकालत करते हुए ईश्वर और जीव का एक ही स्वरूप मानना परस्पर विरोध की बात है।

एक स्थान पर (ब्रह्मलोक-परमधाम में) स्थित बिन्दुस्वरूप परमात्मा अनन्त लोक-लोकान्तरों का निर्माण और अपने-अपने स्थान पर निश्चित नियमों के अनुसार गति करवाना अर्थात् उनका धारण करना एवं समस्त प्राणिजगत् का पालन-पोषण करना, उनको कर्मफल देना आदि-आदि कार्य नहीं कर सकता। इतना ही नहीं अतिसूक्ष्म परमाणुओं में भी गति उत्पन्न करना और केन्द्र के आकर्षण-विकर्षण की शक्ति पैदा करना, एक सुई की नोक के सदृश रूपवाला नहीं कर सकता। क्योंकि परमाणु के अन्दर गति पैदा करना उसी के सामर्थ्य में होगा जो उससे भी सूक्ष्म वा उसमें व्यापक होगा और अनन्त ब्रह्माण्ड को धारण करना भी वही कर सकता है जो कण-कण में व्यापक हो रहा है। पर लेखक ने यहां एक चतुराई दिखाई कि **परमात्मा सर्वव्यापी नहीं है अपितु उसकी शक्ति सर्वव्यापी है, जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वव्याप्य है, परन्तु सूर्य सर्वव्यापी नहीं है।** वैसे ही मोमबत्ती आदि का उदाहरण देकर अपने को बुद्धि का शत्रु सिद्ध कर दिया। यह तर्क लगता तो बड़ा सुन्दर और युक्ति संगत सा है पर उतना ही खोखला है। इसका उत्तर यह है कि—एक कमरे में पर्याप्त प्रकाश के लिए ६० वोल्टेज बल्ब की आवश्यकता है। परन्तु एक सभाभवन (जिसमें सैकड़ों व्यक्ति बैठ सकते हों) में भी एक ६० वोल्टेज बल्ब पर्याप्त नहीं रहेगा, अपितु अधिक वोल्टेज के बहुत से बल्बों की आवश्यकता रहती है। कहने का मतलब है—किसी भी चीज के सामर्थ्य के अनुसार कुछ दूर तक ही उसकी शक्ति कार्य करती है। एक छोटे से कमरे के लिए मोमबत्ती पर्याप्त है तो एक भवन के लिए अधिक शक्तिशाली बल्ब पर्याप्त होते हैं। इसी प्रकार एक सौर कुटुम्ब के लिए एक सूर्य की आवश्यकता है। पर एक मोमबत्ती सारे लोकों को प्रकाश नहीं दे सकती अर्थात् जिसमें जितने प्रकाश वा कार्य की आवश्यकता है उसमें उतने ही प्रकाशक वा शक्ति की आवश्यकता है। इसलिए अनन्त ब्रह्माण्ड में जितने महत्कार्य को सम्पन्न करना है उतने ही अनन्त शक्तिशाली सर्वव्यापक की आवश्यकता रहती है। कितना ही बड़ा शक्तिमान् हो एकदेशीय की शक्ति अनन्त नहीं हो सकती। यदि होती तो आपके परम धामस्थ ईश्वर को सतयुग के देव-देवताओं को कलियुग में भी देव-देवता पद दिलाने के लिए नर तन की अनिवार्यता क्यों पड़ी? अतः सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही अनन्त ब्रह्माण्ड का धारण कर सकता है, न कि ब्रह्मलोक में एक स्थान पर पड़ा रहने वाला बिन्दुस्वरूप।

सम्प्रति मैं कुछ ऐसे प्रमाण देता हूँ जहां यह बताया गया है कि ईश्वर कण-कण में व्यापक है, सर्वान्तर्यामी है, एकदेशी (ब्रह्मलोकस्थ) नहीं। (गीता एवं पुराण को आप प्रामाणिक मानते हैं। अतः उसके भी प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ)—**"सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।** (गीता—१३।१३;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वेताश्वतर० ३।१६) (यह श्लोक थोड़े पाठभेद से वायुपुराण में भी है– सर्वत्र पाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः। सर्वतः श्रुति···।।', '**सर्वतः पाणिपादात्ता सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः। सर्वतः श्रुतिमत्येषा सर्वमावृत्य तिष्ठति।।** (गुह्यकाल्युपनिषद्–४८)।। "**विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः।।** (यजु० १७।१९) इन सब में यह स्पष्ट हो रहा है कि सब लोकों में व्यापक होकर ईश्वर विराजमान है। यहां यह शङ्का नहीं करनी चाहिए कि चक्षु, मुख, हस्त, पाद आदि साकार में होते हैं, अतः ईश्वर साकार है। ऐसा समझना नितान्त भूल होगी क्योंकि यहाँ सर्वतः, विश्वतः, सर्वत्र शब्दों का प्रयोग किया गया है। चाहे कोई कितना ही बड़ा शक्तिशाली हो, वह सहस्रों, लाखों, करोड़ों, अरबों अथवा असंख्य मुखादि अवयव वाला नहीं हो सकता है। यदि सम्भव मान लें तो भी उन्हें जहां जिस ओर मुख है, वहां उस ओर पादादि नहीं रहेंगे और जहां पैरादि रहेंगे वहां आँख, कान आदि नहीं हो सकते। अतः प्रयुक्त सर्वत्र आदि शब्द व्यर्थ होंगे। यहां तो लौकिक भाषा का प्रयोग करते हुए अलौकिक रूप का वर्णन किया गया है। इससे यही सिद्ध होगा कि ईश्वर साकार अवयवों वाला नहीं अपितु सर्वत्र और सब ओर विद्यमान होकर देखने, सुनने आदि कार्य करता है। तद्यथा–

अपाणिपादो जवनो गृहीता, पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः।
(श्वे० ३।१८)

अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोतियः।
(शिव०पु० ४।८७)

और देखिये सर्वव्यापक के विषय में–

सर्वं तत्र सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वतः।
(शि०पु० ४।४६)

तिलेषु वा यथा तैलं दध्नि वा सर्पिरर्पितम्।
यथापः स्रोतसि व्याप्तो यथारण्यः हुताशनः।।
(शि०पु० ४।७४)

यहां तो जैसे तिलों में तेल, दही में घृत, स्रोत में जल, अरणि में अग्नि व्यापक है वैसे ही ईश्वर को कण-कण में व्यापक बताया है।

चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परमात्मकम्।
तेवः सर्वत्रगं नित्य··· (देवी०भा०स्क० ३। अ.७। १२)

'तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।
(यजु० ४०।५)

'बहिरन्तश्च भूतानां अचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।
(गीता–१३।१५)

अविभक्तञ्च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
(गी० १३।१६)

यहां स्पष्ट है कि ईश्वर अविभक्त है, अखण्डित है और दूर से भी दूर एवं निकटतम भी है। पर आपका ईश्वर भूलोकस्थ मनुष्यों से भयभीत होकर परम धाम में रहता है। और देखिये–'**ओ३म् खं ब्रह्म**' (य० ४०।१७) यहां तो वेद स्वयम् आकाश के सदृश व्यापक बता रहा है।

लेखक लिखते हैं कि–"**व्याप धातु परमात्मा के साथ लगाना ठीक नहीं है, उसकी शक्ति के साथ ही ठीक है। परमात्मा के साथ तो विश् धातु का प्रयोग होना चाहिए।**" यह तर्क भी अनुचित ही है। परमात्मा एकदेशी नहीं, सर्वव्यापक है, यह ऊपर सिद्ध कर चुका हूँ। अतः व्याप धातु परमात्मा के साथ ही लगेगा। यदि वि+आप्लृ धातु को उसकी शक्ति के साथ लगाते हो तो जहां ईश्वर को सर्वत्र निवास करने वाला बताया गया है, वहां 'वस, निवासे' धातु किसके साथ लगेगा? यहां तो परमात्मा का निवास ही अर्थ लगेगा; न कि उसकी शक्तिमात्र का निवास–('**ईशावास्यमिदं सर्वं**···यजु० ४०।१)। इसी प्रकार गीता (१८। ६१) आदि में प्रयुक्त स्था धातु (तिष्ठति) की भी व्यवस्था जानें।

यदि दुर्जनतोषन्याय से मान भी लें कि परम पिता परमात्मा परम धाम अर्थात् ब्रह्मलोक में रहता है। यह भी सभी सुधी मनुष्यों के लिए उसी प्रकार बहिष्कार के योग्य है जैसे पाताल लोक के अमेरिकन एवं पाकिस्तान के मुसलमान हैं। क्योंकि परदेशी लोग कदापि हितकारी नहीं होते हैं, परन्तु कालकूट काले नाग के तुल्य अविश्वसनीय होते हैं। लेखक ने लेख के अन्त में लिखा है कि–'**सब को ज्ञान देकर, पवित्र बनाकर, गुणों का धारण कराकर वह परमात्मा अपने रचे हुए ज्ञानयज्ञ को समाप्त करता है। और ये आत्माएँ सतयुग में देव–देवता पद प्राप्त करती हैं। अतः·····इसे उसकी वन्दना करनी चाहिए तभी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णतया सिद्धि प्राप्त होगी, सफलता प्राप्त होगी।'' कोई भी विवेकी तपस्वी यह नहीं चाहता कि योग व ईश्वर की उपासना करके देव-देवता पद को प्राप्त हो जाऊँ। परन्तु सभी योगी यही कामना करते हैं कि– हम इस जन्म-मरण के चक्र से, देह रूपी नरक से हटकर उस आनन्दमय भण्डार का अनुभव करें, जो कि ईश्वरीय परम कल्याणी वाणी वेद का उपदेश है।

सर्वव्यापी को सुनने के लिए कान की, बोलने के लिए वाणी की, चलने के लिए पैर की आवश्यकता नहीं रहती। परमेश्वर को छोड़िये जीवात्मा को ही इन साधनों की अपने लिए आवश्यकता नहीं रहती। मनुष्य के कान अपने शब्दों को सुनने के लिए नहीं, वैसे वाणी को समझें। मनुष्य तो आत्मा में (अन्दर) ही विचार कर ग्रहण भी कर लेता है। इसके लिए कान आदि की जरूरत नहीं है। वैसे ही किसी चीज को उठाने के लिए हाथ की आवश्यकता है, पर हाथ को उठाने वा हिलाने के लिए आत्मा को दूसरे हाथ की आवश्यकता नहीं रहती है। जब अपने अन्दर की क्रिया के लिए आत्मा को इन उपकरणों की जरूरत नहीं है तो सर्वव्यापी को क्यों आवश्यकता पड़ेगी। ज्ञान सुनने के लिए सर्वव्यापी कैसे आयेगा? ऐसा प्रश्न करना आप की अज्ञानता है।

''त्रैतवाद में आत्मा, परमात्मा और प्रकृति की इन तीनों शक्तियों को मिलाकर ही उसे परमेश्वर कहा जाता है।'' इस प्रकार बिना प्रमाण के उन्मत्तों के सदृश प्रलाप करना, व्यर्थ प्रतिज्ञा करना लेखक को कदापि शोभनीय नहीं होगा। यदि साहस हो तो आप इसको सप्रमाण सिद्ध करके दिखा दीजिये कि 'इन तीनों शक्तियों का संयोग ही परमेश्वर है। परन्तु आपको यह ध्यान रहना चाहिए कि केवल वेद ही नहीं अपितु पुराण भी कह रहे हैं कि परमात्मा किसे कहते हैं–**'चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परमात्मकम्।'** (देवी॰भा॰)

और देखिये–**पिता पुत्र में कैसे व्याप्त रहता है? इस प्रकार के प्रश्न करना विवेकहीन बालक की सी बात है। पिता-पुत्र, माता-पुत्री, गुरु-शिष्य आदि दो पृथक्-पृथक् एकदेशीय सत्ताएँ हैं। कर्त्ता को कार्य में व्यापक होने का विचार करना शेखचिल्ली जैसे लोगों का ही कार्य है। सृष्टि दो प्रकार की होती है। एक तो वह है जो कर्ता अपने से बाहर की रचना करता है, जैसे स्वर्णकार आभूषण बनाता** है। परन्तु वह स्वर्ण में व्यापक होकर नहीं करता। दूसरी सृष्टि भीतर से होती है। जैसे गर्भ में बालक की रचना आदि। अन्दर से होने वाली रचना सर्वान्तर्यामी (सर्वव्यापक) ही कर सकता है, न कि एकदेशी। सृष्टि के आदि में इस पृथिवी पर सर्वव्यापक परम पिता ने ही सारे प्राणिजगत् का सृजन किया था, जिसको अमैथुनी सृष्टि कहते हैं और वह सृष्टि आभ्यन्तरिक क्रिया है, जो कि सर्वान्तर्यामी से ही सम्पन्न हो सकती है। सभी प्राणियों को उत्पन्न करने के कारण से ही उसे **'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।'**......आदि कहते हैं। गीता आपके लिए प्रामाणिक है, अत: गीता के माध्यम से ही बताता हूँ। देखिये–**'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'** (१८।६१) अर्थात्–हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित है। इतने स्पष्ट शब्दों में स्वयं श्रीकृष्ण कह रहे हैं वह प्राणिमात्र के हृदय देश में विद्यमान है, तो आपको सर्प, सुअर आदि में ईश्वर की सत्ता मानने में ऐतराज क्यों है? यहां यह भी ध्यातव्य है कि ईश्वर सब प्राणियों में भी व्यापक है, न कि केवल ब्रह्मलोक में है। और देखिये–**'सर्वव्यापी सर्वभूतानां हृदये सन्निविष्टः।'** (शाण्डिल्योपनिषत् ३।१।३)। शुद्धाशुद्ध तो मनुष्य की बुद्धि वा मन के लिए है। आत्मा और परमात्मा के लिए अपवित्रता नहीं रहती है। मान लो कि एक मनुष्य को कर्मफलवश सर्प, सुअर आदि योनियों में जाना पड़े तो क्या वह मनुष्य जन्म लेते ही आत्महत्या कर लेगा? उस समय के खाद्य पदार्थों को (जिसको सम्प्रति मनुष्य अति घृणित समझता है) त्याग कर भूखे रहेगा? यदि उन योनियों में भी जीवात्मा उन पदार्थों को घृणित समझता है तो कदापि न खाता; जैसे गाय आदि नहीं खाते।

जो आपने गीता के और वेद के प्रमाण दिये हैं वे सब भस्म में घृत की आहुति के तुल्य व्यर्थ हैं। क्योंकि गीता हमारे लिए कोई प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। रही वेद मन्त्रों की बात, जिन मन्त्रों को देकर उनका अर्थ दिया हुआ है। वह कपोल कल्पित से युक्त मनमानी होने से प्रामाणिक नहीं माना जायेगा। भला! जिनको सामान्य व्याकरण का ज्ञान नहीं है, उनके द्वारा किया गया अर्थ कौन बुद्धिमान् प्रामाणिक मानेगा? क्योंकि आपने लिखा है कि–**'किसी धातु शब्द को तृच् प्रत्यय करके कर्त्ता शब्द बनाया जाता है।'** पर देखिये कृञ् धातु से ण्वुल् (अक) प्रत्यय करके 'कारक:' (करने वाला)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनता है; न कि कर्त्ता शब्द। इस प्रकार व्याकरण की अनभिज्ञता की अवस्था में आपसे वेदमन्त्रों की यथार्थता पर विवेचन करना व्यर्थ में समय गंवाना है और कुछ नहीं।

अब रही और एक बात–फिर से देव–देवता पद प्राप्त कराने के लिए आपके बिन्दुस्वरूप ईश्वर को किसी नर तन की अनिवार्यता है। अर्थात् धर्म–ग्लानि के समय धर्म की रक्षा के लिए परम धामस्थ विदेशी ईश्वर को किसी मनुष्य में प्रवेश करना अत्यावश्यक है। क्योंकि वह निराकार, जन्म–मरण से रहित है, ऐसा आपने हेतु दिया। पर यह भी भांग पीने वाले की सी बात है। क्योंकि जिसको ज्योति:स्वरूप, बिन्दुस्वरूप, सूई की नोक के सदृश परमाणुरूप मानते हो, उसी को ही निराकार कहना बेसिरपैर की बात है। जिसका कोई आकार नहीं है, वह कहां से? कहां पर? किस (रूप के) माध्यम से मानव–मानव के शरीर में प्रवेश करेगा? क्या मनुष्य के शरीर में प्रवेश करने से वात, पित्त, कफ आदि के विकृतिजन्य क्लेशों का दु:ख नहीं होगा? जो परम धाम में रहकर अपनी सर्वत्र व्याप्य शक्ति से सारे ब्रह्माण्ड की रचना करता है तो धर्म की रक्षा के लिए अथवा मनुष्यों को देव–देवता पद दिलाने के लिए अवतरित होने की माथापच्ची क्यों करनी पड़ेगी? आपने लिखा है कि **"परमात्मा हमारे दु:ख दूर करने व ज्ञान देने अवश्य आता है। (यदा–यदा हि धर्मस्य……गी० ४।७)"** यदि इस गीता के वचन को ईश्वर के अवतरित होने की कसौटी मानते हो, तो यह सिद्ध करने का साहस कीजिये कि–इस भारत में ईश्वर के जितने अवतार हुए हैं, क्या उनमें एक ने भी ज्ञान का प्रकाश किया था? क्या धर्म की रक्षा की थी? क्या अधर्म का नाश किया? क्या भारत में ही सब से अधिक पाप होता रहा था या हो रहा है, जिससे भारत की रक्षा के लिए सारे अवतार यहीं पर हुए हैं? इन प्रश्नों का उत्तर आप से त्रिकाल में भी नहीं बनेगा।

और विचारिये कि यदि परमात्मा अवतार लेके आता है तो उसे सामान्य मनुष्य ही नहीं अपितु पशु भी देख लेते हैं। क्योंकि 'पश्यतीति पशु:'–जो देखता है वह पशु कहलाता है। फिर वेद आदियों में उसे योग, तप, विद्या, सत्य और स्वाध्याय आदि के द्वारा देखे जाने योग्य लिखा है। क्यों? जैसे–**'तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा:।'** (य० ३१।१९); **'तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा:।** (कठ० २।२।१३); वे० ६।१२); (यहां तो स्पष्ट शब्दों में ईश्वर को आत्मस्थ कहा है, न कि परम धामस्थ)। **'तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा:।'** (मु० १।१।६)। और पुराणों में भी देख लीजिये–**'सत्येन तपसा चैव नित्यमुक्तोऽनुपश्यति।** (शि०पु० ४।७५); **'न ह्ययं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियै:''। मनसा तु प्रदीपेन महानात्मा प्रकाशते।।** (महा०भा० शान्ति० अ० २३९।१६) **'स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते'।। 'तदीक्षणाय स्वाध्याय-चक्षुर्योगस्तथापर:।'** (विष्णु०पु०अं० ६। अ०६। २,३)

जो स्थान विशेष में होगा वह सर्वव्यापी नहीं होगा, जो सर्वव्यापी नहीं होगा वह परिच्छिन्न होगा, जो परिच्छिन्न होगा उसका भौतिक शरीर होगा। जिसका भौतिक शरीर होगा उसमें जन्म तथा मृत्यु भी होगी। अत: आपका ज्योतिस्वरूप ईश्वर स्थान विशेष में रहने वाला होने के कारण उसे जन्म–मरण होगा। फलत: वह ईश्वर सिद्ध नहीं होगा।

परम पिता परमेश्वर को ज्योति:स्वरूप और ब्रह्मलोकस्थ आदि मानकर उसकी उपासना करना महापाप कर्म है। क्योंकि–**"यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्यु:।"** (यजु० २५।१३)–जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दु:ख का हेतु है। (म०दया० सरस्वती)।

न विष्णूपासना नित्या वेदोक्ता नैव कुत्रचित्।
न विष्णुदीक्षा नित्यास्ति शिवस्यापि तथैव च।।
गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदै: समीरिता।
यया विना त्वध:पातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा।।
शिवोपास्ति परो विप्रो नरकं याति सर्वथा।।
(देवी भा०स्क० १२। अ०८। ८८, ८९, ९२)

आपको हमारा परामर्श है कि शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि साकार की उपासना करके नरक में न जाकर वेदोक्त गायत्र्युपासना का अनुष्ठान कीजिये और सत्य ज्ञान की वृद्धि करते हुए उस आनन्दमय सर्वव्यापक ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना कीजिये एवं मोक्ष रूपी स्वर्ग को प्राप्त कीजिये। यही हमारी मङ्गलमय कामना है।

"धियो यो न: प्रचोदयात्।"

–ब्रह्मचारी वेदमुनि आर्य
[पाणिनिशाला (प्राच्य वैदिक विद्यानुसन्धान पीठ)
तिलोरा, पुष्कर क्षेत्र, अजमेर (राज०)]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जून, ९६ से आगे

सद्बुद्धि की कामना गायत्री मन्त्र की व्याख्या

(भगवान् देव चैतन्य)

भर्ग का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—(भर्गः) शुद्ध स्वरूप और पवित्र करनेहारा चेतन ब्रह्म स्वरूप। और वह शुद्ध विज्ञान स्वरूप है। वास्तव में परमात्मा ही परम पावन, सुमहान् और विज्ञानवेत्ता है। महर्षि ने पंच-महायज्ञविधि में लिखा है—**यन्निरुपद्रवं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरहितं पक्वं परमार्थविज्ञानस्वरूपं तद् भर्गः।** अर्थात् जो उपद्रव रहित, पापरहित, निर्गुण, शुद्ध, सकल दोष शून्य, पक्व, परमार्थी विज्ञानस्वरूप है, वह भर्ग है। भर्ग शब्द का यहां पर महर्षि ने बहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया है। निरुक्तकार ने भी भर्ग का लगभग ऐसा ही वर्णन किया है—'**भर्गस्तेजः प्रकाशः प्रकाशोत्तानम्, यन्निरुपद्रवं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरहितं पक्वं परमार्थविज्ञानस्वरूपम् तद् भर्गः।** - भर्ग तेज है, प्रकाश है और प्रकाशज्ञान रूप है, जो उपद्रवरहित, निर्गुण, शुद्ध, सकलदोषरहित, परिपक्व, परमार्थविज्ञानस्वरूप है, वही भर्ग है। भर्ग परमात्मा का मलरहित तेजःस्वरूप है। साधक को परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे परमात्मा हमें भी आप कृपा करके मलरहित और निष्पाप बनाने की कृपा करें।

वास्तव में मलसहित होना ही पाप और दुःख का कारण है। यदि व्यक्ति सुखी होना चाहता है तो उसे मलरहित होना ही पड़ेगा। तेज भी उसी में आता है जो मलरहित है। इसलिए व्यक्ति को प्रतिक्षण इसी प्रयत्न में लगे रहना चाहिए कि मैं मलरहित और पवित्र बन जाऊँ। परमात्मा मलरिहत है उसके पास हम मैले-कुचैले बनकर भला कैसे जाएं। ये संसार की समस्त विषय वासनाएं ही वह मैल है जिससे हमें स्वयं को मुक्त करना होगा। भर्ग शब्द हमें पवित्रता की ओर ले जाने की प्रेरणा देता है। अज्ञान के कारण ही व्यक्ति किसी भी पापकर्म की ओर अग्रसर होता है अतः सर्वप्रथम अपनी अज्ञानता को समाप्त करना होगा। सब कष्टों और क्लेशों के पीछे यह अज्ञान ही मुख्य रूप से होता है। योगदर्शन में—'**अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।**' अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पांच क्लेश बताए गए हैं। इनमें से महर्षि दयानन्द जी ने अविद्या को ही शेष चार का भी कारण माना है। साधक के लिए यह अविद्या ही पवित्रता प्राप्त करने में सब से बड़ी बाधा है अतः अविद्या का नाश करना परमावश्यक है। जब अज्ञान और अविद्या का नाश हो जाता है तो उस साधक को सच्चा सुख प्राप्त हो जाता है क्योंकि उसे यह पता चल जाता है कि वास्तव में सुख और शान्ति इन भौतिक पदार्थों में नहीं बल्कि आध्यात्मिकता और उस प्रभु की शरण में है।

परमात्मा से मलरहित होने के लिए निरन्तर प्रार्थना करते रहना चाहिए क्योंकि वही निश्चित रूप से सब प्रकार की बुराइयों को दूर करने वाला है। वेद में इस सम्बन्ध में बड़ी सुन्दर प्रार्थना की गई है—

दौःष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि॥
(अथर्व० ४।१७।५)

हे परमात्मा परमेश्वर हम सब बुरे विचारों, बुरे आचारों, धार्मिक विघ्नों, निर्बलता, दरिद्रता तथा बुरा कहलाने वाली प्रत्येक बुराई को अपने जीवन से दूर करें।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद् दधातु। शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥
(यजु० ३६।२)

मेरे नेत्रों में हृदय में अथवा मन में जो भी न्यूनता या दोष हैं, वेद-वाणी का पति उसे पूर्ण करे और सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुवनों का पति परमात्मा हम सब का कल्याण करे॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
(ऋ० १।८९।८)

हम कानों से सदा भद्र वचन सुनें, नेत्रों से अच्छा देखें, शुभ कर्मों के रक्षक बनकर अपने स्वस्थ शरीर से परमात्मा, माता-पिता आदि गुरुजनों तथा सन्तों की सेवाकर प्रशंसित आयु को भोगें।

भर्ग का यही भाव है कि हम मन, वचन और कर्म से स्वयं को पवित्र बनाएं क्योंकि अन्ततः यह पवित्रता ही हमें सब प्रकार की सिद्धियां देने वाली है। पवित्रता का सृजन करने वाला व्यक्ति कभी भी इस संसार से पराजित होकर नहीं जायेगा। साधक को निरन्तर इस पावनता का सृजन अपने जीवन में करते रहना चाहिए।

'देवस्य'

महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—(देवस्य) 'यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः। जो सर्व सुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं तथा जो सब के आत्माओं का प्रकाश करने वाला और सब सुखों का दाता है।' वह परम पिता परमात्मा ही वास्तव में सब के हृदयों को प्रकाशित करने वाला और सब प्रकार के सुखों का देने वाला है इसलिए उसी की कामना सभी को करनी चाहिए।

इस सम्बन्ध में निरुक्तकार का कथन है—

महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।
कर्मजन्मानः आत्मजन्मानः आत्मैवेषं रथो भवति।
आत्माश्वः आत्मायुधम् आत्मेषवः सर्वदेवस्य देवस्य॥
(७।१।४)

अर्थात् एक परमात्मा देव ही मुख्य देव है। सर्वशक्तिमान् और ऐश्वर्यों से युक्त होने के कारण अनेकों नामों और गुणों से उसकी स्तुति की जाती है, अन्य सभी देव इसी महादेव परमात्मा के प्रत्यंग रूप हैं। उनका इसी में समाहार हो जाता है। उस एक अद्वितीय परमेश्वर के ही प्रकाश, धारण, उत्पादन करने से वे सब व्यवहार के देव प्रकाशित हो रहे हैं, इनका जन्म और कर्म ईश्वर के सामर्थ्य से होता है। रथ अर्थात् रमण का स्थान, अश्व अर्थात् शीघ्र सुख प्राप्ति का कारण, गमनहेतु, आयुध-शत्रुओं का नाश करके विजय प्राप्त करानेहारा, इषु-बाण के समान सब दुष्ट गुणों और दुःखों का छेदन करने वाला शस्त्र है, वही परमात्मा है। परमात्मा ने जितना-जितना जिस-जिस में दिव्य गुण रखा है उतना-उतना ही उन द्रव्यों में देवपन है, अधिक नहीं। इस प्रकार अन्य सब देवता परमेश्वर-वाची ही हैं।

परमात्मा की वाणी वेद में भी कहा गया है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋ० १०।१६४।४६)

अर्थात् विद्वान् लोग उसी एक सत्ता को इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि आदि अनेक नामों से पुकारते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने प्रार्थना-मन्त्रों में उसी की उपासना करने का आग्रह किया है—

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० २५।१३)

जो आत्म-ज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल को देनेहारा, जिसकी सब लोग उपासना करते हैं, और जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्षसुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है। हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

वह परम पिता परमात्मा हमें सब प्रकार से सुख देने वाला है। गायत्री मन्त्र के उपासक को देवस्य शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उसी परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करने की प्रेरणा लेकर अपने आप को सब प्रकार की दिव्यताओं से परिपूर्ण करने के लिए सर्वदा प्रयासरत रहना चाहिए। समस्त दिव्यताओं का स्रोत वह परमात्मा ही है अतः हृदय की गहराइयों से उसकी उपासना करनी चाहिए। उसी के गुणों का मनन और चिन्तन करना चाहिए। अन्य समस्त जड़ व चेतन देवताओं से भी प्रेरणा लेकर हमें अपने भीतर दिव्यताओं का सृजन करना चाहिए। यदि हम दिव्य जीवन बनाना चाहते हैं तो इसके लिए आवश्यक है कि—**आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोळ्हुम्।** (ऋ० १०।२।३) हमें देवताओं के मार्ग पर चलने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। अपना, समाज का या राष्ट्र और समूचे विश्व का यदि कल्याण कर सकते हैं तो दिव्य मानव ही कर सकते हैं। इसलिए स्वयं को देवता बनाने का प्रयत्न करके औरों के भीतर भी दिव्यता का ही प्रचार और प्रसार करने में अपना जीवन लगाने की आवश्यकता है। देवताओं का मार्ग ही पुण्य का मार्ग है। क्योंकि—

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जने जने।
सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः॥

(ऋ० ५।६७।४)

देवता निश्चित रूप से सत्य के अनुष्ठाता होते हैं। वे स्वयम् ऋतु से मिलते रहते हैं और औरों के लिए भी ऋत का ही प्रचार करते हैं। प्रत्येक को अच्छी दृष्टि से देखते हैं और पापियों पर भी उदारता दिखाते हैं।

परमात्मा के साथ-साथ विद्वानों का भी सम्मान करना चाहिए और उनके सम्पर्क में आकर अपने भीतर सद्गुणों का संचार करने में सदा सन्नद्ध रहना चाहिए। वास्तव में जीवन तो उसी का है जो दिव्यता से परिपूर्ण है। परमात्मा भी उसी का उद्धार करते हैं। वेद में एक मन्त्र आता है—

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम्॥

(अथर्व० ५।१८।१३)

जो मनुष्य विद्वानों को सताने वाला है वह विष को निगलने के समान केवल हाड़ मांस का पिंजर रह जाता है, जो ईश्वर के प्यारे भक्त विद्वान् को हानि पहुंचाता है वह संसार में पितृयाण को प्राप्त नहीं होता।

इस मन्त्र में दो प्रकार के मनुष्यों का वर्णन किया है। एक तो हैं देवपीयु और दूसरे हैं देवबन्धु। देवपीयु हैं परमात्मा, विद्वान् या दिव्यगुणों से घृणा करने वाले और देवबन्धु हैं परमात्मा, विद्वानों और दिव्य गुणों से प्यार करने वाले। इनमें से देवबन्धु तो पितृयाण को प्राप्त हो जाते हैं मगर देवपीयु अर्थात् परमात्मा, विद्वानों और दिव्य गुणों से दूर भागने वाले अधोगति को प्राप्त होते हैं। देवपीयु होना तो ऐसा है मानो वे लोग विष का सेवन कर रहे हैं और विष का सेवन करने वालों का हाल क्या होता है इसके बारे में मन्त्र में कहा गया है कि ऐसा व्यक्ति संसार में मात्र हड्डियों का पिंजर ही रह जाता है। वह तो चलती फिरती लाश के ही समान है। उसे मानव कहलाने का बिल्कुल भी अधिकार नहीं है। गायत्री उपासकों को तो देवबन्धु बनना है यही भाव इस देवस्य शब्द का है।

'धीमहि'

धीमहि शब्द बहुत ही अधिक महत्त्व का है। महर्षि दयानन्द जी इसके बारे में लिखते हैं— (धीमहि) 'धरेमहि'-धारण करें और अन्यत्र लिखते हैं—'हम लोग सदा प्रेम भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें।'

महर्षि दयानन्द का स्पष्ट आदेश है कि जो-जो गुण परमात्मा के ऊपर गिनाए गए हैं उन्हें हम अपने भीतर धारण करें अर्थात् आचरण में लाएं। बड़ी प्रेम-भक्ति के साथ अपनी आत्मा में उन गुणों का समावेश करें। धारणा के बाद ही साधक ध्यान की स्थिति को प्राप्त करता है। योगदर्शन में लिखा है—**देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।** ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना प्रकरण में इस सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं—'(देशबन्ध) जब उपासना योग के पूर्वोक्त पांचों अंग सिद्ध हो जाते हैं तब उसका छठा अंग धारणा भी यथावत् प्राप्त होती है। (धारणा) उसको कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है उसका विचार करना।' इसी सम्बन्ध में वे अन्यत्र लिखते हैं—'नाभि, हृदय, मूर्धाज्योति अर्थात् नेत्र, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादि देशों के बीच में चित्त को योगी धारण करे। तथा बाह्य विषय जैसा कि ओंकार वा गायत्री मन्त्र हैं इनमें चित्त लगावे। क्योंकि तज्जपस्तदर्थ-भावनम्।' (यो० १।२८) यह सूत्र है योग का। इसका योगी जप अर्थात् चित्त से पुनः पुनः आवृत्ति करे और इसका अर्थ जो ईश्वर उसको हृदय में विचारे।' (दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह)

महर्षि के उपरोक्त वक्तव्य से स्पष्ट है कि धारण करने का भाव है, हृदय की गहराइयों से विचार करना। साधक का लक्ष्य है परमात्मा को प्राप्त करना। परमात्मा को पाने की ही यात्रा में धारणा की सिद्धि के बाद ध्यान आता है। ध्यान के बारे में योगदर्शन कहता है—**तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।** जो धारणा की है उसमें चित्तवृत्ति का एक सा बना रहना ध्यान है। इस सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं—'उन देशों में अर्थात् नाभि आदिकों में ध्येय जो आत्मा उस आलम्बन की और चित्त की एकतानता अर्थात् परस्पर दोनों की एकता; चित्त आत्मा से भिन्न न रहे तथा आत्मा चित्त से पृथक् न रहे, उसका नाम सदृश प्रवाह। जब चित्त चेतन से ही युक्त रहे, अन्य कोई-कोई पदार्थान्तर का स्मरण न रहे, तब जानना कि ध्यान ठीक हुआ।' (दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह)। इसी सम्बन्ध में ऋ०भा०भू० के उपासना प्रकरण में वे लिखते हैं—'(तत्र प्रत्ययै०) धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम-भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना, इसी का नाम ध्यान है। इन सात अंगों का फल समाधि है।'

महर्षि दयानन्द जी के उपरोक्त शब्द किसी विशेष व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखते हैं अर्थात् 'धीमहि' शब्द का भाव साधक को भली प्रकार से ज्ञात हो गया होगा। सविता, भर्गः, वरेण्यम् और देवः इन शब्दों के ही भावों में डूब जाने की आवश्यकता है। परमात्मा के इन गुणों को आत्मसात् करके धारणा के बाद ध्यान में प्रवेश करने की आवश्यकता है। ध्यानावस्था को प्राप्त करने के लिए धारणा का परिपक्व होना आवश्यक है। जब धारणा के द्वारा साधक चित्त की एकतानता बनाए रखने में समर्थ हो जाएगा तो उसका ध्यान लगना निश्चित है। परमात्मा के स्मरण के अतिरिक्त 'पदार्थान्तर का स्मरण न रहे, तब जानना कि ध्यान ठीक हुआ।' महर्षि जी के इन शब्दों की गहनता को गहराई से समझने की आवश्यकता है। इस स्थिति को लाने के लिए ही तो धीमहि के द्वारा प्रभु के गुण, कर्म और स्वभाव को धारण करना है। यहां पर एक बार किन शब्दों के अर्थ का हृदयगम करना है इसकी पुनः चर्चा कर लें—(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा और ऐश्वर्य का देने वाला है, (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करने वाला और सब सुखों का दाता है, (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है, (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है, (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेम-भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। प्रेम-भक्ति के द्वारा उसे धारण करना है। मानव जीवन का परम लक्ष्य उस ब्रह्म की प्राप्ति ही है और गायत्री के माध्यम से भी साधक उसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सन्नद्ध होता है। वही परमात्मा समस्त बन्धनों को और कष्ट-क्लेशों को दूर करने वाला है। योग, भक्ति और साधना द्वारा उसे ही प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। धीमहि की स्थिति पर जब साधक पहुँचता है तो उसकी स्थिति व योग्यता ध्यान और समाधि तक जाने की हो जाती है। श्वेता० २-१५ में इस स्थिति का वर्णन करते हुए ऋषि कहता है—

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्ध ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

अर्थात् जब मनुष्य युक्त होकर आत्मतत्त्व के दीपक से ब्रह्मतत्त्व को देखता है, जो अजन्मा, निश्चल और

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब तत्त्वों से विशुद्ध हैं, तब इस देव को जानकर सब बन्धनों से छूट जाता है।

वेद में भी कहा है—

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्।
बृहद् ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥
(यजु० ११/३)

वह परमात्म देव उपासकों को अत्यन्त सुख देकर उनकी बुद्धि के साथ अपने आनन्दस्वरूप प्रकाश को करता है, तथा वही अन्तर्यामी परमात्मा अपनी कृपा से उनको युक्त करके उनकी आत्माओं से बहुत बड़े प्रकाश को प्रकट करता है। सब जगत् का पिता वही परमात्मा उपासकों को ज्ञान और आनन्द आदि से परिपूर्ण कर देता है।

गायत्री के अगले पाद में साधक जिस मांग को रखने जा रहा है, उसकी स्वीकृति अर्थात् सिद्धि के लिए यह धीमहि शब्द मानों टर्निंग प्वाईंट है। यह शब्द साधक को उपासना की व्यावहारिकता के साथ जोड़ता है। जब तक हम परमात्मा के गुणों और तेज आदि को धारण नहीं करते या धारण करने के योग्य नहीं बनते तब तक मानो उपासना की या न की एक बराबर है। तब तक जप किया या न किया एक बराबर है। गायत्री मन्त्र का पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए उपासना को व्यावहारिकता में लाने की आवश्यकता है और यही इस धीमहि का गूढ़ रहस्य है।

'धियो यो नः प्रचोदयात्।'

इस सम्बन्ध में महर्षि जी लिखते हैं— (यः) जगदीश्वरः' जो सविता देव परमात्मा (नः) 'अस्माकम्' हमारी (धियः) 'बुद्धि' - बुद्धियों को (प्रचोदयात्) 'प्रेरयेत्' प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

गायत्री के इस पद में जो मांग की गई है वह मानो अब तक की गई उपासना का फल है। धीमहि शब्द के बारे में लिखते हुए वे कहते हैं—हम लोग सदा प्रेम-भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें, किस प्रयोजन के लिए वह प्रयोजन है—धियो यो नः प्रचोदयात्। अर्थात् इसलिए हमने उपरोक्त उपासना की ताकि वह परमात्मा हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे। साधक ने अपने आप को अब तक की साधना से परिपक्व बना लिया है। उसने पात्रता ग्रहण कर ली है सो उस पर परमात्मा की कृपा की वर्षा अवश्यमेव होगी ही। मांग भी साधक बहुत ही अच्छी कर रहा है। उसने किसी प्रकार की भौतिक सम्पदा नहीं मांगी बल्कि जिस श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा वह सब प्रकार की भौतिक और आध्यात्मिक समृद्धियों को प्राप्त कर सकता है उस श्रेष्ठ बुद्धि की कामना की है। बुद्धि की महत्ता के ऊपर हमने पहले बहुत चर्चा कर ली है। जिस व्यक्ति के पास संसार में श्रेष्ठ बुद्धि हो उसके लिए भला इस संसार में क्या अप्राप्य रह सकता है? श्रेष्ठ बुद्धि ही व्यक्ति को धर्म के मार्ग पर ले जा सकती है। श्रेष्ठ बुद्धि ही व्यक्ति के सुख और दुःख का आधार है अर्थात् वह बुद्धि के द्वारा ही श्रेष्ठ कर्म करके अपने लिए सुखों का संचय कर सकता है। श्रेष्ठ बुद्धि ही उसे मुक्ति तक पहुंचाने में समर्थ है। विद्या और अविद्या की पहचान करके व्यक्ति बुद्धि के द्वारा ही अविद्या का त्याग और विद्या का ग्रहण कर सकता है। असत्य के त्यागने और सत्य को ग्रहण करने के लिए भी श्रेष्ठ बुद्धि की ही आवश्यकता है। बुद्धि ही व्यक्ति के लिए ज्ञानदात्री है और **विद्ययाऽमृतमश्नुते।** (यजु ४०।१४) ज्ञान से ही व्यक्ति अमर पद पा जाता है।

वेद में अनेक प्रार्थनाएं हैं जिनके माध्यम से परमात्मा से उत्तम बुद्धि की कामना की गई है—

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः।
ऋषयो भद्रां मेधां विदुस्तां मय्यावेशयामसि॥
(अथर्व० ६/१०८/३)

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥
(यजु० ३२/१४)

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मा मुझे उस उत्तम बुद्धि से बुद्धिमान् बना जिस बुद्धि को उत्तम कारीगर प्राप्त करते हैं और जिस बुद्धि को ऋषि लोग प्राप्त करते हैं, जिस मेधा बुद्धि को प्राणायाम के अभ्यासी प्राप्त करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उसी बुद्धि को हमें भी धारण करा। जिस बुद्धि की तत्त्वदर्शी, आत्मज्ञानी तथा रक्षक जन आराधना करते हैं मुझे भी वही बुद्धि देने की कृपा करो।

गायत्री के साधक को कैसी बुद्धि की कामना करनी चाहिए इसका उल्लेख इस प्रकार है—

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे॥
(अथर्व० ६।१०८।२)

अर्थात् मैं सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञानवाली, ब्रह्मज्ञानियों से सेवित, ऋषियों द्वारा प्रशंसित, ब्रह्मचारियों से सेवित, धारणावती बुद्धि को अपनी इन्द्रियों व दिव्य गुणों की रक्षा के लिए बुलाता हूँ।

हमारी सफलता और असफलता की कसौटी यह बुद्धि ही है। बुद्धि की सत्प्रेरणा के लिए ही गायत्री में मुख्य रूप से प्रार्थना की गई है। वह परमात्मा ही बुद्धि का प्रेरक है। महाभारत में लिखा है—

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या तु विभजन्ति तम्॥
यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति॥
(उद्योग पर्व ३४।८०।८१)

देवता दण्ड लेकर पशुरक्षक की भांति पुरुष की रक्षा नहीं करते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसे बुद्धि दे देते हैं, और जिसे असफल बनाना चाहते हैं उसकी बुद्धि पहले छीन लेते हैं। इसीलिए गायत्री मन्त्र में भी उस प्रभु से सद्बुद्धि की कामना की गई है। सद्बुद्धि के बराबर और कोई उन्नति का साधन नहीं है। इसी से व्यक्ति अपनी सर्वांगीण उन्नति करने में समर्थ हो सकता है। महर्षि दयानन्द जी गायत्री का अर्थ करते हुए अन्त में लिखते हैं—'जो सकल सविता देव परमेश्वर है, वह हमारी बुद्धियों को कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे इसलिए सब लोगों को चाहिए कि सत् चित् आनन्द स्वरूप नित्य ज्ञानी, नित्य मुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु सब जगत् के जनक और धारण करने और उपासना के योग्य परमेश्वर ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्यदेह रूप वृक्ष के चार फल हैं वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हों।'

गायत्री मन्त्र के विधिवत् जप, मनन और चिन्तन तथा तदनुसार अपने जीवन को बनाकर व्यक्ति निरन्तर प्रगति के सोपानों को चढ़ता हुआ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। मानव देह की महानता इसी में है कि हम इन पदार्थों की सिद्धि कर सकें। ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) में गायत्री मन्त्र के बाद महर्षि दयानन्द जी साधक को इन शब्दों से समर्पण करने का विधान करते हैं—

हे ईश्वर दयानिधे भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः॥ अर्थात् हे ईश्वर दयानिधे आप की कृपा से जो-जो उत्तम काम हम लोग करते हैं, वे सब आपके अर्पण हैं जिससे हम लोग आपको प्राप्त होके, धर्म—जो सत्य, न्याय का आचरण करना है, अर्थ—जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है। काम—जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष—जो दुःखों से छूट सदा आनन्द में रहना है, इन चार पदार्थों की सिद्धि हम को शीघ्र प्राप्त हो।

गायत्री मन्त्र को महर्षि ने इन चार फलों को प्राप्त करने का एक माध्यम बताया है तथा इसमें ज्ञान, कर्म तथा उपासना का अद्भुत संयोग भी है। इस रूप में गायत्री परमात्मा की उपासना के लिए एक महान् मन्त्र है जिसके माध्यम से एक नहीं अनेक महापुरुषों ने मानव जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करके अपने जीवन को धन्य बनाया है।

२१५/एस-३, सुन्दरनगर (हि०प्र०) १७४४०२

भूल-सुधार

मई मास (१९९६) के दयानन्दसन्देश में "प्रक्षेपरहित शकुनि-युधिष्ठिर द्यूत-क्रीडा" नामक एक लेख छपा है। हमें इसका अत्यन्त खेद है कि उसके लेखक का नाम प्रेस की गलती से रह गया है। इसके लेखक हैं भूतपूर्व प्रधानाचार्य श्री श्यौराजसिंह जी वर्मा, छपरावत (बुलन्दशहर)। कृपया पाठक इस आवश्यक त्रुटि का सुधारकर कृतार्थ करें।

राजवीर शास्त्री, *सम्पादक*

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दु' नाम कसौटी पर (३)
(यह नाम गर्व की नहीं, लज्जा की बात है)

—डॉ॰ वीरेन्द्र शर्मा, साधु आश्रम, होशिआरपुर (पंजाब)

गतांक से आगे

अतः मनुष्य-समाज को वर्णाश्रम-व्यवस्था के द्वारा सुव्यवस्थित करना एकदम अनिवार्य है, इसके बिना और कोई मार्ग नहीं है कि जिस से मनुष्य-समाज को सुखी तथा परमार्थी बनाया जा सके। यही कारण है कि वेदोक्त आर्यो का सामाजिक-धर्म वर्णाश्रमधर्म माना गया है और अहिंसा आदि दशलक्षणक धर्म को प्रत्येक वर्णी और प्रत्येक आश्रमी के लिए घोषित किया गया है[1]। इसी से मनुष्य-जन्म के अभीप्सित चार पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सिद्ध हो सकते हैं. अन्यथा नहीं।

इस प्रकार का यह सारा का सारा श्रेष्ठ अर्थ "आर्य" इस वैदिक नाम में सार-गर्भित रूप से विद्यमान है। हिन्दुम्मन्य लोगों को अभिमत "हिन्दु" नाम में क्या अर्थ रखा है? यदि हिन्दु शब्द के दूषित अर्थ को छोड़ दें तो भी एकमात्र अर्थ "भारतवासी" ही कहा जा सकता है। वह भी विदेशी फ़ारसवासियों की भाषा में ही होगा न कि भारतीय किसी भी भाषा-परम्परा में। जब यह भारतीय-भाषा का शब्द नहीं तो उसके शब्दकोश में इसका कोई अर्थ कैसे हो सकता है? सो, हिन्दुम्मन्य लोग चिन्तित हो गये तो अपनी-अपनी कल्पित भावना को लेकर इसे परिभाषित करने लगे। जैन और बौद्ध अथवा बौद्ध अन्य किन्हीं वेदनिन्दक नास्तिकों को अपने हिन्दु नामक कटघरे में रखने का इच्छुक नहीं हुआ तो हिन्दु की स्वकल्पित परिभाषा में "प्रामाण्यबुद्धि-र्वेदेषु" की शर्त लगा दी। परन्तु साथ ही भिन्न-भिन्न अनेक देवों की उपासना की बात करके वेद-प्रामाण्य की रस-चाशनी में पुराण-गोबर डालकर सारा गुड़ नष्ट-भ्रष्ट कर डाला[2]। किसी दूसरे ने जैन, बौद्ध वा अन्य नास्तिकों को भी हिन्दू के बाड़े में शामिल क[रने] की दृष्टि से, धर्म को एक ओर फेंक कर, भारत-भूमि को पितृभूमि तथा पुण्यभूमि मानने वाले को "हिन्दु" मानने का आग्रह प्रस्तुत किया।[3] तो किसी ने गो-माता के भक्त को किसी ने ओंकार को स्वीकार करने वाले को, तो अन्य किसी ने पुनर्जन्म को मानने वाले को ही हिन्दू की परिभाषा बनाया[4]। ये परिभाषाएँ "कल्पित" होने से निर्मूल तो हैं ही, एक दूसरे को काटती भी हैं। किसी एक को ही मान्य करने में कल्प[ना] के अतिरिक्त अन्य कोई आधार नहीं है। अतः बुद्धिमान् को स्वीकार्य नहीं हो सकती। और जो भी वैदेशिक अर्थ-रस है उसकी अपमानजनकता का उल्लेख पहले किया जा चुका है उसको जानकर कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति इसे अपना नाम कैसे स्वीकार कर सकता है? सो इसे छोड़ कर सत्याचरण आदि सत्य व्रतों के धारण-कर्त्ता रूप श्रेष्ठार्थ के वाचक 'आर्य' नाम को ही स्वीकार करना सर्वथा उचित है। **परमेश्वर की आज्ञा-स्वरूप होने से सर्वोपरि प्रमाणभूत वेदों को भी यही नाम स्वीकार है।** इस गुणवान् नाम के रहते दोषकारक हिन्दु नाम अवश्य त्याज्य है।

आर्य नाम पर आपत्तियों की समीक्षा

अब श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी की उन छुटपुट आपत्तियों और युक्तियों पर विचार करते हैं जो "हिन्दु" नाम के समर्थन में प्रस्तुत की गई हैं। वस्तुतः ये ही बातें यत्र-तत्र "आर्य" नाम के विरुद्ध हिन्दुम्मन्य नेताओं से सुनने में आती हैं। इसी दृष्टि से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। यथा—

(१) श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी "हिन्दु" नाम के प्रयो[ग] के लिए कहते हैं—

---

१. मनुस्मृति ६।९२: धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

२. हिन्दु की कल्पित परिभाषा-
प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु नियमानामनेकता।
उपास्यानामनियमो हिन्दु-धर्मस्य लक्षणम्॥
यह लक्षण लोकमान्य तिलक जी का बनाया हुआ बताया जाता है।

३. श्री स्वातन्त्र्य-वीर सावरकर-कृत हिन्दु-लक्षण—
आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

४. स्वामी करपात्री कृत लक्षण—
गोषु भक्तिर्भवेद् यस्य प्रणवे वा दृढा मतिः।
पुनर्जन्मनि विश्वासः स वा हिन्दुरिति स्मृतः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा मानना है कि हिन्दू शब्द का यह अर्थ (काला, काफिर आदि) जिन लोगों के द्वारा किया गया है वे हिन्दु-विरोधी रहे हैं और अपने विरोधी को हर कोई अपने से हीन समझता है। मुसलमानों के दृष्टिकोण में तो आर्य भी गैर-मोमिन हैं, तो क्या किसी के आर्य का अर्थ चोर या काफिर कर देने से स्वामी दयानन्द अपने आप को आर्य कहना छोड़ देते ? क्या आज के आर्यसमाजी अपने आप को आर्य कहना छोड़ देंगे ? अगर आर्यसमाजी अपने आप को आर्य कहना नहीं छोड़ सकते तो हिन्दु कहलाने वाले किसी के द्वारा हिन्दु शब्द का विकृत अर्थ करने से अपने आप को हिन्दु कहना क्यों छोड़ देंगे।"

समीक्षा—

स्वामी विज्ञानानन्द जी को भ्रान्ति है कि "आर्य" नाम के समान "हिन्दु" नाम भी हमारा अपना ही नाम है, मुसलमान विदेशियों के द्वारा दिया गया नाम नहीं है। इसी कारण वे हिन्दू नाम के छोड़ने पर आर्य नाम को भी छोड़ने की आपत्ति कर रहे हैं। आर्य नाम हमारा अपना नाम है। वेदों के आधार पर आदि-काल में ही ऋषि मुनियों के द्वारा हमें दिया है जब कि "हिन्दु" नाम "विरोधी", "विदेशी", "विधर्मी" मुसलमानों के द्वारा हमें उस समय दिया है, जब आठवीं शताब्दी में भारत को उन्होंने अपना उपनिवेश बनाया। आर्य शब्द हमारा हमारी भाषा का है. अतः उसके अर्थ का निर्णय हमारी भाषा के शब्दकोशों से ही हो सकता है। "हिन्दु" शब्द जिस भाषा का है उस भाषा के शब्दकोश ही उसके अर्थ के निर्णायक हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। स्वामी विज्ञानानन्द जी कहते हैं कि हिन्दू-विरोधी ने हिन्दू नाम का अर्थ विकृत (काफिर, चोर आदि) कर दिया, तो इसका अच्छा अर्थ क्या है? किसी अपनी भाषा के कोश में से अच्छा अर्थ सोदाहरण दिखाना था। दिखाते तो तब जब यह अच्छा अर्थ होता। मिथ्या दावे करते जाने से कुछ भी सिद्ध नहीं होता। आज के विदेशी इतिहासकारों और उनके अनुयायी भारतीय ऐतिहासिकों के द्वारा "आर्य" शब्द का अर्थ नाक-नक्श के आधार पर जाति-विशेष (race) या कल्पित भाषा विज्ञानानुसार इसका अर्थ "कृषक" किया जाता है तो यहाँ के शब्दकोशों के विरुद्ध होने से कदापि स्वीकार्य नहीं हो सकता। इसी प्रकार "हिन्दू" शब्द का अर्थ हिन्दुमन्य लोग अपनी इच्छा से अन्यथा करने लगें तो फारसी तथा अरबी भाषा के शब्दकोशों के विपरीत होने से ऐसा करना हास्यास्पद एवं निरर्थक ही रहेगा। स्वामी विज्ञानानन्द जी ने "मुसलमान" शब्द के विषय में किसी इतिहासकार डी.एस. मारगोलिथ के अनुसार कहा है कि यह शब्द पहले निन्दित अर्थ में था परन्तु मुसलमानों के विजेता होने पर सभी ने इसे श्रेष्ठ अर्थ में लेना स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार हिन्दु शब्द भी निन्दित अर्थ वाला क्यों न हो, हमारी श्रेष्ठता से श्रेष्ठ अर्थ वाला हो जायेगा। स्वामी जी का यह कथन बिना विचारे ही किया है। "मुस्लिम" शब्द अरबी भाषा का है और जिस धातु से बना है उसका अर्थ "समर्पण करना" है। इससे "मुस्लिम" शब्द का मूलार्थ है— "(अल्लाह के प्रति) समर्पण करने वाला"। यही कारण है कि मुस्लिम लोग नमाज करने के लिए जिस कपड़े आदि को बिछा कर उस पर नमाज करते हैं उसे "मुसल्लह" कहते हैं अर्थात् जिस पर (अल्लाह के प्रति) समर्पण किया जाय। मारगालिथ की तथाकथित पुस्तक मुझे पढ़ने के लिए प्राप्त नहीं हो सकी परन्तु पूर्ण संभावना है कि जब मुहम्मद साहिब ने मक्का शहर के निवासी बुत्परस्त (बुद्ध की मूर्तियों के पूजक-बौद्ध) लोगों की मूर्ति-पूजा का विरोध किया। क्योंकि उन मूर्ति-पूजकों की मूर्तिपूजा के प्रति न केवल आस्था ही थी बल्कि उनकी इससे आजीविका भी होती थी, इससे वे मुहम्मद के प्राणों को भी लेने के लिए उतारू हो गये। तब मुहम्मद वहां से भाग कर मदीना में चले गये। वहां उनके मत के हजारों लोग अनुयायी बन गये। तभी वहां ही मुहम्मद ने अपने मत की स्थापना की और कुर्आन की रचना भी की। तभी मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को "मुस्लिम" नाम भी दिया जिसका अर्थ था कि "जो अपने आप को अल्लाह के प्रति समर्पण करे।" परन्तु क्योंकि मक्का के निवासियों का इससे विरोध हुआ तो मक्का के मूर्तिपूजक अरबी लोगों ने मदीना के मुहम्मदी अरबों को ही (जो अपने आप को "मुस्लिम" प्रसिद्ध करते थे) प्रयुक्त "मुस्लिम" शब्द को "गद्दार" आदि निन्दित अर्थ प्रदान किया क्योंकि मुहम्मद स्वयं मक्का के मूर्तिपूजक बौद्धों के कुरैशी कबीले में ही पैदा हुए थे। अतः स्वभावतः संगत था कि मक्का वाले मूर्तिपूजक, मुहम्मद तथा उनके अनुयायी मुस्लिमों को "गद्दार" आदि दूषित अर्थ प्रदान करें। जब मुहम्मद आदि मदीना वाले "मुस्लिमों" ने मूर्तिपूजक मक्का वालों को जीत कर उन्हें मुस्लिम-मत में प्रविष्ट करा दिया तो स्वभावतः उनके मन में मुस्लिम शब्द में "गद्दार" आदि की भावना नहीं रही,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि वे अब स्वयं मुस्लिम हो गये। उनके मत में मुस्लिम शब्द का मूल अर्थ (अल्लाह को) समर्पण करने वाला ही अभीष्ट था। इस दृष्टान्त से स्वामी विज्ञानानन्द जी हमें यह समझाते हैं कि इस से हिन्दु शब्द का मुसलमानों के द्वारा दिया गया दूषित अर्थ हटकर अब प्रशस्त अर्थ का हो गया है। ''क्वास्ता: क्व निपतिता:।'' स्वामी जी ने दृष्टान्त के पासे डाले तो थे सीधे कि वे हिन्दू शब्द का प्रशस्त अर्थ प्रसिद्ध करा देंगे परन्तु ये पासे गिरे उलटे। यदि ''हिन्दु'' यह शब्द भारतीय भाषा का ही होता और प्रशस्त अर्थ वाला रहा होना (जैसे कि ''आर्य'' शब्द हमारा है और प्रशस्त अर्थ का है।) तब अरब के ''मुसलमान'' शब्द का दृष्टान्त देना युक्त होता। परन्तु हम सभी जानते हैं कि ''हिन्दु'' शब्द हमारा नहीं और जब यहाँ लाया गया तो किसी प्रशस्त अर्थ को लेकर नहीं लाया गया। अत: अरब देश में ''मुसलमान'' शब्द के दृष्टान्त को लेकर यहाँ हिन्दु शब्द को प्रशस्तार्थक बना देने की बात करना सर्वथा अयुक्त, बुद्धि-विरुद्ध तथा व्यर्थ है।

(२) स्वामी विज्ञानानन्द जी कहते हैं—

''जो लोग पारसियों द्वारा सिन्धु का हिन्दु बनना मानते हैं तो वे यह क्यों भूल जाते हैं कि सिन्धु का आधार संस्कृत तथा वेद है, हिन्दु का भी वह मूल है।''

समीक्षा—

निस्सन्देह पारसी (फारसी) भाषा के हिन्दु शब्द का मूल सिन्धु शब्द है जो संस्कृत भाषा में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा नदी-विशेष (जो अब पाकिस्तान में बहती है), प्रदेश-विशेष तथा उसमें रहने वाले निवासियों का वाचक रहा है। परन्तु यह सम्पूर्ण भारत तथा भारतवासियों का वाचक नहीं रहा। जब कि पारस (फारस) की भाषा में इसका विकृत ''हिन्दु'' शब्द भारत तथा भारतवासियों का वाचक हुआ। सिन्धु से हिन्दु शब्द ऐसे ही भिन्न है जैसे संस्कृत-भाषा से फारसी भाषा भिन्न है। जो अपने सिन्धु शब्द से उत्पन्न होने के मोहवश या आसक्तिवश इसे अपनाने की बात करता है उसे अरब के मक्का के काबा को, मुसलमानों की तरह चूमना और उसकी परिक्रमा करनी चाहिए क्योंकि यह भारत की मूर्तिपूजा का ही एक अन्तत: विकार ही तो है। जिस भाषा के स्वभाव को ग्रहण करके जो शब्द आत्म-लाभ कर सका है वह शब्द अनिवार्यत: उस भाषा का ही अङ्ग है, किसी अन्य भाषा का नहीं और जिस अर्थ को लेकर यह प्रयुक्त हुआ है वही उस शब्द का अथ है। मुहम्मद के पश्चात् अरब के मुस्लिमों और तुर्किस्तान के मुसलमानों ने अपनी-अपनी भाषा में प्रयुक्त ''हिन्दु'' शब्द का जो अर्थ माना वह उनके शब्दकोशों के हवाले से जताया जा चुका है। परन्तु कुछ हिन्दुत्व-प्रिय हिन्दुम्मन्य लोग इस अनिष्ट अर्थ को जान लेने पर भी उसे इस प्रकार झुठलाने की व्यर्थ चेष्टा करते हैं। जैसे कोई कबूतर अपनी अनिष्ट बिल्ली को सामने देखकर भी उसे झुठलाने के लिए अपनी आंखें बन्द करने की व्यर्थ चेष्टा करता है कि मेरे न देखने से अब बिल्ली है ही नहीं और इस प्रकार मौत को प्राप्त होता है। हिन्दुम्मन्य लोग भी अपने अपमान में स्वाभिमान ढूँढते हैं और दूसरों को भी उपदेश देते हैं कि ''गर्व से कहो कि हम हिन्दु हैं।'' अपमान में स्वाभिमान मानना किसी भी देश या जाति के लिए एक विनाशकारी भाव है क्योंकि यह एक उलटी बुद्धि है। ज्ञानी लोग कह भी गये हैं कि **विनाशकाले विपरीतबुद्धि:।**

श्री स्वामी जी की सेवा में यह कहना भी आवश्यक है कि नित्य, सनातनवेद का ''सिन्धु'' शब्द लोक में नदी-सामान्य तथा समुद्र-सामान्य का वाचक है। आज के पाकिस्तान में बहने वाले नदी-विशेष का या प्रदेश-विशेष या तन्निवासी लोक-विशेष का वाचक नहीं। हिन्दु शब्द का मूलभूत जो सिन्धु है वह तो अर्थ-विशेष का वाचक है। अत: वेद के सिन्धु शब्द से ''हिन्दु'' शब्द की रिश्तेदारी जोड़ने की बात ठीक नहीं है।

(३) स्वामी विज्ञानानन्द जी—

''एक दृष्टान्त देता हूँ। थोड़े समय मान लो हिन्दु नाम हमें विदेशी ने दिया और उसका अर्थ विकृत ही है। लेकिन यह शब्द हमारे रक्त में सदियों से बसा है। उदाहरणार्थ, आर्यसमाज में एक व्यक्ति पं० घासीराम जी हुए हैं जिन्होंने पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा लिखित दयानन्द जी की जीवनी को सम्पादित किया था। पण्डित जी लोक में घासीराम के नाम से प्रसिद्ध हुए। संभव है यह नाम उनका बचपन में अड़ोस-पड़ोस वाले माँ-बाप या किसी चाचा-ताऊ ने रख दिया हो। वर्षों बाद उनके पढ़े-लिखे बेटे से कोई कहता कि तुम्हारे पिता का नाम उन जैसे विद्वान् व्यक्ति के लिए ठीक सा नहीं लगता या उनकी गरिमा के अनुकूल नहीं है, बचपन में यह नाम किसी दूसरे ने दे दिया था, अब तुम उसे बदल दो। क्या उनके लड़के को अपने पिता का नाम बदल देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए या वह बदल देगा जो नाम विगत ५० वर्षों से प्रसिद्ध है। ठीक उसी तरह यह हिन्दु नाम हजारों वर्षों से हमारे जीवन में बसा हुआ है यह हमारे स्वाभिमान का प्रतीक बन गया है। क्या इसे हम छोड़ देंगे ?"

समीक्षा—

स्वामी जी ने अपने इस लेख के आरम्भ में लिख दिया है कि "मेरा हिन्दु शब्द पर बहुत आग्रह रहता है।" किसी सच्ची बात के लिए आग्रह (सत्याग्रह) करना गुण है परन्तु प्रमाण-रहित या प्रमाण-विरुद्ध असत्य पर आग्रह (दुराग्रह) करना दोष और दुर्गुण है। सभी के लिए यह बड़े शोक की बात है कि स्वामी जी का आग्रह सत्याग्रह न होकर दुराग्रह-मात्र ठहरता है। क्योंकि वे कहते हैं कि यह मानकर भी कि हिन्दु नाम हमें विदेशियों ने दिया है और यह भी कि वह विकृत (अपमानजनक) अर्थ वाला है—फिर भी, इस अपमानजनक विदेशियों द्वारा हमारे ऊपर थोपे हुए "हिन्दु" नाम को हम कभी नहीं छोड़ेंगे-यह तो हमारे रक्त में सदियों से बसा हुआ है"। धन्य हो स्वामी जी, धन्य हो। यदि एक बहाना न चले तो दूसरा बहाना ले लेंगे। किसी न किसी बहाने इस दूषित नाम के लबादे को नहीं छोड़ेंगे। किसी तत्त्वदर्शी का वचन है—"**बुद्धेः फलं अनाग्रहः।**" अर्थात् हेतु (reason) को देखने वाली बुद्धि आग्रह वाली नहीं होती। क्योंकि बुद्धि के होने का फल यही है कि व्यक्ति आग्रही न बने, बुद्धिमान् बने, युक्ति और प्रमाण से जो ठीक सिद्ध हो उसी को स्वीकार करे। परन्तु लगता है, स्वामी जी को इससे कोई सरोकार नहीं हैं। अस्तु।

कोई भी शब्द किसी के रक्त में नहीं बसा रहता। अपने अपमान को समझने वाले स्वाभिमानी को अपमानजनक बात से किनारा करते क्षण भर की देर नहीं लगती। परन्तु दुराग्रह के दलदल में फंसी बुद्धि को क्या कहा जाय ? वह तो उलटी होने से स्वापमान को भी "स्वाभिमान" समझती है। हमारी तो कृपालु प्रभु से प्रार्थना है कि वह स्वामी जी को असत्य को छोड़ने और सत्य को ग्रहण करने की आर्योचित सामर्थ्य प्रदान करे।

स्वामी जी कहते हैं कि आर्यसमाजी पसिद्ध लेखक पं० घासीराम के नाम का उदाहरण हमें बताता है कि नाम कुछ विकृत अर्थ वाला क्यों न हो, उसे छोड़ना उचित नहीं है। जो नाम ५० वर्ष से प्रसिद्ध चला आ रहा है उसको लोग बदलने के लिए तैयार नहीं हैं तो हजारों वर्षों से चले आये हिन्दु नाम को क्यों और कैसे छोड़ दें ?

श्री स्वामी जी ने "हिन्दु" नाम को न छोड़ने के लिए जो दलील पेश की है वह एकदम निराधार और बेतुकी है। दैनिक समाचार-पत्रों में प्रतिदिन कितने ही लोग अपने नाम का पूर्णतः अथवा अंशतः परिवर्तन करके क्या नाम घोषित करते हैं। आज २३ सितम्बर १९९५ है। आज के ही चण्डीगढ़ से प्रकाशित "सिटी एडीशन" के अंग्रेजी के ट्रिब्यून के पृष्ठ ७ पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि वहां १७ व्यक्तियों ने माँ-बाप, पुरोहित आदि द्वारा उन्हें दिये नाम को छोड़ कर नया नाम घोषित किया है। यह प्रायः नित्य का कार्य है जो सर्वत्र पाया जाता है। स्वामी विज्ञानानन्द जी को तो इस तथ्य से जानूँ (ज्ञानवान्) अवश्य होना चाहिए। मुझे स्वामी जी के पूर्व आश्रम के नाम का कोई ज्ञान नहीं है। परन्तु पक्का विश्वास है कि संन्यास-धारण करने के समय आपने भी अपने माँ-बाप आदि के द्वारा दिया गया अपना नाम बदला है। गुड़ के मीठे-मीठे गुलगुले स्वयं खाकर भी दूसरों को मना करना तो स्वामी जी जैसे चतुर्थाश्रमी के लिए शोभा की बात कतई नहीं है।

स्वामी दयानन्द तथा उनके अनुयायी आर्यसमाजी किसी माँ-बाप आदि द्वारा दिये नाम को छोड़ने की बात नहीं करते बल्कि विदेशियों, विधर्मियों के द्वारा थोपे हुए अपमानजनक नाम के लबादे को उतार फेंक देने तथा अपने ही पूर्वजों के द्वारा दिये गये श्रेष्ठ अर्थ वाले "आर्य" नाम को धारण करने की प्रेरणा करते हैं। इस प्रकार पं० घासीराम जी का जो उदाहरण आपने प्रस्तुत किया है वह तो हमारे आर्य नाम के अनुकूल पड़ता है, आपके हिन्दु नाम के अनुकूल नहीं। आर्य नाम तो हमें हमारे ही पूर्वज ऋषि-मुनियों ने सृष्टि के आरम्भ में ही परमेश्वर-प्रदत्त वेदों को देखकर प्रदान किया था और आज तक यथाकथंचित् चलता आ रहा है। परन्तु हिन्दुनामक लबादा जो विदेशी, विधर्मी लोगों ने आपके ऊपर थोप दिया वह तो कल की बात है। हां; कल की—सातवीं शताब्दी ईसवी की। उससे पूर्व इस नाम की भारत में सत्ता नाममात्र को भी नहीं थी। सो विदेशी-विधर्मी लोगों के द्वारा थोपे अपमानजनक नाम को तुरन्त छोड़ कर आर्य नाम को धारण करने में हर एक विवेकी सत्याग्रही की शोभा, स्वाभिमानिता, ईश्वरेच्छा, ईश्वराज्ञा आदि अनेक गुणों का लाभ है। अतः हिन्दू नाम छोड़कर अपने ही ऋषिमुनियों द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठार्थक आर्य नाम को धारण करना ही उचित एवं युक्त है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र

अप्रैल ९६ के 'दयानन्द-सन्देश' में परमात्मा की सर्वव्यापकता के सम्बन्ध में लेख पढ़कर अति प्रसन्नता हुई कभी-कभी आर्यसमाज से सम्बद्ध व्यक्ति भी ऐसा कहते सुने जाते हैं जो उनके जीवन में गुजरती है कि ईश्वर की इच्छा से ऐसा होगया। इससे कर्मस्वतन्त्रता एवम् ईश्वरीय न्याय पर प्रश्नचिह्न लगाकर अविश्वास पैदा कर देते हैं। और उन पर ईसाई एवम् इस्लाम का प्रभाव प्रतीत होने लगता है। विद्वान् लेखक आप दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं। ***आर.सी. सक्सेना,***

बी ६९, शास्त्रीनगर (मेरठ)

विलासपुर मध्यप्रदेश से—
आर्यजगत् का प्रबल रोष

डा० श्रीराम आर्य (कासगंज, उत्तरप्रदेश) के द्वारा इस्लाम के विषय में लिखित तीन पुस्तकें आर्यसमाज विलासपुर (मध्यप्रदेश) के वार्षिकोत्सव पर बिक्री के लिए ले जाने पर पुस्तक-विक्रेता को जिला प्रशासन (विलासपुर) के गिरफ्तार करने पर समस्त आर्यजगत् अत्यन्त रोष प्रकट करता है। और इस अभियोग में लाजपतराय अग्रवाल (विक्रेता) पर चलाये अभियोग को तुरन्त वापस करने की मांग करता है। जब समस्त देश में इन पुस्तकों की बिक्री पर कहीं भी प्रतिबन्ध नहीं है। और मध्यप्रदेश की सरकार से इसके दुष्परिणामों पर ध्यान देकर शीघ्रातिशीघ्र विक्रेता को छोड़ने की मांग करता है।

दयाराम पोद्दार, मन्त्री

छोटा नागपुर आर्य प्रतिनिधि सभा, रांची

वेद आज्ञा निभाते चलें हम

ऐसा सामर्थ्य दो हे विधाता, वेद आज्ञा निभाते चलें हम।
तुझ से पा शान्ति आनन्द सब को, शान्ति पथ पर चलाते चलें हम॥

१. जो दिया है वही तो मिलेगा, जो लिया वो चुकाना है हमको।
दो सभी को वही तुम निरन्तर, उस प्रभु से जो पाना है तुमको।
सुख का फल सुख दुःख का है दुःख ये स्वयं मानें सिखाते चले हम
तुझ से पा०......

२. तू है सर्वज्ञ सबका नियन्ता, है अटल ईश तेरी कर्म फल व्यवस्था।
वेदपथ भूल अल्पज्ञ मानव प्राप्त है आज दयनीय अवस्था॥
हे दयालु दया दीन पर कर दीनता को भगाते चलें हम।
तुझ से पा०......

३. है शरण तेरी पतितों को पावन, करने वाली प्रभु भक्त-वत्सल।
बन मुमुक्षु शरण तेरी आवें, होके तन्मय करें भक्ति अविचल॥
हो समाधिस्थ सम्बन्ध तुझ से जोड़ आनन्द पाते चलें हम।
तुझ से पा०......

४. प्रेरणा शुभ कर्म की सतत तू, सर्व प्रेरक प्रभु कर रहा है।
शान्ति-आनन्द फल चाहकर भी जीव दुःखों से क्यों घिर रहा है?
जीव अल्पज्ञ को जो अविद्या बाँधती उसको मिटाते चलें हम।
तुझ से पा०......

रामनिवास 'गुणग्राहक'

पुरोहित, आर्यसमाज, श्री गंगानगर (राज०)

केन्द्र की सरकार का ईसाई-दलितों का आरक्षण एक खतरनाक निर्णय

केन्द्र की संयुक्त मोर्चे की सरकार की अपने न्यूनतम कार्यक्रम के अन्तर्गत दलित ईसाइयों को भी आरक्षण देने के खतरनाक निर्णय के दुष्परिणाम आने लगे हैं। ८ जून ९६ के नवभारत टाइम्स के ८ पृ० पर छपी खबर में मांग की गई है—यथार्थ में कांग्रेस के बिना शर्त समर्थन देने की बात लोगों का बहकाना ही है। गत वर्ष मदर टेरेसा के साथ समझौते कर भूतपूर्व प्रधान मन्त्री ईसाई दलितों के आरक्षण की बात कहते रहे हैं और वही बात अब केन्द्रीय सरकार ने दोहराई है। इन्साफ मोर्चे के संयोजक सैय्यद शाहबुद्दीन ने केन्द्र से यह मांग की है कि दलित मुसलमानों को भी आरक्षण दिया जाये। यह सरकार के वोट बैंक बनाने के लिए तुष्टीकरण के ही परिणाम हैं जो देश के लिए खतरनाक है। आर्यसमाज इस नीति का प्रबल विरोध करता है और इसके लिए जन आन्दोलन करने की तैय्यारी कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनायें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

७५४ श्री अशोक कुमार S/o श्री ओमप्रकाश आर्य मु० सांधी जि०—रोहतक (हर०)
७५५ श्री भँवर क्षत्रिय आर्य मु०-सौसटी वाया-जोजावर जि० पाली (राज०) 306022
७५६ श्री आर्य नरेश सिसोदिया S/o श्री शिवनाथ सिंहली मु०-रोटा (लूर) पो० जोड़वाज़ वाया-भीनमाल जि० जालौर (राज०) 343029
७५७ श्री गुप्ता इन्टरप्राईजेज 59 दास हिटैची प्रा०लि० के सामने पो० मोहननगर जि० गाजियाबाद (यू०पी०) 201007
७५८ श्री गौतम गुप्ता जी 82 राजेन्द्र नगर पो० मोहननगर गाजियाबाद (यू.पी.) 201007
७५९ श्री मंत्री जी आर्य समाज मौखी (सौराष्ट्र)
७६० श्री वैद्य ओमप्रकाश जी आयुर्वेदाचार्य C/o लारी मेडिसिन सैन्टर सोनाली बाजार जि० महाराजगंज (यू०पी०) 2731647
७६१ श्री संतोष कुमार प्राच्य साहित्य परिषद् 11/83A तीसरी मंजिल साबुन कटरा आगरा (यू०पी०) 28003
७६२ श्री धर्मपाल कारपेन्टर शहीद कालोनी ब्यावरा पो० ब्यावरा जि० राजगढ़ (ब्यावरा) (म.प्र.) 465674
७६३ डॉ० दयाराम जी आर्य (B.A.) महर्षि दयानन्द उपचार सदन नरतोरा वाया-पिथौरा जि० रायपुर (M.P.) 493551
७६४ श्री ब्रह्मदत्त जी आर्य (पटेल) द्वारा डॉ० दयाराम जी आर्य आयुर्वेदरत्न मु०पो०-गांजर भुनगासेर (छोटापारा) वाया बाग बाहरा जि० रायपुर (M.P.) 493551
७६५ चौधरी वेदपाल जी आर्य S/o श्री जयसिंह म०नं० 23 मु० शाहपुर गढ़ी नरेला दिल्ली-110040
७६६ श्री रामफल जी शास्त्री रा०उ०वि० मुरादगढ़ वाया इन्दरी जि० करनाल (हर०) 132041
७६७ श्री बलवीरसिंह जी तंवर S/o श्री तुलसीसिंह जी A-23 G/D.D.A. स्टाफ फ्लैट दिलशाद गार्डन शाहदरा दिल्ली-110095
७६८ Dr. P. Dayal, Dayal Nursing Home Dbwali Road Sirsa (Har.) 125355
७६९ चौ० ताराचन्द जी आर्य मु०पो० छीलरो वाया-नारनौल जि० महेन्द्रगढ़ (हर०) 123001
७७० श्री सत्यवीर जी यादव टाईम आफिस रोडवेज सैन्ट्रल वर्कशाप रावतपुर कानपुर (यू०पी०) 208002
७७१ श्री ग्रंथपाल आर्यसमाज पिम्परी स्वामी दयानन्द मार्ग पिम्परी पुणे (M.P.) 411012
७७२ श्री यशपालसिंह म०नं० 29 यादव मौहल्ला नाँगलोई दिल्ली-110041
७७३ श्री तुलसीराम शर्मा वेद मंदिर मु०पो० धन्नौदा जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)

धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/96
आर/ आर/ नं० २५५८७/७३
..st in New Delhi PSO
on 2-3/7/96

जुलाई १९९६

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९६
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/96

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।**

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान :- **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक / पत्रिका

श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा० ....
जिला ....

मुद्रक : **ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स**, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द-सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अगस्त, १९९६

वर्ष २४ : अंक १०
दयानन्दाब्द : १७२
विक्रमसंवत् : श्रावण २०५३
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९७

संस्थापक : **स्व० दीपचन्द आर्य**
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- आया पर्व महान् २
- वेदोपदेश ३
- साहित्य-समीक्षा
- महर्षिकृत सत्यार्थप्रकाश के रूपान्तरण का विवेचन ६
- ऋषि-दयानन्द जी ने कहा है ९
- सुख व दुःख जीवात्मा के ही गुण हैं १०
- ईसा मसीह भारतीय शिष्य थे १४
- सद्बुद्धि की कामना १७
- 'हिन्दु' नाम कसौटी पर (४) २१
- स्वामी श्रद्धानन्द और दिल्ली की जामा मस्जिद २५

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR
Exchange

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ रुपये और सजिल्द सोलह सौ रुपये सैंकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया पर्व महान्

—स्व० डा० नारायण मुनिश्चतुर्वेद, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

ले अध्यात्म-सुधा का प्याला, देने जीवनदान ॥
आया पर्व महान् ॥

पुण्य-आर्य-आदर्श-भावना के गौरव का चित्र।
वैदिक धर्म ध्वजाऽऽराधन के पावन मन का मित्र॥
ब्रह्मव्रती मानव कथा का अविरत स्रोत विचित्र।
चातुर्वर्ण्य मानसोन्नति के उद्देश्यों का प्राण॥
आया पर्व महान् ॥

कृषक जनों की आशालतिका का जो ललित वितान।
प्रकृति नटी की शोभावलि का, जो अनुपम आह्वान॥
वर्षा ऋतु की अनुकम्पा का, प्रेम पूर्ण सम्मान।
सकल जनों को हर्षित होकर करने हर्ष प्रदान॥
आया पर्व महान् ॥

भारतीय सर्वोच्च सभ्यता, वैभव का आधार।
मानव जीवन की नौका का, सुन्दरतम पतवार॥
मातृभूमि रक्षा बन्धन का, मङ्गलमय उपचार।
राष्ट्र जागरण की नववेला का प्रातःकाल महान्॥
आया पर्व महान् ॥

ले अध्यात्म-सुधा का प्याला देने जीवनदान॥
आया पर्व महान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को जानकर ही उसके उत्पत्ति आदि कार्यों को जाना जा सकता है।

स्वयम्भू ब्रह्मा ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

परमेश्वर के प्रवक्ता विद्वान् का उपदेश किया जाता है॥

**ओ३म्- प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम बिभृतं गुहा यत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत्॥**

(यजु० ३२।९)

पदार्थः—(प्र) (तत्) चेतनं ब्रह्म (वोचेत्) गुण-कर्मस्वभावत उपदिशेत् (अमृतम्) नाशरहितम् (नु) सद्यः (विद्वान्) पण्डितः (गन्धर्वः) यो गां = वेदवाचं धरति सः (धाम) मुक्तिसुखस्य स्थानम् (बिभृतम्) विशेषेण धृतम् (गुहा) बुद्धौ (सत्) नित्यम् (त्रीणि) उत्पत्तिस्थितिप्रलयाः काला वा (पदानि) ज्ञातुमर्हाणि (निहिता) निहितानि (गुहा) बुद्धौ (अस्य) अविनाशिनः (यः) (तानि) (वेद) जानाति (सः) (पितुः) जनकस्येश्वरस्य वा (पिता) ज्ञानप्रदानेनास्तिकत्वेन वा रक्षकः (असत्) भवेत्॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यो (गन्धर्वः) यो गां = वेदवाचं धरति सः (विद्वान्) पण्डितः (गुहा) बुद्धौ (बिभृतम्) विशेषेण धृतम् (अमृतम्) नाशरहितं (धाम) मुक्तिसुखस्य स्थानं तत् चेतनं ब्रह्म (सत्) नित्यं (नु) सद्यः (प्रवोचेत्) गुणकर्मस्वभावत उपदिशेत् यानि (अस्य) अविनाशिनः (गुहा) बुद्धौ (निहिता) निहितानि (पदानि) ज्ञातुमर्हाणि (त्रीणि) उत्पत्तिस्थितिप्रलयाः काला वा (यः), तानि च (वेद) जानाति (सः) (पितुः) जनकस्येश्वरस्य वा (पिता) ज्ञानप्रदानेनास्तिकत्वेन वा रक्षकः (असत्) भवेत्॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो! जो (गन्धर्वः) गौ = वेदवाणी को धारण करने वाला (विद्वान्) पण्डित (गुहा) बुद्धि में (बिभृतम्) धारण किए हुए (अमृतम्) नाशरहित (धाम) मुक्ति सुख के स्थान (तत्) चेतन ब्रह्म (सत्) नित्य ईश्वर का (नु) शीघ्र (प्रवोचेत्) गुण, कर्म, स्वभाव से उपदेश करता है और जो (अस्य) इस अविनाशी की (गुहा) बुद्धि में (निहिता) निहित (पदानि) जानने योग्य (त्रीणि) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय अथवा तीन काल हैं, उन्हें (वेद) जानता है, (सः) वह (पितुः) जनक का वा ईश्वर का (पिता) ज्ञान देने से वा आस्तिकता से रक्षक (असत्) होता है॥

भावार्थः—हे मनुष्या! य ईश्वरस्य मुक्तिसाधकं बुद्धिस्थं स्वरूपम् उपदिशेयुः, ते वयोवृद्धानां पितृणामपि पितरो भवितुं योग्याः सन्तीति विजानीत।

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो ईश्वर के मुक्तिसाधक, बुद्धि में स्थित स्वरूप का उपदेश करते हैं, यथार्थता से पदार्थों के और परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव को जानते हैं, वे वयोवृद्ध पितरजनों के भी पितर बनने योग्य होते हैं, ऐसा जानो॥

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीक्षा

महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश (आधुनिक हिन्दी रूपान्तर) की समालोचना

उपरोक्त ग्रन्थ के रूपान्तरकार हैं—**श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती। प्रकाशक—विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द,** ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६। **मूल्य—१२५.०० रुपये।**

प्रयोजन तथा कार्य

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का प्रयोजन बताते हुए रूपान्तरकार स्वामी जी लिखते हैं—"ऋषिवर संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और उनकी मातृभाषा गुजराती थी, अत: उनकी हिन्दी को समझने में, विशेष रूप से तेरहवें और चौदहवें समुल्लास को समझने में ***पाठकों को कठिनाई होती है** इस बात को दृष्टि में रखकर यह आधुनिक हिन्दी रूपान्तर किया गया है।"

रूपान्तर करते हुए वाक्य-विन्यास को उत्तम बनाने के लिए कहीं शब्दों को आगे-पीछे करना आवश्यक था, वैसा किया गया है, जो शब्द छूट गये थे, उन्हें बढ़ा दिया है। जहां किसी श्लोक अथवा मन्त्र में किसी शब्द का अर्थ छपने से रह गया था, उसकी पूर्ति कर दी है। प्रेस के कर्मचारियों..... की असावधानी से अथवा प्रूफ रीडरों की चूक से जो शब्द अथवा वाक्य आगे-पीछे हो गये थे, उ[न] सभी को यथास्थान कर दिया गया है।

रूपान्तरकार के उपरोक्त लेख से पाठक समझ[ें] है ये कार्य तो होने ही चाहिए थे, परन्तु मूल लेख की भाषा का परिवर्तन करने का क्या आप[को] अधिकार है, अथवा उनकी उत्तराधिकारिणी सभा [से] आपने ऐसा करने की अनुमति ली है। इससे पू[र्व] सत्यार्थप्रकाश के संक्षिप्त रूप बाल 'सत्यार्थप्रकाश' आदि तक छपते रहे थे। किसी ग्रंथ के व्याख्या ग्रंथ भी हो सकते हैं, परन्तु 'रूपांतर' शब्द [का] अर्थ होता है उसके स्वरूप को बदल देना अथ[वा] दूसरी भाषा में अनुवाद कर देना। क्या आपने ऐ[सा] किया है, यह देखने से स्पष्ट होता है कि आप ऐ[सा] नहीं कर पाये। हिन्दी की हिन्दी हो भी कैसे सक[ती] थी। इसके द्वारा आपने महर्षि की भाषा को स्वेच्[छा] से बदलकर जो बिगाड़ किया है उसे इतिहास क[भी] क्षमा नहीं करेगा।

महर्षि की भाषा का महत्त्व

(क) सत्यार्थप्रकाश का इतिहास यह बता[ता] है कि ऋषि-भाषा में जो भाव थे और उनका [जो] प्रभाव पाठकों पर पढ़ता था, वह आपने बिगाड़ दि[या] है। इसलिए अप्रैल मास के 'दयानन्दसन्देश' में श्री पं० विशुद्धानन्द जी ने ठीक ही लिखा है- 'इ[स] **रूपान्तर को सत्यार्थप्रकाश की अन्त्येष्टि कह[ना] अधिक समुपयुक्त होगा।**' इसलिए उन्होंने इस श[ब्द] की व्युत्पत्ति की है— रूपस्यान्तं राति ददाति इ[ति] रूपान्तरम्। इसलिए इस सत्यार्थप्रकाश को रूपान्तरि[त] न कहकर 'विकारित' सत्यार्थप्रकाश कहना उचि[त]

यह बात मिथ्या है, कि सत्यार्थप्रकाश की भाषा समझने में कठिनाई होती है। पाठकों को स्मरण होगा कि पं० गुरुदत्त ने सत्यार्थप्रकाश को १४ बार पढ़ा, जो कि संस्कृत व हिन्दी से कम परिचित थे, (बाद में तो पर्याप्त अभ्यास हो गया था) वे लिखते हैं कि मैंने जितनी बार पढ़ा मुझे हर बार नई-नई बातें समझ में आईं तथा उनको इस ग्रन्थ की भाषा बिना समझे ही ज्ञान का प्रकाश मिला। इसी तरह तत्कालीन उर्दू जानने वालों ने इसे समझाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होता है। तथा ऐसे अनावश्यक ग्रंथों पर सामाजिक बहिष्कार अथवा सभा द्वारा प्रतिबंध लगाना चाहिए।

(ख) महर्षि दयानन्द ने इस अमर ग्रंथ को अधिकांश छपने से पूर्व स्वयं संशोधन किये थे। इस विषय में द्रष्टव्य है महर्षि का पत्र-व्यवहार— (इसलिए महर्षि की भाषा को बदलना नहीं चाहिये)

(१) बीच-बीच में सत्यार्थप्रकाश भी छपता है। कुल ३८ फार्म छपे हैं। ११वां समुल्लास छप रहा है। (पत्र-व्यवहार पृ० ४३४)

(२) सत्यार्थप्रकाश की कापी भेजिये····· अब सत्यार्थप्रकाश ३२०पृ० छप चुका है। (पत्र-व्यवहार पृ० ४७०-४७२)

(३) ऋषि ने अपने निर्वाण से लगभग १४ मास पूर्व संशोधित-सत्यार्थप्रकाश की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि तैयार कर ली थी और प्रेस कापी बनाकर उसे प्रेस में भेजना प्रारम्भ कर दिया था। (ऋषि दयानन्द के ग्रंथों का इतिहास पृ० २९)

(ग) मैंने प्रस्तुत लेख में प्रथम तीन समुल्लासों का अक्षरश: मिलान करके जो जो भेद देखे, उन्हें यहां दिखाया है, जिसे दर्पण मात्र ही कह सकते हैं– इसमें प्रेस की त्रुटियाँ, शब्दभेद, शब्दान्तरित भेद और शब्दाधिक्य को न दिखा कर पाठवृद्धि, पाठ-परिवर्तन तथा पाठ-व्यत्यय ही दिखाने का प्रयास किया है। मनुष्य अल्पज्ञ है, भूल मेरे से भी हो सकती है, पुनरपि सत्य को सत्य ही दिखाने का प्रयास किया है। अन्त में अपने अग्रज सम्माननीय श्री पं० विशुद्धानन्द के शब्दों को पुन: स्मरण कराता हूँ–

"आर्यो जागो! क्योंकि अब दयानन्द तुम्हें जगाने फिर नहीं आयेगा। महर्षि की देदीप्यमान कीर्ति को धूमिल करने से बचाओ। महर्षि की भाषा पर कुठाराघात हमारी श्रद्धा को समूल उच्छिन्न करने का प्रयास है।" (अप्रैल ९६ के 'दयानन्दसन्देश' से)

(घ) श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का मैं हृदय से सम्मान करता हूँ। और चतुर्थाश्रमी होने से वे सम्माननीय हैं भी, परन्तु गलत कार्यों का प्रबल विरोधी भी हूँ। मुझे उनके सान्निध्य का एक बार अवसर मिला था, एक बार सत्यार्थप्रकाश पर विचार करने के लिए परोपकारिणी सभा ने एक गोष्ठी आर्यसमाज मन्दिर मार्ग पर की थी। उसमें इन मान्य स्वामी जी को विशेष रूप से बुलाया गया था, क्योंकि इनका यह कथन था कि सत्यार्थप्रकाश में हजारों गलतियां हैं। इन्होंने उस सभा में जो दुर्व्यवहार किया, वह भूल नहीं सकता। विचारार्थ दो दिन निश्चित किये थे। प्रथम दिन विद्वान् प्रतीक्षा करते रहे और आप २ बजे के बाद पहुँचे। आप ने कुछ स्थल प्रस्तुत भी किये थे, विद्वानों ने उनका उत्तर वा समाधान किया। अगले दिन समय को बढ़ा दिया गया कि कल १० बजे की जगह ९ बजे गोष्ठी का प्रारम्भ होगा किन्तु ये महाशय गोष्ठी में नहीं पहुँचे। ट्रस्ट के मन्त्री श्री धर्मपाल जी ने दूरभाष पर अनेक बार मिलने का प्रयास किया तो पता चला स्वामी जी नौ दो ग्यारह हो गये हैं और गोष्ठी बहुत प्रतीक्षा के बाद समाप्त कर दी गई। इन महाशय ने इतना भी निज कर्तव्य नहीं समझा कि गोष्ठी के विद्वानों को दूरभाष पर ही सूचना कर दूँ। दिल्ली में रहकर भी दिल्ली में ही सूचना न दे सके, यह कर्त्तव्य की इतिश्री ही समझता हूँ। पुन: सम्मान के साथ विनति करता हूँ कि क्या आप अपने कर्त्तव्य पर कुछ अनुशोच करके पापशुद्धि करेंगे और आर्यों को सान्त्वना देंगे! पूर्वज आर्य विद्वानों ने भी कहीं आवश्यक समझा तो नीचे टिप्पणी दी है। ऋषि की भाषा बदलने का प्रयास नहीं किया।

(राजवीर शास्त्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षिकृत सत्यार्थप्रकाश के रूपान्तरण का विवेचन

यह रूपान्तरण धर्मान्तरण किए व्यक्ति के समान ऊपर से कलेवर में वैसा ही पर, अन्तर में परिवर्तित है। इसके देखने का प्रसङ्ग तब आया जब उधर उदयपुर (राजस्थान) में जिन तिथियों में 'सत्यार्थप्रकाश-सम्मेलन' आयोजित हो रहा था तभी मुझे जिज्ञासा हुई कि श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का रूपान्तरित सत्यार्थप्रकाश देखा जाये। मैंने तत्काल पुस्तक खरीदी और अकस्मात् एकादश समुल्लास में "वेद पढ़त ब्रह्मा मरे" आदि वाला पृष्ठ खुल गया और पाठ मिलाना प्रारम्भ किया। ऋषिकृत पाठ यह है—

१. ऋषिपाठ—

"जो मूर्खों का नाम सन्त होता है वे बेचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान सकते।"

रूपान्तरपाठ—"जिन मूर्खों का नाम सन्त होता है वे बिचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान सकते।"

समीक्षक— श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने 'जो' के स्थान पर 'जिन' कर दिया। ऋषिवर यहां पर 'जो' शब्द का प्रयोग 'जब' या 'यदि' अर्थ में कर रहे हैं विशेषण रूप में नहीं, पर रूपान्तरकार उसको मूर्खों का विशेषण समझ उसके स्थान पर 'जिन' का प्रयोग कर रहे हैं। यहां पर 'जो' शब्द मूर्खों का विशेषण नहीं जैसा कि रूपान्तरकार ने माना है और स्यात् रूपान्तरकर्त्ता अपने मन में समझ बैठा है कि स्वामी दयानन्द या तो 'जिन' इस बहुवचन विशेषण को जानते नहीं थे या उस समय की बन रही भाषा में 'जो' का 'जिन' प्रयुक्त नहीं होता था। पर ये दोनों बातें नहीं थीं। उस समय ऋषि 'जिन' बहुवचन को जानते भी थे और इस 'जिन' का उन्होंने प्रयोग भी किया था। देखिए—(स.प्र.स-३) "विद्याविलासमनसः-" के अर्थ को "जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता -----आदि।"

परीक्षा— इस जिन शब्द से ऋषि वाक्य का अर्थ 'अन्वयवाद' में ही अभीष्ट रूप में सिद्ध नहीं होता। प्रश्न है कि यह कैसे जाना जाए कि अन्वय में अभीष्ट अर्थ नहीं निकलता?

समाधान— यहां प्रथम तथा दूसरे वाक्य में निषेधात्मक न लगाके देख लीजिए। अर्थात् प्रथम वाक्य में 'न' लगाएं और दूसरे में भी,तो वाक्य रचना निम्न प्रकार बनेगी—"जिन मूर्खों का नाम सन्त नहीं होता है (अर्थात् ऐसे भी कुछ मूर्ख रह गए जिनका नाम सन्त नहीं होता) वे बेचारे (भाग्यशाली) वेदों की महिमा को सदा जान सकते हैं।"

अब कहिए श्रीमन्! ऋषि प्रयुक्त ही 'जो' शब्द ठीक है या रूपान्तरकार का 'जिन' शब्द? वस्तुत: 'जिन' ने तो सारा भाव-गुड़ ही गोबर बना दिया।

पाठक गण देखें कि ऋषि वाक्य में 'जो' का प्रयोग "होता है" को संकेतित कर रहा है। इस 'जो' का अर्थ जब है।

ऋषि दयानन्द 'जो' शब्द-प्रयोग के सभी प्रकार (विशेषण, सर्वनाम, क्रिया विशेषण आदि) जानते थे और प्रयोग में लाते थे, तभी भाषा की परिपाटी सुधारी गई थी। संस्कारविधि की भूमिका में विभिन्न प्रयोग देखिए।

(क) विशेषण रूप में— "जो 1000 पुस्तक छपे थे," "जो-जो संस्कार में कर्त्तव्य-विधि है।"

(ख) क्रिया विशेषण रूप में—"जो लक्षाहुति करनी हो तो"

अथ सामान्यप्रकरणम्।

(ग) सर्वनाम रूप में— "जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक्-पृथक् मौन कर बैठे रहें।"

सामान्यप्रकरण

(घ) "सर्वनाम के विशेषण रूप में— "जो कोई इसको यथावत् संरक्षित न कर रखेगा।"

वेदारंभ

(ङ) विशेषण के विशेषण रूप में— "जो कोई ब्रह्मचारी विद्या का अभ्यास करेगा उसको विद्या सिद्ध होगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. ऋषिपाठ—

'जो' नानक जी वेदों ही का मान करते तो उनका सम्प्रदाय न चलता। रूपान्तरकार ने यहां से 'जो' हटा दिया है। ऋषि ने तो 'जो' का प्रयोग 'यदि' अर्थ में किया है। आगे भी 'तो' आदि शब्दों को बदलकर ऋषि की भाषा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को क्षत-विक्षत कर दिया।

अब एक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन देखिए—

३. ऋषिपाठ—

"यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित, मुसलमानों से पीड़ित था उस समय उन्होंने कुछ लोगों को बचाया।"

रूपान्तरकार—रूपान्तरकार ने "पंजाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित 'और' मुसलमानों से पीड़ित था" इस वाक्य में 'और' बढ़ा दिया। यह नहीं विचारा कि प्रधान प्रतिपाद्य समस्या "मुसलमानों से पीडन" है। पंजाब का संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित होना आन्तरिक स्थिति का द्योतन मात्र पंजाब का विशेषण है। जैसे कोई कहे— "रामदास बहुत खटाई खाने वाला दमा रोग से पीड़ित है।" यद्यपि सत्यार्थप्रकाश के उक्त वाक्य के समान "बहुत खटाई खाने वाला" रामदास का विशेषण है, पर इसे रामदास से पूर्व लगाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसी स्थान पर पूर्ण प्रभावी अर्थ निकल रहा है। अब यदि 'दमा' से पहले 'और' लगा दिया जाय तो अभीष्ट अर्थ भी खटाई में पड़ जाएगा।

इसी प्रकार रूपान्तरकार के द्वारा उक्त वाक्य में 'और' लगाना सर्वथा अर्थहीन है।

४. ऋषिपाठ—

"उस समय कुछ लोगों को बचाया।"

रूपान्तरकारपाठ— "उस समय कुछ लोगों को मुसलमान होने से बचाया।"

समीक्षक— रूपान्तरकार ने 'बचाया' शब्द से पहले "मुसलमान होने से" ये शब्द बढ़ा दिए हैं। इस बढ़ाने से अर्थ अतिसीमित हो गया। ऋषि का अभिप्राय तो उत्पीड़न के सब प्रकारों से बचाना है। अर्थात् लोग मुसलमान न होने पर भी उनके रंग में रंगकर काबे की महत्ता मानते, हिन्दु आचार-पद्धति तथा अपने ऋषि मुनि पूर्वजों के शास्त्र, गीता, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों के प्रति श्रद्धा का त्याग कर देते और मुसलमान नहीं बनते, तो क्या रूपान्तरकार इसको 'बचाया' समझ लेते? अरे भाई! ऋषि के शब्दों की व्यञ्जना में गंभीर सार छिपा हुआ है। जिसे देखने के लिए ऋषि के प्रति सच्ची श्रद्धा की आँख चाहिए।

हमारे पूर्वज ऋषि और ऋषि दयानन्द ने जो भी जिस भाषा की शब्दावलि में कहा था हमें तो उसी में श्रद्धा है, उनकी अन्तरात्मा से निकली उसी शब्द-धारा में एक विशेष विद्युत् का आकर्षण है, पवित्रता है, अकृत्रिमता है और कुछ जादू है, इसे कदापि विकृत न किया जाय।

सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में—

५. ऋषिपाठ—

"जो कोई इस ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध 'मनसा' से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा"

रूपान्तरकारपाठ— "जो कोई इस ग्रन्थ को ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध 'भावना' से देखेगा उसे कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा।"

समीक्षक— महोदय! ग्रन्थकर्त्ता का तात्पर्य तो उस समय भाषा को सुधार उसको सुरूप देना था जिससे हिन्दी भाषा और उसके साहित्य विकास के लेखन के समय की भाषा उदाहरणीय बनी। इस रूपान्तरण के द्वारा उस समय की भाषा का तो सर्वथा उन्मूलन ही हो गया। अब भाषा को प्रगति देने के इतिहास में ऋषि की बनाई हुई भाषा तो अनुपलब्ध हो जायेगी।

आप ने उक्त वाक्य में मनसा के स्थान पर 'भावना' शब्द बदल दिया। इससे ऋषि के अभिप्राय का तो वध कर दिया, क्योंकि 'मनसा' का अर्थध्वनि 'भावना' भी है और 'इरादा' भी है। साथ ही 'मंशा' इस शब्द का ऋषि द्वारा हिन्दी-करण भी किया गया है। मेरे विचार में तो यह वाक्य रूपान्तरकार पर ही लागू हो रहा है।

विशेष निवेदन— आप के समक्ष अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ कि 'योगदर्शन' प्रणेता महर्षि पतञ्जलि को मुनिवर पाणिनि के प्रति अपार श्रद्धा थी। पतञ्जलि ऋषि सूत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के वैयर्थ्य और प्रत्याख्यान की स्थिति के निराकरण में लिखते हैं—

प्रमाणभूत आचार्यों दर्भपवित्र-पाणिः शुचाववकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म। तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुं किं पुनरियता सूत्रेण।

(वृद्धिरादैच्)

अर्थात् आचार्य पाणिनि के सूत्र प्रणयन में विशेष रहस्य है। हममें ऐसी श्रद्धा क्यों नहीं कि "समाधि-निर्धूनतमलचेतसा परोपकारवृत्तिपवित्रान्तःकरणो दयानन्दर्षिः सर्वकल्याणकारी भावसंवृतभाषास्वरूपं प्रणयति स्म।" अर्थात् परोपकार वृत्ति से पवित्रान्तःकरण वाले दयानन्द ऋषि ने समाधिगत निर्मल चित्त के द्वारा सर्वकल्याणकारी भावों से भरी हुई भाषा का स्वरूप निर्धारित किया था। अतः उनके प्रति-शब्द और वाक्यरचना सुरक्षणीय है।

यदि भूगर्भ शास्त्र और स्थापत्य कला की दृष्टि से मोहनजोदड़ो की खुदाई में निकले जूता, घड़ा, पत्थर आदि के सुरक्षण में लाखों रुपये व्यय किए जा सकते हैं और यदि मिस्र के पिरामिड और उनमें सुरक्षित ममी ये जड़ वस्तुएँ आधुनिक मानवता को नवीन संदेश दे सकती हैं, तो क्या हमारी ऋषि की वह आदि भाषा में अभिव्यक्त भावावलि हम को और विश्व को नव संदेश वा अभिनव चेतना न दे सकेगी?

यदि इस "आधुनिक रूपान्तर" के कुप्रयास का प्रतिरोध ऋषि भक्त आर्य जन न करेंगे, तो ऐसे प्रसिद्ध्यर्थ लोभी रूपान्तरकारों की निकट भविष्य में बाढ़ आती रहेगी। जो ऋषि के सभी ग्रन्थों का समूल परिवर्त्तन करने का दुःसाहस करेगी। हिन्दी भाषा को ऋषि की इस देन की महिमा जानना चाहें तो वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि के श्रद्धा भावों को पढ़ें।

क्या आधुनिकता के पुजारी रूपान्तरकार आर्य चाहेंगे कि "ऋषि प्रयुक्त वस्तुओं जैसे पुस्तक, खड़ाऊँ, हस्तलेख, पत्र, छड़ी, कमण्डलु आदि पर रंगीन पॉलिस वा रन्दा चलाकर रूपान्तर कर प्रदर्शनी में रखा जाये"।

भाषा-निर्माता ऋषि को नव शब्दों से सुधार का उपदेश देना ऐसा ही है जैसे कोई जीव सृष्टि विधाता को सुझाव दे कि प्रभु इस हिमालय में मानसरोवर के स्थान पर नैनीताल की झील, कञ्चनजंगा की चोटी नैनीताल में, गंगोत्री विन्ध्यपर्वत पर और अमुक नदी या खाड़ी अमुक स्थान पर होनी चाहिए।

इस रूपान्तर के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है और लिखना शेष है, परन्तु आर्यवीरों से मेरा अनुरोध है कि वे उठें सन्नद्ध हों और ऋषिवर के साहित्य को अक्षुण्ण बनाये रखने का दृढ़ संकल्प ले कर्तव्य क्षेत्र में आगे बढ़ें।

अन्त में मेरा श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी से सप्रेमानुरोध है कि वे मैनाक पर्वत बनकर इस 'सत्यार्थ-प्रकाश' महासागर में डुबकी लगाएँ और रत्नमणियाँ तल से निकालकर लावें तथा सर्वसाधारण को भेंट कर कल्याण की दिशा अपनाएँ और अपनी सुयोग्यता का सदुपयोग करें—

अथ बुभूषसि चेज्जगदीश्वर!
सप्रणयं भवतीह निवेद्यते।
ऋषिकृतार्थप्रकाशनवारिधेस्-
तलगतं बहुरत्न-समुच्चायम्॥

गहन-पाठ-पुरस्सरमुद्धर,
निखिललोक हितं परिसाधय।
कुटिलशोधनमार्गविसर्जनं,
मुनिवरस्य यशः प्रसृतं कुरु॥

अर्थात् हे रूपान्तरकार! यदि आप यथार्थ में जगदीश्वर बनना चाहते हो तो मैं आपसे सप्रेम निवेदन कर रहा हूँ कि आप महर्षि कृत "सत्यार्थप्रकाश" के समुद्र तल से इसका गहन अध्ययन करके अपार रत्न-राशि निकालकर लाइये और उसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् का कल्याण कीजिए।

इस रूपान्तरण के वक्र मार्ग का परित्याग कर अपना और ऋषिवर का यश प्रसारित कीजिए।

इति शम्

[आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र बदायूँ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ऋषि दयानन्द जी ने कहा है

जब मनुष्य का आत्मा हठ दुराग्रह से ग्रस्त हो जाता है, तब वह सत्यासत्य सद् असद् का निर्णय नहीं कर पाता है। अपने दुरभिमानवश असत्य को सत्य, असत् को सत् कहने का आग्रह करता है। कुछ ये ही स्थिति 'सत्यपति जी परिव्राजक की हो गयी है। वे सुख-दुःख को प्रकृति का स्वाभाविक गुण सिद्ध करने के लिए समस्त मर्यादाओं का अतिक्रमण कर चुके हैं। ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य इसलिए लिखा कि किसी को उनके सिद्धान्तों में किसी प्रकार भ्रम न हो जाये, इसलिए सारूप में अपने सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण कर दिया है, और आर्योद्देश्य-रत्नमाला में भी अपने सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया है जिससे उनके अन्य ग्रन्थों को पढ़कर के कहीं कोई भ्रान्त न हो जाये या कोई स्थान अस्पष्ट न हो तो जिससे उसके संबंध में किसी प्रकार का विवाद न रहे। ईश्वर जीव प्रकृति के संबंध में भी उन्होंने ऐसा ही किया है। वे जीव के बारे में स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में लिखते हैं—

१. "जो इच्छा द्वेष सुख दुःख और ज्ञानादि गुण युक्त अल्पज्ञ नित्य हैं, उसी को जीव मानता हूँ।" यहां ऋषि दयानन्द जी ने बिल्कुल ही स्पष्ट कर दिया है कि जिस प्रकार ज्ञान, इच्छा, अल्पज्ञ आदि जीव के गुण हैं, उसी प्रकार सुख दुःख भी उसी के गुण हैं। बात बिल्कुल स्पष्ट है और ऋषि दयानन्द ने इसको अपने सिद्धान्तों के निचोड़ के रूप में लिखा है, आगे पुनः वे लिखते हैं आर्योद्देश्यरत्नमाला में कि-जीव का स्वरूप जो चेतन अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न सुख दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य है वह जीव कहलाता है। यहाँ सुख दुःख को वैसे ही आत्मा का गुण मानते हैं जैसे चेतन ज्ञान आदि गुण को मानते हैं।

अब यदि कोई प्रश्न करे कि ये गुण आत्मा के नित्य हैं या अनित्य तो इसके संबंध में वे पुनः इसी ग्रंथ में लिखते हैं कि **अनादि पदार्थ तीन हैं— ईश्वर, जीव और प्रकृति। अर्थात् जगत् का कारण इन्हीं को नित्य भी कहते हैं जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।** यहाँ तो ऋषि ने सर्वथा ही अपने मन्तव्य को स्पष्ट करके लिख दिया है "कि तीन पदार्थ अनादि हैं ईश्वर जीव प्रकृति और इन पदार्थो के जो गुण कर्म स्वभाव हैं मैने पूर्व लिखा है वे इन्हीं पदार्थों के अन्दर नित्य रूप से विद्यमान भी रहते हैं क्योंकि ये पदार्थ नित्य हैं तो इनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं अर्थात् अविनाशी हैं। अब यदि कोई इतनी स्पष्ट बातों को भी न समझकर या अंहकारवश इनका अपलाप करके अन्यथा लिखता है या विद्वानों के लिए विचारणीय कहकर मूर्खतापूर्ण विवाद उठाता है तो उसको कौन रोक सकता है। क्या ऋषि दयानन्द जी विद्वान् नहीं थे? उनको वेदशास्त्रों का ज्ञान नहीं था? जो ये विद्वान् उन विषयों पर विचारेंगे और ऋषि के मन्तव्य के विरुद्ध विषवमन करेंगे और कहेंगे कि मेरा कोई नया विचार नहीं है और भाई अब इससे नया विचार क्या होगा कि ऋषि दयानन्द तो सुख दुःखादि जीव के गुण मानते हैं और तुम प्रकृति के मानने लगे हो। यदि ऋषि दयानन्द जी के इतने स्पष्ट विचारों को भी समझने की क्षमता नहीं है तो और शास्त्रों को कोई क्या समझ सकता है। छल कपट से डरो, परमात्मा को साक्षी मानो और मिथ्या अंहकार को छोड़कर सत्य को अपनाओ इसी में भला है। "

भवदीय

स्वामी अभयानन्द सरस्वती

गु० प्रभाताश्रम

भोला-मेरठ 250501

●●

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख व दुःख जीवात्मा के ही गुण हैं

—राजवीर शास्त्री

सुख दुःख क्या हैं? सुख दुःख किसके गुण हैं जीवात्मा के अथवा प्रकृति के? इस विवाद का उत्तर खोजने के लिए प्रथम इन शब्दों के स्वरूप पर विचार करना चाहिए। क्योंकि कुछ व्यक्ति इस विवाद को बढ़ाने की चेष्टा कर रहे हैं। आर्य जगत् की विभिन्न पत्रिकाओं में (परोपकारी, आर्यमित्र, सुधारक आदि में) लेखानुलेख पढ़कर अत्यन्त खेद हुआ। इन लेखों में प्रमुख रूप से मेरे नाम को उद्धृत किया गया है। अतः उत्तर देना उचित समझता हूँ।

सुख और दुःख संस्कृत भाषा के अन्वर्थक शब्द तथा समस्त शब्द हैं—सु=शोभनम् खेभ्यः इन्द्रियेभ्यः अर्थात् जो इन्द्रियों को अच्छा लगे उसे सुख कहते हैं। और दुः=दुष्ठु= अशोभनम् खेभ्य=इन्द्रियेभ्यः अर्थात् जो इन्द्रियों को अच्छा न लगे उसे दुःख कहते हैं। इसमें शास्त्रीय प्रमाण भी देखे जा सकते हैं।

'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू०' (कठोपनिषद्)

मार्च, ९६ के दयानन्दसन्देश में मैंने किसी संन्यासी के प्रति अनादर की भावना प्रकट न करके एक यथार्थ बात लिखी थी कि स्वामी जी आप और मैं अहं भावना को त्याग कर विवाद का समाधान ढूँढें तो श्रेयस्कर रहेगा।

वागुक्ता सा यदि वञ्चिता भ्रान्ता प्रतिपत्तिबन्ध्या वा भवेत्।

वाणी का उपयोग अपने ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने के लिए होता है। यदि यह ठगने वाली भ्रान्ति पैदा करने वाली अथवा सत्यासत्य, सही या गलत का बोध नहीं करने वाली है। वह वाणी निरर्थक होती है। इसका भाव या प्रसंग न समझकर आपने लिखा है यह तो निरर्थक ही लिखा है।

१. यो भोगेष्विन्द्रियाणां तृप्तेरुपशान्तिस्तत् सुखम्॥
(योगभाष्य १।१५)

अर्थात् लौकिक भोगों में इन्द्रियों की तृप्ति से जो उपशान्ति=सान्त्वना मिलती है उसे 'सुख' कहते हैं।

२. येनाभिहताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद् दुःखम्॥ (योगभा० समाधि० ३१ सूत्र)

और जिससे पीड़ित होकर प्राणी उसके नाश के लिए प्रयत्न करते हैं, उसे दुःख कहते हैं। और वह तीन प्रकार का होता है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक।

३. बाधनालक्षणं दुःखम्॥ न्याय०॥

बाधा= पीड़ा को कहते हैं और उससे अनुबिद्ध प्राणी दुःखी कहलाता है। इसलिए ऋषियों ने एक स्वर से ही इसे जीवात्मा का गुण बताया है।

४. वैशेषिक दर्शन के "प्राणापान………"
(वै० ३।२।४)

सूत्र में भाष्यकार आर्यमुनि लिखते हैं— (इन्द्रियान्तविकारः) धर्म जन्य अनुकूल ज्ञान के विषय का नाम सुख तथा अधर्मजन्य प्रतिकूल ज्ञान का नाम दुःख है।

५. सुख दुःख का प्रत्यक्ष ज्ञान हमें कैसे होता है। इसकी प्रक्रिया समझाते हुए न्याय में वात्स्यायन भाष्य में लिखा है कि आत्मादिषु सुखादिषु च प्रत्यक्षलक्षणं वक्तव्यम्। आत्मादि तथा सुखादि का प्रत्यक्ष कैसे होता है उसका प्रकार समझाते हैं।--- जीवात्मा प्रथम मन से सम्पर्क करता है मन इन्द्रियों से तथा इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से सम्बद्ध हो कर प्रत्यक्ष कराती हैं। क्योंकि मन भी इन्द्रिय ही है। अतः प्रत्यक्ष के लक्षण में 'इन्द्रियार्थसन्निकर्ष' के अन्तर्गत ही आ जाता है।

६. न्यायदर्शन में ही प्रमेयों की व्याख्या करते हुए लिखा है? आत्मा भोक्ता है, उसके भोग का आधार शरीर है, भोग के साधन नेत्रादि इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों के अर्थ ही भोक्तव्य हैं, बुद्धि ही भोग है, और फल तथा दुःख का स्वरूप समझाते हुए लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ससाधनसुखदु:खोपभोगः फलम्।

जन्म—ससुखसाधनस्य दु:खानुषङ्गात् विविध-बाधनायोगाद् दु:खम्॥

अर्थात् सुख दु:ख के साधनों का बुद्धि विषयत्वापन्न भोग ही फल है। सुख के साधनों का दु:ख से सम्पर्क होना ही दु:ख है। इसी बात को इस प्रकार कह सकते हैं।

अनुकूलवेदनीयं सुखं प्रतिकूलवेदनीयं दु:खम्॥ अर्थात् आत्मा के अनुकूलता ही सुख है और प्रतिकूलता ही दु:ख है॥

६. महर्षि मनु ने सुख दु:ख की व्याख्या इस प्रकार की है-

सर्वं परवशं दु:खम् सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदु:खयो: ॥

सुख दु:ख का संक्षेप में यही लक्षण जानना चाहिये अर्थात् दूसरों के आधीन होना ही दु:ख है और अपने आधीन रहना ही सुख है।

इस प्रकार उपरोक्त सुख दु:ख के लक्षणों से यही स्पष्ट होता है कि ये जड़ प्रकृति के गुण न होकर जीवात्मा के ही गुण हैं।

सुख-दु:ख किसके गुण हैं—

सुख दु:ख के प्रामाणिक लक्षणों को समझाकर तथा दर्शन के अन्वय व्यतिरेक न्याय को समझकर व्यक्ति स्वयं ही उत्तर ढूंढ सकता है ये किसके गुण हैं। दर्शनों में अन्वय-व्यतिरेक न्याय क्या है-जिसके होने से जो कार्य हो और न होने से न हो, उसे अन्वय व्यतिरेक कहते हैं। जैसे जीवित व्यक्ति के शरीर पर अग्नि का छोटा सा कण पड़ जाये तो अतीव भयंकर वेदना होती है और मृत्यु के बाद पूरे शरीर को ही चिता पर रख देते हैं परन्तु लेशमात्र भी पीड़ा नहीं होती। अत: स्पष्ट है कि जीवात्मा का शरीर से जब तक सम्बन्ध रहता है तब तक ही दु:ख होता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि सुख दु:ख का भोक्ता जीवात्मा ही है। प्रकृति अग्नि तो पहले और बाद में भी है। इसीलिये समस्त शास्त्रों में एक मत से यह स्वीकार किया है-इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदु:खज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्॥ अर्थात् जीवात्मा वह है जिसमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दु:ख और ज्ञान हो। महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से और सर्वत्र यही लिखा है।

अब दूसरा विचार यह आया है कि ये जीवात्मा के गुण नहीं, ये प्रकृति के हैं। और हमसे अपनी मान्यता के विषय में (परोपकारी और आर्यमित्र में) प्रमाण मांगा जा रहा है। हमने बार-बार यह लिखा है कि प्रकृति अथवा प्रकृति से बने भोग्य पदार्थ साधन तो हैं किन्तु सुख-दु:ख गुण वाले नहीं। यदि उनका सुख-दु:ख गुण हो तो प्रकृति सुखी व दु:खी होनी चाहिये। क्योंकि यह सर्वमान्य बात है कि गुणी से गुण कदापि पृथक् नहीं हो सकता।

और प्रकृति वा प्रकृति से बने पदार्थों में प्रीति, स्वादु आदि गुण हैं और वे प्रकृति के स्वाभाविक गुण हैं। इस मान्यता को मैं सर्वथा असंगत मानता हूं। प्राकृतिक स्वादिष्ठ से स्वादिष्ठ भोजन में स्वादु या प्रीति गुण प्रतीत हो रहा है, परन्तु वह यथार्थ में नहीं है। लोक में कहावत है **'भूख में गूलर भी पकवान दिखाई देते हैं।'** भूख यदि नहीं है तो इनमें ये गुण कहाँ है। बहुत मधुर व स्वादु हलुवे को एक से अधिक बार खाने में न तो वह माधुर्य ही रहता है और न वह स्वाद। विविध स्वादिष्ठों से भरा थाल सामने रखा है, भूख न होने पर उसको देखकर अनिच्छा होने से वमनादि होने लगती है। यदि ये प्रकृति का स्वाभाविक गुण होता है तो ये गुण तब भी होना चाहिए। और भूख तो आत्मा का गुण है।

महर्षि-दयानन्द की मान्यता

प्रश्न— जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है?

उत्तर— दोनों चेतन स्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है परन्तु परमेश्वर के···· और जीव के···· इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदु:खज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्॥ न्यायसूत्र॥ (इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा, (द्वेष) दु:खादि की अनिच्छा, वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दु:ख) विलाप प्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहिचानना ये तुल्य हैं। परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राण वायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर से भीतर को लेना (निमेष) आंख को मीचना (उन्मेष) आँख को खोलना (मन) निश्चय, स्मरण और अंहकार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तर्विकार) भिन्न-भिन्न क्षुधा-तृषा, हर्ष शोकादि युक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं, इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी क्योंकि वह स्थूल नहीं है।

जब तक आत्मा देह में होता है, तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं। और जब शरीर छोड़कर चला जाता है। तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हो और न होने से न हो वे गुण उसी के होते हैं।
(स० प्र० सप्तम०)

जीव सब का प्रेरक, सब का कर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता-भोक्ता कहाता है। जो ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता-भोक्ता नहीं तो उसको जानो कि वह अज्ञानी अविवेकी है। क्योंकि बिना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं। इनको सुख-दुःख का भोग वा पाप-पुण्य का कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता है। इनके सम्बन्ध से जीव पाप-पुण्यों का कर्त्ता और सुख-दुःखों का भोक्ता है।

जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों की प्रेरणा करके अच्छे व बुरे कर्मों में लगता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। (स० प्र० नवम समु०)

इस महर्षि के लेख को समझने का प्रयास करना चाहिये। कि जीव सुख-दुःख, भूख-प्यास, हर्ष शोकादि गुणों वाला है और गुणों से ही गुणी का ज्ञान होता है। प्रकृति जन्य पदार्थ सुख व दुःख के कारण तो हैं, किन्तु सुख दुःख गुण वाले नहीं। इनमें जो सुख व दुःख की प्रतीति हो रही है क्षणिक है और वह भी जीवात्मा, इन्द्रियाँ, मन तथा अर्थ के साथ क्रमशः सम्पर्क से होता है। जो जीवात्मा के बिना सुख दुःख का भोग स्वीकार करे वह अज्ञानी और अविवेकी है।

स्वामी सत्यपति जी के आक्षेपों का उत्तर

१. सुख दुःख प्रकृति के गुण हैं, इस मान्यता में कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। सभी ऋषियों ने एक स्वर से सुख दुःख को जीवात्मा का ही गुण माना है।

२. नवम समुल्लास में आनन्द प्रकृति का गुण माना है यह बात भी प्रसंग से बाह्य तथा प्रकरण को न समझना है। महर्षि लिखते हैं (इन्हीं कोशों से) जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है। इससे स्पष्ट है ये कोश जीव के साधन मात्र हैं।

३. मेरे पत्र का दिग्दर्शन भी मिथ्या ही है क्योंकि मेरे पास स्वामी जी का कोई लेख नहीं आया। हां! स्वामी जी के शिष्य श्री अर्जुनदेव जी लेख लेकर आये थे। और उनको मैंने कोई लिखित उत्तर नहीं दिया था।

४. मेरे सम्पादकीय (सरल योग से ईश्वर साक्षात्कार) और योगदर्शन भाष्य से जो उद्धरण दिये गये हैं उनसे भी स्वामी जी की मान्यता सिद्ध नहीं होती क्योंकि संसार के भौतिक पदार्थ सुखद या सुख देने के कारण तो हैं ही परन्तु आप तो सुख दुःख को उनका गुण मानते हो। आप भाषा को समझने का तो प्रयास करें। भाषा में वाच्य अर्थ ही नहीं होते। भाषा में लाक्षणिक प्रयोग भी होते हैं। जैसे एक व्यक्ति केले बेचते हुए कह रहा है-मलाई हो रहे हैं केले। यहां उसका भाव यही है कि केले तो मलाई कभी नहीं हो सकते इसलिए मलाई की तरह केले मधुर तथा कोमल हैं।

५. सुख-दुःख का लक्षण मैंने व्यास भाष्य से दिया है जिससे इन्द्रियों को शान्ति मिलती है उसे सुख कहते हैं और यह प्रकृति के पदार्थों में कहाँ है। आत्मा इन्द्रियों के द्वारा सुख व दुःख को भोगता है। दूसरे प्रमाण की आपने जो मिथ्या व्याख्या की है वह भी विचित्र है। प्रमाण में कहा है कि जिससे दुःखी होकर प्राणी उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। मान लीजिए मुझे भूख लगी है तो मैं भोजन प्राप्त कर व जल लेकर उसे दूर करता हूँ। परन्तु आप लिखते हैं कि सुख दुःख को आप प्रकृति का गुण न मानकर आत्मा का गुण मानते हैं। क्या अपने स्वरूप का ही नाश करने का प्रयत्न करते हैं। धन्य है स्वामी जी महाराज! जो आपने मिथ्या मान्यता बनाकर व्यास भाष्य का ही अनर्थ कर दिया है।

६. न्यायदर्शन के प्रमाण का भी आपने अनर्थ किया है। 'बाधनालक्षणं दुःखम्' इस न्याय सूत्र का अर्थ है-बाधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीड़ा को कहते हैं उससे पीड़ित प्राणी दुःखी वा सुखी कहलाता है। आपने शरीरादि को दुःखी कहकर अपने पक्ष को निरर्थक सिद्ध करने का यत्न किया है इससे आपके दार्शनिक ज्ञान की ही पोल खुल रही है।

७. मेरे द्वारा दिये दार्शनिक प्रमाणों की गलत व्याख्या दिखाकर आपने पाठकों को भ्रान्ति में रखा है और आप अपने पक्ष में सुख दुःख का क्या स्वरूप है, उसे बताने में सर्वथा असमर्थ रहकर शास्त्रार्थ की परम्परा से पलायन कर गये हैं।

८. मैंने लिखा था सुख व दुःख की प्राप्ति में प्रकृति से बने पदार्थ कारण तो हैं। किन्तु उससे भिन्न भी कारण हैं जैसे धर्म से सुख मिलता है, अधर्म से दुःख होता है। इसी प्रकार सदाचार से सुख और दुराचार से दुःख क्या धर्म के भी सुख आदि गुण मानोगे। इसका उत्तर न देकर आपने यह भी लिखा है– यह लिखकर आपने मेरी मान्यता को तो स्वीकार कर ही लिया है। यहाँ उत्तर न देकर तो उभयतो पाशबद्ध की भांति स्वामी जी हो गये हैं। क्योंकि धर्म अधर्म, सदाचार दुराचार आदि से सुख दुःख की प्राप्ति से इन्कार कैसे करें?

९. जीवों को कर्म-फल-व्यवस्था के अनुसार सुख दुःख तो परमात्मा भी देता है यदि ये सुखादि गुण प्रकृति के मानोगे जो कि समस्त शास्त्रों के विरुद्ध है, तब ईश्वर-प्रदत्त सुख दुःख को क्या कहोगे।

१०. और सत्त्वादि तीनों गुण प्रकृति के हैं और उनकी व्याख्या में आपने मनुस्मृति का उद्धरण दिया है वह भी आपके पक्ष का पोषक नहीं है–

तत्र यत् प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्।

इसकी व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं— जब आत्मा में प्रसन्नता, मन प्रसन्न, प्रशान्त के सदृश शुद्ध भान युक्त वर्त्ते, तब समझना कि सत्त्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान है। और यदि सत्त्वादि के गुणों पर ही बल दो तो आपको

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम्।

यहाँ ज्ञान को भी आत्मा का गुण मानकर प्रकृति का ही गुण मानने को बाध्य होना पड़ेगा।

११. इसके अतिरिक्त आपने अपने लेख में आनन्द को भी प्रकृति का गुण बताकर अतीव निम्न स्तर की बात कही है और वदतो व्याघात दोष भी किया है। 'ईश्वर के आनन्द को अनुभव करता है' (परो०) क्योंकि यहाँ आनन्द तो प्रकृति गुण न होकर ईश्वर का गुण माना है।

१२. आपने जो वेद मन्त्र तथा उसकी व्याख्या लिखी है, वह भी आपके पक्ष की पोषक नहीं है। इसलिए 'मेरा पक्ष वैदिक है,' ऐसा अहंकार पूर्ण लिखना आपको शोभा नहीं देता। क्योंकि मन्त्र में सुख के कारण होने से पार्थिव वस्तुओं को सुखकारी लिखा है।

१३. और आपका यह कथन भी अस्पष्ट तथा भ्रान्ति-जनक है। महर्षि दयानन्द का लेख सामान्य परिस्थितियों में उचित हो सकता है परन्तु विशेष रूप से (परोपकारी से) ऐसा लिखकर आपकी स्थिति ऐसी हो गई है कि स्वामी दयानन्द की मान्यता मानें तो आपकी मान्यता धराशायी हो जाती है और नहीं मानें तो अपने भक्तों की दृष्टि में गिर जाऊँगा। और आप स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि मैं ऋषियों पर पूर्ण विश्वास नहीं करता?

१४. और यदि श्री विद्यानन्द जी सरस्वती की व्याख्या आप ठीक मानते हैं कि जिन्होंने आपकी भांति ही ऋषियों से अपने को ऊपर मानकर सूत्रों को बिगाड़कर ही लिखा है। जैसे—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ (यो० सू०)

इसके स्थान पर सूत्र बना रहे है वैराग्याभ्यासाभ्यां तन्निरोधः॥ जो संस्कृत व्याकरण के नियम से भी गलत है।

१५. प्रकृति का गुण मानने का यह हेतु भी गलत है कि जो गुण जिसका है वह उसका अनुभव भी करे। क्योंकि समस्त प्रकृति के भोगों का भोक्ता तो जीवात्मा ही है। और ऐसा हेतु हमने कहीं नहीं लिखा है।

इस प्रकार आपकी मान्यता वेद-दर्शन तथा महर्षि-दयानन्द के विरुद्ध है। आपका यह परामर्श आप पर ही चरितार्थ हो गया है। कि आप अपनी मान्यता पर पुनः विचार करें और सन्मार्ग को अपनायें।

धन्यवाद के साथ। इति शम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसा मसीह भारतीय शिष्य थे

हेरोदेस राजा यीशु के जन्म से भयभीत हो गया। वह इस बच्चे को ढूँढकर मरवा डालना चाहता था। उसके यह विचार, मन की बात खुल गये, लोगों को मालूम हो गए। इस कारण यूसुफ़ रात ही को उठकर बालक यीशु और उसकी माता (मरियम) को लेकर दूर मिश्र को चला गया और हेरोदेस राजा के मरने तक वहीं रहा। मिस्र जाने में कष्ट हुआ, खाने-पीने और निवास आदि की व्यवस्था करने में परेशानी हुई किन्तु इसके पीछे उसका, उसकी पत्नी का और मुख्यत: ईसा का भला होने वाला था। यह गुप्तता अभी भविष्य के गर्भ में छिपा था।

यूसुफ़ परिवार को लेकर मिस्र क्यों गया, किसके कहने पर स्थान परिवर्तन का कष्ट प्रसन्नता से स्वीकारा? इस प्रश्न के उत्तर के लिए एसीन भ्रातृसंघ के विषय में थोड़ी जानकारी रखना आवश्यक है।

''परमेश्वर पुत्र ईसा'' पुस्तक में श्री जगदीश्वरप्रसाद, वानप्रस्थ लिखते हैं कि इज़राइल के धार्मिक समुदाय में अलगाव की प्रवृत्तियाँ बढ़ गयी थीं और कई पृथक्-पृथक् समुदाय जैसे फरीसी, सदूकी आदि बन गये थे। इन्हीं में से एक एसीन समुदाय था जो बौद्ध धर्म की एक शाखा थी। ये अपने धार्मिक विश्वासों में अति दृढ़ थी। ईसा पूर्व पहली शताब्दी से एक शताब्दी ईस्वी तक यह समुदाय फिलस्तीन से मिस्र तक फैला हुआ था।

इसकी शाखाएँ भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थापित थीं। इस समुदाय के सदस्य संघ बनाकर रहते थे जिसे वे एसीन भ्रातृसंघ कहते थे।

इस भ्रातृसंघ से यूसुफ का संबंध था। वह भले ही सक्रिय सदस्य न रहा हो किंतु समर्थक और सहायक अवश्य ही था। संस्था के लोग उसकी बराबर देख-रेख करते रहते थे। समय-समय पर उसको भला रास्ता दिखाया करते थे। जब यूसुफ़ कठिन समय, संकट में उलझ गया तो इस संघ ने उसको निर्देश दिया कि वह अपनी धर्मपत्नी और शिशु ईसा को लेकर मिस्र चला जाये। उसके सकुशल यात्रा की पूरी व्यवस्था इसी संस्था ने की। मिस्र में रहने, खाने, निवास आदि की जिम्मेदारी इसी संस्था ने वहन की।

ईसा को संघ के अधीन एक पाठशाला में प्रविष्ट कराया गया जिसमें बुद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती थी। इसी पाठशाला में उसने धम्मपद, गीता, उपनिषदों के विषय में प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त किया। इन धर्म की पुस्तकों के अध्ययन की इच्छा उसमें जगी और उसने यह भी निश्चय कर लिया कि वह भारतवर्ष इनके अध्ययन के लिए अवश्य ही जाएगा। यहाँ पढ़ते-पढ़ते ईसा की आयु लगभग १२ वर्ष की हो गई। इधर हेरोदेस राजा का देहान्त हो गया तब संघ का आदेश हुआ कि यूसुफ़ अपना परिवार लेकर अपने घर चला जाए।

और बालक (ईसा) बढ़ता और बलवान् होता और बुद्धि से परिपूर्ण होता गया और परमेश्वर का अनुग्रह उस पर था। (लूका २/४०) जब वह बारह वर्ष का हुआ तो वे (यूसुफ और मरियम और ईसा) पर्व्व की रीति के अनुसार यरूशलेम को गए। और जब वे उन दिनों को पूरा करके लौटने लगे तो वह लड़का यीशु यरूशलेम में रह गया और यह उसके माता-पिता नहीं जानते थे। वे यह समझकर कि वह और यात्रियों के साथ होगा एक दिन का पड़ाव निकल गए और उसे अपने कुटुम्बियों और जान-पहचानों में ढूंढ़ने लगे। पर जब नहीं मिला तो ढूंढ़ते-ढूंढ़ते यरूशलेम को फिर लौट गए। और तीन दिन के बाद उन्होंने उसे मंदिर में उपदेशकों के बीच में बैठे, उनकी सुनते और प्रश्न करते हुए पाया। और जितने उसकी सुन रहे थे, वे सब उसकी समझ उसके उत्तरों से चकित थे। तब वे उसे देखकर चकित हुए और उसकी माता ने उससे कहा-''हे पुत्र! तूने हमसे ऐसा व्यवहार क्यों किया? देख तेरा पिता (यूसुफ) और मैं कुढ़ते हुए तुझे ढूँढ़ते थे। उसने उनसे कहा-तुम मुझे क्यों ढूँढ़ते थे? क्या नहीं जानते थे कि मुझे अपने पिता के भवन में होना (कामों में लगे रहना) अवश्य है?'' परंतु जो बात उसने उनसे कही, उन्होंने उसे नहीं समझा। तब वह उनके साथ गया और नासरत में आया और उनके वंश में रहा और उसकी माता ने ये सब बातें अपने मन में रखीं।

और यीशु बुद्धि और डील-डौल में और परमेश्वर और मनुष्यों के अनुग्रह में बढ़ता गया। (लूका २/४० से ५२)।

रूसी अन्वेषक विद्वान् डॉ० निटोलस नोटोविच अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक "ईसा का अज्ञात चरित्र" में लिखते हैं कि ईसा जब तेरह वर्ष का हुआ तो उसके माता-पिता ने उसके विवाह की तैयारी की परंतु ईसा के मन में विवाह करने की इच्छा न थी। निज की आरंभिक शिक्षा से प्रेरित होकर बालक ईसा इस कामना की पूर्ति के लिए अवसर की प्रतीक्षा करने लगा जब वह भारत भूमि पर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरुओं की शरण में जाएगा। कहावत भी है कि "जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ"। घर से दूर जाना चाहता था। भ्रातृसंघ के सदस्यों ने उसकी पूरी सहायता की। कुछ निष्कपट व्यापारी व्यापार हेतु भारत आर्यावर्त जाने की तैयारी में थे, उन्हीं के साथ ईसा को भेज दिया। वे लोग सिन्धु प्रदेश से आर्यावर्त में आये।

डॉ० नोटोविच लिखते हैं कि वह कुछ दिन बौद्ध व जैनियों के साथ घूमता रहा और बाद को जगन्नाथ पुरी पहुँचा। वहाँ विद्वान् ब्राह्मणों के पास जाकर वेद पढ़ना प्रारंभ किया। स्मृति का भी अध्ययन उसने वहीं किया। यहाँ तक अध्ययन करते हुए वह बीस वर्ष का हो गया। उसके बाद उसने साधुओं के साथ राजगृह, प्रयाग, काशी की यात्रा की। बौद्ध विहार में छह वर्ष तक रहकर उसने बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त की। वहाँ से फिर वह नेपाल की ओर से बढ़ता तिब्बत चला गया। इस प्रकार अपनी आयु के सत्रह वर्ष वह भारत में बिता कर बौद्ध भिक्षु बनकर ईरान के मार्ग से स्वदेश चला गया और उसने अपने तत्व-ज्ञान का प्रचार किया।

डॉ० निकोलस नोटोविच की खोज पर ईसाई समाज अभी तक शंकायुक्त रहा और उनके निष्कर्ष को बनावटी तथा धोखाधड़ी से पूर्ण समझता था। किन्तु उसका सन्देह निर्मूल साबित हो गया है जब एक अमरीकी धर्म प्रचारक एलिजाबेथ प्रॉफेट ने घोषणा की कि ईसा मसीह ने तिब्बत में चौदह वर्ष बिताये और इस अवधि में उन्होंने बौद्ध और हिन्दू धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया था।

ईसा मसीह, ईसाई धर्म और भारत में बहुत घनिष्ठ संबंध रहा है। दक्षिण भारत में सीरियन क्रिश्चियन संसार के सर्वप्रथम ईसाइयों में गिने जाते हैं। श्रीमती प्रॉफेट का कहना है कि ईसा केवल चौदह वर्ष की आयु में तिब्बत आये थे। उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ईसा मसीह चौदह साल तिब्बत के बौद्ध मठ गोफाओं में रहे और उन्होंने वहाँ बौद्ध और हिन्दु धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया।

श्रीमती प्रॉफेट के पहले एक रूसी पत्रकार निकोलस नोटोविच ने भी ईसा की तिब्बत यात्रा के बारे में लिखा था। वहाँ लामाओं ने उन्हें बताया कि गोफाओं में रखी पाण्डुलिपियों में ईसा के जीवन के उन वर्षों के बारे में जानकारी दी गई है, जब वे यरूशलेम में नहीं थे। श्री नोटोविच ने कहा था कि ईसा मसीह कई धार्मिक नेताओं से मिले थे और उन्होंने बौद्ध धर्म और हिन्दु धर्म का अध्ययन किया था।

श्रीमती प्रॉफेट ने अपनी पुस्तक "द लास्ट ईयर्स ऑफ जीसस" में डा० नोटोविच की खोज की पुष्टि की है और ईसा मसीह की तिब्बत यात्रा के बारे में नये साक्ष्य दिये हैं।

श्रीमती प्रॉफेट ने इस संबंध में एक पाँच दिन का सम्मेलन भी अमरीका में आयोजित किया था। इस सम्मेलन में भाग लेने वालों की राय में ईसा की तिब्बत यात्रा विश्व के सभी धर्मों का एक-दूसरे से संबंध प्रस्थापित कर नये युग के लिए एक नये विश्व धर्म की ओर एक प्रयास हो जाता है।

डॉ० नोटोविच की पुस्तक छपने पर पादरी संसार में भारी हलचल मच गई। पर जब वे उनके प्रमाणों को काट न सके तो मैक्समूलर के चरणों में जाकर गिरे। मैक्समूलर ने पादरियों की रक्षा करने के उद्देश्य से अपने पत्र "नाइन्टीन्थ सैन्चुरी" में लिखा है कि डॉ० एम० नोटोविच को तिब्बत के साधुओं ने ठगा है। वास्तव में ईसा मसीह कभी भारत गये ही नहीं थे। अंग्रेज पादरियों ने कश्मीर के किसी एफ०बी०शा० नाम के एक ईसाई से एक पत्र लिखाकर मंगाया कि एम नोटोविच नाम का कोई रूसी हिमिस में कभी नहीं आया और न हिमिस में ईसा का कोई जीवन-चरित्र है। लद्दाख के एक ईसाई से भी इसी तरह का पत्र मंगाया गया और डॉ० नोटोविच को मिथ्यावादी साबित करना आरंभ कर दिया।

उन दिनों डॉ० नोटोविच लंदन में थे। उन्होने लंदन के टाइम्स पत्र में पादरियों व मैक्समूलर के लेखों का दावे से खण्डन किया था जिसका उत्तर फिर कोई पादरी नहीं दे सका था।

इन घटनाओं से ईसा के भारत आने और शिक्षा ग्रहण की बात को बल मिलता है—

१. हूण राजा शालिवाहन और ईसा समकालीन थे। यह बात शालिवाहन के संवत् तथा ईसाई संवत् के मेल से स्पष्ट हो जाती है। शालिवाहन शक संवत् और ईस्वी सन् में ७८ वर्ष का अंतर आता है यदि शालिवाहन संवत् राजा शालिवाहन के जन्म से माना जाये और ७८ वर्ष उनकी आयु में के उसमें जोड़ दिये जायें तो अंतर मिट कर दोनों समवयस्क बैठ जाते हैं। दोनों की भेंट हिमालय पर होने से दोनों समकालीन तो स्पष्ट ही सिद्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. इसी प्रकार नाथ सम्प्रदाय की पुस्तक "नाथ नामावली" में निम्न प्रकार वर्णन मिलता है—

चौदहवें वर्ष में भारत आकर ईसा ने शिव की उपासना आरंभ की। उस समय उसका नाम ईसनाथ था। तत्पश्चात् वह शैव तत्त्वों के प्रचार हेतु अपने देश को गया। वहाँ उसे लोगों ने क्रास पर चढ़ा दिया। यह देखकर एक गुरु ने उसे क्रास से निकाल कर जीवित कर दिया और वह फिर ईसनाथ को भारत में लाया। वहाँ उसने अपना मठ हिमालय के नीचे भूमि में स्थापित किया। वहाँ तीन वर्ष तक ईसनाथ ने तप किया और ४९ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुआ। उसकी समाधि अब भी कश्मीर में दिखाई देती है।

कहा जाता है कि ईसा का नाथपन्थी एक चित्र रोम के पोप के वैटिकन राज्य महल में मौजूद है जिसमें सर पर चोटी व धोती पहने भारतीय साधु के रूप में विद्यमान है। वह बौद्ध भिक्षु स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

आर्यावर्त के जगन्नाथपुरी, राजगृह, प्रयाग, काशी आदि स्थानों में ईसा ने भिक्षा हेतु समय बिताए किंतु उनको काश्मीर से विशेष लगाव था। संभवत: वहाँ की जलवायु, प्राकृतिक दृश्य ने उनका मन मोह लिया हो।

४ जून सन् १९८४ के नवभारत रायपुर में प्रकाशित समाचार से ज्ञात हुआ है कि पश्चिम जर्मनी से आठ सदस्यीय अध्ययन दल को एक प्रायवेट सोसायटी के जाँच आयोग ने अध्ययन हेतु भारत भेजा था। दल ने ईसा मसीह के कश्मीर घाटी में रहने की संभावनाएँ व्यक्त की हैं। दल को कुछ प्रमाण ऐसे अवश्य मिले हैं जिससे ईसा मसीह के कश्मीर में रहने की संभावना को बल मिलता है।

क्या ईसा मसीह वास्तव में कश्मीर घाटी में आये थे? हाल ही में ईसा मसीह के जीवन पर लिखित एक पुस्तक "दि फिफ्थ गोस्पेल" में यह दावा किया गया है कि ईसा मसीह कश्मीर घाटी आये थे और उन्होंने कश्मीर के तत्कालीन नरेश शालिवाहन से भेंट की थी। शालिवाहन ने ३९ ई० से ५० ई० तक राज्य में शासन किया था। इस पुस्तक के लेखक फिदा हुसैन हैं जो जम्मू एवं कश्मीर के पुरातत्त्व निदेशक हैं। एक सौ पंद्रह ई० में लिखित भविष्य महापुराण संस्कृत ग्रंथ के हवाले से यह दावा जताया है जिसमें कहा गया है कि महाराजा शालिवाहन की हिमालय यात्रा के दौरान विएन के निकट उनकी भेंट एक संत से हुई थी जिसका रंग गोरा था और जो श्वेत परिधान धारण किये हुए था। विएन श्रीनगर शहर से १८ किलोमीटर की दूरी पर है। लेखक ने यह भी कहा है कि जब महाराजा ने उस सन्त से उसका नाम पूछा तो उसने उत्तर दिया कि मैं श्रीनगर के पुत्र के रूप में जाना जाता हूँ। संत ने उन्हें यह भी बताया कि उसे दुष्ट लोगों ने तब सताया जब उन्होंने यह उपदेश दिया कि मानवों को प्रभु की सेवा करनी चाहिए।

श्री फिदा हुसैन ने कहा कि गोस्पेल ने कहीं यह नहीं कहा कि ईसा मसीह ने चौदह से २९ वर्ष के बीच क्या किया? लगभग पंद्रह वर्ष की अवधि ईसा मसीह ने कहाँ और कैसे बिताई, यह एक रहस्य है। उन्होंने बाईबल के पुराने संस्करण का उल्लेख किया जिसमें ल्यूक कहता है और बच्चा बड़ा हुआ और उसकी आत्मा बलिष्ठ हुई और वह उस दिन तक अलग-थलग था जिस दिन तक वह इज़रायल में प्रकट हुआ। ये शब्द इस बात का संदेश देते हैं कि ईसा मसीह ने तेरह वर्ष की आयु में ही अपना देश छोड़ दिया था।

इस पुस्तक में कहा गया है कि पंजाब की पाँच नदियों को पार करने के बाद वह पहले राजपूताना आये थे और वहाँ से घूमते-घूमते कश्मीर घाटी में पहुँचे थे। कश्मीर में वह यूज़ आसफ़ के नाम से जाने गये थे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार मुल्ला नादरी ने लिखा है कि यूज़ आसफ़ ही ईसा मसीह थे।

इस प्रकार धार्मिक शिक्षा, दार्शनिक विचार प्राप्त कर ईसा अपने देश को लौट गया। अपने ज्ञान के आधार पर लोगों को उपदेश करने लगा। यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला कहता है, मैं तो पानी से तुम्हें मनफिराव का बपतिस्मा देता हूँ, परंतु जो मेरे बाद आने वाला है (अर्थात् ईसा मसीह) वह मुझ से शक्तिशाली है, मैं उसकी जूती उठाने के योग्य नहीं, वह तुम्हें पवित्र आत्मा और आग (यज्ञ, हवन की ओर संकेत है) से बपतिस्मा देगा। (मत्ती 3/11) बाईबिल की रचना ईसा मसीह के तीन सौ वर्ष पश्चात् की गई है और वह भी सुनी हुई बातों के आधार पर जैसा कि लूका लिखता है—"जैसा कि उन्होंने जो पहले ही से इन बातों के देखने वाले और वचन के सेवक थे हम तक पहुँचाया। इसलिए हे श्रीमान् थियु फिलुस मुझे भी यह उचित माहूम हुआ कि उन सब बातों का संपूर्ण हाल आरंभ से ठीक-ठीक जाँच करके उन्हें तेरे लिए क्रमानुसार लिखूँ कि तू यह जान ले कि वे बातें जिनकी तूने शिक्षा पाई है कैसी अटल हैं।

—विश्वनाथ प्रसाद

एन. ई-५४, विद्युत् कालौनी, कोरबा (पूर्व) जिला-बिलासपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जून, ९६ से आगे

सद्बुद्धि की कामना

गायत्री मन्त्र की व्याख्या

(भगवान् देव चैतन्य)

भूः भुवः स्वः।

पंचमहायज्ञविधि नामक ग्रन्थ में इन महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं- (भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है इससे परमेश्वर का नाम भूः है। (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इसलिए परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक हो के सब को नियम में रखता और सब का ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इससे परमेश्वर का नाम स्वः है।

उपरोक्त पंक्तियों में महर्षि ने व्याहृतियों के गूढ़ रहस्य को खोल कर रख दिया है। वह परमात्मा ही समस्त जगत् का प्राण है। जिस प्रकार देह का संचालन प्राण द्वारा होता है वैसे ही पूरी सृष्टि का संचालक अर्थात् प्राण वह परमात्मा ही है। बृहदारण्यकोपषिद् में कहा गया है—प्राणस्य प्राणः। वह प्रभु प्राण का भी प्राण है। भूः का मानसिक जप करते समय व्यक्ति को चाहिए कि वह परमात्मा को अपने प्राणों से भी प्यारा अनुभव करे। इस प्रकार का चिन्तन करने से प्रभु के प्रति श्रद्धा और अपने भीतर आत्म-विश्वास का जागरण होता है। इस प्रकार के चिन्तन से वह अपने आप को असहाय और बेबस नहीं समझता है बल्कि यह अनुभव करने लगता है कि कोई बड़ी शक्ति मेरे पीछे सदा सर्वदा रक्षा और सहायता के लिए जुड़ी हुई है। इस चिन्तन को व्यवहार में लाने के लिए भी व्यक्ति को प्रयत्न करते रहना चाहिए। उसे भी इस प्रकार के कार्य करने चाहिए कि सब तो उसे अपना प्राण ही समझने लगें। अपने उज्ज्वल चरित्र और व्यवहार से व्यक्ति समाज, किसी संस्था, परिवार या राष्ट्र का प्राण बन सकता है। जो व्यक्ति अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर सेवा करता है, उसके बारे में लोग भी कहने लगते हैं कि वह तो इस संस्था या राष्ट्र का प्राण है। प्राणायाम आदि के द्वारा अपनी शक्ति को बढ़ाते रहना चाहिए।

भुवः का भाव स्पष्ट करते हुए ऋषि का कथन है कि वह परमात्मा सब प्रकार के दुःखों से छुड़ाने वाला है। व्यक्ति सदा सुखी रहना चाहता है मगर उस सुख को वह गलत स्थानों पर खोजता है। वैसे भी संसार के जितने भी सुख हैं उनमें किसी न किसी प्रकार का दुःख भी छुपा रहता है। केवल परमात्मा का सान्निध्य ही व्यक्ति को सब प्रकार के दुःखों से छुड़ा सकता है। वेद में भी कहा गया है कि मृत्यु और दुःख आदि से बचने का एक ही उपाय है और वह है उस परमात्मा को जानना—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णम् तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।।
(यजु० ३१।१८)

अर्थात् हे प्राणी यदि तू मृत्यु और सांसारिक दुःखों से बचना चाहता है तो उस महान् परमात्मा को जान। उसे जानने से तू इन दुःखों से छूट जायेगा और अन्य कोई मार्ग नहीं है। भुवः का चिन्तन करते हुए साधक को यह अनुभव करते रहना चाहिए कि वह परम पिता परमात्मा अपनी अपार कृपा से मेरे समस्त दुःखों को दूर कर रहा है। बड़ी श्रद्धा और आस्था के साथ इस बात को अनुभव करने की आवश्यकता है। यह चिन्तन व्यक्ति के अन्तस्तल की गहराइयों तक उतर जाना चाहिए। व्यवहार में भी व्यक्ति को परदुःखहर्ता बनने का प्रयास निरन्तर करते रहना चाहिए। महाभारत में धर्म का रहस्य ही यह बताया गया है कि 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।' जैसा व्यवहार आप दूसरों से अपने प्रति नहीं चाहते हैं वैसा ही व्यवहार आप दूसरों के साथ भी न

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो, यही धर्म का बड़ा ही व्यावहारिक और सुन्दर स्वरूप बताया गया है। परमात्मा के गुणों का चिन्तन करते करते वैसा ही व्यक्ति को बनने का प्रयास भी करते रहना चाहिए। व्यक्ति की यह वृत्ति इतनी गहन और परिपूर्ण हो जानी चाहिए कि—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥

(यजु० ४०।६)

अर्थात् जो कोई सम्पूर्ण चराचर जगत् को परमेश्वर ही में देखता है और सम्पूर्ण चराचर जगत् में परमेश्वर को देखता है, इससे वह संशय में नहीं होता। ऐसा ही व्यक्ति मोह और फिर शोक से छूट जाता है—

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः॥

(यजु० ४०।७)

इस प्रकार जिस ज्ञानप्राप्त योगी की दृष्टि में सम्पूर्ण चराचर जगत् परमात्मा ही हो जाता है उस अवस्था में ऐसे एकत्व देखने वाले को कहाँ मोह और कहाँ शोक?

स्वः शब्द के बारे में ऋषि ने लिखा है— परमात्मा व्यापक है, सब को नियम में रखने वाला है। सब का आश्रयस्थल है और सुखस्वरूप है। चिन्तन के स्तर पर भी साधक को चाहिए कि यह परमात्मा को अपने अंग-संग समझे। आनन्द का भण्डार जाने, नियामक जाने और अपना तथा सृष्टि का आश्रय समझे। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण की आवश्यकता है। उससे अच्छा आश्रयदाता और कोई नहीं हो सकता है। वही हमारा माता, पिता, बन्धु, सखा और भ्राता है। उससे अच्छा और विश्वसनीय मित्र और कोई हो ही नहीं सकता है—"इन्द्रस्य युज्यः सखा।"

अपने यजुर्वेद भाष्य में महर्षि दयानन्द जी ने इन व्याहृतियों का बहुत ही व्यावहारिक अर्थ करते हुए भूः को कर्म विधा, भुवः को उपासना-विधा और स्वः को ज्ञानविधा कहा है। महर्षि दयानन्द जी ने यहां पर इन व्याहृतियों के माध्यम से ज्ञान, कर्म और उपासना का समन्वय किया है। ज्ञानहीन कर्म बेकार है और कर्महीन ज्ञान भी किसी काम का नहीं। और परमात्मा की उपासना किए बिना कर्म और ज्ञान का रहस्य मानव की समझ में आ नहीं सकता है। ज्ञान और कर्म के समन्वय के रहस्य को जानने के लिए वेद का एक मन्त्र चिन्तनीय है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

(यजु० ४।७२)

अर्थात् जो ज्ञान की उपेक्षा करके कर्म करते हैं वे गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो कर्म की उपेक्षा करके केवल ज्ञान के अहंकार में रहते हैं वे उससे भी अधिक अन्धकार को प्राप्त होते हैं।

निश्चित रूप से बिना ज्ञान के कर्म अन्धा है और बिना कर्म के ज्ञान लंगड़ा है। ज्ञान के अभाव में किए गए कर्म ही तो पाप हैं। इसलिए व्यक्ति जो भी कर्म करे सोच-समझकर ज्ञान की कसौटी पर कस कर ही करे। दूसरी ओर ज्ञान को केवल दिमागी कसरत तक ही सीमित न रखे बल्कि उसे व्यवहार में भी लाए। व्यवहार में लाया हुआ ज्ञान ही सार्थक है। इसी सार्थकता को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को निरन्तर परमात्मा की उपासना करते रहना चाहिए। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि व्यक्ति जैसे की संगत में बैठेगा वह वैसा ही बनता चला जाएगा। प्रभु की उपासना का लाभ यह है कि व्यक्ति के भीतर परमात्मा के गुणों का समावेश होता चला जाता है अर्थात् दयालुता, परोपकार और दूसरों के दुःखों को दूर करने की भावनाएं उसमें सन्निहित होती चली जाती हैं।

इन व्याहृतियों के माध्यम से महर्षि ने भौतिकता और आध्यात्मिकता का भी समन्वय किया है। भौतिकता अविद्या है और आध्यात्मिकता विद्या। भौतिक साधनों का प्रयोग आध्यात्मिकता के सृजन के लिए ही किया जाना चाहिए। यह बात हमें सदा स्मरण रखनी चाहिए कि ये जो भौतिक प्रसाधन हैं ये केवल साधन हैं, साध्य नहीं। इसलिए इनका उपयोग करके आध्यात्मिकता का फल प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने हेतु उपासना में रत रहना चाहिए। ये जितने भी भौतिक पदार्थ हैं ये किसी के भी साथ आज तक नहीं गए हैं अतः इनका संचय तो करना चाहिए मगर इन्हीं में ग्रम कर अपने जीवन को बर्बाद नहीं करना चाहिए। यह भी इन व्याहृतियों का अमर सन्देश है।

(सविता) महर्षि दयानन्द जी इस शब्द का अर्थ करते हुए अपने पंचमहायज्ञविधि नामक ग्रन्थ में लिखते हैं– (सवितुः) सुनोति सूयते सुवति वोत्पादयति सृजति सकलं जगत् स सर्वपिता सर्वेश्वरः सविता परमात्मा, तस्य सवितुः प्रसवे॥ इसका अर्थ लिखते हुए वे कहते हैं—वह परमात्मा सब जगत् का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य देने वाला है। संस्कारविधि के वेदारंभ प्रकरण में वे लिखते हैं– (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला, सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य का दाता कहा है।

निरुक्तकार ने भी सविता के बारे में ऐसा ही लिखा है–सविता वै सर्वस्य प्रसविता अग्निः सवितारमाह सर्वस्य प्रसवितारम्॥ अर्थात् निश्चित रूप में सविता ही सब सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला है। अग्नि को सविता कहते हैं। यह अग्नि ही सब को उत्पन्न करने वाली है।

शतपथ (१।१।२।१७) में कहा गया है—सविता वै देवानां प्रसविता। महर्षि दयानन्द जी यजुर्वेद के एक मन्त्र का अर्थ करते हुए 'सवितुः प्रसवे' का अर्थ ऐसा ही करते हैं अर्थात् जगदीश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उनकी धारणा से सब का उपकार किया है।

(यजु० १।१०)

सविता शब्द का अर्थ है प्रेरक तथा परमात्मा ही सृष्टिकर्त्ता हैं इसलिए वे ही सूर्यादि और ग्रह उपग्रहों आदि के नियमों और विशालता आदि को देखते हुए साधक को उस परमात्मा की महत्ता का चिन्तन करना चाहिए कि परमात्मा ही समस्त ऐश्वर्यों का मालिक है अतः जो कुछ भी मांगना हो उसे परमात्मा से ही मांगना चाहिए। परमात्मा की प्रेरणा के बिना संसार में कुछ भी नहीं हो सकता है क्योंकि सब के पीछे वास्तविक शक्ति उस प्रभु की ही है। प्रभु जड़ चेतन सब का प्रेरक है। उसके बिना व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता है। उसकी प्रेरणा के बिना आग नहीं जल सकती, हवा नहीं चल सकती, पेड़-पौधे और वनस्पति नहीं उग सकतीं। किसी उपवन में यदि कोई गुलाब भी खिलता है तो उसके पीछे भी उसी परमात्मा की प्रेरणा होती है। सविता देव की इस शक्ति का केन उपनिषद् में बड़ा ही सुंदर वर्णन किया गया है।

परमात्मा की सहायता से देवों की सर्वत्र विजय हुई तो वे अंहकार में आ गए। परमात्मा को इस बात का पता चल गया अतः उन्हें शिक्षा देने के लिए उन्होंने यक्ष का रूप धारण कर लिया। अब देवों ने अग्नि देव से कहा कि वह जाने कि यह यक्ष कौन है। अग्नि ने यह शर्त स्वीकार कर ली और यक्ष का पता लगाने के लिए उसके सामने जा पहुंचा। यक्ष ब्रह्म ने उस अग्नि देव से पूछा कि तू कौन है? अग्नि ने उत्तर दिया कि मैं अग्नि हूँ और मुझे ही जातवेदा भी कहते हैं। यक्ष के यह पूछने पर कि तुझ में क्या शक्ति है, अग्नि ने उत्तर दिया कि इस पृथ्वी पर जो कुछ है उस सब को मैं जला सकता हूँ। उस अग्नि के सामने यक्ष ने एक तिनका रख कर कहा कि इसको जला। अग्नि उस तिनके के पास पूर्ण वेग से गया मगर उसे जला न सका। तब वह पीछे लौट आया और अन्य देवों से कहा कि मैं उस यक्ष को जानने में असमर्थ हूँ। तब देवों ने वायु से कहा कि तू जान कि यह यक्ष कौन है। वायु ब्रह्म के पास गया तो ब्रह्म ने उससे पूछा कि तू कौन है? वायु ने कहा कि मैं वायु हूं और मुझे ही मातरिश्वा भी कहते हैं। ब्रह्म के यह पूछने पर कि तुझ में क्या शक्ति है, वायु ने उत्तर दिया कि इस पृथ्वी पर जो कुछ है उस सब को मैं उड़ा सकता हूँ। ब्रह्म ने उसके सामने भी एक तिनका रखा और कहा कि जरा इसे उड़ा कर दिखा। वायु अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी उस तिनके को उड़ा नहीं सका। अतः वह भी लौट आया और देवों से आकर कहा कि मैं यक्ष को नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है। अब देवों ने इन्द्र से कहा कि तू जान कि यह यक्ष कौन है। इन्द्र जब यक्ष का पता लगाने के लिए गया तो यक्ष उससे छिप गया। उमा नाम की स्त्री उस इन्द्र के सामने आई इन्द्र ने उससे पूछा कि यह यक्ष कौन है? उस स्त्री ने उत्तर दिया कि ब्रह्म ही यह यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह बड़ी सुन्दर और महत्त्वपूर्ण आख्यायिका है। इसके माध्यम से ऋषि बताना चाहते हैं कि वास्तव में जड़ चेतन में उस परमात्मा की ही शक्ति कार्य कर रही है। सब का प्रेरक वह ब्रह्म ही है इसीलिए उसे सविता देव कहा गया है।

(वरेण्यम्) का अर्थ महर्षि दयानन्द जी करते हैं—'वर्तुमर्हम्' स्वीकार करने योग्य, अति श्रेष्ठ तथा जो अत्यन्त ग्रहण करने योग्य है। परमात्मा अतिश्रेष्ठ है क्योंकि उसके तुल्य और कोई नहीं है। किसी श्रेष्ठ का संग करने से ही व्यक्ति श्रेष्ठ बनता है। परमात्मा तो सर्वश्रेष्ठ है। अत: उसके प्रति ही हमें सदा समर्पित रहना चाहिए। उसके समक्ष समर्पण करने से ही व्यक्ति निर्भय हो सकता है। उसको मन, वचन और कर्म से समर्पित होकर अपना रक्षा कवच बनाने की आवश्यकता है। पूरी निष्ठा और श्रद्धा के साथ जो स्वयं को ईश्वर के अर्पण कर देता है, परमात्मा उसकी प्रार्थना निश्चित रूप से सुनते हैं और उसे चारों ओर से निर्भय कर देते हैं।

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

अथर्व १९।१५

वह परमात्मा अपने साधक को अन्तरिक्ष लोक से, द्युलोक से और पृथ्वी लोक से अभय कर देता है। पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, नीचे-ऊपर से अभयता प्रदान करता है। आगे-पीछे से सब ओर से उसके साथ सभी मित्र भाव से मिलते हैं। वह साधक मित्र से अमित्र से तथा जाने-अनजाने सभी से निर्भयता को प्राप्त हो जाता है। रात-दिन उसके लिए भयमुक्त हो जाते हैं तथा सब आशाएं और उपदिशाएं उसके लिए प्राप्य और निर्भयता देने वाली बन जाती हैं।

ईश्वर ही ग्रहण करने योग्य और स्वीकार करने योग्य है। इसलिए साधक को उसी की उपासना करनी चाहिए। व्यक्ति संसार भर के भौतिक पदार्थों का वरण करने में अपना सारा जीवन लगा देता है मगर वास्तव में जो वरण करने के योग्य है उस परमात्मा की उपासना के लिए वह समय नहीं निकाल पाता है। यह मानव जीवन तो मिला ही परमात्मा को प्राप्त करने के लिए है अत: सब कार्यों को छोड़कर उसका ही वरण करना चाहिए। उसका वरण करने से व्यक्ति का यह जीवन ही नहीं बल्कि लोक-परलोक दोनों सुधर जाते हैं। ईश्वर को वरण करने से व्यक्ति की दृष्टि ही दिव्य दृष्टि बन जाती है। उसके समस्त कार्य ही दिव्य बन जाते हैं। उसका समूचा जीवन दिव्यता से परिपूर्ण हो जाता है। व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है उसके लिए सृष्टि वैसी ही हो जाती है। यदि हमने अपने भीतर काम का वरण कर रखा है तो निश्चित रूप से हमें सारा संसार ही काम-वासना से भरा हुआ लगेगा। काम-वासना कभी भी हमें ग्रस्त कर सकती है। उसके प्रवेश के लिए हजार-हजार रास्ते सदा खुले रहेंगे। क्रोध का वरण करने पर हमारा स्वभाव क्रोधी ही बन जाएगा। छोटी-छोटी बातों पर आग बबूला होने का हमारा स्वभाव सा ही बन जाएगा। व्यक्ति पर नहीं तो अन्य वस्तुओं पर ही हमें क्रोध आना आरंभ हो जायेगा। लोभी होने पर हमें सब जगह लोभ ग्रस लेगा। हमारा स्वभाव ही लालची और कभी न तृप्त होने वाला बन जाएगा। मोह का वरण करने पर हम में वह वृत्ति इतनी अधिक दृढ़ हो जाएगी कि हमें कोई भी वस्तु मोह ग्रस्त कर सकती है। कुछ भी छूटने पर हमें ऐसा लगेगा मानो हमारा सब कुछ ही छूटा जा रहा है। अंहकारी होने पर हमारे भीतर इतना अधिक गर्व आ जायेगा कि हम सब जगह कर्तापन को आरोपित करके अहंभाव की भावना में ही डूबे रहेंगे। ये सब व्यक्ति को अधोगति की ओर ले जाने वाले विषय हैं। इनमें फंसा हुआ व्यक्ति कभी भी आनन्द की ओर खुद को स्थिर नहीं रख सकेगा। कारण यह है कि चाहे कोई भी एषणा हो उससे व्यक्ति कभी भी परम-तृप्ति नहीं पा सकता है। इन अवगुणों में भटकते-भटकते व्यक्ति अपने मुख्य लक्ष्य से ही भटक जाता है। इसलिए गायत्री के उपासक को सदा-सर्वदा उस परमात्मा और उसके गुणों का ही वरण करने में तत्पर रहना चाहिए। जब साधक अपने भीतर परमात्मा का वरण कर लेता है तो ये सब विषय विकार उसके पास नहीं आ सकते हैं। हम सदा प्रभु का ही वरण करें क्योंकि वही अति श्रेष्ठ, ग्रहण करने योग्य और स्वीकार करने के योग्य है।

इति शम्।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'हिन्दु' नाम कसौटी पर (४)
(यह नाम गर्व की नहीं, लज्जा की बात है)

—डॉ॰ धीरेन्द्र शर्मा, साधु आश्रम, होशियारपुर (पंजाब)

गतांक से आगे

(4) स्वामी विज्ञानानन्द का कथन है- "स्वामी दयानन्द कहते हैं कि हम सब आर्य हैं। हमारा भी मानना है कि हम सब आर्य तो हैं ही। (परन्तु)आज कुछ पाश्चात्य कम्युनिष्ट और कुछ हमारे इतिहासकारों द्वारा फैलाये भ्रम के कारण कि आर्य विदेशी हैं, भारत में बाहर से आये हैं। यहाँ के मूल निवासी द्राविड़ हैं, उन्हें खदेड़ कर आर्यों ने उन्हें दक्षिण भारत भगा दिया। (यद्यपि) यह सिद्धान्त सत्य नहीं है। दक्षिण के हमारे बन्धु आर्य शब्द से चिढ़ते हैं। वे आन्दोलन-रत रहते हैं, कहते हैं कि हम आर्य नहीं हैं, द्रविड़ हैं। लेकिन उन्हें पूछो कि आप हिन्दु हैं। तब वे भी गर्व से कहते हैं कि हम हिन्दु हैं।"

समीक्षा — स्वामी जी कहते हैं कि "हम सब आर्य हैं ही"। परन्तु भारत के दक्षिण के बन्धु इस नाम से चिढ़ते हैं और इस कारण आन्दोलन-रत रहते हैं। इससे राष्ट्र और जाति की अखण्डता के टूटने का भय है। परन्तु हिन्दु नाम से यह अखण्डता सुरक्षित हो जाती है क्योंकि वे भी गर्व से कहते हैं कि हम हिन्दु हैं। इस प्रकार आर्य नाम को अपनाने में दोष और हिन्दु नाम में गुण हैं।

सो स्वामी जी तथा उन जैसे हिन्दुम्मन्य लोग हिन्दु के साथ-साथ आर्य नाम को स्वीकार करते हैं कि "हम सब आर्य तो हैं ही"। आपकी दृष्टि में दाक्षिणात्य बन्धु आर्य नाम से चिढ़ते हैं तो हिन्दु नाम को अपनाने पर भी चिढ़ेंगे ही क्योंकि इस नाम के साथ ही साथ आर्य नाम को भी आप मानते हैं। सो देश और जाति की अखण्डता की दृष्टि से हिन्दु नाम को मानना हो तो आर्य नाम को सर्वथा तिलांजलि देनी चाहिए थी। परन्तु आप ऐसा तो नहीं करते, आप तो कहते हैं कि "हम सब आर्य तो हैं ही"। इससे स्पष्ट है कि "हिन्दु" नाम रखने में देश में देश-जाति की अखण्डता आपकी दृष्टि में नहीं है। यदि होती तो आप आर्य को सर्वथा तिलांजलि नहीं देते। वस्तुतः वेदोक्त "आर्य" नाम में ऐसा श्रेष्ठ अर्थ निहित है कि वेद-विरोधी जैन, बौद्ध, पारसी आदि भी इस पर गर्व करते हैं। विडम्बना यह है कि ऐसे श्रेष्ठ नाम को उपेक्षित करके कुछ लोग हिन्दु नाम की माला जपने में ही अपने जीवन की कृतार्थता मानने में लगे हुए हैं कि इस से ही देश और जाति का उपकार हो सकेगा। वस्तुतः यह हिन्दु-मृग की मृगमरीचिका है। सुस्पष्ट तथा सुदृढ़ वेदोक्त आर्यत्व की भावना ही है जो देश और राष्ट्र की नौका को तूफान से निकाल कर अपना और अन्य सारी मानवता का उद्धार कर सकती है—नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

स्वामी जी यह भी स्वीकार करते हैं कि आर्य और द्रविड़ का विरोध विदेशी तथा उनके अनुयायी इतिहासकार आदि के द्वारा पैदा किया गया है जो सत्य नहीं है, भ्रम-जनित है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि स्वामी जी दाक्षिणात्य बन्धुओं के मन में उत्पन्न इस आर्य-द्रविड़-विषयक भ्रम-रोग के निवारणार्थ हिन्दु नाम को रामबाण-औषधि समझते हैं। भ्रम तो एक मिथ्याज्ञान है और यथार्थ ज्ञान से ही विनष्ट हो सकता है। अतः अपने दाक्षिणात्य बन्धुओं को यह यथार्थ ज्ञान कराने की आवश्यकता है कि महाभारत आदि भारतीय इतिहास तथा मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों से एकदम स्पष्ट है कि द्रविड़ लोग आर्यों के क्षत्रियों में से ही हैं आर्यों से भिन्न नहीं हैं[१]। इस यथार्थ ज्ञान से ही आर्य-द्रविड़ भ्रम निवृत्त हो सकता है, यथा अन्धकार का निवारण प्रकाश से ही होता है। हिन्दु नाभ की माला जपने से नहीं। अतः आर्य-द्रविड़ के भ्रम के निवारणार्थ हिन्दुनाम की माला छोड़िए।

---

१. १. महाभारत,

२. मनुस्मृति, १०,४३,४४।

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. स्वामी विज्ञानानन्द जी-"आज भारत से बाहर विदेशों, जैसे वियतनाम (चम्पा), इण्डोनेशिया (जावा, बाली), कम्बोडिया (कम्बोज), मलेशिया (मलय), में लाखों हिन्दू हैं। ये सब वेद, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत को मानते हैं, वे सब भी हिन्दू हैं और अपने आप को गर्व से हिन्दू कहते हैं। जब कि महर्षि दयानन्द जी की भौगोलिक परिभाषा को लें तो ये आर्य नहीं हैं। हिन्दू कहने मात्र से ही हम से हजारों किलोमीटर दूर रहते हुए भी हम से जुड़े हुए हैं॥"

समीक्षा—श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के सिद्धान्त को ठीक तरह से न समझने से ऐसा दोष देख रहे हैं। ऐसी बात नहीं है कि आर्यावर्त्त देश की भौगोलिक सीमा में रहने से यहाँ के निवासी आर्य कहाये गये हैं, प्रत्युत बात यह है कि आर्य लोगों के द्वारा इस देश में आवर्त्तन करने से यह देश "आर्यावर्त" कहा गया है। स्वामी विज्ञानानन्द जी तो गाड़ी के पीछे घोड़ा बाँध कर गाड़ी चलाने की चेष्टा कर रहे हैं। गाड़ी के आगे जोतने पर ही गाड़ी विधिवत् चलती है। आर्यों के आवर्त्तन से यह देश आर्यावर्त्त कहाया है। यह नहीं कि आर्यावर्त्त नामक देश पूर्व स्थित है और उसमें आवर्तन करने वाले यहाँ के लोग "आर्य" कहे गये। सो यह तो घोड़े की गाड़ी के पीछे जोतने की बात स्वामी विज्ञानानन्द जी ने कर दी है। भारत में देश-विदेश के नाम उनके निवासियों के आधार पर ही प्रायः रखे जाते रहे हैं। यथा-पंचाल, अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, चोल, द्रविड, कश्मीर, चीन, शक, यवन आदि क्षत्रियों के निवास होने से इन देशों या जनपदों को भी ये नाम प्राप्त हुए हैं। संस्कृत-भाषा के व्याकरण बनाने वाले संसार-प्रसिद्ध पाणिनि-मुनि की इस बात में गवाही भी है[१] ॥ अस्तु ॥ हमारा कथन है कि आर्यों के इस देश में आवर्तन से यह देश आर्यावर्त्त नाम को प्राप्त हुआ है। यहाँ रहने से आर्य नाम नहीं पड़ा। यह नाम तो तिब्बत प्रदेश में आरम्भ में रहते-रहते ही उन्हें वेदोक्त श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से संज्ञाकर्म-कर्त्ता ऋषि-मुनियों ने दिया, जब कि इसके विपरीत गुण-कर्म-स्वभाव वालों को "दस्यु" नाम दिया। स्पष्ट है कि आर्य और दस्यु ये नाम उनके गुण, कर्म-स्वभावानुसार सृष्टि और वेद के समनन्तर आदि-सृष्टि में रखे गये देश-विशेष के आधार पर नहीं। यही तथ्य स्वामी दयानन्द के ग्रंथों तथा उनके द्वारा अन्य लोगों को लिखे पत्रों से एकदम स्पष्ट है। यहाँ स्वामी दयानन्द के एक पत्र का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। अमेरिका के न्यूयार्क के निवासी तथा थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापक हेनरी एस. आल्काट तथा मैडम एच.पी. ब्लेवेस्टकी ने स्वामी दयानन्द की प्रेरणा से आर्यसमाज की स्थापना अमेरिका में की तो उनकी सोसायटी के सदस्यों ने स्थापित आर्यसमाज के नाम में "आर्य" शब्द पर आपत्ति की कि हम तो "आर्य" नहीं हैं, भारतवासी ही आर्य हैं, अतः यहाँ "आर्यसमाज" नाम ठीक नहीं है। आल्काट ने इस आपत्ति की सूचना स्वामी दयानन्द को भेजी। तब स्वामी जी ने ता० २६।७।७८ को आल्काट को संस्कृत में पत्र लिखा जिसमें अन्य अनेक बातों के साथ आर्य शब्द की उपर्युक्त अभिप्राय वाली व्याख्या वेदादि-प्रमाणों के द्वारा सिद्ध करके यह बताया कि अमेरिका आदि में रखना दूषण नहीं प्रत्युत भूषण है-

आर्याणां समाजो या सभा स आर्यसमाजः। दस्युभावत्यागाय आर्यगुणग्रहणाय च या सभा साऽप्यार्यसमाजसंज्ञां लभते। अतः किमागतम्!

सर्वासां शिष्टसभानामार्यसमाजनामरक्षणं परमं भूषणमस्ति। नाऽत्र काचित् क्षतिरस्तीति विजानीमः॥

इससे करतलामलकवत् एकदम स्पष्ट है स्वामी दयानन्द के अनुसार गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर आर्य तथा आर्यसमाज आदि नाम सम्पूर्ण भूमण्डल में प्रयुक्त होने चाहिए। आर्यावर्त्त देश की तो सीमा है, आर्य नाम की सीमा नहीं है। अतः स्वामी विज्ञानानन्द का कथन असंगत है।

रही बात यह कि मलय, जावा, बाली आदि देशों के साथ हमारा बन्धुत्व हिन्दु नाम से ही है- सो यह कथन भी अयुक्त है क्योंकि भारत के दक्षिणी तथा-पूर्व भागों से जो लोग मलयेशिया, वियतनाम आदि प्रदेशों में गये और उन्हें अपना उपनिवेश बनाया और राज्य स्थापित किये वह काल ईसवी प्रथम शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी का है। तब ये भारतीय, हिन्दु नाम से भी परिचित नहीं थे- वे बौद्ध थे, शैव थे, वैष्णव थे। इसी प्रकार अन्य जाति के नाम से अपने को परिचित कराते थे, हिन्दु से नहीं और किसी न

१. पाणिनीय अष्टाध्यायी ४।२।६१।८१॥ "तस्य निवासः। जनपदे लुप्॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी देवता की मूर्ति की पूजा करते थे—ये तथ्य इतिहास-सिद्ध हैं। स्वामी विज्ञानानन्द जी ने जो कहा है कि वे लोग वेद, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत को मानते हैं तो इन तथाकथित भारतीय ग्रन्थों में भी ''हिन्दु'' नाम का निशान तक नहीं है। इसके विपरीत उनके बीच ''आर्य'' शब्द का उल्लेख बहु मानपूर्वक विद्यमान है। स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव ने "थाई-भारत संस्कृति-भवन, स्याम'' से एक अंग्रेजी-स्यामी पारिभाषिक शब्दावली प्राप्त की थी जो उत्तर-प्रदेश के शिक्षा विभाग से ''स्याम की संस्कृत-मूलक शब्दावली'' नाम से प्रकाशित की गई थी। उसमें अंग्रेजी के (Civilization) के लिए स्यामी भाषा का पर्याय ''आर्यधर्म'' बताया है, हिन्दु धर्म नहीं। इसी प्रकार यहीं (Civilization people) के अंग्रेजी शब्द के लिए स्यामी-भाषा का पर्याय ''आर्यजन'' बताया है, हिन्दु-जन नहीं। इस प्रकार वहाँ भी आर्य शब्द श्रेष्ठ अर्थ में प्रयुक्त है, हिन्दु नहीं। ये तो कुछ हिन्दुम्मन्य लोग हैं जो भारत के बौद्ध, शैव, वैष्णव आदि मूर्तिपूजकों की तरह उन प्रदेशों में भी मन्दिरों, रामलीला आदि को देखकर उन्हें भी ''हिन्दु'' नाम देते फिरते हैं। यदि यहाँ के हिन्दुमन्य लोग स्वयं को ''आर्य'' नाम से पुकारें तो उपर्युक्त उनके "आर्यधर्म" "**आर्यजन**" आदि शब्दों से प्रकट है कि हमारा उनके साथ आत्मीय-संबंध निश्चय से गाढ़तर स्थापित हो सकेगा, हिन्दु नाम से नहीं। वे तो ''हिन्दु-धर्म, हिन्दुजन'' जैसे आपके शब्दों को पसन्द नहीं करते-आर्यधर्म, आर्यजन कहना पसंद करते हैं। अत: हजारों किलोमीटर दूर रहने वालों के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध ''हिन्दु'' नाम से ही होने की बात एकदम कल्पित एवं बेबुनियाद ही है।

६. **स्वामी विज्ञानानन्द**— ''मेरा मानना है कि.... भारत के प्राचीन निवासियों का नाम व संबोधन आर्य एवं आर्यावर्त के रूप में था, यहाँ कालान्तर में भारत एवं भारतीय और हिन्दु एवं हिन्दुस्तान के रूप में हुआ। यहाँ के निवासियों के प्राचीन नाम एवं संबोधन भी रहेंगे। उनकी महत्ता है। लेकिन आज वर्तमान में हिन्दु और हिन्दुस्तान ही प्रासङ्गिक है। आज संबोधन में ''हमारे'' देश के निवासियों को विभिन्न वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज के बावजूद एक-दूसरे को एकसूत्र में जोड़ रखा है। आज इसी संबोधन में इस देश एवं जाति की एकता, अखण्डता तथा शक्ति निहित है।''

समीक्षा- स्वामी जी एक ही सांस में परस्पर-विरुद्ध बातें करते हैं। वे यहाँ समुच्चयार्थक ''भी'' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, साथ ही दूसरे को अलग करने के लिए ''ही'' शब्द भी बोलते हैं—''यहाँ के निवासियों के प्राचीन नाम एवं संबोधन आर्य एवम् आर्यावर्त तथा भारत एवं भारतीय भी रहेंगे—लेकिन आज वर्तमान में हिन्दु और हिन्दुस्तान ही प्रासङ्गिक हैं''। ''भी कहने से'' आर्य एवम् आर्यावर्त भारत एवं भारतीय और हिन्दु एवं हिन्दुस्तान'' इन तीन जोड़ों का ग्रहण होता है। और 'ही' कहने से केवल एक ही जोड़े (हिन्दु एवं हिन्दुस्तान) का ग्रहण होता है। तीनों का ग्रहण करने में ''एक ही'' का ग्रहण विरुद्ध है। ''एक ही'' के ग्रहण में ''तीनों का ग्रहण'' विरुद्ध है। प्रथम को मानने पर दूसरा झूठा है। दूसरे को अपनाने पर प्रथम झूठा सिद्ध होता है। इस प्रकार उनके दोनों ही कथन झूठे सिद्ध होते हैं।

स्वामी जी का यह कथन कि'' आज वर्तमान में ''हिन्दु'' और ''हिन्दुस्तान ''ही'' प्रासङ्गिक हैं''। इससे स्पष्ट है कि केवल आर्य और आर्यावर्त्त ही नहीं अपितु ''भारत'' और ''भारतीय'' नाम भी उन्हें अभीष्ट नहीं है क्योंकि वे कहते हैं कि ये हिन्दू और हिन्दुस्तान नाम ही हैं जो अपने माहात्म्य से नानाप्रकार की विभिन्नताओं के बावजूद ''हमारे देश के निवासियों को एक सूत्र में जोड़े हुए हैं''। सो ''हमारे देश के निवासी''तो मुसलमान, ईसाई, पारसी भी हैं क्या''हिन्दुस्तान'' शब्द के समान इन्हें भी आप''हिन्दु''कह रहे हैं ? तो ये लोग अपने आप को''हिन्दु'' नाम से ''कहाना पसन्द नहीं करते। यदि कहें कि हम इनको अपने देश के निवासी नहीं मानतें क्योंकि हिन्दु-सभा के संस्थापक हमारे परदादा-गुरु श्री सावरकर जी ने इन्हें गौण नागरिक (Secondary Citizens) कहा है तो यह वास्तविकता से और न्याय से एकदम विपरीत है। यदि माना जाए कि यहाँ इन मुसलमान आदि को छोड़कर ही हिन्दु नाम से हमें अर्थ अभिप्रेत हैं तो पहले हम इन हिन्दुम्मन्य बन्धुओं के लिए स्पष्ट करना चाहते हैं कि ''विभिन्नता'' कुछ और चीज है और ''विरोध'' एक अन्य चीज है। आप हजारों विभिन्न इकाइयों को एक इकाई में जोड़ सकते हैं। हजारों ईंटें संयोजक सिमेंट के द्वारा एक विशाल मजबूत भवन के रूप में जुड़ जाती हैं। परन्तु परस्पर-विरोधी दो चीजें भी एकत्र नहीं रह पातीं। सो, हिन्दुम्मन्यों को विभेद और विरोध में अन्तर समझना है। जिस समुदाय को आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हिन्दु" नाम से कहना चाहते हैं उनमें विभेद नहीं प्रत्युत पारस्परिक विरोध हैं। यह विरोध धार्मिक, सामाजिक आदि सभी दृष्टि से विद्यमान है। कुछ लोग निराकार को अभीष्ट देव मानकर उसकी उपासना करते हैं तो कुछ इसके विरुद्ध साकार को मानते हैं। इन साकार देव में भी परस्पर-विरुद्ध स्वरूप वाले हैं। इनका विवरण विभिन्न कपोल-कल्पित पुराणों से जाना जा सकता है। एक पुराण जिस देव या देवी को उपासनीय कहता है तो उस देव या देवी को सर्वोच्च और अन्यों को नीच, निन्दनीय तथा त्याज्य भी कहता है। जैसे कि देवी भागवत पुराण में देवी को परमेश्वरी और शिव, विष्णु आदि को सेवक बनाया है। विष्णु-पुराण में विष्णु को परमेश्वर और शिव आदि को विष्णु का दास ठहराया गया है। शिवपुराण में शिव को परमेश्वर और इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सूर्य आदि को शिव के दास ठहराया गया है।

इसी प्रकार अन्य पुराणों तथा उपपुराणों की स्थिति है। ये विभेद नहीं प्रत्युत विरोध हैं। इन्हें कभी भी एकता में नहीं रखा जा सकता। यह धार्मिक दृष्टि से विरोध का उदाहरण मात्र है। सामाजिक दृष्टि से भी वेद विरुद्ध जाति आदि की दृष्टि से ऊँच-नीच की भावना तथा वर्णसंकरता के कारण समाज असंगठित है। शरीर के किसी अङ्ग में फोड़ा आदि का दुःख पैदा होता है तो शरीर व्यथित हो जाता है। परन्तु हिन्दु-नामक समाज-शरीर का कोई अङ्ग यदि कष्ट में फँस जाए तो अन्य किसी भी अङ्ग को किसी प्रकार की चिन्ता तक नहीं होती। उदाहरण के लिए आज कल कश्मीर के विस्थापित पण्डित-समुदाय को ले लीजिए। इतनी बड़ी संख्या के हिन्दु समाज में थोड़े से कश्मीरी-पण्डित दुःख-त्रस्त हैं परन्तु दूसरे अङ्ग इससे दुःख का अनुभव नहीं करते। क्या इस समाज को एकता में बंधा हुआ माना जा सकता है। यदि हिन्दु नाममानी हमारे बन्धु कहें कि इन धार्मिक, सामाजिक विरोधों के दोष को दूर कर देना चाहिए क्योंकि शरीर में जब रोग पैदा हो जाता है तो चिकित्सा से उसे दूर किया जाता है, तो हम भी यही कहते हैं कि दोष को दूर करना अत्यावश्यक है। सो जब आप धार्मिक, सामाजिक आदि दुःस्थितियों के दोषों को दूर करने को आवश्यक समझते हुए तत्पर हैं तो नाम-संबंधी दोष को दूर करने में आपको आपत्ति क्यों हो रही है ? रूप को निर्दोष करने की तरह इसके नाम को भी निर्दोष करना आवश्यक है। नाम का नाम वाले पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। नाम के इस महत्त्व को देखते हुए हमारी संस्कृति में नामकरण-नामक संस्कार विहित है। अतः धर्म, समाज के रूप में सुधार की तरह इसके नाम का सुधार भी आवश्यक है। तभी वास्तविक एकता हो सकती है। स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज इस विषय में कहते हैं कि "आज इसी (हिन्दु) संबोधन में हमारे देश के निवासियों को विभिन्न वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज के बावजूद एक दूसरे को एक-सूत्र में जोड़ रखा है। आज इसी संबोधन में इस देश एवं जाति की एकता अखण्डता तथा शक्ति निहित है"। स्वामी जी। आप किस कल्पना-लोक में विचरण कर रहे हैं! देश और जाति की एकता किसी नाम (संबोधन) के जपने से हो सकती है। भले ही वह नाम "हिन्दु" हो या "आर्य" हो अथवा कोई और हो। किसी देश और जाति की एकता, अखण्डता और शक्ति का स्रोत नाम मात्र में नहीं बल्कि भाषा, धर्म, संस्कृति और सामाजिक संगठन एकता में निहित होता है—यह निश्चित समझिए। अब प्रश्न यह है कि हमारे देश और जाति की एकता और अखण्डता के लिए हमारी उपयुक्त भाषा, धर्म, संस्कृति तथा सामाजिक संगठन का स्वरूप क्या है। सो, यदि यह जगत् परम पिता परमात्मा ने अपने पुत्रभूत जीवात्माओं के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए रचा है तो उस पिता का अभिप्राय मानवों के धर्माचरण में ही हो सकता है। अधर्माचरण में नहीं क्योंकि केवल धर्माचरण से ही इस लोक के अर्थ और काम के पुरुषार्थों का और परलोक में मोक्ष का परम पुरुषार्थ का सिद्ध होना संभव है। यदि यही कथन ठीक है तो मनुष्य को धर्माचरणी होना भी अनिवार्य है। ऐसे धर्माचरणी को ही हम अपनी भाषा में "आर्य" कहते हैं और अधर्माचरणी को "दस्यु" कहते हैं। अतः देश और जाति की एकता तथा अखण्डता तथा शक्ति-प्राप्ति के लिए आर्यभाषा, आर्यधर्म, आर्यसंस्कृति, तथा आर्यसमाज का होना आवश्यक एवम् अनिवार्य है। इस अभिप्राय को व्यक्त करने के लिए "हिन्दु" शब्द सर्वथा अनर्थक और दोषकारक भी है क्योंकि किसी भी आर्यभाषा की परम्परा में हिन्दु शब्द है ही नहीं। यह जिस भाषा में है और जिन लोगों ने हमारे ऊपर थोप दिया है वहाँ इसका अर्थ अधर्मी काफिर, दस्यु, डाकू चोर आदि है। अतः सभी बुद्धिमान् जनों के द्वारा इसे छोड़कर वेदोक्त आर्य नाम धारण करना ही कर्तव्य है, हिन्दु नहीं।

—क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी श्रद्धानन्द और दिल्ली की जामा मस्जिद

—डॉ० भवानीलाल भारतीय

आर्यजगत् के १७ मार्च १९९६ के अंक में श्री कृष्णमोहन हिन्दू का एक लेख स्वामी दयानन्द, आर्यसमाज और गांधी जी शीर्षक से छपा है। इसमें आर्यमित्र के दयानन्द जन्म शताब्दी विशेषांक (फाल्गुन १९९२) में प्रकाशित आचार्य चतुरसेन शास्त्री के एक लेख 'दयानन्द और हम' (पृ० ५५-५८) की कुछ पंक्तियां उद्धृत की गई हैं। जब मैंने यह लेख पढ़ा तो पहले तो मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि आचार्य चतुरसेन जैसा व्यक्ति स्वामी श्रद्धानन्द के बारे में कोई गलत बयानी कर सकता है किन्तु जब अपने पुस्तकालय में विद्यमान आज से ७९ वर्ष पूर्व के उस विशेषांक के प्रासंगिक स्थल को देखा तो पता लगा कि वस्तुतः चतुरसेन ने वही कुछ लिखा है जिसे श्री कृष्णमोहन ने उद्धृत किया है। यह तो एक प्रसिद्ध बात है कि असहयोग के दिनों में स्वामी श्रद्धानन्द दिल्ली के बेताज बादशाह थे और इस नगर के हिन्दु-मुसलमान उन्हें अपना नेता मानते थे। स्वामी जी को दिल्ली के मुसलमानों ने जामा मस्जिद में आमंत्रित किया। यह घटना ४ मार्च १९१९ की है। स्वामी श्रद्धानन्द के प्रामाणिक जीवनी लेखक पं० सत्यदेव विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक श्रद्धानन्द के पृष्ठ ४८१ (१९३३ का प्रथम संस्करण) पर स्वामी जी के जामा मस्जिद में जाने का इस प्रकार वर्णन किया है—

"ता० ४ मार्च को देहली में एक और सुनहरी तथा भव्य दृश्य उपस्थित हुआ। शाही जामा मस्जिद के मिम्बर पर से एक आर्य हिन्दु संन्यासी ने "त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अथा ते सुम्नमीमहे।" के वेद-मन्त्र द्वारा ईश्वर के माता और पिता के रूप का वर्णन किया और ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः के साथ अपना भाषण समाप्त किया।" लगभग ऐसा ही वर्णन स्वामी जी के अन्य जीवन-चरित्रों में भी मिलता है।

स्वामी जी के प्रामाणिक अंग्रेजी जीवनी लेखक डॉ० जे.टी.एफ. जाईन्स (आस्ट्रेलिया की नेशनल यूनिवर्सिटी में ऐशियन अध्ययन के प्रोफेसर) ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है, किन्तु उन्होंने तारीख ४ अप्रैल बताई है। वे लिखते हैं—"On 4th April, prayers were to be offered at the Jama Masjid for the victims. Muslim dignitaries went to fetch the Swami, brought him to the mosque, and requested him to preach to the congregation from the pulpil. It was an unbelievable and never to be repeated scene: A Hindu says, in his ochre rob'es preaching from the very pulip of the greatest mosque in India" p. 109 (ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस का १९८१ का संस्करण) अर्थात् दिल्ली में विदेशी दमन के शिकार मुसलमानों की सद्गति के लिए ४ अप्रैल को जामा मस्जिद में प्रार्थना का आयोजन किया गया। मुसलमानों के प्रतिष्ठित नेता स्वामी जी को आमंत्रित करने के लिए गये और उन्हें मस्जिद में ले आये। उन्हें मसजिद की मुख्य वेदी (मिम्बर) से उपस्थित लोगों के समक्ष उपदेश देने के लिए कहा। यह एक अविश्वसनीय तथा भविष्य में कभी न दोहराया जाने वाला दृश्य था। भारत की सब से बड़ी मस्जिद की प्रधान वेदी से भगवा वस्त्रधारी एक हिन्दू संन्यासी का उपदेश।"

अब आचार्य चतुरसेन ने इस प्रसंग को अपने लेख में जिस रूप में प्रस्तुत किया है। उसे देखें—"संन्यासी ने जिस दिन दिल्ली की मस्जिद में खड़े होकर हकीम साहेब (?) से वजू करने को पानी मांगा था, उसी दिन मेरी आंखों में खून उतर आया था।·····हकीम साहब को उचित था कि वे चुल्लू भर पानी (डूब मरने को) संन्यासी को दे देते। यह बात मेरे मन में तब आई जब संन्यासी ने इमाम के नजदीक खड़े होकर आधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलमा पढ़ा और अपनी हिन्दू जिह्वा को उन्हीं की भाषा में बदल कर कहा कि मैं न हिन्दू हूँ न मुसलमान।" निश्चय ही चतुरसेन शास्त्री ने जामा मस्जिद में स्वामी जी के आगमन के प्रसंग को नितान्त मनमाने ढंग से पेश किया है। हो सकता है कि स्वामी जी ने मस्जिद की वेदी पर चढ़ने के पहले हाथ मुंह धोये हों। इसे चतुरसेन जी स्वामी जी का 'वजू' करना कहते हैं। किसी भी धर्म स्थल में प्रवेश करते समय शारीरिक शुद्धि को अच्छा माना जाता है। क्या हम आर्यगण यज्ञ की वेदी पर बैठते समय हाथ पांव नहीं धोते। गुरुद्वारों में प्रवेश करते समय तो पाद-प्रक्षालन अनिवार्य ही है। स्वामी जी ने वेदी पर खड़े होकर आधा कल्मा पढ़ा हो, यह बात भी अकल्पनीय है। उन्होंने वेद-मन्त्र (त्वं हि नः पिता) का उच्चारण तो किया ही था। आधे कल्मे में परमात्मा के एक होने का उल्लेख है (ला इलाह इल्लिल्लाह) और यह तो आर्यसमाज का भी अभीष्ट मत है। संन्यासी तो न हिन्दू होता है और न मुसलमान। वह मनुष्य होता है, यदि यह बात भी एक प्रकारान्तर से स्वामी जी ने कही हो तो उसमें कुछ आपत्ति की बात कहां है? वस्तुतः अपने पूर्वाग्रह से आचार्य चतुरसेन ने सारे प्रसंग को ही एक आपत्तिजनक रंग दे दिया है।

अब इस प्रसंग का एक नया पहलू यह भी देखें। मेरे पास भाण्डवा (भिवानी हरियाणा) निवासी श्री धर्मपाल शास्त्री का पत्र आया है। इसमें उन्होंने दिल्ली की स्कूलों की ७वीं श्रेणी में पढ़ाई जाने वाली एक पुस्तक **गांधी नैतिक शिक्षा** (लेखक व संग्रहकर्त्ता श्री जी. राम, प्रकाशक अशोक प्रकाशन, A-२३, राधेपुरी, न्यू कृष्णनगर दिल्ली-५१) के पृष्ठ ३२ पर छपी निम्न पंक्ति की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया है—"स्वामी श्रद्धानन्द ने जामा मस्जिद में वहां के इमाम के अनुरोध पर जुमे (शुक्रवार) की नमाज तक पढ़ डाली थी।" यही पंक्ति नवीं कक्षा की पुस्तक के पृष्ठ ४० पर है। आचार्य चतुरसेन ने जो ऊट-पटांग लिखा उसे कितना विकृत बना कर इस 'गांधी-नैतिक शिक्षा' पुस्तक में पेश किया गया है? क्या आर्यसमाज ऐसे आपत्तिजनक प्रसंगों पर अपना आक्रोश व्यक्त करेगा?

८/४२३ नन्दनवन, जोधपुर

योगदर्शन-भाष्यम्

(महर्षि व्यास-भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द व्याख्योपेत)

व्याख्याता : आचार्य राजवीर शास्त्री

- योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
- व्यास-भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
- महर्षि-दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
- दर्शनों के परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
- क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियाँ, अनेक चित्त-निर्माण, इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

विशेष जानकारी के लिए सूची पत्र मँगायें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनायें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

७७६ श्री वी०के०एस० चौधरी (एडवोकेट) 37 ताशकन्द मार्ग, इलाहाबाद (यू०पी०)

७७७ श्री रामफल जी S/o श्री जयलाल दहिया गांव फतेहपुर पो० विधरोली जनपद सोनीपत (हर०)

७७८ श्री गंगाप्रसाद मिश्र शिक्षक रा०उ०मा०वि० भाद वाया कोतमा कालरी जि० शहडौल (एम.पी.) 484336

७७९ श्री कमलनारायण जी वेदाचार्य ब्र० आचार्य नन्दकिशोर छत्तीस गढ़ आर्ष गुरुकुल आर्य नगर नवां गांव (झांझ) पो० राखी वाया-भानाबस्ती राजपुर (एम.पी.)

७८० श्री मंत्री जी आर्यसमाज कविस्थल पो० कौथल खुर्द जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)

७८१ श्री सुरेशचन्द्र जी पाणी वैदिक गुरुकुल आश्रम पिन्छा वाणिया पो० हटियाडिहा वाया-रुपसा जि०-बालेश्वर (उड़ीसा) 756028

७८२ श्री पारसनाथ जी C/o विद्यार्थी बुक डिपो रेती चौक गोरखपुर (यू.पी.)

७८३ श्री नरेन्द्र जी S/o श्री ईश्वरसिंह जी मु०-बिलासपुर पो०-हथवाला जि०-पानीपत (हर०)

७८४ श्री प्रभाकर शामराव बोरकर स० मंडल प्रबन्धक युनाईटेड इंडिया इन्शुरन्श क०लि० मंडल कार्यालय काचन, पहिला तल, सतीस मोटर्स के पास, बडनेरा रोड, अमरावती (एम.पी.) 444605

७८५ श्री अरुणकुमार (आर्यवीर) C/o श्री बाबूलाल राठौर, राठौर आटा चक्की शा०मा०वि० के सामने आनन्द नगर (खण्डवा) एम.पी.

७८६ श्री व्यवस्थापक जी सभा उप कार्यालय आर्य नगर धमचा रोड दुर्ग (M.P.) 491001

७८७ श्री सत्यदेव जी आर्य म०न०-797 जवाहर कालौनी गुरुद्वारा रोड एन.आई.टी. फरीदाबाद (हरि०)

७८८ श्री अखिलेश चन्द्र जी शर्मा जिला प्रबंधक तिलहन संघ हाउसिंग बोर्ड कालौनी मुरैना (एम.पी.) 476001

७८९ श्री रमेशचन्द्र जी चौपड़ा A-309 डिफेंस कालौनी नई दिल्ली

७९० वेदप्रकाश जी S/o श्री रामेश्वर शास्त्री ग्राम टटेसर पो०-जोनती, दिल्ली-110081

७९१ श्री जयरामप्रसाद आर्य नार्थ अनवर रोड पो०-गारुलिया जि०-24 परगना (उत्तर) 743133

७९२ श्री रामचन्द्र जी आर्य 717 गढ़ी घसीटा सोनीपत जि०-सोनीपत (हरि०) 131001

७९३ श्री अनुराधा आर्या C/o आचार्य प्रेमलता जी आर्ष कन्या गुरुकुल दाधिया जि०-अलवर (राज०)

७९४ श्री दीपकसिंह परिहार नया बस स्टैन्ड पुल के पास पिनसारी रोड जि० ललितपुर (उ०प्र०) 284403

७९५ श्री राजेन्द्रप्रसाद जी S/o श्री दलेराम जी म०न० 162 नंगलावासी पो०-रजवन मेरठ (यू.पी.) 250001

७९६ श्री अशोक जी S/o श्री डालचन्द जी सैनी मु०-डालचन्द ढाणी पो० पटोदी जि०-गुड़गांव (हरि०)

धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं॰ DL 11315/96
आर/ आर/ नं॰ २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/8/96

अगस्त १९९६

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं॰
यू (डी॰एन॰) १४४/९६
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/96

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु॰ ५०/– प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान :- **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली – ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

छपी पुस्तक / पत्रिका
श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा॰ ....
जिला ....

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली–११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ओ३म्
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जनवरी, १९९५

वर्ष २३ : अंक ३
दयानन्दाब्द : १७०
विक्रमसंवत् : पौष, २०५१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९५

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
"दयानन्दसन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २-०० रु०
वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- ऋणी हैं हम ! ऋणी हैं हम !! २
- वेदोपदेश ३
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ ४
- अजमेर में आर्य विद्वानों के शास्त्रार्थ ५
- सृष्टि-उत्पत्ति के विज्ञान में भ्रान्तियाँ ६
- वेदों पर अश्लीलता का मिथ्यारोप ७
- भारत के उच्चतम न्यायालय का निर्णय ९
- विष खाकर ही मरना है तो अण्डे खाइये १०
- परकाया में प्रवेश सम्भव नहीं ११
- महर्षि दयानन्द और भारतीय जन जागरण १२
- देव पत्नियाँ कैसी हों १५
- वेदों के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य प्रियव्रत जी अब नहीं रहे १७
- ऋषि दयानन्द प्रोक्त सृष्टि संवत् ही सत्य है १८
- विश्व के सुप्रसिद्ध शाकाहारी २२
- आयु बढ़ाई जा सकती है २४
- शाकाहार २६

FREE COPY

'सत्यार्थ प्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपये, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ रुपये और सजिल्द बारह सौ रुपये, सैंकड़ा में प्राप्त करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश– शरीर के रक्षक सात ऋषियों का वर्णन और शयनकाल में दो देव रक्षा करते हैं।।

कण्वः ऋषिः। अध्यात्मं, प्राणाः (प्राणापानौ) देवता।। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः।।

अथ शरीरेन्द्रियविषयमाह।।

अब शरीर और इन्द्रिय विषयक उपदेश किया जाता है।।

ओ३म्– **सप्तऽऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।**

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतोऽ अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।।

(यजु० ३४।५५)

पदार्थः–(सप्त) पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च (ऋषयः) विषयप्रापकाः (प्रतिहिताः) प्रतीत्या धृताः (शरीरे) (सप्त) (रक्षन्ति) (सदम्) सीदन्ति यस्मिंस्तत् (अप्रमादम्) (सप्त) (आपः) आप्नुवन्ति=व्याप्नुवन्ति शरीरमित्यापः (स्वपतः) शयनं प्राप्तस्य (लोकम्) जीवात्मानम् (ईयुः) यन्ति (तत्र) लोकगमनकाले (जागृतः) (अस्वप्नजौ) स्वप्नो न जायते ययोस्तौ (सत्रसदौ) सतां=जीवात्मनां त्राणं=सत्रं तत्र सीदतस्तौ (च) (देवौ) दिव्यस्वरूपौ प्राणापानौ ।।

सपदार्थान्वयः– ये (सप्त) पंच ज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च (ऋषयः) विषयप्रापकाः (शरीरे) (प्रतिहिताः) प्रतीत्या धृताः त एव (सप्त) (अप्रमादम्) यथा स्यात् तथा (सदं) सीदन्ति यस्मिंस्तत् (रक्षन्ति) (स्वपतः) शयनं प्राप्तस्य (सप्त) (आपः) आप्नुवन्ति=व्याप्नुवन्ति शरीरमित्यापः (लोकम्) जीवात्मानम् (ईयुः) यन्ति। (तत्र) लोकगमनकाले (अस्वप्नजौ) स्वप्नो न जायते ययोस्तौ (सत्रसदौ) सतां=जीवात्मनां त्राणं=सत्रं तत्र सीदतस्तौ (च) (देवौ) दिव्यस्वरूपौ प्राणापानौ (जागृतः) ।।

भावार्थः– जो (सप्त) पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये सात (ऋषयः) विषयों को प्राप्त कराने वाले (शरीरे) शरीर में (प्रतिहिताः) प्रतीति पूर्वक धारण किए हुए हैं, वे ही (सप्त) सात (अप्रमादम्) प्रमाद रहित होकर (सदम्) शरीर की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं। वे (स्वपतः) सोते हुए पुरुष के (सप्त) सात (आपः) शरीर को व्याप्त करने वाले (लोकम्) जीवात्मा को (ईयुः) प्राप्त करते हैं। (तत्र) वहां=स्वप्न अवस्था में (अस्वप्नजौ) कभी न सोने वाले (सत्रसदौ) जीवात्मा के रक्षक शरीर में रहने वाले (देवौ) दिव्य स्वरूप वाले प्राण और अपान (जागृतः) निरन्तर जागते हैं।

भावार्थः– अस्मिञ्शरीरे स्थिराणि व्यापकानि विषयबोधकानि सान्तःकरणानि ज्ञानेन्द्रियाण्येव सातत्येन शरीरं रक्षन्ति। यदा च जीवः स्वपिति तदा तमेवाश्रित्य तमो बलेनान्तर्मुखानि तिष्ठन्ति, बाह्यविषयं न बोधयन्ति, स्वप्नावस्थायां च जीवात्मरक्षणतत्परौ तमोगुणानभिभूतौ प्राणापानौ जागरणं कुर्वाते। अन्यथा यद्यनयोरपि स्वप्नः स्यात् तदा तु मरणमेव सम्भाव्यमिति ।।

भावार्थः– इस शरीर में स्थिर, व्यापक, विषयबोधक, अन्तःकरण सहित ज्ञानेन्द्रियाँ ही निरन्तर शरीर की रक्षा करती हैं। और जब जीव सोता है, तब उसी का आश्रय करके तमोबल से अन्तर्मुख रहती हैं, बाह्य विषय का बोध नहीं करातीं। और स्वप्न अवस्था में जीवात्मा की रक्षा में तत्पर, तमोगुण से अभिभूत न होकर प्राण और अपान जागते हैं। अन्यथा यदि ये भी सो जायें तब तो मरण ही हो जाये ।।

('दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर' से उद्धृत, व्याख्याता– **श्री आचार्य सुदर्शनदेव शास्त्री**)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

मैं तीस वर्ष का युवक हूँ। दो वर्ष पूर्व तक मैं अन्धविश्वासों में फंसा हुआ था। मैं एक आर्यसमाज के उत्सव में चला गया, वहाँ एक महानुभाव ने महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश पढ़ने का आग्रह किया। उसे मैंने ध्यान से पढ़ा, मुझे एक प्रकाश का पुञ्ज सा लगा। पढ़कर मेरे विचारों में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। उसके बाद आपकी पत्रिका 'दयानन्दसन्देश' पढ़ने का सुयोग मिल गया, इससे मेरे विचारों को और बल व साहस मिला। मैं अब विचार करता हूँ कि मुझे ये सुसंस्कृत विचार पहले क्यों नहीं मिले, यह मेरा दुर्भाग्य ही रहा। अस्तु, आप बहुत ही उपकार करने वाला कार्य कर रहे हैं, एतदर्थ हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

नाथीराम धीमान,
ग्याजुद्दीनपुर, ग्रा० संख्या-एन० २५,
पो० बरयाकायस्थ (२४७२३१)

'दयानन्दसन्देश' का संस्कार-भास्कर विशेषांक प्राप्त हुआ। बहुत-बहुत धन्यवाद। लेखक व प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। जिन्होंने एक अमूल्य कृति समाज को देकर बहुत अविस्मरणीय कार्य किया है। आप लोगों ने इस सुन्दर कृति को छपवा कर पत्रिका का नाम सार्थक किया है।

ब्र० भरतकुमार आर्य,
पाणिनि महाविद्यालय, बहालगढ़ (सोनीपत)

मैं 'दयानन्द-सन्देश' का आजीवन सदस्य हूँ। पत्रिका के स्तर में निरन्तर प्रगति देखकर बहुत प्रसन्नता होती है। आर्यसमाज की चल या अचल सम्पत्ति पर नाजायज कब्जे होते रहते हैं और न्यायालय में भी अभियोग चलते देखे गये हैं। इस विषय में एक 'जागरण अभियान' चलाना चाहिए। क्या ट्रस्ट ऐसे विवादों पर कार्य करता है।

(आप का सुझाव-सराहनीय है। किन्तु ट्रस्ट ऐसे कार्य कर नहीं रहा है। सं०)

सन्तोष कुमार बरानियाँ,
लौंडी, (लवपुरी) म०प्र०

सितम्बर ९४ का अंक मिला। वर्णव्यवस्था का आधार गुण कर्म-स्वभाव है जन्म नहीं, लेख बहुत अच्छा लगा। आर्यत्व की भावना को उत्पन्न करने में यह पत्रिका सर्वोत्तम है।

धर्मेन्द्रसिंह आर्य
अस्करीपुर, बिजनौर

अतीत मासों में 'दयानन्दसन्देश' ने जिस सावधानी एवं दूरदर्शिता के साथ अनेक सामयिक लेखों का कलेवर समेटा है, मुझे पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। एतदर्थ साधुवाद स्वीकार करें।

हिन्दू-जीवन दर्शन, संस्कारविधि, रामायण-समीक्षा आदि विषयों पर पत्रिका में प्रेरक व ज्ञानवर्धक लेखों का संग्रह छपते रहे किन्तु सदियों से जनमानस में बसी आस्था तुलसीकृत रामचरित मानस के विरोध से कभी-कभी प्रतिघातित होने लगती हैं। अतः इस विषय में संयमित सन्तुलित भाषा का प्रयोग ही श्रेयस्कर रहेगा, आगे आप की जैसी इच्छा।

रमेशप्रसाद द्विवेदी
सरस्वती शिशु मन्दिर, सीधी (म०प्र०)

रामचरित मानस-समीक्षा, गीता का चक्रव्यूह आदि लेखों ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया था। यदि पत्रिका में इसी ढंग के तर्क पूर्ण शैली में लेखों का प्रकाशन होता रहे तो समाज में व्याप्त मिथ्या मान्यताएँ, कुरीतियाँ, आडम्बर गुरुडम आदि धराशायी होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायें और सुप्त-समाज में नव चेतना व जागृति फैल जावे। पत्रिका का मुखपृष्ठ आकर्षक हो गया है। मैं पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति चाहता हूँ।

सन्तोषकुमार
लौंड़ी, छतरपुर (म०प्र०)

'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका को पढ़कर ऐसा लगता है कि जैसा मृत दयानन्द जीवित हो उठा है। जनमानस में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए यह पत्रिका ही सर्वोपरि है।

(शेष पृष्ठ ५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजमेर में आर्य विद्वानों के शास्त्रार्थ

संस्कारविधि में अयन्त इध्म आत्मा॰ प्रक्षिप्त नहीं है

चिरकाल से लोगों को धोखा देने वालों की पोल खुली

दिनांक १४।११।९४ को ऋषि उद्यान अजमेर में स्वामी सर्वनन्द सरस्वती जी के सभापतित्व में पं॰ धर्मवीर विद्यालंकार (ज्वालापुर) के संयोजकत्व में "अयन्त इध्म॰ मन्त्र संस्कारविधि में प्रक्षिप्त है या नहीं" इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। प्रक्षिप्त पक्ष में निम्नलिखित विद्वान् थे–आचार्य रघुराज शास्त्री, श्री विद्यादेव त्रिवेदी (तर्क शिरोमणि) तथा श्री इन्द्रदेव यति (पीलीभीत)। प्रक्षिप्त न मानने वाले विपक्ष के विद्वान् डा॰ ज्वलन्तकुमार शास्त्री–अमेठी, डा॰ सत्यव्रत राजेश–गुरुकुल कांगड़ी, डा॰ वेदपाल सुनीथ–अजमेर थे। शास्त्रार्थ के नियम पहली बैठक में दस बजे से एक बजे तक तय किये गये। अपराह्न में तीन बजे से सवा सात बजे तक शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ लिखित तथा मौखिक (दोनों) हुआ तथा पूरा शास्त्रार्थ टेप भी किया गया। शास्त्रार्थ के टेप में सभापति श्री सर्वनन्द जी महाराज उप सभापति स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती (मन्त्री आ॰प्र॰सभा राजस्थान) संयोजक पं॰ धर्मवीर विद्यालंकार, प्रो॰ धर्मवीर सम्पादक परोपकारी, श्री ओमप्रकाश झंवर (ब्यावर) के वक्तव्य भी रिकार्ड किये गये हैं। शास्त्रार्थ के अन्त में संयोजक पं॰ धर्मवीर विद्यालंकार ने कहा–"**इस शास्त्रार्थ में अयन्त इध्म॰ मन्त्र प्रक्षिप्त सिद्ध नहीं हो सका**"। शास्त्रार्थ का पूर्ण विवरण बाद में प्रकाशित किया जायेगा और स्मारिका भी निकाली जायेगी। शास्त्रार्थ में आर्य जनता के अतिरिक्त निम्नलिखित विशिष्ट महानुभाव भी उपस्थित थे–सर्व श्री ओमानन्द सरस्वती, स्वामी विजयानन्द सरस्वती गुरुकुल चित्तौड़, पं॰ विद्यासागर शास्त्री प्रधान आ॰प्र॰ सभा राजस्थान, पं॰ विरजानन्द दैवकरणि, पं॰ वेदप्रिय शास्त्री, डा॰ रामकृष्ण आर्य (कोटा) डॉ कृष्णपाल सिंह अजमेर, श्रीमती ज्योत्स्ना इत्यादि।

–डॉ॰ ज्वलन्तकुमार शास्त्री, अमेठी (उ॰प्र॰)

(पृष्ठ ४ का शेष)

और महर्षि कृत साहित्य का जितना प्रचार किया जा सके उतना ही थोड़ा है।

ताराचन्द वानप्रस्थी
सलेमपुर, (भोजपुर) बिहार

'दयानन्द-सन्देश' ने अपने २२ वर्ष पूर्ण कर लिये, एतदर्थ शुभ कामनाएँ। आपके परिश्रम से पत्रिका निरन्तर प्रगति कर रही है। आपने नवम्बर-दिसम्बर ९४ में 'संस्कार-भास्कर' विशेषांक प्रकाशित कर तो अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। आर्य जगत् में भी जो अनेक प्रकार की शंकाएँ पैदा हो गई थीं, इस अंक से उन का समाधान होने से स्वाध्याय में रुचि बढ़ेगी।

सन्तोषकुमार
आजीवन ६७५

'दयानन्द-सन्देश' के सत्याश्रित व निर्भीक लेखों से प्रभावित होकर आजीवन सदस्य बन गया हूँ। मेरी सदस्य संख्या ७४६ है। और मई ९४ के अंक में 'देवता ईश्वर भगवान्' पुस्तक की निष्पक्ष समीक्षा छपी है, एतदर्थ आपका अतीव आभारी हूँ।

कान्तिलाल अग्निमित्र
मुरादाबाद

सत्यार्थप्रकाश से जीवन परिवर्तन

मैं एक लेखपाल के पदपर कार्यरत हूँ। इससे पूर्व मैं अन्धविश्वासों से ग्रस्त था। मुझे लेखपाल श्री शुकदेव प्रसाद गिरि (मन्त्री आर्यसमाज) के साथ रहने का सुअवसर मिला। उन्होंने मुझे 'सत्यार्थप्रकाश नामक एक पुस्तक स्वाध्याय के लिए दी। मुझे ऐसा लगा कि जैसे में अन्धेरे से प्रकाश में आ गया हूँ। मेरे समस्त सन्देह दूर हो गये। इन्हीं के सम्पर्क से मुझे दयानन्द-सन्देश पढ़ने को मिला। इसे पढ़कर भी मैं आनन्द विभोर हो गया हूँ। ये मन्त्री जी अब मुझे-यज्ञोपवीत धारण करने को कहते हैं। क्या मैं अनुसूचित जाति में उत्पन्न होकर यज्ञोपवीत धारण तथा आर्यसमाज का सदस्य बन सकता हूँ?

प्रार्थी–**राममूर्त्ति लेखपाल**, *तह॰ तरनगंज, जि॰ गौण्डा*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि-उत्पत्ति के विज्ञान में भ्रान्तियाँ

सितम्बर १९९४ के 'परोपकारी' पत्र में 'सृष्टि-उत्पत्ति का वैदिक विज्ञान नामक लेख छपा है। जिसके लेखक हैं मान्यवर श्री माधव के० देशपाण्डे, निवासी सि०डी० ओ०बी० ६/२, मेरी वसाहत, नासिक। यह लेख एक ऐसी पत्रिका में छपा है जो महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का प्रमुख पत्र है। इसमें महर्षि-दयानन्द के लेख के विरुद्ध लेख छपते रहें और सम्पादक महोदय बिना टिप्पणी के प्रकाशित कर देवें, यह बहुत ही दुःखद बात है।

इस लेख में लेखक अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

(क) इस पृथ्वी पर मानव का जन्म वर्त्तमान चतुर्युगी के प्रारम्भ में हुआ।

(ख) वर्त्तमान चतुर्युगी से आज पर्यन्त ३८,८८,०००+५०९४=३८,९३,०९४ वर्ष बीत गये और मानव जन्म होकर भी इतने ही वर्ष बीत चुके हैं।"

('परोपकारी' ३५२ पृ० पर)

यह लेख ज्योतिष शास्त्र के विरुद्ध है। और महर्षि दयानन्द ने भी जो कुछ लिखा है, उसके सर्वथा विरुद्ध है। देखिए महर्षि के लेख के कुछ अंश-

(क) यह जो वर्त्तमान ब्राह्म दिन है इसके १,९६,०८,५२,९७६ वर्ष इस सृष्टि को तथा वेदों की उत्पत्ति में भी व्यतीत हुए हैं। और २,३३,३२,२७,२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं।

(ख) सृष्टि की उत्पत्ति से ले के आज पर्यन्त दिन- दिन गिनते----अर्थात् परम्परा से सुनते सुनाते लिखते लिखाते और पढ़ते पढ़ाते आज पर्यन्त हम लोग चले आते हैं।

(ग) जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी, तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्त्तमान रहेंगे।

(घ) ते चैकस्मिन् ब्राह्मदिने १४ चतुर्दशभुक्तभोगा भवन्ति अर्थात् एक ब्राह्मदिन में १४ मन्वन्तरों का समस्त भुक्त भोग है।

विचारणीय प्रश्न

(१) महर्षि ने वेद तथा जगदुत्पत्ति के जो वर्ष लिखे हैं, क्या यह उसके विरुद्ध नहीं है?

(२) यदि मानव की उत्पत्ति वर्त्तमान चतुर्युगी के प्रारम्भ में ही हुई है, तो महर्षि ने ऐसा क्यों लिखा है कि यह (एक अरब, ९६ करोड़ इत्यादि संवत्) आर्यों के द्वारा परिगणित संवत् है?

(३) इसी प्रकार जब मानव की उत्पत्ति ही नहीं हुई थी तो वेदज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में किस को मिला?

(४) यह चतुर्युगी वैवस्वत मन्वन्तर की २८ वीं है। इससे पूर्व की चतुर्युगियों और मन्वन्तरों में क्या स्थिति थी?

(५) महर्षि ने १४ मन्वन्तरों के वर्षों को भुक्त भोग माना है। क्या लेखक स्पष्ट करने का साहस जुटा पायेंगे कि जब मानव की उत्पत्ति ही नहीं थी, उस समय कौन भोग करता है?

(६) आज रामायण का समय कम से कम ९ लाख वर्ष पूर्व माना जाता है। और रामायण का काल इस मन्वन्तर की २४ वीं चतुर्युगी के त्रेताकाल में विद्वानों ने स्वीकार किया है। और आप इसी चतुर्युगी में मानव की उत्पत्ति मानते हैं, इससे पूर्व नहीं, इसकी संगति कैसे लगेगी?

(७) आज के वैज्ञानिक भी अरबों वर्ष पहले मानव के कंकालों को देखकर मानव की सृष्टि मानते हैं। अतः लेखक की मान्यता वैज्ञानिकों से भी विरुद्ध है।

-राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में भाई-बहन का वैवाहिक सम्बन्ध या अश्लीलता नहीं

वेदों पर अश्लीलता का मिथ्यारोप

२२ नवम्बर १९९४ के 'नवभारत टाइम्स' में श्री सूर्यकान्त बाली का एक लेख छपा है जिसमें लेखक ने सृष्टि के प्रारम्भ में प्राप्त ईश्वरीय ज्ञान, जिसे वेद कहते हैं, उस पर अश्लीलता का दोष आरोपित करते हुए लिखा है-

(क) ऐसा ही एक सूक्त है यम-यमी सूक्त, जो ऋग्वेद के दसवें मण्डल का दसवाँ सूक्त है। यम-यमी आपस में भाई-बहन हैं और यम के पौरुष और बल से प्रभावित हो उसकी बहन उससे सहवास और संभोग का प्रस्ताव रखती है, जिसे यम ठुकरा देता है। यम का तर्क सीधा है कि हम दोनों भाई-बहन हैं और हम दोनों के बीच इस तरह का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता।

(ख) हम जब कई बार अखबारों में पढ़ते हैं कि फलाँ भाई-बहन ने आपस में शारीरिक सम्बन्ध बना लिये और इस तरह की खबरों को पढ़कर हम भारतीय संस्कृति के पतन के नाम पर कपड़े फ़ाडने लगते हैं और इसका पूरा दोष पश्चिम की ओर से हो रहे सांस्कृतिक हमले पर डाल देते हैं। ऐसे ही लोगों के बीच यह यम-यमी संवाद सूक्त का उदाहरण पेश है।

(ग) सूक्त का सन्देश यह है कि समाज में इस तरह का संकट न तो नया है और न ही यह समस्या किसी एक खास समाज की है। संकट सार्वकालिक ही है और सार्वभौमिक भी।

(घ) आप पूरा वैदिक साहित्य पढ़ जाइए, रामायण-महाभारत सरीखे प्रबन्ध-काव्य पढ़ जाइए, वहाँ आपको सैक्स कोई समस्या पैदा करता नजर नहीं आता। साहित्य में आपको वही चीज नजर आती है, जो समाज में होती है। यम-यमी संवाद-सूक्त इशारा कर रहा है कि आज हम जिन चीजों को बातचीत के स्तर पर वर्जनीय मानते हैं, वैदिक काल में उन पर ऐसा बन्धन नहीं था।

समीक्षा- प्रस्तुत लेख के कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट है कि लेखक भाई-बहन के शारीरिक सम्बन्ध को उचित मानकर उसके दर्शन वैदिक साहित्य से कराने का कुत्सित प्रयास करने लगा है। आज भारतीय समाज कितना भी पतित हो गया हो, और उस पर पश्चिम का कितना भी प्रभाव हो गया हो पुनरपि भाई-बहन के सम्बन्ध को बहुत ही घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और उसे अच्छा नहीं माना जाता। परन्तु लेखक सदृश व्यक्ति भाई-बहन के शारीरिक सम्बन्धों का वैदिक साहित्य में भी दिखाकर उसे उचित बताने का घृणास्पद कार्य कर रहे हैं, जो कि मानवोचित कार्य नहीं है।

यम-यमी - सूक्त पर विचार-

संस्कृत-साहित्य में पुत्री के लिए 'दुहिता' शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका निर्वचन करते हुए आचार्य यास्क लिखते हैं-

'दुहिता दूरे हिता भवति' अर्थात् पुत्री का विवाह सम्बन्ध निकट न होकर दूर से दूरतर ही होना चाहिए। इसका अभिप्राय स्थान की दूरी से ही नहीं है, प्रत्युत सम्बन्ध की दूरी से भी है। जिसके विषय में धर्म शास्त्रकार लिखते हैं-

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने।। *मनु० ३/५*

अर्थात् जो कन्या माता की छः पीढी और पिता के गोत्र की न हो, वह विवाह में या शारीरिक सम्बन्ध में प्रशंसनीय रहती है।

इस सूक्त में भी यही निर्देश किया है कि यम-यमी दिन रात को कहते हैं। जैसे दिन रात का सहनिवास सम्भव नहीं है उसी प्रकार भाई बहन का सहनिवास कदापि सम्भव नहीं है। मानव की दुर्बलताओं को देखकर ही मनु ने लिखा है-

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।

अर्थात् मनुष्य की मानसिक स्थिति हमेशा एक सी नहीं रहती है। वह जब सात्त्विक होती है जिसमें मनुष्य अच्छा ही अच्छा विचार करता है और कभी राजसिक वृत्ति रहती है, जिसमें चंचलता की प्रमुखता रहती है। तथा कभी तमोगुण प्रधान वृत्ति रहती है जो कि मलीनावस्था होती है जिसमें मनुष्य मोह व कामादि से आसक्त होकर अमर्यादोचित कार्य भी कर सकता है। इसलिए ऐसा निर्देश किया गया है कि चाहे कितना भी विद्वान् हो, पुनरपि माता, बहन, पुत्री से कभी एकान्त में वास न करे। युवावस्था में तो इस बात का विशेष ध्यान रखा जाये।

यम-यमी सूक्त में भी मानवीय दुर्बलताओं को दिखाया है। यास्क लिखते हैं- 'यमी यमं चकमे, तां प्रत्याचक्षे इत्याख्यानम्।' अर्थात यमी ने यम की कामना की और यम ने उसका निषेध कर दिया, जिस बात को स्वयं लेखक ने भी स्वीकार किया है। अतः वैदिक साहित्य में भाई बहन के शारीरिक सम्बन्ध के विषय में लेखक को कैसे आभास हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वैदिक साहित्य में भी भाई बहन के शारीरिक सम्बन्ध होते थे। यह तो वैसे ही निराधार व अयुक्ति युक्त बात हुई जैसे कि कोई व्यक्ति झूठ न बोलने की बात वेद या वैदिक साहित्य में पढ़कर यह कहने लगे कि वैदिक साहित्य में भी झूठ बोलते थे, यह कितनी दुर्भाग्यपूर्ण बात है!

यम-यमी कौन हैं?

(क) इस विषय में अनेक मतभेद हैं। परन्तु यम-यमी के माता-पिता कौन हैं? इस विषय में निरुक्तकार लिखते हैं- 'यमो यच्छतीति सत:''यम' शब्द (यमु उपरमे) क्रिया से बना है। प्राण का नाम भी यम है क्योंकि वह इन्द्रियों पर नियन्त्रण करता है। 'अग्निरपि यम उच्यते' अग्नि को भी यम कहते हैं। क्योंकि यह अग्नि 'कवीनां जार:' (ऋ० १।६६।४) कन्याओं के कन्यात्व को नष्ट करता है अर्थात् अग्नि के सम्मुख कन्या पति को स्वीकार करके गृहस्थ में प्रवेश करती है। और 'जनीनां पति:' और यह अग्नि जायाओं का पालन करता है।

(ख) यम-यमी के माता-पिता विवस्वान् और सरण्यू हैं। विवस्वान् का अर्थ है सूर्य। क्योंकि यह 'विशेषेण वस्ते आच्छादयति' विशेष रूप से जगत् को प्रकाशित करता है। 'आदित्यो विवस्वान् एष हि अहोरात्रे विवस्ते' अर्थात् यह आदित्य (सूर्य) ही विवस्वान् है क्योंकि यह दिन-रात को प्रकाशित करता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि 'यम' शब्द दिन का पर्यायवाची है क्योंकि इसका जन्मदाता सूर्य है। और 'सरण्यू' इनकी माता है। निरुक्त (१२।९) के अनुसार 'सरण्यू सरणात्' गति करने के कारण रात्रि का नाम सरण्यू है। 'तत्रेतिहासमाचक्षते त्वाष्ट्री सरण्यू विवस्वत आदित्यात् यमौ मिथुनौ जनयांचकार'' (निरुक्त १२।१०) अर्थात् त्वष्टा की पुत्री सरण्यू ने विवस्वान् के सम्पर्क से दो मिथुन- जुड़वा यम-यमी को उत्पन्न किया। निरुक्तकारों ने माध्यमिक=अन्तरिक्षस्थ मेघ वाणी या इन्द्र या वायु को यम-यमी माना है परन्तु ऐतिहासिक पक्ष में ये दोनों भाई-बहन कहलाये। यह सरण्यू कौन है? इस विषय में वेदमन्त्र ही स्पष्ट कर रहा है यह रात्रि ही सरण्यू है। देखिए-

यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश।।

(ऋ० १०/१७/२)

यम-यमी अर्थात् दिन-रात को जन्म देने वाली माता-सरण्यू सूर्योदय होने पर अदृश्य=नष्ट हो जाती है। इससे स्पष्ट है विवस्वान् सूर्य है और सरण्यू- रात्रि है। वेद मन्त्र में अलंकार वर्णन किया है। इसलिए वेदमन्त्र में कथित यम-यमी युगल होते हुए भी प्राकृतिक पदार्थ हैं।

लेखक की एक यह भी महाभ्रान्ति है कि वह वेदों को ईश्वरीय ज्ञान न मानकर मानव-रचना मानते हैं। लेखक के अनुसार जो समय-समय पर विद्वान् होते रहे, उनके बनाये सूक्तों का संग्रह ही वेद है परन्तु भारतीय सभी मनीषी ऋषि-मुनि के विरुद्ध होने से यह मान्यता सर्वथा मिथ्या है। लेखक ने ऐसे ही अपने भाव 'अक्षसूक्त' के प्रणेता कवि कवष ऐलूष को मानकर एक अन्य लेख में भी दिये हैं। और इस ईश्वरीय ज्ञान में ऐतिहासिक पुरुष विशेषों का वर्णन कदापि नहीं है। ऐसे लेखों को बिना टिप्पणी के 'नवभारत' आदि छापें, तो बात सह्य हो सकती है, परन्तु 'आर्यजगत्' के ६ नवम्बर ९४ के अंक में बिना टिप्पणी के छपे, यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। इसे सम्पादकों को हेय दृष्टि से ही देखा जायेगा।

वेद के यम-यमी सूक्त की स्पष्ट मान्यता :-

(क) यम-यमी सूक्त की अन्त:साक्षी-

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्, सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति।।

अर्थात् यम कहता है- हे यमि! तेरा सखा-साथी तुम्हारे साथ गृहस्थ को पसन्द नहीं करता। क्योंकि (यद् सलक्ष्मा विषुरूपा भवाति) समान चिह्नों वाली बहन विषुरूपा- गृहस्थ के लिए अयोग्य होती है। इसका भाव स्पष्ट है- जो सगोत्र स्त्री पुरुष हैं, उनके वैवाहिक सम्बन्ध नहीं होने चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टि से भी सगोत्रों के सम्बन्ध दोषपूर्ण होते हैं। वेद में सगोत्र सम्बन्ध को विषुरूप=विषमरूप कह कर निषेध किया है। जैसे दिन-रात विवस्वान् (सूर्य) से उत्पन्न होने पर भी सहवासी नहीं हो सकते उसी प्रकार भाई-बहन का विवाह सम्बन्ध भी नहीं होना चाहिए।

(ख) ***न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनम् अमृता वदन्तो अनृतं रपेम।।***

यम कहता है कि हम अमृत पुत्रों ने सगोत्र सम्बन्ध को पहले भी कभी नहीं माना है। ऐसे सत्य नियमों को मानने वाले भला अब कैसे स्वीकार कर सकते हैं।

(ग) सगोत्रों के सम्बन्ध को पाप माना है-

'न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्याम्' अर्थात् हे बहन! मैं तेरे तन के साथ अपने शारीरिक सम्बन्ध नहीं कर सकता। क्योंकि 'पापमाहुर्य: स्वसारं नियच्छात्' अर्थात् अपनी बहन के साथ शारीरिक सम्बन्ध रखना या विवाह करना विद्वानों की दृष्टि में पाप माना गया है।

इस प्रकार वेद के इस संवाद सूक्त से भाई-बहन के सम्बन्ध का दिन-रात की तरह सर्वथा निषेध किया गया है। अतः जो व्यक्ति इतने स्पष्ट निर्देश को भी न समझकर वेदों में अश्लीलता ढूंढता है, उस मन्दमति को कौन समझा सकता है। सच कहा गया है- 'नैष स्थाणोरपराधो यदैनमन्धो न पश्यति' अर्थात् यदि ज्ञान चक्षुहीन व्यक्ति मार्गों में खड़े स्थाणु को न देखकर टक्कर मारता फिरता है तो इसमें स्थाणु का क्या दोष है?

-राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत-भाषा का अध्ययन करना क्यों आवश्यक है?
भारत के उच्चतम न्यायालय का निर्णय

दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक श्री सन्तोषकुमार की याचिका पर उच्चतम न्यायालय ने केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को तीन मास के भीतर अपने पाठयक्रम में परिवर्तन कर संस्कृत भाषा को वैकल्पिक भाषाओं में शामिल करने का आदेश देते हुए कहा है-

न्यायालय खण्डपीठ ने संस्कृत भाषा की उपयोगिता तथा महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहा है कि यदि हम ने संस्कृत के अध्ययन को हतोत्साहित किया तो हमारी संस्कृति की नदी ही लुप्त हो जायेगी। संस्कृत की शिक्षा के बिना भारतीय दर्शन की व्याख्या करना सम्भव नहीं होगा। क्योंकि संस्कृत पढ़ना भारत की प्राचीन विरासत की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय संस्कृति और विरासत का ज्ञान केवल संस्कृत भाषा पर ही आधारित है।

न्यायमूर्ति कुलदीप सिन्हा और न्यायमूर्ति बी०एल० हंसारिया ने केन्द्र सरकार के इस तर्क को खारिज करते हुए निर्णय दिया कि संस्कृत की शिक्षा देने से देश में पंथ निरपेक्षिता खतरे में पड़ जायेगी। इस तर्क को विद्वान् न्यायाधीशों ने अस्वीकार करते हुए कहा कि संस्कृत भाषा को वैकल्पिक विषय बनाने पर फारसी और अरबी की शिक्षा की व्यवस्था करना भी आवश्यक हो जायेगा।

केन्द्र सरकार और केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की ओर से अतिरिक्त सालिसीटर जनरल के० टी० एस० तुलसी ने तर्क दिया था कि संस्कृत भाषा को पढ़ाने की मांग स्वीकार करने पर फ्रेंच, जर्मन और लेम्चा जैसी भाषाओं को पढ़ाने की मांग भी उठेगी। खण्डपीठ ने उनके इस तर्क को नहीं माना और कहा कि संस्कृत के साथ इन भाषाओं की बराबरी करना उचित नहीं। अधिकतर भारतीयों ने इन भाषाओं के नाम भी नहीं सुने होंगे। स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गांधी का उल्लेख करते हुए विद्वान् न्यायाधीशों ने अपने निर्णय में कहा कि इन दोनों को महान् हिन्दू माना जाता है लेकिन इनके जीवन और शिक्षाओं को पंथनिरपेक्षता का आधार माना जाता है। संस्कृत भाषा सभी भारतीय भाषाओं की जननी है। इसी भाषा में हमारी सांस्कृतिक विरासत के ग्रन्थ वेद, पुराण और उपनिषद् लिखे गये हैं।

संस्कृत भाषा के बिना महान् विद्वान् कविकुलगुरु कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, दण्डी की मूलरचनाओं के असली महत्त्व को नहीं जाना जा सकता है। और नहीं देश के महान् आध्यात्मिक गुरु शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य के उपदेशों और शिक्षाओं को जाना जा सकता है।

और अपने निर्णय में कहा कि भारत सरकार द्वारा स्थापित संस्कृत आयोग द्वारा १९५७ की प्रस्तुत रपट में संस्कृत भाषा के सामर्थ्य और उपयोगिता का वर्णन किया गया है कि संस्कृत विश्व की महान् भाषाओं में से एक है। इसका ज्ञान न केवल भारत, बल्कि एशिया महाद्वीप के बड़े हिस्से की विरासत को जानने का माध्यम है। भारतीय सभ्यता का विकास संस्कृत भाषा की गोद में हुआ है। संस्कृत ग्रीक और लेटिन जैसी प्राचीन भाषाओं की भी बड़ी बहन है। अपने निर्णय में पं० जवाहरलाल नेहरू की संस्कृत भाषा के विषय में एक टिप्पणी का उल्लेख किया गया है, जिसमें नेहरू जी ने कहा था कि मुझ से पूछा जाये कि भारतीयों का खजाना और सब से प्रमुख विरासत क्या है? तो मेरा स्पष्ट उत्तर होगा कि यह श्रेय संस्कृत भाषा और इसके साहित्य को ही दिया जा सकता है।

(७ अक्टूबर १९९४ के 'नवभारत टाइम्स' से उद्धृत)

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष खाकर ही मरना है तो अण्डे खाइये

स्व० ब्रह्मचारी विश्वनाथ

"अण्डे खाने से हाई ब्लड प्रेशर होता है, जो बाद में हृदय रोग बन जाता है। यह दुष्पाच्य होने से पेट में तो गड़बड़ करता ही है, पथरी आदि कई रोगों को पैदा करता है, अण्डे खाने वाले के आमाशय की दीवारों तथा आंतों की रक्तवाही नलिकाओं में भयंकर घाव पड़ जाते हैं जो रोग का कारण बनते हैं। अण्डे खाने से पेचिस आदि बीमारी होती है।"

यह विचार है 'कैलिफोर्निया (अमेरिका) के वैज्ञानिक डॉ० कैथरिन निम्मो तथा डॉ० जे० अमेन का जो अनेक परीक्षणों के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अण्डे में कालेस्ट्राल नाम विष पाया जाता है। यह विष रक्तवाहिनी नलिकाओं को घायल करता है जिसके कारण उन पर गंदगी जम जाती है तथा उनका मार्ग संकरा हो जाता है। इनमें लचक का अभाव हो जाता है। ये नलिकाएँ बड़ी कोमल एवं संवेदनशील रचनाएँ हैं। इनकी कोमलता एवं संवेदनशीलता घटने से शीघ्र बुढ़ापा आता है और उसकी आयु कम हो जाती है। इस विवरण को अमेरिका के फ्लोरिडा विश्वविद्यालय ने सन् १९६७ की अपनी एक स्वास्थ्य बुलेटिन में प्रकाशित किया था।

ये तथ्य बड़े चौंकाने वाले हैं। अब तक अण्डे को व मांसाहार को स्वास्थ्य-विज्ञान पिछले दिनों में सम्पूर्ण भोजन मानता आया था। परन्तु नई शोध ने उन्हें अधिक गहराई तक विचार करने के लिए विवश किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचाया है कि अण्डे की उपयोगिता वैसी नहीं जैसी अब तक प्रतिपादित की जाती है। अभी-अभी रूस में १६० वर्ष की आयु में एक दीर्घजीवी मानव की मृत्यु हुई। उसके दीर्घ जीवन का कारण शुद्ध शाकाहारी जीवन था।

इंगलैण्ड के डॉ० राबर्ट ग्रास, पो० ओकाड़ा, डेविडसन, इरविंग आदि वैज्ञानिकों ने भी परीक्षण कर प्रयोग किये हैं। इनके आधार पर उन्होंने स्वीकार किया है कि अण्डे खाने वालों को इसके हानिकारक प्रभाव पेचिस, मन्दाग्नि, आंतों तथा आमाशय के क्षय रोग के रूप में परिणत हो सकते हैं, इसी कारण अण्डे मनुष्य के लिए विष हैं। इनमें कैल्शियम तथा कार्बोहाइड्रेट आदि तत्त्व कम होते हैं, इसलिए यह पेट में सड़ान पैदा करके कई बीमारियां पैदा करता है।

इंगलैण्ड के डॉ०आर०जे० विलियम ने कहा है, हो सकता है अण्डे खाने वाले लोगों को यह भ्रम है कि अपने को अधिक स्वस्थ अनुभव करें पर बाद में वे कई भयंकर रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं जिससे रक्तचाप और एग्जीमा, रक्तविकार जैसे महारोग पैदा हो जाते हैं।

उपर्युक्त कथन मांस, मछली व अण्डा खाने वालों के लिए एक महत्त्वपूर्ण चेतावनी है। वैज्ञानिक निष्कर्ष के आधार पर यह सिद्ध होता जा रहा है कि मांसाहार से लाभ की अपेक्षा शरीर को हानि ही अधिक उठानी पड़ती है।

मनुष्य का वास्तविक भोजन सात्त्विक शाकाहार, फल, फूल, सब्जी और दूध, दही, मक्खन, मेवा आदि श्रेष्ठ पदार्थ ही है।

मूँगफली, चना, उड़द कीमत में सस्ते हैं लेकिन बादामों से भी अधिक श्रेष्ठ हैं, मांस व अण्डे की अपेक्षा मूँगफली कितने ही प्रमाण से सस्ती है, स्वच्छ, निर्दोष, पौष्टिक व शक्तिवर्धक है। एक मूठभर मूँगफली के दाने में मुर्गी के चार अण्डे की अपेक्षा अथवा पाव किलो मास की अपेक्षा अधिक शक्ति व वीर्य बढ़ाने वाला सामर्थ्य है।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने अमर ग्रंथ (सत्यार्थप्रकाश **अध्याय १२, पृष्ठ ५४५**) में लिखा है कि मांस का प्रचार करने वाले सब राक्षस के समान हैं। चारों वेदों में मांस, मछली अण्डा आदि खाने का कहीं भी उल्लेख नहीं है। स्वामी जी देशवासियों को चेतावनी देते हुए अपनी 'गोकरुणानिधि' पुस्तक में लिखते हैं कि गो रक्षा ही राष्ट्र रक्षा है, गो आदि पशुओं के विनाश से राजा और प्रजा दोनों का विनाश होता है। सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३२४ में स्वामी जी लिखते हैं कि शराबी और मांसाहारी के हाथ का खाने पीने से भी शराब मांसादि के खाने-पीने का दोष लगता है। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परकाया में प्रवेश सम्भव नहीं

–महेन्द्रप्रताप आर्य, आर्यनगर (पहाड़पुर)–वाराणसी

शरीर जब तक आत्मा के रहने योग्य रहता है तब तक आत्मा उसमें रहता है। जब शरीर आत्मा के रहने योग्य नहीं रहता तो जीवात्मा धनञ्जय वायु के साथ निकलकर स्वकर्मानुसार परमेश्वर की व्यवस्था में अन्य शरीर को ग्रहण करता है। जब तक धनञ्जय वायु शरीर में रहता है तब तक शरीर में जीवात्मा रहता है। चाहे व्यक्ति कितना ही मूर्च्छित मृतवत् दीखे परन्तु वह भीतर जीवित रहता है यदि उसकी उचित चिकित्सा की जाय तो व्यक्ति जीवित हो जाता है वा स्वतः विद्युत, रक्त तथा वायु के संचरित होने से धनञ्जय वायु युक्त मृत घोषित लोग जीवित हो उठ बैठते हैं। धनञ्जय वायु के रहस्य को न जानने वाले लोग परकाया में प्रवेश की मिथ्या, अवैज्ञानिक कल्पना का प्रचार करते हैं वे तनिक बुद्धि फैलाकर यह नहीं सोचते हैं, "जब आत्मा के रहने योग्य शरीर होता तो उसमें से आत्मा निकलता ही क्यों? तथा जब आत्मा के रहने योग्य शरीर है ही नहीं तो अन्य आत्मा उसमें जाकर क्या करेगा?" अतः परकाया में प्रवेश की कल्पना मिथ्या एवम् अतार्किक है। परकाया में प्रवेश के विषय में लोग कुछ ऐतिहासिक प्रमाण उद्धृत करते हैं अब उन्हीं प्रमाण कही जाने वाली कथाओं पर विचार किया जाता है। लोग यत्रतत्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करते रहते हैं जिनका विवरण निम्नांकित है:-

"द्वितीय शंकराचार्य ने माहिष्मती निवासी मण्डन (वा मदन) मिश्र से शास्त्रार्थ किया था। शास्त्रार्थ में काशी निवासी कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डन मिश्र शंकराचार्य से पराजित हो गये। पराजय का निर्णय मण्डन मिश्र की परम विदुषी पत्नी शारदा (सरस्वती) ने दिया। परन्तु शारदा स्वयं शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने लगी। शास्त्रार्थ के बृहद् रूप हो जाने पर उसने कामकला के विषय में प्रश्न कर दिया। शंकराचार्य ने निरुत्तर हो उत्तर देने के लिए शारदा से समय मांगा। शारदा ने उन्हें समय दे दिया। आचार्य शंकर इसकी खोज में चिन्तित थे कि उसी समय उन्हें ज्ञात हुआ कि जंगल में अमरूक राजा मर गये हैं। वे अपने शरीर को कन्दरा में छिपाकर अमरूक में प्रविष्ट कर गये। अमरूक जीवित हो गये वे घर जाकर रानियों से रतिक्रीडा कर काम कला के मर्मज्ञ हो गये। पुनः अमरूक का शरीर त्याग अपने मूल शरीर में आ गये। यह बात शारदा व मण्डन मिश्र जान गये। शंकराचार्य की महत्ता को जानकर मण्डन मिश्र उनके शिष्य सुरेश्वराचार्य बने जो शृंगेरी मठ के शंकराचार्य बने।"

एक दूसरी घटना इस प्रकार लिखी मिलती है:-

"मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ (प्रथम) के गुरु थे। एक बार ये दोनों गुरु-शिष्य घूमते-घूमते प्रयाग पहुँचे। वहाँ के राजा का नाम त्रिविक्रम था। त्रिविक्रम की पत्नी रेवती निःसन्तान थी। अतः शिष्य गोरखनाथ के आग्रह पर मत्स्येन्द्रनाथ शिवालय के तहखाने में अपने शरीर को त्याग कर त्रिविक्रम के शरीर में प्रवेश कर गये। राजा जीवित हो गये। राजा रानी के योग से धर्मनाथ नामक पुत्र हुआ। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ अपने मूल शरीर में आ गये।"

एक तीसरी घटना इस प्रकार है:-

"शृंगमुरड की रानी मैनाकिनी परम सुन्दरी थीं। पति यक्ष्मा (टीबी) से पीड़ित थे। रानी के कठोर अनुष्ठान से हनुमान् जी प्रकट हुए। रानी ने उनसे पुत्र मांगा। हनुमान् जी पुत्र का आश्वासन देकर अन्तर्द्धान हो गये। हनुमान् जी ने मत्स्येन्द्रनाथ से कहा तो मत्स्येन्द्रनाथ ने इसे स्वीकार कर लिया। जब राजा की मृत्यु हुई तो मत्स्येन्द्रनाथ एक सुरक्षित स्थान पर समाधि लगाकर शरीर को त्याग कर राजा के शरीर में प्रवेश कर गये। राजा स्वस्थ हो गये। राजा रानी के योग से कालक्रम से मीनानाथादि दो पुत्र हुए। पुनः 'चेत मछिन्दर गोरख आया' की ध्वनि सुनते ही मत्स्येन्द्रनाथ अपने मूल शरीर में आ गये।"

समीक्षा-यह ध्रुव सत्य है कि मृत्यु हो जाने के उपरान्त कोई भी जीवित नहीं हो सकता है। अमरूक, त्रिविक्रम तथा मैनाकिनी के पति मात्र मूर्च्छावस्था से ही जीवित हुए थे। ऐसी घटनाएँ तो बहुत सुनने में आती हैं। धनञ्जय वायु युक्त मूर्छित लोग ही जीवित होते हैं। शंकराचार्य व मत्स्येन्द्रनाथ हठयोगी ने तो सम्भवतः कभी व्यभिचार नहीं किया था परन्तु इनके शिष्यों ने अपने गुरु लोगों को बड़ा सिद्ध करने में छोटा सिद्ध कर दिया। तथा अपने गुरुओं को परनारी गमन का पापी घोषित कर दिया। जब वे अपने मूल शरीर को भूइधरा में रखते तो उनके शरीरों को चींटी इत्यादि कृमि कीट खा जाते वा उनके शरीर सड़ जाते। यदि हिम में रखते तो पुनः रक्त संचार सम्भव नहीं है। अतः ये घटनाएं सत्य व ऐतिहासिक नहीं वरन् रोमांस मात्र हैं।

अतः परकाया में प्रवेश की कल्पना मिथ्या, निराधार, अवैज्ञानिक तथा सृष्टिक्रम के प्रतिकूल होने से अवैदिक है।

सुक्रान्ति का भेरि बजाया, हेतु धर्म सदारा की।
जय होवे ऋषि दयानन्द की, जय सत्यार्थप्रकाश की ॥

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द और भारतीय जन जागरण

महापुरुष–नानक हों या कबीर, दयानन्द हों या विवेकानन्द, गांधी हों या विनोबा, ये मानव मात्र के लिए मानवता के पावन प्रतीक, प्रेरणा-स्रोत, प्रकाशस्तंभ तथा जनजागरण के अग्रदूत थे।

धार्मिक विप्लव एवम् अंधविश्वासग्रस्त समाज में जन्मे मूलशंकर ने जीवन के प्रभात में ही विश्वासों की जड़ता तथा आधारहीन पारंपरिक मान्यताओं की छलना की झलक पा ली थी। पहले उन्होंने पलायन की बात सोची, फिर चिंतन में ऊहापोह जगा, पर अंत में उन्होंने कमर कसकर मटमैली पगडंडियों और कीचड़सनी गलियों से अलग और ऊपर उठकर जन कल्याण के लिए प्रशस्त राजमार्ग बनाने का निश्चय किया। यह सब ऐसे ही नहीं हुआ। उन्होंने मात्र ग्रंथों को ही इस मानसिक उद्वेलन और आंदोलन का माध्यम नहीं बनाया अपितु स्वामी जी के शब्दों में ही "मैंने देश में बिखरी-फैली धार्मिकता के प्रचलन और प्रसंग में रह बसकर देखा है और फिर मुझे आगे जो प्रशस्त मार्ग मिला उस पर चला हूं।" आत्म निवेदन के इसी उपक्रम में उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उन्होंने मात्र विरोध के लिए विरोध नहीं किया बल्कि समाज को सही दृष्टि और दिशा देने की चेष्टा की, चाहे उनकी यह चेष्टा संघर्षों, अवरोधों और विवादों से होकर गुजरी हो। "मैंने जो भोगा सो गया" की उक्ति के अनुसार स्वामी जी ने जो देखा, अनुभव किया और पाया उसी का उद्घोष किया।

स्वामी जी ने जीवन के विभिन्न प्रसंगों में राष्ट्र की गरिमा को नमन किया है। "माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः" में उनकी दृढ़ आस्था थी। अपने विचारों का व्यापक प्रचार करने के लिए उन्होंने हिन्दी भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। हिंदी की लोकप्रियता आज उन्हीं के प्रसाद के रूप में है।

सिद्धार्थ के समान ही ऐहिक कामनाओं का परित्याग कर स्वामी जी भी सत्यान्वेषण तथा सांसारिक जीवन की पीड़ाओं के शमन का उपाय ढूंढ़ने को घर से निकल पड़े। अलकनंदा से नर्मदा तक और फिर विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए उन्होंने मुक्तरूप से विभिन्न मतावलंबियों, विचारकों, प्रचारकों तथा हठधर्मियों से विचार-विमर्श किया। बिना पूर्वाग्रह के उन्होंने सारगर्भित विचारों को स्वीकार किया और जो विचार भ्रममूलक प्रतीत हुए उनका खंडन किया। धर्म की शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार उन्होंने ऐसे ही विचारों को मान्यता प्रदान की जो संपूर्ण समाज के अभ्युदय और कल्याण की सिद्धि में सहायक हो सकते थे। इसी उदात्त भाव भूमि पर अधिष्ठित होकर उन्होंने जन्मना जाति की प्रचलित मान्यता का खंडन किया, विदेश यात्रा से धर्महानि न मानते हुए पुनर्विवाह के पक्ष का समर्थन और मानवजीवन में श्रम के महत्त्व का प्रतिपादन किया।

सत्य की खोज में उन्होंने अनेक वर्षों तक सूर्य को अर्घ्य दिया, विष्णु 'सहस्रनाम' तथा 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ किया, शरीर पर भस्म रमाई, रुद्राक्ष की माला पहनी और मनुस्मृति के प्रति निष्ठा व्यक्त की, पर इस सबके बाद उन्हें ऐसा लगा कि इस उलझाव से कुछ मिलने का नहीं है। नर्मदा के तट पर उषः सूक्त का पाठ करते हुए उन्हें अनायास यह आभास हुआ कि मुक्ताकाश की एक ज्योति अवतरित हो रही है जिसकी अगवानी करनी चाहिये। यहीं से स्वामी जी के जीवन में एक मोड़ आया, एक बदलाव। यह ऐसा बदलाव था जिसने उन्हें अतीत की विषमताओं से मुक्त कर वर्तमान से जोड़ दिया, युग-पथ से जोड़ दिया। उन्हें ऐसा लगने लगा कि परिस्थितियों की विषमताओं से परित्राण वैयक्तिक साधना द्वारा नहीं, समष्टिमूलक चेतना द्वारा होगा।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम स्वामी जी ने अपनी आंखों से देखा था। संयोग से उन दिनों वह ऐसे ही क्षेत्रों में प्रवास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे जहां स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी दमनचक्र से जूझ रहे थे। इसी अवसर पर स्वामी जी ने देखा देश के मनोबल का प्रभाव, स्वातंत्र्य-भावना पर स्वार्थ की विजय और विदेशी आततायियों की कुटिलता अर्थात् समाजवाद की विषबेल का फैलाव हो रहा था। पर स्वामी जी ने नई दिशा में प्रयत्न शुरू कर दिए। मिर्जापुर के पिछड़े क्षेत्र में उन्होंने प्रथम वैदिक पाठशाला की स्थापना की। एच॰ फोरमैन ने इसे स्वामी जी का शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम चरण, आदि संकल्प माना। पाठशाला के शुभारम्भ के अवसर पर स्वयम् स्वामी जी ने कहा, "मैंने यह स्वीकार कर लिया है कि बिना शिक्षा के प्रसार के जागृति की कामना दिवास्वप्न बनकर रह जायेगी।" प्रारंभ प्रेरक रहा और फिर पाठशालाओं और विद्यालयों का सिलसिला शुरू हो गया।

बंगाल के प्रवास ने स्वामी जी को नये विचार और संभावनाओं के स्वरूप दिये। वह ब्रह्मसमाजियों से घुलमिल गए। केशवचंद्र सेन ने उनके उत्साह को समर्थन प्रदान किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में पहले से ही लगे हुए थे। बंगाल के अन्य प्रबुद्ध नेताओं और सुधारकों से लंबे विचार-विमर्श के बाद स्वामी जी ने कुछ और व्यावहारिक होने की चेष्टा की। स्वयं स्वामी जी के शब्दों में, 'बंगाल के प्रवास ने मेरे चिंतन को कर्म में परिवर्तित होने की चेतना दी।'

अभी तक स्वामी जी भस्म रमाते और केवल कौपीन पहनते थे। अब उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें भी कपड़े पहनने चाहिये, नंग-धड़ंग रहने से विशेष अंतर नहीं पड़ता। स्वामी जी ने व्रत लिया कि विचारों की दौड़ में उन्हें पीछे नहीं रहना है। वह पादरियों तथा अंग्रेज अधिकारियों से भी मिले। स्वयं वाइसराय ने भी स्वामी जी को विचार-विमर्श के लिए आमंत्रित किया। देखते ही देखते स्वामी जी जन जागरण के अग्रदूत माने जाने लगे। आए दिन नवयुवकों के समूह उनके पास आते तथा वैचारिक प्रेरणा ग्रहण कर अपने-अपने क्षेत्र में उनकी भावना को मूर्तरूप प्रदान करने का सतत प्रयास करते। आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी और इसके साथ स्वामी जी ने स्पष्ट कर दिया था, हर युग का अपना एक सत्य होता है। आर्य समाज की स्थापना आज की आवश्यकता है, सत्य है।

इस समय तक गौरांग प्रभुओं की पैनी दृष्टि स्वामी जी पर पड़ने लगी थी। वाइसराय ने इस बागी फकीर पर कड़ी निगरानी रखने की हिदायत दे दी थी। हो सकता था अंग्रेज सरकार उन्हें बंदी बनाने की बात भी सोचती पर इस समय तक स्वामी जी की लोकप्रियता इतनी बढ़ चुकी थी कि चतुर सरकार कोई भी प्रत्यक्ष कार्यवाही करने में हिचकती रही परंतु परोक्ष रूप में कुछ भी करने में बाज नहीं आई। एक ओर स्वामी जी के विचारों की लहर थी और दूसरी ओर प्रायोजित एवं प्रेरित विरोध। स्वयं सरकार ने विरोधियों को उकसाया, यहां तक कि स्वामी जी की हत्या के षड्यंत्र में साझेदारी की।

स्वामी जी के सर्वांगीण अभियान की लंबी कहानी अनेक दिशाओं में फैली थी। एक ओर वह जन जीवन को अंधविश्वासों से मुक्त करने जाति-पाँति, ऊंच-नीच तथा नगर-ग्राम के विभेदों को पाटने में लगे थे तो दूसरी ओर शिक्षा के प्रचार द्वारा कोटि-कोटि अंगों को वर्तमान की उद्विग्नता से जोड़ने की चेष्टा कर रहे थे। स्वयं स्वामी जी के अनुसार वह देश को एक चरित्र देना चाहते थे, कोरा वह चरित्र नहीं जो प्रतिपादित नैतिकता की डोर से बंधा था अपितु वह चरित्र जो देश के लिए जीना सिखाए और उसी के लिए मिटना।

कबीर और नानक के समान ही स्वामी जी के लिए आत्मा की आवाज ही वाणी बन गई थी। उन्हें ईश्वर की अलौकिक शक्ति में विश्वास था और कर्मकांड के थोथेपन को वह उखाड़कर फेंक देना चाहते थे। उनके विषय में यह भ्रम प्रायः प्रकट किया जाता रहा है कि वह अन्य मतों के प्रति असहिष्णु थे, इसीलिए शायद उनकी अधिकांश सृजनशक्ति प्रतिरोध में उलझकर रह गई। इस विषय में स्वामी सत्यदेव के मतानुसार स्वामी दयानन्द के अंतर में राष्ट्रीय भावना थी, राष्ट्रदेवता के प्रति नमन और समर्पण। एक अन्य संदर्भ में उन्होंने यह भी कहा था कि स्वामी जी संकटों में उलझे पर हर संकट उन्हें और अधिक साहसी और निर्भीक बना गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी की सफलता और लोकप्रियता ने अंग्रेज सरकार को और अधिक शंकालु बना दिया। उसने बड़ी चतुराई से स्वामी जी को टटोला-आपकी स्पष्टवादिता आपके लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है। आप चाहें तो हम आपकी सुरक्षा व्यवस्था कर सकते हैं। स्वामी जी का उत्तर था, "अंग्रेजी राज्य में वाणी की स्वतंत्रता है, फिर मुझे भय कैसा।" इसी बीच स्वामी जी के पास देसी रियासतों के उत्पीड़ित असहाय राजा आने लगे। ऊपर से तो इन रियासतों के स्वामी सत्कार-प्रदर्शन करते पर मन ही मन वैर भावना पाले रहते। पर संत तो क्या, वह प्रायः कहा करते थे- "मैं तो मशाल ठहरा। आज नहीं तो कल बुझना ही है। देखना केवल यह है कि जनजीवन कितने डग आगे बढ़ा इसके सहारे।

स्वामी जी को जीवन के अंतिम काल का आभास था। इसीलिये जन-जागरण का ओजस्वी उद्घोष करने वाली वाणी मौन-सी हो गई थी। वह कहते थे-अब मुझे लगता है मेरा मौन ही मेरी वाणी का काम करेगा। वह बार-बार मानव मात्र की समानता की बात दुहराने लगे थे, देश की अखंडता में उनका दृढ़ विश्वास था। जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने शिष्यों से कहा था "आग लग चुकी है और दासता के बंधनों को जलाकर ही चैन लेगी।" उनका कथन था-"जीवन को समेटो नहीं, अनंत प्रवाह के रूप में उसे बिखरा दो।"

स्वामी जी के अनन्य प्रशंसक एस॰पी॰ कुलिवार के कथनानुसार स्वामी जी क्रान्तिकारियों में संत और संतों में क्रांतिकारी थे। उनका जन जागरण का उद्घोष सदैव युग के अनुरूप वाणी और अभिव्यक्ति पाता रहेगा।

सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में प्राण फूंकने वाले, विधवा विवाह के पक्षधर, जन्मना जाति प्रथा के विरोधी, अंधविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों के संहारक तथा जनभाषा हिंदी के प्रबल पोषक स्वामी दयानन्द वास्तव में दिव्यद्रष्टा महर्षि थे।

-डॉ॰ सत्यदेव 'आज़ाद'
२३१३, अर्जुनपुरा गेट, मथुरा (२८१००१)

योगदर्शन-भाष्यम्

(महर्षि व्यास-भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द व्याख्योपेत)

व्याख्याता : **आचार्य राजवीर शास्त्री**

- योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
- व्यास-भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
- महर्षि-दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
- दर्शनों के परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
- क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियाँ अनेक चित्त निर्माण, इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

विशेष जानकारी के लिए सूची पत्र मँगायें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद में नारी का स्वरूप

देव-पत्नियाँ कैसी हों

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज वेद के माध्यम से मनुष्यों को देवत्व की प्राप्ति कराना चाहते थे। मनुष्य जन्म को पाकर ज्ञान और पवित्रता के द्वारा दैवत्व की ओर बढ़ना ही सुख और उन्नति का मार्ग है। सांसारिक सुख के इच्छुक व्यक्तियों के लिए परम आवश्यक है कि वे अपना जीवन साथी चुनते समय बहुत ही सतर्क रहें। जीवन भर की खुशियों को पाने के लिए उत्तम साथी को प्राप्त करना अपने सौभाग्य को प्राप्त करना है। सौभाग्यशाली पुरुष ही बुद्धिमत्ता से, हँस की तरह नीर क्षीर-विवेक के द्वारा योग्य जीवन साथी का चुनाव करता है। देव अर्थात् विद्वान् लोग देवी अर्थात् विदुषी गुणवती कन्याओं के साथ ही विवाह करके सुख प्राप्त कर सकते हैं– इससे पहले मंत्र में साधारण नरों की पत्नी के गुण बतलाये गए थे और इस मंत्र में विदुषी पत्नी के गुण बतलाये गए हैं–

इहेन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये।
अग्नायीं सोमपीतये ।।

(ऋ०मं० १ सूक्त २२ मं० १२)

देवताओं की अर्थात् विद्वानों की पत्नियों की विशेषता इस मंत्र में बतलाई गई है। इस मंत्र के भावार्थ में ऋषि लिखते हैं-मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर के बनाए हुए पदार्थों के आश्रय से, अविनाशी और निरंतर सुख की प्राप्ति के लिए उद्योग कर परस्पर, प्रसन्नता युक्त स्त्री और पुरुष का विवाह करें क्योंकि तुल्य स्त्री-पुरुष और पुरुषार्थ के बिना किसी भी मनुष्य को कुछ भी ठीक-ठीक सुख का संभव नहीं हो सकता।''

देव पत्नियाँ पदार्थों के स्वरूप को ठीक-ठीक जानकर उसे सुख प्राप्ति में प्रयुक्त करती हैं। सृष्टि के पंच महाभूतों में अग्नि, वायु और जल ये तीन पदार्थ मुख्य रूप से सुख और ऐश्वर्य बिखेरते हैं। पृथ्वी इनका आधार है और आकाश आश्रय-दाता है। इन तीन देवताओं के गुणों को जानकर इनका सदुपयोग करके ही मानव जाति सुखों का विस्तार करने में सक्षम हो सकती है। इसीलिए मंत्र में पत्नी की योग्यता का वर्णन करते हुए पुरुष कहता है इन्द्राणीम्+उपह्वये=वायु के समान बलशाली वायु के गुणों को जानने वाली स्त्री को मैं स्वीकार करता हूँ। जो स्वस्थ, सुन्दर है बलशालिनी है वही इन्द्राणी कहलाने के योग्य है। इन्द्राणी सूर्य की किरणों को भी कहते हैं। वायु में भी गति है किरण में भी गति है। जहाँ बल और गति दोनों हैं वहाँ वायु का रूप है। शरीर का ऐश्वर्य बल ही है जिस ने ब्रह्मचर्य के द्वारा और प्राणायाम के द्वारा वायु के गुण को अपने भीतर धारण कर लिया है वह गतिमान् कान्तिमान् और बलवती हो ही जाती है। वेद नारी को बलवती होने की शिक्षा देते हैं और आज की नारी स्मार्ट बनने के लिए स्लिम दिखने के लिए ब्यूटी पार्लर के चक्कर लगाती है। डाइटिंग करती है पर उसे पता नहीं कि बलवान् बनने के लिए शुद्ध वायु का सेवन और प्राणायाम के माध्यम से अशुद्ध वायु को बाहर निकाल फेंकने की विद्या जाननी आवश्यक है वही स्त्री स्वस्थ बनती है, जो सूर्य की किरणों का सेवन करती है वह इन्द्राणी क्यों न बनेगी ! सुन्दरता स्वास्थ्य का ही दूसरा नाम है। हमारी आदर्श महिला सीता इतनी बलवती थी कि जिस धनुष को बड़े-बड़े राजा हिला भी नहीं सकते थे उसे सीता जी सहज ही उठा लिया करती थीं। ''जय सिया राम'' के नारे लगाने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि इस देश में नारियों को सीता की तरह बलशाली बनायें जिस देश में नारियों को वेद विद्या से वंचित रखा जाता हो जिसे गर्भ में ही नष्ट करने के उपाय खोजे जाते हों, बचपन से जिस के खान-पान की घोर उपेक्षा की जाती हो उनकी कन्याएँ कैसे बलशाली बनेंगी। आज सहशिक्षा का घुन ब्रह्मचर्य का नाश कर रहा है यहाँ इन्द्राणी के दर्शन कैसे होंगे?

फिर भी आशा की किरण तब फूटती है जब महिलाएँ विमान चालिका बन रही हैं वायु सेना में भरती हो रही हैं। अन्यथा सज धज कर यात्रियों को लुभाने का कार्य ही नारी के लिए शोभा जनक नहीं है।

इन्द्र नाम वायु का है जिस के माध्यम से हमारा ऐश्वर्य बढ़े वही इन्द्र है। भौतिक जीवन के ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्य शुद्ध वायु का सेवन करना आवश्यक है और श्वास-प्रश्वास पर नियंत्रण कर शरीर में उचित ढंग से स्थापित करना ही प्राणायाम विद्या है। इसे स्वयं जान कर परिवार में भी इस ऐश्वर्य को बढ़ाने का काम नारी के द्वारा ही होता है। फिर उस वायु को शुद्ध करने की क्रिया को जानना भी उस के लिए आवश्यक है। यह यज्ञ क्रिया है। यज्ञ क्रिया के द्वारा घर और बाहर की वायु को शुद्ध कर यह इन्द्राणी घर को स्वर्ग बना देगी। ऐसी पत्नी को पाकर कौन पुरुष सुख से वंचित रह सकता है? वेद कहता है कि ऐसी इन्द्राणी को अपने जीवन में स्वीकार करता हूँ।

वरुणानीं स्वस्तये– स्वस्ति के लिए, सुख और कल्याण की प्राप्ति के लिए वरुणानीं अर्थात् वरुण के (जल के) गुणों को जानने वाली जल के गुणों को धारण करने वाली जल के द्वारा उपकार करने की विद्या वाली पत्नी को ग्रहण करता हूँ। जल स्वयं पवित्र है औरों को भी पवित्र करता है। प्रेम का जल जिस नारी के हृदय में हिलोरें लेता है वह अपने प्रेम जल से सारे परिवार को समृद्ध और हरा भरा बना देती है। जल के समान शुद्ध आचरण वाली जिसने जीवन में शुचिता को धारण किया है वही वरण करने के योग्य व सर्व श्रेष्ठ वरुणानी कहला सकती है। जल प्यास बुझाता है, शीतलता व शान्ति प्रदान करता है। नारी भी अपने व्यवहार से व वाणी से "औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय" को चरितार्थ करती है। जल में नम्रता और ऋजुता का गुण भी है जो नारी नम्र व ऋजु अर्थात् सरलता की मूर्ति हो, वह तो वरणीय है ही। कुटिलता छल कपट अभिमान नारी के लिए भयंकर दोष हैं क्योंकि नारी को पुरुष का निर्माण भी तो करना है इसीलिए वेद ने उसे वरुणानी बनने के लिए जल के गुणों को धारण करने की बात कही है जल के गुणों को धारण करने के साथ-साथ जल का समुचित उपयोग कर उसे औषधि के रूप में उपयोग करना यह भी वरुणानीं का कर्तव्य है। जल के गुणों को जानना उस से पूरे परिवार का उपकार करना, यह भी वरुणानी का कर्तव्य है। जल और स्त्रियों का बहुत निकटता का सम्बन्ध है। आज की नारी ने जल को केवल आँखों में ही बसा रखा है। आँचल का जल भी अब सूखता जा रहा है, जब कि होना यह चाहिए कि आँखों का जल सूखे और आँचल में प्रेम का जल बहे। वेदों में तो 'आपः' शब्द स्त्रीलिंग ही है। देवी आपः कह कह कर जल के साथ देवियों के गुणों का मेल करके उनकी स्तुति गाई गई है। ऐसी 'वरुणानी' देवियाँ जिस घर का शृंगार बनेंगी वहाँ स्वस्ति-सुख की छटा अवश्य छिटकेगी।

अग्नायीं सोमपीतये–अग्नि का गुण है चमक और प्रकाश। जो ज्ञान के प्रकाश से तेजस्विनी है, उसे सोमपीतये– "ऐश्वर्यों का जिस में भोग होता है उस कर्म के लिए" (ऋ०द०) इह-इस संसार में सुख पाने के लिए ऐसी स्त्री को मैं सहभागी बनाता हूँ। अग्नि का गुण केवल जलाना ही नहीं चमकाना भी है। ज्ञान से चमकना और दुष्टता को, बुराई को भस्म कर देना यह अग्नि का स्वभाव है। पर इस के साथ-साथ उत्पादन शक्ति भी अग्नि का ही गुण है। अग्नि के बिना उत्पादन संभव ही नहीं है। उन अग्नि के गुणों को धारण करने वाली, अग्नि के गुणों को जानने वाली 'अग्नायी' को सुख और शान्ति के लिए स्वीकार करता हूँ।

नर-नारी का चयन परस्पर गुणों के आधार पर होना चाहिए, धन के आधार पर नहीं। आजकल दहेज के लोभी पुरुष स्त्री के गुणों की ओर ध्यान न देकर उस के द्वारा लाए गए धन से स्त्री का मूल्यांकन करते हैं।

वेद मंत्र हमें इस बात की प्रेरणा देता है कि पत्नी का वरण करते समय उस के स्वास्थ्य व बल की ओर प्रथम ध्यान देना चाहिए। जो नारी वायु के समान बलवती हृष्ट पुष्ट नीरोग, ब्रह्मचर्य की कान्ति से देदीप्यमान हो ऐसी "इन्द्राणी", जो जल के समान पवित्र आचरण वाली सच्चरित्रा नम्र कोमल मधुर वाणी से युक्त सरल व्यवहार करने वाली "वरुणानी" और अग्नि के समान ज्ञान युक्त हो तथा वायु, जल और अग्नि के गुणों को जान कर उस से उपकार लेने की बुद्धि वाली स्त्री सारे परिवार और सम्पूर्ण समाज को सुखों से भर सकती है ऐसे दिव्य गुणों को धारण करने वाली दिव्य पदार्थों के ज्ञान से आलोकित नारी घर को स्वर्ग बना सकती है, ऐश्वर्य से भर सकती है, सुसन्तान को जन्म देकर उन्हें भी ज्ञानी व सुकर्मी बना कर मानव जाति को सुख के मार्ग पर चला सकती है।

डॉ० सुनीति
H-५-७५३ ज्ञानगंगा, सुल्तान बाजार
हैदराबाद-२७ (आन्ध्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य प्रियव्रत जी अब नहीं रहे

गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व आचार्य, कुलपति, परिद्रष्टा, वेदमनीषी आचार्य प्रियव्रतजी वेदवाचस्पति ४ नवम्बर को प्रात: ८ बजे भौतिक शरीर को त्यागकर परमात्मा की गोद में चले गये।

आचार्य प्रियव्रत जी का गुरुकुल कांगडी, आर्यसमाज और वेद से अटूट सम्बन्ध था, वे जीवन पर्यन्त वेद, गुरुकुल और मानवता की सेवा में लगे रहे, आज जब हम उनके चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहे हैं तो उनके कार्य, उनकी विद्वत्ता और वेद सेवा, गुरुकुल सेवा, मोहक व्यक्तित्व याद आते हैं।

पानीपत के समीप भाउपुर नामक ग्राम में संवत् १९५८ में जन्म लेने वाले जिस बालक को पिता श्री विजयसिंह ने स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के चरणों में अध्ययन के लिए समर्पित किया था, उस समय कौन जानता था कि यही बालक अपने आचार्य के सपनों को साकार करने के लिए संपूर्ण जीवन कुलमाता को अर्पित करेगा। आपने प्रत्येक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए विद्यालंकार, परीक्षा में चार स्वर्ण पदक प्राप्त किये और इस विश्वविद्यालय की उपाधि वेद वाचस्पति प्राप्त की। आगे चलकर आपकी वैदिक संस्कृति और साहित्य की विशिष्ट सेवाओं को देखते हुए गुरुकुल विश्वविद्यालय ने सन् १९७६ में अपनी सर्वोच्च उपाधि "मार्तण्ड" मानद रूप से प्रदान करके आपको "वेद मार्तण्ड" उपाधि से सम्मानित किया।

आपने सन् १९२८ में दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय लाहौर में उपाध्याय के रूप में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया और फिर कभी पीछे लौटकर नहीं देखा, आगे ही आगे बढ़ते रहे। १९४३ में गुरुकुल कांगड़ी के प्रधानाचार्य नियुक्त होकर आपने अपनी कर्मस्थली हरिद्वार को बना लिया। निरन्तर २४ वर्ष तक आचार्य के रूप में कार्य करने के पश्चात् कुलपति पद पर कार्य करके १९७१ में आपने अवकाश ग्रहण किया।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के इस दीर्घ कार्यकाल में उच्च कक्षाओं को वैदिक वाङ्मय के अध्यापन के साथ-साथ संस्था के प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर आपने चिरस्मरणीय कार्य किया।

प्रशासनिक कार्य करते हुए भी आपकी लेखनी विद्वत् जगत् को निरंतर नये-नये वैदिक ग्रन्थ प्रदान करती रही। आपकी अनवरत श्रुति साधना ने वरुण की नौका, वेदोद्यान के चुने हुए फूल, वेद का राष्ट्रीय गीत, मेरा धर्म, समाज का कायाकल्प, वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त, वेद और उसकी वैज्ञानिकता आदि अमर ग्रन्थ राष्ट्र को प्रदान किये। ये ऐसी अमर कृतियां है जिनको पढ़कर न जाने कितने जिज्ञासुओं ने वेदों के रहस्य को समझा। आपके इन ग्रन्थों की देश के मूर्धन्य मनीषियों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। आपके वैदिक लेख भारतवर्ष की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं की गरिमा बढ़ाते रहे। आचार्य श्री ने न केवल साहित्य सर्जना से अपितु अपने विद्वत्तापूर्ण ओजस्वी व्याख्यानों से भी राष्ट्र की सेवा की। आर्य-समाज के बड़े-बड़े सम्मेलनों और उत्सवों में जब आचार्य जी व्याख्यान के लिए जाते थे तो आर्य जनता सुनने के लिए उमड़ पड़ती थी। प्रभु ने आपको लेखनी और वाणी दोनों का महारथी बनाया था। विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आपका लेखन कार्य चलता रहा।

आचार्य प्रियव्रत जी के चरणों में बैठकर विद्या प्राप्त करने वाले हजारों स्नातक आज देश के प्रत्येक भाग में राष्ट्र सेवा में लगे हुए हैं। इस गुरुकुल के कण-कण में उनकी स्मृति व्याप्त है। विश्वास नहीं होता कि वे हमें छोड़कर चले गये किन्तु ईश्वरीय व्यवस्था के समक्ष सभी को नतमस्तक होना पड़ता है। आचार्य श्री ९४ वर्ष का यशस्वी जीवन पूर्ण कर नया शरीर धारण करने चले गये हैं। अवशेष हैं उनकी स्मृतियां, प्रेरणाएं एवं साहित्य। ऐसे गुरुवर आचार्य प्रियव्रत जी के चरणों में मेरा शत-शत प्रणाम।

दु:ख के इन क्षणों में गुरुकुल विश्वविद्यालय परिवार के हम सभी सदस्य आचार्य प्रियव्रत जी के चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं। तथा उनके शोकाकुल परिवार को धैर्य प्रदान करने की परमेश्वर से याचना करते हैं।

रा०प्र० वेदालंकार, उपकुलपति
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि दयानन्द प्रोक्त सृष्टि संवत् ही सत्य है

(इं० आदित्यपालसिंह आर्य, भोपाल, म०प्र०)

ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित साहित्य में सृष्टि संवत् विषयक निम्न उल्लेख प्राप्त होते हैं-

(१) **प्रश्न**- जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ?

उत्तर- एक अरब, छानवे करोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका में लिखा है, देख लीजिए। -सत्यार्थप्रकाश

(२) **प्रश्न**- वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गए हैं?

उत्तर- एक वृन्द, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नव सौ छहत्तर अर्थात् (१,९६,०८,५२,९७६) वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में हो गए हैं और यह संवत् सतहत्तरवां वर्त्त रहा है----जिसको आर्य लोग विक्रम का (१९३३) उन्नीस सौ तेतीसवां संवत् कहते हैं।

-ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

(३) यह जो वर्त्तमान ब्राह्म दिन है। इसके (१,९६,०८,५२,९७६) एक अरब छानवे करोड़ आठ लाख बावन हजार नव सौ छहत्तर वर्ष इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में भी व्यतीत हुए हैं और (२,३३,३२,२७,०२४) दो अरब तेतीस करोड़ बत्तीस लाख सत्ताइस हजार चौबीस वर्ष इस सृष्टि के भोग करने में बाकी रहे हैं। -ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

(४) जितने वर्ष वैवस्तय मनु के भोग होने में बाकी हैं। उतने ही मध्याह्न में बाकी रहे हैं।

-ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

(५) **प्रश्न**-ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया है अर्थात् संसार को बने हुए कितने वर्ष हो गए?

उत्तर- इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर वर्त्तमान हो रहा है और इससे पहले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं- स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष। अर्थात् १,९६,०८,५२,९७६ वर्षों का भोग हो चुका है और अब २,३३,३२,२७,०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं। -सत्यधर्मविचार

(६) स्वायंभुव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। -सत्यार्थप्रकाश

(७) जितने १८०० या १३०० वर्षों के भीतर ईसाइयों और मुसलमानों के मतों में आपस के विरोध से फिरके हो गए हैं। उनके सामने जो १,९६,०८,५२,९७६ वर्षों के भीतर आर्यों के मत में बिगाड़ हुआ, तो वह बहुत ही कम है। -सत्यधर्म विचार

पूर्वोक्त उद्धरणों से निकलने वाले परिणाम

(१) उक्त उद्धरणों (क० १,२,३,५ एवं७) से स्पष्ट है कि स्वामी जी ने संवत् १९३३ वि० में वेदोत्पत्ति तथा सृष्टि संवत् (मानव सृष्टि) १,९६,०८,५२,९७७ ही माना है जिसमें प्रमादवश हुई किसी भूल की कोई सम्भावना नहीं है क्योंकि तीन विभिन्न पुस्तकों के ५ विभिन्न स्थलों पर सर्वत्र ही सृष्टि संवत् में एकरूपता है, साथ ही वह अंकों और शब्दों में एक जैसा ही है।

(२) उक्त उद्धरणों (क० ३ एवं ५) से यह भी स्पष्ट होता है कि स्वामी जी सृष्टि और वेदों का सम्पूर्ण काल १,९६,०८,५२,९७६+२,३३,३२,२७,०२४=४,२९,४०,८०,००० वर्ष=१४x३०,६७,२०,००० वर्ष=१४ मन्वन्तर अथवा १४x७१=९९४ चतुर्युगी ही मानते थे।

(३) पूर्वोक्त उद्धरणों (क० १,२ एवं ३) से यह भी स्पष्ट है कि स्वामी जी वेदोत्पत्ति से और सृष्टि अथवा जगत् की उत्पत्ति से व्यतीत समय समान ही मानते थे। तब निश्चय ही सृष्टि अथवा जगत् की उत्पत्ति से उनका आशय प्राणियों की उत्पत्ति से रहा क्योंकि उन्हीं के अन्तर्गत मनुष्यों की उत्पत्ति के साथ ही वेदों की उत्पत्ति भी सम्भव है तथापि प्रलयावस्था से पृथ्वी के उस रूप में निर्माण पर्यन्त कुछ समय तो अवश्य ही लगा होगा जिसमें पृथ्वी पर जल-थल और उसके चारों ओर वायुमण्डल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा वनस्पतियों का प्रादुर्भाव सम्भव हो पाया हो, क्योंकि इनके बिना प्राणियों का प्रादुर्भाव सम्भव नहीं है। 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा भी है-

प्रश्न- मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई वा पृथिवी आदि की?

उत्तर- पृथिवी आदि की, क्योंकि पृथिव्यादि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।''

इस निर्माण-प्रक्रिया का क्रम ऋषि दयानन्द ने तैत्तिरीय उपनिषद् के आधार पर इस प्रकार लिखा है कि "आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर (प्राणियों का) उत्पन्न होता है।'' इसमें लगने वाला समय सूर्य-सिद्धान्त (मयासुर रचित) के अनुसार निम्न प्रकार है-

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा शतहना वेधसो गताः।।

अर्थात् "ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष इत्यादि चराचर जगत् को बनाने में परमेश्वर को ४७,४०० दिव्य वर्ष अथवा ४७,४००x३६०=१,७०,६४,००० सौर वर्ष=३.९५ चतुर्युगी का समय लगा।'' इसके बाद ही 'संवत्सर' की उत्पत्ति हुई। इस विषय मे निम्न वेद मंत्र द्रष्टव्य हैं-

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।
(ऋग्वेद १०।१९।१-३)

अर्थात्-"वेद और सत्त्व, रज तथा तमोगुण युक्त त्रिगुणात्मक प्रकृति (जिससे सूक्ष्म और स्थूल जगत् का निर्माण होता है) का प्रकाशमान, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से कार्य रूप में परिणत किया है। उससे ही महाप्रलय होती है तथा उससे ही अन्तरिक्षस्थ महासमुद्र एवं पृथिवीस्थ समुद्र उत्पन्न होते हैं। अन्तरिक्षस्थ महासमुद्र एवं पृथिवीस्थ समुद्र के (उत्पन्न होने के) पीछे संवत्सर (अर्थात् क्षण, मुहूर्त, प्रहरादि और दिन, मास एवं वर्ष आदि) उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दिन-रातों की रचना करता है, वह विश्व को सहज स्वभाव से वश में रखने वाला है। सूर्य-चन्द्रादि लोक समूहों को विधाता ने पूर्ववत् रचा है। द्यौलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष तथा उसमें स्थित अन्य लोक-लोकान्तरों तथा सुख विशेष को भी उसी विधाता ने बनाया है।''

उक्त वेदमंत्रों से स्पष्ट है कि 'संवत्सर' का आरम्भ कल्पारम्भ से न हो कर कुछ काल पश्चात् होता है। मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्तानुसार यह कालावधि ३.९५ चतुर्युगी के तुल्य है। परन्तु ऋषि दयानन्द ने उसे तीन चतुर्युगी के तुल्य ही माना है, जैसा कि पूर्वोक्त उद्धरण क० ४ से स्पष्ट है जिसमें कहा गया है कि "जितने वर्ष वैवस्वतमनु के भोग होने के बाकी हैं, उतने ही मध्याह्न में बाकी रहे हैं।'' इस प्रकार ऋषि दयानन्द के मतानुसार कल्पारम्भ से ३ चतुर्युगी का काल सृष्टि रचना में लगता है फिर १४ मन्वन्तर पर्यन्त मानव और वेदों का वर्त्तमान काल रहता है। तत्पश्चात् अगली तीन चतुर्युगियों में सृष्टि का विनाश होकर वह उस रूप में पहुँच जाती है जिसके लिए ऋग्वेद में कहा है **'तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे'** अर्थात् "यह सब जगत् सृष्टि के पहले प्रलय के अन्धकार से आवृत्त आच्छादित था और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है।''

इस प्रकार ब्रह्मदिन (कल्प) की १,००० चतुर्युगियों में से १४ मन्वन्तरों अथवा ९९४ चतुर्युगियों का काल ही मनुष्य और अन्य प्राणी वर्ग का भोग काल है। शेष छः चतुर्युगियों का काल उसकी अविद्यमानता में बीतने से उसका व्यवहार वर्षों की गणना में नहीं आता। अतः स्वामी जी का ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण लेख और यह लेख कि उतने वर्ष भोग चुके हैं और इतने वर्ष भोगने बाकी हैं। पूर्णतया ठीक है। यहां भोग शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

(४) उद्धरण क० ६ एवं ७ से यह भी सिद्ध होता है कि १४ मन्वन्तरों की अवधि में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ता अर्थात् इस अवधि में सदा ही वेद और मनुष्यादि प्राणी वर्त्तमान रहते हैं और उनका मध्यावधि में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी पूर्ण क्षय नहीं होता, यहाँ तक कि खण्डप्रलयों में भी, जिनमें पृथिवी का अधिकांश भाग जलमग्न हो जाता है जिसके कारण अधिक वर्षा, बाढ़, ज्वारभाटा, समुद्री तूफान, ज्वालामुखियों का प्रस्फुटन एवं हिमपातादि होंगे तथापि एवरेस्ट जैसे उच्च शिखर एवम् उसके पार्श्ववर्ती भूभाग फिर भी सुरक्षित रहते होंगे जिससे मनुष्यादि की वंश परम्परा में व्यवधान नहीं पड़ता होगा और वेद भी सुरक्षित रहते होंगे। वस्तुत: ऐसी ही मान्यता हिन्दुओं, ईसाइयों और मुसलमानों की भी है कि सभी प्राणियों के एक-एक वा अनेक जोड़े जल-प्रलय में सुरक्षित रहते हैं।

१५ सन्धियों के विषय में विचार

(५) १५ सन्धियों की व्यवस्था मानने से स्वामी जी का लेखोद्धरण क० ४ असत्य हो जाता है क्योंकि उसके अनुसार सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के व्यतीत होने पर ब्राह्मदिन का मध्याह्न: तभी सम्भव होगा जब छ: चतुर्युगियों की पूर्ति तीन-तीन चतुर्युगियों के रूप में ब्राह्मदिन के प्रारम्भ और अन्त में करके बीच में १४ मन्वन्तर लगातार माने जायें। १५ सन्धियों के मानने की स्थिति में सृष्टि का मध्याह्न: वैवस्वत मन्वन्तर के पश्चात् ८,६४,००० वर्ष और बीतने पर ही सम्भव होगा, जिसका निर्देश स्वामी जी ने नहीं किया है।

यदि स्वामी जी को १५ सन्धियों का विधान करना अभीष्ट होता तो वे उनका उल्लेख ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में अवश्य ही करते, जबकि इस सम्बन्ध में उन्होंने जो व्याख्यान किया है उसे उन्होंने उक्त उद्धरण क० २ द्वारा स्पष्ट कहा और लिखा है कि "यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति की ठीक है और सब मनुष्यों को उसी को ग्रहण करना योग्य है।" (सब मनुष्यों में वे मनुष्य भी आते ही हैं जो मयासुर रचित सूर्य सिद्धान्तानुसार पंचांग बनाते और सृष्टि संवत् मानते हैं।) विशेषकर 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' को तो ऋषि दयानन्द के इस लेख का अनुसरण अक्षरश: अवश्य करना ही चाहिए जो उनके सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए ही बनी है। परन्तु खेद है कि यह सभा वर्त्तमान में १.९७,२९,४९,०९५ वर्ष का एक ऐसा संवत्सर मानती है, जो तब से प्रचलित कहा जाता है जब उसको व्यवहार में लाने वाला मनुष्य पैदा ही नहीं हुआ था और न संवत्सर के कारक सूर्य और चन्द्रमादि ही उत्पन्न हुए थे। इनसे भले तो वे पौराणिक हैं जो मनुष्योत्पत्ति से आरम्भ होने वाला सूर्य सिद्धान्तानुसार १,९५,५८,८५,०९५ वर्ष का संवत् मानते हैं।

पाद टिप्पणी

लेखक ने महर्षि के उद्धृत लेख (४) का आशय समझने में त्रुटि की है। और यह महर्षि के लेख तथा सृष्टि प्रलय के लक्षण से विरुद्ध होने से मान्य नहीं हो सकता। यह सत्य है कि मध्याह्न शब्द से ब्राह्मदिन के सम्पूर्ण वर्षों का मध्याह्न भी लिया जा सकता है। परन्तु यहाँ मध्याह्न से अभिप्राय भुक्त भोग काल अर्थात् १४ मन्वन्तरों का ही मध्य लेना चाहिए। क्योंकि तीन चतुर्युगियों का समय अन्त में मानने से निम्नलिखित दोष आते हैं।

*(१) **महर्षि के लेख से विरोध**- महर्षि ने लिखा है-"जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी, तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्त्तमान रहेंगे।" -ऋ०भा०भू०*

(२) यह सर्वमान्य है कि सृष्टि और प्रलय का काल बराबर-बराबर है। अत: सृष्टि काल के वर्षों को प्रलय काल में दिखाना सत्य नहीं हो सकता।

*(३) **सृष्टि और प्रलय का लक्षण**- "सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्ति पूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना।" (स्वमन्तव्य०)*

जो कार्य जगत् का कारण रूप होना अर्थात् जगत् का करने वाला ईश्वर जिन-जिन कारणों से सृष्टि बनाता है कि अनेक कार्यों को रचके यथावत् पालन करके पुन: कारण रूप करके रखना है उसका नाम प्रलय है।" (आर्योद्देश्यरत्नमाला) ऋषि के इन लेखों से स्पष्ट है, जब भी संसर्ग का प्रारम्भ होता है, तभी से सृष्टि का समय है और जब कार्य पदार्थों का कारणों में लय प्रारम्भ होता है, तब प्रलय का समय है। लेखक की मान्यता सृष्टि और प्रलय के लक्षणों से विरुद्ध होने से सत्य नहीं मानी जा सकती।

-सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३- मयासुर रचित सूर्य सिद्धान्तानुसार १४ मन्वन्तरों के आरम्भ और अन्त में जो एक सत्ययुग के काल-परिमाण अर्थात् १७,२८,००० वर्षों के तुल्य १५ सन्ध्याओं की व्यवस्था छः चतुर्युगियों की पूर्ति के लिए की गई है, उसमें निम्न दोष हैं-

(क) छः चतुर्युगियों के पन्द्रह विभाग करने पर चतुर्युगियों से ध्वनित भाव ही नष्ट हो जाता है क्योंकि १५ भाग करने पर चतुर्युगियाँ १४ मन्वन्तरों से विभक्त हो जाती हैं।

(ख) मन्वन्तर शब्द का भाव मनु+अन्तर भी समाप्त हो जाता है, जैसा कि आगे बताया गया है।

(ग) कल्पारम्भ में भी (आदि सन्धि में) जब सृष्टि आकाशादि क्रम से बननी प्रारम्भ होती है, तभी प्रथम सन्धि मानकर जल प्रलय की मान्यता हास्यास्पद हो जाती है।

(घ) मयासुर ने जो ग्रह नक्षत्रादि बनने में लगने वाला कुल समय १,७०,६४,००० सौर वर्ष माना है, उसमें से आदि सन्धि के १७,२८,००० सौर वर्ष घटाने पर १,५३,३६,००० सौर वर्षों का काल प्रथम मन्वन्तर 'स्वायम्भुव' का बीत जाने पर ही मनुष्योत्पत्ति अथवा स्वयं प्रथम मनु की उत्पत्ति माननी पड़ेगी कि जिनके नाम पर प्रथम मन्वन्तर का नामकरण होकर संवत्सर का प्रचलन हुआ। यह ऐसा ही होगा जैसे 'विक्रम' के जन्म से पूर्व 'विक्रम संवत्' का एवं 'दयानन्द' के जन्म से पूर्व दयानन्दाब्द का प्रारम्भ हो जाना मानना।

उपसंहार- अब हम ऋषि दयानन्द प्रोक्त सृष्टि संवत् (संवत् २०५१ वि० में) १.९६,०८,५३,०९५ को गणना की कसौटी पर कसकर देखेंगे कि वह सत्य है वा नहीं? हम जानते हैं कि सृष्टि का आरम्भ रविवार से हुआ और यदि हम गणना करके यह सिद्ध कर दें कि ऋषि दयानन्द प्रोक्त सृष्टि संवत् मानने पर भी आज तक की दिनों की गणना ठीक-ठीक उतरती है, तो हमारा काम चल जाएगा। इसके लिए हम मयासुर रचित सूर्य सिद्धान्त के प्रथमाध्याय में वर्णित विधि का ही अनुसरण करेंगे जिसमें कहा गया है कि "एक महायुग (चतुर्युगी) में १,५७,७९,१७,८२८ सावन दिन, १,६०,३०,००,०८० चान्द्र दिन अर्थात् तिथियां, १५,९३,३३६ अधिमास, २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियां तथा ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं। नक्षत्र के उदय में से सूर्य के भगण की संख्या घटाने से भूमि सावन दिन होते हैं। (श्लोक ३७.३९)

इसके अनुसार हम चैत्र शुक्ला प्रतिपदा संवत् २०५१ वि० का दिन ज्ञात करने के लिए गणना करते हैं:-

व्यतीत सौर वर्ष = १,९६,०८,५३,०९४

व्यतीत सौर मास = २३,५३,०२,३७,१२८

अधिमासों की संख्या = २३,५३,०२,३७,१२८x१५,९३,३३६
/ ५,१८,४०,०००

=३७,४९,१५,७३,९०,४५,६९,००,८
/ ५,१८,४०,०००

= ७२,३२,१७,०८९

व्यतीत चान्द्र मासों की सं० = २३,५३,०२,३७,१२८+७२,३२,१७,०८९

= २४,२५,३४,५४,२१७

व्यतीत चान्द्र तिथियां = ७, २७, ६०, ३६, २६, ५१०

और क्षय तिथियाँ =७,२७,६०,३६,२६,५१०x२,५०,८,२२,५२
/ १, ६०, ३०,०००, ८०

१, २८, ४९, ९३, ७५, १५, २३, ७६, ९०, ५२०
/ १,६०,३०,००,०८०

= ११,३८,४८,६३,७५८

सावन दिनों की संख्या = ७,२७,६०,३६,२६,५१०-११,३८,४८,६३,७५८

= ७,१६,२१,८७,६२,७५२

इस संख्या में सप्ताह के ७ दिनों का भाग देने पर १,०२,३१,६९,६६,१०७ बार भाग जाकर ३ शेष बचते हैं। अतः चैत्र शुक्ला प्रतिपदा संवत् २०५१ वि० को सप्ताह का तीसरा दिन मंगलवार आता है, जो इस वर्ष के किसी भी पंचांग में देखा जा सकता है। अतः ऋषि दयानन्द की सृष्टि संवत् की मान्यता गणना की कसौटी पर खरी उतरती है।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने न केवल धार्मिक जगत् में ही सदियों और सहस्राब्दियों से चली आ रही मान्यताओं को ध्वस्त कर क्रान्ति की, अपितु ज्योतिष के क्षेत्र में भी की है जिसका अभी तक उचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व के सुप्रसिद्ध शाकाहारी

—रामनिवास लखोटिया

यह एक प्रसन्नता की बात है कि प्रगतिशील कहे जाने वाले पाश्चात्य देशों में प्रति वर्ष अधिक से अधिक व्यक्ति शाकाहार की ओर आकृष्ट हो रहे हैं और वे शाकाहारी जीवनप्रणाली अपना रहे हैं। विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित इन देशों के कई व्यक्ति अब यह समझने लगे हैं कि शाकाहार एक स्वस्थ, सुरक्षित और बुद्धियुक्त जीवनप्रणाली है। यहां तक कि पाश्चात्य देशों में शाकाहार अपनाने वाले शाकाहारी व्यक्ति अधिक आधुनिक गिने जाते हैं जबकि कुछ दशकों पूर्व ऐसा नहीं था। लेकिन बड़ी विडम्बना यह है कि भारत में इससे बिल्कुल ही विपरीत हो रहा है। परम्परागत शाकाहारी परिवारों में भी बहुधा यह देखने को मिलता है कि इन परिवारों के पढ़े-लिखे व्यक्ति दिन प्रति दिन अण्डे और मांसाहार की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। यह दुर्भाग्य ही है कि वेद, महाभारत, गीता, उपनिषद् एवम् अनेक धार्मिक ग्रंथों के सन्देश भी उन्हें शाकाहार से मांसाहार की ओर प्रवृत्त होने से रोकने में सक्षम नहीं हो रहे हैं। कई नवयुवक तो यह समझते हैं कि किसी होटल या रेस्तरां में मांसाहार लेना एक फैशन की निशानी है और वे इसे आधुनिकता का प्रतीक समझने लगे हैं। दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं प्रभावी प्रचार विज्ञापनों के कारण भी युवा वर्ग शाकाहार से मांसाहार की ओर भटक रहा है। कई आधुनिक युवा इस भ्रम में हैं कि यदि उन्हें आधुनिक युग के किसी क्षेत्र में कोई विशेष स्थान प्राप्त करना है तो शायद उसके लिए मांसाहार एक सुगम रास्ता है। लेकिन यह सब भ्रम है। यह सत्य से कोसों दूर है। युवा वर्ग के ऐसे भ्रमित साथियों को यह समझना होगा कि संसार के विख्यात धार्मिक एवं आध्यात्मिक नेताओं के अलावा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बड़े-बड़े शाकाहारी महानुभाव हो चुके हैं। प्रस्तुत लेख में हमने कुछ विश्व विख्यात शाकाहारी व्यक्तियों का वर्णन किया है जिससे शाकाहारी परिवारों के युवा वर्ग शाकाहारी ही बने रहें और अन्य व्यक्ति भी मांसाहार से शाकाहार की ओर आने के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

दार्शनिक:

विश्व के सुविख्यात दार्शनिकों में इन विभूतियों के नाम से कौन परिचित नहीं होगा जैसे-अरस्तु, सुकरात, प्लेटो, ओविद, प्लूटार्क, रूसो आदि। इसी प्रकार हमारे अपने देश के भूतपूर्व राष्ट्रपति भारतरत्न डॉ॰ राधाकृष्णन जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के दार्शनिक थे, वे सभी व्यक्ति शाकाहारी थे।

लेखक:

बहुधा यह देखने में आता है कि कुछ युवा जो लेखन और पत्रकारिता को अपना व्यवसाय बनाना चाहते हैं वे उन सफल लेखकों के जीवन से आसानी से प्रभावित हो जाते हैं जो शौक के साथ मांसाहार करते हैं। यदि किसी नवयुवक को जो लेखन या पत्रकारिता को अपना व्यवसाय चुनना चाहे, यह बताया जाए कि साहित्य के क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने के लिए मांसाहार बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है, बल्कि पूर्णतया अनावश्यक है, तो वे शाकाहार से मांसाहार की ओर अग्रसर होने से रुकेंगे। विश्व साहित्यकारों की बहुत बड़ी ऐसी कतार है जिसमें कई विश्वविख्यात साहित्यकारों के नाम लिये जा सकते हैं जो पूर्णतया शाकाहारी थे। ऐसे व्यक्ति अपनी इच्छा से ही शाकाहारी रहे हैं जबकि उनके आसपास का वातावरण ऐसा नहीं था। उदाहरणार्थ इंग्लैंड के विलियम शेक्सपियर, मिल्टन, शैली और वर्डसवर्थ के नाम से कौन परिचित नहीं है। ये पूर्णतया शाकाहारी थे। इसी प्रकार एलेकजेण्डर पोप, लोंगफैलो, लियोटालस्टाय, एच॰जी॰वैल्स॰ वॉल्टेयर, थोरो और जार्जबर्नार्डशा भी पूर्णतया शाकाहारी रहे हैं। विश्व विख्यात नोबल पुरस्कार विजेता गुरुदेव रविन्द्र नाथ टैगौर भी बाद में शाकाहारी हो गए थे।

वैज्ञानिक:

कई बार यह देखने में आता है कि कुछ व्यक्ति यह धारणा करते हैं कि विज्ञान के क्षेत्र में विशेष योग्यता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करने के लिए शायद शाकाहार की अपेक्षा मांसाहार ज्यादा अच्छा वैज्ञानिक आहार गिना जाता हो। लेकिन यह सत्य नहीं है। विश्व के वैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया है कि शाकाहार ही प्राकृतिक आहार है और मनुष्य की प्राकृतिक रचना भी शाकाहारी के रूप में ही हुई है। अब कुछ विश्वविख्यात वैज्ञानिकों के नाम हम लें जो शाकाहारी थे और जिनसे सारा संसार सुपरिचित है। जैसे-न्यूटन, पाइथेगोराज़, बैंजेमिन फ्रेंकलिन, चार्ल्स डार्विन, डॉ॰ स्वेत्ज़र, डॉ॰ हग्जले एवं आइन्स्टीन। इसी प्रकार भारत के ही विश्व विख्यात नोबल पुरस्कार विजेता डॉ॰ सी॰वी॰ रमण भी शाकाहारी थे।

आधुनिक गायकः

आधुनिक गायन के क्षेत्र में माईकल जैक्सन एवं मेडोना का नाम किसने नहीं सुना! युवा वर्ग को यह जानकर आश्चर्य होगा कि दोनों के दोनों अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त गायक अपनी स्वयं की इच्छा से शाकाहारी हैं। इसलिए फैशन और आधुनिक संगीत आदि के क्षेत्र में भी शाकाहार अब आधुनिकता के सिद्धांत के अनुरूप ही हैं विपरीत नहीं।

खिलाड़ीः

कई बार मांसाहार के पक्ष में एक दलील दी जाती है कि मांसाहार में तथाकथित अधिक प्रोटीन होने के कारण यह ज्यादा स्वास्थ्यप्रद है। लेकिन विश्व के कई भागों में वैज्ञानिक खोज ने यह साबित कर दिया है कि बेहतर स्वास्थ्य एवं ताकत की दृष्टि से तथा भयानक रोगों जैसे-कैंसर, हृदयरोग आदि से लड़ने की दृष्टि से शाकाहार कई गुना बेहतर है। प्रोटीन आदि की मात्रा भी अण्डों आदि से मूंगफली और दालों में अधिक पाई जाती है। इस प्रकार गेहूं, दाल और दूध के कई पदार्थों के द्वारा शाकाहार में अधिक ''कैलोरी'' होती है। अण्डे में कोलैस्ट्रोल की सब से अधिक मात्रा होती है जबकि हरी सब्जी एवं फलों में वह बिल्कुल नहीं होती और इस प्रकार शाकाहार से कोलैस्ट्रोल के कारण होने वाले हृदयाघात (हार्टअटैक) का भय नहीं रहता। इसलिए स्वास्थ्य आदि की दृष्टि से भी विश्व के कई प्रख्यात खिलाड़ी और पहलवान शाकाहारी रहे हैं। उदाहरणार्थ, मास्टर चन्दगीराम एवं गुरु हनुमान् विश्व विख्यात पहलवान हैं और ये पूर्णतया शाकाहारी हैं। ओलम्पिक में विश्व रिकार्ड कायम करने वाले स्टैनप्राईस और दूर पैदल चलने में विशेष योग्यता रखने वाले स्वीटगौन तथा लम्बी दौड़ में २० विश्व रिकार्ड करने वाले नूरमी ये सब शाकाहारी हैं। इंगलिश चैनल नहर को तैर कर द्रुतगति से पार करने वाले रिकार्ड होल्डर बिलपिकिंग शाकाहारी हैं। इसी प्रकार ४०० मीटर एवं १,५०० मीटर की दौड़ में विश्व रिकार्ड रखने वाले मुरेरोज भी पूर्णतया शाकाहारी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बॉडीबिल्डिंग चैम्पियन एंण्ड्रयूज शिलिंग तथा पिरको वर्नोट भी शाकाहारी हैं। इतना ही नहीं, कराटे के क्षेत्र में ८ राष्ट्रीय कराटे जीतने वाले ''ऐबेल'' शाकाहारी हैं। टेनिस के श्री कमलेश मेहता और विश्व विख्यात विजयमर्चेण्ट एवं विनु मांकड़ शाकाहारी रहे हैं।

भारतीय नेताः

प्राचीनकाल में तो भारत प्रधानतः अहिंसा और शाकाहार का पुजारी रहा है। भारत की महान् विभूतियां एवम् आत्माओं, जैसे-भगवान् राम, श्रीकृष्ण, भगवान् महावीर, गौतम बुद्ध, महान् सन्त तिरुवलुअर, सन्त कबीर, तुलसी, मीरा, सूरदार, रमण महर्षि शाकाहारी रहे हैं। वर्तमान युग में जो प्रसिद्ध भारतीय नेता पूर्णतया शाकाहारी हैं उनमें कुछ विशेष नाम हैं, जैसे-महात्मा गांधी, डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद, लालबहादुर शास्त्री, सरदार पटेल, राजगोपालाचार्य, डॉ॰ हैडगेवार, लाला लाजपत राय आदि। वर्तमान भारतीय नेताओं में जो पूर्णतया शाकाहारी हैं उनमें कुछ विशेष नाम लिये जा सकते हैं। जैसे-भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री आर॰वेंकटरमण, वर्तमान प्रधानमंत्री श्री पी॰वी॰नरसिंह रॉव, वर्तमान राष्ट्रपति डॉ॰ शंकरदयाल शर्मा, भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई, भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर, भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवाणी इत्यादि।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विश्व विख्यात विभूतियों का इस लेख में जो वर्णन है उससे आशा है कि शाकाहारी परिवारों के व्यक्तियों में ''शाकाहारी'' बने रहने में प्रेरणा मिलेगी और जो किसी भी कारणवश मांसाहारी हो चुके हैं या भूल से केवल अण्डे आदि का ही सेवन करते हैं, उन्हें एक अपेक्षाकृत आधुनिक स्वास्थ्यप्रद एवं सुरक्षित ''शाकाहारी'' जीवनशैली बिताने के लिए इस लेख में वर्णित नामों से अवश्य प्रेरणा मिलेगी।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु बढ़ाई जा सकती है।

(वेद मार्तण्ड स्वामी रमेश मुनि वानप्रस्थ, अध्यक्ष वैदिक शोध संस्थान भरतपुर-३२१००१)

कई लोग कहते हैं कि मनुष्य की आयु पहले ही निश्चित होती है। इस पर हमने वेदों में आयु पर शोध किया और इसको कतई गलत पाया। हमारे पास भीष्म पितामह का उदाहरण मौजूद है। जिनका सारा शरीर बाणों से बिंधा हुआ था। लेकिन उन्होंने मृत्यु को सूर्य के उत्तरायण आने तक रोक लिया। वेद में जीव के दो मार्ग हैं एक तो पितृयान मार्ग दूसरा देवयान मार्ग (उदाहरणतया अथर्ववेद ६।११७।३ एवम् अथर्ववेद १५।१२।५, १५।१२।९) हम को बड़े भाग्य व परिश्रम से पितृयान मार्ग की विद्या मिल गई है। इस विद्या से पिता के समक्ष पुत्र का निधन नहीं हो सकता। जब पुत्र का निधन नहीं हो सकता तो पौत्र के निधन का तो प्रश्न पैदा ही नहीं होता। हमने इस विद्या का समावेश पितृतृप्ति यज्ञ में कर दिया है। जो याजक विधि विधान से नियम पूर्वक पितृतृप्ति यज्ञ को करेगा उसके पुत्र पौत्रों की मृत्युउसके समक्ष नहीं होगी। इससे उत्तम कोई मार्ग नहीं है। यह विद्या हमने पितृतृप्ति यज्ञ में लिख दी है। जो 'वैदिक यज्ञानुष्ठानविधिः' नामक पुस्तक में १८ नं० के अनुष्ठान में है। यह पुस्तक मैसर्स गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क दिल्ली से मिल सकती है।

यदि सब आयु नियत काल प्रमाण की हों तो आयु चाहने वालों को मंत्र, औषधि, मणि, मंगल बलि कर्म उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपात (गुरुजनों के चरणवन्दन) और तीर्थादिगमन आदि अनेक कार्य और यज्ञ होम आदि कार्य न किए जाते। और बिगड़े स्वभाव वाले, मरखने, क्रोधी चंचल स्वभाव के बैल, हाथी, ऊँट, घोड़ा, भैंसा, आदि तीव्र आँधी आदि दोषयुक्त बुरे वर्जने योग्य पदार्थों से बचने का यत्न न किया जाता। शत्रुओं से बचने का यत्न न किया जाता। बढ़ती प्रचण्ड अग्नि से बचने का यत्न न किया जाता। इसी प्रकार न नेवला व विषैले पदार्थों और न साँप बिच्छु आदि से बचने का यत्न न किया जाता। साहसपूर्वक अपनी शक्ति से बाहर का काम करने से भी न बचा जाता, विना स्थान और विना अवसर के विपरीत आचरण से न बचा जाता, राजा के कोप से प्राप्त कैद, वध, बन्धन, आदि से बचने का यत्न न किया जाता। इत्यादि अनेक ऐसी बातें हैं वे भी मनुष्य के जीवन का नाश कर देने वाली न होतीं यदि सब की आयु का नियत ही काल प्रमाण होता।

जिन प्राणियों ने अकाल में मरने के भय को दूर करने के उपाय कभी नहीं किये उनको तो अकाल में मरने से भय कभी होना ही न चाहिए। और रसायन के सम्बन्ध में महर्षियों के किये प्रयत्न, उस सम्बन्ध के उपदेश कथा व वार्ता और उस सम्बन्ध के प्रयोग चिकित्सा, और उस सम्बन्ध का ज्ञान, सब व्यर्थ हो जाएँगे। जब आयु को अपने नियत समय तक अवश्य रहना है तब इन्द्र भी अपने शत्रु को वज्र से नहीं मार सकता।

हजारों पुरुष उठ-उठ कर युद्ध करते हैं और हजारों नहीं भी करते हैं तो भी उनकी आयु का परिमाण समान नहीं है। क्योंकि लड़ने वाले तुरन्त शस्त्र प्रहार से मर जाते हैं, न लड़ने वाले बचे रहते हैं। इसी प्रकार उत्पन्न होते ही जिनके रोगों का उपाय नहीं किया जाता और जिनका किया जाता है उनकी आयु भी तुल्य नहीं होती जैसे संन्यास रोहिणी आदि आशु मारक रोगों की तुरन्त चिकित्सा न करने से प्राणी मर जाते हैं, चिकित्सा करने से बचते भी हैं। इसी प्रकार विष खा लेने वाले और न खाने वाले लोगों की आयु भी एक समान नहीं होती, विष खाने वाले तुरन्त मर जाते हैं, न खाने वाले बचे रहते हैं। इसलिए मनुष्य का जीवन हितकारी चिकित्सा के आधार पर निर्भर है और इसके विपरीत उचित चिकित्सोपचार न होने पर अवश्य मृत्यु हो जाती है।

"आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा।" अथर्ववेद २।१७।४

भावार्थ - तू स्वयं आयु है मुझे भी आयु दे।

"दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि।" अथर्ववेद १२।२।३२

भावार्थ - दीर्घ आयु से इसको युक्त करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद में आयु बढ़ाने के अनेकों मन्त्र हैं। इनको हम प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

(प्रमाण अथर्ववेद १२।२।२३, अथर्ववेद २।४।१, अथर्ववेद २।२९।१, यजुर्वेद १२।१००, यजुर्वेद १४।१७, यजुर्वेद ३५।१७, यजुर्वेद ३४।५०, अथर्ववेद १८।२।५५, अथर्ववेद २।१३।१, ऋग्वेद १०।१७।४, अथर्ववेद ६।५२।३, अथर्ववेद १९।२६।३, इत्यादि)

पहले ऋषि लोग २१-२१ बार तक मृत्यु को दूर भगा देते थे, प्रमाण में वेद का निम्नलिखित मंत्र हम प्रस्तुत करते हैं:- अ० १२।२।२९

अथर्ववेद १२।२।२९- ऋषि भृगु-देवता:-मृत्युः

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥२९॥

इस मंत्र का भावार्थ यह है कि ऋषि लोग ऊर्ध्वगामी प्राणों को शरीर में ही उत्कृष्ट साधनों से रोककर मृत्यु को २१-२१ बार तक दूर भगा देते थे। महाराज रामचन्द्र जी १३८ वर्ष की उम्र तक जीते रहे। और योगीराज कृष्णचन्द्र १२५ वर्ष के बाद स्वर्गगामी हुए ! महाराज कृष्णचन्द्र जी ने तो कौरव पांडव युद्ध में ८५ वर्ष की उम्र में अर्जुन का रथ हाँका था यानी सारथी का काम किया था। हमारा वेद भी यही कहता है कि 'हे प्रभो हम १०० वर्ष अपनी 'आखों से देखें', 'कानों से सुनें' 'मुँह से बोलें' और धनवान् रहकर जीयें यदि १०० वर्ष से अधिक हमारी आयु हो तो इसी प्रकार देखें सुनें बोलें और अदीन होकर जीयें (युजर्वेद ३६।२४) अथर्ववेद के ३।३१।१ में तो यह स्पष्ट लिखा है कि 'जरसा वि अवृतन्' शरीर की आयु का नाश करने वाले बुढ़ापे से दूर रहो। इस मामले में हमने शोध कार्य प्रारंभ किया तो हम ने बहुत कुछ प्रगति इस विषय में की है। हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं उसका सूर्य व चन्द्रमा का आयु से बहुत कुछ संबंध है। हमारी पृथ्वी अपनी कीली पर पश्चिम से पूर्व की ओर २७.८३ किलोमीटर प्रति मिनिट के हिसाब से (विषुवत् रेखा पर) घूम रही है और २४ घण्टे में अपनी कीली पर एक चक्कर कर लेती है लेकिन वह उसी स्थान पर नहीं आती बल्कि सूर्य-परिक्रमा पथ में मिनट में लगभग १६७० किलोमीटर दूर पहुँच जाती है। यानी पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती हुई भी सूर्य की परिक्रमा करती है। चन्द्रमा हमारी पृथ्वी से ३,८४,४०१ किलोमीटर दूर है और हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ हमारी पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा भी कर रहा है। लेकिन चन्द्रमा में खास बात यह है कि वह हमारी पृथ्वी की तरह अपनी कीली पर नहीं घूमता बल्कि अपना मुख सदैव सूर्य की ओर किए रहता है। और जिधर सूर्य होता है उधर ही पेंडुलम की तरह अपनी कीली पर घूम जाता है यानी चन्द्रमा का आधा हिस्सा ही हम सदैव देख पाते हैं। आधा नहीं।

चन्द्रमा की हमारी पृथ्वी के चारों ओर घूमने की कक्षा की लम्बाई २४,१५,२६३ किलोमीटर है। (Source-Text book on Spherical Astronomy by Shri W.M Surart 6th Edition) इस प्रकार चन्द्रमा द्वारा सूर्य की ओर मुख रखने से उसमें षोडश कला बढ़ती रहती हैं। यानी रोजाना १ कला बढ़ती है और पूर्णमासी आने के बाद फिर १ कला प्रत्येक दिन घटती है और इस प्रकार अमावस्या आ जाती है। सूर्य में अग्नि तत्त्व है और चन्द्रमा में सोम तत्त्व है। पुरुष में अग्नि तत्त्व है और स्त्री में सोम तत्त्व है।

जिस प्रकार चन्द्रमा में कला घटती व बढ़ती हैं, इसी प्रकार स्त्री में भी कला बढ़ती व घटती हैं और २८ नक्षत्र पार कर लेने के बाद स्त्री रजस्वला होती है। इसलिए स्त्री जाति का मालिक चन्द्रमा है।

नोट (१) हमारे शोध पत्रों को अच्छी प्रकार से समझने के लिए चारों वेदों की मूल संहिता अपने पास रखकर प्रमाण स्वयं देखें।

(२) वेदों को समझने के लिये कृपया वैदिक शोध संस्थान के द्वारा प्रकाशित 'वैदिक यज्ञानुष्ठानविधिः नामक पुस्तक देखें जो M/s गोविन्दराम हासानन्द बुकसेलर्स ४४०८ नई सड़क दिल्ली-६ से मिल सकती है।

(३) मृत्यु दो प्रकार की होती है काल मृत्यु एवम् अकाल मृत्यु। हमारा अगला शोध पत्र काल और अकाल मृत्यु पर जल्दी ही प्रकाशित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाकाहार

श्रद्धा सद्भाव रीति, भक्ति में चाव सु-प्रीति,
सुपथ पे पांव सुनीति लाये शाकाहार।
संयम शक्ति सुभाग, सत्य-धर्म, तप-त्याग,
शान्ति एकता का सुराग लाये शाकाहार।
शास्त्र, संतों का दर्श, शुचि, सुविचार-विमर्श,
जन-मानस में प्यार हर्ष लाये शाकाहार।
कालिम, कलुष, छल छाँट 'बाबूराम कवि'
मार्ग आलोक, सत्य का दिखाये शाकाहार ।।१।।

शाकाहार रंग लाये, अंगों में उमंग लाये,
श्रद्धा, सुभाव, सत्य सब ही के संग लाये।
श्रेष्ठ सुविचार होवे, सुखी परिवार होवे,
सदा बहार विश्व महके वो ढंग लाये।
फैले सुयश कृति, मधुर व्यवहार प्रीति,
शान्ति सफलता, अनुराग सुधर्म लाये।
एकता, सुमति, सत्कर्म 'बाबूराम कवि'
मानव जीवन में सुखद सुमर्म लाये ।।२।।

सर्व गुणों से युक्त, स्वास्थ्य सुधा सर्वोपरि,
मानव सु-जीवन का 'सार' शाकाहार है।
कर कायाकल्प अल्पकाल दे अमोघ शक्ति,
शुचिता प्रखरता का प्रबल आधार है।
अहिंसा, साधना, सिद्धि में शिरमौर सदा,
शुभ सौन्दर्य का सुहावना सुहार है।
कवि बाबूराम शाकाहार में असंख्य गुण,
मूल मानवता का अनुपम सिंगार है ।।३।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/95
आर/ आर/ नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/1/95

जनवरी १९९५

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९५
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/95

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु० ४०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान :- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा० ....
जिला ....

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मार्च, १९९५

वर्ष २३ : अंक ५
दयानन्दाब्द : १७१
विक्रमसंवत् : फाल्गुन २०५१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९५

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
"दयानन्दसन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- होली का त्यौहार मनाएं २
- वेदोपदेश ३
- सत्यार्थप्रकाश का ३७वां संस्करण और सभा की उपेक्षा ५
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ ७
- सम्पादक के नाम पत्र ८
- अश्वमेध यज्ञ के नाम पर पाखण्ड क्यों? ९
- अजमेर में सम्पन्न शास्त्रार्थ के संयोजक का स्पष्टीकरण १२
- शास्त्रार्थ में पराजित व्यक्ति की बौखलाहट १३
- 'अयन्त इध्म आत्मा' के विरुद्ध मिथ्या प्रचार १४
- सत्संगति का अद्भुत प्रभाव १६
- पं० लेखराम की अन्तिम शिक्षा १७
- ऋषि भक्त लेखराम की दीवानगी १८
- मन्त्रार्थद्रष्टा महर्षि दयानन्द सरस्वती १९
- संसार का प्रत्येक मानव 'श्रेष्ठ पुरुष' बन जाए २१
- कोई भी अण्डा शाकाहारी नहीं होता २४
- 'ज्योतिर्मय हो वसुधा सारी' २६

'सत्यार्थ प्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपये, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ रुपये और सजिल्द बारह सौ रुपये, सैकड़ा में प्राप्त करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होली का त्योहार मनाएं

पं० राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति, मुसाफिरखाना, सुलतानपुर (उ०प्र०)

बढ़ती है अब वृत्ति आसुरी,
बढ़ता है अन्याय अनय।
साहस-शौर्य हुआ कुंठित है,
बढ़ता जन जन में है भय।

आओ! होली के संग हम सब,
मन की दानव वृत्ति जलाएं।
होली का त्योहार मनाएं।।

दया प्रेम के भाव मधुरमय,
जाने कैसे हुए तिरोहित?
मानव मन से दूर हुआ है,
मानवता का संचित हित।

सहिष्णुता की, सद्भावों का,
आभा उर में आज जगाएं।
होली का त्योहार मनाएं।।

स्वार्थ-परायण हुआ मनुज है,
दु:खी हुआ है अब प्रह्लाद।
सत्य बहाता है अब आँसू,
मना रही होलिका आह्लाद।

पावन है यह पर्व हमारा-
इसकी गरिमा आज बचाएं।
होली का त्योहार मनाएं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।-महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- **कौन राजा राज्यसुख को प्राप्त कर सकता है-**

देवश्रवा: ऋषि:। प्रजापति: सभापती राजा देवता। आर्चिपंक्ति: छन्द:।
भूर्भुव: स्वरित्यस्य भुरिक्साम्नी छन्द:। पञ्चम: स्वर:।।
सभापती राजा प्रजासेनासभ्यजनान् प्रति किं किं वदेदित्याह।।
सभापति राजा प्रजा, सेना और सभ्यजनों से क्या क्या कहे, यह इस मन्त्र में उपदेश किया गया है।।

ओ३म्- **कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि। यस्य ते नामामन्महि, यं त्वा सोमेनातीतृपाम। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।।** (यजु० ७।२९)

पदार्थ:- (क:) (असि) (कतम:) बहूनां मध्ये क: (असि) (कस्य) (असि) (क:) (नाम) ख्याति: (असि) (यस्य) (ते) तव (नाम) (अमन्महि) विजानीमहि। अत्र लिङर्थे लङ्। बहुलं छन्दसि। अ० २।४।७३ इति विकरणलुक्। (यम्) (त्वा) त्वाम् (सोमेन) ऐश्वर्येण (अतितृपाम) तर्पयाम (भू:) भूमे: (भुव:) अन्तरिक्षस्य (स्व:) आदित्यलोकस्य (सुप्रजा:) सुष्ठुप्रजासहित: (प्रजाभि:) अनुकूलाभि: पालनीयाभि: सह (स्याम्) भवेयम् (सुवीर:) प्रशस्तवीरयुक्त: (वीरै:) शरीरात्मबलयुक्तैर्युद्धकुशलै: सह (सुपोष:) प्रशस्तपुष्टि: (पोषै:) पुष्टिभि:। अयं मन्त्र: शत० ४।५।६।४ व्याख्यात:।।

सपदार्थान्वय:- सभ्यसेनास्थप्रजाजना वयं-त्वम् (कोऽसि) (कतम:) बहूनां मध्ये क: (असि) (कस्यासि) (को नामासि) किन्नाम्ना प्रसिद्ध: ख्याति: (असि) (यस्य ते) तव नाम वयम् (अमन्महि) विजानीमहि, (यं त्वा) त्वां (सोमेन) ऐश्वर्येण (अतीतृपाम) तर्प्पयाम इति पृच्छामो ब्रूहि। तान् प्रति सभापतिराह-(भू:) भूमे: (भुव:) अन्तरिक्षस्य (स्व:) आदित्यलोकस्य लोकसुखमिवात्म-सुखमभीप्सुरहं युष्माभि: (प्रजाभि:) अनुकूलाभि: पालनीयाभि: सह (सुप्रजा:) सुष्ठुप्रजासहित: (वीरै:) शरीरात्मबलयुक्तैर्युद्ध-कुशलै: सह (सुवीर:) प्रशस्तवीरयुक्त: (पोषै:) पुष्टिभि: (सुपोष:) प्रशस्तपुष्टि: च (स्याम्) भवेयम् इति प्रतिजाने।।

भाषार्थ:- सभ्य एवं सेना के प्रजाजन हम लोग-आप (क:) कौन (असि) हैं? (कतम:) बहुत मनुष्यों में कौन (असि) हैं? (कस्य) किसके (असि) हैं? (को नामा) किस नाम से प्रसिद्ध (असि) हैं? (यस्य) जिस (ते) आपके (नाम) नाम को (अमन्महि) जानें, (यम्) जिस (त्वा) आपको (सोमेन) ऐश्वर्य से (अतीतृपाम) तृप्त करें, ऐसा हम पूछते हैं, कृपया आप बतलाइये।

उन्हें सभापति उत्तर देता है- (भू:) भूमि (भुव:) अन्तरिक्ष और (स्व:) आदित्यलोक अर्थात् स्वर्गलोक के सुख के समान आत्मसुख का अभिलाषी मैं तुम (प्रजाभि:) सदा अनुकूल रहने वाले प्रजाजनों से (सुप्रजा:) श्रेष्ठ प्रजा वाला और (वीरै:) शरीर और आत्मा के बल से युक्त युद्ध कुशल वीरों से (सुवीर:) उत्तम वीरों वाला तथा (पोषै:) पुष्टि कारक पदार्थों से (सुपोष:) उत्तम पुष्टि वाला (स्याम्) हो जाऊँ, मैं ऐसी प्रतिज्ञा करता हूं।।

भावार्थ:- सभापती राजा सत्यन्यायप्रिय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहारेण सभ्यसैन्यप्रजाजनानभिरक्ष्य वर्द्धयेत्, प्रबलतर-वीरान् सेनासु सम्पादयेत्, यत उत्कृष्टसुखवर्द्धकेन राज्येन भूम्यादिसुखं प्राप्नुयामिति।।

भाषार्थः- सभापति राजा सत्य, न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा, सेना और प्रजा के जनों की रक्षा करके उन्हें समुन्नत करे, अति बलवान् वीरों को सेनाओं में रखे, जिससे उत्कृष्ट सुख के वर्धक राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त करूँ।।

विनियोग- महर्षि ने इस मन्त्र का संस्कारविधि के नामकरण संस्कार में विनियोग किया है।।

("दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत, व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव शास्त्री**)

●●

श्रेष्ठ राजा कौन है? और परमधर्म क्या है

(१) जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन का बोलनेहारा, न साहसिक डाकू, न दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भंग करने वाला है, वह राजा अतीव श्रेष्ठ है।

(२) चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो, जो धर्म को छोड़ अधर्म में वर्त्तमान, दूसरों को बिना अपराध मारने वाले हैं, उनको बिना विचारे मार डालना अर्थात् मारने के पश्चात् विचार करना चाहिये।

(सत्यार्थ॰ षष्ठ.समु.)

"दयानन्दसन्देश" के स्वामित्व आदि का विवरण

१.	प्रकाशन-स्थान	२ एफ, कमलानगर, दिल्ली-७
२.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
३.	मुद्रक का नाम	ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स
	क्या भारतीय है?	भारतीय
	पता	गली कासिमजान, बल्लीमारान, दिल्ली-६
४.	प्रकाशक	धर्मपाल आर्य
	क्या भारतीय हैं?	भारतीय
	पता	२ एफ, कमलानगर, दिल्ली-७
५.	सम्पादक	राजवीर शास्त्री
	क्या भारतीय हैं?	भारतीय
	पता	भूपेन्द्रपुरी, मोदीनगर (२०१२०४) (उ॰प्र॰)
६.	स्वामित्व	आर्ष सहित्य प्रचार ट्रस्ट, २ एफ, कमलानगर, दिल्ली-७

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखा सब विवरण सत्य है।

दिनांक-१० मार्च १९९५

हस्ताक्षर
धर्मपाल आर्य
(प्रकाशक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यार्थप्रकाश का ३७वाँ संस्करण और सभा की उपेक्षा

समस्त आर्य जगत् इस बात से भली भाँति परिचित है कि परोपकारिणी-सभा अजमेर ने सत्यार्थप्रकाश का ३७वां संस्करण १९९१ में प्रकाशित किया। जिस संस्करण को देखकर अनेक विद्वानों ने अपना अपना आक्रोश प्रकट किया, जिस की प्रतिक्रिया स्वरूप सभा ने विद्वानों को बुलाकर दो स्थानों पर सभाएँ कीं, जिसका परिणाम नगण्य रहा, उसमें कारण कुछ भी रहा हो। सभा की प्रथम बैठक श्रीमद्दयानन्द वेद विद्यालय, गौतम नगर, नई दिल्ली में हुई, जिसकी अध्यक्षता श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने की। पक्ष-विपक्ष के सभी विद्वानों के विचार सुनकर यह निर्णय हुआ कि कुछ विद्वान् समय देकर इस विवाद को समाप्त करायें। यथार्थ में ऐसे प्रसिद्ध तथा मूल्यवान् ग्रन्थ के विषय में विवाद का होना शोभनीय भी नहीं था। सभा के अधिकारियों ने मार्गव्ययादि देकर और विद्वानों का समय लेकर अजमेर में एक बैठक रखी। दुर्भाग्यवश उस सभा में कुछ विद्वान् तो पहुँच ही नहीं सके और जो कुछ पहुँचे भी, पुनरपि तो उनकी बैठक का भी अच्छा परिणाम नहीं निकला। जिस आशा व विश्वास के साथ सभा का आयोजन रखा था, वह परस्पर प्रीति के अभाव में तू तू करके एक दो दिन में ही समाप्त हो गई। इसकी विफलता का कारण क्या था? जैसा कि मैंने सुना वह यह था- वह विद्वानों की सभा न होकर पक्ष-विपक्ष के हठी दुराग्रही व्यक्तियों का ही समूह होकर रह गई।

३७वें संस्करण के प्रति आक्रोश- यह आक्रोश सर्वप्रथम स्व॰ पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक ने लेखों के माध्यम से उठाया था जिसका आर्य जगत् में विरोध भी हुआ। जिसमें मैं भी एक था। वह यथार्थ स्थिति को न समझने के कारण ही था। अब मैं समझता हूँ कि वह विरोध ठीक था। इस संस्करण को बिना देखे ही मीमांसक जी की कठोर भाषा सहन न हुई। परन्तु ३७वें संस्करण का विरोध होना ही चाहिये था, यह अब अनुभव करता हूँ क्योंकि जो कार्य अनेक विद्वानों को मिल बैठकर करना चाहिये था, उसे एक व्यक्ति को सौंपकर सभा ने भयंकर भूल की। उस ३७वें संस्करण के वक्तव्य में यह लिखकर सभा के अधिकारियों को भ्रम में रक्खा- ''सत्यार्थप्रकाश की दो प्रतियाँ हैं, इनके नाम मूल प्रति तथा मुद्रणप्रति रखे गये हैं। मुद्रणप्रति (प्रेस कापी) के आधार पर सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण छपा था। उसे छपते हुए १०७ वर्ष हो गये हैं। इतने लम्बे अन्तराल में विभिन्न संशोधकों के हाथों इतने संशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्धन हो गये कि मूल पाठ का निश्चय करना कठिन हो गया था।''

यद्यपि आर्यजगत् में जो एक आक्रोश श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी आदि ने उठा रखा था कि सत्यार्थप्रकाश में हजारों अशुद्धियाँ छप रही हैं, अतः सत्यार्थप्रकाश का संशोधन होना चाहिये। उनका यह आक्रोश सत्य तथा हित-बुद्धि से पूर्ण था।

मूल कहाँ हुई- सत्यार्थप्रकाश की जो प्रतियाँ सभा में थीं, उन में पहली जो मूल प्रति है, उसे न छापकर दूसरी मुद्रणप्रति से मिलान करके सत्यार्थप्रकाश छापना चाहिये था। क्योंकि-

(क) प्रथम मूलप्रति की भाषा अस्पष्ट, अशुद्ध तथा महर्षि के किये स्थान-स्थान पर संशोधनों से रहित है। इसलिए महर्षि ने मुद्रणप्रति में बहुत से संशोधन स्वयम् अपने हाथ से किये हुए थे। जिनका अभाव मूल प्रति में रहा और महर्षि ने अपने विश्वास पात्र मुंशी समर्थदान को भाषा संशोधन करने का पूर्ण अधिकार दिया था जिसने भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों एवम् कठोर व असभ्य शब्दों का संशोधन मुद्रणप्रति में किया था, उन संशोधनों का मूल प्रति में अभाव था। अतः मूलप्रति को न छपवाकर मुद्रणप्रति को ही छपवाया जाता तो सांप भी मर जाता और लाठी भी नहीं टूटती।

(ख) इस ३७वें संस्करण को मूलप्रति को ही आधार मानकर अक्षरशः छपवाया होता तब भी कुछ सन्तोष हो सकता था। उसमें भी स्थान-स्थान पर अनेक परिवर्तन व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्धन किये गये हैं। अत: यह संस्करण न तो मूलप्रति ही रहा है और मुद्रणप्रति। और भाषा सम्बन्धी कठोर, असभ्य शब्दों से सम्पन्न तथा भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों से युक्त है।

(ग) इस ३७वें संस्करण के विषय में अपने वक्तव्य में श्री विरजानन्द जी दैवकरणि का यह कथन भी सत्य नहीं है **इस मूल प्रति की ओर किसी ने दृष्टि-पात नहीं किया।** सत्यार्थप्रकाश के इतिहास से सुपरिचित व्यक्ति यह भली-भाँति जानते हैं कि ३४वें संस्करण के प्रकाशन से पूर्व भी एक विद्वानों की समिति ने सत्यार्थप्रकाश पर कुछ संशोधन समस्त प्रतियों को देख कर सुझाये थे और उनको छपवाया भी गया था, ऐसा विश्वस्तसूत्रों से पता लगा है।

सभा की वर्तमान में क्या स्थिति है- क्योंकि सभा के अधिकारी सुप्तावस्था में होने से अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर रहे हैं, इसीलिए विवश होकर मैं लिखने लगा हूँ। और सभा की शिथिलता को देखकर अनेक व्यक्ति विवादास्पद ३७वें संस्करण को भी छापने लगे हैं, यह बहुत भयावह व चिन्तनीय स्थिति है। सभा के अधिकारियों ने एक अच्छा प्रयास गतवर्ष किया था- सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण पर विचार करने के लिए तीन विद्वानों की एक समिति बनाई थी जिससे विद्वानों में व्याप्त असन्तोष शान्त होने की आशा बढ़ी थी। परन्तु उसकी एक भी बैठक एक वर्ष से भी अधिक समय बीतने पर भी नहीं हो सकी, इस में किसकी और कहाँ विवशता रही है, यह तो सभा के अधिकारी ही जानें परन्तु यह शिथिलता या उपेक्षा खतरनाक है। मैं आशा एवं विश्वास के साथ लिख रहा हूँ, यह जो कुछ भी मैंने लिखा है वह सत्य है। किसी के प्रति लेशमात्र भी दुर्भावना मेरे मन में नहीं है। सत्य के आग्रही जन अवश्य मेरा समर्थन करेंगे और सत्य की रक्षा करेंगे। ऐसी आस्था मन में संजोये हुए अपनी लेखनी को विराम देता हूँ। और आशा करता हूँ कि वे आग्रह के उपनेत्र को उतार कर तथा अपने उत्तरदायित्व को निभाकर सभा के प्रति व्याप्त असन्तोष को दूर करने का प्रयास अवश्य करेंगे।

-राजवीर शास्त्री

पुनर्विचार करें

जनवरी १९९५ के दयानन्दसन्देश में एक लेख छपा है- 'परकाया-प्रवेश सम्भव नहीं'। जिसके लेखक हैं श्री महेन्द्रप्रताप जी आर्य, आर्यनगर, वाराणसी। यद्यपि यह विषय साधारणजन बोध्य नहीं है। पुनरपि इस विषय में गंभीर चिन्तन की आवश्यकता है। ६९, शास्त्रीनगर मेरठ निवासी श्री रमेशचन्द्र सक्सेना ने इस विषय में लिखा है-

परकाया में प्रवेश सम्बन्धी लेख महर्षि दयानन्द के यजु॰ १७।७१ भाष्य के भावार्थ से मेल नहीं खाता। **हम नीचे महर्षि के वचनों और योगदर्शन भाष्य का प्रमाण भी उद्धृत कर रहे हैं, जिससे विद्वान् लेखक दोनों पर विचार करके पुनरवलोकन कर सकें। ऐसे सूक्ष्म विषयों का अवगाहन करते रहना चाहिए।**

(१) यजुर्वेद के १७ अध्याय के ७१ मन्त्र का भावार्थ-

यो योगी तप आदिसाधनैर्योगबलं प्राप्यासंख्यप्राणि-शरीराणि प्रविश्यानेकनेत्रादिभिरङ्गैर्दर्शनादिकार्याणि कर्त्तुं शक्नोति।

जो योगी तप आदि साधनों से योगबल को प्राप्त करके असंख्य प्राणियों के शरीरों में प्रविष्ट होकर अनेक नेत्र अंगों से दर्शन आदि कार्य कर सकता है।

(२) योगदर्शन के विभूतिपाद के ४३वें सूत्र भाष्य में देखें-

यया परशरीराण्याविशन्ति योगिनः। (यो.भा.)

उसी महाविदेह सिद्धि के द्वारा योगी पुरुष दूसरों के शरीरों में प्रवेश करते हैं।

इन दोनों प्रामाणिक प्रमाणों पर पक्षपात आदि दोष रहित होकर विचार करना अवश्यक है।

-राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

जनवरी ९५ के दयानन्दसन्देश के कई लेख उत्तम तथा एतदर्थ लेखक तथा सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं। 'वेदों पर अश्लीलता का मिथ्यारोप' नामक लेख विशिष्ट स्थान रखता है। सरिता आदि वेद-विरोधी पत्रिका में न केवल धर्म-विरोधी लेख छपते रहते हैं वरन् वे वेदों में भी अश्लीलता ढूँढने का कुत्सित प्रयास करते रहते हैं। निरुक्त के आधार पर आपने यम-यमी के अर्थ बताकर इस सूक्त का वास्तविक अर्थ व आलंकारिक भाषा का विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण कर पाठकों के ज्ञान में वृद्धि की है।

रमेशचन्द्र सक्सेना,
११-१-९५
६९, शास्त्री नगर, मेरठ

'दयानन्दसन्देश' में विज्ञान सम्मत एवं वेदानुकूल लेख छापने के लिए आपका धन्यवाद। वास्तव में आर्यजगत् में 'दयानन्दसन्देश' ही ऐसी पत्रिका है जो हर आर्य की ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति में वृद्धि करती है। मेरा विचार है कि आप इस पत्रिका में एक पृष्ठ पाठकों के प्रश्नोत्तर का भी अवश्य रखा करें।

४-१-९५
अजमेरसिंह,
मोरखी, सफीदों जि० जीन्द

मैं 'दयानन्दसन्देश' का आजीवन सदस्य हूँ। इसमें विद्वान् लेखकों के उच्चकोटि के लेखों के द्वारा पाठकों की बौद्धिक व आत्मिक उत्थान की सामग्री प्राप्त होती रहती है। सितम्बर ९४ की इस पत्रिका में एक पंक्ति अरुचिकर लगी- १८५७ की सैनिक क्रान्ति में स्वामी दयानन्द की अहम् भूमिका रही है।

सेवासिंह
आर्य, रोहतक

'संस्कार-भास्कर' नामक विशेषांक बहुत ही उपयोगी लगा। प्रत्येक विषय को सरल ढंग से समझाया गया है। कृपया इस अंक का ९ पृष्ठ देखें, पंक्ति १२, जो इस प्रकार है- 'सूक्ष्म-शरीर पर अंकित' यह चित्त होना चाहिये।

२१-१-९५

रामशरणदास
५५३, जोशी रोड, दिल्ली-५

कुछ कीजिए:-

उपदेश आज प्रभावकारी हैं नहीं कुछ कीजिए।
धार्मिक सदसत् विचारी हैं नहीं कुछ कीजिए।।
१. तर्क हैं तलवार और सत्संग भी अब जल्प हैं।
वृद्धि भी कल्याणकारी हैं नहीं कुछ कीजिए....।
२. आज का बलवान् देखो निर्बलों को खा रहा।
शक्ति भी निर्माणकारी है नहीं कुछ कीजिए.....।
३. हे प्रभु धनवान् अब निर्धन का कर शोषण रहा।
लक्ष्मी भय, भूखहारी है नहीं कुछ कीजिए.....।
४. शङ्खपुष्पी, नीम अब दाहक, विकारी हो गये।
औषधि भी लाभकारी हैं नहीं कुछ कीजिए.....।
५. ऐ दवाएं बेचने वालो सुनो उपदेशको !
आज भी ये रोगहारी हैं जरा तुम पीजिए.....।
६. ऋषियों की खोजें व अनुभव हैं कभी मिथ्या नहीं।
जो जहाँ पर स्वास्थ्यकारी हो वहीं पर दीजिए....।
७. मित्र! मेरे कथन से पहले करो करनी में तुम।
सीख व्यवहारी नहीं हैं तो वृथा मत दीजिए.....।
८. मित्र, 'गुण ग्राहक' कभी बीते नहीं इस जगत् में।
पर हो तुम तो बस भिखारी ही दया कर दीजिए...।।

१.५.९४

रामनिवास 'गुण-ग्राहक'
गाँव-सुरीता, पत्रा० अवार
जनपद-भरतपुर (राज०) ३२१००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक के नाम पत्र

महोदय,

दयानन्दसन्देश के जनवरी १९९५ के अंक में 'महर्षि दयानन्द और भारतीय जनजागरण' शीर्षक प्रकाशित हुआ है इसमें निम्न भ्रान्तिपूर्ण उल्लेख प्रतीत होते हैं, जिनका स्पष्टीकरण आवश्यक है।

१. स्वामी जी ने अनेक वर्षों तक सूर्य को अर्घ्य दिया, विष्णु-सहस्रनाम तथा दुर्गासप्तशती का पाठ किया।'' यह कथन सत्य से परे है। ऋषि के जीवनचरित से इसकी पुष्टि नहीं होती।

२. स्वामी जी की मनुस्मृति के प्रति निष्ठा जीवन पर्यन्त रही। इसमें कभी परिवर्तन नहीं हुआ।

३. नर्मदा के तट पर वे उषःसूक्तों का पाठ करते हैं, इस कथन का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

४. स्वामी जी ने प्रथम वैदिक पाठशाला काशी में स्थापित की थी, न कि मिर्जापुर में।

५. वायसराय ने स्वामी जी को कभी विचार विमर्श के लिए आमन्त्रित नहीं किया।

६. वायसराय ने स्वामी जी को न तो कभी बागी फकीर कहा, न उन पर कड़ी निगरानी की हिदायत दी। आज तक इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला कि अंग्रेजी सरकार ने उन्हें बंदी बना कर रखने का विचार किया हो। स्वामी जी की हत्या में अंग्रेजी सरकार की कोई हिस्सेदारी थी, इसका कोई प्रमाण आज तक नहीं मिला।

अच्छा हो ऋषि पर कलम चलाने के पहले उनके दो जीवनचरित्रों (पं॰ लेखराम, देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा लिखितों) का भली प्रकार अध्ययन किया जाये!

—डा॰ भवानीलाल भारतीय
अध्यक्ष धर्मार्य सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अश्वमेध' यज्ञ के नाम पर पाखण्ड क्यों?

'अश्वमेध' नामक यज्ञ एक प्रसिद्ध यज्ञ है। जिस के साक्षी ऐतिहासिक महाभारत तथा रामायण हैं। इन ऐतिहासिक ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि 'अश्वमेध' यज्ञ को सामान्य मनुष्य नहीं कर सकते! अश्वमेध यज्ञ का माहात्म्य भी अनेक स्थलों पर मिलता है।

एष वै प्रभूर्नाम यज्ञः। यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते, सर्वमेव सुभूतं भवति। अर्थात् अश्वमेध यज्ञ यज्ञों में सर्वोत्कृष्ट यज्ञ है। इससे प्रभूत ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, प्रशासन व्यवस्था आदि सब कामनाओं की सिद्धि होती है।

अश्वमेध यज्ञ के भेद- विभू, व्यष्टि, विधृति, आवृत्ति ऊर्नस्वान्त, पयस्वान्, ब्रह्मवर्चसी, अधिव्याधि, सर्व कल्हरि और प्रतिष्ठादि अनेक भेद प्रसिद्ध हैं। इसलिए ऐसा कहा जाता है- प्रजापति की आंख अस्वस्थ मृत सी होकर गिर पड़ी, वही अश्व है। इसका रहस्य यह है- जब राष्ट्र का निरीक्षण विभाग शिथिल तथा प्रभावशून्य हो जाता है यही राजा की आंख का मृतप्राय होकर गिरना होता है और क्षात्र-शक्ति कर्त्तव्य विमुख हो जाती है।

अश्वमेध यज्ञ के नाम पर पाखण्ड-

धार्मिक कार्यों के करते हुए व्यक्ति भूखा तो नहीं मरता, दूसरे अल्पज्ञ व्यक्तियों को धोखा देकर पाखण्ड भी नहीं फैला सकता। परन्तु व्यक्तियों की धार्मिक आस्थाओं का लाभ लेकर जनसाधारण से धन बटोर कर ऐश्वर्य-प्राप्ति की लालसा में यज्ञ की मौलिक भावनाओं से ही खिलवाड़ करना अच्छा नहीं है? यज्ञ करना और याज्ञिक भावनाओं को बढ़ाकर यज्ञीय संस्कृति का विस्तार करना कोई बुरी बात नहीं है। वेद का आदेश है-

'मा यज्ञं हिंसीः मा यज्ञपतिम् ।'

हे मनुष्य! तुम कभी 'यज्ञ' का त्याग या हनन मत करो। याज्ञिक भावनाओं को कुचलने वाले मनुष्य नहीं, राक्षस होते हैं। किन्तु यज्ञ के नाम पर शास्त्र-विरुद्ध पद्धति को अपनाना दीपक यज्ञ का आयोजन करना, गायत्री मन्त्र की काल्पनिक मूर्ति को रचकर के अल्पज्ञ व्यक्तियों को आकृष्ट करना, और अब अश्वमेध के नाम पर लाखों व्यक्तियों को इकट्ठा करना और उनको धोखा देना सज्जनता का लक्षण नहीं माना जा सकता। सज्जन व्यक्तियों का स्वभाव तो ऐसा कहा गया है-

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः,
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम्,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

अर्थात् सज्जन व्यक्ति मन, वचन तथा कर्मों में एक जैसे ही रहते हैं। मन में कुछ अन्य बात, वचनों में उससे भिन्नता और कर्मों में उनसे भी भिन्नता रखना दुर्जनों का स्वभाव कहलाता है। सज्जन व्यक्ति तो जीवनभर विविध उपकारों के माध्यम से प्राणिमात्र का सदा हित ही करना चाहते हैं वे दूसरों के दोषों को न देखकर उनके छोटे-छोटे गुणों को बढ़ा चढ़ाकर ही दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करते रहते हैं। और संसार के हानि-लाभ, सुख-दुःख, जय-पराजय आदि द्वन्द्वों में भी समरसता रखकर सदा ही सन्तुष्ट रहने का प्रयास करते हैं।

अश्वमेध यज्ञ का स्वरूप क्या है?

पाठक यह भी पूछना चाहेंगे कि ये तथाकथित गायत्री परिवार वाले व्यक्ति अश्वमेध के नाम पर यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढोंग कर रहे हैं, तो उसका स्वरूप क्या है? क्योंकि हम भी तो यज्ञ-प्रार्थना में कहते रहते हैं?

अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को।।

यह सत्य है कि वैदिक व्यक्तियों ने भी चतुर्वेद पारायण नाम से बड़े-बड़े यज्ञों के आयोजन किये, परन्तु अश्वमेधयज्ञ की पद्धति का प्रचार नहीं किया। और अब इस नाम की चर्चा तो हो ही रही है। ये गायत्री परिवार वाले स्थान-स्थान अश्वमेधयज्ञ का प्रचार व प्रसार करने में लगे हैं, तो जन-साधारण को इस यज्ञ के विषय में सामान्य जानकारी तो होनी ही चाहिये। इस यज्ञ के विषय में शतपथ ब्राहाण के (१२-२-१४-२) में लिखा है-

क्षत्रिययज्ञ उ वा एष यदश्वमेधः।
राजा वा एषः यज्ञानां यदश्वमेधः।।

अश्व शब्द शक्ति का प्रतीक है। इसीलिए अंग्रेजी वालों ने भी 'होर्सपावर' नाम से अश्व के वाचक शब्द का प्रयोग किया है। यह अश्वमेध नामक यज्ञ यज्ञों का राजा है और यह क्षत्रिय यज्ञ है।

राष्ट्रे एते व्यायच्छन्ति येऽश्वं रक्षन्ति।।

जो क्षत्रिय इस अश्वमेध को करते हैं वे सम्पूर्ण राष्ट्र को व्यवस्थित अथवा संगठित करते हैं जो इस यज्ञ के अश्व की रक्षा करते हैं। रामायण आदि के अध्ययन से इस क्षत्रिययज्ञ की ही पुष्टि होती है। इसे क्षत्रिय राजा ही करने में समर्थ होते हैं।

महर्षि-दयानन्द का मन्तव्य भी यही था-

प्रश्न- अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है?

उत्तर- इसका अर्थ तो यह है कि-

राष्ट्रं वा अश्वमेधः।। (शत० ४।३।१।२५)
अग्निर्वा अश्वः। आज्यं मेधः।। (शत० ३।६।२।५)

घोड़े, गाय आदि पशु मारकर होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। देखो, राजा न्याय, धर्म से प्रजा का पालन करें, विद्यादि का देने वाला यजमान, और अग्नि में भी घी आदि का होम करना अश्वमेध है। (स०प्र० ११ वाँ समु०)

अश्वमेध का प्रयोजन-

अश्वमेध राष्ट्र को नष्ट होने से बचाने के लिए किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है-

पराऽस्य द्विषन् भ्रातृव्यो भवति।

अश्वमेध यज्ञ के द्वारा द्वेष करने वाला शत्रु परास्त हो जाता है। विद्वान् व बुद्धिजीवी लोग ही राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी होते हैं, उनको नष्ट करने से राष्ट्र स्वतः ही नष्ट हो जायेगा। अतः अश्वमेध के द्वारा राजा विद्वान्, वैज्ञानिक व सज्जनों की रक्षा करता है। राष्ट्र को संगठित व व्यवस्थित करके द्वेषी, प्रजा का अहित करने वाला शत्रुओं को नष्ट भ्रष्ट करता है। अश्वमेध के द्वारा चक्रवर्ती सम्राट् बनने की महत्त्वाकांक्षा भी पूर्ण होती है। इसके माध्यम से मृतवीर्य, निर्बल सम्राट् भी संकल्प बल को धारण कर मृतप्रायः राष्ट्र में भी प्राणों का संचार कर सकता है।

अश्वमेध यज्ञ की विधि-

दिसम्बर १९९४ के मास में श्री वेदप्रिय शास्त्री ने अश्वमेध की विधि-व्याख्या करते हुए लिखा है- दीक्षा से एक दिन पहले ऋत्विक् वरण कर उन्हें घृत मिला भात खिलाया जाता है। इसे ब्रह्मौदन कहते हैं। बचे हुए शेष घृत को अश्व बान्धने की रस्सी में चुपड़ते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई संगठन अपना प्रभाव खो देता है तो उसे प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसा किया जाता है। इन ऋत्विजों को सुवर्ण-दान किया जाता है। क्षत्रियों को प्रशिक्षण देने के लिए रस्सी से बान्धना आवश्यक है। बन्धन कष्टदायक होता है। रस्सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में घृत लगाने का अभिप्राय बन्धन को स्नेहपूर्ण बनाना होता है। जिससे क्षत्रियगण के अनुशासन के बन्धन में बन्ध जाने से राष्ट्र-शक्ति बढ़ जाती है। इसी का नाम रशनाभ्यञ्जन है। यह रस्सी १२ या १३ हाथ लम्बी होती है। इस का आशय यह है कि वर्ष के १२ मास और कभी कभी १३ मास भी होते हैं। १३वाँ मास वर्ष का ककुद है। वर्ष ऋतुओं का वृषभ है, अश्वमेध यज्ञों का वृषभ है। इस का आशय है कि जितना बड़ा राष्ट्र हो, उसका सम्राट् उतना ही अधिक अनुशासित हो। रशना ग्रहण करना राष्ट्र की बागडोर ग्रहण करना है। तत्पश्चात् चारों दिशाओं से लाए जलों का ग्रहण करता है, जिन्हें अश्वमेध की समाप्ति तक साथ रखता है। इसका अभिप्राय यह है कि : 'प्रजा वै आप:' यह जल ही प्रजा का प्रतीक है। राष्ट्र में निवास करने वाली प्रजा का पूर्ण सहयोग लेकर उसका राष्ट्र की उन्नति में सहयोग प्राप्त करना। इसके बाद ब्रह्मा की अनुमति से अश्वबन्धन करते हैं। इसका आशय यह है कि ब्रह्मा की अनुमति से राष्ट्र के मुख्य मुख्य रक्षामन्त्री, गृहमन्त्री, कृषि मन्त्री इत्यादि मन्त्रियों का परामर्श लेकर राष्ट्र के कार्यों का संचालन करना। इस अश्वमेध यज्ञ के अश्व बन्धन के पश्चात् शुन-उपप्लावन अर्थात् एक चार आंखों वाले पागल कुत्ते को मारकर घोड़े के पेट के नीचे से पानी में बहा देना। इसका आशय यह है कि राजा को इस महाकार्य के लिए प्रजा अभिषेक करती है और राजा यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं राष्ट्र में रहनेवाले कुत्तों की भाँति जाति-द्रोही, व्यभिचारी, खुशामदी तथा दुश्चरित्र व्यक्तियों को मार मार कर अर्थात् दण्डित करके समाप्त कर दूँगा। इस जल प्रवाहित अश्व को जल बाहर निकाल कर तब तक आहुतियाँ दी जाती हैं जब तक अश्व के शरीर से एक एक जल की बूंद टपकती रहती है। ये आहुतियाँ सहस्र भी हो सकती हैं। तत्पश्चात् 'सावित्री इष्टि' होम किया जाता है, जिसमें सविता देवता वाले मन्त्रों से आहुतियाँ दी जाती हैं। जिसका आशय है कि समस्त प्रजा का राजा के साथ पूर्ण सहयोग प्राप्त करना और राजा का एक अच्छा न्यायाधीश सिद्ध होना। प्रजा की भावनाओं का पूर्ण सम्मान करना भी एक प्रयोजन है। प्रजा-भावनाओं का सम्मान न करने से राजा के विरुद्ध विद्रोह पैदा हो जाता है।

अश्वमेध यज्ञ के विधि के अन्तर्गत धृति होम, गाथा गान, अश्वकर्ण में जप, आशापालों की नियुक्ति, अश्व-मुञ्चन, पारिप्लिवाख्यान, प्रक्रम होम, दीक्षा, अश्वसंज्ञपन, अवभृथ स्नान एवं दक्षिणा विधियों का विस्तृत वर्णन श्री वेदप्रिय शास्त्री के लेख में देखा जा सकता है। उनके साथ सम्पर्क करने के लिए इस पते पर सम्पर्क किया जः सकता है- आर्य परिवार-प्रकाशन-समिति, ४ भ- २७, विज्ञाननगर कोटा (राजस्थान)।

इस प्रकार अश्वमेध यज्ञ के लक्ष्य, स्वरूप तथा विधि से पाठक परिचित हो गये होंगे। गायत्री परिवार के संचालकों तथा अन्धभक्तों को इससे क्या लेना देना है। उन्हें तो भोली भाली जनता की धार्मिक भावनाओं तथा श्रद्धा का लाभ उठाकर उनसे धन संचय करके गुलछर्रे उड़ाना है। इनका तो लक्ष्य एक ही है-

दुनिया ठगिए मक्कर से।
रोटी खाइये शक्कर से।।

अन्यथा हम पूछते हैं, गायत्री परिवार वाले उत्तर देने का साहस करें-

(१) क्या आप लोग अश्वमेधयज्ञ करने के अधिकारी हैं?

(२) क्या आपकी अश्वमेध यज्ञ की विधि शास्त्र विरुद्ध नहीं है?

(३) गायत्री एक छन्द का नाम है, क्या इसकी मूर्ति सम्भव है?

(४) सामान्य यज्ञों से अश्वमेधयज्ञ का क्या अन्तर है?

(५) अश्वमेधयज्ञ के विज्ञापनों पर घोड़े की मूर्ति छापी है। किन्तु इसका उद्देश्य क्या है?

-राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजमेर में सम्पन्न शास्त्रार्थ के संयोजक श्री आचार्य धर्मवीर विद्यालंकार का स्पष्टीकरण

अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि १४ मास के सतत प्रयत्न के अनन्तर चिरप्रतीक्षित शास्त्रार्थ सरस्वती भवन, ऋषि उद्यान, अजमेर में १४ नवम्बर, १९९४ को सफलता पूर्वक सम्पन्न हो गया।

प्रसन्नता का दूसरा कारण यह है कि शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुआ। शास्त्रार्थ का विषय था- **संस्कारविधि में 'अयन्त इध्म०' मन्त्र प्रक्षिप्त है या नहीं।**

शास्त्रार्थ के अध्यक्ष- पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी, दयानन्दमठ दीनानगर और संयोजक आचार्य धर्मवीर विद्यालंकार-ज्वालापुर थे, क्योंकि स्वामी सर्वानन्द जी वृद्धावस्था के कारण अधिक समय तक बैठ नहीं सकते थे, अतः श्री स्वामी सुमेधानन्द जी (मन्त्री आ०प्रति०सभा राजस्थान) को अपने स्थान पर नियुक्त किया गया। शास्त्रार्थ में श्री डा० ज्वलन्तकुमार शास्त्री मुख्य वक्ता थे, उनके सहायक श्री सत्यव्रत राजेश आदि थे। और विपक्ष में श्री रघुराज जी शर्मा शास्त्री मुख्यवक्ता थे। और श्री इन्द्रदेव यति, श्री विद्यादेवादि उनके सहायक थे।

१४ नवम्बर को १ बजे तक शास्त्रार्थ की व्यवस्था के लिए नियम बनाये गये और मध्याह्नोत्तर ३ बजे शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। लगभग १ घण्टा शास्त्रार्थ चला। उसके बाद संयोजक महोदय ने कहा- आज के इस विद्वानों के विचार-विमर्श से मेरा विचार यह है कि संस्कारविधि में 'अयन्त इध्म' मन्त्र प्रक्षिप्त सिद्ध नहीं हो सका। संस्कारविधि की पाण्डुलिपि में किए गये संशोधन स्वामी दयानन्द के किए गए सिद्ध हुए। यह बात संस्कारविधि के हस्तलेखों को देखकर निश्चित की। हस्तलेखों की मूल प्रति दिखाने पर सभा के अधिकारियों का धन्यवाद किया गया।

इस शास्त्रार्थ से पूर्व यह भी प्रयास किया गया कि इस विषय में एक विद्वद्गोष्ठी ही की जाये, शास्त्रार्थ में मनोमालिन्य तथा उपद्रव की सम्भावना अधिक होती है, विद्वद्गोष्ठी में जिज्ञासाभाव एवं सौहार्दभाव बना रहता है। किन्तु दोनों पक्षों की सहमति न होने पर शास्त्रार्थ करने का ही निर्णय हुआ। अन्त में यह निर्णय भी सर्वसम्मति से किया गया कि संस्कारविधि की पाण्डुलिपि के हस्तलेख को विशेषज्ञों को भी दिखाया जाये।

आचार्य धर्मवीर विद्यालंकार
२/२९, आर्य वानप्रस्थ आश्रम,
ज्वालापुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रार्थ में पराजित व्यक्ति की बौखलाहट

(आर्यराष्ट्र पत्रिका में छपे लेख के आधार पर)

२६ दिसम्बर १९९४ के 'आर्य-राष्ट्र' पत्रिका के सम्पादक ने पक्षपात के आग्रह के कारण जो कुछ लिखा है, उसे कोई विवेकी मनुष्य कभी स्वीकार नहीं कर सकता। जो व्यक्ति ढोल पीट रहे थे कि 'संस्कारविधि में अयंत इध्म०' मन्त्र प्रक्षिप्त है और महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों की मूलप्रतियाँ देखकर निर्णय करने की कामना से ही इस विषय में शास्त्रार्थ का आयोजन अजमेर में किया गया था। किन्तु दुराग्रह की भी सीमा होती है। अब ये लोग अजमेर में पराजित होकर और पहली लकीर के फकीर बनकर यह कहने लगे हैं- '**अब सार्वदेशिक और परोपकारिणी सभा मैदान में आवे।**' इन तथाकथित मिथ्याग्रही व्यक्तियों को कौन समझा सकता है?

(१) शास्त्रार्थ का प्रथम नियम यह होता है कि पक्ष-विपक्ष के विद्वान् प्रथम अपनी अपनी प्रतिज्ञा करते हैं, तत्पश्चात् उस की तर्क-प्रमाण से पुष्टि की जाती है। परन्तु यहां तो कहीं 'अयन्त इध्म० से समिधाधान व पंचाज्याहुति शास्त्र विरुद्ध है' कहते हैं और कहीं 'संस्कारविधि' में 'अयन्त इध्म०' प्रक्षिप्त है। इसका अभिप्राय यह है कि शास्त्रार्थ का विषय प्रतिज्ञाहीन ही था।

(२) किसी विषय पर शास्त्रार्थ किसी मध्यस्थ की देखरेख में किया जाता है। आर्य राष्ट्र के अनुसार 'शास्त्रार्थ के पूर्व किसी निर्णायक का निश्चित न होना' (९ पृ०) निर्णायक के बिना ही शास्त्रार्थ हुआ? यह कैसा शास्त्रार्थ होगा यह पाठक ही समझ सकते हैं। जबकि मध्यस्थ तथा संयोजक दोनों की देख रेख में यह शास्त्रार्थ हुआ था।

(३) 'शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज डा० ज्वलन्तकुमार शास्त्री ने आचार्य पं० रघुराज शर्मा को दिया।' (पृ० २) इससे स्पष्ट है कि इन दोनों विद्वानों के मध्य ही शास्त्रार्थ होता था। हाँ सहायक विद्वान् अन्य भी हो सकते हैं। परन्तु सम्पादक को इससे क्या उसे अपनी हृदयस्थ मलीनता को ही उगलना था और ईर्ष्यानल दग्ध हृदय ने अनेक स्थानों पर यह लिख मारा- 'श्री राजवीर शास्त्री तो भयभीत होकर अजमेर ही नहीं आये' (द्र० पृ० ५, पृ० ९) जब कि मेरे से कोई बात ही नहीं हुई।

(४) 'पत्रकारों का निषेध था' (पृ० ७) पुनरपि भारतीय किसान यूनियन का एक पत्रकार कैसे वहाँ पहुँच गया, जिसकी सम्मति आर्य राष्ट्र के पृ० ८ पर दी गई है। इस का अभिप्राय यह था कि इस पक्ष के लोगों ने पूर्वतः ही शास्त्रार्थ की व्यवस्था न चलने देने का ही निर्णय कर रखा था।

(५) इस शास्त्रार्थ में आर्यजगत् के उच्चकोटि के विद्वान्, मूर्धन्य संन्यासी उपस्थित थे। इन सब की देखरेख में यह शास्त्रार्थ हुआ। परन्तु दुराग्रह ग्रहिल सम्पादक को इससे क्या? इसने तो अपनी जिद को ही रखना था और इन सभी को झूठा दिखाकर छाप दिया-

(क) पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया गया। (पृ०२)

(ख) परोपकारिणी सभा के अधिकारी और राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों ने विपक्ष को खुल्लमखुल्ला मदद की। (पृ० ३)

(ग) दर्शकों द्वारा डा० ज्वलन्तकुमार शास्त्री को पूरा सहयोग करना। (पृ० ९)

(घ) संस्कारविधि की असली और नकली कापी दिखाने ही से साफ इन्कार कर दिया। (पृ० ३)

(६) 'आर्य राष्ट्र' पत्र के सम्पादक की दृष्टि में भी पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय और श्री पं० मदनमोहन जी विद्यासागर ही सर्वोपरि विद्वान् हैं, इनके अतिरिक्त आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् नगण्य हो गये, जो महर्षि दयानन्द को आप्त पुरुष मानते रहे, मानते हैं और मानते रहेंगे। ये विद्वान् भी महर्षि को परम प्रमाण ही मानते हैं।

और इस विषय की चर्चा पहले भी चली थी, किन्तु महर्षि को आप्त पुरुष-मानने वालों ने महर्षि के लेख के आगे नतमस्तक होकर विवाद को समाप्त कर दिया। परन्तु ऋषि के प्रति श्रद्धा विहीन तथा अंहकार से पूर्ण कैसे मान सकते हैं। इन्हें सृष्टि-संवत् के विषय में भी ऋषि की बात स्वीकार मान्य नहीं और अब यह एक नया विवाद चला दिया है।

—राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अयन्त इध्म आत्मा' के विरुद्ध मिथ्या प्रचार

(डा॰ भवानीलाल भारतीय, प्रधान-धर्मार्य सभा)

कतिपय पण्डितम्मन्य विगत कुछ वर्षों से संस्कार-विधि में वर्णित अग्निहोत्र प्रकरण (सामान्य प्रकरण) में ऋषि दयानन्द द्वारा विनियुक्त समिधाधान तथा पञ्च आज्याहुतियों में विनियुक्त 'अयंत इध्म आत्मा' इस मन्त्र के विरोध में दुष्प्रचार कर रहे हैं। इन स्वयंभू पण्डितों ने न तो ऋषि के ग्रन्थों का शोध की दृष्टि से ही अध्ययन किया है और न ये ऋषि की लेखन शैली से ही परिचित हैं। जब धर्मार्य सभा के प्रधान के रूप में मैंने इस मिथ्या प्रचार का विरोध किया और हमारे मित्र डा॰ ज्वलन्तकुमार शास्त्री ने इन तथाकथित पण्डितों के एतद् विषयक विचारों का प्रमाण पुरस्सर खण्डन किया तो हमारे ये मित्र गण बुरा मान गये और युक्ति, तर्क तथा प्रमाण का आश्रय न लेकर पुनः मिथ्या लेखन में प्रवृत्त हो गये। इनमें से एक कानपुर निवासी सज्जन का लेख आर्यमित्र तथा आर्यमर्यादा में भी छपा।

मेरा आर्य जनता से निवेदन है कि वह स्वामी दयानन्द कृत संस्कारविधि में इस मन्त्र के किसी लेखक द्वारा प्रक्षिप्त किये जाने के आरोप की ओर थोड़ा भी ध्यान न दे क्योंकि इस विषय पर परोपकारिणी सभा के मुख पत्र परोपकारी के जून तथा जुलाई १९९४ के अंकों में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। यह समस्या या शंका कोई आज के गुरुकुल शाही के पं॰ इन्द्रदेव या कानपुर के रघुराज शास्त्री ने ही पहली बार उठाई हो, सो बात नहीं है। पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय जैसे आर्यसमाज के प्रबुद्ध विद्वान् को भी इसमें शंका हुई थी। जिसे उन्होंने आर्यमित्र के २ सितम्बर, १९४८ के अंक में एक लेख द्वारा प्रस्तुत किया था। ४ जनवरी १९४९ को परोपकारिणी सभा की कार्यवाही पंजिका में उपाध्याय जी की इस शंका का विवरण दर्ज है। तत्पश्चात् प्रशंसित सभा ने इस विषय पर पं॰ जयदेव शर्मा विद्यालंकार, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी तथा पं॰ ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु से उनके विचार जानने चाहे। इस पर इन तीनों विद्वानों ने जो समाधानात्मक उत्तर दिया उसे परोपकारी के इन दो अंकों में यथातथा अंकित कर दिया गया है। इसके पश्चात् शंका के लिए कोई अवकाश नहीं रहना चाहिए।

इन लोगों का यह कहना है कि संस्कारविधि की प्रेस कापी के हाशिये में लिपिकार ने यह मन्त्र अपनी ओर से बढ़ाया है। मैं स्वयं ग्यारह वर्ष तक अजमेर रहा तथा परोपकारिणी सभा के संयुक्त मन्त्री के अधिकार से ऋषि के हस्तलेखों तथा उनके द्वारा रचित ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों को बराबर देखता रहा। यहाँ यह ध्यातव्य है कि स्वामी जी अपने ग्रन्थों को प्रेस में भेजने से पहले ग्रन्थ की प्रेस कापी तैयार करवाते थे तथा स्वयम् उसे आद्यन्त देखते थे। यथावश्यकता उसमें संशोधन, परिवर्धन या परिवर्तन स्वहस्त से करते थे। कोई जरूरी बात हाशिये में अपने हाथ से लिख देते थे। उदाहरणार्थ, ऋषि दयानन्द की तीन किस्तों में प्रकाशित आत्मकथा को देखें। इसके मूल आलेख मेरे द्वारा ही सम्पादित होकर १९७५ तथा १९८३ में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। इस पुस्तक के प्रथम पृष्ठ की तीसरी पंक्ति के साथ स्वामी जी ने निम्न वाक्य हाशिये में स्वयं बढ़ाया है- "अपना पिता का और निज निवास स्थान के प्रसिद्ध नाम मैं इसलिए नहीं लिखता कि जो माता पिता जीते हों मेरे पास आवें तो इस सुधार के काम में विघ्न हो क्योंकि मुझ को उनकी सेवा करना, उनके साथ घूमने में श्रम और धन आदि का व्यय कराना नहीं चाहता।" पाठक ध्यान दें कि इस पंक्ति को महत्त्वपूर्ण जानकर स्वयम् ऋषि ने हाशिये में लिखा है जब कि आत्मकथा का सारा लेख लेखक द्वारा लिखा गया है। इसी प्रकार संस्कारविधि का 'अयन्त इध्म आत्मा' विषयक वाक्य स्वामी जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने ही हाशिये में लिखा और यह अब तक बराबर छपता रहा। अब ऋषि की लेखन प्रक्रिया से अनभिज्ञ लोग यदि इसे प्रक्षिप्त कह कर वितण्डा खड़ा करें तो इस पर मौन रहना ही उचित है।

मैंने अपने जीवन के पचास वर्ष ऋषि के ग्रन्थों तथा उनमें व्यक्त विचारों के अध्ययन शोध तथा चिन्तन में ही व्यतीत किये हैं तथा महाराज की लेखन शैली को समझने की चेष्टा की है। आक्षेपकर्ता ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के इतिहास (पं॰ युधिष्ठिर मीमांसक रचित) को पढ़े, यह जानने का यत्न करे कि उनके ग्रन्थों के लिपिकर्ता कौन-कौन थे और इनमें से किन-किन ने कहाँ-कहाँ क्या प्रक्षिप्त किया है। यह सारा विषय गम्भीर अनुशीलन का है। कानपुर निवासी पण्डित रघुराज शास्त्री 'अयन्त इध्म आत्मा' को कलियुगीन आधुनिक आश्वलायन ऋषि का वाक्य मानते हैं। हमारा निवेदन है कि क्या आक्षेपकर्ता ने आश्वलायन के काल का ठीक-ठीक निर्धारण कर लिया है। इसके लिए तो कल्पसूत्रों के इतिहास का अध्ययन करना होगा। यदि वादितोष न्याय से यह मान भी लें कि आश्वलायन इसी कलियुग में हुए तो क्या ऋषि दयानन्द भी इसी युग के नहीं हैं। क्या कलियुग में उत्पन्न होने से ही किसी आर्य सिद्धान्त की अवहेलना की जा सकती है।

स्वामी दयानन्द के लेखन की एक विशिष्ट शैली रही है। वे प्रथम किसी विषय को संक्षेप में लिखते थे, पुनः आवश्यकता पड़ने पर उसका विस्तार भी करते थे। सत्यार्थप्रकाश के १८७५ में प्रकाशित प्रथम संस्करण में जैन मत की समीक्षा केवल बारह पृष्ठों में ही समाप्त हो गई है जब कि संशोधित द्वितीयावृत्ति में यह ६५ पृष्ठों में (चतुर्थ संस्करण में) समाप्त हुई है। क्या ये ५३ पृष्ठ किसी अन्य ने बढ़ा दिये, कदापि नहीं। प्रथम तथा द्वितीय संस्करण के बीच की अवधि में स्वामी जी ने बम्बई के पं॰ सेवकलाल कृष्णदास के द्वारा जैन शास्त्रों को प्राप्त किया तथा उनका सम्यक् अनुशीलन करने के पश्चात् इस विषय को पुनः विस्तार से लिखा।

यह ठीक है कि ऋषि दयानन्द ने पारस्कर, गोभिल तथा आश्वलायन आदि ऋषियों द्वारा रचित गृह्य सूत्रों के मतों के आधार पर ही संस्कारविधि लिखी, तथापि वे इन गृह्यकारों के मतों को सर्वांश में नहीं मानते थे। संस्कारविधि का अन्य गृह्यसूत्रों से तुलनात्मक अध्ययन शोध का एक रोचक विषय है और मैंने पंजाब विश्वविद्यालय के अपने कार्य-काल में एक शोध छात्र धर्मदेव शर्मा को इस विषय पर शोध कार्य करवाया भी था।

इस सारे विचार विमर्श को गम्भीरता से लेना चाहिए और आक्षेपकर्ता को डा॰ ज्वलन्तकुमार शास्त्री को 'हिन्दू आर्यसमाजी' कह कर लांछित नहीं करना चाहिए। इसी विषय पर डा॰ सत्यव्रत राजेश तथा अन्य विद्वानों के लेख पर्याप्त परिश्रम से लिखे गये हैं। इसी प्रकार मन्त्रारम्भ में सर्वत्र ओ३म् बोलने के दुराग्रह पर भी डा॰ जयदत्त उप्रैती जैसे विद्वानों ने गम्भीरता से विचार किया है। हमारे एक मित्र का यह मत भी समीचीन नहीं लगा कि अयन्त इध्म आत्मा मन्त्र को केवल गृहस्थ याजक ही बोलें, ब्रह्मचारी या वानप्रस्थ अग्निहोत्री, इसका उच्चारण न करें। कर्मकाण्ड के मर्मज्ञ स्वामी मुनीश्वरानन्द जी ने इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है जो आर्य संसार में प्रकाशित हो चुका है। यह तो ठीक है कि ऋषि दयानन्द के आशय के मर्मज्ञ पं॰ ब्रह्मदत्त जिज्ञासु पं॰ भगवद्दत्त, आचार्य विश्वश्रवा आदि विद्वान् अब नहीं रहे और पं॰ युधिष्ठिर जी का परलोक प्रस्थान भी इस श्रृंखला की अन्तिम कड़ी के टूटने के तुल्य ही है, तथापि इन विषयों पर गम्भीरता से आलोचना करने वाले स्वामी मुनीश्वरानन्द जी, पं॰ राजवीर जी, पं॰ सुदर्शनदेव जी आदि अनेक पण्डित आज भी हमारे बीच हैं। मेरा धर्मार्यसभा के प्रवक्ता के रूप में आर्यजनता से निवेदन है कि वे ऐसे ज्ञान लव दुर्विदग्ध पण्डितम्मन्यों की बातों में न आकर उसी आर्ष विधि को स्वीकार करें जिसे ऋषि दयानन्द ने लिखा है तथा स्वामी स्वतन्त्रानन्द तथा पं॰ ब्रह्मदत्त जिज्ञासु आदि ने जिसकी पुष्टि की है।

८/४२३, नन्दनवन, जोधुपर (राज॰)

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६ मार्च के दिवस की एक अमर स्मृति

सत्संगति का अद्भुत प्रभाव

एक स्वतन्त्र प्रकृति का भावुक, प्रत्युत्पन्नमति बालक अपने मन की कुछ शंकाओं का समाधान चाहने की इच्छा से सेवा से एक मास की छुट्टी लेकर पंजाब से अजमेर में सेठ फतहमल की वाटिका में ठहरे एक महात्मा के पास पहुँचा। साधु के ज्ञान व तेज को देखकर ही यह युवक अत्यधिक प्रभावित हुआ और उनके चरणों में बैठकर प्रश्न पूछने लगा-

महात्मन्! आकाश और ब्रह्म दोनों सर्वव्यापक हैं तो दो व्यापक एक स्थान में कैसे रह सकते हैं? साधु ने एक पत्थर उठाकर कहा कि जिस प्रकार इस पत्थर में अग्नि, मिट्टी और परमात्मा तीनों व्यापक हैं, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में आकाश और ब्रह्म दोनों व्यापक हैं। सूक्ष्म वस्तु में उससे भी सूक्ष्मतर वस्तु व्यापक रहती है। ब्रह्म सूक्ष्मतम है, वह आकाश में व्यापक है।

तत्पश्चात् एक अन्य प्रश्न पूछा- महात्मन्! जीव-ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण है? साधु बोले- यजुर्वेद का सारा ४०वाँ अध्याय जीव और ब्रह्म का भेद बतलाता है।

इसके बाद यह प्रश्न पूछा- अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिये या नहीं? साधु बोले- अवश्य शुद्ध करना चाहिये।

युवक को साधु के उत्तरों से सन्तोष हुआ और उसने साधु से दश प्रश्न पूछे, जिनमें से एक यह था- विद्युत् क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है? साधु बोले- विद्युत् सब स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।

साधु ने युवक को जाते समय उपदेश दिया- २५ वर्ष से पूर्व विवाह न करना। साधु के इस सत्संग से युवक पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसका ब्रह्मचर्य पर विचार दृढ़ हो गया और वैदिक धर्म पर अटूट विश्वास हो गया। सच कहा है-

सत्सङ्गतिः किं किं न करोति पुंसाम्।

सत्संगति मनुष्यों का क्या लाभ नहीं करती।

पाठक विचार करें कि यह युवक कौन था और साधु कौन था। यह युवक पं० लेखराम ही था और साधु महर्षि दयानन्द। पंडित जी ने स्वयं वर्णन करते हुए लिखा है- "स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गये और उन के सत्योपदेश से सब संशय निवृत्त हो गए।" यही दीवाना युवक जीवन में आर्य मुसाफिर के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसने ऋषि का पावन जीवन लिखा- **अपने लहू से लेखराम तेरी कहानी लिख गया।**

पण्डित जी की अन्तिम यात्रा-

पण्डित जी उर्दू व फारसी के विद्वान् थे। मुसलमानों में अहमदिया सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक मिरजा गुलाम अहमद ने एक पुस्तक 'बुराहीन-ए-अहमदिया' जिसमें आर्यसमाज पर कटु आक्षेप किए गये थे। पण्डित जी ने उसके उत्तर में 'तक् जीव बुराहीन-ए-अहमदिया' नामक ग्रन्थ लिखा। इसके बाद विवाद चलता रहा। परिणाम स्वरूप मिर्जा के चमत्कारों की पोल खुल गई, अतः वह द्वेष रखने लगा। शुद्धि-आन्दोलन चलाने के कारण मोहम्मदी पहले से ही रुष्ट थे। पण्डित जी पर अनेक स्थानों पर अभियोग चलाया गया और उनको मारने की भी धमकियाँ आने लगीं। किन्तु पण्डित जी जैसा ईश्वर-विश्वासी कैसे डरता? वे पूर्ववत् अपने धर्मप्रचार में लगे रहे।

फरवरी, १८९७ मास में एक मुसलमान युवक शुद्ध होने के लिए आया। पण्डित जी ने प्रेमपूर्वक बिठाया और धर्मोपदेश दिया। उस युवक ने एकान्त में पण्डित जी को देखकर जैसे ही पण्डित जी महर्षि जीवनी लिखकर खड़े हुए और अंगडाई ले रहे थे, उनके पेट में कटारी से वार कर दिया। पेट में आठ मारक घाव लगे थे आधी रात तक डा० पेरी (लाहौर) घावों को सीलने का प्रयास करता रहा किन्तु खून बहुत निकलने से पण्डित जी ६ मार्च १८९७ को रात्रि के २ बजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने नश्वर शरीर को वैदिक धर्म पर बलिदान कर गये। मृत्यु से पूर्व विश्वानि॰ मन्त्र का पाठ किया और आर्यों को यह सन्देश देकर **'आर्यो! आर्यसमाज से लेख का कार्य बन्द नहीं होना चाहिए'** संसार से चले गये।

पण्डित जी ईश्वर के अटल विश्वासी, निडर, वाक्पटु, आदर्श धर्मप्रचारक थे, उनका यह बलिदान निरर्थक नहीं गया। उन्होंने अपनी प्रेरणा से सोमनाथ, वजीरचन्द, मथुरादास, तुलसीराम, सन्तराम, योगेन्द्रपाल, जगत् सिंह इत्यादि अनेक धर्मोपदेशकों को जन्म दिया। भविष्य में भी उनकी बलिदानी भावना प्रेरणा देती रहेगी।

चिढ़ गये वैदिक बटोही से मियाँ सब हार कर।
चल पड़े अपनी पुरानी चाल पै तकरार कर॥
एक पाजी आ मिला वेदमत स्वीकार कर।
अन्त में भागा कलेजे में कटारी मार कर॥
नीच को अपनाय धोखा खाय पण्डित लेखराम।
तर गये जगदीश के गुण गाय पण्डित लेखराम॥

●●

पण्डित लेखराम की अन्तिम शिक्षा

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेतकर चलना कुमार्ग में कदम धरना नहीं॥
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
क्रोधवर्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं॥
दे मरे हम को मुनासिब राय पण्डित लेखराम।
तर गये जगदीश के गुण गाय पण्डित लेखराम।

–कवि शिरोमणि पं॰ नाथूराम शर्मा "शङ्कर"

आर्यों का संकल्प

धर्मवीर! सदा तुम्हारा धर्म पर ही ध्यान था।
वेदहित सर्वस्व वारा, वेद पर बलिदान था॥
आर्यकुल आदर्श प्यारा, मोद था अभिमान था।
'सत्य का सब लें सहारा' लक्ष्य यही महान् था॥
'वेद पर बलिदान का कर लें' विशेष विधान थे।
धर्मवीर महान् थे शर, लेखराम समान थे॥
आर्य मिल सब आप के गुण, ज्ञान, गौरव गायेंगे।
ऋषि मिशन पूरा करें पुनि, आप के पद पायेंगे॥
वीर के बलिदान का दिन, मोद मान मनायेंगे।
आज यदि व्रत लें मनस्विन्! "विश्व आर्य बनायेंगे॥
धैर्यधर थे वीरवर नर, आप आर्य महान् थे।
धर्मवीर महान् थे शर, लेखराम समान थे॥

–काव्यमनीषी श्री सूर्यदेव शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिभक्त लेखराम की दीवानगी

लिफाफा हाथ में लाकर दिया जिस वक्त माता ने।
लगे झट खोलकर पढ़ने दिया है छोड़ खाने को।।

लिखा था उसमें कुछ हिन्दू धर्म को खोने को उद्यत हैं।
जो आ सकते हो ख़त को देखते ही आओ बचाने को।।

मुसाफिर ने पढ़े जिस वक्त यह अलफाज़ उस ख़त के।
तो धोकर हाथ जल्दी से हुए तैय्यार जाने को।।

उठा बिस्तर पहन कपड़े किताबें साथ ले अपने।
कहा नौकर से ला इक्का मैं हूं तैयार जाने को।।

कहा माता ने हे बेटा अभी तू आके बैठा है।
अभी फिर हो गया तैय्यार तू परदेश जाने को।।

तू माता और पत्नी को कुछ ऐसा भूल जाता है।
नहीं आता महीनों तक हमें सूरत दिखाने को।।

यदि सुध बुध हमारी तू नहीं लेता न ले बेटा।
मगर लड़का लबे दम है नहीं खाता है खाने को।।

दया कर इस पै कुछ तू और न ले अब नाम जाने का।
दवा करवा इसे ले जा हकीमों को दिखाने को।।

यह सुन कर बात माता की मुसाफिर हँस के यूँ बोले।
जो मरता है तो मर जावे बला से इक मेरा बेटा।।
मैं जाति के बहुत से लाल जाता हूँ बचाने को।।

मुलाज़िम भी सवारी उस समय लेकर के आ पहुँचा।
लो माता जी नमस्ते मैं तो हूँ मजबूर जाने को।।

सवार हो टल में पहुँचे वह जिस जाँ कि जाना था।
बचाया हिन्दुओं को जाके यह अफ़साना है गाने को।।

सुबह को तार यह पहुँचा कि लड़का चल बसा जग से।
तो बोले फ़िक्र ही क्या है, हर इक आया है जाने को।।

'मुसाफिर' धन्य तुम को आप थे संसार के प्यारे।
जो वैदिक धर्म की खातिर छुरा आये थे खाने को।।

-कुंवर सुखलाल आर्य मुसाफिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रार्थद्रष्टा महर्षि दयानन्द सरस्वती

(यशपाल आर्यबन्धु, आर्य निवास, चन्द्रनगर, मुरादाबाद २४४०३२)

यह तो सर्वविदित ही है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती (मूलशंकर) को शिवरात्रि के दिन बोध और गुरुवर विरजानन्द के पास वेदाध्ययन करने के बाद प्रबोध हुआ था। और फिर वेद का अध्ययन कर चुकने पर गुरु द्वारा दक्षिणा में वेद के प्रचार तथा पाखण्ड के उन्मूलन का व्रत लिया था। महर्षि ने आजीवन इस व्रत को बड़ी निष्ठा से निभाया भी था। उनका सम्पूर्ण जीवन वेद के प्रति समर्पित था। यहां तक कि उनकी ऐसी भी इच्छा थी कि यदि इस जन्म में वेद के प्रचार का कार्य पूर्ण नहीं हुआ तो दूसरा जन्म भी क्यों न लेना पड़े, वे इस महान् कार्य को अवश्य पूरा करेंगे।

यह वह युग था जब लोग देववाणी संस्कृत से प्रायः अनभिज्ञ से हो रहे थे। और जन-सामान्य में वेद का प्रचार करने के लिए यह आवश्यक हो गया था कि संस्कृत के साथ-साथ वेद का ऐसी भाषा में भी भाष्य किया जाय जो जनसामान्य की भाषा हो। अतः महर्षि दयानन्द ने सर्वप्रथम वेद का हिन्दी में भाष्य करने की ठानी। इसके लिए वेद के गूढ़तम रहस्यों को समझने की आवश्यकता थी। अतः महर्षि ने इसके लिए प्रथम वेदों का गम्भीर अध्ययन तथा मनन करना प्रारम्भ कर दिया। और फिर उसका भाष्य संस्कृत और हिन्दी में किया। प्रथम तो वेद का भाष्य करना ही कोई सरल कार्य नहीं, फिर हिन्दी भाषा में तो और भी कठिन है जबकि भाष्यकार की मातृभाषा ही हिन्दी न हो तब यह बहुत साहसपूर्ण कार्य था, पर महर्षि ने इसे कर दिखाया। वेद का भाष्य वही कर सकता है जिसके पास विद्या का भी बल हो और योग का भी। कोई केवल विद्या के बल पर वेद भाष्य कर ले ऐसा सामान्यतः सम्भव नहीं। और यदि कोई ऐसा कर भी लेता है, तो उसमें वह बात नहीं आ सकती जो एक विद्यासम्पन्न योगी के भाष्य में होती है। इतिहास साक्षी है कि वेद का भाष्य लिखाते-लिखाते महर्षि को जहां कहीं कोई संशय, होता था या वे कहीं अटक जाते थे तो झट साथ के कमरे में समाधिस्थ* अवस्था में ध्यान लगाते थे और जब उसके अर्थ उन पर स्पष्ट रूप में प्रकट हो जाते थे, तो आकर पण्डितों को बोल कर लिखा दिया करते थे।

पाठकवृन्द! हमने अपने लेख का शीर्षक मन्त्रद्रष्टा न रखकर कुछ सोच-समझ कर ही मन्त्रार्थद्रष्टा रखा है। हमारी मान्यता है कि मन्त्रद्रष्टा तो केवल चार ही ऋषि हुए हैं, जिनके पवित्र हृदय में सृष्टि के प्रारम्भ में परम पिता परमात्मा ने अपना पवित्र ज्ञान प्रकाशित किया था। अतः मन्त्रद्रष्टा तो वस्तुतः वे ही हैं, शेष जितने भी ऋषि-महर्षि हुए हैं, वे मन्त्रार्थद्रष्टा थे, मन्त्रद्रष्टा नहीं। उन सब ऋषियों ने वेद के मन्त्रों के ही अर्थों के दर्शन किये थे, मन्त्रों के नहीं। इसमें महर्षि दयानन्द का लेख प्रमाण है।

वेद के मन्त्रों के साथ **अर्थद्रष्टा** ऋषि का जो नाम लिखा होता है, उसके सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं कि- "जिस-जिस **मन्त्रार्थ** का दर्शन जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिए अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषियों के नाम-स्मरणार्थ लिखा आता है, जो कोई ऋषियों को मन्त्र-कर्त्ता बतावे, उनको मिथ्यावादी समझें, **वे तो मन्त्रों के अर्थ प्रकाशक थे।**" (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समु०) ऐसे ही विचार महर्षि ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी प्रकट किये हैं। यथा- "ईश्वर जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका, तभी से प्राचीन ऋषि लोग **वेद मन्त्रों के अर्थों का प्रचार** करने लगे, फिर उनमें से जिस-जिस

*प्रामाणिक 'जीवनचरित्र' इस बात की पुष्टि नहीं करता। (सं०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र का अर्थ जिस-जिस ऋषि ने प्रकाशित किया, उस-उस का नाम उसी-उसी मन्त्र के साथ स्मरण के लिए लिखा गया है, इसी कारण से उनका ऋषि नाम भी हुआ है और जो उन्होंने ईश्वर के ध्यान और अनुग्रह से बड़े-बड़े प्रयत्न के साथ **वेदमन्त्रों के अर्थों** को यथावत् जानकर सब मनुष्यों के लिए पूर्ण उपकार किया है, इसलिए विद्वान् लोग मन्त्रों के साथ उनका नाम स्मरण रखते हैं।'' (प्रश्नोत्तर विषय) महर्षि के इन लेखों से स्पष्ट होता है कि ये सब ऋषि मन्त्रार्थद्रष्टा ही थे, भले ही उनको मन्त्रद्रष्टा क्यों न कह दिया जावे।

ऋषि लोगों को वेदों के अर्थ किसने और कैसे बताए?

इसका उत्तर महर्षि इस प्रकार देते हैं- ''परमेश्वर ने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब-जब **जिस-जिस के अर्थ जानने की** इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधि स्थित हुए, तब-तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जताये। जब बहुतों के आत्माओं **में वेदार्थ-प्रकाश हुआ,** तब ऋषि मुनियों ने इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाये, उनका नाम ''ब्राह्मण'' अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ।'' (स॰प्र॰ ७) स्पष्ट है कि महर्षि स्थान-स्थान पर ऋषियों को वेदार्थ-प्रकाशक बता रहे हैं। महर्षि स्वयं भी वेदार्थप्रकाशक ही थे।

मन्त्रार्थद्रष्टा महर्षि दयानन्द ने वेदभाष्य से पूर्व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नाम से एक ग्रन्थ लिखा था। अपने इस ग्रन्थ में वे अपने भाष्य के सम्बन्ध में घोषणा करते हैं कि- **''यह भाष्य ऐसा होगा कि जिससे वेदार्थ से विरुद्ध अब तक के बने भाष्य और टीकाओं से वेदों में भ्रम से जो मिथ्या दोषों के आरोप हुए हैं, वे सब निवृत्त हो जावेंगे और इस वेदभाष्य से वेदों का जो सत्य अर्थ है सो संसार में प्रसिद्ध हो, कि वेदों के सनातन अर्थ को सब लोग यथावत् जान लें।'' (ईश्वर-प्रार्थना-विषय) इसी प्रकार प्रतिज्ञा विषय में भी महर्षि लिखते हैं कि ''इस भाष्य में पद-पद का अर्थ पृथक्-पृथक् क्रम से लिखा जायगा कि जिससे नवीन टीकाकारों के लेख से जो वेदों में अनेक दोषों की कल्पना की गई है, उन सब की निवृत्ति होकर सत्य अर्थों का प्रकाश हो जायेगा। तथा जो-जो सायण, माधव, महीधर** और अंग्रेजी वा अन्य भाषा में उलथे वा भाष्य किये जाते हैं वा किये गये हैं, तथा जो-जो देशान्तर भाषा में टीका हैं, उन अनर्थ व्याख्यानों का निवारण होकर मनुष्यों को वेदों के सत्य अर्थों के देखने से अत्यन्त सुखलाभ पहुंचेगा। **क्योंकि बिना सत्यार्थप्रकाश के देखे मनुष्यों की भ्रमनिवृत्ति कभी नहीं हो सकती।''**

हमारी मान्यता है कि महर्षि ने सत्य का नहीं, सत्यार्थ का प्रकाश किया है, क्योंकि सत्य का प्रकाश तो वेद में प्रथम हो ही चुका था। लोगों ने वेद के सत्य अर्थों को न जानकर मिथ्या अर्थों का प्रकाश करना प्रारम्भ कर दिया था। इसलिए महर्षि दयानन्द को इतना परिश्रम करना पड़ा। मिथ्या अर्थों और भ्रमादि के निवारण में महर्षि को अधिक समय लगाना पड़ा। अन्यथा महर्षि सारे वेदों का भाष्य कर जाते। फिर भी उनको पूरा जीवन भी इन्हीं मिथ्यावादियों ने जीने नहीं दिया। महर्षि दयानन्द ने वेद पर जितना श्रम किया इतना आधुनिक युग में किसी ने नहीं किया। वेद के कितने प्रकार के अर्थ होते हैं, वेद के अर्थ करने में कौन-कौन से विशेष नियम हैं, वेदार्थ करने में विशेष नियम क्यों हैं? मन्त्रों के साथ छन्द क्यों लिखा रहता है, ऋषि और देवता क्यों लिखा रहता है? आदि-आदि सभी विषयों पर महर्षि दयानन्द ने खुल कर विचार किया है। इसके लिए महर्षि की 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' का गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। वस्तुतः मन्त्रद्रष्टा ऋषि का काम ही सूक्ष्म अर्थों का मनन करना है और महर्षि दयानन्द ने यही किया है। अतः हम महर्षि को मन्त्रार्थद्रष्टा मानते हैं। और **केवल मन्त्रार्थद्रष्टा ही नहीं मानते, सत्यार्थद्रष्टा भी मानते हैं। वे वस्तुतः सत्यार्थद्रष्टा थे और उन्होंने सत्य अर्थों का ही प्रकाश किया है।**

महर्षि दयानन्द की एक और विशेषता थी। वह यह कि उन्होंने वेद को वेद की ही दृष्टि से देखा था। उनकी मान्यता थी कि ''वेद एव वेदस्योपाध्यायः।'' अन्य भाष्यकारों ने अधिकतर लोक से वेद को देखने का प्रयत्न किया है, इसलिए वे सत्य अर्थों के प्रकाशन में पूर्णतया सफल नहीं हो सके। इसीलिए वे वेद के सत्यार्थद्रष्टा भी नहीं बन सके। यह सौभाग्य तो केवल महर्षि दयानन्द को ही प्राप्त हो सका। ऐसे सत्यार्थद्रष्टा को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द का नारा-ए-मस्तानाः

संसार का प्रत्येक मानव 'श्रेष्ठ पुरुष' बन जाए!

● प्रिंसीपल ओम्प्रकाश

महर्षि दयानन्द के समकालीन, प्रसिद्ध मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खां ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था- 'हमारा स्वामी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था और हम उनका आदर करते थे।... वे विद्वान् ही नहीं, एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष थे।'

उन 'अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष' की सब से बड़ी इच्छा, सब से बड़ा उद्देश्य यही था कि दुनिया के सभी मनुष्य 'श्रेष्ठ पुरुष' बनें। इसलिए उन्होंने अपने सर्वतोमुखी आन्दोलन का नाम 'आर्यसमाज' रखा, क्योंकि 'आर्य' शब्द का मूल अर्थ ही 'श्रेष्ठ पुरुष' है, प्रगतिशील, सदाचारी, ईमानदार व्यक्ति है। अपने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में ऋषिवर लिखते हैं- "जैसे 'आर्य' श्रेष्ठ पुरुषों और 'दस्यु' दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं, वैसे ही मैं भी मानता हूं।" उनके मन्तव्य ही नहीं, उनका समूचा जीवन तथा कृतियां इसका प्रमाण हैं कि वे संसार में श्रेष्ठ मानवता का प्रचार-प्रसार चाहते थे। अमेरिका के परोक्षदर्शी विद्वान् श्री एण्ड्रूज ने महर्षि की शुद्ध सात्त्विक भावना की पुष्टि करते हुए आर्यसमाज को 'असीम प्रेम की आग' की संज्ञा दी थी, जो मानव के द्वेष को मिटा देगी एवं मनुष्य-मनुष्य में सौहार्द उत्पन्न करके दुनिया में फैले पाखण्ड को दूर करके संसार को सच्ची मानवता का पाठ पढ़ाकर पृथ्वी को नवजीवन प्रदान करेगी और सर्वत्र मूक शान्ति के युग का प्रारम्भ होगा।

'श्रेष्ठ पुरुष' का निर्माण

'श्रेष्ठ पुरुष' के निर्माण की प्रक्रिया देव दयानन्द की अनोखी है। वे उसका आधार 'धर्म' को मानते हैं। पर उनकी धर्म की परिभाषा साम्प्रदायिक नहीं, सार्वभौम है। वे कहते हैं- 'ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपात रहित न्याय सर्वहित करना 'धर्म' है। और, अधर्म उनकी दृष्टि में है- 'ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपात सहित अन्यायी होके, अविद्या, हठ, अहंकार, क्रूरता आदि दोषों से युक्त होके अपना ही हित करना (सोचना) है। वह अधर्म कहाता है। वे 'श्रेष्ठ पुरुष' बनने के लिए अधर्म एवम् असत्य को छोड़ने पर बल देते हैं। अतः 'सत्पुरुष' की व्याख्या करते हुए वे स्पष्टतः कहते हैं- 'सत्यप्रिय, धर्मात्मा, विद्वान्, सब के हितकारी महाशय ही 'सत्पुरुष' (अच्छे इंसान) कहाते हैं।" और, संसार के प्रत्येक व्यक्ति को वे ऐसा ही सत्पुरुष बनाना चाहते हैं।

दिव्य द्रष्टा दयानन्द की कसौटी भी निराली है। वे घोषणा करते हैं- जो सत्य है, उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना छुड़वाना मुझे अभीष्ट है। अधर्मयुक्त चाल-चलन का त्याग और धर्मयुक्त आचार का स्वीकार ही मनुष्य धर्म है, सच्ची मानवता है।' वे आगे लिखते हैं- मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, न कि दूसरों के अधिकार, धन सम्पत्ति, छीनने तथा युद्ध वैमनस्य आदि द्वारा अन्य लोगों के उत्पीड़न में लगा रहे!

अद्भुत योजना

महर्षि की मनुष्य निर्माण की योजना भी अद्भुत है। वे कहते हैं कि मनुष्य पहले अच्छी तरह समझ ले कि दुनिया में जो कुछ दिखता है, वह महान् शक्ति ईश्वर (ईशावास्यमिदं सर्वम्) से व्याप्त है, वही उसका निर्माता, पालक व मालिक है। सृष्टिकर्त्ता को मनुष्य निष्ठापूर्वक माने और उसकी कारीगरी को नित्य देखा करे (पश्य देवस्य काव्यम्)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ब्रह्मा ने मनुष्य के आनन्द भोग के लिए जो सूर्य-चन्द्र, भूमि-आकाश, पर्वत-समुद्र, हवा-पानी, दूध-मलाई; फल-फूल, सब्जी-तरकारी तथा पत्नी पुत्र, कोठी-कार आदि बनाए या दिए हैं, उसका मजे से भोग करे, पर उस 'दाता' को भूले नहीं, उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना नित्य करता रहे। भोग्य पदार्थों का रसास्वादन भी वह मधुमक्खी की तरह करे, उनमें फंसे नहीं। जिस तरह मनुष्य अपनी आत्मा को जितना परमात्मा के सुपुर्द रखेगा तथा प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवन-यापन करता रहेगा, उतना ही अधिक वह 'श्रेष्ठ पुरुष' बनने की ओर अग्रसर होता रहेगा।

फिर अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में महर्षि मनुष्य-निर्माण की योजना को बढ़ाते हैं। वे कहते हैं कि बच्चा पैदा होने से पहले ही मां-बाप संकल्प लें कि गर्भावस्था में ही बच्चे में 'श्रेष्ठ पुरुष' बनने के बीज डालने हैं। तदर्थ दोनों को मर्यादा-पालन करना होगा और संयम बर्तना होगा। मां (जननी) को तो विशेष रूप से शुद्ध विचार, शुद्ध आचार, शुद्ध व्यवहार एवं शुद्ध आहार से रहना होगा। 'मातृमान् पितृमान् पुरुषो वेद'- बालक को 'श्रेष्ठ पुरुष' बनाने की योजना 'श्रेष्ठ माता-पिता' ही बना सकेंगे। उसके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, खान-पान, स्वास्थ्य चरित्र का ध्यान बड़ी सावधानी से रखना होगा, ताकि उम्र के बढ़ने के साथ-साथ बच्चे का शारीरिक, मानसिक एवम् बौद्धिक विकास ठीक प्रकार से हो सके। माता-पिता और बाद में आचार्य को इसके लिए विशेष परिश्रम करना पड़ेगा।

गृहस्थाश्रम का महान् दायित्व–

महर्षि दयानन्द ने मनुष्य जीवन को चार आश्रमों या भागों में बांटा है– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इसमें गृहस्थाश्रम को उन्होंने सर्वोपरि माना है, क्योंकि वह अन्यों का मुख्य सहयोगी एवं पालक है। उनकी दृष्टि में यह राष्ट्र की धुरी भी है, क्योंकि परिवारों का समूह ही तो राष्ट्र है, देश है, जाति है और परिवार सब से शुद्ध पवित्र व व्यावहारिक प्रजातन्त्र है जहां हर सदस्य सहज एवं निष्काम भाव से अपना-अपना कर्त्तव्य निभाता है। अतः महर्षि कहते हैं कि जब ब्रह्मचारी लड़का व ब्रह्मचारिणी कन्या अपने आश्रम के दोनों मुख्य काम शरीर की पुष्टि व विद्या की प्राप्ति कर लें, तो युवा-युवती का गुण, कर्म, स्वभाव मिलाकर पाणि-ग्रहण (विवाह) कर देना चाहिए। यह ईश्वर की सृष्टि चलाने के लिए भी आवश्यक है और सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए भी अनिवार्य है।

आजीवन बाल ब्रह्मचारी होते हुए दयानन्द ने 'गृहस्थ' की इतनी ज्यादा महिमा क्यों गाई, इस पर कइयों को अचम्भा अथवा आपत्ति होती है, पर वे तो सत्यधर्म के प्रचारक थे। पति-पत्नी के मेल को वे 'दो आत्माओं का मेल' समझते हैं, जो एक महान् लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हुआ। और वह लक्ष्य है तन्तुं तन्वन्......मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्'-संसार का ताना-बाना बुनता हुआ ऐ मनुष्य, तू 'श्रेष्ठ पुरुष' बनने का निरन्तर प्रयत्न करता रहे और दिव्य सन्तान को उत्पन्न कर! इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए पत्नी-पति जीवन रथ के दो पहिये हैं जिनमें पूरा तालमेल होना बहुत जरूरी है, वे एक-दूसरे के सहयोगी भी हैं और पूरक भी, उनमें कोई दुर्भाव के होने की बिल्कुल गुंजायश नहीं।

विदेशी गुलामी व पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव तथा सिनेमा, रेडियो व टेलीविजन ने तो 'नकली' पति-पत्नी के दिलों को मिलाते हुए दिल के टुकड़े हजार कर दिये। छोटी-छोटी मनमुटाव की बातों पर दो आत्माओं के मेल को तलाक (तोड़) दिया। पर उस दिव्यद्रष्टा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कारविधि के अनुसार, विवाह की वेदी पर बैठे वर-वधू से कहलवाया- **'समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ'** उपस्थित भद्र लोगो! हम अपनी प्रसन्नता पूर्वक गृहस्थाश्रम में एकत्र रहने के लिए, जल के समान शान्त रहने के लिए एक-दूसरे को स्वीकार करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यही नहीं 'ओ३म् मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु' के अनुसार एक-दूसरे को अपना 'हृदय, अन्तःकरण, चिंत्त' दे देते हैं और यह मानते हैं कि परमपिता परमात्मा ने ही हमारा यह 'संगम' रचाया है।

अब जरा सोचिए कि टी०वी०, सिनेमा आदि का बाजारी 'प्रेम' व्यक्ति को 'श्रेष्ठ पुरुष' बनाएगा या सत्यवक्ता दयानन्द द्वारा निर्देशित शुद्ध सात्त्विक 'प्रेम'।

इस प्रकार शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक तौर पर निर्मित 'श्रेष्ठपुरुष (नेक इंसान), अदना कल्याण भी कर पाएगा, देश, धर्म, जाति की सेवा भी कर पाएगा और 'संसार का उपकार' भी। वह खुद सुख शान्ति से अपना जीवन बिताएगा और दूसरों की शान्ति भंग नहीं करेगा। तब न तो आतंकवादी बनेगा, न चोर, लुटेरा, डाकू, बदमाश। यह संसार सदाचारियों का संसार बन जाएगा और भ्रष्टाचार का यहां से खात्मा हो जाएगा। न ही हिन्दु-मुसलमान का फसाद होगा, न मुस्लिम (ईरान) की मुस्लिम (इराक) से लम्बी लड़ाई। न तो कोई सास-बहू से लड़ेगी, न बेटा-बाप से! तब मानव-जाति सुख चैन की नींद सो सकेगी और विश्व का मानव वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा, कलह-क्लेश, लोभ-लालच की बात न करके श्रेष्ठता व प्यार की बात करेगा। ऐसा ही 'मानव' ऐसा ही 'श्रेष्ठ पुरुष' ऐसा ही 'नेक इंसान' बनाना चाहते हैं ऋषि दयानन्द संसार के प्रत्येक व्यक्ति को।

आदर्श कुटीर, ३/४५ए, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-२६

●●

वेदों वाला ऋषि

टेक- ऋषि आये दयानन्द, वेद लेकर।।
कहीं पण्डे और पुजारी, लूटें थे तिलकधारी।
सब काटे म्हारे फन्द, वेद लेकर।।१।।
गये भूल वेद की वाणी, पढ़ कल्मा बने कुरानी।
सब समझाये मतिमन्द, वेद लेकर।।२।।
ना बात किसी की मानी, बने अब्दुल्ला रमज़ानी।
किये वेदपाल श्रीचन्द, वेद लेकर।।३।।
सिख, जैनी, बौद्ध पन्थाई, कहीं फिरते थे ईसाई।
किये सब के मुखड़े बन्द, वेद लेकर ।।४।।
दिया बजा वेद का डंका-दई फूँक पोप की लंका।
कहे स्वर से साम के छन्द, वेद लेकर।।५।।
ना मन्त्र वेद के गाता-मसजिद में बाँग लगाता।
हरे धर्मी के दुःख द्वन्द्व, वेद लेकर।।६।।

-धर्मवीर आर्य धर्मी
कलौंदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भी अण्डा शाकाहारी नहीं होता

● रामनिवास लखोटिया, उपाध्यक्ष : भारतीय शाकाहार परिषद्

पिछले कुछ वर्षों से यह बराबर देखने में आ रहा है कि दूरदर्शन, रेडियो और अन्य प्रचार माध्यमों के कारण शुद्ध शाकाहारी परिवार के कुछ व्यक्ति अण्डों का सेवन करने लगे हैं। विशेषकर वे ऐसे अण्डों का सेवन करते हैं जिन्हें "शाकाहारी" अण्डे के नाम से प्रचार करके लोगों को भ्रमित किया जा रहा है। ऐसे शाकाहारी व्यक्ति इस प्रकार के अण्डों का सेवन करते हुए भी यह समझते हैं कि हम भी शाकाहारी हैं। प्रस्तुत लेख में तथाकथित "शाकाहारी" अण्डे के बारे में अण्डे-उत्पादक कम्पनियों ने प्रचार-प्रसार के माध्यम से जो भ्रमजाल फैलाया है, उसके बारे में सही वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह बताने का प्रयास किया है कि कोई भी अण्डा शाकाहारी होता ही नहीं है और हो ही नहीं सकता।

दो प्रकार के अण्डे :

अण्डे मूलत: दो प्रकार के होते हैं। एक अण्डे वे होते हैं जिनसे बच्चे निकल सकते हैं तथा दूसरे वे अण्डे जिनसे बच्चे नहीं निकल सकते। जिन अण्डों से बच्चे निकल सकते हैं उन्हें निषेचित या फर्टीलाइज्ड एग्ज कहते हैं। ऐसे अण्डे मुर्गा और मुर्गी के संसर्ग में आने से ही होते हैं। दूसरे प्रकार के जो अण्डे होते हैं उन्हें "अनिषेचित" अण्डे या "इनफर्टीलाइज्ड एग्ज" कहते हैं। ये अण्डे भी दूसरे प्रकार के अण्डे की तरह मुर्गी से ही पैदा होते हैं। इन अण्डों को अण्डा-उत्पादक कम्पनियों ने अपने व्यापारिक लाभ के लिए "शाकाहारी" अण्डे या "अहिंसक" अण्डे नामकरण देकर शाकाहारी परिवारों में एक बड़ा भारी भ्रम फैला दिया है। उनके भ्रम के अनुसार ऐसे अण्डे में जीव नहीं होता जबकि यह सर्वथा निराधार है। आइए अब हम वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह जानने का प्रयत्न करें कि तथाकथित शाकाहारी अण्डे या अनिषेचित अण्डे कभी भी शाकाहारी नहीं होते।

वैज्ञानिक तथ्य :

(1) अनिषेचित अण्डे किसी भी प्रकार से शाकाहारी नहीं होते क्योंकि वे न तो पेड़ों पर उगते हैं और न किसी पौधे पर बल्कि वे सब मुर्गी के पेट में से ही उत्पन्न होते हैं। एक वैज्ञानिक प्रयोग के आधार पर यह देखा गया है कि विद्युत् धारा के द्वारा अण्डों को आंका जा सकता है। अनिषेचित अण्डे में निषेचित अण्डे की भांति ही यह विद्युत् धारा होती है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि निर्जीव वस्तु में कभी भी विद्युत् धारा का अंकन नहीं किया जा सकता। भारतवर्ष के विश्व-विख्यात वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र वसु ने पेड़-पौधों में विद्युत् धारा का अंकन करके यह सिद्ध कर दिया है कि वनस्पतियों में भी जीवन होता है। इसी आधार पर यह वैज्ञानिक तथ्य है कि सभी प्रकार के अण्डों में, चाहे वे निषेचित हों या अनिषेचित, उनमें भी जीवन होता है।

(2) किसी भी अनिषेचित अण्डे को निर्जीव मानना सरासर अवैज्ञानिक तथ्य है क्योंकि ऐसे अण्डों को भी निषेचित किया जा सकता है और एक नये जीव की उत्पत्ति के रूप में वे प्रकट हो सकते हैं। एक सर्वमान्य बात जो सभी जानते हैं, वह यह है कि संसार में कोई भी निर्जीव वस्तु निषेचित नहीं की जा सकती और न ही उससे किसी जीव की उत्पत्ति हो सकती है। लेकिन अनिषेचित अण्डे से कुछ उपकरणों के प्रयोग के द्वारा नये जीव की उत्पत्ति होना सम्भव है।

(3) अधिकतर अनिषेचित अण्डों के बारे में उन्हें शाकाहारी कहने के लिए यह तर्क दिया जाता है कि ऐसे अण्डे मुर्गा और मुर्गी के संसर्ग में आए बिना ही कृत्रिम तरीकों से उत्पन्न होते हैं। लेकिन विज्ञान ने यह साबित कर दिया है कि किसी संसर्ग के बिना भी अण्डे उत्पन्न होते रहते हैं। इसी प्रकार "टैस्ट टयूब-बेबी" के द्वारा उत्पन्न प्राणी निर्जीव नहीं गिने जा सकते।

(4) अनिषेचित अण्डों का दूसरा हिस्सा शुक्राणु होते हैं जो सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के द्वारा नीचे चलते-फिरते नजर आते हैं। यही शुक्राणु अण्डाशय अर्थात् ओवरीज से चलकर मुर्गी के गर्भाशय अर्थात् युटर्स तक पहुंचते हैं और इन अण्डों में क्रोमोसोम्स की संख्या निषेचन के बाद दुगुनी हो जाती है, तो क्या निषेचित अण्डे निर्जीव कहे जा सकते हैं।

(5) अनिषेचित अण्डों की तुलना स्त्री में रज:स्राव से की जा सकती है। जिस प्रकार स्त्री के मासिक धर्म होता है, उसी प्रकार मुर्गी के भी यह धर्म अण्डों के रूप में होता है। यह अण्डा मुर्गी की आंतरिक गंदगी का परिणाम है। अण्डों के मोटे छोर पर एक वायु-क्षेत्र होता है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह क्षेत्र अण्डे की दो कवच-झिल्लियों को अलग करता है और भ्रूण को श्वास की सुविधा देते हुए बाहरी दुनिया से जोड़ता है। यह सभी प्रकार के अण्डों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में होता है। अण्डों के गर्भ से बाहर आते ही उसमें विदलन (क्लीवेज) शुरू हो जाता है। किसी भी अण्डे की रचना में जब हम उसकी सभी स्थितियों की समीक्षा करते हैं तो यह बात शत-प्रतिशत सिद्ध हो जाती है कि किसी भी प्रकार का अण्डा हो, वह सजीव या जीवन-युक्त होता है।

(6) "शाकाहार क्रान्ति" के सम्पादक डॉ॰ नेमीचन्द ने लिखा है कि सन् 1971 में मिशीगन यूनिवर्सिटी के अमेरिका के वैज्ञानिक ने यह सिद्ध किया था कि संसार का कोई भी अण्डा निर्जीव नहीं है चाहे वह निषेचित हो या अनिषेचित। इसी वर्ष श्री फिलीप जे. स्कैम्बल ने अपनी विख्यात पुस्तक "पोल्टरी फीड्स एंड न्यूट्रीशन" के पृष्ठ 15 पर साफ़-साफ लिखा है--"अण्डा बहुत नाजुक होता है। यह प्रतिकूल वातावरण के प्रति भी संवेदनशील होता है। वस्तुत: अण्डे की उत्पत्ति बच्चे के सर्जन के निमित्त होती है, मनुष्य की खुराक के लिए नहीं। अण्डे में हवा के आने-जाने की नैसर्गिक व्यवस्था है। सफेद खोल के अन्दर बने सूक्ष्म छिद्रों में होकर ऑक्सीजन अन्दर आती है और चर्बी की भाप कार्बन डाइआक्साइड को बाहर फैंकती है, जिससे अण्डे का भ्रूण जीवित होकर विकास करता है। यही बात अन्य फर्टीलाइज्ड अण्डों पर भी लागू होती है।

(7) श्वास लेने की क्रिया जीवन की निशानी है। प्रत्येक अण्डे के ऊपरी भाग पर लगभग 15,000 सूक्ष्म छिद्र होते हैं जिनसे अण्डे का जीव सांस लेता है। और, जब कोई अण्डा श्वास लेना बन्द करता है तो वह अण्डा सड़ने लगता है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वह चाहे निषेचित हो या अनिषेचित, उसमें जीव होता है।

(8) क्योंकि गर्भ में अण्डे का क्रमिक विकास होता है और अण्डा ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, त्यों-त्यों नितम्ब की हड्डियों में जगह बनती जाती है। सजीव अण्डे और निषेचित अण्डों के भीतर का प्रवाह एक सा ही होता है। उस अण्डे के पोषण के लिए मुर्गी को मांसाहार करवाना पड़ता है। इतना करवाने के बाद मुर्गी जिस अण्डे को जन्म देती है वह अण्डा "शाकाहारी" नहीं कहलाया जा सकता। **अब भारत सरकार की "इंडियन मार्केटिंग स्टेण्डर्डस इंस्टिट्यूट" ने यह घोषित कर दिया है कि अण्डा शाकाहारी नहीं है।**

क्रूरतापूर्वक अण्डों का उत्पादन :

जिन अण्डों को अनिषेचित या शाकाहारी अण्डे कहा जाता है यदि उसके उत्पादन की विधि का प्रचार लोगों में किया जाए और उन्हें मालूम हो जाए कि बड़ी क्रूरतापूर्ण प्रणाली के द्वारा ऐसे अण्डों का उत्पादन होता है तो उनकी समझ में यह आ जाएगा कि ऐसे अण्डे कदापि शाकाहारी नहीं हो सकते। आजकल इस प्रकार के अण्डों का अधिकाधिक उत्पादन करने के लिए उन्हें मुर्गी फार्मों में कृत्रिम तरीकों के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। सबसे पहले मुर्गी फार्मों में मादा बच्चों को अलग-अलग कर लिया जाता है। मादा बच्चों को शीघ्र जवान होने के लिए एक खास खुराक दी जाती है और उन्हें 24 घण्टे तेज प्रकाश में रख कर सोने नहीं दिया जाता है ताकि वे दिन-रात खो-खो कर जल्दी ही रज:स्राव करने लगें और अण्डा देने लायक हो जाएं। अमेरिका के सुप्रसिद्ध लेखक जॉन राबिन्स ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक "डाइट फॉर ए न्यू अमेरिका" में इस प्रकार की फैक्ट्रियों में उत्पादित किए हुए पिंजड़ों के बारे में लिखा है कि इन पिंजड़ों में इतनी अधिक मुर्गियां भर दी जाती हैं कि वे पंख भी नहीं फड़फड़ा सकती हैं और तंग जगह के कारण वे आपस में चोंचें मारती हैं, जख्मी होती हैं, गुस्सा करती हैं और कष्ट भोगती हैं। जब मुर्गी को 24 घण्टे लोहे की सलाख पर बैठना पड़ता है और ऐसी स्थिति में ही एक विशेष प्रकार की मशीन से एक ही रात में 3 हजार मुर्गियों की चोंच काट दी जाती है और गर्म-गर्म आग से तपते हुए लाल औजारों से मुर्गी के पंख भी काट दिए जाते हैं तो ये जल्दी से अण्डा उत्पन्न करने का तरीका कितना हिंसात्मक है, यह समझा जा सकता है।

मुर्गियों को दी जाने वाली खुराक में मछली का चूर्ण तो डालना ही पड़ता है। इतना करने के बाद जब मुर्गी अण्डे को जन्म देती है तो वह अण्डे को सेने के लिए उन तंग पिंजड़ों में भी दौड़ती है। पर मुर्गी उस अण्डे तक नहीं पहुंच पाती क्योंकि ऐसे पोल्ट्री फार्म में ढलवे निर्मित पटिये की ऐसी व्यवस्था रहती है कि जिससे अण्डा पैदा होते ही उस पटिये पर से सीधा नीचे खिसक जाता है और इस चालाकी से जनता अनभिज्ञ रहती है। जैसे--हर बार विफल प्रसूति होने पर मृत बच्चों को जन्म देने वाली किसी औरत से पूछा जाए कि उसकी मानसिक स्थिति क्या होती है। बस ऐसी ही स्थिति उस मुर्गी की होती है। उस मुर्गी को मातृत्व से वंचित रखना कितनी क्रूरता है, यह साधारणत: समझा जा सकता है। चूंकि वह मुर्गी अपना अण्डा नहीं ले सकती। इसलिए वह अगला अण्डा जल्दी देती है और अधिक से अधिक और जल्दी से जल्दी, ज्यादा से ज्यादा अण्डे मिलें, इस लालसा से मुर्गी को अण्डे सेने का मौका नहीं दिया जाता और वह जिंदगी भर पिंजरे की कैद में रहती है। चल फिर न सकने के कारण उसकी टांगें बेकार हो जाती हैं। जब उसकी उपयोगिता घट जाती है तो सभी जानते हैं कि उसे कत्लखाने भेज दिया जाता है। अब हम इससे सहज ही में समझ सकते हैं **कि ऐसे अण्डों को शाकाहारी** कैसे कहा जा सकता है। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिर्मय हो वसुधा सारी

फैले वेदों का प्रकाश फिर,
जगे धरा पर नवल आश फिर,
ऋषियों के निर्देशन में नव
हो भारत का शुचि विकास फिर।

वैदिक धर्म ध्वजा लहराएं,
भारत के नर देव कहाएं,
पुनः पठन-पाठन वेदों का-
हो भू पर, नव स्वर गहराए।

आर्य बनें वसुधा के वासी,
जाग्रत हों सब भूमि निवासी,
सत्य धर्म के लिए लड़ें हम-
निर्भय होकर भारतवासी।

दीप निरन्तर जले ज्ञान का,
आवाहन हो नव विहान का,
धर्म समन्वित अन्वेषण हो-
वसुन्धरा पर नव विज्ञान का।

ज्योतिर्मय हो वसुधा सारी,
नष्ट विनष्ट रजनी हो कारी,
सत्यं शिवम् सुन्दरता पूरित
जीवन-पद्धति बने हमारी।।

धार्मिक कौन बन सकता है? और उसका लाभ

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।
य० ४०।२।।

जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि वह हम को सदा सब ओर से देखता है, यह जगत् ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है, इस प्रकार व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा का निश्चय करके भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं किया चाहते वे धर्मात्मा होकर इस लोक के सुख और परलोक में मुक्तिरूप सुख को प्राप्त करके सदा आनन्द में रहें। **स्वामी दयानन्द भाष्य**

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः,
नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः,
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।

फल के लगने पर वृक्ष झुक जाते हैं, नये-नये जलों से बादल अधिक नीचे हो जाते हैं। इसी प्रकार समृद्धियों के होने पर सत्पुरुष विनीत हो जाते हैं। परोपकारी सज्जनों का ऐसा ही स्वभाव होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष ''दयानन्दसन्देश'' पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं-

४४८. श्री ईश्वरसिंह आर्य मु॰ पो॰ कौल मोहल्ला बोदे जि॰ कुरुक्षेत्र (हर॰)
४४९. श्री बलबीरसिंह S/o श्री हरदयालसिंह ग्राम कतलहेड़ी पो॰ खास जि॰ करनाल (हर॰)
४५०. श्री सत्यपाल जी आर्य S/o श्री जुगतिराम ग्राम काकड़ोली सर रा जि॰ भिवानी (हर॰)
४५१. श्री बाबूलाल जी आर्य सोनारों की बड़ी गवाड़ बीकानेर (राज॰)
४५२. श्री बहादुरमल 122 राजविलास कालोनी, बीकानेर (राज॰)
४५३. श्री इन्द्रसिंह आर्य मु॰पो॰ रामपुर कुंडल जि॰ सोनीपत (हर॰)
४५४. श्रीमती स्नेह मेहरा डी॰डी॰ए॰ फ्लैट नं॰ 8, S.F.S. मंगला अपार्टमेंट ब्लाक जी, कालका जी, नई दिल्ली
४५५. श्रीमती सरलादेवी नानपारा हाउस लढौर मंसूरी (U.P.)
४५६. श्री प्रवीणकुमार जी 558, 559 तुराबनगर, गाजियाबाद (U.P.)
४५७. श्री मंत्री जी आर्यसमाज मंदिर, दयानन्द मार्ग, मु॰पो॰ कारंजा (लाज) जि॰ आकोला (MR)
४५८. श्री मंत्री जी आर्यसमाज मंदिर, चन्द्रपुरी, गाजियाबाद (U.P.)
४५९. श्री सुधांशुदेव पुत्र श्री पं॰ रूपचन्द दीपक आर्यसमाज मंदिर, श्रृंगार नगर, आलम बाग, लखनऊ
४६०. श्री अरुण प्रतापराय शर्मा S/o श्री पार्थराय शर्मा कार्यपालक अभियन्ता (P.HED), होटल पार्क व्यू के पीछे, पूर्वी रमवा रोड, आरा जि॰ भोजपुर (बिहार)
४६१. श्री सहशरपाल जी (बागवाले) ग्राम शेरपुर पो॰ निवाड़ी वाया मोदीनगर, जि॰ गाजियाबाद (U.P.)
४६२. श्री पांचीलाल नत्थू आर्य मु॰पो॰ कुवड़िया वाया मण्डलेश्वर जि॰ प॰ निमाड खरगोन (MP)
४६३. श्री ज्ञानेश्वर जी चौधरी B-84 D.S. I.D.C. कम्पलेक्स, फेस II ओखला औद्योगिक क्षेत्र, नई दिल्ली
४६४. श्रीमती चित्रा चौधरी सी-34, फ्रेंड्स कालोनी ईस्ट, नई दिल्ली
४६५. श्री बद्रीनारायण S/o श्री भानुप्रताप राठौर सब्जी मंडी रोड, बांरा (राज॰)
४६६. आर्यसमाज स्वामी श्रद्धानन्द भवन, विश्वेश्वरपुरम बंगलौर-4 (कर्नाटक)
४६७. श्री केसरसिंह संखियान राज॰ मा॰ विद्यालय ददिरीयारा वाया चौवारी जि॰ चम्बा

—धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं॰ DL 11315/95
आर/ आर/ नं॰ २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/3/95

मार्च १९९५

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं॰
यू (डी॰एन॰) १४४/९५
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/95

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु॰ ४०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान :- **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

श्री सेवा में
ग्राम
डा॰
जिला

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जून, १९९५

वर्ष २३ : अंक ८
दयानन्दाब्द : १७१
विक्रमसंवत् : ज्येष्ठ, २०५२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९६

संस्थापक : **स्व० दीपचन्द आर्य**
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
"दयानन्दसन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- स्वर्ग धरती को बनाएं — २
- वेदोपदेश — ३
- महर्षि-दयानन्द की अपूर्व देन : वेद पढ़ने का अधिकार सब को है — ४
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियां — ५
- महर्षि दयानन्द के शिक्षा-दर्शन पर कुठाराघात करने का दुस्साहस — ६
- महर्षि दयानन्द की जन्मभूमि टंकारा में-'महर्षि की मान्यताओं की हत्या — ८
- चेत रे मानव — १०
- मुझको तुम पहचान न पाये — ११
- प्रेम का पलना झूल — ११
- वसंत पंचमी पर्व पर सरस्वती की मूर्तिपूजा क्यों? — १२
- वेदों में चार्वक, बौद्ध तथा जैन दर्शन के बीज नहीं — १३
- आमंत्रित हैं आइये, पावन आर्य समाज — १६
- वेदों में विभिन्न सम्प्रदायों की कल्पना क्या सत्य है? — १७
- सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण की अन्त्य-परीक्षा (३) — २१
- होटलों का शाकाहारी भोजन ९० प्रतिशत मांसाहारी होता है — २४

'सत्यार्थ प्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ रुपये और सजिल्द सोलह सौ रुपये, सैंकड़ा में प्राप्त करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग धरती को बनाएं

(राधे श्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति मुसाफिर खाना, सुल्तानपुर)

सत्य पथ पर हम चलें सम्पूर्ण जगती को चलाएं।
वेद की गंगा बहाकर, स्वर्ग धरती को बनाएं।।

फिर धरा पर प्रति ध्वनित हो, धीरती के भाव सारे,
जय मनुजता के लगे फिर, भूमि पर ये दिव्य नारे,
प्रेम-करुणा-सौभ्यता से ही, भरे हों उर हमारे,
भाव हो उज्जवल सभी के, प्रेरणादायक सुन्यारे,

श्रोत समता सदाशयता का धरा पर हम बहाएं।
वेद की गंगा बहाकर, स्वर्ग धरती को बनाएं।।

चेतना के स्वर सभी के, आज अन्तस में जगे,
गूढ़तम के मेघ काले, वायुमण्डल से भगे,
कार्य परहित के हमें फिर, लाभकारी ही लगे,
अनयकारी तत्व दूषित, अब हमें फिर न ठगे,

पुण्य सारी ऋषि कथाएं, पुनः जग को हम सुनाएं।
वेद की गंगा बहाकर, स्वर्ग धरती को बनाएं।।

हम करे उद्योग ऐसा, वेद पथ गामी धरा हो,
धर्म के उत्कर्ष हित ही, भूमि सारी उर्बरा हो,
छल-कपट का विष कलुष सब ज्ञान की ही शर्करा हो,
वेद की नव ज्योति पाकर, आर्य सारी बंसुधरा हो,

ओ३म् की पावन पताका, हम व्रती बन लहलहाएं।
वेद की गंगा बहाकर, स्वर्ग धरती का बनाएं।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है-महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- वेद के पवित्र ज्ञान को पढ़ने व सुनने का प्रत्येक मानव का समान अधिकार है। जैसे भगवन् के बनाये वायु, जल आदि पर सबका अधिकार है, वैसे ही वेद के ज्ञान पर भी है।

लौगाक्षिः ऋषिः। ईश्वरः देवता। स्वराउत्यष्टिः छन्दः। गान्धारः स्वरः।।

अकेश्वरो सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो वेद-पठन श्रवणाधिकारं ददातीत्याह।।

अब ईश्वर सब मनुष्यों के लिए वेद के पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है, यह उपदेश किया जाता है।।

ओ३म्- **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु।।**

(यजु० २६।२)

पदार्थः- (यथा) येन प्रकारेण (इमाम्) प्रत्यक्षीकृताम् (वाचम्) वेदचतुष्टयीं वाणीम् (कल्याणीम्) कल्याणनिमित्ताम् (आवदानि) समन्तादुपदिशेयम् (जनेभ्यः) मनुष्येभ्यः (ब्रह्म राजन्याभ्याम्) ब्रह्म=ब्राह्मणश्च राजन्यः क्षत्रियश्च ताभ्याम् (शुद्राय) चतुर्थवर्णाय (च) (अर्याय) वैश्याय अर्थः स्वामी वैश्ययोरिति पाणिनीसूत्रम् (च) (स्वाय) स्वकीयाय (च) (अरणाय) सल्लक्षणाय प्राप्तायान्त्यजाय (प्रियः) कमनीयः (देवानाम्) विदुषाम् (दक्षिणायै) दानाय (दातुः) दानकर्त्तुः (इह) अस्मिन् संसारे (भूयासम्) (अयम्) (मे) मम (कामः) (समृध्यताम्) वर्द्धताम् (उप) (मा) माम् (अदः) परोक्षसुखम् (नमतु) प्राप्नोतु।।

सपदार्थान्वयः- हे मनुष्याः। (यथा) येन प्रकारेण परमेश्वरो (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्रह्म=ब्राह्मणश्च राजन्यः=क्षत्रियश्च ताभ्याम् (अर्याय) वैश्याय (शूद्राय) चतुर्थवर्णाय च (स्वाय) स्वकीयाय (चारणाय) सल्लक्षणाय प्राप्तायान्ताजाय च (जनेभ्यः) मनुष्येभ्यः (इह) अस्मिन् संसारे (इमाम्) प्रत्यक्षीकृताम् (कल्याणीम्) कल्याणनिमित्तां (वाचम्) वेद चतुष्टयीं वाणीम् (आवदानि) समन्ताद उपदिशेयं तथा भवन्तोऽप्यावदन्तु। (यथा) येनप्रकोरण अहं (दातुः) दानकर्त्तुः (देवानाम्) विदुषाम् (दक्षिणायै) दानाय (प्रियः) कमनीयः (भूयासम्) (मे) मम अयं (कामः) (समृध्यताम्) वर्द्धताम् (मा) माम् (अदः) परोक्षासुखम (उपनमतु) प्राप्नोतु, तथा भवन्तोऽपि भवन्तु, तद्भवतामप्यस्तु।

भाषार्थः- हे मनुष्यो! (यथा) जेसे मैं ईश्वर (ब्रह्म राजेन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) चतुर्थवर्ण शूद्र (च) और (स्वाय) अपने (चारणाय) उत्तम लक्षण वाले, समीप प्राप्त अन्त्यन (च) और (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण करने वाली (वाचम्) चार वेद रूप वाणी का (आवदानि) सब ओर उपदेश करता हूँ, वैसे आप लोग भी उपदेश किया करें।

(यथा) जैसे मैं (वातुः) दान करने वाले पुरुष की तथा (देवनाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दान के लिये (प्रियः) पिय (भूयासम्) होता हूँ, तथा (मे) मेरी (अयम्) यह (कामः) कामना (समृध्यत[illegible] [illegible]ी है, (मा) मुझे (अदः) परोक्ष सुख [illegible] होता है, वैसे आप लोग भी हों [illegible] लोगों को भी प्राप्त हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि-दयानन्द की अपूर्व देन=वेद पढ़ने का अधिकार सब को है

इस संसार में महर्षि के आने से पूर्व वेदों का ज्ञान था, चारों वेदों को कण्ठस्थ करने वाले पण्डित भी थे, परन्तु यह पवित्र ज्ञान पौराणिक मिथ्या मान्यताओं की सघन छाया में धूमिल हो चुका था, जिसके कारण परमात्मा का शश्वत उपदेश भी भ्रान्तिपूर्ण हो चुका था। इस पवित्र वाणी को पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार जन्ममूलक ब्राह्मण वर्ग का ही रह गया था। 'स्त्री-शूद्रों नाधीयताम्' इत्यादि उक्तियों का बोल-बाला होने से शूद्रों तथा स्त्री जाति को वेद की शिक्षा से बहिष्कृत कर दिया था।

जब महर्षि ने वेदों का मन्थन किया और विद्वानों के समक्ष यह मन्त्र (यजु॰ २६।२) प्रस्तुत किया तो अपने आपको वेदों के पारंगत मानने वाले किंकर्त्तव्यमूढ ही हो गये कि वेद तो स्वयं ही मानवमात्र को पढ़ने का अधिकार दे रहा है। यह मन्त्र ऐसा है, जिसका अर्थ कोई भी विद्वान् आज तक अन्यथा नहीं कर सका और नहीं भविष्य में कर सकेगा। महर्षि ने स्पष्ट कहा–

(१) सत्यार्थप्रकाश में–देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्री आदि और अति शूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है।। (स॰प्र॰३समु॰)

(२) ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में–

(प्रश्न) (जनेभ्यः) इस पद से द्विजों ही का ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि जहाँ कहीं सूत्र और स्मृतियों में पढ़ने का अधिकार लिखा है, वहाँ केवल द्विजों ही का ग्रहण किया है।

(उत्तर) यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि जो ईश्वर का अभिप्राय द्विजों ही के ग्रहण करने का होता तो मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार कभी न देता जैसा कि इस मन्त्र में प्रत्यक्ष विधान (ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय) अर्थात् वेदाधिकार जैसा ब्राह्मण वर्ण के लिये है, वैसा ही क्षत्रिय, अर्य्य=वैश्य, शूद्र, पुत्र भृत्य और अति शूद्र के लिए भी बराबर है। क्योंकि वेद ईश्वर प्रकाशित है।

(अयं में कामः समृध्यताम्) जैसे यह वेदों का प्रचार रूप मेरा काम संसार के बीच में यथावत् प्रचारित होता है, इसी प्रकार की इच्छा तुम लोग भी किया करो जिससे उक्त विद्या आगे को भी सब मनुष्यों में प्रकाशित होती रहे।। ●●

(पृष्ठ ३ का शेष)

भावार्थः– अत्रोपमालङ्कार ! परमात्मा सर्वान् मनुष्यान् प्रतीदमुपदिशतीयम् वेदचतुष्टयी वाक् सर्वमनुष्याणां (हिताय मयोपदिष्टा, नाम कस्याप्यनधिकारोऽस्तीति। यथा हं पक्षपातं विहाय सर्वेषु मनुष्येषु वर्त्तमानः सन् प्रियोऽस्मि तथा भवन्तोऽपि भवन्तु। एवङ्कृते युष्माकं सर्वे कामाः सिद्धा भविष्यन्तीन्ति।।

भावार्थः– इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति यह उपदेश करता है कि चार वेद रूप वाणी का सब मनुष्यों के हित के लिये मैंने उपदेश किया है, इसमें किसी का अनधिकार नहीं है अर्थात् सब का अधिकार है। जैसे मैं पक्षपात छोड़कर सब मनुष्यों में वर्त्तमान रहता हुआ प्रिय होता हूँ, वैसे आप लोग भी हों। ऐसा करने से तुम्हारी सब कामनायें सिद्ध होंगी, ऐसा निश्चय है।।

('दयानन्द यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर' से उद्धृत)
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव)** ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

मेरे पास आर्य समाजों से छपने वाली अनेक पत्रिकायें आती रहती हैं। सबको अच्छी तरह पढ़ता रहता हूँ। किन्तु जैसा कार्य 'दयानन्द-सन्देश' कर रहा है, वैसा दूसरे लोग नहीं कर रहे हैं। नवम्बर ९४ का 'संस्कार-भास्कर' नामक विशेषांक मुझे बहुत अच्छा लगा।

८ मार्च १९९५

भोपाल सिंह श्रवण कुमार आर्य
कृषिकार्य, सिरसा (हरियाणा)

अप्रैल ९५ का 'दयानन्द-सन्देश' प्राप्त हुआ। इसमें सभी लेख रोचक व ज्ञानवर्धक लगे। शिव और शिवरात्री का प्रतीकात्मक विवेचन तथा सिर पर चोटी रखना वैज्ञानिक है ये दोनों लेख सर्वाधिक अच्छे लगे। इस अंक को जिसने भी पढ़ा, सबसे प्रशंसा की, आप से एक प्रार्थना है कि ऐसे लेखों को दैनिक पत्रों में भी छपवाने का प्रयास किया जाये तो अधिक लाभ होगा।

१३।४।९५

उदयरंगन सिन्हा,
सदस्यसंख्या ४३४

मुझे एक वर्ष के लगभग 'दयानन्द-सन्देश' की सदस्यता ग्रहण किए हो गया है। मुझे यह पत्रिका ज्ञानवर्धक तथा भ्रान्ति-निवारक लगी है। मार्च ९५ के अंक में अण्डा शाकाहारी नहीं होता है। यह बात बहुत ही यथार्थ लगी। आप ऐसे लेखों को जो भ्रान्ति दूर करते हैं, अवश्य छापा करें। धन्यवाद

१३-३-९५

परमेश्वरदीन भारती
लेखपाल, हरदोई

यहाँ से प्रकाशित 'संस्कार-भास्कर' देखने को मिला। इस विशेषांक का प्रकाशन कर आपने आर्यजगत् पर बड़ा उपकार किया है। विद्वत्तापूर्ण सरल व्याख्या को पढ़कर आर्य पुरोहितों को पर्याप्त ज्ञान की सामग्री मिलेगी। निस्सन्देह यह ग्रन्थ अद्वितीय है।

१-३-९५

शक्तिप्रकाश आर्य
फतेहबाद, आगरा

'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका में 'अयंत इदम्' मन्त्र के विषय में श्री भवानी लाल जी भारतीय का लेख पढ़ा और बहुत ही विद्वतापूर्ण लगा। परन्तु उन्हें यह भी ध्यान रखना चाहिए था कि सभी गुरुकुलों में रघुराज शास्त्रियों का निवास नहीं। सम्भवतः भारतीय जी ने सारी के सारी गुरुकुलीय शिक्षा पर शक करके लिख दिया है जो कि सहनीय नहीं है।

१५।३।९५

ब्र॰ युक्तानन्द,
गुरुकुल कालवा, जीन्द

'परोपकार' पत्रिका के अप्रैल ९५ के अंक में श्री मनोहर जी विकलंकार का लेख पढ़ा, जो कि बहुत ही अटपटा लगा। वेद के मन्त्रों में चार्वक दर्शन की बातें बहुत ही चिन्ता का विषय है। जैन दर्शन की बातें का भी उल्लेख वेद में बताना बहुत ही विचित्र स्थिति है। इसके बाद कुरान, पुराण, ईसा के दर्शन बातें भी होनी चाहिए। कृपया आप शंका समाधान कर भ्रान्ति दूर करें।

रामकुमार वर्मा
नरता, मीनमाल, जि॰ जालोसर

'परोपकारी' पत्र में अप्रैल ९५ के अंक में श्री मनोहर जी का **'वैदिक दर्शन का परमलक्ष्य'** लेख पढ़ा बहुत ही विचित्र लगा। हमारी तो समझ में ही नहीं आया कि मनोहर जी ने लिखते समय कैसा दृष्टिकोण रखा होगा? मैं तो विद्वान् नहीं, वरना तीव्र समीक्षा करता ऐसे भ्रामक लेख की। कृपया समीक्षा अवश्य करें।

भावेश मेरजा
टाउनशिप १२-१३, नर्मदा नगर, भरुच (गुजरात)

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द के शिक्षा-दर्शन पर कुठाराघात करने का दुस्साहस

वेदादि सत्यशास्त्रों के अनुसार महान् शिक्षाविद महान् महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है–

(क) विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लडके और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये। जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों, तो कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें।

(ख) स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावें। अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषक, विषयकथा परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें।

(ग) पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम व नगर रहें।

(घ) सब को तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हों, चाहे दरिद्र की सन्तान हों। सबको तपस्वी होना चाहिये। उनके माता-पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता-पिताओं से मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र व्यवहार एक दूसरे से कर सकें।

(ङ) इसमें राज नियम और जाति नियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर में रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें।

(च) जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हो, उनसे शिक्षा न दिलावें।

महर्षि के इन शिक्षा-सूत्रों का अध्ययन कर स्वनामधन्य अमरहुतात्मा। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने कांगडी की स्थापना की थी। परन्तु गुरुकुल के इस महत्त्वपूर्ण नियम का पलन पूर्णतः होता रहा है। परन्तु आज की विषम परिस्थिति में उपरोक्त नियमों की अवहेलना करने के लिये कैसे-कैसे प्रयास हो रहे हैं, वे अत्यन्त दूषित एवं भयावह हैं। एक विद्वान् लेखक लिखते हैं–

मंगलवार, ११ अप्रैल १९९५ के दैनिक के मुख पृष्ठ पर यह समाचार पूर्व प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई के निधन का समाचार साथ छपा है **"गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय में छात्राओं का प्रवेश जुलाई से।"** इसे पढ़कर अत्यधिक पीड़ा हुई जैसे की देसाई के निधन के साथ साथ ही महर्षि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द की भी हत्या कर दी। यह निन्दनीय कार्य कुछ राजनैतिक भाजपा, ई कां॰, जनता दल, समतापार्टी के गणमान्य नेताओं, उनके अनुयायियों व छात्रों के उग्र प्रदर्शन के आगे सीनेट को झुकना पड़ा। १५ जुलाई ९५ से प्रारम्भ होने वाले सत्र में विश्वविद्यालय में सभी विषयों में छात्राओं के प्रवेश दिये जाने की घोषणा कुलपति सूर्यदेव को बीती रात्रि लगभग १२ बजे सर्वदलीय संघर्ष समिति के सम्मुख करनी पड़ी।"

इससे स्पष्ट है इस मांग में छात्र नेता, सभी पार्टियों के राज नेता सम्मिलित हैं। इन लोगों ने बलपूर्वक छात्राओं के प्रवेश के लिए अधिकारियों को बाध्य करने का यत्न किया है। ऐसा करते हुए पुस्तकालय जलाने तक का यत्न किया गया है जहाँ विश्वविद्यालय की सीनेट की बैठक चल रही थी, अखबार लिखता है–

"उत्तेजित भीड़ ने लाइब्रेरी के चारों ओर घेरा डाल दिया और सभी सीनेटरों को बन्धक बना लिया। प्रशासन के लाख समझाने पर भी उग्रभीड़ वहां डटी रही और लगातार नारेबाजी करती रही। लाईब्रेरी में बन्धक बने हुए लगभग २८ सीनेटरों का भोजन पानी बन्द कर दिया गया। एक बार तो नौबत यहाँ तक आ गयी कि उग्र भीड़ मिट्टी का तेल छिड़क कर लाइब्रेरी में आग लगाने को तैयार हो गई।"

प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है उग्रभीड़ ने पुस्तकालय के दरवाजे तोड़ दिये गुण्डे लोगों ने बैठक में घुस कर सदस्यों के साथ हाथापाई की स्वामी ओमानन्दजी महाराज पर गुंडों ने आक्रमण किया तो पास बैठे सदस्यों ने आगे बैठ कर बचाव किया। ये लोग महिलाओं के साथ अभद्र एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्लील हरकतें करने से बाज नहीं आये गुण्डों ने जो कुछ किया वह उनके अनुरूप था परन्तु इन गुण्डों के साथ स्थानीय एम०एल०ए० उनका नेतृत्व कर रहे थे इस झगड़े में पुलिस को बुलाया गया परन्तु पुलिस मूक दर्शक बनी रही उनके साथ आये मजिस्ट्रेट गुण्डों के साथ दिन भर पान खाते घूमते रहे ऐसी परिस्थिति में आप किस से न्याय और औचित्य की आशा कर सकते हैं। यह परिस्थिति आर्य समाज के लिए चुनौती है। क्या इसका मुकाबला करने का साहस हम कर सकेंगे। इसमें तात्कालिक उपाय के रूप में गुरुकुल कांगडी और सम्बद्ध सभाओं के अधिकारियों का दायित्व है वे स्थानीय दोषी तत्त्वों के विरुद्ध कार्यवाही करें, सरकार और प्रशासन को व्यवस्था के लिए बाध्य करें, गुण्डों को महिलाओं की शिक्षा के नाम पर मनमानी करने की छूट नहीं दी जा सकती।

स्थिति यहाँ तक कैसे पहुंची? यह समस्या आकस्मिक नहीं है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय है वहाँ पर पढ़ने वालों और कार्य करने वालों को विश्वविद्यालय की सुविधाएँ और लाभ प्राप्त हैं। पहले गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी आय का बड़ा साधन होने के कारण यह संस्था विवादों में फंसी रहती थी परन्तु जब वे सरकार ने इसे विश्वविद्यालय की मान्यता प्रदान की है तब से वहाँ कार्य का अवसर प्राप्त करने और अधिकारी बनने का विशेष आकर्षण हो गया है जिसके परिणाम स्वरूप अनेक पार्टियां बन गई हैं और सब अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए संघर्षरत है। इसे संघर्ष में सिद्धान्त का स्थान उपयोगी व्यक्ति ने ले लिया है: हर पार्टी अपने और काम के व्यक्ति को अपने लाभ में भागीदार बनाना चाहती है। इस प्रवृत्ति के चलते विश्वविद्यालय के अधिकांश कर्मचारियों का सिद्धान्त से कोई लेना देना नहीं है। उन्हें अवसर मिला है क्योंकि उन्होंने कीमत दी है वे चाहते हैं यह कीमत अधिक और अच्छी तरह वसूल की जा सकती हैं यदि महिलाओं को भी इसमें प्रविष्ट होने का अवसर मिले। जब छात्राओं का प्रवेश होगा तब प्राध्यापिकाओं का भी होना अनिवार्य होगा। फिर और महिला कर्मचारी एवं अधिकारियों के होने में आपत्ति ही क्या हो सकती है। तब गुरुकुल एक सैद्धान्तिक सन्दर्भ से जुड़ी संस्था न होकर अन्य संस्थाओं की तरह सामान्य संस्था होगी और सिद्धान्त की बाधायें दूर होने से लाभ के अवसर अधिक मिल सकेंगे। ये वास्तविक कारण हैं। एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार जो घटना घटी है उसमें मूलकारण संस्था के कर्मचारी ही हैं जिन्हें सिद्धान्त में कोई रुचि नहीं है उन्होंने, सीनेट के कुछ सदस्यों को सहशिक्षा के लिए तैयार कर लिया और इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न किया जिसमें सभा के पास सहशिक्षा को मान्यता देने के अतिरिक्त कोई उपाय शेष न रहे परन्तु सभा में ऐसे निष्ठावान सदस्य भी हैं जिन्होंने सभा में घोषणा कर दी गुरुकुल में सह शिक्षा प्रस्ताव उनकी मृत्यु पर ही पारित किया जा सकता है इस परिस्थिति में हरिद्वार की स्थानीय योगी फार्मेसी के अध्यक्ष डा० अविनाश ने १५ बीघा अपनी भूमि पास के ग्राम जगजीतपुर में देने की घोषणा की जहाँ पर महिलाओं के लिए शिक्षा की पृथक् व्यवस्था की जा सके और इस कार्य के लिए पंजाब के सदस्यों ने आर्थिक सहायता देने की घोषणा की है।

इससे तत्काल मामला शान्त भले ही हो परन्तु यह समस्या का समाधान नहीं है वस्तुस्थिति में सरकार विश्वविद्यालय को सहशिक्षा के लिए दोहरा प्रबन्ध प्रत्येक विषय में करने की अनुमति दे यह सम्भव नहीं लगता क्योंकि सामान्य कक्षाओं मे जहाँ अपेक्षित छात्र संख्या नहीं वहां पर अतिरिक्त व्यवस्था का औचित्य क्या हो सकता है।

आर्यसमाज के लिए चिन्तन का विषय है सिद्धान्त के बिना आर्यसमाज का अस्तित्व कैसे रह सकता है और उसकी उपयोगिता क्या शेष रहेगी, आज भी इसका उपाय केवल सैद्धान्तिक दृढ़ता ही है जो सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्तियों में संभव हो सकती है जब हम तात्कालिक तुच्छ स्वार्थो के लिए सिद्धान्तहीन व्यक्तियों को अपने अधिकारी बनाते रहेंगे तो इस प्रकार का दण्ड भोगने के लिए तैयार रहना होगा। इस कार्य को सम्पन्न करने वाले प्रेरणा देने वाले लोगों की भर्त्सना की जानी चाहिए अपराधियों को दण्डित किया जाना चाहिए। क्योंकि मूर्खो की अधिकता तत्त्व के निर्णय का आधार नहीं बना सकती।

अव्रतानां अमन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते।।

प्रो० धर्मवीर

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि-दयानन्द की जन्मभूमि टंकारा में- महर्षि की मान्यताओं की हत्या

(प्रो॰ रत्नसिंह, बी-२१ गान्धीनगर, गाजियाबाद)

इस वर्ष शिवरात्रि पर २६ फरवरी १९९५ को महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा के वार्षिकोत्सव पर जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार व प्रसार करना है। शिक्षा के सम्बन्ध में महर्षि का स्पष्ट मत है कि बालक और बालिकाओं के विद्यालय एक दूसरे से पृथक् हों और उनमें दो कोस की दूरी रहे। लड़कियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और लड़कों की पाठशाला में पांच् वर्ष की लड़कियां न जाने पावें। महर्षि दयानन्द ब्रह्मचर्य पर प्रत्यन्त बल देते थे। इसी को ध्यान में रखकर उन्होंने सहशिक्षा का विरोध किया है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि दोनों विषम लिंग एक-दूसरे के लिए आकर्षण के केन्द्र हैं और एक दूसरे के दर्शन और स्पर्शन होने पर एक दूसरे के प्रति आकर्षण का होना स्वाभाविक है। उस स्थिति में उनका ब्रह्मचर्य अखण्डित न रह सकेगा। इसीलिए ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए लड़के और लड़कियों के विद्यालयों का पृथक्-पृथक् होना आवश्यक है। महर्षि दयानन्द पूर्णतः आर्ष पाठ विधि के पोषक हैं। शिक्षा माध्यम के बारे में उनका स्पष्ट मत है कि बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा उनकी मातृभाषा के माध्यम से ही देनी चाहिए।

महर्षि दयानन्द की शिक्षा सम्बन्धी इन सभी मान्यताओं को धता बताते हुए टंकारा ट्रस्ट के वर्तमान अधिकारियों ने महर्षि की जन्म-भूमि पर सहशिक्षा का एक हाई स्कूल खुलवा दिया है। पाठकों की जानकारी के लिए यह लिखना आवश्यक है कि ट्रस्ट के आरम्भिक काल में ऋषि भक्तों ने टंकारा स्थित मोरवी नरेश के विशाल महल को डेढ़ लाख रुपये में खरीद कर उसी स्थान पर सन् १९५८ की शिवरात्रि का प्रायोजन ६, ७, व ८ मार्च को किया था। कुछ दिनों बाद उस विशाल भवन में 'महर्षि दयानन्द अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक महाविद्यालय टंकारा'' की स्थापना की गई जिसमें केवल पुरुष ही शिक्षा प्राप्त करते हैं और अनिवार्यतः सभी वहीं छात्रावास में रहते हैं।

यह भी जानना आवश्यक है कि इस पवित्र टंकारा ट्रस्ट के वर्तमान प्रधान हैं श्री बाबू दरबारी लाल जी जो डी॰ए॰वी॰ कालेज प्रबन्धक समिति नई दिल्ली के भी प्रधान हैं और मन्त्री है श्री रामनाथ जी सहगल तथा बम्बई निवासी श्री ओंकार नाथ जी आर्य इस ट्रस्ट के प्रबन्धक ट्रस्टी हैं। श्री दरबारीलाल जी को डी॰ए॰वी॰ को दुनिया से बाहर से आर्य समाजी कम ही जानते हैं। उन के जीवन का लक्ष्य अधिक से अधिक डी॰ए॰वी पब्लिक खोलना है। उन्हीं के पुरुषार्थ से देश भर में लगभग पांच सौ डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूल खुल चुके हैं। उनका विश्वास है कि इन पब्लिक स्कूलों के माध्यम से ही महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार हो सकेगा। इन पब्लिक स्कूलों की बानगी भी ले लीजिए। १. इनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी (मातृभाषा नहीं) २. सह शिक्षा अनिवार्य। ३. ब्रह्मचर्य का कोई स्थान नहीं क्योंकि लड़के और लड़कियों को परस्पर मिलने की पूरी स्वतन्त्रता है। ४. प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का बहिष्कार। ५. नेकराई का प्रयोग अनिवार्य। ६. स्कूल परिसर में 'नमस्ते' पर प्रतिबन्ध। ७. परस्पर अभिवादन में 'गुड मार्निंग' का प्रयोग। ८. खानपान में अण्डा, मांस और मदिरा से परहेज़ नहीं। ९. ऊंची फीस और प्रवेश के समय कई कई हज़ार रुपये के डोनशन। १०. प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा के लिए कोई स्थान नहीं। ११. स्कूलों के अनेक प्रिंसिपलों (पुरुष) का विलासी जीवन। मांस और शराब का खूब प्रयोग। १२. अर्थकाम शुचिता का कोई ध्यान नहीं। १३. इस नास्तिकता से ओत-प्रोत वातावरण में किसी किसी स्कूल में यज्ञशाला भी बनवाई है और धर्मशिक्षा की पीरियड भी लगाया जाता है। क्यों? इसके पीछे क्या उद्देश्य है? इस समय उसकी चर्चा करनी अप्रासंगिक है।

जैसा कि मैंने आरम्भ में लिखा है कि २६ फरवरी को मैं टंकारा गया था। वहां ओ३म् ध्वजारोहण करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद बाबू दरबारीलाल जी ने अपने प्रवचन में कहा, "मुझे प्रसन्नता है कि हम यहाँ पर महर्षि दयानन्द के सपनों को साकार करने के लिए एकत्रित हुए हैं। इन सपनों को साकार करने के लिए हमने निश्चय किया है कि महर्षि के जन्म स्थान टंकारा सहित गुजरात प्रान्त में २५ डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूल खोले जायेंगे।"

श्री दरबारीलाल जी की इस घोषणा को सुनकर उनके परम सहयोगी एवं मित्र श्री रामनाथ सहगल ने तो हर्षित होकर तालियां बजवाईं और मुझे भारी मानसिक पीड़ा हुई। कुछ क्षणों के लिए मैं अचेत हो गया। मैं सोचने लगा कि क्या महर्षि के सपने साकार होंगे इन डी॰ए॰वी पब्लिक स्कूलों से, जिनका स्वरूप ऊपर दिया जा चुका है? क्या दयानन्द सह शिक्षा पोषक था? क्या दयानन्द ब्रह्मचर्य विरोधी था? क्या दयानन्द अनार्ष पद्धति का आग्रही था? क्या दयानन्द मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च। इन पञ्च मकारों का समर्थक था?

श्री दरबारीलाल जी की इस घोषणा के बाद ट्रस्ट कार्यालय में श्री ओंकार नाथ जी आर्य और श्री रामनाथ सहगल की उपस्थिति में मैंने श्री दरबारीलाल जी से कहा, "आपने उपदेशक विद्यालय परिसर में सहशिक्षा का विद्यालय खुलवाकर ऋषि दयानन्द की मान्यता के विरुद्ध कार्य किया है और यह भारी पाप किया है।" टंकारा से गाज़ियाबाद लौटकर मैंने ४ मार्च को श्री दरबारीलाल जी को एक पत्र यह जानने के लिए लिखा कि २८ मार्च को टंकारा में ट्रस्ट की प्रायोजित बैठक में इस सहशिक्षा के स्कूल के बारे में क्या निर्णय लिया है। उन्होंने मेरा पत्र श्री सहगल के पास भेज दिया और उन्होंने वह पत्र श्री ओंकार, नाथ जी के पास उत्तर देने के लिए भेज दिया। खेद है कि डेढ़ मास व्यतीत होने पर भी मुझे किसी ने उत्तर नहीं दिया। बहुत प्रतीक्षा करने के बाद अब सार्वजनिक रूप में यह सारी स्थिति आर्य जनता के सामने प्रस्तुत करने के लिए मुझे बाध्य होना पड़ा है। विश्वस्त सूत्र से मुझे जानकारी मिली है उसके अनुसार श्री दरबारीलाल जी और श्री रामनाथ सहगल ने निश्चय कर लिया है कि टंकारा में डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूल अवश्य खुलेगा। डी॰ए॰वी॰ शिक्षा अधिकारी को निरीक्षण करने के लिए शीघ्र भेजा जा रहा है जिस स्थान पर डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूल खुलने जा रहा है, वह स्थान महर्षि के जन्म गृह से केवल एक सौ गज़ की दूरी पर है। आर्यो ! क्या दयानन्द को बदनाम करने का यह षड्यन्त्र नहीं है? क्या इस अपमान को हम सहेंगे? क्या हमारा रक्त अब पानी हो चुका है? इसी पाप के विरोध में जनमत तैयार करो। श्री दरबारी लाल जी को इस पते पर विरोधी पत्र लिखो- आर्यसमाज, अनारकली, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली। हमें क्या करना है, इस बारे में अपने रचनात्मक सुझाव मेरे पास भेजने की कृपा करें। इतना ध्यान अवश्य रक्खे कि बाहर के शत्रु से मोर्चा लेना सरल है परन्तु अपने घर के विरोधी से लड़ना मुश्किल है। इनके पास डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूलों का अरबों रुपया है। अपने धन पर इन्हें घमण्ड भी है।

अन्त में मैं अपने पूज्य आर्य संन्यासियों से भी निवेदन करना चाहता हूँ। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब आर्यसमाज पर विरोधियों के आक्रमण हुए हैं, तब-तब उस आक्रमण का सामना करने के लिए आर्य जनता का नेतृत्व आर्य सन्यासियों ने ही किया है। हैदराबाद राज्य में जब निज़ाम के अत्याचार चरम सीमा पर पहुंच गये तो आर्य सत्याग्रह का नेतृत्व पूज्य नारायण स्वामी जी महाराज और संचालन स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज ने किया। सिन्ध प्रान्त में सत्यार्थप्रकाश पर लगे प्रतिबन्ध के विरोधी में जो आन्दोलन चला उसका नेतृत्व महात्मा नारायण स्वामी जी ने किया। पंजाब में चले हिन्दी सत्याग्रह का नेतृत्व पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने किया और गो रक्षा आन्दोलन का नेतृत्व तपोनिष्ठ सन्यासी स्वामी ओमानन्द जी महाराज ने किया। यह भी सत्य है कि अब तक जितने प्रहार हुए हैं वे आर्यसमाजों तथा सत्यार्थप्रकाश और हिन्दी भाषा पर हुए हैं परन्तु टंकारा ट्रस्ट के प्रधान श्री दरबारीलाल जी का प्रहार आर्यसमाज के जन्मदाता तथा सत्यार्थप्रकाश के रचीयता महर्षि दयानन्द के ऊपर हुआ है। अतः पूज्य सन्यासियों के चरणों में मेरा निवेदन है कि महर्षि दयानन्द के पावन जीवन को डी॰ए॰वी॰ माध्यम से जिस प्रकार कलंकित किया जा रहा है उसका प्रतिरोध करने के लिए जो आन्दोलन चलाया जाये उसका नेतृत्व यतिमण्डल पवित्र एवं सशक्त हाथों में लें।

इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि हो सकता है कि आर्य जनता के दबाव से श्री दरबारीलाल जी घोषणा कर दें कि इनके खोले हाई स्कूल में अब सह शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अघ्न्या गाय की रक्षार्थ

चेत रे मानव

है कृषि प्रधान प्रसिद्ध भारत और कृषि की यह दशा।
होकर रसा यह नीरसा अब हो गयी है कर्कशा।
अच्छी उपज होती नहीं है भूमि बहु परती पड़ी।
गोवंश का वध ही यहाँ है याद आता हर घड़ी।।१।।

दातों तले तृण दबाकर दीन गाये कह रही।
हम पशु तथा तुम मनुज हो, पर योग्य तुमको क्या यही।
हमने तुम्हें माँ की तरह, है दूध पीने को दिया।
देकर कसाई को हमें तुमने हमारा वध किया।।२।।

जो जन हमारे मांस से निज देह पुष्टि विचार के।
उदरस्थ हमको कर रहें है क्रूरता से मार के।
मालूम होता है सदा धारे रहेंगे देह वे।
या साथ ही ले जायेंगे उसको बिना संदेह के।।३।।

हा दूध पीकर भी हमारा पुष्ट होते हो नहीं।
दधि घृत तथा तक्रादि से भी तुष्ट होते हो नहीं।
तुम खून पीना चाहते हो तो यथेष्ट वही सही।
अरे मनुष्य! तुम धन्य हो जो करो थोड़ा वही।।४।।

क्या वश हमारा है भला हम दीन हैं बलहीन हैं।
मारो या पालो कुछ करो तुम हम सदैव अधीन हैं।
प्रभु के यहाँ से भी कदाचित् आज हम असहाय हैं।
इससे अधिक अब क्या कहें हः हम तुम्हारी गाय हैं।।५।।

बच्चे हमारे भूख से रहते समक्ष अधीर हैं।
करके न उनको सोंच कुछ देती तुम्हें हम क्षीर हैं।
चरकर बिपिन में घास फिर आती तुम्हारे पास है।
होकर बड़े वे बत्स भी बनते तुम्हारे दास हैं।।६।।

जारी रहा क्रम यदि यहाँ यूँ ही गोवंश नाश का।
तो अस्त समझो सूर्य भारत भाग्य के विकास का।
जो तनिक हरियाली रही वो भी न रहने पायेगी।
यह स्वर्ण भारत भूमि भी मरघट यहीं बन जायेगी।।७।।

घृत और दूध के अभाव से दुर्बल हुए मस्तिष्क सब।
दिल से निरन्तर जा रहे हैं सत्य अस्तेय धर्म सब।
हुक्का शराब नित पी रहे रोगों से हुए हैं ग्रसित।
होकर अशक्त अकाल में ही काल कवलित हो रहे।।८।।

अब भी समय हैं साथियों निज नेत्र खोलो जन सभी।
गोवंश की रक्षा करेंगे संकल्प लो व्रत दृढ़ करो।
कत्लखाने जाने न देंगे, करेंगे आन्दोलन सभी।
फिर यही भारतधरा स्वर्ण-खग कहलायेगी।।९।।

[सङ्कलक—ब्र॰ उमेश आर्यः आर्ष महाविद्यालय
गुरुकुल कालवा, जीन्द, (हरियाणा)]

(पृष्ठ ९ का शेष)

नहीं रहेगी। उसी भवन में एक पाली में लड़के पढ़ेंगे और दूसरी में लड़कियां। इससे आर्यजनों का सन्तोष नहीं होगा। हमारी तो एक ही मांग है कि महर्षि जन्मभूमि पर जो भी विद्यालय चले वहाँ केवल अनार्ष पाठ विधि ही रहे। हमें इस पर भी विचार करना होगा कि डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूल खोलने का एक दूषित आर्ष विचार मन में आ चुका है, अतः यह विचार एक न एक दिन विष वृक्ष भी बन सकता है। क्या ऐसा कुछ किया जा सकेगा कि ऐसे विचार जन्म लेने से पहले ही ध्वस्त कर दिये जायें। उचित तो यह है कि इस मानसिकता को समूल नष्ट कर दिया जाये हमारा दृढ़ विश्वास है कि प्रकाश और अन्धकार, विद्या और अविद्या पुण्य और पाप और सत्य और असत्य की भाँति वेदोद्धारक, ब्रह्मचर्य का पोषक और प्राचीन वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति का मूर्तरूप दयानन्द और डी॰ए॰वी॰ पब्लिक स्कूल एक साथ नहीं रह सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझको तुम पहचान न पाये

[डॉ० दीनानाथ आचार्य, डी०ए०वी० मध्य विद्यालय साहेबगंज, छपरा (बिहार)]

मैं नव वर्ष हूँ,
लाया असीम हर्ष हूँ,
पर पाश्चात्य झोंके में
तुम मेरे आने-जाने का
अर्थ अभी तक जान न पाये।
मुझको तुम.......

मैं चेतना का विहान,
प्रकृति का वरदान,
वसन्त साथ सृष्टि-सम्वत्
कृष्ण सम्वत् औ विक्रम सम्वत्–
साथ लेकर आया हूँ।
पर पाश्चात्य झोंके में–
तुम मेरे आने जाने का,
राज अभी तक जान न पाये।
मुझको तुम........

मैं अकेले नहीं,
मानों तो सही,
आर्यसमाज स्थापना दिवस
हेडगेवा का भी जन्म दिवस
साथ लेकर आया हूँ।
पर पाश्चात्य झोंके में–
तुम मेरे आने-जाने का
अर्थ अभी तक जान न पाये।
मुझको तुम.......

टूट-टूट कर तुम्हें बनाया,
यादों से जीवन बहलाया,
पर पाश्चात्य झोंके में–
तुम मेरे व्याकुल मन का,
प्यार अभी तक जान न पाये।
मुझको तुम......

शुभकामना........ मंगलकामना........
करता हूँ आज मैं
इसलिए–कि
पाश्चात्य सभ्यता के झोंके में–
स्वसंस्कृति, स्वसभ्यता का
अस्तित्व कहीं भूल न पाये।
मुझको तुम..........

प्रेम का पलना झूल

[पं० चमूपति एम०ए०, प्रस्तुति–श्री रामकृष्ण एडवोकेट, जालन्धर, (पंजाब)]

(१) रहा प्रेम का पलना झूल,
चिति की किरणों के झूले में,
करती झिलमिल तन की धूल,
रहा प्रेम का पलना झूल,
नस नस से नाड़ी-नाड़ी से,
उठी तान सुख मंगलमूल,
रहा प्रेम का पलना झूल।।
राग ज्योति है ज्योति राग है,
हिलते तार अहो अनुकूल,
रहा प्रेम का पलना झूल।।

(२) नवल नशीली धार,
बहती नवल नशीली धार,
झूम झूम मदमाती लाती,
सुख संजीवन सार, बहती नवल नशीली धार।।
रोम रोम बन ओठ चूसता,
ऐसा सरस खुमार,
बहती नवल नशीली धार।।
मेरी देवपुरी के राजा
करो ग्रहण उपहार,
बहती नवल नशीली धार।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसंत पंचमी पर्व पर सरस्वती की मूर्तिपूजा क्यों?

—डी॰ए॰वी॰ जवाहर विद्यामंदिर श्यामली कोलोनी, राँची-2

जानकारी हेतु निवेदन है कि उपर्युक्त डी॰ए॰वी॰ स्कूल में कतिपय वर्षों को छोड़कर प्रतिवर्ष बसन्त पंचमी पर्व के अवसर पर सरस्वती की मूर्ति पूजा पौराणिक रीति से काफी धूमधाम से मनायी जाती रही है और इसी क्रम में पिछले वर्ष और इस वर्ष भी इसकी पुनरावृति हुई है। मैने इस सभा की ओर से समय-समय पर आपका और डी॰ए॰वी॰ राँची क्षेत्र के निर्देशक माननीय श्री नारायण दास ग्रोवर जी का ध्यान इस ओर पूर्व में भी मौखिक व लिखित रूप से आकृष्ट किया था। सन् १९८९-९० में डी॰ए॰वी॰ दिल्ली के तत्कालीन नैतिक परामर्शदाता प्रो॰ रत्न सिंह (गाजियाबाद) ने अपने राँची प्रवास के समय उक्त स्कूल के प्राचार्य से वार्त्तालाप कर मुझे मौखिक रूप से सूचना दी थी कि भविष्य में उक्त स्कूल में मूर्तिपूजा नहीं होगी। पर उनका आश्वासन आजतक सत्य नहीं निकला है।

मेरा आपसे नम्र अनुरोध है कि डी॰ए॰वी॰ श्यामली कोलोनी, राँची-2 में भविष्य में आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विपरीत मूर्तिपूजा नहीं होनी चाहिये, यदि वहाँ फिर भी पूजा होती है तो डी॰ए॰वी॰ दिल्ली को अपनी सम्बद्धता हटा लेनी चाहिये अन्यथा अनिच्छा के बावजूद यदि सन् १९९६ में भी वहाँ मूर्तिपूजा पूर्ववत् होती रहती है तो हमें बाध्य होकर समाचार मीडिया के साथ-साथ आर्य जनता की अदालत में इस घटना की जानकारी देनी होगी।

अत: मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि डी॰ए॰वी॰ आन्दोलन जिन वैदिक आदर्शों का प्रतिपादक होने का दावा करता है जिसके अनुरूप अपनी कथनी और करनी में एकरूपता लायेगा और यथोचित कार्यवाही करके मुझे भी इसकी जानकारी देगा।

सधन्यवाद।

भवदीय

मंत्री, छोटानागपुर आर्य प्रतिनिधि सभा स्वामी श्रद्धानन्द पंथ; राँची

योगदर्शन—भाष्यम्

(महर्षि व्यास-भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द व्याख्योपेत)

व्याख्याता : **आचार्य राजवीर शास्त्री**

- योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
- व्यास-भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
- महर्षि-दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित्त।
- दर्शनों के परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
- क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियाँ अनेक चित्त निर्माण, इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

विशेष जानकारी के लिए सूची पत्र मँगायें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में चार्वक, बौद्ध तथा जैन दर्शन के बीज नहीं

श्री पं॰ मनोहर विद्यालंकार का एक लेख अप्रैल ९५ के 'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित हुआ है, जिसका शीर्षक है-**वैदिक दर्शन का परमलक्ष्य।** लेख का शीर्षक पढ़कर प्रत्येक पाठक पढ़ने का प्रयास करता है। किन्तु पाठक को इसे पढ़कर क्या मिलता है? यह पाठक ही समझ सकता है। इस लेख के विषय में दो पाठकों के पत्र हमारे पास आये हैं, जिनमें वे लिखते हैं-

(१) श्री रामकुमार वर्मा, रा॰मा॰वि॰ नरता, जि॰ जालोसरा। (१९-४-९५) परोपकारी पत्रिका अप्रैल ९५ में '**वैदिक दर्शन का परमलक्ष्य**' लेख पढ़ा। वेद के श्लोक देकर चार्वक दर्शन है? तो फिर आर्यसमाज नशाबन्दी आन्दोलन क्यों करता है? जैन दर्शन भी है तथा श्लोक भी दिये हैं तो फिर आप व हमारा ईश्वर–अस्तित्व का दर्शन बेकार। फिर कुरान, पुराण, ईशु के भी दर्शन इसमें हो सकते हैं। एक प्रतिष्ठित पत्रिका में इस प्रकार का लेख छापकर।

(२) विदित हो कि परोपकारी (अप्रैल ९५) के अंक में भी मनोहर जी विद्यालंकार का एक लेख 'वैदिक दर्शन का परमलक्ष्य' लेख पढ़ा। बड़ा ही विचित्र सा लगा। उन्होंने कैसा दृष्टिकोण रखा होगा, ऐसा लेख लिखते समय, हम तो समझ ही नहीं सकते। क्या क्या लिखा वेद के नाम पर जैसे कि (क) वेद को आपकी दार्शनिक मान्यताओं से कोई प्रयोजन नहीं। (ख) वेद में सभी दार्शनिक सिद्धान्त (बौद्ध, जैन, अद्वैत, आदि) बीज रूप में विद्यमान है। इत्यादि।

मैं तो विद्वान् हूँ नहीं, वरना तीव्र समीक्षा करता, ऐसे भ्रामक लेख की। कृपया उस लेख की समीक्षा करें।

३-४-९५

[भावेश मेरजा, टाउनशिप १२-२३, नर्मदानगर, भरुच (गुज॰)]

इन पत्रों को पढ़कर मैंने भी इस लेख को पढ़ा, वास्तव में लेख बहुत भ्रामक है। 'परोपकारी' पत्रिका सभा की पत्रिका है, जो कि महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी है। उसमें छापने से पूर्व सम्पादक महाशय को लेख के विषय में विचार करना चाहिये था कि यह प्रकाशन करने योग्य भी है या नहीं। इस लेख को गुरुकुल का स्नातक ऐसी ऐसी भ्रान्त बातों को लिखकर छपने को भेज देता है और दूसरा भी गुरुकुल का ही स्नातक छाप रहा है। इन्हें क्या हो गया है? यह तो भगवान् ही जानता है। परन्तु सत्य तो कहना ही पडेगा, चाहे किसी को अच्छा लगे या बुरा। कुछ महीने पूर्व भी एक लेख की समीक्षा कर चुका हूं, परन्तु सम्पादक मौन रह के ही काम निकाल लेता है और सभा के अधिकारी भी प्रसुप्त दशा में ही दर्शक बने रहते हैं।

प्रथम तो लेख का शीर्षक ही भ्रान्ता है अथवा उसके अनुरूप लेख में कुछ भी प्रतिपादन नहीं किया है। लेख में परस्पर विरोधी बातों की भरमार है और लेखक ने बड़ी चतुराई से लेख की बातों की वेद-मन्त्रों से पुष्टि करने का प्रयास किया है। विद्वान् पुरुषों का मुख्य कार्य होता है अविद्या का नाश करके विद्या का प्रकाश करना, न कि पाठकों को भ्रम में डालकर उलझनें पैदा कर देना। लेख की कतिपय बातों पर विचार-

(१) **वेद संहिता का मिथ्या अर्थ**–वेदमन्त्रों को सन्धि सहित पढ़ने के कारण वेद की मूल पुस्तकों को वेदसंहिता कहा जाता है। परन्तु लेखक तो पाश्चात्य विद्वानों का उच्छिष्ट भोजी बनने के कारण लिखता है कि **"संहिता का अर्थ होता है-संकलन या संग्रह। अतः वेद में दर्शन के सभी सिद्धान्तों की चर्चा है।**

लेखक का मन्तवय है कि वेद भी विभिन्न कालों में हएु ऋषियों के द्वारा उसी तरह संगृहित है जैसे कि कुरान या बाईबिल की पुस्तकों के सग्रंह है।

(२) "जो परमेश्वर मानते हैं, अथवा नहीं मानते, यदि उनका आचरण शुरु है तो दोनों ही ऋषि हैं"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक का यह कथन भी नितान्त भ्रान्तिपूर्ण तथा असत्य है। और जो वेद के प्रमाण दिये वे भी लेखक के मन्तव्य को पुष्ठ नहीं करते। और विचारने की बात यह है, ईश्वर को सर्वत्र विद्यमान्, सर्वज्ञ व न्यायाधीश इस लिये ही माना जाता है कि मनुष्य उसके न्याय से भयभीत होकर पापों से बच सके किन्तु लेखक के विचार में ईश्वर को मानने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

मन्त्रार्थों पर विचार

(१) अमन्तवों मां त उपक्षियान्ति (ऋ॰ १०।१२५।४)

लेखक द्वारा यह अर्थ मिथ्या है- जो ईश्वर को नहीं मानते, वे भी मेरे समीप रहते हैं। फिर वेद का यह आदेश निरर्थक ही हो जायेगा- तद्दूरे तद्वन्तिके (यजु॰) वह परमेश्वर दुष्ट पुरुषों से दूर और सज्जनों के समीप है। यथार्थ में इस मन्त्र का अर्थ यह है- (माम् अभन्तवः) जो मुझे नहीं मानते हैं (ते) वे (उप) हीन होकर (क्षियन्ति) नष्ट हो जाते हैं।।

(२) ये त्वाम् इन्द्र न तुष्टुवुऋषियो ये चतुष्टुवः।
(ऋ॰ ८।६।१२)

इस मन्त्रार्थ में भी लेखक ने पाठकों को भ्रम में रखा है। मन्त्रार्थ पर मनन कीजिये- हे (इन्द्र) परमेश्वर! जो हमारे में से सूक्ष्मदर्शी महर्षि हैं जो आपकी स्तुति नहीं करते हैं और जो स्तुति करते हैं। दोनों प्रकार सम्यक् स्तुति किये गये आप हमारी बुद्धियों को बढ़ायें।

(३) वेद में चार्वक दर्शन के बीज की भ्रान्ति-

वेद में चार्वक दर्शन के बीज बिल्कुल भी नहीं है। महर्षि दयानन्द ने चार्वकों के विषय में लिखा है- (क) 'जब तक जीवे, तब तक सुख से जीवे' (ख) अरे भोले भाई! जो मरे के पश्चात् शरीर भस्म हो जाता है कि जिसने खाया-पिया है वह पुनः संसार में न आयेगा। (स॰प्र॰) इत्यादि मिथ्या बातें का उल्लेख वेद मन्त्रों में दर्शाकर लेखक ने बुद्धि का दिवाला ही निकाल दिया है। देखिये मन्त्रों के सत्यार्थ-

(१) घृतं पीत्वा मधु चारुगव्यं
पितेव पुत्रान् अभिरक्षताद इमम्।। (अथर्व २-१३-१)

मन्त्र के पूर्वाद्ध में 'अम्बे' सम्बोधन पद पठित है जिसको लेखक ने ओझल ही कर दिया है। हे अग्ने -स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर। तुम (इमम्) इस ब्रह्मचारी की मधुर और निर्मल गव्य=गाय के घी को पीकर पिता से पुत्रों की रक्षा की भांति सब ओर से रक्षा करें। किन्तु लेखक को पता नहीं किस नशे में यह अर्थ सूझा है- घृत और मधु पिओ इस शरीर में वैसे ही रक्षा करो जैसे पिता पुत्रों की रक्षा करता है।

(२) हत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते।। (ऋग्वेद ८-२-१२)

मन्त्र का सत्यार्थ पढ़िये- (पीतासः) पिया गया सोमरस (हृत्सु) उदर में पुष्टियुक्त होने से पाकावस्था में पुष्टि आह्लाद आदि अनेक सद्गुणों को उपजाते हैं (सुरायाम्) सुरापान से जैसे दुर्गंध उत्पन्न होता है, वैसे नहीं। जो स्वोता है, ये ऊधस् गायादि के भरे दुग्ध स्थान की प्रशंसा करते हैं। इसका आश्य यह है कि उत्तमोत्तम औषधियों का रस पुष्टि आदि उत्पन्न करता है। और शराब बुद्धि नाशक होने से दुर्मद=नशा पैदा करती है। ऐसे मन्त्रार्थ को बिना विचारे ही पागल की भांति लेखक अर्थ करता है- जी भर कर शराब पिओ ओर जेसे दुर्मद शराबी रात भर बड़बड़ाते हैं, वैसे ही जीवन को लड़ते झगड़ते मौज मस्ती में गुजार दो। यह मन्त्रार्थ का कैसा अनर्थ मूलक है। और सभा का पत्र भी आंखे बन्द करके छाप रहा है।

(३) प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राधीयः आयुः प्रतरं दधानाः।
(ऋ॰१०।१८।३)

मन्त्र का सत्यार्थ–जिससे हम (द्राधीय आयुः प्रतरं दधामाः) दीर्घ जीवन को धारण करते हुए (नृतये हसाय) नृत्य, हास्य आनन्द हेतु (प्राञ्चः अगाम) अग्रगामी बनें।। परन्तु मदोन्मत्त लेखक ने मन्त्र के सत्यार्थ को छोड़कर मन्त्र का यह अर्थ किया है–

'हंसते, खेलते, नाचते, गाते खूब लम्बी आयु तक जीते हुए आगे बढ़ते चलो।'

प्रतीत ऐसा हो रहा है कि लेखक गुरुकुल में पढ़कर पछता रहा है कि हम तो संसार की मस्ती से वंचित ही रह गये हैं अतः बुढ़ापे आकर चावर्क का दर्शन वेदमन्त्रों में देखने लगा है। ठीक ही कहा है कि बुढ़ापा बुद्धि, स्मृति को नष्ट कर देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४.) वेद में जैन दर्शन के बीज की भ्रान्ति– लेखक ने ईश्वर की सत्ता पर विश्वास न करने वाले जैनियों के दर्शन बीज भी वेद में देखने का प्रयास किया है। लेखक लिखता है–

किन्तु इसका मुख्य दार्शनिक सिद्धान्त स्याद्वाद है। स्याद्वाद का मुख्य कथ्य यह है-किसी वस्तु के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। महर्षि दयानन्द ने स्याद्वाद का खण्डन करते हुए लिखा है– यह कथन एक अन्योन्याभाव में साधर्म्य और वैधर्म्य में चरितार्थ हो सकता है। इस सरल प्रकरण को छोड़कर कठिन रचना केवल अज्ञानियों को फंसाने के लिये होती है। देखो जीव का अजीव में और अजीव का जीव में अभाव रहता है। वैसे जीव और जड़ के वर्तमान होने से साधर्म्य और चेतन और जड़ होने से वैधम्य अर्थात्.......

.........(स॰प्र॰ द्वादश)

परन्तु लेखक ने लिखा है-"उस वस्तु के सम्बन्ध में अनेक बातें कही जा सकती हैं और वे सभी सत्य होंगी।'

मन्त्रार्थ पर विचार–इयं विसृष्टि यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अंग वेद यदि वा न वेद।। (ऋ॰ १०।१८९।७)

मन्त्र का सत्यार्थ–हे (अंग) मनुष्य ! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलय करता है। जो इस जगत् का स्वामी है। जिस व्यापक में सब जगत् उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय को प्राप्त होता सो परमात्मा है। उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान।।

(स॰प्र॰ ८ समु॰)

इस मन्त्रार्थ में निश्चयात्मक एक परमेश्वर के विषय में ही कहा गया है। स्याद्वाद का इसमें कहीं भी वर्णन नहीं हैं। परन्तु **लेखक का किया मन्त्रार्थ देखिये**–यह सृष्टि कैसे बनी? इसको बनाने और धारण करने वाला कौन है भी या नहीं ! यदि कोई अध्यक्ष है तो वह कहाँ रहता है? कहीं परम व्योम में रहता है या इसमें रहता है? इस बात को निश्चित रूप से कौन जान सकता है। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि लेखक ने जो बातें मन्त्र में नहीं है उनका कथन कल्पना करके इसलिये किया कि जिससे उसके कथन की पुष्टि हो सके।

(५) वेद में बौद्ध दर्शन के बीज की भ्रान्ति–

बौद्ध दर्शन के विषय में महर्षि लिखते हैं- 'बौद्धों का सुगत देव बुद्ध भगवान् पूजनीय देव, जगत् क्षण भंगुर, आर्य पुरुष और आर्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि, ये चार तत्त्व बौद्धों में मंतव्य पदार्थ हैं।'

(स॰प्र॰ १२ समु॰)

लेखक ने भी संसार की अनित्य, क्षणिक, परिवर्तनशीलता और जीवन की नदी की धारा व दीपशिखा की तरह प्रवाह रूप में स्थायी दिखाई देता है। यह स्वीकार किया है। इसकी पुष्टि में दो वेदमन्त्रों के अर्थ दिये हैं। इस कथन में संसार की अनित्यता यह तो ठीक है किन्तु क्षणिक कहना सत्य नहीं। और यह संसार परिवर्तनशील भी है।

मन्त्रों का सत्यार्थ देखिये किन्तु दुखमय नहीं–

(१) अश्वन्ये वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।।

।। यजु॰ १२।७८।।

(२) ईशावास्यमिदं सर्व यत् किञ्च जगत्यां जगत्।।

।। यजु॰ ४०।१।।

प्रथम मन्त्र का सत्यार्थ–मनुष्यों को यह समझना चाहिए कि हमारे शरीर अनित्य है। अश्वत्थः यह देह कल रहे या न रहे, इसमें तुम्हारा निवास है और तुम्हारा निवास चलायमान पत्र की भांति है।

द्वितीय मन्त्र का सत्य अर्थ–हे मनुष्य ! जो यह प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त–जड़ चेतन जगत् है वह परमात्मा के द्वारा आच्छादित है।

इस मन्त्र के सत्यार्थ के प्रकाश में लेखक का किया अर्थ देखिए– '**पत्ते के समान चंचल और पूर्णतः** अस्थिर जगत् में तुम रहते हो। इस प्रतिक्षण परिवर्तनशील जगत् का प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील और क्षणिक है, दुःखावह है। लेखक के मन्त्रार्थ में सत्य और असत्य का मिश्रण होने से ठीक नहीं है। यह जगत् परिवर्तनशील और नित्य रहने वाला नहीं है। इस सत्यार्थ के साथ बौद्धों का क्षणिकवाद और दुःखावहक बात मिथ्या है जो मन्त्र में है नहीं।

इस प्रकार लेखक यह मन्तव्य कपोल कल्पित है कि– चार्वक, जैन और बौद्ध तीनों का प्रेरणा स्त्रोत वेद ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) **ईशावास्यमिदं सर्वम्० मन्त्र का असत्यार्थ**– वेद मन्त्रों के अर्थ वे ही कर सकते हैं, जो ऋषि तथा तपस्वी हों। जो तपस्वी तथा ऋषि नहीं है उन्हें मन्त्रों के अर्थ करने का कोई अधिकार नहीं है। महर्षिदयानन्द ने इस मन्त्र का अर्थ यह किया है–'हे मनुष्य ! (ईशा) समग्र ऐश्वर्य से सम्पन्न परमात्मा के द्वारा (इदं सर्वम्) जो कुछ सृष्टि में जड़-चेतन जगत् है (वास्यम्) आच्छादित हैं।

परन्तु लेखक की उड़ान देखिए– ''यह सब कुछ जो गतिमान् पिण्डों या पदार्थों के गतिशील तत्व हैं, वे सब ईशा=प्रकृति अथवा उसके अंश हैं। इन सब में बसा जा सकता है। अतः इन्हें वसु कहा जाता है।''

इसी तरह वैदिक दर्शनों को भी अलग अलग बांट दिया है। जैसे न्याय और वैशेषिक को त्रैतवादी, सांख्य और क्षोम द्वैतवादी हैं और मीमांसा और वेदान्त को अद्वैतवादी। इस प्रकार की मिथ्या धारणा का खण्डन महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में किया है, वहाँ पढ़कर भ्रान्ति दूर करनी चाहिये। महर्षि ने दर्शनों के विषय में परस्पर विरोधी मान्यता का स्पष्ट रूप से खण्डन किया गया है।

(राजवीर शास्त्री)

●●

आमंत्रित हैं आइये, पावन आर्य समाज

वैदों के आदित्य का हो चहुँ ओर प्रकाश
कोटि कोटि जन के हृदय जगे आत्मविश्वास
रहे ज्ञान के दीप से आलोकित संसार
वेदों का हो विश्व में मंगलमय विस्तार
मेरे मन! जपते रहो भक्ति भाव से ओम्
गाओ सब आनंद से, गूँजे वसुधा व्योम
एक वही करता है निर्विकार ओंकार
शक्ति, भक्ति अरु मुक्ति का एक वही आधार
रहें यज्ञ से महकते शीतल सुखद समीर
जन जन में जीवंत हों, दयानन्द से वीर
वेद पढ़े, आगे बढ़े, बनें हृदय से आर्य
तत्पर हों हम सर्वदा, करने को शुभ कार्य
भ्रम का तिमिर हटाइये, वेद रश्मि से आज
आमंत्रित है आइये पावन आर्य समाज।।१।।

''कृण्वंतो विश्वमार्यम्'' आर्य करो संसार
प्रेम भाव से यह धरा बने एक परिवार
एक सहारा आपका हो हम पर जगदीश
सदा आपकी भक्ति में मुझे हमारा शीश
बुद्धि ज्ञान का दान दो हमको हे भगवान्
आर्य बनें हम पर कृपा करिए कृपा निधान
वैदिक यज्ञ हवन करें, है यह मंगल काज
आमंत्रित है आइये, पावन आर्य समाज।।२।।

छुवा छूत, पाखंड पर करते हम आघात
मूर्ति नहीं हम पूजते, सीधी सच्ची बात।
सृष्टि सृजन जिसने किया, उसका क्या आकार
मिट्टी कीचड़ से उसे, कैसे गढ़े कुम्हार
निराकार है ईश्वर, अखिल सृष्टि में व्याप्त
ओम् ओम् के जाप से कर लो प्रभु को प्राप्त
टूट पड़ो पाखंड पर, जैसे गिरती गाज
आमंत्रित है आइये; पावन आर्यसमाज।।३।।

भूतप्रेत से आर्यजन, कभी न हों भयभीत
मंगल शनि के कोप पर सदा हमारी जीत
लिखते अपने हाथ से, हम अपनी तकदीर
राहु केतु हमसे डरें, हम हैं ऐसे वीर
आर्यों के बलिदान से, हमको मिला स्वराज
आमंत्रित हैं आइये, पावन आर्य समाज।।४।।

[हरि कुमार साहू, मंत्री-आर्यसमाज, सुभाष नगर, बिलासपुर (म॰प्र॰)]

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में विभिन्न सम्प्रदायों की कल्पना क्या सत्य है?

परोपकारी के चैत्र २०५२ (अप्रैल ९५) अंक में श्री मनोहर विद्यालंकार द्वारा लिखित "वैदिक दर्शन का परम लक्ष्य" नामक लेख पढ़कर प्रतीत हुआ कि लेखक महोदय भी वर्तमान में प्रचलित सर्वमत समभाव की धारा में तैरकर विश्व-एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने का स्वप्न देख रहे हैं। सत्य-असत्य की समीक्षा किये बिना ही 'सबका लक्ष्य एक' की परम्परा का निर्वहन कर रहे हैं। सम्भवतः लेखक की दृष्टि में सत्यार्थप्रकाश का उत्तरार्ध महर्षि ने यों ही लिख मारा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसा यों ही सारे जीवन खण्डन-मण्डन (शास्त्रार्थ) में उलझा रहा और आज मनोहर जी ने वैदिक दर्शन का लक्ष्य खोज निकाला। इस्लाम का जिहाद, वाम मार्गियों के पञ्च मकार (मद्य, मांस, मछली, मुद्रा, मैथुन) ईसाइयों के धर्म के नाम पर रक्तपात, पौराणिकों की अश्लीलता पारस्परिक विद्वेष की भावना, अवैज्ञानिकता, जैनों का बुद्धिविरुद्ध दर्शन, बौद्धों की राष्ट्रघाती अहिंसा, ये सब भला कैसे आचरण शुद्धि में सहायक हो सकते हैं। कैसे इनको वेदमूलक कहा जा सकता है? सभी सम्प्रदायों में जो भी सत्य है, उसका मूल वेद में है, ऐसा तो मान्य है परन्तु मजहबी मिथ्या मान्यताओं पर वेद की मुहर लगाना और आर्यों को भ्रमित करना घोर अनुचित कर्म है। लेखक की दृष्टि में वेद का अपना कोई दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है, ऐसा कहकर महर्षि जी के त्रैतवाद को विषिद्ध करने का ही प्रयास किया है। लेखक की दृष्टि में आचरण-शुद्धि ही महत्वपूर्ण है, दर्शन कोई भी हो। सभी दर्शन समान रूप से उपयोगी हैं। जिसे अपनी बुद्धि के अनुसार जो भी अच्छा लगे, स्वीकार कर सकता है, ऐसा भाव है, लखेक का। है न आधुनिक राजनेताओं की भाषा? यह तो सत्य है कि मात्र दार्शनिक मान्यतायें बना लेने से आचरण शुद्ध होगा नहीं। परन्तु यह भी सत्य है कि हर व्यक्ति के आचरण के पीछे कोई न कोई परोक्ष रूप से प्रेरणा अवश्य कर रहा है। अन्यथा दर्शन मिथ्या प्रलाप ही रह जायेगा। उच्च दर्शन से भी आचरण शुद्ध न हो तो दोष दर्शन का नहीं बल्कि व्यक्ति का है। भला शराब, मांस, व्यभिचार को धर्म बताने वाला दर्शन त्रिकाल में भी आचरण शुद्ध करवा सकता है? ये सारे विचार जो पूर्णतः निराधार और घातक हैं; यदि लेखक ने अपने ही होते तो क्षम्य कहा जा सकता था परन्तु इनका मूल वेद में बताया जा रहा है, इसे अनर्गल प्रलाप न कहें तो क्या कहें? लेखक आकाश में पुष्प खिलाने का यत्न करें तब आर्यों को इसके परिणाम पर विचार करना होगा। हम लेखक द्वारा की गई तुलनाओं की समीक्षा संक्षेप में करना चाहेंगे।

(१) **लेखक का कथन है**– "ईश्वर को मानने अथवा न मानने का कोई महत्त्व नहीं है।" यह तो उचित है कि मात्र ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने से ही कुछ होने वाला नहीं। हमें आचरण में लाना होग परंतु क्या ईश्वर प्रणिधान योग का साधन नहीं? क्या योग सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग नहीं? क्या ईश्वर को स्वीकार करना आचरण शुद्धि में सहायक नहीं? यदि ऐसा माना जाये तो उपनिषद तो कल्पना प्रसूत और निरर्थक ही हो जायेंगे। साथ में 'तमेव विद्वान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न बिभाय मृत्योः, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय, यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः, ओ३म् क्रतो स्मर..." आदि वैदिक सूक्तियां निरर्थक हो जायेंगी। लेखक इस सम्बन्ध में निम्नलिखित वेदमन्त्र उद्धृत कर रहे हैं–

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवः
(ऋ॰ ८।६।१२)

इस मंत्र का शेष भाग हम उद्धृत कर रहे हैं–

ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः

पदार्थः– (इन्द्रः) हे परमात्मन् (ये ऋषयः) जो हममे से सूक्ष्मदर्शी महर्षि (त्वां न तुष्टुवुः) आपकी स्तुति नहीं करते (च) और (ये तुष्टुवः) जो करते हैं, दोनों प्रकार से (सुष्टुतः) सम्यक् स्तुति किये गये आप (मम इत् वर्धस्व) हममें बुद्धि को प्राप्त हों। (सार्वदेशिक प्रकाश्न) उपर्युक्त मंत्र में ऋषियों के विषय में कहा गया है। तथा ऋषि साक्षात्कृतधर्मा को कहते हैं। भला जो ईश्वर को नहीं मानेगा, वह वेद को कैसे मानेगा? और वेद को न मानने वाला साक्षात्कृतधर्मा कैसे होगा? मंत्र के उत्तरार्ध पर ध्यान न देकर लेखक ने चतुराई ही की है। उस भाग से स्पष्ट है कि जिनका जीवन तप, अनुष्ठान और सम्यक् स्तुतियों से ऋषि के अधिकार को प्राप्त हो चुका है, वे कर्मकाण्ड (स्तुति) न भी करें तो कोई आपत्ति नहीं परन्तु क्या सामान्य व्यक्ति को यह अधिकार देकर चार्वाक मत की मत की पुष्टि करना वेद को अभीष्ट है? भला कोई ऋषि ईश्वर की सत्ता अस्वीकार करेगा, जो लेखक सामान्य जन से कराना चाहते हैं। लेखक महोदय आगे उद्धृत करते हैं–

अमन्तवो मां उपक्षिपन्ति (ऋ॰ १०।१२४।४)

इसका अर्थ लेखक स्वयं करते हैं– "जो मुझे नहीं मानते वे भी यदि उत्तम, गुण, कर्म, स्वभाव से मेरे समीप रहते हैं, वे भी मेरे आश्रय में निवास करते हैं।" अर्थ में वे पाश्चात्य विद्वान् ग्रिफिथ को भी उद्धृत करते हैं। इसी मन्त्र का भाष्य श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज करते हैं–

"जो मुझ न मानने वाले हैं, वे नाश को प्राप्त होते हैं।" अब कौन-सा अर्थ ठीक है इसे सुधी पाठक विचार लेवें।

एतदुपरान्त लेखक ने अथर्ववेद का प्रमाण देने में बड़ी चतुराई से काम लिया है तथा अपने मन्तव्य को वेद से सिद्ध करने का असफल दुस्साहस किया है। मंत्र है–

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति यः
ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि॥

(अथर्व॰ ४।३०।४)

(मया) मेरे द्वारा (सः) वह (अन्नम) अन्न (अत्ति) खाता है। जो कोई (विपश्यति) विशेष करके देखता हैं। (यः) (जो प्राणिति) श्वास लेता है। और (यः) जो (ईम्) यह (उक्तम) वचन (शृणोति) सुनता है। (माम्) मुझे (अमन्तवः) न जानने वाले (ते) वे पुरुष (उप) हीन होकर (क्षियन्ति) नष्ट हो जाते हैं। (श्रुत) हे सुनने में समर्थ जीव! (श्रुधि) तू सुन (ते) तुझसे (श्रद्धेयम्) आदर योग्य सत्य (वदामि) बताता हूं।

(पं॰ क्षोमकरण दास जी त्रिवेदी भाष्य)

इस मंत्र से लेखक सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि ईश्वर मानने अथवा न मानने से कोई लाभ नहीं और न कोई हानि, जबकि मंत्रार्थ इसके ठीक विपरीत है। हा हन्त! दुस्साहस की पराकाष्ठा। आश्चर्य है कि वेद स्वयं 'यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः,' 'यस्तन् वेद किमृचा करियति" कहकर ईश्वर का आश्रय न लेने को मृत्यु आदि दुःखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का हेतु कह रहा है तथा उसको जाने बिना वेद से भी कल्याण नहीं होगा, ऐसा बता रहा है। उपनिषद् 'सर्वे वेदा यत्पदमामवन्ति.....' कहकर वेद का चरम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति को ही बता रहे हैं। मनु जी महाराज मनु ३।७२ (विशुद्ध-मनु०-आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट) में पञ्च महायज्ञों को न करने वालों को मृतक समान बता रहे हैं परन्तु मनोहर जी का दर्शन आधुनिक जो ठहरा। वेद की सारी प्रार्थनाएं, उपनिषदों का सन्देश, वेदान्त की प्रेरणा, आर्याभिविनय में महर्षि के सुन्दर उद्‌गार सब कुछ लेखक एक पंक्ति से नष्ट करने का यत्न कर रहा है। "ईशावास्यम्...." मंत्र का भाष्य अपनी विलक्षण प्रतिभा से करते हुए 'ईशा' शब्द का अर्थ 'प्रकृति से', ऐसा करते हैं। महर्षि महाराज इसका अर्थ 'सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से, ऐसा करते हैं। श्री शंकराचार्यादि सभी विद्वान् भी 'ईश्वर से', ऐसा ही करते हैं परन्तु लेखक को तो अपनी बात वेद में सिद्ध करनी है। लेखक का मत है कि वेद परलोक की बात कम करता है परन्तु यजुर्वेद के ४०वें अध्याय में 'तान् ते प्रेत्यापि गच्छन्ति........' इसका भाव लेखक विचारें। अथर्व ४।३४।६ से लेखक ने यह सिद्ध करने का अपूर्ण प्रयास किया है कि परलोक कुछ भी नहीं है। वाह रे। चार्वाक के अनुयायी। क्या मनोहर जी बताने का साहस करेंगे "देवा अमृतमान शानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।" यजु० ३२।१० में वर्णित मोक्ष कौन सा लोक है?

(२) बड़े कष्ट की बात है कि लेखक ने सभी नैतिक मूल्यों का हनन करके वेद में मद्यपान, लड़ाई-झगड़े का उपदेश सिद्ध करने का घृणित प्रयास किया है। इस दुष्प्रयास की निन्दा में किन शब्दों का प्रयोग किया जाये? पता नहीं क्यों परोपकारी जैसे उच्च स्तरीय पत्र ने ऐसे पाश्चात्यों के घातक विचारों को प्रकाशित करने की भूल की है? पाठकगण! मनोहर जी का मंत्रार्थ देखिये–

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्
(ऋ० ८।२।१२)

"जी भर कर शराब पिओ और जैस दुर्मद शराबी रात भर बड़बड़ाते हैं: वैसे जी जीवन को लड़ते-झगड़ते मौज मस्ती में गुजार दो।" वाह रे! मद्य प्रेमी स्वयंभू वेदज्ञ! इन दुष्ट विचारों से परमेश प्रभु ही परोपकारी के पाठकों की रक्षा करें। लेखक ने तो इस तथा-कथित मन्त्रार्थ का पालन कर परिवार और समाज को स्वर्ग बना दिया होगा। पाठक बन्धुओ। देखिये अपने विद्वान् लेखक को। शोक!! यह लिखते तनिक भी भय नहीं हुआ? अब मंत्र का वास्तविक अर्थ देखिये–

(पीतासः) पिये हुये सोमरस (हृत्सु) उदर में (युध्यन्ते) पुष्टियुक्त होने पाकावस्था में पुष्टि-आह्लाद आदि अनेक सद्‌गुणों को उत्पन्न करते हैं। (सुरायाम्) सुरापान से (दुर्मदासः, न) जैसे दुर्मद उत्पन्न होते हैं, वैसे नहीं। (सार्वदेशिक सभा-प्रकाशन) मंत्र 'सोम' और 'सुरा' के प्रभावों का अन्तर बता रहा है। सोम को इसके पूर्व मंत्रों में 'शुक्राः' और 'तीव्राः' कहकर शुद्ध और पौष्टिक बताया है और लेखक वेदभक्तों को शराब पिलाकर लड़ा रहा है। क्या कहें ऐसे वेदज्ञों को? वेद समान हृदय और समान चित्त की बात करता है। परन्तु लेखक को इन उदात्त भावों से प्रयोजन ही क्या है?

(३) 'वेद में जैन दर्शन के बीज,' शीर्षक से–

'इयं विसृष्टियति आ बभूव'
(ऋ० .१०।१२९।७।।)

इस मंत्र से जैनों का स्याहाद सिद्ध किया है। पाठकों ने लेखक का अर्थ परोपकारी में पढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही होगा। अब महर्षि जी का अर्थ पढ़िये–

"हे मनुष्य! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलयकर्त्ता है। जो इस जगत् का स्वामी, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है, उस को तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान" (सत्यार्थप्रकाश) लेखक ने 'न' इस शब्द से स्याद्वाद बताने की चतुराई की है। वैदिक पुस्ताकलय अजमेर से प्रकाशित श्री स्वामी ब्रह्म-मुनि जी भाष्य में– 'अयद वेद, यदि वा न वेद' का अर्थ–'यदि उपादान कारण को जाने, अपने विज्ञान में लक्षित करे, सृष्टि रूप में परिणत करे। यदि न जाने– स्वज्ञान में लक्षित न करे, सृष्टि रूप में परिणत न करे। इस प्रकार सृष्टिप्रलय ईश्वराधीन है परन्तु लेखक जो ठहरा सर्वमत समभाववादी। शेष प्रश्न रहा इससे पूर्व मंत्र का, तो यहां प्रसंग प्रश्नोत्तर शैली में है। पूर्वमंत्र में प्रश्न है और इसमें उत्तर।

(४) लेखक का कथन कि सांख्य में ईश्वर की चर्चा नहीं है, मिथ्या प्रलाप है। "तत्सनिधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत।" सांख्य १।६१ में, ईश्वर द्वारा प्रकृति पर अधिष्ठातृत्व बताया है और अगले सूत्र में 'विशेषकार्येष्वपि जीवानाम्' कहकर विशेष कार्यों में जीवों का अधिष्ठातृत्व कहा है। 'स हि सर्वचित् सर्वकर्त्ता ३।५६, तथा "ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धा" ३।५७ में पुनः आचार्य कपिल ईश्वर सिद्धि करते हैं परन्तु मनोहर जी ने सांख्य दर्शन देखा ही नहीं अथवा ठहरे पाश्चात्य।

(५) "**सहस्रशीर्षा.......**" मंत्र का अर्थ भी विचित्र किया है। तथा वेद में अद्वैतवाद-सिद्धि में व्यर्थ पसीना बहाया है। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति...." मंत्र के अर्थ में लेखक की मति देखिये–"एक मात्र सत्ता ही सत्य है। उसी का विद्वान् जन अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। पहले जड़ और चेतन दो भेद मान लेते हैं और फिर इन दोनों तत्वों को अनन्त रूपों में विभक्त मान लेते हैं। इसी मंत्र का अर्थ महर्षि जी महाराज करते है– "बुद्धिमान् जन परमैश्वर्य युक्त, मित्रवत् वर्त्तमान, श्रेष्ठ, सर्वव्याप्त विद्युत् आदि लक्षण युक्त अग्नि को बहुत प्रकारों से, बहुत नामों से कहते हैं। इसके अनन्तर वह प्रकाश में प्रसिद्ध प्रकाशमय सुन्दर जिसके पालनादि कर्म, महान् आत्मा वाला है, इत्यादि बहुत प्रकार के नामों से कहते हैं तथा अन्य विद्वान् एक विद्यमान परब्रह्म परमेश्वर को सर्वव्याप्त। परमात्मा रूप सर्व नियन्ता वायु लक्षण लक्षित भी कहते हैं।

अब पाठक विचारें कि महर्षि ईश्वर के विभिन्न नामों की चर्चा कर रहे हैं परन्तु मनोहर जी जड़-चेतन को एक कर रहे हैं। भूल महर्षि से हुई है अथवा मनोहर जी से? यह तो उन्हीं की आत्मा जानती होगी अथवा सुधी पाठक जानें। मैंने अपना पक्ष रखा है।

अन्त में मेरा निवेदन यही है कि मेरा प्रयोजन लेखक का हृदय क्लेशित करना नहीं बल्कि अपनी व्यथा को शान्त करने का यत्न करना है। मेरा मनोहर जी तथा इसी प्रकार के समय के प्रवाह में बहने वाले ऋषि के प्रति अनास्थावान् विद्वानों से निवेदन है कि उनकी यह वृत्ति आर्यसमाज को खा रही है। वे सभी आर्यजगत् पर दया करें। साथ ही स्पष्ट कर दूँ कि आपके दुष्प्रयासों से महर्षि की गरिमा नष्ट हो सकेगी, शत-प्रतिशत सत्य है। प्रभुदेव सबको सुमति प्रदान करें ताकि वेद, ईश्वर तथा ऋषियों में आर्यों की निष्ठा बनी रहे।

[ब्रह्मचारी प्रदीपार्य 'नैष्ठिक' प्रधान, आर्यसमाज, भीनमाल जनपद-जालोर (राजस्थान)]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण की अन्त्य-परीक्षा (२)

गत मास के अंक में सभा द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण के परिवर्धित पाठ, परिवर्त्तित पाठ, पाठव्यत्यय, पाठभेद तथा छूटे हुए पाठों के कतिपय स्थल दिखाये गये थे और वे केवल नवस-समुल्लास के ही थे। पाठक विचार करें हमारा उन परिवर्धित व परिवर्त्तित व पाठभेदों के प्रदर्शन का उद्देश्य यह नहीं था कि उनसे कोई सिद्धान्त भेद या होनी होती है, किन्तु मूलपुस्तक में इस प्रकार पाठवृद्धि करना, पाठान्तर करना अथवा पाठभेद करने से एक गलत परम्परा बन जाती है और लेखक की भाषा व भावों के साथ भी खिलवाड़ बन जाती हैं। सभा को महर्षि के मूल लेखक की सुरक्षा करनी चाहिए। इस लेख में सप्तम समुल्लास के ही परिवर्धित पाठों के कतिपय पाठों के उद्धरण द्रष्टव्य हैं–

परिवर्धित–पाठों के उदाहरण

१८०	१६पं.	जिसमें सगुण-निगुर्णता, अन्वय-व्यतिरेक (साधर्म्य-वैधर्म्य)
१८१	२०पं.	जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है।
१८२	२पं.	कानों को अंगुलियों से मूंद देखो, सुनो कि बिना मुख जिह्वा-ताल्वादि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवों को अन्तर्योगी रूप से उपदेश किया है।
१८३	१४पं.	(५) और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विजयों से अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो,
१८३	२४पं.	वे अन्य को न पढ़ाते तो–
१८४	१८पं.	वे तो मन्त्रों के अर्थ प्रकाशक हैं।
१८४	३१पं.	वहाँ अनेकशः प्रमाणों से विरुद्ध होने से...।
१५१	२३पं.	और न्यायाचरण रूप धर्म से अपने आत्मा से.......।
१५१	२५पं.	ईश्वर सबको उपदेश करता है कि..।
१६३	८पं.	उसके गुण कर्म स्वभाव से (अपने)
१६५	४पं.	सब प्रकार त्रिकालड़ा करता है।
१६५	२१पं.	कि आप हमको पवित्र करें।
१६५	२७पं.	हनन के लिये प्रेरित मत कीजिए,
१६६	२८पं.	वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता।
१६८	७पं.	ईश्वर हो को न मानना (कृतघ्नता॰)
१६९	८पं.	अज्ञान अर्थात् भ्रम कहाता है
१६९	१२पं.	कुशल, अकुशल......।
१६९	२२पं.	तो अनुमानादि प्रमाण नहीं घट सकते।
१६९	२५पं.	यहाँ ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है
१७२	५पं.	क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी
१७३	२९पं.	जीव किञ्चित वर्तमान और
१७४	७पं.	असमानाकृति में नहीं।
१७४	२८पं.	जैसा साधर्म्ययुक्त (निकटस्थ जीव है)
१७४	३४पं.	(अविरोधी) एक अवकाशस्थ है।
१८०	१०पं.	तब भी आकाश में है।
१८०	११पं.	और स्वरूप से भिन्न होने से न कभी
१५८	१९पं.	गुण कर्म-स्वभाव दिव्ययुक्त और

परिवर्तित पाठों के उदाहरण

१६३	छपा पाठ	स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण कर्म-स्वभाव से अपने गुण, कर्म-स्वभाव का सुधरना।
	मूल में	स्तुति से ईश्वर में प्रीति और अपने गुण कर्म-स्वभाव का सुधरना।
१६५	छपा	सब प्रकार का त्रिकालज्ञ करता है।
	मूल में	सब प्रकार ग्रहण करता है।
१६५	छपा	हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिए।
	मूल में	हनन मत कीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६६ छपा उसको गुड प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होगा।
मूल में उसको गुड प्राप्त कभी नहीं होता।
१६९ छपा (उत्तर) परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है, क्योंकि ज्ञान उसको कहते हैं।
मूल में (उत्तर) जानता है और वह पूर्ण ज्ञानी भी है, क्योंकि ज्ञान उसको कहते हैं।
१६९ छपा अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट-अनिष्ट......।
मूल में अविद्यादि क्लेश, इष्ट-अनिष्ट.....।
१६९ छपा क्योंकि जब उसकी सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमान आदि प्रमाण भी नहीं घट सकते।
मूल में क्योंकि उसकी सिद्धि में न प्रत्यक्ष।
१६९ छपा सान्त को अनन्त जानना अज्ञान अर्थात् भ्रम कहाता है।
मूल में सान्त को अनन्त जानना अज्ञान कहाता है।
१६९ छपा (उत्तर) यहाँ ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं और न ईश्वर जगत् का उपादान कारण है।
मूल में (उत्तर) यहाँ ईश्वर का निषेध नहीं किन्तु जगत् का उपादान कारण ईश्वर नहीं।
१७० छपा तथा मीमांसा का धर्म-धर्मी से ईश्वर। वैशेषिक और न्याय भी आत्म शब्द से अनीश्वरवादी नहीं।
मूल में तथा मीमांसा का धर्म-धर्मी, वैशेषिक और न्याय भी अनीश्वरवादी नहीं।
१७० छपा भ्रमजाल में फंसते हैं और मानते हैं।
मूल में भ्रमजाल में फंसते हैं।
१७२ छपा क्योंकि जैसे भृत्य-स्वामी और सेना-सेनाध्यक्ष की आज्ञा से....।
मूल में क्योंकि जैसे सेना अध्यक्ष की आज्ञा से और प्रेरणा से.....।
१७२ छपा जैसे किसी कारीगर से पहाड़ से लोहा निकाला।
मूल में जैसे किसी कारीगर ने पहाड़ से लोहा उत्पन्न किया।

१७३ छपा और जीव किञ्चित् वर्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है।
मूल में और जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है।
१७८ छपा और पृथ्वी आदि जड़ पदार्थ, पश्वादि और वृक्षादि है, उनका
मूल में और पृथिवी आदि जड़ पदार्थ, पश्वादि भी हैं, उनका।
१७९ छपा जैसे पृथिवी जड़ दृश्य हैं वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं, इतने से.....।
मूल में जैसे पृथिवी जड़, दृश्य है, वैसा जल भी जड़ और दृश्य है इतने से एकता....।
१५८ छपा जो सब दिव्यगुण कर्म-स्वभाव विद्यायुक्त और जिसमें......।
मूल में जो सब दिव्या विद्या और पृथिवी सूर्यादि को....
१५८ छपा सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले मुझ ही को जानो।
मूल में मुझ सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले को
१६० छपा तथा अच्छे कामों के कटने में अभय, विशंकता और आनन्दोत्साह उठता है।
मूल में तथा छः कर्मों के करने में अभय, निशसंकता ओर आनन्दोत्साह उठता है।
१६१ छपा उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना।
मूल में उस डाकू को कैद कर पाप करने डाकू पर दया।
१६१ छपा सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है।
मूल में हजारह धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है।
१६१ छपा न्याय का फल सुख-दुःख की व्यवस्था अधिक-न्यूनता से फल को दिखला रहा है।
मूल में न्याय का फल जगत् में सुख-दुःख की व्यवस्था अधिक न्यूनता से फल को दिखला रही है।
१६२ छपा जो साकार होता तो उसके आकार वाला दूसरा होना चाहिए।
मूल में जो साकार होता तो उसके आकार बनाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला दूसरा होना चाहिए।
विरुद्ध धर्म जैसे गन्ध, कक्षता चाहिए।

छपा काठिन्य आदि गुण पृथिवी और रस, उनत्व, कोमलत्वा दि धर्म, जल और रूप, दाहकत्वादि धर्म अग्नि के होने से एकता नहीं।

मूल में विरुद्ध जैसे गन्ध कक्षता, काठिन्यादि गुण पृथिवी और रस द्रवत्व और कोमलत्व जल के विरुद्ध होने से एकता नहीं।

छपा तथापि मनुष्य की जाति आकृति दो पग और कीड़ी की जाति आकृति अनेक पग आदि भिन्न होने से एकता नहीं होती। वैसे

मूल में तथापि मनुष्य और कीड़ी सी आकृति, जाति, दो पग और अनेक पग आदि भिन्न होने से एकता नहीं होती। वैसे......।

छपा और जीव को अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप, सभ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्म से भिन्न होने से......।

मूल में और जीव को सान्तज्ञान, सान्तबल, संभ्रान्तित्व और परिच्छिन्नता आदि ईश्वर से भिन्न होने से......।

छपा व्यतिरेक अर्थात् स्वरूप से भिन्न होने से पृथकता है। वैसे.....।

मूल में स्वरूप से भिन्न होने से सदा अन्वय और व्यतिरेक भाव रहता है। वैसे

छपा परमात्मा से तीनों काव्यों में न भिन्न और स्वरूप से भिन्न होने से एक भी कभी नहीं होते।

मूल में परमात्मा से तीनों कारणों में न मिला और एक होते हैं

छपा सब संसार के पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों में न भिन्न और स्वरूप से भिन्न होने से एक भी कभी नहीं होते।

मूल में संस्वम् के सब पदार्थ परमात्मा से तीनों ग्रन्थों में न मिल और एक होते हैं।

छपा दूसरे विरोधी के गुणो से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण है।

मूल में दूसरे के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण है।

१८० छपा रूपादि-जड़ के तथा द्वेषादि जीव को गुणों से पृथक् होने परमेश्वर निर्गुण कहाता है।

मूल में रूपादि गुण जड़ के तथा द्वेष दुःखादि गुणों से पृथक् होने परमेश्वर निर्गुण कहाता है।

१८१ छपा और जो प्राप्त को छोड़ देवे उसको विरक्त कहते हैं।

मूल में और जो प्राप्त को अप्राप्त की प्रतिपूर्वक छोड़ देवे उसको विरक्त कहते हैं।

१७१ छपा असत्य स्तर (जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है।)

छुटे-पाठों के उदाहरण

१८० ६ पं. स्वरूप से भिन्न होने से सदा अन्वय और व्यतिरेक भाव रहता है।
१७२ २६ पं. जो किकर्म करता है।
१७० २९ पं. इससे कहा हो कि
१६९ ८ पं. जानता है और वह पूर्ण ज्ञानी भी है
१६६ ८ पं. ऐसी प्रार्थना कभी न करे क्योंकि
१६१ ३३ पं. न्याय का फल जगत् में
१६९ २४ पं. (उत्तर) यहाँ ईश्वर का निषेध नहीं किन्तु जगत् का उपादान कारण ईश्वर नहीं है।
१७० २९ पं. इससे कहा हो कि (मैं युग युग)
१७१ २७ पं. क्योंकि उनको पाप करने में (उत्साह..)

अपरिमार्जित भाषा के उदाहरण

१८५ उनके जन्मे पश्चात् होता है।
१८४ लिखा लिखाया आता है।
१८० यथा तथा बर्डाया करते हैं।
१६८ न घबड़ावेगा
१६७ उसके लिये यही आरम्भ है कि वह
१६४ मुझमें कृपा कटाक्ष से.....धरिये।
१६१ डाकू को मार सकने से....
१६१ अपराध करने से बन्ध होकर
इसलिए के स्थान पर 'इस वास्ते' शब्द का अधिकतर पाठ।
१६२ सबलिये सुख इच्छता है।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होटलों का शाकाहारी भोजन ९० प्रतिशत मांसाहारी होता है।

—रामनिवास लखोटिया

अशोक और उसकी पत्नी जो वंश परम्परागत शाकाहारी परिवार के हैं, वे एक पंचतारा होटल में रात्रि को एक विवाह प्रीतिभोज में सम्मिलित हुए। उस होटल में दो तरफ ''वैजिटेरियन'' (अर्थात् ''शाकाहार'') एवं ''नॉन वैजिटेरियन'' (अर्थात् ''मांसाहार'') के दिशा संकेत से बोर्ड लगे हुए थे। उन्होंने जिस तरफ ''शाकाहार'' का संकेत पट्ट लगा हुआ था, उस तरफ की पंक्ति में खड़े होकर सलाद, सब्जी, रोटी, आदि लिया। भोजन के पश्चात् मिठाइयों वाले कक्ष में से कुछ मिठाइयां आदि लीं। वे मन ही मन समझ रहे थे कि वे शाकाहारी हैं और उन्हें शाकाहारी भोजन एक इतने बड़े होटल में सुविधा से प्राप्त हो गया। लेकिन जब किसी परिचित व्यक्ति ने उन्हें कुछ खाने की चीज़ों के बारे में टोका और समझाया तब उन्हें पता लगा कि उनमें से कुछ सलाद और मिठाइयां शाकाहारी नहीं थीं बल्कि उनमें अण्डा मिश्रित था।

ऐसे ही श्री कुमार एक बड़ी संगोष्ठी के समय एक पंचतारा होटल के बड़े सभा कक्ष (अर्थात् बैंकवेट रूम) में दोपहर के भोजन के समय अपनी प्लेट में कुछ शाकाहारी सामान सलाद आदि लेकर खाने लगे। वे अपने मन ही मन समझ रहे थे कि उन्होंने शाकाहारी वस्तुओं का ही चयन किया है। लेकिन कुछ समय के पश्चात् जब उन्हें पता लगा कि जो सलाद उन्होंने खाई थी वह अण्डा मिश्रित थी, तब उन्होंने होटल के कर्मचारियों को बहुत बुरा भला कहा। इस प्रकार के होटल में जाने वाले शाकाहारी परिवारों के ये कोई एक या दो ही दृष्टांत नहीं है बल्कि अक्सर जो भी शाकाहारी होटलों में जाते हैं उन्हें कम से कम ९० प्रतिशत इस प्रकार की असावधानी या अनुभव जाने-अनजाने में होता है। अधिकांश व्यक्तियों को तो पता ही नहीं चलता कि उन्होंने कब मांसाहारी भोजन ग्रहण कर लिया है जबकि वह ''शाकाहारी'' कक्ष की तरफ था।

वस्तु स्थिति:

कई होटलों और बड़े-बड़े रेस्टोरेंटो में यह देखने में आता है कि जब भी विवाह या जन्मदिवस आदि की पार्टी या प्रीतिभोज का आयोजन होता है तो शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजन परोसे जाते हैं। लेकिन कई बार यह देखने में आता है कि शाकाहारियों के मार्गदर्शन हेतु शाकाहारी भोजन मांसाहारी से अलग नहीं रखा जाता बल्कि २ या ३ बड़े बर्तनों—चाहे बीच में या एक किनारे पर—मांसाहारी भोजन रखा जाता है। और, यह कहकर कि बाकी भोजन शाकाहारी है जिसे शाकाहारी व्यक्ति आराम से ले सकते हैं, होटलों के कर्मचारीगण अपना कर्त्तव्य निर्वाह समझ लेते हैं। लेकिन कई वस्तुओं के नाम इस प्रकार होते हैं कि पढ़े-लिखे शाकाहारी व्यक्तियों को भी उसमें धोखा होने का अन्देशा रहता है। कई बार प्रीतिभोज आदि में जब केवल शाकाहारी भोजन परोसा जाता है तब शाकाहारी व्यक्ति यह समझते है कि वे निसंकोच ऐसा भोजन कर सकते हैं। लेकिन वास्तविक स्थिति यह है कि ऐसे भोजन में भी कई प्रकार के खाद्य पदार्थों में अण्डा मिश्रित होता है। अभी हाल ही में दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के एक बड़े पंचतारा होटल में हमारे एक माहेश्वरी महासभा के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता के पोते के जन्मदिवस पर एक बहुत बड़ा आयोजन हुआ, जिसमें शाकाहारी भोजन का इंतजाम किया गया था। लेकिन जब "बर्थडे केक" काटने आए तब मैंने उन्हें स्पष्ट शब्दों में अलग से पूछा कि इस केक के बारे में क्या आपने पता लगाया है कि इसमें अण्डा मिश्रित है या अण्डा रहित अर्थात् "एगलैस" केक है। उनका उत्तर था- "केक में तो अण्डा होता ही है और फिर होटलों में बिना केक के बर्थडे मना नहीं सकते और यह तो आम रिवाज सा हो गया है।" ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति प्राय: होटलों और प्रीतिभोजों के समय में दृष्टिगोचर होती है। फिर उसी दिन जो सलााद रखा गया था, उसमें अण्डा मिश्रित रशियन सलाद था जिसे लोग चाव से खा रहे थे। अधिकांश व्यक्तियों को तो पता ही नहीं था कि "रशियन सलाद" में अण्डा मिश्रित होता है। लेकिन लगभग ९९ प्रतिशत "रशियन सलाद" में "मेयोनैज" नाम का एक पदार्थ जो अण्डे के तरल भाग से बनता है, मिश्रित किया जाता है। इसी प्रकार केक, पेस्ट्री और पुडिंग आदि में अण्डों का प्रयोग खुले आम होटल वाले करते हैं और उन्हें निसंकोच ऐसी पार्टियों में परोसा जाता है कि जिन्हें "शाकाहारी" भोजन कहा जाता है। इस प्रकार सलाद से लेकर मिठाई तक में बराबर ही जाने या अनजाने में अण्डा खाने की आशंका बनी रहती है। फिर कुछ-कुछ होटलों में कभी-कभी सूप में भी हड्डी आदि मांसाहारी तत्वों का मिश्रण होता है। इसलिए जो व्यक्ति शुद्ध शाकाहारी हैं या जो शाकाहारी रहना चाहते हैं उन्हें इन सबसे बचने के लिए कुछ सावधानियां रखनी चाहिए, जिनका विवरण मैंने इस लेख में नीचे दिया है।

कोई भी अण्डा शाकाहारी नहीं है

यह एक दुर्भाग्य की बात है कि अपने व्यापारिक लाभ के लिए निशेचित अण्डों को मुर्गीपालन के उद्योगपति और व्यापारी "शाकाहारी" अण्डों के नाम से पुकारने लगे हैं जिससे शुद्ध शाकाहारियों में बहुत भ्रम पैदा हो गया है। अण्डे वास्तव में २ प्रकार के होते हैं- एक वे जिनसे बच्चे निकल सकते हैं और दूसरे वे जिनसे बच्चे नहीं निकल सकते। लेकिन ऐसे अण्डे जिनसे बच्चे नहीं निकलते और जिन्हें "निशेचित" अण्डे भले ही कहा जाए, उन्हें शाकाहारी कभी भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसे अण्डों की प्राप्ति भी एक जीव के अंदर से ही होती है और किसी वनस्पति में नहीं। जिस प्रकार एक बांझ स्त्री बच्चे को जन्म नहीं दे सकती लेकिन फिर भी वह जीवधारी स्त्री कहलाती है, उसी प्रकार चाहे "निशेचित" अण्डे से बच्चा नहीं हो सकता फिर भी अण्डा अण्डा ही है और उसमें जीवन है। विज्ञान द्वारा यह साबित हो चुका है कि अनिशेचित अर्थात् "इनफर्टाइल" अण्डे में भी जीवनांश होता है। अमेरिका के मिशिगन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने १९७१ में ही यह सिद्ध कर दिया था कि संसार का कोई भी अण्डा निर्जीव नहीं है, चाहे वह निशेचित हो अथवा अनशिचित जिसे मिथ्या नाम देकर "शाकाहारी" नाम से पुकारा जाता है। वैज्ञानिक स्केम्बल के अनुसार "अण्डा बहुत नाजुक होता है, वह प्रतिकूल वातावरण के प्रति भी संवेदनशील होता है। वस्तुत: अण्डे की उत्पत्ति बच्चे के सृजन के लिए होती है, मनुष्य खुराक के लिए नहीं। अण्डे में हवा के आने-जाने की नैसर्गिक व्यवस्था है। सफेद खोल के अन्दर बने सूक्ष्म छिद्रों में होकर ऑक्सीजन अंदर जाता है और जर्दी की भांति कार्बन-डाईआक्साइड को बाहर फैंकती है जिससे अण्डे का भ्रूर्ण जीवित रहकर विकास करता है। यही बात अनिशेचित "इनफर्टाइल" अण्डों पर भी लागू होती है।" इस प्रकार वैज्ञानिकों द्वारा यह बात सर्वमान्य है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमाम अण्डे सजीव होते हैं। वस्तुतः अण्डा गर्भ रस है और उसे शाकाहारी के अन्तर्गत गिनना एक बड़ा भारी धोखा है। जीवन की निशानी है श्वास और जब भी सांस आना बंद हो जाता है तो अण्डा सड़ जाता है और अनिशेचित अण्डा, जिसे धोखे से "शाकाहारी" अण्डा कहा जाता है, वह अण्डा भी सड़ जाता है। इसलिए ऐसे अण्डे खाना भी मांसाहार का ही भाग है। इसके अतिरिक्त बड़ी यातना देकर और व्यवसाय के लिए मादा बच्चों को शीघ्र जवान करने की भावना से उन्हें विशेष खुराक देकर २४ घंटों तक तेज प्रकाश में रखकर, उन्हें जगाकर, रात्रि को जल्दी-जल्दी खिलाकर और तंग पिंजरों में रखकर और नाना प्रकार यातनाएं देने के बाद बड़े पैमाने पर मुर्गी पालन उद्योग में इस प्रकार के अण्डे पैदा किए जाते हैं, जो कभी भी अहिंसक या शाकाहारी नहीं कहे जा सकते। इसलिए शाकाहारी व्यक्तियों के लिए यह परमावश्यक है कि वे इस प्रकार के अण्डों या उसके किसी भी अन्य भोजन के साथ मिश्रण से बचें।

होटलों में सावधानियां और हमारा कर्त्तव्य

आज के युग में यह तो सम्भव नहीं है कि हम पंचतारा या अन्य किसी होटल या रेस्टोरेंट में भोजन करने न जाएं। जाना भी पड़ता है और वहां भोजन भी करना पड़ता है लेकिन यदि शाकाहारी व्यक्ति कुछ सावधानियों का पालन करें तो वे शुद्ध शाकाहारी बने रह सकते हैं और अज्ञानवश जो अण्डे आदि का सेवन हो सकता है, उससे बच सकते हैं। जैसे, प्रथम सलाद को ही लीजिए। जिस कच्ची सलाद पर किसी भी प्रकार का मिश्रण नहीं है केवल वही सलाद लेनी चाहिए और जहां भी सलाद के ऊपर कोई आवरण है जो अक्सर "मेयोनीज" (अण्डे का भाग) के मिश्रण से ही बनती है, हम नहीं ले। यदि हमें स्वयं कोई शाकाहारी पार्टी होटल में करनी हो तो हम होटल वालों को यह निर्देश दे सकते हैं कि वे रशियन सलाद बनाने में "मेयोनीज" के स्थान पर केवल शुद्ध क्रीम आदि का ही इस्तेमाल करें। ऐसा होने से हम अण्डे के सेवन से बच सकते हैं। ठीक इसी प्रकार सूप लिया जाए तो हमें होटल के मैनेजर आदि से पूछ लेना चाहिए कि कहीं किसी सूप में हड्डी या मांसाहारी तत्व तथा आमिष भोजन तो नहीं मिलाया गया है। अधिकांशतः शुद्ध सब्जियों का सूप या टमाटर का सूप पूछताछ करने के बाद लिया जा सकता है। जब आप भोजन के बाद मिठाई को प्लेट में लेने लगेंगे तो उस समय हम केवल शुद्ध आईसक्रीम आदि का ही सेवन करें न कि कसाटा, जिसमें अण्डे का पदार्थ मिश्रित होता है। इसी प्रकार जब विवाह या जन्मदिवस की पार्टी के समय केक काटा जाता है तो भी बिना किसी आदेश के ऐसे केक में अण्डा मिश्रित होता है। हमारा यह कर्त्तव्य है कि ऐसे केक न खाएं। जब हमें स्वयं कोई पार्टी करनी हो तो हम होटल के अधिकारियों से निवेदन करके बिना अण्डों की केक बनवा सकते हैं। इस प्रकार के कार्य में कोई विशेष कष्ट नहीं होता। इसी प्रकार बड़े-बड़े शहरों में "एगलैस केक" बनाने वाले हैं। मेरा स्वयं का इस बारे में अनुभव है कि थोड़ी सी सतर्कता से हम केक, पेस्ट्री आदि में अण्डे के सेवन से बच सकते हैं और जहां कुछ पता नहीं हो तो स्वयं भी ऐसे साधारणतः परोसे जाने वाले केक, पेस्ट्री आदि न लें और अपने दूसरे शाकाहारी बन्धुओं को तथा परिवार के सदस्यों को भी लेने से रोकें। इन सावधानियों के बरतने से शाकाहारी व्यक्ति शाकाहारी बने रह सकते हैं। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए /- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

श्री वीरेन्द्र देव जी शर्मा, आर्य भवन, इन्द्रा कालोनी जि॰ सोनीपत (हर॰)
श्री योगन्द्र सिंह जी आर्य, आर्य इलैक्ट्रिक वर्कस, गुरुद्वारा रोहना मिल्स, मुज़फ्फर नगर (UP)
श्री सीताराम देवागन जी म॰ नं॰ E.W.S.-230 वैशाली नगर, जि॰ दुर्ग (MP)
श्री परशुराम शुक्ल, शुक्ल उद्योग शाहबाद जि॰ हरदोई (UP)
श्री उदयसिंह आर्य S/o श्री रामकिशन सैनी, 1232 वार्ड नं॰ I मुहल्ला सैनी आनन्दपुरा जि॰ रोहतक
श्री सूबेदार करतार सिंह आर्य म.नं. 437/15 बरोदा रोड, देवीपुरा गौहाना सोनीपत (हर॰)
श्री अशोक कुमार गुप्त S/o श्री कुन्जलाल जी आर्य मु॰पो॰ सिरसौद वाया मनपुरा जि॰ शिवपुरी (MP)
श्री नरेश पाल जी आर्य 2405/181 तालाब रोड त्रिनगर दिल्ली-35
श्री संजय कुमार आर्य 1/7743 गली नं॰ 2 बाबरपुर रोड ईस्ट गोरखपार्क शाहदरा दिल्ली-32
श्री अभय कुमार जिन्दल C/o मनोहरलाल जी जिन्दल, सराय किशनचन्द, आरा मशीन डिबाई बुलन्दशहर (UP)
श्री शुभराम जी आर्य म. नं॰ 279 पूठ कलां दिल्ली-41
श्री साहिबराम सुभाष मिल्स निकट पुलिस लाइन बिलासपुर (MP)
Ashok Kumar, J.E. P.W.D. Kalaktang (Arunachal Pradesh)
B.M. Sharma, H. No. 2382 Sector 13 Urban State, Karnal (Har.)
Suhas Jam Baya Saihal Railway Quarter J-56 C Near Natraj Colony DT. Pune
श्री सतीशचन्द जी खंडेलवाल, खंडेलवाल सदन, कूंचा पातीराम, सीताराम बाजार, दिल्ली-6
गायत्री शर्मा D/o श्री कल्याणदेव शास्त्री, न्यू सांगानेर रोड, कल्याणपुरी प्लाट-39 सोडाला जि॰ जयपुर-6
मंत्री जी आर्यसमाज मोंठ (झांसी) प्रचार्य दयानन्द बाल मंदिर मोंठ (झांसी) UP
श्री धनीराम जी शर्मा, धन कुटीर, पटेल नगर जासठ रोड, खतौली जि॰ मु॰ नगर
श्री डा॰ धर्मवीर जी, 320 पाना उद्यान नरेला दिल्ली-40

—धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/95
आर/ आर/ नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/6/95

जून १९९५

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९५
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/95

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान :- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

श्री ...
ग्राम ...
डा० ...
जिला ...

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जुलाई, १९९५

वर्ष २३ : अंक ९
दयानन्दाब्द : १७१
विक्रमसंवत् : आषाढ़, २०५२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९६

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
''दयानन्दसन्देश'' (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- स्वयं को छलते रहे! २
- वेदोपदेश ३
- सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण की अन्त्य-परीक्षा ४
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ ६
- आर्यजगत् ५ जुलाई ९२ में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश विषयक मेरे लेख पर पण्डित श्री युधिष्ठिर मीमांसक जी की प्रतिक्रिया ७
- शङ्का-समाधान ८
- श्री स्वामी सत्यपति को शास्त्रार्थ का आह्वान ८
- परोपकारिणी सभा के मन्त्री का पत्र ९
- ऋषि की शिष्ट भाषा-३७वें में ९
- सभामन्त्री के विचारों की समीक्षा ११
- श्री विरजानन्द जी के लेख का उत्तर १२
- 'सरलयोग से ईश्वर साक्षात्कार' पुस्तक के प्रकाशन में अवरोध १४
- सर्वनाश मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है १५
- ईसा मसीह कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे २१
- 'चरक' त 'सुश्रुत' आर्ष ग्रन्थ हैं, अशोक जी २५
- नमन तुम्हें है, हे ऋषिराज २६

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ रुपये और सजिल्द सोलह सौ रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं को छलते रहे!

[राम निवास 'गुण-ग्राहक' पु० आर्यसमाज, श्री गंगा नगर (राज०)]

हम अहम् की तुष्टि में ही, स्वयं को छलते रहे।
आत्मा को देह पुष्टि के, कर्म खलते रहे।।

१. लाख जन पीड़ित हों पर हो मम अहम् आहत नहीं।
सैकड़ों को दुःख दिया, दी एक को राहत नहीं।।
खिलखिलाया था अहं जब शेष जन जलते रहे.....**आत्मा** को...

२. कर्म रावण कंस के कर, फल चाहा श्रीराम सा।
शान्ति का उद्देश्य ले, जीवन जिया संग्राम सा।।
क्रूरता की तपन से शम् के शिखर गलते रहे......**आत्मा** को...

३. हम रहें धर्मात्मा बस दूसरों की दृष्टि में।
स्वयं कब सोचा कि हम क्या कर रहे हैं सृष्टि में।।
धर्म का रख आवरण अन्दर दुरित पलते रहे.....**आत्मा** को...

४. कष्ट संकट व्यग्रता, चिन्ता और व्याकुलता लिये।
संस्कार पाश में फँस, कुटिलता के संग जिये।।
पीड़ा के साधन समेटे, शन्ति पथ चलते रहे.... **आत्मा** को...

५. ओ मनुज! कुछ सोच क्यों है आज तेरी दुर्दशा?
तू है चेतन लाज कर, जड़ता में क्यों ऐसा फँसा??
वासना के त्रिगुण कण जन्मान्तरों फलते रहे.....**आत्मा** को...

६. अर्थ और सम्मान न पाने को गवाँया पुण्य धन।
अदूर दृष्टि ज्ञान चक्षु का ये अधूरा आँकलन।।
अनिष्ट को कर इष्ट तत् अनुरूप हम ढलते रहे.....**आत्मा** को...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है-महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- सब मनुष्यों का यह परम धर्म है कि वे विद्वानों की संगति से ज्ञानवर्धन कर उद्भिद:=दुखों का भेदन करने वाली प्रज्ञा बुद्धि का वर्धन कर दीर्घ जीवन को प्राप्त करने का प्रयत्न किया करें।।

प्रजापतिः ऋषिः। यज्ञः (यज्ञः प्रज्ञा वा) देवता। निचृज्जगती छन्दः।
निषादः स्वरः।।

पुनः मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह।।

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म्- **आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।**

(यजु० २५।१४)

पदार्थः- (आ) (नः) अस्मान् (भद्राः) कल्याणकराः (क्रतवः) यज्ञाः प्रज्ञा वा (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (विश्वतः) सर्वतः (अदब्धासः) अहिंसिताः (अपरीतासः) अन्यैरव्याप्ताः (उद्भिदः) य उद्भिन्दन्ति (देवाः) पृथिव्यादय इव विद्वांसः (नः) अस्माकम् (यथा) (सदम्) सी॰न्ति=प्राप्नुवन्ति यस्यां ताम् (इत्) एव (वृधे) वृद्धये (असन्) भवन्तु (अप्रायुवः) अनष्टायुषः (रक्षितारः) रक्षका (दिवेदिवे) प्रतिदिनम्।।

सपदार्थान्वयः- हे विद्वांसः! यथा (नः) अस्मान् (विश्वतः) सर्वतः (भद्राः) कल्याणकराः (अदब्धासः) अहिंसिताः (अपरीतासः) अन्यैरव्याप्ताः (उद्भिदः) य उद्भिन्दन्ति (क्रतवः) यज्ञाः प्रज्ञा वा (आ+यन्तु) प्राप्नुवन्तु। यथा (नः) अस्माकं (सदः) सीदन्ति=प्राप्नुवन्ति यस्यां तां प्राप्ता (अप्रायुवः) अनष्टायुषः (देवाः) पृथिव्यादय इव विद्वांसः (इत्) एव (दिवेदिवे) प्रतिदिनं (वृधे) वृद्धये (रक्षितारः) रक्षका (असन्) भवन्तु, तथानुतिष्ठन्तु।।

भाषार्थः- हे विद्वानों! जैसे- (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) कल्याणकारी (अदब्धासः) हिंसारहित (अपरितासः) अन्यों से अव्याप्त (उद्भिदः) दुःखों का भेदन करने वाले (क्रतवः) यज्ञौ वा प्रज्ञा = बुद्धि (आयन्तु) प्राप्त हों, और जैसे (नः) हमारी (सदम्) सभा में प्राप्त हुए (अप्रायुवः) अनष्ट आयु वाले अर्थात् युवक (देवाः) पृथिवी आदि के तुल्य विद्वान् (इत्) ही (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि के लिये (रक्षितारः) रक्षक हों, वैसा आचरण करो।।

भावार्थः- सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरदं विज्ञानास्य विदुषां संगेन पुष्कलाः प्रज्ञाः प्राप्य सर्वतो धर्ममाचर्यं सर्वेषां रक्षकैर्भवितव्यम्।।

भावार्थः- सब मनुष्य परमेश्वर के विज्ञान से और विद्वानों के सङ्ग से पुष्कल=पर्याप्त प्रज्ञा को प्राप्त करके सब ओर से धर्म का आचरण करके सबके रक्षक बनें।।

(पं० सुदर्शनदेव जी आचार्य द्वारा विरचित "दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर" से उद्धृत)

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यार्थ-प्रकाश के ३७वें संस्करण की अन्त्य-परीक्षा (३)

गतांक से आगे : क्रमश :

गत मास के अंक में सभा द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण के परिवर्धित पाठ, परिवर्तित पाठ, पाठ भेद तथा छूटे हुए पाठों के कतिपय स्थल दिखाये गये थे और वे केवल सप्तम समुल्लास के ही थे। पाठक विचार करें हमारा उन परिवर्धित व परिवर्त्तित व पाठभेदों के प्रदर्शन का उद्देश्य यह नहीं था कि उनसे कोई सिद्धान्त भेद या हानी होती है, किन्तु मूल-पुस्तक में इस प्रकार पाठवृद्धि करना, पाठान्तर करना अथवा पाठभेद करने से एक गलत परम्परा बन जाती है और लेखक की भाषा व भावों के साथ भी खिलवाड़ बन जाता है। सभा को महर्षि के मूल लेख की सुरक्षा करनी चाहिए। इस लेख में अष्टम समुल्लास के ही परिवर्धित व परिवर्तित पाठों के कतिपय पाठों के उद्धरण द्रष्टव्य हैं–

(१) परिवर्धित-पाठों के उदाहरण

१९०	१५पं०	सुनो! इसका अर्थ यह है
१९०	१८पं०	और जीवन होता है।
१९०	२८पं०	**मुख्य निमित्त कारण** परमात्मा
१९०	३०पं०	**साधारण निमित्त कारण** जीव
१९१	३५पं०	और यह भी परमात्मा की अद्‌भुत रचना का प्रभाव है, क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से जीव जन्तु नहीं निकाल सकता।
१९३	२२पं०	इसलिए सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी सहायता के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।
१९३	२९पं०	इससे त्रसरेणु, अणु (परमाणु और प्रकृति को)
१९४		**देश** काल और आकाश **तथा सब जीवों के अनादि** होने से
१९९	२९	वे प्रथम अध्याय में लिख भी आये हैं।
२०२	१६	और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मां-बाप की सन्तान है।
२०२	२२	इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।
२०४	११	तिब्बत से सूधे इसी देश में (आकर बसे थे)
२०५	१८	इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश, इनके स्वायंभवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा, जो आर्य के प्रथम राजा हुए, जिन्होंने यह आर्यावर्त्त बसाया है।
२०६	२पं०	इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका में लिखा है, देख लीजिए।
२०७	१५	जो वह ईसाई, मुसलमान, पुराणियों के कथनानुसार....।
२०८	३२	क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता।
२०८	३१	सूर्य के घूमने से नहीं।

(२) छुटे-पाठों के उदाहरण

१८०	२पं०	**हे श्वेतकेतो!** तू जान
१८८	७पं०	जिस **परमात्मा** से इस जगत्
१८९	४पं०	जीव करता **हुआ फंसता है** और
१८९	१६पं०	प्रकृति **अर्थात्** उपादान कारण
१९०	६पं०	लीन होकर वर्त्तमान था, **अभाव न था**
१९१	१६पं०	तदैक्षत बहुस्याम प्रजायेयेति सो कामयत बहु स्याम प्रजायेयेति
२०६	६पं०	जिसको इंगलिश भाषा में (एटम) कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) परिवर्तित-पाठों के उद्धरण

१९४ छपा — प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है। वे सर्वथा निराकार नहीं किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखता है।

मूल में — वह प्रकृति और परमाणु हैं जगत् का उपादान कारण बिल्कुल निराकार नहीं किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखता है।

१९४ छपा — (उत्तर) नहीं क्योंकि जिसका अभाव अर्थात् जो वर्तमान नहीं है, उसका भाव वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है।

मूल में — (उत्तर) नहीं क्योंकि जिसका भाव ही नहीं है, उसका भाव वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है।

१९४ छपा — परन्तु जो आदिकारण प्रकृति है वह अनादि है।

मूल में — परन्तु जो आदिकारण है वह अनादि है।

१९४ छपा — मूले मूलाभावाद्० (सांख्य० सू०)

मूल में — " यह वैशे०।

१९४ छपा — उत्पत्ति से पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् उत्पत्ति होती है।

मूल में — उत्पत्ति से पूर्व परमेश्वर, प्रकृति और देश, काल और आकाश होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है।

१९४ छपा — मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता। इसके अकारण सब कार्यों का कारण होता है।

मूल में — मूल का मूल अर्थात् कारण का मूल कारण न होने से अकारण कारण होता है।

२०२ छपा — (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में?

मूल में — (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा एक में

२०३ छपा — पूर्व में दृषद्वती, जो नेपाल के पूर्वभाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है।

मूल में — पूर्व में दृषदूती जो नेपाल, बंगाल और ब्रह्मा के अर्थात् नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के दक्षिण के समुद्र में मिली हैं।

२०६ छपा — उसी के आधार पृथिवी है।

मूल में — उसी परमेश्वर के आधार पृथिवी है।

२०८ छपा — इसलिए भूमि घूमा करती है।

मूल में — अर्थात् सूर्य के चारों ओर भूमि घूमा करती है।

२०२ छपा — कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं?

मूल में — कभी सृष्टि का प्रथमारम्भ है वा नहीं?

(४) अपरिमार्जित-भाषा के उदाहरण

१९३	पं०२१	इस वास्ते अदल बदल नहीं कर सकता
१९३	पं०२८	उसमें सिवाय जीव के ईश्वर के गुण।
१९४	७	यह तुम्हारा प्रश्न अविद्या के–लड़के के समान है।
१९४	१४	जैसे कोई गपोड़ा हांक दे कि
२०३	२२	उनमें लडाई-बखेड़ा हुआ किया
२०५	३	फ़ते पाके इस देश के राजा हुए
२०८	२१	अर्थात् आड़ में होता जाता है उतने में रात।
२०९	२४	इस देश में चीने हब्शी, और आर्यावर्त्त।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

अब तक सामान्यतः यह समझा जा रहा था कि ३७वां संस्करण अक्षरशः प्रथम पाण्डुलिपि ही है। परन्तु आपने पाण्डुलिपि को देखकर दया०स० के मई १९९५ के अंक में यह रहस्योद्घाटन किया है कि ३७वें संस्करण में अनेक पाठ परिवर्तित या परिवर्धित भी हैं। जो प्रथम पाण्डुलिपि में नहीं मिलते। सम्पादक ने सभा द्वारा प्रकाशित ३७वें संस्करण में जो अपनी ओर से कुछ शब्द लिखे हैं उनसे ज्ञात होता है कि मूल प्रति के पृष्ठ जहाँ अनुपलब्ध थे (जैसे १२वें समु० में) वहीं मुद्रण प्रति का आश्रय लिया गया है सर्वत्र नहीं। तो यह जिज्ञासा बनी रहती है कि ३७वें संस्करण के नवम समुल्लास में आप द्वारा दर्शाया गया परिवर्धन और परिवर्तन कैसे हुआ? आपकी समीक्षा से यह भी ज्ञात होता है कि ३७वें संस्करण में अन्यत्र भी ऐसे परिवर्धन और परिवर्तन हैं।

अच्छा यह होगा कि ३७वें संस्करण के सम्पादक श्री पं० विरजानन्द जी पहले ३७वें संस्करण में आप द्वारा दर्शाये गये नवम समुल्लास के परिवर्धन तथा परिवर्तनों के समाधानार्थ अपना वक्तव्य दे दें, तदुपरान्त ही आप स०प्र० के अन्य समुल्लासों के परिवर्धनों तथा परिवर्तनों पर लेखनी उठायें। परिवर्धन और परिवर्तन यदि द्वितीय पाण्डुलिपि (मुद्रण प्रति) के आधार पर भी किये गये हैं तो भी स्थिति अत्यन्त भयावह ठहरती है।

भवदीय-

१४-५-९५ **राम नाथ वेदालंकार**

वेदमन्दिर (गीता आश्रम), ज्वालापुर (हरिद्वार)

द०सन्देश में आपने स०प्र० के ३७वें संस्करण के बारे में जो लेख प्रकाशित किये हैं, तदर्थ आपको साधुवाद देता हूँ। सभा के अधिकारियों का इस ओर किंचित् मात्र भी ध्यान नहीं है।

२५ मई, १९९५ **-डा० भवानी लाल भारतीय**

८/४२३ नन्दनवन, जोधपुर

अप्रैल १९९५ के 'दयानन्द-सन्देश' में "सिर पर चोटी रखना वैज्ञानिक है" लेख पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई।

दि० ६-५-९५ **विश्वनाथ प्रसाद,**

कोखा (पूर्व) विलासपुर

जून १९९५ के 'दयानन्द-सन्देश' में प्रो० रत्नसिंह का लेख पढ़कर बहुत मन को कष्ट हुआ कि जो महर्षि जन्मभूमि पर ही महर्षि की मान्यताओं की हत्या हो रही है। यथार्थ में दयानन्द के नाम पर चलने वाले विद्यालयों में ऐसा नहीं होना चाहिये। और इसी अंक में प्रो० धर्मवीर का महर्षि दयानन्द के शिक्षा दर्शन पर कुठाराघात करने का दुस्साहस पढ़कर भी किस आर्य का मन दुःखी नहीं हुआ होगा। गुरुकुलीय क्षेत्र में सहशिक्षा को चालू करना गुरुकुल के उद्देश्य से ही मिला है, विद्या-अविद्या, सत्य-असत्य, पाप-पुण्य की भाँति गुरुकुलीय जीवन पद्धति सह-शिक्षा का मेल नहीं हो सकता। दोनों ही विद्वान् लेखकों का प्रयास सराहनीय है। भगवान् हम आर्यों को सद्बुद्धि व प्रेरणा देवें कि हम महर्षि के विचारों से विचलित न होकर सच्चे आर्य बनें रहें।

दि० १०-६-९५ ***श्यामलाल***

डी-१७, गुरु नानकपुरा, मोदी नगर

साहित्य-समीक्षा

१) **अनुभूति के क्षण** (कविताओं का संग्रह) **लेखकः** श्री महीपाल सिंह। **प्रकाशकः** अम्बाला साहित्य मञ्च, बी०सी० बाजार, अम्बाला छावनी। **मूल्यः** ४० रुपये मात्र। पुस्तक की प्राप्ति स्थान=प्रकाशक का पता ही है।

इस पुस्तक के लेखक बहुआयामी प्रतिभासम्पन्न युवा कवि श्री महीपाल सिंह है। इस काव्य संग्रह में पिछले दो दशकों में हिन्दी-कविता की रचना धर्मिता के अनेक नये प्रयोग किये गये हैं। यह उनके अनुभव व चिन्तन के परिणामस्वरूप ही संग्रह किया गया है। जिन्दगी, जीवन मृत्यु, सुख-दुखः आदि कविताओं में कवि के बहुत ही हृदयस्पर्शी भावों का आकंलन हुआ है। 'एक फूल की आत्मकथा', कविता तो भाव विभोर ही कर देती है। इसी प्रकार कुछ ग़ज़लों का भी संग्रह किया है। काव्यरसियों को इस का रसस्वादन अवश्य करनी चाहिये।

-राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यजगत् ५ जुलाई ९२ में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश विषयक मेरे लेख पर पण्डित श्री युधिष्ठिर मीमांसक जी की प्रतिक्रिया

-डॉ० रामनाथ वेदालंकार

'आर्यजगत्' के उक्त अंक में मेरा एक लेख "सत्यार्थप्रकाश की दूसरी पाण्डुलिपि उपेक्षणीय नहीं" इस शीर्षक से छपा था। वही लेख अब 'दयानन्द सन्देश' के मई ९५ के अंक में "सत्यार्थप्रकाश की दूसरी पाण्डुलिपि की उपयोगिता क्यों" इस शीर्षक से संपादक जी ने प्रकाशित किया है। पण्डितवर श्री युधिष्ठिर मीमांसक जी ने आर्यजगत् में मेरा उक्त लेख पढ़कर मुझे लिखे पत्र में अपने जो विचार व्यक्त किये थे, वे पाठकों के सामार्थ यहां दिये जा रहे हैं-

१- "आपका सत्यार्थप्रकाश विषयक लेख आर्यजगत् के ५ जुलाई १९९२ अंक में छपा हुआ पढ़ा। श्री पण्डित दैवकरणि जी ने सत्यार्थप्रकाश के दोनों हस्तलेखों के मिलानपरक जो १७ स्थल प्रकाशित किये हैं, उनको सामने रख कर आपने जो उत्तर दिया है वह युक्ति युक्त है। परन्तु आपने दोनों हस्तलेख यदि स्वयं देखे होते, तो आपके समाधान में विशेष गौरव आता।"

२- "यह कल्पना करना भी संगत नहीं कि प्रतिलिपिकर्ता ने स्वामी जी के भावों को यथावत् विचरित करने का प्रयत्न किया। जिस काल में सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण लिखा गया और प्रकाशित हुआ, उस समय ऋषि दयानन्द के पास भीमसेन और ज्वालादत्त के अतिरिक्त किसी लेखक की उपस्थिति का वर्णन ऋषि दयानन्द के पत्रों में कहीं नहीं मिलता। दिनेशराम का नाम पत्रों में आता जरूर है, यह वह कितने समय उनके पास रहा इसकी प्रतीति नहीं होती। अधिक काल तक रहने वाले पण्डित भीमसेन शर्मा और ज्वालादत्त शर्मा ही हैं। इनके विषय में स्वामी जी की क्या सम्मति थी इसका उल्लेख अनेक पत्रों में मिलता है। इनकी अयोग्यता आदि कई कारणों से ऋषि दयानन्द ने कई बार हटा दिया था; परन्तु क्षमा मांगने पर इन्हें पुनः रख लिया, इसका भी उल्लेख कई पत्रों में हुआ है। इसलिए इन्होंने ऋषि दयानन्द की भावना के अनुकूल प्रेस कापी में विशदीकरण किया होगा, यह मानना सम्भव नहीं। **जहाँ तक मेरा ऋषि दयानन्द के सभी ग्रन्थों के हस्तलेखों का अध्ययन है, उसके अनुसार प्रेस कापी भी ऋषि दयानन्द ने पुनः संशोधित करके लिखवाई।"**

३- "आपने जो द्वितीय कापी परोपकारिणी सभा के संग्रह में है उससे अतिरिक्त प्रेस कापी की कल्पना की है, यह ठीक नहीं है। उक्त द्वितीय कापी ही प्रेस में भेजी गयी थी। इस पर मुन्शी समर्थदान के अनेक संशोधन है। परोपकारिणी सभा में जिन ग्रन्थों की द्वितीय कापी है वे सब प्रेस से लौटी हुई हैं। यहाँ तक कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और यजुर्वेद और ऋग्वेदभाष्य के आरम्भिक भाग, जो लाजरस प्रेस बनारस तथा बम्बई में छपे उनकी भी प्रेस कापी प्रेस से लौटी हुई है। यह इन कापियों के निरीक्षण से स्पष्ट है।"

इस संख्या ३ के सम्बन्ध में पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी के अतिरिक्त परोपकारिणी सभा के संयुक्त मन्त्री पण्डित धर्मवीर जी ने भी 'आर्यजगत्' में मेरा लेख पढ़ने के पश्चात् मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। तदर्थ दोनों महानुभावों के प्रति कृतज्ञ हूँ।

जहाँ तक ३७वें संस्करण का सम्बन्ध है, इसके विषय में मेरा मत है कि यह सत्यार्थप्रकाश पर भीषण संकट है; यदि यह सत्यार्थप्रकाश पर हावी होता चला गया तो हम अपने हाथों ही महर्षि के पवित्र सत्यार्थप्रकाश को दूषित करने में कारण बनेंगे। इसके १५ या २० प्रतिशत से अधिक पाठ ग्राह्य नहीं है, अतः इसे इतनी ही महत्ता मिलनी चाहिए।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का-समाधान
नित्यकर्मों में अनध्याय नहीं

अनेक स्वाध्यायशील व्यक्ति यदा-कदा ऐसी शंकायें करते रहते हैं कि क्या नित्यकर्मों में कभी अवकाश नहीं होता। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में बहुत ही स्पष्ट लिखा है–

नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसमं हि तत् स्मृतम्।।मनु०।।

अर्थात् ''वेद के पढ़ने-पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पंच महायज्ञों के करने और होममन्त्रों में अनध्याय विषयक अनुरोध नहीं है। क्योंकि नित्यकर्म में अनध्याय नहीं होता। जैसे श्वास-प्रश्वास सदा लिये जाते हैं, बन्द नहीं किये जाते, वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिये न किसी दिन छोड़ना। क्योंकि अनध्याय में भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्य रूप होता है।''

अग्निहोत्र भी नित्यकर्म है– अतः उसके करने में भी अवकाश नहीं होना चाहिए। एक व्यक्ति ने शंका लिखी है– क्या मासिक धर्म होने के बाद भी स्त्री यज्ञादि कार्य कर सकती है। महर्षि ने लिखा है– ''राजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे। न वह स्त्री कुछ काम करें। किन्तु एकान्त में बैठी रहे। क्योंकि इन चार रात्रियों में से समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है।'' (सं०वि० गर्भाधान०)

यह शंका रायपुर से श्री देवव्रत आर्य ने तथा आसनसोल से श्री प्रह्लादगिरी आर्य ने लिखी है कि ऋतुकाल में स्त्री के हाथ का छुआ भोजन करने का भी जब निषेध है तो ये पवित्र अग्नि में आहुति कैसे देंगी?

इस शंका के समाधान में विनम्र निवेदन है- ऋतुकाल में स्त्री के छुए भोजन का निषेधादि मात्र इसलिए बताया है कि पुरुष स्त्री समागम से बचा रहे क्योंकि इस दशा का समागम महारोगकारक होता है। परन्तु यह दोष अग्निहोत्रादि शुभ कर्मों के करने में नहीं है। क्या आप यह बतायेंगे कि क्या स्त्री इस दशा में श्वासप्रश्वास लेना छोड़ देती है? अथवा अन्य शौचादि कार्यों से दुर्गन्धादि नहीं फैलती? फिर शुद्धि के हवनादि का निषेध क्यों? हाँ यह अवश्य करना चाहिये कि वह एकान्त में ही रहकर अग्निहोत्रादि कर्म किया करे। किसी भी पुरुष का स्पर्श व दर्शनादि न कर सके तो ऋतुकाल में अग्निहोत्रादि करने में कोई दोष नहीं होता। और यह भावना पौराणिक काल की तथा शास्त्रविरुद्ध है कि इस दशा में स्त्री अग्निहोत्र भी न करे।

–राजवीर शास्त्री

श्री स्वामी सत्यपति जी को शास्त्रार्थ का आह्वान

स्वामी जी महाराज द्वारा लिखित 'सरलयोग से ईश्वर साक्षात्कार' पुस्तक दृग्गत हुई। यद्यपि समस्त पुस्तक की भाषा निबन्धन शैथिल्यवती है। पर हमें उससे अभिप्राय नहीं। इस पुस्तक के अन्तिम भाग में 'सुख किसका गुण है' इस शीर्षकान्तर्गत **'सुख प्रकृति का गुण है'** इसी प्रकार **'दुःख प्रकृति का गुण है।'** यह स्वमतस्थापनार्थ नवीन मिथ्या तथ्य की प्रतिष्ठा की है। इस लेख पर हमने जब महाराज जी का ध्यान आकृष्ट किया तो आवेश में होकर कुवाच्यवर्षण ही पल्ले पड़ा। अब वे विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से अपने शिष्यों से लेख लिखवाने में लगे हैं और एक भ्रान्ति फैला रहे हैं।

अतः मेरा विनम्र निवेदन है कि या तो स्वामी जी यह स्पष्ट घोषणा करें कि मेरी मान्यता मिथ्या है अथवा शास्त्रार्थ के लिये मेरे आह्वान को लिखित रूप से स्वीकार करें।

दिनांक १०-५-९५

आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय
आर० जैड०- २६९३/३०,
तुगलकाबाद विस्तार, नई दिल्ली-१८
दूरभाष- ६९८९८३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यार्थप्रकाश का ३७वां संस्करण

श्रीमति परोपकारिणी सभा के मन्त्री का पत्र

कलकत्ता
दिनांक २५-५-९५

आदरणीय श्री धर्मपाल जी,

सादर नमस्ते।

आशा है आप सपरिपवार सकुशल होंगे। इधर बहुत दिनों से आपसे सम्पर्क नहीं कर पाया। सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण का मुद्दा आपने बहुत जोर-शोर से उठाया है। तदर्थ आपको धन्यवाद।

परोपकारिणी सभा के मंत्री के नाते मुझे इस विषय पर उदासीन तथा विवश समझ लेना उचित नहीं है। कठिनाई यह है कि जिन विद्वानों से यह कार्य निश्पक्षता से कराया जा सकता है उनके पास समय नहीं। जो विद्वान् उपलब्ध हैं उनके साथ किसी प्रकार का आग्रह लगा है।

यदि मैं भूल पर नहीं हूँ तो स्वामी ओमानन्दजी नये पर और उनके ही शिष्य श्री धर्मपाल जी पुराने वाले पर अपनी जिद्द[1] पर अड़े हैं। कौन समझाए इन दोनों को कि सत्यासत्य का निर्णय ही हमारा ध्येय होना चाहिए।

मैं विद्वान नहीं हूँ। किन्तु सत्यार्थप्रकाश के साथ बचपन से जुड़ा हूँ। मेरी ऐसी धारणा है कि ऋषि के दोनों लेखों को महत्त्वपूर्ण मानकर कुछ काम होना चाहिए। नये वाले में भी मुझे बहुत कुछ नवीनता मिली है।

आपने यदि अन्त्य परीक्षा आरंभ की है तो मेरा यह लेख भी प्रकाशित कर दीजिए। मैंने किसी पत्र को यह सब प्रकाशनार्थ नहीं भेजा है। यदि आपको अनुकूल न लगे तो भाई सत्यानन्द दिल्ली को लौटा दीजिए।

सबसे नमस्ते

आपका,
गजानन्द

---

१. उपरोक्त शब्द पर : अत्यन्त व्यथित हृदय से

मेरा विनम्र निवेदन

"यदि आपने मुझे कभी विस्तार से सुना होता (सुना भी है) तो शायद आप ऐसी धारणा न बनाते। आप वरिष्ठ है: आपने धारणा बनाई है तो जरूर कोई मेरे पक्ष की कमज़ोरी देखी होगी। लेखन का मेरा व्यक्तिगत विशेष अभ्यास तो नहीं है: हाँ यदि आपने मुझे एक सहयोग नहीं दिया तो मुझे यह अभ्यास भी करना होगा। लेख प्रलेख के स्थान पर परस्पर आमने सामने बैठकर प्रीतिपूर्वक यदि बातचीत एवं स्वाध्याय का समय निकाल/निकलवा सकें तो शायद प्रत्येक पक्ष को ज़्यादा अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है और शायद यह अधिक ग्राह्य भी होगा। हमारे लेख प्रलेख से आर्य जनता कम अपितु सत्यार्थप्रकाश की मीन-मेख निकालने वाले दुष्ट प्रवृत्ति के विरोधी मत वाले लोग ज़्यादा लाभ उठावेंगे। ऐसा सोचकर ही हम ने अजमेर में हुई मीटिंग के बाद कुछ नहीं लिखा। शायद सभा कुछ करेगी। सभा ने कुछ नहीं किया (मेरी दृष्टि में) (आपसे फोन पर बात भी हुई थी) सभा पर या आप पर कुछ कहना मेरा उद्देश्य नहीं है। आप अन्यथा न लें यदि आप जैसा व्यक्ति भी ५-४ विद्वानों को नहीं जोड़ सकता तो इस बात को कौन करेगा? हांलाकि मैं ऐसा मानता हूँ कि यदि आप स्वयं व्यक्तिगत समय दें तो जिनके विषय में आप सोचते हैं कि समय नहीं दे रहे उनका भी समय लिया जा सकता है। मेरा आपसे व्यक्तिगत पूर्ण सहयोग है। स्थानाभाव है, निवेदन अधिक हो गया, यदि आप ध्यान दे सकें तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी और आर्य जनता को अधिक लाभ होने की उम्मीदें बढ जायेंगी।

परमात्मन्! "धियो यो नः प्रचोदयात्"

—धर्मपाल आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि की शिष्ट भाषा-३७वें में

बहस का विषय हो सकता है कि किस संस्करण को युक्तियुक्त माना जाये। किन्तु यह निश्चित है कि अभी तक चले आ रहे प्रकाशनों में कुछ भूलें यथावत चली आ रही हैं। परस्पर विरोधी मान्यताऐं भी छपती आ रही हैं। नियोगप्रकरण में स्त्री का नियोग समानवीर्य अथवा उत्तमवीर्य के पुरुष के साथ होना चाहिये। चौथे समुल्लास की इस संहिता को स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के ४७वें सूत्र ने नकार दिया है। जबकि ३७वां संस्करण का सूत्र संहिता के अनुकूल है।

ऋषि ने भंगी चमार आदि को नीच नहीं लिखा है जबकि सभी प्रकाशनों के द्वितीय समुल्लास और दशवें समुल्लास में नीच शब्द चला आ रहा है। यदि अनुभव किया जाए तो भंगी चमार के साथ नीच लिखना अपमानजनक है। इसी तरह ११वें समुल्लास में पुष्टिमार्ग को कुष्टिमार्ग कहना अपमानजनक है। दूसरे किसी सम्प्रदाय को पांखडी तथा नरकगामी लिख देना अशिष्टता में नहीं आता। ऋषि ने अशिष्ट शब्दों के प्रयोग गुरडम फैलाने वाले तथा कल्पितनामों से ग्रन्थ लिखने वालों के प्रति व्यक्ति स्तर पर अवश्य किए हैं किन्तु समूह को नहीं किया। ३७वें संस्करण में भी दो स्थानों पर अशिष्ट प्रयोग किस स्तर के लोगों पर किया गया। पढ़ने से विदित हो जाता है।

चौदवहें समुल्लास की बढ़ी हुई आयतों में हम मुसलमानों के धार्मिक कृत्य खतना और मुर्दों पर पढ़े जाने वाला फातिहा की जानकारी पाते हैं जो अब तक के संस्करणों में नहीं थी।

३७वां संस्करण ऋषि की पांडुलिपि है। अभी तक अनेकों विद्वानों ने सत्यार्थप्रकाश को बोधगम्य बनाने के लिए अनेकों टिप्पणियां लिखी हैं फिर भी शंकाएं नहीं मिटीं। पं॰ बुद्धदेव जी विद्यालंकार इस ग्रन्थ को दादा पौथी कहा करते थे। दादा पौथी को समझने के लिए दादा के ही लिखे पृष्ठों की सहायता प्राप्त करा देने वाली संस्था का आभार चाहे न मानें किन्तु उसे गालियां तो नहीं देनी चाहिएं। दोनों संस्करणों में मान्यताओं का कहीं विरोध नहीं है। एक दूसरे के पूरक हैं। हम अनुमान, लगाएं हमारी मानसिकता की धरातल का महर्षि को प्रथम संस्करण सत्यार्थप्रकाश में जब अनेक भूलों की जानकारी मिली तब दूसरा संस्करण लिख देना पड़ा। यद्यपि पहला संस्करण छपना बन्द हो गया और उसमें सिद्धांत विरोधी बातें हैं किन्तु विवेकशील पाठकों के लिए वह संस्करण आज भी उपयोगी है।

हमारे ऋषि के हाथ का एक-एक कागज का टुकड़ा हमारी निधि है। सौभाग्य से परोपकारिणी सभा के वर्तमान अधिकारी वह सब निधि जनता के सम्मुख ला देना चाहते हैं। अभी ग्रन्थ को बने समय ही कितना बीता है। युगयुगान्तर तक ऋषि के समस्त ग्रन्थों का बड़ा सुन्दर भविष्य है। हमें आशा है कि आने वाली पीढ़ियां ऋषि की विद्वता के प्रति और अधिक जागरुक होंगी। कभी समय आयेगा कि ग्रन्थों में वर्णित ऐतिहासिक तथ्य वैज्ञानिक बातें और गणित की गुत्थियों का परीक्षण हुआ करेगा।

शायद बहुतों को पता नहीं कि सिखों के गुरुग्रन्थ साहब की दो प्रतियां हैं कुछ अन्तर होते हुए भी दोनों पूज्य और प्रामाणिक मानी जाती हैं क्यों दोनों प्रतियां समकालीन हैं। पांचवें गुरु अर्जुनदेव ने संतों की वाणी को संकलित करके ग्रन्थ के रूप में जिल्द बंधवाने के लिए अपने सेवक भाई बन्नों को लाहौर भेजा। भाई बन्नों ने उसी ग्रन्थ की प्रतिलिपि करके एक और जिल्द बंधवाली तभी से दोनों ग्रन्थ मान्य कोटि में आ गये। गुरु तेगबहादुर ने उसमें से एक प्रति को प्रामाणिक घोषित किया।

लिखने का आशय है कि यदि विद्वान् लोग समय देकर इस पर कुछ काम करें तो सत्यार्थप्रकाश का सुन्दर स्वरूप एक जिल्द में निखर कर आ सकता है। वर्तमान संस्करणों में ऐसे बहुत से स्थल है जहां कुछ वाक्य छूट गए लगते हैं। ११वें समुल्लास में एक प्रश्न है-तो हम कौन है? उत्तर- तुम पापी हो। प्रश्न से पूर्व एक पंक्ति ऐसी छूटी है जिससे प्रश्नकर्त्ता को 'तो' से प्रारंभ करना पड़ा है। निश्चय ही वह पंक्ति ''परन्तु तुम तो ब्राह्मण नहीं हो'' है जो ३७वें उपलब्ध है। इसी प्रकार चौथे समुल्लास में एक प्रश्न- ''यदि किसी का छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किसके

(शेष पृष्ठ १३ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभामन्त्री के विचारों की समीक्षा

(१) सभा के मन्त्री के विचार अत्यन्त श्रेष्ठ व ग्राह्य हैं कि हमें महर्षि के दोनों प्रतियों की सुरक्षा तथा मान्य करना चाहिये। परन्तु ३७वाँ संस्करण तो इतने पाठ परिवर्धन, पाठवर्तन, पाठभेदों से भरा हुआ है, जिसका दिग्दर्शन द०सं० के अंकों में कराया गया है। और मन्त्री जी ने यथार्थ स्थिति को बिना समझे ही यह लिखा है कि ३७वें संस्करण का मुद्दा आपने जोर-शोर से उठाया हुआ है। वास्तव में हमें ऋषि के दोनों लेख मान्य है, ऋषि के लेख में मिलावट स्वीकार नहीं।

(२) मन्त्री जी ने ३७वें संस्करण की कुछ शिष्ट बातें का उल्लेख भी किया है। शिष्ट बातें किस-ऋषिभक्त को अच्छी न लगेंगी। परन्तु उनका समाधान यदि द्वितीय संस्करण से हो जाता है तो भी कोई बुरी बात नहीं।

(क) जैसे नियोगप्रकरण की बात में मुझे तो कोई भेद प्रतीत नहीं होता। यदि और स्पष्ट करते तो भेद प्रतीत होता और विचार किया जाता।

(ख) ऋषि ने भंगी चमार आदि को नीच लिखा है इसमें थोड़ा समझने में अन्तर है। 'नीच' शब्द वर्तमान में अपमानजनक लगता है किन्तु ऋषि ने इस शब्द का प्रयोग संस्कृत के 'नीचैः' शब्द के आधार पर किया है। हमें उसी भाव को ग्रहण करना चाहिए। यह अंग नीच है, यहाँ निचला है, भाव ही ऋषि का लेना चाहिए। देखिये ऋषि का अन्यत्र भी इसी भाव में प्रयोग-

(अ) (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र है। (स०प्र० ४ समु०)

(आ) (पद्भ्याम्) जैसे पग सब के नीच अंग है, वैसे मूर्खतादि नीच गुणों से शूद्र वर्णसिद्ध होता है। (ऋ०भा० भू० सृष्टि विद्या०)

(इ) **अधर्मचर्यया पूर्वो पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते** वैसे ही अधर्माचरण से पूर्व पूर्व अर्थात् उत्तम उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे नीचे वाले वर्ण को प्राप्त करता है।

, इनके अतिरिक्त सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण में ही अन्य स्थलों पर आप नीच शब्द को कैसे हटाओगे। जैसे- 'शुद्र नीच लोग मन्दिर में नैवेद्य लाते हैं।'' (स०प्र० ११ वां समु०) इसलिए ऋषि के भाव को समझना चाहिए।

(३) 'इसी तरह ११वें समु० में पुष्टिमार्ग को कुष्टि मार्ग अपमानजनक है।' यद्यपि लेखक अपने भावों के ही विरुद्ध लिख गये- 'दूसरे किसी सम्प्रदाय को पाखण्डी तथा नरकगामी लिख देना अशिष्टता में नहीं आता।' परन्तु ऋषि की पूर्वापर भाषा को पढ़ने से यही भाव स्पष्ट होता है- देखिये-दोनों ही लेखों में (प्रतियों में) (द्वि०सं०में) सच पूछो तो पुष्टिमार्ग नहीं किन्तु कुष्टिमार्ग है। जैसे कुष्टा शरीर भी सब धातु पिघल पिघल के निकल जाती है और विलाप करता हुआ शरीर छोड़ता है, ऐसी ही लीला इनकी भी देखने में आती है। इस लिये 'नरकमार्ग' भी इसी को कहना संघटित हो सकता है।

(३७वां सं० में) ये अपने अपने सम्प्रदाय को पुष्टिमार्ग कहते हैं अर्थात् खाना-पीना पुष्ट होना, सब स्त्रियों से यथेष्ट भोग-विलास करना। परन्तु जब भगन्दरादि रोग हो जाते हैं तो यही मत साक्षात् नरकमार्ग हो जाता है।

(शेष पृष्ठ १३ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री विरजानन्द जी के लेख का उत्तर

दयानन्द-सन्देश के पाठकों की सेवा में परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ३७वें संस्करण की अन्त्य-परीक्षा में मैंने यह दिखाने का प्रयास किया था कि यह संस्करण महर्षि-दयानन्द जी मूल-प्रति और प्रेस कापियों में से किसी के भी अनुरूप नहीं है। मूलप्रति के अनुसार भी जो पाठपरिवर्धन, पाठपरिवर्तन, पाठभेद तथा पाठव्यत्यय के उद्धरण देकर अपनी बात की पुष्टि की थी। जिसे मैंने मूलप्रति से अक्षरशः मिलान करके ही लिखा था। परन्तु इतने अधिक परिवर्तन करने वाले को मेरी बातों का कोई उत्तर तो मिला नहीं, इसीलिए उसे सहन नहीं हुआ। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि यदि विरजानन्द जी मेरे लेख के एक उद्धरण को भी झूठा सिद्ध करदें तो मैं उनके कार्य से सहमत हो जाऊँगा। जून के परोपकारी पत्र जो उन्होंने लेख दिया है, वह मेरे लेख का उत्तर ही नहीं है।

लेख का उत्तर– लेखक का यह आरोप सर्वथा मिथ्या है कि मैंने पर्याप्त निराधार बातें लिखी हैं। यदि धैर्य से बैठकर लिखते तो वे अवश्य निराधार बातों को दर्शाने का प्रयत्न करते। और अपने किये पर पानी फेरने की दृष्टि से कैसी-कैसी बुद्धिहीन बातें लिखी हैं देखिए-

(क) ऐसे ऐसे पाठभेद तो मैंने हजारों एकत्र कर रखें है।

(ख) अनेक लोग यह नहीं जान पाये कि सभा के आदेश से मैंने क्या कार्य किया है।

(ग) कृपया दोनों पाण्डुलिपियों को सामने रखकर एक एक अक्षर मिलाये जायें।

(घ) यदि शास्त्री जी चाहें तो उनके पास पहुँचकर वार्तालाप किया जा सकता या तो कोई यह कार्य इनसे करवा रहा है और ये इशारे पर चल रहे हैं। मेरा पुनः श्री विरजानन्द जी से विनम्र निवेदन है कि वे मेरे लेख को पुनः पढ़ें और विचार करें क्या मैंने अक्षरशः बिना मिलाये ही पाठभेद दर्शाये हैं और मेरा उद्देश्य क्या है तथा निराधार बातें कौन सी लिखी हैं। मेरे पास तो कभी भी आ सकते हैं, एकत्र बैठकर समस्त बातें पर विचार हो जायेगा। और यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि शब्द जाल से कौन जनता में भ्रम फैला रहा है? आप लिखते हैं कि सारे पाठों का उत्तरदायित्व मेरा है, यह बहुत ही अच्छी बात है कृपया मेरे द्वारा दर्शाये पाठवर्धनों, पाठवर्तनों, पाठभेदों तथा पाठों के व्यत्ययों का उत्तर आपने क्यों नहीं दिया। क्या यही ऋषि भक्ति है? ऋषि के मूल लेखों में परिवर्तन करके 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटे' इस कहावत के अनुसार हमें ही धमका कर चुप करना चाहते हैं, यह तो आपका भ्रम है। और जितने अंश में मैंने लेख लिखा है, उतनी सीमा में ही उत्तर दीजिये। ऐसा न करके अपने दोषों पर परदा डालने के लिए ऐसी बातें क्यों लिखी हैं-

(क) आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट की तरह मैं तो ३४ और ८ मिलाकर ४२ नहीं छाप सकता।

(ख) ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित फोटो प्रति पर ही कार्य विचार कर लीजिए।

(ग) शास्त्री जी केवल विरोध के लिए विरोध कर रहे हैं।

(घ) क्यों प्रचार ट्रस्ट में इसके पाठ स्वीकार किए जा रहे हैं।

(ङ) ऋषि के आदेश के विरुद्ध ग्रन्थ पढ़कर परीक्षा देकर आजीविका का साधन भी बनाया हुआ है।

(च) ऐसे आरोप लगाते हुए पं॰ राजवीर शास्त्री को किंचित भी लज्जा नहीं आती। इत्यादि व्यक्तिगत आक्षेपों से और विषयान्तर होकर लेख का कलेवर बढ़ाकर बात अब बनने वाली नहीं है। अब तो इस घोटाले का उत्तर देना ही होगा। मैंने जो प्रश्न पूछे हैं, उनका उत्तर देवें। अन्यथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...आप्त पृष्टः को विदायन् आचष्टे' कहावत अनुसार आप का समस्त लेख ही व्यर्थ हो जायेगा। और इससे पहले लेख को गुरुतुल्य मानकर कुछ सीमाओं में तो रहना चाहिए। मेरा विनम्र निवेदन है–

(१) यह ३७वाँ संस्करण प्रथम प्रति के अनुसार न होकर अनेक पाठ परिवर्धनों व पाठ परिवर्तनों से भरपूर है।

(२) ऋषि के लेख होने से हमें दोनों प्रतियाँ मान्य है। परन्तु यह तो किसी भी प्रति की कापी नहीं है।

(३) क्या आपने ये पाठवर्धन या पाठवर्तन के लिए सभा के अधिकारियों से अनुमति ली है यदि ली है तो सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करें।

(४) मैंने जो कुछ भी लिखा है वह अक्षरश: मिलाकर लिखा है। यदि ऐसा न हो तो प्रतिवाद कीजिए।

–राजवीर शास्त्री

(पृष्ठ १० का शेष)

करें?" उत्तर- देवर के साथ। परन्तु देवर शब्द का अर्थ जैसा तुम समझे हो वैसा नहीं।

इस उत्तर में प्रश्नकर्ता ने देवर शब्द का प्रयोग ही नहीं किया तब देवर शब्द का अर्थ न समझने की बात कहां से आई। निश्चय ही प्रश्न कुछ अधूरा है। पूरा प्रश्न ३७वें में इस प्रकार है- जिस विधवा का देवर अर्थात् पति का छोटा भाई न हो तो नियोग किसके साथ करे।

मूर्तिपूजा के १६वें दोष में एक शब्द कुछ खटकता है वह है 'दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का।' मन्दिरों में जाने वालों को यह शब्द सत्यार्थप्रकाश के प्रति आकर्षण का द्योतक बनेगा क्या? निश्चय ही ग्रन्थ का स्तर कमजोर होता है।

गजानन्द आर्य

(पृष्ठ ११ का शेष)

(४) वर्तमान संस्करणों में ऐसे बहुत से स्थल हैं जहां कुछ वाक्य छूट गए लगते हैं। ११वें समु॰ में एक प्रश्न है- हम कौन है? उत्तर- तुम पोप हो। प्रश्न से पूर्व एक पंक्ति ऐसी छूटी है जिससे प्रश्नकर्ता को 'तो' से प्रारम्भ करना पड़ा है। निश्चय ही वह पंक्ति- "परन्तु तुम तो ब्राह्मण नहीं हो' है जो ३७वें संस्करण में उपलब्ध है।

यहाँ प्रकरण को देखने से सब सुस्पष्ट है कोई भ्रान्ति नहीं। देखिए प्रश्न से पूर्व का लेख–

"परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हो उनका न ब्राह्मण नाम और न उनकी सेवा करनी योग्य है।" (स॰प्र॰ द्वि॰सं॰)

(५) "इसी प्रकार चौथे समु॰ में एक प्रश्न-यदि किसी को छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किस के साथ करें? उत्तर-देवर के साथ। परन्तु देवर शब्द का अर्थ जैसे तुम समझे हो वैसा नहीं।

इस उत्तर में प्रश्नकर्त्ता ने देवर शब्द का प्रयोग ही नहीं किया, तब देवर शब्द का अर्थ न समझने की बात कहाँ से आई। निश्चय ही प्रश्न कुछ अधूरा है, पूरा प्रश्न ३७वें में इस प्रकार है- जिस विधवा का देवर अर्थात् पति का छोटा भाई न हो तो नियोग किस के साथ करे।"

द्वितीय संस्करण के पूर्वापर प्रकरण को देखने से भी यह स्पष्ट हो जाता है। इस प्रश्न से पूर्व वेद मन्त्र की व्याख्या में 'जैसे (देवरं विधवेव) देवर को विधवा समान स्थान, शय्या में एकत्र होकर सन्तानों को उत्पन्न करती है।" यहाँ 'देवर' शब्द का प्रयोग देखकर यह प्रश्न किया गया है। प्रश्न- यदि किसी का छोटा भाई न हो तो विधवा नियोग किसके साथ करे? इसलिए मन्त्री जी का द्वितीय संस्करण की भाषा को अस्पष्ट व सन्दिग्ध बताना ठीक नहीं है।

–राजवीर शास्त्री

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सरलयोग से ईश्वर साक्षात्कार' पुस्तक के प्रकाशन में अवरोध

इस पुस्तक का प्रकाशन आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ने किया था। और इसके प्रकाशन में विलम्ब व अवरोध का कारण निम्नलिखित है।

श्री ज्ञानेश्वर आर्य का पत्र

३-१२-९४

आदरणीय श्री शास्त्री जी,

आपका पत्र मिला, श्लोक के नये अर्थ को लिख लिया है। आप ने कृपा करके नया अर्थ भेजा, इसके लिए हम आपके आभारी हैं व आगे भी कृपा के अभिलाषी हैं।

यह पुस्तक 'सरलयोग से ईश्वर साक्षात्कार' अब समाप्त हो चुकी है। अनेक व्यक्तियों के द्वारा इसकी मांग रखी जाती रही है। हमें भी शिविर आदि में इसकी आवश्यकता रहती है। इसके पुन: प्रकाशन के बारे में हम आपसे व्यक्तिगत रूप से जानकारी चाहते हैं कि क्या निकट भविष्य में आ० सा० प्र० ट्रस्ट द्वारा इसके पुन: प्रकाशन की योजना है। यदि ट्रस्ट की योजना न हो तो इसे छपवाने का प्रयास हम करना चाहते हैं। ....इसके विषय में स्पष्ट सूचना भिजवा दीजिएगा। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में।

भवदीय

-ज्ञानेश्वरार्य

ट्रस्ट के मन्त्री श्री धर्मपाल जी का पंजीकृत उत्तर

दिनांक १७-१२-९४

पत्र संख्या- १९३४/९४

श्री ज्ञानेश्वर जी आर्य,

श्रीमन्नमस्ते।

आपका पत्र मिला धन्यवाद। प्रत्युत्तर में निवेदन है कि 'सरलयोग से ईश्वर साक्षात्कार' पुस्तिका में कुछ सैद्धान्तिक बातों की ओर पुस्तक के लेखक श्री स्वामी सत्यपति जी का ध्यानाकर्षण कराया गया था। कई बार ध्यानाकर्षण कराने के उपरान्त भी उनके निदान के लिये विचार विमर्श करने के बजाय, उस पर टाल-मटोल वाली नीति का सहारा लिया गया। ऐसी परिस्थिति में हमारे समक्ष तीन विकल्प हैं-

(१) पुस्तक की सैद्धान्तिक समीक्षा एक बार पुन: किसी विद्वान से और कराई जाये।

(२) तब तक पुस्तक का प्रकाशन बन्द रखा जाये।

(अथवा)

पुस्तक को यथापूर्व ही छपने दिया जाये।

(३) सम्बद्ध सभी विद्वान् प्रेम से बैठकर इसका निर्णय करें और वही छपवाया जाये। आपको उपरोक्त तीनों बातों में कौन सी उपयुक्त लगती है? आपसे यह जानकारी प्राप्त होने के बाद ही आगे इस सन्दर्भ में और विचार किया जा सकेगा। ....

धन्यवाद।

भवदीय

धर्मपाल आर्य, मन्त्री

इस पंजीकृत पत्र का उत्तर हमें आज तक नहीं मिला है, अत: पुस्तक का प्रकाशन भी न हो सका।

–राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वनाश मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है

मैं शराब हूँ......। जी हाँ, मेरा प्रसिद्ध नाम है-- 'शराब' मैं एक महाशक्ति हूँ। आज की साम्राज्ञी हूँ; कलियुग के अधिकांश लोगों के तन-मन पर मेरा ही राज्य है। मुझ में अद्‌भुत जादुई शक्ति है। ऐसी जादुई शक्ति से मैं मनुष्यों को पशु बना देती हूँ, और विद्वानों को मूर्ख बना देती हूँ, धनवानों को निर्धन बना देती हूँ, बलवानों को निर्बल बना देती हूँ, स्वस्थ्यों को रोगी बना देती हूँ, और नौज्वानों को वृद्ध बना देती हूँ, और बूढ़ों को मौत का ग्रास बना देती हूँ। मेरी करतूतें और करामतें अनन्त हैं, जिन्हें अतीत के इतिहास के पन्नों पर प्रमुख अक्षरों में लिखा गया है, वर्तमान में भी लिखा जा रहा है और भविष्य में भी लिखा जायेगा।

मनुष्य को अपनी बुद्धि पर बड़ा गर्व है। वह कहता है कि-परमात्मा ने बुद्धि के रूप में वह उपहार दिया है जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है और उसे प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी का स्तर देता है। इसलिये मैं सबसे पहले उसकी बुद्धि पर ही आक्रमण करती हूँ और उसे निष्क्रिय बनाकर उसके मनुष्यत्व को छीन लेती हूँ। आपने मेरे इस प्रभाव को ठीक ही सुना है कि-- **"शराब अन्दर और अक्ल बाहर"** मेरे अन्दर जाते ही बुद्धि की क्या औकात कि वह अन्दर रह जाये।

When the wine is in wit is out cult. वास्तव में जिस समय शराब एवं क्रोध दोनों अन्दर होते हैं तो बुद्धि बाहर हो जाती है। क्योंकि शराब और क्रोध दोनों बुद्धि को नष्ट करने वाले होते हैं। जैसे शराब के अन्दर होने से बुद्धि बाहर हो जाती है। उसी प्रकार से क्रोध भी बुद्धि का शत्रु है। जब क्रोध अन्दर होता है तो बुद्धि भी बाहर हो जाती है। **"बुद्धि नाशात् प्रणश्यति"** और बुद्धि के नष्ट हो जाने पर मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।। गीता ।।

अर्थात् क्रोध होने पर मोह होता है। उसके पश्चात् शुभाशुभ की स्मृति नष्ट हो जाने पर उसका सर्वनाश हो जाता है। क्रोधी मनुष्य की अवस्था कितनी शोचनीय होती है। इस अवस्था में वह मनुष्य आप ही अपने लक्ष्य से गिर जाता है। इसलिये शराबी की भी यही दशा होती है। शराब कहती है कि मेरा पान करते ही मनुष्य पशुओं की तुल्य ही नहीं उनसे भी बदतर बन जाता है और फिर शुरू होते हैं इस दो हाथ-पैर के जानवर द्वारा दंगे-फसाद, उत्पात, बवंडर, अपराध, कलह, अधर्म, अन्याय, 'अत्याचार और बलात्कार आदि अनगिनत अमानुषिक कार्य। मनुष्य होने का दम्भ भरने वाले मनुष्य को मैं कुत्ते, सुअरों की तरह गलियों में लोटने के लिये विवश्ख कर देती हूं। बिलबिलाते कीड़ों की तरह गन्दी नालियों में डाल देती हूं। साधारण लोगों की तो बात ही छोड़िये, मैंने साहूकारों की साहूकारी छीन ली, जमींदारों की जमीन मेरी बोतलों की बाढ़ में बह गयी, राजाओं के राज्य छीन लिये गये—महाराजाओं के सिंहासन उल्ट गये, शाहों की शाही लुट गयी, बादशाहों के तख्तो-ताज उड़ गये और चक्रवर्ती सम्राटों के छत्र मिट्टी में मिल गये। वाजिद अली शाह की नवाबी मैंने ही छीनकर अंग्रेजों को समर्पित की थी। भगवान् श्रीकृष्ण के वंश में उत्पन्न प्रद्युम्न को वंश में करके कुल-परम्परा का विनाश मैंने ही कराया है। महाभारत का जो नायक श्रीकृष्ण कौरवों से पराजित नहीं हो सका, उसी के वंशज यादवों को मदमत्त करके मैंने आपस में लड़ाकर कुल के कुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिए। मुसलमानों को नाकों चने चबवाने वाले शिवाजी के पुत्र को मैंने ही नाकों चने चबवाये हैं। भयंकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भयंकर संग्रामों में जितने लोग मौत के घाट उतारे गये हैं, कहीं उससे अधिक लोगों को मैं मौत के मुंह में धकेल चुकी हूं। इतनी संहारक शक्ति है मुझमें।

कुछ लोग मुझे राक्षसी, पापिनी जैसे कटु शब्दों से सम्बोधित करते हैं-लोगों को मुझ से दूर हटाने के लिए, मुझ से डराने के लिए। किन्तु मेरे भक्त जानते हैं कि मैं इससे भी बढ़कर मौत की पर्याय हूं किन्तु फिर भी वे मेरी सच्ची भक्ति का त्याग नहीं कर पाते और मेरी गोद में बैठकर मौत के आगोश में चले जाते हैं। इतना आकर्षण है मुझमें। इतनी चुम्बकीय शक्ति है मुझमें कि एक बार जो मेरा प्रिय बना तो वह आजीवन बना रहता है।

मैं विश्वव्यापिनी हूं। सारे संसार में सैकड़ों किस्मों, रूपों के रूप में प्रकट होकर मैं मदिरा, मद्य, दारू, ताड़ी, व्हिस्की, वाईन, शैम्पेन, ब्रांडी, वोदका, बीयर आदि-आदि सहस्रों नामों से पुकारी जाती हूं। और सारे संसार में मेरा एक सूत्री नारा है—

सर्वनाश मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।

फिर भी लोग मुझे चाहते हैं, प्रेम करते हैं, सारे संसार को छोड़कर मेरी शरण में आते हैं और परलोक में जाते हैं। यही है मेरी आत्मकथा। जी हां, मेरा नाम है—"**शराब**"

इसी शराब के व्यसन में पड़कर, पुराकाल में जिस देश को लोग सोने की चिड़िया के नाम से पुकारते थे, जिस देश के आगे सारी दुनियां ने याचक बनकर हाथ पसारे हों तथा जो देश सारे संसार का गुरु माना जाता रहा हो, आज उस महान् देश की दीन-हीन अवस्था को देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। शराब के नशे में पागल होकर शराबी व्यक्ति जो-जो जुल्म अपनी पत्नी एवं बच्चों पर करता है, उनका कथन करते समय मेरी वाणी भी दहल जाती है। एक तरफ तो छोटे-छोटे बच्चे भूख से बिलख रहे हों, तन को ढांपने के लिए उनके पास वस्त्र का एक छोटा-सा टुकड़ा भी नहीं है, और माता अपनी भूख को शान्त करने के लिए उस जिगर के टुकड़े से अपने ही बच्चे को खा जाना चाहती है—दूसरी ओर शराबी नशे की खोज में एक दाने-दाने के लिए मोहताज पत्नी से जेवर छीन कर, और गोद में आने को लालायित बच्चों को ठोकर से दूर फैंककर शराबी कलाल की दुकान पर पहुंचता है और बोतल पर बोतल चढ़ाकर सारा दिन कुत्तों एवं सुअरों की तरह गलियों में, नालियों में पड़ा सड़ता रहता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

जो डूबे हैं गिलासों में न उभरे जिन्दगानी में।
हजारों बह गये इन बोतलों के बन्द पानी में॥

सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् वेद ने सावधान करते हुए मनुष्य को उपदेश दिया था कि—

सप्तमर्यादा कवयस्ततक्षुं तासामेकमिद्भ्यं हुरो गात्।
आर्योहस्कम्भ उपमस्य नीडे पथाँ विसर्गे धरुणेषु तस्थौ॥

अर्थात् परस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या, गर्भपात, निन्दित कार्यों में बार-बार लगे रहना, मद्य पीना, चोरी करना और असत्यभाषण, इन पापों को करने वाले दुष्टों का सहवास भी न करना सप्तमर्यादा कहलाती है। इनमें से एक भी मर्यादा का जो व्यक्ति उल्लंघन करता है, अर्थात् एक भी पाप को करता है, वह पापी होता है। और जो धैर्य से इन हिंसादि प्रापों को छोड़ देता है, वह निःसंदेह जीवन का स्तम्भ होता है। (एवं मोक्ष भागी होता है) इसलिए महर्षि याज्ञवल्क्य ने शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—"**अनृतं पाप्मा तमः सुरा**" शराब असत्य की, पाप की, अन्धकार की और अज्ञान की जड़ है।

जिस घर में इतने सारे पापों की जड़ शराब ने जड़ जमा ली हो, उस घर में चिराग कहां से जले? जिस घर में बच्चे भूख से बिलबिला रहे हों और शराबी नशे में बेसुध पड़ा हो। ज़रा स्वयं सोचिये-विचार कीजिये-इस देश का क्या बनेगा? इस करुण दशा को देखकर हिमालय की कन्दराओं में योगाभ्यास करने वाले—महर्षि देव दयानन्द ने अपनी समाधि के असीम आनन्द को छोड़कर संसार के कार्य क्षेत्र में पदार्पण करके शराब के एवं मांस के खिलाफ संघर्ष का बिगुल बजाया था। इस विनाश की लीला को देखकर रातों को सोचा करते थे। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—"**वर्जयेन्मधुमांसं च**" (मनु॰ २/१७७) जैसे अनेक प्रकार के मद्य, भांग, गांजा, अफीम आदि—**बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते। (शारङ्गधर प्रथम खण्ड। अ०४। श्लोक २१)** "जो जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं, उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार से न बने हुए और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांस के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावें।" मद्यमांसादि खाने-पीने वाले के हाथ से छुआ खाना भी नहीं खाना चाहिए। मनुस्मृति में शराब की निन्दा करते हुए उसके पान का निषेध किया है—

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्मात् ब्राह्मण-राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्।। मनु॰ ११।।

अर्थात् (अन्नानां वै मलं सुराम्) अन्नों के मल को 'सुरा' कहते हैं और (मल पाप्मा उच्यते) मल 'पाप' को कहते हैं। (तस्मात्) इस कारण अर्थात् सुरापान पाप को ही पीना है, अतः (ब्राह्मण राजन्यौ वैश्य+च) ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य (सुरां न पिबेत्) शराब नहीं पीनी चाहिए।

चित्ते भ्रान्तिर्जायते मद्यपानाद् भ्रान्त-चित्तं पापचर्यामुपैति।
पापं कृत्वा दुर्गतिं यान्ति मूढास्तस्मान्मद्यं नैव पेयं न पेयम्।।
व्याख्यानमाला।।

अर्थात् मद्य पीने से चित्त में भ्रान्ति हो जाती है और चित के भ्रान्त होने पर पाप कर्म कर डालता है। पाप कर्म करके मूर्ख लोग दुर्गति को प्राप्त होते हैं। इसलिए मद्यपान कभी नहीं करना चाहिए।

"मद्यपे... मास्ति तत्वचिन्ता" अर्थात् मद्यपान करने वाले को वास्तविक तत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। **"न पानेन सुरां जयेत्"** अतः इसलिए अधिक शराब पी-पीकर के शराब के दुर्व्यसनों को शान्त करने का प्रयत्न करें। क्योंकि शराब पीने वाला व्यक्ति दुर्व्यसनों से बच नहीं सकता।

शराब की निन्दा करते हुए महात्मा बुद्ध ने जो कुछ भी कहा वह ध्यान देने योग्य है-१. तुम सिंह के सामने जाते समय भयभीत न होना, क्योंकि वह पराक्रम की परीक्षा है। २. तुम तलवार के सामने सिर झुकाते समय भयभीत न होना, क्योंकि वह बलिदान की कसौटी है। ३. तुम पर्वत के शिखर से पाताल में कूद पड़ना, क्योंकि वह तप की साधना है। ४. तुम धधकती हुई ज्वालाओं से विचलित न होना क्योंकि वह स्वर्ण-परीक्षा है। ५. लेकिन शराब से सदा भयभीत रहना क्योंकि वह पाप और अनाचार की जननी है। किसी कवि ने कितने सुन्दर शब्दों में लिखा है—

ऐ शराब (इश्क) तू ने अक्सर कौमों को खाके छोड़ा।।
जिस घर पे सिर उठाया उसको मिटा के छोड़ा।।
राजाओं के राज्य छीने शाहों के ताज छीने।
गर्दनकशों को अक्सर नीचे दिखाके छोड़ा।।
अफीम, गांजा, भांग, चरस, मदमादक पोस्त, शराब।
हे मित्रो! देखो ध्यान से, सारे नशे हैं खराब।।

शराब के भयंकर परिणामों की ओर संकेत करते हुए विश्वकवि **रवीन्द्रनाथ टैगोर** ने लिखा है कि—"जिस प्रकार किसी भी राष्ट्र व जाति तथा समाज को उन्नत बनाने के लिए उत्तम साहित्य सञ्जीवनी बूटी है, उसी प्रकार किसी भी राष्ट्र व जाति को निस्सार एवं निस्तेज बनाना हो तो उस राष्ट्र व जाति में शराब की आदत डाल देनी चाहिए।

महात्मा गांधी ने भी कहा है—"शराब सभी पापों की जननी है।" वास्तव में शराब एक ऐसा पदार्थ है जो मनुष्य की चिन्तन शक्ति को नष्ट करता है। शराबी व्यक्ति की जब बुद्धि नष्ट हो जाती है, तब उसको अच्छाई और बुराई का तथा पत्नी और बहन का कोई भेद ध्यान में बिलकुल नहीं रहता, फिर पशुओं जैसी स्थिति हो जाती है शराबी की।

हे मानव! हे चिन्तनशील! सभी योनियों में सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाले इन्सान! ज़रा सोचिये, एकान्त में बैठकर, क्या आपका शराब पीना उचित है? परन्तु मैं तो यही कहूंगा कि आप शराब नहीं पीते हैं बल्कि अपने बच्चों का खून पीते हैं। तुम जितने रुपयों की शराब पी जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, यदि तुम उतने रुपयों को अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई पर तथा अपने घर के सुधार के लिए, अथवा घर के विकास के लिए, उन्नति के लिए खर्च करने लगोगे, तो तुझे और तेरे परिवार को कितना आनन्द आयेगा, घर स्वर्ग बन जायेगा। हे पागल शराबी! जरा तुम एकान्त में बैठकर सोचिये क्या तेरा शराब पीना ठीक है? नहीं-नहीं, तेरा शराब पीना ठीक नहीं है।

अंग्रेज लेखक **मिल्टन** का कथन है कि—"विश्व की सारी सैनायें संयुक्त रूप से इतने मनुष्यों और सम्पत्ति को नष्ट नहीं करती, जितनी कि अकेली मदिरा ने नष्ट किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध **उपन्यास** मुन्शी प्रेमचन्द ने कहा था "जहाँ सौ में से अस्सी आदमी भूख से मरते हों, वहां शराब पीना, गरीबों का खून पीने के समान है।"

फीलिंडग का कहना है कि- "मदिरा और यौवन आग पर आग है।" **शेक्सपीयर** ने शराब की निन्दा इन शब्दों में कही- नशे में चूर व्यक्ति की सूरत उसकी माँ को भी बुरी लगती है। **शेखवादी** कहते हैं- "शराब पीना और कुछ नहीं है, केवल अपनी इच्छा से पागल बनना है"। शराब का एक प्याला मनुष्यों को बुद्धिहीन बना देता है, और दूसरा प्याला पागल बना देता है, तीसरा प्याला मनुष्यों को बुद्धिहीन बना देता है अर्थात् चेतनाहीन बना देता है। आदमी पहले शराब पीते हैं, फिर शराब आदमी को पीती है अर्थात् बार-बार पीने की इच्छा होती है अन्त में शराबी को ही पीने लग जाती है।

इस प्रकार संसार के सभी महापुरुषों, लेखकों आदि ने शराब की निन्दा की है अतः यह सवर्था त्याज्य है।

अब आईये आर्थिक हानि की दृष्टि से मदिरापान पर विचार करें। एक शराबी एक महीने में कम से कम ५०० रु० की शराब तो पी ही जाता होगा। यदि इस शराबी की परम-पिता परमात्मा की दया से सद्-बुद्धि आ जावे तो यह उन ५०० रुपयों को अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए तथा पालन-पोषण में खर्च कर दे तो, उसको ऐसा करने से दो लाभ होंगे, एक तो शराबी सुरापान के महापापों से बच जायेगा, दूसरा उसके बच्चे पढ़-लिखकर विद्वान् हो जायेंगे। उनका खान-पान भी अच्छा होगा इस प्रकार ऐसा करने से पूरा परिवार एक स्वर्गधाम बन जाएगा। इस प्रकार विचार करने से पता चलता है कि उस शराबी का ५०० रुपये प्रति मास के अनुसार उसको कितना बड़ा आर्थिक घाटा होता है। उसको आर्थिक घाटा ही नहीं, उसके साथ-साथ अमूल्य सम्पति यह शरीर भी शराब से जर्जरित होकर दुःखों एवं रोगों का अड्डा बन जायेगा और फिर रोगों का इलाज करने के लिए भी कितना धन व्यय करना पड़ता है। अर्थात् नष्ट करना पड़ता है।

आजकल लोग प्रायः करके जो शराब पीते हैं वे साथ-साथ बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, पकोड़े, नमकीन, मांस, अण्डे आदि अन्य कितने व्यसनो में भी फंसे रहते हैं। उनका भी यदि हम आर्थिक दृष्टि से हिसाब लगायें तो पता चलेगा कि कम से कम २५०रु० प्रतिमाह एक शराबी अन्य व्यसनों में खर्च करता है। इस प्रकार एक वर्ष में ३०००रु० और १० वर्ष में ३०,००० रुपये जुड़ते हैं। शराबी इन रुपयों को अपने बच्चों के लालन-पालन में तथा अपने घर की आर्थिक स्थिति सुधारने में लग जाये तो उसे बहुत बड़ा आर्थिक लाभ होगा और दुःख एवं क्लेश तथा कष्टों का नाम तो सुनने को भी न मिलेगा।

इसी प्रकार यदि हम शराब का भी हिसाब लगावें तो एक महीने में एक शराबी ५०० रुपये, एक वर्ष में ६००० रुपये, दस वर्षों में ६०,००० रुपयों की शराब पी जाता है और उसी के साथ-साथ पता नहीं क्या-क्या खाते-पीते है- बीड़ी, सिगरेट, मांस, अण्डे आदि का भी हिसाब लगावे तो दस वर्षों में ३०,००० रुपयों का इन पर खर्च हो जाता है। शराब और बीड़ी-सिगरेट आदि दोनों का हिसाब लगावें तो दस वर्षों में ९०,००० रुपयों को कम से कम नष्ट कर देता है। इस शराबी को परम पिता परमात्मा की दया से सद्बुद्धि आ जावे तो ये अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई पर तथा अपने घर के सुधार के लिए अथवा अपने घर के विकास एवं उन्नति के लिए खर्च कर देंगे तो शराबी के परिवार को कितना बड़ा आनन्द आएगा और घर एक स्वर्गधाम बन जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शराबी व्यक्ति के लिए कितने बड़े दुर्भाग्य की बात है कि शराब के व्यसन के साथ अनेक व्यसन जुड़ते चले जाते हैं। इस विषय में प्रो० रामविचार एम०ए० बहुत ही सुन्दर शब्दों में लिखते हैं–

"ब्राह्य पदार्थों के पीछे दौड़ने वाले भौतिकवादियों का एक जगतप्रसिद्ध नारा है 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ।' संसार के अध्यात्मवादियों के सैद्धान्तिक पक्ष में भले ही मतभेद हो परन्तु भौतिकादियों के इस नारे में कोई मतभेद नहीं है। ऐसा दृष्टिकोण रखने वालों की संसार के प्रत्येक देश में कुछ न कुछ संख्या पाई जाती है। अब हम भौतिकवादियों के इस गुरु-मन्त्र की समीक्षा करेंगे।

खाना जीवन का साध्य है या साधन, इस बात पर विवेचना करना आवश्यक है। मनुष्य एक मननशील प्राणी है। इस नाते से उसे विचार करना ही होगा कि जीवन का लक्ष्य केवल खाना नहीं है? यदि जीवन का लक्ष्य केवल खाना ही हो तो पशु और मनुष्य में क्या अन्तर है? योगी और भोगी के जीवन में बस यह एक बड़ा अन्तर है। खाये बिना दोनों ही जीवित नहीं रह सकते। योगी भी खाता है भोगी भी। परन्तु भोगी खाने को जीवन का साधन समझता है। योगी खाता है कि जी सके और आत्मचिंतन एवं परमात्मा चिंतन कर सके। भोगी के लिए खाना उसके जीवन का लक्ष्य है और वह जीता ही खाने के लिए है। फारसी कवि शेरसादी ने कहा है–

खुर्दन बराए-नीस्तनो जिक्रकर्दन अस्त।
तू मोतकिद कि जीस्तन अज़ बहरे खुर्दन अस्त।।

खाया इसलिए जाता है कि जिया जा सके और ईश्वर का नाम लिखा जा सके, परन्तु तूने तो इस बात को अपना लिया कि जीना केवल खाने के लिए।

मनुष्य खाने में भी आगे नहीं है। पशु उससे कई गुणा अधिक खाते हैं। वह खाने में पशु का मुकाबला नहीं कर सकता। यदि खाने का अर्थ यही है कि मांसाहार किया जाए तो यह मनुष्यता के धर्म के विपरीत है, क्योंकि कोई अपने बच्चों का मांस तो किसी को खिलाना नहीं चाहता परन्तु भेड़ और बकरी के बच्चों का मांस खाना चाहता है। यह खाने का विवेचन हुआ।

अब हम पीने का विवेचन करते हैं। पीना भी मनुष्य के जीवन का आधार है। योगी भी पीता है और भोगी भी। परन्तु दोनों के पीने में अन्तर है। पानी, लस्सी, शर्बत तक तो दोनों समान है परन्तु भौतिकवादी के पीने का अभिप्राय है शराब पीना। जब मनुष्य शराब पीने का निश्चय कर लेता है तभी उसकी बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है। बुद्धि पर पर्दा पड़ा तो आगे विनाश और हानि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिस पदार्थ के पीने से शारीरिक हानि होती हो, मानसिक बेचैनी बढ़ती हो, बौद्धिक अपवित्रता बढ़ती हो, पारिवारिक अशान्ति बढ़ती हो, आर्थिक हानि होती हो और आत्मिक पतन होता हो उसका सेवन क्या बुद्धिमता है? मनुष्य समझता है कि वह शराब को पी रहा है परन्तु वास्तव में शराब उसे पीती है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

मय उन्होंने पी अब उनके पास क्योंकर दिल लगे।
जानवर इक रह गया, इन्सान रुखसत हो गया।।

यह तो शराब पीने का विवेचन हुआ, अब "मौज उड़ाओ" का विवेचन कर लें। परमात्मा ने मनुष्य को काम की प्रवृत्ति दी है केवल सन्तानोत्पति के लिए। ऋषियों ने मनुष्य की शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति के लिए इस पर भी नियन्त्रण लगाया कि महीने में केवल एक बार ही पत्नी को वीर्यदान किया जाए। कुसंगति के कारण मनुष्य के मस्तिष्क में कुविचार पनपते हैं। इन्हीं कुविचारों के प्रभाव में, एक बार वीर्यशक्ति की महत्ता को न समझते हुए, मनुष्य क्षणिक सुख के लिए समय से पहले वीर्य का नाश करता रहता है और समय निकल जाने पर सिर धुनता है। गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी ऋषियों की मर्यादा का पालन तो विरले ही करते हैं। इन दो स्थितियों से भिन्न एक स्थिति और भी है। वह है परस्त्रीगमन और वेश्यावृत्ति की। भौतिकवादियों की दृष्टि में 'मौज उड़ाने' का संकेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तीसरी स्थिति की ओर है। यह तीसरा मार्ग और गृहस्थ में भी वीर्य का अतिनाश मनुष्य के पतन के कारण बनते हैं। इसे ही विषयासक्ति का नाम दिया गया है।

प्रमदा मदिरा लक्ष्मीर्विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
दृष्ट्वैवोन्मादयत्येका पीता चान्यातिसंचयात्॥

सुरा (शराब) तीन प्रकार की होती है—स्त्री, मदिरा और लक्ष्मी। पहली तो देखने मात्र से उन्मत बना देती है, दूसरी पीने पर और तीसरी अतिशय संचय करने से।

महात्मा बुद्ध ने धम्मपद में कहा है कि जो व्यक्ति परस्त्रीगमन तथा मद्यपान करता है, वह इसी लोक में अपनी जड़ खोदता है।

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः।
मेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्॥

सोकर नींद को जीतने का प्रयत्न न करें, भोग द्वारा स्त्री को वश में करने का प्रयत्न न करें, ईंधन से आग बुझाने का काम न करें और शराब पीकर शराब के दुर्व्यसन को शान्त करने का प्रयत्न न करें।

मद्यपस्य कुतः सत्यं दया मांसाशिनः कुतः।
कामिनश्च कुतो विद्या निर्धनस्य कुतः सुखम्॥ जिनधर्मविवेक॥

शराबी में सत्य, मांसाहारी में दया, कामार्त में विद्या और निर्धन में सुख कहा?

एक दिन महाराज भोज ने अपने दरबारियों से पूछा कि नष्ट होने वाले की क्या गति होती है? कोई दरबारी उत्तर न दे सका। राजा ने कविवर कालिदास से पूछा तो वे भी मौन रहे और कहने लगे कि कल इसका उत्तर दिया जाएगा। महाराज भोज प्रतिदिन प्रातः भ्रमण करने जाते थे। जिस मार्ग से भ्रमण के लिए जाते थे, उसी मार्ग से लौटते समय उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। एक सन्यासी खड़ा है। वह भिक्षा-पात्र लिए हुए हैं और उसमें मांस के टुकड़े रखे हुए हैं। महाराज भोज को बहुत आश्चर्य हुआ कि वे प्रातःकाल क्या अद्भुत दृश्य देख रहे हैं। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर पूछा—**भिक्षो! मांसनिषेवनं प्रकुरुषे?**

अरे भिक्षुक! तू सन्यासी होकर मांस का सेवन करता है? साधु ने उत्तर दिया—**किं तेन मद्यं बिना** अर्थात् शराब पिये बिना मांस खाने का आनन्द क्या?

उस पर चकित होकर महाराज ने पूछा—

मद्यं चापि तव प्रियम्? क्या शराब भी तुझे प्यारी है?

उस साधु ने कहा—**प्रियमहो वारांगनाभिः सह।** अरे केवल शराब ही मुझे प्रिय नहीं है अपितु वेश्यावृत्ति के साथ शराब प्यारी है। महाराज भोज को बड़ा दुःख हुआ कि उनके राज्य में ऐसा भी सन्यासी रहता है जिसे मांस के साथ शराब और शराब के साथ वेश्यावृत्ति में भी रूचि है। वे और चकित होकर पूछने लगे—**तासामर्थरुचिः कुतस्तव धनम्?**

अरे वे वेश्याएं तो धन की इच्छुक होती हैं। तेरे पास धन नहीं है, तू तो भिक्षुक ठहरा। तो साधु ने उत्तर दिया कि—

द्यूतेन चौर्येण वा। मैं पैसा जुआ खेलकर और चोरी करके प्राप्त कर लेता हूं। इस पर महाराज भोज पूछने लगे—

चौर्यद्यूतपरिग्रहोपि भवतः। क्या तुझे चोरी और जुआ भी प्रिय है? इस पर साधु ने कहा—

नष्टस्य कान्या गतिः।

जो मनुष्य नष्ट होने लगा हो, उसकी अन्य गति क्या होती है? उसकी यही गति होगी कि वह पाप में धंसता चला जाएगा। नष्ट ही नष्ट होता चला जाएगा। उसका यह जन्म तो नष्ट होगा ही, न जाने कितने दूसरे जन्मों को भी नष्ट कर देगा और वह कीट पतंग, पशु-पक्षी आदि योनियों में भटकता रहेगा। इसलिए हे मनुष्य याद रख—

न कर बरबाद अपनी जिन्दगी को ए बोतल के दीवाने
वही काटेगा बुढ़ापे में, जो बोयेगा जवानी में॥

—आचार्य सत्यानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसा मसीह कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे

१६ जनवरी सन् ८७ के समाचार पत्र "नवभारत" बिलासपुर में पोप जान पाल द्वितीय का एक बयान प्रकाशित हुआ है जिसमें उनका मानना है कि ईसा मसीह की जन्मतिथि के बारे में भले ही कोई निश्चित जानकारी न हो पर महत्वपूर्ण बात यह है कि वे ऐतिहासिक व्यक्ति थे। पोप ने वेटिकन सिटी में दो हजार धार्मिक अनुयाईयों को संबोधित करते हुए कहा कि विशेषज्ञों की राय में ईसा मसीह की जन्मतिथि में चार वर्ष का अंतर है लेकिन इससे भी समस्या का निश्चित तौर पर समाधान नहीं होता। ऐसा समझा जाता है कि ईसा मसीह का जन्म सन् आठ सौ चार ईसा पूर्व के बीच हुआ था। इनके जन्म तिथि के निश्चित महीने और तारीख के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

पोप जान पाल कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। ईसाईयों की मान्यता के अनुसार ईसा मसीह के सशरीर स्वर्गारोहण चौथे आसमान पर जाने और परमेश्वर के दाहिने बैठने के पश्चात् पोप ईसा के प्रतिनिधि की हैसियत से कार्य कर रहे हैं। उनको ईसाईयों के पाप क्षमा करने के भी अधिकार है। इसलिए उनके इस बयान को यूँ ही सहज में टाला नहीं जा सकता, त्यागा नहीं जा सकता। आइए देखें, पवित्र बाईबिल इस विषय में क्या महत्वपूर्ण जानकारी देती हैं:–

(१) ईसा मसीह की वंशावली निम्न रूप में लिखी मिलती है:–

(क) **मत्ती के अनुसार**– "इब्राहिम से दाऊद तब सब चौदह पीढ़ी हुई; दाऊद के बाबुल को बंदी होकर पहुंचाये जाने तक चौदह पीढ़ी और बंदी होकर बाबुल को पहुंचाए जाने के समय से लेकर मसीह तक चौदह पीढ़ी हुई।।१/१७।।"

मत्ती के अनुसार कुल ४२ पीढ़ी हुई किन्तु गणना करने पर यह संख्या ४१ ही होती है।

(ख) **लूका सूसमाचार लेखक के अनुसार**– "इब्राहिम से ईसा तक ५६ पीढ़ी होती है।। ३/२३ से ३४।।

दोनों सुसमाचार लेखकों के बयानों में बहुत अंतर है। अतः यह स्पष्ट है कि ईसा मसीह कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे। हाँ, ईसा नाम के कोई व्यक्ति रहे होंगे जिनका इतिहास के पन्नों में आना जरूरी न रहा हो। इतिहास तो महत्वपूर्ण लोगों का चिरस्थायी रूप से अभिलेख होता है।

(2) ईसा के जन्म पर ऐबदार अनुत्तरदायी बयान:–

(क) मत्ती ईसा के जन्म पर लिखता है– "जब उस की माता मरियम की मंगनी यूसुफ़ के साथ हो गई, तो उनके इकट्ठे होने से पहले वह पवित्र आत्मा की ओर से गर्भवती पाई गई।।१/१८।।

पवित्र आत्मा से मरियम गर्भवती हुई, इसका अर्थ यह हुआ कि पवित्र आत्मा ने पंच तत्व से बने मानव का शरीर धारण किया। क्योंकि बगैर शरीर धारण किए वीर्य की उत्पत्ति (प्राप्ति) नहीं हो सकती और बिना वीर्य के मरियम गर्भवती नहीं हो सकती। इस स्थिति में वह गर्भ पवित्र आत्मा की होगी और बच्चा पैदा होकर पवित्र आत्मा का पुत्र कहलाएगा और मरियम पवित्र आत्मा की स्त्री। तब ईसा किसी भी हालत मे यूसुफ़ का पुत्र नहीं कहलाएगा और न उसकी वंशावली में ही उसको शामिल किया जाएगा।

(ख) **लूका के अनुसार**–"स्वर्गदूत ने उससे कहा, हे मरियम, भयभीत न हो क्योंकि परमेश्वर का अनुग्रह तुझ पर हुआ है, और देख तू गर्भवती होगी और तेरे एक पुत्र होगा, तू उसका नाम यीसू रखना। वह महान होगा और परम प्रधान का पुत्र कहलाएगा और प्रभु परमेश्वर इसके पिता दाऊद का सिंहासन उसको देगा।।१/३०,३१,३२।। मरियम ने स्वर्गदूत से कहा यह क्योंकर होगा? मैं तो पुरुष को जानती ही नहीं। स्वर्गदूत ने उसको उत्तर दिया कि पवित्र आत्मा तुझ पर उतरेगा और परम प्रधान की सामर्थ तुझ पर छाया करेगी इसलिए वह पवित्र जो उत्पन्न होने वाला है, परमेश्वर का पुत्र कहलाएगा। ।।१/३४,३५।।

यहाँ लूका ने कहानी को थोड़ा सा मोड़ दिया। मरियम और परमेश्वर के बीच में जिब्रील को लाकर खड़ा कर दिया। इस स्वर्गदूत ने मरियम को आगे की होने वाली घटना (दृश्य) के विषय में समझा दिया। परम प्रधान की छाया तुझ पर छाया करेगी इसलिए वह पवित्र जो उत्पन्न होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला है, परमेश्वर का पुत्र कहलाएगा। वह परमेश्वर कौन होता है ईसा के पिता दाऊद का सिंहासन उसको देने वाला और याकूब के घराने पर सदा राज करने वाला? यहाँ ईसा की माँ मरियम तो यूसुफ़ से गर्भवती हुई ही नहीं, फिर यूसुफ़ के खानदान में तो ईसा की गणना नहीं हो सकती।

बाईबिल खुलकर झूठ का प्रचार कर रही है। एक सत्य छिपाने में अनेकों झूठ के पेबंद लगाए जा रहे हैं। किन्तु सत्य बहुत शक्तिशाली होता है। वह फूट कर निकलता है और उसके प्रकाश में अनेकों कीड़े, मकोड़े अपने आप जमीन में दब जाते हैं या मर जाते हैं।

ऐसे ही एक सत्य अन्वेषकों में से एक हैं अनेर्स्ट हैक्ल, जिन्होंने बाईबिल को चुनौती देते हुए साहसपूर्वक कहा है कि ईसा मसीह न तो पवित्र आत्मा की औलाद थे और न ही यूसुफ़ की, बल्कि मरियम का एक यूनानी अधिकारी से संसर्ग होने के कारण ईसा का जन्म हुआ।

अनेर्स्ट हैक्ल लिखते हैं कि "बुओरी मरियम से पुत्र की उत्पत्ति एक मिथ्या विश्वास है जो पुराने मज़हबों विशेषत: बौद्धधर्म से लिया गया है। तथ्यपरक बात यह है कि जिस बढ़ई यूसुफ़ ने मरियम से विवाह किया उसने उसे तलाक दे दिया था क्योंकि उसने पैन थरस नामक एक सिपाही से व्यभिचर करके एक बच्चे को जन्म दिया था। इस संदर्भ को उस यहूदी किवदंती से जोड़ा जा सकता है जिसके अनुसार यीसू मरियम और युनानी अफ़सर के अवैध संबंध से उत्पन्न हुआ था।"

इससे बात साफ हो जाती है कि यूसुफ़ मरियम को क्यों छोड़ना चाहता था। यदि मरियम के गर्भ का कारण मंगनी पर मरियम और यूसुफ़ का सहवास ही होता तो यूसुफ़ के मन में उसे छोड़ने का विचार ही न आता। बाईबिल में यूसुफ़ को धर्मात्मा पुरुष बताया गया है अत: एक धर्मात्मा पुरुष मंगनी पर ऐसी असावधानी नहीं कर सकता था जिसके लिए उसे बाद में लज्जित होना पड़ता या पश्चाताप करना पड़ता। चूँकि ईसा मसीह एक बदनाम माँ का बेटा था अत: यह प्रसिद्ध किया गया कि मरियम "पवित्र आत्मा" की ओर से गर्भवती हुई और बाईबिल के इस कथन पर श्रद्धालु तथा अंधविश्वासी लोगों ने आँख मूँदकर विश्वास कर दिया।

जिस प्रकार बाईबिल ईश्वरीय पुस्तक है उसी प्रकार कुरान शरीफ़ भी खुदाई किताब मानी जाती है। उसमें भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

"याद करो जब फरिशतों ने कहा, हे मरयम! अल्लाह अपनी ओर से तुझे एक "कलमे" की शुभ सूचना देता है, जिस का नाम मसीह ईसा सुत मरयम होगा, वह दुनिया और "आखिरत" में प्रतिष्ठित होगा और समीपवर्ती लोगों में से होगा (आले-इमरान ३/४५)

वह बोली रब! मेरे लड़का कहाँ से पैदा होगा, मुझे तो किसी आदमी ने छुआ तक नहीं? कहा-इसी तरह अल्लाह जो चाहता है पैदा करता है। जब वह किसी चीज़ का फैसला करता है तो उसे कहता है "हो जा" और वह हो जाती है (३/४६)

कुर्आन, सूरत मर्यम, पारा १६, रकू २/५ का हिन्दी अनुवाद में लिखा है कि याद कर कुर्आन में कथा मर्यम की, और (वह) सदा बतुल्मकछस की मस्जिद में रहती (थी)। एक बार वह (मर्यम) अपनी मौसी के घर में थी और उन्हें गुसल की हाजत (स्नान की इच्छा) हुई। स्नान हेतु जब मर्यम पूर्व की ओर गई तो उन्होंने पर्दा कर लिया ताकि वहां स्नान कर सके। जब स्नान कर चुकी और वस्त्र पहन लिए, तो भेजा हम ने (खुद ने) उनकी ओर अपनी रूह (अर्थात् जिब्रील) को, तो जिब्रील ने मनुष्य का पूरा रूप धारण कर लिया।

हजरत मर्यम ने जब अपने स्नान के स्थान में एक पराए मनुष्य को देखा तो कहा- मैं पनाह (शरण) माँगती हूँ खुदा से, तेरी बुराई से यदि तू सदाचारी है। इस पर जिब्रील ने कहा कि- मैं खुदा की ओर से भेजा हुआ आया हूँ, ताकि तुझे स्व नेक पुत्र प्रदान कर जाऊँ। इस पर मर्यम ने कहा कि- मुझे पुत्र कैसे होगा? जबकि मुझे किसी मनुष्य ने छुआ तक नहीं और न मैं व्यभिचारिणी हूँ। जिब्रील ने कहा- इसी प्रकार कहा है तेरे खुदा ने, और बिना पिता के पुत्र उत्पन्न करना मुझ के लिए आसान है और, ताकि करे खुदा निशानी लोगों के लिए, और करे रहमत (दया) ईमान लाने वालों के लिए, उसको बिना पिता के उत्पन्न होने की आज्ञा दी गई है।

फिर हज़रत जिब्रील हज़रत मर्यम के समीप आए तो उनकी (मर्यम की) आस्तीन (बाहों) या गिरेबान (वक्ष) या मुँह में फूका "फुहमल हो" तो मर्यम उसी समय गर्भवती हो गई और ईसा उसके गर्भ मे आ गए। (कुरआन परिचय प्रथम खण्ड, लेखक पं० देवप्रकाश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाई और इस्लामी मान्यता के अनुसार फरिश्तों का अस्तित्व है। ये फरिश्ते ईश्वर नहीं और न मनुष्य ही हैं, फिर भी इनकी अलग पहचान है। बाईबिल में जिब्रील ने कहा है कि मैं जिब्रील हूँ जो परमेश्वर के सामने खड़ा रहता हूं (लूका १/१९) उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि जिब्रील ने मरियम को गर्भ धारण कराया न कि परमेश्वर की पवित्र आत्मा ने। अतः मरियम के बच्चे ईसा का पिता तो जिब्रील हुआ।

इस विषय में मत्ती, लूका और कुरआन शरीफ़ में लिखी बातों में भारी अंतर है। ये अवैज्ञानिक हैं और तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। ये बनावटी और बेसिर पैर के हैं। इसी कारण लन्दीनस साहब लिखते हैं कि बाईबिल मोम की नाक है, जिधर चाहो उधर फेर लो (मरोड़ दो) वह एक मुर्दा है, महज भूसा है, मरजदारद है, एक मुर्दा कानून है, बाईबिल भूलहिद्दो (मूर्खों) का स्कूल हैं, एक जंगल है जिसमें........ पनाह गूंगी है।

उपरोक्त घटनाओं से ज्ञात होता है कि स्वतन्त्र रूप से किसी बिन्दु का विस्तार है। ऐसी घटनाओं का इतिहास से कोई सरोकार नहीं।

निम्नलिखित तथ्य अकाट्य रूप से इस सत्य का रहस्योद्घाटन करते हैं कि जिस ईसा मसीह को विश्व-विख्यात माना जाता है वह कोई इतिहास पुरुष न होकर कल्पना प्रसूत रहा है। डॉ० सुरेन्द्रसिंह कादियाण अपने लेख "ईसा मसीह हकीकत या कल्पना" में अनेक इतिहासकारों का हवाला देकर स्पष्ट करते हैं कि ईसा कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं थे:–

(१) दमिश्क का सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ निकोलन राजा हिरोड का समकालीन था किन्तु उस ने कहीं भी इस वीभत्स काण्ड का उल्लेख नहीं किया कि उसने दो वर्ष तक के बच्चों का कत्ल करा दिया था।

(२) सिकंदरिया का विद्वान् फिलो जूडस सन् ४२ में रोम गया था किन्तु उसने ईसा नामक चमत्कारी मसीह के न तो कहीं नाम सुना और न ही अपनी डायरी में उसका कहीं उल्लेख तक किया।

(३) जौजफ़स का समकालीन जस्टिस ऑफ टिबेरिया का जन्म ३७ई० है किन्तु उसने भी ईसा और उसके धर्म प्रचार के विषय में एक शब्द तक नहीं लिखा।

(४) ज़ैराल्ड मसी (   ) नामक इतिहासकार एक नया रहस्य खोलते हुए लिखता है कि मिश्र में ईसा के जन्म से ७०० वर्ष पूर्व का पुराना मैराकैन का मंदिर है उस पर मसीह के जन्म की कहानी चित्रांकित है। इसके आधार पर ही तो कहीं ईसा की गाथा नहीं गढ़ी गई? अथवा वहाँ भी कोई बाल्मीकि जा पहुँचा था जिसने भावी महापुरुष की गाथा पहले ही चित्रांकित करा दी?

(५) इतिहासकार जौसफिस राजा हीरोड का दरबारी था। इसने हीरोड के राज्य काल का इतिहास लिखा है लेकिन इस इतिहास में ईसा, उस पर लगाए गए महाभियोग अथवा उसे क्रास पर लटकाने का रंचमात्र भी उल्लेख नहीं मिलता। कुछ लोग मानते हैं कि जोसफिस का जन्म ईसा के पुनरुत्थान के ७ वर्ष पश्चात् हुआ, जिससे वह हीरोड का दरबारी सिद्ध नहीं होता। दरबारी न सही, इतिहासकार तो वह था ही, समकालीन न सही परवर्ती ही सही, लेकिन इतिहास की ऐसी महत्वपूर्ण घटना को वह कैसे छोड़ सकता था?

(६) प्लूटार्च, जुवेनल, ऐन्द, लूसियन, डानकैसिको, वर्जिल, होरेस, लिव्रि आदि अनेक तत्कालीन लेखकों और इतिहासकारों ने भी उस युगपुरुष ईसा का उल्लेख नहीं किया।

(७) कोई भी ऐतिहासिक स्रोत इस तथ्य की पुष्टि नहीं करता कि तत्कालीन रोमवासियों और यहूदियों में क्रास पर चढ़ाकर फांसी देने का कानून था। फ़िर ईसा को किस कानून से क्रास पर लटकाया गया?

(८) पोप अथवा कोई विशप या पादरी आज तक बाईबिल के अलावा कोई अन्य दस्तावेज़, महाभियोग का कोई राज़ या रिकार्ड प्रस्तुत नहीं कर सका जो यह सिद्ध करता हो कि ईसा नामक किसी महापुरुष को क्रास पर लटकाया गया था?

(९) सम्राट एडरियनस ने १३४ई० में अपने भाई को लिखे एक पत्र में लिखा था कि सूर्य के उपासक सम्प्रदाय के लोग ही क्रिश्चियन हैं और वे अपने को क्राईस्ट का विशप कहते हैं।

(१०) एक मात्र म० लेन्तुलस ही ऐसा समकालीन लेखक माना जाता है जो महाभियोग के समय उपस्थित था और जिस की पुस्तक में इस तथ्यकथित महाभियोग का उल्लेख मिलता है। शंका उठती है कि इस बात की क्या गारंटी है कि लैन्तुलस का कथन प्रक्षिप्त नहीं है? समकालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों में आखिर लेन्तुलस ने ही ईसा पर कलम क्योंकर उठाई, दूसरे लेखकों ने नहीं? यदि लेन्तुलस ने ऐसा साहस दिखाया भी था तो वह श्लाघनीय माना जाता और उस के परवर्ती लेखक अर्थात् न्यूटेस्टामेन्ट के लेखक मत्ती, माकुर्स, लूका, यूहन्ता उस का कहीं न कहीं अवश्य उल्लेख करते।

पोप जान पाल के पास कोई प्रामाणिक आधार नहीं, जिससे वह सिद्ध कर सकें कि ईसा मसीह ऐतिहासिक पुरुष थे। पाल महोदय को चिंता है कि यदि ईसा ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध नहीं हुए तो विश्व में ईसाई धर्म का प्रचार रुक सकता है। इसलिए किसी तरह से हाथ पैर मार कर ईसा को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध करने में लगे हैं, किन्तु सफल नहीं हुए।

बाइबिल में लिखी गई बातें ज़ाली और अविश्वसनीय हैं। ईसाई धर्म छल, कपट, अंधविश्वास और अमेरिकन डालर पर टिका है किन्तु तर्क के सामने इस का आधार कमजोर पड़ रहा है और इमारत की ईंटे फिर एक-एक करके बाहर आ रही हैं।

जिस बाईबिल के प्रचार व प्रसार के लिए पोप जान पाल तन, मन और धन से लगे हैं, उसी बाइबिल के विरुद्ध विदेशी पादरियों ने समय-समय पर आगाह किया है, चेतावनी दी है कि सइ प्रचार कत्तई न हो। ऐसे कुछ ही के विचार निम्न पंक्तियों में पढ़ने, अवलोकन करने की कृपा करें:-

१. रेवरैड कैनन रिचर्ड साहब स्वांसी (वैल्स) के स्कूल बोर्ड को इस बात की ताकीद करते हुए लिखते हैं कि तुमको अपने बच्चों के अखलाक (चरित्र) का बचाव करना मंजूर है तो खुदा के वास्ते उनके हाथों में ओल्डटेस्टामेन्ट (बाइबिल) मत दो।

२. सन् १२२९ में कौंसिल ऑफ टूलुस ने यह कानून बना दियां था कि बाइबिल की कोई भी किताब किसी व्यक्ति के हाथ में न रहे, अगर कोई उस किताब को पढ़ाता हुआ देखा गया तो वह जिन्दा आग में जला दिया जायेगा। इस बात का उल्लेख रडैल साहब की किताब "हिस्ट्री ऑफ पाप" की भाग २ में मौजूद है।

३. चौथी लिडियन ऑफ कौंसिल और "कौंसिल ऑफ ट्रण्ड" ने बाइबिल के पढ़ने की मुमालियत कर दी थी कि ख़ास पोप की तरफ से इस बारे में हुक्म जारी किए गए थे कि कोई बाइबिल का मुताला (अध्ययन) न करे।

४. पोप ऐनूसैन्ट ग्यारहवें सन् १६८७ ईसवी में हुक्म दे दिया था जिस शख्स के पास बाइबिल मौजूद हो वह उसको अपने नज़दीक के पादरी को दे दें ताकि वह उसको आग में जला दें।

५. पोप क्लीमैन्ट तेरहवें ने हुक्म दिया था कि जो कोई भी शख्स बाइबिल का इटाली अनुवाद पढ़ेगा, उसको काट मार दिया जाएगा।

६. पोप पायस आठवें ने सन् १८१६ ईसवीं में कहा था फिर में इस बात को देखकर काँप रहा हूँ कि बाइबिल चारों तरफ फैल रही है। बाइबिल का इस तरह फैलना बड़ा भारी जुर्म है, इससे मजहब की असली बुनियाद कतई खोखली हो जाएगी, यह एक प्लेग है जिसकी दवा करनी चाहिए। यह किसी भी रूह के ईमान को गारत करने के लिए एक अत्यन्त खतरनाक ज़हर है।

७. सन् १८२४ में ल्यू बारहवें ने बाइबिल सुसाइटी के बारे में कहा था कि यह एब ऐसी सुसाइटी है जो दुनिया में बाइबिल को बिखेर रही है, जो शैतान की किताब है।

८. रोमन कैथेलिक विशप डाक्टर हैल ने लार्ड जानसले को यकीन दिलवाया था कि जहाँ तक हो सकेगा मैं उन स्कूलों में जिन पर मेरा विश्वास है बाइबिल के जहरीले सबक को नहीं होने दूंगा।

९. ब्रिटिश राज्य कालीन भारत के भूतपर्व वायसराय लार्ड कर्जन ने अपनी एक स्पीच में कहा धा कि हिन्दु धर्म की श्रेष्ठता के आगे ईसाई मजहब की कुछ भी नहीं चल सकती, क्योंकि उनके मजबही उसूल (धार्मिक सिद्धान्त) बहुत अच्छे हैं। ईसाई लोग अपनी दाल नीच कौमों में ही कुछ गला सकते हैं। ऊँच और पढ़ी लिखी कौमों से उन्हें हाथ ही धोना पड़ता है। (डॉ॰ श्री राम आर्य की पुस्तक "बाइबिल दर्पण" से)

पोप जान पाल महोदय से करबद्ध प्रार्थना है कि ईसा मसीह को एतिहासिक व्यक्ति सिद्ध करने के बजाए ज़हर फैलाने वाली बाइबिल पर प्रतिबंध लगा दें। इससे विश्व का जहाँ बड़ा उपकार होगा वहाँ वे स्वयं भी पुण्य के भागीदार होंगे।

विश्वनाथ प्रसाद

क्वा॰न॰ एन॰ई॰ ५४, म॰प्र॰ वि॰मण्डल कालोनी,
कौरबा, जिला-जिलासपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चरक' व 'सुश्रुत' आर्ष ग्रन्थ हैं, अशोक जी

–इन्द्रजित्‌देव, पुरानी सब्जी मण्डी मार्ग, यमुनानगर-१३५००१

"आर्य जगत्" साप्ताहिक के सम्पादक श्री अशोक कौशिक दिनाङ्क ५ फरवरी, ९५ के अंक में पृष्ठ ७ पर लिखते हैं-"चरक" और "सुश्रुत" ग्रन्थ ऋषि की मान्यता के सर्वथा विपरीत हैं।"

इस टिप्पणी को पढ़कर मन सोचने पर विवश हुआ है कि जब आर्य समाज की पत्रिका के सम्पादक का ऋषि दयानन्द की मान्यता के प्रति सर्वथा विपरीत ज्ञान है तो यह महाशय अपने आप को ऋषि दयानन्द सरस्वती के अनुयायी कैसे कह सकते हैं। "आर्य जगत्" आर्यसमाज की एक प्रमुख संस्था आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की प्रतिनिध पत्रिका है। इस हिसाब से सम्पादक महोदय की गल्तब्यानी अधिक चिन्तनीय है व उक्त सभा के द्वारा अपनी पत्रिका के सम्पादक के सही चुनाव पर भी प्रश्न खड़ा करती है। ये सम्पादक महोदय पहले भी अपने एक सम्पादकीय **"विश्वासघात से भरे इतिहास के काले पन्ने"** के द्वारा कुछ ऐतिहासिक गल्तब्यानी दिनांक २०-१२-९२ के अंक में कर चुके हैं जिसे पढ़कर दिल्ली के कुछ सिख भड़के थे व श्री महीप सिंह ने जब उस गल्तब्यानी के विषय में स्पष्टीकरण देकर सिखों का पक्ष रखा तो इन सम्पादक जी ने बिना शर्त क्षमा याचना की भी। इस सम्बन्ध में पढ़िए- "आर्य जगत्" का दिनाङ्क १७ जनवरी, ९३ का अङ्क।

"चरक" व "सुश्रुत" के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती को सर्वथा MISQUOTE अर्थात गल्त रूप में उद्धृत करने पर श्री अशोक कौशिक अपनी पत्रिका में क्षमायाचना करेंगे, ऐसा प्रतीत नहीं होता क्योंकि ऋषि दयानन्द के अनुयायिओं में ऐसा कोई नहीं है जो अपने गुरु के विषय में विपरीत टिप्पणी पढ़कर दिल्ली के कुछ सिखों की तरह सड़क पर आकर प्रदर्शन करे तथा उनकी तरह दिल्ली के ही एक थाने में जाकर सम्पादक के विरुद्ध रपट दर्ज कराए।

हम आर्यजन सुधार करने में विश्वास करते हैं व मतभेद को तर्क व प्रमाण द्वारा समाप्त करने के समर्थक हैं। अत: इस लघु लेख द्वारा यह प्रयास करना अभीष्ट है कि उक्त सम्पादक महोदय की टिप्पणी सर्वथा गल्त है व 'सुश्रुत' व 'चरक', ये ग्रन्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती की मान्यताओं के न केवल सर्वथा अनुकूल थे, अपितु वे इन्हें आर्ष ग्रन्थ मानते थे। तेरह प्रमाण इस सम्बन्ध में निम्नलिखित हैं:-

१) "सत्यार्थप्रकाश" के तृतीय समुल्लास में मनुष्य शरीर की चार अवस्थाएं वर्णित करते हुए महर्षि ने "सुश्रुत" का एक वचन का हवाला दिया है।

२) दूसरे समुल्लास में पति-पत्नी द्वारा गर्भाधान से पूर्व व पश्चात् के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए "चरक" व "सुश्रुत" का सन्दर्भ दिया है।

३) इसी समुल्लास में महर्षि ने उपनयन कराने के अधिकारी वर्णों का वर्णन करते हुए 'सुश्रुत' के सुजस्थान का प्रमाण दिया है।

४) तृतीय समुल्लास में महर्षि ने आयुर्वेद की व्याख्या करते हुए "चरक" व "सुश्रुत" की प्रशंसा ही नहीलं की अपितु इन्हें ऋषि-मुनि प्रणीत वैद्यक शास्त्र घोषित किया है व इन्हें अर्थ व क्रियापूर्वक ४ वर्षों में पढ़ने-पढ़ाने का उपदेश दिया है।

५) 'सत्यार्थप्रकाश' के ही चतुर्थ समुल्लास में महर्षि ने कन्या की विवाह योग्य आयु का प्रसंग लिया है। इसका सन्दर्भ महर्षि ने यद्यपि‌त नहीं लिखा है तद्यपि वह सुश्रुत के शरीर स्थान अध्याय १० के दो श्लोकों पर ही आधारित है।

६) "संस्कार विधि" में वेदारम्भ संस्कार के अन्तर्गत महर्षि ने कुछ ग्रन्थों का ब्रह्मचारी द्वारा पढ़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विधान करते हुए "चरक" को आर्ष ग्रन्थ घोषित किया है।

७) "संस्कार विधि" में कर्णवेध संस्कार के अन्तर्गत महर्षि ने "चरक" व "सुश्रुत" वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से कर्ण तथा नासिका का वद्य कराने का परामर्श दिया है।

८) "संस्कार विधि" में गर्भाधान संस्कार अन्तर्गत गर्भाधान करने के लिए वर व कन्या (स्त्री व पुरुष) की आयु का वर्णन किया है तथा वहां भी 'सुश्रुत' के सूत्रस्थान के अध्याय ३५ के दो श्लोकों का प्रमाण दिया है।

९) "संस्कार विधि" में वेदारम्भ संस्कार को पढ़ते हुए पता चलता है कि वहां भी महर्षि ने "सुश्रुत" का ही प्रमाण देते हुए मनुष्य की देह की चार अवस्थाओं का वर्णन किया है।

१०) "संस्कार विधि" में वेदारम्भ संस्कार के अन्तर्गत महर्षि ने मनुष्य शरीर को "सुश्रुत" में वर्णित शस्त्र बनाकर उनसे अवयवों को चीरकर देखने का परामर्श दिया है।

११) "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" के ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय के अन्तर्गत महर्षि ने प्रामाणिक ग्रन्थों में वैद्यक शास्त्र "चरक" व "सुश्रुत" को उपवेद (आयुर्वेद) का ही भाग स्वीकार किया है।

१२) "सत्यार्थ प्रकाश" के तृतीय समुल्लास में महर्षि ने आयुर्वेद के अन्तर्गत "चरक" व "सुश्रुत" को न केवल प्रामाणिक ग्रन्थ माना है अपितु इन्हें ऋषि-मुनि प्रणीत भी स्वीकार किया है।

१३) सन् १८७५ में पुणे में महर्षि ने इतिहास विषय पर अपने तृतीय प्रवचन में "सुश्रुत" के ने... अध्याय का सन्दर्भ देकर यह सिद्ध किया है कि प्राचीन आर्यजन चिकित्सा में बड़े विज्ञ थे और उन्हें औजारों का उत्तम ज्ञान था ("उपदेश मञ्जरी" का दशम उपदेश)। इस से भी यह सिद्ध होता है कि महर्षि न केवल 'सुश्रुत' को मानते थे अपितु वे स्वयम् भी आयुर्वेद के विद्वान् थे।

इन तेरह प्रमाणों के होते हुए आप किस आधार पर कहते हैं कि "सुश्रुत" व "चरक" ग्रन्थ महर्षि के सर्वथा अमान्य ग्रन्थ हैं, अशोक जी।

नमन तुम्हें है, हे ऋषिराज

(राधेश्याम 'आर्य' विधावाचास्पति, मुसाफिर खाना, सुल्तानपुर)

जगती के हित में तुमने ऋषि!
स्वयं गरल का पान किया।
सह कर सारे अपमानों को,
हम सबको अभिमान दिया।
स्वर्ग बने यह धरती जिससे
किया अभय हो, वह शुचि काज।
नमन तुम्हें हैं, हे ऋषिराज।।
सत्य सनातन धर्म वेद का,
किया पुनः तुमने जाग्रत।
नहीं थके तुम, नहीं डरे तुम,
आगे बढ़ते रहे सतत।
गौरव अन्वित कर भारत को
किया प्रशस्त स्वराज, सुराज
नमन तुम्हें है, हे ऋषिराज
ऋषियों में तुम अग्रगण्य थे,
मानवता के भाग्य-विधाता।
दलितों-बिधवा तथा अछूतों
के तुम बने अमर त्राता।
वेदों का संदेश दिया
कर स्थापित आर्य समाज
नम तुम्हें है हे ऋषिराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए १००/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

३३० श्री रामचन्द्र मिस्त्री फतेह सागर रामनुज कोट मंदिर के सामने जोधपुर (राज०)
३३१ श्री हरिकेशदत्त साहित्यालंकार सम्पादक पंच पुत्र मासिक 4 मारुति नगर नांगल जे०बी० बेनाड़ रोड जयपुर (राज०)
३३२ Sh. Bhim Singh B-5, Type-5 I.A.R.I. New Delhi-12
३३५ Valusha Biksha Pathy, S.A. House No. 17/557/ 1 Kurumawada Warangal-2 (AP)
३३६ श्री अनिल कुमार जी बंसल बी-4/15 B.L I.G फ्लैट अशोक विहार फेज II दिल्ली-52
३३७ श्री आनन्द मुनि वानप्रस्थी WZ52 वीरेन्द्र नगर, नई दिल्ली-58
३३८ Mr. M.M. Bajaj, Department of Physics & Astrophysics University of Delhi
३३९ श्री चित्र बहादुर ग्राम जैतापुर पो० थम्पोर जि० सुलतानपुर (UP)
३४० श्री माधवराव श्यामराव हैवतपुरे विकास नगर देगलूर रोड, मु०पो० उदगीर जि० लातूर MR
३४१ श्री सेवा सिंह जी आर्य 405/1 शास्त्री मार्ग, इन्द्रा कालोनी, निकट गौड़ कालेज, रोहतक (हर०)
३४२ श्री ओमप्रकाश जी खेड़ा 48 डी मयूर विहार पाकेट I दिल्ली-91
३४३ श्री बृजमोहन जी सेठी 1964/36 नाई वाला करोल बाग नई दिल्ली-5
३४४ श्री वैदिक साहित्य केन्द्र आर्यसमाज आदर्श नगर जयपुर-4 (राज०)
३४५ श्रीमती दयावती गुप्ता बी-7/1 A बसंत विहार नई दिल्ली
३४६ श्री श्रवण कुमार आर्य कृषि फार्म पो० करमसान वाया एलनाबाद जि० सिरसा (हर०)
३४७ श्री धनेशचन्द्र जी अग्रवाल 19 सत्ती वाडा हापुड़, जि० गाजियाबाद UP
३४८ श्री नरदेव जी आर्य S/o श्री वीरेन्द्र जी शास्त्री मु०पो० टिटोली जि० रोहतक (हर०)
३४९ अधिष्ठाता कन्या गुरुकुल विद्यापीठ पंचगांव डाकघर गोपी वाया बाढडा भिवानी (हर०)
३५० श्री राम भरोसे लाल रामा डेरी गोरमी जि० भिण्ड (MP)
३५१ सुकृति D/o श्रीमती सुनीति ज्ञान गंगा प्रकाशन 4-5-754 वसु निकुञ्ज, हैदराबाद (AP)

—धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं॰ DL 11315/95
आर/ आर/ नं॰ २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/7/95

जुलाई १९९५

बिना टिकट भेजने का लाईसेंस नं॰
यू (डी॰एन॰) १४४/९५
Licenced to post without prepa[yment]
Licence No. U (DN) 144/95

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ हो[गा]
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।**

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु॰ ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान :- **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

ग्राम .... डा॰ .... जिला ....

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अगस्त, १९९५

वर्ष २३ : अंक १०
दयानन्दाब्द : १७१
विक्रमसंवत् : श्रावण, २०५२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९६

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
"दयानन्दसन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- ❑ आर्यसमाज हमारा है — २
- ❑ वेदोपदेश — ३
- ❑ वेदों के भाष्य करने के अधिकारी कौन हो सकता है — ४
- ❑ जीवों की हत्या विषयक शंका-समाधान — ५
- ❑ सत्यार्थ-प्रकाश के ३७वें संस्करण से उत्पन्न कतिपय यक्षप्रश्न — ६
- ❑ धन्यवाद पं० श्री विरजानन्द दैवकरणि को — ७
- ❑ यज्ञ-वैज्ञानिकों की दृष्टि में — ९
- ❑ शंका समाधान — १२
- ❑ अयन्त इध्म आत्मा मन्त्र से पाँच घृताहुतियों का प्रयोजन — १५
- ❑ वर्तमान सन्दर्भों में आर्यसमाज की प्रासंगिकता — १८
- ❑ आर्य सन्यासियों का अपमान करने वालों को 'सार्वदेशिक सभा' का अधिकार नहीं है — २०
- ❑ स्वामी विद्यानन्द जी पर मिथ्या एक कलंक रेखा — २१
- ❑ पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ — २३
- ❑ क्या यही वैदिक दर्शन का परम लक्ष्य है? — २४
- ❑ साहित्य-समीक्षा — २६

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द चौदह सौ रुपये, कपड़ा जिल्द पन्द्रह सौ रुपये और सजिल्द सोलह सौ रुपये सैंकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज हमारा है

[राधे श्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति मुसाफिर खाना, सुलतान पुर (उ०प्र०)]

तिमिराच्छन्न धरणि पर जिसने,
वेद ज्ञान की रश्मि बिखेरा।
तोड़ दिया जिसने निर्भय हो,
पाखण्डों का कलुषित घेरा।

ज्ञान पुष्प से जगती तल का
जिसने भाग्य सवांरा है।
वह आर्यसमाज हमारा है।।

अन्यायों – अत्याचारों का,
जिसने है प्रतिकार किया।
शूद्र तथा नारी को समुचित,
जिसने है अधिकार दिया।

वेद ज्ञान के बल पर जिसने
असुरों को ललकारा है।
वह आर्यसमाज हमारा है।।

जगा रहा सम्पूर्ण धरा को,
सत्य धर्म की बातों से।
मानवता की रक्षा करता
आडम्बर प्रतिघातों से।

कृण्वन्तोविश्वमार्यम् का
लगा रहा जो नारा है।
वह आर्यसमाज हमारा है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है-महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- विद्वानों को समस्त पदार्थ विद्या को जानकर विद्यार्थियों को प्रश्नोत्तर विधि से सिखाना भी चाहिये।

सुहोत्रः ऋषिः। विश्वेदेवाः देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

पुनः मनुष्यैः किंकर्तव्यमित्याह।।

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है।।

ओ३म्- विश्वे देवाः श्रृणुतेमꣳहवं मे ये ऽअन्तरिक्षे य ऽ उपद्यविष्ठ।
ये ऽ अग्नि जिह्वा उत वा यजत्रा ऽ आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्।।

(यजु० ३३/५३)

पदार्थः- (विश्वे) (देवाः) विद्वांसः (मम) (हवम्) अध्ययनाध्यापन-व्यवहारम् (मे) मम (ये) (अन्तरिक्षे) (ये) (उप) (द्यवि) प्रकाशे (स्थ) वेदितारो भवत (ये) (अग्निजिह्वाः) अग्निर्जिह्वावद येषान्ते (उत) अपि (वा) (यजत्राः) सङ्गतारः पूजनीयाः (आसद्य) स्थित्वा (अस्मिन्) (बर्हिषि) सभायामासने वा (मादयध्वम्) हर्षयत।।

सपदार्थान्वयः- हे (विश्वदेवाः) विद्वांसः। यूयं (ये अन्तरिक्षे) (ये द्यवि) (स्थ) प्रकाशे वेदितारो भवत (ये अग्नि जिह्वाः) अग्नि र्जिह्वावद् येजषान्ते (उत) अपि (वा) (यजत्राः) सङ्गन्तारः पूजनीयाः पदार्थाः सन्ति; तेषां वेदितारः (स्थ) भवत। (मे) मम (इमं हवम्) अध्ययनाध्यापनव्यवहारम् (उपश्रृणुत) (अस्मिन्) (बर्हिषि) सभयामासने वा (आसद्य) [illegible] (मादयध्वम्) हर्षयत।।

भाषार्थः- हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वानों! तुम (ये) जो (अन्तिरिक्षे) आकाश में और (ये) जो (द्यवि) प्रकाश में विद्यमान पदार्थ हैं, उन के (स्थ) जानने वाले बनो। (ये) (अग्निजिह्वाः) जिह्वा के समान अग्नि वाले (उत, वा) अथवा (यजत्राः) संगति और पूजा के योग्य जो पदार्थ हैं उनके जानने वाले (स्थ) बनो। (मे) मेरे (इमम्) इस पठन-पाठन रूप व्यवहार को (उप+श्रृणुव) समीप होकर सुनो। (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) सभा में अथवा आसन पर (आसद्य) बैठकर (मादयध्वम्) हर्षित होओ।।

भावार्थः-हे मनुष्याः। यूयं यावन्तो भूमावन्तरिक्षे प्रकाशे च पदार्थाः सन्ति तान् बुद्ध्वा विदुषां सभां विधाय विद्यार्थिनां परीक्षां कृत्वा विद्या सुशिक्षे वर्धयित्वा स्वयमानन्दिता भूत्वाऽन्यान् सततमानन्दयत।।

भावार्थः- हे मनुष्यो! तुम जितने पदार्थ भूमि आकाश और प्रकाश (द्युलोक) में पदार्थ हैं, उन्हें जानकर, विद्वानों की सभा करके विद्यार्थियों की परीक्षा करके विद्या और सुशिक्षा को बढ़ाकर स्वयं आनन्दित होकर अन्यों को सदा आनन्दित करो।।

("दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर" से उद्धृत, व्याख्याता- श्री आचार्य सुदर्शनदेव शास्त्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों के भाष्य करने के अधिकारी कौन हो सकता है।

(१) **महर्षि-दयानन्द** ने लिखा है- "वेदों के अर्थ को यथावत् बिना विचारे उन अर्थ में किसी मनुष्य को हठ से साहस करना उचित नहीं। क्योंकि जो वेद सब सत्यविद्याओं से युक्त हैं अर्थात् उनमें जितने मन्त्र और पद हैं, वे सब सम्पूर्ण सत्य विद्याओं के प्रकाश करने वाले हैं और ईश्वर ने वेदों का व्याख्यान भी वेदों से ही कर रखा है।"

इसमें निरुक्त का भी प्रमाण है जैसा कि यास्कमुनि ने कहा है- (तत्प्रकृतीतर०) इत्यादि वेदों के व्याख्यान करने के विषय में ऐसा समझना कि जब तक सत्यप्रमाण सुतर्क वेदों के शब्दों का पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरण आदि वेदांगों, शतपथ आदि ब्राह्मणों, पूर्व मीमांसा आदि शास्त्रों और शाखान्तरों का यथावत् बोध न हो,

और परमेश्वर का अनुग्रह, उत्तम विद्वानों की शिक्षा, उनके संग से पक्षपात छोड़ के आत्मा की शुद्धि न हो तथा महर्षि लोगों के किये व्याख्यानों को न देखे, तब तक वेदों के अर्थ का यथावत् प्रकाश मनुष्य के हृदय में नहीं होता। **(ऋ॰ भा॰ भू॰ वेद विषय)**

इसका अभिप्राय यह है वेदमन्त्रों के अर्थ करने वाले की योग्यता व्याकरणादि वेदांगों का विधिवत् अध्ययन करना, छः शास्त्रों का यथाविधि परायण, ब्राह्मण ग्रन्थों का अधिकारपूर्वक मनन, पूर्वकृत भाष्यों का अनुशीलन जहाँ परमावश्यक है, वहाँ योग साधना से परमेश्वर का अनुग्रह और आत्मा की शुद्धि करना भी परमावश्यक है। इसी बात की पुष्टि आचार्य यास्क भी कर रहे हैं-

न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा।।

(निरुक्त॰ १३/१२)

महर्षि दयानन्द इस प्रमाण की व्याख्या करते हैं- **'नैवैतेषु मन्त्रेष्वनृषेरतपसोऽशुद्धान्तः करणस्या विदुषः प्रत्यक्षं ज्ञानं भवति'। अर्थात् मन्त्रों का अर्थ प्रकाश ऐसे व्यक्तियों को कदापि नहीं होता जो ऋषि नहीं है, तपस्वी नहीं, विद्वान् नहीं और अन्तःकरण मलीन होने से पवित्र नहीं है।**

ये उपरोक्त बातें कुछ कम ही समझ में आती थी, किन्तु जब योगदर्शन का सूत्र पढ़ा और उस पर व्यास मुनि का भाष्य देखा तो ऐसा लगा कि महर्षि तो अपनी कुछ भी बात नहीं कह रहे, वे तो मानो योगसूत्र को ही स्पष्ट कर रहे हैं। जो व्यक्ति अनधिकारी होकर भी वेद में प्रवेश करने का साहस करते हैं उन्हें निम्नयोग सूत्र पर विचार अवश्य करना चाहिये-

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्य विषया विशेषार्थ त्वात्।।

(यो॰ १/४९)

इस सूत्र में योगी भी ऋतम्भरा प्रज्ञा की विशेषता बताई गई है। अर्थात् जो ज्ञान हम गुरुमुख से प्राप्त करते हैं या वेदादि शास्त्रों से प्राप्त करते हैं वह श्रुत और जो ज्ञान अनुमान से प्राप्त होता है वह सब सामान्य स्तर का ही ज्ञान होता है क्योंकि इससे विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इसका कारण भी समझाते हुए व्यास भाष्य में लिखा है-

न चास्यं सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टस्य वस्तुनो लोकप्रत्यक्षेण ग्रहणमस्ति।

अर्थात् श्रुतज्ञान या आनुमानिक ज्ञान से सूक्ष्म वस्तुओं, व्यवहित वस्तुओं तथा दूरस्थ वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता। अतः ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त योगी सूक्ष्म वस्तुओं को भी जान सकता है, किसी वस्तु से व्यवहित वस्तुओं को भी जान सकता है और दूरस्थ वस्तुओं का भी ज्ञान कर सकता है। इसी कारण से कहा गया है कि जो ऋषित्व को प्राप्त नहीं है तथा योगी भी नहीं है उसे वेदभाष्य करने का अधिकार नहीं है क्योंकि वेदमन्त्रों में कथित सब सत्य विद्याओं को वह समझने में असमर्थ होता है। महर्षि ने ऐसे शब्दार्थ बल से वेदभाष्य करने वालों की निन्दा करते हुए लिखा है-

"इससे यह सिद्ध होता है कि जो सायणाचार्य और महीधरादि अल्पबुद्धि लोगों के झूठे व्याख्यानों को देखकर आजकल के आर्यावर्त्त और यूरोप, देश के निवासी लोग, जो वेदों के ऊपर अपनी-अपनी देशभाषाओं में व्याख्यान करते हैं, वे ठीक-ठीक नहीं है। और उन अनर्थयुक्त व्याख्यानों को मानने से मनुष्यों को अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है। इससे बुद्धिमानों को उन व्याख्यानों को प्रमाण करना योग्य नहीं।" **(ऋ॰भा॰भू॰ वेद विषय)**

-राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवों की हत्या विषयक शंका-समाधान

(प्रश्न) क्या मुख की उष्णता से जीवों की हत्या होती है। अथवा पीड़ा पहुँचती है? और इसीलिए जैन धर्मावलम्बी मुख पर पट्टी बान्धते है?

(उत्तर) यह बात सत्य नहीं। यदि ऐसा हो तो ज्येष्ठ के महीने में सूर्य की बड़ी गर्मी से वायुकाय जीवों में से कोई भी न बचे। अतः श्वासों की भाप से जीव हत्या मानने की बात सर्वथा मिथ्या है।

(प्रश्न) जीव होने से वायुकाय शरीर वाले जीवों को सुख-दुःख क्यों नहीं होता?

(उत्तर) जैसे मूर्छित मनुष्य को सुख-दुःख नहीं होता। वैसे ही वायुकाय जीवों को सुख-दुःख होना सम्भव नहीं। जब नशा सुंघा के डाक्टर लोग शरीर के जिस अंग को काटते हैं और उस व्यक्ति को कुछ भी पीड़ा अनुभव नहीं होती, इसी प्रकार अति मूर्छित वायुकाय जीवों को भी सुख-दुःख नहीं होता।

(प्रश्न) वृक्षों में भी जीव होता है। क्या उसको काटने से दुःख नहीं होता और शाकाहारी व्यक्तियों को दोष नहीं लगता।

(उत्तर) मनुस्मृति मे लिखा है कि ये स्थावर जीव तमो गुण वाले होने से सुखी वा दुःखी नहीं होते। इसी प्रकार गाजर-मूली आदि खाने में भी दोष नहीं है। सुख-दुःख क्यों नहीं होता, इस बात को समझाते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं-

पंचावयवयोगात् सुख संवितिः॥ (सांख्य)

जब पांचों इन्द्रियों का पांच विषयों के साथ सम्बन्ध होता है, तभी सुख दुःख की प्राप्ति जीव को होती है। जैसे बधिर को गाली प्रदान, अन्धे को रूप या आगे से सर्प व्याघ्रादि भयदायक जीवों का चला जाना, शून्यबहिरी वालों को स्पर्श, पिन्नस रोग वाले को गन्ध, शून्य जिह्वा वाले को रस प्राप्त नहीं हो सकता, इसी प्रकार उन (स्थावर) जीवों की भी व्यवस्था है। ये जीव महासुषुप्ति दशा में होते हैं।

(प्रश्न) जितने हरे शाक पात और कन्दमूल हैं, उनको हम जैनी नहीं खाते क्योंकि इनमें जीव होते हैं। अतः पाप से बच जाते हैं। परन्तु जो खाते हैं वे जीव हत्या करने से पापी होने से बच नहीं सकते।

(उत्तर) यह भी बड़ी अविद्या की बात है। क्योंकि हरे शाक, पात आदि में जीव अत्यन्त अन्धकार, महासुषुप्ति और बड़े नशे में होते हैं। अतः इन हरी सब्जियों में जीव हत्या मानना महाभूल है।

(प्रश्न) जैनी पानी को गर्म करके पीते हैं। इनके अनुसार पानी में सूक्ष्म कीड़े होते हैं। अतः पानी को गर्म करके पीते हैं। क्या यह असत्य है?

(उत्तर) यह भी भ्रमजाल के समान भूल ही है। क्योंकि ऐसा मानने से जब पानी को गर्म करते हैं, तब पानी के जीव मर जाते होंगे और जीवों के शरीर पानी में रंध जाते होंगे और वह पानी सौंफ के अर्क के समान शरीरों से तेजाब बन जाता होगा और उसे पीने वाले बड़े पापी कहलाते होंगे। और जल बिना गर्म किए पीते हैं वे जीव हत्या के पाप से बच जाते हैं। यदि ऐसा करने से जल के जीव जल के साथ उदर में चले जायेंगे और वहाँ जीव हत्या होने से पाप से बच नहीं सकेंगे। यह मानना भी ठीक नहीं। क्योंकि जलस्थ जीव जल के साथ अन्दर पेट में चले भी गये तो वे अन्दर उष्णता पाकर श्वासों के साथ बाहर निकल जायेंगे। अतः जीव हत्या से बच जायेंगे। (इसी प्रकार दही आदि के कीड़ों की बात भी समझनी चाहिये और दही खाने वाले पाप के भागीदार नहीं होते।

(स॰प्र॰ से संकलित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यार्थ-प्रकाश के ३७वें संस्करण से उत्पन्न कतिपय यक्षप्रश्न

पं॰ विरजानन्द जी की मिथ्योक्ति– स॰ प्र॰ के ३७वें संस्करण को मूलप्रति के अनुरूप बताते हुए आपने लिखा है– **"इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द के वाक्यों को ज्यों का त्यों रखा गया है। इससे उनके भाव और भाषा उसी रूप में सुरक्षित रह गये हैं।"** परन्तु मैंने इस संस्करण के तीन समुल्लासों को बहुत ध्यान से अक्षरश: मिलान करके दयानन्द-सन्देश में यह दिखाने का प्रयास किया था कि इस संस्करण में बहुत से वाक्य बढ़ाये गये हैं, बहुत से पाठ परिवर्तित किये गये हैं और बहुत पाठों को आगे पीछे भी किया गया है। अत: सम्पादक का ऐसा कथन सर्वथा असत्य है कि ऋषि-दयानन्द के वाक्यों को ज्यों का त्यों रखा गया है। और इसके विपरीत यह कहकर टालने का प्रयास करने लगें हैं–

'ऐसे ऐसे पाठभेद तो मैंने हजारों एकत्र कर रखे हैं। इसमें ज्यों व्यर्थ समय गंवाया गया है।'

सभा के मन्त्री जी का मिथ्याग्रह– मैंने सभा के मन्त्री के पास पत्र भी लिखा–कि हमें महर्षि के दोनों संस्करण मान्य हैं परन्तु सभा ने जो ३७वाँ संस्करण छापा है वह तो किसी भी प्रति के अनुरूप नहीं है। मूल प्रति से मिलान करने पर ऐसे सैंकडों पाठवर्धन व परिवर्तन पाये गये हैं, ऐसा क्यों? इसका उत्तर तो सभा के मन्त्री के पास कुछ था ही नहीं, देते क्या? जिसका आज तक कोई उत्तर नहीं मिला और जो व्यक्ति अपने लेख में दूसरों को आग्रही बताता था, वह स्वयं ही ३७वें संस्करण में आग्रही हो गया और उसी को ठीक बताने में लेख लिख बैठा। और जो अपने को अविद्वान् भी कह रहा था, वह स्वयं ही विद्वान् बनकर अपने गलत कार्य की वकालत करने लगा। सभा मन्त्री के इस पूर्वाग्रह के कारण ही यह पता लगा कि उनका यह कथन मिथ्या था कि विद्वानों का सहयोग नहीं मिल रहा है। ऐसे पूर्वाग्रहग्रस्त मन्त्री जी का कौन सहयोग करता। इसीलिए अजमेर में जुलाई बैठक तथा उसके बाद श्री भारतीय जी की अध्यक्षता में बनी तीन आदमियों की समिति असफल ही रही।

और जो मन्त्री **यह कहते थे हमारे ऋषि के हाथ का एक-एक कागज का टुकड़ा हमारी निधि है**, क्या उस निधि की रक्षा ऐसे ही करनी है कि सैंकड़ों पाठ परिवर्धन व परिवर्तन करके या करवाकर भी ऋषि का लेख बताया जा रहा... आर्यजनता ऐसे घोटालों को कभी स्वीकार नहीं करेगी, ... जनता को आपके घोटालों का पता नहीं है।

क्या द्वितीय संस्करण अशिष्ट है– सभा के मन्त्री ... गुरुग्रन्थ साहब की दोनों प्रतियों की तरह स॰प्र॰ को मानने ... बात झूठी हो गयी है कि जो एक प्रति को शिष्ट बताकर दू... को अशिष्ट बताने लगें हैं। मन्त्री महोदय को यह भी ... रखना चाहिये कि सत्य का असत्य से, पाप का पुण्य से क... समझौता नहीं हो सकता। आपने जो मूर्ति पूजकों को खुश ... की नियत से मूर्तिपूजा के दोषों में जो शिष्ट भाषा की ... लिखी है, उससे कभी लाभ नहीं होने वाला है और ग्रन्थ ... स्तर भी इस लीपापोती से नहीं सुधर सकता। जैसे कां... वोटों के चक्र में तुष्टीकरण करते-करते फेल ही हो गये ... किसी समस्या का समाधान नहीं मिला। इसी प्रकार आ... महर्षि के ग्रन्थों में कहाँ-कहाँ शिष्टता की दुहाई देकर ... का स्तर सुधारोगे। इसमें आपको कभी सफलता तो क्या ... अधिक विरोध होकर असफलता ही हाथ लगेगी। अच्छा ... कि मन्त्री महोदय से जो बात पूछी गई है उसी का उत्त... का कष्ट करें।

–राजवीर शा...

सामवेद-भाष्य का सस्ता प्रकाशन

सामवेद के विषय में श्री कृष्ण कहते हैं-

'वेदानां सामवेदोऽस्मि'

विश्व में पहली बार कम मूल्य में ऐसा सुन्दर कपड़े की जिल्द

प्रथम भाग, पृष्ठ ४००, मूल्य-५० रुपये

नमूना पृष्ठ १२८, मूल्य दस रुपये में,

लागत से भी कम मूल्य में,

वेदभक्त स्वाध्यायशील व्यक्ति सम्पर्क करें-

वैदिक साधना उतेक,

३२२ ए, गली-४, श्री नगर कालोनी, दिल्ली-३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्यवाद पं॰ श्री विरजानन्द दैवकरणि को

डॉ॰ रामनाथ वेदालङ्कार

हम गुरुकुल झज्जर के मासिक पत्र 'सुधारक' जून ... के पन्ने पलट रहे थे। तभी एक लेख सामने आ ... 'क्या सत्यार्थप्रकाश का ३७वां संस्करण मुर्दा ...' इसके लेखक भी पं॰ श्री विरजानन्द जी हैं। मन ने ...-अटक क्यों गये? इस लेख को तो तुम पहले ...कारी' के जून अंक में भी पढ़ चुके हो। फिर भी अक्षरशः सारे लेख को बांच गये। पढ़ने से ऐसा प्रतीत ... कि जगह-जगह भाषा बदली हुई है, वाक्य ...-पीछे भी किये गये हैं, कुछ परिवर्धन भी है, जो ... बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए किया गया ... है। मन कहने लगा- क्यों इस उलझन में पड़ते हो? ... भी क्या कोई 'सत्यार्थप्रकाश' है? फिर भी हम ...कारी' का अंक उठा लाये। देखते क्या हैं? हमारी ... सच है। मन ने कहा- 'इसमें कुछ रहस्य तो नहीं, जो ... दुविधा में पड़े हो; यह तो संपादक की मिलावट है। ... प्रति तो वही है, जो 'परोपकारी' में छपी है। मिलावट ... उत्तरदायी दैवकरणि जी तो हो नहीं सकते।' हमने मन ... लताड़ा- तू बेसिर पैर की बातें मत किया कर। देख ...ही, 'सुधारक' में छपे लेख के भाषा और भाव ...कृत हैं, अपनी बात को समझाने के लिए कुछ वाक्य ... भी जोड़े गये हैं। यह परिष्कार तो लेखक के ... कोई दूसरा नहीं कर सकता।' मन ने कहा- 'यही ... श्री दैवकरणि जी सत्यार्थप्रकाश की मुद्रण प्रति पर तो ... करते नहीं, तुम व्यर्थ उनका पक्ष ले रहे हो ...-परिवर्धन उनका सिद्ध करने के लिए'। हमने मन ... करते हुए कहा- अब तो श्री दैवकरणि जी ने ... उदाहरण से सत्यार्थप्रकाश की मुद्रण प्रति के ...कार को श्री स्वामी जी द्वारा किया-करवाया हुआ ... कर दिया है। इस उपलक्ष में हम उन्हें धन्यवाद देने ... रहे हैं। अब हे भाई दैवकरणि जी, या तो आप ...' के संपादक जी पर मुकदमा करो कि उन्होंने ... लेख में मिलावट क्यों कर दी, या फिर 'सत्यार्थ-प्रकाश' की मुद्रण प्रति में किये गये परिष्कार को प्रतिलिपिकर्ता की मिलावट कहना छोड़ो। जैसे आपको अपने लेख में परिष्कार करने का अधिकार है, वैसे ही श्री स्वामी जी महाराज को भी था।

२. दूसरा धन्यवाद है श्री पं॰ दैवकरणि जी को इस हेतु कि अपने लेख में उन्होंने हमें भी कुछ पंक्तियां समर्पित की हैं। उनके लेख की 'परोपकारी' में छपी मूल प्रति में ये पंक्तियां इस प्रकार हैं–

यदि प्रेस प्रति में सभी पाठ ऋषि द्वारा बढ़ाये मानेंगे तो श्री शास्त्री जी (पं॰ राजवीर शास्त्री जी) को उत्तर देना भारी हो जायेगा या पं॰ रामनाथ जी के अनुसार यदि प्रेस प्रति सारी ही महर्षि द्वारा दुबारा लिखाई गई मानी जायेगी तो भी समाधान नहीं हो पायेगा। क्या जो पंक्तियां छूट गईं या जो पंक्तियां दोबारा लिखी गईं वे भी ऋषिजी के आदेश से हुई हैं?"

'सुधारक' में प्रकाशित अपने लेख की संशोधित प्रति में इन पंक्तियों को श्री दैवकरणि जी ने इस रूप में परिवर्तित किया है–

"सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण की प्रेस कापी के सारे पाठ ऋषि जी द्वारा ही बढ़ाये गये मानेंगे या पं॰ रामनाथ जी के अनुसार प्रेस कापी स्वतन्त्ररूप से दुबारा ही लिखी गई मानी जायेगी तो उत्तर देना भारी पड़ जायेगा। प्रेस कापी में जो पाठ दुबारा लिखे गये हैं या जो पंक्तियां छूट गई हैं, वे भी ऋषि जी के गले पड़ जाएंगी। क्या वे भी ऋषि जी के आदेश से ही लिखी और छोड़ी गई हैं?"

इस समय हम धन्यवाद देने की ही मुद्रा में हैं, उत्तर देने की मुद्रा में नहीं, इसलिए न तो यह कहेंगे कि हमारी मान्यता क्या है, न ही उक्त आक्षेप का विस्तृत उत्तर देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहेंगे। इतनी टिप्पणी अवश्य करेंगे कि चौथी कक्षा का बालक भी इस बात को जानता है कि प्रतिलिपि करते समय या बोला हुआ लिखते समय कहीं-कहीं एक या अधिक पंक्तियों का छूट जाना या दोबारा लिखा जाना प्रायः हो जाता है, और यह त्रुटि प्रतिलिपिकर्ता की या बोला हुआ सुनकर लिखने वाले की ही मानी जाती है ग्रन्थलेखक की नहीं। इसके अतिरिक्त न कोई यह कहता है कि प्रथम पाण्डुलिपि सारी गलत है, न यह कि प्रैस कापी सारी ठीक है, विवेक से काम लेना उचित है।

३. एक बात और। श्री दैवकरणि जी ने ३७वें संस्करण का औचित्य ठहराने के लिए श्री पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी की सहमति भी उद्धृत की है। आपके लेख की 'परोपकारी' में छपी मूल प्रति में ये शब्द हैं-**पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने कहा था कि "यह कार्य १०६ वर्ष पूर्व होना चाहिए था, अब न किया जाये, इसका विस्तार तथा अनुवाद बहुत हो चुके।"** 'सुधारक' में छपी परिष्कृत प्रति में इसके आगे इतना अंश अधिक जोड़ा गया है-**"परन्तु कुछ भूलों की ओर उनका ध्यान दिलाने पर उन्होंने कहा कि ये पाठ नीचे टिप्पणी में दिये जायें, अब तो जैसा चल रहा है, उसे वैसा ही चलने दें। इस कठिन कार्य को कौन करेगा? मैंने कहा कि मैं कर सकता हूं। इस पर उन्होंने पाठों की उपयोगिता स्वीकार करते हुए भी प्रत्यक्ष समर्थन नहीं किया।"** श्री मीमांसक जी के साथ हुई आपकी यह वार्ता, जैसा हम समझे हैं, ३७वें संस्करण का संपादन-कार्य आरंभ करने से पूर्व की है। परन्तु जब संपादित ३७वां संस्करण सामने आ गया तब इसके सम्बन्ध में मीमांसक जी की सम्मति यह बनी-**"यदि सभा के अधिकारियों को सत्यार्थप्रकाश के साथ किये गये मज़ाक से कुछ भी ग्लानि हो, अपनी भूल प्रतीत हो, तो इस संस्करण को जला देना चाहिए।"** (प्रमुख 'वेदवाणी', फरवरी १९९२, पृ० १२)। अब आप ही बतायें कि आपके साथ हुई श्री मीमांसक जी की वार्ता का क्या महत्त्व रह जाता है! अपनी अस्वस्थता के कारण श्री मीमांसक जी ३७वें संस्करण को पूर्णतः नहीं देख पाये होंगे। यदि वे यह देख पाते कि ऋषि द्वारा संशोधित दो सौ से भी अधिक निर्दोष पाठों को हटाकर एक रफ कापी के सदोष पाठ रख दिये गये हैं, तब तो वे और भी अधिक उग्र होते।

४. श्री दैवकरणि जी का लेख पढ़कर एक शं[का] उत्पन्न हुई है। श्री पं. राजवीर शास्त्री ने 'दयानन्द सन्दे[श]' के मई १९९५ के अंक में एक लेख लिख[ा] था-**'सत्यार्थप्रकाश के ३७वें संस्करण की अ[ग्नि] परीक्षा।'** इसमें उन्होंने नवम समुल्लास के ऐसे परिव[र्तित] और परिवर्धित पाठ उद्धृत किये हैं, जो मूल प्रति (प्रथ[म] पाण्डुलिपि) में नहीं है। श्री पं. दैवकरणि जी अपने ले[ख] में इसका उत्तर देते हुए लिखते हैं-"ऐसे-ऐसे पाठभेद [तो] मैंने हजारों एकत्र कर रखे हैं।...... शास्त्रीजी ने इ[न] पाठभेद दिखाकर व्यर्थ ही परिश्रम किया है। इससे अच्छा तो मैं इनको सारे पाठभेद वैसे ही दिखा देता। इतने कागज़ काले करने की क्या आवश्यकता थी।" श्री दैवकरणि जी के इन शब्दों को पढ़ने के पश्चात् हमने ३७वां संस्करण उठाकर यह देखना चाहा कि उसमें अपने प्रारम्भिक वक्तव्य में आप क्या लिखते हैं। देखने पर हमें [illegible] आपके ये शब्द लिखे मिले-**"मूल प्रति के पृष्ठ [illegible] अनुपलब्ध थे (जैसे १२वें समुल्लास में) [illegible] मुद्रणप्रति का आश्रय लिया गया है।"** इस भाषा से [illegible] आशय निकलता है कि अन्यत्र मुद्रण प्रति का आश्रय न[हीं] लिया गया। पं. राजवीर शास्त्री जी ने जो परिवर्तित और परिवर्धित स्थल अपने लेख में उद्धृत किये हैं, वे न[वम] समुल्लास के हैं और उन्होंने मूल प्रति से मिलान करके [illegible] लिखे हैं। श्री दैवकरणि जी ने समाधान किया है-"उन्होंने (पं. राजवीर शास्त्री जी ने) जो उदाहरण दिये हैं, [illegible] उनकी समझ की भूल हैं, उन्हें प्रेस कापी देख[नी] चाहिए।" भाई, आपकी प्रतिज्ञा तो यह है कि ज[हां] मूलप्रति के पृष्ठ अनुपलब्ध हैं, वहीं मुद्रणप्रति से ला[भ] उठाया है। नवम् समुल्लास के तो मूल प्रति के पृ[ष्ठ] उपलब्ध हैं। तो क्या प्रतिज्ञाहानि दोष नहीं आता?

असल में ३७वें संस्करण के आरंभ में जो आ[पने] वक्तव्य दिया है, उससे कुछ भी स्पष्ट नहीं होता [illegible] संपादन के आपके मूल सूत्र क्या हैं और क्या नीति [illegible] गई है। एक पृष्ठ के स्थान पर दस पृष्ठों में संपादक[ीय] वक्तव्य होना चाहिए था। सब पाठक अन्धकार में [illegible] इस युग में हैं कि आपने ऋषि के पाठों को सुरक्षित [illegible]

(शेष पृष्ठ ११ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ-वैज्ञानिकों की दृष्टि में

-आचार्य डा॰ सत्यव्रत राजेश

वैदिक ऋषियों ने अपने प्रतिभा-चक्षुओं से वेद के आधार पर जिन जीवन पद्धतियों को खोजा था पहले तो वैज्ञानिकों ने उन्हें स्वीकारने में अधिक रुचि नहीं दिखाई थी किन्तु जब वे थोड़ा-बहुत ध्यान देने लगे तो उनको वे विधियाँ विज्ञान सम्मत लगीं तथा वे उनकी ओर आकृष्ट हुए। यह विश्व का सौभाग्य हैं। हमें यह मानने में संकोच नहीं होना चाहिए कि प्रचीन ऋषियों जैसी प्रतिभा अब संसार के पास नहीं हैं चाहे वे संसार को अपने नूतन आविष्कारों से कितना ही चमत्कृत कर दें। अणुबम में प्रयुक्त शक्ति को यदि **चूल्हे, वाहन,** कारखानों आदि के साथ जोड़ा **जाता तो विश्व अधिक** आत्मनिर्भर, निर्भय तथा **सुखी हो सकता था, जबकि** अस्त्र के साथ जुड़ी **वह शक्ति संहारक** तथा अशान्ति को जन्म देने वाली **बनी तथा जहां** उसका प्रयोग हुआ वहाँ धरती कराही। **विज्ञान ने अनेक** सुखद आविष्कार भी किए हैं जिनके लिए विश्व उनका ऋणी रहेगा।

आज हम यज्ञ को लेते हैं जिसे होम, हवन आदि भी कहा जाता है। लगभग दो दशाब्दी पूर्व प्रि॰ भगवान दास जी ने डी॰ ए॰ वी॰ कॉलेज अम्बाला के प्राचार्य थे, मुझे अपने कॉलेज तथा सोहन लाल प्रशिक्षण कॉलेज में भाषण के लिए बुलाया था। सोहन लाल प्रशिक्षण महाविद्यालय में कन्याओं की अधिकता थी अत: उन्होंने तो मेरे व्याख्यान को रुचि पूर्वक सुना किन्तु अगले दिन यज्ञ के पश्चात डी॰ ए॰ वी॰ कॉलेज में मेरा व्याख्यान समाप्त हुआ तो एक युवक, जो वहां व्याख्याता थे, मेरे पास आए और पूछने लगे कि यदि आप बुरा न मानें तो मैं कुछ पूछना चाहूंगा। मेरी स्वीकृति मिलने पर उन्होंने कहा कि मैं तो आर्य समाजी परिवार से सम्बन्ध रखने के कारण यज्ञादि को मानता हूँ किन्तु मेरे साथी ये कहते हैं कि आर्य समाज की अन्य बातें तो ठीक लगती हैं किन्तु हवन के नाम से घी फूंकना ठीक नहीं है। इससे तो अच्छा है कि किसी गरीब को खाने को दे दिया जाए।

मैंने उनसे पूछा कि आप क्या विषय पढ़ाते हैं तो उन्होंने विज्ञान बतलाया। मैंने पूछा कि विज्ञान किसी वस्तु के, जो भाव रूप में हो, अस्तित्व की समाप्ति स्वीकार करता है? वस्तु का कार्य कारण भाव तो माना जा सकता है। पहले वस्तु कार्य रूप में हो तथा फिर वह कारण रूप में होने पर आंखों से दिखाई न पड़े किन्तु यह नहीं हो सकता कि वस्तु पहले हो और उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। उन्होंने भी इसे स्वीकार किया। संस्कृत में भी नष्ट होने का अर्थ अदर्शन होना अर्थात् आंखों के सामने न रहना है। णश् धातु, जिससे प्रत्यय लग कर नष्ट शब्द बना है, अदर्शन अर्थ में ही आती है। दूसरे, मैंने उनसे पूछा कि यदि उनके अनुसार किसी को वो खाने को दे, दिया जाये जो उसे न पचे तो क्या उससे लाभ होगा? 'नहीं' उन्होंने उत्तर दिया। मैंने पूछा कि पचने प्रकिया क्या होती है? उन्होंने कहा कि हजम हो जाता है। मैंने कहा कि यह तो पर्यायवाची वाक्य हुआ, उसमें प्रकिया क्या होती है? उनके अनभिज्ञता प्रकट करने पर मैंने बताया आयुर्वेद के विद्वान इस प्रकिया को भोजन का जठराग्नि द्वारा फूंका जाना बतलाते हैं। अत: वे अग्निमान्द्य (जठराग्नि के मंद) होने पर जठराग्नि को तीव्र करने की औषध देते हैं।

वैज्ञानिक नियम भी यही है कि वस्तु ऊर्जा तभी बनती है जब वही फूंकी जाए। स्कूटर कार, बस, ट्रक, वायुयान आदि तभी तक दौड़ते हैं जब तक उनमें ईंधन फुंकता रहे। ईंधन फुंकने से ऊर्जा बनती है वैसे ही यज्ञ में फूंका घी पर्यावरण के शोधन के लिए ऊर्जा उत्पन्न करता है तथा उससे विश्व में अनेक रोगों से बचा जा सकता है। व्यक्ति भी घी खाए, उससे भी पचकर ऊर्जा बनकर खाने वाले को शक्तिशाली बनाएगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु यज्ञ भी अवश्य करना चाहिए जिससे पर्यार्यवरण भी ऊर्जित तथा स्वच्छ बन सके।

उपर्युक्त घटना मैंने दो दशाब्दी पूर्व के वैज्ञानिकों की यज्ञविषयक मनोभावना दिखलाने के लिए प्रदर्शित की थी। किंतु मेरे हर्ष का पारावार न रहा जब मैंने चण्डीगढ़ में एक वैज्ञानिक प्राचार्य को वैज्ञानिक आधार पर यज्ञ का समर्थन करते देखा।

उन्होंने यज्ञ को निम्न भागों में विभक्त करके उसका विवेचन किया। मन्त्रोच्चारण, समिधा, यज्ञकुण्ड, घी तथा सामग्री। १. मन्त्रोच्चारण के विषय में उनका कहना था कि हिंसक लोग जो निरीह पुशओं को मारते हैं उनकी आह वातावरण को विक्षुब्ध कर देती है। शब्द नष्ट नहीं होता। वह जैसे हृदयाकाश को विक्षुब्ध करता है, वैसे ही वातावरण को भी विक्षुब्ध करता है। जहां हाहाकार मचा हो वहां सुख से सोया नहीं जा सकता। यहां स्थिति वातावरण के साथ भी घटित होती है। सस्वर उच्चरित वेदमन्त्र वातावरण के ध्वनि प्रदूषण को नष्ट करके उसे विशुद्ध बनाते हैं।

२. समिधा के विषय में उन्होंने बताया कि वे प्रायः दो प्रकार की होती हैं-कुंभ कार्बन वाली तथा अधिक कार्बन वाली। इनकी पहचान यह है कि जिसमें कीड़े शीघ्र लगें उनमें कार्बन डायोआक्साइड कम होती है और जिनमें कीड़े देर से लगे उनमें उनमें कार्बनडाइ आक्साइड अधिक होती है यज्ञ में आम, ढाक, पीपल, बरगद, वेल आदि की समिधाएँ प्रयुक्त होती हैं। इनमें कीड़ा शीघ्र लगता है। अतः स्पष्ट है कि इनमें कार्बन कम होती है। गैसों में सर्वाधिक मारक मोनो कार्बनडाइ आक्साइड होती है। यह इतनी हानिकारक होती है कि यदि शीत की रात में पत्थर के कोयलों की अंगीठी अन्दर रखकर सोया जाए तो प्रातः शायद कोयले तो जलते मिलें किन्तु जिन्होंने अपना शीत मिटाने के लिए कोयले जलाये थे वे कदाचित सदा की नींद सो चुके हों। किन्तु एक ईश्वरीय कृपा है कि यदि इस मारक मोनो कार्बनडाई आक्साइड को खुले में आक्सीजन जीवन मिल जाए तो यह कार्बन के रूप में परिणत हो जाती है तथा इतनी हानिकारक नहीं रहती। उपर्युक्त समिधाओं में मोनो कार्बनडाइ आक्साइड तो होती नहीं, कार्बन भी कम मात्रा में होता है तथा आक्सीजन के अधिक होने के कारण वह नाममात्र की भी हानि नहीं करती। यज्ञ के पास बैठने वाले रोगमुक्त तो होते देखे गए, किसी को कार्बन के कारण मरता नहीं सुना। भोपाल गैस कांड में कुछ परिवार यज्ञ के कारण ही मारक गैस से त्राण पा सके थे।

३. यज्ञ कुण्ड भी यज्ञ का महत्वपूर्ण अंग है। ऋषियों ने उसकी बनावट ऐसी रखी है कि वह नीचे जितना चौड़ा है ऊपर उससे चार गुणा चौकोर होता है। इस रचना का प्रयोजन है कुण्ड में अधिक से अधिक ताप उत्पन्न होना। कुण्ड में ताप की जितनी तीव्रता होगी हुत द्रव्य उतना ही तीव्रता से फैलकर पर्यावरण का शोधन करेगा। यज्ञ में समिधाएं फैकीं नहीं जाती अपितु क्रमशः एक के ऊपर एक करके लगाई जाती हैं। इनमें आक्सीजन के जाने में सहायता होती है। लोहे के यज्ञ कुण्डों में छेद करने का भी यही प्रयोजन है। यज्ञकुण्ड के ऊपर जो जल के डालने की नाली बनाई जाती है उसका प्रयोजन यह है कि कुण्ड से निकली कार्बन को पानी अपने में समाहित कर लेता है। कार्बन जल के साथ मिलकर ग्लूकोज का काम करती है। शीतल पेयों में कार्बन ही तो मिली होती है। सोडा वाटर शरीर को हानि नहीं पहुँचाता अपितु पाचन-क्रिया को ठीक करता है। शेष बची कार्बन वृक्षादि का भोजन बन जाती है।

४. चौथी वस्तु घी है। यह प्रश्न होता है कि थोड़ा सा घी पर्यावरण शोधन या अन्य लाभ कैसे कर सकता है? इस विषय में यह ज्ञातव्य है कि अग्नि में डाली घी एक शीशी वाष्पीकरण होने पर १७०० शीशी बन जाती है वह पर्यावरण में भर जाता है जहां उसका शोधन करता है वहां हमारे द्वारा नासिका द्वारा पिया जाता है। विज्ञजन कहते हैं कि नाक से पिया जल दूध का काम करता है, दूध घी का तथा घी अमृत का। अतः यज्ञ में डाला घी कितना लाभप्रद हो जाता है यह इससे स्पष्ट है। जिन रोगियों को डाक्टर घी न खाने की सम्मति देते हैं तथा जिन्हें खाने पर ही घी हानि पहुँचाता है वे भी यज्ञविधि से घृत का भरपूर सेवन कर सकते हैं एवं घी उन्हें किञ्चित् भी हानि नहीं करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. पाचवीं वस्तु सामग्री है। साम्रगी में चार प्रकार के पदार्थ होते हैं-पुष्टिकारक, मिष्ट, सुगन्धित तथा रोगनाशक। ये पर्यावरण में पुष्टि, माधुर्य, सुगन्ध भरते तथा उसे रोग के कीटाणुओं से रहित करते हैं। इससे सब प्राणियों के शरीर तथा अन्न, जल, आदि पुष्ट, मधुर, सुगन्धित तथा रोग-रहित होते हैं। यही संसार में सुख फैलाने का मार्ग है। रोगनाश के लिए यज्ञ चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। यज्ञ में डालने से घी की भांति औषधि भी अनेक गुण लाभ करती है। चिकित्सा पद्धति में इंजेक्शन को सद्यः लाभकारी माना जाता है। क्योंकि वह तुरन्त औषधि को रक्त में मिला देता है। खायी औषधि का रस पचने पर रक्त में मिलकर लाभ करती है। इंजेक्शन के लगने में कष्ट तो होता ही है किन्तु कभी-कभी तो वह पक कर बहुत अधिक कष्ट का कारण बन जाता है। इसके विपरीत यज्ञ से निकला वाष्प श्वांस के साथ तुरन्त रक्त में मिलकर वही लाभ पहुँचाता है। जो सूचिकायन्त्र से होता है तथा कष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि शिराएँ शरीर में काम आने पर मैले हुए रक्त को हृदय में लाती हैं। श्वास लेने पर उसकी ओषजन रक्त में मिल जाती है जिससे रक्त का रंग चटकीला लाल जो जाता है तथा रक्त की कार्बन प्रश्वास के द्वारा बाहर आ जाता है। साम्रगी में अनेक ओषधतत्व होते हैं। यज्ञपावित वायु श्वांस द्वारा रक्त में मिलकर अनेक रोगों का शमन करती है। विदेश में इसके अनेक परीक्षण भी हुए हैं।

इस प्रकार यज्ञ एक सुखद पद्धति है जिससे व्यक्ति, समाज तथा पूर्ण पर्यावरण प्रभावित होकर सुख, आरोग्य तथा बल आदि की प्राप्ति होती है।

और मैं सोच रहा था दो शताब्दी पूर्व के तथा वर्तमान काल के वैज्ञानिकों के चिन्तन के विषय में तथा सम्पन्न हो रहा था देव दयानन्द द्वारा प्रदर्शित ऋषि-मुनियों की यज्ञपद्धति की वैज्ञानिक व्याख्या सुनकर, जिसमें ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपसाना की व्याख्या भी सम्मिलित की है।

('जनज्ञान से सभार')

(पृष्ठ ८ का शेष)

है जिसने कि श्रम करके पाठों का मिलान कर लिया, वही गुण-दोष को पहचान सकता है। 'परोपकारी' और 'सुधारक' के जून अंक में ३७वें संस्करण का जो रूप आपने प्रस्तुत किया है वह भी अपूर्ण है तथ उस पर अनेक प्रश्नचिन्ह लग सकते हैं।

५. अन्त में ३७वें संस्करण का षष्ठ सम्मुलास का एक स्थल श्री दैवकरणि जी के विचारार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं-

"इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए, किन्तु राजा जो सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और प्रजा सभा के अधीन, और प्रजा राजसभा के अधीन रहे। **यदि ऐसा न करोगे** तो-

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्रष्टी विशंघातुकः।..."

अन्य संस्करणों में **'यदि ऐसा न करोगे'** पाठ है। इस पर हम अपनी कोई सम्मति प्रकट न करते हुए श्री दैवकरणि जी से ही पूछते हैं कि कौन सा पाठ ग्राह्य है? यहां तो 'ठीक' और 'गलत' की ही बात है, भाषा या भाव को अधिक सुन्दर यां स्पष्ट रूप में रखने की बात नहीं है।

३७वें संस्करण में 'मूल प्रति' के नाम से शतशःसदोष पाठ ऋषि के मत्थे मढ़ दिये गये हैं, जो सत्यार्थप्रकाश को दूषित कर रहे हैं। उनकी चर्चा हम फिर कभी करेंगे।

हमने धन्यवाद से आरंभ किया था और उलझ गये अन्य बातों में। निःसंदेह ३७वें संस्करण के संपादन में श्री पं. विरजानन्द दैवकरणि जी ने निःस्वार्थ, निश्छल, अथक श्रम किया है, पर वह अस्थान में हुआ है। तथापि ३७वें संस्करण के जो १५ या २० प्रतिशत स्थल ग्राह्य है, उनके लिए तो वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं ही।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका समाधान

(स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती त्रिवेदतीर्थ)

शंका १.–यज्ञ संस्कारादि करते कराते समय सभी मंत्रों के आदि में ओम् बोलना चाहिए या केवल उन मंत्रों के आदि में ओम् का उच्चारण करना चाहिए जहां पर ऋषि ने लिखा है?

समाधान–उन्हीं मंत्रों के आदि में ओम् बोलना चाहिए जिनके आरम्भ में महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने लिखा है, सब मंत्रों के आरम्भ में नहीं बोलना चाहिए। परन्तु मंत्र पाठ करते समय इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि कहीं पाठ में रुकावट हो जाती है तो पुन: पाठ का आरम्भ ओम् का उच्चारण करके ही करना चाहिए। मान लीजिए आप ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना के मंत्रों का पाठ अर्थ सहित कर रहे हैं। इस दशा में प्रत्येक मंत्र का अर्थ पढ़ते के बाद अगले मंत्र के उच्चारण में अर्थ पाठ का व्यवधान होने से अगले मंत्र के आरम्भ में आप पुन: ओम् का उच्चारण करके मंत्र पाठ आरम्भ करें। यदि केवल अर्थ रहित मंत्र पाठ कर रहे हैं, अर्थ नहीं तो मंत्र पाठ में व्यवधान नहीं आता, अत: पहले मंत्र के आरम्भ में ओम् का उच्चारण कर पाठ आरम्भ करके अन्तिम मंत्र के अन्त में ओम् बोलकर पाठ समाप्त करें। बीच के मंत्रों के आरम्भ में ओम् न बोलें। यहीं प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए।

ब्रह्मण: प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।।--मनु.

वेद पाठ के आरम्भ और अन्त में सर्वदा ओम् बोलना चाहिए। इसके लिए केवल वैदिक यन्त्रालय अजमेर की छपी संस्कारविधि का ही प्रयोग और प्रमाण करना चाहिए। अन्य लेखकों और प्रकाशकों की पुस्तकें प्रमाण कोटि में नहीं रखनी चाहिए।

शंका २.–तीन समिदाधान करते समय दूसरे मंत्र के साथ "स्वाहा इदमग्नये इदन्न मम" यह अंश बोलना चाहिए या नहीं?

समाधान–"हवि: प्रदानार्थ: स्वाहाकार:"। समिधा सामग्री घृत तथा मोहनभोग आदि हविर्द्रव्यों की आहुति देने के लिए ही स्वाहाकार का उच्चारण होता है। जब हम किसी भी पदार्थ की आहुति नहीं दे रहे तो फिर स्वाहाकार का उच्चारण भी नहीं होना चाहिए।

शंका ३.–अयन्त इध्म आत्मा मन्त्र में पांच घृता-हुति ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थियों को देनी चाहिए या नहीं?

समाधान–"ओम् भूर्भुव: स्व:" से घृत दीपक जलाने से लेकर हवनकुण्ड के चारों ओर जल छिड़कने तक की विधि अग्न्याधान कहलाती है। यथा-

"यावता कर्म समुर्दायेनाग्नीनां सिद्धिर्भवति,
तावत: कर्म सुदायस्याधान शब्दो वाचक:।

–आश्वलायान श्रौतसूत्र पर नारायणवृत्ति

आहुति प्रक्षेपणार्थो ह्यग्नि:।
तस्मात् समिद्धेऽग्नौ जुहोति।।

–कौशीतक गृह्यसूत्र पर भवत्रात

सो चाहे ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, या वानप्रस्थ हो प्रत्येक को अग्न्याधान करते समय "अयन्त इध्म आत्मा" मंत्र से पांच घृताहुतियां देनी ही होंगी। क्योंकि ये पांच घृताहुतियां अग्न्याधान का अंग है। इस विषय में महर्षिकृत संस्कारविधि का लेख ही परम प्रमाण है। सो संस्कारविधि में इस प्रकार का कोई लेख न होने से अन्य किसी के कथन को प्रमाण नहीं मानना चाहिए।

शंका ४.–अयन्त इध्म आत्मा मंत्र से पांच घृताहुतियां क्यों देते हैं?

समाधान–संस्कारविधि का सामान्य प्रकरण दर्श पौर्णमास की प्रकृति का भाग है। दर्श (अमावस्या) पौर्णमास श्रौतयाग हैं। संस्कारविधि स्मार्त्त ग्रन्थ है। श्रौत यज्ञों की प्रायणीयेष्टि में प्रयाज नाम से पांच घृताहुतियां दी जाती हैं। स्मार्त्तकर्म में (पाक यज्ञों=क्षिप्र होमों) उन्हीं के स्थान पर "अयन्त इध्म आत्मा" मंत्र से पाँच घृताहुतियां दी जाती हैं। ऐसा विधान महर्षि ने किया है। पांच ही क्यों? यदि ये आहुतियां पाँच न होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६, ७ या ८ होती तो भी सीता अशोकवाटिका न्याय से संख्या का प्रश्न तो फिर भी बना ही रहता है। ६, ७ या ८ ही आहुतियां क्यों दी जाती हैं। इत्यादि।

"पांक्तो यज्ञः" यज्ञ पांक्त है। पंक्तियों द्वारा अनुष्ठेय कर्म है। मनुष्य समाज में पांच पंक्तियां हैं– १. ब्राह्मण २. क्षत्रिय ३. वैश्य ४. शूद्र ५. निषाद आदि शेष प्रजा। यज्ञ इन पांचों के हित में समान रूप से उपकारक और अनुष्ठेय कर्म है। यज्ञ से जो लाभ होता है वह इन सबके लिए समान रूप से होता है। यज्ञ अपने और पराए की सीमा से रहित है। इसलिए इन पांचों पंक्तियों में प्रत्येक यज्ञ करने वाला अपने मन में इन पांचों के कल्याण की भावना रख कर ये पांच घृताहुतियां देते हुए कह रहा है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद प्रभृति शेष सारी प्रजा उस सर्वव्यापक सकल ऐश्वर्यसम्पन्न और सर्वज्ञ जातवेदा जगदीश्वर की कृपा से प्रजा पशु ब्रह्मवर्चस् और अन्नाद्य से सर्वदा समृद्ध रहे, अच्छी तरह फूलती फलती रहे। इस प्रकार विश्वमानव के कल्याणार्थ ये पांच घृताहुतियां दी जाती हैं। यह अभिप्राय है इन पांच घृताहुतियों का।

अपरं च मन्त्र में वर्णित चार इच्छाएं यजमान की हैं। प्रजा पशु ब्रह्मवर्चस् और अन्नाद्य से वृद्धि, भली-भांति समृद्धि। इन्हीं की पूर्त्यर्थ यजमान जातवेदा प्रभु से याचना कर रहा है–

अथ च संसार में व्यापार सामान्य रूप से सवाए पर चलता है। प्रार्थना में इच्छा की अभिव्यक्ति और पुरुषार्थ की प्रेरणा ये पांच आहुतियां आपको देती हैं कि यदि आप अपनी चारों इच्छाओं को पूरा करना चाहते हैं तो इनके प्रतिदेय रूप में–चार सवाया पांच अर्थात् प्रत्येक इच्छा पूर्त्यर्थ आपको सवा गुणा पुरुषार्थ करना ही चाहिए। मंत्र में वर्णित चारों इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रतिदेय रूप में पांच गुणा पुरुषार्थ की द्योतक ये पांच घृताहुतियां दी जाती हैं।

शंका ५.–जिन संस्कारों में पूर्णाहुति का उल्लेख नहीं है क्या वहां पर भी मन्त्रों से आहुति देने के पश्चात् तीन बार सर्वं वै पूर्णं स्वाहा बोलकर तीन आहुतियां देनी चाहिए या नहीं?

समाधान–पूर्णाहुति का मन्त्र केवल "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" यही एक नहीं है, चार व्याहृति आहुतियां भी पूर्णाहुति के लिए प्रयुक्त होती है। इनका विनियोग प्रधान होमामुति, प्रायश्चित्ताहुति तथा पूर्णाहुति के रूप में गृह्यसूत्रों ने यत्र तत्र विनियोग किया है। आप संस्कारों की प्रक्रिया को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो प्रत्येक अनुष्ठान के अन्त में आपको इनका विधान मिलेगा, जो क्रिया की पूर्णता का द्योतक है। अथ च प्रत्येक अनुष्ठान में अन्तिम आहुति ही उसकी पूर्णाहुति होती है।

अपरंच संस्कारों के अनुष्ठान में पूर्णाहुति होनी भी नहीं चाहिए। ये तो परिवारों में होते ही रहने चाहिएं। अतः सर्वत्र सर्वं वै पूर्णं स्वाहा इस मंत्र से इनकी पूर्णाहुति अपेक्षित नहीं है।

सर्वत्र संस्कारों की पूर्णाहुति इसलिए अपेक्षित नहीं है कि महाराज मनु के अनुसार गर्भाधानादि संस्कार शरीर के संस्कारक हैं। इसलिए जब तक शरीर संस्कार रूप इनका कार्य पूरा नहीं हो जाता तब तक इनकी पूर्णाहुति भी नहीं होती। अन्त्येष्टि कर्म के साथ इनका कार्य पूरा हो जाता है। अतः विहित है या नहीं अन्तयेष्टि कर्म की समाप्ति पर "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" इस पूर्णाहुति मंत्र से तीन पूर्णाहुति देकर शान्ति-पाठ के साथ कार्य समाप्त कर देना चाहिए।

सारांश यह है कि यज्ञों में सर्वत्र पूर्णाहुति सर्वं वै पूर्णं स्वाहा इस मंत्र से होगी तथा संस्कारों में व्याहृति आहुतियां ही पूर्णाहुति के स्थान में होती हैं। कहीं स्विष्टकृत होम से पूर्व और कहीं स्विष्टकृत होम के पश्चात् इनका विनियोग होता है।

शंका ६–विवाह संस्कार में वर दो ही आचमन क्यों करता है?

समाधान–मधुपर्क प्राशन के बाद उसके आच्छादन= ढक्कन के रूप में दो आचमन किये जाते हैं। "अपिधानमसि" अमृत स्वरूप यह जल प्राशित मधुपर्क का अपिधान है। भक्षित मधुपर्क का ढक्कन है। यह ढक्कन है यश और श्री का। ढकी हुई वस्तु सुरक्षित रहती है। इस प्रकार मधुपर्क प्राशन के पश्चात् आचमन द्वारा वर, अपने यश और श्री को सुरक्षित करता है। ये दोनों ढके हुए ही ठीक हैं। इनके उघड़ते ही व्यक्ति में अपने यश और श्री का अभिमान आ जाएगा, जो पतन का कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से ठीक नहीं है। वास्तव में मधुपर्क की सुरक्षा जीवन में उसके आदर्शों के अनुसार आचरण की सुरक्षा है। जिससे गृहस्थ सत्य यश और श्री को प्राप्त होकर सच्चे अर्थों में श्रीमान् बन जाता है।

शंका ७.–विवाह संस्कार में जो परिक्रमा की जाती है उनमें आगे कौन रहेगा। वर या वधू?

समाधान–वर वधू=पति पत्नी जीवन में विवाह-संस्कार और उसके पश्चात् भी जब कभी अग्नि, आचार्य, माता पिता आदि जिस किसी की भी प्रदक्षिणा या परिक्रमा करेंगे वहां-वहां सर्वदा वधू पीछे रहेगी और वर आगे रहेगा। वधू ने संस्कार के आरम्भ में ही प्रभु प्रार्थना में कहा है–

प्रमे पतियानः पन्था प्रकल्पतांशिवाऽरिष्टा।
पति लोकं गमेयम्।

विवाह संस्कार में वधू को वर के दक्षिण भाग में इसलिए बैठाया जाता है कि प्रत्येक प्रदक्षिणा में वर के पीछे रहे।

गर्भाधान आदि पितृ कर्म में प्रदक्षिणा नहीं होगी वहां अप्रदक्षिण परिक्रमा होती है। परिक्रमा में अग्नि वर-वधू के बाँई ओर रहता है। सो पितृ कर्म में भी वधू वर के पीछे रहे इसलिए गर्भाधान संस्कार में वधू को वर के बाईं ओर बैठाया जाता है। गर्भाधान संस्कार पितृ कर्म है। नियम यही है कि प्रदक्षिणा हो या परिक्रमा, विवाह संस्कार हो या अन्य कोई अवसर, सर्वत्र वधू पीछे रहेगी और वह आगे रहेगा। वर नेता है, वधू नेय है। लोक में नेता सर्वत्र आगे रहता है और नेय पीछे।

शंका ८–कहीं पर तीन प्रदक्षिणाओं में वधू को आगे चलाते हैं और चौथी में वर को आगे। क्या ऐसा करना ठीक है?

समाधान–एक प्रदक्षिणा पाणिग्रहण के मंत्रों के बाद और तीन शिलारोहण तथा लाजाहोमपूर्वक। इस प्रकार विवाह संस्कार में कुल चार प्रदक्षिणाएं होती हैं। प्रत्येक प्रदिक्षणा में वर आगे रहेगा और वधू पीछे रहेगी।

शंका ९–विवाह संस्कार में वर वधू का आसन बदलना ठीक है या नहीं। वैदिक शादी में भी कहीं-कहीं वामांगी करवाते हैं।

समाधान–पुरानी पद्धति में चतुर्थी कर्म के नाम से आसन बदला जाता है। चतुर्थी कर्म गर्भाधान का ही अपर नाम समझना चाहिए। अतः विधि के अनुसार वधू को गर्भाधान संस्कार में वर के वाम भाग में बैठाया ही जाता है। इसलिए विवाह संस्कार में वर वधू का आसन परिवर्तन ठीक नहीं है।

शंका १०–विवाह में सिन्दूरदान करना है वा नहीं?

समाधान–सिंदूर दान लोकाचार है। वर्त्तमान काल में सिन्दूरदान वधू सुमंगलीकरण का एक महत्त्वपूर्ण अंग समझा जाता है। इसमें सिन्दूर दान (वधू की मांग भरना) और सामूहिक आशीर्वाद इन दोनों का समावेश है। लोकाचार में सिन्दूर दान विवाहसंस्कार का एक विशिष्ट अंग है, जिसे वर पूरा करता है। सिन्दूर दान के पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ रख कर संस्कार में आए सब नर नारियों से वधू के सौभाग्य संवृद्धि के लिए आशीर्वाद देने की प्रार्थना करता है–

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्मै दत्त्वायाथात्तं विपरेतन॥

कि आप लोग इस सुमंगली वधू को आकर देखें और इसे सौभाग्य संवृद्धि का आशीर्वाद देकर फिर अपने घरों को जावें। वर की इस प्रार्थना पर ही उपस्थित नर नारी–

ओम् सौभाग्यमस्तु। ओम् शुभं भवतु।
ओम् स्वस्ति। ओम् स्वस्ति। ओम् स्वस्ति॥

इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं। यह इतनी क्रिया वधू सुमंगलीकरण कहलाती है।

शेष "लोकतः प्रतिपत्तिः" के अनुसार सिन्दूरदान विधि का एक अंग समझकर करवाना ही ठीक है। इस में न तो कोई सिद्धांत हानि है, न शास्त्र के साथ विरोध। अस्तु।

शंका ११–अन्त्येष्टि संस्कार के बाद हड्डी भस्म आदि को लोग नदी में बहाते हैं। क्या इसमें जल प्रदूषण नहीं होता। ऐसा करना चाहिए वा नहीं?

समाधान–अस्थियों=हड्डियों में गन्धक होता है, जो जल का शोधक है। इस कारण अस्थिप्रवाह में तो प्रदूषण जैसी कोई दोष है नहीं। पर शेष राख आदि का नदी में बहाना निश्चित ही हानिकारक है। इसलिए अच्छा यही है कि अस्थियों और राख को गहरा गड्ढा खोदकर भूमि में दबा दिया जाय, या फिर राख खेतों में डालना भी उचित है। खाद का काम करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयन्त इध्म आत्मा मन्त्र से पाँच घृताहुतियों का प्रयोजन

कुछेक विद्वान् महानुभावों ने इसका सीधा सा समाधान सोच रखा है कि मन्त्र में प्रभु से **पाच वरदान** मांगे गए हैं, उन्हीं के लिए पांच घृताहुतियाँ दी जाती हैं।

इस विषय में कुछ विचार और चिन्तन किया तो यह वरदान वाली बात केवल लोक प्रचार मात्र प्रतीत हुई। कारण कि प्रथम तो मन्त्र में पांच वरदान जैसा कुछ है नहीं। दूसरे, वरदान लेने और देने की जो प्रक्रियां हैं, उसके साथ पांच वरदानों वाली बात की संगति नहीं लगती। मन्त्र में वरदान नहीं मांगे जा रहे अपितु केवल सुख समृद्धि के साधन—प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस् और अन्नाद्य से सम्यक् समृद्धि की **प्रार्थना यजमान** बातवेदा से कह रहा है। जिसका वरदान और पाँच संख्या के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। तीसरे, यह मन्त्र आश्वलायन गृह्यसूत्र और भारद्वाज गृह्यसूत्र में आया है, वहां इसका विनियोग किसी भी वरदान प्राप्ति में नहीं किया गया है। इसलिए वरदान की बात निराधार और निर्मूल है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ऋग्वेदीय है और भारद्वाज गृह्यसूत्र कृष्ण यजुर्वेदीय।

अपरंच विधि निमन्त्रण आमन्त्रण अधीष्ट संप्रश्न और प्रार्थना इन अर्थों में धातु से लोट्लकार होता है। क्योंकि "वर्धय" और समेधय दोनों में लोट् लकार मध्यम पुरुष की क्रिया होने के कारण मन्त्र में प्रजा पशु ब्रह्मवर्चस् और अन्नाद्य इन चार के लिए यजमान कर्तृक प्रार्थना है। यजमान की यह प्रार्थना केवल अपने लिए ही नहीं अपितु मन्त्र में पढ़ा गया 'अस्मान्' पद—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और निषाद—इन पाँचों पंक्तियों उक्त चतुर्विध सुख समृद्धि से सर्वदा सम्पन्न रहें, इसलिए इन पाँचों के हितार्थ ये पाँच आहुतियां दी जाती हैं। मन्त्र उच्च कोटि के समाजवाद की भावना से ओतप्रोत हैं। इस लघु लेख में आगे हमने यही दर्शाने का प्रयत्न किया है।

वरदान की प्रक्रिया—जिस किसी से साधक इच्छित वरदान प्राप्त करना चाहता है, अपने तप से, त्याग से, सेवा से, सुश्रूषा से, श्रद्धापूर्वक श्रेष्ठ व्यवहार से उसे पूर्णतया सन्तुष्ट और प्रसन्न करना होता है।

साधक के तप से, त्याग से, भक्ति से, सेवा, सुश्रूषा से और सद्व्यवहार से जिस दिन आराध्य प्रसन्न हो जाता है, तो एकदम प्रसन्न मुद्रा में हार्दिक आशीर्वाद के साथ बोल उठता है "वरं ब्रूहि"—वर मांग। इतिहास में इस प्रकार इच्छित वरदान देने और लेने वालों के इतिवृत्तों से पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं।

माननीय सज्जन वृन्द! वरदान के नाम पर प्रजा को आकृष्ट करने के लिए नई कल्पनाएं करना, मौलिकता तक पहुंचने का प्रयत्न न करना विद्वानों में अनुसन्धान की रुचि और जिज्ञासा इन दोनों के अभाव का द्योतक है। अस्तु।

मेरे पास समाधान के लिए शंकाएं आती रहती हैं। अभी पिछले दिनों सत्यपालजी बीगू ने यूनियन पार्क मॉरीशस से ग्यारह शंकाएं समाधान के लिए भेजीं। उन में चौथी शंका है—

"अयन्त इध्म आत्मा" मन्त्र में पांच घृताहुतियाँ क्यों देते हैं?

यद्यपि इस शंका का मैं कई बार पहिले भी संक्षिप्त सा समाधान कर चुका हूँ, जो शंका समाधान लेखमाला के अन्तर्गत छपा होने पर भी इन पाँच घृताहुतियों की मौलिकता तथा प्रामाणिकता के अन्वेषण के लिए पुनः प्रयत्न किया है। स्मृति जगी। विद्यार्थी काल में ब्राह्मण ग्रन्थों के पढ़ते समय "पाँक्तो वै यज्ञः" (शतपथ १-१-२-१६) यह वाक्य अनेक बार सामने आया था। अर्थ है—यज्ञ पाँक्त है। पांच वाला है। पंक्तियों के लिए समान रूप से हितकर है, अतः यज्ञ पंक्तियों द्वारा समान रूप से अनुष्ठेय कर्म है। मनुष्य समाज में पाँच पंक्तियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वेद कहता है–

पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्।। –ऋग्वेद।

इस पर निरुक्त–चत्वारोवर्णा निषादपञ्चमाः।

इतयौपमन्यवः। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद आदि शेष प्रजा। ये वेद के "पंचजनाः" हैं। ये पाँच पंक्तियां मानते हैं, आचार्य उपमन्यु और उनके अनुयायी।

"गन्धर्वः पितरो देवा असुर रक्षांसीत्येके" कुछ अन्य आचार्य गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस ये "पंचजनाः" ये पाँच पंक्तियां है। पंच जनों को ऐसा मानते हैं।

क्योंकि यज्ञ पाँक्त है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद आदि शेष सारी प्रजा तथा गन्धर्व, पितर देव असुर एवं राक्षस इन द्विविध पंक्तियों में गिनाए गए इन पांचों के लिए समान रूप से उपकारक और समान रूप से ही अनुष्ठेय कर्म है। यज्ञ से जो लाभ होता है वह इन सब के लिए समान होता है। बराबर होता है। एक जैसा होता है। इसलिए "पांचजन्ययाविशा" (ऋग्वेद) इन पाँचों पंक्तियों में पांचों प्रकार की प्रजाओं में, से प्रत्येक यज्ञ करने वाला यजमान अपने मन में इन पाँचों पंक्तियों के कल्याण की सुख समृद्धि की भावना रख कर "अयन्त इध्म आत्मा" इस मन्त्र में पाँच घृताहुतियाँ देते हुए कह रहा है–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद प्रभृति शेष सारी प्रजा (जाते-जाते विद्यते-इति जातवेदा) उस सर्वव्यापक (जातधनो वा) -सकलैश्वर्यसम्पन्न (जातानिवेद) सब उत्पन्न प्रजा को जानने वाला सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जातवेदा परम प्रभु की कृपा से–प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस और अन्नाद्य (समस्त खाद्य पदार्थों) से सर्वदा बढ़ती रहे। अच्छी तरह फूलती फलती रहे। यज्ञ के पश्चात् हम भी तो गाते हैं–

सुखी बसे संसार सब, दुःखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा हम सब की भगवन् पूरी होय।।
विद्या बुद्धि तेज बल सबके भीतर होय।
दुग्ध पुत्र धन धान्य से वंचित रहे न कोय।।

इस प्रकार विश्वमानव के–सम्पूर्ण पंच जनीन प्रजा के कल्याण की भावना से ये पाँच घृताहुतियां दी जाती हैं। यही अभिप्राय है इन पाँच घृताहुतियों का। इसलिए वेदाज्ञा प्रकाशित हुई कि–

पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्।। --ऋग्वेद।

पंच जनाः अर्थात इन पाँचो जनों की पाँचों पंक्तियां श्रद्धा तथा प्रीतिपूर्वक इस लोक और परलोक के हितार्थ मेरे द्वारा (मुझ ईश्वर द्वारा) उपदिष्ट इस श्रेष्ठतम कर्म-अग्निहोत्र का सेवन करें। अनुष्ठान करें।

अपरंच शतपथ ब्राह्मण काण्ड ३ अध्याय १ ब्राह्मण ४ कण्डिका ५ में औद्ग्रभण होम की पांच घृताहुतियां देने का कारण बतलाते हुए लिखा है कि–

तानि वै पंचजुहोति। संवत्सर सम्मितो वै यज्ञः। पंच वा ऋतवः संवत्सरस्य। तं पंचभिराप्नोति। तस्मात् पंच जुहोति।

अनुवाद पं॰ गंगाप्रसादजी उपाध्याय– ये पांच आहुतियाँ देता है। क्योंकि यज्ञ और संवत्सर की संगति है। समानता है। वर्ष में पाँच ऋतुएं होती हैं। इस से पाँच ऋतुओं वाले संवत्सर की प्राप्ति होती है। इसलिए पाँच आहुतियाँ देता है।

अर्थात् यजमान पाँच घृताहुतियां देता है। क्योंकि संवत्सर और यज्ञ की समानता है। संगति है। हेमन्त शिशिर के अथवा शिशिर बसन्त के समास-एकीकरण से संवत्सर में पांच ही ऋतु होते हैं। इस औद्ग्रभण होम से पाँच ऋतुओं के संघात रूप संवत्सर की प्राप्ति होती है। इसलिए पाँच आहुतियां दी जाती हैं। भाव यह है कि जहां-जहां भी पांच घृताहुतियां दी जाती है, वहां-वहां सर्वत्र संवत्सर प्राप्तिरूप निदान एक सा ही है।

"आयुर्वै संवत्सरः" संवत्सर आयु है। क्योंकि आयु की गणना संतत्सर से ही होती है। "सर्वं वै संवत्सर" संवत्सर सब कुछ है। जीवन में अपेक्षित सम्पूर्ण पदार्थ संवत्सर में ही होते हैं, इसलिए संवत्सर सब कुछ है। इसलिए कहा "पूर्णं वै संवत्सरः" अर्थात् एक-एक वर्ष करके पूर्ण आयु की प्राप्ति भी संवत्सर है। अच्छी तरह रहने-बसने का साधन भी संवत्सर है। संवत्सर जीवन का ओर छोर है। शतपथ ब्राह्मण ने सवंत्सर की बहुत बड़ी महिमा वर्णन की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत्सर की प्राप्ति में सब आवश्यकताओं की प्राप्ति है। इसलिए यजमान की अभिलाषा है कि मेरा यह यज्ञ पाँच ऋतुओं वाले संवत्सर में अबाध चलता रहे। कहीं विच्छिन्न नहीं। इसी संवत्सरों प्राप्तिरूप प्रयोजन के लिए ये पाँच घृताहुतियाँ दी जाती हैं। यह दूसरा कारण है, पांच घृताहुतियां देने का। वेद में संवत्सर को पंच पाद पितर कहा है–

पंच पादं पितरम्।। ऋग्वेद २-३-१६-३

सबके पालक–क्योंकि सब भूतों की उत्पत्ति संवत्सर में ही होती है, इसलिए कहा सब भूतों के उत्पादक पिता संवत्सर पंच पाद हैं। पाँच ऋतुएं ही संवत्सर के पांच पाद–पैर हैं, क्योंकि इन्हीं के द्वारा यह चलता है। सो इस प्रकार इस संवत्सर रूपी पिता की प्राप्ति के लिए ये पांच आहुतियाँ दी जाती हैं। संवत्सर पंच पाद है इसलिए क्रमशः ऋतुरूप एक-एक पाद की प्राप्ति के लिए एक-एक करके ये पाँच आहुतियां दी जाती हैं। इसलिए "पंच जुहोति" पांच आहुतियाँ देता है।

निरुक्त में–"पंच पादं संवत्सरं" ऋतवो हि संवत्सरस्य पादाः। तैरसौ पतति गच्छति। पितरं पालकम्। सर्वं भूतानामुत्पादयितारम्।

पांच घृताहुतियों का उत्पत्ति प्रकार

अग्निहोत्र तथा अन्य नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठानार्थ किए जाने वाले यज्ञ "पाकयज्ञ" (क्षिप्रहोम) कहे जाते हैं। वाराह गृह्यसूत्र में पाक शब्द का अर्थ किया गया है–

ह्रस्वत्वात् पाक यज्ञः। ह्रस्वं हि पाक इत्याचक्षते।। गृह्येऽग्नौ पाक यज्ञान्विहरेत्।। वाराह गृ॰सू॰ १।३.४

ह्रस्व अर्थात् छोटा हाने से अग्निहोत्र और सब नैतिक यज्ञ पाक यज्ञ कहे जाते हैं। इनका अनुष्ठान श्रौत अग्नि में न होकर गृह्याग्नि में होता है। दर्शपूर्णमास अग्निहोत्र की प्रकृति और अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास की विकृति है। कहा है–

दर्शपूर्णमास प्रकृतिः। पाक यज्ञ विधि रप्रयाजोऽननुयाजः।।

–वाराह गृ॰सू॰ १।४

पाक यज्ञ दर्शपूर्णमास प्रकृति वाले तथा प्रयाज और अनुयाज रहित होते हैं। दर्श पूर्णमास में प्रधान होम में पूर्ण पाँच प्रयाज (घृताहुतियाँ) होम तथा प्रधान होम के बाद पांच अनुयाज होम होते हैं। ये अग्निहोत्र में नहीं होते। अन्य सब नैमित्तिक कर्मों के अग्निहोत्र प्रकृति है और वे सब अग्निहोत्र की विकृति है। संस्कारविधि का अनुष्ठान प्रकार ऐसा ही है। यही अनुष्ठान क्रम ठीक है।

प्रकृति-यत्र कृत्स्नांगोपदेशः सा प्रकृतिः।

जिस में कर्म के सम्पूर्ण अंगों का विधान हो वह प्रकृति और विकृति–यत्र विशेषांगमात्रमुपदिश्यतेंऽगान्तराणि तु प्रकृते रतिदिश्यन्ते सा विकृति।

जहां विशेष अंग मात्र का उपदेश हो, अन्य अंग प्रकृति से निर्दिष्ट हों वह विकृति कहलाती है।

यह भी नियम है कि "प्रकृतिवद् विकृतर्भवति"। अर्थात् विकृति प्रकृतिवत् होती है। विकृति में बहुत से धर्म प्रकृति के आते हैं और कुछ नहीं आते। तदनुसार दर्शपूर्णमास प्रकृति के पाँच प्रयाज होमों के स्थान में पाक यज्ञों में ये पांच घृताहुतियां विशेष अंग के रूप में विनियुक्त हुई हैं। आहुति दान क्योंकि होत्र कर्म है। होता ऋग्वेदी होता है। तदनुसार ऋग्वेद के गृह्यसूत्र आश्वलायन में इन पाँच घृताहुतियों वाले "अयन्तइध्म आत्मा" इस मन्त्र को स्थान मिला है। वहां से लाकर ही हमारे आचार्य ने सब नैमित्तिक कर्मों की प्रकृति सामान्य प्रकरण में पाँच घृताहुतियों के लिए विनियुक्त किया है। वैसे यह मन्त्र अति स्वल्प से पाठभेद से भारद्वाज गृह्यसूत्र में पढ़ा गया है।

विनियोग करण में यह भी नियम है कि स्व शाखा के मन्त्रों की प्रतीक ही विनियोग से उद्धृत की जाती है। तथा अन्य शाखा का मन्त्र पूरा उद्धृत किया जाता है। तदनुसार "अयन्त इध्म आत्मा" यह मन्त्र आश्वलायन गृह्यसूत्र और भारद्वाज गृह्यसूत्र में पूरा उद्धृत होने के कारण न तो यह मन्त्र ऋग्वेद का है और न ही कृष्णयजुर्वेद का है। अतः सुतराम् कहा कहा जा सकता है कि यह यजुर्वेद की किसी लुप्त शाखा का मन्त्र होना चाहिए, जहाँ से आश्वलायन और भारद्वाज गृह्यसूत्र ने इसे लिया है।

–आर्यसमाज मन्दिर, हापुड़
(परोपकारी से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान सन्दर्भों में आर्यसमाज की प्रासंगिकता?

आर्यसमाज श्री गंगा नगर के सभागार में चैत्रशु १.सं॰ २०५२, 'आर्यसमाज स्थापना दिवस' के उपलक्ष्य में उक्त विषय पर एक विचारगोष्ठी आयोजित की। आर्यसमाज से श्रद्धावसम्बन्ध रखने वाले स्वतंत्र विचारकों ने भी इसमें भाग लिया। संगोष्ठी का संचालक श्री रवि भटनागर जी ने किया। मुख्य वक्ता श्री विश्वबन्धु जी प्रवक्ता डी॰ए॰वी॰ महाविद्यालय अबोहर थे तथा अध्यक्षता श्री खैरायती लाल जी ने की।

प्रथम वक्ता के रूप में श्री ओ३म् जी अरोड़ा ने कहा कि श्रेष्ठ विचार सदैव प्रासंगिक रहते हैं, आर्यसमाज जैसा तर्क निष्ठ बुद्धिवादी आन्दोलन जो वेद के धरातल पर खड़े रह कर मानव के सम्पूर्ण विकास की सार्थक व्यवहार साध्य प्रक्रिया प्रस्तुत करता हो वह कभी अप्रसांगिक हो ही नहीं सकता। पुनरपि जो प्रश्न उठते हैं वो अनुयाईयों की निष्ठा, लग्न, कार्यशैली व क्षमता पर हो सकते हैं। मानवता के सर्वाङ्गीण विकास के सभी क्षेत्रों को समान रूप से परिष्कृत करने वाले इस आन्दोलन ने धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक शैक्षणिक, साहित्य-सांस्कृति के क्षेत्रों में अपूर्व योगदान दिया है। डी॰ए॰वी॰ के दयानन्द के मन्तव्य से भटकने को लेकर उन्होंने एक पृथक् गोष्ठी के आयोजन पर बल दिया जो अविलम्ब सार्थक ठोस कदम उठाने की रूप-रेखा बना सके। उन्होंने कहा, हमारे सुधारकों व महापुरुषों ने जिन सामाजिक बुराइयों का यावज्जीवन विरोध किया, कालातंर में उनके अनुयाई उन्हीं आडम्बरों में फँस गए। किन्हीं अंशों में ऐसा ही आर्यसमाज के साथ हुआ है जिसे वेदों के आइने में स्पष्ट देखा जा सकता है। वक्ता का विचार है कि आज का मानव भक्तिवाद की अपेक्षा ज्ञान व तर्कशीलता को महत्त्व देता है, अतः भक्ति को ज्ञान का सम्बल प्रदान कर के ही जन-मानस में पिरोया जा सकता है। उन्होंने कहाकि आर्यों को अपने व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन को सिद्धान्तों की कसौटी पर रखकर एकरूपता लानी चाहिए। दोहरे मानदण्ड समाज के लिए हानिकर है।

तपोवन मनो-विकास विद्यालय के निदेशक श्री सुरेन्द्र शर्मा ने अपने संक्षिप्त भाषण में आ॰स॰ स्थापना की पृष्ठ-भूमि पर प्रकाश डालते हुए कहा कि परिस्थिति व समस्याएँ आज भी ज्यों की त्यों (यथावत्) हैं। इन्हें वर्तमान सन्दर्भों में स्वीकारना ही प्रासंगिकता का मूल है। शर्मा जी के वक्तव्य पर गम्भीरता से चिंतन करें तो स्पष्ट है कि तब अशिक्षा व अज्ञान था मगर अब शिक्षा हमारी संस्कृति धरोहर को मिटाने पर तुली है वही ज्ञान के तर्क को बढ़ावा देकर हमारे हृदय स्रोतों को सुखा डाला है। तब हम परतंत्र थे तो अब स्वतंत्रता स्वेच्छाचारिता के चिकने ढलान से उतरकर उद्दण्डता के गर्त में समा रही है। तब अन्धविश्वास, पाखण्ड थे तो अब श्रद्धा अस्तित्त्वहीन होने जा रही है और अन्धविश्वास व पाखण्ड ने मानवता के एक बड़े अंग को पकड़ रखा है। इन नए सन्दर्भों में आर्यसमाज के पास इन समस्याओं का क्या समाधान है, वह इस दिशा में उसके क्या प्रयास हैं? प्रासंगिकता का प्रश्न इन तथ्यों से जुड़ा है। हमारे पास वेद जैसा शाश्वत ज्ञान होते हुए भी ये प्रश्न क्यों उठा? एक समय था जब अनतिशयोक्ति स्तर पर देश ही नहीं सम्पूर्ण विश्व के सहृदय मनीषी हमारे हार्दिक प्रशंसक थे, मगर आज वही आर्यसमाज देश की मानवता को ग्रसने वाली समस्याओं का जिस ढंग से डरते हुए टूटे-फूटे निष्प्रभावी शब्दों में समझौतावादी प्रकृति जन्य समाधान प्रस्तुत कर रहा है। ऐसे में प्रासंगिकता का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण व ऐतिहासिक आवश्यकता है। संसार के उपकार की ध्येय निष्ठ आर्य समाज शतुरमुर्गीय उपचार (समाधान) देकर विश्व कल्याण के कौन से मार्ग का अवलम्बन कर रहा है? ये ज्वलन्त प्रश्न ही मूल है इस प्रासंगिकता के प्रश्न के।

डॉ॰ श्रीधर शर्मा का विचार है कि आज यह प्रश्न मात्र आर्यसमाज के सामने ही नहीं है, हर सुधारवादी आन्दोलन के सामने हैं। प्रसन्नता का विषय है कि इस समाज में ऐसे सहृदय मनीषी भी हैं जिनमें अपने पूर्व गौरव की प्राप्त्यर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक टीस है। यह इसकी महती संवदेनशीलता का प्रमाण है। आशा है जिस टीस से इसका आयोजन किया वैसा ही प्रातःकाल से प्राप्त विचारों को हृदयंगम व कार्यान्वित करना। विदित हो इस विचारगोष्ठी का अयोजन राम-निवास 'गुणग्राहक' पुरो॰ आर्यसमाज श्री गंगानगर की प्रेरणा से प्रधान श्री शुद्धबोध जी शर्मा ने किया।

डॉ॰ श्रीधर जी का कहना है कि प्राचीनता की दुहाई देकर आज किसी बात को जनता के गले नहीं उतारा जा सकता, किसी भी विचार को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। भौतिकता की कृत्रिम चकाचौंध से विरक्त आज बुद्धिजीवी शान्ति का स्थाई विकल्प खोज रहा है, ऐसे में वेद और यज्ञ प्रक्रिया को आधुनिक संचार साधनों के द्वारा विश्व समुदाय को देना अत्यावश्यक है।

श्री चन्द्रभानु जी त्यागी बड़े प्रखर चिन्तक मनीषी एवं गवेषक हैं। उन्होंने बड़ी मार्मिक भाषा शैली में कहा कि तर्कशीलता के नाम पर आज हम शुष्क व संवेदना रहित हो गए हैं। तर्कशीलता के तीक्ष्ण कुठार से विवेक का गला काट रहा आज का बुद्धिजीवी पाश्चात्य प्रभाव के कारण इनमें अन्तर नहीं कर पा रहा। इनके बीच बड़ी सूक्ष्म एवं स्पष्ट रेखा खींचते हुए त्यागी जी ने कहा कि तर्क केवल बुद्धिजन्य है जबकि विवेक आत्मा और हृदय के सहयोग से एक दिशा खोजने का सार्थक प्रयास है। उन्होंने कहा सदियों क्या सहस्राब्दियों में पहली बार ऋषि दयानन्द ने तर्क व विवेक का यथायोग्य समन्वय करके मानव कल्याण के लिए इसका सफल प्रयोग किया जिसके लिए सम्पूर्ण मानवता उनकी चिर-ऋणी रहेगी। तर्क का लक्ष्य श्रद्धा है पर आज का मानव तर्कों की अन्तहीन श्रृंखला में छटपटाता हुआ कभी इसे शस्त्र बनाकर प्रहार के रूप में प्रयोग करता है कभी ढाल बनाकर बचाव के लिए। तटस्थता जिसे आज समन्वयवादी या समझौतावादी नीति कहते हैं को त्यागी जी ने कायरता की विलक्षण परिभाषा दी। इस नीति का कारण उन्होंने लोभ और भय आदि बताते हुए कहा कि सत्य कभी तटस्थ रह ही नहीं सकता और भयादि ग्रस्त व्यक्ति सत्य का संवाहक कदापि नहीं हो सकता। इसके परिणाम को महाभारत स्पष्ट करता है। किसी ऐसे ही दुर्बलतावश सत्य की प्रतिष्ठा प्रभावी ढंग से न कर सकने वाले सत्यारूढ व्यक्ति की सत्यशीलता सन्देह के पिंजरे से मुक्ति के लिए छटपटा भर सकती है, मुक्त हो नहीं सकती। इसलिए ऐसे व्यक्तियों को अपनी और मानवता की भलाई के लिए इस पतित पावनी संस्था से स्वयं को स्वेच्छ्या पृथक् करके योग्य समर्थ व सेवाभावी व्यक्तियों को आगे आने देना चाहिए जिनकी देश में अभी कमी नहीं है। ऐसा न करके ये उनके द्वारा होने वाली सेवा से मानवता को वञ्चित रख कर जाने अनजाने दोहरा पाप भी कमा रहे हैं।

इस गोष्ठी में आर्यसमाज के मन्त्री श्री विश्वामित्र जी, श्री हर्षवर्द्धन शास्त्री जी एवं प्रखर चिन्तक, पत्रकार श्री त्रिभुवन आर्य ने अपने महत्त्वपूर्ण विचार रखे। मुख्यवक्ता के रूप में श्री विश्वबन्धु जी ने बड़े सुन्दर ढंग से सभी के विचारों का समायोजन करते हुए आह्वान किया कि चिन्तनशील विद्वानों को प्रथम ''इडा'' बुद्धि ज्ञान विज्ञान, 'सरस्वती' कला संस्कृति साहित्य, सद्भावनादि मानवीय पक्षों पर सम्यक् चिन्तन करते हुए 'मही' राष्ट्रीय या वैश्विक समस्याओं के लिए संघर्षरत रहना चाहिए। प्रसंगापतित मानवाधिकार आयोग के सन्दर्भ में कहा कि आयोग को दयानन्द की वेदोक्त मानवता की परिभाषा देकर पूछना चाहिए कि जो (आंतकवादी) मानव ही नहीं है उनका अधिकार कैसा?

प्रस्तोता:

(राम निवास 'गुण ग्राहक'
पुरो॰ आर्यसमाज, गंगा नगर)

●●

प्राचीन व्याकरण पढ़ने के
इच्छुक छात्रों के लिये
निःशुल्क प्रवेश का सुअवसर
ओमानन्द योग-साधक पारमार्थिकन्यास देवधर्म
इन्दौर द्वारा संचालित-'वेदविद्यालय'
इसमें छात्रों के अध्ययन, आवास तथा भोजन का समस्त व्यय आश्रम की ओर से होगा।
आचार्य ओमानन्द योगाश्रम देवधर्म
(निकट-मोमट गिरि) इन्दौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य संन्यासियों का अपमान करने वालों को 'सार्वदेशिक सभा' का अधिकार नहीं है।

धर्म शास्त्रों के अनुसार क्षत्रिय (शासक) का गुरु ब्राह्मण होता है और ब्राह्मण का गुरु अर्थात् उसे नियम में चलाने वाला संन्यासी होता है। इस प्रकार वैदिक धर्म में सन्यासी का स्थान सर्वोपरि है। जब-जब भी हमारे धर्म में, शासन की व्यवस्था में, मर्यादाओं में विकृति आई तब-तब इन ब्राह्मण और सन्यासियों ने ही सुधारा, हो सकता है परिस्थितिवश सबके संचालक और प्रेरक इन सन्यासियों में भी कुछ कमज़ोरियां आ गईं हो फिर भी इनके त्याग-भावना और कर्म अन्यों की अपेक्षा सात्विक और श्रेष्ठ है। १८७५ के स्वाधीनता आन्दोलन के फैलने का एक कारण यह भी था कि उस समय के लोगों ने अपने साधु महात्माओं की बातों का शिरोधार्य माना था। इन साधु महात्माओं की वाणी अघ्न्या एवं अमोघ होती है, अथर्व वेद में इनकी वाणी को ब्रह्मवाणी कहा गया है। जो शासक समाज या संगठन इनकी आवाज को दबाने का यत्न करता है। उनकी उपेक्षा करता है, एवं इनका अपमान करता है वह शासक समाज या संगठन अपने नाश होने का बीज बोता है क्योंकि जनता इन दिव्य महात्माओं के साथ होती है।

दुर्भाग्यवश आज आर्यसमाज जैसी पवित्र संस्था भी ऐसे तामसिक लोगों के हाथ चली गई है जो इस ब्रह्मगवी की महत्ता नहीं समझते। हैदराबाद में सार्वदेशिक सभा के त्रैवार्षिक निर्वाचन के अवसर पर २७ मई को जो दृश्य देखा, उसे सोचते हुए भी हृदय द्रवित होता है। जब ९० वर्ष के लगभग आयु प्राप्त विद्वान् ओजस्वी लेखक वृद्ध संन्यासी पूज्य स्वामी विद्यानन्द जी की माला को एक व्यक्ति तोड़ रहा है दूसरा उनको धक्के देकर कुर्सी से नीचे गिराने की कोशिश कर रहा है, उनको बचाने गये श्री सुमेधानन्द जी एवं व्रतानन्द जी को लातें मारी जा रही हैं, दूसरे वृद्ध संन्यासी पूज्य स्वामी ओमानन्द जी को अपशब्द कहे जा रहे हैं और उधर अपने आप को आर्य समाज के ठेकेदार मानने वाले, आर्य नेता कहलाने वाले चुपचाप बैठे देख रहे हैं आदि धर्म शासक सम्विधान निर्माता महर्षि मनु ने लिखा है- वृद्धश्च नवतिंगतः अर्थात् ९० वर्ष वयोवृद्ध शूद्र भी ब्राह्मण की तरह माननीय है, ये तो त्यागी, तपस्वी, विद्वान्, संन्यासी है। फिर क्या इनका अपमान हमें जलाकर नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर देगा? आज आर्यसमाज की जो दुर्दशा हो रही है उसका वज्र कारण इन साधु महात्माओं का अपमान है। इस अपमान को करने वाले आर्यसमाज के स्वयम्भू अधिकारियों का वकील होना है। इस व्यवसाय में अधिकतर लोग झूठ एवं छलकपट कर के कमाई करते हैं। इसलिये मनु जी ने वकीलों के यहां से भिक्षा लेना भी मना किया है। उस दिन भी सभा के मंच पर श्री सोमानाथ मरवाह, श्री रामचन्द्र राव, श्री छोटुसिंह श्री अश्विनी कुमार आदि वकील बैठे थे। इनके निर्देश पर यह अपमान हुआ। पर क्या आर्यजनता इसे सहेगी?

हमारे देश का इतिहास बताता है, जब शासकों ने ऐसे त्यागी तपस्वी सन्यासियों की वाणी को दबाने का यत्न किया उस समय जनता ने ही आगे आकर इनको अपनी क्रोधाग्नि में जला दिया। महामुनि चाणक्य का उदाहरण सबके सामने हैं और भी अनेक पुराने उदाहरण दिये जा सकते हैं। मैं बात को लम्बी न कर आर्य जनता से आग्रह करता हूँ कि इस आपत्ति के समय में आगे आयें। आर्यसमाज के संगठन को तहस-नहस करके अपने स्वार्थ पूर्ति में लगे इन स्वार्थियों को ऐसा दण्ड दें कि आगे फिर ऐसा कोई साहस न कर सके और वह दण्ड है इनका सामाजिक बहिष्कार। आर्य बन्धुओं यदि अब आपने साहस नहीं किया तो महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम आदि का बलिदान धूल में मिल जायेगा, अतः आईये समय रहते हुए कारवाई करें।

हमारे आर्यसमाज के अधिकारियों, आर्य शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियों तथा गुरुकुल के आचार्यों तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं से आग्रह है कि वे अपने उत्सवों में अधिवेशनों में तथा अन्य कार्यक्रमों में इनको न बुलायें। आर्य साधु, संन्यासी एवं उपदेशक इनके साथ कार्यक्रम में सम्मिलित न हों। इस प्रकार जब पूर्णरूप से इनका बहिष्कार होगा, तभी इन्हें अपने दुष्कृत्यों का अनुभव हो सकेगा। आशा है हमारी प्रार्थना पर सभी आर्य बन्धु विशेष रूप से ध्यान देंगे।

(स्वामी धर्मानन्द सरस्वती)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी विद्यानन्द जी पर मिथ्या एक कलंक रेखा

स्वामी विद्यानन्द जी पर 'सार्वदेशिक साप्ताहिक' ने खूब कीचड़ उछाला है। ११ जून के अंक में लिखा है, "संन्यास दीक्षा के बाद भी वह घर में अपनी पत्नी के साथ रह रहे हैं।........ विद्यानन्द को संन्यासी कहते हुए आर्य-समाजियों को शर्म आती है" २५ जून के अंक में माननीय श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री लिखते हैं, "आप संन्यासी होकर अपनी पत्नी के पास या साथ ही रहते हो, क्यों?" "आपको आर्यसमाज की प्राथमिक सदस्यता से भी पृथक कर देना चाहिए, संन्यास आश्रम में स्त्री के साथ रहना तो घोर अनर्थ है।" ऐसी दुष्टतापूर्ण और अश्लील भाषा का प्रयोग सार्वदेशिक सभा का पी०एच०डी० मन्त्री कह सकता है, यह तो सर्वथा अकल्पनीय है। विरोधी पक्ष की आलोचना करने का सब को अधिकार है परन्तु मर्यादा में रहकर।

स्वामी विद्यानन्द जी पर इस प्रकार का आरोप लगाने का एक कारण यह भी है कि उनके संन्यास आश्रम में प्रवेश की घटना की लोगों को सही जानकारी नहीं है। संन्यास की दीक्षा से पूर्व इनका नाम श्री लक्ष्मी दत्त दीक्षित था और पानीपत में आर्य कालेज के प्रिंसिपल थे। २७ जुलाई १९९० को चुपचाप जालन्धर पहुँच कर वहाँ पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी (पूर्व नाम आचार्य रामदेव जी) से संन्यास की दीक्षा लेकर स्वामी विद्यानन्द बन गये। उसी दिन उन्होंने आर्यसमाज माडल टाउन दिल्ली के मन्त्री जी को पत्र लिख दिया कि मैंने संन्यास की दीक्षा ले ली है, इसलिए मैं अब अपने घर नहीं लौटूंगा, आप कृपया मेरे रहने की व्यवस्था आर्यसमाज मन्दिर में करें। स्वामी जी २९ जुलाई को दिल्ली लौटे और आर्यसमाज मन्दिर में एक कमरे में रहने लगे। आर्यसमाज ने पहिले ६ मास तक ठहरने की अनुमति प्रदान की। फिर उस अवधि को ३ मास के लिए बढ़ाया। दिल्ली में रहने का एक कारण विशेष था। स्वामी जी ने निश्चय किया था कि संन्यास लेने पर गृहस्थ की चिन्ताओं से मुक्त होकर अपना सारा समय साहित्य सृजन में लगाऊंगा। आपके पास अपना एक विशाल पुस्तकालय है और दिल्ली में प्रत्येक सार्वजनिक पुस्तकालय है जिनसे लाभ उठाया जा सकता है। आर्यसमाज द्वारा बढ़ाई गई अवधि के समाप्त होने में अभी २० दिन शेष थे कि स्वामी जी को दिल का दौरा पड़ गया। आर्यसमाज के अधिकारियों ने स्वयं चिकित्सा की व्यवस्था न कराकर आर्यसमाज के सेवक द्वारा उनके घर यह सूचना भिजवा दी कि उन्हें दिल का दौरा पड़ गया है, आप उनको यहां से अपने घर ले जायें। समाचार मिलते ही तुरन्त घर वाले उनको घर ले आयें और वहाँ उनकी चिकित्सा कराई इस घटना से यह बात तो स्पष्ट है कि स्वामी विद्यानन्द जी संन्यास के बाद अपने घर आये नहीं, उन्हें तो वहां भेजा गया। यदि आर्यसमाज अपनी ओर से उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करा देता तो यह स्थिति उत्पन्न न होती।

यह सत्य है कि वैदिक मर्यादानुसार संन्यासी को अपने घर नहीं रहना चाहिए। परन्तु स्वामी विद्यानन्द जी की स्थिति में क्या हो सकता था। आर्यसमाज तो बीमार संन्यासी को अपने यहाँ रखना नहीं चाहता और संन्यासी का अपने घर रहना सिद्धान्त विरुद्ध है। इस स्थिति में स्वामी जी कहाँ रहते? दिल के दौरे के कारण स्वामी जी में इतनी शक्ति तो है नहीं कि कहीं किसी अस्पताल में जाकर भर्ती हो जायें। वहाँ भी ले जाने वाला कोई सहायक होना चाहिए। क्या आक्षेपकर्त्ता यह चाहते हैं कि स्वामी जी आर्यसमाज मन्दिर और अपने घर के बीच कहीं सडक के किनारे पड़े रहकर अपने प्राणों की आहुति दे देते ताकि घर में रहने के आक्षेप से बच जाते। रोगी स्वामी विद्यानन्द जी को अपने घर रहने में घुटन महसूस हो रही थी। वे इस विचार से बड़े परेशान थे कि संन्यास लेकर फिर घर में ही रहना पड़ रहा है। इसलिए उन्होंने दिल्ली में प्रकाशित होने वाले 'आर्यजगत्' और '-आर्यसन्देश' में अपना नाम दिये बिना यह समाचार प्रकाशित कराया, "एक विद्वान आर्य संन्यासी को लेखन कार्य करने के लिए दिल्ली के किसी आर्यसमाज मन्दिर में एक कमरा चाहिए। भोजनादि का भार आर्यसमाज पर न होगा। समाज में रहते हुए कथा-प्रवचन द्वारा आर्य-समाज को निःशुल्क सेवा करेंगे।" दिल्ली में लगभग २५० आर्य समाजें हैं, परन्तु एक ने भी उत्तर न दिया। आर्य समाजों की इस बेरुखी से क्षुब्ध होकर परामर्श हेतु आर्यसमाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन मूर्धन्य विद्वानों श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, श्री उदयवीर जी शास्त्री और महात्मा अमर स्वामी जी को स्वामी जी ने पत्र लिखे। अन्तिम दोनों विद्वान् संन्यास आश्रम गाजियाबाद में रहते थे और लगभग प्रतिदिन उनसे वार्त्तालाप चलता था। स्वामी विद्यानन्द जी (पूर्व दीक्षित जी) से अमर स्वामी जी (पूर्व ठा० अमर सिंह जी शास्त्रार्थ महारथी) के पारिवारिक सम्बन्ध रहे हैं। लाहौर में दोनों के घर मिले हुए थे। अमर स्वामी जी स्वामी विद्यानन्द जी के स्वभाव को खूब जानते थे कि वे कट्टर सिद्धान्तवादी और ज़िद्दी हैं। उन्होंने स्वामी विद्यानन्द जी को एक ही बात कही–जितना और जैसा कार्य आप अब कर रहे हैं वैसा इस समय आर्यसमाज में कोई नहीं कर पा रहा है। यदि वैदिक साहित्य सृजन का काम करना है तो जहाँ बैठे हो वहीं बैठे रहो। किसी की आलोचना की चिन्ता मत करना। श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री की भी यही सम्मति थी। अब स्थिति यह है कि स्वामी जी अपने मकान में ऊपर के कमरे में सबसे अलग रहते हैं। परिवार से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं। अपनी एक मात्र छोटी बहन की अंत्येष्टि में भी नहीं गये। दिल्ली में कई रिश्तेदार रहते हैं परन्तु गत १५ वर्षों में एक बार भी किसी के यहां नहीं गये। जो लोग स्वामी जी के सम्पर्क में आते रहते हैं, उन्हें मालूम है कि गत १० वर्षों से उन्हें कितने रोगों ने घेरा हुआ है। हृदय रोग तो है ही। आंखें खराब हो चुकी हैं, उनका आपरेशन हो चुका है। थोड़ा बहुत दिखाई देता है। उसी से काम चला रहा है। ३ वर्ष पूर्व हरपीस का जो भयंकर रोग हुआ था उसने तो स्वामी जी को अधमरा कर दिया था। यह ध्रुव सत्य है कि यदि इन रोगों की स्थिति में स्वामी जी घर पर न होते तो अब तक उनके नाम से पूर्व स्वर्गीय का विशेषण लग चुका होता। एक आश्चर्य तो यह है कि इस भयंकर रुग्णावस्था में भी आपने प्रत्युत्तम कोटि का साहित्य सृजन किया है, जिससे आम अमर हो गये। भूमिका भास्कर, सत्यार्थ भास्कर, वेदमीमांसा, अध्यात्मक मीमांसा, अनादि तत्व दर्शन आदि लगभग ३५ ग्रन्थों की रचना कर आपने आर्यसमाज की जो सेवा की है उस पर हमें गर्व है। हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी आपने उत्तम कोटि का साहित्य निर्माण किया है।

ये पंक्तियां लिखते हुए एक विचार मुझे बार-बार परेशान कर रहा है। आर्यसमाज के कई मूर्धन्य संन्यासियों के अन्तिम समय के दृश्य मेरे सामने हैं। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज को अन्तिम समय में कहीं आसरा न मिला और अपनी बेटी के घर ही उनके प्राण निकले। अभी ६ मास पूर्व स्वामी सत्य प्रकाश जी की मृत्यु कहाँ हुई इसे सभी जानते हैं। अमर स्वामी जी महाराज ने अपने जीवनकाल में सैंकड़ों शिष्यों को उपदेशक व भजनोपदेशक बनाया। अन्तिम समय में उनकी बड़ी पुत्री और पुत्रों ने ही उनकी सेवा की। ऐसा क्यों? क्या आर्य सभाएं ऐसी व्यवस्था नहीं कर सकतीं कि हमारे पूज्य संन्यासियों के अन्तिम समय में अपने परिवार पर आश्रित न होना पड़े।

अन्त में मैं अपने आदरणीय बन्धु श्री पं० सच्चिदानन्द जी शास्त्री से एक विनम्र निवेदन करना चाहता हूँ। अंग्रेज़ी भाषा के एक विद्वान ने लिखा है, "Never throw mud, you may miss your mark, but you must have dirty hands" अर्थात् दूसरों पर कीचड़ मत फेंको। तुम्हारा निशाना चूक सकता है, पर तुम्हारे हाथ तो गन्दे हो ही जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं। वेद ने कहा है, ''यश्चारर न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिष्टम। अर्थात् जो व्यक्ति दूसरे की बुराई करता है" हानि पहुँचाना चाहता है, वह न कर सका। उसने तो उल्टे अपने पाँव की अंगुली काट ली। वैसे भी शीशे के महल में रहने वाले को दूसरों पर पत्थर नहीं फेंकने चाहिएं क्योंकि यदि तुम्हारे महल पर एक भी पत्थर जा लगा तो तुम्हारा महल तो चूर-चूर हो जायेगा। आप मेरे मित्र हैं। हित की भावना से ही आपसे निवेदन है कि प्रलोभनवश आपसे जो एक अनैतिक और अवैधानिक कार्य हो गया है उसका आप प्रायश्चित कर लें। हैदराबाद सत्यागाहियों को भारत सरकार से मिलने वाली पेंशन और प्रथम श्रेणी का फ्री रेलवे पास आप भी ले रहे हैं जबकि आपने सत्याग्रह में भाग ही नहीं लिया क्योंकि उस समय आपकी आयु केवल ५-६ वर्ष थी। यदि आप अपनी पेंशन और रेलवे पास सरकार को लौटा दें तो निःसन्देह आपका यश बढ़ेगा। आपकी जानकारी के लिए इतना और लिख दूं कि स्वामी विद्यानन्द जी हैदराबाद सत्याग्रह में जेल में रहे। स्वामी आनन्द बोध जी ने श्री दान सिंह को इनके पास भेजा कि पेंशन के फार्म पर हस्ताक्षर कर दें। परन्तु स्वामी विद्यानन्द जी ने पेंशन लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि क्या हमने सत्याग्रह इसीलिए किया था कि बदले में पैसे मिलें।

–प्रो० रत्नसिंह,

(बी-२१, गान्धीनगर, गाजियाबाद)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

आपके यहाँ से छपी 'आर्यमान्यताएँ' नामक पुस्तक पढ़ी। इसके द्वारा आपने महर्षि दयानन्द की सत्य मान्यताओं को जन-जन तक पहुँचाने का अच्छा प्रयास किया है। आप इस का प्रचार युद्ध स्तर पर करें तो अच्छा रहे। भारतवर्ष की विधानसभाओं तथा लोक सभा के सदस्यों तक इसे पहुँचायें, जिससे उनकी आंखे खुलें।

दयानन्द बंसल छाते वाले,
मण्डी, आगरा-३

आपके यहां छपी 'सत्यार्थप्रकाश' की प्रति मिली। पढ़कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई और यह ग्रन्थ विचारों में क्रान्ति पैदा कर देता है। यद्यपि मेरे घरवाले सभी पौराणिक ही हैं। किन्तु इस पुस्तक को पढ़कर मुझको सत्य-धर्म, ईश्वर के सच्चे स्वरूप, पंचमहायज्ञों और वेदों के विषय में यथार्थ ज्ञान मिला है। अब मैं इस ग्रन्थ का ही प्रचार करता हूं।

लेखराम देवांगन,
पंचपथपारा, भोईपारा, रायपुर

१५ मई ९५ को 'नवभारत टाईम्स' में 'दवेद' धारावाहिक की जो रूपरेखा छपी है, उससे प्रतीत होता है इसके अन्तर्गत सायण आदि भाष्यकारों की मिथ्या मान्यताओं का ही प्रचार किया जायेगा। आर्य-समाज की ओर से ऐसे धारावाहिकों का डटकर विरोध होना चाहिये।

डा० कृष्णलाल, *आचार्य,*
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आपके यहाँ से छपने वाले 'दयानन्द सन्देश' के माध्यम से दयानन्द की निभ्रन्ति सत्यमान्यताओं का प्रचार व प्रसार होता रहता है, हमें इस बात की बड़ी प्रसन्नता है। इस पत्रिका के हम आजीवन सदस्य भी हैं। द० सन्देश के विशेषांकों की तो अपने में एक विशेष महत्त्व है। हमारी आपसे प्रार्थना है कि भविष्य में एक विशेषांक 'वृष्टि-यज्ञ की वैज्ञानिकता' पर निकालने का प्रयास करें।

अखिलेश शास्त्री, वैदिक संस्कृत महविद्यालय,
गुरुकुल रामलिंग येडशी, जि० धाराशिन (महाराष्ट्र)

मई ९५ के द० सन्देश में भी कर्मवीर शास्त्री (आमसेना) का लेख पढ़ने का अवसर मिला। यह लेख समस्त देशवासियों के लिए चेतावनी भी है। लेखक व सम्पादक बधाई के पात्र हैं।

बालेश्वर दयाल,
बी-६७, शास्त्री नगर, मेरठ

'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका के सभी लेख शोधपूर्ण, तथ्यपूर्ण तथा परिमार्जित होते हैं। मैं पत्रिका को आद्योपान्त पढ़ता हूँ। मुझे पढ़कर अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता होती है।

ब० रामनरेश आर्य,
साधु आश्रम, अलीगढ़

मैं 'दयानन्द-सन्देश' का नियमित पाठक हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि जो सज्जन आर्यसमाज से पृथक् होकर अपनी व्यक्तिगत पूजा तथा धन बटोरने में लगे हैं, ऐसे आचार्य श्री राम शर्मा, यशपाल सुधांशु तथा सत्यानन्द आदि लोगों की पोल खोलकर धार्मिक जनता को सावधान करते रहें।

आर०एस० शिशौदिया,
सैक्टर-३७, नोएडा (उ०प्र०)

जून ९५ के 'दयानन्द-सन्देश' में श्री राधेश्याम जी आर्य की कविता 'स्वर्ग धरती को बनायें' बहुत अच्छी लगी। मैं आर्य जी को पत्र के माध्यम से धन्यवाद देता हूं।

अग्निदेव आर्य शास्त्री,
आर्यसमाज देवरिया

जून मास के 'दयानन्द-सन्देश' में प्रकाशाति 'होटलों का शाकाहारी भोजन भी ९० प्रतिशत मांसाहारी होता है' बहुत रुचिकर व ज्ञानवर्धक लगा। इसी प्रकार बिस्कुट बनाने वाली कंम्पनियाँ भी धोखा दे रही हैं। ऊपर तो लिखा होता है- वेजीटेबल केक, किन्तु उनमें अण्डा भी डाला जाता है। ऐसे लोगों को गुमराह करके भ्रम में डाला जा रहा है।

डॉ० ए०स० लाल,
चन्दनकुटीर, जी०टी० रोड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या यही वैदिक दर्शन का परम लक्ष्य है?

महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का पत्र 'परोपकारी' मासिक प्राप्त हुआ। इसके पृष्ठ १३६ पर श्री मनोहर विद्यालंकार जी का लेख 'वैदिक दर्शन का परम लक्ष्य' पढ़ने को मिला। निःसन्देह 'परोपकारी' एक ख्याति लब्ध गम्भीर पत्रिका के रूप में जानी जाती है। जानी भी क्यों न जाए इसे श्री गजानन्द आर्य डॉ॰ श्री धर्मवीर जी एवं डॉ॰ भारतीय जी प्रभृति प्रखर चिन्तक व ऋषि भक्तों का वरदहस्त प्राप्त है। पता नहीं आजकल इन्होंने प्रकाश्य सामग्री देखना बन्द कर दिया है। ये मान लिया कि किन्हीं पत्रिकाओं पर बचाव के लिए एक वाक्य 'आवश्यक नहीं कि रचनाओं के नीति व सिद्धान्तों से सम्पादक सहमत हों' लिख देते हैं। मगर इसके आधार पर सिद्धान्त हनन की छूट तो नहीं मिल जाती। ऋषि की उत्तराधिकारिणी सभा ही वेद व ऋषि के सिद्धान्त खण्डक लेख प्रकाशित करे तो सिद्धान्त रक्षण व सम्वहन की आशा कहाँ की जाए? बड़ी विडम्बना का विषय है कि महर्षि के पुरुषार्थ व यशः धन से अर्जित साधनों से जीवन चलाने वाले उसी के बल पर ऋषि को मिटाने का प्रयास करने वालों की परम्परा बढ़ती ही जा रही है। प्रो॰ वेद व्यास जैसे पाश्चात्य अन्ध भक्त ऋषिहस्ताओं की कोटि में आने वाले यह इस लेख का प्रारम्भ ही सिद्धान्तों को मनोनुकूल परिभाषित करके अनर्थ करने की मनसा से बिछाये गए शब्द जाल से होता है।

तीसरे अनुच्छेद में ही लेखक ने पाश्चात्य धारा में बहकर (जिस लेखक के पाश्चात्य दार्शनिक विचारों के आदान-प्रदान का नाम दिया है) आस्तिक-नास्तिक दर्शनों की कसौटी में ही परिवर्तन करके इसका आधार वेदों को न मान कर ईश्वर को मान लिया। इसके लिये यह भी आवश्यक नहीं कि ईश्वर को उसके यथार्थ स्वरूप में माना जाए। ऋषि दयानन्द ने तो बड़े गौरव के साथ कहा है कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त आचार्यों का जो मत है उसे मैं भी मानता हूँ। मगर हमारे विद्वान लेखक ने पाश्चात्य प्रवाह में बहकर महर्षि द्वारा अत्यधिक मान्य मनु महाराज के सिद्धान्त 'नास्तिको वेद, निन्दकः' को ही मिटा डाला। दुर्जनतोष न्याय से क्षण भर के लिए हम भी मान लें तो सांख्य दर्शन के प्रति पौराणिकी दुराग्रह के वशीभूत हुए नास्तिक पन के अलंकरण से कैसे सहमत हों जिसमें बड़े स्पष्ट शब्दों में एकाधिकार ईश्वर का वर्णन है। महर्षि के 'षड दर्शन समन्वय' को हानि पहुँचाने वाली मानसिकता वहां क्या कहेगी, तीसरे अध्याय का ५७वां सूत्र 'ईदशेश्वर सिद्धिः सिद्धा' में सांख्य दृढ शब्दों में ईश्वर को सिद्ध किया है। इससे पूर्व प्रसंग वश प्रथमाध्याय के ६१वें सूत्र ने "तन्सन्निधानार्द्धधष्ठातृत्वं मणिवत्" में ईश्वर का प्रकृति पर अधिष्ठातृत्व कहा है तथा 'अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पार वशयात्' सां॰ ३.५५ में प्रकृति को परवश कह कर ईश्वराधीन (ईश्वर से सम्बन्ध) बताया है। 'स ही सर्व वित सर्व कर्त्ता' सां. ३.५६ में उसे सर्वज्ञ व सर्वकर्त्ता कह कर अगले ५७ सूत्र में कहा है कि इस प्रकार ईश्वर सिद्ध है। अब कहिये लेखक महोदय ऋषियों के अनुसार नास्तिक ग्रन्थों को आस्तिक व आस्तिकों को नास्तिक कहने के पीछे आपका क्या उद्देश्य है?

अब आप बताएं आपके तिकडमबाज दर्शन को किस कोटि में रखा जाए जिसमें ईश्वर के मानने वाले और न मानने वालों में कोई अन्तर नहीं। आपने लिखा है 'वेद के लिए ईश्वर को मानने न मानने का उतना महत्त्व नहीं। जबकि वेद चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है **'तमेव विदित्वाति मृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यते अथनाय।** (यजु॰ ३१.१८) आप ही बताएं भला ईश्वर को बिना माने आचरण शुद्धि का आधार क्या है? वेदों में ऐसे शतशः मन्त्र हैं जो कहते हैं ऋग्वेद की ऋचायें व साम के सामगान उसी ईश्वर की ओट ले जाते हैं। वेदों में बार-बार कहा है कि ज्ञान बल, पवित्रता सभी कुछ ईश्वर से माँगा। एक बात हमारी समझ से बाहर लगती है लेखक महोदय की आपके अनुसार वेद आस्तिकता-नास्तिकता का आधार ही नहीं तो सभी दर्शनों का मूल वेद में बताकर आप क्या कहना चाहते हैं? क्या यही कि चार्वाक जैसे नास्तिक ही नहीं उच्छृंखल दर्शनो का मूल भी वेद ही है? जबकि आपकी लाख खींचतान के बाद भी आपके ही अनुसार ये दर्शन आस्तिक सिद्ध नहीं हो सकते, क्योंकि ये ईश्वर को नहीं मानते, पुनरपि वेदों की इतनी घोर अवमानना के पीछे आपका क्या ध्येय है? कोई व्यक्ति किसी का अपमान कर रह था तो जैसी कि कहावत है उसने कहा 'क्यों मेरी इज्जत मिट्टी में मिला रहे हो तो दूसरे ने कहा तेरी इज़्जत मिट्टी में मिलाकर मिट्टी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इज्जत खराब करनी है। भाव यह हुआ कि आप जैन बौद्ध चार्वाकादि का मूल वेद में बताकर इन्हें सम्मानित या प्रामाणिक तो नहीं कर सकते हां वेद की अवमानना की असफल कुचेष्टा करके अपनी मानसिकता के दिवालियेपन की घोषणा कर सकते हैं। क्योंकि आप लाख बार चाह कर भी इनकी नास्तिकता का मूल वेद में नहीं दिखा सकते।

विद्यालंकार जी इस ज्ञान पिपासु आार्य जनता को ये तो बता दो कि इन दर्शनों को नास्तिक मानें या आस्तिक? ये बेचारे आपने कहीं के नहीं छोड़े। यदि आपके अनुसार इनका मूल वेद में है तो इनको नास्तिक दर्शन नहीं हुए। और इनकी आस्तिकता की घोषणा ईसाई व मुस्लिम दर्शनों की भांति आपने कहीं नहीं की तो इनकी तीसरी श्रेणी कौन सी है? इस सन्दर्भ में हम तो भर्तहरि की तरह मौन है 'ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं तेके न जानीमहे'।। आपके समग्र लेख से लगता भी नहीं कि आप इन दर्शनों का अस्तिक सिद्ध करने के इच्छुक हैं। आपको तों जिन्हें आस्तिक सिद्ध करना था वो एक परिभाषा परिवर्तन के माध्यम से कर दिए मगर आपकी इतनी लम्बी चौड़ी खींचातान वेद मन्त्रों का अनर्थ कोई यौंही तो नहीं कर दिया। आपका यह प्रयास तो उस स्त्री जैसा है। जिसने कहा था 'रात भर रोई तब तो एक मरा (शत्रु), वह भी प्रातः उठकर भाग गया।' अपने रात भर के परिश्रम व्यर्थ जाने पर बड़ी पछताई होगी बेचारी, मगर आपको तो कोई पछतावा न होगा क्योंकि आपका प्रयास तो ऐसा न था आपने तो प्रयोग के तौर पर परीक्षण किया है कि कल को ईसाई व मुस्लिम दर्शनों को भी वेद मूलक सिद्ध किया जाए तो कोई प्रचण्ड विरोध तो न होगा। यदि आर्य जनता समन्वय के नाम पर जैन बौद्ध व चार्वाकादि मतों को वेद मूलक होने के नाम पर पचा लेगी तो ईसाई मुस्लिमादि को मानने में कोई बड़ा परिश्रम नहीं करना पड़ेगा चूंकि वो किसी न किसी रूप से ईश्वर को मानते हैं। इस प्रकार आपके इस सम्पूर्ण लेख को ईसाई आदि को वेदमूलक सिद्ध करने की भूमिका मात्र कहा जाए तो ये सोच आपके चिन्तन से अधिक दूर नहीं। समझ में नहीं आता कि कारण से कार्य व कार्य से कारण तक को अनुमान की कसौटी ऋषि से प्राप्त करके भी ये समाज 'भस्मी भूतष्य देहस्य पुनरागमनं कुत:" जैसे अनात्मवादी दृष्टिकोण पर आधारित 'यावज्जीवेत्सुखं जीवेत ऋणं कृत्वाघृतं पिवेत' जैसी भ्रान्त व कल्पित धारणा को 'धृतं पीत्त्वां मधु चाइ गव्यं...। के समकक्ष या तज्जन्य कैसे मान लेगी? यह सत्य है कि वैदिक दर्शन शरीर को दिव्य नौका पुरी अयोध्या मानकर इसकी सुपुष्टि का पक्षधर है मगर इसका आधार 'शरीरस्य खलु धर्म साधनं' कालिदास व 'नायमात्मा बल हीनेन लभ्य: जैसे उपनिषद् वाक्य हैं। न कि भस्मीभूतस्य शरीरस्य......।

इस चार्वाक मत का बीज वेद में ढूंढते-ढूंढते अपने सभ्य शब्दों की सीमा से बाहर की ऐसी मानसिक विकृति प्रकट की है कि आपकी उपाधि के सामने 'अ' लगाने को हर एक का जी करता है।'हत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्। ऊधर्न नग्ना जरन्ते।। ऋ मं० ८ सू २ मं० १२ जैसे पवित्र वेद मन्त्र का कैसा घिनौना अर्थ किया है? इसके पूर्व के ग्यारहवें मन्त्र में कर्मयोगी को पुरोडाश के रूप में प्रस्तुत सोमरस के गुण इसमें बताए हैं। (पीतास) पिया हुआ सोमरस (हृत्सु) उदर में (युध्यन्ते) पुष्टि होने से पाकावस्था में पुष्टि व आह्लादादि अनेक सद्गुण उपजाते हैं। (सुरायाम्) सुरापान से (दुर्मदासो न) जैसे दुर्मद उत्पन्न होते हैं वैसे नहीं। (नाग्ना) स्तोत (ऊधन) आपीन=स्तन पान के समान फल से भरे आपकी (जरन्ते) रसपान के लिए स्तुति करते हैं। (दयानन्द संस्थान प्रकाशन) आश्चर्य तो इस बात का है कि लेखक महोदय ने लड़ने झगड़ने में भी मौज मस्ती ढूंढ ली। अपनी मानसिकता के आधार पर ये लेखक जैन सिद्धान्त स्याद्वाद जन्य वाम मार्गीय संस्कार लगते हैं। जिस स्याद्वाद की पुष्टि के लिए जो वेद मन्त्र दिया है उसका अर्थ सुधी पाठक सत्यार्थ प्रकाश में ही देख लें। ईशवास्यमिदं सर्व.....। जैसे प्रसिद्ध ईश्वर मन्त्र में घोर नास्तिक बौद्धमत्त के बीज ढूंढना आपका बुद्धि वैचक्षण्य है। सम्भवत: ऋषि द्वारा बताए गए साधर्म्य-वैधर्म्य प्रकरण पर अपने योग्य रीति से विचार नहीं किया वर्ना इतने मतों का बीज वेद में ढूंढते हुए इनकी नास्तिकता आपके कहीं आडे नहीं आई। आती भी कैसे बुद्धि का प्रयोग करके ईसाई मुस्लिमादि मतों को वेदमूलक सिद्ध करने की भूमिका थोड़े ही लिखी जा सकती है?

एक दृष्टि में लेखक महोदय के बौद्धिक कौशल का लोहा भी मानना पड़ेगा। कि इन्होंने क्षणिकवाद स्याद्वाव और निराशा त्याग संसार को सुखी बनाने के सिद्धांतों को नास्तिकता के सुदृढ़ किले में सुरक्षित निकाल कर वेद मूलक सिद्ध करने में जो कौशल दिखाया है ठीक वैसा ही नखशिख व्यायाम अद्वैत दर्शन को वेदमूलक सिद्ध करने में किया है। 'एक सद्विप्रा बहुतधावदन्तयाग्नि यमं मातरिश्वानमाहु:। ऋ १६४.४६ में लम्बी चौडी खींचतान की है वही 'पुरुष एवेंद सर्वं यद् भूतं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्च भाव्यम्।। यजु॰ ३१.२ का पूर्वार्द्ध लेकर उत्तरार्द्ध में आये 'अन्न' शब्द को पचाकर जिसका अर्थ स्वामी जी ने 'पृथिव्यादि के सम्बन्ध से' किया है तथा उसी सृष्टि रचियता की उपासना का आदेश दिया है भिन्न का नहीं। स्पष्ट त्रैतवाद परक मन्त्र से अद्वैतवाद सिद्ध किया है। इस विलक्षणता को देखकर रसखान की पंक्ति स्मरण हो आती है 'केतिन हूं कलधौत के धाम करील की कुञ्जन ऊपर वारो।। कितने ही दयानन्द, श्रद्धानन्द, गुरुदत्त, दर्शनानन्द, मनोहर जी की मनोहारी बुद्धि पर न्यौछावर किये जा सकते हैं। ऐसा ही चमत्कार इन्होंने 'ऋतस्य तन्तुं वितत विचृत्य तदपश्यत्तद भवत्तदा सीत्'। यजु॰ ३२.१२ में किया है वहां चूंकि उत्तरार्द्ध में अन्न शब्द पृथिव्यादि का वाचक होने से छोड़ दिया था तो यहां स्वमत के साधनार्थ पूर्वार्द्ध के द्यावा पृथ्वी लोकान् शब्द बाधक होने से त्याग दिये जिनका अर्थ स्वामी जी ने क्रमशः सूर्य, पृथ्वी व सृष्टि भूगोलादि है। क्या उत्तम होता कि ये बौद्धिक परिश्रम मानवता के कल्याणर्थ किसी शुभ संकल्प को लेकर किया होता। अगर जब उपादान सामग्री ही दूषित हो तो भूषित कार्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उपादान की दुर्गन्धि ही तो है जो लाख वेदों का नाम ले लेकर लीपा-पोती करने पर भी असफलता का आवरण उतारकर नहीं फैंक सकी।

आर्यजगत् के समस्त प्रकाशकों व सम्पादकों से भी निवेदन है कि प्रकाशन से पूर्व किसी रचना को दयानन्द की कसौटी पर कस कर देख लेना चाहिए। ये तो कहीं तक मान्य हो सकता है कि परीक्षण कोटि के लेखों को असहमति की सम्पादकीय टिप्पणी सहित प्रकाशित कर दिया जाए मगर ऋषि की मान्यताओं के नितान्त विपरीत वेदार्थ एवं वेद ईश्वर व ऋषियों की अवमानना की मनसा से लिखे लेखादि को आर्य जनता के सामने परोस दिया जाए। कम से कम सम्पादकीय दायित्व के निर्वहन के समय कुछ तो ऐसा सामने रखा जाना चाहिए जिससे आर्यसमाज को नहीं तो आर्यत्व को वेद को, महर्षि को सुरक्षित रखा जा सके। आज जबकि आर्य समाज में विजीगिषा तो भाग चुकी है ऐसे में जिजीविषा को बचाये रखने के लिए यह अत्यावश्यक है। यदि हम निहित स्वार्थों एवं सामाजिक सम्बन्धों की औपचारिकता के नाम पर ऐसा करते रहे तो यह देश समाज के लिए ही नहीं सम्पूर्ण मानवता के लिए घातक होगा।

(श्री राम निवास 'गुण ग्राहक'
पुरो॰ आर्य समाज श्री गंगा नगर)

साहित्य-समीक्षा

(1) **गोकरूणा निधि**-लेखक महर्षि दयानन्द सरस्वती। **प्रकाशक**-ज्ञानसागर वैदिक साहित्य प्रचार, अजमेर। मूल्य ६ रुपये मात्र।

भारतीय संस्कृति में गाय को माता के समान पूज्य माना गया है। आर्थिक दृष्टिकोण से भी गाय की रक्षा धन-धान्य से समृद्ध करने वाली है। वेद में गाय को अघ्न्या न मारने योग्य कहा है। 'गावो विश्वस्य मातर:' कह कर गाय को विश्व का पालन पोषण करने के कारण विश्व की माता कहा गया है। महर्षि दयानन्द जैसे विरक्त, त्यागी महात्मा की हार्दिक संवेदना इसमें पढ़ी जा सकती है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय प्रार्थना, विद्वान, संन्यासियों के मार्मिक सन्देश, रामायण काल में गाय का महत्व, भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिये गाय की उपयोगिता, गाय के दूध का महत्व परक भजन, गो हत्या को बन्द कराने में आत्माहुति करने वाले रामचन्द वीर की स्मृति, गोहत्या बन्द कराने हेतु महर्षि दयानन्द द्वारा चलाया गया महाभियान इत्यादि प्रेरणाप्रद, नवचेतना देने वाली इस पुस्तक का स्वाध्यान प्रत्येक देशभक्त को एक बार अवश्य करना चाहिये।

(2) **हिन्दुओं का भविष्य**--लेखक डा॰ हरिश्चन्द। प्रकाशक-इन्द्रजित् देन, १०५८, पुरानी सब्जीमण्डी मार्ग, यमुना नगर (हरियाणा)। मूल्य दो रुपये पचास पैसे मात्र।

इस लघु पुस्तिका में विद्वान लेखक ने गागर में सागर की भांति अपने महत्वपूर्ण विचारों को भर दिया है। इसमें भारत में विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति, हिन्दू की परिभाषा, हिन्दू मजहब वैदिक धर्म का ही विकृतरूप, हिन्दुओं के विकृतियों की परिणाम, हिन्दुओं को निगलने वाली चार शक्तियाँ, सुधर्म व उन्नति का एक ही रास्ता वैदिक धर्मी बनकर वेद-विरुद्ध बातों का त्याग करना, सृष्टि के प्रारम्भ से ही समग्र देश को धार्मिक दृष्टि से एकता के सूत्र में गुंथने वाली शक्ति, उपसंहार। इस पुस्तक के स्वाध्याय से प्रेत्यक जन में नवचेतना, स्फूर्ति, शक्ति, व साहस के बीज अंकुरित होंगे। आशा है कि पाठक इसे अपना कर प्रेरणा प्राप्त करेंगे और लेखक का उत्साहर्वधन भी करेंगे। संस्थाओं को इसको मंगाकर जन साधारण में वितरण कराना भी चाहिये।

राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए ---/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

श्री गिरराज सिंह जी पुत्र श्री रामफल मु.पो. असौली, बुलन्दशहर (UP)
श्री देवराज माधवराव जी गुट्टे मु. पांगरी पो. राणी साबूर गांव ता. गंगाखेड़ जि. परभणी (MR)
श्री नेमचंद जी गुप्ता A/225, शास्त्री नगर पो. अशोक विहार, दिल्ली-52
श्री मंत्री जी आर्यसमाज, नई मण्डी मु.नगर (UP)
आचार्य श्री यज्ञदेव जी आर्य ग्राम मचेण्डा खुर्द पत्रालय मेघाखेड़ी जि. मु.नगर (UP)
श्री रविन्द्र कुमार S/o श्री शोभनाथ सिंह सरायबीर (रेलवे स्टेशन) पो. केराकत जि. जोनपुर (UP)
श्री सत्येन्द्र कुमार गुप्ता चार्टर्ड अकाउन्टेंट 402, रामनगर पो. रुड़की जिला हरिद्वार (UP)
श्री रामेश्वरानन्द जी आर्य 72/I, पूर्वी मोती बाग, सराय रोहिल्ला, दिल्ली-7
श्री मनमोहन कुमार जी आर्य लेखानुभाग पो. आई.आई.पी. मोहकमपुर, देहरादून (UP)
श्री दयाराम जी आर्य, आर्यसमाज सरसपुर चार रास्ता अहमदाबाद-18 (गुजरात)
श्री ब्र. आर्य बन्धु रोहित वैदिक संस्थान इसराकावास पो. बबेड़ी जि. अलवर (राज.)
श्री दयानन्द जी दहिया 792/3 सैक्टर, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-22
श्री जयबहादुर शर्मा C/o नवनीत डेरी, रामनगर पो. सुपेला जि. दुर्ग (MP)
श्री मंत्री जी आर्यसमाज, शिवालय टेह जि. आगरा (UP)
श्री प्रताप सिंह जी वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर कुटी नं. 111, जि. हरिद्वार (UP)
श्री लक्ष्मणसिंह S.S. मास्टर राज.व.मा.विद्या. फर्रुखनगर, गुडगांव (हर०)
श्री नरेन्द्रपाल जी कन्या राज.व.मा.वि. सोहना गणित अध्यापक जि. गुड़गांव (हर०)
श्री रणजीत मुनि योगधाम ज्वालापुर (हरिद्वार) (UP)
श्री महावीर आयरन स्टोर, 5 मंदिर मार्ग, रुद्रपुर जि. नैनीताल (UP)
श्री कालेश्वर जी आर्य मु.पो. अगहरा वाया सोनो जि. मुंगेर (बिहार)

—धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/95
आर/ आर/ नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/8/95

अगस्त १९९५

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९५
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/95

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।

**बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दो रंग में सुन्दर आर्कषक छपाई**
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

**मूल्य : लागत मात्र से कम रु० ५०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।**

प्राप्ति-स्थान :- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

दिसम्बर, १९९३

वर्ष : २२ अंक २

दयानन्दाब्द : १६९

विक्रम संवत् : मार्ग शीर्ष, २०५०

सृष्टि संवत् : १,९६,०८,५३,०९४

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली-६ स्थापित - १९६६

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य

सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य

व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय

'दयानन्दसन्देश' (मासिक)

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)

आजीवन सदस्यता २५०)

विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- श्रद्धा हममें जागे २
- वेदोपदेश ३
- दुरितों से मुक्ति के उपाय ४
- अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के प्रेरणाप्रद संस्मरण ६
- शंका समाधान ८
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ ११
- संस्कारविधि के विरुद्ध अनर्गल निर्णय व मान्यताएँ १२
- योगेश्वर श्रीकृष्ण १४
- वैदिक सात मर्यादाएँ १६
- तुलसीकृत रामायण समीक्षा २०
- सत्यार्थभास्कर का मूल्यांकन तथा उसमें अनुपयोगी बातें २३

FREE

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपए, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ रुपए और सजिल्द बारह सौ रुपए सैकड़ा में प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा हम में जागे!

-धर्मवीर शास्त्री

कर आलोकित ऋषि-उपदेशों से मन का हर कोना,
जीवन के लोहे को तुमने किया दीप्तिमय सोना।

अपने गुरु की आशाओं को तुमने रूप दिया था,
गुरुकुल खोल कार्य मुनिवर के मन-अनुरूप किया था।

पावित किये लक्षशः मानव पावन वाणी द्वारा,
श्रद्धा, साहस का प्रतीक था प्रेरक नाम तुम्हारा।

लगा दिया गोरे शासन की संगीनों से सीना,
किया देश की स्वतन्तत्रता-हित तुमने खून-पसीना।

कौन क्षेत्र है जिसको स्वामिन्? तुमने छोड़ा खाली,
जहाँ गये चमके रवि जैसे भर दी नव उजियाली।

आर्य जाति पर जब-जब आया कोई आँधी-पानी,
मिला अयाचित उसे तुम्हारा कर तुरन्त वरदानी।

देह तुम्हारी यद्यपि यतिवर, गोचर आज नहीं है,
किन्तु तुम्हारी विमल ज्योति से क्या जगमग हृदय नहीं है।

नेताओं के लिये नमूना है तप-त्याग तुम्हारा,
अनुकरणीय देश-जाति से दृढ़ अनुराग तुम्हारा।

जिये शान से मिली मृत्यु भी तुम को वीर, निराली,
की वीरों के लिए प्रतिष्ठित तुमने पुण्य प्रणाली।

धारण कर वह तेज तुम्हारा बढ़ें सदा हम आगे,
श्रद्धानन्द, तुम्हारी ही वह श्रद्धा हम में जागे।

गुण-गण-गौरव-गान कहाँ तक करें शक्ति परिमित है,
तप के धनी, सत्य-साधक, तव चरणों में शिर नत है।

पता-बी-1/51, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-63

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—ईश्वर की प्राप्ति के लिए ज्ञान का प्रकाश, धार्मिकता और योगसाधना परमावश्यक है।

दीर्घतमा ऋषिः। ईश्वरः देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥
ईश्वरोपासकाः कीदृशा भवन्तीत्याह॥
ईश्वर के उपासक कैसे होते हैं, यह उपदेश किया जाता है।

ओ३म्- **अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।**
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानऽआवरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः॥ (यजु० २।७।१७)

पदार्थः- (अपश्यम्) पश्येयम् (गोपाम्) रक्षकम् (अनिपद्यमानम्) अपदनशीलमचलम् (आ) (च) (परा) (च) (पथिभिः) ज्ञानमार्गैः (चरन्तम्) प्राप्नुवन्तम् (सः) (सध्रीचीः) सहवर्त्तमानाः (सः) (विषूचीः) व्याप्ताः (वसानः) आच्छादकः (आ) (वरीवर्त्ति) समन्ताद् भृशमावृणोति-समन्ताद् वर्त्तते वा (भुवनेषु) लोक-लोकान्तरेषु (अन्तः) मध्ये॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! अहं यम् (पथिभिः) ज्ञानमार्गैः (आ+चरन्तम्) (परा+चरन्तम्) प्राप्नुवन्तम् (अनिपद्यमानम्) अपदनशीलम् अचलम् (गोपाम्) रक्षकम् जगदीश्वरम् (अपश्यम्) पश्येयम्। (स) (च) (सध्रीचीः) सह वर्त्तमानाः स च (विषूचीः) व्याप्ताः (वसानः) आच्छादकः सन् (भुवनेषु) लोकलोकान्तरेषु (अन्तः) मध्ये (आ+वरीवर्ति) समन्ताद् भृशमावृणोति समन्ताद् वर्त्तते वा, तं यूयमपि पश्यत।

भाषार्थ—हे मनुष्यो! मैं जिस (पथिभिः) ज्ञानमार्गों से (आ+चरन्तम्, परा+चरन्तम्) इधर और उधर प्राप्त होने वाले (अनिपद्यमानम्) गतिं रहित, अचल (गोपाम्) रक्षक जगदीश्वर को (अपश्यम्) देखता हूँ और (सः) वह (सध्रीचीः) साथ वर्तमान दिशाओं को तथा वह (विषूचीः) व्याप्त उपदिशाओं को (वसानः) आच्छादित करने वाला होकर (भुवनेषु) लोक-लोकान्तरों के (अन्तः) मध्य में (आ+वरीवर्त्ति) सब ओर से सब को अत्यन्त आच्छादित कर रहा है अथवा सब ओर विद्यमान है, उसे तुम भी देखो।

भावार्थ—ये मनुष्याः सर्वलोकाभिव्यापिनमन्तर्यामिरूपेण प्राप्तम्, अधार्मिकैरविद्वद्भिरयोगिभिरविज्ञेयं परमात्मानं विज्ञायात्मना युञ्जते, ते सर्वान् धर्म्यान् मार्गान् प्राप्य विशुध्यन्ति॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब लोकों में व्यापक अन्तर्यामी रूप से प्राप्त, अधार्मिक अविद्वान्, अयोगी जनों से न जानने योग्य परमात्मा को जानकर आत्मा को युक्त करते हैं, वे सब धर्मयुक्त मार्गों को प्राप्त करके विशुद्ध होते हैं॥

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुरितों से मुक्ति के उपाय

ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना के मन्त्रों में एक वाक्य आता है-दुरितानि परासुव (यजु० ३०। ३) इसकी व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं-हे परमेश्वर! हमारे दुरितानि=दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए। (सं०वि०) महर्षि के वेदभाष्य में 'दुरित' शब्द के निम्नलिखित अर्थ मिलते हैं-

दुरितम् = दुःखायेतं प्राप्तम् (पापम्) (ऋ० १। १२५। ७)
दुरितात् = दुष्टाचारात्॥ (ऋ० १। १४७। ३)
दुष्टकर्मभ्यः॥ (ऋ० भू०-२०३ पृ०)
दुरितानि = दुःखदानि पापानि॥ (ऋ० २। २७। ५)
दुरितानि = दुःखप्रापकाणि कर्माणि फलानि वा॥ (ऋ० ५। ३। ११)
दुरिवानि = दुःखेन नेतुं योग्यानि (स्थानानि)॥ (ऋ० १। ९९। १)

इस प्रकार 'दुरित' शब्द के दुःख, पाप, दुष्कर्म, दुर्व्यसन आदि अर्थ महर्षि ने किए हैं।

वेद मन्त्रों में दुरित की भांति अंहस्, अघ से भी मुक्ति की कामनाएँ मिलती हैं।

क्या दुरितों से छुटकारा हो सकता है? इसका स्पष्ट उत्तर है-हाँ, दुरितों से बचा जा सकता है। वेदमन्त्रों में जो प्रार्थनाएँ की गई हैं, वे सम्भव ही हो सकती हैं, असम्भव नहीं। हाँ, अन्तर यह है जो अघ = पाप हमने किया है, उसके फल की प्राप्ति से हम नहीं बच सकते। क्योंकि जैसे कि कहा गया है-"**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**"॥ अर्थात् मनुष्य जैसा भी शुभ या अशुभ कर्म कर चुका है, उसका शुभाशुभ फल अवश्य भोगना होता है। अशुभ कर्मों के जो संस्कार या वासनाएँ हमारे मन में अंकित हो जाती हैं, जिनके कारण मनुष्य उचित स्थान या वातावरण पाकर पुनः दुष्कर्म में रत हो सकता है, उन कुत्सित संस्कारों, दुर्व्यसनों को हम नष्ट कर सकते हैं। वेदमन्त्रों में भी अघ नाश की प्रार्थना का यही उद्देश्य है। ईश्वर-भक्ति का भी यही फल होता है-

महर्षि मनु ने दुरितों से बचने के निम्नलिखित उपाय बताये हैं-

ख्यापनेनाऽनुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि॥
(मनु० ११। २२६)

१. **ख्यापनेन** = यदि किसी व्यक्ति से जाने अनजाने कोई गलत काम हो जाता है तो ख्यापन = सब के सामने अथवा सार्वजनिक रूप से व्यक्ति अपनी गलती को स्वीकार कर लेता है तो उसका मन स्वच्छ हो जाता है और यह सार्वजनिक-कथन उसको पुनः उस कार्य को करने से रोक देता है। और जो सब के समक्ष दोष को दोष न मानकर उसे छिपाने का प्रयत्न करता है, वह व्यक्ति उस दोष की रक्षा करने से दूषित ही रहता है।

२. **अनुताप** = दुरितों से बचने का दूसरा उपाय पश्चात्ताप करना है। जब कोई काम गलत हो जाता है तो उसके प्रति घृणाभाव पैदा हो जाता है। ऐसी स्थिति में

नैवं कुर्यात् पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥
(मनु० ११। २३०)

अर्थात् फिर कभी ऐसा कार्य नहीं करूँगा, ऐसा निश्चय करने से व्यक्ति दुरित से बच जाता है।

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत् तेनाधर्मेण मुच्यते॥
(मनु० ११। २२९)

अर्थात् जैसे-जैसे व्यक्ति उस दुष्कर्म की निन्दा करता है, वैसे-वैसे वह दुष्कृत से बच जाता है। इस पश्चात्ताप की अग्नि से दग्ध वह दुष्कर्म फिर से अंकुरित नहीं हो पाता। एतदर्थ मनुस्मृति में कुछ चान्द्रायणादि व्रतों का अनुष्ठान भी लिखा है। वे भी सहायक बन सकते हैं। इसी रहस्य को इस प्रकार समझाया गया है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥
(मनु० ११।४७)

अर्थात् प्रायश्चित्त शब्द में दो शब्द हैं–प्रायः और चित्त। प्रायः का अर्थ तप है और चित्त का अर्थ निश्चय।

३. **तपसा** = व्रतों की साधना से। चान्द्रायणादि व्रतों के अनुष्ठान में जो साधना करनी पड़ती है उसका नाम तप है। अथवा–

मनस इन्द्रियाणां च संयमः परमं तपः॥

अर्थात् मन और इन्द्रियों के संयम को परम तप कहा जाता है। एतदर्थ प्राणायाम परम सहायक है! जैसे कि लिखा है–

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राण निग्रह से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं।

४. **वेदों के अभ्यास करने से** = वेद परमेश्वर का निर्भ्रान्त ज्ञान है। जब व्यक्ति से कोई गलती होती है, उसमें मुख्य कारण अज्ञान भी होता है। और यथार्थ ज्ञान से एक प्रकाश मिल जाता है। जिसमें अपनी गलती की अनुभूति होने लगती है, जो ज्ञान से धुल जाती है। इसलिए कहा गया है–

यथैधस्तेजसां वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात्।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित्॥
(मनु० ११।२४६)

अर्थात् जैसे अग्नि अपने तेज से अपने समीप रखे ईंधन को तत्काल जलाकर नष्ट कर देती है, वैसे ही वेद का ज्ञाता ज्ञानाग्नि से सब पाप भावनाओं को = पाप कर्मों से उत्पन्न संस्कारों को भस्म कर देता है। इसी बात को 'वेदाभ्यासोऽन्वहं.........नाशयत्याशु पापानि' द्वारा पुष्टि की गई है।

५. **आपद्ग्रस्त दशा में दान करने से** = जब व्यक्ति भयंकर व्याधि से अथवा अन्य दैविक आपत्तियों से ग्रस्त हो जाता है, तब परोपकारार्थ दान करने से भी पापों से = दुरितों से = बुरे संस्कारों से बच जाता है।

उपर्युक्त पाँच उपाय दुरितों = कुसंस्कारों से बने दुर्व्यसनों से छूटने के लिए ही हैं, न कि कृतकर्मों के शुभाशुभ फलों से मुक्त होने के लिए। दुर्व्यसनों व कुत्सित संस्कारों की जटिलता अथवा व्यक्ति की असमर्थ दशा में परमेश्वर से भी प्रार्थना की जाती है–

दुरितानि परासुव॥

दुरितों के त्रिविध रूप–यद्यपि दुरितों की गणना करना अतीव दुष्कर कार्य है, पुनरपि महर्षि मनु ने दुरितों को इस प्रकार बाँटा है–

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥
(मनु० १२।५)

त्रिविध मानस दुर्व्यसन–दूसरे के पदार्थों में ध्यान करना अथवा उनको लेने की इच्छा करना या चोरी का विचार करना, मन से दूसरे की उन्नति देखकर अनिष्ट चिन्तन करना और झूठा अभिमान करना ये तीन मानस दुष्कर्म हैं।

वाचिक दुर्व्यसन–

पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥

अर्थात् कठोर भाषण करना, मिथ्या भाषण करना, चुगली करना और असम्बद्ध बोलना ये चार वाणी के दुर्व्यसन है।

शारीरिक दुर्व्यसन–

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
(मनु० १२।७)

दूसरों के पदार्थों की चोरी करना, शास्त्र विरुद्ध हिंसा करना और ब्रह्मचर्य व्रत का भंग करना, ये तीन शारीरिक दुर्व्यसन हैं। हमें परमेश्वर से 'दुरितानि परासुव' प्रार्थना करते हुए इन सभी दुर्व्यसनों से बचने की प्रार्थना करनी चाहिये। यदि उपर्युक्त दश दुर्व्यसनों में से एक भी जीवन में कार्यरत हैं, तब तक व्यक्ति भद्र = कल्याण की प्राप्ति नहीं कर सकता।

❑❑❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३ दिसम्बर पर

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के प्रेरणाप्रद संस्मरण

१. ३० मार्च १९१९ में दिल्ली के चाँदनी चौक में एक विशाल जुलूस का नेतृत्व करने वाले निर्भीक सच्चे संन्यासी ने जब यह देखा कि जुलूस को रोकने व डराने के लिए अपने समय के वीर एवं सुशासित गोरखा सैनिकों ने अपनी संगीनों के कुत्ते दबा दिये हैं और फायर शुरू कर दिये हैं, उस समय यह वीर गोली की तरह दनदनाता अपार जनसमूह से निकलकर आगे बढ़ा और सैनिकों को चैलेंज करते हुए कहा–

''वीर सैनिको! हिम्मत हो तो गोलियाँ चलाओ, यह संन्यासी का सीना खुला है।''

वीर की ललकार से सैनिकों के दारुण दिल भी पिघल गये और उनकी संगीनों ने नतमस्तक होकर मानो उस वीर को प्रणाम करके अपना कर्तव्य पूरा किया।

२. दृढ़-प्रतिज्ञ संन्यासी ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया–स्कूल से लौटी अपनी अबोध बच्ची के मुख से जब यह सुना–

ईशा ईशा बोल तेरा क्या लगेगा मोल।
ईशा मेरा राम रमैया ईशा मेरा कृष्ण कन्हैया॥

स्वामी श्रद्धानन्द (उस समय मुंशीराम) के बदन में बिजली जैसा करंट लग गया, जिसने तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली को आमूल चूल बदलने के लिए बाध्य किया। महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में शिक्षा दर्शन को पढ़ा। मानो भूले भटके मानव को सन्मार्ग मिल गया–

'नगर से दूर एकान्त देश में नदी तट अथवा पहाड़ की उपत्यकाओं में शिक्षा का केन्द्र गुरुकुल होना चाहिए।'

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्॥ यह वेद का उद्घोष कर्ण-कुहरों में अहर्निश गूँजने लगा। घर के सब काम छोड़ दिये, फलती-फूलती वकालत को लात मार कर एक दृढ़ प्रतिज्ञा की–

'जब तक गुरुकुल के लिए तीस सहस्र रुपये इकट्ठा न कर लूँगा, तब तक घर में पैर नहीं रखूँगा।'

आज उस भिखारी की झोली से इकट्ठे धन से जो शिक्षा-संस्थान बना, वही आज फलता-फूलता एक गंगा के किनारे गुरुकुल विश्वविद्यालय (हरिद्वार) बन गया। जो त्यागी, तपस्वी महात्मा के विमल यश को अजस्र प्रवाहित करता रहेगा।

३. तत्कालीन नेता व प्रजा क्या कहेगी, यह तो कभी स्वामी जी ने परवाह ही नहीं की। प्रायः मनुष्य लोगों की निन्दा या स्तुति से भी अपने प्रारम्भ किए कार्यों का त्याग कर देते हैं। परन्तु इस वीर ने प्रारम्भ किए कार्य को बीच में छोड़ देना कभी सीखा ही नहीं था। उसका तो यह दृढ़ संकल्प था–

(क) कार्यं वा साधयेयम्, देहं वा पातयेयम्।
(ख) न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

जब स्वामी जी ने देखा कि राष्ट्र की एकता के बिना सब कार्य व्यर्थ हो जायेंगे तो उन्होंने समस्त समय हिन्दू-मुस्लिम एकता में बिताना शुरू कर दिया। स्वामी जी ने शुद्धि का चक्र बड़ी ही प्रखरता से चलाना शुरू किया। विधर्मी बने भाई फिर से अपने धर्म को अपनाने लगे। परन्तु धर्मनिरपेक्षता के नाम की झूठी खाल को ओढ़कर दिखावटी शेर बने सियारों के हृदय स्वामी जी के कार्यों से काँपने लगे। जिन्होंने आगे-पीछे गान्धी जी से शिकायत करनी शुरू कर दी। उस समय इस वीर ने जो हृदयोद्गार प्रकट किये थे, वे युगों-युगों तक स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे–

''क्या हुआ जो गान्धी जी रुष्ट हो गये? क्या हुआ जो मुस्लिम नेता जिन्ना साथ छोड़ जायेंगे? क्या हुआ जो मारने की धमकी भरे पत्र आने लगेंगे, जब प्रभु का वरदहस्त तो मेरे साथ है। वेद का परम-पवित्र ज्ञान तो मेरे से अलग न होगा, तब चाहे सारा संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा विरोधी बन जाए, तब भी मुझे लेशमात्र भी चिन्ता नहीं होगी।"

४. आत्मनिरीक्षण करना समस्त उन्नतियों का मूल है–अपनी आत्मकथा में स्वामी जी लिखते हैं–

"गुरुकुल के निमित्त धन-संग्रह के लिए एक बार मैं दिल्ली गया। वहाँ कुछ प्रमुख जनों के साथ उस समय के सदर के सब से बड़े रईस के घर दान लेने पहुँचा। जब रईस को यह पता लगा कि गुरुकुल के निमित्त दान लेने वाली मण्डली आई है तो किसी बच्चे के हाथ यह कहलवा दिया–राय साहब थोड़ी देर में मिलेंगे। कुछ देर प्रतीक्षा करके जब रईस मिलने तक भी नहीं आए, मुझे यह बात बुरी लगी और मण्डली को लेकर हम वापस आ गए। अपने निवास स्थान पर आकर अपनी अन्तरात्मा से पूछने लगा–ऐसा क्यों हुआ। मेरे अन्दर कमी है? मेरी आत्मा ने उत्तर दिया–अरे मुंशीराम! अभी तू सच्चा भिखारी नहीं बना है, इसलिए तुझे भिक्षा नहीं मिली। विचार करते-करते ध्यान आया–अभी तेरे पास पैतृक कोठी है, तब तू कैसा भिखारी! अपनी उस कोठी को गुरुकुल के नाम लिखकर कागज तैयार किया और अपने दोनों पुत्रों के हस्ताक्षर कराये और गुरुकुल के उत्सव पर इस दान की सार्वजनिक घोषणा करके यह कहा–उपस्थित लोगो! आज मैं सच्चा भिखारी बन गया हूँ।"

५. दिल्ली की जामा मस्जिद की मीनार से जब एक वेदभक्त संन्यासी ने एकता का उपदेश वेद मन्त्र बोलकर किया–

स्वामी जी के शुद्धि चक्र से जहाँ कुछ कट्टरपन्थी मुसलमान नाराज रहने लगे, वहाँ सात्त्विक वृत्ति के मुसलमान प्रसन्न भी थे। एक बार पुलिस की गोलियों से कुछ लोगों की मृत्यु हो गयी। हिन्दू-मुस्लिम का भेद मिटाकर शहीदों का एक जनाजा निकाला गया। जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द और हकीम अजमल खाँ भी साथ-साथ चल रहे थे। दोपहर बाद नमाज के बाद जामा मस्जिद में मुसलमानों का एक विशाल जलसा होने लगा। उसमें कुछ मुस्लिम नेताओं ने यह आवाज बुलन्द की–इस अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द की भी तकरीर करानी चाहिए। उपस्थित जनसमूह ने उसका अनुमोदन किया।

'अल्ला हो अकबर' के गगनभेदी नारों के मध्य स्वामी जी मस्जिद की वेदी पर आरूढ़ हुए। इस प्रभावशाली चेहरे को देखकर सन्नाटा छा गया। स्वामी जी ने वेद के पवित्र मन्त्र से अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया तथा तीन बार शान्ति बोलकर समाप्त किया। स्वामी जी का भाषण–"समस्त प्रजा का स्वामी एक ही शाश्वत पिता है और हम सब उसके पुत्र हैं। ये धर्म के नाम पर जो परस्पर भेद बनाये हुए हैं, ये सब मिथ्या हैं। समस्त भाषण को बहुत ही एकाग्र मन से श्रोताओं ने सुना। इस्लाम के इतिहास में यह एक पहला अवसर था जबकि एक गैर मुस्लिम से जामा मस्जिद से भाषण कराया गया।"

६. स्वाभिमान के रक्षार्थ नौकरी का त्याग करना–जिस नौकरी के लिए मनुष्य मारा-मारा फिरता है और नौकरी के लिए गलत तरीकों के अपनाने में भी संकोच नहीं करता, चरित्र, धर्म एवं शिष्टाचार को भी ताक में धर देता है। मुंशीराम ने स्वाभिमान की रक्षा के लिए उस नौकरी को भी त्याग दिया। पिता जी ने यह सोच कर यह उच्च शिक्षा तो प्राप्त नहीं कर सकेगा, अतः अंग्रेज अफसर से मिल-जुलकर तहसीलदार के पद पर लगवा दिया। बरेली से आठ-दस मील की दूरी पर अंग्रेजी फौज का पड़ाव था। उसे रसद पहुँचाने का काम मुंशीराम को सौंपा गया। मुंशीराम ने सामान भिजवाने का काम तो किया ही, साथ ही कुछ व्यक्तियों को प्रेरित कर कुछ दुकानें भी फौज के निकट ही खुलवा दीं। कुछ दिनों के बाद एक अंग्रेज ने दुकानदार से दुर्व्यवहार किया और बिना पैसे दिये अण्डे छीन कर ले गया। बात तो बहुत बड़ी नहीं थी, परन्तु तूल पकड़ गई। फौज के कर्नल से शिकायत की तो वह भी दुकानदारों व मुंशीराम पर क्रोध करने लगा। यह धौंस मुंशीराम को सहन न हुई। उन्होंने कर्नल की क्रोध भरी बातों को अपने स्वाभिमान के विरुद्ध समझा। कर्नल से भी क्रोध में बात होने लगी। बाद में कर्नल की शिकायत पर कलक्टर ने मुंशीराम से क्षमा माँगने को कहा। उससे तो मुंशीराम के स्वाभिमान को और अधिक ठेस लगी। स्वाभिमान की रक्षा के लिए नौकरी से ही त्यागपत्र देकर घर आ गये। ❑❑❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंका-समाधान

समाधानकर्ता : ब्र० विवेकभूषण आर्य

हमने जिज्ञासा भाव से निम्न तीन शंकाएँ दर्शन योग महाविद्यालय, रोजड (साबरकांठा, गुजरात) के युवा दार्शनिक विद्वान् श्री विवेकभूषण जी आर्य के समक्ष रखी थीं।

(१) सत्यार्थप्रकाश के १२वें समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने लिखा है-"आकाश, काल, जीव और परमाणु ये नये वा पुराने कभी नहीं हो सकते क्योंकि ये अनादि और कारणरूप से अविनाशी हैं; पुन: नया और पुरानापन कैसे घट सकता है?" (आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का ३९वाँ संस्करण, पृ० २८४)

यहाँ ऋषि ने आकाश और काल को भी अनादि कहा है। हम तो यही मानते हैं कि ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन ही पदार्थ अनादि हैं। यदि आकाश और काल को भी अनादि कहें तो तीन के स्थान पर पाँच तत्त्वों को अनादि मानना पड़ेगा।

(२) हम पढ़ते हैं कि **बिना द्रव्य के** गुण और बिना गुण के द्रव्य नहीं **रह सकता। तब** तो ईश्वर के दया, न्याय आदि गुण भी **बिना द्रव्य संभव** नहीं। अब हमारी शंका यह है कि ईश्वर का द्रव्य क्या है?

(३) अंग्रेजी में जिसे Intuitive Knowledge कहते हैं वह क्या है? संस्कृत में उनका पर्याय शब्द कौन सा है?

पू० विवेकभूषण जी ने उपरोक्त सभी शंकाओं का अत्यन्त ही युक्तियुक्त समाधान दिया है, जो 'दयानन्द-सन्देश' के पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रेषक : भावेश मेरजा
प्रधान, आर्यसमाज, भरूच, ३९२००१

उत्तर-(१) आकाश (Space) और काल (Time) इन दोनों का भी कोई कारण नहीं है। ये दोनों भी निमित्त कारण ईश्वर की तरह अनादि हैं और जगत् के साधारण कारण हैं। यदि इनकी उत्पत्ति के कारण मान लिये जायें, तो वे जो इनके कारण होंगे, फिर वे अनादि मानने पड़ेंगे। कोई न कोई तो अनादि मानना ही पड़ेगा। अत: इन्हीं आकाश व काल को ही अनादि मान लिया गया। अब प्रश्न यह है कि यदि इन्हें अनादि मान लें, तो अनादि तत्त्व ५ हो जायेंगे। तब महर्षि ने अनेक स्थानों पर तीन अनादि पदार्थ क्यों लिखे? इसका उत्तर है कि-जहाँ-जहाँ तीन पदार्थ अनादि लिखे हैं, वे मुख्य तत्त्वों की दृष्टि से लिखे हैं। अर्थात् संसार में मुख्य पदार्थ तीन हैं-ईश्वर, जीव और प्रकृति। और ये तीनों अनादि हैं, परन्तु कहीं जब दार्शनिक दृष्टि से किसी द्रव्य की उत्पत्ति के सम्पूर्ण तत्त्वों की गणना की जाती है, तब आकाश व काल की भी गणना की जाती है। क्योंकि किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति बिना आकाश (Space) के हो ही नहीं सकती। और उस पदार्थ के बनने में समय भी कुछ न कुछ लगता ही है। बिना समय लगे कोई पदार्थ बन नहीं सकता।

दूसरी बात अनादि पदार्थ तीन लिखने का एक यह भी कारण समझ में आता है कि वेद के अनुसार संसार में दो प्रकार के तत्त्व हैं। (१) जड़ और (२) चेतन। प्रकृति जड़ है = (परमाणु रूप है) तथा जीव व ईश्वर दोनों चेतन हैं। अत: एक जड़ = (परमाणुरूप) प्रकृति तथा दो चेतन (जीव और ईश्वर) कुल मिलाकर तीन ही पदार्थ हुए। आकाश और काल न तो प्रकृति के समान परमाणुरूप हैं और न ही जीव व ईश्वर के समान चेतन तत्त्व हैं, अत: गौण होने से अनादि तत्त्वों में इनकी गणना नहीं की। मुख्य होने से तीन ही तत्त्व अनादि कहे हैं। इसलिए जहाँ संक्षेप से किसी पदार्थ (वस्त्र) आदि की उत्पत्ति बताई जाती है, तो केवल मुख्य पदार्थों को ही कारणों के रूप में बता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता है। जैसे-कार्यद्रव्य = वस्त्र। निमित्त कारण = जुलाहा। उपादान कारण = धागे। साधारण कारण-करघा, मशीन आदि। परन्तु जब विस्तार से दार्शनिक दृष्टि से सम्पूर्ण कारणों पर विचार किया जाता है, तो करघा, मशीन आदि के साथ-साथ आकाश व काल को भी गिन लिया जाता है। वास्तव में आकाश (Space= खाली स्थान) के भी परमाणु नहीं हैं और काल (Time) के भी परमाणु नहीं हैं। परन्तु व्यवहार करने के लिए-'कोई वस्तु कब बनी, कितनी पुरानी है, या कब बनेगी', इत्यादि व्यवहारों की सिद्धि के लिए काल आदि तत्त्वों को स्वीकार कर लिया जाता है। जिससे कि व्यवहार में भ्रम, संशय आदि न हो। इसलिये संक्षिप्त और मुख्य कथन में तीन तत्त्व अनादि कहे जाते हैं और विस्तृत कथन में पाँच तत्त्व अनादि कहे जाते हैं। एक और तत्त्व का भी व्यवहार में कथन होता है, उसका नाम है 'दिशा' = (Direction) = (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि)। इसके भी परमाणु नहीं होते। बल्कि आकाश के ही किसी एक भाग को 'पूर्व दिशा' कह देते हैं, किसी दूसरे भाग को 'पश्चिम दिशा' कह देते हैं। यह 'दिशा' नामक पदार्थ 'आकाश' से सर्वथा भिन्न न होने के कारण पूर्वोक्त पाँच अनादि तत्त्वों के साथ छठे तत्त्व के रूप में नहीं गिना गया। अन्यथा 'छः तत्त्व अनादि' महर्षि को लिखने पड़ते। और हाँ, एक बात और। अभी मैंने पिछले पृष्ठ पर लिखा था कि आकाश के परमाणु नहीं होते। यह बात वैशेषिक दर्शन के आधार पर लिखी है। सांख्य दर्शन में आकाश के परमाणु स्वीकार किये हैं। वास्तव में आकाश भी दो प्रकार का है। एक तो सर्वथा शून्यरूप (जिसका उल्लेख वैशेषिक० में है।) और दूसरा परमाणुरूप (इसका उल्लेख सांख्य० में है।) सत्यार्थप्रकाश के जिस स्थल पर हम विचार कर रहे हैं, वहाँ जिस आकाश की चर्चा है, वह वैशेषिक० वाला 'सर्वथा शून्यरूप आकाश' है। क्योंकि सांख्य० वाला आकाश तो 'परमाणुरूप' है, जो कि प्रकृति के परमाणुओं से बनता है, और प्रलय के समय नष्ट भी हो जाता है। अतः वह अनादि भी नहीं है। १२वें समुल्लास वाला आकाश तो अनादि है। जबकि सांख्य० वाला आकाश अनादि नहीं है। इस सांख्य वाले, प्रकृति से उत्पन्न होने वाले, परमाणुरूप आकाश की चर्चा आप सत्यार्थप्रकाश में देखना चाहें, तो आठवें समुल्लास के प्रारम्भिक पृष्ठों में सांख्य दर्शन का यह सूत्र देखें-"सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्......" (सांख्य० १।६१ अथवा १।२६)

(२) गुण और द्रव्य को कभी भी अलग-अलग नहीं किया जा सकता। जैसे-अग्नि एक द्रव्य है। उष्णता = (गर्मी) इसका गुण है। इस गर्मी को अग्नि द्रव्य से अलग नहीं किया जा सकता अर्थात् गर्मी सदा अग्नि द्रव्य में ही रहेगी। थोड़ा गंभीरता से विचार करें, तो प्रश्न होगा कि-अग्नि द्रव्य क्या है? उत्तर होगा-किन्हीं परमाणुओं के समूह का नाम अग्नि है, जिन परमाणुओं में गर्मी आदि रहती है।

ठीक इसी प्रकार से न्याय आदि भी गुण हैं। गुण द्रव्य से अलग कभी नहीं रह सकता। ये न्याय आदि गुण जिस द्रव्य में रहते हैं, वह द्रव्य ही परमात्मा है। इसलिये परमात्मा स्वयं द्रव्य = (Substratum) है और न्याय, दया, ज्ञान, आनन्द आदि उसमें रहने वाले गुण = (Attributes) हैं। अन्तर इतना ही है कि अग्नि एक जड़ द्रव्य है, क्योंकि उसमें परमाणु हैं, और परमात्मा एक चेतन द्रव्य है, उसमें परमाणु नहीं हैं। परमाणु केवल जड़ पदार्थों में होते हैं, चेतनों में नहीं। तब परमात्मा के परमाणु न होने से कोई कह सकता है कि वह द्रव्य ही नहीं, जैसा कि आज के भौतिक वैज्ञानिक लोग मानते हैं। तो इसका उत्तर है कि-द्रव्य की परिभाषा वैशेषिक दर्शन के अनुसार यह है-कि जिसमें गुण रहते हों अथवा गुण व क्रिया दोनों ही रहते हों, वह द्रव्य है। (देखें-"क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्॥ वैशे० १।१।१५, सत्यार्थप्रकाश ३ समुल्लास) द्रव्य की इस परिभाषा के अनुसार अग्नि में उष्णता = (गर्मी) आदि गुण हैं, अतः वह एक द्रव्य है। ईश्वर में न्याय, दया, ज्ञान आदि गुण रहते हैं, वह भी एक द्रव्य है। इसी प्रकार से जीवात्मा में इच्छा, द्वेष, प्रयत्नादि गुण रहते हैं। अतः वह भी एक द्रव्य है। द्रव्य में परमाणु होना आवश्यक नहीं है। गुण होना आवश्यक है। बिना गुण के कोई भी द्रव्य नहीं हो सकता।

(३) Intutive Knowledge का एक अर्थ तो यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता है कि किसी व्यक्ति को किसी समस्या पर विचार करते-करते अचानक कोई ज्ञान अपने पूर्वोपलब्ध ज्ञान-भण्डार में से स्फुरित हो जाये, और वह समस्या हल हो जाये। इस अर्थ में दार्शनिक साहित्य (योगदर्शनादि) में 'प्रातिभ ज्ञान' शब्द का प्रयोग किया गया है। और ऐसा होना संभव भी है। परन्तु अंग्रेज़ी में एक और शब्द प्रचलित है-Intution. इस शब्द का अर्थ लोग मानते हैं कि कहीं दूर कोई घटना हो रही हो, तो बिना किसी रेडियो, टेलिविज़न या टेलिफोन के ही उस घटना का किसी-किसी को केवल मानसिक स्तर पर पता चल जाता है। जैसे कि-एक व्यक्ति भरुच में बैठा हो, और उसका भाई कलकत्ता में रहता हो। किसी दिन सायंकाल के समय उसके कलकत्ता वाले भाई को हृदयाघात = (Heart-Attack) हो रहा हो, तो भरुच वाले भाई को बिना किसी टेलिफोन आदि माध्यम के ही, केवल मानसिक स्तर पर ऐसा आभास हो जाये कि "मेरे भाई पर इस समय कोई आपत्ति आई हुई है।" और जब एक-दो घण्टे बाद कलकत्ता वाला भाई स्वस्थ हो जाये, तो भरुच वाले भाई का मन भी स्वस्थ और निश्चिंत हो जाये। ऐसी आन्तरिक अनुभूति को लोग Intution के नाम से या Telepathy के नाम से भी कहते हैं।

हमारे विचार से ऐसा होना अभी परीक्षा कोटि में है। अर्थात् नियमपूर्वक जब किसी पर आपत्ति हो, तो सदा उसके प्रिय व्यक्ति, (भाई, मित्र आदि) को उसका आन्तरिक आभास हो ही जाए, ऐसा आवश्यक नहीं है। जिस प्रिय व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा हो, और वह समय पर न पहुँचे, उसके बारे में स्वभावत: प्राय: सभी लोग शंका-कुशंका अपने मन में करते हैं, कि पता नहीं रास्ते में कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई। कई बार वह विचार केवल शंकामात्र होता है। और थोड़ी देर में वह व्यक्ति सकुशल पहुँच जाता है। और कभी-कभी दुर्घटना हो भी जाती है, क्योंकि सृष्टि में ऐसा होना संभव है। परन्तु इसे Intution नहीं कहा जा सकता। यदि कोई ऐसी विद्या वास्तव में होती, तो अनेक बार पूर्वकृत कुशंकाएँ असत्य क्यों सिद्ध होती हैं! जब-जब भी Intution हो, तब-तब वैसी-वैसी दुर्घटनाएँ सदा ही होनी चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता। अत: इस प्रकार की बातों को नहीं मानना चाहिए। □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

"दयानन्दसन्देश" के पाठकों से विनम्र निवेदन है कि उत्तरी भारत के हिन्दू सम्राटों में–हरसिंह, लखन, मंगल, नरवर और नाहरसिंह राजा हुए हैं। इनके इतिहास के विषय में जानकारी रखने वाला सज्जन निम्न पते पर सूचित करें।

प्रार्थी–**प्रेमनाथ शर्मा**, बी-२७, जनकपुरी
साहिबाबाद (गाजियाबाद)

आपकी पत्रिका में अधिकतर लेख शोधपूर्ण होते हैं एवं सराहनीय हैं। परन्तु जो बात अधिक अखरती वह है तथाकथित विद्वानों के आक्षेपों के समाधानों का विस्तृत विवरण।

प्रकाशचन्द्र सक्सेना
जयपुर

अक्तूबर, ९३ मास की पत्रिका में १८वें पृ० पर कविता छापी है, वह मुझे बहुत अच्छी लगी। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद।

बलवीर सिंह
कतलाहैंडी, करनाल

'सरस-सविता' पत्रिका में 'आर्यसमाज आन्दोलन असफल क्यों?' लेख छपा है, इसका समुचित उत्तर देकर कृतार्थ करें। बहुत ही निरर्थक आक्षेप लगाये हैं।

उपमन्त्री आर्यसमाज
चम्पारण, बिहार

'दयानन्दसन्देश' अगस्त ९३ के अंक में समस्त लेख एक से एक उपयोगी लगे। एतदर्थ बहुत-बहुत धन्यवाद।

रघुनाथ आर्य
गारुलिया, २४ परगना (पं० बंगाल)

यह मासिक पत्रिका अति उत्तम है। इसके द्वारा पाखण्ड का खण्डन निरन्तर होता रहता है। पत्रिका समय पर मिल रही है। 'सत्यार्थप्रकाश का मूल्यांकन' लेख तो बहुत ही अच्छा लगा। आज से 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ने लगा हूँ।

सन्तोषकुमार
सेवाग्राम बस्ती (कानपुर)

❑❑❑

आर्यों का कर्त्तव्य

भूले भटकों को वेदमार्ग पर लाना होगा।

गीत

आर्यों वक्त है कुछ करके दिखाना होगा ।
ऋण दयानन्द का अब तुमको चुकाना होगा ॥ १ ॥
सिर्फ बातों से नहीं काम बनेगा हर्गिज ।
सपना ऋषिराज का साकार बनाना होगा ॥ २ ॥
...चरों का बिछा जाल आज भी देखो ।
ऋषि-सन्देश को घर-घर में पहुँचाना होगा ॥ ३ ॥
ऋषि दयानन्द ने जो काम था तुमको सौंपा ।
भूले-भटकों को वेदमार्ग पर लाना होगा ॥ ४ ॥
...प से अपने ऋषि ने जो लगाया पौधा ।
फूले-फूले उसे सरसब्ज बनाना होगा ॥ ५ ॥
...टे कट जायें बोटियाँ भी तुम्हारी लेकिन ।
सत्य पथ से कदम पीछे न हटाना होगा ॥ ६ ॥
जुल्म से उग्रवादियों के धरा है हिलती ।
उनके चंगुल से देश अपना बचाना होगा ॥ ७ ॥
प्रेम जो तुमसे करे प्रेम कर उससे दूना ।
तुम्हें बर्ताव यथायोग्य निभाना होगा ॥ ८ ॥
खाते भारत के मगर गीत विदेशी गाते ।
ऐसे गद्दारों को भारत से भगाना होगा ॥ ९ ॥
खत्म हो जायें देश से ये मजहबी झगड़े ।
संगठन का तुम्हें फिर बिगुल बजाना होगा ॥ १० ॥
कभी "कवि इन्द्र" न तुम हारकर हिम्मत बैठो ।
जागना तुमको और दुनिया को जगाना होगा ॥ ११ ॥

❑❑❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारविधि के विरुद्ध अनर्गल निर्णय व मान्यताएँ

आचार्य वेदभूषण,
अधिष्ठाता–अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान, हैदराबाद

डॉ० ज्वलन्तकुमार शास्त्री अमेठी का एक लेख "दयानन्दसन्देश" के अक्तूबर ९३ के अंक में पृष्ठ संख्या १९ पर छपा है। आपने इस लेख में स्वयम् अपने को महर्षि दयानन्द का एक अनुयायी एवं धर्मार्य सभा का सदस्य होने की बात लिखी है। इस नाते आपने संस्कारविधि के विरुद्ध प्रचारित कुछ अवधारणाओं के निराकरण का प्रयत्न अपने इस लेख द्वारा किया है।

प्रिय ज्वलन्तकुमार जी का यह प्रयत्न अनुकरणीय है कि जो संस्कारविधि के विरुद्ध अपनी मान्यताओं का प्रचार कर रहे हैं उनका विरोध अवश्य किया जाना चाहिए और जो भी संस्कारविधि के निर्देशों के विरुद्ध संस्कारों व यज्ञों की पद्धति में घुसपैठ कर महर्षि निर्दिष्ट विधि से खिलवाड़ कर रहे हैं उनका हर स्तर पर खण्डन और विरोध किया जाना चाहिए। आर्यसमाज के पदों के भी अयोग्य ऐसे लोगों को घोषित किया जाना चाहिए।

संस्कारविधि का द्वितीय संस्करण जिसे स्वयं महर्षि ने संशोधित किया था उसे प्रामाणिक माना जाना चाहिए। उसमें प्रक्षिप्त आदि के मिथ्या आरोप सर्वथा अमान्य किए जाने चाहिए।

क्या प्रिय ज्वलन्तकुमार जी इस प्रकार का साहस दर्शाने के लिए समुद्यत हैं?

आपने महर्षि पतंजलि का एक वचन भी उद्धृत किया है कि–जिसका हिन्दी अर्थ प्रस्तुत करते हुए आपने लिखा है कि–व्याख्यान द्वारा विशेष बोध होता है। सन्देह से आर्ष वचन को अप्रामाणिक नहीं बताना चाहिए। हम इसके हृदय से समर्थक हैं कि–संस्कारविधि एक आर्ष ग्रन्थ है। उसमें लिखे वचनों को मानना हमारा कर्तव्य है। इसमें प्रदर्शित विधि को बिगाड़ने का प्रयास करना घोर अपराध है। आपने अच्छे तर्क देकर 'अयं त इध्म आत्मा' इस मंत्र का समिदाधान में विनियोजन उचित दर्शाया है हम प्रिय ज्वलन्त जी के इस तर्क का पूर्ण समर्थन करते हैं।

इस मंत्र की समिदाधान में सम्पुष्टि करने के उपरान्त आप पं० वेदभूषण जी पर अपने ही द्वारा संपुष्ट ऊपर के विचारों के प्रतिकूल बरस पड़े हैं।

इससे लेख में परस्पर आपके अपने ही प्रतिपादित पक्ष को आघात लग रहा है।

हमारा जो पक्ष है उसे वास्तविकता से हट कर सीमित परिप्रेक्ष्य में डॉ० ज्वलन्त जी ने प्रस्तुत किया है। हमारी बहुत दृढ़ धारणा है कि–संस्कारविधि एक आर्ष ग्रन्थ है। इसका दूसरा संस्करण प्रामाणिक है व महर्षि द्वारा ही संशोधित उसके आधार पर ब्रह्मचारियों व वानप्रस्थियों को तथा गृहस्थाश्रमियों को नित्य करने योग्य **दैनिक यज्ञ में पाँच बार ओम् अयन्त इध्म आत्मा० इस मंत्र से पाँच घृताहुति का विधान महर्षि ने स्पष्ट रूप से** गृहस्थाश्रम प्रकरण में जहाँ पंच महायज्ञों की संशोधित शुद्ध विधि दी है, नहीं है।

यहाँ ब्रह्मचारी प्रजाकाम होता है या नहीं, यह प्रश्न नहीं है। हमारा स्पष्ट मत है कि–प्रत्येक संस्कार में व दैनिक पंच महायज्ञविधि में महर्षि ने जैसी विधि का निर्देश दिया है उसी का अनुकरण कर हमें संस्कारों की व यज्ञ की विधि करनी चाहिए। जो इसे मानेगा वह महर्षि का अनुयायी माना जाएगा। जो महर्षि की विधि के प्रतिकूल चलेगा वह महर्षि का अनुयायी कहाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

यह ठीक है हमने महर्षि के निर्देश को यथार्थ व व्यावहारिक सिद्ध करने के लिए प्रजाकाम वाला तर्क भी दिया है। प्रजाकाम कौन होता है कौन नहीं यह बात विवाद का विषय नहीं है। जिसे प्रजा-कामना होगी वह प्रजाकाम माना जाएगा। न होगी तो नहीं माना जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनावश्यक विषय उठाकर सत्य विधि पर पर्दा डालने का यत्न न धर्म कहाता है न आर्योचित।

क्या किसी भी व्यक्ति में यह साहस है कि-वह महर्षि के स्पष्ट निर्देश को झुठला दे। सामान्य प्रकरण की विधि संस्कारों व यज्ञों में ज्यों की त्यों नहीं होगी। इस सामान्य प्रकरण के आधार पर दैनिक यज्ञ में सब संस्कारों में जो पाँच घृताहुति देने का आग्रह करता है उसने संस्कारविधि को समझा ही नहीं। देखिए सामान्य प्रकरण के आरंभ में ही महर्षि का स्पष्ट निर्देश है। महर्षि लिखते हैं-

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिए। परन्तु जहाँ कहीं विशेष होगा वहाँ सूचना कर दी जाएगी कि यहाँ पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना और इतना अधिक करना स्थान-स्थान में जना दिया जाएगा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सब संस्कारों और यज्ञों में क्या-क्या करना है का स्पष्ट निर्देश कर दिया है जिससे न करने का निर्देश भी स्पष्ट हो जाता है। हम अपनी सार्वदेशिक धर्मार्य सभा से यह अपेक्षा रखते हैं कि-कम से कम वह महर्षि के विधि-विधानों की ठीक-ठीक रक्षा करेगी।

जब हमने संध्या में से अमृतोऽपस्तरणमसि से आचमन का विधान हटा दिया और सामान्य प्रकरण से आचमन का विधान हटाकर विश्वानि देव सवितर्० से पूर्व डाल दिया। इसी प्रवृत्ति से आज हर कोई विधि को तोड़ने-मरोड़ने का साहस कर रहा है। यह सारा दोष अप्रत्यक्ष रूप से हमारा ही है जो एक ओर अपने को महर्षि का अनुयायी कहते हैं। संस्कारविधि का समर्थन करते हैं और दूसरी ओर उसके प्रतिकूल अवैज्ञानिक व अव्यावहारिक परिवर्तन भी कर देते हैं।

अतः हमारे नाम का उल्लेख कर भ्रम फैलाना ठीक नहीं है। हम पूर्वाग्रह रहित होकर महर्षि के निर्देश को स्वीकार करने के लिए सदा समुद्यत हैं।

विशेष यज्ञों का सारा विधान कर्माश्रम गृहस्थाश्रम से ही सम्बन्ध रखता है।

वेदारंभ संस्कार में स्पष्ट रूप से ब्रह्मचारी को गृहस्थाश्रम प्रकरण में लिखी विधि के अनुसार संध्या व दैनिक अग्निहोत्र करने का स्पष्ट निर्देश है। ऐसी स्थिति में दैनिक यज्ञ में पाँच घृताहुति देने की वकालत अपने को महर्षि का अनुयायी बतला कर करना कहाँ तक उचित है विचारिए।

वानप्रस्थ में केवल पंचयज्ञ करने के विधान में पंच महायज्ञविधि भी संस्कारविधि के गृहस्थाश्रम प्रकरण में ही लिखी है। उसमें भी महर्षि ने पाँच घृताहुति का निर्देश नहीं किया। अतः ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ द्वारा पाँच घृताहुति देने का प्रश्न ही नहीं उठता। अब आप ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ को प्रजाकाम सिद्ध कर उसे इन मंत्रों से पाँच घृताहुति दिलाने का दुराग्रह मात्र कर रहे हैं। क्या यह आचरण महर्षि के अनुयायी होने का प्रमाण बन सकता है? कदापि नहीं। महर्षि द्वारा ज्वलंत रूप में दिए गए निर्देशों को तोड़ना-मरोड़ना प्रिय ज्वलंत जी शोभादायक नहीं है। अतः हमें विश्वास है कि आप भविष्य में ऐसे भ्रम फैलाने वाले लेख नहीं लिखेंगे।

इन पाँच घृताहुतियों का विधान संस्कारविधि में किस-किस संस्कार व यज्ञ में महर्षि ने किया है, हम एक स्वतन्त्र लेख संस्कारविधि के आधार पर सप्रमाण लिखेंगे जिससे पाठकों को यह स्पष्ट हो जाएगा कि हम केवल महर्षि के पक्ष को यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें हमारी निजी कोई कल्पना या दुराग्रह नहीं है।

हम समूचे आर्य विद्वानों, आर्य स्वाध्यायशील सज्जनों से स्नेह भरा अनुरोध करेंगे कि संस्कारविधि को आद्योपान्त पढ़ने की कृपा करें और उस पर गहन चिन्तन करें। चिन्तन से जो पक्ष यथार्थ में उभरेगा उसे मानिए न हमारी मानिए न अन्य किसी की। केवल देव दयानन्द की बात को हृदय से स्वीकार कीजिए।

इससे यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि प्रच्छन्न रूप में कौन-कौन संस्कारविधि की विधि को बिगाड़ रहे हैं और कैसे-कैसे अनर्गल प्रचार व प्रहार कर रहे हैं। ओं शम्। ❑❑❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगेश्वर श्रीकृष्ण

के जीवन की कर्तव्यबोधक घटनाएँ

स्वामी विवेकानन्द सरस्वती
प्रभाताश्रम, मेरठ

योगेश्वर श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति में इस प्रकार अनुस्यूत (ओत-प्रोत) हैं कि उनके बिना भारतीय संस्कृति की संकल्पना भी नहीं की जा सकती। इसका एकमात्र कारण यही है कि उनका सम्पूर्ण जीवन ही इस प्रकार के व्यवहारों, कार्यों एवं विचारों से परिपूर्ण है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी विषम परिस्थिति में उनके जीवन से अपने कर्तव्य का दिशाबोध प्राप्त करके कर्तव्यविमूढ़ता की अवस्था से सहज में ही मुक्त होकर स्वलक्ष्य साधना में विकल्पहीन होकर संलग्न हो सकता है। गोचारण, विद्याध्ययन, गुरुसेवा से लेकर माता-पिता पर्यन्त पारिवारिक सम्बन्धिजन एवम् अपने सखाओं की सुरक्षा तथा परिपालन उन्होंने किस दृढ़ता एवं विनम्रता से किया, यह उनके जीवन से स्पष्ट परिलक्षित होता है। अपने युग के सर्वाधिक विद्वान्, नीतिमान् तथा महारथी होते हुए भी महाभारत युद्ध में अपने प्रिय सखा अर्जुन का सारथि बनना और उस समय में सारथि के समस्त शिष्टाचारों का पालन करना, यह उन्हीं जैसे व्यक्ति के अन्दर सन्दृष्ट होता है। अश्वों की सेवा से लेकर रथ पर बैठने एवम् उतरने के सामान्य शिष्टाचार तथा अर्जुन की आज्ञानुसार रथ को चलाने आदि तक के व्यवहार में किसी प्रकार की न्यूनता न आने देना लोकपूज्य होते हुए भी सम्बन्ध में बड़े होने के कारण धर्मराज युधिष्ठिर को पैर छूकर प्रणाम करना एवम् अपने बड़े भाई बलराम के अग्रजत्व का ध्यान रखना, ये सभी कुछ उनके जीवन के इतने उदात्त पक्ष हैं जो नियम पालन में उनको सबसे विशेषित कर पृथक् कर देते हैं। जीवन में सत्य और धर्म का उन्होंने इतना पालन किया था कि अश्वमेध यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए जब पाण्डव हिमालय में धन लेने के लिए गये, तभी उनकी अनुपस्थिति में अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ से मृत बालक उत्पन्न हुआ। सारे परिवार में हाहाकार मच गया, क्योंकि वंश का एकमात्र अंकुर वही शेष था। उस समय कुन्ती के रो-रोकर निवेदन करने पर प्रसूति-गृह में ही जाकर मृत बालक को अपने हाथ में लेकर श्रीकृष्ण का उत्तरा से यह कहना–

> **न ब्रवीम्युत्तरे! मिथ्या, सत्यमेतद् भविष्यति।**
> **अहं संजीवयाम्येनं, पश्यतां सर्वदेहिनाम्॥**
> **नोक्तं पूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन।**
> **न च युद्धात् परावृत्तस्तथा संजीवतामयम्॥**
> **यथा सत्यञ्च धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ।**
> **तथा मृतः शिशुरयं जीवतादभिमन्युजः॥**
> **यथा कंसश्च केशी च धर्मेण निहतौ मया।**
> **तेन सत्येन बालोऽयं पुनः संजीवतामिह॥**

आश्वमेधिक पर्व अ० ६९

अर्थात्–उत्तरे! मैं झूठ नहीं बोलता हूँ। यह सत्य ही होगा कि मैं सबके देखते-देखते इस बालक को जीवित कर दूँगा। मैंने परिहास में कभी झूठ नहीं बोला है, न ही युद्ध छोड़कर भागा हूँ, उससे यह बालक जीवित हो जाए। यदि कंस और केशी का वध मैंने धर्म से किया था तो यह मृत बालक जीवित हो जाए।

महाभारतकार कहते हैं कि सब के देखते-देखते बालक में स्पन्दन क्रिया* हुई (शनैः-शनैर्महाराज प्रास्पन्दत सचेतनः) और वह जीवित हो गया। पाण्डव इस घटना के एक मास पश्चात् हिमालय से धन लेकर लौटे। यह घटना उनकी योगविभूतियों से सम्पन्नता को सिद्ध करती है।

* यह कथन सृष्टि-नियम के विरुद्ध होने से सत्य नहीं है। (सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्' योग दर्शन के इस सूत्र की विभूति भी उनके अन्दर दृष्टिगोचर होती है। कौरव सभा में अपमान के पश्चात् पाण्डवों के वन में चले जाने पर जब श्रीकृष्ण वन में ही उनसे मिलने गये तो श्रीकृष्ण से द्रौपदी ने अपने अपमान की दुःखभरी कहानी सुनाते हुए कहा–

नैव मे पतयः सन्ति, न पुत्राः न च बान्धवाः।
न भ्रातरो न च पिता, नैव त्वं मधुसूदनः॥

अर्थात्–मेरे पति, पुत्र, बान्धव, भाई और पिता भी मेरे लिए नहीं रहे। हे मधुसूदन! आप भी अब मेरे लिए नहीं रहे।

इसको सुनकर श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार वेदनापूर्ण हृदय वाली द्रौपदी को आश्वस्त किया वह द्रष्टव्य है–

रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येवं येषां क्रुद्धासि भामिनि॥ १२८॥
सत्यं ते प्रति जानामि, राज्ञां राज्ञी भविष्यसि।
पतेद् द्यौर्हिमवान् शीर्येत् पृथिवी शकलीभवेत्॥१३०॥
शुष्येत् तोयनिधिः कृष्णे! न मे मोघं वचो भवेत्।

अर्थात् भामिनि! आज तुम जिन पर क्रुद्ध हो, उनकी स्त्रियाँ भी इसी प्रकार रोएंगी। मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम राजाओं की रानी बनोगी। चाहे द्युलोक गिर जाए, हिमालय नष्ट हो जाए, पृथिवी टुकड़े-टुकड़े हो जाए और हे कृष्णे! चाहे समुद्र भी सूख जाए, लेकिन मेरा यह वचन निष्फल नहीं हो सकता।

इस प्रकार आत्मविश्वास से परिपूर्ण आश्वासन उन जैसे तेजस्वी पराक्रमी व्यक्ति के ही द्वारा दिया जाना सम्भव था। इतना ही नहीं, दूत बनकर कौरव सभा में जब वे गये तो दुर्योधन द्वारा बन्दी बनाए जाने के षड्यन्त्र की सूचना उन्हें सात्यकि के द्वारा मिली। उस समय सभा मध्य में सब के समक्ष गरजते हुए उन्होंने कहा कि–

धृतराष्ट्र! तुम्हारा पुत्र मदान्ध हो चुका है और मोहवश तुम उसे रोक नहीं पा रहे हो। इसलिए उसके ऊपर अब मृत्यु नाच रही है। यदि ऐसा है तो आज मैं अकेले ही समस्त कौरवों का वध करके धर्मराज युधिष्ठिर का सारा कार्य सम्पन्न कर उन्हें राजगद्दी पर बैठा दूँगा।''

इस सिंह गर्जना से सारी सभा भयभीत एवं स्तब्ध रह गयी। दुर्योधन के द्वारा मिले भोजन के निमन्त्रण को उन्होंने कितनी बुद्धिमत्ता एवं युक्ति से अस्वीकार किया जिसको सुनकर स्वयं दुर्योधन भी अवाक् रह गया–

सम्प्रीत्यान्नानि भोज्यानि आपदन्नानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन्! न चैवापद्गता वयम्॥

यह स्वाभिमान एवम् आत्मगौरव की सुरक्षा हमारे लिए अनुकरणीय है। राजसूय यज्ञ में सभी अतिथियों के पाद-प्रक्षालन एवम् उच्छिष्ट पात्र-प्रक्षालन की सेवा तो विश्व के इतिहास में अद्भुत एवम् अनहोनी सी प्रतीत होती है। इस प्रकार उनके जीवन की अनेक घटनाएं हमें तथा हमारे राजनेताओं को कर्तव्य बोध कराने के लिए पर्याप्त हैं।

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक सात मर्यादाएँ

डॉ० दिनेशचन्द्र
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

विधाता की इस सृष्टि में विविधता देखने को मिलती है। पदे-पदे परिवार, समाज, संस्था और देश अपने-अपने नियम, कानून व्यवस्था एवं सिद्धान्तों में आबद्ध दीखते हैं। नियमों के अनुसार समाज फलता-फूलता है। नियम-रहित समाज जंगली और उच्छृङ्खल हो जाता है और वहाँ अराजकतत्त्व स्वत: ही पैदा हो जाते हैं। वेद उन नियमों को 'मर्यादा' नाम से अभिहित करता है। आचार्य यास्क ने मर्यादा को सीमा का पर्यायवाची शब्द माना है, और इसका अर्थ इस प्रकार किया है-'सीमा मर्यादा। विसीव्यति देशाविति'।[१] एक भाष्यकार के अनुसार-'मर्यादा' उसको कहते हैं जो मानव का नाश करे या खाये।[२] श्रीपाद डॉ० सातवलेकर के अनुसार पाप से बचने की व्यवस्था को 'मर्यादा' कहते हैं।[३]

मनुष्य इस सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट[४], सुव्यवस्थित और अङ्ग-प्रत्यङ्गों से सुघटित (मर्यादित) ईश्वर की कृति है। वह मनुष्य समाज की एक इकाई है। उसको भी अपनी मर्यादा (सीमा) में रहना पड़ता है। जो व्यक्ति मर्यादा में रहता है, नियमों में चलता है, वही मनुष्य कहलाता है। जिस प्रकार नदी का जल जब तक अपने तटों के मध्य में, मर्यादा में बहता है तभी तक वह जीवनदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकृत होता है। इसी प्रकार जब व्यक्ति सामाजिक सर्वहितकारी नियमों के पालन में अनुशासित होकर कार्य करता है तभी वह अपने जीवन को तो महान् बनाता ही है बल्कि अपने समाज, देश और जाति को भी ऊँचा उठाता है। वेद के अनुसार सदाचार की ये मर्यादाएँ सात हैं-

"सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ॥"

(ऋ० १०।५।६; अथर्व० ५।१।६)

अर्थात्, तत्त्वदर्शी ज्ञानियों ने सात मर्यादाएँ (पाप से बचने की व्यवस्थाएँ) बनाई हैं। उनमें से एक का भी जो उल्लंघन करता है, वह पापी बनता है और जो मनुष्य सातों मर्यादाओं से बचता हुआ पाप का भागी नहीं बनता, वह निश्चय ही जीवन के स्तम्भ, उच्चतम व्यक्ति के धाम और जहाँ अनेक मार्गों की विसृष्टि नहीं, ऐसे सर्वाधार परमेश्वर में और धारक शक्तियों में स्थित होता है।

भाष्यकारों ने इन सात मर्यादाओं की भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है। आ० यास्क ने निरुक्त[५] में इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए इन मर्यादाओं को इस प्रकार परिगणित किया है-"स्तेयं, तल्पारोहणं, ब्रह्महत्यां, भ्रूणहत्यां, सुरापानं, दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवां, पातकेऽनृतोद्यम् इति।" अर्थात्, (१) चोरी न करना, (२) व्यभिचार न करना, (३) ब्रह्महत्या न करना, (४) गर्भपात (भ्रूणहत्या) न करना, (५) मद्यपान न करना, (६) किसी बुरे काम की आदत न पड़ना, और (७) पाप हो जाने पर झूठ न बोलना।

सायणाचार्य्य ने अपने ऋग्वेदभाष्य में इस मन्त्र का अर्थ करते हुए एक तो सात मर्यादाएँ वे ही स्वीकार की हैं जो आ० यास्क ने लिखी हैं। दूसरे मनु आदि ने अपने शास्त्रों में जो त्यागने योग्य कामज और क्रोधज दोष लिखे हैं उनमें से प्रधान सात को छाँटकर उनके परित्याग को सात मर्यादाएँ माना है।[६] वे काम और क्रोध से पैदा होने वाले सात दोष जिनसे हमेशा बचना चाहिये इस प्रकार हैं[७]-(१) मद्य पीना, (२) जुआ खेलना, (३) स्त्रियों में अत्यासक्ति, (४) शिकार खेलना (प्राणियों की हिंसा करना, मांस-भक्षण करना), (५) निरपराध को दण्ड देना, (६) कठोर वाणी बोलना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (७) दूसरों पर मिथ्या दोषाक्षेप करना।

आचार्य उद्गीथ ८ ने यास्काचार्य द्वारा परिगणित और वेङ्कट ९ ने मनु महाराज द्वारा प्रतिपादित मर्यादाएँ ही स्वीकार कीं हैं। चाहे हम यास्क का अर्थ स्वीकार करें और चाहे सायण, उद्गीथ एवं वेङ्कट का। सभी ने जो मर्यादाएँ प्रतिपादित की हैं वे पूरी तरह से अनुकरणीय एवं पालन करने योग्य हैं। उनमें से किसी एक का उल्लंघन करना भी हमारे जीवन को घोर पापी बना देता है। उनमें से अधिकांश के या सब के उल्लङ्घन का तो कहना ही क्या। आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति के शब्दों में-तब तो मनुष्य का जीवन पाप से सना हुआ हो जायेगा। १० इन मर्यादाओं का उल्लङ्घन मानव को अधोगति की ओर ले जाने वाला है। जिससे जीवन का घात हो सकता है। मर्यादाओं का पालन करने का तात्पर्य संयम से रहना है। संयम से जीवन व्यतीत करने से जीवन का आधार शक्तिशाली होता है और उत्तम दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ जो धर्मानुकूल व्यवहार करके अपने जीवन का आधारस्तम्भ बनाता है, वह सबके लिए उपमा देने योग्य हो जाता है। यहाँ हम निम्न मर्यादाओं पर विस्तार से विचार करते हैं-

पहली मर्यादा है-चोरी न करना, दूसरों का धन न चुराना। जो अपने अधिकार में वस्तु है केवल उसका ही उपभोग करना। दूसरों की वस्तु ढेले के समान देखनी और समझनी चाहिए। जैसा कि कहा भी है-'परद्रव्येषु लोष्ठवत्।' 'मागृधः कस्यस्विद्धनम्'-के अनुसार-दूसरे के धन को ललचाई दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। यदि मार्ग में तुम जा रहे हो, सड़क पर सौ रुपये के नोट पड़े हैं। उठाके जेब में रख लेते हो। यह चोरी हुई। तुम्हारा कर्त्तव्य है जिसके गिरे हों, उसका पता लगाकर पहुँचा दो। धर्मशास्त्र कहते हैं-

"अन्यायेनागता लक्ष्मीः, खद्योत इव दीप्यते।
क्षणं प्रकाश्य वस्तूनि निर्वाणं केवलं तमः॥"

अन्याय से आया धन खद्योत (जुगनू) की न्याईं चमकता है, परन्तु थोड़ी देर तक प्रकाशकर पुनः अन्धेरा ही जाता है। अतः-

"अकृत्वा परसंतापं, अगत्वा खलु नम्रताम्।
असत्यञ्च सताम्मार्गम्, यत्स्वल्पं च तद्वै वसु॥"

किसी को कष्ट न देकर, दुर्जनों के सामने न झुककर और सन्मार्ग को न छोड़कर, जो थोड़ा भी कमाया जाता है, वही बहुत है।

योगदर्शन के अनुसार 'अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्। (साधनपाद-३।७)-चोरी न करने (की मर्यादा) में स्थित हो जाने पर, सब रत्न प्राप्त होने लगते हैं। संक्षेप में अस्तेय = चोरी न करने का अर्थ यह है कि मन, वाणी और कर्म द्वारा चोरी न करना। मनुष्य अनुचित लोभ और राग न करे, चोरी न करे, डाका न डाले, घूस न लेवे, चोर चालाकी न करे, धोखा न देवे। इन सभी तथा इस प्रकार के कुकर्मों से बचना ही सात मर्यादाओं का पालन करना है। इनमें से पहली मर्यादा 'अस्तेय' है।

दूसरी मर्यादा है-व्यभिचार न करना, सदाचार का पालन करना। "मातृवत्परदारेषु"-दूसरी स्त्रियों को माता के समान देखना चाहिए। यदि यह मर्यादा न हो, तो समाज में चरित्रहीनता फैल जावे। ऋग्वेद में दुराचारी की बड़े ही कठोर शब्दों में निन्दा की गई है-"मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः" (ऋ० ७।२१।५) अर्थात्, व्यभिचारी पुरुष तथा व्यभिचारिणी स्त्री सत्यधर्म यज्ञ के अधिकारी नहीं बनते अथवा व्यभिचारी हमारे यज्ञ में न आवे। 'अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत्।' (ऋ० १०।९९।३)-वह कहीं न रुकने वाला (अनर्वा) इन्द्र व्यभिचारियों को मारकर, और उनके अनेक द्वारों वाले गढ़ों को तोड़कर धनों को दबा लेता है।' अतः धर्मशास्त्रों ने कहा है-

नहीदृशमनायुष्यं लोके भवति किञ्चन।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥
(मनु० ४।१३४)

अर्थात्, संसार में आयु के घटाने वाला और कोई ऐसा पाप-कर्म नहीं है, जैसा कि परस्त्री-सेवन।

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्षणम्।
सुहृदश्च परित्यागः त्रयो दोषाः क्षयावहाः॥

दूसरों के धन को छीनना, दूसरों की स्त्रियों से संसर्ग करना और सुहृदों को त्यागना-ये तीनों दोष नाश करने वाले होते हैं। अतः पुरुष को पुरुषोत्तम बनने के लिए आवश्यक है कि वह मन से किसी को-

त्रीण्येव पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न द्रुह्येच्चैव दद्याच्च सत्यं चैव परं वदेत्॥

धोखा न दे, शरीर से दान करे और सदा सत्य वक्ता बने।

मनु महाराज ने व्यभिचारिणी स्त्री और परस्त्रीगामी व्यभिचारी पुरुष दोनों को ही महापापी माना है। ऐसे पुरुष और स्त्री अगले जन्मों में घोर नीच योनियों में जन्म लेकर बड़े भारी कष्ट भोगते हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि व्यभिचारी पुरुष अगले जन्म में ब्रह्मराक्षस[११] (प्रेतयोनिवाला ब्राह्मण) और व्यभिचारिणी स्त्री गीदड़ की योनि[१२] प्राप्त करती है, तथा परस्त्री को लोभ देकर बलात्कार करना[१३] तथा किसी कन्या को दूषित करना अर्थात् उससे सम्भोग करना[१४] महापाप है।

तीसरी मर्यादा है सुरापान (मद्यपान) न करना। धर्मशास्त्रों के अनुसार सुरापान महापाप है।[१५] क्योंकि सुरा पीने के पश्चात् मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, और बुद्धि व शरीर उसके नियन्त्रण में नहीं रहते, जिसके फलस्वरूप उसके मन में कुविचार आते हैं, वाणी अपशब्द बोलती है, तथा वह कुकर्म करने लगता है। मनुष्य पवित्र कार्य तभी कर सकता है, जब उसकी बुद्धि पवित्र हो तथा उसका शरीर व मन उसके नियन्त्रण में हो। परन्तु मदिरापान के बाद तो मन, बुद्धि और शरीर तीनों ही कुमार्गी हो जाते हैं, अपवित्र हो जाते हैं, तथा नियन्त्रण से बाहर हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्य कभी सत्कर्म नहीं कर सकता। वह जो कुछ भी सोचेगा, जो कुछ भी कहेगा और जो कुछ भी करेगा-वह सब अपवित्र होगा, कुकर्म होगा। अत: पाप होगा। गुरु नानकदेव ने मदिरापान के सम्बन्ध में कहा है-

'माड़ा नशा शराब दा, उतर जाए परभात।
नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन रात॥

इस प्रकार निष्कर्ष यह है कि चोरी करने वाले, मदिरा पीने वाले और वेश्यावृत्ति करने वाले महापापी हैं।[१६] प्रस्तुत वेद-मन्त्र के अनुसार तो उपरोक्त सप्त मर्यादाओं में से यदि एक का भी कोई उल्लंघन करता है तो वह पापी कहलाता है।

चतुर्थ मर्यादा है जुआ न खेलना। वेद का उपदेश है कि "अक्षैर्मा दीव्य:, कृषिमित्कृषस्व" (ऋ० १०.३४.१३)

-'पासों से मत खेलू, प्रत्युत खेती करके ईमानदारी से कमा और खेल।' जुआरी अपना सब कुछ लुटा देता है। युधिष्ठिर और नल आदि राजाओं के राज्य, स्त्री आदि जुए के कारण लुटे। जुए से बेईमानी बढ़ती है। जुआ खेलना महापाप है। जुआरी मनुष्य का सारा परिवार दु:खी रहता है। इस कारण जुआ कभी नहीं खेलना चाहिए।

पाँचवीं मर्यादा है-कठोर वाणी न बोलना। मनुस्मृति में बताया गया है कि कठोर वाणी का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिए। सत्य भी प्रिय ही बोलना चाहिए-

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।'

(मनु० ४.१३८)

सन्त कबीर ने कहा है-

'ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय॥

हिन्दी के एक अन्य कवि ने दृष्टान्त देकर समझाया है कि-

'कौव्वा किसका धन हरे, कोयल किसको देय।
मीठे वचन उच्चारकर जग वश में कर लेय॥'

यह मधुर वाणी का ही प्रभाव है कि पत्थर दिल पुरुष भी पिघल जाते हैं। तभी तो इसकी महिमा में कहा गया है-

'पत्थर को पिघलाकर मोम बनाने वाली।
मुँह खोलो तो तुम भी मीठी बोली बोलो प्यारे॥'

वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं जिनमें कठोर वाणी को छोड़कर मधुर वाणी प्राप्त करने की प्रार्थना है। जैसे-'वाचं वदत भद्रया'-वाणी भद्र बोलो। 'वाचस्पते! वाचं न: स्वदतु-हे वाणी के पति! हमारी वाणी मधुर हो। 'वाचं वदामि मधुमत्'-मैं वाणी से मधुर बोलूँ। 'स्वाद्मानं वाच:'-वाणी हमारी मिठास से भरी हो। 'मधुमतीं वाचं वदतु' (अथर्व० ३.३०.२) वह मधुर वाणी बोले।

महाराज भर्तृहरि के अनुसार वाणी एक ऐसा आभूषण है, जो कभी नष्ट नहीं होता। संस्कृत वाणी ही पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अलङ्कृत करती है–

"केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं, हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं, नालंकृता मूर्धजा।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं, या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम्॥

छठी और सातवीं मर्यादाएँ हैं–बारंबार दुराचार न करना, और पाप होने पर असत्य बोलकर उसको न छिपाना। यास्क प्रतिपादित उपरोक्त सात मर्यादाओं में ये दोनों बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य के हाथ से किसी न किसी कारण पाप हुआ, तो वह यदि आगे बचने का यत्न करेगा, तो बहुत हानि की संभावना नहीं है। परन्तु यदि वह बारंबार दण्ड मिलने या मना करने पर भी वही कुकर्म फिर करने लगा, तो उसकी अवनति की सीमा नहीं रह सकती। इसलिए उन्नति चाहने वाले लोगों को उचित है कि वे अज्ञान से एक बार दोषमय आचरण हुआ भी, तो उसको बारंबार न करें और जो कुछ दुराचार अपनी असावधानी से होगा, तो उसको असत्य बोलकर छिपाने का भी यत्न न करें। क्योंकि ऐसा करने से वह कलंक बड़ा गहरा हो जाता है और इससे अधिक पाप होता जाता है। इसलिए दोष होने पर सत्य बोलकर उसको यथार्थ रूप में प्रकट करना ही उचित है। मनुष्य की उन्नति के लिए ये दोनों मर्यादाएँ अत्यन्त सहायकारी हैं, इसलिए कोई मनुष्य किसी भी कारण इनका उल्लंघन न करे।

प्रमाण–

१. निरुक्त १।६
२. देखो दयानन्द संस्थान, दिल्ली से प्रकाशित ऋग्वेद १०।५।६ का भाष्य।
३. देखो अथर्ववेद ५।१।६ का सुबोध भाष्य
४. नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्। (महाभारत)
५. नि० ६।२७
६. कामजेभ्यः क्रोधजेभ्यश्चोद्धृताः पानमक्षाः स्त्रियो मृगया दण्डः पारुष्यमन्यदूषणमिति सप्त मर्यादाः। यद्वा। स्तेयं गुरुतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां सुरापानं दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः-पुनः सेवां पातकेऽनृतोद्यम्'। (नि० ६।२७) इति निरुक्ते निर्दिष्टाः सप्तमर्यादाः। (द्र०ऋ० १०।५।६, सायण भाष्य)।
७. पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥
मनु० ७।५०
दण्डस्य पातनं चैव वाक्यपारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा॥
मनु० ७।५१
८. सप्त मर्यादाः......... स्तेयं तल्पारोहणं ब्रह्महत्यां। (या० ६।२७) इति। द्र०-ऋ० १०।५।६ पर उद्गीथ भाष्य।
९. कामजेभ्यः क्रोधजेभ्यश्चोद्धृताः 'पानम् अक्षाः स्त्रियो मृगया दण्ड-पारुष्यं वाक्पारुष्यम् अर्थदूषणम् (मनु० ७।४८, ५०) इति सप्त मर्यादाः..........। (देखो, ऋ० १०।५।६ पर वेङ्कट भाष्य।
१०. वरुण की नौका, द्वि० भाग, पृ० १७३
११. मनु० १२।६०
१२. वही, ६।३०
१३. वही, ११।५९
१४. वही, ११।६१
१५. वही, ११।५४
१६. ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वाङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥
(मनु० ११।५४)
१७. सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे।
१८. अत्रासत ऋषयः सप्तसाकम्।
१९. ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः। (नि० २।३)
२०. सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तम्यात्मनि। (नि० १२।४)
आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति की व्याख्या में इतना विशेष है कि उन्होंने 'विद्या' के स्थान पर आत्मा का ग्रहण किया है।
२१. वरुण की नौका, द्वि० भाग, पृ० १८२

❑❑❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

तुलसीकृत रामायण समीक्षा

पं० छाजूराम शर्मा शास्त्री, विद्यावाचस्पति

वेदों में ईश्वर के अनेक नाम आये हैं। परन्तु राम का ईश्वर नाम कहीं नहीं लिखा। तुलसीदास जी ने आँखें बन्द करके अविचार पूर्वक अपने इष्टदेव राम का नाम वेदों में बताकर राम को ईश्वरावतार सिद्ध करने का कुप्रयास किया है।

यदि थोड़ी देर को वेदों में राम का नाम मान भी लें तो वेदों में इतिहास मानना पड़ेगा। जो कि ईश्वरवादियों के सिद्धान्त के विरुद्ध है। जब वेदों में इतिहास स्वीकार किया गया तो यह बात स्वतः असिद्ध हो जाती है कि वेद ईश्वरीय अनादि ज्ञान है।

तुलसीदास जी की रामायण को गम्भीरता से देखने पर पता चलता है कि बहुत से स्थलों को उन्होंने जानबूझ कर इसलिए छोड़ दिया है कि उनसे राम की महानता घटती है। जैसे–राम का सरयू नदी में डूब कर अपना जीवन समाप्त करना, इसी प्रकार कुछ अयोध्यावासियों का भी सरयू में डूब मरना, सीता का बार-बार अग्नि परीक्षा से दुःखी होकर आत्महत्या करना, राम द्वारा थोड़े से अपराध पर लक्ष्मण को देश निकाला देना। इत्यादि कई प्रसंग जो वाल्मीकि रामायण में लिखे हैं, उन्होंने छोड़ दिये हैं। उनके स्थान पर अनेक कल्पित आख्यान जोड़ दिये हैं जिनका रामचरित्र से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

तुलसीदास जी मानस में मृतक श्राद्ध की पुष्टि करते हैं। लेकिन वाल्मीकि रामायण में उसका खंडन किया है। वहाँ अयोध्याकाण्ड में जाबाली नाम के विद्वान् ने राम से कहा है–"हे राम! क्या कभी मृतक व्यक्ति भी भोजन कर सकता है? यदि हाँ, तो लोग यात्रा करते समय अपने साथ भोजन क्यों ले जाते हैं? घर पर किसी ब्राह्मण को भोजन करा दें। जिससे यात्रा में गये व्यक्तियों का पेट भर जाय। वस्तुतः मृतक श्राद्ध राम के समय में कहीं प्रचलित नहीं था। बाद में ब्राह्मणों ने अपनी जीविका चालू रखने के लिए रामायण में यह प्रसंग जोड़ दिया। ताकि लोग श्राद्ध करें और हमें भोजन करावें। इसका समर्थन पुराणादि अवैदिक ग्रन्थ ही करते हैं, वेद नहीं, और वाल्मीकि रामायण भी नहीं करती। वहाँ तो सविस्तार इसका खण्डन है। इसीलिए रामायण के कथावाचक तुलसी रामायण का ही प्रचार करते हैं वाल्मीकि का नहीं। तुलसीदास जी ने वाल्मीकि जी को भी घसीटा।

वाल्मीकि जी ने बालकाण्ड में श्रीराम के लिए 'नरम्' शब्द का प्रयोग किया है, उन्हें ब्रह्म का अवतार नहीं लिखा। परन्तु तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में वाल्मीकि जी द्वारा राम को ब्रह्म कहलवाया है।

जब राम वन में भ्रमण करते हुए वाल्मीकि जी के आश्रम पर पहुँचे तो उनसे सत्कृत होकर मुनि से पूछा–"हे मुने! अब हम कहाँ जा कर ठहरें, कोई अच्छा स्थान बताइये। तब मुनि बोले–

पूछेउ मोहि कि रहहु कहँ मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहिं दिखावौं ठाउँ॥

हे राम! आप मुझ से पूछते हो कि हमें स्थान बताओ। मुझे यह कहते बड़ा संकोच हो रहा है। आप कहाँ नहीं हो, वह स्थान बताओ। तब मैं आपको स्थान बताऊँगा।

अर्थात् मुनि के कथन का भाव यह है कि आप तो ब्रह्म हो, सर्वत्र व्यापक हो। आपसे क्या छिपा है।

समीक्षा–तुलसीदास जी ने स्वयं तो सृष्टि नियम के विरुद्ध राम को ब्रह्म का अवतार लिखा ही है। साथ ही वाल्मीकि जी को भी घसीटा है। जबकि राम को वे 'नरम्' शब्द का प्रयोग कर चुके हैं। यह बात नहीं कि उन्होंने वाल्मीकि रामायण को पढ़ा न हो। एक-दो नहीं, अनेक प्रसंगों को तोड़-मरोड़ कर राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपने वैष्णव पन्थ में रंगने का भरसक प्रयत्न किया है और राम को ब्रह्म मान कर भी उनसे शिवलिंग पूजा कराई है। तुलसी जी ने यह विचार नहीं किया कि भविष्य में लोग वाल्मीकि रामायण पढ़ेंगे तो उसके विरुद्ध मेरी कृति को देखकर क्या कहेंगे। उनका अवैज्ञानिक चिन्तन ही हमें उनकी निष्पक्ष आलोचना करने को विवश करता है। उनसे हमारा सिद्धान्त विरोध ही है, व्यक्तिगत नहीं। हमने पाठकों के लिए तुलसीदास जी की रामायण से कुछ ही नमूने रखे हैं। ऐसी सैकड़ों बातें हैं जो विद्या-बुद्धि के विरुद्ध उसमें लिखी गयी हैं।

४०. उत्तरकाण्ड समस्त प्रक्षिप्त है

सभी निष्पक्ष ऐतिहासिक विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि रामायण का उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त है। चाहे वह किसी भी रामायण में जोड़ दिया हो। क्योंकि हम रामायण परिचय में पूर्व विचार कर चुके हैं कि वाल्मीकि जी ने छः काण्डों में ही रामायण समाप्त कर दी थी। जिसके अन्त में उसका माहात्म्य लिख दिया। आगे का इतिहास उन्होंने नहीं लिखा और बहुत काल पश्चात् किसी ने सातवाँ उत्तर काण्ड लिखकर वाल्मीकि जी के नाम से जोड़ दिया। उसमें लिखित श्लोकों तथा वर्णित घटनाओं से मिलावट का स्पष्ट पता चलता है। उससे राम के उज्ज्वल चरित्र पर कलंक लगता है। इस कारण प्रमाण की दृष्टि से वह सातवाँ काण्ड त्याज्य है।

जहाँ वाल्मीकि जी राम को एक शक्तिशाली आदर्श राजा लिखते हैं। वहाँ प्रक्षिप्त काण्ड में राम को विष्णु का अवतार लिखा है। स्वामी दयानन्द जी ने **सत्यार्थ-प्रकाश में ग्रहण योग्य ग्रन्थों की सूची में तुलसीकृत रामायण को नहीं लिया।** वे उसे कपोल-कल्पित एवं मिथ्या ग्रन्थ लिखते हैं। क्योंकि वह समस्त ग्रन्थ पौराणिक असम्भव मान्यताओं से ओतप्रोत है। अविद्वान् ही उसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

ब्रह्मचारी अखिलानन्द जी ने और स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने शुद्ध रामायण लिखी है। उन्होंने सातवें काण्ड का बहिष्कार कर दिया है। तपोभूमि मथुरावालों ने भी इसे निकाल दिया है। वाल्मीकि रामायण बम्बई, मद्रास, कलकत्ता आदि नगरों में भी छप चुकी है। उनमें किसी में छः कांड हैं तो, किसी में सातवां काण्ड भी छाप दिया है। यहाँ तक कि पुराणों के प्रचारक गोरखपुर गीता प्रेस वालों ने भी सातवें काण्ड को प्रक्षिप्त मानकर छोड़ दिया है। इस कांड को मिला देने से रामचरित्र पर कलंक क्यों लगा। इस सम्बन्ध में हम एक पुरानी घटना इस प्रकार सुनते हैं-

घटना अंग्रेजी शासन काल की है। मुसलमानों ने सीता का छिनाला, शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित कराई थी। हिन्दुओं की ओर से न्यायालय में मुसलमानों पर अभियोग चालू कर दिया। मुसलमानों ने अपने कथन की पुष्टि में वाल्मीकि रामायण के सातवें उत्तर काण्ड का प्रमाण देते हुए कहा कि सीता रावण की कैद में एक वर्ष से अधिक समय तक रही। इसलिए लोकापवाद से स्वयं राम ने सीता के चरित्र पर सन्देह व्यक्त किया। इस पर आर्यसमाज के विद्वानों ने छः काण्ड वाली रामायण को उपस्थित करके सातवें काण्ड को अमान्य घोषित कर दिया। तब जा कर वह 'सीता का छिनाला' पुस्तक जब्त करायी गयी।

सातवें काण्ड में सब से बड़ी आपत्तिजनक घटना यह लिख दी है कि राम ने सीता का परित्याग कर दिया था और यह घटना सीता के अयोध्या आने के ढाई वर्ष पश्चात् घटी। उन दिनों सीता जी सगर्भा थीं। सीता परित्याग का प्रक्षिप्त कर्ता ने निम्नलिखित कारण लिखा है-

एक दिन श्रीराम ने गुप्तचरों से पूछा कि नगर के नर-नारी मेरे और लक्ष्मण-सीता के विषय में क्या कुछ चर्चा करते हैं? जो कुछ अनुचित होगा वह प्रजा की सन्तुष्टि के लिए त्याग दिया जायगा।

उन्होंने उत्तर दिया-'महाराज! नगरवासी यह चर्चा करते हैं कि सीता को रावण हर ले गया। लम्बे समय तक सीता रावण के यहाँ रही। फिर भी राम ने सीता को ग्रहण कर लिया। उन्हें उससे कुछ भी घृणा न हुई। अतः अब तो जैसा राजा करेगा वैसा प्रजा भी अनुसरण करेगी। (उत्तरकाण्ड, सर्ग ४३-४४)

इस पर राम ने अपने भाइयों से कहा कि सीता ने अग्नि परीक्षा देकर अपनी पवित्रता का प्रमाण दे दिया है। अतः हमारी दृष्टि में तो सीता पवित्र ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। लेकिन मैं अयोध्यावासियों द्वारा यह निन्दा सहन नहीं कर सकता। इसके लिए सीता को ही नहीं, अपितु मैं अपने जीवन को और तुम सब को भी त्याग सकता हूँ। (उत्तरकाण्ड, सर्ग ४५) अत: हे लक्ष्मण! मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि कल प्रातः काल ही सीता को रथ में बैठाकर तमसा नदी के उस पार निर्जन वन में वाल्मीकि जी के आश्रम के निकट छोड़ आओ। लक्ष्मण ने भाई की आज्ञा का पालन कर दिया। सघन वन में जाकर सीता घबरा कर बोली-'हे लक्ष्मण! इस निर्जन बन में मैं किस प्रकार रहूँगी।' वह पृथिवी पर गिरकर विलाप करने लगी। फिर बोली-'देखो, मेरे पीछे अयोध्या में कोई और अपवाद खड़ा न हो जाय, मैं इस समय गर्भवती हूँ। बात विस्तार से है। अन्त में सीता को वाल्मीकि जी अपने आश्रम में ले गये हैं। फिर कुछ महीनों बाद वहीं सीता के लव और कुश दो पुत्र जन्मे हैं।

द्रष्टव्य है कि एक ओर तो राम सीता को पवित्र घोषित करते हुए 'नहि हातुमियं शक्या' सीता त्यागने योग्य नहीं है। यह स्वीकार करते हैं और दूसरे ही क्षण लोकापवाद को सुनकर उसे त्याग भी देते हैं। क्या यह समझ में आने वाली बात है? फिर राम सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ कहाँ रहे? ऐसे अनिश्चितमति राम के प्रति क्या किसी की श्रद्धा हो सकती है। वस्तुत: यह मिथ्या प्रसंग राम को बदनाम करने के लिए लिख दिया है। राम ऐसा कभी नहीं कर सकते। सीता को ग्रहण करने से पूर्व उसकी पवित्रता में तीन बड़ी सांक्षियाँ हुई थीं। पहली साक्षी त्रिजटा की हुई। उसने कहा था कि मुझे और दूसरी राक्षसियों को रावण ने सीता को डराने और समझाने के लिए नियुक्त किया था। सीता अपने प्रति राम को याद करके रोती थी। जब रावण उसके निकट आकर बातें करता तो सीता उसकी ओर से पीठ फेर कर उत्तर देती थी। उसे रावण से अति घृणा थी। इससे पता चलता है कि बिना इच्छा के रावण ने सीता को हाथ तक नहीं लगाया।

दूसरी साक्षी हनुमान् की हुई। लंकादहन के बाद हनुमान् सीता के पास गये और सीता को रोते देखकर बोले कि मैं आपको अपनी पीठ पर बैठा कर राम के पास ले जा सकता हूँ। रावण मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। तब सीता ने उत्तर दिया कि निःसंदेह तुम ऐसा कर सकते हो। लेकिन मैं स्वेच्छा से परपुरुष से स्पर्श नहीं कर सकती। रावण तो मुझे बलात् उठा लाया था, मैं उस समय असहाय थी। सीता के इन विचारों से उसकी पवित्रता स्पष्ट है।

तीसरी साक्षी और भी है। रावण के मरने पर उसकी पत्नी मन्दोदरी ने भारी विलाप करते हुए कहा था-

पतिव्रतायाः नाकस्मात् पतन्त्यश्रूणि भूतले।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभु॥

अर्थात् पतिव्रता के आँसू पृथिवी पर अकस्मात् यों ही नहीं गिरते। हे स्वामी! आप सीता के पतिव्रत धर्म के प्रभाव से निश्चय ही दग्ध हुए हो।

इन तीनों साक्षियों और अग्नि परीक्षा के पश्चात् सीता को निर्दोष घोषित कर दिया गया। फिर राम ने सीता को ग्रहण किया और कहा कि मेरे कारण तुमने राज्य सुखों पर लात मार कर वन में अनेक कष्ट सहे, मेरा संकट काल में साथ नहीं छोड़ा। अत: मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम को कभी मैं अपने से पृथक् नहीं करूँगा।

राम की सत्यवादिता सर्वविदित है। फिर ऐसी प्रतिज्ञा करके राम सीता का त्याग कैसे कर सकते थे? सो भी गर्भवती दशा में घोर जंगल में! ऐसा काम तो कसाई भी नहीं कर सकता। इतने प्रमाण होते हुए भी प्रक्षेपकर्ता को ऐसा लिखने में कुछ भी लाज नहीं आई। आखिर झूठ कहाँ तक छिप सकता है।

४१. चमत्कारवाद और अलंकारवाद

काव्य सौष्ठव की दृष्टि से जहाँ तुलसी रामायण एक उत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है, वहाँ धार्मिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से बिल्कुल तथ्यहीन और निरर्थक ही है। हमारा यह कथन कुछ ठोस आधारों पर टिका है। महामानव श्रीराम को सन्त तुलसीदास जी ने किस प्रकार चमत्कारवाद और अलंकारवाद से दूषित किया है, यह पढ़कर प्रत्येक प्रबुद्ध रामभक्त की आत्मा कराह उठती है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सत्यार्थभास्कर' का मूल्यांकन तथा उसमें अनुपयोगी बातें

—डॉ॰ प्रज्ञा देवी, वाराणसी-10

बात उस समय से समझ लेने की है जब **श्रीस्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती** का **"भूमिका-भास्कर ग्रन्थ"** प्रकाश में आया था। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द के **"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"** ग्रन्थ के व्याख्यान के रूप में यह **भूमिका-भास्कर** लिखा गया। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रायः प्रत्येक विषय पर उपयुक्त विद्वानों से तत्तद् विषय पर व्याख्याएँ भूमिका-भास्कर के लिए श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती ने लिखा ली थीं। फिर उन-उन विषयों के ऊपर तत्तत् लेखकों का नाम न देकर ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपनी अवतरणिका के अन्त में **"सहयोगी-विद्वान्"** शीर्षक से विद्वानों की एक सूची मात्र छपवा दी थी, जिससे यह पता चल ही नहीं सकता कि कहाँ, कौन, कितना इस भूमिका-भास्कर में सहयोगी है। इस प्रकार **स्वामी विद्यानन्द जी** सम्पूर्ण **भूमिका-भास्कर** के लेखक सिद्ध हो गये।

अब **श्री स्वामी विद्यानन्द जी** ने दूसरा स्तुत्य प्रयास महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ **"सत्यार्थप्रकाश"** पर **"सत्यार्थ-भास्कर"** लिखने का किया है जिसका प्रथम भाग जिसमें एक से लेकर दस समुल्लासों तक की व्याख्या है, अभी-अभी "इण्टरनेशनल आर्यन फाउण्डेशन, बम्बई" से छपकर तैयार हुआ है। आकार-प्रकार सुन्दर कागज छपाई सब कुछ इसके आकर्षक हैं किन्तु आलोच्य तथ्य इससे कहीं अधिक हैं जिनके कुछ उदाहरण निम्न हैं :-

(१) इस सत्यार्थभास्कर में अनावश्यक विस्तार एवं सत्यार्थप्रकाश से भिन्न असम्बद्ध बातों का बाहुल्य है। प्रथम प्रकाशित भूमिका-भास्कर के मैटर को ही पंक्तिशः पृष्ठ के पृष्ठ यत्र तत्र जोड़ दिया गया है जिसे मात्र कलेवर विस्तार ही कहा जाएगा। तद्यथा-

(क) सत्यार्थभास्कर के अष्टम समुल्लास में भूमिका-भास्कर के सृष्टि विद्याविषयक मैटर को ही पूरा जोड़ दिया गया है। देखें-स॰भा॰[1] पृ॰ ८१६ से ८२६ एवं भू॰ भा॰[2] पृ॰ ३५८ से ३७०। (ख) भू॰भा॰ के वर्णाश्रम विषय पर कहे गये पृ॰ ६७७ से ६८१ तक का मैटर स॰भा॰ के पञ्चम समुल्लास के प्रारम्भ में जोड़ा गया है एवं भू॰भा॰ के ६०८ से ६१० तक का मैटर भी चतुर्थ समुल्लास के नियोग-प्रकरण स॰भा॰ पृ॰ ४८९ से ४९५ में ज्यों का त्यों है।[3] इस प्रसंग को भू॰भा॰ से कॉपी करते समय "शयुत्रा" शब्द पर एक उल्लेखनीय भूल हो गई है, जिसे देखें-**"शयुत्रा"** शब्द सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत **"कुह स्विद् दोषा ...."** (ऋ॰ १०।४०।२) मन्त्र में विद्यमान है। स॰भा॰ में जिन प्रसिद्ध भाष्यों को मन्त्र की व्याख्या में उद्धृत किया गया है, उन सब ने "शयुत्रा" का अर्थ शयने किया है किन्तु स॰भा॰ के लेखक श्री स्वामी विद्यानन्द जी अपनी हिन्दी व्याख्या में "शत्रुया=शयने शयनवाची शत्रु से सप्तम्यर्थ में त्रा (प्रत्यय)" यही लिख रहे हैं जबकि शयु शब्द से त्रा प्रत्यय होना चाहिए और "शयुत्रा" शब्द होना चाहिए। (ग) इसी प्रकार भू॰भा॰ के पञ्चमहायज्ञ विषय में आये पितरों वाले अग्निष्वात्ताः' का सम्पूर्ण शब्दशः विवरण[4] स॰भा॰ के चतुर्थ समुल्लास में श्राद्ध विषय पर ले लिया गया है। देखें पृ॰ भू॰भा॰ ७०७ से ७१० एवं स॰भा॰ पृ॰ ४५९। यहाँ भी भू॰भा॰ के इस मैटर की कॉपी करते समय सूत्रगत अशुद्धि एवं "आङ् उपसर्गपूर्वक दा प्रत्यय" आदि की अशुद्धि हो गई जबकि दा धातु से क्त प्रत्यय चाहिए।

इस प्रकार यह भी पता चलता है कि मुद्रण की दृष्टि से भू॰भा॰ की अपेक्षा स॰भा॰ अधिक अनवधानता दोष से ग्रस्त है। अनवधानता दोष के ही फलस्वरूप स॰भा॰ में "षष्ठ-समुल्लास" छपा है जो शोभा नहीं देता।

(१) स॰भा॰=सत्यार्थ-भास्कर। (२) भू॰भा॰=भूमिका-भास्कर (३) इस स्थल की भू॰भा॰ की समस्त टिप्पणियाँ भी ऊपर स॰भा॰ में ले ली गई हैं। नहीं यह पूर्व परिश्रम किनका था। (४) यह प्रकरण वस्तुतः *श्री शिवशंकर काव्यतीर्थ के "श्राद्ध निर्णय" पुस्तक का है।।*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्वत् यत्र तत्र से कॉपी कर लेने का दुष्परिणाम बहुधा यह भी हुआ है कि बातें असम्बद्ध सी होती गईं। तद्यथा-देखें स०भा० ५५४ से ५५८ के पृष्ठ। यह मैटर भू०भा० के पृ० ६२३ ''राजप्रजाधर्मविषय'' से समेटा गया है। अतः लगे हाथ असम्बद्ध बात ''या तेनोच्यते सा देवता'' इत्यादि भी कह डाली। इसी प्रकार स०भा० के ४७८ पृ० में भी **''निन्दन्तु नीतिनिपुणा.....''** का कथन अप्रासंगिक है। सत्यार्थप्रकाश में जो सुन्दर व्याख्याएँ इन श्लोकों की ऋषि के शब्दों में आ जाती हैं, उनका पुनः पिष्टपेषण स्वामी विद्यानन्द जी कलेवर बढ़ने की चिन्ता बिना किये हुए करते जाते हैं। तद्यथा देखें- स०भा० पृ० ७१४ में ''अपाणिपादो .....'' की व्याख्या।

(२) स०भा० के लेखक द्वारा अपनी पूर्वलिखित पुस्तकें जिनसे वे एक सूत्रकार का भी स्थान प्राप्त कर लेते हैं, के पृष्ठ के पृष्ठ मैटर को भी जैसे का तैसा, स०भा० में जड़ दिया गया है। भले ही उन पृष्ठों से सत्यार्थप्रकाश मूल की गुत्थियाँ सुलझ रही हों या उलझ रही हों।

(क) सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में ''पूर्व-जन्मों का स्मरण क्यों नहीं होता'' यह विषय आते ही स०भा० के लेखक **श्री स्वामी विद्यानन्द जी** की **''अनादि-तत्त्व-दर्शन''** पुस्तक खुल जाती है। सत्यार्थप्रकाश के लगभग साढ़े चार पृष्ठों पर कही हुई बात का व्याख्यान स०भा० के अट्ठारह पृष्ठों में समाप्त होता है। देखें स०भा० के पृ० ९६८ से ९९० तक तथा ''अनादि-तत्त्व-दर्शन'' के पृ० ९४ से ११८ तक सम्पूर्ण पुनर्जन्म प्रकरण। मजे की बात यह है कि इस मैटर में **स्वामी विद्यानन्द जी** रचित सूत्र मोटे टाइप में छपे हैं जिससे पाठक को और भी भ्रम हो जाएगा कि ये सब उद्धरण कहाँ के हैं। सूत्ररचना की कला पर भी थोड़ा दृष्टिपात करें। न्यायदर्शनकार **गौतम महर्षि** ने सूत्र बनाया **''पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः''** (१।१।१९) और आपने उसको उलटकर सूत्र बनाया **प्रेत्यभावः पुनरुत्पत्तिः** (अनादि तत्त्व दर्शन ४।३) क्या इस सूत्र को उलटने से लोगों को अधिक समझ में आ गया। सूत्र-रचना के ऐसे ढंग और भी देखने को मिल सकते हैं।

(ख) इसी प्रकार देखें सप्तम समुल्लास के **''जीव का स्वातन्त्र्य और पारतन्त्र्य''** विषय पर स०भा० के ७४२ पृ० से ७४५ पृष्ठ तथा 'अनादि तत्त्व दर्शन' के पृष्ठ ७५, ७६, ७७, ७८ मिलाते जाइये। ऐसे मैटरों में ''राम कीन्ह चाहहिं सोई होई.... ताकी मति पहले हर लेहीं'' आदि महर्षि द्वारा वर्ज्य ग्रन्थों के उद्धरण भरे हों या कुछ भी। मतलब तो ज्यों का त्यों कॉपी करके सत्यार्थप्रकाश जैसे गम्भीरतम ग्रन्थ के साथ जड़ देना है।

(३) किसी भी प्रसिद्ध विद्वान् लेखक की पुस्तक से मैटर खींचकर अपने नाम से अपनी पुस्तक में डाल लेने की प्रक्रिया में **स्वामी** विद्यानन्द जी कभी संकोच करते प्रतीत नहीं होते हैं। तद्यथा-

देखें स०भा० के पृ० ४५८ एवं पूज्यपाद **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** के रा०ला०क० ट्रस्ट से छपे हुए सत्यार्थप्रकाश के पृ० १६२। यहाँ पू० मीमांसक जी की दो महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ ग्रहण करके स०भा० में डाल दी गई हैं। विचार करने की बात है कि ''ब्रह्माणी'' शब्द पर ऐसी टिप्पणी का लिखना क्या पं० **मीमांसक जी** के अतिरिक्त सभी के बूते की बात है? और जब **स्वामी विद्यानन्द जी** का अपना यह था ही नहीं तभी तो इस टिप्पणी के आशय को सही अर्थों में न जानकर ''भार्यारूप विशेष की ब्राह्मणी'' ऐसा छापा है जबकि टिप्पणी में स्पष्ट ''ब्रह्माणी'' है और यही होना चाहिए।

सत्यार्थप्रकाश के इसी पृष्ठ के टि०नं० ५ में **''ऋत्नेभ्यो ङीप्''** (अष्टा० ४।१।५) सूत्र लिखकर जो ''ब्रह्माणी'' शब्द मीमांसक जी ने सिद्ध किया है उसे भी **स्वामी विद्यानन्द जी** अपने स०भा० में प्रतिलिपि करते हुए ''ब्रह्माणी ..... और ब्राह्मणी'' ही छाप रहे हैं जबकि यहाँ यथाक्रम ब्राह्मणी और ब्रह्माणी ही होना चाहिए। भला दूसरे की चीज़ को इस प्रकार अपना घोषित करने से क्या लाभ? जब हम सही उसे उद्धृत भी नहीं कर पा रहे।

इन दोनों टिप्पणियों का योग भी अयथास्थान हो गया है। पू० पण्डित जी की ये दोनों टिप्पणियाँ स०भा० के ४५३ पृष्ठ पर ही जानी चाहिएं। यहाँ एक और करिश्मा देखें, उपर्युक्त स्थल पर ही पू० मीमांसक जी की २ नं० की टिप्पणी स०भा० के ४५२ पृ० पर एवं ४५८ पृ० दोनों स्थानों पर छापी गई है। इस प्रकार के अनवधानता दोष बहुत हैं।

यद्यपि **श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती** ने अपने इस स०भा० की भूमिका में बड़े विनयावनत होकर स्वीकार किया है कि स०भा० के प्रथम समुल्लास में टिप्पणियाँ प्रायः पू०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसक जी की ही हमने ग्रहण ही हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि सभी समुल्लासों की अधिकाँश टिप्पणियाँ **श्री स्वामी** विद्यानन्द जी ने अपने स॰भा॰ में समाहित कर ली हैं तथा जिन्हें भी समाहित किया है उन्हें बिना नामोल्लेख के अर्थात् अपना बनाकर छाप दिया है। ऐसा करते हुए उन्होंने टिप्पणी में मीमांसक जी के द्वारा अपने लिए प्रयुक्त "हमारे" आदि शब्दों को बदलकर "**श्री मीमांसक जी**" ऐसा कर दिया है। तद्यथा स॰भा॰ के पृ॰ २९५ का अवलोकन करें। यहाँ सत्यार्थप्रकाश रा॰ला॰क॰ संस्करण के पृ॰ ७७ में पू॰ पण्डित जी की टिप्पणी है जिसे **स्वामी विद्यानन्द जी** ने चतुराई से पृ॰ २९५ में समेटा है और "हमारे" के स्थान पर 'मीमांसक जी' कर दिया है। मजे की बात यहाँ भी यह है कि इस टिप्पणी को "मीमांसक जी" परिवर्तन के साथ टिप्पणी में भी छाप दिया और ऊपर स॰भा॰ में भी। इसी प्रकार स॰भा॰ पृ॰ ३२६ जिसमें पू॰ पण्डित जी की पृ॰९१ में आई १ नं॰ की टिप्पणी "वेद: पाठ है····" समाविष्ट है, देखें।

और भी देखें, सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास पृ॰ ३२७ (रा॰ला॰क॰ संस्करण) पर पू॰ मीमांसक जी की ३ नं॰ की टिप्पणी "**ऋषयो मन्त्रदृष्टय:**····" है। इसे भी **श्री स्वामी** विद्यानन्द जी बेखटके अपने स॰भा॰ में समाविष्ट कर लेते हैं किन्तु ऐसा करते हुए उन्हें याद नहीं रहा (जैसा कि अन्यत्र भी नहीं रहता) कि टिप्पणी से तो यह मैटर हटा दें। दो-दो बार छापकर कलेवर विस्तार क्यों कर रहे हैं? (देखें स॰भा॰ पृ॰ ४०८)। सत्यार्थप्रकाश के पृ॰ १२५ की पू॰ मीमांसक जी की १ एवं २ नं॰ की टिप्पणी तथा पृ॰ १२७ की नं॰ १ की टिप्पणी। इन तीनों को स॰भा॰ के लेखक जी ने पृ॰ ३७९ में एक साथ अपने स॰भा॰ में एकत्रित कर लिया है और इस कौशल में प्रकरणानुसार व्याख्यान करना भूलकर कैकेयी की बात बीच में ले आये हैं जबकि यह व्याख्या स॰भा॰ के पृ॰ ३८६ में व्याख्यान होनी चाहिए। क्या अधिक कहें, बहुधा इसी प्रकार पू॰ मीमांसक जी की टिप्पणियों को हलाल किया गया है तथा जहाँ **स्वामी विद्यानन्द जी** को याद आ गया उसे वहीं सत्यार्थप्रकाश का प्रकरण न देखते हुए सत्यार्थप्रकाश में लिख दिया गया है।

(४) अब हमें स्वामी विद्यानन्द जी की व्याख्याओं का भी थोड़ा रसपान करना चाहिए, देखें स॰भा॰ पृ॰ ५५५ एवं भू॰भा॰ पृ॰ ६२४–

(क) "यदि पुरुष में नारी के गुण आ जायें तो वह देवता बन जाता है, इसके विपरीत यदि नारी में पुरुष के गुण आ जायें तो वह कुलटा हो जाती है। इसी प्रकार यदि राजनीति में धर्म आ जाये तो वह पवित्र हो जाती है और इसके विपरीत यदि धर्म में राजनीति आ जाये तो वह मनुष्य के लिए भयानक रूप में घातक हो जाता है।"

क्या कहने इस व्याख्या के, यदि धर्म में राजनीति आयेगी तो राजनीति में धर्म आया यह नहीं माना जाएगा क्या? क्या दोनों एक दूसरे में ओतप्रोत नहीं हैं?

(ख) एक और मनोरंजक व्याख्या देखें। स॰भा॰ के लेखक पृ॰ ८२८ पर लिखते हैं-यदि शंकराचार्य की भाँति वेदव्यास जगत् को मिथ्या मानते तो वह ब्रह्म को असत् अथवा भ्रान्ति का जनक कहकर उसे बदनाम न करते।"

यह व्याख्या "**निगदेनैव व्याख्याता**" स्वसंवेद्य है। इस पर और क्या लिखा जाये।

(ग) **श्री स्वामी विद्यानन्द जी** ने मीमांसा-दर्शन के "सर्वत्वमाधिकारिकम्" (१।२।१६) सूत्र का अर्थ स॰भा॰ ९५१ पृष्ठ पर ठीक शबर स्वामी एवं पू॰ मीमांसक जी के अनुसार सर्वपन "पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति" में अधिकार प्रयुक्त होने से गौण है, किया है। पुन: स॰भा॰ के पृ॰ ३८४ पर "सर्वत्वमाधिकारिकम्" का अर्थ श्री आर्यमुनि जी के मीमांसार्यभाष्य के अनुसार "वेदाध्ययन में मनुष्य मात्र का अधिकार है" ऐसा किया है। अब यह स्वामी विद्यानन्द जी जानें कि मीमांसा-दर्शन के "उपक्रमोपसंहारौ अभ्यासे····लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये" के सिद्धान्त के अनुसार कौन सा सूत्रार्थ युक्तियुक्त है।

यहाँ कुछ अन्य मजेदार बातें भी लिखना चाहती हूँ। स॰भा॰ के पृ॰ ५६१ पर एक अपना चुभता हुआ प्रश्न उठाते हुए स्वामी विद्यानन्द जी "**छन्दसि लुङ्लङ्लिट:**" (अष्टा॰ ३।४।६) सूत्र उद्धृत करके यह बताना चाहते हैं कि वेद में भूतकालिक क्रिया का तीनों कालों में अर्थ हो सकता है। इसके लिए वे सूत्रार्थ करते हैं–"**छन्दसि लुङ्लङ्लिट: धातुसम्बन्धे प्रत्यया:** अर्थात् इन तीनों लकारों का प्रयोग धातु का अर्थ मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताने के लिए किया जाता है।'' (क्या बढ़िया सूत्रार्थ है?) पुनः **स्वामी विद्यानन्द जी** काशिकाकार की व्याख्या **''छन्दसि विषये धातुसम्बन्धे सर्वत्र कालेषु लुङ्लङ्लिट्प्रत्यया भवन्ति''** यह उद्धृत करते हैं और फिर आगे यह लिखते हैं कि ''महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी इसका (काशिकाकार का) अनुमोदन किया है।'' भला बताइये कहाँ महाभाष्य और कहाँ काशिकाकार। काल-क्रम से भी तो काशिका ही महाभाष्य का अनुमोदन करेगी। वस्तुतः यह सब अपरिचित विषय के कारण लेखक का वाग्विस्तार मात्र है। अन्यत्र स्थलों में भी इसी प्रकार व्याकरण सम्बन्धी विवरण ठीक नहीं हो पाये हैं। तद्यथा स०भा० पृ०५५७ देखें। यहाँ स्वामी जी ''द्विवचनस्याकारादेशश्छान्दसः'' कोश को ही मुख्य मान 'राजाना' पद के लिए उद्धृत करते हैं जबकि सीधा पाणिनि का सूत्र ''सुपां सुलुक्'' (७।१।३९) लिखकर ही बोध कराया जाना चाहिए।

इस बृहत् पोथारत्न में उद्धरणों के पतों की अशुद्धियों की भी भरमार है तथा प्रायः मन्त्रादि स्वरचिह्न रहित अशुद्ध छपे हैं जिन्हें कहाँ तक बताया जा सकता है पुनरपि एक दो स्थल देख लेने में कोई हर्ज नहीं-पृ०५११ के अन्तिम पैरे के प्रारम्भ में देखें-''मीमांसा दर्शन की सुबोधिनी टीका में आये....'' इस स्थल को। प्रथम तो मीमांसा दर्शन पर सुबोधिनी वृत्ति है, टीका नहीं जो **पं० रामेश्वर सूरि** द्वारा विरचित तथा काशी में ही ''मेडिकल हाल'' नामक यन्त्रालय में सं० १९५६ में मुद्रित हुई थी, दुबारा इसका मुद्रण नहीं हुआ। दूसरी बात यह प्रकरण मी०द० के २।२।७० का नहीं है क्योंकि मी०द० में दूसरे अध्याय के द्वितीय पाद में तो मात्र उनतीस सूत्र हैं। यह प्रकरण तो ''अर्थवादोपपत्तेश्च'' (मी०द० २।३।१७) का है। भला ऐसी अनुपलब्ध सी वृत्ति का पता अशुद्ध हो तो पाठक के लिए कितना जंजाल है। इस प्रकार की अशुद्धियों के लिए और ७१६, ४७४ इत्यादि देखें।

(५) **श्री स्वामी विद्यानन्द जी** की यह बात भी बड़ी अखरने वाली है कि वे सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण आदि का लम्बा उद्धरण देते हुए अपने आप लम्बा पूर्वपक्ष इस प्रकार उपस्थित करते जाते हैं जैसे कोई विपक्षी खड़ा होकर बात कर रहा हो, जब समाधान का समय आता है तो डेढ़ लाइन में **लिपिकर्ता की नासमझी** अथवा **मुद्रणकाल** की **अशुद्धि** कहकर छुट्टी पा लेते हैं। उदाहरण के लिए देखें द्वितीय समुल्लास में स०भा० पृ० २१७ पर उद्धृत धाईवाला प्रकरण। भला क्या आवश्यकता है इस उद्धरण को रखने की। क्या पूर्वपक्ष दिखाकर ही बहादुरी सिद्ध करनी है? हमारा कार्य तो **समाधानपरक होना चाहिए जिससे सत्यार्थप्रकाश की परिपुष्टि हो न कि सन्देह खड़ा हो जाये।**

इस ग्रन्थ में व्याख्या के रूप में सामान्य कथा कहानी तथा कबीर आदि के दोहों का भी उपयोग बहुत कुछ किया गया है जो एक उपदेश की क्रम की बात है। सत्यार्थप्रकाश जैसे गम्भीर ग्रन्थ पर तो तात्त्विक, युक्तियुक्त, सारगर्भित व्याख्या ही होनी चाहिए, जिससे पठनार्थी उसके गम्भीर रहस्यों को समझ सकें। सत्यार्थप्रकाश से भी दुगुना वजन बढ़ा देने मात्र से उसके गौरव में वृद्धि हो; ऐसा नहीं। प्रकरणभिन्न अनावश्यक विस्तार से तो कहीं अधिक अच्छा रहता कि श्री स्वामी विद्यानन्द जी इसे अपना एक पृथक् ग्रन्थ बना देते। सत्यार्थप्रकाश के साथ इसे न जोड़ते।

अन्त में **श्री स्वामी विद्यानन्द जी** ने अपने प्राक्कथन में लिखा है कि (सत्यार्थप्रकाश जैसे) ''सागर की गहराई की थाह पाना मछली के सामर्थ्य से बाहर है, पर वह उसकी लहरों में उछल-कूद मचाकर आनन्द लाभ तो कर ही सकती है।'' **स्वामी विद्यानन्द जी** की यह विनम्रता सचमुच प्रशंसनीय है किन्तु प्रश्न ये है कि यदि वह मछली दूसरे के सञ्चित कोश को तद्वत् अपने नाम पर अपने आनन्द लाभ के लिए जोड़ लिया करे तो क्या यह उसका कार्य उचित होगा? दूसरी बात यह है कि अपनी सामर्थ्यानुसार कोई भी (मछली) यदि किसी महत्त्वपूर्ण, गम्भीरतम वस्तु का प्रतिपादन करने लग जाये पर वह उस प्रतिपादितव्य के गाम्भीर्य के अनुरूप न बन सके तो उछल-कूद मचाकर मछली ने तो आनन्द ले लिया पर उन जिज्ञासु पाठकों का क्या बनेगा जो सार तत्त्व चाहते हैं, आखिर वे इतना अधिक व्यय करके भी अपेक्षित चीज़ नहीं पायेंगे तो क्या होगा उनका? हमारा काम सत्यार्थप्रकाश का गौरव बढ़ाना है, उसकी शोभा से हमारी शोभा है। अतः विद्वज्जनों की समिति बनाकर यह कार्य होना चाहिए था, जल्दबाज़ी में तो इसका प्रकाशन होना ही नहीं चाहिए था। अपने-अपने स्वकीय परिश्रम का उपयोग करते हुए कार्य करना ही हमारी विशुद्ध परम्परा है। कोई भी सर्वज्ञ नहीं होता किन्तु नामोल्लेखपूर्वक विषय को ग्रहण करना ही सच्ची विनम्रता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष ''दयानन्दसन्देश'' पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं–

१७१. श्री शंकरलाल जी आर्य २१ राजेन्द्र मलिक स्ट्रीट कलकत्ता (प० बंगाल)
१७२. प्रधान विश्वसंस्कृतप्रतिष्ठानम् हरियाणा यमुनानगर अम्बाला
१७३. श्री शंकरलाल भरमर, दिव्यालोक विद्यालय नजर बाग उदयपुर (राज०)
१७४. श्री जगदीशचन्द्र जी कपूर C-2/११४ वैस्ट इन्कलेव दिल्ली ३४
१७५. श्री बसंतकुमार शौरी स्टेट बैंक आफ पटियाला पुराना बाजार बरनाला (PB)
१७६. श्री B.I. Anand G-25 Narain Vihar New Delhi-28
१७७. आसाम टी कं० G1/17 मण्डोर मण्डी जोधपुर (राज०)
१७८. श्री राव हरीशचन्द्र जी आर्य, रूईकर मार्ग महल नागपुर (MR)
१७९. श्री दिनेशकुमार जी म० सुखड़िया १५७/१८७६ सोला रोड नारणपुरा अहमदाबाद
१८०. श्री ओमप्रकाश जी म. नं० ७७ माडल टाउन जींद रोड, कैथल-१३२०२७
१८१. श्री पुरुषोत्तम अग्रवाल रजनीगंधा, बाजार चौक आड़ी लाइन आम गाँव
१८२. श्री गोपालप्रसाद जी M/s पब्लिक हार्डवेयर स्टोर भागलपुर (बिहार)
१८३. श्री शिवचरण जी १९ पब्लिक पार्क श्री गंगानगर (राज०)
१८४. श्री संचालक हनुमान व्यायामशाला परली बैजनाथ जि० बीड़ (MR)
१८५. श्री सुनिल कोचेटा चार्टर्ड Accountant चन्द्रनगर लातूर (MR)
१८६. श्री रविन्द्र ज्ञानुराव S.B.I. परली बैजनाथ जि० बीड़ (MR)
१८७. To MT. DVR Z.S. Bhardwaj 53 R.C.C. (GREF) C/o 56 APO.
१८८. श्री रामप्रताप जी शाह उमेशचन्द जी मु०पो० देसरी जि० बैशाली (बिहार)
१८९. श्री K.R. आर्य कौशिक बैजनाथ पपरोला पो० पपरोला जि० कांगड़ा (HP)
१९०. श्री मंत्री जी आर्यसमाज जहीराबाद (मेंडक) AP.

धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/93
आर. आर नं. २५५८७/७३
Post in Delhi PSO Indraprastha
on 2-3/12/93

दिसम्बर १९९३

बिना टिकट भेजने का लाइसन्स नं.
यू (डी. एन.) १४४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक सख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

विशुद्ध-मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोकरहित हिन्दी भाषा, प्रक्षिप्त श्लोकों की सप्रमाण एवं अन्त:साक्षी पूर्वक समीक्षा सहित और विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

१. वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवं अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए उपयोगी।
२. प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित एवं विशेष स्थलों पर समीक्षा सहित।
३. अवैदिक एवं असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों तथा मनु की मौलिक मान्यताओं से युक्त।
४. महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यात श्लोकार्थों से अलंकृत।
५. अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति' की भाँति।

विशेष जानकारी के लिए सूचीपत्र मंगायें

श्री सेवा में
ग्राम............
डा.............
जिला............

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११० ००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

फरवरी, १९९४

वर्ष १२ : अंक ४

दयानन्दाब्द : १६९

विक्रमसंवत् : माघ, २०५०

सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९४

इस अंक के लेख

- बालको बढ़े चलो २
- वेदोपदेश ३
- परमेश्वर की उपासना में मूर्तिपूजा साधन नहीं ४
- प्रदूषण और उनका निवारण ५
- क्या गांधीजी के विचार आज भी प्रासंगिक हैं ८
- स्वामी दयानन्द के कार्यों का मूल्यांकन ९
- पाठकों के पत्र तथा सम्मितियाँ ११
- वर्तमान समय में गुरुकुल-पद्धति की प्रासंगिकता १२
- वैदिक संस्कारों पर उत्पन्न प्रश्नों का समाधान १७
- इस्लाम पर वैदिक रंग २२
  (भक्त अमीचन्द पाकिस्तान में)

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली-६ स्थापित - १९६६

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
"दयानन्द सन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२
एक प्रति २-५० रु०
वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपए, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ रुपए और सजिल्द बारह सौ रुपए, सैकड़ा में प्राप्त करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालको ! बढ़े चलो !!

-राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति

बालको बढ़े चलो, प्रशस्त पुण्य पन्थ है।
ज्ञान की मशाल ले, पुकारता सुपन्थ है।।

(१)

मातृभूमि के सपूत ! तुम तो सदा अजेय हो।
कर्ण-पार्थ तुल्य, तुम तो अपराजेय हो।।
राम-कृष्ण वंश हो, शिवि दधीचि अंश हो।
कौन कहाँ है विश्व में, जो न तुम से जेय हो।
ज्योति पथ दिखा रहा, तुम्हें वेदग्रन्थ है।। १ ।।
बालको--------

(२)

तुम्हीं भरत शत्रुघ्न हो तुम्हीं नेता सुभाष हो।
तुम्हीं भगत अशफाक हो, तुम्हीं मां की आस हो।
कभी बने हो कुश तुम्हीं, कभी तुम्हीं लव बने।
अभिमन्यु भी तुम्हीं तो हो, कभी न तुम निराश हो।।
त्याग-तप विवेक की, भू पर फैली सुगन्ध हो ।। २ ।।
बालको--------

(३)

चलो तुम्हें है आज फिर जन्मभूमि पुकारती।
मातृभूमि फिर तुम्हीं से बलिदान मांगती।।
दृढव्रती बनो पुनः करो सिंह गर्जना।
कफन बांध सिर चलो कहे राष्ट्र भारती।।
गूंजती दिशा-दिशा प्रशस्त अब सुपन्थ है।
बालको बढ़े चलो, प्रशस्त पुण्य पन्थ है।। ३ ।।
बालको--------

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश– धर्मात्मा बनने का मुख्य उपाय वैरभावना का त्याग और पारस्परिक मित्रता की दृष्टि।
दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरः देवता। भुरिग् जगती छन्दः। निषादः स्वरः।
अथ के धर्मात्मान इत्याह।।
अब कौन मनुष्य धर्मात्मा होते हैं इस विषय का उपदेश किया जाता है।।

**ओ३म्– दृते दृंह मा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।**
(यजु० ३६ । १८ ।।)

पदार्थः– (दृते) अविद्यान्धकार निवारक जगदीश्वर विद्वन् वा। (दृंह) दृढी कुरु (मा) माम् (मित्रस्य) सुहृदः (चक्षुषा) दृष्ट्या (सर्वाणि) (भूतानि) प्राणिनः (सम्) सम्यक् ईक्षन्ताम् ईक्षन्तां= पश्यन्तु (मित्रस्य) (अहम्) (चक्षुषा) (सर्वाणि) (भूतानि) (सम+ईक्षे) पश्येयम् (मित्रस्य) (चक्षुषा) (सम्+ईक्षामहे) पश्येम।।

सपदार्थान्वयः– हे (दृते) अविद्यान्धकारनिवारक जगदीश्वर वा विद्वन् येन (सर्वाणि) (भूतानि) प्राणिनः (मित्रस्य) सुहृदः (चक्षुषा) दृष्ट्या (मा) माम् (सम्+ईक्षन्ताम्) सम्यक् ईक्षन्तां=पश्यन्तु। (अहम्) (मित्रस्य) सुहृदः (चक्षुषा) दृष्ट्या (सर्वाणि) (भूतानि) (सम्+ईक्षे) पश्येयम्। एवं वयं सर्वे परस्परान् (मित्रस्य) सुहृदः (चक्षुषा) दृष्ट्या (सर्वाणि) (भूतानि) (सम् ईक्षे) पश्येयम्। एवं वयं सर्वे परस्परान् (मित्रस्य) सुहृदः (चक्षुषा) दृष्ट्या (सम्+ईक्षामहे) पश्येम तत्रास्मान् (दृंह) दृढी कुरु।।

भावार्थ– हे (दृते) अविद्या अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वान् जिससे (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से मुझे (समीक्षन्ताम्) अच्छी प्रकार देखें (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणियों को (समीक्षे) देखूँ। इस प्रकार हम सब परस्पर (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षामहे) देखें। उस मित्रता पूर्ण व्यवहार में हमें (दृंह) दृढ़ कर=स्थिर कर।।

भावार्थः– त एव धर्मात्मानो मनुष्याः, ये स्वात्मवत् सर्वान् प्राणिनो मन्येरन् कञ्चिदपि न द्विषेयुः मित्रवत् सदोपकुर्युरिति।

भावार्थ– वे ही धर्मात्मा मनुष्य होते हैं, जो अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को मानते हैं, किसी से द्वेष नहीं करते, मित्र के तुल्य सब का सदा उपकार करते हैं।।

अन्यत्र व्याख्यात– हे अनन्तबल महावीर ईश्वर! (दृते) हे दुष्टस्वभाव नाशक! विदीर्ण कर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाश करने वाला मुझ को मत रखो, किन्तु उससे मेरे आत्मादि को विद्या, सत्य, धर्मादि शुभगुणों में सदैव अपनी कृपा=सामर्थ्य से स्थित करो। (दृंह) हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! धर्मार्थकाम मोक्षादि तथा विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझ को बढ़ा। (मित्रस्येत्यादि) हे सर्वसुहृदीश्वर सर्वान्तर्यामिन्! सब प्राणी मात्र मित्र दृष्टि से यथावत् मुझ को देखें, सब मेरे मित्र हो जाएँ कोई मुझ से किचिन्मात्र भी वैर न करे। (मित्रस्याहं चेत्यादि) हे परमात्मन् आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर होके सब चराचर जगत् को मित्रदृष्टि से अपने प्राणवत् प्रिय जानूं अर्थात् (मित्रस्य चक्षुषेत्यादि) पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारी मात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर अपना बर्ताव करें। अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्तें। यह परम धर्म का सब मनुष्यों के लिए परमात्मा ने उपदेश किया है। सबको यही मान्य होने के योग्य है। (आर्याभिविनय २/३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दृते दृंह) इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सब मनुष्य लोग आपस में सब प्रकार के प्रेमभाव से सब दिन वर्तें और सब मनुष्यों को उचित है कि जो वेदों में ईश्वरोक्त धर्म है उसी का ग्रहण करें और वेदरीति से ही ईश्वर की उपासना करें कि जिससे मनुष्यों की धर्म में ही प्रवृत्ति हो। (दृते) हे सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर आप हम पर ऐसी कृपा कीजिए कि जिससे हम लोग आपस में वैर छोड़ के एक दूसरे के साथ प्रेमभाव से वर्तें (मित्रस्य मा०) सब प्राणी मुझ को अपना मित्र जान के बन्धु के समान वर्तें, ऐसी इच्छा से मैं भी सब प्राणियों को अपने मित्र जानूँ और हानि-लाभ सुख और दुःख में अपने आत्मा के सम=तुल्य ही सब जीवों को मानूँ (मित्रस्य च०) हम सब लोग आपस में मिलके सदा मित्रभाव रक्खें और सत्यधर्म के आचरण से सत्य सुखों को नित्य बढ़ावें जो ईश्वर का कहा धर्म है यही सब मनुष्यों को मानने के योग्य है ।।

(ऋग्वेदादिभाष्य० वेदोक्त धर्म०)

("दयानन्द यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत)

व्याख्याता-**श्री सुदर्शनदेव आचार्य**)

परमेश्वर की उपासना में मूर्तिपूजा साधन नहीं

(प्रश्न) *जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं?*

(उत्तर) *जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो यह कितना बड़ा अपमान है? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो।*

(प्रश्न) *मूर्तिपूजा में पुण्य नहीं, तो पाप भी नहीं है?*

(उत्तर) *कर्म दो ही प्रकार के होते हैं एक विहित जो वेदादि शास्त्रों में प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध-जो वेदादि में निषिद्ध हैं। जैसे विहितकर्म करने से धर्म होता है वैसे ही निषिद्ध कर्म करने से अधर्म होता है, अतः मूर्तिपूजा करना पाप कर्म है।*

(प्रश्न) *मूर्तिपूजा तो एक सीढ़ी है मूर्तिपूजा करते करते ध्यान का अभ्यास होने से फिर निराकार ईश्वर का भी ध्यान होने लगेगा।*

(उत्तर) *यह भी तुम्हारा महाभ्रम है। क्योंकि मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है। जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है। मूर्तिपूजा करते करते कोई आज तक ज्ञानी नहीं हुआ और न भविष्य में होगा।*

(प्रश्न) *साकार में मन स्थिर हो जाता है, निराकार में नहीं, अतः मूर्तिपूजा करना ठीक है।*

(उत्तर) *साकार में मन कभी स्थिर नहीं हो सकता। जो साकार में मन स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता। क्योंकि जो जो एकदेशी साकार पदार्थ हैं, उनमें कुछ क्षण मन की स्थिति हो जाये, किन्तु उसका अन्त पाकर फिर मन नहीं लगता। और निराकार ईश्वर अवयव रहित अखण्ड होने से मन स्थिर हो जाता है। अतः मूर्तिपूजा करना वेद विरुद्ध होने से अधर्म है। वेद में स्पष्ट लिखा है-न तस्य प्रतिमाऽस्ति। जो व्यक्ति वेदों में निषिद्ध मूर्तिपूजा को करता है, वह पापी क्यों नहीं? उपासना खण्ड के प्रमुख शास्त्र योगदर्शन में भी ध्यान के लिये मूर्तिपूजा को साधन नहीं माना है। आज कल लोग योगेश्वर श्री कृष्ण का उपदेश मानकर गीता को पढ़ते रहते हैं। उसमें भी जो ध्यान की विधि बताई है उसमें मूर्ति आदि को साधन नहीं माना है- "**सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रन्तु**" इत्यादि कहकर ध्यान एकाग्र करने के लिए योगदर्शन की भांति शरीरस्थ अंगों पर ही ध्यान का अभ्यास करने का संकेत किया है।*

(सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों से संकलित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदूषण और उनका निराकरण

डा० जयदत्त उप्रेती, संस्कृतविभागाध्यक्ष: कुमाऊँ विश्वविद्यालय परिसर, अल्मोड़ा

आजकल पर्यावरण-प्रदूषण-निवारण की बात एक प्रसिद्ध चर्चा का विषय है। यत्र तत्र सर्वत्र यही सुनने को मिलता है। धरती, जल और वायु को सूखे गर्मी और प्रदूषण से बचाओ: वृक्ष लगाओ, वृक्ष मत काटो, इत्यादि। ठीक है, देर आये दुरुस्त आये। कभी तो इन प्रदूषणों को पहचानने और उनके निराकरण की ओर मनुष्यों का ध्यान गया। आज प्रदूषण के भय से लोगों को अवगत ही नहीं, अपितु सावधान भी कराया जा रहा है, और उसको दूर करने की दिशा में सोचा जाने लगा है तथा विभिन्न प्रकार के उपाय किये जा रहे हैं। परन्तु यह ध्यान में रखना होगा कि उपायों के शुभाशुभ परिणामों की ओर भी दृष्टि डाली जाय। क्योंकि-

उपायं चिन्तयेत् प्राज्ञस्तथापायमपि चिन्तयेत्+ बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि किसी कार्य को सिद्ध करने के लिए उपाय को सोचने के साथ साथ उसके परिणामों पर भी अच्छी प्रकार विचार कर लिया करे। अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि परिणाम हानि पहुँचाने वाला हो जाये। उदाहरणार्थ वृक्षों पर अनेक प्रकार से मनुष्य आश्रित रहता है। वृक्ष के पत्ते, फल-फूल तना, जड़ और शाखाएँ उसके प्रतिदिन के प्रयोजन को सिद्ध करते हैं अब यदि यही नियम रहे केवल मनुष्य नये नये वृक्ष लगा सकता है, और किसी भी दशा में कोई हरा या सूखा पेड़ नहीं काट सकता तो क्या मनुष्यों को उससे भारी असुविधा नहीं होगी? अवश्य हो जायेगी। अत: ऐसा नियम बनना ही समीचीन है कि मनुष्य नये नये वृक्ष अवश्य परन्तु हरे या सूखे (परिपक्व) वृक्ष को आवश्यकता पड़ने पर एक व्यवस्था के अधीन प्रकट रूप से न कि चोरी छिपे, काट भी सकें।

हमारे लेख का शीर्षक "प्रदूषण और उनका निराकरण" है। अत: हम कतिपय अन्य प्रदूषणों का भी उल्लेख करते हैं। आइये, विचारिये कि क्या ये भी प्रदूषण नहीं हैं?

१- बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, शराब पीना? विशेषत: मोटर-कार-रेल यानों में जहाँ कि इन्हें न पीने वाले लोग भी साथ साथ वाहनों में यात्रा करते हैं। इसी प्रकार समितियों या किसी प्रकार के जनसमूह के बीच में इन मादक द्रव्यों का सेवन करना क्या पर्यावरण प्रदूषण नहीं है यदि है तो उसके निराकरण या रोकने के लिये पर्यावरणविद् क्यों नहीं आवाज उठाते और उन्हें क्यों नहीं रोकते।?

२- चलचित्रालयों (सिनेमाघरों) रेडियो और दूरदर्शन द्वारा अशिष्ट और अश्लील गानों और चित्रों का प्रदर्शन क्या विचारों को प्रदूषित करने का कारण नहीं है? विशेषत: कुमारों तथा युवकों को भ्रष्ट करने के कारण क्या ये नहीं हैं? यदि हैं तो इस प्रकार के प्रदूषणों को रोकने के लिए पर्यावरणविभाग द्वारा प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता?

३- क्या बड़े बड़े बूचड़खाने और मूक निरपराध पशुओं के बलिस्थान और कत्लगाह भय और धार्मिक द्वेष पैदाकर पर्यावरण को प्रदूषित नहीं कर रहे हैं। यदि इनकी दुर्गन्ध रौद्र और बीभत्स दृश्य वास्तव में अच्छे नहीं हैं तो इनकी रोकथाम के लिए प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता?

४- क्या सरकारी लाटरियों का प्रचलन लोगों में जुए की और शराब के ठेकों की स्वीकृति मद्यपान की प्रवृत्ति को बढ़ावा नहीं दे रही है क्या ये दोनों बातें लोगों के स्वास्थ्य और आर्थिक दशा से खिलवाड़ नहीं कर रही हैं? यदि कर रही हैं तो क्या यह सरकारी दुर्नीतियों का प्रदूषण नहीं है? यदि यह भी प्रदूषण है तो इसे रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं होता?

५- हम लोग मानते हैं कि हम एक स्वतन्त्र भारतदेश के नागरिक हैं। परन्तु क्या कारण है कि भाषा और साहित्य की दृष्टि से संसार का एक लब्धप्रतिष्ठ देश होते हुए भी आज भी सारे देश में सात समुद्र पार के अंग्रेज़ों की भाषा का वर्चस्व यहां के राज काज तथा जन-साधारण के दैनिन्दन व्यवहार में हो रहा है? और इस देश की अस्मिता को जताने वाली सारी भाषाएँ गौण हो गई हैं संस्कृत और हिन्दी जैसी सशक्त भाषाओं में से किसी एक को ४७ वर्षों तक भी देश की एक सम्पर्क भाषा न बनाया जा सकना क्या अंग्रेजियत की मानसिक दासता का द्योतक नहीं है? क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि विदेशी राजनेता हमारी संसद् में आकर अपने देश की भाषा में बड़े गर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भाषण करता है, किन्तु हम हैं उनके सामने भी अपने देश की भाषा में भाषण करने में शर्म का अनुभव करते हुए गुलामी के दिनों की भाषा में भाषण करने में अपनी शान समझते हैं? इसे भाषागत मानसिक प्रदूषण नहीं तो क्या कहा जाए? क्या इस प्रदूषण का निवारण नहीं होना चाहिये?

६- सामाजिक शान्ति में अशान्ति का प्रदूषण- एक अन्य प्रकार का प्रदूषण है। सामान्यतः संसार भर के मनुष्य शान्ति चाहते हैं और अधिकांश जन शान्ति और सौहार्द का आचरण भी करते हैं तभी और ऐसे लोगों से ही संसार के लोग जीवित हैं। परन्तु इधर अपने देश में विगत १०-१२ वर्षों से कुछ परिपन्थियों और आततायियों (उग्रवादियों) की बन पड़ी है। वे जिसे या जिन्हें जब चाहें चोरी छिपे लूट अपहरण और हत्या से विनष्ट करने में देर नहीं लगाते। ऐसे लोगों के लिए सारे धर्मनियम और सरकारी कानून कोई मूल्य नहीं रखते। किसी भी प्रकार का कोई भी अपराध करना इनके बायें हाथ का खेल है। इन्होंने सारे समाज और राष्ट्र में भय और अशान्ति का वातावरण पैदा कर सारे शान्त वातावरण को प्रदूषित कर रखा है। क्या यह प्रदूषण दूर करने योग्य नहीं है?

७- सांस्कृतिक प्रदूषण- एक नया ही प्रदूषण जन्म ले चुका है। आज संस्कृति के पुराने मानदण्ड समाप्त होते जा रहे हैं। सब जानते हैं कि इन दिनों सांस्कृतिक-कार्यक्रम एक प्रसिद्ध शब्द व्यवहृत हो रहा है, जिसका केवल एक ही अर्थ होता है- नाच गान का उत्सव। विचारणीय है कि क्या यही संस्कृति है? संस्कृतिशब्द विशुद्ध भारत की प्राचीन विरासत का बोधक है, जहां संस्कार अर्थात् शुद्धता और सुधार का कार्य होता है। वही कर्म संस्कृति नाम से अभिहित होता है, अन्य कुछ नहीं। और यह भी निश्चित है कि संस्कृतभाषा के समग्र साहित्य और उसके मूल उत्स वेदों में मनुष्यों द्वारा आचरणीय संस्कृति के जितने तत्त्व उपलब्ध होते हैं उतने कदाचित् ही धरातल में अन्यत्र देखने को मिलेंगे। इसीलिये किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है--'**भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा**'। अर्थात् भारत की मुख्यतः दो ही प्रतिष्ठा की (सारे संसार में श्रेष्ठ वस्तुएँ हैं) एक संस्कृतभाषा और दूसरी इसमें निहित संस्कृति। आज प्रत्येक विदेशी भली-बुरी प्रथा हमारे देश में घुस आयी हैं। और हम उसका संस्कृति नाम से प्रचार कर रहे हैं। उदाहरणार्थ लीजिए डिस्को डांस, युवक-युवतियों की वेशभूषा में भिन्नता न होकर एकरूपता आदि आदि। यदि इन अतिवादियों का वश चलता तो ये और भी न जाने क्या क्या कर दिखाते? वस्तुतः हमारी संस्कृति के यम नियम ही आधार भूत तत्त्व हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-इन पाँच यमों और शौच (बाह्याभ्यन्तर-पवित्रता), सन्तोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान-इन पांच नियमों का प्रत्येक के द्वारा जीवन में परिपालन करना ही हमारी संस्कृति थी। किन्तु आज इन यम-नियमों के दशों अंगों में मिश्रण ही मिश्रण है। कुछ धन्यात्मा महाशय सज्जनों को छोड़कर प्रायः असत्य, हिंसा, अपवित्रता, छल-कपट, लम्पटता, नास्तिकता, संग्रह इत्यादि की कुप्रवृत्ति ही सामान्य जनों में देखने को मिल रही है, जो हमारे सांस्कृतिक ह्रास का द्योतक है। प्रश्न है कि क्या यह प्रदूषण परिहार्य नहीं है?

८- शिक्षा में ऐतिहासिक प्रदूषण- इस प्रदूषण के मूल जन्मदाता इंगलैण्ड आदि देशों के मैक्समूलर मैकाले आदि गोरे लोग रहे हैं, जिन्होंने जानबूझकर भारत के प्राचीन इतिहास को विकृत किया है। हजारों प्रकाशित अप्रकाशित ग्रन्थों से समृद्ध विशाल संस्कृत और वैदिक वाङ्मय में एक भी उदाहरण और प्रमाण न होते हुए भी इन लोगों ने हमारे पूर्वज आर्यावर्त निवासी लोगों के सम्बन्ध में यह मिथ्या धारणा इतिहास की पुस्तकों में समाविष्ट कर दी कि आर्य लोग भारत में मध्य एशिया से आये थे और वे आक्रामक थे। उन्होंने भारत के लोगों को हराकर उन्हें जंगलों में खदेड़ दिया इत्यादि। इस विषय को हम स्व॰ पं॰ क्षितीश वेदालंकार जी की रचना-'इतिहास की गंगा का प्रदूषण' से उन्हीं के शब्दों में उद्धृत करने के लोभ का संवरण न करते हुए, दर्शाना चाहते हैं, जो इस प्रकार है-"इसीलिए भारत के जंगली लोगों के लिए 'आदिवासी' शब्द घड़ा गया और आज सारे भारत में वही शब्द प्रचलित है। ईरान के लोग तो अपने स्कूलों में पढ़ाते हैं कि आर्य लोग भारत से हमारे देश में आये और हमारे स्कूलों में पढ़ाया जाता है कि ईरान और मध्य एशिया से आर्य भारत में आए। कोई उनसे पूछे कि ईरान और मध्य एशिया में आर्य कहाँ से आएं तो उसका किसी के पास कोई उत्तर नहीं है।

इसी तरह मोएन-जो दड़ों की संस्कृति को अनार्य संस्कृति कहा गया और आर्यों द्वारा उसको नष्ट किये जाने की बात कही गई। भारत के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में उस समय के भारतीयों को जंगली और असभ्य सिद्ध करने के लिए न जाने क्या ऊंटपटांग बातें कहीं गईं। आश्चर्य की बात यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि भारतवर्ष के इस इतिहास के सम्बन्ध में फैसला वे लोग करते हैं जो गैर भारतीय हैं और स्वयं भारतवर्ष के प्राचीन वाङ्मय से अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों से पुरातत्त्व की खोजों से और भारतीयों द्वारा लिखे गए इतिहास से उसके बारे में कुछ नहीं पूछा जाता। इसी शिक्षा से दीक्षित अब इतिहासकारों की एक ऐसी पीढ़ी पैदा हो गई है जो स्वयं भारतीय इतिहास की गंगा को पूरी तरह प्रदूषित करने में लगी हुई है। सबसे अधिक दुःख की बात यह है कि इस समय भारत के भाग्य का निर्णय करने वाले उच्च पदों पर ऐसे ही प्रदूषण फैलाने वाले और गलत को सही सिद्ध करने में अपने दिमाग की चर्बी खपा देने वाले महापुरुष आसीन हैं। वे ही प्रामाणिक माने जाते हैं और आम जनता से मनवाये जाते हैं।

एक उदाहरण लीजिए--इसी ५ अप्रैल (उल्लेखनीय है कि यह लेख आर्यजगत् के सम्पादकीय में २९ अप्रैल १९९० के अंक में छपा था) को ऐतिहासिक अनुसन्धान भारतीय परिषद् के अध्यक्ष इतिहासवेत्ता माने जाने वाले प्रो० इरफान हबीब ने भारत में तकनीकि का इतिहास विषय पर बोलते हुए कहा कि "भारत ने जो उपलब्धियां प्राप्त नहीं की थीं, उनको भी प्राप्त करने की प्रवृत्ति बहुत गलत है। भारत में इस वृत्ति को भी छोड़ा जाना चाहिए कि जो यहां आदिम युग की बातें प्रचलित हैं उनको स्मरणातीतकाल से चली आती परम्पराओं का अंग मान लिया जाता है। उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा कि भारत में चर्खा भले ही स्वदेशी आन्दोलन का प्रतीक रहा हो, परन्तु यह विदेशों का आविष्कार है और भारत के बाहर से आया है। हम अपने अतीत काल को जो स्वर्णयुग कहकर सम्बोधित करते हैं वह भी इतिहास के सर्वथा विरुद्ध है। चीनी, यूनानी और रोमन नागरिकों की अपेक्षा हमारे देश में ज्ञान की प्यास नगण्य थी। इसीलिए यहां तकनीक का विकास नहीं हुआ। और तो और पहिया हल और बैलगाड़ी भी इस देश में बाहर से आये हैं। उन्होंने यह भी कहा कि विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत में विजय प्राप्त करके यहां तकनीकि के विकास में अभूतपूर्व सहयोग प्रदान किया। उदाहरण के लिए सिकन्दर ने भारत में आक्रमण किया तो भूमध्यसागरीय देशों की तकनीक भारत में आई और जब मुहम्मद गौरी ने भारत को पराजित किया तो यहां रहट (परशियन हबील) और सूत कातने वाला चर्खा भी यहां आया----।"

इतिहास के विद्वान् माने जाने वाले इन प्रोफेसर साहब को यह बताने की आवश्यकता नहीं थी कि भारत में सिकन्दर का आक्रमण ईसा से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पहले हुआ था और मुहम्मद गौरी का आक्रमण १२०० ईसवी के आसपास हुआ था। उससे पहले भारत का जितना प्राचीन साहित्य है उसमें पहिए का वर्णन भी है हल का वर्णन भी है बैलगाड़ी का वर्णन भी है और कपास का वर्णन भी है। विदेशी लोग तो इस बात पर चकित होते थे कि भारत में एक ऐसा पौधा होता है जिस पर कपास होती है। बिना देखे उनको विश्वास नहीं होता था। यदि प्रोफेसर साहब ने भारत के प्राचीन ग्रन्थों का कुछ भी अध्ययन किया होता तो उनको यह कहने की हिम्मत नहीं होती कि भारत में पहिया विदेश से आया है। क्या वेद में रथ का वर्णन नहीं आता? क्या रथ बिना पहिए के बनता है? क्या वेद सिकन्दर से पहले विद्यमान नहीं थे? इतना ही क्यों वेद में तो जलपोत और विमान का तथा अन्य अनेक ऐसे आविष्कारों का वर्णन भी है, जो अभी तक संसार में विद्यमान नहीं हैं। क्या श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम को हलधर नहीं कहा जाता? क्या ये सिकन्दर के बाद पैदा हुए हैं। और जिस रहट (परशियन हबील) की बात वे करते हैं कि वह मुहम्मद गौरी के साथ इस देश में आया तो हम पूछते है कि हितोपेदश और पंचतन्त्र में अरघट्ट का वर्णन नहीं आता? अरघट्ट यह रहट नहीं तो और क्या है? क्या हितोपदेश और पंचतन्त्र मुहम्मद गौरी के बाद लिखे गये हैं। आज तक किसी इतिहासकार ने न तो वेदों को सिकन्दर के बाद निर्मित माना है और न हितोपदेश और पंचतन्त्र जैसे बहुत बाद के ग्रन्थों को भी मुहम्मद गौरी के बाद रचित माना है। जब इस देश में कपास भी थी और चक्र भी था तो चर्खा विदेश से आने की तुक समझ में नहीं आती। विदेश के लोग तो कपास से परिचित तक नहीं थे।

यह ठीक है कि जब विदेशों से सम्पर्क होता है तो आपस में विचारों और तकनीक का लेनदेन भी होता है। कुछ विदेशी हम से सीखते हैं कुछ हम विदेशियों से सीखते हैं। हम मिथ्या अहं की बातों से भारतीय गौरव की कहानियां घड़ने के पक्षधर नहीं हैं, परन्तु इस प्रकार की इतिहास की अनर्गल बातों से भारत की अस्मिता पर होने वाले प्रहार को सहने के पक्षधर भी नहीं हैं। भौतिक गंगा का प्रदूषण शायद करोड़ों रुपये खर्च करके कुछ दूर हो भी जाए, परन्तु इतिहास की गंगा के प्रदूषण को दूर करने के लिए हमें ऐसे प्रदूषित दिमागों को

(शेष पृष्ठ ६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या गांधी जी के विचार आज भी प्रासंगिक हैं?

सत्य अहिंसा के मन्दिर के तुम थे अचल पुजारी।
दलित, अकिंचन, निबल जनों के, चिर सेवक हितकारी।।

आज की भौतिक विचार-धारा और अणुअस्त्रों के आविष्कार ने मानव-जीवन को जिस ज्वालामुखी के कगार पर खड़ा कर दिया है, उससे बचने के लिए वह सतत प्रयत्नशील है, उसका एक ही रास्ता है, वह है मानव-मूल्यों की स्थापना। यही कारण है कि आज गांधी फिर से प्रांसगिक, प्राणदायक और नैसर्गिक मालूम होने लगे हैं। आओ! बापू के जीवन-दर्शन में एक गोता लगाएं और अपने मार्ग को प्रशस्त करें।

अहिंसा, सत्य और प्रेम :

बापू द्वारा अपनाए गए मार्ग में-"अहिंसा परमो धर्मः, सत्यं शिवं सुन्दरम्, वसुधैव कुटुम्बकम्" आदि सूत्र अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे जीवन में धर्म, नीति एवं साहित्य को अनुप्राणित करते आये हैं। धर्म की सभी भारतीय शाखाओं में उनका प्रचुर मात्रा में चलन रहा है। इन गुणों की स्थापना एक दूसरे के बिना सम्भव नहीं है। सत्य और अहिंसा के प्रतिष्ठित हो जाने पर साधक का सबके प्रति भेदभाव नष्ट हो जाता है, और प्रेम भाव स्वयमेव आ जाता है, इन मन्त्रों की छाया में वह सतत आगे बढ़ने लगता है।

शिक्षा :

आज की शिक्षा अधूरी और केवल बौद्धिक मात्र है। गांधी जी की यह मान्यता थी कि शिक्षा में सुधार के बिना भारत का कल्याण नहीं हो सकता। क्योंकि मानव आत्मा, मन और शारीरिक विकास का समन्वित स्वरूप है। सभी का साथ-साथ विकास न होने से मनुष्य का समग्र विकास नहीं हो पाता, और शिक्षा अधूरी रह जाती है। विचारणीय विषय है कि कहीं वर्तमान शिक्षा से हमारा जीवन बनावटी, अधूरा, प्रवंचनापूर्ण और आत्मविरोधी तो नहीं बन रहा है। वर्तमान शिक्षा के कारण आज का शिक्षित समाज से कम से कम श्रम करके अधिक से अधिक धन और विलास की सामिग्री पा लेना चाहता है। या यों कहें कि समाज से अधिक से अधिक लेकर कम से कम देने की इच्छा रखता है। जिसके कारण वर्ग संघर्ष पनप रहा है और समाज में कोहराम मचा है। इस सबसे बचने के और शिक्षा का सही लक्ष्य प्राप्त करने के लिए शिक्षा में सुधार के लिए गांधी जी ने जो विचार रखे थे वह आज भी अपनाने योग्य हैं। उनका कहना था कि इस गरीब देश में शिक्षा खर्चीली न हो, उसमें श्रम का पूरा स्थान हो। इसके साथ ही वह परम्परागत उद्योगों का विकास करने वाली हो, धर्म के प्रति श्रद्धावान् और हर हालत में शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा हो, तभी हम अपनी संस्कृति के अनुरूप शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और अपने देश का विकास कर सकते हैं।

स्वराज्य :

गांधी जी के लिए स्वराज्य एक जीवन्त शब्द है जो इंडीपेण्डेन्ट का पर्यायवाची नहीं हो सकता, यह शब्द स्वराज्य शब्द की बराबरी कर ही नहीं सकता। गांधी जी की मान्यताओं के अनुसार स्वराज्य वह है जो भारत के सात लाख गांवों में बसे, किसानों, कारीगरों और सभी को पेट भरने के लिए रोटी, तन ढकने के लिए कपड़ा और सर ढकने के लिए मकान दे सके। साथ-साथ अमीर और गरीब की खाई कम से कम हो, जातिवाद और वर्गवाद न हों और आदमी अपनी इच्छानुसार रहने को स्वतन्त्र हो। इन सब बातों का समावेश गांधी जी ने कांग्रेस के संविधान में भी कराया था।

गांधी जी ने अपनी दूरदृष्टि से यह अनुमान कर लिया था कि कांग्रेस पश्चिमी सभ्यता की ओर भाग रही है, जिसके कारण वे कांग्रेस को स्वराज्य की दृष्टि से अपर्याप्त मानने लगे थे। कांग्रेस से निराश होकर उन्होंने उससे त्यागपत्र दे दिया और खादी ग्रामोद्योग की रचनात्मक योजना सामने रखी तथा उसे क्रियात्मक रूप दिया जिससे कोटि-कोटि गरीब लोगों की रोटी का सवाल हल हुआ। वे यह भी देख रहे थे कि अंग्रेजों को देश से बाहर निकाले बिना स्वराज्य की कल्पना साकार नहीं हो सकती।

स्वतंत्रता तो मिली, पर गांधी जी के स्वराज्य की तस्वीर नहीं बन पाई। गांधी का त्यागपूर्ण सिपाही भी सत्ता की कुर्सी से चिपक गया, देश अनेक समस्याओं से कराह रहा है, और राजनेता अपनी कुर्सी बचाने में लगा है।

(शेष पृष्ठ २३ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानन्द के कार्यों का मूल्यांकन (विद्वानों की दृष्टि में)

स्वामी दयानन्द अपनी मातृभूमि से बहुत प्रेम करते थे। स्वामी जी ने अंग्रेज़ी का अध्ययन नहीं किया था, इसलिए जो भी कुछ उन्होंने राष्ट्रीय दृष्टि से लिखा, वह विशुद्ध राष्ट्रवाद था उस पर तनिक भी विदेशी पुट नहीं था। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने देशवासियों के हृदय में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा स्वदेशाभिमान की ज्वाला को जगाया। स्वामी जी को देश की परतन्त्रता पर बड़ा दुःख होता था। 'सत्यार्थ- प्रकाश' में स्वामी जी ने जहां कहीं भी स्वदेश चर्चा की है। वहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे देशभक्ति का स्त्रोत फूट निकला हो, जहाँ कहीं देश की पराधीनता से उत्पन्न हुई दुर्दशा का वर्णन किया गया है। वहां ऋषि के हृदय में व्यथा फूट पड़ती है। अपने देश के प्राचीन गौरव का वर्णन पढ़कर पाठक का हृदय भी अभिमान से फूला नहीं समाता। संक्षेप में **"उन्होंने देश में अदम्य राष्ट्रीय भावना उत्पन्न की परन्तु साथ में हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि स्वामी जी का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय था"**। उनके वैदिक उपदेश सारे संसार के लिए थे। उनको किसी भी जाति, सम्प्रदाय, वंश और देश की सीमाओं में बाँधना गलती होगी क्योंकि वे तो मानव कल्याण और विश्वबन्धुत्व का अमर सन्देश देने वाले महर्षि थे।

१- स्वामी दयानन्द के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए मैक्समूलर ने लिखा कि--

"स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म के सुधार पर बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। जहाँ तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वे बड़े उदार हृदय थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किये जिससे मालूम होता है कि वे बड़े विज्ञ थे उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।"

२- फ्रेंच लेखक रोम्या रोला ने लिखा है कि "ऋषि-दयानन्द ने भारत के शक्तिशून्य शरीर में अपनी दुर्धर्ष शक्ति अविचलता तथा सिंह तुल्य पराक्रम फूंक दिया है।"

"भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता एवं साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जागृति के विचारों को क्रियात्मक रूप देने में सबसे अधिक प्रबल शक्ति उन्हीं की थी"

३- मैडम ब्लेवटस्की ने लिखा है कि "यह निश्चित है कि शंकराचार्य के पश्चात् दयानन्द से अधिक संस्कृतज्ञ गम्भीर अध्यात्मवेत्ता, आश्चर्यजनक वक्ता और बुराई पर निर्भीक प्रहार करने वाला भारत को प्राप्त नहीं हुआ।"

४- एमर्सन ने लिखा है कि "यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत के सांस्कृतिक व राष्ट्रीय नवजागरण में स्वामी दयानन्द का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उनकी मान्यताओं और सिद्धांतों ने एक बार तो हीनभावग्रस्त इस जाति को अपूर्व उत्साह से भर दिया।

५- मोनियर विलियम्स ने लिखा है कि स्वामी दयानन्द "एकेश्वरवादी, वेद पर आधारित सिद्धांतों को मानने वाले, प्रगति के समर्थक तथा देशोद्धारक थे।

६- काँग्रेस के संस्थापक श्री ए०ओ०ह्यूम ने लिखा है कि "स्वामी दयानन्द के सिद्धांतों के विषय में कोई मनुष्य कैसी ही सम्मति स्थिर कर ले परन्तु यह सबको मान लेना पड़ेगा कि स्वामी दयानन्द अपने देश के लिए गौरव रूप थे। दयानन्द को खोकर भारत को महती हानि उठानी पड़ी है। वह एक महान् और श्रेष्ठ मनुष्य थे।"

७- डा० राजेन्द्रप्रसाद (प्रथम राष्ट्रपति) ने लिखा है कि "महर्षि दयानन्द के उपदेशों ने करोड़ों लोगों को नवजीवन, नवचेतना और नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हमें व्रत लेना चाहिए कि उनके बताये मार्ग पर चलकर हम देश को शान्ति और वैभवपूर्ण बनायेंगे।"

८- सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन ने लिखा है कि "स्वामी दयानन्द एक महान् सुधारक और प्रखर क्रान्तिकारी महापुरुष तो थे ही, साथ ही उनके विशाल हृदय में सामाजिक अन्यायों को उखाड़ फेंकने की प्रचण्ड अग्नि भी विद्यमान थी। उनकी शिक्षाओं का हम सबके लिए भारी महत्त्व है। उन्होंने हमें महान् सन्देश दिया कि हम सत्य की कसौटी पर कसकर ही किसी बात को स्वीकार करें। (शेष पृष्ठ १६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

दिसम्बर ९३ के अंक में अमर शहीद श्रद्धानन्द के संस्मरण लेख पढ़ा। अतीव प्रेरणाप्रद रहा। यह पत्रिका अपने नामानुरूप दयानन्द के सन्देश का ही निरन्तर प्रचार कर रही है, यह सौभाग्य की बात है। और उस पत्रिका के माध्यम से योगेश्वर श्री कृष्ण के जीवन के विषय में फैली मिथ्या व काल्पनिक बातों का प्रत्याख्यान करके रासलीलादि के विषय में जन सामान्य को जानकारी देते रहें, ऐसी हमें आशा है।

सत्यप्रकाश यादव,
पिलखन वाली, ईस्माईलपुर, जि० बुलन्दशहर

दिसम्बर ९३ की 'अखण्डज्योति' पत्रिका में 'मेडला के आँसू एवम् अनसुलझे रहस्य' लेख छपा है। यह लेख तथ्यहीन और अवैज्ञानिक है। इसमें मरियम आदि ईसाई देवताओं की मूर्त्तियों के रोने की आश्चर्यजनक घटनाएँ दिखाकर ईसाईयत का ही प्रचार किया है। अत: आपसे प्रार्थना है कि आप पत्रिका के माध्यम से इसका खण्डन अवश्य करें।

अश्वनी कुमार द्विवेदी, *चपुन्ना, फर्रुखाबाद*

बीकानेर निवासी श्री बाबूलाल जी लिखते हैं--२४ अक्टूबर ९३ की आर्यजगत् पत्रिका में सम्पादकीय में 'सीता की अग्नि-परीक्षा', 'राम द्वारा सीता का त्याग' और शूद्रकुल में उत्पन्न तपस्वी शम्बूक के वध की घटना को उचित ठहराया है। ये समस्त घटनाएँ रामायण के उत्तरकाण्ड की हैं, जो कि आर्यसमाज की दृष्टि से ही नहीं, अपितु इतिहास के मर्मज्ञों के अनुसार भी प्रक्षिप्त हैं। आर्यसमाज के पत्रों में ऐसी इतिहासविरुद्ध बातों का प्रकाशन करना शोभनीय नहीं कहा जा सकता। ऐसे लेखों का विवेचन आपकी पत्रिका में होना चाहिए।

बाबूलाल, बीकानेर

बी ६९, शास्त्रीनगर मेरठ से श्री रमेशचन्द्र जी सक्सेना लिखते हैं--दिसम्बर ९३ के **'दयानन्दसन्देश'** में तुलसी कृत रामायण समीक्षा में विद्वान् लेखक का यह कथन--यदि थोड़ी देर को वेदों में राम का नाम मान भी लें तो वेदों में इतिहास मानना पड़ेगा, यह पूर्ण रूप से सही नहीं है।

(उपरोक्त बात सही है, गलत नहीं। जब वेदों में लौकिक व्यक्तियों के नाम माने जायेंगे तो वेद में इतिहास भी मानना पड़ेगा और वेद ईश्वरीय ज्ञान भी नहीं हो सकता। समस्त वेदों के पद यौगिक अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय के योग के अर्थ बताते हैं। अत: लौकिक व्यक्तियों, स्थानों अथवा वस्तुओं के नाम वेद में सम्भव ही नहीं हैं। ***(सम्पादक)***

दिसम्बर ९३ का अंक मिला। इसमें शंका-समाधान बहुत अच्छा लगा इसे निरन्तर चालू रखिये। और संस्कार-विधि के विषय में दो विद्वानों के लेख पढ़े। मेरे विचार में--संस्कार संस्कारविधि के अनुसार करायें और पंचमहायज्ञ पंचमहायज्ञविधि के अनुसार। यदि इस बात को मान लिया जाए तो समस्त विवाद समाप्त हो जायें। और श्री छाजूराम जी शास्त्री ने लिखा है कि गीताप्रेस वालों ने सातवें काण्ड को रामायण में नहीं छापा है परन्तु मेरे पास गीताप्रेस से छपी रामायण में सातवाँ काण्ड है।

श्री कृष्ण आर्य, *सुल्तानपुर पट्टी, नैनीताल*

नवम्बर ९३ का दयानन्दसन्देश पढ़ा। इस अंक में 'धर्म को कहाँ कहाँ से बहिष्कृत करोगे' लेख बहुत ही रुचिकर व प्रेरणाप्रद लगा। और आचार्य राजेश जी का लेख भी बहुत अच्छा लगा। ये दोनों विद्वान् ही धन्यवाद के योग्य हैं।

विजेन्द्रपाल गुप्ता, *मुरादनगर*

मेरा लेख एक ही अंक में अविकल छाप दिया, एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। परन्तु लेख का शीर्षक वही रखते तो अच्छा रहता।

प्रज्ञादेवी, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान समय में गुरुकुल पद्धति की प्रासंगिकता

—स्व० प्रो० प्रशान्त वेदालंकार

विद्यार्थी का निर्माण: मूल समस्या

विद्यार्थी अवस्था मानव जीवन की प्राथमिक अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति कच्चे घड़े के समान होता है, जिसे जैसा रंगना चाहे रंगा जा सकता है और जैसा पकाना चाहें वैसा बनाया जा सकता है। यदि उसकी आकृति आपको भद्दी और अव्यवस्थित प्रतीत होती है तो यह दोष उसका अपना नहीं है- दोष उस कुम्भकार का है जिसने उसके निर्माण में असावधानी की है। मेरे विचार में विद्यार्थी सर्वथा निरपराध हैं, उसके निर्माता ही अपराधी हैं। पर आधुनिक शिक्षा-प्रणाली निर्माता की कोई चर्चा नहीं करती, यह गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली है जो उन्हें विद्यार्थी के निर्माण की नींव मानती है। बिना उनके सुधार के विद्यार्थी के सुधार की आशा भी नहीं की जा सकती। यहां उन निर्माताओं के महत्त्व व उनके दायित्व पर प्रकाश डालना प्रासंगिक है।

माता-पिता

अभिमन्यु और नेपोलियन का इतिहास इस बात को सिद्ध करता है कि मां गर्भस्थ बालक का जैसा निर्माण करना चाहे कर सकती है। उस पर जैसे संस्कार डालना चाहे डाल सकती है। मदालसा और जीजाबाई के उदाहरण भी इसी तथ्य के प्रमाण हैं। किन्तु आधुनिक युग नास्तिकता के कारण न आत्मा पर विश्वास करता है और न उससे सम्बद्ध संस्कारों पर। मां की विषयों की ओर अभिरुचि तथा इसी प्रकार की अन्य अंसयम की बातें उदरस्थ बालक के लिए घातक होती हैं, यह आज की बिचारी मां को पता नहीं है। आधुनिक भारतीय समाज अपनी लड़कियों को विश्वविद्यालय की व्यावसायिक शिक्षा दिलाने में गौरव का अनुभव करता है, उसे वह उसके जीवन की आधारभूत शिक्षा मातृत्व के पाठ से वंचित रखता है। जबकि गुरुकुल शिक्षा-पद्धति 'मां' को निर्माता मानकर उसे बालक की प्रथम शिक्षिका मानता है। गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली के आधुनिक व्याख्याकार महर्षि दयानन्द ने शतपथ ब्राह्मण के 'मातृमान्-पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' आदि वाक्य के द्वारा माता-पिता को ही पहला गुरु माना है। फ्रायड ने प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि पागलों के मन की खलबली, पारिवारिक क्लेश, गुरुजन से बहस, अधिकारियों से कलह, एवं सामाजिक तोड़-फोड़ बाल-जीवन की त्रुटियों और दूषित पालन-पोषण के प्रतिबिम्ब हैं और यह दूषित पालन-पोषण माता-पिता का ज्ञात और अज्ञात रूप से अन्याय मूलक कठोर व्यवहार है। अतः सभ्य समाज का यह परम कर्तव्य है कि वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को माता-पिता होने का अधिकार न दे जिसने बाल-पालन-पोषण की शिक्षा न प्राप्त की हो। आज की नासमझ माताएं बच्चा माता-पिता या किसी अन्य बड़े का अपमान करे, उसे अपशब्द कहें, तो उसे डांटने के स्थान पर प्रसन्न होती हैं। बच्चे द्वारा अश्लील हावभाव करने पर सिनेमा के गन्दे गीत गाने पर या नृत्य करने पर यह नहीं समझ पातीं कि उसके ये कुसंस्कार उसे पथ भ्रष्ट कर देंगे- अतः उन्हें और ऐसा करने का प्रोत्साहन देती हैं। पड़ोसी निर्धन बच्चों के प्रति घृणा और द्वेष के भाव जागरित करने में इनका ही हाथ होता है। माता-पिता का परस्पर वैमनस्य अथवा कलह तो बच्चे को सर्वथा अनास्थावान् बना देता है। आज का शिशु जब माता-पिता को केवल धन एकत्र कर उन्हें उस धन से घर में भौतिक सम्पत्ति का संवर्द्धन करने में ही लगा देखता है, इस धन के संचय में वे अनेक बार असत्य-भाषण, बेईमानी, घूस लेना आदि कुकृत्यों में लीन भी देखे जाते हैं। तो बच्चों के मन में माता-पिता तथा अन्य पूज्यजनों के प्रति अश्रद्धा उपजती है या फिर वह भी इस प्रकार के कार्यों को बुरा नहीं समझ पाता। यही कारण है कि गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली अधिक देर तक बालक को माता-पिता के पास नहीं रहने देती।

शिक्षक

विद्यार्थी के अनगढ़ निर्माण में उसके शिक्षक का अपराध भी अक्षम्य है। विद्यार्थी का शिक्षक से सीधा सम्पर्क है, अतः उसके प्रत्येक क्रिया-कलाप का प्रभाव उस पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। उसके खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, चाल-ढाल आदि सभी का वह अनुकरण करता है। उसके चारित्रिक गुणों एवं दुर्गुणों से प्रभावित होता है। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षक की नियुक्ति का आधार उसके चारित्रिक गुण न होकर परीक्षा में उपलब्ध अंक होते हैं। अनेक बार अच्छे अंक उपलब्ध न करने पर भी केवल किसी प्रशंसा-पत्र के आधार पर ही उसे नियुक्त कर दिया जाता है। आज का शिक्षक ब्राह्मण न होकर वैश्य है। वह ज्ञान का प्रचार और प्रसार करने के निमित्त शिक्षक नहीं बनता वरन केवल व्यावसायिक दृष्टि से धनोपार्जन के लिए शिक्षक का बाना पहनता है। उसका उद्देश्य: विद्यार्थी को शिक्षित करना नहीं होता है। परिणामत उसका चित्त अध्यापन में नहीं लग पाता। उसकी सम्पूर्ण शक्ति अधिक से अधिक धन संचित करने में व्यय होती है। उसके लिए वह विद्यार्थी को विद्यालय में न पढ़ाकर उससे अतिरिक्त शिक्षा- शुल्क (ट्यूशन फी) लेकर पढ़ाने की लालसा में रहता है, अथवा हलके स्तर की सहायक पुस्तिकाएं लिखने में या विभिन्न विश्वविद्यालयों से परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाएं लेने में उसका समय लगता है। वास्तविकता यह है कि आज शिक्षक के पास विद्यार्थी को देने के लिए कुछ भी नहीं। परीक्षा में उच्च अंक प्राप्त करने से वह विषय का पण्डित सिद्ध नहीं होता वरन इससे केवल यह प्रमाणित होता है कि उसमें ज्ञान संचित करने की प्रतिभा विद्यमान है। अपनी व्यावसायिक बुद्धि के कारण वह अपनी इस प्रतिभा को भी कुण्ठित कर लेता है। अपेक्षित योग्यता एवम् अध्यवसायात्मक प्रवृत्ति के अभाव के कारण जिस किसी पुस्तक से सामग्री ग्रहण कर विद्यार्थियों के सम्मुख उसे उगल डालने में वह अपने कर्तव्य की इतिश्री समझता है।

आज हमारे देश का शिक्षक अनेक अभावों में पल रहा है। ये अभाव ही शिक्षक को दायित्वहीन बनाते हैं और उनकी दायित्वहीनता छात्र की अनुशासनहीनता का कारण बनती है। अनेक संस्थाओं में शिक्षक को ५सौ रुपया पकड़ा कर दो हजार रुपये की प्राप्ति पर हस्ताक्षर कराया जाता है और शिक्षक को अपनी पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए यह सब सहना पड़ता है- बुभुक्षित: किं न करोति पापम्। उपकुलपतियों एवम् अध्यक्षों आदि की नियुक्ति में संस्तुति भी एक बहुत बड़ा आधार है। पाठ्य-पुस्तकों एवं प्रश्नपत्र आदि के निर्माण का अधिकार केवल उन्हीं को मिलता है, जिनकी पहुंच बहुत ऊंची है। इससे शिक्षक वर्ग में असन्तोष जागरित होता है। असन्तोषी अध्यापक से संतोषपूर्ण अध्यापन की आशा करना दुश्वार है।

समाज

माता-पिता एवं शिक्षक के अतिरिक्त विद्यार्थी पर समाज का प्रभाव पड़ता है। आज हमारे समाज का तथाकथित उच्च वर्ग पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता की चकाचौंध में पड़ा हुआ है, जिसे अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता एवं भाषा आदि सभी से तीव्र घृणा है। इनके बच्चे अश्लील अंग्रेजी फिल्में देखते हैं। अश्लील गानों की धुनों पर अश्लील हाव-भाव करते हैं। विलासमय जीवनयापन के लिए जिस विशाल धनराशि की आवश्यकता होती है, उसे चोरबाजारी, घूस एवं भ्रष्टाचार आदि से एकत्र करने में थोड़ा भी भय नहीं खाते। हमारे देश का विद्यार्थी जो कि प्राय: मध्य वर्ग से सम्बन्धित होता है- इनका अनुकरण करने की चेष्टा करता है। उसके चित्त में भी अपने उच्चवर्ग के सहपाठियों की भांति इस प्रकार का विलासी जीवन व्यतीत करने की हवस उत्पन्न होती है। परिणामत: आज का प्रत्येक विद्यार्थी फैशन, सिनेमा, रेडियो और क्लब के पीछे दीवाना है।

हमारा सम्पूर्ण समाज तीन वर्गों में विभक्त है- एक धनी है और पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता से प्रभावित है। दूसरा मध्यम वर्ग का है, जो उच्च वर्ग का ही अनुकरण करता है, पर साधनों के अभाव में कुण्ठित जीवन व्यतीत करता है। तीसरा वर्ग निर्धन है जो अशिक्षित रहकर देश को भी निरक्षर बना रहा है। वैचारिक दृष्टि से देश का एक वर्ग ऐसा भी है जो भारत की प्राचीन मान्यताओं को महत्त्व देता है। आज का विद्यार्थी इन सब के सम्पर्क में है और इसीलिए वह अन्तर्द्वन्द्व की भट्टी में झुलस रहा है।

गुरुकुल शिक्षा-पद्धति समाज के दूषित वातावरण से पृथक् सात्त्विक वातावरण में छात्र को शिक्षित करने की व्यवस्था करती है। आश्रम-प्रणाली (छात्रावास) गुरुकुलीय प्रणाली की विशेषता है। गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली के आश्रम, आधुनिक छात्रावासों से भिन्न हैं, जहां अध्यापक और छात्र पिता-पुत्रवत् एक ही परिवार का अपने को अंग मानते हैं।

शिक्षा-प्रणाली

शिक्षा व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक एवम् आध्यात्मिक अथवा नैतिक विकास कर उसकी सर्वांगीण उन्नति का साधन है। किन्तु वर्तमान शिक्षा-प्रणाली व्यक्ति की इस प्रकार की उन्नति में साधक नहीं है। उसमें शरीर को पुष्ट करने के लिए किसी सुनियोजित योजना का सर्वथा अभाव है। अंग्रेजी अव्यवस्थित पाठ्यक्रम, दूषित परीक्षा-प्रणाली तथा अंग्रेजी माध्यम के कारण छात्र का बौद्धिक विकास भी अवरुद्ध हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र परीक्षोपयोगी पांच-सात प्रश्नों को रटकर उत्तीर्ण हो जाने के प्रयत्न में रहता है। इसके अतिरिक्त अपने अध्ययन का आधे से अधिक समय अंग्रेजी में लगाने के बाद भी उसमें इतनी क्षमता उत्पन्न नहीं होती कि वह अंग्रेजी के माध्यम से अर्थशास्त्र, वाणिज्य शास्त्रादि को भली प्रकार हृदयंगम कर सके। परिणामत: उसकी सम्पूर्ण शक्ति अंग्रेजी समझने में व्यय होती है, विषय की गहराई में जाने का उसके पास अवकाश नहीं रहता। अंग्रेजी उसकी मौलिक चिन्तन-शक्ति को नष्ट कर देती है। वह गणित, विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विषयों को सीखने में पर्याप्त समय नहीं दे पाता। अंग्रेजी के द्वारा छात्र विदेशों-अमरीका, इंग्लैण्ड एवं रूस आदि की राजनीति, अर्थशास्त्र, वाणिज्यशास्त्र एवं समाजशास्त्र से सम्बन्धित समस्याओं से तो परिचित हो जाते हैं, पर अपने देश की इन विषयों से सम्बन्धित समस्याओं से परिचित नहीं हो पाते। इसी प्रकार चिकित्सा व कृषि विज्ञान आदि के सम्बन्ध में जो निष्कर्ष अमेरिका आदि ने अपने देश के व्यक्ति की शरीर-रचना व भूमि पर परीक्षण करके निकाले हैं, वह हम अपने देश के व्यक्ति व भूमि पर लागू करना चाहते हैं। वस्तुत: हमें ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र का स्वत: विकास करना होगा। यह विकास अपनी भाषाओं को माध्यम बनाकर ही हो सकता है। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में स्वदेशी भाषा व स्वदेशी वेषभूषा की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया है। अत: उसमें उक्त समस्या उत्पन्न नहीं होती।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का आध्यात्मिकता एवं नैतिकता से द्वेष है, अत: वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में भी व्यक्ति के इन गुणों का विकास कर अपने माता-पिता, गुरुजन, परिवार, समाज एवम् राष्ट्र के प्रति आस्था जागरित करने की कोई व्यवस्था नहीं है। भारतीय छात्र का शारीरिक, बौद्धिक एवम् आत्मिक किसी भी प्रकार का विकास न होने के कारण उसमें कुण्ठाएं उत्पन्न हो गयी हैं। इन कुण्ठाओं के ही कारण वह सर्वथा निष्क्रिय हो गया है। वह कुर्सी पर बैठने के अतिरिक्त और कुछ भी कर सकने में असमर्थ है। इसी प्रकार आधुनिक प्रणाली व्यावसायिक दृष्टि से भी अनुपयोगी है। इसका प्रमाण यह है कि आज हमारे राष्ट्र की अनेक समस्याओं में से एक प्रमुख समस्या शिक्षित बेकारों की है। कुल मिलाकर यह शिक्षा-प्रणाली अनास्था, कुण्ठा और असंतोष की जनक है और यह अनास्था, कुण्ठा और असंतोष ही छात्रों के शत्रु हैं।

इसके विपरीत गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली में पले छात्रों में ये दोष उत्पन्न नहीं होते। वे शरीर से पुष्ट, मस्तिष्क से तीक्ष्ण व चरित्र से ऊंचे रहते हैं।

धार्मिक व नैतिक शिक्षा :
क्या समस्या का समाधान है?

पथभ्रष्ट-छात्र वर्ग को सन्मार्ग पर लाने का एक उपाय विद्यालयों में नैतिक शिक्षा का शुभारम्भ करना माना गया है। देश के अनेक विद्यालयों में नैतिक शिक्षा का आरम्भ किया गया है। उससे यह आशा बंधी है कि बाल व युवावर्ग में नैतिकता उत्पन्न होगी और वह समाज तथा राष्ट्र के उत्थान में लग सकेगा।

यहां यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि नैतिक शिक्षा और धार्मिक शिक्षा में भेद है। धार्मिक शिक्षा में जहां अनेकानेक धर्मों का अध्ययन-अध्यापन होता है, वहां नैतिक शिक्षा में प्रत्येक धर्म के सर्वमान्य सिद्धान्तों का विवेचन होता है। पृथक्-पृथक् धर्मों की शिक्षा में धर्मों के साम्प्रदायिक रूप उभरने व उनसे साम्प्रदायिक झगड़ों के होने की संभावना की गयी है। संकीर्ण बुद्धि के शिक्षक धार्मिक शिक्षा देने में हानि कर सकते हैं। पर नैतिक शिक्षा में धर्मों के परस्पर सद्भाव की शिक्षा दी जाती है। नैतिक शिक्षा धर्म के उस सार्वभौम रूप की शिक्षा है जो सब धर्मों को मान्य है, जिसमें सत्य, दया, त्याग, सहिष्णुता, क्षमा, सहानुभूति, धैर्य आदि गुणों का वर्णन होता है।

सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, क्रोध न करो, स्वाध्याय में प्रमाद न करो (तै॰ उप॰) आदि बातें पढ़ाने से किसी को क्या हानि हो सकती है? जिन महापुरुषों ने नैतिकता के उच्चतम शिखर पर अपने को पहुचांया है, उनके जीवन का अध्ययन बालक को उसी प्रकार नैतिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है। अत: उसका अध्ययन तो होना ही चाहिए।

किन्तु यह समझ लेना एक महान् भूल होगी कि नैतिक शिक्षा दे देने मात्र से नैतिकता की सारी समस्या हल हो जाएगी। एक ही गुरु से युधिष्ठिर और दुर्योधन ने नैतिकता का पाठ पढ़ा, पर दोनों एक से नैतिक नहीं बने। दोनों की जीवन-पद्धति में महान् अन्तर था। नैतिक शिक्षा का शुभारम्भ करने से पूर्व इस सत्य को सदा अपने सामने रखना होगा। अपवादों को छोड़कर आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में प्रचलित पाठ्यक्रम प्रत्यक्ष रूप से नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत भले ही न आते हों, किन्तु वे व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अनैतिकता की शिक्षा भी नहीं देते।

एक छोटा-सा बालक भी जानता है कि सत्य बोलना चाहिए, किन्तु केवल जानने मात्र से आचरण में सत्य नहीं आता। प्रत्येक राजनीतिक नेता अपने भाषण में सत्य व धर्म की बात कहता है, नैतिकता के प्रसार व प्रचार की चर्चा करता है, पर उसके अपने जीवन में नैतिकता नहीं होती। राजनीति ही क्यों? धार्मिक संस्थाओं को ही निकट से देखिए। प्रत्येक धार्मिक संस्था में नैतिकता का उपदेश देने वाले आचरण में अनैतिक देखे जाते हैं। परस्पर सद्भाव से रहना चाहिए इसी पर एक दो घण्टे का लम्बा भाषण देने वाले धर्मोपदेशक परस्पर कलह करते हुए देखे गये हैं।

अतः नैतिक शिक्षा देना और नैतिक बनना ये दोनों बातें एक नहीं हैं। ईमानदारी पर बढ़िया निबन्ध लिखने वाला अनेक बार निबन्ध नकल करके लिख रहा होता है। मैं विद्यालयों में नैतिक शिक्षा को प्रारम्भ करने के पक्ष में हूँ, पर उससे समस्या का समाधान नहीं देख पाता हूँ।

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के अनुसार व्यक्ति पर नैतिक शिक्षा का उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि वातावरण का। यदि वातावरण में अनैतिकता है, तो नैतिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी अनैतिक रहता है। इसी कारण गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में यह व्यवस्था की गयी थी कि विद्यार्थी को समाज के दूषित वातावरण से दूर ही रहना चाहिए। इसी प्रकार व्यक्ति पर नैतिक शिक्षा का इतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना कि शिक्षक के अपने व्यक्तिगत जीवन का। यही कारण था कि प्राचीन काल में संसार के भोगों को भोगकर उनसे विरक्त हुए, धनेच्छा से रहित, त्यागी और तपस्वी वानप्रस्थी अध्यापकों द्वारा शिक्षा दी जाती थी।

एकमात्र हल : गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली

(क) **सर्वांगीण विकास**- गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का मानना है कि केवल कुछ पाठ्यक्रम रटवा देना तथा उसमें बच्चों की परीक्षा ले लेना शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकता। देखना यह होगा कि २४ घण्टों में बालक क्या करता है? विद्यालय में केवल पांच सात घण्टों के लिए उसे रखकर हम नैतिक बनाने की पूरी जिम्मेदारी नहीं ले सकते। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली वार्षिक परीक्षा के स्थान पर प्रतिदिन छात्र से पढ़ाई-लिखाई के बौद्धिक कार्य करवाने पर बल देती है। पर केवल बौद्धिक विकास शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। शारीरिक विकास भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। अतः प्रत्येक बालक के लिए खेल, तैराकी, स्काउटिंग, एन॰ सी॰ सी॰ भी अनिवार्य होने चाहिए। ये सब छात्र को अनुशासन भी सिखाते हैं। पर आज की व्ययसाध्य शिक्षा-प्रणाली में इतने साधन नहीं हैं कि प्रत्येक बालक के लिए खेल तथा अन्य कार्यक्रमों की व्यवस्था की जा सके। तपस्या और श्रम पर आधारित गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली ही व्यक्ति के शारीरिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

आधुनिक प्रणाली में एक प्रश्न उपस्थिति से सम्बन्धित है। उपस्थिति छात्र को बलात् किसी विषय को पढ़ाने का उपक्रम है। शिक्षा के क्षेत्र में किसी भी प्रकार का बल प्रयोग अनुचित है। अतः उपस्थिति-प्रणाली भी सदोष है। किन्तु उपस्थिति प्रणाली समाप्त करके, छात्र को बाजारों में आवारागर्दी करने के लिए नहीं छोड़ा जा सकता। इस प्रश्न का भी सशक्त उत्तर गुरुकुल प्रणाली के पास है। जहां शिष्य सदा गुरु के सामने उपस्थित रहता है।

(ख) **समाज व राष्ट्र के विकास की साधक**- गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में छात्र अपने घर से दूर देश के किसी दूसरे भाग में जाता है, जहां अन्यान्य प्रदेशों के छात्र उसके साथ रहते हैं। इससे वह देश की भौगोलिक सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इससे स्वतः ही राष्ट्रीय एकता को भी बल मिलता है। इस प्रकार गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली में राष्ट्र प्रेम अथवा राष्ट्रीयता की शिक्षा की स्वाभाविक व्यवस्था है। छात्रों को देश के गौरवपूर्ण इतिहास का दिग्दर्शन कराना गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली की मांग है। वह छात्र राष्ट्र के साथ इतना तादात्म्य कर लेता है कि वह राष्ट्र की कमियों को हल करने के लिए कटिबद्ध रहता है। ग्राम-विकास, अविकसित जातियों की उन्नति, निर्धन एवं बीमारों की सेवा, प्रौढ़ शिक्षा, विविध क्षेत्र में फैली हुई अराजकता के उन्मूलन आदि कार्यक्रमों का पालन गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में ही सम्भव है। यहां यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक शिक्षा शहरों में सीमित है जब कि गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली शहरों से दूर ग्रामों के पास रहती है। अतः उसमें ग्रामों के विकास के अधिक अवसर हैं।

(ग) **आत्मनिर्भर व्यवस्था**- आज शिक्षा एक अनुत्पादक उद्योग माना जाता है। गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा के साथ कृषि, पशुपालन, उद्योगों की योजना अनिवार्य है। प्राचीन गुरुकुल आत्मनिर्भर होते थे। श्रमदान गुरुकुल शिक्षा-पद्धति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अनिवार्य अंग था। आज भी शिक्षा संस्थानों को आत्मनिर्भर बनाने की योजना बनाई जा सकती है।

गुरुकुलों को आत्मनिर्भर रखने के लिए प्राचीन काल में (१) शिक्षा, (२) अनुदान व (३) सरकारी सहायता तीनों साधनों का उपयोग होता था उस समय सरकारी सहायता की कोई शर्त नहीं होती थी।

यदि व्यक्ति योग्य व सक्षम है तो उसे कार्य करने का पूरा अवसर प्रदान करना चाहिए। वह किस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली चाहता है किन विषयों के अध्ययन अध्यापन पर बल देता है? कैसे पाठ्यक्रम के वह पक्ष में है? यह सब अपने अधीनस्थ प्रजा के परामर्श के साथ वह कर सकता है। यदि किसी विद्वान् शिक्षक को उसकी प्रणाली से मतभेद है तो वह वहीं अपने किसी नये प्रयोग को भी आरम्भ कर सकता है, और अधिक मतभेद होने पर किसी अन्य स्थान पर अपना आश्रम अलग भी खोल सकता है। उस अवस्था में वही उस संस्था का सर्वोच्च अधिकारी होगा। वह अपने साथ वहां अपने शिष्यों व सहयोगियों का एक दल ले जायेगा। तब उस संस्था पर उस व्यक्ति की छाप लग सकती है। जिस कारण वह मुनि वशिष्ठ का आश्रम, विश्वामित्र का आश्रम अथवा याज्ञवल्क्य या कण्व मुनि का आश्रम कहलाने लगता है।

(घ) **बेकारी की उन्मूलक**- गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा क्षेत्र को छोड़कर शेष क्षेत्रों में सेवा-काल सीमित रहता है। इस समय युवक प्रायः २१ वर्ष की आयु में शिक्षा पूरी करके नौकरी प्राप्त कर लेते हैं अथवा नौकरी की तलाश में भटकने लगते हैं। यदि उन्हें दो वर्ष सैनिक शिक्षा व दो वर्ष ग्रामोद्धार के कार्यक्रम में लगा दिया जाए, तो उनकी अवस्था २५ वर्ष हो जाएगी। उधर ५० अथवा ५५ वर्ष की अवस्था के उपरान्त अथवा घर में किसी एक कमाऊ सदस्य के आने के बाद व्यक्ति को अपनी नौकरी छोड़कर शिक्षा के क्षेत्र में आ जाना चाहिए। गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति ५०-५५ वर्ष के उपरान्त ही आता है। शिक्षा के क्षेत्र में आए लोगों का वेतन केवल इतना होता है कि वे मात्र अपना निर्वाह कर सकें। २५ वर्ष से लेकर ५०-५५ वर्ष तक की अवस्था तक ही व्यक्ति में उच्चपद एवम् उच्च वेतन आदि प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षाएं होती हैं-यदि बड़े बूढ़े देर तक अपनी कुर्सियां नहीं छोड़ेंगे तो हम युवा प्रतिभाओं का पूरा उपयोग नहीं कर पायेंगे। बेकारी की समस्या का मूल कारण यही है कि व्यक्ति अपनी लालच की वृत्ति के कारण देर तक कुर्सी से चिपके रहना चाहता है। प्राचीन व्यवस्था के अनुसार राजनीति में भी ५०-५५ वर्ष के उपरान्त व्यक्ति को किसी उच्च पद पर नहीं रहना चाहिए, शिक्षा क्षेत्र में रहकर वे राजनीति का संचालन करें। यदि गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली के अनुसार हम केवल २५-३० वर्ष तक सेवा-काल निश्चित करे दें तो बेकारी की समस्या का उन्मूलन हो सकेगा।

इस प्रसंग में यह बात स्पष्ट करनी अनिवार्य है कि व्यापार राजनीति एवम् आई॰ ए॰ एस॰ आदि राजकीय नौकरियों में अधिक आकर्षण होने के कारण अनेक प्रतिभा सम्पन्न लोग शिक्षा के क्षेत्र में न आकर उधर चले जाते हैं। यदि उक्त व्यवस्था कर दी गयी तो इन प्रतिभा सम्पन्न लोगों का शिक्षा के क्षेत्र में भी उपयोग हो सकेगा। एम॰ ए॰ के उपरान्त जब किसी युवक को एकदम अध्यापक अथवा प्राध्यापक बना दिया जाता है तो उसके पास पुस्तकीय बातों के अतिरिक्त छात्र को देने के लिए कुछ नहीं होता। जब तक पुस्तकीय ज्ञान के साथ सांसारिक अनुभव का मेल न हो जाए, तब तक वह ज्ञान अपूर्ण रहता है।

(ङ) **विषमता उन्मूलक पद्धति**-वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए शिक्षा के क्षेत्र में किसी प्रकार की विषमता भी सहन नहीं की जा सकती। विषमता का मूल कारण पब्लिक स्कूल हैं। इन स्कूलों को अविलम्ब समाप्त किया जाए। वेतन दर आधारित शिक्षा-प्रणाली में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अध्यापकों के भिन्न-भिन्न वेतनमानों का होना भी अनुचित है। इसी प्रकार उत्तीर्णांक प्रवेश के समय आयु एवं योग्यता, सेवाकार्य के लिए अपेक्षित योग्यता आदि के सम्बन्ध में भी सभी विश्वविद्यालयों में असमानताएं हैं। केवल गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली से ही ये विषमताएं समाप्त हो सकती हैं।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली द्वारा संचालित विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की अराजक स्थिति को देखकर अनेक बार यह प्रश्न होता है कि यदि इन सबको बन्द किया जाए तो उससे समाज एवं राष्ट्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा? समाज एवं राष्ट्र के लिए शिक्षा अनिवार्य है। पर क्या इस अनिवार्य शिक्षा की पूर्ति ये विश्वविद्यालय कर रहे हैं? यदि नहीं तो उन्हें बन्द क्यों न कर दिया जाए। इनके अभाव में अनेक विद्वान् अपने अपने विद्यालयों की स्थापना कर लेंगे और छात्र उनमें पहुंचकर शिक्षा प्राप्त करेंगे। अपने द्वारा स्थापित होने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण वे उसके विकास में पूरा ध्यान रखेंगे। छात्रों को वहाँ पारिवारिक वातावरण मिलेगा। उपाधि का महत्त्व समाप्त हो जाएगा। केवल योग्य व्यक्ति ही उस क्षेत्र में रह जाएंगे। यह बात कुछ लोगों को सर्वथा अटपटी लग सकती है? किन्तु यदि शिक्षणालयों की यही अराजक स्थिति रही, शिक्षा-प्रणाली में आमूल चूल परिवर्तन न किया गया, तो बाध्य होकर इन सबको बन्द करना ही पड़ेगा। बिहार में अधिकांश शिक्षण संस्थाएं बन्द पड़ी हैं। अन्य प्रदेशों में भी यह स्थिति आ सकती है।

सच तो यह है कि सांसारिक विषयों में लिप्त माता-पिता तथा सामाजिक बुराइयों से विद्यार्थी को पृथक् रखने के लिए यह आवश्यक है कि शहरों से दूर कुछ विद्यानगरों की स्थापना की जाए, जहाँ विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के रहने का भी प्रबन्ध हो। यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में दूरी अपने आप में कोई महत्त्व नहीं रखती किन्तु उसका सापेक्षिक उपयोग अवश्य है। उन विद्यानगरों में स्थित चलचित्र आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि में इस प्रकार के कार्यक्रम हों जो कि छात्र के विकास में सहयोगी हों।

गुरुकुल प्रणाली की उपलब्धियां

कुछ यह प्रश्न करते हैं कि क्या आज गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली से पढ़कर क्या कोई ऐसे विद्वान् निकले हैं जिनकी उपलब्धियों पर गर्व किया जा सके? आधुनिक युग में खोले गये गुरुकुलों की यह सीमा रही है कि उसमें वेद व संस्कृत, दर्शन, साहित्य तथा आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन की ही व्यवस्था रही है। कहा जा सकता है कि इस दृष्टि से गुरुकुलों से निकले अनेक स्नातकों ने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। ज्ञान, चरित्र और राष्ट्र सेवा के क्षेत्र में इनका अमूल्य योगदान रहा है। यदि गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली को व्यापक रूप दिया जा सके तो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी इससे अच्छे परिणामों की आशा की जा सकती है। गुरुकुलीय प्रणाली से ही देश में सच्चरित्रता आदि गुणों का विकास हो सकता है।

('आर्यसेवक' से साभार)

(पृष्ठ ९ का शेष)

९- लालबहादुर शास्त्री ने लिखा है कि "महर्षि दयानन्द महान् राष्ट्रनायक और क्रांतिकारी महापुरुष थे। उन्होंने व्यावहारिक रूप से जीवन के प्रत्येक पहलू में अपनी छाप छोड़ी है। स्वामी जी को श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाना चाहिए। उन्होंने देश में धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्र में जो काम किया वह अभूतपूर्व है, उन्होंने जो काम पकड़ा उसे पूरी तरह से निभाया। उन्होंने मानवमात्र का कल्याण किया। वह बड़े दृढ़ व्यक्ति थे। उन जैसे क्रान्तिकारी नेता होना विरले ही लोगों का काम होता है। उन्होंने ऐसे समय में देश का, नेतृत्व किया जब बुराइयों की ओर संकेत करना भी कठिन काम होता था। उन्होंने हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का घोष किया और छूतछात तथा जाँतपाँत के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। स्वराज और स्वदेशी की तो उन्होंने ऐसी लहर चलाई जिससे इण्डियन नेशनल कांग्रेस के निर्माण की पृष्ठिभूमि तैयार हो गई।"

(संकलयिता 'अश्वनीकुमार द्विवेदी चपुन्ना, फर्रुखाबाद')

(पृष्ठ ७ का शेष)

साफ करना होगा जो मिथ्याधारणाओं के बल पर इतिहास की इस गंगा को निरन्तर प्रदूषित करते चले जा रहे हैं।"

(आर्य जगत् साप्ताहिक दिल्ली, २९/४/९० के सम्पादकीय से साभार)

इस प्रकार कतिपय प्रदूषणों की चर्चा हमने इस लेख में की। इसके अतिरिक्त भी कुछ और प्रदूषण समाज में व्याप्त हो सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि कुछ जानकार और जागरूक लोग आगे आयें और इन दोषों से मानवों को मुक्त करने कराने के लिए विविध उपायों और साधनों पर विचार करें तथा उन्हें निश्चित कर कार्यान्वित करें, जिससे कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सुख-समृद्धि और सच्चारित्र्य की ओर अग्रसर हो सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक संस्कारों पर उत्पन्न प्रश्नों का समाधान ★

–आचार्य वेदभूषण, अधिष्ठाता,
अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान,
हैदराबाद-२७

परमात्मा की यह सृष्टि युग्म से ही संचालित होती है। विवाह संस्कार की पाणिग्रहण विधि में आया मन्त्र प्रमाण है कि–

*"इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु।*
अथर्व॰ -१४/१/५४

इस मन्त्र में सारी जोड़ियां गिनाई हैं। प्रथम पंक्ति या पद में जो 'उभा' शब्द आया है वह युग्म का ही अनुमोदक है। पूरा अर्थ संस्कारविधि में देख लें। महर्षि ने किया है।

जैसे ये युग्म हैं वैसे ही प्राणी जगत् में भी युग्म हैं इन्हें हम नर-मादा स्त्री-पुरुष अर्थात् अग्नि और सोम कहते हैं। इन्हीं शक्तियों से हमारे देह में सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर बनते हैं।

पुरुष अग्नि प्रधान होता है। नारी सोम तत्त्व प्रधान होती है। विवाह संस्कार में एक और प्रतिज्ञा मन्त्र है जिसमें पुरुष (वर) कहता है 'द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै' अर्थात् मैं द्युलोक हूं तू पृथिवी है=भूलोक है।

संस्कारविधि के गर्भाधान संस्कार में हमारे प्यारे ऋषि लिखते हैं-"**जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं, वैसे उत्तम बलवान् स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होती है।**" (सं॰वि॰ गर्भाधान॰)

महर्षि के इस कथन से स्पष्ट है कि भूमि अथवा खेत स्त्री है और पुरुष बीज है। कृषि में खेत और बीज के अलावा काल का भी महत्त्व है। जिसे ऋतु कहते हैं। मुख्य रूप से दो ही ऋतुएं होती हैं कृषि की दृष्टि से। शीत और ग्रीष्म। शीत के आरम्भ में दीपावली पर एक फसल ऋतु होती है। दूसरी ग्रीष्म के आरम्भ में होली पर। दूसरे शब्दों में कहें तो एक फसल दक्षिणायन की दूसरी फसल उत्तरायण की। इससे सिद्ध है कि दो प्रकार के ऋतुकाल हैं। प्रथम दक्षिणायन का दूसरा उत्तरायण का। रजस्वला होना ही स्त्री रूप भूमि का ऋतु काल है। यह ऋतु चक्र सोलह दिनों का होता है। इसमें प्रथम दिन दक्षिणायन का दूसरा दिन उत्तरायण का। दक्षिणायन में सोमतत्त्व की प्रधानता होती है और उत्तरायण में अग्नि तत्त्व की प्रधानता। इसीलिए उत्तरायण में गर्मी और दक्षिणायन में शीत की प्रधानता होती है। दक्षिणायन रात्रि प्रधान होता है, चन्द्रमा प्रधान होता है सोम प्रधान होता है। उत्तरायण दिन प्रधान होता है। अग्नि प्रधान होता है गर्मी प्रधान होता है। स्त्री के शरीर में यह काल चक्र दक्षिणायन, उत्तरायण या दिन रात के समान ही घूमता है। दक्षिणायन में अर्थात् जो अयुग्म रात्रि में गर्भाधान करेगा वह सोम प्रधान होगा और युग्म में होगा या उत्तरायण में होगा तो आग्नेय गुण की प्रधानता हो जाएगी।

प्राय: कन्या सोमगुण प्रधान होती हैं पुत्र या पुरुष आग्नेय तत्त्व प्रधान होता है।

यदि कारण विशेष से युग्म रात्रि में आर्त्तव अधिक हो जाए तो लड़का हो गया उसमें स्त्री गुणों की प्रधानता होगी और अयुग्म रात्रि में वीर्य आर्तव और वीर्य होगा तो नपुंसक स्त्री या नपुंसक पुरुष उत्पन्न होगा।

श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती द्वारा उठाई गई प्रथम शंका कि-शंका (१) युग्म और अयुग्म रात्रियों में गर्भाधान होने से पुत्र पुत्री के शरीर का निर्माण क्यों और कैसे होता है? क्यों का उत्तर यही है कि-जैसे हर ऋतु में हर बीज आदर्श रूप में उत्पन्न नहीं होता, अपनी ऋतु में ही पूर्ण विकसित होता है। वैसे ही पुत्र और पुत्री भी अपनी ऋतु में ही पूर्ण स्वस्थ व पूर्ण विकसित होते

★ जुलाई १९९३ के 'दयानन्दसन्देश' में स्वामी विद्यानन्द जी ने आर्य विद्वानों से 'संस्कारविधि' पर कुछ प्रश्न पूछे थे। उनके उत्तर दो आर्य विद्वानों ने दिये हैं- एक श्री आचार्य वेदभूषण जी तथा दूसरे-श्री आचार्य वीरेन्द्र मुनि जी। यद्यपि विद्वानों की समता करना अच्छा कार्य नहीं पुनरपि इस लेख को अधिक खोजपूर्ण समझकर पाठकों के लिए अधिक उपयुक्त समझा है। दोनों ही विद्वान् धन्यवादार्ह हैं। (सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। कैसे होते हैं इसका तो उत्तर शरीर विज्ञान-वेत्ता देंगे। हमने व्यवस्था को खोलकर प्रस्तुत कर दिया है।

शंका-(२) वीर्य के अधिक प्रबल होने से पुत्र और आर्तव के अधिक होने से पुत्री के ही शरीर का निर्माण क्यों और कैसे होता है? उत्तर-वैसे ही जैसे दही में शक्कर अधिक हो जाएगी तो वह मीठा हो जाता है और नमक अधिक होने से नमकीन हो जाता है। आर्तव नारी देह का तत्त्व है और वीर्य पुरुष देह का। जो प्रबल होगा वैसा ही देह बनेगा। जो प्रबल होता है विजय उसी की ही होती है। इसमें सन्देह क्यों?

शंका (३) यदि लिंग का निर्धारण वीर्य या आर्तव के न्यूनाधिक्य के आधार पर होता है तो युग्म अयुग्म रात्रियों के साथ इसका सामंजस्य कैसे होगा? उदाहरणार्थ-युग्म रात्रि में आर्तव के अधिक होने अथवा अयुग्म रात्रि में वीर्य के अधिक होने पर सन्तान का क्या लिंग होगा?

उत्तर- युग्म में देह पुरुष का गुण स्त्री के और अयुग्म में देह स्त्री का गुण पुरुष के होंगे।

शंका (४) दश रात्रियों को ऋतुदान के लिए श्रेष्ठ बताया गया है। परन्तु हिसाब से प्रथम चार रात्रियां ग्यारहवीं व तेरहवीं रात्रियां अष्टमी व चतुर्दशी, पौर्णमासी व अमावस्या कुल मिलाकर नौ या दस रात्रियां निषिद्ध होने से शेष केवल छः या सात रात्रियां ही बनती हैं।

समाधान-वैसे तो गर्भाधान के लिए दो रात्रि ही पर्याप्त हैं। एक युग्म वाली दूसरी अयुग्म की। केवल छह या सात वाला हिसाब गलत है। ऋषि ने दस रात्रियां गिना भी दी हैं। जैसे जिनको पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं और बारहवीं तथा चौदहवीं और सोलहवीं ये छह रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें और जिनको कन्या की इच्छा हो वे पांचवीं, सातवीं, नववीं और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें।

यदि कभी इनमें अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा या अमावस्याा आये तो इन तिथियों में गर्भाधान न करें। इन रात्रियों में अमावस्याा और पूर्णिमा दोनों एक साथ नहीं आ सकतीं यह तो निश्चित ही है।

अब जैसे कोई दशवीं को रजस्वला होवे तो उसे पूर्णिमा या अमावस्या को स्नान करना होगा। अब प्रतिपदा से दशमी तक इन दस दिनों में उसे केवल अष्टमी का त्याग करना होगा शेष नौ दिन उसे गर्भाधान के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। गर्भाधान के दिनों की संख्या घटती बढ़ती रहती है। दस रात्रियों में जो विधि अनुकूल उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं आनन्द पूर्वक गर्भाधान किया जा सकता है।

शंका (५) प्रथम चार रात्रियों का निषिद्ध होना स्पष्ट है। शेष में से प्रत्येक के निषेध का क्या कारण है?

समाधान—इसमें अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या आवे तो इन रात्रियों में गर्भाधान न करें। इसका क्या कारण है? इस प्रश्न पर विचार करते समय प्रथम यह बात जान लेनी चाहिए कि- गर्भाधान सदा रात्रि ही में करें, दिन में न करें।

रात्रि में भी गर्भाधान का समय प्रहर रात्रि के बीत जाने और प्रहर रात्रि के शेष रहने तक है। सूर्यास्त से चार घण्टे छोड़कर और सूर्योदय से चार घण्टे पूर्व मध्य रात्रि में गर्भाधान का उचित समय माना गया है आखिर क्यों?

पुरुष अग्नि प्रधान होता है। जब पुरुष उत्तेजित होता है तो उसके देह में ऊष्णता बढ़ जाती है उधर दिन में सूर्य की ऊष्णता भी होती है। जिससे अत्यधिक ऊष्णता के बढ़ जाने से पुरुष के स्वास्थ्य पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ता है। स्त्री के साथ दिन में संभोग करने से ऊष्णता सीमा लांघ जाती है जिससे पुरुष की आँखें अन्धी हो जाती हैं। पाचन यन्त्र यकृत् दुर्बल हो जाता है। अपचन होने लगता है। यहाँ तक कि मनुष्य पागल भी हो जाता है। रात्रि में संभोग प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है। भोजन के दो घण्टे के भीतर भी नहीं करना चाहिए। जैसे दिन में संभोग करने से पुरुष की हानि होती है। वैसे ही पूर्णिमा की रात्रि में नारी में सोम तत्त्व की प्रधानता हो जाती है। स्त्री सोमतत्त्व प्रधान होती है। पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा सोमतत्त्व बरसाता है। इससे पूर्णिमा की रात्रि में स्त्री को उत्तेजित करने से स्त्री के मस्तिष्क पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है। इस दिन गर्भाधान करने से शिशु के मस्तिष्क पर भी दुष्प्रभाव पड़ सकता है। जो जीवाणु भ्रूण में विकसित होता है उसमें समूचे शरीर के अंगों का सूक्ष्म तत्त्व विद्यमान रहता है। अतः यह भी समझना चाहिए कि अभी तो भ्रूण में मस्तिष्क है ही कहाँ? जैसे पूर्णिमा, चतुर्दशी और अष्टमी के दिन संभोग करने से भी गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है। अष्टमी के दिन पुरुष और स्त्री का सूक्ष्म संतुलन नहीं बन पाता जिससे पुरुष के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह सब कुछ सूक्ष्म चिन्तन के आधार पर हम कह रहे हैं। इस पर शरीर विशेषज्ञों को चाहिए कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे अनुसंधान करें। युवक युवतियों पर प्रयोग किए जाने चाहिए और फिर प्रत्यक्ष निष्कर्ष निकाले जाने चाहिए। बच्चों को जैसे चेचक आदि शिशुरोग हो जाते हैं उनका मूल कारण निषिद्ध दिनों में गर्भाधान करना ही है।

महर्षि ने यह सारा विधान मनुस्मृति, सुश्रुत और बृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर दिया है। जिन-जिन देशों में मुक्त यौनाचार होता है। वहाँ मस्तिष्क विकार, पित्त विकार की प्रबलता देखी जा सकती है। अग्नि के बाद पित्त विकृति का होना भी स्वाभाविक है।

शंका (६) पुत्र की इच्छा रखने वालों के लिए छह और पुत्री की इच्छा रखने वालों के लिए चार रात्रियों क्यों विहित हैं?

समाधान-स्पष्ट है कि युग्म रात्रि में स्त्री में आर्तव की न्यूनता और अयुग्म में बाहुल्यता होती है। ये नियम सामान्य रूप में चरितार्थ होते हैं। जो स्त्रियां स्वस्थ व नीरोग होती हैं। रोगी स्त्रियों अपवाद हो सकती हैं। पुरुष के भी रोगी और अल्पवीर्य होने से यह नियम टूट सकता है।

शंका (७) आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अनुसार स्त्री के रज में होने वाले ऐक्स कीटाणुओं के साथ पुरुष के शुक्र में होने वाले ऐक्स और वाई कीटाणुओं का संयोग होने से क्रमश: पुत्र या कन्या का जन्म होता है। इस विषय में आपका क्या कहना है?

हमारा कथन-आपने आधुनिक शरीर विज्ञान के अनुसार लिखा है कि-स्त्री के रज में केवल ऐक्स कीटाणु होते हैं और पुरुष के शुक्र में ऐक्स और वाई कीटाणु होते हैं। ऐक्स से एक्स मिलेगा तो पुत्र और वाई से ऐक्स मिलेगा तो कन्या होगी।

दूसरे मानों में पुरुष के शुक्र में ऐक्स और वाई दो प्रकार के कीटाणु होते हैं और स्त्री के रज में केवल ऐक्स।

ऐक्स और ऐक्स के मिश्रण से बनने वाले पुरुष में ऐक्स और वाई कीटाणु बन रहे हैं। और जिससे एक्स और वाई का संमिश्रण होता है उसके देह में केवल एक्स कीटाणु बन रहे हैं यह बात हास्यास्पद है। एक्स और वाई के संयोग से उत्पन्न होने वाले में एक्स वाई कीटाणु बनने चाहिए और एक्स और एक्स से बनने वाले देह में एक्स कीटाणु बनने चाहिए। क्योंकि शास्त्र कहता है कि-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत: अर्थात् भाव में अभाव और अभाव में भाव नहीं होता है।

आधुनिक शरीर का वैज्ञानिक इससे उल्टी बात कह रहा है कि जिसका देह एक्स और वाई के संयोग से बन रहा है उसके रज में केवल एक्स कीटाणु बन रहे है और जिसका देह केवल एक्स और एक्स के मेल से बन रहा है वह एक्स और वाई कीटाणुओं को जन्म दे रहा है। यह सिद्धान्त भ्रम मूलक और मिथ्या प्रतीत होता है।

कन्या के तत्त्व की बहुलता या प्रधानता से कन्या और पौरुषेय तत्त्व की प्रधानता से पुरुष का देह बनना अधिक युक्ति युक्त और सत्य प्रतीत होता है। अत: प्राचीन शरीर वैज्ञानिकों का पक्ष ही माननीय है।

शंका (८) गर्भाधान संस्कार के आरम्भ में निर्देश है कि-पत्नी पति के वाम भाग में बैठे। पर अन्त में जाकर लिखा है वधू पत्नीत्व को और वर पतित्व को प्राप्त हुए पश्चात्।

वधू पत्नीत्व को और वर पतित्व को, तो सप्तपदी के पश्चात् ही प्राप्त हो जाते हैं। फिर यहाँ ऐसा क्यों कहा गया है? यहाँ दोनों को वेदी के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठने का निर्देश किया है। तब आरम्भ में पति को यथा अभीष्ट मुख क्यों?

समाधान-वास्तव में महर्षि तो सारगर्भित लिखते हैं उनके शुद्ध लेख को हम अपनी भ्रांति से समझ नहीं पाते। यहाँ पर समझ लेना चाहिए कि-गर्भाधान संस्कार पति और पत्नी के लिए ही होता है। इस लिए प्रथम पति पत्नी लिखा गया है। वर वधू के रूप में केवल प्रथम गर्भाधान संस्कार में वे वर वधू ही कहाते सप्तपदी से तो केवल दोनों के मध्य जो समझौता हुआ है वह अमल में आने के कारण वैध रूप ग्रहण कहलाता है। विवाह का मुख्य उद्देश्य सप्तपदी नहीं है। सन्तान की उत्पत्ति मुख्य ध्येय है। अत: गर्भाधान करने की विधिवत् घोषणा कर उन्हें पति पत्नीत्व का अधिकारी बना एक गोत्र का बना देता है। सप्तपदी से कन्या या वधू वर के गोत्र की नहीं होती है। जब वह पूर्ण रूप से समर्पण भाव को स्वीकार करने को समुद्यत होती है तभी पति पत्नी कहाएंगे।

प्रथम वार जब वर वधू गर्भाधान संस्कार में बैठेंगे तब वे पूर्वाभिमुख ही बैठेंगे। तदनन्तर दूसरी बार से वे यथा अभीष्ट भी बैठ सकते हैं।

प्रश्न (९) गर्भाधान नामकरण और निष्क्रमण संस्कारों में पत्नी वाम भाग में क्यों बैठे? जब कि पुंसवन और विवाह सहित सब में दक्षिण में बैठने का विधान है। प्राय: स्त्री को वामांगी क्यों कहते हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधान-बिना संस्कार के स्त्री से संभोग नहीं करना चाहिए। स्त्री भोग की वस्तु नहीं है। केवल सन्तान उत्पत्ति के पवित्र उद्देश्य से ही उसका भोग संस्कार पूर्वक घोषणा करके अधिकार प्राप्त करके ही उसे भोगा जा सके। इस लिए संस्कार की समाप्ति से पूर्व तक अभोग्य जान उसे वाम हस्त की ओर बिठाया जाता है। उत्तर दिशा वाम हस्त की ओर होती है। दक्षिण दिशा दक्षिण हस्त की ओर। जैसे उत्तर नक्शे में ऊपर और दक्षिण नीचे होता है। रति क्रिया अर्थात् संभोग के समय स्त्री दक्षिण में होती है पुरुष उत्तर में। सप्तपदी होते ही पति उतावला न हो जाए अत: उसकी पति पत्नी संज्ञा भी नहीं हुई और गर्भ स्थापन का लाईसेंस अधिकार भी उसे नहीं दिया गया। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रतिबन्ध होता है बिना परिचय और स्वाभाविक रूप से पत्नी की मानसिक सहमति के बिना संभोग करने से अनेक बार स्त्रियां पागल तक हो सकती हैं। गर्भाधान संस्कार के बाद भी उसे रात्रि के दूसरे प्रहर तक धैर्य से काम लेना चाहिए। इस लिए उसे वाम हस्त में बिठलाया गया है। गर्भाधान संस्कार संभोग का स्वीकृति पत्र है पर केवल गर्भस्थापन के लिए।

नामकरण और निष्क्रमण में क्रिया विशेष को अर्थात् बालक को गोद में ले उसको चित्ता लिटा सिर उत्तर में रख पिता की गोद में देना होता है इस कर्म को विधि पूर्वक सम्पन्न कराने के उद्देश्य से माँ को उत्तर में वाम भाग में बिठलाया जाता है। उत्तर का आसन सम्मान का आसन भी है। माता बनने के कारण उसका सम्मान भी हो जाता है और नाम रखने में उसकी इच्छा को प्रधानता देनी होगी क्योंकि वह उत्तरासन उच्चासन पर विराजित है। निष्क्रमण में भी शिशु को पिता के गोद में देने की सुविधा और विधि सिखलाने के उद्देश्य से उसे उत्तर में बिठलाया जाता है। संस्कार कर्म प्रधान होते हैं। व्यावहारिक बुद्धि से काम लेना होता है। बालक को भ्रमण के लिए कहाँ ले जाया जाये इस पर उत्तरासन पर बैठकर वरिष्ठ अधिकारी की सहमति भी आवश्यक होती है। मानसिक दृष्टि से स्त्री को प्रसन्न रखने प्रोत्साहित व सम्मानित करने का यह भी एक उपक्रम विशेष है। संस्कार और यज्ञ सब व्यवहार विद्या और कर्मकाण्ड कहाता है। इसमें कर्म की सुविघा का ध्यान रखकर भी आसन का निर्धारण होता है। गर्भाधान संस्कार में भी पत्नी या वधू को प्रायश्चित्त आहुतियां देते समय पति के सीधे कन्धे का स्पर्श करना होता है। अत: वाम भाग में बिठाने का विधान किया गया है। जिससे कर्म में सुविधा हो।

सामान्यत: पुरुष अग्नि प्रधान होता है। अग्नि का संबंध उत्तरी ध्रुव से है। सोमतत्त्व प्रधान दक्षिणी ध्रुव है अत: स्त्री दक्षिण में बैठती है।

जब देश में वाम मार्ग प्रचलित हुआ तब सारे ही कर्म उलट दिये गये और स्त्री को यज्ञ में वाम भाग में बिठलाया जाने लगा। तभी स्त्री को वामा वामांगी भी कहा गया है।

पति पत्नी का नाता ही सन्तानोत्पत्ति से ही है। संभोग के समय स्त्री दक्षिण में अर्थात् नीचे और पुरुष उत्तर में अर्थात् ऊपर होता है। इस दृष्टि से भी स्त्री को दक्षिण में ही सामान्यत: बिठलाया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि पुरुष मस्तिष्क प्रधान होता है और स्त्री हृदय प्रधान। हृदय का स्थान वाम भाग में है अत: इसे वामा कहते हैं। इस प्रकार तर्क तो पक्ष विपक्ष में दिये जा सकते हैं। पर यथार्थ वैज्ञानिक आधार से स्त्री को सामान्यत: यज्ञ में सीधे हाथ ही बैठाना चाहिए। सुरक्षा की दृष्टि से भी दक्षिण भाग अधिक सुरक्षित होता है।

शंका (१०) गर्भाधान में यज्ञोपरान्त संस्कार के आरम्भ में बीस आहुति देते समय स्त्री अपना दायां हाथ अपने पति के स्कन्ध पर धरती है जिससे सीधे हाथ के कन्धे का स्पर्श हो। इसका क्या कारण है?

समाधान-गर्भाधान के ये मन्त्र प्रायश्चित्त मन्त्र हैं। पति पत्नी अत्यन्त शुद्ध अन्त:करण से युक्त होकर पवित्र विचारों और संकल्पों में डूबकर जब गर्भाधान करते हैं तब गर्भस्थ शिशु भी शिवसंकल्पी संस्कारित होता है। जब पत्नी अपना हाथ पति के दायें स्कन्ध पर धरती है तो मानो वे दोनों जहाँ हृदयों के बन्धन से बंधे हैं वहाँ तन से भी बंधे हैं। सप्तपदी में भी इस प्रकार का हाथ धरवाकर उसकी अन्तिम चरमिति सख्य भाव से ही होती है। सखे सप्तपदी भव। दोनों में परस्पर प्रीति भाव जागृत होता है। गर्भाधान के लिए जिस प्रसन्नता एवम् आनन्द से भरे परिवेश के वातावरण की आवश्यकता है उसका मानसिक आधार तैयार किया जाता है। फिर मानो पति ही अकेला प्रायश्चित्त नहीं कर रहा। अपितु दोनों मिलकर इस यज्ञ को सम्पन्न कर रहे हैं। पत्नी पति द्वारा किये जा रहे कर्म में अन्त:करण से व तन से सहयोगिनी बनेगी। यह अत्यन्त प्रगाढ़ता व मैत्री भाव को जन्म देने का उपक्रम है। परस्पर शारीरिक बन्धन से युक्त हो अपने तन में स्थित समस्त दुर्बलताओं को विकारों को नष्ट करने का सयुग्म प्रयास करेंगे। करते रहेंगे। स्पर्श से झिझक व संकोच का भाव दूर हो जाता है। प्रगाढ़ता जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। घृणा भाव नष्ट होता है। स्नेह बढ़ता है।

शंका (११) कन्या प्राप्ति के लिए विशेष प्रकार के भोजन का प्रावधान क्यों? पुत्र प्राप्ति की इच्छा वालों के लिए क्यों नहीं।

शंका (१२) श्रद्धेय स्वामी जी ने पूरे प्रकरण को ध्यान से नहीं देखा अन्यथा यह शंका उत्पन्न नहीं होती।

कन्या प्राप्ति के लिए सर्वौषधि युक्त दही के सेवन का विधान है और पुत्र प्राप्ति के लिए सर्वौषधि युक्त घृत के सेवन का विधान है जो वनस्पति शास्त्र के आधार पर है।

शंका (१३) दो बार गर्भाधान निष्फल होने पर तीसरी बार पुष्य नक्षत्र युक्त ऋतुकाल में क्यों?

समाधान— यह बात स्पष्ट रूप से जान लेनी चाहिए कि पिण्ड ब्रह्मांड का एक छोटा नमूना है। जिसका संचालन ब्रह्मांड की जड़ शक्तियों के योग से ही होता है। सूर्य से हमारे मस्तिष्क का, वायु से हमारे हृदय का, भूमि से यकृत् का और जल से वृक्क का गहरा नाता है। नक्षत्र वातावरण को प्रभावित करते हैं। वातावरण हमारी देह को प्रभावित करता है। सूर्य का संबंध पुरुष विशेष और चन्द्रमा का स्त्री से विशेष संबंध है। पुष्य नक्षत्र स्त्रियों के यौन संबंधी रोगों के निवारण के लिए उपयुक्त होता है। जैसे ऑपरेशन के लिए बसन्त ऋतु अधिक अनुकूल होती है। वर्षाऋतु बाधक होती है। अब इनके विशेष क्या प्रभाव पड़ते हैं, यह अनुसंधान का विषय है। जिस पर खोज की जानी चाहिए।

शंका (१३) जीव को पुत्र या पुत्री का शरीर देने में असुनेत परमेश्वर का भी हाथ है या यह पूरी तरह मनुष्य के हाथों में है, यदि मनुष्यों के हाथों में है तो उसकी सीमा कहाँ है? यदि कर्म इसमें कारण है तो परमात्मा द्वारा लिंग निर्धारण का आधार क्या है? यदि इसमें कर्म कारण है तो किन-किन कर्मों के फलस्वरूप लड़के या लड़की का जन्म मिलता है?

समाधान—स्वामी जी महाराज का यह प्रश्न बड़ा ही विचित्र है। कुछेक ऐसे प्रश्न होते हैं जिनका पूरी तरह समाधान किसी मनुष्य के वश की बात नहीं। योगी भी परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं, पर परमात्मा की व्यवस्था का पूर्ण बोध इन्हें भी नहीं होता है। ऐसे प्रश्नों के समाधान के लिए मोक्ष रूप पुरुषार्थ को प्राप्त करना होता है।

पर वैज्ञानिक दृष्टि से यह सारी व्यवस्था हमारे अपने कर्मों के आधार पर ही होती है। इस नियम के नियामक प्रभु ही हैं।

किन कर्मों का यह फल होता है, इसमें अनुमान प्रमाण काम करता है। यदि पुरुष और स्त्रियों के गुण कर्म और स्वभाव का सूक्ष्म अध्ययन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जो आत्मा ईर्ष्यालु, देहाभिमानी, मोही, लज्जाशील किंकर्तव्य विमूढ़, कलाप्रिय व रजोगुण प्रधान होती है। वह प्रायः स्त्री जन्म प्राप्त करती है। इसमें और भी सूक्ष्म विवेचना से संशोधन व परिवर्तन और परिवर्धन किया जा सकता है। पर अपने अल्प सामर्थ्य से जानने की विद्या यही है।

श्रद्धेय स्वामी जी ने वैदिक विद्वानों से प्रार्थना शीर्षक से संस्कारों पर अनेक विचारणीय प्रश्न लेख रूप में पूछे हैं।

पूज्य विद्यानन्द सरस्वती स्वामी जी ने इस लेख को अखबारों में देने से पूर्व एक-एक पत्र द्वारा भी हमसे इनका समाधान मांगा था। स्वामी जी के बारे में हमारे मन में कुछ भ्रान्त धारणा बन गई थी। हमारा स्वामी जी से अत्यन्त घनिष्ठ आत्मीयता भरा संबंध है। हमने समझा ये स्वामी विद्यानन्द सरस्वती कोई और ही हैं। जो संस्कारभास्कर ग्रन्थ लिखना चाहते हैं। तो हमारे मन में बात उठी कि--जब वे संस्कारों के बारे में जानते ही नहीं तो क्यों ऐसा दुस्साहस कर रहे हैं?

पर अभी हैदराबाद के निमन्त्रण पर श्री स्वामी विद्यानन्द जी आये और उन्होंने पूज्य स्वामी जी की ओर से इन प्रश्नों के समाधान की बात कही, तब सहसा हमें बड़ा पश्चात्ताप सा हुआ कि--हमें तो पत्र भी मिला था और हमने उत्तर भी नहीं दिया।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती बड़े ही स्वाध्यायशील, गहन चिन्तक और विद्वान् हैं। तब हमें ज्ञात हुआ कि वे संस्कार-भास्कर में सभी विद्वानों का योगदान चाहते हैं। जिससे विश्व में वैदिक संस्कारों के महत्त्व को लोग जान सकें, पर जब ये प्रश्न समाचार-पत्रों में छप गये तब हमने यही उचित समझा कि इन लेखों से जन सामान्य को भी लाभ हो जाएगा। विद्वान् तो वह होता है जो जान लेता है, हमने तो अभी कुछ जाना ही नहीं है। हाँ जानने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। जैसा हमने समझा वैसा समाधान लिख दिया है। इससे प्रश्नों या शंकाओं के समाधान में कुछ सहायता अवश्य मिलेगी। इस विचार से हमने यहाँ समाधान प्रस्तुत किये हैं। ये समाधान केवल गर्भाधान के संबंध में उठाई गयी शंकाओं के हैं। शेष शंकाएं जो अन्य संस्कारों से संबंधित हैं। उनका समाधान हम आगे लेखों में यथासमय प्रस्तुत करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम पर वैदिक रंग

भक्त अमींचन्द जी पाकिस्तान में

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन अबोहर

कुछ समय पूर्व मैं अंजमने हमायत इस्लाम लाहौर द्वारा प्रकाशित कुछ साहित्य का अध्ययन कर रहा था। अंजमन ने चार सौ पृष्ठों की उर्दू की चौथी पुस्तक जो प्रकाशित करवाई है, इसे मैं विशेष रूप से पढ़ता रहता हूँ। कहने को तो यह उर्दू भाषा का ज्ञान कराने के लिए लिखी गई है परन्तु है यह विशुद्ध दीनी पुस्तक। इसमें अल्लाह, रसूल, सुहाना, आँहजरत के निकाह, बहिश्त, नमाज, रसूल की लड़ाइयाँ आदि कई विषयों पर पाठ हैं। यह पुस्तक कई बार छप चुकी है और भारत में भी छपती है और पढ़ाई जाती है।

१- इस पुस्तक को पढ़ते हुए मेरा ध्यान एक कविता ने एकदम खींच लिया। इसे पढ़कर मैं कुछ चौंक पड़ा। कविता पर शीर्षक दिया गया है 'कौमी तरक्की के लिए तरग़ीन' इसका प्रथम पद्य इस प्रकार से है–

उठो नींद से अब सहर हो गई है।
उठो रात सारी बसर हो गई है।।

मेरा ध्यान इस कविता ने इस लिए खींचा कि इसके भाव बहुत अच्छे हैं, यह सरल व सुबोध है। मैं इसे पढ़कर चौंक क्यों पड़ा? इन्हीं दिनों मैंने भक्तराज अमींचन्द जी के प्राप्य व अप्राप्य कई भजनों व गीतों का संग्रह करके सम्पादन किया। मुनिवर गुरुदत्त संस्थान हिण्डौन सिटी ने इसे प्रकाशित किया है। मुझे ध्यान आया कि यह कविता तो मैंने उस संग्रह में देखी है। पाकिस्तान में छपी उर्दू पुस्तक में इसका रचयिता मिर्ज़ा अरशद को बताया गया है। मेरे मन में आया पुनः इसके रचयिता की जाँच पड़ताल की जावे।

आर्य जनता को यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि यह उत्तम रचना, यह प्रेरक कविता भक्तराज अमींचन्द द्वारा ही लिखी गई। इसके प्रमाण मेरे पास एक नहीं तीन हैं। भक्त जी के जीवन काल में छपी दो पुस्तकें मेरे पास हैं। दोनों में यह कविता दे रखी है। एक तीसरी पुस्तक भक्त जी के निधन के कुछ समय पश्चात् छपी। उसमें भी यह छपी मिलती है और भक्त जी को ही इसका रचयिता बताया गया है। अब एक सौ दस वर्ष पश्चात् हमारे मुसलमान भाई इस रचना को अपनाकर इसका प्रचार कर रहे हैं तो यह स्वागत योग्य प्रयास है। वह इसका रचयिता मिर्ज़ा अरशद को मानें या मिर्ज़ा ग़ालिब अथवा मौलाना सनाउल्ला साहेब या मौलाना आजाद को हमें इस पर कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो यहां तक भी कहूँगा कि हमारे समझदार मुसलमान भाई यदि पं० लेखराम कृत सबूते तनासुख अथवा सत्यार्थप्रकाश को किसी अन्य के नाम से छपवा कर प्रचारित करें तो भी हम इस सत्प्रयास का अभिनन्दन करेंगे। भाई भाई में जुदाई की खाई क्यों रहे। सत्य का सूर्य कब तक लुकाया जा सकेगा? यह सूर्य बादलों को चीरकर एक न एक दिन निकलेगा ही।

२- वैदिक सिद्धान्तों को हमारे भाई इस्लाम कहकर ही अपनाना चाहते हैं तो हम इस नीति का भी स्वागत करेंगे। यह 'शुद्ध इस्लाम' अभिनन्दन के योग्य है। हाजी जब हज करने जाते हैं तो वहाँ सिला हुआ वस्त्र नहीं पहन सकते और जूँ तक का मारना भी वर्जित है। यह क्या? याज्ञिकों का यही विधान है। यज्ञ अध्वर है। इसमें हिंसा वर्जित है सो इस व्रत का पालन परम धर्म है। यह इस्लाम का वैदिक रूप है।

३- भक्त जी की कविता के प्रसंग में जब सैद्धान्तिक चर्चा छिड़ गई तो एक और बात बता दें। लुग़ाते किशोरी (फ़ारसी का शब्दकोश) तथा फीरोज उल्लुगात (उर्दू का शब्दकोश) दोनों प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। दोनों में 'बुराक' शब्द के अर्थ पढ़ लें। बुराक पर सवार होकर रसूल अल्लाह के पास गये फिर भेंट करके धरा पर आ गये। पसरूर (पाकिस्तान) में पं० लेखराम जी का बुराक वाली आयत पर ही कई मौलवियों से शास्त्रार्थ हुआ था। सर सैयद अहमद खाँ पण्डित लेखराम जी के सद्ग्रन्थों से प्रभावित होकर उनसे भी अधिक दृढ़ता व प्रबल शब्दों में हज़रत मुहम्मद जी का बुराक पर सवार होकर ऊपर जाना व नीचे आना अस्वीकार करते हैं। अस्वीकार ही नहीं करते, वे इस घटना को झुठलाते हैं।

बोलो वैदिक धर्म की जय

यह है इस्लाम का वैदिक रंग (अब आओ देखें भक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी की उस कविता में क्या है जिसे पाकिस्तान में प्रचारित किया गया है और सब मुसलमान भाई अपने बच्चों को वैदिक धर्म की घुट्टी कैसे घोट घोट कर पिला रहे हैं। मेरे द्वारा सम्पादित "आर्य भजन सुधा" पुस्तक में यह रचना पृष्ठ ८५ पर मिलेगी। मैं अंजमन की पुस्तक से कुछ पंक्तियाँ यहाँ देता हूँ। अंजमन की चौथी पुस्तक में यह सबसे अन्त में दी गई है।

उठो ऐ बुजुर्गों की पत खोने वालो!
उठो बाप दादा की मत खोने वालो!
उठो अपनी अक्ल और सूरत खोने वालो!
उठो अपनी बाकी की गत खोने वालो!
लुटेरों ने लूटा है घर जागो जागो!
चला जाता है मालो ज़र जागो जागो!
नहीं तुमको कुछ भी खबर जागो जागो।
वोह दौलत गई दर बदर जागो जागो।
ज़रा अपनी करवट बदलकर तो देखो।
पड़े ही पड़े आँखें मलकर तो देखो।
ज़माने की रंगत बदलने लगी है।
हवा और आलम में चलने लगी है।
उठो धूप दुनिया की ढलने लगी है।
हर इक कौम गिरकर सम्भलने लगी है।
बड़े बनते जाते हैं छोटे तुम्हारे।
नसीबे हैं किसी दर्जा खोटे तुम्हारे।

भक्त जी ने कभी जाति को ललकारा था पुकारा था और यह कहा था '**ज़माने की रंगत बदलने लगी है**'। हमें हर्ष है कि भले तेल के चश्मों की असीम सम्पदा से मुसलमानी राज्य व कठमुल्ला लोग घृणा व संकीर्णता के प्रचार में खूब संलग्न हैं फिर भी भक्त जी का वचन भविष्यवाणी बनकर सत्य सिद्ध हो रहा है, '**ज़माने की रंगत बदलने लगी है**' इसके प्रमाण हमें पग पग पर मिल रहे हैं। अब अल्लाह मियाँ यद्यपि तख़्त को छोड़ता भी नहीं परन्तु उस पर बैठता भी नहीं। अल्लाह अब तख़्त को अर्श पर (आसमानों पर) छूता भी नहीं। क्यों? यह वीर लेखराम का वीर राजपाल का प्रताप है। यह उनके लहू की रंगत है। यह मेरी कल्पना नहीं। अंजमने हमायते इस्लाम की यही मान्यता है। बोलो- '**वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल।**'

●●

(पृष्ठ ८ का शेष)

यहां यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि गांधी जी से पूर्व ऋषि दयानन्द जी ने देख लिया था कि देश का कल्याण आर्य धर्म और अपनी संस्कृति से ही हो सकता है, यही कारण था कि उन्होंने अपने क्रान्तिकारी जनान्दोलन से धर्म में आई गन्दगी को साफ किया और गांधी जी का रास्ता सरल कर दिया। ऊपर के विवेचन से हमने देखा कि गांधी जी का लक्ष्य मनुष्य का समग्र विकास करना था, और उसे प्राप्त करने के लिए वे जीवन भर प्रयत्नशील रहे। उनके विचारों को देश ही नहीं विदेशी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से सराहा और यही कारण है कि आज भी गांधीवाद पर निरन्तर काम करके मानवता को बचाने को प्रयास किया जा रहा है। आओ हम भी गांधी जी के दर्शन को अपनाकर उनके स्वराज्य की मान्यताओं को पूरा करें।

सबका मंगल हो

--रवि प्रकाश कंसल

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे–

तुलसीकृत रामायण–समीक्षा

(पं॰ छाजूराम शर्मा शास्त्री, विद्यावाचस्पति)

आज हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जब कोई धार्मिक वा राजनैतिक नेता किसी सभा में आता है तो वह स्टेज पर खड़े हो कर करबद्ध पोजीशन में चारों ओर घूम कर उपस्थित जन समूह पर अपनी दृष्टि डालता है। बस वह एक साथ सबसे मिल लेता है। यही राम ने किया था। उनके आने पर अयोध्या में राष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। ताकि सभी नगरवासी एक साथ ही राम के दर्शन कर लें और राम भी अपनी प्रिय प्रजा को देख लें। यह बात न तो तुलसीदास जी समझा सके और न उनके चेले रामायण के पाठक समझ सके।

४२– कुछ अन्य शंका- समाधान
रामचरितमानस में

१- रामवन गमन के पश्चात् जब भरत को अयोध्या आने पर पता चला कि राम चौदह वर्ष के लिए चले गये तो उन्होंने इसका आरोप वशिष्ठ जी पर लगाते हुए कहा कि आपने राजतिलक का मुहूर्त निकाला तो यह क्यों न बताया कि यह मुहूर्त ठीक नहीं है। अतः आप ही इसमें दोषी हैं। तब वशिष्ठ जी ने भरत को समझाया-

सुनहु भरत भावी प्रबल विलिख कहेउ मुनिनाथ।
हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ।।

हे भरत ! ये छः बातें दैव के अधीन हैं। भावी बड़ी प्रबल होती है। जैसी हो भवितव्यता तैसी बुद्धि होय, भावी टलती नहीं, अभावी होती नहीं। जैसा होना था हो गया। तुम धैर्य रक्खो। इसमें मेरा दोष नहीं है। क्योंकि, मैं तो मुहूर्त ही बता सकता हूँ। परन्तु किसी की मृत्यु कब और कहाँ होगी, यह मैं नहीं बता सकता। यह तो विधि का विधान है। इसमें किसी का वश नहीं चलता।

यहाँ पर प्रायः पूछा जाता है कि रामायण में वशिष्ठ जी के कथनानुसार उक्त छः बातें किस प्रकार घटित हुई? अन्वेषण के विचार में निम्नलिखित उत्तर है-

(१) हानि- अयोध्या वासियों की हुई। क्योंकि, सभी अयोध्यावासी रामराज्य देखने के अति इच्छुक थे और भाँति-भाँति से प्रसन्नता मना रहे थे। लेकिन ठीक समय पर रंग में भंग हो गया और सभी हर्ष के स्थान पर शोकसागर में डूब गये। राज्य के बदले में चौदह वर्ष की राम के निर्वासन की दुर्घटना पुरवासियों के लिए कम हानिकारक नहीं थी।

(२) लाभ- ऋषि-मुनि आदि वनवासियों को हुआ। क्योंकि, उन्होंने **ही बहुत पहले रावण** वध के लिए यह योजना बनाई थी कि **श्रीराम को राजतिलक** न होने पाये और उन्हें राज्यच्युत करके **रावण वध** में आगे लाया जाय। पुनः वे सब तथा षड्यन्त्र में सम्मिलित इन्द्रादि देव, गन्धर्व सभी श्रीराम के वनगमन से बड़े प्रसन्न हुए और रावण को मरवा कर जीवन लाभ प्राप्त किया।

(३) जीवन- सुग्रीव, विभीषण और देवों को मिला। क्योंकि, सुग्रीव विभीषण दोनों ही अपने भाइयों द्वारा राज्य से निष्कासित हो कर स्त्रीधन आदि से वंचित हो गये थे और देव लोग रावण से पराजित् हो कर उसके अधीन थे। अतः रावण वध से सब को नव जीवन ही मिला था।

(४) मरण- दशरथ, बाली, खर-दूषण, ताड़िका-सुबाहु, रावण तथा उसके सहायक सैनिक व परिवार सब का मरण हुआ।

(५) यश- भरत, लक्ष्मण, जटायु, हनुमान्, निषादराज केवट तथा शबरी आदि को मिला। वह इस प्रकार-

लक्ष्मण तो चौदह वर्ष पर्यन्त वनवास काल में श्रीराम की सेवा करते रहे। भरत के त्याग का अनुपम उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। जो भाई की गद्दी पर न बैठ कर चौदह वर्ष पर्यन्त पृथ्वी पर सोये तथा उस की भाँति ही कन्द मूल फल खा कर समय काटा।

जटायु ने सीता को रावण के चंगुल से छुड़ाने में अपने प्राण तक गवां दिये। वे सारी रामायण की घटनोओं में बड़े भाग्यशाली निकले। जो राम अपने पिता दशरथ का दाह संस्कार स्वयं न कर सके, वे ही राम बड़ी श्रद्धा से जटायु को पिता समान समझ कर उनका अत्येष्टि संस्कार स्वयं करते हैं।

हनुमान ने तो सीता की खोज में आकाश-पाताल एक कर दिया। मूर्छित लक्ष्मण को संजीवनी ला कर स्वस्थ किया। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध में अनेक राक्षसों का संहार कर राम को विजय दिलवाई। हनुमान की सेवाएँ राम के लिए महान् थीं और राम ने उनकी सेवाओं के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की थी।

निषादराज केवट ने श्रीराम को सत्कार सहित गंगा नदी के पार उतारा और स्वयं राम के साथ चित्रकूट तक गये थे। इसी प्रकार शिबरी ने भी राम का आतिथ्य करके अपनी वास्तविक श्रद्धा का परिचय दिया था। अतः इन सभी को यश मिला।

(६) अपयश– मन्थरा, कैकेयी को मिला। जो कि मिथ्या अनुमान के आधार पर अविचारपूर्वक सरस्वती के कहने पर राम को राज्य से वंचित कराया। जिससे कौशल्या– सुमित्रा सहित स्वयं वैधव्य दशा को प्राप्त हुईं। इनके अतिरिक्त उन को ही अपयश मिला जो राम के वन गमन के लिए दोषी सिद्ध हुए थे।

इस प्रकार केवल राम वनगमन के कारण ये छः बातें संयोग से घटित हुईं। एक ही क्रिया से किसी को लाभ हुआ तो किसी को हानि।

२– राम जन्म के अवसर पर

जब राम का जन्म हुआ तो दशरथ ने प्रसन्नता में बन्दी, मागध सूत आदि सभी को द्रव्य, वस्त्र, गौ आदि इच्छानुसार दान दिया। वहाँ लिखा है–

सरबस दान दिन्ह सब काहू।
जेहि पावा राखा नहिं ताहू।।
तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा।
दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा।।

यहाँ शंका होती है कि जब राजा दशरथ ने अपना सब धन दान में दे दिया तो आपने फिर क्या भोगा? और दान को पाने वाले भी दूसरों को देते गये तो अन्त में वह धन कहाँ गया?

समाधान– 'सरबस' शब्द 'सर्वस्व' का अपभ्रंश है। स्व का अर्थ धन भी होता है। यथा– "स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं वित्रि आत्मीये स्वो स्त्रियां धने–इत्यमरः" यहाँ 'स्व' शब्द धन का वाची है। 'काहू' और 'ताहू' शब्द एकवचन हैं। तब सरबस का अर्थ हुआ सब धन। क्योंकि, विश्वामित्र जब दशरथ से राम-लक्ष्मण को मांगने आये हैं तो दशरथ ने उत्तर दिया–

मांगहु भूमि धेनु धन कोषा। सरबस देहुं आजु सह रोया।।

दशरथ जी अपने पुत्रों को देना नहीं चाहते और सर्वस्व विश्वामित्र को देने के लिए कह रहे हैं। यहां भी सरबस शब्द आया है।

फिर इसका अर्थ यह हुआ कि राजा ने अपना धन आदि जो कुछ भी पास था, उसमें से जो जिस भावना से मांगने आया, वही उसको दिया। 'सब काहू' अर्थात् सब किसी को दान दिया। दूसरे 'सब काहू' का अर्थ सब किसी ने भी होता है। अर्थात् जो धन सम्पन्न व्यक्ति थे उन्होंने भी रामजन्म की खुशी में अपना धन वस्त्र, अन्न आदि जो भी पदार्थ मांगे गये वे सब उन्हें दान में दिये गये।

उसके पश्चात् 'जेहि पावा' जिसने दान प्राप्त किया और यदि वह दुबारा किसी वस्तु की इच्छा से आ गया तो 'राखा नहि ताहु' उसको भी छोड़ा नहीं। अर्थात् उसे दुबारा भी दे दिया।

ऐसा अर्थ करने पर न तो शब्दों का तोड़-फोड़ करना पड़ता और न कोई शंका ही रह जाती। क्योंकि दान भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही दिया जाता है। यदि सब कुछ दे दिया जायगा तो दानदाता क्या भूखा मरेगा। ऐसा दान देना किस काम का जो कंगाल बना दे।

३– दशरथ को निमन्त्रण क्यों न दिया?

सीता को युवती देख जनक ने बल परीक्षा द्वारा उसके विवाह का निश्चय किया। धनुष भंग की प्रतिज्ञा पर विवाह होना था। अनेक राजा सीता को विवाहने की इच्छा से जनकपुरी पहुँचे।

यहाँ प्रश्न किया जाता है कि धनुषयज्ञ के अवसर पर जनक ने राजा दशरथ को निमन्त्रण क्यों नहीं दिया?

उत्तर– दीप-दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो प्रण ठाना।।

जनक के प्रण को सुन कर द्वीप-द्वीपान्तर के राजा जनकपुर आये थे। निमन्त्रण किसी को नहीं दिया गया। फिर दशरथ को ही निमन्त्रण क्यों देते?

४– पंचवटी पर राम-शूर्पणखा संवाद

जब शूर्पणखा विवाह के लिये राम को विवश करने लगी तो–सीताहि चितै की प्रभु वाता। अहै कुमार मोर लघु भ्राता।।

राम सीता की ओर करके बोले कि मेरा विवाह तो हो गया है। यह पत्नी मेरे साथ है। हां, मेरा छोटा भाई लक्ष्मण कुमार है। वह चाहे तो तुमसे विवाह कर सकता है। उससे पूछ सकती हो।

शंका– कुछ लोग राम पर आक्षेप करते है कि लक्ष्मण भी तो विवहित थे, क्वारे नही थे। फिर राम ने शूर्पणखा को लक्ष्मण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास कुमार कह कर क्यों भेजा?

समाधान तुलसी रामायण (छापा मेरठ)– कुमार कर अर्थ कुंआरा नहीं है। अपितु यह है कि-कु= बुरे व खोटे, मार= मारने वाला। अर्थात खोटों को मारने वाला। राम कह रहे हैं- हे शूर्पणखा। तू खोटी और राक्षसी है। सो तू लक्ष्मण के पास जा। वह तेरी अच्छी प्रकार खबर लेगा। इस भाव को ले कर राम ने शूर्पणखा को कह दिया। जिसे वह न समझ सकी।

वाल्मीकि रामायण में ऐसा नहीं कहा। वहाँ तो 'कुमार' शब्द के स्थान पर 'अकृतदार:' शब्द आया है। उसका अर्थ बहुत से लोग अविवाहित करते हैं, जो ठीक नहीं है। उसका सही अर्थ है 'असहकृतदार:' अर्थात जिसकी स्त्री साथ न हो। से लक्ष्मण के प्रति यह ठीक घटता है। क्योंकि उनकी स्त्री साथ में नही थी। इसलिये तुलसीरामायण और वाल्मीकि रामायण के अनेक प्रसंगों में भारी अन्तर है। उक्त अर्थ में न कोई शंका है और न राम पर आक्षेप है।

युद्ध भूमि में लक्ष्मण की मूर्छा से राम को निराशा

४- जो जनतेउँ वन बन्धु विछोहू। पित वचन मनतेउँ नहि ओहू।।

श्रीराम लक्ष्मण को मूर्छि दशा में देख कर उनके जीवन से निराश हो गये और व्याकुल हो कर इस प्रकार कहने लगे- आह। यदि मुझे यह पता होता कि वनवास काल में भाई से वियोग हो जायगा तो मैं पिताजी के वचन न मान कर वन को न आता।

शंका– जब राम सत्य संकल्प हैं तो ऐसा विचार क्यों करते है कि मैं पिता के वचन को न मानता? क्योंकि, वे केकई के समक्ष ही दशरथ से कह चुके थे कि मैं वन को अवश्य जाऊंगा।

समाधान- 'पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहू, यहाँ 'ओहू' शब्द से कई भाव निकलते हैं। एक यह- श्रीराम कहते हैं कि मैं पिता के वचन तो मानता और वन का चला आता। परन्तु, नहिं ओहू' उस सीता की बात मानकर उसे साथ में न लाता। फिर न वह चुराई जाती, न लड़ाई होती और न लक्ष्मण की यह दुर्दशा होती।

दूसरे यह कि लक्ष्मण की बात को न मान कर उसे साथ में न लाता। अकेले वन को आता तो यह दुख क्यों देखना पड़ता। तीसरे यह कि मैं पिता जी के वचन तो भले ही न मानता। परन्तु ओहू' उस बात को मान लेता जो कौशिल्या माता ने कही थी कि-

जो केवल पितु आयसु वाता। तो जनि जाहु जानि बड़ि माता।।

अर्थात राम सोचते हैं कि मैं माता की आज्ञा पिता से बढ़ कर मान लेता और वन को न आता तो यह भाई की दशा क्यों होती। लेकिन पिताजी के कथन को सत्य सिद्ध करने के लिये मैं वन चला आया।

चौथे यह कि मैं पिता जी के उन वचनों को मान कर वन को न आता जो उन्होंने मन्त्री सुमन्त से कहे थे कि राम-लक्ष्मण सीता तीनों को दो-चार दिन वन में घुमा कर और गंगा स्नान करा कर वापिस अयोध्या ले आता। सुमन्त ने मुझसे वापिस लौटने को कहा भी था। मगर मैंने उनकी बात मानी और वन को चला आया। उसी का फल आज भोग रहा हूँ।

वस्तुत: राम यहाँ विकल दशा में आत्मोह के कारण पिछले कई पहलुओं पर विचार करते हैं। क्योंकि रहत न आरत के चित चेतू दु:खी व्यक्ति के चित्त में सावधानी नहीं रहती, वह अधीर हो उठता है और कई प्रकार की मन में कल्पनाएं करने लगता है।

बस उक्त चौपाई का यही अभिप्राय है। मनुष्य होने के नाते राम यही विचार कर सकते थे।

यहाँ इस प्रसंग में एक बात और भी विचारणीय है कि जो लोग राम को ईश्वर का अवतार मानते है, उनसे यह प्रश्न है कि साक्षात् ब्रह्म होकर भी राम यह क्यों न जाने सके कि वन में सीताहरण: बन्धुविछोह आदि दुर्घटनाएँ होंगी? इससे राम के अवतार की धज्जियाँ उड़ जाती हैं।

(क्रमश:)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष ''दयानन्दसन्देश'' पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं-

२११. नि० ला० सुन्दर मंडल कार्मिक अधिकारी पश्चिम रेलवे अजमेर (राज०)
२१२. श्री निवास राव जी, A-2 रेलवे क्वाटर्स सीताफल मंडी, सिकन्द्राबाद (AP)
२१३. श्री दयानन्द गोवर्धन राव चाटे किराना स्टोर रेलवे रोड, परली बैजनाथ, जि० बीड
२१४. प्राचार्य म० गान्धी महाविद्यालय अहमदपुर लातूर (MR)
२१५. महात्मा आर्य भिक्षु आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर, हरिद्वार (UP)
२१६. श्री मंत्री जी आर्यसमाज, पीपाड नगर, जोधपुर (राज०)
२१७. श्री प्रहलादराय पचेरिया C/o सी० के० पटेल एण्ड सन्स, थर्ड फ्लोर, मेहता रोड, बम्बई (MR)
२१८. श्री नरसिंह आर्य (प्रधान) आ० समाज चित्तरी आसफपुर जि० बदायूँ (UP)
२१९. श्री बाबूलाल रामेश्वरदास, जी-ब्लाक ४०, नरौरा रोड, अहमदाबाद (गुजरात)
२२०. श्री रमेशचन्द मित्तल, १३८, पत्थर वाली गली, रुड़की, सहारनपुर (UP)
२२१. श्री मंत्री जी आर्यसमाज सोहनगंज, दिल्ली
२२२. श्री रामबाबू महेशचन्द्र बजाज (पुरानी मंडी) हिंडौन शहर (राज०)
२२३. श्री यादवेश जी मु०पो० उमरेली वाया चम्पा जि० बिलासपुर (MP)
२२४. श्री मंत्री जी, आर्यसमाज सिरोही, (राज०)
२२५. M. R. Sharma Ved Jyoti, 13, Anand Society Baroda
२२६. श्री रघुनाथ आर्य C/o चित्तालिमिया निकल रोड, पो० गारुलिया, २४ परगना (WB)
२२७. भाई बंशीलाल वैदिक वाचनालय C/o M.S. हैबतपुरे विकास नगर जि० लातूर
२२८. डॉ० रणजीतसिंह जी चौधरी हस्पताल पटियाला चौक जींद (हर०)
२२९. श्री विनयकुमार आर्य मु०पो० लिसाढ जि० मु० नगर (UP)
२३०. श्री बस्ती राम खैरवाल S/o श्री नत्थूराम मु० खेड़ा पो० बवानिया जि० महेन्द्रगढ़
२३१. श्री सच्चिदानन्द जी वानप्रस्थी साधनाश्रम जि० फर्रुखाबाद (UP)

धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/94
आर.आर. नं. २५५८७/७३
Post in Delhi PSO Indraprastha
on 2-3/2/94

फरवरी १९९४

बिना टिकट भेजने का लाइसेंस नं.
यू (डी.एन.) १४४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।**

योगदर्शन-भाष्यम्

(महर्षि व्यास-भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द वयाख्योपेत)

व्याख्याता : आचार्य राजवीर शास्त्री

★ योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
★ व्यास-भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
★ महर्षि-दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
★ दर्शनों के परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
★ क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियाँ।
★ अनेक चित्त निर्माण, इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

विशेष जानकारी के लिए सूची-पत्र मँगायें

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☆ ओ३म् ☆

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

सितम्बर, १९९४

वर्ष २२ : अंक ११
दयानन्दाब्द : १७०
विक्रमसंवत् : श्रावण, २०५१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९५

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-६ — स्थापित - १९६६

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
"दयानन्दसन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २-५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- रक्षा बन्धन ✿ श्रावणी पर्व — २
- वेदोपदेश — ३
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ — ४
- वर्णव्यवस्था का आधार-गुण, कर्म तथा स्वभाव है, जन्म नहीं — ५
- वैदिक संस्कारों पर उत्पन्न शंकाओं का समाधान — ९
- हा ! प्राचार्या निर्मला मिश्रा जी चल बसीं — ११
- नारी शिक्षा और वेद पढ़ने-पढ़ाने में एक नवीन बहाना — १२
- दया का भंडार-दयानन्द (भजन) — १२
- मानवीय मूल्यों के शिक्षा-तत्त्व — १३
- नारी जाति का महत्त्व — १७
- गृहपत्नियाँ कैसी हों? — १८
- राष्ट्रीय पुनर्जागरण और महर्षि दयानन्द सरस्वती — २०
- सङ्कल्प — २२
- क्या ८-१० वर्षीय पाणिनीय व्याकरण पढ़ने को वास्तव में ही असमर्थ हैं? — २४
- क्या असली भाव जागेगा? — २५
- मूर्तिपूजा (गीत) — २६

'सत्यार्थ प्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपये, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ रुपये और सजिल्द बारह सौ रुपये, सैकड़ा में प्राप्त करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं-

३४८. श्री रामेश्वर प्रसाद त्यागी S/o श्री विश्वम्भर सिंह त्यागी मु० पो० खाई खेड़ी जि० मुजफ्फर नगर (UP)
३४९. श्री मंत्री जी, आर्यसमाज मंदिर, तिबड़ारोड, मोदी नगर जि० गजियाबाद (UP)
३५०. डॉ० वंशगोपाल जी M.A. धर्मशाला मार्ग, शिशु शिक्षक संस्थान के सामने हरदोई (U.P.)
३५१. NB/SUB :- RAMNIWAS YADAV A Coy 20 KUMAON REGT C/o 56 A.P.O.
३५२. No. 4165542 HAV. BABULAL ARYA A. Coy 20 KUMAON REGT C/o 56 A.P.O.
३५३. हवलदार ओमप्रकाश मु० पो० डेरोली अहीर, जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)
३५४. HAV. ATAR SINGH No 4167083 A Coy 20 KUMAON REGT C/o 56 A.P.O.
३५५. Nb/SUB, OMPRAKASH YADAV A Coy 20 KUMAON REGT C/o 56 A.P.O.
३५६. No 4167535 LINK. BASTI RAM A Coy 20 KUMAON REGT C/o 56 A.P.O.
३५७. श्री प्रकाशचन्द धर्मेन्द्रकुमार S/o महेन्द्रकुमार जैन C/o जैन बुक डिपो S.B.I के सामने सीहोरकैन्ट भोपाल MP
३५८. सिपाही चरणसिंह जी आर्य HQ कम्पनी A Coy 20 KUMAON REGT C/o 56 A.P.O
३५९. डॉ० श्री ओमप्रकाश जी शर्मा पूर्व क्षे० आ० / यू० अ० सीवता सदन गवां (बदायूं) (UP)
३६०. श्री रामकुमार शर्मा मोहल्ला मुक्तीपाड़ा पो० रेवाड़ी जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)
३६१. श्री हुनमानसिंह जी आर्य भाई श्री जयराम यादव मु० पो० ततारपुर जि० अलवर (राज०)
३६२. M/s ACHARYA WATCH CLINIC AT/PO :- ODA GAON DISTT. PURI (ORISSA)
३६३. श्री मंत्री जी आर्यसमाज, रेलवे रोड अम्बाला शहर, (हर०)
३६४. श्री मंत्री जी आर्यसमाज, पोरबन्दर म० दयानन्द मार्ग, पोरबन्दर, ३६०५७५
३६५. श्री भगवानदास मदनलाल जी मेन बाजार महेन्द्रगढ़ (हर०)
३६६. श्री जयबीरसिंह S/o श्री विजयपालसिंह मु० पो० भारसी जि० मुजफ्फर नगर (U.P.)
३६७. प्रधान कैन्टून मैण्ट आर्यसमाज मंदिर, सदर बाजार, लखनऊ २२६००२ (U.P.)

धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। -महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव से ही मानना वेदोक्त है।

नारायणः ऋषिः। पुरुषः देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

फिर उसी सृष्टि विद्या का उपदेश किया जाता है ।।

ओ३म्- **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।**
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत ।।

(यजु॰ २२।२२)

पदार्थः-(ब्राह्मणः) वेदेश्वरयोर्विद् अनयोः सेवक उपासको वा (अस्य) ईश्वरस्य (मुखम्) मुखमिवोत्तमः (आसीत्) अस्ति (बाहू) भुजाविव बलवीर्ययुक्तः (राजन्यः) राजपुत्रः (कृतः) निष्पन्नः (ऊरू) ऊरू इव वेगादिकर्मकारी (तत्) (अस्य) (यत्) (वैश्यः) यो यत्र तत्र विशति=प्रविशति तदपत्यम् (पद्भ्याम्) सेवानिरभिमानाभ्याम् (शूद्रः) मूर्खत्वादिगुणविशिष्टो मनुष्यः (अजायत) जायते।।

सपदार्थान्वयः- हे जिज्ञासवः! यूयमस्य ईश्वरस्य सृष्टौ (ब्राह्मणः) वेदेश्वरविद् अनयोः सेवक उपासको वा (मुखम्) मुखमिवोत्तमः (आसीत्) अस्ति। (बाहू) भुजाविव बलवीर्ययुक्तः (राजन्यः) राजपुत्रः (कृतः) निष्पन्नः। (यद् ऊरू) ऊरू इव वेगादिकर्मकारी (तद् अस्य) (वैश्यः) यो यत्र तत्र विशति=प्रविशति तदपत्यम् (आसीत्) अस्ति। (पद्भ्याम्) सेवानिरभिमानाभ्यां (शूद्रः) मूर्खत्वादिगुणविशिष्टो मनुष्यः (अजायत) जायते, इत्युत्तराणि यथाक्रमं विजानीत।।

भाषार्थः- हे जिज्ञासु लोगो! तुम (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (ब्राह्मणः) वेद और ईश्वर का ज्ञाता, इनका सेवक वा उपासक पुरुष (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम (आसीत्) है। (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल-वीर्य से युक्त (राजन्यः) राजपुत्र=क्षत्रिय (कृतः) बनाया है। (यत्) जो (ऊरू) ऊरू=जंघाओं के तुल्य वेग आदि कर्म करने वाला है (तद्) वह (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (वैश्यः) जहाँ-तहाँ देशों में प्रवेश करने वाले का पुत्र वैश्य (आसीत्) है। (पद्भ्याम्) सेवा और निरभिमान से (शूद्रः) मूर्खता आदि गुणों से युक्त मनुष्य (अजायत) उत्पन्न होता है। ये उत्तर (पूर्वमन्त्र में पूछे प्रश्नों के) क्रम से जानो ।।

भावार्थः- ये विद्या-शम-दमादिषूत्तमेषु गुणेषु मुखमिवोत्तमास्ते ब्राह्मणाः, येऽधिकवीर्या बाहूवत् कार्यसाधकास्ते क्षत्रियाः, ये व्यवहारविद्याकुशलास्ते वैश्याः, ये च सेवायां साधवो-विद्याहीनाः पादाविव मूर्खत्वादिनीचगुणयुक्तास्ते शूद्राः कार्या-मन्तव्याश्च।

भावार्थः- जो विद्या, शम, दम आदि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हैं, उन्हें ब्राह्मण, जो अधिक वीर्य=बल वाले मनुष्य बाहू के तुल्य कार्य साधक हैं, उन्हें क्षत्रिय, जो व्यापार विद्या में कुशल हैं, वे वैश्य और जो सेवा में श्रेष्ठ, विद्या से हीन, पांव के तुल्य मूर्खता आदि नीच गुणों से युक्त हैं, उन्हें शूद्र समझना और मानना चाहिए।।

अन्यत्र व्याख्यातः- (क) (ब्राह्मणोऽस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखमासीत्०) इस पुरुष की आज्ञा के अनुसार जो विद्या, सत्यभाषणादि उत्तम गुण और श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न होता है, वह मुख की भांति मुख्य कर्म, गुणों के सहित होने से मनुष्यों में उत्तम कहाता है। (बाहू राजन्यः कृतः) और ईश्वर ने बल, पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया है। (ऊरू तदस्य०) खेती व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणों से वैश्य वर्ण सिद्ध होता है। (पद्भ्यां शूद्रः) जैसे पग सब से नीच (निम्न) अंग है वैसे मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ग सिद्ध होता है।

(ऋ० भाष्य० भूमिका, सृष्टिविद्या०)

(ख) (प्रश्न) इसका अर्थ यह है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और शूद्र पगों से उत्पन्न हुआ है। इसलिए जैसे मुख न बाहु आदि और बाहु आदि न मुख होते हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते हैं।

(उत्तर) इस मन्त्र का अर्थ जो तुमने किया है, यह ठीक नहीं, क्योंकि यहाँ (मन्त्र में) पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उस के मुखादि अंग नहीं हो सकते। जो मुखादि अंग वाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वशक्तिमान्, जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता, प्रलयकर्त्ता, जीवों के पुण्य-पापों की व्यवस्था करने हारा, सर्वज्ञ, आत्मा मृत्युरहित आदि विशेषणों वाला नहीं हो सकता। इसलिए इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब से मुख्य उत्तम हो, वह ब्राह्मण, (बाहू) 'बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्' (शतपथ) बल वीर्य का नाम बाहु है, वह जिसमें अधिक हो, वह (राजन्यः) क्षत्रिय हो, (ऊरू) कटि के अधो भाग और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम ऊरू है। जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से ले जावे, आवे, प्रवेश करे, वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीच अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुणों वाला हो, वह शूद्र है।। (स० प्र० चतुर्थसमु०)

('दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर' से उद्धृत)
व्याख्याता- श्री आचार्य सुदर्शनदेव शास्त्री

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

जुलाई ९४ का 'दयानन्दसन्देश' प्राप्त हुआ। इसमें 'आर्यत्व की वेदना' लेख बहुत पसन्द आया। मैं जब से आर्यसमाज के संपर्क में आया हूँ तभी से मेरे मन में यह प्रश्न घूम रहा था। मेरा विचार यह है कि वर्तमान परिस्थिति में महर्षि के विचारों तथा कार्य शैली का अनुसरण करने की महती आवश्यकता है।

(रविशंकर, धनबाद)

'दयानन्द-सन्देश के स्वाध्याय करने से जहाँ भ्रान्तियों का निवारण हो जाता है, वहाँ वैदिक सिद्धान्तों का भी ज्ञान हो जाता है। यह पत्रिका अपने नाम के अनुरूप सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। आपके ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित साहित्य भी सस्ता तथा उत्तम प्रकाशन है। मेरा एक सुझाव है कि सत्यार्थप्रकाश का मूल्यांकन जैसे प्रेरणाप्रद लेखों को पुनः प्रकाशित किया जाये।

(राजेन्द्रकुमार आर्य, आर्यसमाज ईशानगर (महोली, सीतापुर)

मैं लगभग ४० दैनिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ मंगाकर पढ़ता रहता हूँ। परन्तु मुझे 'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका ही अच्छी लगती है क्योंकि इसके लेख ऋषि दयानन्द के विचारों का ही प्रचार-प्रसार करते रहते हैं।

(श्रवणकुमार आर्य, ग्राहक संख्या-... करमसाना, सिरसा हरियाणा)

जुलाई मास के 'दयानन्द सन्देश' में डा० सूर्यकान्त ... का लेख 'अघटित इतिहास बनाने का छल' छपा है। लेख ... मुझे कोई आपत्ति नहीं है, वह तर्क संगत ही है। किन्तु ... जो लेख 'नवभारत टाइम्स' में छपते रहते हैं, मैं उनसे सहमत नहीं हूँ।

(रघुवीर वेदालंकार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णव्यवस्था का आधार-गुण, कर्म तथा स्वभाव है, जन्म नहीं

-राजवीर शास्त्री

ब्राह्मण कौन होता है?

शौचमास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरुपूजनम् ।
प्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लक्षणम् ।।

अर्थ- जिनमें ये गुण हों वे ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी होते हैं- जो शौचम्=स्वाभाविक रूप से तन, मन से शुद्ध रहते हों, जिनकी आस्तिक्यम्=ईश्वर और वेदों के प्रति दृढ आस्था हो, जो वेदादिधर्म शास्त्रों के स्वाध्याय में निरत रहते हों, जो अपने गुरुओं का हृदय से सम्मान करते हों, विद्वान् अतिथियों का सत्कार करते हों और जो नित्य देवयज्ञ=अग्निहोत्र करते हों।

शान्ताः सन्तः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः।
क्रोधं कर्तुं न जानन्ति एतद् ब्राह्मणलक्षणम्।।

अर्थ- वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है कि जो शान्त स्वभाव वाला हो, जिसके आचार-व्यवहार शुद्ध हों, जो सब से मित्र भाव रखता हो, जो सब प्राणियों के हित में लगा रहता हो और जो कैसी भी परिस्थिति हो पर क्रोध करना न जानता हो

सन्ध्योपासनशीलश्च सौम्यचित्तो दृढव्रतः।
समः स्वेषु परेषु च एतद् ब्राह्मणलक्षणम्।।

अर्थ- जो नियम पूर्वक प्रातः सायं सन्ध्या करता हो, जिसका मन सौम्य= दया से पूर्ण हो, जो व्रतों के पालन करने में दृढ़ता रखता हो, और जो पक्षपात रहित होकर अपने तथा दूसरों के साथ समता का व्यवहार रखता हो, वह ब्राह्मण कहाता है।

(दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह से)

महर्षि मनु, महर्षि व्यास तथा महर्षि दयानन्द की मान्यता-

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।।

(मनु॰ १।८८)

ब्राह्मण के दो मुख्य कर्म हैं- पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना ये छः कर्म ब्राह्मण के हैं।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।। भ॰ गीता ।

अर्थ- (शमः) मन से बुरे काम की इच्छा भी न करना और उसको अधर्म में कभी प्रवृत्त न होने देना, (दमः) श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोककर धर्म में चलाना (तपः) सदा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होकर धर्मानुष्ठान करना (शौच) बाहर की शुद्धि जलादि से और भीतर की सत्यासत्य के विवेक से सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से पवित्र रहना (क्षान्तिः) निन्दा स्तुति आदि से होने वाले हर्ष-शोक को छोड़ के धर्म में दृढ़ निश्चय से रहना, (आर्जव) कोमलता, निरभिमान, सरलता, सरल स्वभाव रखना, कुटिलतादि दोषों को छोड़ देना (ज्ञान) वेदादि शास्त्रों को पढ़कर विवेकशील बनना (विज्ञान) पदार्थों का विशेष ज्ञान करके उनसे उपयोग लेना (आस्तिक्य) वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्वापर जन्मादि में विश्वास करना, ये १५ कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहिए। (स॰प्र॰ ४ समु॰ से संकलित)

उपरोक्त ब्राह्मण के कर्मों में कहीं भी जन्म को या रजवीर्य के संयोग से ब्राह्मण बनने की बात नहीं कही है। अतः स्पष्ट है वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण और कर्म ही होते हैं, जन्म नहीं। इसी बात की सूत्र ग्रन्थ भी पुष्टि करते हैं-

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ। अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।। (आपस्तम्ब धर्म सूत्र २।५।११।१०-११)

अर्थात् धर्माचरण से निम्न वर्णस्थ मनुष्य अपने से उत्कृष्ट वर्ण को प्राप्त कर लेते हैं और अधर्माचरण से मनुष्य अपने वर्ण से गिरकर अपने से निकृष्ट वर्ण में हो जाते हैं।

वर्णव्यवस्था विषयक कतिपय आशंकाएँ

प्रश्न- जिसका जन्म जिसके रज-वीर्य से हुआ है, वह बदल कर दूसरे वर्ण का कैसे हो सकता है?

उत्तर- ब्राह्मण के योग्य शरीर रज-वीर्य के संयोग से नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता। देखिए मनुस्मृति का प्रमाण-

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥
(मनु० २।८)

अर्थ-(स्वाध्यायेन) सकल विद्या पढ़ने-पढ़ाने, (व्रतैः)-ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि नियम पालने, (होमैः) अग्निहोत्रादि होम, सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने, (त्रैविद्येन) वेदस्थ, कर्म, उपासना ज्ञान विद्याओं के ग्रहण, (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने (सुतैः) सुसन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथि के सेवनरूप पंच महायज्ञों, (यज्ञैः) अग्निष्टोम आदि तथा शिल्प विद्या-विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को (ब्राह्मी) वेद और परमेश्वर की भक्ति के योग्य ब्राह्मण का शरीर बनाया जाता है।

प्रश्न-आप ने जो यह बात कही है यह प्रचलित परम्परा के विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं है?

उत्तर-आपकी यह बात सत्य है कि प्रचलित परम्परा जन्म के आधार पर ही वर्णव्यवस्था चल रही है और इसीलिए इसके विरुद्ध एक विचारधारा बढ़ती जा रही है। यदि इस समय भी वर्णव्यवस्था के मूल आधार को नहीं अपनाया गया तो लोग इसके विरोधी होकर इसके प्रामाणिक ग्रन्थों का ही विरोध करने लगे हैं। इस लिए अभी समय है सचेत होने का। देखो, असत् पुरुषों की चलायी परम्परा को छोड़ने का भी आदेश धर्म शास्त्र स्पष्ट रूप से दे रहा है

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥
(म०नु० ४।१७८)

अर्थात् जो सत्पुरुषों से चलाया गया पथ है, उसी पर चलना चाहिए। असत्पुरुषों से चलाये मार्ग पर नहीं। जो ऐसा ही आग्रह करते हैं कि परम्परा का मार्ग ही श्रेष्ठ है तो उनसे पूछना चाहिए कि किसी का पिता दरिद्र है और पुत्र धनाढय हो जाये तो क्या उस धन को फैंक देवे अथवा पिता अन्धा हो, उसका पुत्र भी अपनी आखों को फोड़ लेवे अथवा पिता कुकर्मी, दुर्व्यसनों से ग्रस्त हो, क्या उसका पुत्र भी कुकर्म ही करता रहे? इसलिए उत्तम कर्मों का सेवन और दुष्कर्मों का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।

जो कोई परम्परावादी दुराग्रह वश रज-वीर्य के योग से ही वर्णव्यवस्था मानता रहे, तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़कर ईसाई, मुसलमान, चाण्डालादि हो गये हैं, क्या उनको भी ब्राह्मण ही मानते रहोगे? यदि कहो कि उसने ब्राह्मण के कर्मों को छोड़ दिया है, इसलिए ब्राह्मण नहीं कहला सकता, फिर तो कर्मानुसार ही वर्णव्यवस्था माननी चाहिए और यही व्यवस्था सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर महाभारत पर्यन्त चलती रही है। देखिए कतिपय प्रमाण-

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥
(शान्ति० १८८।१०)

सृष्टि के प्रारम्भ में एक ब्राह्मण वर्ण ही था, कोई वर्ण विभाग नहीं था। बाद में कर्मों के आधार पर क्षत्रियादि वर्ण बने।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥
(मनु० २।१६८)

अर्थात् जो ब्राह्मण वेदों को न पढ़कर अन्यत्र परिश्रम करता है, वह जीते हुए ही अपने कुल सहित शूद्र भाव को प्राप्त हो जाता है।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद् वैश्यात् तथैव च॥
(मनु० १०।६५)

अर्थ- जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो, वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है। वैसा ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न होकर गुण, कर्म, स्वभाव से शूद्र की भांति हो तो वे ब्राह्मणादि शूद्र हो जाते हैं।

शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततो स्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः॥
(महाभारत)

अर्थ जो शूद्र हो कर भी धर्माचरण करता है मैं उसे ब्राह्मण मानता हूँ। इसका अभिप्राय यह है कि चारों वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष व स्त्री हों वह वह उसी वर्ण में गिना जावे। इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने अपने गुण, कर्म, स्वभाव युक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं और सभी को उन्नति करने के समान अवसर मिल जाते हैं।

प्रश्न- जो किसी के एक ही पुत्र या पुत्री हो, वह दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण में प्रविष्ट हो जायें, तो उनके माता-पिता की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायेगा, अतः वर्णव्यवस्था की व्यवस्था जन्म मूलक ही होनी चाहिए।

उत्तर- वर्णव्यवस्था की व्यवस्था विद्यासभा और राजसभा मिलकर करते हैं। इसलिए अपने अपने लड़के-लड़कियों के बदले अपने अपने वर्ण के योग्य दूसरे लड़के-लड़कियां मिल जायेंगे और किसी के भी वंशोच्छेदन की बात नहीं होगी।

प्रश्न- यह लड़के-लड़कियों के बदलने की व्यवस्था ठीक नहीं है, क्योंकि वेद में ऐसा करने का निषेध किया है। ऋ० म० ७ सूक्त ४ में आठवें मन्त्र में कहा है-

"नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।।"

अर्थात् दूसरे के पुत्र या पुत्री को अपना पुत्र या पुत्री कभी नहीं मानना चाहिए।

उत्तर- नियम दो प्रकार के होते हैं एक सामान्य दूसरे अपवाद। सामान्य नियम अपवाद के क्षेत्र को छोड़कर चरितार्थ होते हैं। सामान्य नियम के अनुसार यह बात ठीक है कि दूसरे के पुत्र को अपना नहीं समझना चाहिए। परन्तु यह उसका अपवाद नियम ही है कि गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुकूल न होने पर अपना पुत्र भी विरोधमूलक कलह का ही कारण बन जाता है। अतः बदलने में ही सुखवर्धक हो सकता है और मन्त्र के अन्तिमचरण में इस बात की पुष्टि भी की है- **'नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः'** अर्थात् (नः) हमें (वाजी) गुण, कर्म, स्वभाव से समता होने से बलवान् (अभीषाट्) शत्रुओं-विरोधियों का पराभव करने वाला तथा (नव्यः) नवजात= तुल्यपुत्र प्राप्त हो। इससे स्पष्ट है उत्तराधिकारी वही पुत्र अच्छा हो सकता है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव हमारे जैसे हों। अन्यथा कैसे कैसे दुष्परिणाम होते हैं, यह सब वर्तमान समाज में देखा जा सकता है।

प्रश्न- यह वर्ण-व्यवस्था किस आयु में लागू की जा सकती है?

उत्तर- इस बात का समाधान भी मनु जी स्वयं कर गए हैं। जैसे कि कहा है-

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजराऽमरा।।

(मनु० २।१४८)

अर्थात् छात्र व छात्राएं जिन गुरुजनों के पास पांचवें वर्ष से लेकर १६ वें वर्ष तक छात्राएँ और २४ वें वर्ष तक छात्र पढ़ते रहे हैं, वे गुरुजन ही उनके शील स्वभावादि की परीक्षा करके वर्णों का निर्धारण करेंगे, और उसी वर्ण में वे दीक्षित होंगे और यह वर्ण निर्धारण ही अजर तथा अमर होता है।

प्रश्न- गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुसार वर्ण व्यवस्था मानने पर तो एक मनुष्य का वर्ण एक ही दिन में कई कई बार परिवर्तित हुआ करेगा। क्योंकि गुण, कर्म तथा स्वभाव दिन में कई बार बदलते रहते हैं।

उत्तर- आप की यह आशंका सत्य नहीं है। कर्म दो प्रकार के होते हैं- एक मुख्य दूसरे गौण। मुख्य कर्म वे होते हैं जिनके आधार पर किसी की जीवन-यात्रा चलती है। गौण कर्म वे होते हैं जो कि अपने जीवन को सुविधापूर्वक व्यतीत करने के लिए मनुष्य करता रहता है। उदाहरण के लिए प्रत्येक मनुष्य अपने कपड़ों को धोता ही रहता है परन्तु धोबी वह कहलाता है जो पारिश्रमिक लेकर आजीविका के हेतु कपड़े धोता है। अतः आजीविका के कामों से ही वर्णों का व्यवहार होता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति ब्राह्मण के घर जन्म लेकर रसोईये का काम करके अथवा प्याऊ पर पानी पिलाकर गुजारा करता है तो उसे ब्राह्मण कैसे कहा जा सकता है। ब्राह्मण के घर जन्म लेकर व्यक्ति मुसलमान बनकर गोमांस की दुकान खोल लेता है, क्या उस व्यक्ति को ब्राह्मण के रजवीर्य से उत्पन्न मानकर ब्राह्मण कहा जा सकता है? धिक्कार है ऐसी जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था को?

वर्ण-व्यवस्था के विकृत होने के कारण

वर्ण और जाति के अन्तर को न समझना- 'वर्ण' शब्द का अर्थ है- वरण करना। व्यक्ति कर्मों के अनुसार जिस आजीविका को स्वीकार करता है वह उसी वर्णवाला कहलाता है। इसलिए वर्ण परिवर्तनशील है और जाति का लक्षण है-

(क) जिसे रूप-रंग देखकर पृथक् पृथक् पहचाना जाये। जैसे- गाय, भैंस आदि।

(ख) दूसरा लक्षण है- समानप्रसवात्मिका जाति अर्थात् जिनका प्रसव= सन्तान उत्पत्ति करना समान हो। जैसे गाय, घोड़ा आदि। ये सभी अपने जैसी सन्तान को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार जाति परिवर्तनशील नहीं होती। जब से हमने दोनों शब्दों को पर्यायवाची मान लिया है, तभी से वर्ण-व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूषित होती जा रही है।

प्रश्न- आर्योद्देश्यरत्नमाला में स्वामी दयानन्द यह स्वीकार करते हैं- जिस वस्तु का जो स्वाभाविक गुण होता है, वह गुणी से पृथक् कभी नहीं होता। अतः जीवात्मा के गुणों में परिवर्तन न होने से वर्णों का परिवर्तन भी सम्भव नहीं है। जैसे अग्नि का गुण जलाना या प्रकाश करना है, इस गुण को अग्नि से पृथक् नहीं किया जा सकता।

उत्तर- यह आपका कथन सत्य है कि गुण-गुणी का नित्यसम्बन्ध है। परन्तु ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व तथा शूद्रत्व न तो जीवात्मा के स्वाभाविक गुण हैं और न शरीर के ही, अपितु आत्मा के ये नैमित्तिक गुण हैं। नैमित्तिक गुणों का परिवर्तन होता रहता है। जैसे जल का शीतलता स्वाभाविक गुण है, परन्तु अग्नि के संयोग से उष्णता का गुण आ जाता है किन्तु कालान्तर में वह पृथक् भी हो जाता है।

प्रश्न- मनुस्मृति में अनपढ़ ब्राह्मण को भी ब्राह्मण मानते हैं। देखिए-

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥
(मनु॰ २।१५७)

अर्थात् जैसे काठ से बना हाथी और चमड़े से बना मृग है वैसे ही अनपढ़ ब्राह्मण होता है, परन्तु इनके नाम तो रहते ही हैं। अतः आप अनपढ़ को ब्राह्मण क्यों नहीं मानते?

उत्तर- मनु के अभिप्राय को न समझकर ही आपको भ्रान्ति हुई है। अनपढ़ ब्राह्मण को ब्राह्मण कहना ही निरर्थक है। इससे अगले श्लोक से मनु का अभिप्राय स्पष्ट हो रहा है-

यथा चाज्ञेऽफलं दानं विप्रोऽनृचोऽफलः॥

अर्थात् ऐसे नामधारी ब्राह्मण को दान देनादि व्यर्थ है। अथवा वेद विद्या से रहित व्यक्ति को ब्राह्मण कहना व्यर्थ है।

प्रश्न- यजुर्वेद के 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्॰' मन्त्र में तो स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मण उस परमात्मा का मुख है इत्यादि। फिर आप इसे स्वीकार क्यों नहीं करते?

उत्तर- इस का उत्तर महर्षि दयानन्द ने यह दिया है- जो मुख आदि अंगों से ब्राह्मण आदि उत्पन्न हो तो अपने उपादान कारण के सदृश ही ब्राह्मण की आकृति गोलमटोल होनी चाहिये। क्षत्रियों की आकृति भुजा के सदृश लम्बी, वैश्य की आकृति जांघ के सदृश और शूद्र की आकृति पग के समान। परन्तु ऐसी आकृतियों के न होने से मन्त्र का अर्थ यही ठीक है कि परमेश्वर ने सृष्टि की उन्नति के लिए मुख, भुजा, जंघा और चरणों के गुणों से युक्त व्यक्तियों को ब्राह्मणादि वर्णों में बनाया।

प्रश्न- क्या जिनके माता-पिता अन्य वर्णों के हैं, उनकी सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकती है? ऐतिहासिक प्रमाण देकर स्पष्ट करें।

उत्तर- हाँ। हो सकते हैं, अतीत काल में भी होते रहे हैं और भविष्य में होते रहेंगे। जैसे छान्दोग्य के उपनिषद् **(छान्दोग्योपनिषद् ४।४।२-५ महाभारत अनु॰ ४।४८, ३।१९)** में जाबाल ऋषि अज्ञात कुल से, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण से ब्राह्मण, और मातंग ऋषि चाण्डालकुल से ब्राह्मण हो गये थे। इससे स्पष्ट होता है कि जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला हुआ, वह ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता रहा है।

वेद में चारों वर्णों के लिए समान प्रार्थना और वेद विद्या पढने का समान अधिकार-

(१) **रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।**
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥
(यजु॰ १८।४८)

हे परमेश्वर! हमारे राज्य में ब्राह्मणों में, राजाओं में, वैश्यों में तथा शूद्रों में तेजस्विता प्रदान कीजिए।

(२) **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।**
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्यायच स्वाय चारणाय॥
(यजु॰ २६।२)

अर्थात्- परमेश्वर मनुष्य मात्र को उपदेश करते हैं कि मैं जैसे परोपकारार्थ कल्याणी वेदवाणी का उपदेश ब्राह्मण, क्षत्रियों के लिए करता हूँ, वैसे ही वैश्यों व शूद्रों के लिए भी करता हूँ। मुझे ये सभी प्यारे हैं। और जो मानव समाज में नृशंस चोर लुटेरे डाकू आदि हैं तथा चाण्डालादि हैं उन्हें भी वेद पढ़ने का अधिकार देता हूँ।

(३) **प्रियं मां दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च।**
(अथर्व॰ १९।३२)

अर्थात् हे दुष्टों के संहारक और शिष्टों के संरक्षक परमेश्वर! मुझ को ऐसा बनाओ कि मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी का प्यारा बन जाऊँ। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक संस्कारों पर उत्पन्न शंकाओं का समाधान

-आचार्य वेद भूषण अधिष्ठाता अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान, हैदराबाद- २७

स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती की जुलाई १९९३ के दयानन्दसन्देश में संस्कारविधि पर उठाई गई शंकाओं का समाधान क्रम में यह तीसरा लेख है। प्रथम लेख क्रमश: फरवरी ९३ तथा मई ९४ के दयानन्दसन्देश के अंकों में हमने प्रस्तुत किये हैं। विगत दो लेखों में गर्भाधान-पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कारों में उठाई गई शंकाओं को दे दिया गया है। प्रस्तुत लेख में जातकर्म और नामकरण संस्कारों पर उठाई गई शंकाओं का समाधान प्रस्तुत करने का हम यत्न कर रहे हैं।

जातकर्म संस्कार में उठाई गई शंका इस प्रकार है।

जातकर्म संस्कार

शंका- दस रात्रि तक प्रसूता के सिर की ओर कलश भर के रखने का क्या प्रयोजन है?

समाधान- मान्यवर स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती अनन्त स्वाध्यायशील मनीषी हैं। पर संस्कार मार्तण्ड ग्रन्थ के लेखन के प्रसंग में स्वामी जी महाराज ने संस्कारविधि एक ओर से पलटनी आरंभ की और जहाँ तहाँ शंकाएँ उठती गईं उन्हें स्वामी जी ने अंकित कर आर्य विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। यदि स्वामी जी इन शंकाओं पर स्वयं ही विचार करें तो उन्हें अनेक शंकाओं का समाधान संस्कारविधि में ही मिल जाता।

यह प्रसंग हम यहाँ इसलिए उठा रहे हैं ताकि स्वाध्याय-शील आर्य विद्वानों को शंकाओं के समाधान खोजने में अधिक सुविधा हो जाए और वे अपनी शंकाओं का समाधान स्वयं ही खोज सकें। हमारे शरीर का रोम रोम जिस महर्षि का ऋणी है वे बड़े विद्वान्, मन्त्र द्रष्टा, आदित्य ब्रह्मचारी तथा महायोगी थे। महर्षि द्वारा प्रदत्त सारी व्यवस्थाएं ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त महर्षियों द्वारा दी गई व्यवस्थाएं हैं।

आजकल आर्यजगत् में यह प्रवृत्ति उभार पर है कि महर्षि के ग्रन्थों में भारी दोष है? उनका संशोधन किया जाना चाहिए। जबकि वास्तविकता यह है कि- जिन्हें महर्षि के लेख में दोष दृष्टिगोचर होते हैं वे दोष उनके अपने ही अज्ञान स्वरूप उत्पन्न होते हैं। अत: महर्षि के लेखों में संशोधन की आवश्यकता नहीं है। संशोधन तो स्वयम् उन्हें अपने ही मस्तिष्क का करना चाहिए।

महर्षि जो भी व्यवस्था देते हैं वह व्यवस्था आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण देकर ही महर्षि प्रस्तुत करते हैं। यदि उन प्रमाणों को और उन मूल ग्रन्थों के संदर्भों को ध्यान पूर्वक देखा जाए और समझा जाए तो स्वयं शंका निवृत्त हो जाती है?

जातकर्म संस्कार में जहाँ जल से भरा कलश प्रसूता के सिरहाने धरने की व्यवस्था दी गई है वहाँ एक आर्ष वचन दिया गया है जो इस प्रकार है-

ओम् अपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ।
एवमस्याᳫं सूतिकायां सपुत्रिकायां जाग्रथ॥

(पारस्कर गृह्य सूत्र- १।१६।२२)

पारस्कर ने यह वचन कहाँ से लिया है इसका अनुसन्धान अपेक्षित है। पर जल का कलश भर कर रखने का प्रयोजन इस आर्ष वचन से स्पष्ट हो जाता है। जल अपने अन्य तीन महाभूतों को जागृत करता है। जल का स्पर्श पाकर वायु भी जागृत होता है। जल के छींटे देने से अग्नि भी धधकने लगती है। जल के छींटे से भू तत्त्व भी गतिशील हो उठता है। जलाशयों के तट पर समुद्र तट पर यदि हम जायेंगे तो अनुभव करेंगे कि- वहाँ का वायु अधिक गतिशील होता है। जल रहित क्षेत्र के वायु में और जलीय क्षेत्र के वायु में गति का जागृति का भेद प्रत्यक्ष ही देखा जा सकता है।

लुहार और सुनार अपनी भट्टियों में निरन्तर जल का छींटा देकर उसे धधकाते रहते हैं और धरती पर भी जब कभी छुट-पुट बूँदाबाँदी होती है तो एक प्रकार का गन्ध वातावरण में फैल जाता है। गन्ध धरती का गुण है। वह जल से जागृत होकर अपनी गन्ध को वातावरण में बिखेर देता है।

इसी प्रकार जब हम नेत्रों पर छींटा देते हैं तो नेत्र जागृत हो जाते हैं। जब त्वचा पर डालते हैं तो त्वचा का आलस्य दूर हो जाता है। उसमें ताजगी आ जाती है। इसी प्रकार अचमन करने से हमारी जठराग्नि प्रदीप्त हो उठती है।

प्रसूता को दस दिनों तक प्रकाश और वायु रहित अर्थात् जहाँ वायु का सीधे प्रवेश न हो ऐसे कमरे में रखा जाता है। प्रसूता और बालक दस दिनों तक अपने कक्ष में लेटे ही रहते हैं। ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति में जल का भरा कलश बहुत सौम्य रूप में उन्हें जागृति देता जाता है।

जिस प्रकार महाभूतों को जागृत रखता है। वैसे ही कलश में रखा हुआ जल प्रसूता और उसकी सन्तान की जो पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं उन्हें भी जागृत रखने में सहायक बनता है।

प्रभु रचित यह सृष्टि स्थूल रूप में तो आश्चर्यजनक व अद्भुत है ही पर सूक्ष्म रूप में कहीं और अधिक आश्चर्यजनक है। जैसे एक वस्त्र में सूत का ताना बाना होता है ठीक वैसे ही सृष्टि की एक एक दिशा में एक एक महाभूत का केन्द्र है। इन पांच महाभूतों में यदि चन्द्रमा को परिगणित कर लिया जाए तो कुल छह शक्तियाँ हो जाती हैं। जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये पंच महाभूत तथा छठा चन्द्रमा।

सृष्टि में छह दिशाएँ हैं। एक प्राची अर्थात् पूर्व दिशा दक्षिणा अर्थात् दक्षिण दिशा, प्रतीची अर्थात् पश्चिम दिशा उदीची अर्थात् उत्तर दिशा ध्रुवा अर्थात् नीचे की दिशा और ऊर्ध्वा अर्थात् ऊपर की दिशा।

प्रभु ने इन छहों दिशाओं में छह अधिपतियों के केन्द्र बना दिए हैं।

जैसा कि वैदिक सन्ध्योपासना के मनसा परिक्रमा के छह मन्त्र अर्थात् अथर्व वेद के तीसरे काण्ड के सत्ताईसवें सूक्त के प्रथम मंत्र से छठे मन्त्र तक जो मन्त्र हैं ये सृष्टि विज्ञान के इस रहस्य को उद्घाटित करते हैं।

इन दिशाओं में यथाक्रम अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु तथा बृहस्पति ये छह देव छहों दिशाओं के अधिपति हैं। अग्नि तत्त्व का ही एक मुख्य रूप सूर्य है और इसी का दूसरा रूप सोम या चन्द्रमा है। इन्द्र वायु का देवता है जो दक्षिणी ध्रुव में दक्षिण दिशा में स्थित है। पश्चिम में वरुण देवता है जो विशाल सागर के रूप में स्थित है। उत्तर में सोम है, विद्युत् जिसका प्रतिनिधि है। विष्णु अधिपति नीचे का है यह धरती रूप है और बृहस्पति ऊपर का अधिपति है, जो आकाश का अधिपति है। प्रत्येक केन्द्र से एक विशेष प्रकार की तरंगें एक छोर से दूसरे छोर तक सतत प्रवहमान रहती हैं। इन्हीं सतत प्रवहमान तरंगों में सभी प्राणियों के पिण्ड अपने जीवन का यापन करते हैं? एक निश्चित काल तक ये देह ब्रह्माण्ड से इन छह तत्त्वों को प्राप्त करते हुए सूक्ष्म शक्तियों को धारण किए रहते हैं। एक ओर से स्थूल अन्न, जल, वायु और अग्नि तत्त्व को प्राप्त कर ये प्राण युक्त बने रहते हैं दूसरी ओर ये सूक्ष्म तरंगें इन्हें ब्रह्माण्ड के इन केन्द्रों से प्रवहमान हो सिंचित करती रहती हैं। प्रसूता के सिर की ओर अर्थात् पश्चिम दिशा में यह जल कलश जल की सूक्ष्म तरंगों को प्रसूता व शिशु के देहों पर पड़ने वाली तरंगों को सूक्ष्म रूप से गतिशील बनाए रखते हैं।

इस प्रकार पिण्ड व ब्रह्माण्ड के कण कण से एक चेतना बनी रहती है। चूँकि प्रसूता एक कमरे के भीतर रहती है। जिस कमरे में प्रकाश, वायु आदि का प्रवेश अत्यन्त ही कम हो पाता है अतः कमरे में स्थित ये तत्त्व कुछ क्षीण रहते हैं। कलश का जल उनमें चेतना फूँकता है। उसी चेतना का प्रभाव प्रसूता व शिशु के देह में जो देवरूप ज्ञानेन्द्रियाँ हैं उन्हें गतिशील बनाए रखने में यह जल सहायक सिद्ध होता है।

जैसे वृक्ष अपनी जड़ों से अन्न, जल, वायु का ग्रहण करते ही हैं पर उनके पत्ते व शाखाएँ ऊपर वायु से भी ऊर्जा ग्रहण करती रहती हैं। ऐसे ही मानव देह में हमारा मुख मंडल पूर्व व पश्चिम से अग्नितत्त्व को ग्रहण करता है। आधे समय पूर्व से और दूसरे आधे समय पश्चिम से। कारण कि हमारी पृथिवी घूमती है। अतः इनकी स्थिति बदलती जाती है। सीधे हाथ की हथेलियाँ वायु की तरंगों को और उल्टे हाथ की हथेलियाँ सोम तत्त्व को विशेष रूप में खींचती हैं और ग्रहण करती हैं। पैरों के तलवों से हम भू तत्त्व को ग्रहण करते हैं और सिर से आकाश तत्त्व को ग्रहण करते रहते हैं।

(क्रमशः)

(पृष्ठ १६ का शेष)

अतएव महाराज भर्तृहरि ने अपने 'वैराग्यशतक' में लिखा है-

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी।
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः॥
एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे ! कस्माद् भयं योगिनः॥

अर्थात्, हे मित्र ! धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी गृहिणी है, सत्य ही मित्र है, दया बहिन है, मन का संयम ही भ्राता है------ जिसका ऐसा परिवार है कहो तो फिर उसे किसका डर है? (किसी का नहीं)

पुराणों के अनुसार ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद जीव मनुष्य योनि में आता है। किसी शायर के शब्दों में-

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पै रोती है।
आदमी होता है पैदा बहुत दिनों के बाद॥

अतः हमको उपरोक्त मानवीय गुणों को अपनाना चाहिए और अच्छे कार्यों को करते हुए सन्मार्ग पर चलना चाहिए। जिससे यह नर-तन सफल हो सके।

उपरोक्त पाँचों मानवीय गुणों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। इनको अपनाने से व्यक्ति महान् बन जाता है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हा ! प्राचार्या निर्मला मिश्रा जी चल बसीं

–प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन अबोहर

अबोहर क्षेत्र के एक गांव में आर्यवीर दल का शिविर लगाया था। वहाँ से लौटा तो श्रद्धेय आचार्य विशुद्धानन्द जी की जीवन संगिनी प्राचार्या निर्मला जी के निधन का दुःखद समाचार मिला। पता नहीं परलोक में कौन सा महासम्मेलन चल रहा है जो हमारे बड़े-बड़े महारथी भागे भागे वहाँ जा रहे हैं। श्री पं० शान्तिप्रकाश जी के लिए यहां भी बहुत काम थे परन्तु वे सब काम काज छोड़कर या यहां के काम ठप्प करके परलोक वालों का निमन्त्रण पाकर चलते बने। पुरुष तो जा ही रहे थे, अब आचार्या निर्मला भी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने चली गई हैं। जो कमी थी वह पूज्य पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने पूरी कर दी है।

न जाने माधवाचार्य जी ने या किसी अन्य पोंगापंथी पुराने शंकराचार्य ने कोई वेद विरुद्ध अनाप शनाप बात कह दीं है जो पाखण्ड खण्डन व सत्य का मण्डन करने के लिए ये विद्वान् वहां जाने के लिए इतने उतावले हो गये। वहाँ तो पहले ही पं० मनसाराम जी, पं० बिहारीलाल जी, पं० बुद्धदेव जी, पं० ब्रह्मदत्त जी व पं० लोकनाथ जी जैसी कई विभूतियां व्रिराजमान हैं फिर भी ये पुण्यात्माएँ हम से विदा हो गई हैं।

प्रथम बार आचार्या निर्मला जी के दर्शन मैंने १९६४ ई० में उनके घर पर किये थे। तब आचार्य विशुद्धानन्द जी घर पर नहीं थे। मेरे एक मित्र रामप्यारा जी ने कहा कि यहाँ एक परिवार में बच्चों की मातृभाषा संस्कृत है। मैं उस परिवार के दर्शन करने चला गया। प्राचार्या निर्मला जी मेरे आने पर बहुत प्रसन्न हुईं।

संस्कृत प्रेमी, धर्म निष्ठ, सुयोग्य सन्तान को जन्म देने वाली यह देवी मर कर भी चिरजीवी रहेंगी। आपके प्रतिभा-सम्पन्न बच्चों को देखकर हृदय खिल जाता है। आचार्य विशुद्धानन्द जी बाबा करपात्री के घिनौने वार का शास्त्रोक्त युक्तियुक्त उत्तर देकर सारे आर्यजगत् में सम्मानित हो गये। यह अद्भुत कार्य कदापि न हो पाता यदि प्राचार्या निर्मला जी इस लेखन कार्य में पतिदेव का साथ न देतीं।

आचार्य विशुद्धानन्द जी को परमेश्वर ने मस्तिष्क दिया है। विद्या व ऊहा दी है परन्तु, स्वास्थ्य उनका बस ढीचूं-ढीचूं ही रहता है। आचार्य निर्मला उनकी पत्नी तो थीं ही, परिचारिका भी थीं। उनकी सेवा के कारण वे इतना बड़ा कार्य कर सके। साथ ही आचार्य जी बोलते जाते, आप लिखती जातीं। विचारणीय विषयों पर दोनों विचार भी कर लेते। आह ! ऐसी बढ़िया वैदिक गाड़ी का एक पहिया अब टूट गया है।

प्राचार्या निर्मला कवियित्री थीं, विदुषी भी थीं। आप बहुत विनम्र व सरल थीं। उनको अपने पाण्डित्य पर तनिक भी अभिमान न था। 'वेदार्थ कल्पद्रुम' आपके कीर्ति स्तंभ के रूप में सदा आपका स्मरण करवाता रहेगा। आर्यजगत् के सब मूर्धन्य वैदिक विद्वानों ने इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है।

आप जीवन के अन्तिम दिनों में कई बार रुग्ण हुई। जब कभी उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा जाता था तो वह बड़े शान्तभाव से कह दिया करती थीं, "बस ठीक है।" उनको घबराते हुए नहीं देखा गया। वे कई बार आचार्य जी के साथ सम्मानित हुईं। सम्मान पाकर उनको इतराते हुए मैंने नहीं देखा। यही उनका बड़प्पन था। महर्षि दयानन्द के प्रति श्रद्धा भक्ति उनको अपनी कुल परम्परा से प्राप्त हुई। वेद के प्रति उनकी असीम श्रद्धा देखकर मन बहुत प्रसन्न होता था।

जो बना है, सो टूटेगा। जो जन्मा है, सो मरेगा। प्रश्न तो अब यह है कि उनकी मृत्यु ने जो रिक्तता पैदा की है, उसको अब कौन भरेगा? रोने धोने से कुछ न बनेगा। आचार्य विशुद्धानन्द जी एक गम्भीर विद्वान् हैं। हम साधारण लोग उनको क्या धीरज बंधा सकते हैं? धीरज की आवश्यकता तो महर्षि के मिशन को है। पं० आर्यमुनि जी कहा करते थे कि उपाधिधारी तो बहुत हो गये। शास्त्री, आचार्य, एम०ए०, पी०एच०डी० इतने हैं कि गिनती करना अतिकठिन है परन्तु, विद्वान् घटते जा रहे हैं। पं० धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड, पं० शिवशंकर, स्वामी वेदानन्द का स्थान लेने वाला कोई दीखता ही नहीं। लोग डिग्री के लिए लिखा पढ़ी करते हैं। विद्या के लिए तप व श्रम करने वाले कहाँ हैं? प्राचार्य निर्मला जी की सन्तान व मानस पुत्रों को इस अखरते हुए अभाव के बारे कुछ सोचना व करना होगा। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी शिक्षा और वेद पढ़ने पढ़ाने में एक नवीन बहाना

वेदपाठ से गर्भ प्रभावित

सुमेर पीठ कांची के जगद्गुरु शंकराचार्य कपिलेश्वरानं सरस्वती का कहना है। कि यदि महिलाएं वेदपाठ करती हैं तो उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उनका कहना है महिलाओं के विरुद्ध उन्हें कोई शिकायत नहीं है लेकिन यदि कोई महिला वेदपाठ करती है तो उपका गर्भाशय प्रभावित हो सकता है तथा उसका प्रभाव शिशु के स्वास्थ्य पर पड़ेगा।

उनकी एक टिप्पणी पर कई महिला संगठनों ने तीव्र विरोध व्यक्त किया है जिसमें उन्होंने कहा है कि महिलाओं को वेदपाठ करने का अधिकार अतीत में कभी भी नहीं था। उन्हें ऐसा करने का अधिकार वर्तमान में भी नहीं है और भविष्य में भी नहीं होना चाहिए।

('नवभारत' २८।७।९४ से साभार)

समीक्षा : स्त्रियों को वेद पढने का अधिकार ही नहीं है। इस प्रकार की प्रमाणहीन तथा तर्क विहीन बक बक करने वाले शंकराचार्य अपने पक्ष में प्रमाणादि न पाकर क्या कहने लगे हैं, यह बहुत ही आश्चर्यजनक बात है कि वेदों का पाठ करने से स्त्रियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि इस बात का परीक्षण करके देखा जाये तो इसमें एक प्रतिशत भी सच्चाई **नहीं है।** जो नारी **जाति** विवाहादि अवसरों पर उच्चध्वनि से गीत गा **सकती है,** कई कई घड़े पानी के शिर पर रखकर उच्चध्वनि से गीत गाती रहती हैं, उनके वेदमन्त्रों के उच्चारण से अथवा सस्वर मन्त्रों का पाठ करने से स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव कैसे पड़ सकता है, ऐसे बेसिर पैर की बात कोई उन्मत्त व्यक्ति ही कह सकता है। आजकल भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अधिकतर नारी जाति ही भाग लेती हैं और उन में उच्चस्वर से गीत गाती हैं, नाचते हुए अंग प्रत्यंगों को संचालन करती रहती हैं, परन्तु कोई भी महिला गाकर अस्वस्थ हो गई हो, यह कभी सुनने में नहीं आया। फिर वेदमन्त्रों का पाठ करने से स्वास्थ्य कैसे दूषित हो सकता है।

और शंकराचार्य ने यह भी मिथ्या लिखा है कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार अतीत में कभी नहीं रहा। क्या गार्गी, मैत्रेयी विदुषियों को बिलकुल ही भूल गये? क्या पं० मण्डन मिश्र की पत्नी भारती, जिसने शास्त्रार्थ में मध्यस्थता की थी, क्या अनपढ़ ही थी? क्या अतीत के इतिहास को ओझल करके शंकराचार्य ने बुद्धिहीनता का ही परिचय नहीं दिया है और वेदमन्त्रों की अनेक ऋषिकाओं को भी भुलाया जा सकता है?

–राजवीर शास्त्री

दया का भण्डार–दयानन्द

दुःखों को मिटाया जिसने कर दिया आनन्द है।
स्वामी दयानन्द है वो ऋषि दयानन्द है।।टेक।।
जिसके यहाँ ठहरे उसके भ्रम को मिटाते रहे।
ईश्वर का है ज्ञान वेद, सब को यह बताते रहे।।
पुराण व कुरान की, बाईबल की तान को।
बाईबिल की तान को, बताया दुख द्वन्द्व है।। १।।
पण्डे व पुजारियों को, जाकर के लताड़ दई।
पीर के मुजावरों को, जा करके फटकार दई।।
स्याने नीच, घातियों का, ग्रह के उत्पातियों का।
ग्रह के उत्पातियों का, खोया छल छन्द है।। २।।
बिना ज्ञान मुक्ति कभी, किसी ने ना पाई सुनो।
जगह जगह मुक्ति की ठग देते थे दुहाई सुनो।।
काशी आदि जाने का, ज़म ज़म जल पिलाने का।
ज़म ज़म जल पिलाने का भी काटा सारा फन्द है।। ३।।
'धर्म वीर' हर प्राणी को समझा था समान जिसने।
जिसके कारण दुनिया भर में पाया इतना मान जिने।।
सिंह जितना स्यारों अन्दर, रजनी के सब तारों अन्दर।
रजनी के सब तारों अन्दर पाता जितना चन्द है।। ४।।

–धर्मवीर आर्य धर्मी,
ग्राम कलौंदा, जनपद गाज़ियाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीय मूल्यों के शिक्षा-तत्त्व

धर्ममार्तण्ड डॉ० दिनेशचन्द्र, वेद-विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सारा संसार आज अशान्ति और हिंसा के आघात से संत्रस्त है। मानवता 'त्राहि-त्राहि' कर रही है। ऐसे बीभत्स समय में शिक्षा के द्वारा मानवीय गुणों का प्रचार और प्रसार कर शान्ति और बन्धुत्व के वातावरण की नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि शिक्षा का अर्थ संस्कार, चरित्र और मौलिक जीवन मूल्यों का विकास भी है।

ये मानव मूल्य ही वह धरोहर हैं जो राष्ट्र-निर्माण में सहायता तो करते ही हैं और राष्ट्र जब भी किसी संकट में होता है तो एकजुट होकर जूझने की प्रेरणा भी देते हैं। सामाजिक न्याय, नैतिकता तथा ज्ञान प्राप्ति की उत्कट लालसा शिक्षा का उद्देश्य है। इसे अपसंस्कृति हिंसा तथा स्वार्थपरता से लड़ने के लिए समयानुकूल बदलना होगा। अन्यथा शिक्षा, समाज और जीवन मूल्यों का संकट हमें पूरी तरह निगल जाएगा। सामाजिक न्याय, मानवीय एकता और राष्ट्रीय समृद्धि ही हमारा और हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। शिक्षा इसी लक्ष्यपूर्ति का साधन है।

बच्चा समाज की इकाई और राष्ट्र की आधारशिला है। वह देश का भावी नागरिक है। देश का उज्ज्वल भविष्य बनाने के लिए- सत्य, धर्म, प्रेम, अहिंसा और शान्ति- इन मानवीय गुणों का उसमें होना बहुत जरूरी है। बड़े-बड़े और सुन्दर-सुन्दर भवनों से देश का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। सुन्दर सड़कें, बड़े बाँध आदि बन जाने से भी भव्य राष्ट्र का निर्माण नहीं होता। बड़े-बड़े कारखाने खड़े करके और उनमें दानवाकार बड़ी मशीनें लगाकर भी भव्य राष्ट्र नहीं बन सकता। किसी भी देश के भविष्य को उत्तम बनाने के लिए आवश्यकता होती है उस देश में उत्तम नागरिक तैयार करने की। उत्तम नागरिक कल-कारखानों में नहीं अपितु, उपर्युक्त मानवीय मूल्यों की शिक्षा देने वाले विद्यालयों में तैयार होते हैं।

मानवीय मूल्य :-

(i) सत्य :- सत्य का मानव जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है। इसका अर्थ है यथार्थ ज्ञान। जैसा देखा, सुना या अनुभव किया हो, उसे वैसा ही कहने का नाम सत्य है। ऋषि दयानन्द के शब्दों में- ''जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।''

सत्यवादी बनो क्योंकि सत्यवादी की सभी प्रशंसा करते हैं, सभी उसका विश्वास करते हैं, वह आदर और सम्मान क पात्र बन जाता है। चाहे कैसा भी संकट उपस्थित हो जा कितनी ही हानि हो जाय, असत्य कभी मत बोलो। वेद के शब्द में आपकी यह भावना होनी चाहिये- वाचः सत्यमशीय (यजु ३६।४) अर्थात्, मैं अपनी वाणी में सत्य को प्राप्त करूँ।

सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि रूप दीपक केवल बा अन्धकार को दूर कर सकते हैं, परन्तु सत्य वह दिव्य-दीप है जो आन्तरिक तम, अविद्या और अन्धकार को नष्ट-भ्रष्ट क देता है। इसीलिए विद्वानों ने सत्य को श्रेष्ठ दीपक कहा है। वे में कहा है- ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति (ऋ० ४।२३।८) सत का आचरण पापों को नष्ट कर देता है। सत्य से रहित मनु का जीवन कोरे कागज पर लगे धब्बे के समान है। उपनिष में कहा गया है- 'सत्यं वद'। अर्थात् हे मनुष्य ! तू सत्य बो सत्य से बढ़कर कोई भी धर्म नहीं है- नहि सत्यात् परो धर्म मनु महाराज ने कहा है कि यदि हम सत्य की शिक्षा देना चाह हैं तो सत्य को मधुर-वाणी में बोलना चाहिए-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्,
न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

(मनु० ४।१३८

इतिहास में ऐसे अनेक महापुरुषों के उदाहरण मिलते जिन्होंने सत्य के लिए अपना शरीर त्याग दिया। महान् सम सेवी सुकरात ने सत्य के लिए ही विष का प्याला पिया। उ के लिए स्वामी दयानन्द को अट्ठारह बार विष दिया गया। ई को फाँसी पर लटका दिया गया। सत्य के लिए ही गेलिलि और कॉपरनिक्स को न जाने कितनी यातनाएँ सहन करनी पड़ शुक्रराज आचार्य को नेपाल में शूली पर लटका दिया गय

स्वामी दयानन्द को जब धन का प्रलोभन देकर स छोड़ने के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा- मेरे शरीर अंगुलियों को यदि मोमबत्ती बनाकर जलाया जाय तब भी सत्य बोलने से नहीं हटूँगा। और उन्होंने लोगों को समझाया सत्य के बोलने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रह चाहिये। सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य विचार कर करने चाहिये।

सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र ने सत्य के खातिर न ज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी असह्य यातनाओं को सहन किया। जिससे आज संसार उनको श्रद्धा से स्मरण करता है। सत्य की महिमा महान् है। महाभारत में कहा गया है- सत्यं स्वर्गस्य सोपानम्। अर्थात्, सत्य स्वर्ग की सीढ़ी है। 'संसार सागर से तरने के लिए सत्य से बढ़कर कोई साधन नहीं है'- ऐसा बुद्धिमान् पुरुषों का कथन है। यह शरीर आत्मा का मन्दिर और परमात्मा का निवास-स्थल है। अतः इसे गन्दा मत करो। असत्य भाषण से यह मन्दिर अपवित्र हो जाता है।

सरलता को अपना रथ और सत्य को अपना शस्त्र बनाकर कार्यक्षेत्र में कूद पड़ो। आप जहाँ भी, जिस क्षेत्र में भी जायेंगे आपका स्वागत होगा और सफलता आपके गले में विजयमाला पहनायेगी, क्योंकि सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं- 'सत्यमेव जयते नानृतम्'।

(ii) धर्मः- सत्य और धर्म का अटूट सम्बन्ध है। सत्यवादी धार्मिक होगा ही। जब हम सत्य को अपनायेंगे तो धर्म जीवन में आयेगा ही। धर्म कर्त्तव्य श्रृंखला का नाम है। और कर्त्तव्य वह वस्तु है जिसे करना हम लोगों का परम धर्म है। इसके न करने से हम लोग और लोगों की दृष्टि से गिर जाते और अपनी कुरुचि से नीच बन जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में कर्त्तव्य का करना बिना दबाव से नहीं हो सकता, क्योंकि पहले पहल मन आप ही उसे करना नहीं चाहता। इसका प्रारम्भ पहले घर ही से होता है, क्योंकि यहाँ लड़कों का कर्त्तव्य माता-पिता की और माता-पिता का कर्त्तव्य लड़कों की ओर दीख पड़ता है। इनके अतिरिक्त पति-पत्नी, स्वामी-सेवक और स्त्री-पुरुष के परस्पर अनेक कर्त्तव्य हैं। घर के बाहर हम मित्रों, पड़ोसियों और प्रजाओं के परस्पर कर्त्तव्यों को देखते हैं। इसलिए संसार में मनुष्यों का जीवन कर्त्तव्यों से भरा पड़ा है। जिधर देखो उधर कर्त्तव्य ही कर्त्तव्य दीख पड़ते हैं। बस, इसी कर्त्तव्य का पूरा-पूरा पालन करना हम लोगों का धर्म है और इसी से हम लोगों के चरित्र की शोभा बढ़ती है। इसीलिए नीतिकार ने कहा भी है- धर्म से हीन मनुष्य पशुतुल्य है- 'धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।'

डॉ० श्यामसुन्दर दास के अनुसार- हम लोगों का जीवन सदा अनेक कार्यों में व्यग्र रहता है। हम लोगों का समय सदा ही काम करते बीतता है। इसलिए हम लोगों को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि हम सदा धर्म के अनुसार काम करें और कभी उसके पथ पर से न हटें, चाहे उसके करने में हमारे प्राण भी चले जायें तो कोई चिन्ता नहीं।

कर्त्तव्यपालन (धर्म) और सत्यता में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो मनुष्य अपना कर्त्तव्य पालन करता है वह अपने कामों और वचनों में सत्यता का बर्ताव भी रखता है। वह ठीक समय पर उचित रीति से अच्छे कामों को करता है। सत्यता ही एक ऐसी वस्तु है जिससे इस संसार में मनुष्य अपने कार्यों में सफलता पा सकता है, क्योंकि संसार में कोई काम झूठ बोलने से नहीं चल सकता। यदि किसी के घर सब लोग झूठ बोलने लगें तो उस घर में कोई काम न हो सकेगा और सब लोग बड़ा दुःख भोगेंगे। इसलिए हम लोगों को अपने कार्यों में झूठ का बर्ताव न करना चाहिए। अतएव सत्यता को सबसे ऊँचा स्थान देना उचित है। संसार में जितने पाप हैं, झूठ उन सबों से बुरा है। झूठ की उत्पत्ति पाप, कुटिलता और कायरता के कारण होती है।

धर्म का तात्पर्य ईश्वर के मानने और उसकी सत्ता को स्वीकार करने से भी है। यदि हम संकुचित विचारधारा को छोड़कर खुले मस्तिष्क से विचार करें तो हम पायेंगे कि धर्म मानव जीवन का प्राण है।

कोई कहता है यह पृथ्वी नाग देवता के सिर पर टिकी हुई है। कोई कहता है यह वृषभ श्रृंग के ऊपर आश्रित है। यह सम्भव हो या न हो, परन्तु हम संस्कृत के एक कवि के शब्दों में इतना जानते हैं कि यह धर्म पर अवलम्बित है-

निराधारा निरालम्बा विश्वाधारा वसुन्धरा।
यच्चावतिष्ठते तत्र धर्मान्नान्यत् कारणम्॥

धर्म शब्द 'धृ' धातु (धृञ् धारणे) से निष्पन्न है, अतः 'धर्म धारणकारी है'- यह अर्थ प्रतीत होता है। सम्पूर्ण विश्व में सभी पदार्थ एवं द्रव्यों के संयोग तथा एकत्र धारण से जीवन का निर्वाह होता है। धर्म का उद्भव ही इस निर्वाह के लिए है। सूर्य, चन्द्र, तारामण्डल और पृथ्वी आदि पदार्थ परस्पर के उपकार्य-उपकारकभाव से विधृत हैं और वे परमेश्वर द्वारा निर्दिष्ट अपने-अपने विशिष्ट कार्यों को करने में समर्थ होते हैं। मानवों को अपने उत्कर्ष-साधन के लिए समाज की अपेक्षा है। समाज का समाज़त्व इसी में है कि वह विभिन्न प्रकार की मानसवृत्तियों से युक्त व्यष्टि मानवों की स्थिति का सामञ्जस्य करता है। यही कारण है कि धर्म में ही समाज की प्रतिष्ठा है, केवल मानव समाज की ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण जगत् की प्रतिष्ठा धर्म में है- 'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा' (धर्म ही विश्व का आश्रयभूत है)। दूसरे शब्दों में हम इसको इस प्रकार कह सकते हैं कि कोई भी सत्ता, क्षमता या शक्ति जो धारण करती है, जिसमें सभी धारित हैं, प्रतिष्ठित हैं, धर्म है। धर्म जीवन का और केवल मानव जीवन का ही नहीं सभी के जीवन की आधारभूमि है और जो आधारभूमि है, जिस पर जीवन टिका हुआ है, वह अभ्युदय की भूमि है। धर्म जीवन है, जीवन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्युदय, अभ्युदय की वृद्धि है। इसके विपरीत, जिस पर कुछ नहीं टिक सकता, जिसमें कुछ नहीं धारित हो सकता, ऐसी सत्ता, शक्ति या क्षमता, अधर्म है। और अधर्म विनाश की भूमि है, अधर्म मृत्यु है।

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः', अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति हो वह धर्म है।' धर्म के आश्रय से ही इस लोक में प्राणियों को अभ्युदय प्राप्त होता है तथा परलोक में निःश्रेयस रूप मुक्ति मिलती है। महाभारत के अनुसार- 'प्राणियों के अभ्युदय और कल्याण के लिए ही धर्म का प्रवचन किया गया है। इसलिए जो इस उद्देश्य से युक्त हो, जुड़ा हो, जिससे प्राणिमात्र का अभ्युदय हो, वही धर्म है।' धर्म के विधायकरूप को स्पष्ट करते हुए महर्षि व्यास ने महाभारत में लिखा है-

धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥
(शान्ति० १०८।११)

अर्थात्, धर्म का नाम 'धर्म' इसलिए पड़ा है कि वह सब को धारण करता है, जीवन की रक्षा करता है। धर्म ने ही सारी प्रजा को धारण कर रखा है, इसलिए जिससे भी धारण और पोषण सिद्ध होता है, वही धर्म है।

धर्म कोई मजहब या सम्प्रदाय विशेष नहीं है, जैसा कि आजकल समझा जाता है। सम्+प्र उपसर्ग युक्त 'दा धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर सम्प्रदाय शब्द निष्पन्न होता है। जो कि गुरु-परम्परागत उपदेश का वाचक है। दूसरे शब्दों में- किसी विशेषगुण गौरवशाली आचार्य द्वारा देश-कालानुसार किसी देश में जो सदुपदेश किया जाता है, वह सम्प्रदाय कहलाता है। धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर करते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि- 'धर्म का द्योतक तत्त्व है- सार्वभौमत्व, सार्वकालिकत्व और अद्वितीयत्व तथा देशकाल के सम्बन्ध से कदाचित् ही स्थितिशाली होना सम्प्रदाय का लक्षण है- यह धर्म और सम्प्रदाय का भेद है।'

'रिलीजन' शब्द का वाच्यार्थ सम्प्रदाय ही है। हिब्रू-ख्रीष्टीय-मोहम्मदीय धर्म सम्प्रदाय में ही अन्तर्भूत होते हैं। इन सभी सम्प्रदायों की साझी विशेषता बतलाते हुए चतुर्वेदी बद्रीनाथ लिखते हैं कि इन सभी सम्प्रदायों की निस्सन्देह एक साझी विशेषता है जो उन्हें 'सेक्युलर' चिन्तन-प्रणाली से अलग करती है। तथाकथित पैगम्बर का अपने अनुयायियों को मानव गति के विषय में ईश्वरीय उपदेश, और उस उपदेश का एक पुस्तक के रूप में उस मजहब का मूलपाठ, और उस मूलपाठ के आधार पर उस मजहब में पैदा होनेवाले व्यक्तिय का जीवन सञ्चालन और नियन्त्रण।

'धर्म' का अंग्रेजी में अनुवाद 'रिलीजन' शब्द से हुआ, औ मान लिया गया कि ये दोनों एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। अभी तक व्याप्त यह धारणा, एक भयंकर भूल है। क्योंकि इसके अनुवाद दोष का सब से भंयकर परिणाम यह है कि धर्म जो व्यापक औ सार्वभौमिक है 'रिलीजन' की संकुचित सीमाओं में बंध जाता है क्योंकि पाश्चात्य इतिहास में 'रिलीजन' के नाम पर जो अत्याच होते रहे हैं, उन्हें 'धर्म' के अत्याचार मान लिया गया। और इस आधार पर स्वार्थ पूर्त्यर्थ निज विवेकशून्य भारतीय विद्वानों औ राजनेताओं द्वारा आधुनिक भारत की प्रगति में 'धर्म' ही सब से ब बाधा है, यह मानकर सभी राष्ट्रनीतियां उसी रंग में रंग दी ग वस्तुतः धर्म 'रिलीजन' नहीं है। धर्म का दायरा असीमित है, बह विस्तृत है। यह मानवीय सम्बन्धों का आधार है। धर्मानुसार आचर करनेवाला उदारचेता होता है और ऐसे व्यक्ति की सारी वसुन्ध ही घर बन जाती है। जैसा कि कहा गया है- 'उदारचरिता तु वसुधैव कुटुम्बकम्'। उपनिषत् के शब्दों में वह 'भूमा' ब जाता है।

यदि हम बच्चों को धार्मिक बनाना चाहते हैं तो- धै क्षमा, चोरी न करना, पवित्रता, ज्ञान, अक्रोध, सत्य बोलन दान, अनसूया, शील और अनीर्ष्या आदि की शिक्षा दें। महारा मनु ने मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण परिगणित किये हैं। उन सत्य को धर्म का ही एक पाद माना है। सत्य और धर्म मान की ऐसी दो रक्तवाहिका नाड़ी के समान हैं, जिनके बिना जीव दुःखदायी हो जाता है। इसलिए क्रान्तदर्शी ऋषि कहते हैं- मनुष्यो ! सत्य और धर्म का पालन करो- सत्यं वद धर्मं च महात्मा कबीर ने सत्य से बढ़कर अन्य कोई तप नहीं मान

साँच बराबर तप नहीं, झुठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥

(iii) निश्छल प्रेम :- सत्यवादी और धार्मिक व्यक्ति समस्त जीवों को अपने समान समझता है-'स्वस्य प्रियमात्मनः।' प्रेमरहित व्यक्ति का जीवन निष्प्राण है। निष्प्र होने से वह निरा पत्थर के समान जड़ है तभी तो यह उक्ति प्रसि है- ''अरे ! यह तो कोरा पत्थर दिल है।'' 'प्रेम्णः प्रेम जाय अर्थात्, प्रेम से प्रेम उत्पन्न होता है। यदि तुम दूसरों को प्रेम द तो दूसरे आपको प्रेम देंगे। बच्चों में अपनत्व की भावना पै कर उन्हें महान् बनाया जा सकता है। देश के प्रति प्रेम, सम के प्रति प्रेम एवं समस्त जीव मात्र के प्रति प्रेम होना ब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है। हम शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों को प्रेम करें पर उन्हें प्रेम से बिगाड़ें नहीं। प्रेम के साथ-साथ ताड़ना भी आवश्यक है। क्योंकि ऐसा देखने में आया है कि ज्यादा लाड़-प्यार में बच्चे बिगड़ जाते हैं। इसलिए ताड़ना ऐसी होनी चाहिए जैसे कुम्हार घड़े के अन्दर हाथ लगाकर ऊपर से उस पर थपकियाँ देता है। महर्षि पतञ्जलि ने इस विषय में लिखा है-

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

प्रेम मानुष जीवन की आत्मा है। जब आत्मा ही नहीं रही तो कलेवर कोरा शवमात्र है। आज संसार में निश्छल प्रेम का अभाव है। प्रेमाभाव में जगह-जगह लड़ाई और झगड़े होते हैं। सर्वत्र धोखा और छल फरेब देखने में आता है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दिखावटी प्रेम करता है। ऐसे प्रेम से बचना चाहिए। गुरु नानकदेव के अनुसार—मनुष्य-जीवन का जो प्राप्तव्य है वह स्वयं प्रेमरूप है। प्रेम ही उसका स्वभाव है। प्रेम ही उसका साधन है। अरे ओ मुग्ध मनुष्य, सच्ची प्रीति से ही तेरा मान-अभिमान नष्ट होगा, तेरी छोटाई बड़ाई की सीमा समाप्त होगी; परम मंगलमय शिव तुझे प्राप्त होगा। उसी सच्चे प्रेम की साधना तेरे जीवन का परम लक्ष्य है।

(iv) अहिंसा :- प्रेम के पश्चात् अहिंसा का स्थान है। यह एक उच्चतम मानव-मूल्य और सर्वश्रेष्ठतम परम-धर्म है। सब को अपने समान समझनेवाला प्राणी अहिंसावादी होता है। वह जीते जी मुक्त हो जाता है। जिसे 'जीवन्मुक्त' कहते हैं। भगवान् महावीर कहा करते थे कि 'जीवों पर दया करो और सदा सच बोलो।' गुरु ग्रन्थ साहब के प्रारम्भ में लिखा है कि- 'एक नूर ते सब जग उपज्या; कुदरत के सब बन्दे।' अर्थात्, 'एक परमेश्वर की ही सब सन्तान हैं।' तो फिर आपस में झगड़े किस बात के? हमारे धर्म शास्त्रों में कहा गया है कि अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है- **'अहिंसा परमो धर्मः।'**

विश्व को अहिंसा की ओर अग्रसर करने में अनेक महापुरुषों, सन्तों और महात्माओं ने अथक प्रयास किए। इन्होंने इतिहास में अनेक नवीन अध्यायों को जोड़ा है। प्राणिमात्र के प्रति उनके हृदय में अपार स्नेह और प्यार भरा था। प्राणिमात्र को अपनी आत्मा के तुल्य समझने का उनका संदेश अहिंसा की महान् परिभाषा थी। अहिंसा की व्यापकता में प्रेम, मैत्री, बंधुता, सेवा, सहनशीलता तथा करुणा आदि महान् मूल्यों का समावेश किया गया है। महात्मा गांधी के अनुसार अहिंसा का अर्थ पवित्रतम प्रेम और करुणा है।

विश्व की इन महान् आत्माओं ने अपने जीवन के कण-कण में महान् धर्म अहिंसा को अपनाया। वर्षों तक अपने जीवन को अहिंसा की प्रयोगशाला बनाकर प्रेम, सहनशीलता एवं मित्रता जैसे महान् गुणों को स्थापित किया। अपने महत्तम प्रयोगों से विश्व को अहिंसा का श्रेष्ठ संदेश दिया और इस महान् मूल्य के आदर्श बने।

अहिंसा तीन प्रकार की होती है- कायिक, वाचिक और मानसिक। इनकी त्रिपुटी से ही वास्तव में मनुष्य अहिंसावादी होता है। मनसा, वाचा, कर्मणा हम किसी का कभी बुरा न करें। यह अहिंसा का एक सर्वमान्य सामान्य सिद्धान्त है।

वस्तुतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि मानव जीवन में अहिंसा-मूल्य का होना बहुत जरूरी है। इसके बिना जीवन कण्टकाकीर्ण है।

(v) शान्ति :- जहाँ सत्यादि चारों मूल्य होंगे वहाँ शान्ति स्वतः ही पैदा हो जाती है। वेद में कहा गया है कि- 'हे प्रभु! तुम जल, थल और गगन, तीनों भुवनों में शान्ति पैदा करो।'

आज तीनों स्थानों पर अशान्ति ही अशान्ति दृग्गोचर हो रही है। इस आधुनिक वैज्ञानिक युग में आज 'Starwar' जैसे कार्यक्रम पैदा हो गये हैं, जिससे मानवता खतरे में पड़ गयी है। हिरोशिमा और नागासाकी की बर्बरता आज भी मानवता को झकझोर रही है। मानो वह कह रही है, हे मनुष्य! यह पृथ्वी आकाश और जल तेरे सदुपयोग के लिए हैं, दुरुपयोग के लिए नहीं। यदि तुम दुरुपयोग करोगे तो इसका यही हश्र होगा। हम वैज्ञानिक आविष्कार करें मानव भलाई और शान्ति के लिए न कि मानव-विनाश के लिए। इसीलिए तो दिनकर ने कहा था-

सावधान मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार।
तो इसे दे फैंक तज मोह स्मृति के पार॥

आज सारा संसार भौतिकता की चकाचौंध में फँसा कराह रहा है। भौतिक साधनों को एकत्रित कर उसने सांसारिक सुख तो प्राप्त कर लिया- जिसको लौकिक सुख कहते हैं, परन्तु पारलौकिक सुख (निःश्रेयस्) की तरफ उसका ध्यान ही नहीं है। इसीलिए वह नास्तिक बनता जा रहा है। खाओ, पियो और मौज करो- की नीति को ही उसने अपना रखा है। जिससे शान्ति नहीं है। संसार में शान्ति तब तक पैदा नहीं की जा सकती जब तक मानवीय शाश्वत मूल्यों को जागृत नहीं किया जाता।

(शेष पृष्ठ १० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वेद और कुरान की दृष्टि में)

नारी जाति का महत्त्व

—उत्तमचन्द्र शरर

संसार की जनसंख्या का आधा भाग नारी जाति का है। यहाँ यह विचार करना है कि इस जाति के सम्बन्ध में वेद तथा कुरआन का दृष्टिकोण क्या है?

वेदों के अनेक मन्त्रों में नारी जाति का महत्त्व स्पष्ट रूप से वर्णित है। नारी का पुत्री, बहन, पत्नी तथा माता, इनमें कोई भी रूप हो, वह सदा पूज्या है, आदरणीय है। यजुर्वेद का एक मन्त्र देखिये-

(१) इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥
(य० ८।४३)

वेद में नारी का स्वरूप वैविध्यपूर्ण तथा मनोहर है। इडे= वह स्तुति के योग्य, हव्ये= स्वीकार करने योग्य, चन्द्रे= अत्यन्त आनन्द देनेवाली, काम्ये= मनोहर रूपवाली, ज्योते= सुशीलतादि गुणों से प्रकाशित, सरस्वती= प्रशंसनीय ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, महि= पूजनीय, विश्रुति= कीर्त्तिशाली है, ऐसी मुझे सुकृतम्= उत्तम उपदेश किया करे। इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र देखिए-

(२) सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वसुराय शम्भूः।
(अथर्व १४।२।२६)

अर्थात् प्रतरणी= पत्नी गृहस्थ जीवन को नौका की भांति पार करनेवाली, पति के लिए कल्याण एवं सुख प्रद और सास-श्वसुर को सुख देने वाली होती है।

वेदों में स्थान स्थान पर नारी जाति को महत्त्व दिया गया है। वेद में उषा का वर्णन हो अथवा रात्रि का वर्णन, उनमें उपमा के द्वारा नारी जाति की महिमा का वर्णन मिलता है। वेद को स्वतः प्रमाण मानने वाले महर्षि मनु ने तो नारी का महत्त्व इस प्रकार दर्शाया है-

(३) यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों तथा उपदेशों में स्त्री और पुरुष को समानता का दर्जा देकर सम्मान दिया है। वेद और कुरआन के संकलन में नारी के सम्मान विषय पर श्री सुरेन्द्र सिंह कादियाण ने यह स्वीकार किया है कि नारियों को वेद पढ़ने का अधिकार दयानन्द जी ने ही दिलाया (पृ० १३२) इसी प्रकार भारतीय इतिहास में गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायनी इत्यादि विदुषी नारियों का वर्णन मिलता है, जिन्होंने विद्या के क्षेत्र में विद्वानों को भी शास्त्रार्थ में पराजित किया है। वेदों तथा वैदिक साहित्य में नारी को जो सम्मानित स्थान एवं पूज्य स्थान दिया गया है, विधर्मी भी उसे स्वीकार करते हैं। वैदिक युग की नारी को अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः।'' (यजु० ३८।३) अर्थात् दानशीला, ऐश्वर्यवती तथा पगड़ी की भांति उन्नत बताया है।

कुरआन की दृष्टि में नारी जाति का स्थान-

(१) नारी जाति के लिए परदे का विधान बड़ा बन्धन है। नारी जाति विवाह से पूर्व तथा विवाह के बाद भी बन्धन से छूटकर स्वतन्त्र नहीं हो सकती।

(२) तलाक का कानून- विवाह के पश्चात् पुरुष चाहे तो कभी भी तीन बार तलाक का शब्द बोलकर नारी को बेघर बना सकता है। नारी ऐसा नहीं कर सकती। वह यदि पुरुष को छोड़ना चाहे तो न्यायालय में अभियोग चलाना पड़ेगा, उसमें न्यायालय के आश्रित ही रहना पड़ेगा। पुरुष के लिए तो इतना पर्याप्त होता है कि जो रुपया विवाह के समय लिया है, उसको वापस करना पड़ता है। जबकि विवाह का सम्बन्ध केवल मात्र दो शरीरों का ही नहीं होता, वरन् दो आत्माओं का सम्बन्ध होता है।

(३) पुरुष को चार चार विवाह करने की छूट :- कुरआन के अनुसार पुरुष को चार विवाह करने की छूट होती है। और कोई पुरुष नहीं चाहता विवाह सम्बन्ध से बन्धने पर उसकी पत्नी के साथ गैर सम्बन्ध रखने वाला (रकीब) कोई दूसरा पुरुष हो, वैसे ही स्त्री भी सौतिन की डाह को कभी सहन नहीं कर सकती। (शेष पृष्ठ १९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद में नारी का स्वरूप

गृहपत्नियाँ कैसी हों?

डा० सुनीति एम०ए०, पी-एच० डी०, ज्ञानगंगा हैदराबाद-२७ (आन्ध्र०)

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः। अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम्।। (ऋ० १/२२/११)

आज के युग में एक ओर नारी मुक्ति का स्वर सुनाई पड़ता है तो दूसरी ओर नारी के शोषण का भी चक्र बड़ी तेजी से चल रहा है। दोनों ही धाराएँ अशुभ हैं। जीवन में सुख की प्राप्ति के लिए ऋषियों ने विवाह का विधान किया है। स्त्री और पुरुष अपने गुण-कर्म स्वभावों से ही सुख दुःख को प्राप्त करते हैं। सुख और दुःख बाह्य व्यापारों की अपेक्षा मनुष्य की आन्तरिक स्थिति पर भी आधारित हैं। समाज में जब सद् गुणों का अभाव होने लगता है और केवल भौतिकता में ही सुख की खोज की जाने लगती है तो दुःख और अशान्ति का साम्राज्य बढ़ने लगता है। सुखों की प्राप्ति सद् गुणों के संचयन से ही होती है। अतः वेद में नर-नारी को शुभ गुण कर्म स्वभावों से अलंकृत होने की प्रेरणा व शिक्षा मंत्रों द्वारा यत्र तत्र सर्वत्र दी गई है। इस मंत्र के भावार्थ में ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि-"जैसा तुल्य रूप विद्या गुण कर्म स्वभाव वालों को सुख का संभव होता है वैसा अन्य को कभी नहीं हो सकता। स्त्री अपने समान पुरुष वा पुरुष अपने समान स्त्रियों के साथ आपस में प्रसन्न होकर स्वयंवर विधान से विवाह करें।" इसी परिप्रेक्ष्य में मंत्रों में प्रयुक्त शब्द एवं भावों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है-

इस मंत्र का देवता 'देव्यः' है अर्थात् देवियाँ जो अपने दिव्य गुणों से प्रकाशित होती हैं। नृपत्नीः अर्थात् पुरुषों की पत्नियाँ कैसी हों? पत्नियों में कौन से गुण आवश्यक हैं इस पर इस मंत्र में प्रकाश डाला गया है।

(१) अच्छिन्नपत्राः जिस का कोई अंग भंग न हो। जैसे वृक्ष का सौन्दर्य उस के पत्तों से होता है वैसे ही स्त्री का सौन्दर्य भी उस के आँख कान नाक आदि अवयवों से प्रकट होता है। सौन्दर्य नारी का विशेष गुण है। विधाता ने स्वाभाविक रूप से स्त्री को सौन्दर्य प्रदान किया है। साथ ही पत्ते जैसे सदा क्रियाशील रहते हैं उसी प्रकार की क्रियाशीलता स्त्री में होनी चाहिए। आलस्य स्त्रियों का सब से बड़ा दोष है। आलसिन स्त्री को कोई नहीं चाहता। अतः वेद मंत्र नारी के सौन्दर्य के दो मापदण्ड बतला रहा है उस का कोई अवयव खण्डित न हो और वह क्रियाशील हो। कर्मशीलता ही नारी को पत्नी के रूप में स्थापित करती है। निरंतर कर्म में लगी रहना नारी का उत्तम गुण है। अच्छिन्नपत्राः शब्द से नारी के कौमार्य की अखण्डता की ओर भी इंगित किया गया है। कवि कुल गुरु कालिदास ने 'अजिघ्रपुष्पा' कह कर नारी की विशिष्टता का बखान किया है। पूर्ण युवती ब्रह्मचारिणी जिसने ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने शारीरिक और मानसिक सौन्दर्य को बढ़ाया है। मन और व्यवहार से जिस का कौमार्य खण्डित नहीं हुआ है ऐसी कुमारी कन्या विवाह के योग्य होती है।

(२) महः शर्मणा— बहुत सुख देने वाली। वेद माता ने स्त्री को बहुत सुख देने वाली माना है। अपने घर को बहुत सुखों से भरने वाली पत्नी की कल्पना इस मंत्र में दी गई है। सुख देने के दो ही साधन होते हैं- वाणी और व्यवहार। जिस की वाणी मीठी होगी वही घरों में सुख के वातावरण का निर्माण कर सकती है तभी तो कवि ने कहा कि

तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है तज दे वचन कठोर।।

सुखों की खेती मीठी वाणी के बीजों से लहलहाती है, अपनी मधुर वाणी से घर व परिवार में हर्ष व उल्लास को बढ़ाया जा सकता है। द्रौपदी के द्वारा कहे गए एक कटु वचन ने महाभारत के युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। पत्नी के लिए बहुत आवश्यक है कि वह अपनी वाणी से घर में सुख का संचार करे। महः पुनातु हृदये-हृदय की महानता ही मनुष्य को महान् बनाती है। अतः नारी का हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदार होना चाहिए। उदारता से वह परिवार में स्नेह सुख को जन्म दे सकती है। हृदय की उदारता ही उसे नये परिवार से जोड़ सकती है। जहाँ पति के माता-पिता उस के अपने माता पिता हो जाते हैं और पति के भाई बहिन उस के अपने भाई बहिन सरीखे दिखने लगते हैं। नारी हृदय की संकीर्णता परिवार को छिन्न भिन्न कर देती है। अत: पत्नी को चाहिए कि सब से प्रीति पूर्वक उदारता का व्यवहार करके घर को बहुत प्रकार के सुखों से भर दे।

(३) **देवी अवसा**—दिव्य गुणों से युक्त आनन्द देने वाली और रक्षा करने वाली। यह तीसरी विशेषता पत्नी में होनी चाहिए। अपने सद् व्यवहार से सब के मनों को जीतने वाली नारी स्वयम् आनन्दित होती हुई घर भर में आनन्द का प्रकाश फैलाने के योग्य हो। प्रकाश और आनन्द आत्मा का गुण है यह गुण विद्या से अर्जित किया जाता है। जिस की आत्मा ज्ञान और ईश्वर भक्ति से देदीप्यमान हो रही हो वही देवी कहलाने के योग्य होती है। जिस नारी में ज्ञान और भक्ति का आनन्द समाया हो वही देवी बन कर पूरे परिवार को आनन्दित कर सकती है। मनुष्य की रक्षा धर्म से ही होती है। घर की रक्षा, सन्तान की रक्षा, परिवार व रक्षा अपने सत् कर्मों के द्वारा पत्नी ही कर सकती है। इ सब की रक्षा का गुरुतर भार नारी के कंधों पर डाला ग है यह रक्षिका नारी रक्षिता बन कर उत्पीडित हो रही है विद्या रूपी आभूषण और प्रभु भक्ति के तेज से अलंकृ हो कर ही वह रक्षा का गुरुतर दायित्व संभाल सकती है वास्तव में ऐसी नारी को पाकर पुरुष कृतार्थ हो जाता और मनुष्य का गृहस्थ जीवन धन्य हो उठता है। इन ती गुणों वाली पत्नी घर की शोभा बन जाती है। गृहस्थी व नौका को खेनेहारी प्रबुद्ध नाविक बन कर स्वयं भी सुख होती है और पूरे परिवार व समाज को भी सुख व शान्ि से भर देती है

पदार्थ—**(नः) हमें (नृपत्नीः)**—नरों के योग्य पत्नी
(अभि सचन्ताम्)—अच्छी प्रकार से प्राप्त हों
(अच्छिन्नपत्राः)—सुन्दर क्रियाशील अखण्ड कौमार्य वाल
(मह शर्मणा)—बहुत प्रकार का सुख देने वाली
(देवीः अवसा)—दिव्य गुणों से रक्षा करने वाली

●●

(पृष्ठ १७ का शेष)

(४) **कुरआन की दृष्टि में स्त्री का क्या स्थान है**— देखिये (क) "तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारे लिये खेती के समान हैं, तो अपनी खेती में जिस तरह से चाहो जाओ।" (अलबकरा आ० २२३) (ख) "पुरुषों को स्त्रियों पर फ़ज़ीलत (मस्ता) प्राप्त है।" (आ० २२८) (ग) पुरुष यदि तलाक देकर पुनः सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है तो कुरआन का आदेश है- जब तक यदि वह स्त्री दूसरे पति से विवाह कर ले, और दूसरा पति उसे तलाक दे दे, तो वह पूर्व पति उस स्त्री के साथ आने में कोई दोष नहीं। (सूरा अलबकरा आ० २३०)

इसकी व्याख्या करना हमें अच्छा नहीं लग रहा है। सीता और सावित्री के देश में रहने वालों के लिए नारी जाति के प्रति इस अन्याय को समझ पाना अतीव दुष्कर है। और मुहम्मद साहिब की दश शादियों का वर्णन इस प्रकार है- "उन्होंने दूसरी शादी कराव की बुढ़िया सौदा से की, चौथी शादी हजरत उमैर की विधवा लड़की इफ़्वहा से की, पांचवीं शादी उमैर की विधवा लड़की हिन्द से की-- ------दसवीं शादी एक विधवा मैयूनह से की। इस प्रका मुहम्मद ने शादियाँ गृहस्थ का ऐश्वर्य भोगने के निमि नहीं की थीं, वरन् उनमें अधिकांश को आश्रय देने के लि अथवा उनकी तीव्र इच्छा को देखते हुए की गई थीं। (वेद और कुरआन के संकलन कर्त्ता मुहम्मद फारुकखा पृ० २३४)

लेख लम्बा न हो जाये, इसलिये लेख को यह विराम देता हूँ। मुसलमान दोस्त इसे उपयुक्त समझें य अनुपयुक्त, इस विषय में हम क्या कह सकते हैं। तसलीम नसरीन की बगावत बता रही है कि सचाई पहाड़ों को भी चीर कर निकल आती है।

(इस घटना पर पाठकों का ध्यान दिलाना चाहता कि यह घटना बंगलादेश की है, जहाँ पर एक लेखिक तसलीमा नसरीन को दण्डित कराने के लिए मुस्लि कट्टरपंथी गुटों ने एक आन्दोलन चला रखा है। २९ जुला १९९४ को एक लम्बा मार्च करने की घोषणा की गई है।)

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पुनर्जागरण और महर्षि दयानन्द सरस्वती

–भगवान देव ''चैतन्य'', एम०ए०, साहित्यालंकार

गुलामी से बढ़कर और कोई अभिशाप नहीं हो क़ता है। यह गुलामी ही समस्त दुःखों का कारण है। ग़ामी चाहे व्यक्तिगत हो या सामूहिक, किसी राष्ट्राध्यक्ष ी हो या अन्य थोथी धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं ी। इन विभिन्न प्रकार की गुलामी की जंजीरों को तोड़कर क्त होना ही सब से बड़ा वरदान है। जंहा तक भारतवर्ष प्रश्न है- अपने ज्ञान और शौर्य के कारण यह समस्त श्व का गुरु रहा। इसे कभी चरमोत्कर्ष प्राप्त था। मगर ों ज्यों ज्ञान को झूठी मान्यताओं तथा खोखले आडम्बरों और शौर्य को आलस्य एवं प्रमाद ने अपने पंजों में समेट नया तभी से यह पतन की गर्त की ओर अग्रसर हुआ। क समय वह भी आया कि राष्ट्रीय एकता एवम् अखंडता री तरह छिन्न भिन्न हो गई और इस राष्ट्र को परतन्त्रता शिकंजे में जकड़ जाना पड़ा। मुगलों और अंग्रेजों का ासन हमारी बची-खुची उत्कृष्ट मान्यताओं और रम्पराओं को समाप्त करने के लिए काफी था। इस राष्ट्र मूल निवासी की स्थिति निरन्तर गुलामी का बोझ ढोते-ोते एक ऐसें कीड़े के सदृश हो गई जिसकी रीढ़ की हड्डी ी न हो। खड़ा होना तो दूर रहा वह तो सही ढंग से रेंगने योग्य भी नहीं रहा था। बीच-बीच में भारत भूमि पर क्के-दुक्के लीक से हटकर ऐसे वीर पुरुष भी हुए जन्होंने यदा कदा इस परिस्थिति से उबारने का प्रयास भी कया मगर राष्ट्र और राष्ट्र के नागरिकों को ऐसी तनावस्था से ऊपर उठाने के लिए किसी ढुल-मुल नीति ी नहीं बल्कि एक विधिवत् योजना की आवश्यकता ी। **महर्षि दयानन्द सरस्वती एक ऐसे ही दिव्य महापुरुष** े जिन्होंने बड़ी गहराई से भारत की इस पतनावस्था का ध्ययन करके कारगर उपाय भी हमारे समक्ष रखे। उन्होंने पनी 'दृष्टि बहुत पीछे दौड़ाई तो पाया कि हमारे पतन ा आरंभ महाभारत के अपार नरसंहार से हुआ क्योंकि स समय बड़े-बड़े विद्वान् और शूरवीर मारे गए जिनके भाव में हमारे धर्म ने धीरे-धीरे ढोंग की चादर ओढ़ ली। धर्म से नैतिकता और सच्चरित्रता का निष्कासन होकर उसमें आडम्बर एवं दिखावे का समावेश हुआ। जब व्यक्ति इन गुणों से विहीन हो जाता है तो व्यक्तिगत और सामाजिक पतन होना स्वाभाविक है। इसी पतन ने धीरे-धीरे ऐसा दीन हीन बना दिया कि हम अपना सर्वस्व खो कर मानो अपने ही कन्धों पर अपनी ही लाश लिये नाम मात्र का जीवन जीने पर बाध्य हो गए।

महर्षि को जब कारण का पता लगा तो वे इसके निवारण के लिए मन, वचन और कर्म से जुट गए। उन्होंने सर्वप्रथम इस राष्ट्र की प्रगाढ़ निद्रा में सोई हुई जनता को जगाने का संकल्प लिया। धर्म व्यक्ति के आचार-व्यवहार से जुड़ी एक कड़ी है जो उसकी चतुर्दिक् उन्नति का आधार है। उसी टूटी कड़ी के छल्लों को कसने का बीड़ा महर्षि दयानन्द ने उठाया। इस ढंग से उन्होंने राष्ट्र में एक नई चेतनता की लहर पैदा कर दी। एक कुशल चिकित्सक के समान उन्होंने पहले रोग के कारण का पता लगाया और फिर उपचार में जुट गए। महर्षि द्वारा प्रस्तुत यह धार्मिक जागरण ही राष्ट्रीय जागरण का सबसे प्रमुख कारण बना। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में- **''महर्षि दयानन्द उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया। उनके आचार सम्बन्धी पुनरुत्थान के कारण ही यह संभव हुआ।''** नेताजी के इन शब्दों में वह सच्चाई है जिसे आज विस्तृत किया जा रहा है। धर्म-व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के प्रत्येक क्रिया कलाप का एक अभिन्न अंग है। इसलिए इस धर्म के पुनरुत्थान ने जागरण के चतुर्दिक् दरवाजे खोल दिए। महर्षि दयानन्द के इसी प्रयास ने उन्हें समाज सुधारकों की पंक्ति में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया। समाज और राष्ट्र के लिए उनके योगदान का योगी अरविन्द के इन शब्दों से पता चलता है- **''यदि सभी समाज सुधारकों को पर्वत-श्रृंखलाएं मान लिया तो दयानन्द समस्त गिरिशिखरों के मध्य एक ऐसे सर्वोच्च शिखर हैं जो अपनी दिव्यता एवं भव्यता के कारण अपने आप में ज्योतिर्मय है और चंहू ओर प्रकाश विकीर्ण कर रहा है।''**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द ने केवल छुटपुट सुधार नहीं किया बल्कि उनकी दृष्टि भारतीय जर्जर समाज के आमूल चूल परिवर्तन पर थी। सन् १८५७ की सैनिक क्रान्ति में इनकी अहम् भूमिका रही है, इस बात के अब तक पर्याप्त प्रमाण मिल चुके हैं। यह ठीक है कि समय से पूर्व ही उस क्रान्ति का प्रस्फुटन हो जाने तथा अपने ही भीतर के कुछ राष्ट्रद्रोही व्यक्तियों के कारण यह क्रान्ति असफल रही, मगर महर्षि दयानन्द इस असफलता से निराश व हताश नहीं हुए बल्कि वे दुगुने उत्साह से विधिवत् कार्यक्षेत्र में कूद पड़े। उनकी पद्धति बहुमुखी थी। उन्होंने धार्मिक जगत् में तहलका मचा दिया। भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ रखकर बैठे अकर्मण्य लोगों को उन्होंने कर्मवाद का पाठ पढ़ाकर अंगड़ाई लेने पर बाध्य किया। केवल अपनी मुक्ति के लिए जंगलों की राह पकड़ने वाले ब्रह्मवादियों के समक्ष उन्होंने त्रैतवाद का अमर वैदिक सन्देश रखा। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति की अलग-अलग व्याख्या करके उन्होंने स्पष्ट किया कि जीवात्मा परमात्मा का अंश नहीं बल्कि वह कर्म करने में स्वतन्त्र है। यदि व्यक्ति चाहे तो वह स्वयम् अपने लिए स्वर्ग का निर्माण कर सकता है। उन्होंने आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय करके एक सर्वसमर्थ वैदिक धर्म को हमारे समक्ष रखा। पंडे-पुजारी चौंके, मगर महर्षि ने सभी प्रकार की कुरीतियों और कुनीतियों को उखाड़ फैंका। उनके जीवन का एक-एक क्षण राष्ट्र और समाज को समर्पित था। इसके लिए उन्हें बड़े से बड़ा कष्ट सहना पड़ा मगर वे अपने जीवन तक की परवाह किए बिना निरन्तर उन बुराइयों को जड़ मूल से उखाड़ने के लिए जूझते रहे जिन्होंने हमें पंगु बना रखा था। पोंगापन्थियों के चंगुल में फंसकर धर्म अपने वास्तविक स्वरूप को भूल चुका था। उस में से बुद्धिवाद लुप्त हो चुका था। महर्षि ने विज्ञान और बुद्धिवाद का इसमें पुनः समावेश करके एक नई दिशा दी। जड़ मूर्तियों के सामने आंखें बन्द करके बैठे लोगों को उन्होंने चेतनता का वह अमर सन्देश दिया कि निराश और हताश भारतीय जनता अपनी रीढ़ की हड्डी में हलचल अनुभव करने लगी तथा कालान्तर में धीरे-धीरे कमर कस कर हर स्थिति से जूझने के लिए तैयार हो गई।

डाक्टर पट्टाभि सीता रमैया अपने कांग्रेस के इतिहास में लिखते हैं- **"स्वतन्त्रता संग्राम में पिच्चासी प्रतिशत से अधिक आर्यसमाजियों ने अपना बलिदान दिया है।"** यही नहीं दादाभाई नैरोजी का कथन है- **"मुझे स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों से स्वराज्य की लड़ाई में बड़ी प्रेरणा मिलती है।"** इसी प्रकार लोकमान्य तिलक जी के शब्द भी द्रष्टव्य हैं- **"दयानन्द स्वतन्त्रता के प्रथम सन्देशवाहक थे।"** महर्षि दयानन्द में राष्ट्र प्रेम कूट कूट कर भरा हुआ था। उन्होंने वाईसराय नार्थब्रुक को साफ शब्दों में कहा था कि **"मैं नित्य प्रातः-सायं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मेरा देश पराई दासता से मुक्त हो।"** अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में इन्होंने स्वदेशी राज्य को सर्वोपरि बताया। उनके द्वारा स्थापित "आर्यसमाज" उन दिनों स्वतन्त्रता संग्रामियों का पर्यायवाची बन चुका था। एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज ने लिखा है- "किसी भी आर्यसमाजी की खाल को खुरच कर देखो तो अन्दर छिपा हुआ क्रान्तिकारी देशभक्त दयानन्द दिखाई देगा।"

चाहे वह राष्ट्रीय क्रान्ति हो, सामाजिक क्रान्ति हो या धार्मिक क्रान्ति हो सब के पीछे महर्षि दयानन्द का तेज और तप कार्य कर रहा था। राष्ट्रीय जागरण के सभी पहलुओं की पृष्ठभूमि उन्होंने कट्टरता के साथ तैयार की और उसे कार्य रूप भी दिया। सरदार पटेल जी ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है- **"मेरी दृष्टि में महर्षि दयानन्द सच्चे राजनीतिज्ञ थे। चालीस वर्षों से कांग्रेस का जो कार्यक्रम रहा है वह सब कार्य साठ वर्ष पूर्व उन्होंने ही देश के लिए रखा था।** सारे देश में एक भाषा, खादी, दलितोद्धार, स्वराज्य की घोषणा आदि सब दयानन्द ने देश को दिया। "महर्षि दयानन्द सरस्वती चंहुमुखी जागरण के आद्य प्रवर्तक थे यह एक ध्रुव सत्य है। इतिहास इस बात का जीता जागता प्रमाण है। भूतपूर्व लोकसभा अध्यक्ष अनन्त शयनम आयंगर ने क्या खूब कहा है-"गांधी जी राष्ट्र के पिता थे तो महर्षि दयानन्द राष्ट्र के पितामह थे। वे हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों और स्वतन्त्रता आन्दोलन के आद्य प्रवर्तक थे।"

१९०/एस-३ सुन्दरनगर-१७४४०२ (हिप्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्कल्प

मानव-जीवन में कर्म एवं भोग दोनों हैं किन्तु कर्म की प्रधानता है। कर्म का बीज मनुष्य के मन में एवं मन की शक्ति उसके सङ्कल्प में है। 'सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान् ।' (छान्दोग्य उपनिषद् प्रपाठक-७, खण्ड-४, श्लोक-१) अर्थात् सङ्कल्प मन से बढ़कर है। वस्तुतः मनुष्य के जीवन का व्यावहारिक आधार उसका सङ्कल्प ही है।

ईश्वर ने जगत् की रचना सङ्कल्प से ही की है। ईश्वर में कोई कामना तथा स्वाभाविक कर्म के अतिरिक्त कोई अन्य चेष्टा नहीं होती है। इसलिए उसके सङ्कल्प को ईक्षण कहा गया है। 'स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। स इमाँल्लोकानसृजत।।' (ऐतरेय उपनिषद् अध्याय-१, खण्ड-१, श्लोक-१,२) अर्थात् ईश्वर ने ईक्षण किया कि मैं लोकों की रचना करूँ, और उसने समस्त लोकों को बना दिया। इस प्रकार ईश्वरीय कर्म में भी सङ्कल्प का स्थान है। मानवी-कर्म में तो सङ्कल्प की विशेषता है ही। पशुओं के लिए भी सङ्कल्प का महत्त्व है। वेदान्तदर्शन (अध्याय-२, पाद-१, सूत्र-२४) के अनुसार- 'उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि' अर्थात् गाय अपने सङ्कल्प से बछड़े के लिए दूध स्रवित करती है। गाय की भाँति अन्य पशु-पक्षियों में भी सङ्कल्प समान रूप से कार्य करता है। इस प्रकार हमें बोध होता है कि सङ्कल्प-शक्ति अत्यन्त व्यापक है। यह परिवर्तन का कारण है। ईश्वर में परिवर्तन सम्भव नहीं और पशु-पक्षियों में परिवर्तन विशेष नहीं होता। मनुष्य में ही इतना अधिक परिवर्तन सम्भव है कि वह ऊपर उठता जाए तो देवता बन जाए और नीचे गिरता जाए तो दानव बन जाए। इस प्रकार सङ्कल्प का वास्तविक महत्त्व मनुष्य के ही लिए है।

सङ्कल्प से मनुष्य के जीवन की दिशा निश्चित होती है। यदि कोई व्यक्ति अर्थ-प्राप्ति का सङ्कल्प करता है, तो वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति अर्थ-प्राप्ति में ही लगा देता है। इससे उसका जीवन अर्थ-प्रधान हो जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति विद्या, सेवा, युद्ध, राजनीति आदि का सङ्कल्प करता है, उसका तन-मन-धन इन्हीं की प्राप्ति में लगा रहता है और उसका जीवन विद्या-प्रधान, सेवा-प्रधान, युद्ध-प्रधान अथवा राजनीति-प्रधान बन जाता है। ध्यान रखने की बात यह है कि मनुष्य अल्पशक्ति, अल्पज्ञ एवं अल्पकर्त्ता है। वह एक जीवन में सब कुछ नहीं पा सकता। अतः उसके लिए एक क्षेत्र अथवा कतिपय क्षेत्रों का चयन करना अनिवार्य हो जाता है। यह चयन ही सङ्कल्प का निर्धारण करता है। भीष्म पितामह ने आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करने का, आचार्य चाणक्य ने विशाल साम्राज्य स्थापित करने का एवं महर्षि दयानन्द ने वेदोद्धार करने का सङ्कल्प लिया। इन महापुरुषों ने इन्हीं दिशाओं में कार्य किया और ऊर्ध्वगति को प्राप्त किया। इसके विपरीत रावण ने सीता को न लौटाने का, दुर्योधन ने पाण्डवों को सत्ताच्युत करने का और हिटलर ने यहूदियों के नाश करने का सङ्कल्प लिया। इन योद्धाओं ने इन्हीं दिशाओं में कार्य किया और अधोगति को प्राप्त किया। इससे विदित होता है कि अच्छा सङ्कल्प मनुष्य को अच्छी दिशा और बुरा सङ्कल्प बुरी दिशा देता है। वस्तुतः सङ्कल्प मनुष्य को भीतर-ही-भीतर प्रेरित करता रहता है कि ऐसा करो, ऐसा मत करो। मनुष्य वैसा-ही-वैसा करता जाता है। जिस प्रकार बीज के अनुरूप वृक्ष होता है, उसी प्रकार सङ्कल्प के अनुरूप जीवन बन जाता है। अतएव अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिए हम सत्य का सङ्कल्प लें। 'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि' (यजुर्वेद अध्याय-१, मन्त्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५) अर्थात् मैं असत्य को छोड़कर सदा सत्य के आचरण का व्रत अर्थात् सङ्कल्प लेता हूँ।

तनिक वर्तमान समाज को देखें। इसमें स्वस्थ, सत्यवादी, विद्वान्, योगी एवं धार्मिक मनुष्य कम और अस्वस्थ, असत्यवादी, अविद्वान्, भोगी एवं अधार्मिक मनुष्य अधिक दिखायी देते हैं। इससे स्पष्ट है कि अच्छे, सङ्कल्पों वाले व्यक्ति अल्प संख्या में हैं। ऐसी स्थिति में देश एवं विश्व का उपकार कैसे सम्भव है? राजपुरुषों में देश-भक्ति का, विद्वानों में सत्य एवं धर्म का, अध्यापकों में छात्रनिर्माण का, वैद्यों में आरोग्य का, न्यायाधीशों एवं वकीलों में न्याय का एवं पुलिस में सुरक्षा का सङ्कल्प दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। फलतः छात्र-संख्या बढ़ने पर भी विद्या नहीं बढ़ रही, न्यायालय बढ़ने पर भी न्याय नहीं बढ़ रहा, पुलिस-संख्या बढ़ने पर भी सुरक्षा नहीं बढ़ रही और मानव-संख्या बढ़ने पर भी मानवता नहीं बढ़ रही है। अच्छाई की उन्नति के लिए यह अनिवार्य है कि अच्छे सङ्कल्प वाले मनुष्य अधिकाधिक हों। इसीलिए वेद में प्रार्थना है कि '.मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु' (यजुर्वेदः अध्याय-३४, मन्त्र-१) अर्थात् मेरा मन सदैव कल्याण के सङ्कल्प किया करे।

जिस प्रकार अच्छे सङ्कल्प वाले व्यक्ति थोड़े होते हैं, उसी प्रकार दृढ़ सङ्कल्प वाले व्यक्ति तो और भी थोड़े होते हैं। अधिकांश व्यक्ति तो सङ्कल्प में बँधते ही नहीं। जो बँधते हैं, वे धन की हानि, भूख-प्यास के कष्ट अथवा किसी अन्य दुःख के कारण उसे तोड़ देते हैं। जो अधिक साहस करते हैं, वे पद जाने, मान घटने अथवा प्राण-भय के कारण पीछे हट जाते हैं। इस प्रकार क्षुद्र सम्पत्ति एवं सांसारिक सुख के कारण अधिकांश व्यक्ति शाश्वत सिद्धान्तों एवं नैतिक मूल्यों को तिलाञ्जलि दे डालते हैं। यह संसार में प्रतिदिन होता रहता है। मिट्टी खाने वाला बालक माता की डाँट पर पुनः मिट्टी न खाने की शपथ लेता है, किन्तु मिट्टी सामने आते ही पुनः खा लेता है। शराब पीने वाला व्यक्ति विवेक जागने पर शराब त्यागने की शपथ लेता है, किन्तु वासना जागने पर पुनः नशे में धँस जाता है। घूस लेने वाला कर्मचारी प्रतिदिन ईमानदारी की शपथ लेता है, किन्तु घूस का अवसर आते ही वह घूस स्वीकार कर लेता है। मन्दिर का पुजारी ईश्वर का स्मरण आते ही निष्पापता की शपथ लेता है, किन्तु लोभ से सामना होते ही ईश्वर का नाम बेचने लगता है। गुण-दोष की दृष्टि से ये सब एक ही वर्ग में आते हैं। जब तक सङ्कल्प दृढ़ नहीं होता, तब तक दोष-त्याग एवं गुण-ग्रहण भी नहीं होता। जीवन सुख-दुःख, विद्या-अविद्या एवं धर्म-अधर्म के बीच झूलता रहता है। जो मनुष्य दृढ़ सङ्कल्पी होता है, वही लक्ष्य की प्राप्ति कर पाता है। ऐसे मनुष्य संसार में विरले होते हैं। किन्तु ऐसों की ही साधना सिद्ध एवं जीवन सफल हो पाता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है-'कृते विनिश्चये पुंसां देवाः यान्ति सहायताम्' अर्थात् दृढ़ निश्चय वाले व्यक्ति की सहायता दिव्यगुण एवं देवगण करते हैं। अतः हम सत्य सङ्कल्पी होने के साथ-साथ दृढ़ सङ्कल्पी भी बनें।

मनुष्य अपने सङ्कल्प को अपने जीवन से भी अधिक प्रेम करता है। सङ्कल्प की रक्षा में अपने प्राणों की चिन्ता न राम ने की न रावण ने, न कृष्ण ने की न दुर्योधन ने, न चन्द्रगुप्त ने की न सिकन्दर ने। सङ्कल्प की दृढ़ता के नमूने तो ये छहों ही हैं, किन्तु दृढ़ता के साथ-साथ शिवता के नमूने राम, कृष्ण एवं चन्द्रगुप्त ही हैं, शेष नहीं। सङ्कल्प की शिवता एवं दृढ़ता को एक साथ धारण करना बड़े साहस का काम है। इसी साहस से युक्त लाखों सपूतों ने आज तक भारत माता एवं इसकी संस्कृति की रक्षा की है। भारत के वर्तमान कर्णधारों में इसी साहस का अभाव है, अन्यथा स्वर्ग-सी धरा पर बसा यह देश नरक तुल्य न होता। किसी शायर ने भी कहा है-'ये हौसलों की कमी ही तो हमें ले डूबी। भँवर से वरना किनारे का फासला क्या था। सङ्कल्प में सम्मिलित करने वाले गुण हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, धृति, क्षमा, दम, अक्रोध, अनुशासन, श्रम, सेवा, दान, देशभक्ति, समाज-सुधार, सङ्गठन आदि। हम इन सङ्कल्पों में दृढ़ होकर आर्य (श्रेष्ठ) बनें और अपने राष्ट्र को भी आर्य (श्रेष्ठ) बनाएँ।

-रूपचन्द्र 'दीपक'

(प्रधान, आर्यसमाज श्रृंगार नगर, लखनऊ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ८-१० वर्षीय पाणिनीय व्याकरण पढ़ने को वास्तव में ही असमर्थ हैं?

वर्तमान विषम परिस्थितियों में भी जबकि संस्कृत का वातावरण समाप्त जैसा है, कम से कम एक उदाहरण तो आज भी महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत शिक्षानीति के पक्ष में प्राप्त होता है, जो भली भाँति यह सिद्ध कर देता है कि "जिस शिक्षानीति को महर्षि दयानन्द ने अपना बहुमूल्य समय, अपना जीवन लगाकर निर्धारित किया था, उसके अनुसार ८-१० वर्षीय बालक इस समय भी पढ़ने में पूर्णत: समर्थ है।"

दिनांक २०।४।९४ को मैंने एक अहिन्दीभाषी विद्यार्थी (केवल १० वर्षीया बालिका) को सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के सूत्रों को गिनती-पहाड़ों की तरह तोड़फोड़कर सुनाते हुए देखा। जब यह भी जाना कि वह बालिका प्रथमावृत्ति में भी २-३ अध्याय पढ़ चुकी है, तो इसे महर्षि कृत शिक्षानीति की यथार्थता, (पूर्ण सत्य) का प्रत्यक्ष प्रमाण स्वीकार करते हुए (शीघ्रता में) बालिका में निम्नांकित जानकारी और प्राप्त की :-

(१) **विद्यार्थी का नाम** - कुमारी श्रद्धा।

(२) **जन्म भूमि** - बैंग्लौर (कर्णाटक)।

(३) **जन्म तिथि** - २३ सितम्बर १९८३, ई०।

(४) **शिक्षण संस्था का नाम** - आर्ष गुरुकुल, खानपुर डा० मण्डाणा, त० नारनौल, जि० महेन्द्रगढ (हरियाणा) -१२३००१।

(५) **आवास** - पास के गाँव में है।

(६) संस्कृत पढ़ते हुए सिर्फ दश माह हुए हैं अर्थात् ४ जून सन् १९९३ से इस गुरुकुल में अध्ययनरत है।

(७) हरियाणा प्रान्त में आये पूरे दो वर्ष भी नहीं हुए हैं।

(८) आधुनिक शैक्षिक योग्यता - कन्नड माध्यम से तृतीय श्रेणी उत्तीर्ण है।

(९) इसी गुरुकुल में अध्ययनरत अपने भाई से मिलने आई थी। और (संस्कृत) पढ़ने की इच्छा से यहीं ठहर गई।

(१०) प्रेरणा स्रोत मूलत: अपनी बुआ को बताती है क्योंकि वह विद्यालय के अवकाशों में अपनी बुआ के पास ही रहती थी।

(११) भविष्य में गुरुकुल खोलने की तीव्र इच्छा है, जिसमें मुख्य विषय व्याकरण होगा।

(१२) गार्गी आदि विदुषी स्त्रियों का अनुकरण करना चाहती है अर्थात् आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने की इच्छा है।

(१३) आगामी शिक्षा प्राप्त करने हेतु आर्ष कन्या गुरुकुल लौहाकलां (बहादुरगढ़) प्रस्तावित है।

(१४) पिता आर्यप्रतिनिधि सभा कर्णाटक के मंत्री हैं। जिन्होंने बेंग्लौर में कावेरी के तट पर "शान्ति धाम" की स्थापना की है। चूंकि अपने दोनों सन्तानों (पुत्र-पुत्री) को गुरुकुल में पढ़ने भेजा है, जिससे माता-पिता दोनों ही धार्मिक और संस्कृत प्रेमी प्रतीत होते हैं।

अब पाठक ध्यान दें कि इतनी कम उम्र में, अहिन्दी भाषी और बालिका को सिर्फ १० (दश) महीने में अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कराकर प्रथमावृत्ति भी पढ़ाना, सचमुच आचार्य के परिश्रम का ही फल है। (लेखक बच्चों को पढ़ाने के परिश्रम से भली भांति परिचित है) परन्तु कितने खेद की बात है कि देशभर में कन्याओं का पाणिनीय व्याकरण के पठन-पाठन हेतु कोई (एक भी) प्राथमिक आदर्श विद्यालय की समुचित व्यवस्था नहीं है। ऐसी दशा में यह बालिका भले ही गार्गी आदि स्त्रियों के समान विदुषी बनने का स्वप्न पूरा न कर सके परन्तु इसने और इसके आचार्य ने अपने परिश्रम से यह तो सिद्ध कर ही दिया कि "महर्षि दयानन्द द्वारा निर्धारित शिक्षानीति प्रत्येक आरोप से मुक्त एवं आदर्श है।"

जिन्हें यह समाचार गप्प ही प्रतीत हो, वे कृपा करके सत्य की स्वयं भी परीक्षा कर सकते हैं।

इस प्रकार शब्द प्रमाण के साथ अब तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी यह सिद्ध करता है कि ८-१० वर्षीय बच्चे को महर्षि कृत शिक्षानीति के अनुसार पणिनीय व्याकरण पढ़ाया जा सकता है तो आगे अन्य शास्त्र क्यों नहीं ? अत: महाविद्वानों, शिक्षा प्रेमियों से निवेदन है कि वे सत्य को कम से कम अब तो स्वीकार कर ही लें।

लेखक के विचार से महर्षि दयानन्द द्वारा निर्धारित शिक्षानीति मनुष्य मात्र की उन्नति का मूल मन्त्र है। अत: आधुनिक समय में (आज) भी यह शिक्षानीति अन्तार्राष्ट्रीय स्तर पर भी सफलतापूर्वक प्रयोग किये जाने की योग्यता रखती है। अत: पाठक निश्चित समझें अर्थात् कि यदि हम ऋषियों को छोड़कर अनृषियों के प्रति आस्था रखें और ऋषियों की वाणी और लेखनी पर श्रद्धा नहीं रखते तो नि:सन्देह हमारी बुद्धि हमें धोखा दे रही है।

-सत्यपाल आर्यबन्धु (सोलारोड, नारायण पुरा, अहमदाबाद)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या असली भाव जगेगा !

दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक एवं आर्यसमाज के एक चिन्तनशील मनीषी डॉ॰ महेश विद्यालंकार का जुलाई अंक में छपा लेख 'आर्यो ! ये कैसी श्रद्धांजलि?' जहाँ बड़ा प्रासंगिक एवं प्रेरणाप्रद है, वहाँ गम्भीरता-पूर्वक विचारणीय भी। क्या अनेक श्रद्धाशील ऋषिभक्तों की पीड़ा में सम्मिलित उन की पीड़ा को कोई सुनेगा और मूल से जुड़ने का असली भाव जगेगा !

वर्तमान आर्यसमाज की सब से बड़ी कठिनाई सम्भवत: यही है कि उस के आज के सत्ताधीशों को यह चिन्ता अधिक है कि उन के नाम से पहले 'महात्मा, सुप्रसिद्ध आर्य नेता, प्रख्यात वक्ता, सिद्धहस्त लेखक, यशस्वी दानी, कर्मठ कार्यकर्त्ता लिखा जाए, न कि यह देखने की कि आर्यसमाज का संगठन डाँवाडोल हो रहा है, उस का जनसाधारण से नाता टूट रहा है, उस के कर्णधारों में तप-त्याग के स्थान पर स्वार्थपरता,लोकैषणा बढ़ रही है। इस के दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं, पर 'वाहवाही' देखने-सुनने में मदमस्त और खुशामदी टट्टूओं की 'चाटुकारिता' से 'सन्तुष्ट' आर्यसमाज की नैया के इन 'खेवनहारों' को कुछ नहीं दीखता। कोई बताए कि 'महात्मा' (वानप्रस्थ) बनकर यदि पूर्ववत् दिल्ली के शाहाना ठाठ-बाट वाले बंगले में ही रहना है और फैक्ट्री ही चलानी है, तो कपड़े,रंगने की ढकोसलेबाज़ी क्यों? महर्षि दयानन्द ने तो अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में वानप्रस्थ के लिए साफ़ शब्दों में लिखा है- 'यथावत् इन्द्रियों को जीत के वन में बसे...... ग्राम (=नगर) से निकल दृढ़ेन्द्रिय होकर अरण्य में जाके बसे (=रहे)...... अपने आश्रितों व स्वकीय पदार्थों में ममता न करे।

नतीजा स्पष्ट है। आडम्बर-प्रिय नेताओं, अधिकारियों के कारनामों के सदके, आज हमारे सत्संगों, उत्सवों, पर्वों, सम्मेलनों में आकर्षण नहीं रहा। उन में उपस्थिति घटती जा रही है। करोड़ों रुपये के मन्दिरों में २५-३०-३५ की हाज़री ही रविवार को हो पाती है। भारत की राजधानी दिल्ली की ३०० आर्यसमाजों के 'सुदृढ़ संगठन' का दम भरने वाली 'आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली राज्य' अब अपने जलसे अजमल खाँ पार्क जैसे खुले मैदानों की जगह बन्द 'हाउसों' में करती है। 'सप्रू हाउस' में सम्भवत ६०० व्यक्तियों के बैठने की 'कुर्सी-व्यवस्था' है। 'आर्यसमाज स्थापना-दिवस' के एक उत्सव में मुश्किल से ३००-३५० व्यक्ति ही उपस्थित थे, पर नेता काफ़ी थे, हारों की खूब भरमार थी, प्रशंसा के अनेक पुल बाँधे जा रहे थे। मेरा सिर शर्म से झुक गया। मुझ से न रहा गया और मैंने बाद में एक अवसर पर महामन्त्री महोदय से चर्चा कर ही दी। उन का सीधा-सादा उत्तर था-यह भी सब मेरे निजी विशेष प्रयत्न से हुआ था। ऐसी ही एक आधुनिक परिस्थिति देखकर डॉ॰ महेश जी ने 'अपनी सब की पीड़ा' को लिपिबद्ध किया है। १६ को जन्मोत्सव' और १९ फरवरी को कोटला फ़िरोज़शाह, मैदान में मनाए गए 'ऋषि बोधोत्सव' की चर्चा करते उन्होंने संतप्त मन से लिखा है कि 'वहाँ जो विचार सुनने को मिले निराशा-जनक, सिद्धान्त-विरुद्ध तथा ऋषि के व्यक्तित्व व कृतित्व अछूते थे, ऋषि-चिन्तन कम था, नेता-पूजन अधिक था।' श्रद्धाशील जनों की भावनाओं को प्रकट करते हुए उन्होंने कष्टपूर्वक कहा है 'जनता वहाँ, ऋषि के चिन्तन-मनन, महत्त्व, योगदान, जीवन-विशेषता आदि को सुनने जाती है न कि पथभ्रष्ट, सिद्धान्तहीन, जीवन मूल्य एवम् अवसरवादी राजनेताओं की ऊल-जलूल, तुक्केबाज़ी भरी सि विरुद्ध बातों को'। दर्द भरे शब्दों में वे कह रहे है कि 'महर्षि सम्बन्धी उत्सवों में' उन्हीं द्वारा स्थापित सिद्धान्तों तथा मान्यताओं की धज्जियाँ उ गईं।

सीधा प्रश्न है बड़े-बड़े दिग्गज ऐसा क्यों करते हैं? महेश ज शब्दों में 'हो सकता है कि कोई अपने सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने के लि अपने को आगे बढ़ाने के लिए, अपने काम (=ज़मीन आदि अलॉट कर और सम्पर्क को साधने के लिए आर्यसमाज के मंच पर ऐसे नेताओं बुलाते हैं।' 'महर्षि जन्मोत्सव' के मुख्य अतिथि थे भारत के कृषि राज्य श्री अरविंद नेताम और 'महर्षि बोधोत्सव' के हरियाणा के मुख्यमन्त्री भजन लाल। ये महानुभाव उस सत्ताधारी राजनीतिक दल के सदस्य हैं, ने पहले मुस्लिम कट्टरवाद के सामने घुटने टेक कर मातृभूमि भारत के टु करवाये। फिर ४६ वर्ष के स्वतन्त्र काल में से ४२-४३ वर्ष के शासनकाल में आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विपरीत बहुत कार्य किए। प के हिन्दी सत्याग्रह में दयानन्द के सिपाहियों को जेलों में डाला तथ पर गोलियां और लाठियां बरसाईं। धर्मनिरपेक्षता की झूठी दुहाई देकर में नास्तिकता व धर्म हीनता फैलाई, वोट की राजनीति खेलकर जाति को बढ़ावा दिया और बिखरे समाज को और अधिक बाँटा, संविधान घोषित राजभाषा हिन्दी को गुलामी की भाषा अंग्रेज़ी की दासी बनाए र न गोहत्या बन्द की न शराब नोशी। संस्कृत और संस्कृति पर अनेक प्र के कुठाराघात किए। नैतिकता और ईमानदारी का ह्रास किया तथा व्यभि एवं बेइमानी को सहारा दिया। दूरदर्शन पर 'हिंसा व फैशन' के नंगे दिखा कर नवयुवक-नवयुवतियों में चरित्र हीनता विकसाई।

अत: डॉ॰ महेश के शब्दों में 'आर्यसमाज को पुन: इस दि गम्भीरता से सोचना और निर्णय लेना चाहिए कि अपने तप: पूत महापु के जन्म, स्मृति एवं बलिदान पर्वों पर उन्हीं लोगों को बुलाया जाए सिद्धान्त, जीवन दृष्टि चरित्र और संगठन को गहराई से जानते व मानते महर्षि दयानन्द या आर्यसमाज ढिंढोरचियो के सर्टिफिकेटों के मुह नहीं।

[(प्रिंसिपल) ओमप्रकाश, पंजाबी बाग, नई दि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्तिपूजा

सुनिए सुनाता हूँ, मैं एक कहानी।
ध्यान से सुनना, कहता हूँ रानी।।
यह है एक छोटी सी ऐसी कहानी।
छुड़ा देगी जड़ पूजा मिनटों में रानी।।टेक।।

एक बुढ़िया थी, जो प्रतिदिन मंदिर जाती थी।
दुर्गा की मूर्ति को भोग लगाके, तब कहीं वह खाना खाती थी।।
जब लड़के की शादी हुई, और बहु घर में थी आई।
तो सास जी बहू को भी, एक दिन मंदिर में लाई।।
शेर की मूर्ति देखकर, बहू जोर से चिल्लानी।।सुनिये.....।।१।।

बहू बोली माता जी! मुख फाड़ रहा है अपना शेर।
यह मुझको खा जायेगा, नहीं है इसमें तनिको देर।।
सास हाथ रख शेर पे बोली- यह पत्थर हैं इसमें जान नहीं।
यह कभी नहीं खा सकता तुम को, सोच-समझ नादान कहीं।।
मत घबरा यह शेर है नकली, मैं कहती हूँ बहू रानी।। सुनिये.....।।२।।

अब सास जी दुर्गा की मूर्ति को भोग लगाने लगती है।
यह देखकर बहू दुर्गा की मूर्ति पे हाथ रखके कहती है।।
अरे माता जी! जब पत्थर का शेर कभी नहीं खा सकता है।
तो भला बताओ, दुर्गा की मूर्ति को भोग कैसे लग सकता है।।
कहा दुर्गा भी पत्थर है, इस को खिलाने की क्यों करती हैं नादानी।। सुनिये.......।।३।।

सही बहू तूने आज मेरी आँखों को खोल दिया।
तेरी वाणी में जादू है, मिनटों में मुझे बदल दिया।।
मैं कान पकड़ती हू, अब मूर्तिपूजा करूँगी कभी नहीं।
तूने मुझपे अहसान किया, मैं आशीर्वाद देती हूँ यहीं।।
युग-युग जियो, मेरी आयु भी लेके जियो बहू रानी।। सुनिये.....।।४।।

देखो! ईश्वर सर्वव्यापक है, वह मूर्ति में भी है।
लेकिन मूर्ति में भक्त की आत्मा जाती नहीं है।।
ईश्वर निराकार है, उसकी कोई मूर्ति नहीं है।
प्रभु-दर्शन दिल में करो, वह बाहर मिलता नहीं है।।
रामकृष्ण यह कहानी याद रखो, यदि सब को है समझानी।। सुनिये......।।५।।

–डा॰ रामकृष्ण आर्य
ग्राम–माधोरामपुर, पो॰ परसीपुर, जि॰ वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा बन्धन श्रावणी पर्व

राखी के धागे में महके प्यार बहिन का ज्यों चन्दन।
बन वेद पथिक दुष्कर्म तजें, मङ्गलमय हो रक्षा बन्धन !!

१ भ्राता-भगिनी का प्रेम पर्व, रक्षा बन्धन कहलाता है।
देखो है महत्त्व महान् हुमायूँ, गढ़ चित्तौड़ बचाता है !!
तज कथित धर्म, किया उसने, रक्षा धागे का अभिनन्दन---बन वेद-

२ बचने को बहादुरशाह मुगल से, राखी भी मुगल को ही भेजी।
लड़ गया मुगल से मुगल बचानी, थी बहिना आर्या देवी !!
उस कथित धर्म पर सत्य धर्म की, जय का है शत-शत वन्दन---बन वेद-

३ श्रावणी पर्व रक्षा बन्धन का, वैदिक रूप कहा जाता।
इस समय घरों में बृहद् यज्ञ कर, वेद पढ़ा व सुना जाता !!
सब मना रहे इसको इस विधि, मॉरीशस अफ्रीका लन्दन---बन वेद-

४ हों वेद कथा अज्ञान मिटे, और सत्य-अर्थ का हो प्रकाश
पढ़ वेद, शास्त्र, उपनिषत् करो, मानव-मानवता का विकास !!
घर-घर में यज्ञ-हवन हों तो, रहे कहीं विश्व में दुर्गन्ध न---बन वेद-

५ सुख-शान्ति युक्त संसार बने, जो सब कर लें संकल्प मित्र।
बहनें न लजावें निज स्वरूप, भाई फाड़े सब नग्न चित्र !!
सब युवक युवतियाँ 'गुण-ग्राहक' फिल्मों का शुरू करें खण्डन---बन वेद-

-रामनिवास 'गुण ग्राहक' सूरौता, अवार, भरतपुर (राज॰)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/94
आर/ आर/ नं. २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/9/94

सितम्बर १९९४

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं.
यू (डी.एन.) १४४/९४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/94

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्रहाक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. **जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।**

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर,
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए
दोरंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 में

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु० ४०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान:- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
४५५, खारीबावली दिल्ली - ६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

श्री सेवा में........................
ग्राम........................
डा०........................
जिला........................

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अक्तूबर, १९९४

वर्ष २२ : अंक १२
दयानन्दाब्द : १७०
विक्रमसंवत् : श्रावण, २०५१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,०९५

संस्थापक : **स्व० दीपचन्द आर्य**
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय :
"दयानन्दसन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २-५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- कौन बनेगा प्रहरी ! २
- वेदोपदेश ३
- 'यज्ञोपवीत' वैदिक-संस्कृति का मौलिक चिह्न है। ४
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ १२
- हैदराबाद का मुक्ति संग्राम और आर्य सत्याग्रह १३
- महर्षि दयानन्द के वास्तविक उत्तराधिकारी कौन? १९
- मानवीय मूल्यों के शिक्षा-तत्त्व २०
- वेदाविर्भाव की विभिन्न पद्धतियों की समीक्षा २३
- जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है? २६

'सत्यार्थ प्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपये, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन बनेगा प्रहरी !

लुप्त पन्थ-सद्ग्रंथ उपेक्षित विषम अवस्था है गहरी !
लोभ और स्वार्थ त्यागकर कौन बनेगा प्रहरी !

प्रिय जो आर्यसमाज बचाये !
वेदों का प्रकाश फैलाये !!

सत्य ज्ञान इस नाशवान् को पता नहीं कब मिल पायेगा,
तिरस्कार और पक्षपात का कटु बेल कब मिट पायेगा।
क्रिया कलाप में शृंखलाबद्ध विज्ञान सकल हित आ जायेगा,
सम्मोहित हो विश्व स्वेच्छया सुदृढ़ मार्ग को अपनायेगा।
उन्नति प्रगति के लिए जहाँ उद्घोष आस्था हो ठहरी।।
लोभ और सब स्वार्थ को तजकर कौन बनेगा प्रहरी?
प्रिय जो आर्यसमाज बचाये ! वेदों का प्रकाश फैलाये !!

मिथ्या विश्वास-अज्ञान तिमिर-आंडम्बर चारों ओर प्रसारित,
अन्ध कूप विस्तार हो रहा, उद्यत पग तल तक, ना सुबिदित,
आँख मूंद कर भेड़चाल सा चला जा रहा है जग प्रमुदित,
पता नहीं कोई दे पाता है किसमें कल्याण निहित।
मरा जा रहा राम बेचारा उच्च हिमालय से गिर कहरी।
लोभ और सब स्वार्थ त्याग कर कौन बढ़ेगा बन प्रहरी?
प्रिय जो आर्यसमाज बचाये ! वेदों का प्रकाश फैलाये !!

कुरान-बायबिल, इञ्जील-तौरेत-जिन्दावस्ता ध्यान धरे,
या सत् साईं बालयोगेश्वर ओशो सा गुरु ग्रहण करे।
मारे काटे या फुसलाये स्वार्थ सधे वह काम करे,
मत मजहब जिस विधि फैलकर हो समर्थ तत्काल वरें।
इस आपाधापी के युग में कैसे बचे संस्कृति गठरी ।।
लोभ और सब स्वार्थ से बचकर कौन बनेगा दृढ़ प्रहरी !
प्रिय जो आर्यसमाज बचाये ! प्रभु का वेद ज्ञान फैलाये !!

–सत्यदेव प्रसाद आर्य 'मरुत'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।।
-महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- यज्ञ कर्म में यज्ञोपवीत धारण करना अपरिहार्य है और इसके बिना कोई मनुष्य द्विज नहीं बन सकता है।

हैमवर्चिः ऋषिः। यज्ञः देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ।।

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया जाता है ।।

ओ३म्- **एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम्।**
तदेतत् सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ।।
(यजु० १९। ३१।)

पदार्थः-(एतावत्) एतत् परिमाणमस्य तत् (रूपम्) स्वरूपम् (यज्ञस्य) यजनकर्मणः (यत्) (देवैः) विद्वद्भिः (ब्रह्मणा) परमेश्वरेण वेदचतुष्टयेन वा (कृतम्) निष्पादितं प्रकाशितं वा (तत्) परोक्षम् (एतत्) प्रत्यक्षम् (सर्वम्) (आप्नोति) (यज्ञे) (सौत्रामणी) सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना=ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिंस्तस्मिन् (सुते) सम्पादिते ।।

अन्वयः- यो मनुष्यो यद् देवैर्ब्रह्मणा यज्ञस्यैतावद् रूपं कृतं तदेतद् सर्वं सौत्रामणीसुते यज्ञ आप्नोति, स द्विजत्वारम्भं करोति ।

सपदार्थान्वयः- यो मनुष्यो यद् (देवैः) विद्वद्भिः (ब्रह्मणा) परमेश्वरेण वेदचतुष्टयेन वा (यज्ञस्य) यजनकर्मणः (एतावत्) एतत् परिमाणमस्य तत् (रूपम्) स्वरूपं (कृतम्) निष्पादितं प्रकाशितं वा (तत्) परोक्षम् (एतत्) प्रत्यक्षम् सर्वं (सौत्रामणी) सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना=ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिँस्तस्मिन् (सुते) सम्पादिते यज्ञे (आप्नोति) स द्विजत्वारम्भं करोति ।

भाषार्थः- जो मनुष्य- (देवैः) विद्वानों के द्वारा (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा चारों वेदों से (यज्ञस्य) यज्ञकर्म का (एतावत्) इतना (रूपम्) स्वरूप (कृतम्) निष्पन्न वा प्रकाशित किया है (तत्) उस (एतत्) इस (सर्वम्) सब को (सौत्रामणी) सूत्र=यज्ञोपवीत आदि मणि=ग्रन्थि से युक्त जिसमें धारण किए जाते हैं, उस (सुते) सम्पादित (यज्ञे) यज्ञ में (आप्नोति) प्राप्त करता है, वह द्विजत्व को आरम्भ करता है ।।

भावार्थः- विद्वद्भिर्मनुष्यैर्यावद् यज्ञानुष्ठानानुसन्धानं क्रियेत, तावदेवानुष्ठाय महोत्तमं यज्ञफलमाप्तव्यम् ।।

भावार्थ:- विद्वान् मनुष्य जितना यज्ञानुष्ठान का अनुसन्धान कर सकें, उतना करके अत्युत्तम यज्ञ-फल को प्राप्त करें।

भाष्यसारः- यज्ञ कर्म आवश्यक कर्त्तव्य है चारों वेदों के विद्वानों ने यज्ञ का जो स्वरूप प्रकाशित किया है, जिस यज्ञ के करने का अधिकार यज्ञोपवीत आदि श्रेष्ठ व्रत धारण करने पर मिलता है उसको करने से ही मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है।

('दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर' से उद्धृत,
व्याख्याता- **श्री आचार्य सुदर्शनदेव शास्त्री**)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यज्ञोपवीत' वैदिक-संस्कृति का मौलिक चिह्न है

-राजवीर शास्त्री

आचार्य का लक्षण

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

(मनु॰ २।१४०)

अर्थः- (यः) जो (उपनीय तु) यज्ञोपवीत संस्कार कराके (शिष्यम्) शिष्य को (सकल्पं च सरहस्यम् वेदम्) कल्पसूत्रों से प्रारम्भ कर वेदान्तसहित=आध्यात्मिक ज्ञान सहित चारों वेदों का (अध्यापयेत्) अध्यापन अर्थ सहित पढ़ावे, (तम् आचार्यम् प्रचक्षते) उसको आचार्य कहते हैं॥

यज्ञोपवीत संस्कार कब करायें?

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥

(मनु॰ २।३७)

अर्थः- जिसको शीघ्र विद्या, बल और व्यवहार (व्यापार) करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पांचवें, क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें॥

(सं॰ वि॰ उपनयन॰)

उपनयन की अन्तिम अवधि

आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥

(मनु॰ २/३८)

अर्थः- (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण के बालक का सोलहवें वर्ष तक, क्षत्रिय के बालक का बाईसवें वर्ष तक, और वैश्य के बालक का चौबीस वर्ष तक यज्ञोपवीत अवश्य करवा लेना चाहिए। (यह यज्ञोपवीत कराने की अन्तिम सीमाएँ हैं।)

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥

(मनु॰ २।३९)

अर्थः- इन पूर्वोक्त वर्णों के समय पर यज्ञोपवीत संस्कार न होने पर तीनों ही वर्णों के बालक यज्ञोपवीत से पतित होने से आर्यों के द्वारा निन्दित होते हैं और वे व्रात्य= (व्रतों से पतित) कहलाते हैं।

जो मनुष्य यज्ञोपवीत धारण नहीं करता है, अथवा धारण करके इस का प्रमादवश परित्याग कर देता है, उसे मानव-धर्म शास्त्र में सावित्री-पतित 'व्रात्य' नाम से कहा है। यथार्थ में इस सूत्र को इतना महत्त्व क्यों दिया गया है, क्योंकि इस सूत्र के धारण करने वाला व्यक्ति वैदिक संस्कृति का सच्चा उपासक बन जाता है, और यह संस्कृति ही वह पावनतम संस्कृति है, जो मानव को दानवता से बचाकर उस का सर्वाङ्गीण-विकास का सन्मार्ग दिखाती है और मानव को परम पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति कराती है। इस व्रत-सूत्र को धारण करते समय जो मन्त्र बोला जाता है, उसका प्रत्येक शब्द एक विशेष भाव से अनुस्यूत होने से यज्ञोपवीत की यशोगाथा को प्रकट कर रहा है। यज्ञोपवीत-मन्त्र इस प्रकार है-

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

(पार॰ गृ॰ सू॰ का॰ २। क॰ २। सू॰ ११)

(१) **यज्ञोपवीतम् का अर्थ**-इस मन्त्र में 'यज्ञोपवीत' शब्द का दो बार पाठ है। और जब वैदिक भाषा में दो पर्यायवाची शब्दों का एक मन्त्र में प्रयोग होता है, तो उसमें एक शब्द विशेषण होता है, दूसरा विशेष्य। अन्यथा समानार्थक एक से अधिक शब्दों का प्रयोग निरर्थक होता है। इसी नियम से प्रथम 'यज्ञोपवीत' शब्द विशेषण के रूप में यहां प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है-यज्ञाय उपवीतम्=यज्ञोपवीतम् अर्थात् इस सूत्र को यज्ञ करने के लिए धारण किया जाता है। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ व्याकरण में किये हैं-देवपूजा, संगति-करण और दान। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इस सूत्र को धारण करने वाला देवों की पूजा करना चाहता है। वह व्यक्तिगत जीवन में दिव्यगुणों का उपासक बनकर समस्त शारीरिक, वाचिक और मानसिक दोषों को छोड़कर इन में दिव्यगुणों का संयोग करना चाहता है। किन्तु मानव सामाजिक प्राणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उसका विकास सामाजिक वातावरण में ही होता है। यदि मानव का वातावरण दिव्यगुणों से ओत-प्रोत नहीं है, तो वह कभी भी गुणों का आराधक नहीं बन सकता। और मानव के जन्म-समय से लेकर पूर्ण विकास होने तक और इसके बाद भी उत्तम वातावरण को देकर सन्मार्ग का दर्शन करने वाले पांच देव हैं, जिनके विषय में प्राचीन काल में 'पञ्चायतन पूजा' शब्द का प्रचलन होता रहा है? और शास्त्रों ने इन पांच देवों का सम्मान करने के लिए निरन्तर उपदेश दिये हैं-

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। तस्य वाचकः प्रणवः, तज्जपस्तदर्थभावना।

(अर्थात् परमदेवों के देव ईश्वर का नाम ओ३म्' है, उसी का जप प्रतिदिन करना चाहिये।) और जो इन देवों की पूजा नहीं करता है, वह व्यक्ति कृतघ्न होता है। और कृतघ्नता जीवन का सब से महान् पाप होता है, जिसका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है। महर्षि वाल्मीकि इस विषय में कहते हैं—

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः ।।

अर्थात् कृतघ्नता गाय की हत्या, मद्यपान करना, चोरी करना तथा व्रतों को भंग करना इत्यादि पापों से भी बड़ा पाप है। क्योंकि इन पापों के करने पर शास्त्रकारों ने प्रायश्चित्तों का विधान किया है। किन्तु कृतघ्न के लिए नहीं। इस कृतघ्नता दोष से बचने के लिए ही हमारे पूर्वजों ने इन तीन सूत्रों वाले यज्ञोपवीत को धारण करना अपरिहार्य माना है। क्योंकि यह देवपूजा के लिए धारण किया यज्ञोपवीत यह स्मरण कराता है कि हे मानव ! जिन देवों की कृपा से तुझे मानव-जीवन मिला है, उनके उपकारों का स्मरण सदा करते हुए उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को कभी भुलाना नहीं। इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं—जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणः। (तै० संहिता ६।३।१०।५)

अर्थात् जैसे ही मनुष्य कर्त्तव्य करने के योग्य बनता है, वैसे ही वह तीन ऋण, वाला हो जाता है—ऋषि-ऋण, देव-ऋण तथा पितृ-ऋण। और ऋणी व्यक्ति तब तक सुखी नहीं हो सकता, जब तक वह ऋणों से मुक्त न हो। ऋषियों के दो भेद हैं एक परमपिता परमात्मा, उसके ऋण से छूटने के लिए ब्रह्म=परमात्मा की भक्ति, ब्रह्म=वेदविद्या का अध्ययन तथा ब्रह्म=वीर्यरक्षादि संयम नियमों का पालन करके आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक बलों से सम्पन्न होना है। और दूसरे वे गुरुजन ऋषि हैं, जिन्होंने सतत साधना करके हमें वेदज्ञान और विज्ञान का प्रकाश दिया है, उन आचार्य जनों की आज्ञाओं का पालन करना और उनके प्रकाश को दूसरों तक पहुंचाना यह ऋषि-ऋण से छूटने का उपाय है। और दूसरा देव-ऋण है उससे छूटने का उपाय यज्ञ है। ये देव भी दो प्रकार के हैं-जड़ और चेतन। प्रति दिन यज्ञ के द्वारा वायु, जलादि को शुद्ध रखना, उन्हें अपवित्र न होने देना और जो विद्वान् गुरुजन हैं, उनकी तन मन धन से शुश्रूषा, यज्ञादि के समय उन्हें उचित सम्मान देना और विद्वान् अतिथियों की अतिथियज्ञ के माध्यम से सेवा करना यह देव-ऋण से छूटने का उपाय है। और पितृ-ऋण से छूटने के लिए माता-पिता के उपकार को सदा स्मरण करते हुए उनको किसी प्रकार का कष्ट न होने देना और अपनी सन्तान को भी विद्यादि गुणों से सम्पन्न बनाकर अपने वंश को उन्नत करना। इन तीनों ऋणों का सूचक यह यज्ञोपवीत है। ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ करने के लिए इस त्रिसूत्रात्मक यज्ञोपवीत को धारण किया गया है। इसी देवपूजा के साथ यज्ञ के संगतिकरण सामाजिक, पारिवारिक एवं राष्ट्रिय संघटनात्मक जो नियम बने हों, उनका यथाशक्ति पालन करना और विघटन करने वाले कार्यों से सदा बचना तथा दान=(स्वार्थवृत्ति एक राक्षसी वृत्ति है, उसका परित्याग करके परोपकार, विश्वबन्धुत्व की भावना से विद्वान् हो तो दूसरों को) विद्यादान करें, बलवान् हो तो दूसरों की रक्षा करे और धनवान् हो तो याज्ञिक कार्यों में धन का दान करता रहे। यज्ञ के (देवपूजा, संगतिकरण, दान) तीनों अर्थों पर ध्यान दिलाने के लिए यह यज्ञोपवीत धारण किया जाता है।

(२) परमं पवित्रम्— पवित्र शब्द का अर्थ है-पूयतेऽनेनेति पवित्रम्। अर्थात् पवित्र करने वाले क्या क्या साधन हैं, इस बात को सदा स्मरण कराने से इसे परम पवित्र कहा है। पवित्रता का अभिप्राय है-बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि। प्रतिदिन स्नानादि से बाह्यशुद्धि तथा प्रातः-सायं सन्ध्या करने से आन्तरिक शुद्धि करनी चाहिये। महर्षि मनु कहते हैं—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।
(मनु० ५।१०९)

अर्थात् इस भौतिक शरीर के प्रत्येक छिद्र से किसी न किसी प्रकार मल निकलता है, अतः शारीरिक शुद्धि स्नानादि से प्रतिदिन अवश्य करें। और इस शरीररूपी रथ का सारथी मन है, वह शुद्ध पवित्र नहीं होगा तो वह सदा ही कुमार्ग पर चलायेगा। इसकी शुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाह्यशुद्धि की अपेक्षा अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि जब तक यह मन अपवित्र है, तब तक वेदादि पढ़ना और यज्ञों का करना भी फलप्रद नहीं हो सकता है। जैसे कि कहा है–

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ।।
(मनु० २। ९७)

अर्थात् जिसका मन अपवित्र है, उसका वेद पढ़ना, त्याग करना, यज्ञ करना, नियमों का पालन करना और तप=कठोर साधना करना भी सिद्धि को प्राप्त नहीं कराते। इसलिए मन को सत्याचरण से प्रतिदिन शुद्ध किया कर। ब्राह्मणग्रन्थों में सबसे बड़ी अपवित्रता असत्याचरण को ही माना है– **अमेध्यो वै पुरुषो यदेष अनृतं वदति।'** और सत्य क्या है? यह बहुत ही गूढ़ भावों का प्रकाशक शब्द है। **इस का प्रथम अर्थ है**–सत्सु सतोगुणेषु भवं सत्यम्=सतोगुणी भोजन। 'जैसा खाये अन्न वैसा बने मन' यह लोक प्रसिद्ध कहावत है। मन को शुद्ध रखने के लिए सदा ही सात्त्विक भोजन करना और तामसिक, राजसिक भोजन का सर्वदा त्याग करना। और जो अभक्ष्य पदार्थ हैं–मद्य, मांस अण्डे आदि इनको तो कभी भूलकर भी न खाना। क्योंकि ये राक्षसी भोजन हैं, इन से सब से प्रथम मन व बुद्धि ही विकृत होते हैं। छान्दोग्योप निषद् में भी कहा है–'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः' अर्थात् शुद्ध आहार जो कि मद्य-मांसादिरहित घृत, दुग्धादि, चावल, गेहूँ आदि के खाने से अन्तःकरण की शुद्धि, बल, पुरुषार्थ, आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है। (सं० वि० गर्भा०)

'सत्य' शब्द का दूसरा अर्थ है–सत्सु विद्यमानपदार्थेषु भवं सत्यम्। अर्थात् जो सृष्टि के कण-कण में सदा विद्यमान है और मनुष्यों के मनों में भी विद्यमान रहकर मानव के शुभाशुभ कर्मों को जानकर तदनुसार कर्मफल की व्यवस्था कर रहा है, उसको सदा साक्षीभाव से स्मरण रखना और उसके अटल न्याय को याद रखना। इस परम-सत्ता को स्मरण करने से मनुष्य अपने को कभी अकेला नहीं पाता और अकेला न होने से वह पाप-भावनाओं से बच जाता है। प्रातः और सायं सन्ध्या करने का भी उद्देश्य यही है कि हम दोनों सन्ध्याकालों में पवित्र एकान्त स्थान पर शान्ति से बैठकर आत्मनिरीक्षण करें कि हमने आज कोई बुरा कर्म तो नहीं किया है? और यदि जाने व अनजाने हो गया है तो उसका प्रायश्चित्त करके उसका प्रतिरोध करें कि जिस से उसका हमारे पर प्रभाव न हो सके। इसीलिए मनु जी कहते हैं–

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ।।
(मनु० २। १०२)

अर्थात् प्रातःकालीन सन्ध्या करने से रात्रिकालीन मानसिक मलीनता नष्ट हो जाती है और सायंकालीन सन्ध्या करने से दिनभर के मानसिक दोष दूर हो जाते हैं। यद्यपि दोष या मलिनता प्रथम स्तर पर अधिक प्रभावोत्पादक नहीं होती, किन्तु मन को शुद्ध रखने वाले साधक को वस्त्र में आने वाले सूक्ष्ममलों की भांति मानसिक सूक्ष्ममलों को भी परमेश्वर-भक्तिरूपी पावन साबुन से प्रतिदिन धोते रहना चाहिये।

सत्य शब्द का तीसरा अर्थ है–सत्सु सज्जनपुरुषेषु भवं सत्यम्। अथवा सत्सु साधु सत्यम्। अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों में जो शिष्टाचार है, उससे मन को शुद्ध रखना और अशिष्ट व्यवहारों के मूल कारण काम, क्रोध तथा लोभवृत्तियों से अपनी सदा रक्षा करना मन के विषय में जो यह कहा जाता है कि **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'** मन ही बन्धन तथा मोक्ष का कारण है, यह सत्य ही कहा है। जब तक मन में काम, क्रोध तथा लोभ का साम्राज्य रहता है, वह किसी प्रकार भी शुद्ध न होने से किसी प्रकार का सुख प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि ये तीनों ही नरक=दुःखों के साक्षात् द्वार हैं। जैसा कि गीता में कहा है–

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ।।

अर्थात् काम, क्रोध तथा लोभ समस्त पापों की जड़ हैं, अतः आत्मा का नाश करने वाले हैं। इस लिए इनका सर्वथा परित्याग करने से मन पवित्र होता है। इन आसुरी वृत्तियों से बचने के लिए ही निम्न श्लोक में उपाय बताये गये हैं

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ।।

अर्थात् कामवृत्ति से बचने के लिए सर्वोत्तम उपाय है– परस्त्रियों पर मातृवत्=माता की तरह पवित्र दृष्टि रखना। मातृवत् दृष्टि रखने से न केवल अपनी कामवृत्ति का शमन होता है, प्रत्युत दूसरों पर भी प्रभाव पड़ता है। महर्षि दयानन्द के जीवन की सत्य घटना का इसमें ज्वलन्त उदाहरण मिलता है। मथुरा के कुछ विरोधियों ने ऋषि दयानन्द को मारने का एक बार षड्यन्त्र बनाकर एक नवयुवती वेश्या को ऋषि के पास एकान्त में भेजा और स्वयं धूर्त्त लोग छिपकर बैठ गये। वह वेश्या धीरे-धीरे भगवान् की भक्ति में बैठे ऋषि के पास पहुँची। महर्षि ने पैरों की आहट सुनकर जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखें खोलीं तो देखा कि सामने एक नवयुवती खड़ी है। यद्यपि उस वेश्या की निष्कलंक तेजस्वी ऋषि के चेहरे को देखकर ही भावनाएँ बदल गई थीं कि मैं कैसी पापिनी हूँ कि एक निष्पाप आत्मा को बदनाम करने के लिए कुछ पैसों के लोभ में उद्यत हो गई और फिर ऋषि के मुख से—माता जी तुम यहाँ कैसे आई हो, इन पवित्रभावों से पूर्ण शब्दों को सुनकर वह वेश्या अपने कलुषित मन को प्रायश्चित्त की अग्नि में जलाती हुई क्षमा मांगने लगी। यह परस्त्रियों पर मातृवत् भावना का ही प्रभाव था। और लोभवृत्ति=दूसरों के द्रव्यों में अपनत्व बुद्धि करके उनको हड़पने के लिए येन केन प्रकारेण छल-कपट करने के लिए उद्यत होना है। इस वृत्ति को जीतने के लिए दूसरों के पदार्थों पर मिट्टी के ढेले के समान अपरिग्रह वृत्ति करनी होती है। और 'लोभमूलानि पापानि' के अनुसार लोभमूलक रिश्वतखोरी, चोरी आदि पापों से बच जाता है। और क्रोध (कामात् क्रोधोऽभिजायते) इच्छा के विघात से क्रोध पैदा होता है। अपने से कोई त्रुटि हो जाय अथवा किसी प्रकार की हानि हो जाये तो क्रोध नहीं होता, किन्तु दूसरे से हो जाये तो इच्छापूर्त्ति न होने अथवा इच्छा में विघात होने पर क्रोध पैदा हो जाता है। इस वृत्ति को जीतने के लिए सब प्राणियों के प्रति आत्मवत् भावना रखनी चाहिये। इससे क्रोध-शत्रु पर विजय प्राप्त हो सकेगी और मानसिक अशुद्धि नहीं हो सकेगी।

प्राचीन काल में जब विद्यार्थी आचार्य के पास विद्या ग्रहण करने के लिए जाता था तो वे सब से प्रथम (शौचं शिक्षयेदादौ) शुद्धि=मन को पवित्र करने के लिए जो ईश्वरभक्ति, शिष्टाचार तथा धार्मिक शिक्षा देते थे। इसी का नाम दीक्षा होता था। दीक्षा के बिना शिक्षा नहीं देते थे। क्योंकि गन्दे पात्र में पवित्र वस्तु को रखने से पवित्र वस्तु भी पवित्र नहीं रह सकती। विद्या तो परम पवित्र है, उसको अपवित्र मन वाले छात्र को कैसे दिया जा सकता था? इससे विद्या की पवित्रता के साथ विद्या की सार्थकता एवं सफलता भी होती थी। निरुक्त में विद्यार्थी की योग्यता का मापदण्ड बताते हुए एक आलंकारिक वर्णन के द्वारा यह बात समझायी गई है—

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती यथा स्याम् ॥ १ ॥

अर्थात् विद्या विद्वान् ब्राह्मण के पास जाकर कहने लगी—हे विद्वन्! मैं तुम्हारा खजाना हूँ, तुम मेरी रक्षा करो, और रक्षा का उपाय यह है कि जो असूयक=गुणों में दोषवृत्ति रखता है, अनृजु=कुटिल स्वभाव का और अजितेन्द्रिय है, उस को मुझे मत देना अर्थात् ऐसे मलिन अन्तःकरण वाले छात्र को विद्या नहीं पढ़ाना।

यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्।
यस्ते न द्रुह्येत् कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन् ॥ २ ॥

अर्थात् जो विद्यार्थी पवित्रान्तःकरण वाला, व्रतों के पालने में प्रमाद न करने वाला, मेधावी, ब्रह्मचर्य-नियम को पालने वाला तथा द्रोहबुद्धि न रखता हो, उसे विद्या पढ़ानी चाहिये। अतः शिक्षा से पूर्व दीक्षा का होना परमावश्यक है। और जैसे मन इस शरीर रूपी रथ का सारथी है, वैसे इस में इन्द्रियां घोड़ों के समान हैं इन्हीं के माध्यम से बाह्य-ज्ञान होता है। यद्यपि ये इन्द्रियाँ मन के बिना कार्य नहीं कर सकतीं, मन के संयोग होने पर ही ये अपने-अपने विषयों को ग्रहण करती हैं, पुनरपि इन्द्रियों का पवित्र करना आवश्यक है। यदि रथ के घोड़े प्रशिक्षित नहीं होंगे, तो भी कितना ही अच्छा सारथी हो, वह भी धोखा खा जाता है। इन्द्रियों की पवित्रता के लिए ही सन्ध्या में इन्द्रिय-स्पर्श तथा मार्जन मन्त्रों का विनियोग किया गया है। जहाँ इन्द्रियों के अपने-अपने जो विषय हैं, उन पर संयम करना आवश्यक है, वहाँ इन्द्रियों के दोषों को धोने के लिए प्राणायाम करना अत्यन्त आवश्यक है। महर्षि मनु कहते हैं—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥
(६।७१)

अर्थात् जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम के द्वारा प्राणों का निग्रह करने से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं और प्राणायाम को (मनु॰ ६।७०) परम तप माना है।

और मनु जी ने पवित्रता के विषय में आगे लिखा है-विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्टों को सहके भी धर्म के अनुष्ठान से जीवात्मा पवित्र होता है। इस शरीर-रथ का स्वामी जीवात्मा है, उसी को इस शरीररूपी रथ के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है। लक्ष्य-प्राप्ति के लिए जहाँ मन आदि की शुद्धि आवश्यक है, वहाँ आत्मा की पवित्रता भी आवश्यक है। यह जीवात्मा एक अमरणधर्मा चेतनतत्त्व है। ज्ञान और प्रयत्न उसके स्वाभाविक गुण हैं, इनकी पवित्रता के लिए ही परमेश्वर ने वेद का ज्ञान मानव को दिया है। जैसे नेत्रादि इन्द्रियों की सहायता के लिए सूर्यादि को परमेश्वर ने बनाया है, वैसे ही परमगुरु परमेश्वर ने जीवात्मा के ज्ञान के विकास के लिए वेदों का उपदेश किया है। वेद के सत्य ज्ञान को प्राप्त करने से जीवात्मा मिथ्या ज्ञान अथवा अज्ञान से वैसे ही पृथक् हो जाता है, जैसे सूर्य के प्रकाश होने पर अन्धकार में होने वाली भ्रान्तियां स्वतः नष्ट हो जाती हैं। इसलिए ही यह कहा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' ज्ञान के समान पवित्र कोई वस्तु नहीं है। और पवित्रतम ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही यह पवित्र यज्ञोपवीत आचार्य प्रदान करता है। इसलिए इसे 'विद्यासूत्र' भी कहते हैं, इसको धारण करने के बाद ही मनुष्य का दूसरा जन्म होता है और वह 'द्विज' कहलाने का अधिकार प्राप्त करता है।

योगदर्शन में कहा है–'अविद्या नेत्री सर्वक्लेशानाम्।' अविद्या समस्त क्लेशों (दुःखों) की जन्मदात्री होने से क्लेशों की नेत्री अगवानी करती है। मानों अविद्या के पीछे समस्त क्लेश छिपे हुए होते हैं। इस के विपरीत विद्या से सब क्लेशों की समूल निवृत्ति होती है। यज्ञोपवीत संस्कार को उपनयन भी कहते हैं। इस शब्द का अर्थ लोक में चश्मे के लिए प्रसिद्ध है और चश्मा किस के लिए आवश्यक है? जिसकी आंखें ठीक हैं, उसे चश्मे की आवश्यकता नहीं है और जो बिल्कुल ही अन्धा है, उसे भी चश्मा लगाने से कोई लाभ नहीं है। किन्तु जिसे कम दिखाई देता है, उसे इसकी आवश्यकता है। इसी प्रकार अल्पज्ञ जीवों को निर्भ्रान्त ज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ उपनयन संस्कार कराया जाता है, जिसका प्रतीक यह सूत्र धारण कराया जाता है। इस सूत्र के तीनों धागे जैसे ऊपर तीनों ऋणों से अनृण होने के सूचक थे वैसे ही विद्या के क्षेत्र में त्रिविध ज्ञान–ज्ञान, कर्म, उपासना अथवा आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक त्रिविध दुःखों से मुक्त होने के लिए त्रिविध ज्ञान प्राप्ति के ये प्रतीक चिह्न हैं। प्राचीन काल में जब ब्रह्मचारी गुरुकुल में जाता था तो वह समित्पाणि=तीन समिधाएँ लेकर जाता था। वे भी इसी भाव को बोध कराने वाली होती थीं। और विद्या के साथ तप=धर्मानुष्ठान को भी महर्षि मनु ने इसीलिए आवश्यक माना है कि तप के विना विद्या की सफलता नहीं होती। अथवा यह कहना चाहिये कि ज्ञान और तदनुकूल आचरण करने से ही विद्या का लाभ प्राप्त होता है, जिसके बिना मनुष्य पशु के तुल्य ही रहता है। अतः संस्कृत में नीतिकार कहते हैं–

न विद्यया विना सौख्यं नराणां जायते ध्रुवम् ।।

अर्थात् विद्या और तप के अनुष्ठान के बिना जीवात्मा की शुद्धि नहीं होती और अशुद्ध जीवों को सुख की प्राप्ति नहीं होती। इसके आगे मनुजी ने लिखा है **बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति** =अन्तःकरण की निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि कहते हैं, और ज्ञान का यहाँ 'विवेक' अर्थ है। महर्षि दयानन्द ने इस वाक्य का अर्थ करते हुए लिखा है–'ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ़ निश्चय पवित्र होते हैं।' (स॰ प्र॰) जहाँ वेद में मन को 'सुषारथिः' कहा है, वहाँ उपनिषदों में कुछ भेद से कहा है–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुः ।। (कठोपनिषद्)

अर्थात् इस शरीररूपी रथ का स्वामी जीवात्मा है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है और इन्द्रियां घोड़े हैं। महर्षि मनु ने सब की शुद्धि के पृथक्-पृथक् उपाय बताये हैं। बुद्धि की शुद्धि ज्ञान=विवेक से बताई है। इस विवेक को समझने के लिए प्रथम विवेक का महत्त्व जानना परमावश्यक है। एक संस्कृत के कवि ने लिखा है

यौवनमर्थसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।।

अर्थात् युवावस्था, धनदौलत, उन्नत पद की प्राप्ति और विवेक का अभाव, इन में से एक-एक भी अनर्थ का कारण होता है। किन्तु जिस व्यक्ति में ये चारों हों उसका क्या हाल होता होगा? यहाँ विचारणीय यह है कि मानव-जीवन में युवावस्था सर्वोत्तम अवस्था है। क्योंकि बुढ़ापे में शरीर निर्बल शिथिल हो जाता है, और बाल्यावस्था नादानी होती है। किन्तु कवि ने उसे अनर्थ का कारण बताया है। धन के बिना भी शुभ कार्य सम्पन्न नहीं होते हैं, उन्नत पद को प्राप्त करना भी उन्नति का सूचक है। किन्तु इन तीनों में एक प्रकार का मद= नशा होता है, युवावस्था, धन तथा उन्नतपद प्राप्ति में अहंकार का नशा सब से बड़ा होता है, जिस के कारण मनुष्य इन का दुरुपयोग कर सकता है। अविवेक तो है ही अनर्थ का कारण। यदि इन चारों में से अविवेक को विवेक में बदल दिया जाये तो युवावस्था, धन एवम् उन्नत पद तीनों ही हितकारक हो जाते हैं। विवेक का अभिप्राय है कि प्रत्येक पदार्थ के यथार्थस्वरूप का बोध होना। यह ज्ञान की सर्वोत्कृष्टावस्था का नाम है। प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा के विवेक-ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त होता है। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर मनुष्य अकुतोभय होकर परम लक्ष्य की ओर निर्बाध रूप से बढ़ता रहता है। उसे संसार के काञ्चनकामिनी सदृश भयंकर प्रलोभन भी आकृष्ट नहीं कर सकते। ऋषि दयानन्द सदृश महात्माओं की पद-पद पर सुरक्षा इस विवेक ज्ञान ने ही की थी। जिस के प्रकाश से प्रकाशमान दिव्यात्मा ने ब्रिटिश सरकार का भी कभी भय नहीं माना, एकलिंगेश्वर की लाखों रुपये की गद्दी का प्रलोभन और रूपवती वेश्याओं के जटिल-पाशों से अपनी सदा सुरक्षा की।

इस प्रकार यज्ञोपवीत-मन्त्र का 'परमं पवित्रम्' विशेषण आत्मा, शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों की सर्वविध पवित्रता का संकेत करता है। इसके धारण करने वालों को प्रतिक्षण यह ध्यान रखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये कि मैंने परमपवित्र यह सूत्र धारण किया है, इस की प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए मुझे उपर्युक्त मनुप्रोक्त पवित्रता करने वाले समस्त साधनों को अपने जीवन में अपनाना चाहिये। इस यज्ञ-सूत्र की पवित्रता का रहस्य तब और भी अधिक बढ़ जाता है, जबकि इसकी उपमा गर्भावस्था के उपवीत से की जाती है इस विषय में श्री स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज लिखते हैं (क) 'यज्ञोपवीत का वास्तविक रहस्य जानने के लिए परिवीत और उपवीत शब्दों के अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। परिवीत उस वस्त्र को कहते हैं जो सारे शरीर को ढकने के लिए पूरी तरह लपेट लिया जाता है और उपवीत उस वृत्त घेरे को कहते हैं जो विशेष स्थान पर से होकर गुजरता है।----जो वाम कन्धे पर से डाला गया हृदय, नाभि पर से होता हुआ दक्षिण भाग में दक्षिण मुष्टि में आ जाता है, इसलिये उपवीत वह वृत्त है। (ख) 'गर्भभूत जीव जिस अन्तः यज्ञोपवीत को धारण किये होता है, वह ऐसा पवित्र होता है कि जिसमें से माता के द्वारा खाये, पीए और चाटे हुए आहार से बना हुआ रस छन-छनकर जाता है। रक्त छन-छनकर जाता है। प्राणों का आदान-प्रदान भी इसी पवित्रा के द्वारा होता है। यदि यह पवित्रा (छाननी) न हो तो जीव को किसी प्रकार भी शुद्ध रक्त, शुद्ध रस वा शुद्ध प्राण की उपलब्धि न हो सके।' (उपनयन सर्वस्व)

इस से स्पष्ट है कि यह बाह्य यज्ञोपवीत भी गर्भस्थ छाननी की भांति ही है। जब तक आर्य संस्कृति में इस की प्रधानता रही और इस का मूल्यांकन ठीक रूप से होता रहा, तब तक मानव मानव ही नहीं, प्रत्युत देव, ऋषि तथा पितर बना रहा और जैसे-जैसे इसकी उपेक्षा होने लगी, वैसे-वैसे मानव मानवीय पवित्रता के गुणों से पृथक् हो कर दानव बनता जा रहा है। पौराणिक बन्धु इस की वास्तविक पवित्रता को छोड़कर बाह्य दिखावे तक ही सीमित रहने लगे हैं। अन्यथा यज्ञोपवीत तो पवित्र छाननी है, इसको धारण करने वाले की पवित्रता दूर से ही स्पष्ट दिखाई देने लगती है। वह सदाचारी होने से नीरोग, सबल एवं स्वस्थ होगा, उस की वाणी में मधुरता, सत्यता एवं सर्वहित की भावना होगी, उसका मन पवित्र होने से मन, वचन कर्म से चोरी-जारी से सर्वथा पृथक् होगा। वह भगवान् का सच्चा उपासक होने से परमेश्वर के गुणों से सुवासित होगा। जैसे-सुगन्धित फूल की गन्ध दूर से ही आ जाती है, इसी प्रकार ईश्वरीय गुणों (न्याय, शुद्धि, दया हितभावनादि) का उस व्यक्ति में स्वतः ही आभास होने लगता है। और यह पवित्रता इस जन्म में ही नहीं, अगले जन्मों में भी बनी रहती है महर्षि मनु लिखते हैं-

ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥

(मनु॰ २। १४६)

जिस का यज्ञोपवीत संस्कार हो जाता है, उस का ब्रह्म=ज्ञान का दूसरा जन्म हो जाता है और इस संस्कार से मिलने वाली पवित्रता इस जन्म तथा दूसरे जन्मों में भी स्थिर रहती है। क्योंकि मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति तो यही है, जो उस के साथ जन्म जन्मान्तरों में भी जाती है। मनुष्य का यह भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है, मन बुद्धि आदि घटकों वाला सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के साथ परजन्म में भी जाता है, और इनकी पवित्रता अथवा पवित्र संस्कारों की सम्पत्ति साथ अवश्य जायेगी। इस प्रकार वैदिक-संस्कृति की समस्त उदात्त भावनाओं से ओत-प्रोत इस पवित्र व्रत-सूत्र का मानवमात्र को फिर से अधिकार दिलाने वाले महर्षि दयानन्द के हम अत्यधिक आभारी हैं कि जिन्होंने एक वर्ग विशेष के एकाधिपत्यपूर्ण कब्जे से मुक्ति दिलाकर इस सूत्र के धारण कराने का पूर्ण अधिकार मानव मात्र को दिया है।

(३) **प्रजापतेर्यत्**—यह यज्ञोपवीत प्रजापति=परमात्मा के सम्बन्ध का बोधक है। समस्त जीवात्मा परमात्मा की प्रजाएँ हैं, और परमात्मा सबका पालक है। उस ने सांसारिक व्यवस्था को चलाने के लिए इस व्रत-सूत्र का विधान किया है। मनुष्यों में अविद्या, अन्याय तथा अभाव ये तीन महान् दुःख हैं, इनसे बचने के लिए अथवा इन दुःखों को दूर करने के लिए वर्णव्यवस्था का विधान (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्॰) इत्यादि मन्त्रों के द्वारा प्रभु ने किया है। प्रभु के बनाये इस भौतिक शरीर में वर्ण व्यवस्था का बहुत ही उत्तम विधान है। शरीर में जो मुख है उसमें ज्ञानेन्द्रियों का समावेश किया है, और वह ज्ञान का केन्द्र होने से ब्राह्मण है। और भुजाएँ क्षत्रिय के समान हैं, ये शरीर की रक्षा करती हैं और उदर वैश्य है, जिसमें समस्त खाद्यपदार्थों का संग्रह होने पर भी वह समस्त शरीर को बिना किसी भेदभाव के पौष्टिक तत्त्वों का वितरण कर देता है। और पैर शूद्र की भांति सेवा करते हैं। ठीक यही व्यवस्था राष्ट्रीय-जीवन के लिए आवश्यक है। और उसका परिचायक चिह्न यह यज्ञोपवीत है। इसको धारण करने वाला गुण, कर्म तथा स्वभावानुसार द्विज=दूसरा जन्म धारण करता है। और जो ब्राह्मणादि द्विजों में दीक्षित नहीं हो सकता है, वह शूद्र कहलाता है, जन्म से नहीं। यज्ञोपवीत धारण करने के मन्त्र में सन्निहित इसी भाव को मनुस्मृति में देखा जा सकता है

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक् कर्माण्यकल्पयत् ॥

(मनु॰ १। ८७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् उस महान् व्यवस्थापक परमात्मा ने समस्त संसार की सुरक्षा, सुव्यवस्था तथा समृद्धि के लिए शरीरस्थ मुख, बाहु, उरु, पैर, इन अंगों की उपमा से ब्राह्मणादि वर्णों के कर्मों का विधान किया है। वर्तमान काल में वर्णव्यवस्था का जन्ममूलक प्रचलन होने से यह मानव-समाज को समृद्ध न करके विघटन की ओर ले जा रही है। किन्तु यह तो समाज व प्रशासकों का दोष है कि वे उत्तम व्यवस्था को नहीं चला रहे हैं। इसमें प्राचीन वेदोक्त विधान का दोष नहीं है। यज्ञोपवीत के धारण करने वालों को परमात्मा के विधान में अटूट विश्वास करके समस्त उन्नतियों की मूल वर्णव्यवस्था को गुणकर्मस्वभावानुसार चलाना व मानना चाहिये।

(४) **सहजं पुरस्तात्**—यह यज्ञोपवीत मानव को द्विज बनाकर कैसे रक्षा करता है? और कैसे आगे बढ़ाता है? इसको मन्त्र में परमात्मा के बनाये प्रथम जन्म से समझाया गया है। इस द्विज=दूसरे जन्म से पुरस्तात्=पहले जो भौतिक शरीर हमें मिला है इसकी रचना की ओर ये शब्द संकेत कर रहे हैं। क्योंकि शरीर-रचना के समय त्रुटि हो जाये तो यावज्जीवन उसका दण्ड भुगतना पड़ता है। एतदर्थ गर्भकाल में भी परमात्मा ने जीवात्मा का शरीर से सम्पर्क होते ही एक उपवीत धारण कराया था। जैसे वह उपवीत जीवन-रक्षक बनकर शरीर की रचना में सहज=स्वाभाविक रूप में सहायक बना था, वैसे ही यह बाह्य सूत्र भी उन्नति में सहायक बनना चाहिये। इस विषय में आयुर्वेद का प्रमाण देकर श्री स्वामी दीक्षानन्द जी ने इस रहस्य को बहुत अच्छी प्रकार स्पष्ट किया है। उन्हीं के लेख को उद्धृत किया जाता है—'मातृ उदर में आया हुआ गर्भ एक ऐसे वस्त्र से ढका रहता है जिसे जरायु कहते हैं। वह सर्वथा उसी रूप में होता है जैसे अण्डे का ऊपर का खोल। परन्तु उस खोल के मध्य गर्भ-परिपाक के लिए बन्धन के जिन अन्तः सूत्रों से बने वृत्त की आवश्यकता है, वही अन्तः उपवीत है। बिना उन अन्तः सूत्रों के गर्भ को रस, प्राण और ओज नहीं पहुँचता। परमात्मा द्वारा यह इतना उत्तम प्रबन्ध है----। आचार्य चरक ने उन अन्तः सूत्रों का पता लगाया था **'मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाडी प्रतिबद्धा भवति साऽस्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति ।'** (सुश्रुत० ३६)

निश्चय ही माता की रसवाही नाड़ी से गर्भनाड़ी प्रतिबद्ध होती है, वह नाड़ी ही माता के खाए हुए आहार रस और शक्ति को ले जाती है (तेन) उस (उपस्नेहेन) उपस्नेह से ही गर्भ की अभिवृद्धि होती है।' (उपनयन सर्वस्व)

आयुष्यम् जैसे मातृ-गर्भस्थ शिशु के जीवन की रक्षा अन्तःयज्ञोपवीत अथवा रस पहुँचाने वाली नाड़ी से होती है, यदि किसी त्रुटि से उसका संपर्क न रहे तो गर्भस्थ शिशु का जीवन समाप्त हो जाता है ठीक वैसे ही यह बाह्य यज्ञोपवीत भी आयु का कारण है। आयु का अर्थ प्राणधारण करना है और **'आयुषो निमित्तम् आयुष्यम्'** (गोद्व्यचो० अ० ५.। १। ३९ सूत्र से यत्) आयु के जो निमित्त[१] कारण हैं उन्हें आयुष्य कहते हैं। यद्यपि यज्ञोपवीत सूत्र को जो धारण कर लेता है, और इसके द्वारा सांकेतिक कर्त्तव्यों को नहीं करता, उसकी आयु कैसे बढ़ सकती है? किन्तु इस सूत्र के जो कर्त्तव्य प्रथम दिखाए गये हैं, उनके पालन करने से ही आयु अवश्य बढ़ती है। इसमें धर्म शास्त्र के प्रमाण देखिये (क) आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ॥ (४। १५६)

(ख) ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
(४। ९४)

(ग) दुराचारो हि पुरुषो---अल्पायुरेव च ॥
(४। १५७)

(घ) सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान् नरः।
श्रद्दधानोऽनुसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥
(४। १५८)

अर्थात्-सदाचार (धर्मानुष्ठान) से दीर्घायु और उत्तम सन्तान प्राप्त होती है। ऋषि-मुनियों ने लम्बे समय तक सन्ध्योपासना करके दीर्घ जीवन प्राप्त किया। और जो सदाचार से हीन हो जाता है, वह रोगों से पीड़ित होकर अल्पायु हो जाता है।

(६) **अग्रयम्**—अग्रे भवम् अग्रयम्। यह यज्ञोपवीत जीवन में उन्नति,[२] यश, अग्रणी तथा उत्तम सुखों को प्राप्त कराता है। जो व्यक्ति मन, वचन, कर्म में एकरूपता रखता है, परमात्मा का सच्चा भक्त है, स्वार्थवृत्ति का त्याग कर याज्ञिक कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लेता है, विद्वान् और धर्मात्मा है, वह सदा ही व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में अग्रणी बनकर एवं रोगादि से मुक्त होने से स्वस्थ रह कर उत्तम सुखों को प्राप्त करता है।

(७) **प्रतिमुञ्च शुभ्रम्**—वैदिकभाषा में उत्तम कर्मों को शुभ्र शब्द से अथवा शुक्ल शब्द से कहा गया है। और मुञ्च का अर्थ है छोड़ना, इससे पूर्व प्रति उपसर्ग धात्वर्थ के विलोम अर्थ को

---

१. व्याकरण महाभाष्य में लिखा है-आयुर्वै घृतम्। आयुषो निमित्तमिति गम्यते।

२. अग्र शब्द के अर्थ देखिये (महर्षि भाष्य में) उपरि भावं यशः (ऋ० ४। १३। १) उत्तमसुखम् (य० १३। ५१) प्रथमम् (ऋ० ४। २७। ५) अग्रे भवाय सत्कर्मसु पुरस्सराय (य० १६। ३०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्योतित करता है। छोड़ने का विलोम अर्थ ग्रहण करना है। जो शुभ-शुभकर्म अथवा सत्य बातें हों, उनको सदा ग्रहण करना चाहिये, इस भाव को ये शब्द बता रहे हैं। वैदिक संस्कृति का मूल मन्त्र है 'सत्यमेव जयते' 'सत्येन पन्था विततो देवयानः।' (उपनिषद्) अर्थात् सत्य की सदा विजय होती है। विद्वानों का मार्ग सत्य से ओतप्रोत होता है। महर्षि दयानन्द ने मन्त्रोक्त इन्हीं भावों को आर्यसमाज के निम्न नियमों में अनुस्यूत करते हुए लिखा है

'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।' (चतुर्थ नियम) सत्य को ग्रहण करने की शिक्षा वैदिक संस्कृति की अनुपम देन है। आज दूसरे मत-मतान्तर वालों में कोई भी सार्वभौम शाश्वत सत्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, अन्यथा सत्य तो एक ही होता है, अनेक नहीं। इन नियमों से संसार के समस्त लोग एकमतस्थ हो जावें। सत्य को सब उन्नतियों का मूल मानते हुए ही शास्त्रों में कहा है-

न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।।

अर्थात् सत्य से बड़ा कोई धर्म और असत्य से बड़ा कोई अधर्म नहीं है। मनुष्य जीवन में यदि सत्य गुण को अपना लेता है तो दूसरे गुण भी स्वयं धीरे-धीरे अवश्य आ जायेंगे। और असत्य के ग्रहण करने पर गुण भाग जायेंगे तथा दोष इकट्ठे होने लगेंगे। सत्य मानव को मानव से जोड़ने वाला है और असत्य द्वेष घृणामूलक होने से विघटन कराने वाला है। सत्य को अपनाने से आत्मा व मन में प्रसन्नता होती है, और असत्य से आत्मा का हनन होता है। धर्मशास्त्र में कहा है-

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ।।

(मनु॰ ४। २५५)

अर्थात् जो व्यक्ति सज्जनों के मध्य अन्यथा होते हुए अपने आप को ठीक न बताकर असत्य बताता है वह अपनी आत्मा का हनन करने वाला व्यक्ति चोर और महापाप का भागीदार हो जाता है। यजुर्वेद (४०। ३) में ऐसे व्यक्तियों को **'आत्महनो जनाः'** कहा है। यद्यपि आत्मा तो कभी मरता नहीं, किन्तु असत्य को अपनाने से आत्मा में हीनता आती है। और हीनता ही उसकी मृत्यु के समान होती है। यथार्थ में समस्त अज्ञान, मिथ्याज्ञान तथा भ्रान्तियों का निराकरण सत्य के धारण करने से हो जाता है। सत्य एक ऐसे स्वच्छ निर्मुक्त वातावरण को जन्म देता है, जिसमें मानव बन्धनों से मुक्त होने लगता है। इसलिये यह यज्ञोपवीत इस बात का प्रतीक है-सत्य को ग्रहण करना है। चाहे कितनी भी हानि होती हो, स्वार्थ में कितना भी आघात पड़ता हो, पुनरपि असत्य को न तो अपनाना ही है, न असत्य की प्रशंसा करना है और न ही असत्यभाषियों का सहयोग करना है। इस दृढ़ संकल्प को स्मरण कराने के लिए इस व्रतसूत्र को धारण किया जाता है।

(८) **यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः**-यज्ञोपवीत धारण करने का फल जहाँ आयुवृद्धि तथा उत्तम सुखों को प्राप्त करना है, वहाँ यश देने वाला तेजस्वी बल प्राप्त करना भी है। यद्यपि बल शब्द से समस्त शारीरांगों की दृढ़ता व पौष्टिकता का ग्रहण समझा जाता है, किन्तु यहाँ शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक बल का ग्रहण किया गया है। शारीरिक बल तो चोर डकैतों में भी पाया जाता है, किन्तु वह तेजस्वी नहीं होता, उसमें निर्भीकता, निर्दीनतादि गुणों का अभाव होता है। मन्त्र में प्रार्थना की है कि यज्ञोपवीत तेजस्वी बलों को प्रदान करे। जिसका ऐसा प्रताप हो कि रामादि की भांति लाखों वर्षों के बाद भी प्रभाव हीन न हो इसलिए यज्ञोपवीत धारण प्रक्रिया बनाई गई है-इसे बायें कन्धे से हृदय पर होकर कटि पर्यन्त धारण कराया जाता है। स्कन्धों की दृढ़ता उत्तरदायित्व को निभाने में दृढ़ता का सूचक है। हृदय श्रद्धा का सूचक है और कटिभाग पर कटिबद्ध रहने का संकेत है अर्थात् जो श्रद्धा से यज्ञोपवीत के कर्त्तव्यों का पालन करने में यथाशक्ति सदैव तैयार रहता है, उसको सब प्रकार की शक्तियाँ अवश्य प्राप्त होती हैं। उस का आत्मिक बल बढ़ जाता है वह सबल विरोधों से भयभीत नहीं होता, उसका मनोबल इतना बढ़ जाता है कि बड़े से बड़े विघ्न उस के सामने नगण्य होते हैं और वह निर्बाध रूप से साहसपूर्वक कर्त्तव्यपरायण बना रहता है और शरीर में ऐसा सामर्थ्य प्राप्त होता है कि वह कठोर से कठोर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्वस्थ रहता है, सर्दी, गर्मी का प्रबलतम प्रभाव भी अकिंचन ही रह जाता है।

किन्तु हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि यह व्रतसूत्र राष्ट्रिय-ध्वज की भांति वैदिक संस्कृति का पवित्रतम प्रतीक चिह्न है, यह तब तक अकिञ्चन ही है, जब तक इसके कर्त्तव्यों पर न चला जाये। हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि इस पवित्रतम भावना के सूचक, ऋषिऋण, देवऋण, पितृऋणों से अनृण होने के प्रेरक, पञ्चयज्ञों के अनुष्ठानपूर्वक अन्तः-बाह्यशुद्धि के मार्गदर्शक, ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति में सत्य के अन्वेषक, मानवोन्नति के मूल कारण वर्णव्यवस्था के निर्देशक तथा शारीरिक, मानसिक, आत्मिक उन्नतियों के प्रकाशक यज्ञोपवीत का धारण प्रत्येक वेदभक्त वैदिक संस्कृति के अनुरागी आर्यपुरुषों को अवश्य करना चाहिये। और इस पवित्र सूत्र के कर्त्तव्यों का पालन करते हुए अपनी संस्कृति की रक्षा करनी चाहिये।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

मैं आपकी पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। यह पत्रिका वास्तव में दयानन्दसन्देश ही है। आप महर्षि के सन्देश को जन-जन तक पहुँचा रहे हैं, यह बहुत ही प्रशंसा के योग्य है।

राजेश आर्य
आहा, जि॰ पानीपत

अगस्त ९४ का 'दयानन्दसन्देश' मिला। इस अंक में कई महत्त्वपूर्ण लेखों को पढ़कर बड़ी खुशी हुई। 'ओम्' विषय पर विद्वान् लेखक के विचारों से पूर्णतः सहमत न होते हुए भी लेख को प्रकाशित कर आपने सत्यग्राहिता, और महर्षि की भक्ति का ही परिचय दिया। 'पाप-पुण्य-मीमांसा' लेख तो मुझे बहुत रुचिकर लगा। शंका-समाधान की शैली, पाठकों को विषय को हृदयंगम कराने में बहुत सहायक लगी।

भद्रकाम
३९, यू॰ बी॰ जवाहर नगर, दिल्ली

मैं 'दयानन्द-सन्देश' का आजीवन सदस्य हूं। मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि इस पत्रिका के करोड़ों आजीवन-सदस्य बन जावें। और यह महर्षि दयानन्द का सन्देश देश और विदेशों में पहुँचता रहे। आर्य जगत् की समस्त पत्र-पत्रिकाओं में यह पत्रिका ही सबसे उत्तम है।

राजवीरसिंह आर्य
नांगल कलाँ, सोनीपत

मैं आपके उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ। 'दयानन्द-सन्देश' का अगस्त मास का अंक मिला, जिसे पढ़कर अतीव हर्ष हुआ। इसमें प्रश्नोत्तर रूप से 'पाप-पुण्य मीमांसा' लेख तो बहुत ही अच्छा लगा।

बाबूराम सिंह
सुगर मिल बारोली, (गुजरात)

आप द्वारा प्रेषित मनीआर्डर फार्म मिला। मैंने पत्रिका की आजीवन सदस्यता स्वीकार करके आज ही २५० रुपये भेज दिये हैं। मैं इस पत्रिका के माध्यम से ऐसा अनुभव करता हूँ कि यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के अमर सन्देश को पहुँचाती है। मैं दूसरों को भी पत्रिका का ग्राहक बनाने का प्रयत्न कर रहा हूं।

ताराचन्द आर्य
महेन्द्रगढ़

'दयानन्दसन्देश' के अंक यथासमय मिलते रहते हैं। इसमें छपे लेखों का संग्रह अतीव ज्ञानवर्धक तथा प्रेरक होता है। 'जाति तोड़ो, समाज जोड़ो' यह लेख बहुत सामयिक और आज की विषम परिस्थिति के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण लगा। अघटित को इतिहास बनाने का छल, सिन्धु मुद्राओं में वैदिक कोश, इत्यादि लेख भी खोज पूर्ण हैं। अगस्त ९४ के अंक में छपा 'पाप-पुण्य मीमांसा' लेख से अनेक शंकाओं का समाधान हुआ।

सन्तोष कुमार बरानिया
लौड़ी, छतरपुर (सी॰पी॰)

सौभाग्य से मुझे 'सत्यार्थप्रकाश' के स्वाध्याय करने का अवसर मिला। इसमें मुझे धर्म के यथार्थ स्वरूप का बोध हुआ। और मुझे यह विवेक भी हुआ कि मैं आजतक जिन ग्रन्थों (रामचरित मानस, श्रीमद् भागवत् आदि) को पढ़ता रहा, वे सभी भ्रामक एवं वेदविरुद्ध हैं। 'सत्यार्थप्रकाश' लिखकर महर्षि दयानन्द ने महान् उपकार किया है।
३१-८-९४

रामचन्द्र यादव
जमुनहाँ, सीतापुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजयादशमी (दशहरे) पर विशेष-स्मृति

हैदराबाद का मुक्ति संग्राम और आर्य सत्याग्रह

-डॉ० सेनापति कटके

इस देश की परम्परा है बड़ी महान्।
कीर्ति-ध्वज को ले चलो ओ मेरे जवान॥

उन दिनों हैदराबाद (निजाम) राज्य में आर्य हिन्दू जनता पर अत्याचार बढ़ते ही गये। बसवकल्याण (जिला बिदर) में २७ जून १९३८ को श्री धर्मप्रकाश जी आर्य और अकोलगा में १७ जुलाई १९३८ को श्री महादेव जी आर्य को, रजाकारों ने तलवार के घाट उतार दिया। इस प्रकार के अनेक अमानवीय घटनाओं के कारण ही सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को हैदराबाद राज्य में अपना प्रसिद्ध सत्याग्रह छेड़ना पड़ा।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के १०वें प्रस्ताव के अनुसार शोलापुर नगर में 'आर्य महासम्मेलन' लेने का निश्चय हुआ।

सन् १९३८ के दिसम्बर २५, २६ और २७ तारीख को शोलापुर में हुए 'आर्यसम्मेलन' की अध्यक्षता स्व० श्री माधवराज जी अणे ने की थी। सभापतित्व पद से श्री अणे जी ने हैदराबाद राज्य की तत्कालीन परिस्थितियों पर विस्तार पूर्वक बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। न केवल आर्यसमाजी अपितु समस्त हिन्दू और गैर-मुस्लिम जनों पर राज्य द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का, कटु शब्दों में विरोध करते हुए चेतावनी दी थी। आर्यसमाज की माँगों का आपने बड़े ही मार्मिक शब्दों में विश्लेषण किया था और सत्याग्रह के मूल-तत्त्वों का विस्तार से विवेचन भी।

इस सम्मेलन में कश्मीर, सीमान्त-प्रान्त, बिहार, पंजाब, बंगाल, राजपूताना, मध्य प्रान्त, गुजरात, सिन्ध आदि प्रान्तों के अलावा स्वयं निजाम राज्य में पधारने वाले आर्यों की संख्या आशा से अधिक सिद्ध हुई। देशभर के ६०० आर्य प्रतिनिधि और लगभग २४,००० श्रोता दर्शक इस महा-सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। दीर्घ चर्चोपरान्त इस में २१ प्रस्ताव पारित हुए थे। इन प्रस्तावों में विशेषकर धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता की दृष्टि से मौलिक एवं जन्मसिद्ध अधिकारों की मांग और घोषणा की गई थी।

शोलापुर आर्य महा-सम्मेलन में पारित प्रस्ताव एवं आदेश विद्युल्लता की तरह सारे देश में फैल गया। सत्याग्रह की तैयारियाँ होने लगीं, पर निजाम सरकार और उनके धर्मान्ध अनुयायियों को समय होते चेत न आयी।

विशाल सामूहिक सत्याग्रह के पूर्व, हैदराबाद राज्य आर्य रक्षा समिति द्वारा, आठ अक्टूबर १९३८ से ही सत्याग्रह का आरम्भ हो चुका था। इसके प्रथम सर्वाधिकारी श्री देवीलाल जी, दूसरे सर्वाधिकारी श्री रामजी चौधरी थे। तीन मास तक चले इस सत्याग्रह में लगभग ९१५ सत्याग्रही जेल जा चुके थे। युवा हृदय सम्राट् पं० नरेन्द्र जी को दिनांक १५ अक्टूबर १९३८ को धोखे से गिरफ्तार कर काले पानी की सजा सुनाई गई। अन्य नेताओं में श्री भिमाशंकर जी रेड्डी, श्री बलदेव जी आर्य तथा कितने ही धर्मोपदेशक और पण्डित भी थे। निजाम राज्य में निर्मित इस प्रतिकूल परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को अपना विशाल सत्याग्रह आरम्भ करने को विवश होना पड़ा।

आर्य सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी

प्रान्तीय आर्य रक्षा समिति द्वारा पहले से चलाया जा रहा सत्याग्रह को सार्वदशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मैदान में उतरने के कारण, राष्ट्रीय स्तर पर व्यापकता प्राप्त हुई।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित सत्याग्रह के प्रथम अधिनायकत्व का भार, महात्मा नारायण स्वामी जी को सौंपा गया। स्वामी जी ने अपने सत्याग्रह करने की सूचना, नियमानुसार निजाम सरकार को दी और उसकी प्रतियाँ, हैदराबाद के 'रेजिडेण्ट' और भारत सरकार के 'पोलिटिकल' विभाग को भी दीं। प्राप्त सूचनानुसार निजाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार ने सत्याग्रह को विफल करने के प्रयास में अनेक व्यवधान खड़े किये और संदिग्ध लोगों को पकड़ लिया। अनेक व्यवधानोपरान्त भी स्वामी जी, हैदराबाद-सुलतान-बाजार आर्य मन्दिर पहुंच ही गये। पुलिस अधीक्षक ने, उन्हें राज्य में 'प्रवेश-निषेधाज्ञा' पत्र दिया। पर स्वामी जी ने उसे स्वीकार नहीं किया, उन्हें बलात् खानापुर होते हुए, एक फरवरी १९३९ को शोलापुर पहुंचाया गया। पश्चात् चार फरवरी को स्वामी जी ने अपने २० साथियों के साथ गुलबर्गा पहुंचकर सत्याग्रह किया। फलत: उन्हें साथियों समेत एक वर्ष की कड़ी सजा सुनाई गई।

दूसरे सर्वाधिकारी

राजस्थान के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री चान्दकरण जी दूसरे सर्वाधिकारी के रूप में, ५ मार्च १९३९ को ७५ साथियों के साथ सत्याग्रह के लिए गुलबर्गा पहुंचे। इस जत्थे में, ज्वालापुर महाविद्यालय के १५ ब्रह्मचारी पं० विवेकानन्द जी के नेतृत्व में और गुरुकुल वृन्दावन के ब्रह्मचारी पं० ब्रह्मदत्त जी के नेतृत्व में सहभागी थे। १५ मार्च को गुलबर्गा जेल में ही सुनवाई होकर सभी सत्याग्रहियों को १३-१३ मास की कड़ी सजा सुनाई गई। इसी बीच स्वामी परमानन्द जी ने भी अपने ६२ साथियों समेत सत्याग्रह कर दिया था। इस समय तक सत्याग्रहियों की संख्या लगभग १५०० तक पहुंच चुकी थी।

तीसरे सर्वाधिकारी

पंजाब केसरी लाला खुशालचन्द जी खुर्शन्द (म० आनन्द स्वामी जी) सत्याग्रह के तीसरे सर्वाधिकारी के रूप में २२ मार्च १९३९ को १५४ साथियों समेत गुलबर्गा पधारे। इन सभी को गिरफ्तार कर कड़ी सजा सुनाई गयी।

इस समय तक गुलबर्गा जेल की स्थिति ऐसी बनी थी कि सत्याग्रहियों को बरामदों और बैरकों में रखा जा रहा था। जहाँ आर्य सत्याग्रहियों के लिए जो खास बैरकें तैयार की गई थीं वे आज भी अपनी जीर्णावस्था में आर्यन सत्याग्रह की शहादतें दे रही हैं।

चौथे सर्वाधिकारी

युक्त प्रान्त आर्य प्रतिनिधि सभा के तेजस्वी प्रधान राजगुरु, श्री धुरेन्द्र जी शास्त्री, सत्याग्रह के चौथे सर्वाधिकारी के रूप में २२ अप्रैल १९३९ को, अपने ५३१ सत्याग्रहियों समेत गुलबर्गा पहुंच गये। निजाम सरकार के एक शिष्ट मण्डल ने आपसे मिलकर 'सत्याग्रह' स्थगित करने का अनुरोध किया। तब शास्त्री ने स्पष्ट किया-"सत्याग्रह को स्थगित करने का अधिकार केवल मात्र 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली' को है। मैं केवल सत्याग्रहियों का सेनापति हूँ। आदेशानुसार हम अपना नियोजित सत्याग्रह तो करेंगे ही।" तब सभी को गिरफ्तार किया जा कर दो-दो वर्ष का कठोर कारावास सुनाया गया। इस जत्थे में आर्य जगत् के गण्यमान्य श्री चौधरी शूरवीर सिंह जी, श्री कुंवर सुखलाल जी, श्री अमर सिंह जी, ठाकुर श्री लाखन सिंह जी, श्री महन्तराम जी आदि उल्लेखनीय नेता थे।

पाँचवें सर्वाधिकारी

आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार के प्रधान, श्री वेदव्रत जी आर्य, सत्याग्रह के पाँचवें सर्वाधिकारी के रूप में ५३४ सत्याग्रहियों समेत, ५ मई १९३९ को पानगंगा पार कर निजाम राज्य में सत्याग्रह कर दिया। इस जत्थे में आर्य-जगत् के रथी-महारथी सम्मिलित थे। जिनमें जालन्धर के प्रो० ज्ञानचन्द जी, लायलपुर के पं० रामदेव जी, जण्डावाला के श्री एस० एच० नौनिहाल जी, हिसार के पं० बाबूराम जी, लाहौर के श्री विद्याचन्द्र जी आदि सम्मिलित थे। इन सभी को गिरफ्तार कर खुले मैदान में अदालत का नाटक कर श्री वेदव्रत जी को दो वर्ष और शेष सभी को डेढ़ वर्ष की बड़ी सजा सुनाई गई।

छठे सर्वाधिकारी

पंजाब आर्यसमाज के प्रमुख नेता श्री कृष्ण जी ने इस सत्याग्रह के छठे सर्वाधिकारी के रूप में ११५० से भी अधिक साथियों समेत औरंगाबाद स्टेशन पर सत्याग्रह किया। सभी को पकड़कर मुकदमे का नाटक रचकर, जेल भेज दिया गया। इस जत्थे में पुसद से १५०, चाँदा से ६१, हैदराबाद से २४, अहमदाबाद से ६०, बेजवाड़ा से ५० तथा अन्य सत्याग्रही सम्मिलित थे।

सातवें सर्वाधिकारी

सातवें सर्वाधिकारी का गौरव मुकुट धारण कर, गुजरात निवासी पं० नरेन्द्र जी सिद्धांतभूषण ने १७० साथियों समेत,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनांक २३ जून १९३९ को गुलबर्गा में सत्याग्रह किया। इन्हें भी गिरफ्तार कर, अदालत का नाटक रचकर, नौ-नौ महीनों की सजा सुनाई गयी। इस जत्थे में ज्वालापुर बड़ौदा, खाडाखेडी, कोटा, आनन्द नगर, मिरजापुर और हिसार के सत्याग्रही थे।

आठवें सर्वाधिकारी

आर्यन सत्याग्रह के इस महायज्ञ के आठवें सर्वाधिकारी का सम्मान हैदराबाद राज्य के तपोनिष्ठ आर्य नेता न्यायमूर्ति स्व॰ श्री केशवराज जी कोरटकर के सुपुत्र बैरिस्टर श्री विनायक राव जी विद्यालंकार को दिया गया। आपके नेतृत्व में १२०० से भी अधिक सत्याग्रही आज्ञा की प्रतीक्षा में थे। जिस में पंजाब, युक्त प्रान्त, बंगाल, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रान्त एवं मध्य भारत के भी सेनानी थे।

इस सत्याग्रह के पूर्व ही निजाम सरकार ने, आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली से संधि कर ली। सरकारी मुख पत्र 'वक्त' ने प्रकाशित किया था- ''२३ जुलाई से पूर्व ही, निजाम सरकार सभी मांगें स्वीकार कर लेगी। इसलिए विनायक राव जी सत्याग्रह नहीं करेंगे।''

अत: इस संधि के अनुसार, बैरिस्टर पं॰ विनायक राव जी विद्यालंकार (राव साहब), श्री देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री तथा समस्त १२०० से भी अधिक सत्याग्रहियों को 'मन की मन' में ही रखकर बिना सत्याग्रह के लौटना पड़ा था।

''हम लाये हैं तूफान से, किश्ती निकाल कर।
इस देश को रखना, मेरे बच्चो सम्भाल कर।।''

अमानुषी यातनाएँ

इस में संदेह नहीं कि कारागृह, 'कारागृह' ही होने चाहिए। पर इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह धरती का साक्षात् नरक हो। वास्तव में कारागृह सामाजिक अपराधियों के लिए 'सुधार-गृह' के रूप में होने चाहिए न कि नरक-कुण्ड। सामाजिक अपराधियों और राजनैतिक, धार्मिक सत्याग्रहियों में बड़ा अन्तर होता है। जब कि सामाजिक अपराधियों के लिए ही 'सुधार-गृह' की योजना चाहिए, वहाँ राजनैतिक एवं धार्मिक, जन्म-सिद्ध अधिकारों को प्राप्त करने के लिए 'सत्य' का 'आग्रह' करने वाले विद्वानों, तपस्वियों और सात्त्विक-वृत्तियों के सत्याग्रहियों के लिए किस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए? इसका वर्णन यहाँ अनावश्यक है। आज से तकरीबन ४६ वर्ष पूर्व कारावासों की स्थिति नारकीय थी, इसमें संदेह नहीं।

निजाम राज्य में ८० प्रतिशत जनता आर्य हिन्दू, १० प्रतिशत अन्य धर्मीय तथा शेष मुसलमानों की। सम्पूर्ण शासन मुसलमानों के हाथ में था। धार्मिक धरातल पर चले इस सत्याग्रह में, सत्याग्रहियों को कारवासों में अमानवीय यातना देना, धर्मान्ध शासकों का साधारण विषय था। अत: इस सत्याग्रह में गिरफ्तार होने वाले सभी सत्याग्रही साधारण कैदी (गुनहगार कैदी) ही माने जाते थे और इनके साथ शासन का व्यवहार भी उसी प्रकार का होता.था। धर्म के नाम पर, अन्याय का अतिरेक आर्य हिन्दू सत्याग्रहियों पर खुलेआम होता रहा। अमानवीय व्यवहार की शिकायतें आमतौर पर होती रहीं। इस सत्याग्रह के आठ मास के दौरान जेलों में अनुभवी अत्याचारों के प्रतिरोध में लगभग सौ से भी अधिक बार भूख हड़तालें हुई थीं। प्रभावशाली एवं नेता सत्याग्रहियों से, साधारण सत्याग्रहियों को अलग से रखा जाकर, उन्हें क्षमा याचना के लिए, हर तरह से विवश किया जाता था। धर्मान्तरण के लिए उन्हें हर प्रकार के प्रलोभन भी दिए जाते थे। इतना ही नहीं जेलों में कैद सत्याग्रहियों पर सामूहिक रूप से हमले भी हुआ करते थे। इसका सबल उदाहरण, तुलजापुर जेल में दिनांक ९ अप्रैल १९३९ का हमला, बड़ा ही भीषण था। जेलों की 'कैपासिटी' कम और सत्याग्रहियों की संख्या छ: गुने तक होने के कारण, जेलों की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। औरंगाबाद के बन्द जेल के चार-दीवारी में, निहत्थे, भूखे-प्यासे और रुग्ण सत्याग्रहियों पर खुले-आम 'लाठीचार्ज' किया गया था। इस लाठी-चार्ज पर श्री अणे जी का पत्र बड़ा ही उद्बोधक है, स्थानाभाव के कारण उसे यथा प्रकार यहाँ, हम नहीं दे सकते।

कारावासों के धर्मान्ध अधिकारियों को, पक्षपात की भावना ने भारी मदान्ध बना दिया था। साधारण से साधारण विषय पर 'गंजी' 'डबल-गंजी' और 'कोड़ों' की सजा साधारण बात बन गई थी। जेलों में न केवल निष्ठुर काम ही लिया जाता था अपितु शौच-कुप साफ कराना, कड़ी धूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्थर ढोने और गिट्टियाँ फुड़वाना, चक्कियाँ चलाकर आटा नवाना यह अतिशय साधारण बातें थीं। इन अमानुषी यातनाओं सत्याग्रहियों का बीमार पड़ना स्वाभाविक ही था। जेलों में ।मार सत्याग्रहियों का किसी भी प्रकार का इलाज नहीं होता ा। समस्त भारत के जेल इतिहास में, जेल की असह्य यातनाओं , जितने आर्य-सत्याग्रही निजाम की जेलों में स्वर्गस्थ हुए, तने अन्य कहीं नहीं। यहाँ तक, राष्ट्रव्यापी कांग्रेस के सत्याग्रह भी नहीं, इसका साक्षी स्वयम् इतिहास है। जेलों में अमानुषी त्याचारों के कारण हुई इन मौतों को, साधारण नैसर्गिक मौतें ताने का नाटकीय प्रयास कर निजाम सरकार ने क्रूर उपहास किया। सरकार के इस उपहासपूर्ण बर्बर अत्याचारों पर न वल भारत में ही अपितु ब्रिटेन की पार्लियामेंट में और वहाँ समाचार-पत्रों में भी इस की प्रतिध्वनि, तिरस्कार के रूप , तीव्रतर गूंज उठी थी। ३० अप्रैल से २५ जुलाई १९३९ के वल ८७ दिनों में हैदराबाद की जेलों में अनवरत अत्याचार ार निर्मम व्यवहार पर २८ सत्याग्रहियों ने, स्वातंत्र्य संग्राम के ज्ञायज्ञ में अपनी प्राणाहुति दी थी और ३५०० से भी अधिक त्याग्रही उदर विकारों से पीड़ित थे। (नोट- जेलों के बाहर त्याग्रहियों पर किए गए हमलों में प्राणाहुति देने वालों की ख्या अलग है।) आर्यसमाज द्वारा, निजाम राज्य में किए गये ा त्याग, तपस्या एवं बलिदान ने इतना उग्र-रूप धारण किया , लाहौर से निकलने वाले तात्कालीन 'ट्रिब्यून' पत्रिका ने पा था- "हजारों सत्याग्रहियों के जेल जाने के बाद भी, नका प्रवाह जारी है.......।" इलाहाबाद के 'लीडर' के शब्दों तो उस सत्याग्रह की वास्तविकता को स्पष्ट करते हुए लिखा ा था- "हैदराबाद के सत्याग्रह की ओर जिस रूप में देश आँखें खिंच गई थीं, उस रूप में कांग्रेस के सत्याग्रह की र भी नहीं खिंच सकी थीं।" इस प्रकार देशभर की त्रकाओं ने आर्य सत्याग्रह की तरफदारी की थी।

र्य-सत्याग्रहियों की प्रान्तवार संख्या

निजाम सरकार और उसके 'एजेण्टों' द्वारा आक्षेप लगाये ते थे कि- "यह सत्याग्रह बाहरी राज्य के आर्य-हिन्दुओं ा, राज्य की मुसलमानी सरकार को उखाड़ फेंकने का ड्यन्त्र है।" इस वक्तव्य की पोल प्रान्तवारी सत्यग्रहियों की ख्या के अध्ययन से स्पष्ट होती है-

१.	पंजाब, सीमान्त-प्रान्त, कश्मीर एवं दिल्ली	३,१५७
२.	संयुक्त प्रान्त	२,०८५
३.	राजस्थान, मालवा एवं मध्य प्रान्त	०४४७
४.	बिहार	०३३१
५.	बंगाल	०२०२
६.	मध्य प्रान्त तथा बरार	०५७५
७.	बम्बई प्रान्त	०२४१
८.	सिन्ध प्रान्त	०११४
९.	मद्रास प्रान्त	००६६
१०.	ब्रह्मा (ब्रह्मा देश)	००१५
११.	आसाम	००७
१२.	निजाम राज्य	३,२४९
	कुल योग	१०,५७९

उपरोक्त प्रान्तवारी सत्याग्रहियों की संख्या सूची को देखने पर स्पष्ट होता है कि वह सत्याग्रह, राज्य के बाहर के आर्य हिन्दुओं का राज्य की मुसलमानी सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए किया गया षड्यन्त्र न था अपितु अपने जन्मोचित धार्मिक एवं सर्वसाधारण नागरिकी अधिकारों को प्राप्त करने का अदम्य साहस, सहनशीलता एवम् आत्मबल तथा बलिदान की भावना से प्रेरित महायज्ञ था। प्रान्तवारी सत्याग्रहियों की सूची में सब से बड़ी संख्या हैदराबाद राज्य की ३२४९ थी। यदि सत्याग्रह के आठवें सर्वाधिकारी स्व० श्री विनायक राव जी विद्यालंकार के नेतृत्व में होने वाले सत्याग्रह, जो कि सन्धि के कारण स्थगित किया गया था, उसके होने पर, राज्य के आर्य सत्याग्रहियों की संख्या और भी अधिक बढ़ जाती। प्रान्त वार सत्याग्रहियों की सूची के अध्ययन पर वह सत्याग्रह, राज्य के बाहर के आर्य हिन्दुओं का षड्यन्त्र नहीं अपितु राज्य के भीतरी जनों का, अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को प्राप्त करने का सफल प्रयत्न था। एक और बात यहाँ स्पष्ट है, जिसका उल्लेख हम पिछले पृष्ठों में भी कर आये हैं कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा सत्याग्रह में सन् १९३९ में उतरी थी और हैदराबाद प्रान्तीय सभा सन् १९३८ से ही सत्याग्रह के संग्राम में कूद पड़ी थी। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वह सत्याग्रह निजाम राज्य के आर्य-हिन्दुओं का सत्याग्रह था और समस्त देश के आर्यों का उसे रचनात्मक सहयोग एवं समर्थन प्राप्त था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुतात्माओं की सूची

क्र० सं०	हुतात्माओं के नाम	निवास	मृत्यु स्थान	मृत्यु दिनांक
१.	श्रीमान् पं० श्यामलाल जी भोलानाथ जी	उदगीर (निज़ाम राज्य)	बिदर	१६-१२-१९३८
२.	श्रीमान् पं० परमानन्द जी गोपाल प्रसाद जी	हरिद्वार	हैदराबाद	०१-०४-१९३९
३.	श्रीमान् पं० व्यंकटराव जी (निजाम राज्य)	निजामाबाद	निजामाबाद	०८-०४-१९३९
४.	स्वामी सत्यानन्द जी	देगलूर (नि० राज्य)	हैदराबाद	२७-०४-१९३९
५.	श्रीमान् विष्णु भगवन्त जी	ताण्डूर (नि० राज्य)	हैदराबाद	०१-०५-१९३९
६.	श्रीमान् छोटेलाल जी सुमेख प्रसाद जी	अलालपुर (उ० प्र०)	गुलबर्गा	०३-०५-१९३९
७.	श्रीमान् माधोराव जी सदाशिवराव जी	लातूर (नि० राज्य)	गुलबर्गा	२६-०५-१९३९
८.	श्रीमान् पाण्डुरंग जी	उस्मानाबाद (निजाम राज्य)	गुलबर्गा	२७-०५-१९३९
९.	श्रीमान् नानुसिंह जी गणेशसिंह जी	अमरावती (बरार)	हैदराबाद	२९-०५-१९३९
१०.	श्रीमान् सुनहरासिंह जी चौधरी	बुटाना (रोहतक)	औरंगाबाद	०८-०९-१९३९
११.	श्रीमान् बैजनाथ प्रसाद ध०प्र०	नरकटिया गंज (बिहार)	बेतिया अस्पताल	२५-०६-१९३९
१२.	श्रीमान् फकीरचन्द जी बालाराम जी सरधा	करनाल (पंजाब)	औरंगाबाद	०९-०७-१९३९
१३.	श्रीमान् मलखानसिंह बलवीर सिंह	रुड़की (उ०प्र०)	हैदराबाद	०१-०७-१९३९
१४.	स्वामी कल्याणानन्द जी (उ०प्र०)	मुजफ्फरनगर	गुलबर्गा	०८-०७-१९३९
१५.	श्रीमान् शान्तिप्रकाश जी रामरतन जी शर्मा	कलानौर अबकरी	उस्मानाबाद	२७-०७-१९३९
१६.	श्रीमान् चौधरी भातृराम जी गुगनराम जी	मिलकपुर (हिसार)	मनमाड़	२८-०७-१९३९
१७.	श्रीमान् भक्त अरूढ़मल जी	सरगोधा (पंजाब)	लाहौर	२९-०७-१९३९
१८.	श्रीमान् लक्ष्मण राव जी		हैदराबाद	०२-०८-१९३९
१९.	श्रीमान् राधाकृष्ण जी	निजामाबाद	निजामाबाद	०२-०८-१९३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुतात्माओं की सूची जारी

क्र० सं०	हुतात्माओं के नाम	निवास	मृत्यु स्थान	मृत्यु दिनांक
	जीतमल जी	(निजाम राज्य)		
२०.	श्रीमान् सदाशिव पाठक	तडबेल (महाराष्ट्र)	हैदराबाद	१३-०८-१९३९
	विश्वनाथ जी			
२१.	श्रीमान् ठाकुर बदनसिंह जी	मुजफ्फराबाद	नरंगल	२४-०८-१९३९
	टीकासिंह जी			
२२.	श्रीमान् रतिलाल जी	सांपला (रोहतक)	सांपला	२५-०८-१९३९
	मुसद्दीलाल जी			
२३.	श्रीमान् पुरुषोत्तम जी	बुरहानपुर (सी०पी०)	बुरहानपुर	२६-०८-१९३९
	ज्ञानी जगन्नाथ जी			
२४.	श्रीमान् अशरफी लाल	नरकटियागंज	नरकटियागंज	२९-०८-१९३९
	फिरंगीशाह	(बिहार)		
२५.	श्रीमान् ताराचन्द जी	लुम्ब मेरठ	नागपुर	०२-०९-१९३९
	चौधरी केशर सिंह जी	(उ०प्र०)		
२६.	श्रीमान् रामनाथ जी	अहमदाबाद	अहमदाबाद	०८-०९-१९३९
	मोती भाई राणछोड़	(गुजरात)		
२७.	श्रीमान् गोविन्दराव जी	नलगिर (नि०राज्य)	हैदराबाद	
	लक्ष्मणराव जी			
२८.	श्रीमान् ब्रह्मचारी दयानन्द	हरदोई (उ०प्र०)	हरदोई	१०-०३-१९३९
	रघुनाथ शर्मा			

रीडर, हिन्दी विभाग, गुलबर्गा विश्वविद्यालय, गुलबर्गा-५८५१०६, कर्नाटक

पाठकों की सेवा में

'दयानन्द-सन्देश' इस अंक के साथ अपने २२ वर्ष पूरे कर चुका है। इन वर्षों के मध्य में जो आत्मीयता, सौहार्दभाव तथा सहयोग हमें पाठकों से मिला है, तदर्थ हम हृदय से आभारी हैं। २३वें वर्ष में नवम्बर, १९९४ का पहला अंक 'संस्कारभास्कर' नामक विशेषांक होगा। पाठक अपनी अपनी प्रति सुरक्षित होने के साथ 'दयानन्द-सन्देश' के पाठकों की भी वृद्धि कराने में हमारा सहयोग पूरे मनोयोग से करें, तो हम आपको योग्य विद्वानों से संपर्क कराके ज्ञान चर्चा को बढ़ाते रहेंगे, ऐसी हमें पूर्ण आशा है।

विनीत-***राजवीर शास्त्री***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द के वास्तविक उत्तराधिकारी कौन?

-डॉ॰ सत्यदेव आजाद

महर्षि दयानन्द ने स्वयं को ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त आर्य परम्परागत संस्कृति का अनुगामी प्रकट किया। कभी स्वयं को किसी नवीन धर्म, मत या सम्प्रदाय का प्रवर्तक घोषित नहीं किया। मानव के कल्याणार्थ उन्होंने जिस धर्म का प्रतिपादन व प्रचार किया उसका मूलाधार वेदों को स्वीकार किया। मातृभाषा गुजराती होते हुए भी स्वयम् आजीवन संस्कृत विद्या का उत्कृष्ट अभ्यास करते हुए भी उन्होंने व्यावहारिक कार्यों का माध्यम हिन्दी को ही बनाया और बताया। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण विशाल आदर्शों को व्यावहारिक जामा पहिनाने में लगा रहा।

महर्षि दयानन्द ने अपने उद्दिष्ट कार्य के व्यापक क्षेत्र और उसके विस्तार को अनुभव करते हुए अत्यन्त दूरदर्शिता के साथ अपने जीवन के उपरान्त समस्त कार्यों के सुसंचालनार्थ परोपकारिणी सभा और आर्यसमाज की स्थापना की। महर्षि के पश्चात् आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा के अलावा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाएँ तथा अन्य अनेक संस्थाओं के द्वारा शिक्षा, समाज सुधार, दीनों और अनाथों की रक्षा, कुरीतिनिवारण, सत्साहित्य प्रकाशन आदि अनेक कार्य आर्यसमाज के प्रमुख कार्यकर्तागण यथाशक्ति करते रहे हैं। इतना ही नहीं, सहस्रों स्थानों पर आर्य-समाज की भी स्थापना हुई है। परिणामतः आर्यसमाज का नाम और विस्तार ज्यों ज्यों अधिक बढ़ता गया त्यों त्यों उसके प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का नाम और गौरवगान भारत के शेष भागों में होता गया। आर्यसमाज का मुख्य कार्य केवल समाजसुधार और रूढ़िवाद उन्मूलन ही नहीं है वरन बहुत व्यापक है जिस आर्य-समाज की स्थापना कर उन्होंने वेदों के ज्ञान को घर-घर तक पहुंचाया और कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का उद्घोष कर सर्वश्रेष्ठ जनों को संगठन सूत्र में बंध जाने का सन्देश दिया वही सन्देश आज हम ने भी घर घर में पहुंचाना है। आर्यसमाज के सार्वभौमिक दस नियमों को बनाकर उन्होंने संसार को वस्तुतः अमृत पान करा दिया। दयानन्द का राष्ट्रवाद सार्वभौम था आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है संसार का उपकार करना। उन्होंने भारत के निष्प्राण शरीर में अपना अदम्य उत्साह, दृढ़ निश्चयात्मक संकल्प और सिंह गर्जन भर कर उसे सजीव किया था। उनके शब्द वीरोचित शक्ति के साथ गूंजे। वस्तुतः महर्षि के ज्ञान, वर्चस्व और बल का हमारे जीवन में कोई स्थान नहीं रह गया है तो फिर भला उनके धर्मदण्ड को किस प्रकार अपने निस्तेज हाथों में धारण करें। पवित्र श्रुति का उद्घोष - तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते। वही देश या लोक पुण्यवान् है जहां अभाव नहीं है। इन अभावों को हमें दूर करना है महर्षि के सतत सत्यनिष्ठ जीवन से स्वयं को अनुप्राणित करके।

खेद है कि आज अधिकांश आर्यसमाजें दलगत राजनीति का केन्द्र बन गई हैं। उसकी सार्वजनिक सम्पत्ति पर अवैध अधिकार करते हुए कुछ बुजुर्ग आर्यसमाजी युवा रक्त को आर्यसमाज में प्रवेश नहीं देते। आर्यसमाजों से सम्बद्ध कन्या विद्यालयों के पदाधिकारी बनने की होड़ में वे अपना नैतिक पतन तक कर डालते हैं। वेद प्रचार, यज्ञ, सत्संग आदि अपेक्षित कर्म न करके व्यर्थ के आडम्बर में धन और समय की हानि करते हैं, यह स्थिति अत्यन्त शोचनीय होती जा रही है। यदि हम ऋषि के ऋण से उऋण होना चाहते हैं और स्वयं को आर्य-समाज के सेवक कहलाने में गौरव की अनुभूति करना चाहते हैं तो निश्चय ही हमें उदारमना होकर सभी श्रेष्ठ जनों को आर्य-समाज का सदस्य बनाना होगा। स्वार्थ अथवा पद लोलुपता से ऊपर उठकर निःस्वार्थ भाव से आर्यसमाज की सेवा करनी होगी तभी तो हम सच्चे अर्थों में स्वामी दयानन्द के उत्तराधिकारी कहला सकेंगे। निश्चय ही इस तपोमय उत्तराधिकार को प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है आत्मचिन्तन की, मन मन्थन की।

-डॉ सत्यदेव आजाद
२३१३, अर्जुनपुरा, डीग गेट, मथुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीय मूल्यों के शिक्षा-तत्त्व

धर्ममार्तण्ड डॉ० दिनेशचन्द्र, वेद-विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गतांक से आगे

उपरोक्त मूल्यों की शिक्षा के तत्त्व-

(i) सुयोग्य शिक्षकों की उपलब्धता-

मानवीय मूल्यों की शिक्षा के लिए यही क्रम स्वाभाविक लगता है कि सुयोग्य शिक्षक तैयार हों। सर्वप्रथम वे स्वयम् इन मूल्यों को आत्मसात् करें। उनका प्रत्येक व्यवहार सत्य से पूर्ण, धर्मानुकूल, अहिंसात्मक और आत्मतुल्यता की भावना से भरा हो। अपने जीवन में मूल्यों की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक भूमि सुदृढ़ बनाकर ही वे अपने को इन मानवीय गुणों की शिक्षा के आदर्श (Model) और सुयोग्य शिक्षक बना सकते हैं। सुयोग्य शिक्षक बनकर ही वे अहिंसादि जैसे महानतम मूल्यों को मानव समाज में प्रतिष्ठापित करने में सफल हो सकते हैं। यह एक स्थापित मान्यता है कि किसी सद्गुण को स्वयम् अपने जीवन में आत्मसात् करने वाले व्यक्ति ही उसे अन्यों के जीवन में स्थापित कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति ही वातावरण की ध्रुव धुरी बनकर विश्व चक्र की दिशा बदल सकते हैं। जैनमुनि आचार्य श्री हस्ती के अनुसार जो शिक्षा को आचरण में ला पाता है वही दूसरों को शिक्षा देने का अधिकारी होता है।

महान् समाज सुधारक दयानन्द सरस्वती ने जब पहली बार समाजोद्धार के कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया तो उनको पूरी तरह से सफलता नहीं मिली। जिस कारण उन्हें विवश होकर कहना पड़ा कि मेरी तपस्या में कहीं कमी रह गयी है जिससे मेरी बातों का लोगों पर असर नहीं हो रहा है।' वास्तव में यदि हम 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' अर्थात् सभी सुखी और क्लेश रहित हों- यह चाहते हैं तो सब से पहले स्वयं को सत्यवादी, धार्मिक, अहिंसावादी और शान्तिप्रिय बनाना पड़ेगा। महात्मा गांधी कहा करते थे कि- मनुष्य स्वयं का सुधार कर ले तो सब सुधार हो जायेगा।'

वैसे तो अहिंसादि मूल्यों को सिखाया नहीं जा सकता। मानव जीवन में सुषुप्त इन गुणों को जगाने की ही जरूरत है। इन मूल्यों को सिखाने वाले सुयोग्य शिक्षकों का जीवन एक खुली पुस्तक होगा और अन्य व्यक्ति उनके जीवन-व्यवहारों से इन मूल्यों की शिक्षा ग्रहण करेंगे। ये शिक्षक चलते-फिरते अभिप्रेरक होंगे, उत्प्रेरक होंगे जो मानव मन में व्याप्त हिंसा, घृणा, वैर-विरोध आदि की दुर्भावनाओं का निवारण कर प्रेम, सहयोग, धर्म, शान्ति, स्नेह, सहानुभूति आदि दिव्य गुणों को जागृत कर सकेंगे।

गौतम बुद्ध को चलते हुए देखकर कुख्यात डाकू अंगुलिमाल रुका और बोल पड़ा- रुक जाओ तुम! बुद्ध का उत्तर था (चलते हुए) मैं तो रुका हुआ हूँ, तुम नहीं रुक रहे हो। अंगुलिमाल के लिए ये शब्द पहेली बन गए और बुद्ध के चरणों में गिरकर उसने अपना जीवन ही बदल डाला।

वर्तमान युग में स्वामी दयानन्द सरस्वती, मार्टिन लूथर किंग, महात्मा गांधी और विनोबा आदि के चमत्कार इस शताब्दी में घटित हुए हैं। इनके सत्य, अहिंसा और शान्ति आदि के चमत्कारों से हम परिचित हैं। हमारे महापुरुष भगवान् बुद्ध, गुरु नानक, भगवान् महावीर आदि असामान्य ऊँचाईयों पर आसीन होकर हमारे लिए आदर्श हैं, अनुकरणीय और दिग्दर्शक तो हैं ही। भले ही हमारा शिक्षक इन असामान्य ऊँचाइयों तक न पहुँच सके परन्तु इस सिद्धान्त को तो उसे समझना और स्वीकारना ही होगा कि मूल्यों के सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ इसका व्यावहारिक जीवन में आंशिक प्रयोग भी मूल्य-शिक्षा में चमत्कार ला सकता है।

मूल्यों की शिक्षा हमारे देश में इसीलिए सफलता का मुँह ताक रही है क्योंकि सत्य, धर्म और अहिंसा जैसे मूल्यों को जीनेवाले शिक्षक नगण्य हैं। शिक्षा की उच्चतम विधियाँ-प्रविधियाँ भी सफल नहीं हो सकतीं, यदि मूल्यों को आत्मसात् करने वाले शिक्षक उपलब्ध न हों। भावना की शिक्षा को तो अभी छुआ ही नहीं गया है।

ये शिक्षक घर में माता-पिता और गुरुजन, विद्यालयों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य, शिक्षक, समाज में कार्यकर्त्ता हो सकते हैं। ऋषि दयानन्द के अनुसार 'जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य हो तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।' इन तीनों शिक्षकों के कर्त्तव्य-कर्म को बताते हुए वे लिखते हैं कि माता-पिता, आचार्य अपनी सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि ''जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन- उनका ग्रहण करो और जो-जो दुष्कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। जो-जो सत्य जानें उन-उनका प्रकाश और प्रचार करें। ....यही माता-पिता का कर्त्तव्य-कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है कि अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।''

विद्यार्थी-जीवन मानव जीवन की आधारशिला है। इसी शिला पर मानवता के भवन खड़े होते हैं। यह शिला जितनी सुदृढ होंगी- मानवता का भवन भी उतना सुदृढ़ होगा। सुदृढ़ और ऊँचा-उच्चकोटि का बनाने के लिए उसकी आधारशिला का सुदृढ़ होना परमावश्यक है। इस दृष्टि से माता-पिता, शिक्षक और सरकार सब का संयुक्त दायित्व है कि स्वदेश के मानव भवन की आधारशिला को पहले नैतिक मूल्यों के द्वारा सुदृढ़ करें। तभी उच्चकोटि के मानव-सुनागरिक तैयार हो सकेंगे और तभी देश वास्तविक अर्थों में समुन्नत हो सकेगा।

विद्या की प्राप्ति का वास्तविक समय है मानव जीवन का प्रारम्भ। वैसे, मनुष्य जीवनभर सीखता रहता है, परन्तु जितनी संग्रहण-शक्ति और स्मृति-शक्ति बाल्यावस्था से युवावस्था तक रहती है, उतनी उसके पश्चात् की आयु में नहीं रहती। इस दृष्टि से अपने कन्धों पर देश की भावी पीढ़ी के निर्माण का उत्तरदायित्व वहन करनेवाले शिक्षाप्रदाता तथा निर्माता चाहें और प्रयत्न करें तो बच्चों का जीवन संवारें और चाहें तो बिगाड़ भी दें। शिक्षक तो कुम्हार की भाँति होते हैं जो कच्ची मिट्टी के समान कोमल बालकों को मनचाहा आकार दे सकते हैं और ये आकार सुन्दर बने, उपयोगी बने, आदर्श बने, त्रुटिरहित बने इसके लिए जरूरी है कि शिक्षक स्वयम् अपना जीवन उज्ज्वल आदर्श बनायें। कारण कि उपदेश देने की बजाय आचरण स्वयं व्यवहार में आदर्शरूप में प्रस्तुत किया जाता है। वह अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली होता है किन्तु ऐसा जीवन बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण है कि वे अपने जीवन में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को अपनायें। वस्तुतः स्वाध्याय ही वह पथ है जो हमें उचित अनुचित की राह दिखाता है। वह बोध कराता है कि कैसा आचरण करने योग्य है और कैसा नहीं। इस मायने में स्वाध्याय का जीवन में समावेश न केवल पठन और चिन्तन वरन् उसके अनुरूप जीवन में आदर्श व्यवहार के क्रियान्वयन का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः शिक्षक स्वाध्याय को अपने जीवन में अपनाकर उसके अनुरूप अपना आदर्श विद्यार्थी वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करे तो यह निश्चित है कि विद्यार्थियों में मानवीय गुणों का विकास उन्नति कर पायेगा।

शिक्षा में मूल्यों की शिक्षा पर व्यापक शोध करके उनके सफल प्रयोगों के आधार पर उक्त शिक्षकों को अहिंसावत मूल्यों के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। पाश्चात्य एव पौर्वात्य दर्शनों में इससे सम्बन्धित सामग्री को दृष्टिगत कर शोध-आकल्प (Research Designs) विशेषतः प्रयोगात्मक आकल्प और प्रयोगात्मक प्रायोजनाएं हाथ में ली जा सकती हैं। भारत में योगदर्शन के प्रणेता पतंजलि के वृत्ति-निरोध का विस्तार से अध्ययन कर उस पर प्रयोगात्मक प्रायोजनाएं क्रियान्वित करना अपेक्षित है।

(ii) **परिवेश :-** मूल्यों की शिक्षा के मूल तत्त्वों में तत्सम्बन्धी परिवेश या वातावरण प्रमुख है। इन मूल्यों के विकासार्थ तदनुकूल वातावरण सृजन का अभिप्राय है कि मूल्यों को किसी पर थोपा नहीं जा सकता। इनके निर्माणानुकूल वातावरण का सृजन आवश्यक है। वातावरण सृजन का एक अन्य अर्थ यह है कि अहिंसादि मूल्यों की शिक्षा के लिए आचार-विचारादि सभी क्षेत्रों में इनकी प्रतिष्ठा हो जिससे यह कोई अलग विषय बनकर नहीं रह जाय। यह एक स्थापित सत्य है कि हमारे चारों ओर जिस तरह का वातावरण होगा और हम जैसे वातावरण में पल रहे होंगे, वैसा ही हमारा निर्माण हो जायेगा। अलग-अलग घरों के भिन्न वातावरण में पलकर बच्चे वैसी ही शिक्षा स्वतः ग्रहण कर लेते हैं। वे जैसे व्यवहार माता-पितादि गुरुजनों के देखते, सुनते, जैसा करते देखते, वैसे ही व्यवहारों को वे सीख जाते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण वातावरण एवं परिवेश जब अहिंसामय, शान्त, प्रेम और मित्रता से परिपूर्ण तथा धार्मिक हो तो मूल्यों की शिक्षा सहज और स्वाभाविक सम्पन्न हो जाती है।

विद्यालयों में पाठ्यक्रम के सभी विषयों में समाविष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसादि मूल्यों की चर्चा तत् तत् प्रसंगों में की जाय। प्रार्थना सभा, साहित्यिक गोष्ठियों, खेल, संगीत कला आदि विषयों में किए जानेवाले कार्यों में इन मूल्यों का वातावरण सहज में सृजन किया जा सकता है।

विद्यालय में आयोजित होनेवाले सभी पाठ्य एवं पाठ्य सहगामी कार्यक्रमों में अहिंसादि मूल्यों की शिक्षा का वातावरण दिया जा सकता है। शिक्षकों के एवं बालकों-बालिकाओं के व्यवहारों में इन मूल्यों का समावेश कैसे हो, यह प्रयास किया जा सकता है।

घर के वातावरण का उदाहरण तो हम सबके सामने है। घर में बालक को सभ्यता, संस्कृतिमय वातावरण देकर माता-पिता अपने बच्चों में वांछित संस्कार डाल देते हैं। यह केवल वातावरण सृजन की दृष्टि से ही अनुकरणीय नहीं अपितु मूल्यों की शिक्षा की आयोजना करने वाले व्यक्तियों, संस्थाओं के लिए भी उपयोगी है कि वे देखें कि घर में बालक-बालिकाओं में माता-पिता कैसे अच्छे संस्कार वपन कर देते हैं।

इसी प्रकार समाजनेता एवं राष्ट्रनेता समाज और राष्ट्र में भी इसी प्रकार मूल्यों के अनुकूल वातावरण या परिवेश का सृजन कर इन मूल्यों को सहज स्वाभाविक रूप में ग्राह्य बना सकते हैं।

अत: अपेक्षित है कि इन शाश्वत नैतिक मानवीय गुणों की शिक्षा के लिए शिक्षा-संस्थानों, चाहे वे घर हों, धर्मस्थान हों, समाज हो या अन्य अभिकरण (Agencies) हों, वहां इनके योग्य वातावरण का सृजन किया जाये।

(iii) **प्रशिक्षण संवेगों का**-ब्राउडी ने Building a Philosophy of Education में मूल्यों के विकास सिद्धान्तों (theories) की चर्चा करते हुए संवेग अभिसिद्धान्त (Emotion theory) को जीवन मूल्यों के विकास का एक प्रमुख आधार माना है। जिस किसी भी क्रिया-विधि से मानव के संवेगों को जगा दिया जाय तो ये जागृत संवेग मानव को उत्प्रेरित कर देते हैं सम्बन्धित मूल्य को आत्मसात् करने के लिए।

आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त उपकरण दूरदर्शन या टी॰वी॰, रेडियो, टेप, फिल्म आदि मानव मन में सुषुप्त मूल्यों को जागृत करने में आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। इन उपकरणों पर प्रस्तुत की जानेवाली दृश्य-श्रव्य सामग्री मानव-मन को प्रबल रूप से आन्दोलित कर देती है और मूल्यों के विकास हेतु सुदृढ़ भूमि तैयार कर देती है।

शिक्षा के दोनों रूप औपचारिक एवम् अनौपचारिक मूल्य विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तत्तत् मूल्यों की शिक्षा में भी इन दोनों प्रकार की शिक्षा की महती भूमिका है। पाठ्यक्रमों में मूल्यों की शिक्षा के लिए अनुकूल प्रसंगों का उपयोग किया ही जाना चाहिए। इन औपचारिक स्वरूपों से भी अनौपचारिक शिक्षा कहीं अधिक सार्थक बन सकती है।

विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में आयोजित होनेवाली क्रीड़ा प्रतियोगिताएँ, भ्रमण चर्चाएँ, गोष्ठियाँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम, संगीत, अभिनय आदि तथा कहानी, संस्मरण, प्रार्थना सभाएँ एवं प्रायोजनाओं (Projects) पर कार्य भी किशोरों एवं युवाओं में संवेगों का अप्रत्यक्ष प्रशिक्षण करते हैं।

यह एक सामान्य स्वीकृत सिद्धान्त है कि समूहों में की गई क्रियाएँ- समूह एवं प्रायोजनाएं संगठन, सहयोग, सहनशीलता, प्रेम, सहानुभूति जैसे गुणों को विकसित होने का सहज अवसर प्रदान करती हैं।

(IV) **अन्य**-(i) यह आवश्यक है कि मूल्यों की शिक्षा के इस प्रयास को व्यापक रूप में सभी स्तरों पर सम्पन्न किया जाय। घर, विद्यालय, धर्म स्थान आदि अन्यान्य अभिकरण नैतिक गुणों की शिक्षा के कार्य को हाथ में लें, प्रयोग करें और सफल प्रयोगों को सर्वत्र आत्मसात् किया जाय।

(ii) घर, समाज, राष्ट्र और विश्व में अहिंसादि मूल्यों को जीवित करने वाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं को प्रोत्साहित एवम् सम्मानित किए जाने की अपेक्षा है। यह प्रोत्साहन विद्यार्थियों एवम् अन्य व्यक्तियों को इन मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा कर सकेगा।

अंततोगत्वा अहिंसा, सत्य, धर्म, प्रेम और शान्ति जैसे शाश्वत, नित्य ध्रुव धर्म या महानतम जीवन मूल्यों की शरण करने में ही व्यक्ति और विश्व की सुरक्षा, समृद्धि और शान्ति निहित है। ऐसे महानतम मूल्यों का प्रचार-प्रसार और उनकी प्रतिष्ठा शिक्षा के अत्यन्त प्रभावी उपकरण द्वारा संभव है। ●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाविर्भाव की विभिन्न पद्धतियों की समीक्षा

–यशपाल आर्यबंधु, आर्य निवास, चन्द्र नगर, मुरादाबाद २४४०३२

दयानन्दसन्देश के मई ९४ के अंक में हमारा एक लेख "वेदाविर्भाव प्रकार – महर्षि दयानन्द का अभिमत" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उस लेख पर हमें आर्यसमाज के कई एक शीर्ष विद्वानों के आशीर्वादात्मक पत्र प्राप्त हुए हैं। उन्हीं से उत्साहित होकर इस विषय पर कुछ और लिखने को समुद्यत हुए हैं। इस बात पर तो प्राय: सभी एकमत हैं कि ईश्वर ही सृष्टि के प्रारम्भ में अपने ज्ञान का मानवमात्र की उन्नति के लिए प्रकाश करता है। उसी ज्ञान का नाम वेद है, पर वेद का प्रकाश कैसा होता है? इस विषय में बहुत मतभेद व्याप्त हैं। पौराणिक लोग जो चार मुख वाले एक देवता ब्रह्मा जी की कल्पना कर उनके एक-एक मुख से एक-एक वेद के प्रकट होने की बात कहा करते हैं, उनसे आर्यसमाज का मतभेद होना स्वाभाविक है, पर इस विषय में आर्यविद्वान् भी प्राय: एकमत नहीं। उनमें भी परस्पर बहुत मतभेद हैं। हमारे मत में आर्यविद्वानों में एतद्विषयक मतभेद महर्षि दयानन्द के मन्तव्य को ठीक से न समझने के कारण ही है। इसी लिए अपने पूर्व लेख में हमने सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द के विचारों का ही उल्लेख करते हुए उन्हें यथासम्भव स्पष्ट करने का तुच्छ प्रयास किया था। हमारा विश्वास है कि महर्षि के वेदाविर्भाव सम्बन्धी विचार अत्यन्त युक्तियुक्त, तर्कसंगत, बुद्धिगम्य, एवं पूर्णतया ग्राह्य हैं। उनको अपना कर एतद्विषयक मतभेदों को सद्भावना पूर्वक दूर किया जा सकता है। यह तो निर्विवाद है कि आर्ष कल्पना और मानवीय कल्पना में बहुत अन्तर होता है। प्रस्तुत लेख में हम कतिपय मानवीय कल्पनाओं की समीक्षा करने का विनम्र प्रयत्न कर रहे हैं। हमारे इस लेख को पूर्व लेख का उत्तरार्द्ध समझा जाये।

१- सुप्तप्रबद्ध न्याय पद्धति द्वारा वेद प्रकट होना

आर्यजगत् में अनेक लोग ऐसा मानते हैं कि वेद का आविर्भाव सुप्तप्रबद्ध पद्धति से हुआ। यह सुप्तप्रबद्ध पद्धति क्या है? इसे समझने की आवश्यकता है। उनके अनुसार सोते समय व्यक्ति के मन में जैसे भाव होते हैं, उठते समय प्राय: वही भाव मन और मस्तिष्क में बने रहते हैं। इसे सुप्तप्रबुद्ध न्याय कहते हैं। उनकी मान्यता यह है कि प्रलय भी एक प्रकार की महानिद्रा है। अत: प्रलय के पूर्व मरते समय ऋषियों के मन में जैसे भाव रहे, आगामी सृष्टि के प्रारम्भ में जन्मे उन ऋषियों के मन में वही भाव प्रकट हो गये। इस प्रकार वेद प्रकटीभूत हुए। तात्पर्य यह कि पूर्व सर्ग के ऋषियों का ज्ञान प्रलय में भी ज्यों का त्यों बना रहा और फिर नवीन सृष्टि में जन्म लेने के साथ वह प्रकट हो गया। इस प्रकार वेद का आविर्भाव हो जाता है।

समीक्षा–

यदि समीक्षात्मक दृष्टि से देखें तो यह कल्पना नितान्त दोषपूर्ण एवं महर्षि के मन्तव्य के विरुद्ध है। कारण- कि प्रलय से पूर्व यह आवश्यक नहीं कि कोई वेदज्ञ ऋषि विद्यमान हो। दूसरे हो भी तो यह आवश्यक नहीं कि उसे सम्पूर्ण वेद कण्ठस्थ हो। और यदि ऐसा हो भी तो यह आवश्यक नहीं कि मृत्यु से पूर्व वह वेदचिन्तन में लगा हो। फिर केवल चार ही व्यक्तियों के मन में ऐसे भाव रहे हों, यह आवश्यक नहीं, औरों के मन में भी तो यह भाव रह सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी सन्देहास्पद बात है कि प्रलयावस्था में वह ज्ञान वैसे का वैसा बना रहता है और सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकट हो जाता है। सब से बड़ी बात तो यह है कि ऐसी अवस्था में उस ज्ञान को ईश्वरीय ज्ञान भी कैसे कहा जा सकता है? अत: कहना होगा कि परमेश्वर सुप्तप्रबद्ध न्याय पद्धति से वेद का ज्ञान नहीं अपितु अपनी व्याप्ति से ऋषियों के अन्त:करण में वेद का प्रकाश करता है। चार ही ऋषियों को वेद का ज्ञान क्यों देता है? महर्षि के इस मन्तव्य को हम अपने पूर्व लेख में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट कर चुके हैं कि वे ही सर्वाधिक शुद्ध और पवित्रात्मा थे इसी लिए उन्हीं को इसका पात्र समझ कर उन्हें यह ज्ञान दिया गया।

२- मैस्मरिज्म पद्धति से वेद का प्रकाश होना-

इधर कई एक प्रतिष्ठित आर्य विद्वान् वेद का आविर्भाव मैस्मरिज्म पद्धति से बढ़-चढ़ कर बताने लगे हैं। उनके अनुसार एक मैस्मरिज्म जानने वाला पुरुष दूसरे व्यक्ति पर मैस्मरिज्म करके स्वयं बिना बोले ही, उससे जो भाषा चाहे बुलवा सकता है। यह व्यक्ति चाहे उस भाषा को बिल्कुल भी न जानता हो। इस प्रकार की क्रियाओं में मैस्मरिज्म करने वाला पुरुष अपनी भाषा को ही दूसरे व्यक्ति के मन में डाल देता है। मैस्मरिज्म करने वाला पुरुष अंग्रेजी न जानने वाले से अंग्रेजी बुलवा सकता है और जर्मन न जानने वाले से जर्मन बुलवा सकता है। जब एक साधारण आदमी मैस्मरिज्म की क्रिया सीख कर उसके द्वारा दूसरे व्यक्ति के मन में अपनी भाषा और ज्ञान डाल सकता है तो परमात्मा ऐसा क्यों नहीं कर सकते? वे तो बड़ी आसानी से ऐसा कर सकते हैं। सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा भी आदिम ऋषियों के मन में इसी प्रकार वेद के ज्ञान और वेद की भाषा को डाल देता है।

समीक्षा-

परमेश्वर द्वारा वेद की भाषा और ज्ञान को आदि ऋषियों के अन्तःकरण में डाल देने की बात पर हमें कोई आपत्ति नहीं। आपत्ति उसकी पद्धति पर है। परमात्मा को न तो मैस्मरिज्म करने की आवश्यकता है और न ही परमात्मा ऐसा करता ही है। वह तो अपनी व्याप्ति से जीवों के अन्तःकरण में अपना ज्ञान देता है न कि मैस्मरिज्म पद्धति से। मैस्मरिज्म पद्धति में ज्ञान बाहर से दिया जाता है अन्दर से नहीं जबकि ईश्वरीय ज्ञान भीतर से दिया जाता है। मैस्मरिज्म पद्धति से दिया जाने वाला ज्ञान अस्थायी होता है, स्थायी नहीं क्योंकि जब बोलने वाला व्यक्ति अपनी सामान्य स्थिति में आता है तो उसे कुछ भी याद नहीं होता कि उसने क्या बोला था। जबकि आदि ऋषियों के अन्तःकरण में दिया जाने वाला ज्ञान उन्हें आजीवन याद रहता है। मैस्मरिज्म में यौगिक क्रिया द्वारा एक व्यक्ति को प्रभावित कर उसे एक प्रकार से चेतनाशून्य अर्थात् अर्द्धचेतन अवस्था में लाया जाता है। तब उससे मनचाही भाषा बुलवाई जाती है। उस समय उसकी अपनी सोच या विचार शक्ति काम नहीं करती। तब उसका मन और मस्तिष्क तो दूसरे व्यक्ति द्वारा संचालित होता है। तात्पर्य यह है कि तब उसे तामसिक अवस्था में लाया जाता है। जबकि वेद का ज्ञान सात्त्विक अवस्था में प्राप्त होता है। मैस्मरिज्म करने वाला किसी गूंगे व्यक्ति से भाषा का उच्चारण नहीं करा सकता। पर परमात्मा ने तो एक प्रकार से गूंगे व्यक्तियों से भाषा का उच्चारण कराया था क्योंकि उससे पूर्व सभी एक प्रकार से गूंगे ही थे कारण कि उस समय भाषा का प्रचलन ही नहीं था। भाषा सदैव सुनकर ग्रहण की जाती है। जब तक व्यक्ति कान से सुन नहीं लेता वह गूंगा ही रहता है। परमात्मा का मुख तो था नहीं कि उसने बोल कर उन ऋषियों को सुनाया हो। मैस्मरिज्म में जिस व्यक्ति को यौगिक क्रिया से प्रभावित करना हो, यदि वह व्यक्ति स्वयं योगी हो और उससे अधिक योग में गति रखता हो, तो लाख प्रयत्न करने पर भी कोई उससे मनचाही बात नहीं कहलवा सकता। अतः यह कहना कि ईश्वर मैस्मरिज्म पद्धति से आदि ऋषियों को बुलवाता है युक्तियुक्त नहीं। युक्तियुक्त तो वही है जो महर्षि ने कहा है कि परमात्मा अपनी व्याप्ति से जीवों के अन्तःकरण में वेद का ज्ञान देता है। इसमें वेद का भी प्रमाण है। जैसे- "इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत्।" ऋ० ७।१०।१५ अर्थात् परमेश्वर उपदेश देता है कि मेरे शब्दों से तृप्त और प्रकाशयुक्त जीव ! यह मेरा वेद वचन तेरे हृदय के भीतर प्राप्त हो जाये और तू इसको प्रीतिपूर्वक ग्रहण कर।

हमारा विश्वास है कि जब हम जीवात्मा और ईश्वर के स्वरूप को ठीक-ठीक समझ कर उनके परस्पर व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध को समझ लेंगे तभी ईश्वरीय-ज्ञान के प्रकाशन प्रकार को समझ सकेंगे अन्यथा नहीं। तब इन मिथ्या कल्पनाओं किसी देवदूत के आगमन, स्वप्न, आकाशवाणी तथा मैस्मरिज्म आदि मिथ्या कल्पनाओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। महर्षि स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि "परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेद विद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है। क्योंकि मुख जिह्वा वर्णोच्चारण अपने से भिन्न के बोध होने के लिए किया जाता है, कुछ अपने लिए नहीं।"

ध्यान रहे कि मैस्मरिज्म में अपने से भिन्न को प्रभावित किया जा रहा है।

बिजली का स्विच दबाने के सदृश–

एक मानवीय कल्पना यह भी है कि जिस प्रकार बिजली का स्विच दबाने से तत्काल कमरे में प्रकाश हो जाता है, ठीक उसी प्रकार वेद ज्ञान का प्रकाश चारों ऋषियों को एक साथ हो जाता है। यदि गम्भीरता से इस पर विचार करें तो यह विचार भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। ईश्वर के लिए चारों वेदों का ज्ञान चारों ऋषियों को एक साथ देने में कोई कठिनाई नहीं उसे तो स्विच दबाने की भी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। ईक्षणमात्र से वह ऐसा सरलता से कर सकता है। पर प्रश्न यहां ऋषियों द्वारा ईश्वर से वेद ज्ञान प्राप्त करने का ही नहीं अपितु उसके उच्चारण कर ब्रह्मा को देने का भी है। ईश्वर द्वारा ऋषियों के अन्तःकरण में वेद का ज्ञान एक साथ संक्रमण करा देना कोई बड़ी बात नहीं। पर अल्पज्ञ जीवों द्वारा एक साथ चारों वेदों का सुन पाना अवश्य असम्भव है। महर्षि मनुस्मृति तथा श्वेताश्वतर उपनिषद् के आधार पर स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि- "परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों ऋषियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग्०, यजु०, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।" (स०प्र० सप्तम समु०) जब अग्नि आदि ऋषियों से (जो दैव्य ऋषि थे) ब्रह्मा ने (जो श्रुत ऋषि थे) यह ज्ञान सुनकर ग्रहण किया तो फिर यह आवश्यक हो जाता है कि एक-एक वेद बारी-बारी से बोल कर उसे सुनाया जाये, एक साथ नहीं।

यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि ऋषि दो प्रकार के होते हैं। एक दैव्य ऋषि दूसरे श्रुत ऋषि। दैव्य ऋषि वे हैं जिन पर वेदों का आविर्भाव हुआ करता है और ये हैं- अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा। जबकि श्रुत ऋषि उनको कहते हैं जो दैव्य ऋषियों अथवा अपने से पूर्व हुए श्रुत ऋषियों से शिक्षा पाकर ऋषि बनते हैं। वेद में इनको पूर्व व नूतन ऋषि भी कहा है। जैसे-

"अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।" (ऋ० १।१।२) दैव्य ऋषियों का जन्म सृष्टि के प्रारम्भ में केवल एक बार हुआ करता है। वे बार-बार नहीं होते जबकि श्रुत ऋषियों के लिए ऐसा प्रतिबंध नहीं, वे कभी भी जन्म ले सकते हैं।

यहां हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वेद के प्रकाश का अर्थ वह ज्ञान ऋषियों के हृदय पटल पर रख देने मात्र का नाम नहीं अपितु उसका पूर्ण प्रकाश तो उस-उस ऋषि द्वारा उसका उच्चारण कर अन्य ऋषि ब्रह्मा को सुनाना भी है जिस से वाणी का प्रवाह चल पड़े। हम अपने पूर्व लेख में लिख आये हैं कि जिस का अभी वाणी से उच्चारण ही नहीं हुआ उसको भाषा की संज्ञा कैसे दी जा सकती है। क्योंकि "व्यक्तवाचां समुच्चारणे" इति भाषा। अतः हम यही कहेंगे कि ईश्वर ने चारों ऋषियों को उन-उन के भाग का ज्ञान एक साथ भले ही दे दिया हो पर उन-उन का उच्चारण एक साथ नहीं किया गया। यदि ऐसा हो तो उसे ब्रह्मा नाम के ऋषि एक साथ उन्हें कैसे ग्रहण कर सकते थे। अतः यही मानना होगा कि उन्होंने एक-एक कर के वेद का उच्चारण किया और उसमें कुछ समय तो अपेक्षित है ही।

अन्त में हम यही कहेंगे कि हम अपनी मिथ्या कल्पनाओं का सहारा लेकर वेदाविर्भाव की इस गम्भीर समस्या को और अधिक न उलझावें अपितु ऋषियों की खोज के सहारे इस समस्या को युक्तियुक्त, तर्क संगत एवं विज्ञान-सम्मत ढंग से हल करने का प्रयत्न करें। इसी में आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द और स्वयं वेद का गौरव है। आशा है विद्वद्जन इस पर विचार करेंगे और यदि इस में कोई न्यूनता या त्रुटि रह गई हो तो कृपा कर दर्शाने का कष्ट करेंगे ताकि सत्य का बोध हो सके। हमें सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।

शमित्योम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है?

ठाकुर इन्द्रदेवसिंह "इन्द्र कवि" ग्राम॰ पो॰-विष्णुपुरा कलाँ, जिला-सारण, बिहार

सृष्टि का प्रथम मानव पैदा हुआ जहां पर
वेदों का ज्ञान चमका ऋषियों के दिल के अन्दर
गरिमा पुरानी उसकी अब लुप्त हो गई है।
जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है।।

भाई के लिए भाई था राज्य तक भी छोड़ा,
मां बाप की आज्ञा से वैभव से मुख को मोड़ा,
भाई के खूं का प्यासा भाई बना वहीं है।
जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है।।

माता पिता के दुःख को दुःख जिसने अपना समझा,
जिनके लिए सुख अपने जीवन का सपना समझा,
माता पिता वहीं पर पुत्रों से अब दुःखी हैं।
जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है।।

जो सत्य के लिए घर चाण्डाल के बिका था,
घर राज-पाट त्यागा पर सत्य पर टिका था,
उस सत्य की प्रतिष्ठा धूलि धूसरित हुई है।
जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है।।

सन्देश शान्ति का जिसने प्रथम दिया था,
बनकर हितैषी जग का जिसने गरल पिया था,
आतंक की भट्टी में वह जल रही जमीं है।
जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है।।

शरणागतों की रक्षा करने का व्रत लिया था,
पीछे न हटा उससे मन में जो प्रण किया था,
कथनी और करनियों में अब मेल कुछ नहीं है।
जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है।।

"कवि इन्द्र" व्यथा मन की अपनी किसे सुनाऊं,
निज देश दुर्दशा पर आसूं कब तलक बहाऊं,
जो हाल लिख रहा हूं वह शत प्रतिशत सही है।
जो विश्व का गुरु था वह देश क्या यही है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्दसन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आपसे भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये, इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें, जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं-

३६८. स्वामी आत्मानन्द सरस्वती, आदर्श गुरुकुल विद्यालय विशम्भर पुर पो० सराय प्रयाग फर्रुखाबाद
३६९. श्री कृष्णकुमार जी आर्य म० न० ८१ ग्रा०भोरगढ़ नरेला दिल्ली ४०
३७०. श्री वेदभूषण मदान S/o श्री ओमप्रकाश मदानार्य 48 राजधानी एन्क्लेव शकूर बस्ती दिल्ली
३७१. श्री जमीयतराय महाजन 4677 रामनगर सुलतानविड रोड अमृतसर (PB)
३७२. श्री विनोदकुमार अग्रवाल S/o श्री ज्ञानचन्द A-36 D.T.C. कालोनी हरिनगर नई दिल्ली
३७३. श्री जगदीशप्रसाद वैद्य गान्धी आश्रम के बगल चौक टांडा फैजाबाद
३७४. पेन्टरश्री जिलेसिंह No 81907 कं० 74 R.C.C. GREF C/o 99 A.P.O.
३७५. श्री मंत्री जी आर्यसमाज मंदिर जामनगर (गुजरात)
३७६. श्री गोपाल तिवारी 282 मढाताल जबलपुर M.P.
३७७. श्री कृष्णलाल जी आर्य हरिपुर, सुन्दरनगर जिला मंडी (H.P.)
३७८. श्री गिरीशचन्द्र उपाध्याय कसेरा मोहल्ला, कसेरा बाजार होशंगाबाद (M.P.)
३७९. श्री महावीरसिंह S/o श्री अर्जुनसिंह कंझावला दिल्ली 81
३८०. श्री मंत्री जी आर्यसमाज, मोहन नगर, हिण्डौन सिटी (राज०)
३८१. श्री विद्यारत्न M/s रबन इलाक्ट्रोनिक्स 317 केसरी चौक लाजपत मार्केट दिल्ली
३८२. प्रा० श्री धर्मेन्द्र धीगरा, खारीबाव रोड, बड़ोदरा (गुजरात)
३८३. श्री मंत्री जी आर्यसमाज, भान्डेवास पो० हरौड़ा जि० सहारनपुर (U.P.)
३८४. श्री प्रकाशनारायन सक्सेना 1/260 भूसा मंडी कोतवाली के पीछे फतेहगढ़ (U.P.)
३८५. श्री ज्ञानसिंह आर्य, म० न० 244 सैक्टर नं० 1 सादिक नगर नई दिल्ली
३८६. श्री रमेशचन्द S/o श्री गोपालसिंह ग्राम गोद पो० कृष्णनगर जि० महेन्द्रगढ़ (हर०)
३८७. श्री देवीसिंह राजसिंह (मंडलवाले) बड़ौत रोड बंगले के पास कस्बा बुढाना जि मु० नगर (U.P.)

धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/94
आर/ आर/ नं० २५५८७/७३
Post in New Delhi PSO
on 2-3/10/94

अक्टूबर १९९४

बिना टिकट भेजने का लाईसेन्स नं०
यू (डी०एन०) १४४/९४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/94

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगाये, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अवलिम्ब भेजने की कृपा करें।

बच्चे, दीर्घजीवी विद्वानों के लिए सुनहरा अवसर
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व
तार्किक समीक्षा के लिए
दोरंग में सुन्दर आर्कषक छपाई
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)
स्थूलाक्षर बड़े साइज
20x30x8 म

सत्यार्थप्रकाश

मूल्य : लागत मात्र से कम रु० ४०/- प्रति
प्रत्येक प्रति पर २५% कमीशन
१० से ज्यादा प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन
एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें।

प्राप्ति-स्थान :- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,
४५५, खारी बावली दिल्ली - ६
दूरभाष :- २३८३६०, २३३११२, २९२२६१२

श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा० ....
जिला ....

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११०००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

नवम्बर १९९२

वर्ष २१ : अंक १

दयानन्दाब्द : १६८

विक्रम संवत् : कार्तिक, २०४९

सृष्टि संवत् : १,९६,०८,५३,०९३

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-६ स्थापित - १९६६

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य

सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य

व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय

"दयानन्द सन्देश" (मासिक)

४५५, खारी बावली, दिल्ली–११० ००६

एक प्रति २.०० रू०

वार्षिक शुल्क २०)

आजीवन सदस्यता २००)

विदेश में ५०१)

इस अंक के लेख

- वेदोपदेश ३
- विचार मंथन ४
- उल्टा चोर कोतवाल को दण्डे ५
- साहित्य–समीक्षा ६
- स्पष्टीकरण ८
- कामधेनु, अमृत भाषा–संस्कृत ९
- वैदिक वर्णव्यवस्था का औचित्य ११
- तुलसीकृत रामायण–समीक्षा १४
- हिन्दुत्व की ओट में महर्षि का अवमूल्यन १७
- १८५७, महर्षि दयानन्द और श्री निहाल सिंह आर्य १७
- दयानन्द के दिव्य प्रसंग २१

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपए, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द–महिमा

'दया' और 'आनन्द' बोलो कहाँ थे?
'दयानन्द ऋषिवर' विचरते जहाँ थे।
तुरन्त ज्ञान–आलोक था फैल जाता,
विमल तर्क औ बुद्धि करते वहाँ थे॥

महर्षि ने था सुप्त भारत जगाया,
नये युग का सन्देश सबको सुनाया।
बुरी रीतियाँ जो बनाती थी जर्जर,
उन्हें काल के गाल में था पठाया॥

लिखे ग्रन्थ–जिनमें भरा ज्ञान अनुपम,
मिटाते थे अज्ञान का जो गहनतम।
छुड़ा देते जो जङ्ग, चमकाते चम–चम,
महर्षि का उपकार, हम पर नहीं कम॥

सहे कष्ट पथ से डिगे पर न रंचक,
जिन्हें देखकर कांप उठते थे वंचक।
बजाया जगत् बीच वेदों का डङ्का,
नहीं खींच पाई जिन्हें स्वर्ण–लङ्का॥

दयानन्द ऋषि की अमर है कहानी,
बड़ी प्रेरणाप्रद, बड़ी ही सुहानी।
सहे कष्ट, भय या कि बाधा न जानी,
लिखी शुद्ध 'सत्यार्थ' की पुण्य वाणी॥

महर्षि की तुमको कहानी सुनायें,
दिया दिव्य–सन्देश, सबको बतायें।
बुराई बताई, जो उसे त्याग दे हम,
बनें आर्य, सारे जगत् को बनायें॥

–चन्द्रपाल सिंह 'मयंक', कानपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है। (महर्षि दयानन्द)

वेदोपदेश–राष्ट्रीय जीवन की रक्षा के लिए प्रातः सायं अग्निहोत्र का अपरिहार्यता।

दीर्घतमाः ऋषि। रुद्रायः देवताः। भुरिगतिधृतिः छन्दः। षड्जःस्वरः। पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया जाता है।

ओ३म्– स्वाहा रुद्राय रुद्र हूतये स्वाहा संज्योतिषा ज्योतिः।
अहः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
मधुहुतमिन्द्रतमेऽअग्नावश्याम ते देव धर्म नमस्तेऽस्तु –मा मा हिंसीः॥ (यजु. ३८।१६)

सपदार्थान्वयः–हे स्त्रि! पुरुष वा! भवति! भवन्! वा (केतुना) प्रज्ञया (रुद्राय) जीवाय (रुद्रहूतये) रुद्राः=प्राणा जीवा वा हूयन्ते=स्तूयन्ते येन तस्मै (स्वाहा) (ज्योतिषा) प्रकाशेन (ज्योतिः) प्रकाशं (स्वाहा) (ज्योतिषा) सत्यविद्योपदेशरूपप्रकाशेन (सुज्योतिः) शोभनं विद्यादिसद्गुणप्रकाशं (अहः) दिनं (स्वाहा) (संजुषताम्) सेवताम्। (केतुना) संकेतरूप चिन्हेन (ज्योतिषा) मननादिरूपप्रकाशेन (सुज्योतिः) धर्मादिसद्गुणप्रकाशं (रात्रिः) रात्रिम् (स्वाहा) (जुषताम्) सेवताम्।

हे देव (विद्वान्) (धर्म) प्रकाशमान! येन (ते) तुभ्यम् (इन्द्रतमे) अतिशयेनैश्वर्यकारके विद्युद्रूपे (अग्नौ) पावके (मधु) मधुरादिगुणयुक्तं धृतादि (हुतम्) वन्हौ प्रक्षिप्तम् (अश्याम) प्राप्नुयाम। (ते) तुभ्यं (नमः, अस्तु) त्वम् (मा) माम् (मा) न (हिंसीः) हिंस्याः॥

भाषार्थ–हे स्त्री वा पुरुष! आप (केतुना) प्रज्ञा=बुद्धि के द्वारा (रुद्राय) जीव के लिए तथा (रुद्रहूतये) प्राणों वा जीवों की स्तुति के निमित्त के लिए (स्वाहा) सत्यवाणी से (ज्योतिषा) प्रकाश से (ज्योतिः) प्रकाश को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (ज्योतिषा) सत्यविद्या के उपदेश रूप प्रकाश से (सुज्योतिः) उत्तमविद्यादि शुभगुणों के प्रकाश को (अहः) प्रतिदिन (स्वाहा) सत्यवाणी से (संजुषताम्) सेवन करो। और (केतुना) संकेत रूप चिन्ह से तथा (ज्योतिषा) मनन आदि रूप प्रकाश से (सुज्योतिः) धर्मादि शुभगुणों के प्रकाश को तथा (रात्रिः) रात्रि को (स्वाहा) सत्यवाणी का सत्यक्रिया से (जुषताम्) सेवन करो। हे (देव) विद्वन्! (धर्म) प्रकाशमान! जिससे (ते) तेरे लिए (इन्द्रतमे) अत्यन्त ऐश्वर्यकारक विद्युत् रूप (अग्नौ) अग्नि में (मधु) मधुर आदि गुणों से युक्त (हुतम्) अग्नि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में होम किए घृत आदि को (अश्नाम) प्राप्त करते हैं; अतः (ते) तेरे लिए (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो, तू (मा) मुझे (मा, हिंसीः) हिंसित मत कर॥

भावार्थः—मनुष्यैः प्राणानां जीवनस्य समाजस्य च रक्षणाय विज्ञानेन कर्माण्यहोरात्रश्च युक्त्या सेवनीयः। प्रतिदिनं प्रातः सायं कस्तूर्यादिसुगन्धयुक्तं घृतं वन्हौ हुत्वा वाय्वादिशुद्धिद्वारा नित्यंमोदनीयम्।

भावार्थः—मनुष्य प्राण, जीवन और समाज की रक्षा के लिए विज्ञान से कर्मों और दिन रात का युक्ति से सेवन किया करें। प्रतिदिन प्रातः सायं कस्तूरी आदि सुगन्धि से युक्त घृत का अग्नि में होम करके वायु आदि की शुद्धि के द्वारा नित्य हर्षित रहें॥

'दयानन्द—यजुर्वेद भाष्य—भास्कर' से उद्धृत
व्याख्याता—श्री आचार्य सुदर्शनदेव शास्त्री

□□□

महर्षि की सार्वभौम शाश्वत घोषणा

आर्यवरशिरोमणि महाशय, ऋषि—महर्षि, राजे—महाराजे लोग बहुत—सा होम करते और कराते थे। जब तक होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाये।

—सत्यार्थ—तृतीय समु.

विचार—मन्थन

'सर्वहितकारी' आर्यप्रतिनिधि सभा हरयाणा का प्रमुख पत्र है और यह अनवरत गति से वैदिकधर्म के प्रचार व प्रसार में लगा है। एतदर्थ सम्पादक एवं सभा के अधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं।

२४ सितम्बर, १९९२ के इस पत्र में सृष्टि संवत् के विषय में उत्पन्न विवाद को सुलझाने का प्रयास करते हुए माननोय वानप्रस्थी श्री महावीर जी का एक लेख छपा है। उससे पूर्णतः मैं सहमत नहीं हूँ क्योंकि महर्षि के लेख से उसका विरोध है। आशा है लेखक अपने लेख पर पुनः विचार करेंगे।

इस लेख में लिखा है—"आर्यभाषा में एक हजार (1000) (चतुर्युगियों का वर्णन) लक्षणयुक्त वर्णन है, अभिधा नहीं। अभिधा मानने से चाहे जड़—सृष्टि की छह चतुर्युगी पहले जोड़कर (१,९६,०८,५३,०९३) मानों या सन्धि लगाकर (१,९७,२९,४९,०९२) मानों, दोनों ही प्रकार से गणना के मिजाज दूर चला जाता है।"

विमर्श—(क) प्रथम तो छह चतुर्युगी जोड़कर १,९६,०८,५३०,९३ नहीं बनते, इससे कहीं अधिक बनेंगे।

(ख) दूसरी बात यह विचारणीय है—अभिधा तथा लक्षणा की प्रवृत्ति कहाँ और कैसे की जाती है? अभिधा से अर्थ की संगति न होने पर लक्षणा से अर्थ जाता है। जैसे-एक व्यक्ति केले बेचता हुआ कहता है—मलाई हो रहे हैं केले। इस को सुनकर मनीषी पुरुष विचार करता है—केले तो मलाई नहीं हो सकते। अतः केले मलाई की भांति कोमल, मधुर आदि गुण वाले हैं, ऐसा समझ लेता है। परन्तु सृष्टि संवत् की गणना में तो अभिधा से पूर्णतः संगति है।

(ग) महर्षि द्वारा परिगणित सृष्टि—संवत् ऐतिहासिक है और इतिहास मानवोत्पत्ति के बाद का ही संभव है, उससे पूर्व जड़—सृष्टि रचना से नहीं।

(घ) और एक हजार चतुर्युगियों की पूर्ति के लिए महर्षि ने ९९४ चतुर्युगियाँ ऐतिहासिक मानी है और शेष समय सृष्टि रचना में एतदर्थ महर्षि का निम्न लेख द्रष्टव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब सृष्टि का समय आता है–तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है।"

–स०प्र० अष्टम समु०

अतः महर्षि की पूर्णतः यही मान्यता है कि सृष्टि रचना में जो करोड़ों वर्ष का समय लगता है, वह सृष्टि का ही है। महर्षि ने सृष्टि का लक्षण भी ऐसा ही किया है।

सृष्टि उसको कहते हैं–जो पृथक द्रव्यों का ज्ञानयुक्ति पूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना। (स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश)

इसलिए सृष्टि–संवत् में, जो महर्षि ने परिगणित किया है, एक हजार चतुर्युगियों की पूर्ति न देखकर सन्धि काल जोड़ने की मिथ्या कल्पना करना ही निरर्थक है।

(ङ) और लेखक ने महर्षि लिखित सृष्टि–संवत् तथा मिथ्या–सन्धियुक्त संवत् की समानता के स्तर देकर भी न्याय नहीं किया है। क्योंकि सत्य भी सत्य है और असत्य भी सत्य है, ऐसा कहना विद्वानों को अभिनन्दनीय कदापि नहीं हो सकता।

–राजवीर शास्त्री

□□□

उल्टा चोर कोतवाल को दण्डे

सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद पर आसीन, आर्यजगत में अपयश भाक श्री स्वामी आनन्द बोध सरस्वती महर्षि–दयानन्द के मन्तव्यों को न तो जानते हैं और न ही मानते हैं। इसीलिए महर्षि–दयानन्द की मंचों पर खड़े होकर और एड़ी उठा उठाकर जय–जयकार ही करने का मिथ्या दम्भ करते रहते हैं। इतना ही नहीं वे महर्षि के लेखों का अनुसरण करने वालों को धमकाते भी रहते हैं। इसी बात का एक नमूना देखिए, जो कि हरियाणा सभा के प्रमुख–पत्र के सम्पादक जी को लिखा और उन्होंने उत्तर में लिखा है।

सेवा में–

पत्र संख्या–६२७२

स्वामी आनन्द बोध सरस्वती
प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली।
दिनांक–१०.९.९२

माननीय प्रधान जी,

सादर नमस्ते! आपका २.९.९२ का पत्र संख्या १२३४ , मन्त्री के नाम का मिला जिसमें अपने जानना चाहा है कि सार्वदेशिक धर्मार्थसभा की मान्यताओं के विरुद्ध आप सृष्टि–संवत् कैसे लिख रहे हैं।

इसके उत्तर में आप से जानना चाहता हूँ कि आप महर्षि–दयानन्द सरस्वती द्वारा 'सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' में लिखित वेदों की और जगत की उत्पत्ति में हुए काल १,९६,०८,५२,९७६ वर्ष से विपरीत सार्वदेशिक पत्र तथा सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर सृष्टिसंवत् किस आधार पर लिख रहे हैं?

धर्मार्य सभा के अल्पज्ञ पण्डितों की मान्यता महर्षि–दयानन्द सरस्वती की मान्यता के विपरीत होने से स्वीकार्य कैसे हो सकती है? यदि आप चाहें तो इस विषय में विद्वानों से शास्त्रार्थ अथवा विचार–विमर्श करवा सकते हैं।

"व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणमिति।" उत्तर की प्रतीक्षा में।

भवदीय–
–वेदव्रत शास्त्री
सम्पादक 'सर्व हितकारी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम पाठकों का ध्यान इस विषय में आकृष्ट करना चाहते हैं—सृष्टि संवत् के विषय में २० वर्षों से निरन्तर हम सभा के अधिकारियों को आह्वान करते रहे हैं कि आप इस विषय में खुला विचार—विमर्श कराने का साहस करें। परन्तु मिथ्या पक्ष की पुष्टि में धर्मार्य सभा का कोई भी विद्वान् साहस नहीं कर सका। और जो भी सदस्य सत्य को सत्य कहने में लेश मात्र भी साहस करने को सन्नद्ध हुआ। उसे ही कान पकड़कर धर्मार्य सभा से बहिष्कृत कर दिया। इसका धर्मार्य सभा नाम भी अत्यन्त लज्जास्पद है। क्योंकि—

'न सा सभा यत्र न सत्यमस्ति'

□□□

साहित्य—समीक्षा

(१) स्वामी दयानन्द का आर्थिक चिन्तन

लेखक : श्री डॉ० रामकृष्ण आर्य

प्रकाशक : आर्य परिवार प्रकाशन समिति, ४ भ २७ विज्ञानकार कोटा (राजस्थान)

प्राप्ति स्थानः वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राजस्थान)। मूल्य : १२० रुपए।

बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं कि जो महर्षि—दयानन्द के आर्थिक चिन्तन के विषय में कुछ जानकारी रखते हैं। अन्यथा महर्षि—दयानन्द को १९वीं शताब्दी के सुधारकों में ही एक महान सुधारक के रूप में अधिकतर जाना जाता है। परन्तु महर्षि के ग्रन्थों का गम्भीरता से स्वाध्याय करने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि वे सामाजिक अर्थचिन्तन में भी बहुत सजग थे। वे स्वस्थ समाज में एक सशक्त व्यवस्था के महान् पक्षधर थे। वे धार्मिक दृष्टि के साथ—साथ आर्थिक दृष्टि से भी समृद्धता के प्रबल पोषक थे। किन्तु साम्यवादी कार्लमार्क्स की भांति धर्महीन आर्थिक समृद्धि के घोर विरोधी थे। विदेशी पादाक्रान्त भारत की गरीबी को देख कर महर्षि इतने दुःखी हो जाते थे कि अनेक बार एकान्त में बिल—बिलाकर अश्रुधारा बहाते रहते थे। जो दृढ़—हृदय दयानन्द अपने पारिवारिक चाचा व भगिनी की मृत्यु को देखकर व्याकुल नहीं हुआ, वही एक गरीब वैधव्य का जीवन बिताती असहाय विधवा को, जो कफन के अभाव में अपने दिल के टुकड़े को गंगा में प्रवाहित करके जा रही थी, देखकर फूट—फूटकर रो पड़ा था। उस क्रान्तिदर्शी—महर्षि ने गरीबी के कारणों एवं समृद्धि के उपायों का अपने ग्रन्थों में गहन—चिन्तन किया है। महर्षि—प्रदर्शित सामाजिक आर्थिक चिन्तन में शाश्वत शान्ति, स्वर्गीय—सुख एवं मानवीय स्नेहातिरेक की धारा बह रही है, तो कार्लमार्क्स की पद्धति मानसिक व बौद्धिक अशान्ति एवं रक्त सिंचित होने से समता के भावों से पूर्ण होते हुए भी थोथी विकलांग ही दिखाई देती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ विद्वान् लेखक का पी.एच.डी. के लिए लिखा एक शोधग्रन्थ ही नहीं है। इसमें महर्षि की आर्थिक-चिन्तन के बिखरे अमूल्य मोतियों को माला की भांति संग्रह किया गया है। यह आर्थिक—दृष्टि से डगमगाते बड़े-बड़े अर्थशास्त्रियों की आंखें खोलने वाला ग्रन्थ है। इसमें तेरह अध्याय हैं। जिनमें अर्थ के उत्पादन, अर्थ के उपभोग, अर्थ के विनियम व वितरण आदि विषयों पर एक व्यवस्थित रूप में दिग्दर्शन कराया गया है। हम विद्वान् लेखक के गहन अध्ययन एवं भूरिश्रम के लिए जहां कोटिशः साधुवाद करते हैं, वहाँ उनके चिर—जीवन एवं उत्तम स्वास्थ्य की भी कामना करते हैं।

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्ध्या–भास्कर

लेखक : धर्मविज्ञानमुनि (आचार्य धर्मधवीर विद्यालंकार) २/२९, आर्यवानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर
प्रकाशक : स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोध संस्थान, दयानन्द मठ, दीनानगर (पंजाब)
मूल्य : तीस रुपए (छात्रों के लिए पन्द्रह रुपए)

वर्तमान समय में ईश्वर भक्ति के क्षेत्र में जितनी अधिक विविधता देखने में आ रही है। उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। ईश्वर के सच्चे स्वरूप के विषय में पूर्णतः ज्ञान न होने, उपासना की ठीक पद्धति को न जानने एवं उपासक को अपने कर्मों का ही ज्ञान न होने से उपास्य इष्टदेव, उपासक व उपासना पद्धतियाँ ही भ्रान्तियों से भरपूर बनी हुई हैं। आधुनिक युग के महान ईश्वर भक्त, परम आस्तिक महान् योगी, तपस्वी एवं महान् साधक ने इस परिस्थिति को पूर्णतः समझकर एक पूर्ण तथा लक्ष्य तक पहुंचने को परमसहायक उपासना की पद्धति बनाई जिसे 'सन्ध्या' कहते हैं। किन्तु महर्षि के अनुयायियों ने भी उस पद्धति को अपनाया अवश्य, किन्तु उसके लाभों से वे भी प्रायः वंचित ही रहे। इसका मुख्य कारण है–सन्ध्या–पद्धति के मन्त्रों का केवल रटन और आचरण का अभाव सन्ध्या के मन्त्रों के अर्थ–चिन्तन के अभाव में जीवन भर सन्ध्या करते–करते व्यतीत हो गया, किन्तु भावों से खाली ही रहे।

विद्वान् लेखक ने जीवन–भर के गहन–स्वाध्याय साधना एवं पठन–पाठन से सन्ध्या के मन्त्रों के विषय में जितना और जैसा समझा, उसे अत्यन्त सरल व सुबोध बनाकर इस पुस्तक में संजोया है, वह अत्यन्त उपयोगी होने से प्रशंसनीय है। प्रत्येक मन्त्र के स्थान व पदार्थ को बहुत अच्छी तरह समझाने का पूर्णतः प्रयास किया गया है। मन्त्रों के अर्थो में जो जो अन्तर्निहित भाव हैं, उनका मन्थन करके बहुत ही शिक्षाप्रद हृदयग्राही दोहन किया गया है। सन्ध्या के प्रमुख गायत्री मन्त्र की व्याख्या तो प्रत्येक ईश्वर भक्त को मनन करनी ही चाहिए। प्राणायाम की विशद व्याख्या, अघमर्षण, मनसापरिक्रमा व उपस्थान मंत्रों की सुसंगत व्याख्या पठनीय ही है। लेखक ने महर्षि द्वारा लिखित सन्ध्या की व्याख्या लिखकर 'सन्ध्या' का महत्त्व कई गुणा बढ़ा दिया है। एतदर्थ लेखक हार्दिक साधुवाद के पात्र हैं।

प्रार्थना और उपासना में चौली–दामन का साथ है। जिस चीज की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, उसके लिए पुरुषार्थ करना भी आवश्यक है।

–राजवीर शास्त्री, सम्पादक

सत्संगति से लाभ

बुद्धि की जड़ता हरती और चित्त को प्रसन्न करती है।
वृद्धि करे सम्मान ज्ञान में, सत्य का संचन करती है।।
गन्ध फैलाती दिग्दिगन्त में, फैलाकर पुण्य कीर्ति।
पाप–ताप को दूर भगाकर, अज्ञान–तम को हरती।।
धन सन्तोष को पाकर के, तृष्णा–आशा भरती
दुर्लभ मानव–जीवन को, 'मरुत' सफल करती।
जाके जीवन में सत्संग नहीं, उनसे बोझ बने धरती।।

सत्यदेव प्रसाद आर्य 'मरुत', प्रेम नगर, नेमदारगंज नवादा

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है

विदेशी भाषा का विद्यार्थी होना बुरा नहीं, पर अपनी भाषा सर्वोपरि है। कोई भी देश सच्चे अर्थों में तब तक स्वतन्त्र नहीं, जब तक वह अपनी मातृभाषा में नहीं बोलता। अतः राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।

महात्मा गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल आश्रम आमसेना (कालाहाण्डी) के लिए अपील

इस वर्ष २८ से ३१ दिसम्बर, १९९२ को गुरुकुल आश्रम आमसेना का रजत जयन्ती महोत्सव अत्यन्त समारोह के साथ मनाया जायेगा। यह जयन्ती केवल एक उत्सव न रहकर आर्य समाज वैदिक धर्म तथा देशों की उन्नति के लिए एक प्रेरणा प्रद समारोह बने आर्य जगत में नयी आशा का संचार हो उसके लिए आप सबका हार्दिक आशीर्वाद एवं स्नेह सहयोग चाहिए। यह गुरुकुल गत २५ वर्ष से असहाय, निर्धन, वनवासियों की सेवा में लगा हुआ है। अब तक अनेक सुयोग्य स्नातक यहां से निकल कर विभिन्न कार्यों में संलग्न हैं। सत्यार्थ प्रकाश, भाष्य भूमिका आदि पचासों ग्रन्थ उड़िया भाषा में प्रकाशित हो चुके हैं। २४ हजार से अधिक विदेशी मत में गए हमारे बन्धु पुनः शुद्ध होकर वैदिक धर्म में आ चुके हैं।

इस प्रकार यह गुरुकुल वैदिक धर्म की रक्षा का विशेष स्तम्भ बना हुआ है। ये सब कार्य उत्तरोत्तर बढ़ते जाए, यहाँ के अधिकारी निश्चिन्त होकर इस उद्देश्य साधन में लगे रहें। यह गुरुकुल मध्यप्रदेश एव उड़ीसा के वनवासी क्षेत्रों में वैदिक धर्म की रक्षा एवं प्रचार का सुदृढ़ केन्द्र बने यहाँ विद्यालय-छात्रावास, चिकित्सालय आदि भवनों की सुव्यवस्था हो जाये इसके लिए २५ लाख रुपए संग्रह की योजना बनाई है। आशा है देश धर्म प्रेमी, उदार दानी महानुभाव इस महत्कार्य में सहयोग देकर पुण्य एवं यश के भागी बनें गुरुकुल को दिया गया दान आय कर से मुक्त है।

निवेदक
धर्मानन्द सरस्वती
आचार्य

स्पष्टीकरण

'दयानन्द सन्देश' सितम्बर, १९९२ के अंक में पृष्ठ ४ पर श्री वेदप्रकाश 'श्रोत्रिय' नामक महानुभाव के नाम से यह समाचार छपा है-"दारानगर गंज में प्रो० रत्नसिंह जी ने महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित आर्य समाज के प्रथम नियम को गलत बताकर बड़ा दुस्साहस किया है। क्या मान्य-विद्वान् इस विषय पर संवाद (शास्त्रार्थ) कर सकेंगे?"

मेरा कथन है कि मैंने ऐसा कहा ही नहीं, अतः शास्त्रार्थ की आवश्यकता ही नहीं। वास्तविकता इस प्रकार है-निगमाश्रम दारानगर गंज (बिजनौर) के वार्षिकोत्सव पर १४ जुलाई, १९९२ को प्रातःकालीन कार्यक्रम के अवसर पर अपने प्रवचन में मैं आर्य समाज के नियमों के सार्वभौमिकता पर अपने विचार प्रस्तुत कर रहा था। उसी क्रम में मैंने कहा कि प्रथम नियम में जो यह लिखा है-"विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।" यह वैदिक सिद्धान्त विरुद्ध है। ईश्वर और जीवात्मा भी पदार्थ है और वैदिक सिद्धान्तानुसार ये अनादि और नित्य हैं। आर्य समाज के इस नियम के अनुसार इनका भी निमित्त कारण ईश्वर है। क्या यह बात सिद्धान्त विरुद्ध नहीं? यह कहकर मैंने कहा कि आप चौंकिए मत। यह पूर्व पक्ष है। इसका समाधान यह है कि परमेश्वर कारण रूप पदार्थ नहीं बल्कि कार्यरूप पदार्थों का निमित्त कारण है। यहाँ पदार्थ से अभिप्राय कार्य रूप पदार्थ है। ईश्वर और जीव कार्य रूप नहीं है। अतः परमेश्वर अपना और जीव का निमित्त कारण नहीं हो सकता। इस प्रकार बड़े रोचक ढंग से समझाते हुए मैंने कहा कि आर्य समाज के प्रथम नियम में कोई सिद्धान्त विरुद्ध बात नहीं।

मुझे ऐसा लगता है कि श्री वेदप्रकाश 'श्रोत्रिय' स्वयं तो मेरे प्रवचन में उपस्थित थे नहीं। जिस सज्जन ने इन्हें समाचार दिया वे पूर्वपक्ष का अभिप्राय नहीं समझ पाये।

प्रो. रत्न सिंह
बी-२१, गान्धी नगर, गाजियाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामधेनु, अमृत भाषा–संस्कृत

इन्द्रजित 'देव'

अभी केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्रालय ने संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भाषाओं के विकास के लिए एक पृथक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग स्थापित करने का निर्णय किया है। प्रस्तावित आयोग का मुख्य उद्देश्य संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भाषाओं का उत्थान करना व गुरु शिष्य परम्परा को फिर से आरम्भ करना होगा। विशेषज्ञ समिति ने संस्कृत व अन्य प्राचीन भाषाओं की स्थिति पर गहरा दुःख व चिन्ता व्यक्त की है। समिति ने कहा है कि संस्कृत को जर्मनी व अमरीका में कम्प्यूटर में प्रयोग के लिए सर्वश्रेष्ठ भाषा घोषित किया गया है परन्तु लज्जा की बात है कि भारत में इस ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा। संस्कृत और अन्य प्राचीन भाषाओं का साहित्य या तो पुस्तकालयों में अनदेखा पड़ा है या फिर विद्वानों के निजी संग्रह में है। इन भाषाओं का बहुत सा दुर्लभ साहित्य अन्तर्राष्ट्रीय काला बाजार में है। यह कितनी लज्जा की बात है कि कोई अन्य देश इन भाषाओं के लिए काम शुरु करे और हम देखते ही रह जाएँ।

उक्त रिर्पोट के अनुसार संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है। अभी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक "फाडलर्स हाउलर्स" पुस्तक के लेखक श्री पी.एन. ओंक ने दावा किया है कि पूरी अंग्रेजी भाषा संस्कृत से बनी है। "हसबैंड" शब्द "हस्तबन्ध" से निकला है, आदि।

प्रत्येक भाषा अपनी परम्परा से उत्पन्न हुई है। एक पूर्ववर्ती भाषा से ही एक परवर्ती भाषा उत्पन्न होती है। उदाहरण के रूप में "वयम्"–इस संस्कृत शब्द में 'यम्" को सम्प्रसारण होकर 'वी' यह शब्द उत्पन्न हुआ। इसी तरह "पितर" से पैतर और फिर 'पादर', 'यूयम' व 'आदिम' से 'आतम' इत्यादि शब्द बने हैं। ऐसे अपभ्रंश कुछ नियमों के अनुकूल होते हैं और कुछ अपभ्रंश प्रमाद, आलस्य, देश–काल–भेद से होते हैं। एक मूलभाषा से व्यवहार में भेद बढ़कर भिन्न–भिन्न भाषा उत्पन्न हुई।

संस्कृत भाषा में दिव्य आनन्द है। ऐसी मधुर, मृदु व व्यापक सब भाषाओं की जननी, ऐसी दूसरी कौन सी भाषा है? यह भाषा एक ही देश की भाषा क्यों होनी चाहिए? इसका उत्तर यह है कि यह भाषा एक ही देश की नहीं है। जहां–जहां यह पुहंची, वहीं के विद्वानों को आकर्षित करती जाती है। वर्तमान रूप में देशों की जो स्थिति है, वह प्राकृतिक व ईश्वर कृत नहीं है। "कुदरत ने तो बख्शी थी हमें एक धरती, हमने कहीं भारत, कही ईरान बनाया।" इसके विपरीत ईश्वरकृत वैदिक भाषा सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यमात्र को वेदों के माध्यम से प्राप्त हुई। बहुत देर तक यही भूगोल में प्रचलित रही–मौखिक रूप में। पीढ़ी–दर–पीढ़ी कण्ठस्थ वैदिक ज्ञान चलता रहा। इसीलिए वेद को श्रुति भी कहते हैं क्योंकि सुन–सुनाकर ही यह ज्ञान व भाषा नस्ल–दर–नस्ल आगे बढ़ी। महाराजा इक्ष्वांकु के काल में वेद लिखित रूप में मनुष्यों के प्रमाद व आलस्य के कारण सुरक्षित रखे गए। वैदिक भाषा कालान्तर से लौकिक नियमों में बंधी–उसका संस्कार किया गया। अतः वही संस्कृत कहलाई। "संस्कृत" शब्द स्वयं यह अर्थ दे रहा है–जिसको संस्कारित किया गया हो।

संस्कृत न एक देश से बन्धी है, न किसी एक जाति से तथा न ही एक पन्थ, मत या सम्प्रदाय से। चीन व तुर्किस्तान तक संस्कृत के शिलालेख मिले हैं, महमूद गजनवी अपने सिक्कों पर संस्कृत लिखवाता था। पूर्वी एशिया के देशों व जापान में भी संस्कृत के शिलालेख मिले हैं। इस्लामी देश होते हुए भी मलयेशिया व इण्डोनेशिया रामायण व महाभारत को अपनाए हुए हैं। थाईलैंड बौद्ध होते हुए भी संस्कृत के प्रति अनुरक्त हैं। जर्मनी में संस्कृत पुस्तकालय है और जर्मनी रेडियो के कोलोने केन्द्र से संस्कृत समाचार–बुलेटिन प्रसारित होते हैं। भारत में तो ऐसा प्रसारण बहुत बाद में हुआ!

संस्कृत के अपभ्रंश के रूप में एवं स्वरों व व्यञ्जनों के उच्चारण के थोड़े–थोड़े भेद के साथ विश्व की प्रायः समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं का प्रादुभाव एवं प्रचलन हुआ। अन्य भाषाओं के विकास ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। अंग्रेजी ही नहीं, चीनी, जापानी, फारसी, मिस्री, यूनानी आदि भाषाओं में संस्कृत के शब्दों की प्रचुरता है या संस्कृत के शब्द अपभ्रंश होकर उन भाषाओं में गए हैं। कृपया निम्न तालिका का प्रमाण के रूप में अवलोकन कीजिए:–

संस्कृत	अरबी
अन्तकाल	इन्तकाल
कीतन	किरतैअन
लोहित	लहू
सरकत	हरकत
मा	मा
गरद	शिरत
अजहार	इजहार

संस्कृत	फारसी
कर्पूर	काफूर
तारा	सितारा
दन्त	दन्द
मातर	मदर
अष्ट	हश्त
बन्ध	बन्द
शर्करा	शकर

संस्कृत	अंग्रेजी
तारा	Star
शर्करा	Sugar
दन्त	Dent
कर्पूर	Camphor
मूष	Mouse
मातर्	Mother
तत्	That
जय कृष्ण	Jacson
पथ	Path
स्वेद	Sweet
ऋतु	Right
गृद्ध	Greed
नाम	Name
भ्रष्ट	Worst

संस्कृत	अंग्रेजी
दशमलव	Decimal
तरु	Tree
मनु	Mon
हृत	Heart
गो	Cow
त्रि	Three
मध्य	Mid
तनु	Thin
दुहितर्	Daughter
द्वौ	Two
कनिष्टबल	Coustable

संस्कृत	फारसी
आयः	आब
कोटपाली	कोतवाली
सप्त	हप्त
सिन्ध	हिन्द
कोटपाल	कोतवाल
प्रितृ	पिदर
मातृ	मादर
भातृ	बिरादर

संस्कृत	अवेस्ता
पिता	पिता
अनु	अनु
ददामि	ददामि
हप्त	सप्त
सत्यम्	हर्थ्यम्
भूमि	बूमि
जस्त	हस्त
असुर	अहुर
असि	अंहि
बहिष्ठ	बहिश्त
धामसु	दामोहु
स्वयनम्	हवफनम्
पुत्र	पुथ
भ्राता	ब्राता
यदि	येजी
अहम्	अजेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त भारतीय भाषाओं के लिए संस्कृत रिजर्व बैंक का काम कर रही है। ये भाषाएँ जब चाहती हैं, जब आवश्यकता पड़ती है, संस्कृत भाषा से तत्सम या तद्भव शब्द लेकर काम चला लेती हैं। वर्तमान समय में भारत के विभिन्न प्रदेशों में बोली जाने वाली भाषाओं में संस्कृत शब्दों का अनुपात पर्याप्त मात्रा में हैः–

1. बंगला, उड़िया व असमिया	=	80 प्रतिशत
2. हिन्दी	=	60 से 70 प्रतिशत
3. गुजराती	=	60 से 70 प्रतिशत
4. मराठी	=	60 से 70 प्रतिशत
5. तमिल	=	50 प्रतिशत
6. मलयालम्, तेलेगु, कन्नड़	=	50 से 70 प्रतिशत

इन भाषाओं में विशिष्ट शब्दों का व्यवहार किया जाता है, तब संस्कृत के शब्द–अनुपात की मात्रा प्रथम वर्ग में 90%, दूसरे, तीसरे व चौथे वर्ग में 50%, पांचवे वर्ग में 60% तथा छठे वर्ग में 90% तक हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि उर्दू के अतिरिक्त सभी भारतीय भाषाओं का शब्द भण्डार संस्कृत के ही आधार पर है। अतः संस्कृत को आधार मानकर हम देश में राष्ट्रीय एकता व भावनात्मक दृढ़ता स्थापित कर सकते हैं। संस्कृत राष्ट्र शरीर में प्रवाहित रक्त ही है।

संसार के सभी वैज्ञानिकों व भाषा–शास्त्रियों ने संस्कृत को सर्वश्रेष्ठ रूप में कमप्यूटर के लिए उपयोगी स्वीकार किया है। इसके विपरीत लोकतन्त्र के आधार पर बनी सरकारें–राष्ट्रीय व प्रान्तीय–अपने अतीत के गौरवज्ञान के बिना व भविष्य की अस्मिता की योजना के बिना शिक्षा–नीति में संस्कृत को ही मिटाने के लिए प्रयत्नशील हैं। इससें जन मानस में न संस्कार बचेंगे, न गौरव व न ही मानवीय ऊर्जा। ऐसी अवस्था में प्रत्येक राष्ट्रवादी का कर्त्तव्य है कि वोट के भिखारी इन नेताओं को सुनाकर सिंह गर्जना करें:–

बागवानों ने अगर अपनी रविश नहीं बदली,
पत्ता पत्ता इस चमन का बागी हो जाएगा।

आवश्यकता आज इस बात की है कि संस्कृत को व्यवहारिकता में जोड़ा जाए। पं. क्षितीश वेदालंकार के शब्द उधार लेकर कहें तो यूं कहना होगा यदि किसी दिन ऐसी स्थिति आ जाए कि अंग्रेजी की बजाय संस्कृत से अधिक लाभ मिलने लगे तो हमारा अर्थ–लोलुप समाज को महत्त्व आज अंग्रेजी को दे रहा हैं, वही महत्व संस्कृत को देने लग जाएगा। असल में न उसको संस्कृत से वास्ता है, न अंग्रेजी से वास्ता है, उसको तो केवल अर्थ से वास्ता है। समाज की ऐसी स्थिति स्वसंस्कृत प्रेम से विहीनता की द्योतक है, जो कि स्वाभिमानी देशभक्तों की दृष्टि में अत्यन्त निन्दनीय है।

□□□

वैदिक वर्णव्यवस्था का औचित्य

हमारे प्राचीन काल के ऋषि–महर्षियों ने 'श्रम–विभागरूप' वर्णाश्रम व्यवस्था इसलिए चलायी थी कि–समाज के सब व्यवहार सुलभता एवं सरलतापूर्वक होते जाएँ। किसी एक विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग पर ही सारा बोझ न पड़ने पाए और मानव समाज का सभी दिशाओं से संरक्षण व पोषण सम्यक्रूपेण होता रहे। जिसका अलंकारिक वर्णन वेद ने इस प्रकार किया हैः–

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत।।"

(यजुर्वेद–३१।११)

अर्थात समाजरूपी शरीर का 'ब्राह्मण' 'मुख' है, क्षत्रिय 'बाहु' है, पेट 'वैश्य' है और शूद्र 'पैर' है।

इस दृष्टान्त का सत्य सम्मत तात्पर्य पं. सिद्धगोपालजी ने इस प्रकार किया है–शरीर के अंगों में 'मुख' ज्ञानप्रधान अंग हैं, क्योंकि 'मुख' के सन्निकट ही नाक, कान, आँख, जिह्वा, आदि ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा सर्दी–वर्षादि ऋतुओं में सारा शरीर वस्त्रों से ढक लिया जाता है। परन्तु 'मुख' सदैव खुला रहता है और कष्ट सहन करते रहता है। एवं मुख जो भी ग्रहण करता है, वह अपने पास नहीं रखता, दूसरे को दे देता है। अतः जिस व्यक्ति में ज्ञान, तप और त्याग है–वह 'ब्राह्मण'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अथवा जिसमें शम, दम, तप, पवित्रता, शान्ति कोमलता, ज्ञान–विज्ञान और अस्तिकता है, वह व्यक्ति 'ब्राह्मण' है।

बाहुओं का 'क्षत्रिय' कहने का तात्पर्य यह है कि– बाहु, बल–प्रधान होते हैं। जब कोई शरीर पर आक्रमण होता है, तो हाथ सबसे पहले शरीर की रक्षा करते हैं। अतएव जो न्यायपूर्वक अपने बल से प्रजा की रक्षा करें, वह 'क्षत्रिय' है। अथवा जिसमें वीरता, धीरता, दक्षता, युद्ध से पलायन न करने का स्वभाव तथा दानशीलता है, वह व्यक्ति 'क्षत्रिय' है।

उदर (पेट) को 'वैश्य' कहने का तात्पर्य यह है कि– उदर सारा भोजन अपने अन्दर एकत्र करता है और फिर उसका ठीक–ठीक पाचन करके प्रत्येक अंग को यथायोग्य हिस्सा देता है। अतः जो धन को एकत्र करके मानव समाज में यथोचित वितरण करता है, वह 'वैश्य' है। अथवा जो कृषि, गोरक्षा, दान और वाणिज्य–व्यवस्था में निपुण है, वह व्यक्ति 'वैश्य' है।

चरणों (पैरों) को 'शूद्र' एतदर्थ कहा गया है कि–पैर प्रथम तो सारे शरीर का बोझ उठाए हुए हैं। दूसरे, परिश्रम करके सिर पेट हाथ आदि अंगों को उसी स्थान पर पहुंचा देते हैं, जहां जाना होता है। उनके पास 'ज्ञान' 'बल' और 'धन' तो है नहीं, जो उससे कार्य कर सकें। उनके समीप परिश्रम करने की शक्ति है, इससे वे समाजरूपी शरीर की सेवा करते हैं। अर्थात् जो केवल अपने 'शरीर' से सेवा–कर्म करने में निपुण है, वह व्यक्ति 'शूद्र' है।

अथवा (१) जो वर्ग मुख–द्वारा अर्थात् ज्ञान–विज्ञान विशेष–द्वारा सत्यान्वेषण कर, परितः समाज का कल्याण एवं विकास करने में प्रयत्नशील रहे। वे 'ब्राह्मण' वर्ग से विभूषित समझे जाएं।

(२) जो वर्ग बाहु के द्वारा अर्थात् बाहु–बल से सर्वतः समाज को सुरक्षा प्रदान करने में तत्पर रहा करे तथा सामाजिक शक्ति की सतत सम्वृद्धि करने में कटिबद्ध रहा करे–वे 'क्षत्रिय' वर्ग से विभूषित समझे जाएं।

(३) जो वर्ग उदर पूर्ति करने में अर्थात् अन्नादि द्वारा समाज को भरण पोषण करने में अथवा ऊर्जा–प्रदान करने में सतत संलग्न रहा करे–वे 'वैश्य' वर्ग से विभूषित समझे जाएँ।

(४) और जो सर्वदा निष्कपट भाव से समाज की सेवा शुश्रूषा (जो कि एक उत्तम कर्म है) करने में अथवा सामाजिक प्रदूषण को सतत् सरलतापूर्वक शुद्धता–प्रदान करने में संलग्न रहा करे–वे 'शूद्र' (शुद्ध) वर्ग से विभूषित समझे जाएँ।

उक्त वेद मन्त्र में समाज–निर्माण सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्देश यह है कि– चारों वर्णों को परस्पर वैसा ही प्रेम, सहानुभूति और पूर्ण सहयोग होना चाहिए जैसा कि मनुष्य शरीर के मुखादि चारों अंगों में परस्पर है। जरा सोचें, पैरों में कांटा चुभने पर सारा शरीर दुःखी हो जाता है और मस्तिष्क, नयन, बाहु आदि से सहयोग कर कष्ट युक्त होता है।

प्रत्येक मनुष्य में मुख, बाहु, उदर और जंघाओं की विद्यमानता में–ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व और शूद्रत्व विद्यमान है। एतदर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने पैरों की उपस्थिति में शूद्रत्व से खाली नहीं हो सकते और न ही शूद्र अपने मुख, बाहु, पेट के होते हुए ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व और वैश्यत्व से शून्य हो सकते हैं।

अर्थात् मनुष्य शरीर में सामान्य तथा चारों वर्णों के साधन विद्यमान हैं परन्तु, विशेषरूप से जो व्यक्ति अपने विशेष योग्यता और रुचि के अनुसार जिस वर्ण (पेशा वा आजीविका) का काम करता है वह उसी वर्ण का कहलाता है।

वेद में तो क्रमशः पढ़ाना, उपदेश करना–ब्राह्मण के, प्रबन्ध और रक्षा करना–क्षत्रिय के, व्यापार करना–वैश्य के तथा तप वा श्रम से सिद्ध होने वाले सारे काम शूद्र के बतलाए हैं और ये सारे उक्त कार्य उन सबकी आजीविका के साधन हैं।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि–'ब्राह्मण' ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धन से और शूद्र सेवा से मनुष्य-समाज की सेवा करे–यही वर्णों का वर्णत्व है। अतः स्पष्ट है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि-कर्म (पेशा) के द्वारा एक वर्ण से दूसरे वर्ण में चला जाना संभव है। कोई जन्म का बन्धन नहीं। अपने-अपने कर्तव्य-कर्मों में सब बड़े हैं। कोई विशेष वर्ण ऊँच या नीच नहीं है, बल्कि सब वर्णों में आचार-सम्पन्न ऊँच और आचार-हीन नीच है। वैसे तो स्वतन्त्र रूप से-ब्राह्मण ब्राह्मणों में, क्षत्रिय क्षत्रियों में, वैश्य वैश्यों में और शूद्र-शूद्रों में योग्यतानुसार लघु-श्रेष्ठ हो सकते हैं।

मनु ने दस्यू को नीच व दण्डनीय माना गया है न कि शूद्र को तभी तो कहा गया है कि-

"तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्ग विशष्यिते।
येन यत्साध्यते कार्य तत्रास्मिन् श्रेष्ठमुच्यते॥"

(मनु० ९।२९७)

अर्थात् यथा शरीर के अङ्गों में, जब विचार-विवेक का अवसर आता है उस समय 'शिर' (मुख) श्रेष्ठ है, जब रक्षा करने का समय आता है तब 'हाथ' (बाहुबल) श्रेष्ठ हैं। जब भोजन को पचाने और शरीर के प्रत्येक अंग को यथायोग्य भोजन का सार पहुंचाने का अवसर आता है, तब उदर (पेट) श्रेष्ठ है और जब परिश्रम पूर्वक शरीर के भार को उठाने एवं आने-जाने का अवसर होता है, तब चरण (पैर) श्रेष्ठ हैं। इसी प्रकार मानव-समाज की 'ज्ञान' से सेवा करने का जब समय आता है, तब उस समय 'ब्राह्मण' श्रेष्ठ है। जब 'बल' से सेवा करने का समय आता है, तब 'क्षत्रिय' बड़े हैं। जब 'धन' से सेवा करने का समय आता है तब 'वैश्य' बड़े हैं और जब 'शरीर' से सेवा करने का समय आता है, तो 'शूद्र' श्रेष्ठ है।

किन्तु, दुर्भाग्यवश (संसार का सतत परिवर्तनशील होते रहने से) कुछ समय पश्चात् चारों वर्ण के लोग सच्चे स्व-कर्म' को भूलकर मात्र 'नामधारी' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते गए। इतना ही नहीं, तत्पश्चात् श्रेष्ठ एवं निम्न-भाव को व्यवहार एक दूसरे के प्रति करने लग गए। परिणामस्वरूप आचरण में कटुता आती गयी और वातावरण विषाक्त बनते गया। जिसकी वेदना क्रान्तंद्रष्टा अथवा सत्यान्वेषी 'आर्य-पुरुषों' से न सही गयी। विष उतारने का सद प्रयत्न आरम्भ हो गया। 'विष-वर्द्धन' का वीणा उठा लिया। जिससे लोग भ्रमित होते गये।

आज तो जन्म से मृत्यु-पर्यन्त 'जाति' ही पूछी जाती है। 'प्राचीन कालीन वैदिक वर्ण व्यवस्था' के विरुद्ध एक ही 'मानव-जाति' को अनेक तथाकथित जातियों में विभक्त करने के कुप्रयास किये जा रहे हैं। तथा आपसी विद्वेष के उपनेत्र प्रदान किये जा रहे हैं। परन्तु दोष देते हैं 'प्राचीन वैदिक वर्णव्यवस्था' को तथा उन्हें असभ्य, अज्ञानी एवम् अविकसित-कहने का दुस्साहस भी किया करते हैं। और अपनी गोल-मटोल पोल की, धूर्तता के रोल में प्रशंसा करते नहीं अघाते। फलस्वरूपः सम्प्रति चार वर्ण के स्थान पर एक सौ चार (१०४) तथाकथित 'वर्ण' नहीं, 'जाति' हो गये हैं। और राजनेतागण तो इसे चार सौ बीस (४२०) की संख्या में वृद्धि करने को प्रयत्नशील हैं। अब देखना है कि-वोट, नोट की दुनियाँ में, जनता (जाति) इनके ओट में कोई खोट देख पाती है वा नहीं। यदि नहीं, तो ४२० पंक्तियों में विभक्त होने के लिए तैयार हो जाएँ। अथवा निष्पक्ष होकर, सत्यदर्शन कर, उन्हें "चार सौ बीस" की उपाधि से आलोकित कर दिये जाएँ।

आज पुनः 'वैदिक वर्ण-व्यवस्था' की अपेक्षित आवश्यकता आ पड़ी है, जिससे समाज में 'जाति-एकता' व 'वर्ण मित्रता' अक्षुण्ण रह सके। तभी तो स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था कि-"हमारी प्राचीन कालीन वैदिक व्यवस्था के अन्दर इतनी जीवनशक्ति है कि उससे दो लाख नई व्यवस्थाओं का निर्माण किया जा सकता है। वर्ण-व्यवस्था को मिटाने की बात करना कोरी बुद्धिहीनता है। नई रीति यह है कि-पुरातन का विकास हो। भारत की अवनति इसलिए नहीं हुई कि-हमारे पूर्व-पुरुषों के नियम व आचार-व्यवहार असभ्य थे, प्रत्युत अवनति का कारण यह था कि उन नियमों व आचार-व्यवहारों को उनकी न्याय-संगत परिणति तक नहीं ले जाने दिया गया।"

रामकुमार (ज्ञानार्थी)

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

तुलसीकृत रामायण—समीक्षा

हम पूछते हैं कि जब पौराणिकों के अनुसार वेदों को कोई शंखासुर ले गया और वे भारत में नहीं रहे तो तुलसीदास जी ने वेद कहाँ से और कैसे पढ़ लिये? हाँ! दूसरों की भाँति उन्होंने वेदों का नाम अवश्य सुना था। अतः श्रद्धावश उन्होंने अपने मानस ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर वेद, आगम, श्रुति शब्दों का प्रयोग किया है। तुलसी के भक्तों को तो ऋषि दयानन्द जी का ऋणी और कृतज्ञ होना चाहिए कि वे शंखासुर से वेदों को छुड़ा लाये। उन्हीं की कृपा से उनको भी वेदों के दर्शन हो गये और कर्मकाण्डों में वेदमन्त्रों का प्रयोग करने लगे।

तुलसीदास जी ने उपर्युक्त श्लोक में स्वान्तः सुखाय लिख कर यह स्पष्ट कर दिया है कि मैं अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अर्थात् जिस प्रकार भी मुझे रामगुण गाने में सुख की अनुभूति होती है, उसी के अनुसार रामचरित्र लिख रहा हूँ। तब यह आवश्यक नहीं कि उनकी रामायण सम्पूर्ण वेदानुकूल सिद्धान्तों पर ही लिखी गयी हो। जैसा कि वह लिखी भी नहीं गयी। गुसाई जी ने तो अपने भक्ति कल्पना में उड़ाने भरी हैं। क्योंकि, काशी, प्रयाग, अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थों के महात्म्यों की वेदों में कहीं चर्चा नहीं है। इसके अतिरिक्त तुलसी जी ने वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण के अनुकूल भी रामचरित नहीं लिखा। [इसके कई प्रमाण हमने अपनी 'रामायण परिचय' पुस्तक में दे दिये हैं, पाठक वहाँ देख लें]

हम तुलसीदास जी की यहाँ निन्दा करने नहीं बैठे, अपितु जो भी प्रसंग बुद्धि के विरुद्ध रामायण में लिखे हैं उनका निराकरण करना हम चाहते हैं जिससे श्रीराम का चरित्र उज्वल बना रहे।

७—राम राज्याभिषेक पर भरत क्यों न बुलाये?

प्रश्न—जब दशरथ ने श्रीराम को राजतिलक देने की घोषणा कर दी तो अयोध्या में सब प्रकार की तैयारियाँ होने लगीं। उस शुभ अवसर पर भरत जी को ननसाल से क्यों न बुलाया गया? तथा जनक जी को भी क्यों न बुलाया?

समाधान (उत्तर)—पौराणिक कथाकार श्री जयरामदास 'दीन' का

इस प्रसंग को आद्यन्त पढ़ने पर ज्ञात होता है कि राजतिलक की तिथि दूसरे ही दिन प्रातःकाल निश्चित हुई थी। केवल एक रात्रि बीच में शेष थी इसीलिये वशिष्ठ जी ने कहा—

वेगि विलम्बु न करिय नृप, साजिय सकल समाज।

यहाँ पर निश्चित तिथि न देकर 'वेगी' और 'बिलम्बु न करिय, शब्द दिये जो समय की निकटता पर जोर देते हैं। फिर दशरथ सचिवगण भी विनीत करते हैं।

जय मंगल भल काजु विचारा। वेगिय नाथ न लाइय बारा॥

यह मिथ्या विश्वास है। यहां पर भी 'वेगिय न लाइय बारा' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। समय की निकटता के राजतिलक की तैयारियाँ शीघ्रता से की जा रही थीं। ये समाचार दासियों द्वारा तीनों रानियों को पहुंचाया। वशिष्ठ जी ने दशरथ के कहने पर श्रीराम को सूचना दे दी कि कल आपके राजतिलक का मुहूर्त निश्चय किया गया है। यह समाचार जब मन्थरा को मिला तो उसने देवमाया से मोहित होकर केकई की मति फेर दी। निदान वह अपने पुत्र भरत के लिये राज दिलाने के उद्देश्य से कोप भवन में जा लेटी।

उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि उसी दिन यह तय हुआ कि इसी मुहूर्त में प्रातः राम का अभिषेक कर दिया जाय। क्योंकि, फिर ऐसा शुभ मुर्हूत शीघ्र आने वाला नहीं है। अर्थात् उस समय ऐसा योग स्वतः बन गया। इसी कारण एक ही दिन में सब तैयारी बड़ी शीघ्रता से हुई और भरत जी बहुत दूर केकय देश में थे। अतः उनको व अपने सम्बन्धी जनक आदि को शीघ्रता में कोई सूचना नहीं दी जा सकी। इसी से रा…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के राजतिलक के अवसर पर भरत को नहीं बुलाया। सोचा था कि उन सबको बाद में सूचना मिल ही जायेगी।

समीक्षा—पौराणिक कथाकार तुलसीकृत रामायण को निर्दोष सिद्ध करने के लिए कुछ भी कहते रहें। उनका कथन सत्य न्याय पर आधारित नहीं है। कारण यह है कि जिस ग्रन्थ ने राम के भक्तों को अनेक भ्रान्तियों में डाल दिया है। उसी ग्रन्थ में वे कथाकार उसका समाधान खोजते हैं। उसके अतिरिक्त कहीं उनको सत्य दिखाई नहीं देता। अतः दृष्टि दोष से ग्रस्त होकर उपर्युक्त कारण बताना उनका बिलकुल तथ्य से रहित है।

वस्तुतः जनक जी को, भरत को तथा उनके नाना केकयराज को उस अवसर पर बुलाने का कारण राजनैतिक था। बात यह थी कि ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण दशरथ राम को ही राज्य देना चाहते थे। किन्तु, केकई का विवाह दशरथ के साथ इस शर्त पर हुआ था कि उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वही राज्य का अधिकारी होगा। भले ही भरत स्वेच्छा से राम के होते राज्य को ग्रहण न करें। लेकिन केकयराज और जनक को यदि बुलाया जाता तो निश्चय था कि जनक तो अपने दामाद राम का पक्ष लेते और केकयराज भरत का। इस प्रकार दोनों में युद्ध छिड़ जाने की दशरथ को आशंका थी। स्थिति को टालने के लिए दशरथ ने दोनों में किसी को भी सूचना नहीं भेजी।

(श्री जगदीश्वरानन्द स्वामी लिखित वाल्मीकि रामायण अयो. कां. पृ. ५५)

पाठकवृन्द विचार करें कि यहाँ दशरथ ने कपट से काम लिया कि नहीं? वे चाहते थे कि भरत के ननसाल से लौटने से पूर्व ही राम को राजतिलक कर दिया जाय। लेकिन यह बात समझ से बाहर है कि राजतिलक में एक रात ही शेष थी। इसलिए शीघ्रता से निर्णय लिया गया। क्योंकि, राजतिलक की तैयारियाँ राज्य स्तर पर की गयी थीं जो एक दिन में पूर्ण नहीं हो सकती थीं। ऐसे शुभ कार्य के लिए कुछ समय अपेक्षित है। फिर जो यह कहा जाता है कि श्री वशिष्ठ जी ने ज्योतिष के अनुसार लग्न, वार, तिथि, शुभाशुभग्रहों का फल आदि देखकर ही राजतिलक का मुहूर्त तय किया था जो अगला दिन ही ठीक बैठता था। यह बात भी पौराणिक फलित ज्योतिषियों की मिलावट है। ताकि लोग फलित ज्योतिष पर विश्वास किये रहें और हमारी जीविका चलती रहे। क्योंकि, उन दिनों फलित का जाल आज की भाँति नहीं फैला था। यह तो वर्तमान युग की कल्पना है।

हम 'रामायण परिचय' में विचार कर चुके हैं कि रावण का वध कराने के उद्देश्य से यक्ष, गन्धर्व, ऋषि मुनि तथा इन्द्रादि देव श्रीराम को आगे लाना चाहते थे। लेकिन जब उन्होंने सुना कि राम को तो राजतिलक होने वाला है। यदि ऐसा हो गया तो हमारे अभीष्ट कार्य की सिद्धि कैसे होगी। तब उन्होंने मिल कर मीटिंग में यह तय किया कि ऐसा यत्न किया जाय जिससे राम को राज्य ही न मिलने पाये और वे राज्य त्याग कर वन यात्रा करें। फिर हम लोग उनसे मिलकर अपना आयोजन सिद्ध कर लेंगे।

इससे स्पष्ट है कि राम के राजतिलक में एक रात ही शेष नहीं थी। कुछ दिन पूर्व ही यह घोषणा दशरथ ने कर दी थी। तभी तो देवों ऋषियों को इस समाचार का पता लगा। अन्यथा एक ही दिन में निर्णय लेने से इतनी शीघ्र वे लोग यह समाचार कैसे सुन लेते और मीटिंग में दूर-दूर से सबको इकट्ठा करना, फिर सरस्वती को भेजकर मन्थरा द्वारा केकई की मति फेरना, वहाँ से वापिस आकर देवों को अपनी सफलता की सूचना देना इत्यादि काम क्या एक ही दिन में पूरे हो सकते हैं? तभी तो तुलसीदास जी ने लिखा है कि देवमाया से प्रेरित होकर मन्थरा ने केकई को राम राज्य के विरुद्ध भड़काया। माया (कपट) वही था जो देवों ने रावण वध के लिए पूर्व योजना बनाकर सरस्वती को अयोध्या भेजा था। इससे अब यह बात छिपी नहीं रह गयी कि दशरथ ने उपर्युक्त कारणों से भरत को व जनक आदि को नहीं बुलाया और न राजतिलक में एक रात शेष थी।

वस्तुतः इसमें एक रहस्य यह भी था कि दशरथ जी सोचते थे कि केकई को यदि मेरे दिये वचन का स्मरण हो गया तो भरत के आने पर व अपने पुत्र को ही राजतिलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहेगी और यदि मैं राम को राजतिलक देता हूँ तो मिथ्यावादी कहाऊंगा। लेकिन फिर भी वे मिथ्यावादी होने से बच न सकें। क्योंकि, उनको पूर्व प्रतिज्ञानुसार भरत को ही राज्य देना चाहिए था, सो न दे सके और मन्थरा से प्रेरित केकई ने जब भरत को गद्दी मांगी तो दशरथ प्रतिज्ञा भंग के कारण धर्मबन्धन में फंस गये। क्योंकि, उधर राम को भी राजतिलक करने की सूचना दे चुके थे। यदि अब उन्हें राज नहीं सौपते तो भी झूठे पड़ते हैं। इसी उलझन में वहाँ एक भयंकर विषाक्त वातावरण बन गया। उससे दशरथ को ऐसा गम बैठ गया कि राम वन गमन के पश्चात् शरीर छोड़ दिया। उक्त शंका का यही ऐतिहासिक समाधान हो सकता है। तुलसी बाबा अपनी रुचि से चाहे कुछ भी लिखते रहें।

८. भारद्वाज मुनि ने भरत को स्त्रियाँ भेंट की

भरत जी राम को वापिस लौटाने के लिए कुछ अयोध्यावासियों और कौशिल्या, केकई आदि नारियों सहित चल दिये और मार्ग में भारद्वाज मुनि के अतिथि बने। मुनि सोचते हैं कि भरत जी का स्वागत राजकीय स्तर पर होना चाहिए। क्योंकि, वे एक श्रेष्ठ राजकुमार हैं। तब गुसाई जी लिखते हैं:-

ऋतु वसन्त वह त्रिविधि बयारी। सब कह सुलभ पदारथ चारी॥
सुक चन्दन वनतादिक भोगा। देखि हरष विस्मय वस लोगा॥

अर्थात् भारद्वाज मुनि ने अपनी सिद्धि के प्रभाव से उस समय बसन्त ऋतु उत्पन्न कर दी। जिसमें शीतल, मन्द, सुगन्ध वाली तीन प्रकार की वायु बहने लगी। सभी नर-नारियों के स्वागत के लिए माला, चन्दन, शुद्ध वायु तथा खान-पान आदि पदार्थों के सहित सुन्दर स्त्रियाँ चारों प्रकार की वस्तुएं उपस्थित कर दी गयीं। स्वागत की ऐसी सुन्दर व्यवस्था देख कर लोग विस्मय सहित हर्षित हो गये।

समीक्षाः- स्वागत में माला, चन्दन के उपयोग करना तो कोई आश्चर्य की बात न थी। आज भी किसी विशेष अवसर पर मुख्य अतिथि के बुलाने पर लोग उस परम्परा को निभाते हैं। परन्तु भरत जी को सुन्दर स्त्रियाँ भेंट करना कहाँ तक उचित है। चौपाई में, 'वनितादिक भोगा' लिखा है। यहाँ आदि शब्द कुछ लोग शराब भी समझ लें तो क्या आपत्ति है। क्योंकि शराब देना अनुचित माना जाय तो स्त्रियाँ भेंट करना क्यों उचित माना जाय? शराब का सम्बन्ध स्त्रियों से सदैव रहा है। आज कल रेस्टोरेन्ट, होटलों, क्लबों में भी तो आगन्तुक अतिथियों को ये दोनों वस्तुएँ स्वागत में भेंट की जाती हैं। फिर वे बुरा क्या करते हैं? अपने पूर्वजों का ही अनुसरण करते हैं।

प्रश्न है कि भारद्वाज मुनि के पास इतनी सुन्दर स्त्रियाँ कहाँ से आ गयीं? क्या वे भी अपनी सिद्धि से यों ही उत्पन्न कर लीं? क्या भरत जी ऐशो आरम का जीवन बिताना पसन्द करते थे? विशेषतः जब कि वे अपने पिता के निधन और भाईयों के वन गमन से अत्यन्त दुखी हृदय थे। जो भरत जी अपने आदर्श जीवन के लिए विश्वविख्यात हैं, जो भाई राम की भाँति ही चौदह वर्ष तक पृथ्वी पर सोकर तथा कन्द मूल खा कर कठोर संयम का जीवन बिताते हों उनके लिए स्त्रियाँ भेंट करने की बात लिखना भरत जी के समस्त आदर्श जीवन पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है। परन्तु रामायण के कथाकार ऐसे प्रसंगों को चुपचाप पढ़ जाते हैं। यदि यह बात सच मानें तो मुसलमानों के बहिश्त की रंगीली बातों को क्यों झूठ मानें? जहाँ मर्दों को सुन्दर-सुन्दर हूरें मिलती हैं। क्या भरत जी वाली मिसाल इससे कम हैं? तुलसी बाबा यह लिखना भूल गए कि भरत जी के साथ अयोध्या से कुछ नारियाँ भी तो आयीं थीं। उनके लिए सुन्दर-सुन्दर युवा पुरुषों का प्रबन्ध किया गया कि नहीं?

दूसरी बात भी सुनिये-यह सर्वविदित है कि सभी ऋतुएं प्राकृतिक नियमानुसार अपने समय पर ही आती हैं। लेकिन भारद्वाज मुनि ने असमय ही भरत जी के आने पर वसन्त ऋतु उत्पन्न कर दी। देखो! प्रकृति नियम को भी भंग करके उन्होंने कैसी करामात दिखाई। पता नहीं तुलसीजी की लेखनी ऐसी असम्भव बातें लिखने में क्यों न लजाई। (क्रमशः)

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व की ओट में ऋषि दयानन्द का अवमूल्यन

अजकल आर्यसमाज में ऐसे लेखकों, विचारकों, पत्रकारों तथा वक्ताओं का एक वर्ग उभर आया है जो आर्यसमाज के मंचों तथा पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से वीर सावरकर, गुरु गोलवलकर आदि द्वारा समर्थित हिन्दुत्व का ही गौरव गान करता है। साथ ही ऋषि दयानन्द की मानवतावादी विचारधारा का प्रत्यक्ष या परोक्ष में विरोध भी करता है। जब कोई सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्ति इसका प्रतिवाद करता है तो उसके खिलाफ लिखने में भी उन प्रच्छन्न हिन्दू सभाईयों को कोई संकोच नहीं होता जो किसी न किसी रूप में आर्य संस्थाओं का पल्ला पकड़े रहते हैं। वीर सावरकर की प्रशंसा में एक ऐसा ही लेख गत दिनों आर्य मर्यादा, जन ज्ञान तथा आर्य जगत में छपा। इसके लेखक श्री हरीन्द्र श्रीवास्तव ने आर्यसमाज के सार्वभौम तथा सार्वजनिक नियमों को हिन्दुत्व की संकीर्ण धारा में बांधने का प्रयास करते हुए लिखा कि आर्य समाज के दस नियमों में हिन्दू, हिन्दुत्व का ही प्रतिपादन है। इस भोले लेखक को यह ज्ञात नहीं कि आर्य समाज के नियमों में किसी देश, जाति, सम्प्रदाय, वर्ण, लिंग आदि का संकेत मात्र भी नहीं है। ये सार्वकालिक तथा मनुष्य मात्र के लिए आचरणीय हैं। प्रथम दो नियम परमात्मा के अस्तित्व तथा स्वरूप का आख्यान करते हैं तो सत्य, धर्म, लोकोपकार, यथायोग्य वर्तन, विद्या वृद्धि, सबकी भलाई में अपनी भलाई तथा सामाजिक एवं वैयक्तिक स्वतंत्रता के सापेक्षिक महत्व की बात करते हैं। इन नियमों में न तो सावरकर का हिंन्दुत्व है और किसी अन्य विचारक की कोई दृष्टि। यह तो ऋषि दयानन्द का प्रोज्वल मानववाद है। खेद है कि आर्य पत्रों में आजकल सिद्धान्त विरुद्ध बातें प्रायः छपती रहती हैं और जब प्रो0 उत्तमचंद शरर जैसा कोई सिद्धान्तों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति इसका विरोध करता है तो उसके लिये खिसियानी बिल्ली खम्बा नोचे जैसे निंदात्मक शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं।

सुखदेव गोयल

मंत्री–आर्यसमाज, सरदारपुरा, जोधपुर

□□□

१८५७, महर्षि दयानन्द और श्री निहाल सिंह आर्य

डॉ. भवानीलाल भारतीय

मैं जनज्ञान के भाद्रपद २०४९ वि. के. अंक में छपे दिल्ली निवासी मास्टर निहाल सिंह के उस लेख का नोटिस भी नहीं लेता, यदि उन्होंने इसमें मुझे नहीं घसीटा होता। मेरा यह निश्चित मत है कि आदमी को अपनी कल्म उसी विषय पर चलानी चाहिए जिस पर उसका अधिकार हो। यों सामान्य चर्चा तो आप किसी भी विषय की कर सकते हैं किन्तु हर बात में विशेषज्ञता का दम्भ भरना उचित नहीं। अंग्रेजी कहावत है। Fools dare where wise fear to tread.

अज्ञानी वहां जाने का साहस कर बैठता है जहाँ कदम रखने में बुद्धिमान को भी संकोच होता है। मास्टर निहालसिंह मेरे पुराने मित्र हैं। उन्होने मुझे योग्य–विचारक चिन्तक और पुरुषार्थी विद्वान् जैसे बहुमूल्य गुणों से विभूषित किया है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। तथापि निवेदन करता हूँ कि स्वामी दयानन्द के जीवन, व्यक्तित्व, विचार, कृतित्व आदि की विस्तृत समीक्षा सर्व सामान्य के अधिकार क्षेत्र में नहीं आती। यदि उन्हें मेरे विचारों पर कोई आपत्ति है तो वे मेरे लिखे उन सैकड़ों लेखों को आद्योपरान्त, दत्तावधान होकर देखें जो मैंने विगत २४ वर्षों में इसी विषय पर लिखे हैं। वे अज्ञात–जीवनी के प्रवर्तक दीनबंधु वेद शास्त्री के मत पर की गई मेरी विस्तृत टीका को सार्वदेशिक, परोपकारी आदि पत्रों की फाईलों में देखें। पुनः सच्चिदानन्द योगीजी के मत के खण्डन में लिखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये मेरे दर्जनों लेखों को आर्य मर्यादा की फाईलों में पढ़ें जो सत्तर के दशक में लिखे गये थे। पुनः श्री आदित्य पालसिंह द्वारा अज्ञात जीवनी के पुनः संस्कारित संस्करण की विस्तृत आलोचना परोपकारी के उन अंको में पढ़ें जो गत दशक के अन्तिम वर्ष में प्रकाशित हुई।

इतना होमवर्क करने के पश्चात भी वे कलम उठाने की जल्दी नहीं करें। कभी फुरसत निकाल कर मेरे सान्निध्य में २-४ दिन रहें। मेरे पुस्तकालय में संगृहीत महर्षि विषयक अपूर्व और दुर्लभ सामग्री का निरीक्षण-परीक्षण करें। व्यर्थ की लिखा पढ़ी में न जाकर इस विषय के सभी पहलुओं पर मुझसे विस्तृत चर्चा करें। यह न कर जब वे लेख लिखने के लिए व्याकुल हो ही गये तो मेरा भी उत्तर सुन लें।

जिस सर्व खाप पंचायत के रिकार्ड का उल्लेख उन्होंने इस तथा पूर्व के लेखों में किया है, उनमें कोई सार नहीं है। यह सारी सामग्री जाली है, समय समय पर बनाई गई है और हमारे मास्टरजी जैसे भोले-भाले लेखक बिना गम्भीर इतिहास ज्ञान के इसे यन्त्र तंत्र लेख रूप में छपाते रहते हैं। मेरा उनसे निवेदन है कि दयानन्द से इतर इस पंचायत में संगृहीत तथ्यों को जैसा उन्होंने गत अनेक वर्षों में सर्वहितकारी आदि पत्रों में प्रकाशित कराया है, वे किसी निष्पक्ष इतिहासकार के समक्ष ले जायें तथा किसी विश्वविद्यालय के प्रामाणिक इतिहास से उसकी जांच करायें और उसके नतीजों से मुझे अवगत करायें। मुझे स्मरण तो नहीं है किन्तु केवल याददाश्त के आधार पर लिख रहा हूँ कि सम्राट हर्षवर्धन तथा अन्य प्राचीन राजाओं के बारे में इस पंचायत के रिकार्ड को मास्टर जी ने जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उसे देख कर ही उसे गम्भीर इतिहासकार रद्दी की टोकरी में डाल देगा। लगता है कि प्रान्त विशेष (हरियाणा) की श्रेष्ठता तथा जाति विशेष की उत्कृष्टता से ग्रस्त कोई पूर्वाग्रही योजना इस सामग्री के बीजवपन, पल्लवन तथा पुष्पित फलित होने में सक्रिय है। स्वामी ओमानन्द जी ने ही व्यक्तिगत भेंट में मुझे बताया कि यह सामग्री समय-समय पर कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा बनाई गई है और उसे प्रचारित किया जाता है।

मास्टर जी के इस लेख में भी अनेक दन्त कथाएं संगृहीत की गई हैं। जिनको प्रथम दृष्टि में ही अस्वीकार करना होगा। यथा-

(१) ओमानन्द, पूर्णानन्द आदि चार सन्यासियों की कपोल-कल्पित कथा जो मास्टरजी ने अन्यत्र भी अनेक बार दोहराई है।

(२) भारत में अंग्रेजी राज (लेखक पं. सुन्दरलाल) के उदाहरणों से मास्टर जी का यह निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी है कि यह सारे उल्लेख उनके पक्ष में जाते हैं।

(३) स्वामी वेदानन्द वेदवागीश लिखित महर्षि के जीवनचरित को पढ़ने के पहले मास्टरजी पं. लेखराम, पं. देवेन्द्रनाथ, स्वामी सत्यानन्द, हरविलास शारदा, डा. जार्डन्स, यदि अन्यथा न लें तो मेरे द्वारा लिखित 'नवजागरण के पुरोधा-दयानन्द सरस्वती' को भी पूर्वासर घटनाक्रम को समझते हुए, ऋषि दयानन्द की विकासशील विचार-परम्परा तथा कार्य कारण सम्बन्धों को ध्यान में रखकर पढ़ें। १८५७ में ऋषि का योगदान दिखाने में जल्द बाजी न करें, क्योंकि ऐसी जल्दबाजी न तो जयचन्द्र विद्यालंकार ने की है और न पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार ने। मात्र उन्होंने यह सम्भावना ही प्रकट की है कि ऐसा होना भी सम्भव है। सम्भावना को भी प्रमाणित करना पड़ता है और अभी तक कोई भी ऐसा सुनिश्चत प्रमाण नहीं मिला है जिससे महर्षि की १८५७ की हलचल में कोई भूमिका निश्चित की जा सके। पं. दीनबंधु स्वामी सच्चिदानन्द तथा श्री आदित्यपाल आदि ने इसी सम्भावना को यथार्थ का जामा पहनाने का स्वकल्पना के बल पर यत्न किया तो उन्हें मुंह की खानी पड़ी। उन पर आज भी मेरी आलोचनायें और आपत्तियां यथावत् हैं।

अब मास्टरजी की कुछ विशेष ज्ञातव्य बातों की परीक्षा कर लें।

(१) १८५४ से १८५६ तक स्वामी विरजानन्द ने मथुरा में लाखों लोगों को बुलाकर जन्माष्टमी पर स्वाधीनता संग्राम का प्रबल गुप्त प्रचार किया। इसमें विशाल हरियाणा की जनता अधिक थी।

समीक्षा-गुरुजी ने मथुरा में लाखों (इस शब्द पर ध्यान दें) आदमी बुला लिये और अंग्रेज सरकार को पता तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं चला। उस समय तो मथुरा की जनसंख्या भी लाखों की नहीं थी। ऐसी चण्डूखाने की गप्प मारना मास्टरजी को शोभा नहीं देता। और वहाँ विशाल हरियाणा कहाँ से आ गया। विशाल हरियाणा तो राव वीरेन्द्र सिंह का अविष्कार है।

(२) मास्टरजी के अनुसार स्वामीजी समय–समय पर राव तुलाराम, राजा नाहर सिंह (ये कहाँ के थे, एक राजा नाहर सिंह शाहपुरा का उल्लेख ऋषि जीवन में आता है किन्तु उनसे तो महाराज की भेंट बहुत बाद में हुई। १८५७ में तो राजा नाहरसिंह दो वर्ष के बालक ही थे।) तात्या टोपे तथा रानी लक्ष्मी बाई आदि से मिले। इसकी पुष्टि में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

(३) मास्टरजी की यह बात तो नितान्त हास्यास्पद ही है कि उस समय (१८५७) में स्वामीजी गुजराती, हरियाणवी मिश्रित हिन्दी बोलते रहे। यदि वे इतना ही कहते कि गुजराती–मिश्रित हिन्दी बोलते थे, तब भी कोई बात थी, किन्तु स्वामीजी के भाषा में यह हरियाणवी कहाँ से घुस आई। उस समय तक तो उन्होंने हरियाणा में कदम भी नहीं रक्खा था। जीवनचरित साक्षी हैं कि ऋषि ने हिन्दी का पूर्ण अभ्यास बहुत बाद में किया। वे प्रायः संस्कृत में ही अपने विचार प्रकट करते थे। अच्छा होता यदि मास्टरजी दयानन्द चरित की आलोचना में संकुचित प्रान्तीयता को न लाते।

(४) स्वामीजी को न तो किसी का भय कभी रहा और स्वप्रान्त छोड़ देने के पश्चात् तो परिवार वालों से अपने पकड़े जाने की भी सम्भावना भी समाप्त हो गई थी। स्वामीजी का कोई क्रिया कलाप कभी गुप्त नहीं रहा। उन्होंने जो कुछ कहा और किया डंके की चोट पर।

(५) मास्टरजी की यह बात हमें खूब हंसाती है कि स्वामी दयानन्द के बदले नाम (?) मूलशंकरा, रेवानंद और दयाल जी थे। हमने तो अब तक महाराज के बचपन के दो नाम मूलशंकर तथा दयालजी (अथवा दयाराम) ही सुने थे, किन्तु मास्टरजी कहते हैं कि १८५७ में भी वे मूलशंकर (इसे वे मूलशंकरा लिखते हैं) नाम से ही जाने जाते हैं। रेवाशंकर जैसे नये नाम का आविष्कार करने पर तो उन्हें पुरस्कृत ही किया जाना चाहिए। तथ्य यह है स्वामीजी के पारिवारिक नाम का ज्ञान तो कुछ ही लोगों को था, अन्यथा वे लोक में 'दयानन्द सरस्वती' के नाम से जाने जाते थे।

(६) मास्टरजी के हरियाणा प्रेम को उजागर करने वाला एक और वाक्य देखें–"फिर दिल्ली के चारों ओर खापों, पंचायतों में देशप्रेम, वीरता, सदाचार और सात्विक भोजन देखा था।" इस पर टिप्पणी करना व्यर्थ है। स्वामीजी की किसी प्रान्त में कोई आसक्ति नहीं थी।

(७) स्वामी दयानन्द का १८५५ में स्वामी पूर्णानन्द की गुप्त साधु सभा में आना, विठूर में पांच दिन तक नाना साहब से भेंट तथा उनकी नाना से कुल ग्यारह मुलाकातें आदि की चर्चा भी अनगढ़ गप्प और कहानी से अधिक नहीं है। स्वामीजी जीवन में कहां कहाँ, कब से कब तक रहे, इस पर परिश्रम करने वाले प्रो. महेश प्रसाद मौलवी द्वारा तैयार की गई तालिकाओं को शायद उन्होंने कभी देखा ही नहीं। किन्तु उनका दोष भी क्या, यह उनका विषय ही नहीं है। इन विषयों पर मगजपच्ची करने वाले तो लेखराम, देवेन्द्रनाथ, भगवद्दत्त, युधिष्ठर मीमांसक आदि थे। मास्टरजी और तत् सदृश लोगों के लिये यह आउट आफ कोर्स है।

(८) मास्टरजी ने अपने मत की पुष्टि में स्वामी वेदानन्द वेद वागीश, स्वामी भीष्म, पं. बस्तीराम आदि के नाम भी दिये हैं। ये सभी हमारे लिए पूज्य तथा वंदनीय हैं, किन्तु उनकी सभी बातें प्रमाण कोटि में नहीं आती।

(९) मास्टरजी तो कभी–कभी इतने आश्वस्त भाव से लिखते हैं मानो १८५७ के सारे सरकारी रिकार्ड, पुरातत्व अभिलेख तथा गोपनीय सूचनायें उन्हें अंग्रेजों ने हस्तामलकवत् उपलब्ध करा दी थीं। १८५७ के बड़े–बड़े इतिहासकारों यथा के मालेसन, रमेशचन्द्र मजूमदास, राम विलास शर्मा, सावरकर आदि को भी जो तथ्य प्राप्त नहीं हुए उन्हें मास्टरजी बड़ी मासूमियत से लिख बैठे। जरा बानगी देखें–"राजविद्रोहियों की खुफिया जांच करने वाले स्वदेशी, विदेशी, सरकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मचारियों से स्वामी दयानन्द की ३१ बार मुठभेड़ हुई थी। मगर उनके तेज से हतप्रभ होकर, क्षमा कर वे अंग्रेज फौजी अफसर झुककर चले जाते थे।" मास्टरजी की इस कल्पनाशीलता पर दाद देने का जी चाहता है। यह लिखते समय वे अपना पहले का यह कथन भूल गये कि स्वामी जी अंग्रेजी शासकों से स्वयं को बचाने के लिए सदा सचेष्ट रहे और अपनी इन गोपनीय गतिविधियों को कभी प्रकट होने ही नहीं दिया। यहाँ तो उन्होंने कमाल ही कर दिया। उनके अनुसार (१) अंग्रेज कर्मचारियों से उनकी ३१ बार मुठभेड़ हुई और ये अंग्रेज भी कैसे थे कि गदर के इस सेनानायक को देख कर (२) हतप्रभ हो जाते (३) क्षमा मांगते (४) और झुककर चले जाते। इन दन्त कथाओं से बच्चों का मन भले ही बहल जाये। दयानन्द चरित्र के अनुशीलन कर्ता को तो क्षोभ ग्लानि और आक्रोश ही होगा। अगर अंग्रेजों में ऐसो ही क्षमाशीलता होती तो शायद वे मास्टरजी के कहने मात्र से ही भारत छोड़कर चले जाते।

(१०)मास्टरजी रचित बेताल पच्चीसी की एक और कथा सुनिये १८५८ में एक अंग्रेज (नाम मास्टर जी को भी मालूम नहीं) १५ घुड़सवारों सहित उनके पास आया; प्रश्नोत्तर किये, स्वामीजी की दिव्यज्योति से बेसुध होकर उनके कदमों पर गिर पड़ा, क्षमा मांगी, उन्हें मसीहा (ईसा मसीह का अवतार) माना और १२५ रूपए नकद भेंट देकर चला गया। देखिये कितना बड़ा चमत्कार हो गया। इस कथा का स्त्रोत तो मास्टरजी बतायेंगे नहीं। यदि यह कहानी भी सर्व खाप पंचायत की है तब तो कथा बनाने वालों की बलिहारी। अंग्रेज अश्वारोही का कमाल देखिये–स्वामीजी से अंग्रेजी में सवाल जवाब भी कर लिये। स्वामीजी जो अंग्रेजी का एक फूटा अक्षर भी नहीं जानते थे। अंग्रेज के प्रश्नों का धारा प्रवाह उत्तर देते रहे और अन्त में इस अंग्रेज शिष्य से १२५ रुपए नकद दक्षिणा धरा ही ली।

अफसोस, दयानन्द का जीवन चरित्र ऐसे अनाड़ियों के हाथों ही बर्बाद होना है तो फिर हम किसको रोयें और किसे दोष दें? यहां तो कुंए में ही भांग पड़ गई। पं. दीनबंधु, सच्चिदानन्द योगी तथा आदित्यपालजी की परम्परा में तो मास्टरजी ने भी अपनी जगह सुरक्षित कर ली किन्तु लेखराम, मुखोपाध्याय, भगवद्दत्त, महेश प्रसाद तथा युधिष्ठिर मीमांसक जैसे शोध कर्मियों की परम्परा में अब कौन बचा है। मैंने अकेले ही इन मूर्खतापूर्ण बातों का खण्डन करने का ठेका क्यों ले लिया, तभी तो मेरे कई मित्र भी मुझे अहंकारी और दयानन्द विषयक सर्वज्ञ होने का दम्भ भरने वाला कहते हैं, किन्तु मैं स्वयं तो यही कहता हूँ–बुधजन की उच्छिष्ट मात्र है मेरी बानी अब आप मेरी बातें मानें या मेरे कुछ मित्रों की यह आप पर ही है। आगे निवेदन इतना है कि यदि दयानन्द की गांठ में भपुरा जाने के पहले ही १२५ रुपये नकद (विक्टोरिया के चेहरे वाले) आ गये तो उन्होंने (१) क्यों दुर्गाखत्री के यहाँ सूखे चने चबाये और चने की रोटी खाकर जीवन निर्वाह किया? (पं. लेखराम पृ. ४५) (२) गोवधन सर्राफ की दूकान से रोशनी के लिये चारआना मासिक क्यों बंधवाया (पं. लेखराम पृ. ४५) (३) क्यों हरदेव पत्थर वाले से दूध के लिए दो रुपया मासिक लेते रहे? (४) क्यों जोशी अमरलाल के सदाव्रत में मुफ्त रोटी तोड़ी? (पं. लेखराम पृ. 45) उनके कुछ महीने तो इन १२५ रुपयों से आनन्दपूर्वक व्यतीत हो जाते। मास्टरजी, यह सब ऊल-जलूल लिखने के पहले पं. लेखराम, देवेन्द्रनाथ आदि के द्वारा लिखित महाराज के जीवनचरित्रों को पढ़ने की तकलीफ तो की होती। किन्तु आप तो अपने अंग्रेजों की लीक पर ही चलने वाले हो। यदि दयानन्द की गांठ में कुछ रुपये होते तो वे गुरु दक्षिणा के लिये मात्र लौंग ही क्यों जुटाते। खनखनाते चांदी के रुपये दण्डीजी के सामने रख देते। किन्तु इन सब बातों से यार लोगों को क्या? मास्टरजी मुखोपाध्याय जी की इन पंक्तियों को ही पढ़ने का कष्ट करें–'दयानन्द संन्यासी थे, फूटी, कौड़ी तक पास नहीं थी, इनके पास दक्षिणा के लिये रुपये कहाँ से आते? (जीवनचरित्र भाग १ पृ. १०३)

स्वामीजी के सोरों प्रवास (१८६८ का आरम्भ) में मास्टरजी के अनुसार स्वामी दयानन्द के सेवक के रूप में सौरम गांव की सर्वखांप पंचायत के मंत्री चौधरी नानकचंद उनके साथ थे। श्री निहाल सिंह को यह ज्ञात नहीं कि अवधूत अवस्था में स्वामीजी सर्वथा निस्संग विचरते थे। उनके साथ सेवक आदि रसोइया रूप में बहुत बाद में रहने लगे। सोरों में वे एकाकी, निरीह, कौपीनमात्र वस्त्रधारी परमहंस के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विचरे थे। अतः चौधरी नानकचंद की गुप्तवार्ता और उसकी नकल, यह सब धूर्तों द्वारा रचित जाल मात्र है।

अब डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकर द्वारा लिखित तथ्यों की परीक्षा करें। डॉ. साहब से मेरा १९८० से उनकी मृत्यु पर्यन्त सम्बन्ध रहा। गुरुकुल कांगड़ी में उनसे इस विषय पर अनेक बार चर्चा भी हुई। वे इन बहु प्रचारित बातों के लिये प्रमाणों की तलाश में सभाओं के व्यय पर लंदन भी घूम आए, किन्तु क्या उन्होंने अपने अनुसंधान की कोई प्रामाणिक रिपोर्ट सार्वदेशिक सभा को दी? फ्रैंच भाषा के किसी उपन्यास के आधार पर दयानन्द विषयक अन्वेषणा नहीं होता। जिस मरयम नामक उपन्यास की चर्चा डॉ. सत्यकेतु ने की है उसमें उल्लिखित दयालजी साधु दयानन्द हैं। इसमें क्या प्रमाण है? स्वामीजी दयानन्द तो कभी दयालजी के नाम से लोक में जाने ही नहीं गये। अब डॉ. सत्यकेतु दिवंगत हो चुके हैं। अतः उनकी चर्चा का कोई लाभ नहीं।

अन्त में मास्टरजी ने अपने पक्ष के समर्थन में सर्वश्री क्षितीश वेदालंकार, जगन्नाथ विद्यालंकार, रामेश्वरदयाल गुप्त, हकीम रामशंकर गुप्त, पं. प्रकाशवीर शास्त्री तथा बनारसी सिंह आदि सज्जनों के नाम दिये हैं। इनमें से प्रत्येक के विचारों पर टिप्पणी करना आवश्यक नहीं। कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में जब मैं और पं. क्षितीशजी आर्य समाज काकड़वाड़ी में इकट्ठे थे तो इस विषय की चर्चा चली। जब मैंने बहस (आप इसे मैत्री पूर्ण संवाद ही समझें) आगे बढ़ाने की इच्छा जाहिर की तो पं. क्षितीशजी ने कहा कि यह उनका विषय नहीं है। सज्जन आदमी का यही लक्षण है। मैं यदि गणित और रसायन पर, जिन्हें मैं नहीं जानता, बहस करूं तो यह मेरी हिमाकत ही होगी।

अन्त में मास्टरजी मेरे बारे में लिखते हैं—"१८५७ संग्राम के सहयोगी स्वामी दयानन्द के मुख्य विरोधी—डॉ. भारतीय हैं।" मास्टरजी अपनी भाषा को सुधार लें क्योंकि यह वाक्य तथ्यों से विरुद्ध है। इससे ध्वनि निकलती है कि मैं स्वामी दयानन्द का मुख विरोधी हूँ। स्वामीजी के विरोधी तो स्वामी विशुद्धानन्द आदि थे मैं तो उनका अनुयायी किंकर मात्र हूँ। आगे उनका आरोप है, कि मैं १८५७ की क्रान्ति को सिपाही विद्रोह मानता हूँ। मेरा निजी मत मैंने कभी नहीं बताया। १८५७ की क्रान्ति को सिपाही विद्रोह मानने वाले बहुत से पाश्चात्य तथा भारतीय इतिहासकार अवश्य हैं। मेरा इसमें कुछ भी मतामत नहीं है। यदि कभी एकमत व्यक्त करने का अवसर आयेगा तो अवश्य करूंगा, परन्तु मास्टरजी ने मुझे पूर्वग्रह मण्डित मानते हुए भी योग्य विचारक, चिन्तक, विद्वान् आदि कहा, यह उनका बड़प्पन है। मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं तो आज भी उन तथा अन्यों से कहता हूँ कि वे तथ्यों की पूरी छानबीन किये बिना लेखनी न चलायें अन्यथा वे ऐसा ही अनर्गल लिखेंगे जैसा मास्टरजी ने लिखा। मेरी इस समीक्षा में यदि कोई जाने अनजाने कटुशब्द, आये हों तो उनके लिये करबद्ध क्षमा। इतना स्वीकार करता ही हूँ कि लेख की शैली में जो तिक्तता है वह मेरे दिल की पीड़ा के कारण आई है, क्योंकि स्वामीजी के बारे में निराधार प्रमाण रहित, बिना सिर पैर की तथ्यहीन, हास्यास्पद बातें लिखी जाती हैं। यह अच्छा ही है कि हमारे पत्रों और उनमें छपे इस कोटि के लेखों को कोई प्रबुद्ध विद्वान् पढ़ता ही नहीं। अन्यथा वह तो यही मानेगा कि आर्य समाज में दयानन्द विषयक शोध का क्या यही स्तर रह गया है।

❑❑❑

महर्षि का जीवन-चीरत्र

लेखक—स्व. पं. लेखराम जी

पंडित जी ने इस ग्रन्थ का संग्रह बहुत ही परिश्रम, खोज व श्रद्धा से किया है 'अपने लहू से लेखराम तेरी कहानी लिख गये' इस भजन की पंक्ति को आर्य बन्धु बड़े चाव से गाते रहते हैं किन्तु उनके कठोर परिश्रम का परिचय इस ग्रन्थ को देखने से ही सम्भव है। लेखक ने इस ग्रन्थ को उर्दू भाषा में लिखा था। बहुत लम्बे काल तक इसका हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था। उसका आर्यभाषा में अनुवाद कराकर यह जीवनी छापी गई है।

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४५५, खारी बावली, दिल्ली—६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द के दिव्य प्रसंग

देव नारायण भारद्वाज,

मूलशंकर ने बड़े होकर बाइस वर्ष की अवस्था में उस समय गृह त्याग दिया, जब इसके विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं और यह शुद्ध चैतन्य बन गया। वैराग्य–साधना ज्ञानार्जन योगाभ्यास के द्वारा यही ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य दो वर्ष बाद स्वामी दयानन्द हो गया। पाखण्ड, खंडन, श्रम, भंजन, नारी–उद्धार, मानव–कल्याण, वेदोद्वार, राष्ट्र–कल्याण एवं विश्वशांति के अनुपम अनेक कार्यों को सम्पन्न करने वाला ये मन्त्र दृष्टा दयानन्द एक दिन महर्षि दयानन्द के नाम से सम्बोधित हुआ। इनके जीवन की कुछ ऐसी घटनाएँ हैं, जो हमें युगों तक शाश्वत शक्ति एवं पुण्य प्रेरणा देती रहेंगी, उनका यहाँ पर संक्षेप से वर्णन प्रस्तुत है।

मूलशंकर गृह त्याग कर जब सच्चे योगी की खोज में जा रहे थे, तब मार्ग में इनको कुछ साधु मिले। मूलशंकर की अंगुलियों में स्वर्ण मुद्रिकाएँ और शरीर पर मूल्यवान रेशमी वस्त्र देखकर एक साधु ने इनसे कहा "त्यागी बनने चले हो। हाथ की अंगूठियों तो छोड़ी नहीं गई, वैराग्य सिद्धि क्या धूल करोगे।" जिस ब्रह्मचारी ने अपनी पारिवारिक सम्पत्ति का ऐरावत हाथी त्याग दिया हो वह भला उसकी जंजीर से मोह क्यों करता। उन्होंने अंगूठियों को वैरागी साधु के सामने फेंक दी, और स्वयं आगे बढ़ गए।

दयानन्द का यह नियम था कि वे भोजन के लिए किसी से याचना नहीं करते थे। इस प्रकार इनको यात्रा में कभी कभी भूखा भी रहना पड़ता था। एक बार इसी दशा में ऐसे व्यक्ति ने इन्हें भोजन का निमन्त्रण दिया। ये उसके घर गए और सत्तु खाकर तृप्त हुए। तत्पश्चात् उस व्यक्ति ने स्वामी जी से कहा कि उसकी पुत्रवधू भूताक्रान्त है। इसका भूत उतार दीजिए। स्वामी जी ने पुत्र वधू को लाठी दिखाई व्यक्ति ने कहा कुछ और कीजिए। स्वामी जी ने कहा इसी से भूत भाग जाएगा। वह वास्तव में स्वस्थ हो गई।

देहली में यमुना–तट पर हरिद्वार के कुम्भ में जाने के लिए साधुओं की भीड़ लगी थी। निकट खड़े एक बालक ने इन साधुओं की ओर संकेत कर अपनी माता से कहा–"हमारा देश अंग्रेज–शासकों एवं ईसाई–पादरियों के अत्याचारी कुकृत्यों के कारण डूब रहा है और ऐसे लाखों साधु बाबा केवल पेट पूजा में ही मस्त हैं–देश–धर्म की कुछ चिन्ता नहीं। बालक की बात पर साधु विचलित होकर अभिशाप देने लगे–जिसे सुनकर मां बेटा भयभीत से हो गए, परन्तु स्वामी दयानन्द ने सांत्वना देते हुए उन्हें कहा–"बच्चे! तेरी सब बातें यथार्थ हैं। इनसे मेरी आँखें तो खुल गई हैं।" दयानन्द ने भारत–स्वन्त्रता हेतु कार्य प्रारम्भ कर दिया।

इसी कुम्भ के अवसर पर दयानन्द ने ज्योतिर्मठ, श्रृंगेरीमठ, शारदामठ और गोवर्धन मठ के चारों शंकराचार्यों से मिलकर कम से कम एक सहस्त्र सन्यासियों के संगठन का सुझाव दिया, ताकि वेद धर्म का प्रचार समाज–सुधार एवं स्वदेश को विदेशियों से मुक्त कराया जा सके। परन्तु इन सभी ने नकार करते हुए कह दिया–"हम ब्रह्मचारी संन्यासी हैं, अद्वैतवादी हैं, हमारे लिए ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है।" राष्ट्र, समाज, परिवार जीवन जगत् और यह स्वतन्त्रता आदि सब मिथ्या है। स्वामी जी ने उनसे कहा–"दुःख की बात है कि आपके भोजन के लिए अन्न, पीने के लिए पानी, रहने के लिए स्थान, सर्दी के लिए कम्बल, सेवा के लिए शिष्य ही एक मात्र सत्य देखे जाते हैं, बाद में सब कुछ मिथ्या मालूम पड़ता है।" इस प्रकार इनसे कोई सहयोग नहीं मिला।

मथुरा स्थित गुरु विरजानन्द की कुटिया पर विद्या ग्रहण हेतु पहुंचे, तो कुटिया का द्वार बन्द था। गुरु जी सभी सामान्य ब्रह्मचारियों को अपना शिष्य नहीं बनाते थे–इससे पूर्व वे पूर्ण परीक्षा लिए करते थे। दयानन्द ने कुटिया का द्वार धीरे से खटकाया। अन्दर से प्रश्न हुआ–'कौन हो'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द ने विनय पूर्वक कहा–"मैं कौन हूँ, यही जानने के लिए आपकी शरण में आया हूँ। एक और प्रश्न हुआ–"क्या कुछ पढ़े भी हो।" दयानन्द ने जो पढ़ा था–वह कह सुनाया। उन्होंने कहा कि ये मनुष्यकृत ग्रन्थ तुमने पढ़े हैं–इन्हें भूल जाओ और यदि ये ग्रन्थ तुम्हारे पास हो तो इन्हें यमुना में डाल आओ। वह सब अनार्ष है। जब तक इनका प्रभाव तुम्हारे मस्तिष्क में होगा–तब तक आर्ष ज्ञान नहीं सीख सकोगे। दयानन्द ने यही सब किया और लौटकर गुरु देव को सूचित किया। गुरु का द्वार दयानन्द के लिए खुल गया था।

एक दिन दयानन्द ने गुरु जी की बैठक के स्थान में झाड़ू लगाकर कूड़ा–करकट एक कोने में एकत्र कर दिया और झाड़ू रख कर कूड़ा फेंकने के लिए कोई वस्तु ढूंढने लगा। इतने में ही गुरु जी टहलते हुए इधर ही आ गए और वह कूड़ा उनके पैर से लग गया। बस गुरु जी क्रुद्ध हो गए और आवेश में आकर शिष्य की पिटाई कर दी। दयानन्द की भुजा पर गहरी चोट आई। उपरान्त दयानन्द ने कहा कि गुरु जी आप वृद्ध हैं आपके हाथ कोमल हैं और मेरा शरीर कठोर है। मुझे मारने से आपको अवश्य कष्ट हुआ होगा और वे गुरु जी के हाथों को सहलाने लगे।

दण्डी स्वामी बड़े दयालु थे, वे शिष्यों को बार–बार पूछने पर भी पाठ बता दिया करते थे, किन्तु दयानन्द के साथ उनका व्यवहार कुछ विलक्षण ही था। उनको वे पाठ एक ही बार बताते थे, क्योंकि अपनी तीक्ष्ण स्मरण शक्ति के कारण वे उसे कंठस्थ कर लेते थे। परन्तु एक दिन अष्टाध्यायी की कोई क्लिष्ट प्रयोग सिद्धि आ गई, जो दयानन्द को विस्मृत हो गई। उसे स्मरण करने का प्रयास किया, किन्तु व्यर्थ। अन्त में गुर जी से प्रार्थन की, कि कृपया इसे फिर बता दीजिए। गुरु जी ने कोरा उत्तर दे दिया। दयानन्द ने फिर प्रयत्न किया। अनेक आग्रह के उपरान्त भी गुरु जी ने कड़क कर कह दिया।" हम एक पाठ को बार–बार नहीं बताते। पिछला पूर्ण किए बिना आगे नहीं पढ़ाते, जाओ स्मरण करके आओ नहीं यमुना में भले ही डूब जाना–मेरे पास मत आना।" दयानन्द यमुना के तीर आकर बैठ गए। पाठ का चिन्तन करने लगे। उन्हें योग निद्रा आ गई और इसी में उन्हें लगा कि कोई उन्हें पाठ पढ़ा रहा है। प्रयोग सिद्धि की समाप्ति पर उनकी योग निद्रा भंग हुई। वे पुलकित मन से गुरु के चरणों में पहुंचे और उनहें पाठ सुना दिया। विरजानन्द के हर्ष का पार नहीं रहा। उन्हें विश्वास हो गया कि मनोरथ को पूर्ण करने वाला शिष्य मिल गया है।

एक दिन एक नवीन वेदान्ती स्वामी जी से वार्तालाप करने लगा। स्वामी जी की अकाट्य युक्तियों से निरुत्तर होकर उनसे कहा–"महाराज! आप चाहें जो करें, परन्तु सत्य तो यही है कि जगत मिथ्या है।" स्वामी जी ने आगे बढ़कर उसके धीरे से चपत लगा दी। इस पर वह क्रुद्ध होकर कहने लगा–आप जैसे ज्ञानी को केवल मतभेद के कारण चपत नहीं लगानी चाहिए। स्वामी जी ने कहा कि जब जगत् मिथ्या है और भ्रम के अतिरिक्त कुछ है नहीं, तब वह कौन है जिसने आपके चपत लगाई। वह नवीन वेदान्ती उसी चपत से चेत गया और स्वामी जी से कहा कि आपने मेरी आँखें खोल दीं।

एक रात दयानन्द सोते–सोते उठ बैठे। ब्रह्मचारी बल्देव ने पूछा–"महाराज! क्या कोई कष्ट है?" औषधि उपचार या वैद्य को बुलाऊँ। "स्वामी जी ने उत्तर दिया। भोले ब्रह्मचारी मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। शरीर में कोई व्याधि नहीं, परन्तु देश की दुर्दशा उसके धार्मिक–सामाजिक पतन और इस पर छाये विदेशियों का शासन मेरी नींद भंग कर देता है।

हरिद्वार में एक दिन स्वामी जी बैठे–बैठे लेट गए और फिर उठ कर टहलने लगे। एक भक्त ने विनय पूर्वक पूछा–"महाराज! आपको आज क्या कोई वेदना हो रही है।" उन्होंने लम्बी श्वांस भरकर उत्तर दिया–"भाई! इससे अधिक हृदय विदारक वेदना और क्या हो सकती है कि विधवाओं की दुःख भरी आहों से अनाथों के निरन्तर आर्तनाद से और गो वध के जघन्य पाप से इस देश का सर्वनाश हो रहा है।"

एक निर्धन विधवा माँ असहायावस्था एवं दरिद्रता के कारण अपने इकलौते बेटे की मृत्यु पर उसके शव को ढकने के लिए गजभर वस्त्र न जुटा सकी। अपनी एक मात्र धोती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को फाड़ती है। आधे भाग से अपनी शरीर को, शेष आधे भाग से बच्चे के शव को ढंक कर रात के अंधेरे में गंगा के तट पर लाती है। स्वामी जी भी पवित्र गंगा के तट पर ध्यान मग्न बैठे हैं। माता ने बच्चे के शव को नदी में प्रवाहित कर दिया–और उसके शव पर लपेटे धोती के टुकड़े को खींच लिया। शव प्रवाह से हुई ध्वनि के कारण स्वामी जी का ध्यान भंग हुआ–और उन्होंने यह दृश्य देख लिया। माता ने उस धोती के कपड़े को धोकर अपने सिर पर डाल लिया और बिलखती हुई अपने घर को लौटने लगती है। महाराज ने कौतूहल–वश उस माता से पूछा–"माता! अमूल्य निधि हृदय के टुकड़े अपने बच्चे के शव को तू गंगा के सुपुर्द कर आई, इस गज–डेढ़ गज कपड़े से वह भी पुराने कपड़े से तेरा इतना मोह है कि इसे धोकर वापस लिए जा रही है। सहानुभूति के शब्द सुनकर माँ के धैर्य का बांध टूट गया और वह दहाड़ मारकर रुदन करने लगी। शान्त होने पर उसने बताया–"बाबा! मैं एक भाग्यहीन विधवा हूँ। मेरी आँखों का तारा–जीवन का सहारा यही एक पुत्र था। देव को यह भी नहीं भाया। उसने मुझसे छीन लिया। लोकाचार वश इसे कपड़े में लपेट कर ही जल प्रवाह करना था सो कर दिया। मेरे घर में अन्य कोई नया–पुराना कपड़ा नहीं है, अन्य ला नहीं सकती। सो इस टुकड़े को दूसरे के साथ जोड़ करअपनी सतीतत्व को ढंक सकूंगी। यह कहकर वह पुनः जोर जोर से रोने लगी। उस देवी के करुण–क्रन्दन को सुनकर स्वामी दयानन्द जो अपनी भगनी की मृत्यु पर नहीं रोये, राजसी घर परिवार छोड़ते हुए नहीं रोये, विरोधियों के अत्याचार सहन करते समय नहीं रोये, वह आज बच्चे की भांति बिलबिलाने लगे और देश के दुर्भाग्य का चित्र उनकी आँखों में खिंच गया और उन्होंने इसे बदल डालने का व्रत धारण कर लिया।

कासगंज में एक दिन स्वामी जी बाजार में जा रहे थे। मार्ग में एक मरखना विशाल साँड़ मिला। लोग उसे देख कर इधर–उधर भागने लगे और स्वामी जी से भी भागने को कहा। किन्तु स्वामीजी एक पग भी इधर–उधर नहीं हुए और सीधे सांड़ की ओर चलते गए, जब उसके बहुत निकट पहुंच गए तो सांड़ स्वयं मार्ग छोड़कर एक ओर से निकल गया। स्वामीजी की दृढ़ता–धैर्य और निर्भयता पर सारा बाजार आश्चर्यचकित हो गया। एक भक्त चैनसुख ने पूछ ही लिया–यदि सांड़ सींग चला देता तो आप क्या करते। महाराज ने हंसते हुए कहा–करते क्या सींग पकड़कर परे ढकेल देते" एक बार लड़ते हुए दो सांड़ों को सींगों से पकड़कर उन्होंने अलग भी कर दिया था।

एक दिन कुछ पहलवान स्वामी जी के बल की चर्चा सुनकर उन्हें देखने आए। स्वामी जी उसी समय गंगा स्नान से लौटे ही थे। एक पहलवान ने हंसते हुए कहा–यदि स्वामीजी व्यायाम करें तो बल में किसी के हिलाए न हिलें" यह सुनकर स्वामी जी ने अपना कोपीन निचोड़ा और मल्लों से कहा–यदि आप में से किसी को अपने बल का अभिमान हो तो इस कोपीन में से पानी की एक बूंद निकाल कर दिखाये। सबने बारी–बारी से बल लगाया। परन्तु वे कोपीन में से पानी की एक बूंद भी नहीं निकाल सके और स्वामी जी ने उसी कोपीन को फिर निचोड़ कर कुछ बूंदें निकाल दी। पहलवान स्वामी जी का बल देखकर दंग रह गए।

पटना से मुंगेर जाते समय जमालपुर जंकशन पर स्वामी जी प्लेटफार्म पर घूमने लगे। उस समय वहाँ एक अंग्रेज इंजीनियर भी अपनी पत्नी के साथ विद्यमान था। कोपीन धारी परमहंस को अपनी सामने घूमते देखकर उसकी पत्नी ने बुरा मनाया। इंजीनियर ने स्टेशन मास्टर को बुलाकर कहा इस नंगे व्यक्ति को टहलने से रोक दो। स्टेशन मास्टर ने महाराज के निकट जाकर कहा–स्वामी जी दूसरी ओर कुर्सी पर बैठिए अभी मुंगेर की गाड़ी के आने में देर है। स्वामी जी ने स्टेशन मास्टर से कहा–जिसने तुमको मेरे पास भेजा है–उसको जाकर बतादो–मैं उस युग का मनुष्य हूँ जब आदमी और हब्बा नंगे अदन के बाग में सैर किया करते थे। स्टेशन मास्टर तो चला गया–किन्तु स्वामी जी पूर्ववत् ही घूमते रहे। अंग्रेज ने दुबारा स्टेशन मास्टर से कहा तो–उसने कह दिया यह कोई सामान्य सन्त नहीं –स्वामी दयानन्द हैं। यह जानकर वह अंग्रेज भी स्वामी जी के गाड़ी आने तक बराबर आदर पूर्वक बातें करता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूना में सफल वेद प्रचार के बाद जब स्वामीजी विदा लेने लगे तो इनकी विशाल शोभा यात्रा निकाली गई। विरोधियों ने इनके गौरव से चिढ़ कर एक गधे पर गैरिक वस्त्रों के प्राणी को बिठाकर– गर्दभानन्द की जय, दयानन्द की जय" के नारे लगाते हुए शोभा यात्रा में विघ्न डालने का यत्न किया। इन लोगों ने शोभायात्रा पर ईट–पत्थर–गोबर और कीचड़ फैंकना प्रारम्भ कर दिया। हाथी, घोड़े, बैंड, पुलिस सहित चार सौ व्यक्तियों की शोभा यात्रा में स्वामी पैदल ही चल रहे थे। उपद्रव शान्त होने पर शोभा यात्रा लक्ष्य स्थल पर पहुंची और स्वामी जी ने अपना व्याख्यान इस प्रकार दिया–जैसे कोई उपद्रव हुआ ही न हो। उनकी इस स्वस्थ्य मनः स्थिति को देखकर भक्तगण आश्चर्य चकित रह गए। गर्दभ यात्रा में एक आदमी का मुख काला करके गधे पर चढ़ा कर तालियों के साथ नारे लगाते हुए जाने की बात जब एक भक्त ने स्वामी दयानन्द से कही तो उन्होंने कोई संकोच या हीनता न अनुभव करते हुए सहज ही उत्तर दे दिया कि नकली दयानन्द का मुहं काला होने में विस्मय की बात नहीं है।

लाहौर में स्वामी जी ने काल्पनिक पुराणों की तीव्र समालोचना की, जिससे पौराणिकों ने चिढ़कर स्वामी जी के अतिथेय रतनचन्द को भड़वा कहकर उनके उद्यान से जाने को विवश कर दिया। स्वामी जी के भक्त उनको रहीम खाँ की कोठी में ले गए। नवाब नवाजिस अली खाँ की कोठी में ठहरने पर जब स्वामी जी का व्याख्यान हुआ, जिसमें मुस्लिम श्रोता भी थे, तो स्वामी जी ने निःसंकोच इस्लाम मत की नीर–क्षीर समीक्षा से भी नहीं चूके।

तत्कालीन वायसराय नार्थ बुक से जनवरी, १८७३ में स्वामी दयानन्द की भेंट कलकत्ता में हुई। दोनों ओर से सामान्य शिष्टाचार के बाद वायसराय ने स्वामी जी से कहा–मैंने सुना है कि आप दूसरे मत–मतान्तर व धर्मों की बड़ी आलोचना करते हैं। इससे मुसलमान–ईसाई जनता में क्षोभ उत्पन्न होता है और इनके हृदय में आपके प्रति शत्रुता उमड़ती है। यदि आपको कोई खतरा हो तो क्या आप अपनी सुरक्षा के लिए सरकार से कोई विशेष प्रबन्ध चाहते हैं। दयानन्द ने उत्तर दिया मुझे अपने विचारों का प्रचार करने में अंग्रेजी राज्य. में पूर्ण स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप में किसी प्रकार का खतरा नहीं है। इसके बाद वायसराय ने कहा–यदि ऐसा है तो क्या आप अपने देश में अंग्रेजी शासन द्वारा प्रदत्त उपचारों का वर्णन भी व्याख्यानों में किया करेंगे और आप जो व्याख्यान से पूर्व वेद विनय करते हैं। उसमें भारत में ब्रिटिश राज्य के निरन्तर स्थिर रहने की प्रार्थना भी किया करेंगे। दयानन्द ने निर्भीक उत्तर दिया–मैं ऐसा किसी बात को मानने में असमर्थ हूँ क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे देश वासियों को अबाध राजनैतिक विकास और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्व स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। श्रीमान मैं तो नित्य प्रातः, सायं सर्वशक्तिमान परमात्मा से अपनी प्रार्थनाओं में यही मांगता हूँ कि उसकी दिव्य दया से मेरा देश विदेशियों की दासता से मुक्त हो जाए। दयानन्द स्वराज्य आकाश के इस अप्रत्यासित प्रदर्शन से वायसराय स्तम्भित हो गए और वार्ता समाप्त हो गई।

जोधपुर में अपमानित वैश्या के द्वारा प्रदत्त धन के प्रलोभन में सेवक जगन्नाथ ने दुग्ध में विष मिश्रित कर स्वामी जी को पिला दिया था। इसके कारण उनका शरीर रोग ग्रस्त था। चिकित्सा के लिए भक्तगण अज़मेर ले गए। एक माह की चिकित्सा के बाद भी लाभ नहीं हुआ। आखिर–अन्तिम विदा की बेला आ गई। दीपावली का दिन था। सांय काल साढ़े पाँच बजे स्वामी जी ने कहा कि सब आर्य जनों को बुलाओ और सिरहाने की ओर पीछे खड़ा कर दो, फिर चारों ओर के द्वार तथा ऊपर के रोशनदान खोल दो। शरीर को स्वच्छ–स्वस्थ करके मृत्यु शैय्या पर स्वामी जी ने चारों ओर दृष्टि डाली, कुछ वेद मन्त्रों का पाठ किया। संस्कृत में ईश्वर प्रार्थना की। हिन्दी में कुछ स्तुति की फिर प्रसन्नचित्त होकर गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे। कुछ देर समाधि की स्थिति में रहकर फिर नेत्र खोलकर मुख से उच्चारण किया–"हे दयामय! हे सर्वशक्तिमान ईश्वर! तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा तूने अच्छी लीला की" और स्वयं करवट लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा श्वास रोक कर फिर तीव्र वेग से बाहर निकल दिया। मृत्यु के इस दृश्य को देखकर वैज्ञानिक किन्तु नास्तिक विद्यार्थी गुरुदत्त भी आस्तिक हो गए थे।

ऋषि दयानन्द के बाल्यकाल से बलिदान तक ऐसे असंख्य प्रेरक प्रसंग हैं, जो मानस मात्र को उत्साह–उमंग, स्वाभिमान, सन्तोष, विजय और सन्मार्ग दर्शन कराते हैं। हम ऐसे महान् तपोनिष्ठ–वैज्ञानिक स्वातन्त्र योद्धा के सदा ऋणी रहेंगे।

□□□

दान की महिमा

अमेरिका के एक बड़े धनाड्य जॉन डी रॉकफेलर के शब्दों में दान की महिमा ये शब्द जब कहे वे रोग से पीड़ित थे।

मैंने न तो किसी को दान दिया, न ही तपस्या की और न ही शुभ भाव पैदा हुए। अतः विभो! मैं व्यर्थ ही इधर उधर भटकता रहा। अपनी जिन्दगी में कोई भी अच्छा कार्य नहीं किया। मैं इस भ्रम में ही रहा कि मेरे पास धन ही धन है, फिर दुःख कहाँ टिकेगा? परन्तु मेरी सभी धारणाएँ निर्मूल हुई।

प्रभो! मैंने अपने जीवन में भयंकर लूट मचाई। मैंने किसी भी दुखिया पीड़ित के कभी आँसू नहीं पोंछे, न ही कभी किसी को सुख शांति पहुँचायी। पैसे को ही मैंने परमेश्वर समझा। किसी को दान देकर न मैंने किसी का दुःख मिटाया। इस रोग ने मेरी आँखें खोल दी है। अब मुझे ज्ञान हो गया है कि अगर मैं किसी को सुख शांति पहुँचाता तो मुझे आज सुख शाँति मिलती। मैंने तो दूसरों को काँटे ही चुभोए, अब मुझे फल कैसे मिल सकते हैं? अगर मैंने किसी दूसरे की आत्मा को ठंडक पहुँचाई होती तो मुझे आज ठंडक मिलती।

–अशोक आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्द सन्देश" पत्रिका का मूल्याँकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बनें हैं। आप से भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटो से बचने के लिए २००/- रुपए भेजकर आजीवन सदस्य बने। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचायें। इसके लिए हम आपका सहयोग चाहतें हैं, आप से प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किए जा रहे हैं:-

६०१. मिट्ठन लाल C/o श्री ओंकारमल ३४, नई मण्डी फतेहाबाद (हिसार) (हर.)
६०२. ला0 मुन्शीलाल जी किराना दुकान गांव-बड़ौदा सिहानी, जिला-गाजियाबाद (उ.प्र.)
६०३. श्री रत्नाकर रत्न वर्मा ग्राम-पल्हैडा, पो-मोदीपुरम्, जिला-मेरठ (उ.प्र.)
६०४. श्री सत्यपाल जी आर्य सी-१०, फेज-१, अशोक विहार, दिल्ली-५७
६०५. श्री संतराम यादव सु. श्री भवानी सहाय मु.पो.-बवानियां, जिला-महेन्द्रगढ़ (हरि.)
६०६. श्री सत्यप्रकाश S/o श्री शिवधन जी शादीपुर, जिला-जींद (हर.)
६०७. श्री पुरुषोत्तमदास आर्य सु. श्री. लक्ष्मीनारायन मु. पो.-जूंडला, जिला करनाल (हरि.)
६०८. श्री डा. रामकृष्ण जी आर्य ग्राम-माधोरामपुर, जिला-वाराणसी (उ.प्र.)
६०९. श्री दासरी नरसैय्या पो0-हसनपर्ती (मंडल) जिला-वरंगल (आ.प्र.)
६१०. श्री गजानन किराना स्टोर्स, मु.पो.-उमरगा, जिला-उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)
६११. श्री जसवीर सिंह RZ17 रोशन गार्डन, नजबगढ़-, दिल्ली-४३
६१२. श्री राम सिंह जी आर्य ६४बी, आदर्श नगर, पानीपत, जिला-पानीपत (हर.)
६१३. श्री खारे वहरा राम जी वर्मा ग्राम-भटिया पो.-दोंदे कला, जिला-रायपुर (म.प्र.)
६१४. श्री प्रदीप कुमार जी १/११६८, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२
६१५. श्रीमती कृष्णा देवी पत्नी श्री सत्यप्रकाश जी शर्मा मु. पो. घटायन, जिला-मु0 नगर (उ.प्र.)
६१६. श्री प्रज्ञा पुस्तकालय, महावीर सत्संग भवन, कोठा पार्चा, फैजाबाद (उ.प्र.)
६१७. श्री राजाराम जिज्ञासु स्वाध्याय संस्थान, आर्य समाज, चौक बदायूँ (उ.प्र.)
६१८. श्री रिसाल सिंह जी ७३, सैक्टर-११, पंचकूला (हर.)
६१९. श्री विनोद चौधरी सु. श्री एस.पी. सिंह सावन पब्लिक स्कूल, नई दिल्ली-३०
620. **HAV/CLK RANVIR SINGH DESHWAL** HQ-21, MTN DIV C/O 99A, P.O.

धर्मपाल आर्य
(मंत्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/92
नवम्बर, १९९२
बिना टिकट भेजने का लाइसन्स नं.
यू. (डी.एन.) १४४
आर. आर. नं. २५५८७/७३
Post in Delhi PSO Indraprastha
on 2, 3/11/92
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

विशुद्ध-मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोकरहित हिन्दी भाष्य, प्रक्षिप्त श्लोकों की सप्रमाण एवं अन्तःसाक्षी पूर्वक समीक्षा सहित और विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

१. वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवं अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी।
२. प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित एवं विशेष स्थलों पर समीक्षा सहित।
३. अवैदिक एवं असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों तथा मनु की मौलिक मान्यताओं से युक्त।
४. महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यात श्लोकार्थों से अलंकृत।
५. अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति' की भाँति।

विशेष जानकारी के लिए सूचीपत्र मंगायें

१२००/- सैकड़ा
सत्य के प्रचारार्थ
अजिल्द १०००/- सैकड़ा
फुल कपड़ा जिल्द

सत्यार्थ प्रकाश

घर घर पहुँचाए सफेद कागज़ सुन्दर छपाई शुद्ध संस्करण वितरण करने वालों के लिए प्रचारार्थ

आकार—२३"×३६"÷१६ पृष्ठ ४२० की दर
अजिल्द १०/जिल्द PVC ११/फुल कपड़ा जिल्द १२/-

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६ दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

ग्राम.
पो.
जिला.

मुद्रक : न्यू पब्लिक प्रेस, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली—११० ००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अप्रैल, १९९३

वर्ष २१	:	अंक ६
दयानन्दाब्द	:	१६९
विक्रम संवत्	:	वैशाख, २०५०
सृष्टि संवत्	:	१,९६,०८,५३,०९४

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-६ स्थापित - १९६६

संस्थापक	:	**स्व० दीपचन्द आर्य**
सम्पादक (अवैतनिक)	:	राजवीर शास्त्री
प्रकाशक	:	धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक	:	यशपाल आचार्य

कार्यालय
"दयानन्द सन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-११० ००६
फोन : 238360, 233112

एक प्रति २.५० रू०
वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ६३१

इस अंक के लेख

- ☐ वेदोपदेश — ३
- ☐ साकारोपासना की थोथी दलीलें — ५
- ☐ पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ — ८
- ☐ वेद की ओर लौटो — ९
- ☐ सत्य की कसौटी — ९
- ☐ राम तुम्हारा शत अभिनन्दन — १०
- ☐ क्या तुमने राम हैं पूजे? — १०
- ☐ आओ धरती को स्वर्ग बनायें — ११
- ☐ धर्म का यथार्थ स्वरूप — १५
- ☐ महर्षि दयानन्द-दर्शन — २१
- ☐ तुलसीकृत रामायण-समीक्षा — २३
- ☐ हमको भारतवासी जानो — २६

'सत्यार्थप्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपए, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ रुपए और सजिल्द बारह सौ रुपए, सैकड़ा में प्राप्त करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महर्षि दयानन्द के उपकार"

कौन था वह कौन था हमें जगावणिया
भूले भटकों को वह सीधी राह बतावणिया–
बच्चे, बूढ़ों की अनमेल शादी होती थी
लाखों विधवा बैठी दुःख में जिन्दगी खोती थी
रोती थी दुखिया आया उनकी धीर बन्धावणिया–
पुनर्विवाह कर फिर से भाग सुहाग बनावणिया॥१॥

हिन्दू नहीं बताया नाम हमारा आर्य
आर्य जन करें हमेशा श्रेष्ठ कार्य
अनिवार्य नित्य करें जो सन्ध्या हवन रचावणियां
दस नियम पालता जो १६ संस्कार करावणिया ॥२॥

फैली छूआछूत यहां लाखों जाति पांति
एक दूसरे को अपने से नीचा बतलाती
जाति मनुष्य की एक हमें यह पाठ पढ़ावणियां
चार वर्ण गुणा कर्मों के अनुसार सुझावणिया॥३॥

वेद पढ़ना छोड़ पोप पुराण पढ़ते थे
पत्थर की मूर्ति पर लड्डू पेड़े चढ़ते थे
लड़ते थे स्वार्थी लोग आया झगड़ा मिटावणियां
अज्ञान अन्धेरे में वैदिक प्रकाश फैलावणिया ॥४॥

भूत प्रेत यहां मानकर मुर्दों से यहां डरते थे
तेहरामी वरणी बरसोधी श्राद्ध करते थे,
भरते थे पिंड गया में इस दुःख से छुड़ावणिया
जिन्दो की सेवा करना यह सबक सिखावणिया॥५॥

मिली आजादी जिनकी दया से कटा गुलामी फन्द
'ताराचन्द' वह देश हितैषी था स्वामी दयानन्द
मतिमन्द एक हो गया 'जगना' जुल्म कमावणियां
अपने हाथों इस भारत का भानु छिपावणिया ॥६॥

पं. ताराचन्द वैदिक, कविस्थल, जि. महेन्द्रगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

> वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।। —महर्षि दयानन्द

उपदेश–(क) मनुष्य और राक्षस की पहचान क्या है?

(ख) इस जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भी मिलता है।

दीर्घतमाः ऋषिः। आत्मा देवता। अनुष्टुप् छन्दः गान्धारः स्वरः।

अथात्महन्तारो जनाः कीदृशा इत्याह।

अब आत्मा के हननकर्त्ता अर्थात् आत्मा से विरुद्ध आचरण करने वाले जन कैसे होते हैं, यह उपदेश किया है।

ओ३म्–**असुर्या नाम ते लोका ऽअन्धेन तमसावृताः।**

ताँस्ते प्रेत्यापिं गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।। (यजु॰ ४०/३)

पदार्थ–(असुर्य्याः) असुराणाम्=प्राणपोषणतत्पराणाम् अविद्यादियुक्तानामिमे सम्बन्धिनस्तत्सदृशः पापकर्माणः (नाम) प्रसिद्धौ (ते) (लोकाः) लोकन्ते=पश्यन्ति ते जनाः (अन्धेन) अन्धकाररूपेण (तमसा) अत्यावरकेण (आवृताः) समन्ताद्युक्ताः=आच्छादिताः (तान्) दुःखान्धकारावृतान् भोगान् (ते) (प्रेत्य) मरणं प्राप्य (अपि) जीवन्तोऽपि (गच्छन्ति) प्राप्नुवन्ति (ये) (के) (च) (आत्महनः) य आत्मानं घ्नन्ति=तद्विरुद्धमाचरन्ति ते (जनाः) मनुष्याः।।

सपदार्थान्वय–ये (लोकाः) लोकन्ते–पश्यन्ति ते (जनाः) (अन्धेन) अन्धकाररूपेण (तमसा) अत्यावरकेण (आवृताः) समन्ताद्युक्ताः-आच्छादिताः (ये, के, च) (आत्महनः) य आत्मानं घ्नन्ति–तद्विरुद्धमाचरन्ति ते (जनाः) मनुष्याः सन्ति (ते) (असुर्य्याः) असुराणां प्राणपोषणतत्पराणाम् अविद्यादियुक्तानाम् इमे सम्बन्धिनस् तत्सदृशाः पापकर्माणः (नाम) प्रसिद्धाः (ते) (प्रेत्य) मरणं प्राप्य (अपि) जीवन्तोऽपि (तान्) दुःखान्धकारावृतान् भोगान् (गच्छन्ति) प्राप्नुवन्ति।।

भावार्थ–त एव असुरा, दैत्या, राक्षसाः, पिशाचा, दुष्टा मनुष्या य–आत्मन्यन्यद् वाच्यन्यत् कर्मण्यन्यद् आचरन्ति। ते न कदाचिद् अविद्या दुःखसागराद् उत्तीर्णेऽऽनन्दं प्राप्तुं शक्नुवन्ति। ये च यदात्मना तन्मनसा, यन्मनसा तद्वाचा, यद्वाचा तत्कर्मणाऽनुतिष्ठन्ति, त एव देवा, आर्या, सौभाग्यवन्तोऽखिलजगत् पवित्रयन्त इहाऽमुत्रातुलं सुखमश्नुवते।

भाषार्थ–जो (लोकाः) मनुष्य (अन्धेन) अन्धकाररूप (तमसा) अज्ञान के आवरण से (आवृताः) सब ओर से ढके हुए हैं (ये, के, च) और जो कोई (आत्महनः) आत्मा के विरुद्ध आचरण करनेहारे (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे (असुर्य्याः) प्राण-पोषण में तत्पर, अविद्यादि दोनों से युक्त लोगों एवं उनके सम्बन्धियों के सदृश पाप कर्म करने वाले (नाम) प्रसिद्ध हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरने के पीछे (अपि) और जीते हुए भी (तान्) दुःख अज्ञान रूप अन्धकार से युक्त भोगों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ–वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस, पिशाच एवं दुष्ट हैं, जो आत्मा में और, वाणी में और, तथा कर्म में कुछ और ही करते हैं। वे अविद्यारूप दुःख सागर से पार होकर कभी आनंद को नहीं प्राप्त कर सकते। और जो लोग जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में तथा जैसा वाणी में वैसा कर्म में। छलकपटरहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचरण करते हैं वे ही देव, आर्य, सौभाग्यवान् जन सब सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक तथा परलोक में अनुपम सुख को प्राप्त करते हैं।

अन्यत्र व्याख्यात-महर्षि दयानन्द ने 'व्यवहारभानु' पुस्तक में भी इस मन्त्र की व्याख्या की है–

(ये) जो (आत्महनः) आत्महत्यारे अर्थात् आत्मस्थ ज्ञान से विरुद्ध कहने, मानने और करने हारे हैं (ते) वे ही (लोकाः) लोग (असुर्या नाम) असुर अर्थात् दैत्य, राक्षस नाम वाले मनुष्य हैं और वे ही (अन्धेन तमसावृताः) बड़े अधर्म रूप अन्धकार से युक्त होके जीते हुए और मरण को प्राप्त होकर (तान्) दुःखदायक देहादि पदार्थों को (अभिगच्छन्ति) सर्वथा प्राप्त होते हैं। और जो आत्मरक्षक अर्थात् आत्मा के अनुकूल ही कहते, मानते और आचरण करते हैं, वे मनुष्य विद्यारूप शुद्ध प्रकार से युक्त होकर देव अर्थात् विद्वान् नाम से प्रख्यात हैं, वे ही सर्वदा सुख को प्राप्त होकर मरने के पीछे भी आनन्दयुक्त देहादि पदार्थों को प्राप्त होते हैं।

भाष्यसार–आत्महत्यारे तथा आत्मरक्षक मनुष्यों का लक्षण–आत्मा नित्य अमर है, पुनरपि उसके संस्कृत तथा असंस्कृत होने से ही उनकी रक्षा तथा हत्या कहलाती है। आत्म हत्यारे वे मनुष्य हैं कि जो अज्ञानान्धकार से ढके होने के कारण आत्मा, मन, वचन तथा कर्म में भिन्नता रखते हैं और स्वार्थरत होकर दुष्कर्मों में ही लगे रहते हैं। जिसके परिणामस्वरूप ऐसे राक्षसीवृत्ति के लोग जीवित रहते हुए तथा मरने के बाद भी सुखी नहीं हो सकते और आत्मरक्षक देव वे मनुष्य होते हैं कि जो विद्याप्रकाश को प्राप्त होकर आत्मा, मन, वचन तथा कर्म में एकता रखते हैं, ऐसे छलकपटरहित मनुष्य ही बड़े सौभाग्यशाली सच्चे आर्य होते हैं और समस्त संसार को पवित्र करते हुए इस जीवन तथा मरने के बाद भी अनुपम सुखों को प्राप्त करते हैं।

'दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर' से उद्धृत
व्याख्याता–**श्री आचार्य सुदर्शन देव**

□□□

मूर्तिपूजा के विषय में महर्षि के विचार

(क) जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़बुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

(ख) मूर्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो कोई न हुआ सब मूर्तिपूजक अज्ञानी रहकर मनुष्य जन्म व्यर्थ खोकर बहुत से मर गए और जो अब हैं, व होंगे मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर नष्ट हो जायेंगे।

(ग) मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है, पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता।

(घ) मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता, किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है।

(ङ) (प्रश्न) साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है। इसलिए मूर्तिपूजा रहनी चाहिए।
(उत्तर) साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता। और जो साकार में स्थिर होता, तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता। परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता।

(च) (प्रश्न) सीढ़ी-सीढ़ी से चढ़े तो भवन पर पहुँच ही जाए। पहली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे, तो नहीं जा सकता। इसलिए मूर्तिपूजा प्रथम सीढ़ी है। (उत्तर) (यह भी एक महाभ्रान्ति है) मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है। धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान योगियों के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं।

(छ) अन्धतमः प्रविशन्ति योऽसम्भूतिमुपासते।
जो असम्भूति=प्रकृति=कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं, वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और सम्भूति=जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, वे ...... महामूर्ख चिरकाल घोर दुखःरूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं।

[सत्यार्थ. ११वाँ समु.]

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकारोपासना की थोथी दलीलें

(अखण्ड ज्योति की ढोल की पोल)

दिसम्बर, १९९२ की गायत्री शक्तिपीठ से प्रकाशित ...ड ज्योति' पत्रिका में एक लेख प्रकाशित हुआ है, ... शीर्षका है—साकारोपासना के पक्ष में कुछ ... (अखण्ड ज्योति) पत्रिका में खण्डज्योति परक ...ढ़कर अत्यधिक आश्चर्य हुआ। इस पत्रिका में ज्ञान ...ोति फैलाने वाले लेख छपते तो यह पत्रिका अपने ...रूप बन पाती किन्तु जिसमें लेखकों के नाम ही गुप्त ...ते, उसमें सत्यज्ञान का प्रकाशन कैसे सम्भव है? ... इस लेख में जो काल्पनिक मिथ्या बातों का ...न किया गया है, उन सब का उत्तर देना तो सम्भव ...ं किन्तु अपने पक्ष के समर्थन में जो वेदादि शास्त्रों ...प्रकाश उद्धृत किए गये हैं, जिनको पढ़कर सन्देह, ...की उत्पत्ति होती है, उन पर विचार करना ...वश्यक है।

...स्तुत लेख में यह स्पष्ट कहा गया है—"प्रतिभा ...से अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव नहीं ...कि ईश्वर सूक्ष्म है। वस्तुतः मूर्ति पूजा ईश्वर उपासना ...रम्भिक शिक्षा सत्र है। " ईश्वर निराकार है, वह ...त्रों से दिखाई नहीं देता, इत्यादि। पुनरपि इसके ...ईश्वर को साकार मानना, साकारोपासना के पक्ष में ...देकर वकालत करना कैसी भ्रान्तिमूलक परस्पर ... बातें इस लेख में की हैं। जैसे—

...चूँकि सामान्य बौद्धिक स्तर वाले व्यक्तियों के लिए ...अध्यात्म के सूक्ष्म तथ्यों पर ध्याना व स्थित होना ...कठिन होता है इसलिए ऋषियों ने प्रतीक पूजा की ...मूर्ति-पूजा की प्रथा चलाई।

...—जैसे किसी छात्र ने एम.ए. की परीक्षा देनी है, ... सीधा ही तो ऐसी योग्यता नहीं रखता कि एम.ए. ...में बैठ सके, किन्तु वैसी योग्यता बनाने के लिए ...ए. पूर्व की परीक्षा में देनी पड़ेगी। क्रमशः परीक्षा पास करते-करते छात्र एम.ए. कक्षा की योग्यता प्राप्त कर लेता है। एतदर्थ छात्र एम.ए. के विषय का अध्ययन प्रारम्भ से ही करता है। किन्तु ऐसा कभी नहीं होता कि एम.ए. तो संस्कृत से करना है और उससे पूर्व परीक्षायें अंग्रेजी से करने लगे। इसी प्रकार उपासक को ध्यान तो निराकार ईश्वर का करना है तो उसका अभ्यास प्रारम्भ से ही करना होगा। ऐसा कभी भी सम्भव नहीं है कि साकार का अभ्यास करने वाला निराकार का अभ्यासी बन जायेगा।

साकार की पूजा करते-करते व्यक्ति समस्त जीवन बिता देता है, फिर भी उसकी अभ्यासार्थ की गई साकारोपासना नहीं छूटती। इससे स्पष्ट है साकारोपासना से निराकार की उपासना सम्भव नहीं है। प्रथम कक्षा का छात्र कबूतर के आश्रय से क अक्षर को सीखता है और सीखने के बाद कबूतर का आश्रय छोड़ देता है, परन्तु साकारोपासकों में से एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं करता। इससे साकारोपासना निराकार की प्राप्ति का कभी सोपान नहीं बन सकती। और अखंड ज्योति की यह बात भी सर्वथा मिथ्या है कि ऋषियों ने मूर्ति पूजा की प्रथा चलाई। आज तक किसी भी ऋषि का कोई प्रमाण इसकी पुष्टि नहीं करता। यही होता तो इस लेख में अवश्य दिखाया गया होता।

(ख) इस लेख में पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के विचार भी अपने पक्ष के समर्थन में दिखाने का प्रयास किया है किन्तु यह सब भ्रममूलक है। यदि ये विद्वान मूर्ति पूजा के समर्थक होते तो पश्चिम के देशों में भी मूर्ति पूजा का प्रचलन होता। किन्तु पश्चिम देशों में मूर्ति पूजा का प्रचलन कहीं पर भी नहीं है।

(ग) जिसने भी यह लेख लिखा है, उसे अपने परस्पर विरोधी विचारों पर भी ध्यान नहीं है और विक्षिप्त जैसी स्थिति में होकर लिखता चला गया है। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखता है–

(1) "जड़पूजा तो प्रकृति प्रदत्त स्वभाव है वे निरन्तर अपनी शक्तियों से हमें लाभान्वित करते रहते हैं।" और फिर लिखता है–"इन जड़-पदार्थों में स्वयमेव कोई शक्ति नहीं है।"

(2) "ईश्वर निराकार है। वह स्थूल नेत्रों से दिखाई नहीं देता।" और फिर लिखता है–"प्रतिभा से अन्तिम लक्ष्य (सूक्ष्म ईश्वर) तक पहुँचना संभव नहीं, क्योंकि ईश्वर सूक्ष्म है।" इस प्रकार मूर्ति पूजा का स्वयं ही खण्डन करके मूर्ति पूजा की वकालत एक पागल की भाँति करने चला है। ऐसी परस्पर विरोधी बातों पर कोई आँखों का अन्धा और गाँठ का पूरा मूढ़मति ही विश्वास कर सकता है, बुद्धिमान नहीं।

(घ) इस लेख में परमेश्वर की पवित्र वाणी वेद को भी झुठलाने का प्रयास किया गया है किन्तु अपने अन्ध भक्तों को वेद के नाम से बहकाने का दुस्साहस किया गया है। जब उन स्थलों को देखा गया तो लेखक की बुद्धि का दिवालिया स्पष्ट हो गया। वेद मन्त्रों में मूर्ति पूजा का कहीं भी संकेत नहीं है। वेद तो स्पष्ट घोषणा करता है–न तस्य प्रतिमा अस्ति (यजु.) अर्थात् उस सर्वव्यापक परमेश्वर की प्रतिमा (मूर्ति) कभी नहीं बन सकती। क्योंकि परमेश्वर तो–स पर्यगात्-अकायम् (यजु.) कण-कण में व्यापक है और वह निराकार होने से काया=शरीर से सर्वथा रहित है। और लेखक ने इस लेख में जिन वेद मन्त्रों को उद्धृत किया है उनमें एक भी मन्त्र उनके विचारों का पोषक नहीं है। देखिये कतिपय स्थल–

(१) वेद स्वयं स्थूल उपासना का प्रतिपादन करते हैं। ऋग्वेद के श्लोक १/१४/४ एवं ४/४५/१ में उल्लेख है कि अग्नि से परमात्मा प्रसन्न होते हैं। अग्नि उपासना के बिना मुक्ति की प्रप्ति असम्भव है।

समीक्षा–लेखक को प्रथम तो इतना भी ज्ञान नहीं कि वेद में मन्त्र हैं श्लोक नहीं। मन्त्र-श्लोक के भेद को भी न समझने वाला वेद की बातें करे, यह एक विडम्बना ही है। ऋ. १-१४-४ मन्त्र में अग्नि शब्द ही नहीं है और मन्त्र का देवता भी अग्नि नहीं है और न मन्त्र में यह वर्णन है कि अग्नि से परमात्मा प्रसन्न होते हैं। फिर भी लेख के लेखक ने भाँग के नशे में बड़बड़ाते हुए ये बातें लिखी हैं। इसी प्रकार ऋ. ४-४५-१ मन्त्र में 'अग्नि' शब्द ही नहीं है और मन्त्र का देवता भी 'अश्विनी' है। मन्त्र में सूर्य का वर्णन है। फिर भी अपने अन्ध-भक्तों में ऐसी मिथ्या बातें लिखकर लेखक भ्राँति फैला रहा है। इससे लेखक की विद्वत्ता का पर्दापाश हो रहा है।

(२) इसी तरह अथर्ववेद ६-६५ में कहा गया है–अग्नि-उपासक के हृदय में परमात्मा का तेज प्रकाशित होता है। यदि अग्नि उपासक वैदिक है तो मूर्तिपूजा भी वैदिक माननी पड़ेगी।

समीक्षा–अथर्व. ६-६५ सूक्त में तीन मन्त्र हैं। इनका देवता इन्द्र है अग्नि नहीं। फिर इनमें अग्नि का वर्णन लेखक ने कैसे समझा, यह तो वह ही जाने। किन्तु उसकी ये बातें स्वप्न में बड़बड़ाने के तुल्य ही हैं।

(३) वेद स्वयं मूर्तिपूजा का प्रतीक दृष्टिगोचर होते हैं। अनेक वेद मन्त्र इसकी साक्षी देते हैं। अथर्ववेद ३-१०-३ में उल्लेख है–"संवत्सत्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे" अर्थात् हे रात्रे! संवत्सर की प्रतिमा! हम तुम्हारी उपासना करते हैं।

समीक्षा–लेखक यदि मन्त्र के अर्थ पर शान्तमना होकर विचार करता तो उसे भ्रान्ति न होती। किन्तु जिसके अन्ध भक्त गुरु ने गायत्री मन्त्र की ही मूर्ति बनाकर एक सम्प्रदाय फैलाकर जीवनभर दुनिया को ठगने का प्रयास किया हो, उसके शिष्य पीछे कैसे रह सकते हैं। क्या मन्त्र में संवत्सर की प्रतिमा रात्रि की उपासना की बात कही है। परन्तु सामान्यार्थ के अनुसार 'संवत्सर' अर्थ वर्ण होता है अतः अन्धे गुरु के अन्धे शिष्य को भी वर्ण की प्रतिमा रात्रि ही समझ में आई, अतः लेख लिख डाला। थोड़ा भी विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यत्न नहीं किया कि कहीं वर्ण की भी प्रतिमा कती है। मन्त्र का सत्यार्थ देखिए–

'संवत्सर' शब्द का अर्थ परमेश्वर है, क्योंकि समस्त उसमें वास करते हैं। और उसकी प्रतिमा=प्रतिनिधि प्रलयावस्था है। इस प्रलयावस्था में समस्त प्राणी की भाँति आराम से शयन करते हैं। यही प्राणियों का करना=सुख से रहना है। सृष्टि के समय यह प्रकृति भिन्न सुखों को देती है।

ऐसे युक्तियुक्त मन्त्र के सत्यार्थ को न समझकर धारण में भ्रान्ति फैलाना विद्वानों के लिये शोभा नहीं किन्तु जिनका लक्ष्य ही यह बन गया हो–"दुनिया शक्कर से, रोटी खाइये घी शक्कर से" उनको क्या जा सकता है?

(४) अथर्ववेद २-१३-४ में प्रार्थना है – हे भगवन्! आइये और इस पत्थर की मूर्ति में अधिष्ठित होइये। यह शरीर पत्थर की बनी मूर्ति हो जाये।

–इस मन्त्र के अर्थ को कैसा बिगाड़कर जनसाधारण में रखा है, इसका तो कोई उदाहरण मिलना ही नहीं है। इसका सत्यार्थ देखकर पाठक स्वयं ही समझ सकेंगे। पूरा मन्त्र इस प्रकार है–

एह्यश्मानमातिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वेदेवाः आयुष्टे शरदः शतम्॥

मन्त्र में ब्रह्मचारी को अपने निकट बुलाते हुए आचार्य शिक्षा देते हैं – हे ब्रह्मचारिन्! (एहि) तुम मेरे पास आओ (अश्मानस) पत्थर पर (आतिष्ठ) स्थित हो जाओ (ते) तुम्हारा (तनूः) यह शरीर (अश्मा भवतु) ब्रह्मचर्य के पालन व साधना से पत्थर के सुदृश दृढ़ व बलवान बन जायें। (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वान (उत्तम शिक्षा देकर) अथवा उत्तम पदार्थों के सेवन से (ते) तेरी (आयुः) आयु को (शतम् शरदः) सौ शरद् ऋतुओं तक रहने वाली (कृण्वन्तु) करें अर्थात् चिरंजीव करें।

इस मन का देवता=प्रतिपाद्य विषय "विश्वेदेवाः" मन्त्र है। उसको बिना समझे ही अर्थ का अनर्थ कर डाला। यह कैसा निन्दनीय व घृणास्पद कार्य है कि स्वार्थ की गहरी खाई में गिरा व्यक्ति पवित्र वेद-वाणी को विकृत करके कैसी दुर्गन्ध फैला सकता है? यह दोनों अर्थों का मिलान करके पाठक स्वयं समझ सकते हैं। मन्त्र में पत्थर की मूर्ति में प्रवेश की लेशमात्र भी चर्चा नहीं है।

–राजवीर शास्त्री

शोक संवेदना

महामहोपाध्याय आचार्य विश्वश्रवा व्यास का निधन ९० वर्ष की अवस्था में २७ फरवरी ९३ को रात्रि में तीन बजे हो गया। उसका हमें हार्दिक दुखः है। परमेश्वर उन्हें शान्ति व सद्गति देवें, ऐसी हमारी प्रार्थना है। –राजवीर शास्त्री

पाठकों की सेवा में

दयानन्द सन्देश का अगला अंक (मई ९३) 'योग का सत्यस्वरूप होगा। इसके लेखक जीवनभर योग साधनारत श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक हैं। आपने इसमें अपने योग विषयक अनुभवों का संग्रह दिया है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।–व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

जनवरी, 93 का दयानन्द सन्देश मिला। बहुत खुशी हुई। महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि में इसका बहुत सन्दर्भ दिया है। डा. सत्यव्रत राजेश ने परिश्रम से इसकी व्याख्या की है। ऐसे ग्रन्थों को प्रकाशित करने पर आपको भी धन्यवाद।

डा. सु. ब. काले

आपके ट्रस्ट से पुस्तकें मँगाकर पढ़ी। यथार्थ आपके प्रकाशनों से विशुद्ध ज्ञान एवं ईश्वर विषयक सही जानकारी प्राप्त हुई और दिल से दुनिया का झूठा आडम्बर जाता रहा। सच्ची ईश्वरभक्ति पैदा हुई। मैं आपकी पत्रिका का भी ग्राहक हूँ।

सत्यप्रकाशसिंह, रानीपुर बहेरा, फतेहपुर

आपका प्रकाशन 'योगदान दर्शन भाष्यम्' पढ़ा। मन गद्‌गद् हो गया। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। सामान्य व्यक्ति के लिए भाषा कहीं–कहीं क्लिष्ट है, परन्तु शैली अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय है। आप अन्य दर्शनों पर भी ऐसी व्याख्या लिखवायें तो बहुत लाभ होगा।

डा. जयसिंह सरोज, काशीपुर, नैनीताल

मैं कई वर्ष से 'दयानन्द सन्देश' का पाठक हूँ। वस्तुतः यह पत्रिका आर्य समाज का सजग प्रहरी है। सित. ९२ के अंक में तुलसीकृत रामायण समीक्षा पढ़कर मन में दुःख हुआ। क्योंकि जिस ग्रन्थ को महर्षि ने त्याज्य ग्रन्थ माना है पुनः उसकी चर्चा करना ठीक नहीं है।

काशीनाथ अध्यापक, जमनी पहाड़पुर (बिहार)

मैं इस पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। इसमें विद्वानों के समय–समय पर संग्रहणीय लेख छपते रहते हैं, जोकि पाठकों को न केवल ज्ञानवृद्धि करते हैं वरन् सत्य–सिद्धान्तों को अपनाने की प्रेरणा करते रहते हैं। अक्टूबर ९२ के अंक में आपका 'महर्षि का निर्वाण और हमारा कर्त्तव्य' तथा श्री यशपाल आर्यबन्धु का 'युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द' नामक लेख सराहनीय हैं। किन्तु श्री आर्यबन्धु के विचार अवतारवाद के कुछ पोषक प्रतीत होते हैं। कृपया पुनः विचार करें।

रमेशचन्द्र, बी ६९, शास्त्रीनगर, मेरठ

आप मेरे पत्र को केवल प्रशंसा–पत्र न समझें। वस्तुतः मेरा पत्र वेद और महर्षि के प्रति निष्ठा तथा श्रद्धा का परिचायक है। अभी मुझे दयानन्द सन्देश का एक अनुपम अंक मिला, जिसमें पारस्कर गृहसूत्र की विशेष व्याख्या है। इसे पढ़कर ऐसा लगा कि एक अमूल्य रत्न प्राप्त हो गया है। एतदर्थ व्याख्याता विद्वान् का हार्दिक धन्यवाद। और साथ ही एक नम्र निवेदन है कि आपने दर्शनों में योग की तथा उपनिषदों में ईश, केन, कठ की अपूर्व व्याख्यायें छापी हैं, किन्तु शेष कार्य कब करोगे? इसी प्रकार वेद भाष्य भास्कर भी अधूरा पड़ा है। परमेश्वर आपको सामर्थ्य प्रदान करायें, जिससे ये अधूरे कार्य को पूर्ण कर सकें।

आर्य सत्यपाल विमल, श्वारवण, यमुनानगर

फरवरी ९३ के 'दयानन्द सन्देश' में 'ना मन्दिर की बात करो और ना मस्जिद की जिद वर्ना' तथा 'तुलसीकृत रामायण समीक्षा' सभी परिजनों को बहुत पसन्द आये। कृपया ऐसी सामग्री भविष्य में भी देते रहा करें।

बाबूलाल आर्य, बीकानेर

ट्रस्ट से प्रकाशित 'यदुर्वेद भाष्यभास्कर' में ४०वें अध्याय को पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। यह ग्रन्थ बड़े पुरुषार्थ और योग्यता से तैयार किया गया है। एतदर्थ विद्वान् लेखक व प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं।

अमरसिंह आर्य, कंठूमर, अलवर (रा. प्र.)

आर्य समाज को पुराणपन्थी ताकतों से सावधान रहना चाहिए। क्योंकि आर्य समाज अपने विशुद्ध स्वरूप में ही रहकर शक्तिशाली बन सकता है।

प्रा. धर्मेन्द्र धींग्रा, खारीबाद, बडोदरा

'दयानन्द सन्देश' पत्रिका में 'तुलसीकृत रामायण समीक्षा' पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। हिन्दू–समाज में व्याप्त कुरीतियों को फैलाने का मुख्य श्रेय इसी ग्रन्थ को है।

अश्विनीकुमार द्विवेदी, चपुन्ना, फर्रुखाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—: वेद की ओर लौटो :—

तर्ज—ओ माझी चल ओ माझी चल

ओ साथी चल ओ साथी चल ओ साथी चल ओ साथी चल
छोड़ के सारे मत मजहब को वेद की मार्ग पे ढल
ओ साथी चल—३

जब से मानव धरती पे आया, इसके संग—संग वेद को पाया,
सुन ओ साथी ऋषियों ने बताया,
मन अपनाए वेद के पथ न जीवन हो सफल
ओ साथी चल—३

वेद वाणी ईश्वर का ज्ञान है, सब सत्य विद्या और विज्ञान है,
सुन ओ साथी सारे दुःख का निदान है।
राह पकड़ ले वेद मार्ग का देर न कर एक पल
ओ साथी चल—३

धर्म का है वेदों से नाता, मजहब इसको नहीं अपनाता,
सुन ओ साथी मैं यह सच सच बताता।
पूछ ले जाकर मजहब के ठेकेदारों से कल
ओ साथी चल—३

रघुनाथ आर्य, द्वारा— चितालि मियाँ, निकलरोड पत्रालय—मारूलिया, जनपद—२४ परगना (प. बंगाल)

सत्य की कसौटी

तर्ज— युगल गीत

झूठ की कसौटी क्या है बच्चा।
परीक्षा बच्चा, पंच परीक्षा ।।टेक।।
सृष्टि सभी बातों को बच्चा सच्चा जानो ।
विरूद्ध बातें जो हैं, उनको झूठा मानो।।
पहली परीक्षा, है पंच परीक्षा ।।१।। साँच
सृष्टि के अनुकूल बातें, सही होती हैं।
विपरीत कभी भी प्रमाण नहीं होती हैं।।
दूसरी परीक्षा, है पंच परीक्षा ।।२।। सांच
उपदेश अनुकूल बातों को, ग्रहण करना बच्चा।
अतिरिक्त सभी बातों से दूर रहना अच्छा।।
तीसरी परीक्षा, है पंच परीक्षा ।।३।। साँच
के अनुकूल जो है, उसका सही कहना।
विरूद्ध किसी बात के चक्कर में न पड़ना।।
चौथी परीक्षा, है पंच परीक्षा ।।४।। साँच
प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य जानो।
अर्थोपत्ति, संभव, अभाव, ये ८ प्रमाण मानो।।
यह है ५वीं परीक्षा, है पंच परीक्षा ।।५।। साँच
पंचपरीक्षा कसौटी का जो ध्यान रखता है।
न स्वप्न में भी उसको, भ्रम परेशान करता है।।
इसे मत भूलना बच्चा, है पंच परीक्षा ।।६।। साँच
सत्यार्थ प्रकाश में 'रामकृष्ण' इसका विधान है।
महर्षि दयानन्द का बच्चा बड़ा एहसान है।।
सदा याद रखना बच्चा पंच परीक्षा ।।७।। साँच

—'वैदिक गीत सागर' से

रचयिता— डा. रामकृष्ण आर्य मेडिकल अफसर,
अनि. प्रा. स्वा. केन्द्र कारोबनकट, जौनपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम के जन्म दिवस पर विशेष–

राम! तुम्हारा शत अभिनन्दन

दनुज वृत्तियों के संहारक, पाप–ताप के अहे निवारक,
आर्य बने, जग आर्य बनाया, सत्य–धर्म के थे उद्धारक,
वसुधा के कण कण में तुमने, भरा चेतना का स्पन्दन।
राम! तुम्हारा शत अभिनन्दन॥

दूर किया सीताओं का दुःख, त्यागा राजमहल का सुख,
आजीवन कर्त्तव्य पथों से, नहीं हुए थे कभी विमुख,
शोषित–पीड़ित दीन जनों का, नष्ट किया था दारूण क्रन्दन।
राम! तुम्हारा शत अभिनन्दन॥

वेदों के तुम थे अनुगामी, मानवता के रक्षक, हामी,
आर्य सुसंस्कृति की लहरायी, जयी पताका तुमने स्वामी,
स्वर्ग सदृश निर्मित कर भूको, किया जन्म भूमि का वन्दन।
राम! तुम्हारा शत अभिनन्दन॥

(राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति, मुसाफिरखाना, सुलतानपुर, उ. प्र.)

क्या तुमने राम हैं पूजे?

रामनवमी है सदा मनाई, पर मन से राम न पूजे।
राम सा आचरण किया कभी नहिं तुमने तो पत्थर पूजे॥१॥
माता–पिता की भक्ति नहीं की, ना उनकी आज्ञा मानी।
नहीं प्रेम से भोजन कराया, और नहीं पहिनाया॥
उनका हृदय नहीं पिघलाया, तो कैसे राम हैं पूजे।
तुमने राम नहीं हैं पूजे, तुमने तो पत्थर पूजे॥२॥
शबरी गीध निषाद को भूले, अपनी प्रभुता पर फूले।
हरिजनों से सदा घृणा की, ऊंच–नीच अपनाया॥
सबको प्रेम से नहीं अपनाया, तब कैसे राम हैं पूजे।
तुमने राम नहीं हैं पूजे, तुमने तो पत्थर पूजे॥३॥
काम–मोह से प्रेम किया है, सत्य भाव नहीं सूझे।
अपनी पत्नी को बिसराया, पर–पत्नी पर रीझे॥
पत्नीव्रत को नहिं अपनाया, तो कैसे राम हैं पूजे।
तुमने राम नहीं हैं पूजे, तुमने तो पत्थर पूजे॥४॥
भाई–भाई में प्रेम नहिं है, बहिनों को भी भुलाया।
क्रोध–द्वेष को संग लिया है, प्रेम भाव बिसराया॥
जब तक शांति नहीं है मन में, तुमने राम न पूजे।
तुमने राम न पूजे मन से तुमने तो पत्थर पूजे॥५॥
खाना पीना मौज मनाना, यही है तुमको भाया।
मन पर अंकुश नहीं लगाया, आत्मा को बिखराया॥
सत्य शील की रक्षा नहीं की, तो तुमने रावण पूजे।
तुमने राम न पूजे मन से, तुमने बस पत्थर पूजे॥६॥

(पंच गंगाप्रसाद विद्यार्थी एम. ए., एम. फिल, जबलपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नववर्ष, चैत्र शुक्ला प्रतिपदा २०५० के शुभागमन पर,
आर्य समाज के स्थापना दिवस (चैत्र शुक्ला पंचमी) पर,
एक विरक्त महर्षि के जीवन-दान का ऋण चुकाने हेतु,
एक महात्मा के स्वर्गीय-स्वप्न को साकार करने हेतु
ईश्वर की अमूल्य धरोहर जीवन को सफल बनाने हेतु

आओ धरती को स्वर्ग बनायें

(ब्रह्मचारी प्रदीप आर्य नैष्ठिक, आर्ष-गुरुकुल, वृन्दावन मार्ग, मथुरा)

प्यारे मित्रो ! आज कहने को तो हम विकास की चरम सीमा की ओर बढ़ रहे हैं। विज्ञान की ऊँचाइयों को छूने का अभियान चल रहा है। खोज आनन्द और शान्ति की। फिर वो अभागा आत्मा कौन होगा जो सुख और शन्ति की खोज को छोड़ अशान्ति तथा दुःख का उद्योग करे? इस सृष्टि को लगभग 2 अरब वर्ष हो गए, मनुष्य का आत्मा ज्ञान तथा आनन्द दोनों की पिपासा करता रहा है। वस्तुतः ज्ञान में ही आनन्द है। और आनन्द ही स्वर्ग है। और धर्म का लक्ष्य ही स्वर्ग प्राप्ति है। इसी को महर्षि कणाद अपने वैशेषिक दर्शन में कहते हैं–

यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस्-सिद्धिः स धर्मः

अर्थात् भौतिक और आध्यात्मिक दोनों उन्नति का मूल धर्म ही है। कभी सारे संसार में एक वैदिक धर्म का ही साम्राज्य था। सम्प्रदाय, पंथ नहीं थे। कभी हमारा आर्य्यावर्त्त (भारत) राष्ट्र जगद्गुरु एवं चक्रवर्ती राष्ट्र था परन्तु हमारे राष्ट्र का अभाग्योदय हुआ कि हम स्वयं ही विदेशी सत्ताओं के दास बने हुये हैं। कभी हमारा राष्ट्राध्यक्ष घोषणा करता था–

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥

मेरे राष्ट्र में कोई भी चोर, कंजूस, नशेबाज, यज्ञ न करने वाला, अविद्वान, चरित्रहीन स्त्री या पुरुष नहीं है।

हा हन्त ! आज हमारा वही आर्य राष्ट्र कहाँ भटक गया है? ओह मेरा मानव समाज अविद्या, अन्याय, भुखमरी, चरित्रनाश, हत्यायें, बलात्कार, चोरी, बेईमानी, ईर्ष्या-द्वेष से कराह रहा है। इसकी चीत्कारों से व्योम मण्डल गूँज रहा है। मेरे प्यारे युवा! ओ अभागे बुद्धिवादी! कौन सुनेगा, कब तक सुनेगा, इस वेदना को? कब तक और कैसे निहारते रहेंगे हमारे अभागे नेत्र विश्व मानवता के इस विनाश को? आज मानव के विचारों ने ही उसके आत्मा को मार दिया है। उधर प्रकृति अलग ही तेवर दिखा रही है। पर्यावरण काँप रहा है। संसार भर के वैज्ञानिक और राजनेता भयभीत हैं। प्रतीत होता है मानो साक्षात् मानवता ही हमसे पुकार-पुकार कर कह रही हो।'

"हे मानवनामधारी प्राणी ! यदि तू मुझे बचाना चाहता है, सुख शान्ति से जीना चाहता है, धरती पर स्वर्ग बनाना चाहता है तो वेदमाता के शब्दों में- 'अनुभव' अर्थात् सच्चे अर्थों में मनुष्य बन। हे मानव ! तू शैव, शाक्त वैष्णव, जैन, बौद्ध, कबीर पन्थी, सिख, ईसाई, मुसलमान या यहूदी मत बन किन्तु मनुष्य बन! हाँ रे मानव! तू विचारों से मानव बन।"

मेरे प्यारे भारत नन्दन! मेरे विश्व के मानवो! मानव शरीर धारण करना ही मनुष्यता नहीं है। विचारो! अन्तरात्मा से विचारो! यदि हम सब मानव होते तो क्या सबकी अलग-अलग राहें होतीं? क्या अलग-अलग विरोधी मतों में बँटकर एक-दूसरे के प्राणघाती बन रहे होते? ईश्वर, धर्म या मानवता के बीच दीवारें खडी कर रहे होते क्या? नहीं-नहीं मानवों को यह अभीष्ट न होता। कदापि नहीं होता। हम सब एक पिता परमात्मा की सन्तान होने से भाई-भाई हैं, फिर कौन दुष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति हमारे बीच खाई खोद रही है? कौन आहत कर रहा है हमें? अरे देखो? विचारो! और दूर करो इस बाधा को। हे मानव! अलग-अलग सम्प्रदायों में बँटे रहना ही मूल बाधा है, मेरे विचार से और इसी विचार को युग पुरुष देवर्षि दयानन्द ने रखा था।'

"विद्वानों के मतभेद ने ही सबको भ्रमजाल में फंसा रखा है" यदि विद्वान लोग अथवा समाज सुधारक अपना-अपना नवीन पंथ न चलाकर प्राचीन सत्य धर्म पर ही संसार को चलाने का यत्न करते तो आज विश्व यों विभाजन की ज्वाला में जल रहा न होता।

मेरे मानव! तू अपने हृदय पर हाथ रख कर देख और विचार कर कि क्या परमात्मा अपने पुत्रों को अलग-अलग एवं विपरीत उपदेश देकर आपस में मतभेद पैदा करायेगा? अगर नहीं तो यह ध्रुव सत्य है कि ईश्वर प्रदत्त-सत्य-धर्म सारे विश्व के लिये एक है, जो सृष्टि उत्पन्न करने के साथ ही उस पिता ने दिया है। तब मैं समस्त धर्म मतावलम्बियों का आह्वान करूँगा कि आइये मेरे धर्म प्रेमी मित्रो! हम एक परिवार के सदस्यों की भाँति मिल बैठकर सत्य धर्म पर चर्चा करें। खुली बहस करें। पक्षपात, हठ और प्रतिष्ठा के प्रश्नों को दूर कर हम मिलकर समाधान करें। यह न विचारें कि आपकी क्या परम्परायें रही हैं? समाज क्या कर रहा है? लाभ होगा या हानि होगी इस बही खाते को लेकर न बैठें। केवल आपके पास हो आपका निष्पक्ष धवल हृदय और एकता की तीव्र इच्छा। बुद्धि और विज्ञान का सदुपयोग करना, तो मेरा विश्वास है कि समस्या सुलझेगी और सारे मत पन्थ पलायित हो, एक सत्य धर्म में विलीन हो जायेंगे। अन्धविश्वास, पाखण्ड दूर हो शुद्ध ज्ञान पर आधारित धर्म जयी होगा और संसार स्वर्ग बनेगा।

हाँ मेरा विनम्र निवेदन एकता के पक्षधर प्रगतिशील समझे जाने वाले बुद्धिजीवी, अधिवक्ता, कानूनवेत्ता, इतिहासकार, पत्रकार, शिक्षाविद्, राजनेताओं और समाज सेवियों से है कि जो आप धर्म का सत्य स्वरूप जाने बिना एकता, धर्म निरपेक्षता एवं विश्व बन्धुत्व की इच्छा करते हैं, वकालत करते हैं, सो वह उचित नहीं है। धर्म के नाम पर प्रचलित अन्ध विश्वासों पर आपकी बुद्धि विचार नहीं करती, यह विचार कर मुझे हैरानी होती है। अदालतों में बड़े-बड़े तर्क करने वाले, विज्ञान के क्षेत्र में उच्च आविष्कार करने वाले, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वाद विवाद का सामर्थ्य रखने वाले धर्म का नाम आते ही मूर्ख बन मूक रह जाते हैं और कहते हैं "सब सम्प्रदाय सत्य की ओर जाते हैं" ओह! कितना सुन्दर निर्णय है? क्या सुन्दर या विद्याशून्य और उन्माद भरा! धन्य है आपकी मेधा को। हे मानवता के उपासकों! एकता तो होनी ही चाहिये। वेद कहता है- "संगच्छध्वं संवदध्वं" संसार के लोगो! साथ-साथ चलो साथ-साथ बोलो। परन्तु विचारो ! हां चिन्तन करो। क्या सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, हिंसा-अहिंसा, ज्ञान-अज्ञान, ऋण धन एक रह पायेंगे? यदि आपने कैसे भी बेर-केर का संग कर भी दिया तो क्या होगा? अरे इतिहास उठाकर देखो! जिस समाज सुधारक ने धर्म मीमांसा किये बिना, वस्तुतः जो रोग है, उसको जाने बिना, फोड़े की चीर फाड़ किये बिना एकता का प्रयास किया वह उसमें तो सफल नहीं हुआ हाँ एक नवीन मत और चलाकर विभाजन और कर बैठा। इसलिये हमें पूर्वोक्त विचारानुसार एक सत्य का पता लगाने का यत्न करना ही होगा। सत्य की स्थापना और असत्य का खण्डन ऋषिराज दयानन्दजी की भाँति करना ही होगा। धर्म को विज्ञान और तर्क से जोड़ना ही होगा। आओ मित्रो! हम ऐसी स्थायी एकता में मिलकर जुट जायें।

आज मैं एक और भयंकर आँधी को देख रहा हूँ। यह है पाश्चात्य भोगवाद की आँधी। मेरा प्यारा भौतिकवादी युवावर्ग, प्यारे भारतवर्ष का कर्णधार विद्यार्थी वर्ग आज कह रहा है "कोई आत्मा-परमात्मा, धर्माधर्म नहीं, खाओ, पियो और मस्त रहो......" ओह! कितने पागलपन भरे शब्द हैं ये? कैसी अराजक आवाज है यह? आज मेरे युवा को किसने भ्रमित किया है? एक ही उत्तर है, मेरे मन में कि विज्ञान विरोधी कथित धार्मिक मान्यतायें विकृत धर्म के नाम पर संघर्ष की भावना और कुटिल मैकाले की शिक्षा पद्धति ने ही यह सब विनाश किया है।

मेरे प्यारे नौजवान! इसी कारण तुझे धर्म एक पागलपन, अन्ध विश्वास, और पाखण्डों का भार, राष्ट्र या विश्व की भौतिक उन्नति में बाधक, मानव को बाँटने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...रहा है। और इसी कारण तू धर्म को उखाड़ फैंकना ...है और चाहता है कि "सभी इन्द्रियों से भोग करता ...अपनी जुल्फों की साज–सज्जा करता रहूँ, विदेशी शैली ...की जगमग तथा चेहरे पर क्रीम, पाउडर और तेलों ...चमक–दमक से दूसरों को रिझाता रहूँ। खूब धन कमाऊँ, रिश्वतखोरी, कालाबाजारी और तस्करी से और दूसरों ...कर अपना घर आबाद करता रहूँ"....

ओह मेरे भटके युवा! इस प्रभु प्रदत्त नश्वर शरीर और ...यौवन का यह दुरुपयोग न कर। अरे विचार करके ...। अरे तू धर्म के जिस विकृत स्वरूप का नाश ...है, उसका नाश करने को तो मैं भी कहूँगा परन्तु ...! पीतल को सोना कहा जा रहा है और तू इस ...को देख घृणा कर बैठा और इतनी घृणा कर बैठा ...सोना भी कुछ होता है, यह भी भुला बैठा। आओ ...! आओ प्यारे बुद्धिवादी मित्र! सिर काट कर सिर ...दवा मत करो। वस्तुस्थिति जानो! विज्ञान सम्मत धर्म ...! आओ आपका विज्ञान प्रेमी आर्य समाज आपका ...पकड़ कर सत्य मार्ग खोजने में सहयोग करेगा और आप स्वयं भी कह उठेंगे "बिना धर्म के विज्ञान अन्धा ...बिना विज्ञान के धर्म लंगड़ा है" तब न्यूटन, आइस्टीन ...शेखर रमन तो बनेंगे ही परन्तु गौत्तम, कणाद, कपिल भारद्वाज भी बनेंगे। व्यास, पतंजलि, पाणिनि और ...भी पुनः धरा पर आयेंगे। तब विज्ञान के मस्तक पर ...प्रकाश होगा। विश्व से विनाश के बादल छँट जायेंगे शान्ति की स्थापना होगी। दानवत्व का नाश हो, देवत्व ...होगा। सब ओर से अनार्यत्व नष्ट हो आर्यत्व ...मुस्कुरायेगा। पर्यावरण जहाँ उद्योगों से दूषित होगा ...की मनभावनी सुगन्ध से सुन्दर और स्वस्थ होगा। कैसा स्वर्ग होगा धरती पर। सभी मिलकर कहेंगे।

"मानवता अमर है"

इसलिए आ मेरे नौजवान! तू इस स्वर्णिम मार्ग का ...बन। अपनी चेतना को जगा और देख तू संसार का ...कल्प कर सकता है। इस मानवता की कराहें चीखें सुन ...जाग रे युवा। नींद त्याग रे युवा! तेरी ओर आशा ...दृष्टि से प्यारी मृतप्राय सी मानवता निहार रही है। ओ. ...की तरुणाई! आ! आर्य समाज तुझे आमंत्रित कर रहा ...उसकी आत्मीयता को पहचान तो सही।

हाँ अब एक और विवादास्पद विषय राष्ट्रवाद पर कुछ कहना चाहूँगा। आज धर्मनिरपेक्षता के समर्थक अपने राष्ट्र के गौरवमय इतिहास, संस्कृति और सत्य धर्म को भुलाना ही अपनी महानता समझ रहे हैं।

मेरे भूले–भटके मित्रो! क्या अपने पूर्वजों को भुलाना ही राष्ट्रवाद है? क्या पिता को पिता कहने में भी आपको अराष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता की गन्ध आती है? क्या तुच्छ स्वार्थों के लिए सत्य का गला घोंट कर विदेशी–आक्रांताओं के गीत गाना ही आपकी देशभक्ति है! हा शोक!!! महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी एवं गुरु गोविन्द सिंह के सपूतो! आप कहाँ जा रहे हैं? बन्दा वैरागी, गुरु तेग बहादुर, बिस्मिल, भगतसिंह, सुभाष और श्रद्धानन्द के बलिदानों को क्यों भुला रहे हो? हे राम–कृष्ण के वंशजो! अपने शरीर में बहने वाले वीर रक्त को पहचानो! विचारो भाइयो! क्या आपकी आत्मा आपको धिक्कारती नहीं? क्या दिव्य संस्कृति को निहारती नहीं? आइये शान्ति का दूत आर्य समाज आपसे कुछ बातें करना चाहता है। यथार्थ राष्ट्रवाद की परिभाषा समझाना चाहता है। आओ! हमारी भावना और वेदना को समझने का यत्न तो करो। मै आपको आश्वासन देता हूँ कि यदि आप वोटों के लालच को त्याग आर्य समाज के विचार सुनें तो आपकी देशभक्ति निर्मल और प्रखर बन जायेगी।

हाँ दूसरी ओर कुछ राज्य राष्ट्र भक्त संगठन अपने प्यारे राष्ट्र को राम–राष्ट्र बनाने में जुटे हैं। बड़ा आदर है हमारे हृदय में आपकी आदर्श राष्ट्र भक्ति के प्रति परन्तु कैसे हृदय खोलकर दिखायें? परन्तु मेरे राष्ट्रवादी मित्रो! आप श्रीराम के आदर्शों को समझने का यत्न करते नहीं। आप तत्कालीन भारत की वैदिक संस्कृति को पढ़ते नहीं। वेदवित् श्रीराम की वैदिक मर्यादा को जानते नहीं। वेद प्रचार में सहयोग की रूचि रखते नहीं। हे भटके मित्रो! क्या श्रीराम के जयघोष से ही राम–राष्ट्र बन पायेगा? नहीं भूल में न रहो। "अनेकता में एकता" का भ्रामक नारा मत देना। अपने उन कथित धर्मग्रन्थों को पढ़ो तो सही जिनमें अश्लीलता, अवैज्ञानिकता तथा ईर्ष्या–द्वेष उत्पन्न करने वाली बातें पराकाष्ठा पर हैं। इन्हीं के कारण हम सम्प्रदायों में बँटे, कमजोर होकर पराधीन हुए। अरे इन गन्दे विचारों को दूर फैंके बिना, ऐसे कथित धर्मग्रन्थों को बहिष्कृत किये बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कैसे एकता को अखण्ड रख पायेंगे? मेरे मित्रो! अपने इतिहास को शिवा–प्रताप से बहुत पीछे ले जाकर मनुजी तक ले चलो। ब्रह्माजी तक ले चलो। देखो! कितना सुन्दर अतीत है तुम्हारा और महान् राष्ट्र भक्त ऋषि दयानन्द के विचार **"एक धर्म एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर है,"** को समझो। तब निश्चित ही हमारी राष्ट्रीय एकता अखण्ड रहेगी। आइये और अधिक स्पष्टता हेतु मिलकर मार्ग खोजकर प्यारे भारत को पुनः जगद्गुरु का सम्मान दिलायें।

अन्त में एक दर्द भरा निवेदन उनसे भी करना चाहूँगा जिनका जीवन असत्य, अज्ञानता, व्यभिचार, चोरी, रिश्वतखोरी, हिंसा, मांसाहार, शराब आदि नशे, श्रृंगार आदि से पतित हो चुका है। बन्धुओ! आप हृदय से बताना कि क्या आप अपने अपराधी और विलासी जीवन से सन्तुष्ट हैं? क्या आप अपने को सुखी और शान्त अनुभव करते हैं? कभी आत्म चिन्तन एकान्त शान्त हृदय से करते हैं? मेरा दावा है कि आप ऐसा नहीं करते होंगे? मेरे भटके नौजवानो! यह सुन्दर स्वस्थ शरीर उस परम पिता ने इसलिए नहीं दिया। अरे तुम्हें तो महान् बनना है, ऊँचा उठना है वेद कहता है–

"उद्यानं ते पुरुषनावयानम्"

अर्थात् हे मानव! तेरा उत्थान होवे, पतन नहीं" ओ आप अपने को भुला पतन कर बैठे। हे भटके मित्र! यह धन सब कुछ नहीं है। ये भोग स्थाई नहीं है। विचार कर कि तुझे संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनने का गौरव प्राप्त है। अरे ऋषियों की सन्तान! राम–कृष्ण की सन्तति! क्या रावणत्व में ही जीना पसन्द करोगे? क्या दानवता (अनार्यत्व) का ही वरण करोगे? नहीं– 2, आपको यह श्रेयस्कर नहीं है। आप बहुत कुछ कर सकते हो। अपने बल और पराक्रम को पहचानो मित्रो! आइये यदि आप बहुत पतित हो चुके हैं। सभ्य समाज आपको घृणा से देखता है फिर भी निराश मत होइये और पतित–पावन आर्य समाज के साथ आइये। आपके कष्टों अपराध–पाप पूर्ण जीवन से हमारा हृदय अति व्यथित है। आइये हमारी व्यथा को समझिये और फिर आपका जीवन पुनः स्वर्ण समान बनाने में हम पूर्ण सहयोग करेंगे। आओ हमारे भटके युवा मित्रो! हो सकता है आपको हमारी हितकारी बातें बालक रोगी की भाँति रूचिकर नहीं प्रतीत होने वाली दवा लगें परन्तु रोग दवा से ही ठीक होगा। आइये आपका स्वागत है।

अन्त में पुनः सभी का आह्वान् है कि हम आपके किसी भी प्रकार के विचार पर बलात् आक्रमण करना नहीं चाहते परन्तु इतनी इच्छा अवश्य है कि आप मानवीय एकता करने में सहयोग करें। आपका निष्पक्ष आत्मा अवश्य सत्य को स्वीकारेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। हम चाहते हैं कि भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व स्वर्ग बने। इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि हम राष्ट्र भक्ति की उपेक्षा करते हैं। नहीं–2 ऐसा सम्भव नहीं। आशा है सभी लोग हमारी भावनाओं को समझेंगे। तो आइये संसार के मानवो! ऋषि दयानन्द के द्वारा स्थापित आर्य समाज के स्थापना दिवस पर संकल्पित होकर एक हो, मिलकर सत्य पर चल, सबका कल्याण और धरती को स्वर्ग बनायें, यही अन्तर्मन की इच्छा है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष करते हुए राष्ट्र का कल्याण करें।

महत्वपूर्ण सूचना

क्या आप चाहते हैं–

हमारे बच्चे दीर्घजीवी, विद्वान् और बलवान बनें?
आपकी बुद्धि तार्किक व तीक्ष्ण बने और आप छली व्यक्तियों के चंगुल में न फँसें?
वैदिक सनातन धर्म के स्वरूप को समझना चाहते हैं?
अपने बच्चों को सच्चे देशभक्त बनाना चाहते हैं?
भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा बढ़े?
भारत की कलुषित राजनीति से बचकर सच्ची व हितकर राजनीति क्या है?
धर्म के बिना राजनीति कोरा पाखण्ड है?
सच्चा राष्ट्रभक्त कौन हो सकता है?
तो आप महर्षि के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ–प्रकाश' को अवश्य पढ़ें?
और महर्षि के क्रान्तिकारी विचारों से अपने जीवन को सफल बनायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का यथार्थ स्वरूप

विश्व के समस्त तथाकथित धर्माध्यक्षों के विचार हेतु—
"धर्म मानव को मानव से जोड़ता है, विघटित नहीं करता"

प्राचीन ऋषियों का मत है "धर्मस्य तत्वं निहितं [गुहाया]म्" अर्थात् धर्म का तत्व गुहा (गहरायी) में छिपा [है।] अभिप्राय यह है कि धर्म क्या है? यह अत्यन्त गूढ़ है। धर्म की परिभाषा और उसकी व्याख्या सरल नहीं है। परन्तु आजकल जिसे देखो वही धर्माचार्य [बना] धर्म पर लम्बे-लम्बे भाषण कर रहा है।

धर्म के नाम पर बड़े-बड़े मठ-मन्दिर, विशालकाय [मन्दिर]..., गुरुद्वारे, मस्जिद, गिरजे आदि खड़े मिलेंगे। [पुस्त]कों की दुकानों और पुस्तकालयों में धर्म के बड़े-[बड़े ग्र]न्थ मिलेंगे तथा संसार में अनेक मत और पन्थ मिलेंगे [जिन] सबकी पृथक्-पृथक् धर्म की परिभाषायें मिलेंगी। [मनु]ष्य के सामने प्रश्न आता है कि अन्ततोगत्वा धर्म क्या [है]?

प्रत्येक दुकानदार जैसे अपनी दुकान के सामान को [अच्छा] और अन्य दुकानों की सामग्री को घटिया बताता [है, चा]हे उसकी दुकान की सामग्री से अन्य दुकानों की [सामग्री] सहस्र गुणा अच्छी हो और उसकी एकदम निकृष्ट। [ठीक] यही दशा धर्म के नाम पर प्रचलित मत-मतान्तरों की [है]।

हमारा उद्देश्य इन पंक्तियों में किसी मत विशेष की [आलो]चना करना नहीं है अपितु केवल धर्म की वास्तविकता [तक प]हुँचने के लिये हम थोड़ी ऊहा-पोह करना चाहते हैं। संसार में धर्म के नाम पर अनेक विचारधारायें [प्रच]लित हैं अथवा यों कहिये कि विश्व में अनेक धार्मिक [मत] प्रचलित हैं। इन सभी मतों में सब कुछ समान नहीं है। [सब] कुछ समान हो, एक जैसा हो, तो अनेकता रहती ही [नहीं।] मतभेद न हो तो मेरा-तेरा का प्रश्न ही नहीं रह जाता [है।] पृथक्-पृथक् रहते हुए भी कुछ बातें सब मतों में ठीक [हैं।] कुछ बातें तो प्रत्येक मत में ऐसी हैं कि जिनमें अच्छाई [ही] है, बुराई नहीं किन्तु उनकी वह अच्छाई भी इस [रूप] में बुराई बनी हुई है कि वह अनेकता बनाये रखती है, मानव-मानव को एक नहीं होने देती अर्थात् समस्त मनुष्यों को एकता के सूत्र में नहीं बँधने देती।

कुछ बातें प्रत्येक मत में ऐसी हैं, जो संसार के अन्य सभी मतों के विरुद्ध हैं, परिणामस्वरूप संसार का प्रत्येक मत अन्य सभी मतों के विरुद्ध है और सभी मतों के मानने वाले अन्य मतवादियों को अपना विरोधी ही नहीं अपितु शत्रु समझते हैं और इसी कारण संसार में धर्म के नाम पर विभिन्न मतवादियों के मध्य समय-समय पर झगड़े होते रहते हैं, जिनमें भीषण रक्तपात तक हो जाता है।

इन परिस्थितियों को देखकर कभी-कभी इतनी खिन्नता होती है कि मनुष्य धर्म के नाम से ही घृणा करने लग जाता है और साधारण बुद्धि के लोग धर्म के विरुद्ध हो जाते हैं। लोग सोचने लगते हैं कि जिससे मानव, मानव के रक्त का प्यासा हो जाए, जिससे मानव की मानवता का पशुकरण ही नहीं अपितु राक्षसीकरण होता है, ऐसे धर्म की संसार को क्या आवश्यकता है? ऐसे धर्म से संसार का क्या लाभ? क्यों न ऐसे धर्म को ही संसार से विदा कर दिया जाए?

बात है भी ठीक, जो धर्म मानवता के लिए अभिशाप हो साधारण बुद्धि का ही सही कोई भला व्यक्ति, कोई सत्पुरुष ऐसे धर्म को क्यों पसन्द करेगा? ऐसी दशा में यदि लोग धर्म को नशा अथवा अफीम कहने लग जायें तो आश्चर्य ही क्या है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या इस समस्या का कोई वास्तविक निदान है?

तथ्य यह है कि जब रोग का ठीक निदान नहीं होता, तब तक उसकी ठीक चिकित्सा भी नहीं हो सकती, ठीक चिकित्सा के लिए निदान का ठीक होना अत्यन्त आवश्यक है। रोगी को बचाने के लिए ठीक चिकित्सा होनी चाहिए और ठीक चिकित्सा के लिए ठीक निदान होना चाहिये।

मानव रोगी है। न केवल मानव अपितु सम्पूर्ण मानव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज। रोग है धर्म का। चिकित्सक के पास जाता है रोगी, और कहता है–वैद्य जी मैं बीमार हूँ, मेरी चिकित्सा कीजिये। वैद्य जी पूछते हैं, बीमारी क्या है आपको? रोगी कहता है, धर्म की। वैद्य जी कहते हैं, अच्छा तो आप नित्य प्रातः उठकर हनुमान मन्दिर में जाकर फूल चढ़ाया करो और घर पर नित्य हनुमान चालीसा का पाठ किया करो।

इसी प्रकार कोई शिव मन्दिर में फूल चढ़ाने और शिवस्तोत्र के पाठ की बात बताता है तो कोई दुर्गापाठ की। कोई पाँच समय काबे की ओर मुँह करके नमाज और वर्ष में एक मास रोजा रखने की औषधि लिख देता है तो कोई नित्य प्रति गिरजाघर की प्रार्थना में सम्मिलित होने की। कोई "अहिंसा परमो धर्मः" का सूत्र लिखकर नित्य जैन मन्दिर में दर्शनार्थ जाने की औषधि देता है तो कोई गुरुद्वारे का द्वार खटखटाने की।

रोगी, धर्म का रोगी उक्त स्थानों के चक्कर काटते-काटते और उक्त औषधि तन्त्र को रटते-रटते मृत्यु शय्या पर जा पहुँचता है परन्तु अपने और अपनी विचारधारा की मान्यता वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य सबको–चाहे वे आचरण में कितने ही पवित्र और नैतिक मूल्यों का पालन करने वाले हों–नीच, घृणास्पद, नरक-गामी और यहाँ तक कि वध कर दिये जाने योग्य तक मानता रहता है।

"ऐसे ही कन्था घर रहे, ऐसे ही रहे विदेश" वाली लोकोक्ति इन पर चरितार्थ होती है। चाहे इस मत में रहे या उसमें–रहेगा मतवादी ही; धर्मात्मा नहीं बन सकता कारण स्पष्ट है कि जिन चिकित्सकों के पास गये, वे सब "नीम हकीम" अर्थात् अधूरे चिकित्सक थे। उन्हें निदान आता ही नहीं था, रोगी के रोग का क्या निदान करते? वह तो बीमारियों को ही औषधि समझे बैठे थे। प्रत्येक चिकित्सक के पास से रोगी को पूर्व की अपेक्षा नयी औषधि दे दी जाती है, रोगी उसे सेवन करता है परन्तु रोग ज्यों का त्यों बना रहता है। कारण वही है कि औषधि नहीं अपितु नये रोग का तन्त्र रोगी के हाथ में आ जाता है। एक रोग से मुक्त हुआ–दूसरे में जा फंसा। यह रोग मुक्ति, रोग-निवारण है अथवा रोग परिवर्तन व रोग का नवीनीकरण।

हकीम और वैद्य यकसाँ हैं, अगर तशखीश अच्छी हो।
हमें सेहत से मतलब है, बनफशाना हो या तुलसी हो।

हमें–मनुष्यों को–रोग की चिकित्सा की आवश्यकता है, रोग का नवीनीकरण नहीं चाहिये। हम चिकित्सा द्वारा रोग मुक्त होना चाहते हैं, किसी नये रोग से पीड़ित नहीं होना चाहते। चिकित्सा चाहे हमारी वैद्य करे या हकीम, होम्योपैथ करे अथवा एलोपैथ और या चाहे नेचरोपैथ (प्राकृतिक चिकित्सक) हमें किसी विशेष चिकित्सा पद्धति से मोह नहीं। चाहे बनफशा हो या तुलसी, चिकित्सा भी चाहे किसी पद्धति से कर लो, परन्तु रोग को समूल नष्ट करो। "न रहे बाँस न बजे बाँसुरी" न रोग रहे न छुआछूत और घृणा।

जब तक यह रोग (धर्म-रोग) रहेगा, तब तक धार्मिक घृणा द्वेष और ऊँच-नीच का भेद-भाव बना रहेगा और जिस दिन यह रोग मिटा तो इसको लक्षण घृणा-द्वेष और ऊँच-नीच के भेद भी न रहेंगे। यह लक्षण हैं रोग नहीं। रोग तो मन में है, विचारों में निहित है। यदि मानव-मन का मैल धुल जाए, यदि विचारों की शुद्धि हो जाए तो इन सभी तथाकथित रोगों अर्थात् वास्तविक रोग के लक्षणों से छुटकारा मिल जाए।

मानव-मन के मैल को छुड़ाने का कहिये अथवा धार्मिक रोग से मानव की मुक्ति का कह लीजिये–केवल मात्र एक ही उपाय है और वह यह है कि मानव को धर्म के लक्षणों की जानकारी हो जाए। क्योंकि वर्तमान समय में लोगों को धर्म के लक्षणों का पता नहीं है अतः धर्म के नाम पर वह बहक जाते हैं और कभी इस मत में तो कभी उस मत में धक्के खाते और जीवन नष्ट करते हुए फिरते रहते हैं। यदि लोगों को धर्म के लक्षणों की जानकारी हो जाए तो वह मतवादियों के चंगुल में नहीं फँसें।

इतना तो हम पूर्ण दायित्व के साथ कह सकते हैं कि संसार के वर्तमान मतों में एक भी ऐसा नहीं है, जो धर्म के लक्षणों पर पूरा उतर सके या धर्म कहलाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...री हो, यद्यपि सभी अपने को धर्म घोषित करते हैं। ...र्म की कुछ न कुछ बातें इन सभी मतों में हैं, किसी ...और किसी में कुछ अधिक और इसीलिये यह ...में जीवित भी है, ठीक उसी प्रकार—जिस प्रकार ...तो मिट्टी के तेल की कुप्पी भी देती है और सरसों ...का दीपक भी। गैस के लैम्प भी प्रकाश देते हैं और ...लैम्प भी। इन सब में प्रकाश है और सभी प्रकाश ...क देते भी हैं, किन्तु सूर्य की अनुपस्थिति में। जब ...में सूर्य देदीप्यमान् हो रहा होता है तो इनमें से ...की भी आवश्यकता नहीं रहती और न इनका ...किसी को प्रकाशित ही कर पाता है। इनका प्रभाव ...कार में ही होता है, तभी यह प्रकाश दे पाते हैं और ...साधारण-सा, धुँधला तथा अतीव सीमित क्षेत्र में। ...अग्नि प्रकाश का पुञ्ज है। प्रकाश अग्नि का गुण ...जहाँ-जहाँ प्रकाश है, वहाँ-वहाँ अग्नि है। हाँ, ...की जहाँ जितनी शक्ति है, वहाँ उतना ही वह प्रकाश ...है। सूर्य अग्नि का भण्डार है अतएव उसका प्रकाश ...न्त प्रबल है, अतीव तीव्र है। यही कारण है कि ...भी प्रकाश उसके सामने मन्द पड़ जाते हैं।

...यही स्थिति धर्म की है। धर्म का प्रकाश अतीव तीव्र ...के प्रकाश के सामने मत-मतान्तरों के दीपक स्वयं ...पड़ जायेंगे, उनका एक प्रकार से विलीनीकरण ...गा, यदि धर्म का सूर्य उदय हो जाए। नितान्त ...की बात नहीं कही जा सकती, किन्तु साधारण-...ल्प बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी धर्म का प्रकाश ...मन्द-मन्द टिमटिमाने वाले मत-मतान्तरों के क्षुद्र ...को तुरन्त त्याग देगा, किन्तु उसे धर्म के सूर्य का ...मिले तो सही।

...श्न फिर घूम-फिर कर वही उपस्थित है कि ...त्वा धर्म का कुछ अता-पता भी है? उसका कोई ...ठिकाना भी है? उसे जानने वाला और उसका बताने ...भी कोई है तथा उसका स्वरुप, लक्षण, परिभाषा ...क्या है? इसके लिये चिन्तित होने की कोई बात नहीं। ...क है कि आप बहुत भटके हैं और आपने धर्म के नाम पर अनेक विचारों को सुना है, किन्तु उन सबमें परस्पर विरोध और भिन्नता ही पायी है, परन्तु वास्तविकता यह है कि सब मत-पन्थ या मजहब ही हैं, धर्म नहीं।

धर्म का ठौर-ठिकाना और अता-पता है ऋषियों के पास, ऋषि-कृत ग्रन्थों में। धर्म के वास्तविक व्याख्याता ही ऋषि हैं। धर्म का विधान करने की योग्यता मनुष्य में (सामान्य-जन) में नहीं होती, यह योग्यता तो ऋषियों में ही होती है। साधारण जन में धर्म-विधान का निर्माण करने, धर्म का स्वरुप निश्चित करने की योग्यता होती तो ऋषियों को उसके लिये प्रयत्न न करना पड़ता। सर्व साधारण तो परिस्थितियों में बहक कर धर्म विरुद्ध आचरण कर बैठता है। वह बहकने से, पथ-भ्रष्ट होने से बचे इसलिये तो ऋषियों ने धर्म का विधान किया है और किया है सर्व साधारण के लिये। ऋषियों के लिये धर्म-विधान निर्माण करने की आवश्यकता नहीं थी। कारण कि ऋषि तो स्वयं ही धर्म के साक्षात्कर्ता होते हैं। "साक्षात्कृत् धर्मा ऋषिः" ऋषि कहते ही साक्षात्कृत् धर्मा को है। अपने उसी साक्षात् किये हुए धर्म का व्यक्ति, परिवार और समाज—सबके लिये उपदेश किया है ऋषि ने। वही शाश्वत उपदेश आज भी संसार में मानव-धर्मशास्त्र तथा मनुस्मृति के नाम से प्रसिद्ध है। इन वर्तमान धर्म के नाम पर प्रचलित मतवादों के विषय में तो यही कहा जा सकता है कि—

हिन्दू भी हैं, मुस्लिम भी हैं, इन्सान नहीं है ।
मन्दिर भी हैं, मस्जिद भी हैं, ईमान नहीं है।।

जब ईमान, नैतिकता नहीं है तो इन्सान कैसे हों? इन्सान तो ईमान से ही बनता है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजे तो हिन्दु, मुसलमान, ईसाई आदि ही बना सकते हैं, इन्सान नहीं बना सकते। इन्सान तो केवल वेद ही बनाता है, वही कहता है, "मनुर्भव" अर्थात् मनुष्य बन। हिन्दु बन न मुसलमान बन, ईसाई बन न यहूदी बन—केवल मात्र मनुष्य, इन्सान बन और इस इन्सान को इन्सान, मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने के लिये महर्षि मनु ने मानव धर्म-शास्त्र का निर्माण किया। इस शास्त्र में जो कुछ भी है, वह वेद का ही है, वेद ही उसका आधार है। मनुस्मृति के प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय श्लोक १०८ में वर्णन है।

धर्म का स्वरूप बोध वेद से ही सम्भव है–

"आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।"

आचार परम धर्म है, श्रुति (वेद) में कहा है और स्मृति में भी कहा गया है। आचार क्या है? यह समझ लेना अत्यावश्यक है। आचार का सरल अर्थ है, जो आचरित किया जाना चाहिये, आचरण में, व्यवहार में लाया जाना चाहिये। जो कुछ भी आचरण में लाया जाये, वह नहीं अपितु जो आचरण में लाना उपयुक्त, उचित है, वही आचार है। स्मृति के उक्त उद्धरण का अर्थ हुआ कि जो व्यवहार करने योग्य हो, वही परम धर्म है और वेद उसी का निर्देश करता है तथा स्मृति भी उसी का विवेचन प्रस्तुत करती है।

प्रश्न यह है कि स्मृति भी उसी का विवेचन क्यों करती है, जो वेद कहता है। स्मृति और विशेषकर मनुस्मृति महर्षि मनु प्रणीत है। ऋषि तो मन्त्र का दृष्टा होता है, साक्षात्कृत धर्मा होता है। फिर वह स्वयं ही धर्म की विधि-व्यवस्था क्यों नहीं बना देता, श्रुति का आश्रय क्यों लेता है? श्रुति (वेद) में कहे हुए की ही विवेचना क्यों करता है?

जहां से प्रश्न उत्पन्न होता है, वहीं से उत्तर भी प्रारम्भ हो जाता है, केवल थोड़ा-सा ध्यान देने की बात है और वह यह कि ऋषि मन्त्र का दृष्टा=देखने वाला है, कर्ता=रचयिता, निर्माता नहीं है और मन्त्र में से जो ज्ञान वह प्राप्त करता है, उसी का साक्षात् करके, उसके धारण करने, आचरण में लाने वाले तत्वों का प्रत्यक्ष तथा व्यावहारिक स्वरूप स्मृति में प्रस्तुत कर देता है। मन्त्र संहिता (वेद) तो बीज, ज्ञान का बीज प्रस्तुत करती है, उसका अध्यात्म की परीक्षण शाला समाधि में दर्शन और तत्पश्चात् साक्षात् करके ऋषि उसके तत्वों ही विधि-व्यवस्था के रूप में जो प्रस्तुति करता है, वही स्मृति कहलाती है। इसलिये मनु महाराज स्वयं कहते हैं।

वेदो खिलोऽधर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्॥२॥६॥

वेद सम्पूर्ण (अखिल) धर्म का मूल है और उस (वेद) के जानने वालों की स्मृति तथा उनका शील भी धर्म का मूल है। कारण कि वेदवित् विद्वान् अर्थात् जिन्होंने वेद के न केवल मन्त्रार्थों का दर्शन ही किया है अपितु जिन्होंने वेद के विज्ञान का साक्षात् भी कर लिया, वेद के साथ-साथ अर्थात् वेद की ही भाँति उनका शील (व्यवहार, आचरण) भी धर्म का मूल है।

कोई प्रश्न कर सकता कि ऋषि भी है मानव ही– भले ही उसने अपनी कठोर साधना से ऋषित्व प्राप्त कर लिया है, परन्तु है तो जीवात्मा और शरीर का मेल ही। परमात्मा तो सर्वज्ञ है तथा जीवात्मा है अल्पज्ञ–एतदर्थ अल्पज्ञता के कारण ऋषि से भी भूल होना तो सम्भव ही है। यदि कहीं किसी ऋषि के आचरण में अथवा उनके द्वारा प्रणीत स्मृति ग्रन्थ में वेद से विरोध या विरोधाभास प्रतीत हो तो उस समय किस प्रकार निर्णय किया जाये? इसके लिये महर्षि मनु स्वयं ही स्पष्ट घोषणा करते हैं–

धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥

धर्म को जानने की इच्छा हो तो इसके लिये परम प्रमाण श्रुति अर्थात् वेद है। मानव धर्म-शास्त्र का प्रस्तोता स्वयं ही वेद को परम प्रमाण मानता है, अपनी कृति को नहीं, तब फिर किसी अन्य से ज्ञात करने की आवश्यकता ही नहीं।

प्रमाण दो प्रकार के होते हैं, एक स्वतः प्रमाण और दूसका परतः प्रमाण। स्वतः प्रमाण उसे कहते हैं, जो स्वयं पर आधारित हो अर्थात् जिसके लिये अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं तथा परतः प्रमाण वह होता है, जो किसी दूसरे पर आधारित हो अर्थात् जब वह स्वतः प्रमाण से प्रमाणित हो जाये, तब उसे प्रमाण माना जाता है। जैसे सूर्य के लिये किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं, सूर्य स्वयं अपना प्रमाण है। सूर्य निकलता है तो उससे कोई नकार नहीं करता। ठीक इसी प्रकार वेद भी स्वतः प्रमाण है, अन्य स्मृति आदि ग्रन्थ वेद के अनुसार होने से ही प्रमाण कोटि में आते हैं, वेद से विरोधी होने पर वह प्रमाण नहीं माने जाते। वेद से जो अनभिज्ञ हैं, उनकी बात जाने दीजिये। जो वेद के विचारों के किसी भी विषय में जानकार हो जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं ही वेद-भक्त हो जाते हैं, क्योंकि सूर्य की वेद-ज्ञान का प्रकाश मिलते ही मन से इसे स्वीकार हैं, वेद की विचारधारा के सम्मुख अन्य सभी धारायें उसी प्रकार फीकी पड़ जाती हैं, जैसे सूर्य से चन्द्रमा, अन्य नक्षत्र तथा मानव द्वारा प्रज्वलित ये लैम्प, मिट्टी-दीप तथा विद्युत-प्रकाश आदि पड़ जाते हैं, मन्द हो जाते तथा लुप्त हो जाते हैं।

सामान्यतः तो-

स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

वेद, स्मृतिः, सत्पुरुषों का आचार और स्वयं को लगने वाला व्यवहार-यह चार साक्षात् धर्म के कहे जाते हैं जो वेद में निर्देश है, स्मृति में जिसका और विवेचन है, समाज के सम्मानित व्यक्ति ऋषि, जो धर्म तत्वों के ज्ञाता हैं, जिस प्रकार का व्यवहार हैं और धर्म की जिज्ञासा रखने वाला व्यक्ति जिस के व्यवहार को पसन्द करता है-यह चार प्रकार जिनसे धर्म का साक्षात् अर्थात् वास्तविक ज्ञान होता

समस्या यह है कि सर्व साधारण वेद को तो जानते जान भी जायें तो समझते नहीं। स्मृति आदि शास्त्रों विषय में भी नितान्त अनभिज्ञ हैं। जिनके आचरण अनुकरणीय होते हैं, ऐसे व्यक्ति प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध और, ऐसे प्रमाण-कोटि के व्यक्ति तो अपवाद ही होते अल्पबुद्धि तथा ज्ञानहीन लोगों के मन को पसन्द वाली बात भी नहीं जँचती। कारण यह है कि स्व- और सूझ-बूझ के अनुसार ही उनकी पसन्द होगी। अधिक सम्भावना इसी बात की रहेगी कि वह अनुचित को अपना बैठें तथा अनुचित कार्य करें, जो धर्म के विरुद्ध ऐसे लोगों की पसन्द धर्मानुकूल होगी, यह न तो आशा जा सकती है और न विश्वास ही। इस दृष्टि से महर्षि व्यास के उपदेश को महाभारत से उद्धृत किया जाता जिनका कहना है-

श्रूयतां धर्म-सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

अर्थ-धर्म के सर्वस्व को सुनो और सुनकर उसे धारण करो। जो व्यवहार आप किसी अन्य के द्वारा अपने साथ करवाना पसन्द नहीं करते, उस प्रकार का व्यवहार आप भी किसी के साथ मत करो। इससे संक्षिप्त धर्म का सार, धर्म का तत्व और क्या हो सकता है?

इतना सब जानने पर भी कुछ लोग यह कहेंगे कि जब कोई समस्या सम्मुख आती है, तब यह सब विचारने का समय कहाँ होता है? तुरन्त प्रश्न उठे और उसी क्षण उत्तर भी तैयार मिले, इतने प्रत्युत्पन्नमति भी तो सब नहीं होते अतः धर्म की कुछ मुख्य-मुख्य धाराओं का ज्ञान तो हो ही जाना चाहिए। तो फिर सुनिये और कष्ट करके अन्तःकरण पर अंकित कर लीजिये, उन्हीं महर्षि मनु के शब्दों में-

शाश्वत व सार्वभौम धर्म का स्वरुप-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या-सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥(६/९२)

धृति=धैर्य धारण करना अर्थात् समस्या सामने आने पर विचलित न होना, घबराना नहीं तथा गम्भीरतापूर्वक समय की चुनौती को स्वीकार कर समस्या को सुलझाना।

क्षमा=सहनशीलता अर्थात् समर्थ होते हुए भी अपने आधीन, निर्बल अथवा विरोधियों पर प्रहार न करना।

दम=मन करना अर्थात् अपनी मनोवृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाना, मन में बुरे विचारों को स्थान न देना, आयें भी तो उन्हें दबा देना अर्थात् मन को वश में रखना।

अस्तेयम्=चोरी न करना। चोरी को जीविका का माध्यम भी न बनाना और बिना आज्ञा के किसी की कोई वस्तु कदापि न लेना।

शौच=पवित्रता, शारीरिक व मानसिक दोनों ही प्रकार की पवित्रता ही वास्तविक पवित्रता है। तन शुद्ध भी हो किन्तु मन में अशुद्धियाँ, अपवित्रतायें, गन्दे विचार घर किये हुए हों तो जीवन पवित्र नहीं बन सकता। बाहर की पवित्रता भी अत्यन्त आवश्यक है परन्तु मन की पवित्रता वस्त्रों और तन की पवित्रता से भी अत्यावश्यक है।

इन्द्रिय निग्रह=आंख, कान आदि इन्द्रियों को अपने विषयों अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय को उसके अपने-अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय में अनावश्यक भटकने से रोकना अथवा इस प्रकार कह लीजिये कि इन्द्रियों का अनावश्यक विषय सेवन से रोकना। यह इन्द्रिय समूह अत्यन्त बलवान् है, इसे अतीव कठोरतापूर्वक विषय सेवन से रोकना होता है।

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

अर्थात् इन्द्रियों का समूह बलवान् है, यह विद्वान् को भी आकर्षित कर लेता है, अपनी ओर खींच लेता है, साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है?

धी=बुद्धि, बुद्धि भी साधारण नहीं धारणावती। विषय के उपस्थित होने पर उसे तुरन्त समझ लेने वाली बुद्धि। ऐसी बुद्धि ही धैर्य धारण करने, समस्याओं के समाधान खोजने, धर्म के सूक्ष्म तत्वों तथा वेदादि शास्त्रों को समझने में समर्थ होती है। बुद्धि को विकृत करने वाले मद्य मांस आदि का कभी भूलकर भी सेवन न करना।

विद्या=जिससे किसी पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को, ज्यों का त्यों, जैसा वह है जाना और समझा जा सके, उसे विद्या कहते हैं।

सत्य=जो बात जैसी है और जो पदार्थ जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकार करना तथा प्रत्येक क्षेत्र में और प्रत्येक अवसर पर मन, कर्म, वचन में सत्य का ही व्यवहार करना।

अक्रोध=क्रोध न करना। क्रोध का अर्थ होता है इच्छा की पूर्ति न होने अथवा अवरोध होने पर आवेश में कुछ का कुछ असंयत और अनर्गल बकने लगना तथा अनुचित और अवैध हिंसामय कार्य कर बैठना। ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देना अक्रोध कहलाता है।

इस प्रकार यह धर्म के दस लक्षण महर्षि मनु के द्वारा निर्धारित किये हुए हैं। इन्हें जीवन में धारण करना चाहिये अर्थात् इसके अनुसार आचरण करना चाहिए। इनके विरुद्ध आचरण करना, धर्म का हनन करना कहलाता है। शास्त्र का मत है–

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

अर्थ–जो धर्म का हनन करता है, वह स्वयं मारा जाता है और जो धर्म की रक्षा करता है, वह स्वयं रक्षित रहता है। इस कारण से धर्म का हनन नहीं करना चाहिये क्योंकि मारा हुआ धर्म मानव को मार डालता है। मनुष्य जिस-जिस अंश में धर्म के तत्वों का पालन करता है अर्थात् जितने धर्म के लक्षण उसमें हैं, उसके आचरण और व्यवहार में पाये जाते हैं, उतने ही अंश में वह धर्मात्मा है और धर्म के लक्षण जो उसमें नहीं पाये जाते अर्थात् धर्म के तत्वों का जिन अंशों में वह पालन नहीं करता, उतने अंश में वह अधर्मी, पापी है। जैसे अग्नि का गुण जलाना और प्रकाश देना है। जब तक यह लक्षण पाये जायेंगे। तब तक वह अग्नि कहलायेगी और जब अग्नि दाहकत्व और प्रकाश से रहित हो जायेगी तो वह अग्नि नहीं रह जायेगी अपितु राख हो जायेगी अर्थात् जब तक अग्नि अपने धर्म दाहकत्व और प्रकाश को धारण किये रहती है, उनकी रक्षा किये रहती है, तब तक वह स्वयं भी रक्षित रहती है और जब वह अपने इन धर्मों का पालन-रक्षण नहीं करती, इनका हनन कर देती है, तब वह स्वयं भी मर जाती है।

यही दशा मानव की भी है। धर्म के आचरण से हटकर धर्म को तिलाञ्जलि देकर अथवा यों कह लीजिये कि धर्म की हत्या करके मानव भी मृतक के समान हो जाता है। जिसमें मानवता के तत्व ही नहीं, जिसमें मानवता के लक्षण, मानव धर्म के लक्षण नहीं पाये जाते वह तो जीते जी भी मृतक है। मानव तो तब तक है, जब तक उसमें मानवता के लक्षण पाये जायें। मानवता छोड़ी तो मनुष्य रूप में नरपशु रह जाता है। एतदर्थमेव मानव के द्वारा मानवता के लक्षणों का त्याग अर्थात् धर्म का हनन नहीं होना चाहिये। हाँ, यह आवश्यक है कि धर्म के मर्म को, धर्म के रहस्य को भली-भाँति समझ लेना चाहिये। यह उपर्युक्त मानवधर्म ही शाश्वत तथा सार्वभौम धर्म है, जिसका विरोधी कोई नहीं हो सकता।

–श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक
अध्यक्ष–वैदिक संस्थान, नजीबाबाद (उ.प्र.)

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द-दर्शन

यह वर्ष आचार्य पं. चमूपति जी का जन्म शताब्दी वर्ष ...डित चमूपति जी का जन्म दिवस १५ फरवरी को पड़ता ...षि बोध पर्व इसके कुछ दिन बाद होगा। वेद भक्तों को ...ये कि पूरा वर्ष श्री पं. चमूपति जी की जन्म शताब्दी स्थान-...र पर मनाते हुए पण्डित जी के साहित्य का प्रचार करें। ...ाय करें व करावें। इस शताब्दी को मात्र धन संग्रह व ...म्मेलन करके शोर-शराबे तक ही सीमित न रखें।

आचार्य चमूपति आर्य समाज की अनूठी विभूति थे। मैंने ...डल प्रचारक मेहता जैमिनि के मुख से सुना था कि आर्य ...ज में विद्वान पण्डित तो बहुत हुए हैं, परन्तु Genius ...भी) तो दो ही हुए हैं। एक पं. गुरुदत्त, दूसरे आचार्य ...ति। दुर्भाग्य यह है कि पण्डित जी का जीवन चरित्र भी ...तक नहीं लिखा गया। अब मैं इस कार्य में लगा हूँ। सिंधी ...षा और अंग्रेजी भाषा के यशस्वी लेखक साधु ट. ल. ...वानी जी ने आचार्य चमूपति जी के बारे में लिखा है, "Whatever he writes, he writes with beautiful ...otion" अर्थात् जो कुछ भी वह लिखते हैं वह बहुत सुन्दर ...भाव से लिखते हैं। वासवानी जी आर्य समाजी नहीं थे ...पं. चमूपति जी की लेखनी पर मुग्ध थे। पाकिस्तान के ...र के जन्मदाता डा. इकबाल ने एक बार कहा था, "पण्डित ...आपको देखकर मुझे मेरा उस्ताद याद आ जाता है।"

ऐसे मनीषी कवि ने महर्षि के जीवन व दर्शन पर जो कुछ लिखा है, वह मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालता ...आओ, पण्डित जी के शब्दों में ऋषि के दर्शन को समझें।

वैदिक धर्म में बड़पन्न की कसौटी क्या है? ...मात्मा के प्यारे वे हैं जिनका जीवन सृष्टि के वैज्ञानिक व ...ध्यात्मिक नियमों के सांचे में ढल जाता है। जिनका चरित्र ...उनका बड़पन्न है। वे नियम तोड़ते नहीं। इनके (नियमों) ...का प्रकाश करते हैं। उनकी श्रद्धा-आस्था बुद्धि के साथ ...होकर उस धर्म का प्रकाश करती है जिसका पवित्र नाम ...है।"

यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि अवैदिक ...पंथों में किसी का बड़पन्न चरित्र व गुणों से नहीं ईश्वर के नियम तोड़कर चमत्कार दिखाने में है।

प्रभु की दया और उसका न्याय– "ऋषि दयानन्द ने परमात्मा के न्याय को (उसकी) दया का पर्याय कहा है। परमात्मा के निश्चय में दया है और कर्म में न्याय।"

वर्तमान जीवन का सुख व दुःख क्यों?– "आर्य धर्म के अनुसार वर्तमान जीवन के सुख-दुःख इस जन्म अथवा किसी पूर्व जन्म के शुभ-अशुभ कर्मों के फल हैं। यदि ऐसा न हो तो वर्तमान जीवन के दुःख के लिए कोई उचित कारण नहीं रह जाता। अकारण किसी के भाग्य में दुःख रख देने से परमात्मा पर क्रूर अन्यायी होने का दोष लगता है।"

ईश्वर-ज्ञान का आविर्भाव– "ईश्वरीय ज्ञान के सम्बन्ध में हमारी यह मान्यता है कि परमात्मा ऋषियों के हृदयों में अपने ज्ञान का प्रकाश करता है। ईश्वरीय ज्ञान के आविर्भाव का यही एक प्रकार है। परमात्मा सर्वव्यापक है। उसके व उसके प्यारों के मध्य में किसी सन्देशवाहक की आवश्यकता नहीं परन्तु कुरान का इलहाम एक फरिश्ते के द्वारा हुआ है जिसने हज़रत मुहम्मद से प्रथम भेंट के समय कहा था–पद नाम से अपने रब के।"

इस महादुःख का कारण तो बताइये?– "हज़रत मुहम्मद मुसलमानों की दृष्टि में निष्पाप व्यक्तित्व है परन्तु आपके चिरंजीव हज़रत इब्राहीम का निधन हुआ जिससे हज़रत को दुःख पहुँचा था। हज़रत के अश्रु भी निकले। हज़रत स्वयं निधन से पूर्व रुग्ण भी रहे। इसका कारण?"

जीव व प्रकृति अनादि क्यों?– "अनादि स्रष्टा के लिए अनादि प्रजा भी आवश्यक है।"

लेने वाला भी पहले चाहिये– "देने वाला देने से पहले होता है। इसलिए ईश्वर का प्रकृति व जीव से पहले होना आवश्यक है। इस आक्षेप का उत्तर देते हुए पण्डित जी ने लिखा है, "तो क्या लेने वाले का पहले होना आवश्यक नहीं? लेने वाला न होगा तो देने वाला अपनी देन देगा किसे? और देगा क्या?"

परमात्मा के गुणों की अभिव्यक्ति– "प्रलय प्रत्येक लोक में एक ही समय में नहीं होती प्रत्युत्त जब एक लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रलय होती है, दूसरे लोकों में सृष्टि का काल चल रहा होता है। इस प्रकार परमात्मा के प्रत्येक गुण की प्रति क्षण अभिव्यक्ति होती रहती है।

कर्म स्वातन्त्र्य–"ऋषि दयानन्द की दृष्टि में कर्म वह है जो स्वतन्त्रता से किया जावे।"

प्रभु का निवास कण-कण में–"लोगों ने देव शब्द को परमात्मा का पर्याय समझा, तभी से अनेक देवार्चन चले। मेरे प्रभु का निवास होने से प्रत्येक अणु देव है।"

मनुष्य अति चाहता है–"मनुष्य अति चाहता है। तैंतीस करोड़ से लजाए तो 'एक ब्रह्म' पर उतर आए। कहाँ तो असंख्य देव माने थे, और कहाँ वस्तु ही एक रह गई। प्रकृति मिथ्या, जीव मिथ्या, एक ब्रह्म सत्य। इस भ्रम ने और आँखे बंद कर दीं। देव दर्शन तो क्या? अदेव दर्शन भी न रहा। आँख का काम अदर्शन हो गया।"

वह स्वाहा नहीं–"जो बात कहकर कार्य में न लाई जावे वह ठीक प्रकार नहीं कही गयी। वह स्वाहा नहीं।"

किया हुआ कर्म–"किया हुआ कर्म और छिड़का बीज निष्फल न होगा।"

ऐसा हृदय–"उत्साहशून्य हृदय राख की मुट्ठी है।"

सत्य क्या चाहता है?–"सत्य संयम चाहता है। समयोचित मति चाहता है। हित साधक प्रतिभा चाहता है। परोपकारिणी मुखवृत्ति चाहता है। इसके अन्दर अग्नि की लपट है परन्तु ब्रह्मस्वरूप जल का है।"

आलसी को सुख कहाँ?–"आलसी को निद्रा का सुख भी नहीं मिलता। अवकाश का सुख वे भोगते हैं जो अवकाश नहीं करते।"

जो नियम पालन करते हैं–"जिनमें नियम पालने का स्वभाव है उन पर किसी बाह्य दबाव का भार नहीं पड़ सकता। दास कोड़े के नीचे काम करता है। स्वतन्त्र पुरूष पर अपनी आत्मा का कोड़ा होता है।"

महर्षि दयानन्द और सत्य का सौदा–"१९ अप्रैल १८७७ को ऋषि लाहौर पधारे। पहले बावली साहेब, फिर ब्रह्म मन्दिर, फिर रत्नचन्द के बाग और अन्त में रहीम खाँ की कोठी में डेरा हुआ। सत्य महंगा था। कोठियाँ सस्ती। या कोठियाँ महँगी थीं, सत्य सस्ता। सौदा पटने में नहीं आता था। स्थितप्रज्ञ साधु स्थितप्रज्ञता से इधर-उधर भटक रहा था। रोज-रोज का यही भटकना उसकी समाधि थी।"

प्रार्थना व प्रतिज्ञा–"उपासकों की भाषा में प्रार्थना और प्रतिज्ञा पर्यायवाची हैं।"

समाहित मन–"समाहित और स्तब्ध मन में भेद है। समाहित वह मन है जिसकी गति को रोका नहीं गया, किन्तु नियम में लाया गया है। स्तब्ध वह है जिसमें गति ही नहीं। ऐसा मूढ़ों का मन है कि जिन्हें कुछ आता नहीं।"

प्रार्थना और पुरूषार्थ–"हाथ पसारे हैं तो हाथ हिलाने भी स्वयं होंगे।"

परमात्मा के निकट–"सांसारिक बड़ाई हेय नहीं, उपादेय है। जितने बड़े होगे, उतने परमात्मा के निकट पहुँचोगे।"

पाप का मूल–"पाप का मूल केवल अपने स्वरूप तथा स्थिति का अज्ञान है। कोई तो अपने आपको पामात्मा का बड़ा भाई समझता है और अन्य प्राणियों पर अत्याचार करना उस ज्येष्ठ भ्रातृत्व का स्वाभाविक फल जानता है। वह अपनी वास्तविक स्थिति से ऊँचा उड़ा। यह उक्त अज्ञान का एक रूप है, जिसे अभिमान कहते हैं। एक और महाशय अपना अस्तित्व इतना भी नहीं जानता, जितना जड़ प्रकृति का। वह रींगता और गिड़गिड़ाता है। आत्म-विश्वास उसमें नहीं, काम करने का उत्साह उससे दूर है। यह उक्त अज्ञान का एक दूसरा रूप है, जिसका लौकिक नाम भय है। बस संसार में पाप जितना होता है, इन्हीं दो कुत्सित कारणों से होता है। जिसने इन दो का नाश किया, वह पापों से छूटा।"

परमात्मा के नाम और दिशायें–"परमात्मा के किसी नाम विशेष का सम्बन्ध किसी दिशा विशेष से नहीं। न ही उसकी शक्तियों का कार्यक्षेत्र दिशाओं द्वारा परिमित है। वर्षा ऊपर से होती है और बेल-बूटे नीचे से उगते हैं। सर्वव्यापक के गुण भी सर्वव्यापी हैं, शक्तियां भी।"

जीवन कैसा हो?–"सारी इन्द्रियाँ स्वस्थ बनी रहें। जो देखा जाए, वह जीवन में आये। जो सुना जाए, व उपदेश बने। आँखों में दृष्टि रहे, कानों में श्रुति रहे। मुख में वाक्, नासिका में प्राण हों, सौ के हों चाहे और भी अधिक के, बुद्धि में वृद्धि हो। शक्ति में युवा और सरलता में शिशु।"

–आचार्य चमूपति जी की लौह लेखनी से

[प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु वेदसदन, अबोहर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...क से आगे—

तुलसीकृत रामायण—समीक्षा

—पं. छाजूराम शर्मा शास्त्री विद्यावाचस्पति

...में पड़ी मूर्ति कुछ खा न सकेगी।
...जो कोई बात तो बतला न सकेगी।।
...बात करोगे तो वह खामोश रहेगी।
...रके चले जाओगे तो कुछ न कहेगी।।
...जु है वहाँ से कभी वह जा न सकेगी।।१।।पूछो।।
...ख लगेगी उसे न प्यास लगेगी।
...गी वह रात को न दिन को जगेगी।।
...कभी न वह न कभी गा ही सकेगी।।२।।पूछो।।
...गे अगर खाने को फल मूल मिठाई।
...येगा चूहा तो वह कर देगा सफाई।।
...को भी मुखड़े से वह उड़ा न सकेगी।।३।।पूछो।।
...यों की संगति करो मन शुद्ध बनाओ।
...र अगर ज्ञान की गंगा में नहाओ।।
...यों की फिर मन में कभी आ न सकेगी।।४।।पूछो।।

...अनेक प्रमाणों में से "स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमित्यादि ...वेद मन्त्र से मूर्तिपूजा का महल बालू की दीवार की भाँति ...ही जाता है। परन्तु इस बात को विद्वान् ही जानते हैं। ...गण को पता नहीं है। नवीन पाठक निम्नलिखित पद्य ...की बरबादी का अनुमान लगा सकते हैं।

मूर्तिपूजा के दुष्परिणाम

...जब चली इस देश में आर्यों के पतन का आरम्भ था।
...भजन के नाम से चल पड़ा यह नाशकारी दम्भ था।।
...वह पाप जग में शेष है मूर्तिपूजा ने कराया जो नहीं।
...जगत में कौन सा मूर्तिपूजा ने हराया जो नहीं।।
...कभी चलता यहाँ मूर्तिपूजा भूमि पर होती न जो।
...देश का लुटता नहीं आर्य जाति होश यों खोती न जो।।
...भारत हुआ गारत तथा हो गया परतन्त्र सदियों के लिये।
...गये सब आर्य जन सो गया फिर भाग्य सदियों के लिये।।
...भी योद्धा वीर यहाँ फलित ज्योतिष की कृपा से हारकर।
...से दिया तब बन्द कर धैर्य खो वे रह गये मन मार कर।।
...मन्दिरों को तोड़कर करोड़ों की सम्पत्ति सबको जोड़कर।
...चले बन्दी बना म्लेच्छ सारे खंडहरों को छोड़कर।।

दो दो रुपयों में बिके गजनी में वे जो न करने काम थे वे भी किये।
मूर्तिपूजा का जो फल था पा लिया पशुओं जैसी जिन्दगी वे भी जिये।।
देखी जब यह दुर्दशा दयानन्द ने मूर्तिपूजा का प्रबल खण्डन किया।
जो भी था नित सत्य मत कुछ शास्त्र में उस सभी का हो अभय मंडन किया।।
मूर्तिपूजक देख दुष्परिणाम सब मोह इसका तोड़ते फिर भी नहीं।
पेटपूजा के लिये वें स्वार्थवश दुष्प्रथा को छोड़ते फिर भी नहीं।।
पिट चुके और लुट चुके बहु बार जो फिर भी कहते हैं सनातन धर्म यह।
यह सन्ध्या और सभी शुभ कर्म जो सत्य "छजूरा" वैदिक धर्म यह।।

२० —मूर्तिपूजा ने ईसाई बनाये

सर समीप गिरजा घर सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा।।

यह चौपाई बालकांड की है। तुलसीदास जी ने लिखा है कि राजा जनक का एक बगीचा था। उसमें राम—लक्ष्मण ने प्रथम बार सखियों सहित सीताजी को देखा था और वहीं राम—सीता एक दूसरे की सुन्दरता से मोहित हो गये थे। बगीचे में एक पार्वती का मन्दिर था। जहाँ सीताजी उनकी पूजा करने के लिये आया करती थीं। यह मन्दिर एक तालाब के तट पर शोभा दे रहा था। उसकी शोभा अवर्णनीय थी। जिससे मन मोहित हो जाता था।

सब जानते हैं कि ईसाई मत का प्रचार ब्रिटिश शासन काल में भारत में होता रहा है और दुर्भाग्य से आज भी हो रहा है। ईसाई पादरियों ने पिछड़े व अशिक्षित लोगों में यह प्रचार किया कि राजा जनक भी ईसाई मत के भक्त थे। इसीलिए उन्होंने अपने बगीचे में एक सुन्दर गिरिजा घर बनवा दिया था। जनकपुत्री सीता राम को ब्याही थीं। स्पष्ट है कि राम सीता दोनों ही ईसाई थे, जिनको तुम सब हिन्दू मानते हो। इसलिए सभी लोग हिन्दू धर्म छोड़कर ईसाई बन जायें। यही मुक्ति का सही मार्ग है।

अनपढ़ लोगों के हृदय में यह बात सत्यता से बैठ गयी और वे सभी ईसाई बनने लगे। उन्हें क्या पता कि गिरिजा और गिर्जा में कुछ अन्तर है। गिरि का अर्थ है पर्वत। पार्वती पर्वतीय राजा की पुत्री थी। उसका मन्दिर होने से उसे गिरिजा घर कहते थे। लेकिन गिर्जाघर का अर्थ चर्च है। जहाँ ईसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसीह की पूजा – प्रार्थना की जाती है। इस अर्थ का अनर्थ करके पादरियों ने देश–विदेश में स्थित लाखों–करोड़ों आर्य सन्तानों को ईसा की भेड़ें बना दिया। वस्तुतः जनक के समय पाषाण पूजा की कल्पना भी नहीं की गयी थी। यह नवीन कल्पना आधुनिक युग में अज्ञानियों के विकृत मस्तिष्क की उपज है। जिसने आर्य (हिन्दू) जाति का भारी विनाश किया है। आर्य जाति को अल्पसंख्यक बनाने में तुलसीदास जी का भारी योगदान रहा है। यदि उन्होंने हिन्दुओं को मुसलमान बनने से रोक कर राम का भक्त बनाया तो उनकी मूर्तिपूजा परक एक ही चौपाई ने लाखों हिन्दुओं को ईसाई बना दिया। कुंए से निकाला तो खाई में ढकेल दिया। छूआछूत के समर्थक तुलसीदास जी ने कितने ही हरिजन हिन्दुओं को विधर्मी बनने के लिए बाध्य किया।

२१ – गंगा नदी मुक्ति का कारण नहीं

पुराणों में गंगा आदि नदियों तीर्थों का बढ़–चढ़कर माहात्म्य लिखा है। जबकि वेदों, उपनिषदों में कहीं भी इसकी चर्चा नहीं है। इसके पीछे एक मिथ्या कथा जोड़ी हुई है जो मेरठ छापे की पुरानी तुलसी रामायण में लिख दी है। जो इस प्रकार है–

राजा सगर के साठ हजार पुत्र कपिल मुनि के श्राप से भस्म हो गये थे। उनके मोक्ष के लिए सगर के पोते अंशुमान नें गंगा को प्रसन्न करने के लिए तप किया। वह तप करते हुए मर गया। फिर उसी के वंशज दिलीप ने तप किया। वह भी सफल न हुआ। फिर उनकी सन्तान भागीरथ ने घोर तप किया। तब गंगाजी प्रसन्न हुई और प्रकट होकर बोलीं–वर माँगो, भागीरथ ने कहा–"मेरे पूर्वज कपिल मुनि के श्राप से भस्म हुए पड़े हैं। सो आप कृपा करके उनकी राख को अपनी धारा से बहा दो तो उनकी मुक्ति हो जायेगी। गंगाजी ने प्रसन्न होकर मृत्युलोक में आकर अपनी धारा से राख को बहा दिया। इस प्रकार सगर के पुत्रों की मुक्ति हो गई।

समीक्षा–प्रथम तो सगर के साठ हजार पुत्रों की कल्पना ही मिथ्या है। बताते हैं कि उसकी रानी के उदर से एक थैली उत्पन्न हुई। उसी में से वे पुत्र निकले। एक चुहिया के बच्चे के बराबर भी साठ हजार पुत्र एक थैली में नहीं समा सकते। यदि एक रानी के दस पुत्र भी उत्पन्न होना मान लें तो सगर की छः हजार रानियाँ माननी पड़ेंगी जो कि असम्भव है। लेकिन लोग श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानियों की मिथ्या कल्पना कर सकते हैं, उन्हें सगर की छः हजार रानियाँ बताने से व एक ही रानी से साठ हजार पुत्र बताने से कौन रोक सकता है? यदि ऐसा न लिखें तो भोले लोगों को कथा में आनन्द ही कैसा आयेगा।

दूसरी बात यह विचारणीय है कि श्राप और वरदान की कथाएँ ही मिथ्या हैं। जिनकी चर्चा हम पीछे भी कर आये हैं। श्राप देने वाले कपिल मुनि के मुख से क्या आग निकलती थी जो सगर के पुत्रों को जला दिया। श्राप और वरदान किसी वस्तु के वास्तविक गुण को नष्ट व प्रभावहीन नहीं कर सकते।

तीसरी बात यह है कि गंगा एक नदी का नाम है, जिसमें पवित्र जल बहता है। जल जीवन का आधार और अचेतन द्रव्य है। वह कभी स्त्री का रूप धारण नहीं कर सकता। पवित्र जल में स्नान करना कोई बुरा काम नहीं है। लेकिन वह पापी मनुष्य को मुक्ति नहीं दिला सकती। पापों का फल तो भोगना ही पड़ेगा। हाँ, यदि कोई मनुष्य सच्चे मन से गंगा स्नान करके यह अनुभव करे कि आज मैं पाप मुक्त हुआ तो उसे फिर पाप करना कठिन हो जायेगा। मगर लोग ऐसा अनुभव नहीं करते इसलिए पुनरपि पापों में प्रवत्त हो जाते हैं। गंगा न किसी को पापी बनाती है और न धर्मात्मा। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि उसमें नहाने वाला यदि संकल्प कर ले तो भविष्य में पापों से वह मुक्त हो जाता है। यही कारण है कि इस मिथ्या प्रचार से करोड़ों मृतकों के शव, भस्म व हड्डियाँ गंगा में प्रवाहित कर दी जाती हैं। ताकि मृतक की मुक्ति हो जाए। यह कितना बड़ा अन्धविश्वास है। स्वामी दयानन्द जी ने देहत्याग से पूर्व यह आदेश दिया था कि मेरी अस्थियाँ और राख को किसी नदी या तालाब में न फेंकना। अपितु किसी निर्धन किसान के खेत में डाल देना। जिससे उसकी फसल को लाभ हो। यह उनका वैज्ञानिक विचार था। अस्तु अब तो गंगा जल भी दूषित कर दिया गया है। गंगा तट के ग्रामों, नगरों के गन्दे नाले सब गंगा में मिला दिये हैं। इससे जल न तो नहाने योग्य रहा और न पीने योग्य फिर उससे मुक्ति की कल्पना करना तो और भी मिथ्या है।

गंगा तटवासी पंडों की जिविका गंगा के भक्तों द्वारा चलती है। इसीलिये उनमें से किसी आलसी पंडे ने ऐसा श्लोक गंगा के माहात्म्य में बना दिया।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
सर्वपापखिनिमुक्तियो विष्णुलोकं स गच्छति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक योजन चार कोस का होता है। ऐसे सौ योजन की
जो कोई मनुष्य हे गंगे! हे गंगे! ऐसा उच्चारण करे
सब पापों से छूट कर विष्णुलोक को जाता है।
यह तो केवल नामोच्चारण का फल है और जो गंगा
कर ले तो फिर आगे वह कहाँ जायेगा? गंगा के
ही पूछिये! इन्हीं अन्धविश्वासों में फँस कर गंगा के
प्रारम्भ हुए। बिना किसी जप–तप विधि आदि शुभ कर्म
मानने लग गये। यह सब बात विद्याहीनों ने सर्वत्र
है।

रामायण में अवतारवाद

'रामायण परिचय' में हमने 'राम परमात्मा के अवतार
इस शीर्षक से कुछ प्रकाश डाला है। अब संक्षेप
इस पर यहाँ भी विचार करते हैं।

श्रीराम को ईश्वर मानने पर उनका समस्त गौरवमयी
मिट्टी में मिल जाता है। पाठक तनिक विचार करें।
मिलने पर राम प्रसन्न नहीं होते और वन जाने पर
नहीं होते। यदि राम ईश्वर हैं तो इसमें उनका क्या
ईश्वर राम के लिये तो जैसा घर वैसा ही जंगल।
वे सर्वव्यापक हैं। इसमें राम की कोई विशेषता नहीं।
को मानव मानें, जैसे कि वे थे तो उनका यश और
बढ़ता है। लेकिन राम को ईश्वर बनाते ही उनके गुणों
फिर जाता है। राम ईश्वर ने यदि रावण को मार
उनके ईश्वरत्व पर धब्बा ही लगा, न कि उन्हें यश
क्योंकि, रावण को तो उन्हीं ने उत्पन्न किया था। अपने
बनाना और आप ही उसे बिगाड़ देना, इसमें क्या तीर
ईश्वर तो सृष्टि रचयिता, पालक और संहारक
से एक व्यक्ति को मार देना क्या बड़ी बात हो गयी?
चींटी मार दी, कोई वीरता का काम नहीं। एक एम.
छात्र ने प्राईमरी का कोई गणित का प्रश्न हल कर
उसने कोई बड़ा काम नहीं किया।

फिर राम को ईश्वर मानकर उसके नाम से चमत्कार
जाते हैं। इसलिये कि अज्ञ जनता राम के अवतार होने
शंका ही न करे। यह ठीक है कि अलंकार कविता
सुन्दरता अवश्य बढ़ाता है। इसी से क़विजन इसका
करते हैं। परन्तु महापुरुषों को ईश्वरावतार सिद्ध
के लिए अलंकार का आश्रय लेना उनके इतिहास को
है क्योंकि, भविष्य में सामान्य लोग अलंकार न
कर उसे सत्य घटना ही मानेंगे। समझने के लिए
सोहनलाल जी द्विवेदी ने गाँधी जी के विषय में 'अमर भारती'
पुस्तक में लिखा है–

चल पड़े जिधर दो डग मग में चल पड़े कोटि पग उसी ओर।
गड़ गयी जिधर भी एक दृष्टि गड़ गये कोटि दृग उसी ओर॥

फिर आगे एक पंक्ति है–

'हे कोटि रूप! हे कोटि बाहु! हे कोटि चरण! तुमको प्रणाम!'

अब यदि यहाँ इसका यह अर्थ करें कि गांधी जी के करोड़ों हाथ, पैर, बाहु, और आँखें थीं तो अनर्थ होगा। सत्यार्थ यह होगा कि करोड़ों व्यक्ति जिनके पैरों का अनुगमन करते थे। भारतीय प्रजा की करोड़ों निगाहें जिनकी एक निगाह के साथ उठती थीं, करोड़ों हाथ–पैर जिनका साथ देते थे, उस युगपुरुष गाँधी जी को हम प्रणाम करते हैं।

इस बात को न समझने से बाद के लोग गाँधी जी को ईश्वर का अवतार समझ सकते हैं। इसी प्रकार पुराणादि ग्रन्थों में अनेक आलंकारिक कथाएँ लिख दी गई हैं। जिसका परिणाम आज सामने है।

ईश्वर का अवतार क्यों होता है?

गीता तथा भागवत के अनुसार ईश्वर का अवतार धर्म–रक्षा तथा अधर्म के विनाश, सत्पुरुषों की रक्षा एवं दुष्टों के विनाश के लिये होता है। इस पर यदि विचार करें तो पता चलता है कि अवतार की मिथ्या कथाओं ने मानवों को कितना धोखा दिया है। अवतारवादियों की पुस्तक देवी भागवत का एक प्रमाण लिखते हैं, जो इस प्रकार है–

अवतारा मृत्यु लोके सन्तु मच्छाप सम्भवाः।
प्रातो गर्भभवं दुःखं भुंक्ष्व पापाञ्जनार्दन॥ (देवी भा. स्कं ४ अ. १२)

जब भृगु ऋषि की पत्नी का सिर विष्णु ने काट दिया तो ऋषि ने प्रतिशोध की आग में जल कर विष्णु को इस प्रकार श्राप दिया–

हे जनार्दन! मेरे श्राप के प्रभाव से तेरे बहुत से अवतार होंगे और गर्भ के कष्टों को तुम मृत्युलोक में भोगोगे। फलतः विष्णु ने श्राप को प्राप्त किया और मछली, कछुआ, शूकर, नृसिंह, वामन बनकर जन्म–मरण का दुःख भोगा।

इससे निर्विवाद सिद्ध है कि जन्म–मरण का दुःख भोगने के लिये शापित विष्णु को अवतार लेना पड़ता है। धर्माधर्म की रक्षा या विनाश से इन अवतारों का कोई सम्बन्ध नहीं है। तब गीता–भागवत का उक्त कथन मिथ्या हो गया। तुलसीदास जी की समस्त रामायण अवतारवाद के आश्रय ठहरी हुई है। मूर्तिपूजा इसी की देन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक कथाकार कहते हैं कि ईश्वर के गर्भ में आने का भाव है उसका प्रकट होना। जैसाकि गुसाई जी लिखते हैं–

'भये प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशिल्या हितकारी।' इत्यादि'

तब प्रगट होने का अर्थ गर्भ से उत्पन्न होना नहीं है तो क्या है। क्या बिना गर्भ के यों ही विष्णु जी कौशिल्या के आगे आ टपके। यदि इसे सत्य मानो तो "जा दिन ते प्रभु गर्भहिं आये। सकल लोक सुख–सम्पति छाये॥" यह बात मिथ्या है। अवतारवादियों के सामने इसका कोई उत्तर नहीं है। इनसे पूछा जाये कि ये अवतार पाकिस्तान, चीन, अमेरिका, कनाडा आदि देशों में क्यों नहीं होते? सारे अवतार भारत में ही क्यों हुए? जब कि भारत में जन्म लेने को देवता भी तरसते हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि सर्वाधिक पाप भारत में ही होते हैं। क्या अन्य देशों में सब धर्मात्मा हैं जो कि विष्णु उधर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखता कि वहाँ क्या हो रहा है। पाश्चात्य देशों में आज पापों का ताण्डव नृत्य हो रहा है लेकिन ईश्वर फिर भी भारत में ही जन्म ले रहा है। गीते के अनुसार ईश्वर को अवतार तब लेना चाहिये था जब अंग्रेज–मुसलमान शासक मानवता पर कहर ढा रहे थे। जब पाकिस्तान बनने के समय हिन्दू नर–नारियों पर मुसलमान पैशाचिक अत्याचार कर रहे थे। बंगला देश में पाकिस्तानी खूंखार दरिन्दों ने जब वहाँ तीस लाख से भी अधिक लोगों का संहार किया, तब विष्णु कहाँ सो गया था? ग्राह से गज को बचाने वाला विष्णु पशु–पक्षियों की रक्षा करने के लिये तो चक्र सुदर्शन लिये दौड़ा आता है लेकिन अपने भक्तों को बचाने के लिये नहीं आता, न अवतार लेता। कलियुग में सबसे अधिक अवतार होने चाहियें, सत्युग, त्रेतायुग में नहीं क्योंकि, आजकल अधिक पाप हो रहे हैं। इन सब तर्कों तथा युक्तियों के आगे अवतारवाद की जड़ें हिल जाती हैं। फिर भी स्वार्थी नेता दिन–रात भोली प्रजा के बहकाने में संलग्न हैं। इस अवतारवाद ने जो भारत की बरबादी की है उसे लिखनें में लेखनी भी काँपती है। यह पोपवाद अब समाप्त होना चाहिये।

गीत

इस भारत की पोप जनों ने, कैसी बिगाड़ी शान देश बरबाद हुआ।
शास्त्रों का पढ़ना छोड़ा, नहीं सत्य पर ध्यान दिया।
झूठे ग्रन्थ बना करके, ऋषियों को बदनाम किया।
पढ़ें पुराण वेद के विद्वानों का, नहीं सम्मान देश बरबाद हुआ॥१॥
नारी–शूद्रों को वेदों के पढ़ने से इन्कार किया।
बन कर विद्याहीन अविद्या का सर्वत्र प्रचार किया।
तन्त्र–मन्त्र का जाल बिछा भूतों का करें बखान देश बरबाद हुआ॥२॥
उल्टे तीर्थ बता करके स्वारथ में अन्धे हो गये।
मठ–मन्दिर और कथा कीर्तन रोजगार धन्धे हो गये।
कण्ठी माला तिलक लगा कर बाँध लिये यजमान–देश बरबाद हुआ॥३॥
उधर ज्योतिषी सबको तीनों कालों की बात बताते हैं।
दिशाशूल ग्रह दोष दिखा कर जनता को बहकाते हैं।
समझाते हैं आर्य बहुत पर मूर्ख न देते ध्यान–देश बरबाद हुआ॥४॥
जाति भेद बढ़ा भारत में अग्नि फूट की सुलगाई।
इस कारण लाखों ही हमसे दूर हो गये हैं भाई।
तभी तो "छाजूराम" हुआ नहीं भारत का उत्थान–देश बरबाद हुआ॥५॥

–क्रमशः

॥ हमको भारतवासी जानो ॥

ऐ भारत के दुश्मन, हमको भारतवासी जानो।
भोले हैं पर, भ्रमवश, हमको कायर मत पहचानो॥
तेरी चाहत मिटा देंगे,
वो दुनिया को दिखा देंगे। . . . .
राम कृष्ण के हम वंशज हैं, दयानन्द के भाई।
श्रद्धानन्द के प्यारे हम, है बहना लक्ष्मीबाई॥
गोविन्द, कुंवर, प्रताप, शिवाजी, हैं आदर्श हमारे।
नहीं शान्ति तो, क्रान्ति सही, समझो ऐ मुढ़ इशारे॥
हम भी हैं वीर बता देंगे। . . . .
रहें दूर भले ही तन से, मन से दूर नहीं यारों।
फूट डालकर मत छलना, न भूल ये करना जग वालों॥
मानव को दिल देने वाले, दानव को तड़पाने वाले।
नहीं मौत से डरने वाले, हैं हम धर्म–नीति के पाले॥
हम भी 'वो' राज सिखा देंगे। . . . .
हैं प्रेमी के हम भी प्रेमी, नहीं दास दुश्मन के।
कहके बुद्धिमान को बुद्धू, हास न कर तू मन से॥
नीति हमारी जब जानोगे, पुनः गुरू–ज्ञानी मानोगे।
सत्य–शिव–सुन्दर का दर्शन, कर भारत को पहचानोगे॥
अपनी गाथा दुहरा देंगे। . . . .

रामकुमार (ज्ञानार्थी) ग्राम प. रानी, बेगूसराय (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्द सन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बनें हैं। आप से भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटो से बचने के लिए २५०/– रुपए भेजकर आजीवन सदस्य बने। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम–ग्राम और नगर–नगर में पहुँचायें। इसके लिए हम आपका सहयोग चाहतें हैं, आप से प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किए जा रहे हैंः–

४१. **मे. किशनलाल हीरालाल जैन** म. गान्धी रोड, परमणी (म.रा.)
४२. **श्री ए.एन. शर्मा** 162ए.पी.एच., कालोनी, कतांगा हिल्स, जबलपुर, (म.प्र.)
४३. **श्री सत्यपाल सिंह चौधरी**, छज्जू सिंह अमरसिंह तम्बाकू वाले राइट गंज, गाजियाबाद (यू.पी.)
४४. **श्री शांति स्वरूप अशोक कुमार आर्य खरैटा वाले** मु. पो. हिडौन सिटी, (राज.)
४५. **श्री प्रभाकरदेव आर्य**, आर्य स्टोर कटरा बाजार, हिडौन सिटी, (राज.)
४६. **श्री वेदपाल जी आर्य** वैदिक कार्य पुस्तकालय, सा.पो. मणितरा, जिला. गंजाम (उत्कल)
४७. **श्री एच. एल. शर्मा** रिटायर्ड एजेन्ट एस.बी. आई म.नं. 2805, मो. भालियन नकोदर (पंजाब)
४८. **श्री मा. जागेरामजी आर्य** गांव देवली खानपुर, दिल्ली
४९. **श्री चरनसिंह जी बर्मा** बी७/११३, सफदरजंग विस्तार, नई दिल्ली–२९
५०. **श्री रामकिशन सतीजा** सी–3/१८८, जनकपुरी, नई दिल्ली–५८
५१ **श्री शीला उपाध्याय टेक्सटाइल** मु. पो. निबड़ी कला, वाया डेजाना (राज.)
५२. **श्री रामकुमार जी गुप्ता द्वारा श्री कृष्णा ट्रेडिंग कम्पनी** पोतला कलकत्ता (बंगाल)
५३. **श्रीमती नारायण देवी गुप्ता** वी८/२०, भानु अपार्टमेंट, मलुंड, बम्बई
५४. **पं. राव बाजीराव जी अटाले** मु. आसौदा, जिला जलगांव (महाराष्ट्र)
५५. **श्री व्यवस्थापक वाचनालय** श्री सनातन धर्म मन्दिर, श्री गंगानगर (राजस्थान)
५६. **श्री देवनारायण जी आर्य** २६५, टिलबर्ग, नीदरलैन्ड (हालैंड)
५७. **श्री राजहंस सिंह** मु. पो. बरनांव भोजपुर (बिहार)
५८. **श्री भीमसेन राजेन्द्र प्रसाद** ६२१/२२, सदर बाजार, दिल्ली–११० ००६
५९. **श्री घनश्याम लाल जी मोर** मोर इन्डस्ट्रीज, फतहनगर–३१३२०५
६०. **श्री रमेश चन्द्र** डी–११६, कतोपारदरवाजा, भरुच (गुजरात)

धर्मपाल आर्य
(मंत्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/93
आर. आर. नं. २५५८७/७३
Post in Delhi PSO Indraprastha
on 2-3/4/93

अप्रैल, १९९३

बिना टिकट भेजने का लाइसन्स नं.
यू. (डी.एन.) १४४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

विशुद्ध-मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोकरहित हिन्दी भाष्य, प्रक्षिप्त श्लोकों की सप्रमाण एवं अन्तःसाक्षी पूर्वक समीक्षा सहित और विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

१. वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवं अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी।
२. प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित एवं विशेष स्थलों पर समीक्षा सहित।
३. अवैदिक एवं असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों तथा मनु की मौलिक मान्यताओं से युक्त।
४. महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यात श्लोकार्थों से अलंकृत।
५. अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति' की भाँति।

विशेष जानकारी के लिए सूचीपत्र मंगायें

१२००/- सैकड़ा

सत्य के प्रचारार्थ

अजिल्द १०००/- सैकड़ा

फुल कपड़ा जिल्द

सत्यार्थ प्रकाश

घर घर पहुँचाए सफेद कागज़ सुन्दर छपाई शुद्ध संस्करण वितरण करने वालों के लिए प्रचारार्थ

आकार—२३"×३६"÷१६ पृष्ठ ४२० की दर
अजिल्द १०/जिल्द PVC ११/फुल कपड़ा जिल्द १२/-

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६ दूरभाष : २२८३६०, २३३११२

श्री सेवा में ....
ग्राम. ....
डा. ....
जिला. ....

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली—११० ००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यानन्द सन्देश

ार्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जुलाई, १९९३

र्ष २१ : **अंक ९**

ानन्दाब्द : १६९

क्रम संवत् : श्रावण, २०५०

ि संवत् : १,९६,०८,५३,०९४

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली-६ ओ३म् स्थापित - १९६६

्थापक : **स्व॰ दीपचन्द आर्य**

ादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री

ाशक : धर्मपाल आर्य

स्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय

"दयानन्द सन्देश" (मासिक)

४५५, खारी बावली, दिल्ली-११० ००६

दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

ि प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)

आजीवन सदस्यता २५०)

विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ श्रावणी पर्व का पावन सन्देश ४
- ❑ वेद और श्रावणी ४
- ❑ आर्य विदेशी नहीं, भारत की सभ्यता के अंग थे ५
- ❑ पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ ६
- ❑ वैदिक विद्वानों से प्रार्थना ७
- ❑ तुष्टीकरण के दुष्परिणाम १०
- ❑ वर्ण व्यवस्था और मानव जाति १२
- ❑ इदं दयानन्दाय इदन्न मम १४
- ❑ आर्य समाज के विरुद्ध योजनाबद्ध प्रयास १५
- ❑ आर्यो! ये कैसी श्रद्धांजलि? १७
- ❑ 'जय' क्यों, कब, कहां, किसकी १९
- ❑ वेदों में वेश्यावृत्ति की महाभ्रान्ति २१
- ❑ गीता का चक्रव्यूह २२
- ❑ तुलसीकृत रामायण-समीक्षा २५

त्यार्थ प्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपये, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/93
अप्रैल, १९९३
बिना टिकट भेजने का लाइसन्स नं.
आर. आर. नं. २५५८७/७३
यू. (डी.एन.) १४४
Post in Delhi PSO Indraprastha
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 1...

मेरा भारत महान्

"आओ इसे महान् बनायें"

लोकतंत्र की बीन बजाकर, दाँव पेंच के घात लगाकर।
भाषण से जन–मन बहलाकर, सब्ज बाग के स्वप्न दिखाकर॥
भारत की सत्ता हथियायें ॥आओ॥
तोड़–फोड़ की नीति रचाकर, भाषा, वर्गवाद फैलाकर।
उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम, क्षेत्रवाद का चक्र चलाकर॥
जातिवाद का जहर पिलायें ॥आओ॥
मानस बेटे अंग्रेजों के हम, अंग्रेजी है हमको प्यारी।
भले राष्ट्र भाषा हो हिन्दी, उर्दू भी उतनी अधिकारी॥
हिन्दी की बिन्दी उड़वायें ॥आओ॥
ऋण लेकर हम मौज मनायें, कर्ज भार से देश दबायें।
जनता पर कर नित्य लगायें, मरने पर मजूबर करायें॥
जग को झूठी शान दिखायें ॥आओ॥
अनाचार व्यभिचार बढ़ायें, सुरा रूप विष पान करायें।
पशुओं सब मानव कटवायें, गांधी की कस्में खा–खाकर॥
सत्य अहिंसा पाठ पढ़ायें॥आओ॥
काश्मीर में आग लगाई, उग्रवाद को है पनपाया।
अरुणांचल, आसाम, मिजोरिम, को भी हमने है जहराया॥
खंड–विखंडित देश करायें ॥आओ॥
भारत मां को डाइन कहें, या बानो बेगम को बहकायें।
हम को क्या लेना देना, हम तुष्टीकरण नीति अपनायें॥
राष्ट्र–द्रोह विष–बेलि बढ़ायें ॥आओ॥
चार–चार बीबी रखवायें, जन संख्या को नित्य बढ़ायें।
राष्ट्रवाद की हत्या करके, मस्जिद कह मन्दिर तुड़वायें॥
फिर भी हम उदार कहलायें ॥आओ॥
हमतो आया–गयाराम हैं, हमको वोट धर्म है प्यारा।
नहीं अपेक्षित धर्म और है, सत्ता–शासन धर्म हमारा॥
सत्ता हित जन–जन लड़वायें ॥आओ॥
भावी भक्षक हम भारत के, भारत मां की लाज लुटायें।
पहन कवच रक्षक का फिर भी, नेता बन आनन्द मनायें॥
यह भारत अपना भारत है।
आओ इसे महान बनायें॥

(रामकृष्ण आर्य 'निःशंक', एम. ए. विद्यावाचस्पति उप–प्रधान, केन्द्रीय आर्य सभा कानपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।
—महर्षि दयानन्द

उपदेश— सर्वव्यापक परमेश्वर ही उपासना के योग्य है।
स्वयम्भु ब्रह्मा ऋषिः। परमात्मा = (ईश्वर) देवता। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ॥ धैवतः स्वरः॥ पुनस्तमेव विषयमाह
वह परमेश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया जाता है॥

मन्त्रम्— **वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वंभवत्येकनीडम्।**
तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वंसऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु॥ यजु॰

पदार्थ— (वेनः) पण्डितो विद्वान् (तत्) चेतनब्रह्म (पश्यत्) पश्यति (निहितम्) स्थितं (गुहा) गुहायां बुद्धौ गुप्ते कारणे वा (सत्) नित्यम् (यत्र) यस्मिन् (विश्वम्) सर्व जगत् भवति (एकनीडम्) एकस्थानम् (तस्मिन्) (इदम्) जगत् (सम्) (च) (वि) (च) (एति) (सर्वम्) (सः) (ओतः) ऊर्ध्वतन्तुः पट इव (प्रोतः) तिर्यक् तन्तुषु पट इव (च) (विभूः) व्यापकः (प्रजासु) प्रकृतिजीवादिषु॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! (यत्र) यस्मिन् (विश्वम्) सर्वं जगत् (एकनीडम्) एक स्थानम् भवति (तत्) चेतनब्रह्म (गुहा) गुहायां-बुद्धौ गुप्तेकारणे वा (निहितम्) स्थितम् (सत्) नित्यम् (वेनः) पण्डितो विद्वान् (पश्यत्) पश्यति।

(तस्मिन्) (इदं सर्वम्) (समेति च) (व्येति च) (सः) (विभूः) व्यापकः (प्रजासु) प्रकृतिजीवादिषु (ओतः) ऊर्ध्वतन्तुः पट इव (प्रोतः) तिर्यक् तन्तुषु पट इव च स एव सर्वैरुपासनीयोऽस्ति॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो! (यत्र) जिसमें (विश्वम्) सब जगत् (एकनीडम्) एक स्थान के समान (भवति) हैं (तत्) उस चेतन ब्रह्म के तथा (गुहा) बुद्धि में वा गुप्त कारण में (निहितम्) स्थित (सत्) नित्य ईश्वर को (वेनः) पण्डित विद्वान (पश्यत्) देखता है। (तस्मिन्) उसमें (इदम्, सर्वम्) यह सब जगत् (समेति च) प्रलयकाल में लीन हो जाता है (व्येति च) और सर्गकाल में विविध रूप में प्रकट होता है।

(सः) वह (विभूः) व्यापक ईश्वर (प्रजासु) प्रकृतिजीवादि में (ओतः) ऊर्ध्वतन्तु=ताने के पट के तुल्य (प्रोतः) तिर्यक्तन्तु=बाने के पट के तुल्य व्यापक है। वही सभी से उपासना के योग्य है।

भावार्थः—हे मनुष्याः! विद्वानेव यं बुद्धि बलेन जानाति, यः सर्वेषामाकाशादीनां पदार्थानामधिकरणमस्ति, यत्र सं हार काले सर्वं जगल्लीयते, सर्ग काले च यतो निस्सरति, येन व्याप्तेन विना किञ्चिदपि वस्तु न वर्तते, तं विहायाऽस्यां कञ्चिदप्युपास्यमीश्वरं मा विजानन्तु।

भावार्थः—हे मनुष्यो! विद्वान् ही जिस ईश्वर को बुद्धिबल से जानता है, जो सब आकाश आदि पदार्थों का आधार है, जिसमें प्रलयकाल में सब जगत् लीन हो जाता है और सर्गकाल में जिससे प्रकट होता है। जिसकी व्याप्ति के बिना कोई भी वस्तु नहीं है, उसको छोड़कर इस सृष्टि में किसी को भी उपास्य ईश्वर मत जानो॥

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" से उद्धृत,
व्याख्याता—**श्री आचार्य सुदर्शन देव**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/93
अप्रैल, १९९३
बिना टिकट भेजने का लाइसन्स नं.
आर. आर. नं. २५५८७/७३
यू. (डी.एन.) १४४
Post in Delhi PSO Indraprastha
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) ...

धर्म शास्त्र में महर्षि मनु ने लिखा है—

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीतमासान् विप्रोऽर्धमपञ्चमान्॥
(मनु॰ ४/९५)

अर्थात् श्रावणी अथवा भाद्रपदी पूर्णिमा को उपाकर्म करके साढ़े चार मास तक ब्राह्मणादि द्विज वेद का अध्ययन करें।

एक अन्य स्थान पर लिखा है—

स्वाध्यायेनार्चयेद् ऋषीम्॥

अर्थात् ऋषियों की पूजा स्वाध्याय से ही होती है। वेद के स्वाध्याय का महत्व बताते हुए लिखा है—

(१) देव पितृ मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्॥
(२) धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥
(३) वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।
(४) यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिनानियतः शुचिः।
तस्य नित्यं क्षरव्येष पयो दधि घृतं मधु॥
(५) वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते॥
(६) योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्रकुकते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु.... गच्छति सान्वयः॥

□□□

वेद और श्रावणी (गीतिका)

वेद ही जग में हमारा, ज्योति जीवन सार है।
वेद ही सर्वस्व प्यारा, पूज्य प्राणाधार है ॥ टेक ॥

सत्य विद्या का विधाता, ज्ञान का गुरुमेय है।
मानवों का मुक्तिदाता, धर्मधी का ध्येय है॥
वेद ही परमेश्वर प्रभु का, प्रेम-पारावार है ॥ १ ॥

ब्रह्मकुल का देवता है, राजकुल रक्षक रहा।
वैश्य वेश विभूषिता है, शूद्रकुल स्वामी महा॥
वेद ही वर्णाश्रमों का आदिमूल आधार है ॥ २ ॥

श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव, पुण्य पावन पर्व है।
वेद व्रत स्वाध्याय वैभव, आज ही सुखसर्व है॥
वेदपाठी विप्रगण का, दिव्य दिन दातार है ॥ ३ ॥

वेद का पाठन-पठन हो, वेद-वाद विवाद हो।
वेद हित जीवन-मरण हो, वेद हित आह्लाद हो॥
आर्यजनों का आज से व्रत विश्ववेद प्रचार है ॥ ४ ॥

विश्वभर को आर्य करना, वेद का सन्देश है।
मृत्यु से किञ्चित् न डरना, ईश का आदेश है॥
सृष्टि-सागर में हमारा, वेद ही पतवार है ॥ ५ ॥

रोज रोज सरोज सम, श्रुति 'सूर्य' से खिलते रहें।
वेद चन्द्र चकोर हम, द्युति मोद से हर्षित रहें॥
वेद ही स्वामी सखा सब, वेद ही परिवार है ॥ ६ ॥

—स्व. डॉ. सूर्यदेव शर्मा

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्र भारत के परतन्त्र मनस्तन्त्रिका को झकझोरने वाला तथा प्रधानमन्त्री से लेकर साधारण नागरिक तक सभी को सचेत करने वाला लेख

'आर्य विदेशी नहीं, भारत की सभ्यता के अंग थे'

–रंजन कुमार सिंह नयी दिल्ली ।

आर्य जाति कहीं बाहर से नहीं आयी, बल्कि यह मूल तीय सभ्यता एवं संस्कृति का हिस्सा थी। यह मानना है रिकी मानव वैज्ञानिक और पुरातत्ववेत्ता डाक्टर जे. मार्क नोयर का। विस्कांसिन विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान भाग से जुड़े डा. केनोयर फिलहाल हड़प्पा में प्राचीन स्थलों खुदाई में लगे हुए हैं।

डा. केनोयर का स्पष्ट मत है कि 'भारोपीय' (इंडोयूरोपीयन) तथा 'भारतीय आर्य' (इंडोआर्यन) की कल्पनाओं के पीछे यूरोपीय विद्वानों का उद्देश्य अपनी ता प्रतिपादित करना था और इसके लिए उन्हें स्थितियां अनुकूल मिलीं, क्योंकि तत्कालीन भारतीय मानस हीन ना से इतना अधिक ग्रस्त था कि स्वयं को पश्चिम से किसी किसी रूप में जोड़कर ही आत्म–गौरव महसूस करने लगा

दरअसल इस शताब्दी के तीसरे दशक में भारतीय न्वेषणकर्ता श्री डी.आर. साहनी और आर. डी. बनर्जी द्वारा शः हड़प्पा और मोहन जोदड़ो की खोज से पहले तक श्चिमी विद्वान यही कहते थे कि बाहर से आये आर्यों ने भारत सभ्यता से परिचित कराया।

हालांकि हड़प्पा और खासकर मोहन जोदड़ो की खोज पश्चिमी विद्वानों का यह दावा ध्वस्त हो गया, फिर भी यही जाता रहा कि आर्य बाहर से आये और उन्होंने सिंधु घाटी मूल निवासियों को दक्षिण एवं पूर्व की ओर खदेड़ दिया। के साथ ही एक अन्य अवधारणा ने जन्म लिया कि आर्य थे और हड़प्पावासी द्रविड़ उनके सामने टिक नहीं पाये कि आर्यों के पास अश्वों की गति और लोहे की शक्ति थी। कि हड़प्पा के लोग अब तक इनसे अपरिचित थे। डा. केनोयर इस पूरी अवधारणा को खारिज करते हुए कहते हैं कि हड़प्पा सभ्यता से जुड़े विभिन्न स्थलों पर 3100 वर्ष से भी अधिक पुराने लोहे मिले हैं, जबकि बलूचिस्तान में सबसे पुराना लोहा लगभग पौने तीन हजार साल पहले का ही पाया गया है । इसी तरह सिंधु घाटी में अश्वों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो इस तथ्य को झुठलाते हैं कि हड़प्पावासी अश्वों से परिचित नहीं थे।

डा. केनोयर का मानना है कि अनेक धर्मों और जातियों के लोग हड़प्पा में एक साथ रहते थे। 'आर्य' शब्द की अर्थ-व्यंजना की मदद लेते हुए वे कहते हैं, इन लोगों में जो सुसभ्य और सुसंस्कृत थे, वही 'आर्य' कहे गये और जो दबे और पिछड़े हुए थे वे 'अनार्य'।

सिंधु घाटी सभ्यता की महत्ता को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं कि प्राचीन नगर सभ्यताओं में यह एकमात्र है जहां राजकाज के लिए सैन्य शक्ति का सहारा नहीं लिया गया। मिस्र से लेकर सुमेर तक की प्राचीन सभ्यताओं से ऐसे अनेक अवशेष मिले हैं जिनमें राजा अथवा उसके दूत मारते–पीटते हुए दिखाये गये हैं, जबकि ऐसा कोई भी चित्र सिंधु घाटी के किसी भी अवशेष पर नहीं पाया गया।

वैसे डा. केनोयर का मानना है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता केवल सिंधु घाटी में ही नहीं पनपी, बल्कि सिंधु घाटी सभ्यता के समानांतर एक अन्य सभ्यता घाघरा–हाकड़ा घाटी में भी पनपी। ज्ञातव्य है कि सरस्वती इसी घाघरा की शाखा थी। उन्होंने दावा किया कि हरियाणा स्थित राखीगढ़ी तथा पाकिस्तान के गनवेरीवाला आदि क्षेत्रों में हुए अन्वेषण कार्यों में इस तथ्य की पुष्टि हुई है जब कि इन क्षेत्रों में अभी बहुत काम किया जाना शेष है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाना शेष है।

बहरहाल, डा. केनोयर के अनुसार प्रागैतिहासिक भारत में राजनीति और धर्म अलग-अलग नहीं थे। उनका मत है कि हड़प्पा-मोहन जोदड़ो आदि के शासक अपने रिश्तेदारों के साथ राज-काज चलाते थे। यह शासन धर्म के नाम पर होता और धर्म से ही नियंत्रित होता। शासक परिवार की जनसंख्या जब बढ़ जाती, उनमें से कुछ पचास-साठ आम जनों की टोली के साथ कहीं और जा बसते और वहां अपनी नयी शासन व्यवस्था स्थापित करते। डा. केनोयर के शब्दों में शासक वर्ग धर्म से एकताबद्ध और संबंध से विभाजित था।

हड़प्पा के साहिलवाल जिले में किये जा रहे अन्वेषण कार्यों की जानकारी देते हुए वे बताते हैं कि यहां के कुछ कब्रगाहों से प्राप्त प्रागैतिहासिक अवशेषों से पता चलता है कि हड़प्पा काल की महिलाओं को पुरुषों से श्रेष्ठ नहीं भी तो उनके बराबर का दर्जा तो अवश्य प्राप्त था। अस्थियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ये महिलाएं कद-काठी में पुरुषों से किसी तरह कम नहीं थीं। डा. केनोयर बताते हैं कि अस्थियों के टूटे होने पर कभी तो यह तय कर पाना कठिन हो गया कि यह पुरुष की अस्थियां हैं अथवा महिला की।

सबसे रुचिकर बात जो सामने आयी वह यह कि किसी एक कब्रगाह से प्राप्त महिलाओं की हड्डियों में जहां आनुवंशिक समानता मिलती हैं, वहीं पुरुषों की हड्डियों में ऐसा कुछ नहीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि हड़प्पा युग में विवाह के बाद पुरुष ही अपनी पत्नी के घर जाकर रहते थे।

एक अन्य बात जो प्राचीन भारतीय सभ्यता और विश्व की अन्य समकालीन सभ्यताओं से पृथक करती है, वह है- अन्य सभ्यताओं में जहां किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके स्वर्णाभूषणों आदि को उसके शव के साथ ही दफना दिया जाता था, वहीं हड़प्पा में स्वर्णाभूषणों को एक पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी के लिए विरासत में छोड़ जाती। आभूषणों को मंदिरों में दान करने अथवा व्यापार में लगाने की प्रथा भी थी। डा. केनोयर के अनुसार ऐसा इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि अस्थि-अवशेषों के साथ कहीं भी स्वर्ण आदि नहीं मिले हैं।

अपने अन्वेषण कार्य के बारे में वे बताते हैं कि 'हड़प्पा पुरातत्व अनुसंधान परियोजना' नामक यह कार्य पाकिस्तान के पुरातत्व विभाग के सहयोग से चलाया जा रहा है। अमेरिकी पुरातत्ववेत्ता डा. रिचर्ड मैरो के नेतृत्व में चलायी जा रही इस परियोजना में डा. केनोयर के अलावा न्यूयार्क विश्वविद्यालय की प्रो. रीटा राईट शामिल हैं। वे इस परियोजना पर 1986 से ही काम कर रहे हैं और उम्मीद है कि उनका यह कार्य अगले पांच-छह सालों तक चलेगा।

७ मई १९९३ के 'दैनिक नवभारत टाइम्स' से साभार

□□□

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियां

मुझे 'दयानन्द सन्देश' पत्रिका बहुत अच्छी लगी। मैं इसका ग्राहक बनना चाहता हूँ। इसमें छपी 'तुलसीकृत रामायण समीक्षा' को लोग विशेष रुचि से पढ़ते हैं। इस लेखमाला को आप निरन्तर छापते रहें तो अच्छा रहे।

राजेन्द्र कुमार आर्य, ग्रा. मदनियाँ, सीतापुर जनपद

आपके यहां से प्रकाशित 'योग-मीमांसा' पढ़कर योग के विषय में बहुत सी भ्रान्तियां दूर हुईं। योग साधकों को इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिये। इसमें लेखक ने हठयोग प्रदीपिका में लिखी अनर्गल मुद्राओं का पर्दाफाश करके महान कार्य किया है। इसके लिये लेखक धन्यवाद के पात्र हैं।

डा. माधव बिहारी, ग्राहक संख्या एम. ७७

दयानन्द-सन्देश के माध्यम से मिथ्या पाखण्डों का खण्डन किया जाता है, यह बहुत ही उत्तम बात है। अखण्ड ज्योति पत्रिका के विषय में छपे लेख को पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। वास्तव में यह पत्रिका पाखण्ड ज्योति है।

महेन्द्र प्रताप यादव, आर्यनगर, वाराणसी

अप्रैल '९३ की 'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका में 'साकारोपासना की थोथी दलीलें' लेख बहुत ही अच्छा लगा। लेख बहुत ही सामयिक है। ऐसे लेखों से झूठ का पर्दाफाश होता रहे तो संसार में व्याप्त अज्ञान, धोखाधड़ी, बेईमानी का जो विकराल रूप होता जा रहा है वह क्षीणप्राय हो जाये। आपको परमेश्वर ऐसी शक्ति व साहस देवें कि आप निर्भीकता से पाखण्ड का खण्डन करते रहें।

शुकदेव प्रसाद गिरि मन्त्री आर्य समाज, ग्रा. लबाही पुतली तारा, बहराइच जनपद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'परोपकारी' पत्रिका में ऋषि का नाम वेदार्थ में सहायक ...अर्थ किया गया है जो महर्षि-दयानन्द के लेख के ...है। फिर तो वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकता। सैकड़ों ...ऋषि वाले मन्त्रों का अर्थ कैसे करोगे। किसी भी ...या अर्वाचीन वेदार्थदृष्टा ने यह मान्यता स्वीकार नहीं ...। फिर भी मनोहर जी के बे-सिर पैर के वेद-भाष्य को ...रहना सर्वथा मिथ्या बात है।

वन्द्येश्वरार्य, ८२ सी सरकारी आवास, बसन्त विहार, नई दिल्ली

सरल योग से ईश्वर साक्षात्कार विशेषांक पढ़ा। बहुत ही ...गी अंक है। इस पत्रिका को देश के घर घर पहुँचना चाहिये।

देवेन्द्र उप्पल, पत्रकार-हिसार, हरियाणा

'दयानन्द सन्देश' के अप्रैल '९३ के अंक में साकारोपासना की थोथी दलीलें नामक लेख पढ़ा। पढ़कर सही जानकारी पाकर लेख बहुत अच्छा लगा।

नन्द किशोर झा, जमनी पहाड़पुर, बिहार

'दयानन्द सन्देश' का मई-जून का अंक अत्यन्त उपयोगी एवं साधकों के बहुत उपयोगी हैं। लेखक एतदर्थ धन्यवाद के योग्य हैं। प्रकाशक भी बधाई के पात्र हैं।

उत्तम चन्द्रशरर, म. नं. ३०/८, पानीपत

□□□

...मी विद्यानन्द सरस्वती

वैदिक विद्वानों से प्रार्थना

ऋषि दयानन्दकृत संस्कार विधि पर अनेक महत्वपूर्ण ...का निर्माण हुआ है। इनमें पं. भीमसेन शर्मा व मास्टर ...राम जी तथा पं. सत्यव्रत जी कृत संस्कारचन्द्रिकोदय ...रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें संस्कारों के महत्व तथा ...उपयोगिता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। परन्तु मेरे ...में उसके विधि भाग पर जैसा विस्तृत विवेचन अपेक्षित ...वैसा नहीं हो पाया। ऐसे अनेक स्थल हैं जिनका समाधान ...क्षित है। इसी उद्देश्य से मैं विद्वानों के सहयोग से ...स्कारभास्कर" की रचना में प्रवृत्त हो रहा हूँ। यहाँ ऐसे ...समाधेय स्थलों का निर्देश किया जा रहा है। आदरणीय ...नों से अनुरोध है कि अपने विचारों से शीघ्र अवगत ...अनुगृहीत करें। जहां तक हो सके, समाधान युक्तिपूर्ण ...होना चाहिए। इन समाधानों का उद्देश्य प्रतिवादी का मुँह ...करना न होकर बौद्धिक एवं शास्त्रीय आधार पर यथासंभव ...के मन्तव्यों की पुष्टि करते हुए आत्मसन्तोष लाभ करना

गर्भाधान-संस्कार

१. युग्म और अयुग्म रात्रियों में गर्भाधान होने से पुत्र-पुत्री के शरीर का निर्माण क्यों और कैसे होता है?

२. वीर्य के अधिक (प्रबल) होने से पुत्र के और आर्तव के अधिक होने से पुत्री के ही शरीर का निर्माण क्यों और कैसे होता है?

३. यदि लिंग का निर्धारण वीर्य या आर्तव के न्यूनाधिक्य के आधार पर होता है तो युग्म-अयुग्म रात्रियों के साथ उसका सामंजस्य कैसे होगा। उदाहरणार्थ—युग्म रात्रि में आर्तव के अधिक होने अथवा अयुग्म रात्रि में वीर्य के अधिक होने पर सन्तान का क्या लिंग होगा?

४. दस रात्रियों को ऋतुदान के लिए श्रेष्ठ बताया है। परन्तु हिसाब से प्रथम ४ रात्रियों + ११वीं व १३वीं रात्रियां + अष्टमी और चर्तुदशी + पौर्णमासी व अमावस्या कुल मिला कर ९ या १० रात्रियां निषिद्ध होने से शेष केवल ६ या ७ रात्रियां ही बचती हैं।

५. प्रथम ४ रात्रियों का निषिद्ध होना स्पष्ट है। शेष में से प्रत्येक के निषेध का क्या कारण है?

६. पुत्र की इच्छा रखने वालों के लिए ६ और पुत्री की इच्छा रखने वालों के लिए ४ रात्रियां क्यों विहित हैं?

७. आधुनिक पाश्चात्य चिकित्साविज्ञान के अनुसार स्त्री के रज में होने वाले ऐक्स कीटाणुओं के साथ पुरुष के शुक्र में होने वाले एक्स और वाई कीटाणुओं का संयोग होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से क्रमशः पुत्र या कन्या का जन्म होता है। इस विषय में आपका क्या कहना है?

८. गर्भाधान संस्कार के आरम्भ में निर्देश है-"पत्नी, पति के वाम भाग में बैठे"। पर अन्त में जाकर लिखा है-"वधू पत्नीत्व को और वर पतित्व को प्राप्त हुए पश्चात्"। वधू पत्नीत्व को और वर पत्नीत्व को तो सप्तपदी की क्रिया सम्पन्न होते ही प्राप्त कर लेते हैं। फिर यहां ऐसा क्यों कहा गया? यहाँ दोनों को वेदी के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठने का निर्देश किया है, तब आरम्भ में पति को "यथाभीष्ट मुख" क्यों?

९. गर्भाधान, नामकरण, निष्क्रमण संस्कारों में पत्नी वाम भाग में क्यों बैठे, जबकि पुंसवन और विवाह सहित सबमें दक्षिण में बैठने का विधान है। प्रायः स्त्री को वामांगी क्यों कहते हैं?

१०. बीस आहुतियां देते समय पत्नी द्वारा बार-बार दक्षिण हाथ से पति के दक्षिण स्कन्ध का स्पर्श क्यों?

११. कन्याप्राप्ति की इच्छा वालों के लिए विशेष प्रकार के भोजन का प्रावधान क्यों? पुत्र प्राप्ति की इच्छा वालों के लिए क्यों नहीं?

१२. दो बार गर्भाधान निष्फल होने पर तीसरी बार पुष्प नक्षत्र युक्त ऋतुकाल में क्यों?

१३. जीव को पुत्र या पुत्री का शरीर देने में (असुनेता) परमेश्वर का भी हाथ है या यह पूरी तरह मनुष्य के हाथों में है। यदि दोनों के हाथ में है तो उसकी सीमा कहां है? परमात्मा द्वारा लिंग निर्धारण का आधार क्या है? यदि कर्म इसमें कारण हैं तो किन कर्मों के फलस्वरूप लड़के या लड़की का जन्म मिलता है।

पुंसवन संस्कार

१. "यावत् जन्म हुए पश्चात् .... सन्तान उत्तम होवे" अस्थान में प्रतीत होता है। ये वाक्य जातकर्म संस्कार में यथास्थान होने चाहिएं।

२. वटवृक्ष आदि की जटा का प्रयोजन?

सीमन्तोन्नयन

१. "मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो उस दिन" क्यों ?

२. पति के द्वारा पत्नी का श्रृंगार क्यों? पति इस कला से अनभिज्ञ होता है। उसके द्वारा किये गए श्रृंगार से सुसज्जित पत्नी यज्ञ में उपस्थित लोगों के बीच क्या कार्टून सी नहीं लगेगी?

३. "असो" के स्थान पर नदी का नाम किसलिए?

जातकर्म

१. दस रात्रि तक प्रसूता के सिर की ओर कलश भरके रखने का प्रयोजन?

नामकरण

१. ग्यारहवें व एक सौ एकवें दिन क्यों?

२. तिथि तो व्यवहार में आती है। जन्मपत्री आदि बनाने को छोड़ देवता, नक्षत्र तथा नक्षत्र देवता आदि कब किस काम आते हैं?

३. नाम के साथ लगे शर्मा, वर्मा आदि पद गुरुकुल में रहते विद्यार्थियों की जन्म पर आधारित जाति का ही बोध कराते रहेंगे। इससे ऊंच-नीच के भेद की प्रतीति भी होगी। दास पद युक्त नाम शूद्र को हीनभावना से ग्रस्त रखेगा। विद्याध्ययन की समाप्ति पर आचार्य द्वारा प्रदत्त वर्ण के कारण प्रायः सभी के नाम बदलने पड़ेंगे जो २४ वर्ष की अवस्था तक प्रचलित नामों का स्थान लेंगे।

निष्क्रमण

शुक्लपक्ष की तृतीया और चौथे मास जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उसी तिथि में क्यों?

चूड़ाकर्म

१. उत्तरायण शुक्लपक्ष में क्यों?

२. निर्दिष्ट पदार्थों में उल्लिखित गुण भले ही हों, एक-एक शरावा भर कर नाई को देने की संस्कार से क्या संगति और उपादेयता?

३. "त्र्यायुर्ष" इत्यादि मन्त्र से पीछे के बाल एक बार फिर क्यों काटे जायें?

उपनयन

१. भिन्न-भिन्न वर्णस्थ बालकों के लिए भिन्न-भिन्न ऋतुएँ व भोजन क्यों?

२. बार-बार जल छुड़वाने का हेतु?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ को वस्त्र से ढक कर अंगों का स्पर्श क्यों?

वेदारम्भ

हाथों को तपा कर थोड़ा सा जल लगा कर मुख का सात बार स्पर्श क्यों?

जानू को भूमि पर टेक कर गुरू के सामने बैठें। क्यों?

"एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रखके अपने हाथ से बालक के दोनों हाथों की अंगुलियों को पकड़के" क्यों?

मेखला, दण्ड तथा भिक्षा माँगने के वाक्य वर्णानुसार भिन्न-भिन्न क्यों?

समावर्तन

उदुम्बर की लकड़ी से दन्तधावन क्यों?

विवाह

अग्निमन्दता, बवासीर, मिरगी आदि साधारण रोग हैं। जिस कुल में किसी भी रोग का एक भी रोगी न हो, ऐसा कुल मिलना कठिन होगा।

नाम तो ११वें या १०१वें दिन माता-पिता रख देते हैं।

माता-पिता की अनजाने में की गई छोटी सी भूल के कारण, अन्यान्य गुणों से युक्त होने पर भी नाममात्र के कारण अनेक (करोड़ों) कन्याएं आजीवन अविवाहित रहने के लिए विवश हों-यह विवेच्य है। फिर पुरुषों में इसे दोष क्यों नहीं माना गया? कन्या को ही दण्ड क्यों मिले?

"पाद्यम्" में ब्राह्मण वर्णस्थ पहले बायां और अन्य दायां क्यों धोवें?

मधुपर्क की क्रिया तक घर के भीतर क्यों हो? फिर, वस्त्रों का आदान-प्रदान और धारण भी वहीं क्यों न हो?

विवाह संस्कार में अभ्यातन होम तथा जया होम की क्या प्रासंगिकता है?

६. लाजा होम में भाई के विकल्प में माता क्यों, जबकि सहोदर भाई के न होने पर चचेरा, मौसेरा और ममेरा भाई धाणी (लाजा) लिये पहले ही बिठा दिये गये हैं। वे किस लिए बिठाये हैं?

७. लाजा होम के बाद वर द्वारा वधू के केश खोले जाने की अनिवार्यता क्यों?

८. परिक्रमा करते समय वर, वधू में कौन आगे हो, संस्कार विधि इस विषय में मौन है। सब अपनी मनमानी करते हैं। इस विषय में एकरूपता आवश्यक है।

"प्र मे पतियान: पन्था: कल्पताम्" "पतिलोकं गमेयम्" तथा "सा मामुनव्रता भव" जैसे वाक्यों में पत्नी के पति की अनुगामिनी होने की ध्वनि निकलती है। इससे वर को आगे चलना चाहिए। सामान्य बुद्धि के अनुसार जैसे सप्तपदी में प्रतीकात्मक रूप में दोनों साथ-साथ चलते हैं और जीवन भर दोनों से गाड़ी के दो पहियों के समान साथ-साथ चलने की आशा और प्रेरणा की जाती है, वैसे ही दोनों को आगे-पीछे न रह कर परिक्रमाओं में बराबर रह कर साथ-साथ चलना चाहिए, ऐसा मेरा मत है।

९. हृदयस्पर्श-वर-वधू दोनों की निर्देश है कि वे "दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ लेके हृदय का स्पर्श करें" सार्वजनिक रूप में संकोचवश इस प्रकार आलिंगन न करके सामने से ही सांकेतिक स्पर्श ही कराया जाता है। निर्देशानुसार क्रिया करने में हृदय से पहले या स्तनों पर से हाथ ले जाकर स्पर्श होगा। व्यावहारिक दृष्टि से विचार करें।

इन प्रश्नों का जो उत्तर आपको सूझे उस पर स्वयं ही एक पूरक प्रश्न करके समाधान कर देखें, कहां तक सन्तोषजनक है।

उत्तरापेक्षी,

(स्वामी) विद्यानन्द सरस्वती

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुष्टीकरण के दुष्परिणाम

(१) भारत का दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात यहाँ के वोट बैंक के लिये सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों ने तुष्टीकरण की नीति को अपनाया। यहाँ की सत्तासीन पार्टी ने समयानुसार राजनैतिक लाभ को देखते हुए धर्म निरपेक्षता के नाम पर इस देश की जनता से विश्वास-घात किया तथा उसने धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा को जहाँ जैसे चाहा घुमा दिया। और अपने आपको धर्मनिरपेक्षता का ठेकेदार समझते रहे। लेकिन जब यह पार्टी मिजोरम के चुनाव घोषणा-पत्र में घोषणा करती है कि 'ईसाई होने के नाते हमारी यह भारी जिम्मेदारी हो जाती है कि हम ईसाई धर्म का उद्घोष करें' तथा 'कांग्रेस ई का समाजवाद बाइबिल की शिक्षा पर आधारित हो' आगे कहा गया है कि 'कांग्रेस पाठशाला पाठ्यक्रम को मिजो संस्कृति व ईसाई सिद्धान्तों के आधार पर संशोधित करेगी'। तब इसकी धर्म निरपेक्षता कहाँ चली गई थी।

(२) दूसरी ओर इस पार्टी ने मुस्लिम कट्टर पंथी संगठन मुस्लिम लीग से समझौता कर केरल में सरकार बनायी और वहाँ पर साम्प्रदायिकता का भंयकर खेल खेला गया। वहाँ मुस्लिम कट्टरपंथी देशद्रोही शक्तियां अपना प्रभुत्व जमाती रही हैं। वहाँ पर पिछले दिनों राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखाओं पर अनेक हमले हुए। पिछले वर्ष अयोध्या के विषय में एक झूठी अफवाह सुनियोजित तरीके से फैलाकर हिंसा का तांडव नृत्य कर हिन्दुओं का जीना दूभर किया गया। पुलिस ने कुछ दंगाइयों को गिरफ्तार भी किया, लेकिन मुस्लिम लीग के मन्त्रियों ने सबको फोन कर-करके छुड़ा लिया। केरल में ये शक्तियाँ खुले आम घोषणा कर रही हैं कि हम केरल को कश्मीर बना देंगे।

(३) कश्मीर में अनेक प्राचीन ऐतिहासिक मन्दिरों को ध्वस्त किया गया एवं वहां के अल्पसंख्यकों का जीना दूभर किया गया, तब प्रधानमन्त्री एवं राष्ट्रपति को न तो काला दिवस दिखायी देता है और न ही शर्म आती है क्योंकि हिन्दुओं के मन्दिर टूटना कोई विशेष बात नहीं है ऐसा तो देश-विदेश में होता ही रहता है। आज कश्मीर से विस्थापित हजारों हिन्दू दिल्ली आदि में कैम्पों में पड़े नाटकीय जीवन बिता रहे हैं। कश्मीर में उनके मकान व धन दौलत तो छीने ही गये, साथ उनकी बहु-बेटियों के साथ जो हुआ यह सोचकर भी मन कम्पित हो उठता है। कश्मीर में आज पाकिस्तान समर्थकों का सर्वत्र एक छत्र राज्य है पाकिस्तान के झण्डे लहराये जाते हैं। वहाँ की जनता को पाकिस्तान के स्वतन्त्रता दिवस को मनाने के लिये विवश किया जाता है। इन देशद्रोही शक्तियों को धारा 370 के अन्तर्गत विशेष सुविधायें दी जा रही हैं। यदि भाजपा धारा 370 समाप्त करने की माँग करती है तथा इसका कोई राष्ट्रीय नेता वहाँ पर राष्ट्रीय दिवस पर राष्ट्रीय झण्डा फहराना चाहता है, तो उस पर साम्प्रदायिक होने का आरोप लगाया जाता है।

(४) अपनी तुष्टीकरण नीति का अनुसरण करते हुए इन राजनीतिज्ञों ने अदालत के आदेशों को भी ठुकरा दिया। शाहबानो प्रकरण इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। उच्चतम न्यायालय ने इस बुढ़िया के लिये मासिक भत्ते की व्यवस्था ही की थी। प्रारम्भ में कांग्रेस ई समेत सब दलों ने जिसकी प्रंशसा की थी। आरिफ मौहम्मद खां ने इसके लिये अपने आप को बलिदान कर दिया। लेकिन जब कांग्रेस ई को इस बात का आभास हुआ कि कट्टरपंथी मुस्लिम नेता इससे नाराज हो रहे हैं तो उसने तुरन्त संविधान संशोधन कर इसे शरीयत विरोधी घोषित कर समाप्त कर दिया। मुस्लिम महिलाओं पर अत्याचार करने के लिये शरीयत को याद किया जाता है। इन विशेषाधिकार प्राप्त कट्टरपंथियों को चार-चार बीवियाँ रखने एवं उनसे तलाक देने के लिये तो शरीयत याद आती है लेकिन शरीयत में तो हाथ-पैर काटने, पत्थर मारने, कोड़े मारने की सजाओं को भी लिखा है। जब शरीयत के आधार पर विशेषाधिकार चाहिये तो शरीयत के आधार पर विशेष सजायें क्यों नहीं मिलतीं? शाहबानो के प्रकरण से भारतीय जनमानस को गहरा आघात लगा। उन्हें आभास होने लगा कि सरकार ने कट्टरपंथियों के सामने वोटों के लालच में आत्म-समर्पण कर दिया है।

(५) यह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है कि ६ दिसम्बर को अपने संदेश में प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति दोनों ने विवादग्रस्त ध्वस्त ढांचे को "मस्जिद" कहकर संबोधित किया। प्रधानमंत्री महोदय बार-बार इसे मस्जिद कहकर सम्बोधित कर रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि वहाँ लम्बे समय से मूर्तियां विराजमान हैं एवं पूजा हो रही है। उनके "मस्जिद" सम्बोधन का परिणाम विचित्र रूप से विदेशों में बसे हिन्दुओं को भुगतना पड़ा। काश उन्होंने इसे मन्दिर या विवादित ढाँचा कह दिया होता तो शायद विनाश का ताण्डव नृत्य न होता। उनके मस्जिद सम्बोधन से हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं एवं अदालत का कितना सम्मान हुआ यह तो वही जानते होंगे।

भारत में वास्तविक धर्म निरपेक्षता तभी हो सकती है जिसमें सबकी कुरीतियों एवं ढकोसलों का भंडाफोड़ कर एक स्वस्थ एवं स्वच्छ परम्परा का विकास हो। बुराइयाँ चाहे वह इस्लाम की हो ईसाई मत की हो या हिन्दू धर्म की, सबकी निन्दा होनी चाहिये। अगर पक्षपात रहित होकर देखे तो यह कार्य जग प्रसिद्ध समाज सुधारक एवं आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया था। जिन्होंने अपने क्रान्तिकारी ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में समाज की समस्त कुरीतियों का खण्डन निर्भीकतापूर्वक किया। 'सत्यार्थ प्रकाश' की देन थी कि स्वतन्त्रता संग्राम में ८५ से ९०% प्रतिशत आर्य समाजी थे।

(६) स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकारी सर्वेक्षण की रिपोर्टों के अनुसार भारत में जितने साम्प्रदायिक दंगे हुए उनमें से ९० प्रतिशत दंगों की शुरुआत मुसलमानों द्वारा की गयी। मुस्लिम नेता मुसलमानों की अशिक्षा एवं अज्ञानता का लाभ उठाकर उन्हें दंगों के लिये उकसाते रहे हैं। पिछले वर्षों में देखें तो अनेक विदेशी घटनाओं की प्रतिक्रिया में भारत में बिना किसी कारण दंगे हुए। पाकिस्तान में जिया उल हक एक विमान दुर्घटना में मरते है तो दंगे भारत में होते हैं। भुट्टो को फाँसी तो पाकिस्तान सरकार देती है लेकिन भारत में हिन्दुओं को मुसलमानों के कोप का शिकार बनना पड़ता है इजराइल में यहूदी मस्जिद तोड़ी जाती है तो भारत में मुस्लिम बहुल इलाकों में दंगे होते हैं। इसी प्रकार २५ वर्ष पूर्व जब कश्मीर में हजरत मोहम्मद साहब का बाल एक मस्जिद से चोरी हुआ तो भारत में दंगे भड़क उठे। मुरादाबाद में ईद की नमाज सड़क पर पढ़ते समय सुअर घुस आया तो नमाजियों ने शहर में दंगा आरम्भ कर दिया। अभी पिछले दिनों की बात है जब सलेमान रूश्दी की पुस्तक पर विवाद उठा। भारत सरकार ने तत्काल बिना कारण जाने ही इस पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया लेकिन फिर भी भारत में दंगे व प्रदर्शन हुए। स्पष्ट है कि जो लोग भारत को अपना घर ही नहीं समझते वे हमेशा इसमें आग लगाने को तैयार रहते हैं।

(७) इन कट्टरपंथी मुसलमानों में भारत के प्रति राष्ट्रीयता की भावना का अभाव है तभी तो उनके नेताओं को वन्दे मातरम् जैसे राष्ट्रीय गाने में भी आपत्ति है। वे भारत माता को डायन कहते रहे हैं। और सम्पूर्ण मुस्लिम समाज अपनी मौन स्वीकृति देता है। भारत-पाकिस्तान के मैच में पाकिस्तान के विजयी होने पर मुस्लिम बहुल इलाकों में खुशियां मनायी जाती हैं। उनके नेता स्वतन्त्रता दिवस का बहिष्कार व भारत को तोड़ने की धमकी देते हैं।

(८) पिछले दिनों बिहार के उलेमाओं द्वारा हिन्दुओं को काफिर घोषित किया गया। पटना के खुदाबख्श पुस्तकालय के अध्यक्ष डा. आबिद रजा बेदार ने 'हिन्दू काफिर है' का फतवा दिया। किसी भी मुस्लिम राष्ट्रवादी संगठन या कथित धर्म निरपेक्षता के ठेकेदार ने इसका विरोध नहीं किया, वरन् अपनी मौन स्वीकृति मुस्लिम समाज ने दी। काफिरों को सता-सताकर मारना एवं उन्हें परेशान करना इनकी धर्म पुस्तक कुरआन की आज्ञा है। काफिरों को मारने वाले को जन्नत का द्वार खुला मिलता है। अहमदिया मुसलमानों को इसलिये काफिर घोषित किया गया क्योंकि वे हजरत मोहम्मद के अतिरिक्त अन्यों को भी अपना खलीफा मानते हैं। वे राम और कृष्ण को भी अपना पैगम्बर स्वीकार करते हैं। इस कारण पाकिस्तान, बंगला देश आदि देशों में कट्टरपंथी मुसलमानों ने उनकी मस्जिदें जलाकर खाक कर दीं। तब इन कथित धर्म निरपेक्षता ठेकेदारों को बेचैनी नहीं हुई। बंगला देश में अहमदिया मुसलमानों की १५० मस्जिदें हैं। पिछले दिनों टैक्सी बाजार ढाका स्थित अहमदिया मस्जिद में नमाज पढ़ते अहमदिया मुसलमानों पर हमला कर कट्टरपंथी मुसलमानों ने उन्हें मारा एवं लगभग २ करोड़ की सम्पत्ति जलाकर खाक कर दी। राम कृष्ण को अपना पूर्वज मानने की अहमदिया मुसलमानों को इतनी बड़ी सजा भुगतनी पड़ी है।

(९) पाकिस्तान ने अयोध्या के विषय में अनधिकार ही आपत्ति की। पाकिस्तान ने यह नहीं सोचा कि उसके देश में हिन्दुओं की क्या दशा है। जब पाकिस्तान बना तब वहां कितने हिन्दू व मन्दिर थे और आज कितने है? उनकी निरन्तर घटती हुई संख्या व हिन्दुओं का पाकिस्तान में नारकीय जीवन क्या चिन्ता का विषय नहीं है? पाकिस्तान सरकार अपने यहाँ पहचान पत्र में धर्म का उल्लेख कर एक गहरी साजिश रच रही है। इसके अतिरिक्त अभी एक घटना शरजाह में हुई। भारतीयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा केरल सरकार द्वारा पुरस्कृत एक नाटक का मंचन करने पर कुछ भारतीयों को ६-६ वर्ष की सजा दे दी गयी क्योंकि इस नाटक में इस्लाम के विरुद्ध कोई बात थी। इसी प्रकार जब एक भारतीय ने अपने साथ एक मुस्लिम देश में सत्यार्थ प्रकाश ले जाना चाहा तो इस ग्रन्थ के लाने के आरोप में उसे जेल में डाल दिया गया। हिन्दुओं के प्रति इस दुर्व्यवहार की किसी धर्म निरपेक्ष शक्ति ने कभी निन्दा नहीं की।

(१०) इसमें कोई शक नहीं है कि भारत के मुसलमान किसी अन्य देश के मुसलमानों की अपेक्षा अधिक सुखी एवं विशेषाधिकार प्राप्त हैं। पाकिस्तान में जहाँ हिन्दुओं एवं उनके मन्दिरों की संख्या निरन्तर घट रही है, वहीं भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात मुसलमान २ करोड़ से लगभग २० करोड़ हो गये हैं। दूसरी ओर रूस में मस्जिदों की संख्या ७००० से घटकर अब मात्र २३ रह गयी है। मुस्लिम कट्टरता को देखते हुए ही [illegible] में ९००० मस्जिदों को ध्वस्त कर दिया गया है।

(११) भारत में मुसलमानों की सबसे बड़ी समस्या अपने इतिहास को पहचानने की है। मुसलमान यह भूल रहे हैं कि १५०० वर्ष पूर्व वे सब हिन्दू थे राम और कृष्ण उनके पूर्वज थे। राम यहां के राजा थे, कोई धार्मिक नेता नहीं जबकि बाबर मात्र एक आक्रमणकारी था। बाबर ने भारत में एक विदेशी के नाते ही शासन किया। वह मुसलमानों के लिये भी विदेशी आक्रान्ता था, हिन्दुओं के लिये भी। अनेक देशों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात गुलामी के प्रतीक चर्च आदि को हटाया गया। उसी प्रकार गुलामी के चिन्हों को हटाया जाना चाहिये। जब टायनबी भारत आये थे तो उन्होंने कहा कि आपने जिस तरह मन्दिरों को तोड़ कर बनायी गयी मस्जिदों को रख लिया है वह भारत में ही हो सकता है। यह अयोध्या का विवादग्रस्त ढांचा भी हिन्दुओं के लिये अपमान का प्रतीक था और हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों में वैमनस्य का कारण था। वह हिन्दुओं को यह याद दिला रहा था कि कभी बाबर ने तुम्हारे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम की पवित्र जन्मभूमि के मन्दिर को तोड़ा था और मस्जिद बनाने का प्रयास किया। इस अपमान एवं गुलामी के प्रतीक का अन्त तो होना ही चाहिये था।

(१२) गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक व महान सन्त स्वामी श्रद्धानन्द 'हम' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा करते थे " 'हम' शब्द को जब हम बोलते हैं तो 'ह' अक्षर हिन्दू व 'म' अक्षर मुसलमान का बोध कराते हैं।" इस महान सन्त को एक दिन मुसलमानों ने कंधों पर बैठाकर जलूस निकाला। स्वामी श्रद्धानन्द पहले व अन्तिम हिन्दू सन्त थे जिन्होंने जामा मस्जिद में वेद मन्त्र बोलकर जनता को उपदेश दिया। शोक है मानवता के पुजारी इस सन्त की एक कट्टरपंथी मुसलमान ने हत्या कर दी। हिन्दू-मुस्लिम में बढ़ती दुराव की प्रवृत्ति को देखकर इस सन्त ने अपनी डायरी में लिखा था "हिन्दु मुस्लिम के झगड़ों को देखकर बड़ा कष्ट होता है जिस पवित्र भूमि ने दोनों को जन्म दिया, जिसके अन्न जल ने उन्हें पाला, जिस गंगा के शीतर जल ने शान्ति देने में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई का कोई भेद नहीं किया। उस मातृभूमि के पुत्र आपस में लड़-झगड़ कर माता को सताते हैं यह कैसे कष्ट की बात है।"

—वेद भूषण गुप्त

ग्राम खेड़ा अकगान, जिला सहारनपुर, उ. प्र.

□□□

वर्णव्यवस्था और मानवजाति

जो जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त स्थिर रहे, अनेक में एक रूप से प्राप्त हो तथा परमेश्वरकृत हो वह जाति कहलाती है जैसे मनुष्य, गाय, बिल्ली, चूहा आदि अनेक जातियां हैं। ये मनुष्य, गाय आदि ईश्वरकृत जातियां जन्म से मृत्यु पर्यन्त वर्तमान जीवन में जिस योनि में हैं उसी में बनी रहती हैं। वर्तमान जीवन में जैसे मनुष्य अपनी जाति परिवर्तित करके गाय, अश्व आदि किसी भी जाति में सम्मिलित नहीं हो सकता है ऐसे ही अश्व, गाय, हाथी आदि भी जीवनपर्यन्त अपनी जाति में ही बने रहते हैं। जातिपरिवर्तन सम्भव नहीं है। सभी जातियां आकृति से पहचानी जाती हैं, हम किसी को भी देखते ही जान जाते हैं कि यह मनुष्य, गाय, अश्व आदि में से किस जाति में है। इस आधार पर हम समस्त भूमण्डल के व्यक्तियों की मनुष्यजाति सिद्ध होती है। मनुष्यकृत जाट, गूजर, चौहान आदि तथाकथित जातियां सिद्धान्ततः जाति कदापि स्वीकार ही नहीं हो सकती हैं।

हमारी सम्पूर्ण मानवजाति सृष्टि के प्रारम्भ से ही वर्णव्यवस्था से बंधी रही है। वर्णव्यवस्था का अभिप्राय है वरण करना तथा समाज में उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये गुण, कर्म,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व के आधार पर ही किसी वर्ण को वरण किया जाता है। विचार करना चाहिये कि मनुष्य उत्तम कार्यों की सिद्धि लिये वरणीय किस अवस्था में होता है। मनुष्यजाति को कार्यों की सिद्धि के लिये नैमित्तिक ज्ञान की आवश्यकता है। उस नैमित्तिक ज्ञान को विद्यालय आदि में प्राप्त करके गुणवान, कर्मशील व उत्तम स्वभाव वाला बन जाता है। विद्या का पान करके कोई कर्मक्षेत्र में आता है तभी उसका किया जा सकता है। उससे पहले बाल्यकाल में योग्यता किसी भी कार्य के लिये वरण नहीं किया जा सकता विद्यार्थीकाल के उपरान्त युवावस्था में जो जिस योग्य हो रूप कार्यों का सम्पादन करना तथा जो अनेक प्रयासों के भी दुर्भाग्य से योग्य नहीं बन पाये इन निरक्षर व्यक्तियों रचनात्मक सहयोग का आदान-प्रदान करना समाज के सार्थक है अतः गुणकर्मों के आधार पर ही जो अध्यापन है अध्यापक चिकित्साकर्म करने वाला चिकित्सक, सेना वाला सैनिक, घड़ा आदि पात्रों को बनाने वाला कार, सेवाकार्य करने वाला सेवक कहलाता है यही व्यवस्था है। इसी प्रकार से समाज में अंसख्य कार्य हैं जिन्हें अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार चयन करते हैं उन व्यक्तियों का प्रत्येक कर्मानुसार विभाग करके पृथक-यदि वर्णन करें तो यह कठिन कार्य है। हां इन अनेक के कार्यों का भार ग्रहण करने वाले समस्त व्यक्तियों का , क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र संज्ञा के अन्तर्गत अवश्य समावेश जाता है।

जो व्यक्ति अध्ययन व अध्यापन तथा अनेक प्रकार के अर्थात विज्ञानपूर्वक परोपकार के विभिन्न कार्यों को स्वयं व अन्य व्यक्तियों से कराते हैं तथा शम, दम, तप तथा गुण व पवित्र कर्मों को अपना धर्म समझकर मानवजीवन लक्ष्य परमेश्वर प्राप्ति हेतु तत्पर हैं वे समस्त बुद्धिमान व्यक्ति ब्राह्मण कोटि के अन्तर्गत आते हैं। जो सज्जन न्याय, दान व यज्ञ अर्थात जनहित के कार्यों में समर्पित रहते और विषय भोग आदि से पृथक रहकर न्यायाचरण से रक्षा हैं वे समस्त वीर क्षत्रिय माने जाते हैं। जो उदारजन न्याय, उत्तम कार्यों में दान, यज्ञ अर्थात दूसरों के सुख के प्रयत्नशील रहते हुए खेती व्यापार आदि से उपभोग्य ओं का उत्पादन करते हैं वे सभी वैश्य कोटि के होते हैं। व्यक्ति आलस्य, अल्पबुद्धि आदि के कारण अनेक प्रयास के उपरान्त भी किसी प्रकार की योग्यता अर्जित नहीं कर पाये वे अपने सामर्थ्य के अनुसार सेवाकार्य करते हैं। यद्यपि सभी व्यक्तियों में इन चारों वर्णों के कुछ-कुछ गुण कर्म होते हैं परन्तु जिस व्यक्ति में जिस वर्ण के गुण, कर्म प्रबल हों वह उसी वर्ण में मान्य होता है।

विद्यार्थी काल के उपरान्त गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर जिसे जो वर्ण मिल गया है यह आवश्यक नहीं कि वह जीवन-पर्यन्त उसी वर्ण में ही बना रहे। यदि कोई व्यक्ति अपने गुण-कर्मों में परिवर्तन कर लेता है तो अपने परिवर्तित वर्तमान गुणकर्मों वाले वर्ण का हो जाता है। ब्राह्मण कोटि का व्यक्ति यदि अपने गुण व कर्म छोड़ दे तो शूद्रादि किसी भी वर्ण में हो जाता है ऐसे ही क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र भी अपना वर्णपरिवर्तन करते हैं जैसे पहले भी अज्ञातकुल से जाबाल ऋषि, क्षत्रिय वर्ण से विश्वामित्र व शूद्रकुल से मातङ्ग ऋषि हो गये थे। एक ही परिवार में एक पिता के अनेक पुत्र अपने-अपने गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर पृथक पृथक वर्ण में भी होते हैं अर्थात वर्णों का आधार गुण, कर्म व स्वभाव हैं जन्म नहीं।

वर्णव्यवस्था के बिना समाज का कोई कार्य सफल नहीं हो सकता है इसलिये इस व्यवस्था का पालन जाने-अनजाने संसार का प्रत्येक व्यक्ति करता है। वर्तमान काल में इस पवित्र वर्णव्यवस्था को न समझने के कारण और स्वार्थ वशीभूत हम स्वनिर्मित तथाकथित जातिरूपी जन्ममूलक व्यवस्था से दुःखी हैं। इस तथाकथित जाति व्यवस्था के कारण जन्म से ही किसी को स्वर्णकार, बढ़ई, ब्राह्मण, वैश्य गूजर जाट आदि संज्ञा देने से वर्णव्यवस्था भंग हो गयी। फलतः सामाजिक कृत्रिम भेद बढ़कर महान अनर्थ हो रहा है। जन्म मूलक इस व्यवस्था में न सुख-दुख में सहभागी होने की भावना है और न ही किसी को आगे बढ़ाने की। हां इसमें किसी के अधिकारों के हनन करने की प्रवृत्ति अवश्य उत्पन्न हो जाती है। इसके विपरीत वर्णव्यवस्था में परस्पर सुख-दुख में सहभागी होकर परोपकार करते हुए जन-जन का उद्धार करने की भावना होती है। प्रत्येक को अपने से उत्तम वर्ण में जाने की प्रेरणा होकर अवसर प्राप्त होता है। इसलिये व्यावहारिक एवं आवश्यक होने से वर्णव्यवस्था ही ग्राह्य है। वर्णव्यवस्था और जन्ममूलक इस दूषित जातिव्यवस्था के अन्तर को समझकर सभी को चाहिये कि परस्पर एक-दूसरे को सही परिप्रेक्ष्य में समझें।

–आचार्य विष्णुमित्र आर्य

आदर्श नगर, नजीबाबाद (उ. प्र.)

☐☐☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं दयानन्दाय इदन्न मम

लेखक :- डा० महेश विद्यालंकार

ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना संसार में व्याप्त अज्ञान, अन्धकार, अधर्म, असत्य एवं पाखण्ड को मिटाने के लिये की थी। उनका स्वप्न था लोक-लोकान्तरों में देश-देशान्तरों में एवं जनमानस में सत्य सनातन वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना करना। उन्होनें संसार में कोई नया पन्थ व मजहब नहीं चलाया अपितु वैदिक धर्म के ऊपर जो भ्रान्तियां तथा अज्ञानता की राख आ गई थी, उसे ज्ञान-विचार, तर्क, प्रमाण, युक्ति आदि से आलोकित व उदघाटित किया है। उन्होंने जो भी कार्य किये, वे सभी सृष्टि और मानवता के कल्याण के लिए हैं। उनकी लोकमंगल की भावना बहुजनहिताय बहुजनसुखाय की भावना से अनुप्राणित है। उनकी दृष्टि सदा समष्टि परक रही है। उन्होनें कभी न अपने लिए लिया, न किया, न सोचा, इसीलिए उनकी संसार के महानपुरूषों में अलग पहिचान है। वे आर्य समाज को संगठित आदर्श प्रेरणा भावना-युक्त तथा समाज के पथप्रदर्शक के रूप में देखना चाहते थे। किन्तु आज हमारी त्रासदी व बदकिस्मती यह है कि उस पुण्यात्मा की धरोहर को वसीयता को और योगदान को संभाल नहीं पा रहे हैं।

आज सब जगह अलग अलग संगठन, सभाएं, संस्थाएं व संस्थान बनते जा रहे हैं। अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग गाया जा रहा है। न कोई किसी की सुनता है और न मानता हैं। सब अपने-अपने पद, अंहकार, अधिकार और स्वार्थ में दौड़े जा रहे हैं। सर्वत्र रिक्तता, अराजकता, निराशा तथा अकर्मण्यता फैलती जा रही है। इससे आर्य समाज की शक्ति, संगठन, प्रभाव व एकरूपता व अनुशासन पर घातक प्रभाव पड़ रहा है। जनबल और धनबल दोनों बढ़ रहे हैं। दयानन्द को भी लोग अपनी-अपनी नजर से बाँटने लगे हैं। ऋषि का प्रयोग और उपयोग अपने-अपने ढंग से करने लगे हैं। इससे सामूहिक एकता का प्रभाव क्षीण हो रहा है। आज आर्य समाज की सभी प्रकार की शक्ति मूल से हटकर व्यर्थ के कार्यों में विभक्त हो रही है।

ईंट, पत्थर, प्रदर्शन, दिखावटी, बनावटी और विवादों के कार्य तेजी से बढ़ रहे हैं। असली कार्य मानव निर्माण व समाज सुधार का गौण होता जा रहा है।

जो भी उठता है नया संगठन, सभा, संस्था, संस्थान, मंच, आश्रम आदि बना लेता है। आजीवन उसका सर्वेसर्वा बन बैठता है। जनबल व धनबल की जोड़-तोड़ में खेमे बनाने लगता है। जनता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सिद्धान्तों, विचारों, आदर्शों एवं मूल्यों में मनमाने ढंग से परिवर्तन करने का यत्न होने लगता है। दुर्भाग्य है कि ऐसा हो रहा है। कुछ लोग ऐसे भी हैं-जिन्होंने वर्तमान सत्ता में साझीदारी न मिलने के कारण, पदलिप्सा की महत्वाकांक्षा पूरी न होने के कारण, जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जुड़े थे, वह पूरी न होने के कारण और धनोपार्जन की कामना पूरी न होने के कारण अलग से संगठन संस्था व संस्थान बना लिए हैं। जो चाहे काला-सफेद करें कोई रोकने-टोकने वाला नहीं है। जैसा कि नियम है कि व्यक्ति की माया और वृक्ष की छाया दोनों उसके साथ चली जाती हैं। जब तक व्यक्ति जीवित रहता है तब तक तो जैसे-तैसे लड़खड़ाते ये सभा, संस्थाएं व संगठन चलते भी हैं बाद को इन्हें संभालने वाला भी नहीं मिलता है। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। कई गुरुकुल संगठन व ट्रस्ट हैं जिनकी अब दशा व स्थिति शोचनीय हो रही है।

आज कोई भी एक झण्डे, एक उद्देश्य व एक बैनर के नीचे संगठित होकर कार्य करने के लिए राजी नहीं हो रहा है। सभी को महत्व, पद व सम्मान चाहिए। सभी ऊपर बैठना चाहते है, फिर दरियां कौन बिछाए। इससे आर्य समाज की शक्ति कमजोर हो रही है। संगठन बिखर रहा है। सामूहिक प्रभाव घट रहा है। उसकी धड़कनों में दुर्बलता आ रही हैं। उसका स्वरूप बिगाड़ा जा रहा है। आर्य समाज व उसके संस्थापक के नाम पर चन्दों का ढेर एकत्र किया जा रहा है।, किन्तु कार्य उसकी इच्छा के विरुद्ध हो रहे हैं। उस महापुरूष ने कभी अपना नाम किसी संगठन में नहीं जोड़ा। उन्होंने कभी व्यक्तिगत अपने नाम को महत्व नहीं दिया। दस नियमों में कहीं भी उन्होंने अपने नाम को नहीं आने दिया।

उन्होंने कभी व्यक्तिवाद व व्यक्तिपूजा को महत्व नहीं दिया। उन्होंने संसार को प्रत्येक क्षेत्र में सीधा-सच्चा एवं सरल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग दिखाया। वे संसार में वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना की भावना लेकर आए थे।

आर्य समाज के अतीत का इतिहास साक्षी है कि दयानन्द की इच्छा पूर्ति के लिए अनेक महापुरुषों ने अपना तन-मन-धन न्यौछावर कर दिया। प्राणपण लगाकर ऋषि के कार्य को आगे बढ़ाया। उस दिव्यात्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित होकर न जाने कितने वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के दीवाने हो गए। आज फिर जरूरत है—आर्य समाज को दीवानों की, जनूनवालों की, मस्तानों की जो उच्चास्वर से पुकार-पुकार कर कह सकें—"इदं दयानन्दाय इदं न मम" तभी कुछ बात बन सकेगी। तभी सभा-संगठनों व संस्थाओं में नवचेतना का संचार हो सकेगा। जरूरत है जनजागृति की। ये तब होगी जब हम जनता के पास जायेंगे, अपनी बात उससे कहेंगे। दयानन्द और आर्य समाज एक विचारधारा है। जीवन प्रक्रिया है, वैचारिक चिन्तन है। दुनिया अच्छे विचारों की दृष्टि से दरिद्र हो रही है। बुरे विचार तो सब जगह दिखाई देते हैं। अच्छे प्रेरक व जीवनदायक विचार कहीं-कहीं मिलते हैं। वैदिक विचारधारा के पास श्रेष्ठ, मंगलकारी तथा सर्वहितकारी चिन्तन है, किन्तु जो उसके प्रचारक, प्रसारक व्यक्ति मन्दिर, सभा-संगठन, संस्थाएं आदि हैं। वे अपने मूल उद्देश्य से हट और कट रही हैं। उसका परिणाम सामने है कि निर्माण, गुणवत्ता और रचनात्मक दृष्टि से हमारा स्थान पीछे होता जा रहा है।

आज आवश्यकता है आर्य समाज से जुड़े हुए अधिकारियों, व्यक्तियों, सभा, संगठनों एवं संस्थाओं को सिहांवलोकन, पुनर्मूल्यांकन और आत्म विश्लेषण करने की। सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों को, राग-द्वेष को, पद व अधिकारों को भूलकर, मिल-बैठ कर सोचने-समझने और कुछ करने की सोच पैदा करने के लिए आगे आना होगा। मन में श्रद्धा, भक्ति भाव भावना जाग्रत करके सकंल्प लेना होगा—इदं दयानन्दाय इदं न मम। तभी गुरुवर दयानन्द का यह स्वप्न 'कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्' पूरा हो सकेगा।

□□□

एकता के नाम पर समन्वय का नारा अथवा समूल नाश की योजना

आर्य समाज के विरूद्ध योजनाबद्ध प्रयास

—डॉ॰ रघुवीर वेदालंकार

दिसम्बर '९२ के 'दयानन्द सन्देश' में स्वामी वेदमुनि जी का लेख 'महर्षि दयानन्द पर दूसरा आक्रमण' प्रकाशित हुआ है। जागरुक स्वामी जी के लेख के लिए अभिनन्दन। केवल ये ही पहले या दूसरे आक्रमण नहीं हैं अपितु यह तो एक योजनाबद्ध प्रयास है जिसके अनुसार आर्य समाज या महर्षि दयानन्द पर इस प्रकार के आक्रमण होते ही रहते हैं। आर्य जनता का इधर ध्यान जाता ही नहीं, यदि जाता भी है तो उसकी उपेक्षा कर दी जाती है या स्वामी आनन्दबोध जी की भांति केवल स्पष्टीकरण से सन्तोष कर लिया जाता है। आक्रमण होते रहते हैं तथा होते रहेंगे यदि हम इसी प्रकार असावधान बने रहेंगे।

इस प्रकार के आक्रमण अथवा योजनाओं का एक अंग यह भी था कि आर्य समाज के नामधारी सदस्य बनकर निर्वाचन में बहुमत के आधार पर विजयी बन कर आर्य समाजों पर अधिकार करना। आर्यों की जागरूकता के कारण यह योजना निष्फल सी हो गयी तथापि अभी भी क्षेत्रीय स्तर पर कहीं-कहीं ऐसे प्रयास किये जाते हैं। इसी योजना के अन्तर्गत नमस्ते के स्थान पर जानबूझकर नमस्कार का प्रचार-प्रसार इन लोगों के द्वारा किया गया और इसी प्रयास का परिणाम है कि आज नमस्ते का लगभग ५०% स्थान नमस्कार ने ले लिया है यहाँ तक कि आर्य समाजी भी नमस्कार करने लगे हैं। इसी योजना के अन्तर्गत दयानन्द के सामने इन्होंने विवेकानन्द को ला खड़ा किया। भला विवेकानन्द में ऐसी कौन सी विलक्षण विशेषता थी कि जिसने दयानन्द को भी पीछे छोड़ दिया। कारण यह है कि दयानन्द का नाम लेने से ये आर्यसमाजी माने जाते या आर्य समाज का प्रचार होता जबकि विवेकानन्द को अपनाने से हिन्दुत्व के पोषक समझे जा रहे हैं। आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विवेकानन्द प्रतिष्ठित हैं। दयानन्द मंच से ओझल होते जा रहे हैं यह इनके योजनाबद्ध प्रयास का ही परिणाम है। इसीलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी किसी भी पत्र-पत्रिका में ये दयानन्द का नाम नहीं लेते। यदि वश चलता है तो दयानन्द को पीछे ही धकेलने का यत्न करते हैं। आर्य सिद्धांतों के स्थान पर पौराणिक मान्यताओं को ही प्रश्रय देते हैं। फिर इनसे कैसा समन्वयी कैसा सहयोग? इनके साथ समन्वय का ही परिणाम है कि अनेक आर्य समाजों में शिलापूजन कराया गया, चरण पादुका पूजन का समर्थन भी अनेक (हिन्दुत्ववादी) आर्यों ने किया। इतना ही नहीं अपितु दिल्ली की एक आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में एक वक्ता द्वारा मूर्तिपूजा के विरुद्ध व्याख्यान देने पर समाज के मन्त्री ने वक्ता को भविष्य में ऐसा न करने का आग्रह किया क्योंकि इससे हिन्दुत्व के तथाकथित पोषक नाराज होते थे। क्या यह शर्मनाक एवं शोचनीय स्थिति नहीं है। आर्य समाज के मंच से भी यदि सत्य का प्रचार नहीं होगा तो कहां से होगा। दूसरी घटना स्वयं मेरे साथ घटी है। एक साप्ताहिक सत्संग में जब मैंने कारसेवा के प्रारम्भ में की गयी यज्ञ में पशुबलि का विरोध किया तो आर्य समाज के एक प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ता ने आर्य-धर्म कह कर उसका समर्थन किया। भला यहां आर्य-धर्म की क्या बात थी। कुछ महीने पहले परोपकारी की सम्पादकीय में ऐसे अनेक उदाहरण दिये गये थे जबकि हिन्दुत्व के समर्थकों द्वारा आर्यसमाज को क्षति पहुँचाने के यत्न किये गये। अतः आर्य समाज को सावधान होने की जरूरत है। इसके सिद्धान्त सुदृढ़ तथा अपरिवर्तनीय हैं (यद्यपि ये तथाकथित हिन्दुत्व वादी इनमें भी सुधार का परामर्श देने लगे हैं) हिन्दुत्व की लहर में ऐसा न हो कि आर्य समाज को कोई हानि हो जाए। हमारा नारा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' ही रहना चाहिए 'कृण्वत्तो विश्वं हिन्दू' नहीं।

इन लोगों की भावना है कि आज आर्य लोग अपने आप को आर्य न कहकर हिन्दू कहने लगें, मानने लगें तथा आर्य समाज भी अन्य मतमतान्तरों का विशेषकर सनातन धर्म का खण्डन करना छोड़ दे, महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार छोड़ दे क्योंकि यह समय मिलकर कार्य करने का है, संगठित होने का है, आपस में लड़ने का नहीं है। अतः आर्यों आप-अपनी पहचान समाप्त कर उस विशाल पारावार में विलीन हो जाओ जो कि आज हिन्दुत्व के नाम पर उमड़ता हुआ पूरे भारत में विस्तार को धारण करता जा रहा है। आज मुसलमानो से टक्कर लेनी है ईसाइयों से मुकाबला करना है अतः अपना नाम रूप छोड़कर इस विशाल समुद्र में विलीन हो जाओ। आर्य नाम है ही कितना व्यापक? जबकि हिन्दू के नाम से तो पूरा देश जाना जाता है।

तुम राम मन्दिर के लिए कार सेवा में भी सम्मिलित हो जाओ, अपने आर्यसमाजों में गुरुपर्व पर झण्डा पूजा भी करने दो, राममन्दिर निर्माण के लिये यज्ञ में पशुबलि भी देने दो इनका विरोध मत करो क्योंकि यह समय विरोध का नहीं मिलजुल कर कार्य करने का है। हिन्दूत्व पर संकट है तथा उसकी रक्षा इसी प्रकार हो सकती है। अपने आप को आर्य के स्थान पर हिन्दू कहने में भी कोई हर्ज नहीं है।

और ये लोग, ये हिन्दुत्व के प्रहरी, ये सामञ्जस्य के पोषक कभी भी अपने आप को आर्य कहलाने में गौरव अनुभव नहीं करेंगे। ये तो यही रटेंगे-गर्व से कहो हम हिन्दू हैं। मत कहो कि हम आर्य हैं। आर्य होने में गर्व कहां? वहां तो लज्जा है। यही कारण है कि बड़े से बड़ा हिन्दु नेता, हिन्दूत्व का पोषक तथा इसके सहारे चलने वाली राजनीतिक पार्टी का कोई भी नेता अपने आप को आर्य घोषित नहीं करेगा। क्योंकि मिलना आपने है उन्होंने नहीं। उन्होंने तो आपको अपने मे मिलाना है। इसलिए उनको आर्य बनने की आवश्यकता नहीं है, आपको हिन्दू बनने की आवश्यकता है। यह समय की मांग है कि आर्य तथा आर्य समाज अपना स्वरूप, अपने सिद्धान्त छोड़कर हिन्दुत्व को स्वीकार कर लें। उन पर डटे रहे तो बिखराव आ जायेगा। हिन्दूत्व को खतरा पैदा हो जायेगा। इन हिन्दुत्ववादियों से मत पूछो कि तुम्हें आर्य समाज के दस नियम क्यों स्वीकार्य नहीं? क्या उनमें साम्प्रदायिकता की गन्ध है? क्या वे समाज विरोधी हैं? क्या सार्वभौमिक नियम नहीं हैं जो कि समस्त विश्व के लिए अपरिहार्य हैं। दूसरे नियम से कुछ असहमति हो सकती है किन्तु शेष नियमों को ये तथाकथित हिन्दुत्व के रक्षक क्यों स्वीकार नहीं कर लेते? वे वेदों को सत्य विद्याओं की पुस्तक तथा परमेश्वर की वाणी मानने को क्यों तैयार नहीं हैं? क्या ये संसार का उपकार करना नहीं चाहते? क्यों तैयार नहीं हैं? क्या ये संसार का उपकार करना नहीं चाहते? क्या ये धर्मानुसार आचरण नहीं चाहते? क्या ये अविद्या का नाश नहीं चाहते? यदि चाहते हैं तो क्यों नहीं इन नियमों को नतमस्तक होकर स्वीकार कर लेते। क्या यह मेल-जोल का मार्ग नहीं है। यदि इन नियमों से ही उन लोगों का विरोध है तो आर्यो? फिर मेल-जोल की इस मृग मरीचिका के पीछे कब तक भागोगे? क्या तुम्हें नहीं पता कि महर्षि दयानन्द के समय भी तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमान तथा ईसाई इस भारतीय संस्कृति को मिटा ही रहे तो क्यों दयानन्द ने समझौते का मार्ग न अपना कर वेदों का डंका बजाया, आर्य नाम का प्रचार किया, नमस्ते सिखायी तथा तथाकथित हिन्दूत्व की कुरीतियों का खण्डन करके एकेश्वरवाद पर बल दिया। अब कौन सा आसमान फट गया है कि आप सब सबको तिलांजलि देकर इस हिन्दूत्व में विलीन होते जा रहे हो? दूसरी ओर ये हिन्दूत्ववादी हैं कि आर्यसमाजों में शिलापूजन करा रहे हैं, रामपादुका पूजन करा रहे हैं, गुरुपूजा के नाम पर जड़ ध्वजा गुरू के स्थान पर पूज रहे हैं, सत्यार्थ प्रकाश पर आक्षेप कर रहे हैं, दयानन्द के विषय में भ्रान्तियां फैला रहे हैं तथा आर्य समाज एवं महर्षि दयानन्द को पीछे धकेलने का यत्न कर रहे हैं। □□□

आर्यो ! ये कैसी श्रद्धांजलि ?

—डॉ. महेश विद्यालंकार

१६ फरवरी को दिल्ली के ताल कटोरा स्टेडियम में ऋषि जन्मोत्सव और १९ फरवरी को कोटला फिरोजशाह मैदान में ऋषि बोधोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। लगभग दिल्ली के सभी कोनों से श्रद्धालु आबाल वृद्ध, सभी ने उत्साह एवं भावना से भाग लिया। सभी के हृदय ऋषिवर के लिए श्रद्धावनत थे।

किन्तु पीड़ा इस बात की रही कि जो वहां विचार दिए और सुनने को मिले। वे निराशाजनक, सिद्धान्त विरुद्ध तथा ऋषि के व्यक्तित्व व कृतित्व से अछूते थे। आर्य समाज की मान्यताओं एवं जीवन दर्शन के प्रतिकूल थे। कुछ व्यक्तियों को छोड़कर जिन्हें कुछ ही मिनट अपनी बात कहने का अवसर मिला। वहां ऋषि चिन्तन कम था। नेता पूजन अधिक था, जिसका अधिकांश प्रबुद्ध भावनाशील एवं विचारक लोगों ने मौन रहकर तो किसी ने दबी जबान से, तो किसी ने बाद को मुखर वाणी से विरोध प्रकट किया, तो कोई चुपचाप सब कुछ सुन-सुन निराश होकर लौट आया। वही सबकी और अपनी पीड़ा लिपिबद्ध कर रहा हूँ। इसलिए कि शायद कहीं भाव जग जाए? और हम मूल से जुड़ जाय। जनता वहां ऋषि के चिन्तन-दर्शन, महत्त्व, योगदान, जीवन विशेषताओं आदि को सुनने आती है न कि पथभृष्ट, सिद्धान्तहीन, जीवनमूल्यहीन, एवं अवसरवादी राजनेताओं की ऊल-जलूल, तुक्केबाजी भरी सिद्धान्त विरुद्ध बातों को? हो सकता है कि कोई अपने संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए अपने तो आगे बढ़ाने के लिए, अपने स्वार्थ और सम्पर्क को साधने के लिए आर्य समाज की मंच पर ऐसे नेताओं को बुलाते हैं? उन आयोजकों को और अधिकारियों को ऋषि भक्त जनता की भावना को समझना चाहिए? लोगों में उठते हुए आक्रोश के तेवर को देखना चाहिए? श्रद्धालु, भावनाशील दयानन्दी आर्य जनता अधिक दिन ऐसे कार्यक्रमों को स्वीकार नहीं करेगी।

यह सच और सूर्य के समान सर्वविदित है कि आर्य समाज ऋषि दयानन्द को अवतार के रूप में न देखती है न मानती है ऋषि का चिन्तन जीव को ईश्वर के अंश के रूप में मान्यता नहीं देता है। ईश्वर को चौरासी लाख योनियों में विभक्त नहीं मानता है।

दार्शनिक दृष्टि से ऋषि का त्रैतवाद का सिद्धान्त विश्व को महान देन है। किन्तु दुःख दर्द वेदना तो इस बात की है कि उस महामानव के जन्म दिवस और बोधोत्सव पर उन्हीं द्वारा स्थापित सिद्धान्तों तथा मान्यताओं की धज्जियाँ उड़ाई जाय? ऋषि ने जिन बातों का विरोध किया था, हम उन्हीं बातों को कर रहे हैं। दयानन्द की आत्मा जहां होगी निश्चय ही हमारे गुण-कर्म स्वभाव एवं व्यवहार को देखकर दुःखी हो रही होगी? हमारी इतनी गिरावट आई कि खान-पान, सिद्धान्त, चिन्तन व्यवहार सब कुछ प्रदूषित होता जा रहा है। ऋषि ने जो हमें प्रत्येक क्षेत्र में अलग पहिचान दी थी, वह आज हमारी अपनी कोई पहिचान ही नहीं रही। चाहे राजनीति हो चाहे धर्म, चाहे शिक्षा, कहीं भी प्रेरक व आदर्शमूलक नजर नहीं आती। इसलिए आर्य समाज अनुयायियों की दृष्टि से और संगठन की दृष्टि से पिछड़ रहा है।

आर्यो। दयानन्द के दर्द को पहिचानो। उसे इतना सस्ता न बनाओ। जो उठे जो चाहे उसके नाम पर कह दें। क्या यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उस तपस्वी, त्यागी, पुण्यात्मा के उपकारों का बदला कि उसके नाम और काम को हर कोई कैश कराने में लगा हुआ है। कोई सिक्खों, मुसलमानों व ईसाइयों के गुरुओं को और उनके धर्मग्रन्थों को छूकर देखे तो सही? अंगुली उठाने को हिम्मत तो करे? हंगामा खड़ा हो जायेगा। फतवे जारी होने लगेंगे? सच तो यह है कि हमने उस धर्मात्मा योगी को पहिचाना ही नहीं है। जिन्होंने पहिचाना था, वे स्वयं कल्याण मार्ग के पथिक बने, औरों को भी दिशा दे गए और इतिहास में अमर हो गए। दयानन्द को श्रृद्धानन्द, लेखराम, गुरुदत्त, हंसराज और अमीचन्द जैसे लोगों ने जाना था। जिसने उन्हें देखा-सुना वही दीवाना बन गया। एक जनून लेकर चल पड़ा। दयानन्द एक विचार था। चिन्तनधारा थी। एक मशाल थी। वह ऐसी जीवन्त चेतना के तूफान थे, जिधर से निकले उधर का सारा कूड़ा-करकट गन्दगी साफ होती गई। अज्ञान-अन्धकार मिट गया। वह लोगों को उठाता, जगाता, समझाता और हँसाता गया। उन पर जितना भी लिखा जाय अधूरा है। जितना भी कहा जाय। उतना थोड़ा है। उनको जितनी भी भक्ति, सम्मान, आदर, श्रृद्धा और भावना दी जाय, उतनी ही अल्प है। उनके उपकार अवर्णनीय हैं। उनका तप-त्याग एवं तपस्या महनीय है। उनका संसार को योगदान प्रशंसनीय है। उनका आर्य समाज का निर्माण अनुकरणीय है। उनकी जीवनयात्रा स्पृहणीय है। उनकी स्मृति वन्दनीय है।

ऐसे दिव्य गुणों से युक्त देवात्मा को स्मरण करने व श्रृद्धांजलि देने के अवसर पर तो भक्ति-भावना में श्रृद्धा और प्रेरणापूर्ण वातावरण होना चाहिए? लोगों में क्षीण होती हुई आस्था, श्रृद्धा-भावना और देश, धर्म, जाति व संगठन के प्रति भाव भावना जगाने के लिए ऐसे अवसर आते हैं। महापुरुषों के जन्म दिन, स्मृति दिवस व बलिदान पर्व हमें सचेत करने के लिए आते हैं। आत्म-चिन्तन का अवसर देते हैं? कुछ करने के लिए, आगे बढ़ने के लिए, कर्त्तव्य बोध करने के लिए, व्रत और संकल्पों को दुहराने के लिए ऐसे अवसर मिलते हैं। भावनापूर्ण वातावरण बनाकर कुछ आत्म-चिन्तन एवं आत्म-विश्लेषण कर सकें, तभी इन अवसरों की सार्थकता है। आज मात्र हम दर्शन, मेला व प्रदर्शन तक ही सीमित होते जा रहे हैं। परिणाम सामने है कि कहीं भी निर्माण की ललक नजर नहीं आती। इतने जलसे, जलूस, उत्सव, पर्व, सम्मेलन आदि हो रहे हैं मात्र परम्परा को निभाया जा रहा है। गुणात्मक व रचनात्मक प्रभाव नजर नहीं आता। क्योंकि करनी और कथनी में फासला लम्बा हो रहा है। क्रियात्मक सोच व दृष्टि बदल रही है। बहिर्जगत में ही उत्सव, शताब्दी, मेले, पर्व आदि बनाए जाते हैं। अन्तर्जगत खाली पड़े हैं।

आज आवश्यकता है आर्य समाज को ऋषिवर दयानन्द के सिद्धान्तों, विचारों और जीवन मूल्यों को क्रियात्मक रूप देने की। जन जीवन में टूटती, छूटती व शिथिल होती हुई श्रृद्धा, आस्था तथा आस्तिकता को तप, त्याग, सेवा व प्रेम से सिंचित करने की। जीवन में आर्यत्व के गुणों को धारण करने की। अपने खान-पान, रहन-सहन, मन्दिर, सभा, संस्था-संगठन आदि के माध्यम से प्रभावमूलक आदर्श स्थापित करने की। अपनी पहिचान को बिना लोभ, लालच, पद, स्वार्थ और भय के बरकरार रखने की। जो इस विचारधारा के संवाहक, संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान, उपेशक, पुरोहित, सेवक आदि हैं, उन्हें यथोचित मान, सम्मान, आदर, सहयोग, सहायता आदि से आगे बढ़ाने की। आर्य समाज को अपने मंच तथा वेदी पर उन्हीं लोगों को पात्रता देनी चाहिए, जिनमें सिद्धान्त, विचार, नैतिक मूल्य एवं आचरण की पवित्रता है, अन्यथा समाज की साख गिर रही है और गिरेगी क्योंकि चरित्र का सीधा प्रभाव पड़ता है। आर्य समाज को पुन: इस दिशा में गंभीरता से सोचना और निर्णय लेना चाहिए कि अपने तप: पूत महापुरुषों के जन्म, स्मृति एवं बलिदान पर्वों पर उन्हीं लोगों को बुलाया जाय जो सिद्धान्त, जीवनदृष्टि, चरित्रवान और संगठन को गहराई से जानते व मानते हों। तभी सार्थक बात बन सकेगी।

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय[1] क्यों, कब, कहां, किसकी

पं. फूलचन्द्र शर्मा निडर, भिवानी

आर्य समाज की प्रत्येक मान्यता अकाट्य है। संसार में मत मतान्तर थे, हैं और होंगे उनमें जो भी अच्छाई थी, होगी उनमें कोई ऐसी अच्छाई या सच्चाई नहीं है जो समाज अथवा वैदिक धर्म में न हो। वैदिक धर्म अथवा समाज की मान्यता से विपरीत जिस मत में जो भी पाया वह असत्य होगा, अप्रमाणित होगा और तर्क से कट आर्य समाज के सिवाय दुनिया में कोई ऐसा मंच नहीं दूसरे सब मतों की झूठी मान्यताओं का खण्डन करता इसलिए दूसरे सारे मत आर्य समाज के विरोधी हैं, इसीलिए पुराण पन्थी भी जो औरों की अपेक्षा आर्य समाज के कुछ समझा जाता है वह भी जब आर्यों का मुसलमान, ईसाइयों से शास्त्रार्थ होगा तब वह मुसलमान, ईसाइयों की जीत आर्य विद्वान् की हार चाहता है।

आर्य समाज का पाँचवाँ नियम कहता है कि सब काम अनुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए। परन्तु कुछ कच्चे अथवा अज्ञानी जो आर्य समाज के मन्तव्यों के पूरे या ठीक जानकर नहीं होते, कहीं-कहीं, कभी-कभी ऐसी भूल कर बैठते हैं जो किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं है, इनमें एक बड़ी मोटी भूल "जय" बोलने की भी आती है। हमारे ख्याल में आज तक इस विषय (जय बोलना) पर आर्य समाज के किसी भी विचारक या विद्वान् ने कोई प्रकाश नहीं डाला है कि "जय" क्यों, कब, कहां और किसकी बोली जानी चाहिए। आज हम इस लघु लेख में इसी विषय पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

आर्य समाज में "जय" बोलने की हमारी इस मान्यता पर आर्य समाज के विद्वान् सोचें और निर्णय करें कि हमारी इस विषयक मान्यता को कहां तक ठीक या गलत मानते हैं और क्यों?

आर्य समाज में ही एक व्यक्ति हमें ऐसे भी मिले जो मरे हुए व्यक्ति की जय बोलने को सिद्धान्त विरुद्ध कहा करते थे। उन्होंने अपने जीते जी कभी महर्षि दयानन्द की जय नहीं बोली। केवल इस भेद (हम ऐसा नहीं मानते कि मरे की जय नहीं बोली जानी चाहिए) को लेकर जब तक वे व्यक्ति जीवित रहे हमारी उनकी परस्पर बोल-चाल तक बंद रही और उस व्यक्ति को हम कभी अपने उत्सवादि में नहीं बुलाते थे। केवल इसलिए कि वे महर्षि दयानन्द की "जय" बोलने का विरोध करते थे। अब वे व्यक्ति मर चुके हैं।

एक सज्जन ने एक बार हमसे पूछा था कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम और दयानन्द में कौन बड़ा था? हमने उनको इस बात का उत्तर दिया था कि दयानन्द बड़ा था। क्योंकि वर्णों की दृष्टि से ऋषि दयानन्द जन्मना तथा कर्मणा ब्राह्मण थे और श्री राम क्षत्रिय थे और आश्रम की दृष्टि से राम गृहस्थी थे और दयानन्द संन्यासी थे। वे सज्जन हमारे इस उत्तर से पूर्ण सन्तुष्ट हो गए थे।

आगे इस विषय (जय बोलना) पर हम अपने विचारों को कुछ प्रश्नोत्तर ढंग से स्पष्ट करते हैं। कृपया पाठक इन्हें विशेष ध्यान देकर समझने का प्रयत्न करें—

प्रश्न—जड़ चेतन में जड़ और चेतन दोनों की जय बोली जा सकती है या केवल चेतन की?

उत्तर—"जय" केवल चेतन की ही बोली जा सकती है जड़ की नहीं। किसी जड़ पदार्थ की जय पराजय का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि जड़ पदार्थ भी चेतन के अधीन होता है। उसके स्वयं जीतने-हारने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र में आता है कि एक व्यक्ति उनके पास जाकर "परमात्मा की जय" ऐसे बोला करता था। एक दिन महर्षि ने उससे कहा कि "जय" केवल जीवधारी की ही हो सकती है। किसी जड़ पदार्थ की जय इसलिए नहीं हो सकती कि उसमें ज्ञान नहीं है। वह चेतन के अधीन है। अतः उसकी जय बोलना व्यर्थ है और परमात्मा की जय कभी हो ही नहीं सकती, वह सदाअजित है इसलिए परमात्मा की जय बोलना भी ठीक नहीं। जय और अजेय जहां इन दोनों की संभावना हो वहां जय बोली जानी चाहिए। सो ऐसा (जय और अजय) जीवधारी में ही

[1] वैसे जय शब्द संस्कृत में पुल्लिंग है, परन्तु यह हिन्दी में स्त्रीलिंग में रूढ़ हो गया है अतः हमने इसका प्रयोग स्त्रीलिंग में ही किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव है। अत: जय केवल जीवधारी की ही बोली जा सकती है। कुछ मूर्खों को यही पता नहीं होता कि किसकी और क्यों "जय" बोली जा रही है। जैसे जय बाबा खेड़े वाले की। जय बाबा छुई वाले की, इत्यादि और सन्तोषी माता की जय के बारे में तो बड़ा क्रोध, दु:ख तथा आश्चर्य तीनों एक साथ आते हैं। जब उन पागलों को जय माता दी, सोके बोलो, जग के बोलो, चलते बोलो, खाते बोलो, पीते बोलो ऐसे बकते देखते हैं तो बड़ी हंसी आती है और क्यों इसकी जय बोली जा रही है, इत्यादि।

प्रश्न—श्री विनोबा जी "जय जगत्" बोला करते थे। क्या यह ठीक था?

उत्तर—नहीं, उनका यह "जय जगत्" बोलना बिल्कुल गलत था। एक बार विनोबा जी भिवानी आए और मैं उनसे मिलने गया। उनसे मिलने के लिए केवल दो मिनट मिलते थे। मैनें उनसे मिलते ही पूछा कि आप जो "जय जगत्" बोलते और बुलवाते हो इसमें आपकी भावना जड़ और चेतन दोनों की जय बोलने की होती है, या केवल चेतन की, जड़ की नहीं? वे मेरे इस प्रश्न पर कुछ भी न बोले तो फ़िर मैंने कहा कि यदि आपकी भावना केवल चेतन की जय से है तो चेतनों में अच्छे भी हैं और बुरे भी। तो क्या आप दोनों (अच्छे बुरे) की जय चाहते हैं? मेरे इस कथन पर भी विनोबा जी चुप रहे और वे मेरे मुँह की ओर देखते रहे। दो मिनट पूरे भी नहीं हो पाए थे, आखिर मैं १॥ मिनट में ही उठकर चला आया। स्यात् उन्होंने ताड़ लिया होगा कि यह (मैं) कोई आर्य समाजी होगा जो ऐसे प्रश्न करता है।

प्रश्न—मथुरा वाले प्रेम भिक्षुजी सब जगह आर्य समाज के उत्सवों आदि में महर्षि दयानन्द की जय के साथ "मर्यादा पुरूषोत्तम राम की, योगीराज कृष्णचन्द्र की तथा हनुमानादि की भी जय बोलते बुलवाते हैं। क्या यह ठीक है?

उत्तर—कदापि ठीक नहीं क्योंकि वे आर्य समाज के मंच से राम कृष्ण की जय बोलकर पुराण पंथियों को खुश करना चाहते हैं, परन्तु उसकी यह भावना ठीक नहीं है, क्योंकि इससे राम कृष्ण की जय बोलने से पुराण पंथी तो खुश नहीं होते वरन् समझदार आर्य समाजी नाराज हो सकते हैं और यदि पुराण पंथी खुश हों तो भी आर्य समाज के मंच से राम कृष्ण की जय बोलना ठीक नहीं है।

प्रश्न—आर्य समाज के मंच से राम कृष्ण जी जय बोलने से यदि कोई लाभ नहीं हो तो हानि भी क्या है?

उत्तर—यह बात आप जड़ मूर्तियों के सामने हाथ जोड़ने, नमस्ते के स्थान पर राम राम या नमस्कार आदि करने के बारे में भी कह सकते हैं तो फिर आप कहाँ जाकर टिकेंगे, किस-किस को खुश करने के लिए आप कहाँ-कहाँ, क्या-क्या करेंगे और क्या-क्या न करेंगे? इसलिए प्रत्येक आर्य समाजी को सिद्धान्त विरुद्ध न किसी को खुश करने के लिए कोई काम करना चाहिए और न किसी की नाराजगी के डर से सिद्धान्तानुकूल किसी ठीक बात के करने से हिचकना चाहिए।

प्रश्न—जय क्यों बोलें?

उत्तर—जिस व्यक्ति की जय बोली जाती है उसके श्रद्धालुओं को प्रसन्नता होती है और उनका साहस बढ़ता है। इसलिए "जय" अवश्य बोली जानी चाहिए।

प्रश्न—क्या मनुष्येतर अन्य, प्राणियों की भी जय बोली जा सकती है?

उत्तर—हां, मनुष्येतर अन्य प्राणियों की भी जय बोली जा सकती है। जैसे दो सांड लड़ रहे हों, या लड़ाए जा रहे हों तो अपने अपने सांडो के पक्ष वाले अपने अपने सांडो की जय बोल सकते हैं। परन्तु उन सांडो की जय पराजय से उन सांडों को कोई प्रसन्नता न होगी, उनके पक्षी विपक्षियों को ही प्रसन्नता-अप्रसन्नता होगी।

प्रश्न—क्या गऊ माता की जय बोलना ठीक है?

उत्तर—नहीं, क्योंकि गऊ एक पशु है अत: जिसकी जय तो नहीं बनती पर गऊ मनुष्यों के लिए अत्युपयोगी प्राणी है। अत: गऊ हत्या बंद करो, गोरक्षा हम करेगें इत्यादि नारे लगाए जा सकते हैं।

प्रश्न—भारत माता की जय बोलनी चाहिए या नहीं?

उत्तर—"भारत" एक पुल्लिंग शब्द है, अत: भारत पिता हो सकता है माता नहीं। परन्तु भारत की धरती को अपनी माता मानना और उसकी जय बोलना दूसरी बात है।

प्रश्न—जय कहाँ बोली जानी चाहिए?

उत्तर—आर्य समाज के उत्सवों, सत्सगों, नगर कीर्तनों, शोभा यात्राओं आदि में और लड़ाई के मैदानों में तथा जहाँ भी हार जीत का प्रश्न हो वहाँ सभी जगह "जय" बोली जा सकती है।

प्रश्न—महर्षि दयानन्द की जय किसलिए बोली जाती है?

उत्तर—महर्षि दयानन्द चाहते थे कि "कृण्वंतो विश्वमार्यम्" अर्थात् सारी धरतीं और आकाश में आर्य ही आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वेद मत हो। कहीं भी कोई भी अनार्य न रहे। उनकी चाहना सृष्टि की प्रलय तक बनी रहेगी। अतः हर जगह हर समय उस ऋषि की जय बोली जानी चाहिए।

प्रश्न–जब किसी अच्छे व्यक्ति की या विद्वान्, सन्यासी आदि की जय बोली जाती है तब वह रोकता क्यों है?

उत्तर–जब किसी की जय बोली जाती है तब वह व्यक्ति उसमें अपना मान समझता है और मान की इच्छा करना किसी समझदार का काम नहीं। इसलिए वह अपनी जय बोलने से रोकता है।

प्रश्न–क्या भगवान राम कृष्ण यह नहीं चाहते थे कि सारा विश्व आर्य हो? इसलिए उनकी भी जय क्यों न बोली जाए?

उत्तर–राम कृष्णादि का यह मुख्योद्देश्य नहीं था। वरन् दूसरे और उनके उद्देश्य थे जिन्हें वे पूरा कर गए। "कृण्वंतो विश्वमार्यम्" का मूल तथा मुख्योद्देश्य महर्षि दयानन्द ही के सामने था जो उनके रहते पूरा न हो सका। उनके उददेश्य की पूर्ति के लिए वे आर्य समाज को अपना स्थानापन्न बना गये अतः हम आर्यों का यह कर्तव्य है कि उस ऋषि की इस भावना को पूर्ण करने के लिए तन-मन-धन से लगे रहें।

□□□

वेदों में वेश्यावृत्ति की महाभ्रान्ति

सात मार्च, १९९३ के 'पंजाब केसरी' में 'इतिहास के आइने में वेश्यावृत्ति' नामक लेख छपा हैं, जिसके लेखक हैं श्री सुभाष कुमार जी। इस लेख में लेखक ने वेदों का नाम भी घसीटने का दुस्साहस किया है। जिस व्यक्ति को वेदों के विषय में प्राथमिक स्तर का भी ज्ञान न हो वह इधर-उधर का उच्छिष्ट भोजी व्यक्ति विश्व में पवित्रतम् ज्ञान की निधि वेदों पर गन्दगी के छींटें मारकर अपने हृदय की कालिमा को प्रकट करते हुए लेशमात्र भी लज्जित न हो, यह कैसी विडम्बना है।

ऋग्वेद के (१०-५-६१/६) में प्रजापति ने अपनी पुत्री उषा के साथ यौन सम्बन्ध का वर्णन है। जिसके फलस्वरूप रुद्र की उत्पत्ति बताई गई है। पाठक स्वयं ही ऋग्वेद के इस मन्त्र का अध्ययन करें–

पिता यस्त्वां दुहितरमिमिष्कन् क्ष्मया रेतः सञ्जग्मानो निषिञ्चत्। स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्मदेवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्॥
॥ ऋ० १० । ६१ । ६ ॥

वेद मन्त्र के सत्यार्थ को समझने के लिए पाठकों को प्रथम यह बात अवश्य समझ लेनी चाहिये–जो जिससे उत्पन्न होता है वह उत्पन्न वस्तु अपत्य की भांति होती है और जिससे उत्पन्न होती है वह पितृवत् होता है। प्रजापति सूर्य को कहते हैं। जिसकी दो कन्यायें हैं–एक प्रकाश और दूसरी उषा। तीन चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर पूर्व दिशा से जो रक्तता (लाली) दीख पड़ती है वह सूर्य की किरण से उत्पन्न होने के कारण सूर्य की पुत्री कहलाती है। उनमें से उषा के सम्मुख जो प्रथम सूर्य की किरण जाके पड़ती है वही वीर्य स्थापन के समान है। उन दोनों के समागम से जो पुत्र अर्थात् दिवस उत्पन्न होता है वही सूर्य का पुत्र होता है।[1] यह रूपकालंकार है। जो इसे नहीं समझता वह वेदमन्त्रों का भी सत्यार्थ नहीं कर पाता। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है–"जो यह रूपकालंकार की कथा अच्छी प्रकार वेद, ब्राह्मण और निरुक्तादि सत्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं, इसको ब्रह्मवैवर्त श्रीमदभागवतादि मिथ्या ग्रन्थों में भ्रान्ति से बिगाड़ के लिख दिया है।" मन्त्रार्थ–(यत्) जो (पिता) के तुल्य सूर्य (क्ष्मया) पृथिवी रूप अपनी पत्नी से (संजग्मानः) संगत होकर (रेतः निखिञ्चित्) वीर्य आधान करता है (स्वांदुहितर) अपनी कन्या को ही (अधिस्कन्) पूत्रवत् प्राप्त करता है वैसे ही (सु+आध्यः देवाः) उत्तम विचारशील पुरुष (ब्रह्म अजनयत्) वेद ज्ञान को प्रकट करते हैं। (वास्तोःपतिम्) गृहस्थ पुरुष घर के स्वामी तथा (व्रतपाम्) सब कार्यों के रक्षक उत्तराधिकारी पुत्र को (निरअतक्षन्) प्राप्त करते हैं।

इसी प्रकार अन्यत्र भी वेदमन्त्रों में वर्णन मिलते है- जैसे–**तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः॥ निरूक्त ४। २१॥** यहाँ पिता मेघ है वह अपनी दुहिता पृथिवी में वृष्टि द्वारा गर्भ धारण करता है।

इसी प्रकार से कतिपय आक्षेप लेखक ने वेदों पर अन्य भी किये हैं। उनका समाधान इसी से समझना चाहिए। वेदों में वेश्यावृत्ति का तो कहीं भी वर्णन नहीं हैं। यह लेखक की अपनी ही भ्रान्ति है कि जो उसने मन्त्र के रहस्य को न समझकर मिथ्या आक्षेप लगाये हैं।

–राजवीर शास्त्री

(१) इसी प्रकार पिता के समान पर्जन्य=मेघ है, उसकी पृथिवी दुहिता (कन्या) है। क्योंकि पृथिवी की उत्पत्ति से हुई है। जब मेघ पृथिवी रूप कन्या में वृष्टि द्वारा जल रूप वीर्य को धारण करता है, तब उससे गर्भ रहकर औषध्यादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता का चक्रव्यूह

डा. रामकृष्ण आर्य, सत्यार्थ रत्न, सिद्धान्त शास्त्री, विद्या वाचस्पति मेडिकल अफसर, अति. प्रा. स्वा. केन्द्र कारोबनकार, जौनपुर

श्रीमदभागवत्गीता एक भ्रामक पुस्तक है क्योंकि उसमें कहीं कुछ है और कहीं कुछ। महर्षि दयानन्द भी गीता को भ्रामक मानते थे। बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है– "महर्षि दयानन्द गीता को त्रिदोष का सन्निपात बतलाते थे।"

(महर्षि दयानन्द चरित्र भाग २ पृ. २०३)

गीता एक चक्रव्यूह है जिसके आगे बड़े-बड़े महारथी विद्वान् भी घुटने टेक देते हैं। पर जो व्यूह भेदन की कला (महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित पंच परीक्षा) जानता है उसके आगे सभी व्यूह धराशायी हो जाते हैं। शोक है कि विद्वान श्री भगवान देव चैतन्य एम.ए. साहित्यालंकार भी गीता के चक्कर में फँस गये हैं। आपने लिखा है–

(१) गीता में उन्होंने (कृष्ण ने) परमात्मा को अजन्मा कहा है।

(२) जहाँ तक 'यदा यदा हि धर्मस्य....' श्लोक का प्रश्न है यह श्री कृष्ण जी ने कहा है।... इससे कहीं भी यह भाव प्रकट नहीं होता कि वे ईश्वर के अवतार थे।

(३) गीता के कई स्थानों पर उनका स्वयं को ईश्वर अर्थात मैं शब्द कहने की बात है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि वे अर्जुन को कहते हैं कि तू इधर-उधर की मत सोच बस मेरी बात मान। दूसरे कृष्ण जी स्वयं परम योगी थे। उन्होंने समाधिस्थ होकर अर्जुन को उपदेश दिया।

(४) वे (कृष्ण) अर्जुन को युद्ध करने के लिए तैयार करना चाहते थे। कृष्ण और अर्जुन बनना होगा (दयानन्द संदेश सितम्बर ९२)

समीक्षा– मैं उपर्युक्त ४ शंकाओं की समीक्षा और गीता की अन्तपरीक्षा (Post Mortem) करता हूँ–

(१) गीता में कृष्ण ने परमात्मा को अजन्मा नहीं कहा है बल्कि स्वयं को ही अजन्मा, अविनाशी और परमात्मा कहा है प्रमाण–

अजोऽपि सन् अव्ययात्मा भूतानां ईश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय, संभवामि आत्ममायया॥ गीता ४/६

इतना ही नहीं जो लोग कृष्ण को परमात्मा नहीं मानते और उनकों नहीं भजते कृष्ण उन्हें गालियां भी देते हैं। यथा–

न मां दुष्कृतिनोमूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः॥
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ गीता ७/१५
अवजानन्ति मां मूढ़ाः मानुषी तनुमाश्रिताः।
परं भावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम् ॥ गीता ८/११

वास्तव में ये सब बातें गीताकार की है जिसे हम आगे स्पष्ट करेंगे। देखिए कृष्ण ईश्वर नहीं थे अपितु ईश्वर के भक्त थे और संध्या करते थे–

अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथमोचमादिश्य संध्यामुपविवेश ह ॥ महाभारत॥

(२) आपने भी कृष्ण को परमात्मा का भक्त लिखा है अपने इसी लेख में गीता का एक भी श्लोक श्रीकृष्ण जी ने नहीं कहा है। गीता तो गीताकार की मन घड़न्त रचना है। यह इसी लेख में आगे सिद्ध हो जायेगा। वास्तव में "यदा यदा हि..." श्लोक से यही भाव प्रकट होता है कि कृष्ण ईश्वर के अवतार थे। क्योंकि महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि "जहाँ जिसका प्रकरण है वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है।" (स. प्र. समु. १) अतः यदा... श्लोक का यथार्थ (प्रकरण के अनुसार अर्थ जानने के लिए इसके पूर्व का श्लोक भी देखिए–

अजोऽपि सन् अव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिंष्ठाय संभवामि आत्म मायया॥
यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
गीता ४। ६, ७॥

अर्थ– मैं अजन्मा, अविनाशी तथा सभी प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योग माया से प्रकट होता है (अवतार लेता हूँ) हे अर्जुन! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ अर्थात् अवतार लेता हूँ।

महर्षि दयानन्द ने भी 'यदा' श्लोक को अवतार मूलक माना है और उसका खंडन करते हुए लिखा है- "यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं।" (स. प्र. समु. ७)

शंका– महर्षि दयानन्द ने गीता को प्रामाणिक माना है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल अर्थ का खंडन किया है। उन्होंने दूसरा अर्थ किया है– "श्री कृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग युग में जन्म लेकर श्रेष्ठों की रक्षा तथा दुष्टों का नाश करूँ।" (स. प्र. समु. ७)

समाधान-स्वामी दयानन्द ने गीता को प्रामाणिक कहीं नहीं माना है इसको आगे स्पष्ट करेंगे। उन्होंने कहाँ लिखा है कि इसका (यदा...) का यह अर्थ नहीं है? उनकी समीक्षा में कहीं ऐसा भाव नहीं है। बल्कि उन्होंने तो स्पष्ट लिखा है कि **'यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं है।'** इसका तात्पर्य है कि वे यदा... को अवतारवाद का जनक मानते थे। महर्षि ने दूसरा अर्थ नहीं किया है बल्कि कृष्ण को धर्मात्मा सिद्ध किया है।

यदि ऋषि दयानन्द श्लोक को प्रामाणिक माने होते और केवल अर्थ का ही खंडन किये होते तो ऐसा कदापि न लिखते– 'यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं।' बल्कि लिखते– इसका यह अर्थ नहीं है किन्तु यह है........अथवा यों कहते– इस श्लोक से अवतारवाद सिद्ध नहीं होता।

प्रमाण–(प्रश्न) **सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात ॥१॥**

अर्थात् जीव अपने स्वरूप को प्राप्त होकर प्रकट होता है जो कि ब्रह्म स्वरूप था क्योंकि स्व शब्द से अपने ब्रह्म स्वरूप का ग्रहण होता है (उत्तर) इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार का नहीं है किन्तु इनका यथार्थ यह है। सुनिये....। (प्रश्न) **नमस्ते रूद्र मन्यवे। वैष्णवमसि।**.....इत्यादि वेद प्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते है। (उत्तर) इन वचनों से शैवादि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं होते। (स. प्र. समु. ११)

(३) आपने अपने लेख में स्वीकार किया है कि कृष्ण परमात्मा के भक्त थे इसका तात्पर्य है कि कृष्ण मनुष्य थे, ईश्वर नहीं। चूँकि कृष्ण ईश्वर नहीं थे अतः कृष्ण का अपने को ईश्वर कहना सत्य का गला घोटना है। क्योंकि जो जैसा है उसको वैसा ही समझना सत्य कहाता है। क्या ईश्वर और मैं शब्द में कोई अन्तर नहीं है? श्रीमान जी ईश्वर और मैं शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। इनमें जमीन आसमान का अन्तर है। अपने को ईश्वर कोई नहीं कहता परन्तु मैं सभी कहते हैं। क्या आप अपने को मैं नहीं कहते? मैं पूछता हूँ यदि कृष्ण अपने को ईश्वर कहते और मानते तो संध्या (ईश्वरोपासना) क्यों करते?

कृष्ण ने अर्जुन को अपनी बात मनवाने के लिए अपने को ईश्वर कहा' आपका यह कथन अत्यन्त हास्यास्पद है। यदि सत्य है तो क्या आप भी बात मनवाने के लिए अपने को भगवान लिखते हैं? शायद आप अपने लेख में भूल गये अन्यथा मुझे कलम उठाने की आवश्यकता न पड़ती। मैं पूछता हूँ कि महर्षि दयानन्द ने अपनी बात मनवाने के लिए अपने को ईश्वर क्यों नहीं कहा? अरे सभी लोग स्वामी जी की बात को मान लेते और कोई न तो उनका विरोध करता और न ही जहर देता। क्या अपने को ईश्वर कहने से सभी लोग बातें मान जाते हैं? यदि यह सत्य है तो आजकल बहुत से लोग अपने को ईश्वर (अवतार) बताते हैं परन्तु उनकी बातों को सब लोग नहीं मानते हैं। और ऐसे लोगों को हम तो धूर्त समझते हैं। क्या आप ऐसे धूर्तों की बातों को सत्य मानते हैं?

यदि योगी होने के कारण कृष्ण ने अपने को ईश्वर कहा है तो मैं पूछता हूँ क्या योगी और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं होता। क्या योगी परमात्मा हो जाता है? देखिये आत्मा परमात्मा कदापि नहीं हो सकता और न कृष्ण ने अपने को कभी परमात्मा कहा। कृष्ण तो ईश्वर के परम भक्त थे। आपने स्वीकार किया हीं है। श्रीमान् जी! महर्षि दयानन्द भी योगी थे परन्तु उन्होंने अपने को ईश्वर कभी नहीं कहा।

'कृष्ण ने समाधिस्थ होकर उपदेश दिया।' आपकी यह बात विचारणीय है। देखो योग के ८ अंग हैं:–

यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यान समाधयोऽष्टांगानि (पो. द.२।२९)

अर्थात् समाधि योग का ८ वां अंग है और ७ वां अंग ध्यान है। ध्यान को समाधि की पूर्वावस्था कह सकते हैं। ध्यान क्या है?

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। (यो. द. ३।२)

इस सूत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है–"उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना इसी का नाम ध्यान है।" ऋ.भू. उपासना अर्थात ध्यान की अवस्था में केवल ईश्वर का ही ध्यान रहता है अन्य विषयों का नहीं इसीलिए कहा है–'ध्यानं निर्विषयं मनः" (सा.द. ६।२५) ध्यान की अवस्था में मन बाह्य विषयों से दूर हट जाता है उस समय इन्द्रियों अपना अपना कार्य देखना, सुनना, बोलना आदि बन्द कर देती हैं। अतः ध्यान की अवस्था में उपदेश (मुख से बोलना) असम्भव हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधि क्या है? 'तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः' (यो.द.३।३) इस सूत्र की व्याख्या करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा है- जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि रूप हो जाता है उसी प्रकार परमेश्वर के ध्यान में प्रकाशमय होकर अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश रूप आनन्द और ज्ञान में परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं। (ऋ.भू. उपासना) अर्थात् मनुष्य समाधि में शरीर को भी भूल जाता है। उस समय उपदेश क्या देगा? अतः समाधिस्थ होकर उपदेश देने की बात कहना गधे के सिर पर सींग जमाना है। श्रीकृष्ण ने समाधि की अवस्था में भी कोई उपदेश नहीं दिया। समाधिस्थ होकर कोई भी उपदेश नहीं दे सकता। महर्षि दयानन्द भी समाधि लगाते थे पर उन्होंने कभी भी समाधि अवस्था में उपदेश नहीं किया।

(४) गीता कपोल कल्पना है महाभारत का अंश नहीं है। युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध है कि न तो अर्जुन को मोह हुआ था और न ही कृष्ण ने उसे गीता का उपदेश दिया। प्रमाण–

(क) लाक्षाग्रह से बच निकलने पर कौरवों की पांडवों को भस्म करने की योजना ने अर्जुन को कौरवों के प्रति घोर द्वेष से भर दिया था। जुए में छल से राज्य छीन लेने और सभा में द्रोपदी का अपमान देखकर उसने कौरवों को प्राणदंड देने की शपथ ली थी। और युद्ध करने के लिए उसकी भुजायें फड़क रही थीं। अतः स्वाभाविक है कि–माता कुन्ती के जोशीले संदेश ने अर्जुन द्वारा कौरवों के विनाश के संकल्प को और दृढ़ कर दिया होगा। कौरवों द्वारा युद्ध की चुनौती ने अर्जुन के संकल्प में घी का काम किया होगा। और युद्ध भूमि में अपने दुश्मनों कौरवों को सामने देखकर उसका खून खौलने लगा होगा तथा उसकी भीषण क्रोधाग्नि का ठिकाना न रहा होगा। जिससे वह कौरवों पर भूखे शेर की तरह टूट पड़ा होगा न कि अर्जुन को मोह हुआ होगा और कृष्ण को समझाने की आवश्यकता पड़ी होगी जैसा कि गीता कहती है। अर्जुन मोह की बात कहना असत्य एवं अर्जुन के वीरत्व पर कलंक लगाना है।

(ख) अर्जुन दृढ़ प्रतिज्ञ था उसने एक बार प्रतिज्ञा पालन करने के लिए युधिष्ठिर पर ही शस्त्र उठा लिया था। (महाभारत कर्ण पर्व) मैं कहता हूँ कि जिसे अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर पर भी शस्त्र उठाने में जरा भी हिचक नहीं हुई उसे पापी कौरवों को युद्ध भूमि में सामने खड़े देखकर मोह कदापि नहीं हो सकता।

(ग) क्या अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा भूल गया था? यदि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा भूल गया था तो कृष्ण ने उसे प्रतिज्ञा की याद क्यों नहीं दिखलाई? वास्तव में अर्जुन को मोह ही नहीं हुआ था। इसलिए याद दिलाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। और यदि अर्जुन को मोह हुआ होता तो कृष्ण ने उसे प्रतिज्ञा अवश्य याद दिलाते। जैसा कि हम देखते हैं अर्जुन का भीष्म के साथ नरमी से युद्ध करने पर कृष्ण उसे प्रतिज्ञा की याद दिलाते हुए कहा था-"जिसकी तुम दीर्घकाल से प्रतीक्षा करते थे वही सुअवसर आया है। वीर, पहले तुमने राजाओं की सभा में यह प्रतिज्ञा की थी जो मेरे सामने युद्ध क्षेत्र में लड़ेंगे दुर्योधन के उन भीष्म, द्रोणादि सहित सभी सैनिकों को मार डालूंगा। अर्जुन अपनी उस प्रतिज्ञा को सत्य कर दिखाओ।" (महा. भी. प.)

(घ) यदि अर्जुन को मोह हुआ था तो कृष्ण ने उसे उसकी प्रतिज्ञा की याद क्यों नहीं दिलाई? यदि कृष्ण को भी उसकी प्रतिज्ञा याद नहीं रही तो कृष्ण माता कुन्ती के जोशीले संदेश ही सुनाते। और यदि संदेश भूल गये थे तो कौरवों को चुनौती की बात ही बताते। क्या कृष्ण इतने भुलक्कड़ थे कि ये सभी बातें भूल गये थे? यदि नहीं तो वे उन बातों को क्यों नहीं स्मरण कराते? इधर उधर की बेसिर-पैर की ऊट-पटांग बातें (जिनका अर्जुन मोह से दूर का भी सबंध नहीं) क्यों बताते हैं?

(ङ॰) वास्तव में मोह अर्जुन को नहीं हुआ था। मोह युधिष्ठिर को हुआ था जिसे स्वयं अर्जुन ने ही दूर किया था। देखिए, युद्ध को न टलते देखकर युधिष्ठिर ने कहा- "जिससे बचने के लिए मैंने वनवास का कष्ट स्वीकार किया वही अनर्थ हम लोगों पर आ रहा है।" (महा.उ.प. १५४।२०) इस पर अर्जुन ने युधिष्ठिर को माता कुन्ती एवं महात्मा विदुर के वचनों की याद दिलाकर उन्हें युद्ध के लिए तैयार किया। चूंकि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। इसलिए यदि अर्जुन को मोह हुआ होता तो भले ही कृष्ण उसे नहीं समझाये युधिष्ठिर अवश्य समझाते और कहते 'भाई अभी तो तुमने मुझे समझाया था (मेरे मोह होने पर) अब तुझे भी मोह हो गया। मोह छोड़ो और युद्ध करो।'

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रैल ९३ से आगे

तुलसीकृत रामायण–समीक्षा

राम ने सुग्रीव को क्यों नहीं मारा?

प्रसिद्ध है कि बाली ने सुग्रीव की पत्नी को छीन कर अपनी पत्नी बना लिया और सुग्रीव को अपने राज्य की सीमा से बाहर निकाल दिया। जब राम की सुग्रीव से मित्रता हो गई और बाली द्वारा सुग्रीव के साथ में हुए अन्याय को सुना तो उस अपराध में राम ने बाली का वध कर दिया।

प्रश्नः- यहाँ कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं कि राम ने बाली को यदि इसलिये मार दिया कि उसने छोटे भाई की स्त्री को अपने घर में डाल लिया जो कि पाप कर्म था, तो बाली के मरने के बाद सुग्रीव ने भी बाली की पत्नी को अपनी पत्नी बना लिया था और राम को इस बात का पता अवश्य था फिर इस अपराध में राम ने सुग्रीव को क्यों नहीं मारा?

उत्तरः- तुलसी दास जी ने बाली के पूछने पर राम द्वारा का यह उत्तर दिलवाया है–

अनुज वधू भगिनी सुत नारी।
सुन शठ ये कन्या समचारी।।
इनहिं कुदृष्टि विलोकत जोई।
ताहि वधे कुछ पाप न होई।

राम बाली से कहते हैं–हे धूर्त छोटे भाई की स्त्री, बहन, पुत्र की स्त्री ये कन्या के समान होती हैं। जो व्यक्ति इन्हें कुदृष्टि से देखता है उसके मारने में कोई पाप नहीं है। अर्थात राम के कथन का अभिप्राय यह है कि पर स्त्री वा पर धन हरण कर्त्ता आततायी होता है उसे मार देने का विधान शास्त्र सम्मत है* इस की चौपाई में लिखी है तीन नारी और गिनाई गई है चार।

प्रश्नः-जब छोटे भाई की स्त्री कन्या समान है तो बड़े भाई की स्त्री माता के समान पूज्या होती है उसको पत्नी बना लेना किस शास्त्र की आज्ञा है? ऐसी दशा में एक ही अपराध पर सुग्रीव राम की दृष्टि में दोषी क्यों नहीं था?

दूसरा उदाहरण विभीषण का है कि रावण के मरने के बाद मन्दोदरी को उसने अपनी पत्नी बना कर रखा। सुग्रीव और विभीषण का एक ही पाप था। फिर भी राम ने इन दोनों को दण्ड नहीं दिया। अपितु राम पुष्पक विमान में दोनों को बैठाकर अयोध्या लाये। फिर भरत के साथ सम्मानपूर्वक भेंट करवाई और भरे दरबार में राम ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। क्या यह राम का अन्याय नहीं था?

मनसा राम वैदिक तोप, पुस्तक में इसका उत्तर यों दिया है–

श्री राम पर आये हुए अन्याय दोष को हम ठीक नहीं मानते। क्योंकि वे एक मर्यादा पुरुषोत्तम न्यायकारी राजा थे। वस्तुतः तुलसीदास गुसाई जी ने बात को ठीक से समझा नहीं। बात सच यह थी कि जो पाप बाली ने किया वह सुग्रीव और विभीषण ने नहीं किया। बाली ने सुग्रीव के जीते जी उसकी स्त्री रूपा को बलात्कार से अपने घर में डाल लिया, जो कि राम की दृष्टि में पाप था। अतः राम ने बाली को शिकारियों की भाँति मारा। इसके विपरीत सुग्रीव ने बाली के मरने के पीछे उसकी स्त्री तारा को उसी की इच्छानुसार अपनी रानी बनाया था। इसी प्रकार विभीषण ने भी मन्दोदरी की इच्छा से उसे रानी बनाया था? चूंकि राम समझते थे कि पति के मरने के बाद स्त्री की इच्छा से पति बनाया जाय तो इसमें कोई दोष नहीं है। अतः राम ने उन दोनों को न केवल दण्ड नहीं दिया अपितु उनकी उत्साह वृद्धि की। इससे सिद्ध है कि उस समय पति के मर जाने पर स्त्रियों को दूसरा पति बनाने का अधिकार प्राप्त था। आगे उक्त पुस्तक में लिखा है- "तुलसीदास जी कहते हैं कि राम भक्तों की गलती की ओर ध्यान नहीं देते, अपितु उनके हृदयों को सौ बार टटोल लेते हैं कि वे मेरी ओर हैं।"

समीक्षा- राम को इस प्रसंग में निर्दोष सिद्ध करने के लिये जो इतने हाथ पैर मारे गये हैं वे प्रमाण अपर्याप्त हैं। आधुनिक निष्पक्ष विचारक इस समाधान से सन्तुष्ट नहीं है। वे इस घटना के प्रकाश से श्रीराम या तुलसीदास जी के पक्षधरों से और भी प्रश्न करते है वे पूछते है कि जैसे सुग्रीव से मित्रता करने से पूर्व राम ने उसकी सारी दुख की कहानी सुनी थी, वैसे ही उन्हें बाली को भी बुला कर सारी बातें सुननी चाहिये थी कि सुग्रीव किस अपराध पर राज्य से बाहर निकाला गया। लेकिन राम ने ऐसा नहीं विचारा और सुग्रीव की एक पक्षीय वार्ता पर विश्वास करके बाली का वध कर दिया।

*मनुस्मृति में छः प्रकार के आततायियों को मार डालने का आदेश है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही बात स्त्रियों की–कि तारा और मन्दोदरी दोनों ने स्वेच्छा से सुग्रीव और विभीषण को अपना पति बना लिया था, सो वे दोनों निर्दोष थे। यह हेतु देना भी विश्वास योग्य नहीं। क्योंकि प्रथम तो रामायण में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उन दोनों की इच्छा सुग्रीव और विभीषण को पति बनाने की थी। यदि ऐसा होता तो दोनों ही अपने पति के मरने पर इतना भारी विलाप न करतीं। अपितु मन्दोदरी ने तो रावण को यह सीख दी थी कि सीता की बिना इच्छा के उसे पत्नी बनाने के लिये विवश न करें। ऐसा विचार रखने वाली मन्दोदरी स्वेच्छा से विभीषण को पति क्यों स्वीकार करती। हाँ, यह हो सकता है कि विभीषण और सुग्रीव जब राजा बन गये तो वे दोनों आखिर कहां जातीं। इच्छा न होते हुए भी तारा और मन्दोदरी को उन्हें पति बनाने पर बाध्य होना पड़ा। अन्यथा उन्हें सुविधापूर्वक जीना दुष्कार हो जाता।

अच्छा, तो फिर राम ने बाली को बुलाकर कुछ कारण न पूछा। बिना विचारे ही क्यों उसे मार डाला? यह एक ऐसा प्रश्न है कि इसका समाधान निष्पक्ष और सत्य के आधार पर होना चाहिये। हमने 'रामायण परिचय' में इस पर थोड़ा प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यहाँ श्री राम की राजनीति काम कर रही थी। जब किसी को अपने शत्रु का विनाश करना होता है तो वह अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए ऐसे मित्रों से सांठ-गांठ करता है जो उसके पूर्णतया सहायक हो सकें। चूंकि सीताहरण से राम अत्यन्त दुःखी थे। उधर सुग्रीव भी अपनी पत्नी व राज्य के हरण से दुःखी था। दोनों एक ही रोग से दुःखी थे। इस कारण **"समैः सख्यं व्यवहारं कथां च"** मित्रता व बातचीत व्यवहार सब समान विचार वालों के साथ होते हैं। इसके अनुसार राम-सुग्रीव की मित्रता होनी स्वाभाविक थी। दोनों ही परस्पर सहायता करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो गये। अब मित्रता होने पर उसे हर प्रकार निभाना भी अनिवार्य है। राम का मुख्य उद्देश्य था कि सुग्रीव सीता की खोज कराये कि वह कहाँ पर वर्तमान है। लेकिन यह काम तभी हो सकता था जब राम सुग्रीव का राज्य और उसकी पत्नी को बाली से वापिस दिला दें। परन्तु बाली इन्हें देने को कब तैयार हो सकता था? यदि राम उसका विरोध भी करते तो वह सुग्रीव से युद्ध न करके सीधा राम से युद्ध करता। बाली की इतनी विशाल सेना के सामने राम-लक्ष्मण-सुग्रीव कैसे सफल होते। इसलिये अपने प्रयोजन सिद्धि के लिए राम ने बाली को मार देना ही उचित समझा।

प्रश्न–क्यों जी! यदि राम ने इसीलिये सुग्रीव से मित्रता गांठी कि यह मेरी सीता का पता लगायेगा तो उन्हें सीधे बाली से मित्रता करनी चाहिए थी। क्योंकि, प्रथम तो वह स्वयं ही भारी बलवान् योद्धा था। दूसरे उसके पास अपरिमित सैन्य बल भी था। तब सीता का न केवल वह पता लगा देता, अपितु सीता को रावण से छुड़ा कर राम के सामने खड़ा कर देता।

उत्तर–ऐसा होना सर्वथा असम्भव तथा अपने बने काम को भी बिगाड़ देना था। राम बड़े दूरदर्शी थे। उन्हें सुग्रीव द्वारा यह पता लग चुका था कि बाली और रावण परस्पर मित्र हो चुके हैं और एक-दूसरे के संकट काल में सहायता करने के लिए वचनबद्ध हैं। ऐसी दशा में राम ने विचारा कि यदि मैं रावण के मित्र बाली से विरोध करता हूँ तो यह रावण को तुरन्त सहायता के लिए बुला लेगा। दोनों की सेना के सामने हमारा सीता खोज का उद्देश्य सफल नहीं हो सकेगा और यदि मैं सीधा बाली का ही पहले सफाया कर देता हूँ तो सारा राज्य सेना सहित सुग्रीव का हो जायेगा। अर्थात् सीता की प्राप्ति एवं रावण वध में बाली पूर्णतया बाधक था। फिर भला वे अपने शत्रु रावण के मित्र को अपना मित्र कैसे बनाते। इस कारण भी राम ने बाली का वध कर देना उचित समझा। ऐसी स्थिति में बाली को बुलाकर राम क्यों अपने काम को बिगाड़ते कि तूने सुग्रीव को राज्य से क्यों निकाल दिया। वस्तुतः सुग्रीव से मित्रता करने का श्रीराम का मूल उद्देश्य यही था और वे सारी स्थिति को समझ कर चुपचाप सावधानी से सीता की प्राप्ति और रावण को दंड देने की तैयारी कर रहे थे। तब बाली वध का यह कारण बताना कि उसने भाई की स्त्री को घर में डाल लिया था, केवल निमित्त मात्र था। अन्यथा इस दोष से तो सुग्रीव भी वंचित न था। बाली वध एवं सुग्रीव के सहायक बनने के उक्त कारण से अनेक विचारक सहमत हैं। क्योंकि, इसमें धार्मिक कारण कम और राजनैतिक अधिक था।

तुलसीदास जी की दृष्टि में बाली वध में श्रीराम ने सुग्रीव के किसी भी दोष पर ध्यान नहीं दिया, अपितु इस बात पर अधिक ध्यान दिया कि सुग्रीव मेरे पक्ष में है और मेरा परम सहायक मित्र है। दूसरा यह विचार भी मानना पड़ेगा कि यदि रावण-बाली की मित्रता न होती तो राम सीधे बाली से मित्रता करके अपना प्रयोजन सिद्ध करते, सुग्रीव से फिर मित्रता करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। क्योंकि, वह स्वयं असहाय था। फिर राम की क्या सहायता करता? राम को तो सहायता की आवश्यकता थी, वह सहायता कहीं से भी मिले। फिर बाली से मित्रता होने पर

अनुज वधू भगिनी सुत नारी

इत्यदि तुलसीदास जी चौपाई ही न बनाते। जो कि आज बाली वध में कारण बताई जाती है।

कविराज छाजूराम शर्मा शास्त्री, विद्यावाचस्पति,
१३८, डी.डी.ए. फ्लैट, बदरपुर, नई दिल्ली

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्द सन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आप से भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचायें इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं-

८१. श्री आर. डी. भल्ला, सहायक जिला अधिकारी (शिक्षा), शिमला (हि. प्र.) १७१ ००१
८२. श्री उदय भानु आर्य, बी कल्याणी जि. बीदर (कर्नाटक) ५८५३२७
८३. श्री डॉ. सेवाराम जी त्यागी, २, विक्रमादित्य मार्ग, (बन्दरिया बाग), लखनऊ (उ. प्र.)
८४. श्री हरिकृष्ण गुप्त, १२५, मुखर्जी मार्ग, ब्यावरा, राजगढ़, (म. प्र.)
८५. श्री मंत्री जी आर्य समाज नया बांस, दिल्ली-६
८६. श्री ताराचन्द लक्ष्मणदास जनरल मर्चेंट, बांरा जिला-बांरा (राज.)
८७. श्रीमती कान्ता बत्रा, ए-२/२७, जनकपुरी, नई दिल्ली-५८
८८. श्री शूरवीर सेठ, २५३-आर, मॉडल टाऊन, यमुनानगर, अम्बाला (हर.)
८९. श्री बसंत कुमार राठौर, स्थान नालन्दा सोसाइटी, कालवाउ रोड, राजकोट
९०. श्री गुलाबचन्द बंसल, १९, सिविक सैंटर, इन्दिरा पैलेस, भिलाई नगर, (म. प्र.)
९१. श्री जगदीश चन्द, सुरेन्द्र कुमार, मेन मार्किट, छीपा, बड़ौत, जि. कोटा (राज.)
९२. श्री नेवन्दराज, महेश किराना स्टोर, गुमानपुर, कोटा (राज.)
९३. श्री लक्ष्मणदास आर्य, ५ भाई साबुन कालोनी, बल्लभगढ़, फरीदाबाद
९४. श्री वैदिक कोष वाचनालय, आर्य समाज मंदिर, परली बैजनाथ, जि. बीड़ (महा.)
९५. श्री ज्येष्ट वर्मा, एम.एस. १९/६६०, चैंबूर कोलोनी, बम्बई (महा.)
९६. श्री जनकलाल जी गुप्त द्वारा भारत आर्ट स्टूडियो, खिदिरपुर, कलकत्ता-२३ (प. बं.)
९७. श्री मोहन चरन साहू, सहायक फोरमैन, गाँव-रंभल, जिला-संबलपुर
९८. श्री ब्रह्मदेव जी आर्य, सुपुत्र श्री भरतसिंह जी शास्त्री, शास्त्री निवास, आ.स. मार्ग, लोहारु, जि. भिवानी
९९. श्री लाल बहादुर शास्त्री महिला कॉलेज, बरनाला (पंजाब)
१००. श्री महर्षि दयानन्द धर्मार्थ प्रतिष्ठान द्वारा गंगाराम वानप्रस्थी, ५-३-३८७ तोपखाना मार्ग, हैदराबाद (आ. प्र.)

—धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/93
जुलाई १९९३
बिना टिकट भेजने का लाइसन्स नं.
आर. आर. नं. २५५८७/७३
यू. (डी.एन.) १४४
Post in Delhi PSO Indraprastha
on 5–6/07/93
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

विशुद्ध-मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोकरहित हिन्दी भाष्य, प्रक्षिप्त श्लोकों की सप्रमाण एवं अन्तःसाक्षी पूर्वक समीक्षा सहित और विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

१. वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवं अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी।
२. प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित एवं विशेष स्थलों पर समीक्षा सहित।
३. अवैदिक एवं असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों तथा मनु की मौलिक मान्यताओं से युक्त।
४. महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यात श्लोकार्थों से अलंकृत।
५. अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति' की भाँति।

विशेष जानकारी के लिए सूचीपत्र मंगायें

श्री सेवा में
ग्राम.
डा.
जिला.

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली–११० ००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☆ ओ३म् ☆

दयानन्द सन्देश

आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अगस्त, १९९३

वर्ष २१ : अंक १०

दयानन्दाब्द : १६९

विक्रम संवत् : भाद्रपद, २०५०

सृष्टि संवत् : १,९६,०८,५३,०९४

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य

सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य

व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय

"दयानन्द सन्देश" (मासिक)

४५५, खारी बावली, दिल्ली-११० ००६

दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु०

वार्षिक शुल्क २५)

आजीवन सदस्यता २५०)

विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

- आया पर्व महान् २
- वेदोपदेश ३
- 'आर्यराष्ट्र' पत्रिका महर्षि दयानन्द के प्रति विद्रोह ५
- नीति निपुण योगेश्वर श्री कृष्ण ७
- क्या भौतिक विज्ञान भी आत्मा और ईश्वर की सत्ता को मानेगा ? १४
- साहित्य समीक्षा १६
- वेद मन्त्रों के प्रारम्भ में ऋषिनामों को १७
- एक नवीन वेदान्ती से शास्त्र चर्चा १९
- पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ २१
- शुभ सूचना २१
- गीता का चक्रव्यूह २२
- आया हूँ शरण तिहारी मैं २३
- तुलसीकृत रामायण-समीक्षा २४

'सत्यार्थ प्रकाश' अजिल्द एक हजार रुपये, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ रुपये और सजिल्द बारह सौ रुपये, सैकड़ा में प्राप्त करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया पर्व महान्

स्व॰ डा॰ नारायण मुनिश्चतुर्वेदः : गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर,

ले अध्यात्म-सुधा का प्याला, देने जीवनदान ।। आया पर्व महान् ॥

पुण्य-आर्य-आदर्श-भावना के गौरव का चित्र ।
वैदिक धर्म ध्वजाऽऽराधन के पावन मन का मित्र ॥
ब्रह्मव्रती मानव कथा का अविरत स्रोत विचित्र ।
चातुर्वर्ण्य मानसोन्नति के उद्देश्यों का प्राण ।। आया पर्व महान् ॥ १ ॥

कृषक जनों की आशालतिका का जो ललित वितान ।
प्रकृति नटी की शोभावलि का, जो अनुपम आह्वानऽ॥
वर्षा ऋतु की अनुकम्पा का, प्रेम पूर्ण सम्मान ।
सकल जनों को हर्षित होकर करने हर्ष प्रदान ।। आया पर्व महान् ॥ २ ॥

भारतीय सर्वोच्च सभ्यता, वैभव का आधार ।
मानव जीवन की नौका का, सुन्दरतम पतवार ॥
मातृभूमि रक्षा बन्धन का , मङ्गलमय उपचार ।
राष्ट्र जागरण की नववेला का प्रातः काल महान् ।। आया पर्व महान् ॥ ३ ॥

ले अध्यात्म-सुधा का प्याला देने जीवनदान ।। आया पर्व महान् ॥

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य-विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम-धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश -

ज्योति रूप आँखों वाला सूर्य पृथ्वी से बारह कोस तक अर्थात् मेघों से ऊपर तक सात प्रकार के जलों तथा दिशाओं का विभाग करता है और वृष्टि करके सब प्राणियों को सुख देता है ॥

(आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपः ऋषिः । सविता (सूर्यः) देवता । भुरिक् पंक्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ सूर्यः किं करोतीत्याह ॥
अब सूर्य क्या करता है, यह उपदेश किया जाता है ॥

ओ३म्- अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देवऽआगाद् दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥

(यजु. 34/२४)

पदार्थः-(अष्टौ) (वि+अख्यत्) विख्यापयति (ककुभः) सर्वाः दिशः । ककुभ् इति दिङ्नाम ॥ निघं॰ 1/६॥ (पृथिव्याः) भूमेः सम्बन्धिनीः (त्री) त्रीणि (धन्व) धन्वेत्यन्तरिक्षनाम ॥ निघं॰ 1/3 ॥ (योजनानि) (सप्तसिन्धून्) भौमसमुद्रमारभ्य मेघादूर्ध्वावयवपर्यन्तान् (हिरण्याक्षः) हिरण्यानि ज्योतींषि अक्षिणीव यस्य सः (सविता) सूर्यः (देवः) द्योतकः (आ+अगात्) आगच्छति (दधत्) दधाः सन् रमणीयानि पृथिवीस्थानि (दाशुषे) दानशीलाय जीवाय (वार्याणि) वर्तुं= स्वीकर्त्तुं योग्यानि॥

सपदार्थान्वयः:- हे मनुष्याः ! यथा (हिरण्याक्षः) हिरण्यानि=ज्योतींषि । अक्षिणीव यस्य सः (देवः) द्योतकः (सविता) सूर्यः (दाशुषे) दानशीलाय जीवाय (वार्याणि) वर्तुं स्वीकर्त्तुं योग्यानि (रत्ना) रमणीयानि पृथिवीस्थानि (दधत्) दधानः सन् (त्री) त्रीणि (धन्व) (योजना) योजनानि (सप्त) (सिन्धून्) भौमसमुद्रम् आरभ्य मेघादूर्ध्वावयवपर्यन्तान् सागरान् (पृथिव्याः) भूमेः सम्बन्धिनीः (अष्टौ) (ककुभः) सर्वाः दिशः (व्यख्यत्) विख्यापयति ।
(आगात्) आगच्छति च, तथैव यूयं भवत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ - हे मनुष्यो ! जैसे- (हिरण्याक्षः) जिसकी ज्योतिरूप किरणें आँखों की भाँति हैं, उस (देवः) प्रकाशक (सविता) सूर्य (दाशुषे) दानशील जीव के लिए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य (रत्ना) पृथिवीस्थ रमणीय रत्नों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्री) तीन (धन्व) अन्तरिक्षस्थ (योजना) योजन अर्थात् 12 कोस पर्यन्त (सप्त) सात (सिन्धून्) भूमि के समुद्र से लेकर मेघ के ऊपर के अवयवों तक सागरों और (पृथिव्याः) पृथिवी सम्बन्धी (अष्टौ) आठ (ककुभः) दिशाओं को (वि+अख्यत्) विख्यात करता है और (आ+अगात्) आता है, वैसे ही तुम भी बनो।

भावार्थः- हे मनुष्याः ! यथा सूर्येण पृथिवीमारभ्य द्वादशक्रोशपर्यन्तगुरुत्वलघुत्वयुतानां सप्तविधानाम् अपामवयवाः सर्वाः दिशश्च विभज्यन्ते, वर्षादिना सर्वेभ्यः सुखं दीयते, तथा शुभगुणकर्मस्वभावैर्दिगन्तां कीर्तिं सम्पाद्य विविधैश्वर्यदानेन मनुष्यादीन् प्राणिनः सततं सुखयतु।

भावार्थ - हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य पृथिवी से लेकर बारह कोस तक गुरुत्व तथा लघुत्व से युक्त सात प्रकार के जलों के अवयवों और सब दिशाओं को विभक्त करता है और वर्षा आदि के द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है वैसे शुभ, गुण, कर्म, स्वभाव से दिगन्त कीर्ति को प्राप्त करके विविध ऐश्वर्य के दान से सब मनुष्य आदि प्राणियों को निरन्तर सुख देता है वैसे ही तुम प्राणियों को सुखी किया करो ॥

(दयानन्द-यजुर्वेद भाष्य-भास्कर से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुर्दशनदेव**)

□□□

सूर्य विज्ञान

(क) जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती, वे सब अज्ञ हैं। क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते। सूर्य का नाम 'ब्रध्न' है वह पृथिवी से लाखों गुना बड़ा और करोड़ों कोस दूर है।

(ख) जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती ------ वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन-रात होता है, सूर्य के घूमने से नहीं। और जो सूर्य को स्थिर कहते हैं, वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं।

(ग) और जो जैनी कहते हैं कि पृथ्वी घूमती नहीं, किन्तु नीचे नीचे चली जाती है -- ---- वे तो गहरी भांग के नशे में निमग्न हैं।

(घ) यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है।

(ङ) (सूर्य) अपनी परिधि में घूमता रहता है, किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता।

(च) जो सविता-सूर्य वर्षादि का कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, सब लोकों को आकर्षण गुण से वर्तमान है। एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक है। अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।

(**"सत्यार्थप्रकाश"** से संकलित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आर्यराष्ट्र' पत्रिका महर्षि दयानन्द के प्रति विद्रोह

अपने आप को ऋषियों से भी बड़ा मानने वाले दम्भी क्तियों का क्या वर्णन करें । 'आर्यराष्ट्र' पत्रिका के प्रत्येक क में 'क्या ऋषि दयानन्द सर्वज्ञ थे' शीर्षक देकर एक लेख शित हो रहा है जो ऋषि भक्त जनता के लिए शूल तुल्य रहा है । उस लेख में महर्षि के ग्रन्थों के विषय में बूझकर भ्रम पैदा किया जा रहा है । ऋषि भक्त जनता समक्ष तरह तरह की समस्याएं पैदा की जा रही हैं जो कि त ही भ्रामक हैं । जैसे-

(1) स्वामी दयानन्द ने संस्कारविधि के सामान्य करण में समिदाधान के पश्चात् और जल प्रोक्षण से पूर्व च घृताहुतियाँ लिखी हैं और उनका निर्देश अनेक संस्कारों भी किया गया है । परन्तु 10 मई 93 के 'आर्यराष्ट्र' पत्र सम्पादक जी लिखते हैं-

(क) यहां समिदाधान और हवन आरम्भ के मध्य पांच हुतियों का विधान नहीं है ।और होना भी नहीं चाहिए क्यों जब तक जल प्रोक्षण न हो जाये तब तक हवन कैसे हो कता है ? (ख) इसीलिए उन्होंने संस्कारविधि के किसी संस्कार में पांच आहुतियाँ (अयन्त इध्म॰) की नहीं लिखी ।

समीक्षा- संस्कारविधि के सामान्यप्रकरण में इनका ष्ट विधान किया है, जिसे समस्त आर्य जगत् ऋषि दयानन्द पश्चात् से अब तक मानता और करता रहा है । संस्कारों बात, संस्कारों में प्रत्येक विधि का उल्लेख नहीं है । जहाँ हाँ आवश्यक हुआ, वहीं विधियों का नामोल्लेख किया या है। जैसे-

सीमन्तोन्नयन में 4-24 पृष्ठ तक विधि करके ।

नामकरण में 4-29 में लिखे प्रमाणे सामान्य प्रकरणस्थ म्पूर्ण विधि करके ।

अन्नप्राशन में 4-29 में कहे हुए सम्पूर्ण विधि को डाकर्म में 4-29 में लिखित विधि करके । इत्यादि सम्पूर्ण विधि करने में 24 पृ॰ पर लिखी पांच आहुतियों का समावेश हो जाता है । अतः सम्पादक झूठ लिखकर महापाप के भागीदार हो रहे हैं ।

9 नवम्बर के 'आर्यराष्ट्र' में लिखा है- संस्कार- विधि में 'अयन्त इध्म' मन्त्र प्रक्षिप्त है । प्रथम तो ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में आज तक कोई प्रक्षेप नहीं हुआ है, और अजमेर में ऋषि के सभी ग्रन्थों की प्रेस कापियाँ देखी जा सकती हैं । और इस दुष्प्रचार का क्या प्रभाव पड़ रहा है कि ऋषि के ग्रन्थों में प्रक्षेप हुआ है । इसका एक उदाहरण पढ़िए-

1 नवम्बर, कानपुर आर्यसमाज वेद मन्दिर गोविन्दनगर के प्रधान श्री ओमप्रकाश आर्य ने आर्य-सम्मेलन में घोषणा की कि आज की गोष्ठी से मैं इस परिणाम (निष्कर्ष) पर पहुंचता हूँ कि संस्कारविधि में 'अयन्त इध्म' प्रक्षिप्त है । मैं आज यज्ञ में अयन्त इध्म से पहली समिधा नहीं चढ़ाऊंगा । ...... क्योंकि ऋषि ने साफ लिखा है कि एक मन्त्र से एक एक समिधा को वेदी में चढ़ावे अयन्त इध्म प्रेस कापी में किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया । 'आर्यराष्ट्र' 9 नवम्बर, 92 ।

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाजों में 118 वर्षों से यज्ञों में इस मन्त्र से समिधा दी जाती है । महर्षि के समस्त ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ अजमेर में सुरक्षित रखी हुई हैं । वहां मूलपाठ को देखा जा सकता है । किन्तु प्रक्षेपक बताने वाला तो मूल में कुठाराघात करने की भावना से कह रहा है कि प्रेस कापी में ही प्रक्षेप हुआ है । यदि दुर्जनतोष न्याय से इस बात को स्वीकार कर भी लिया जाये कि यह मन्त्र ऋषि का लिखा नहीं है, तो संस्कारविधि में लिखे संस्कारों की पद्धति में इस मन्त्र का उल्लेख कहीं भी नहीं होना चाहिए । परन्तु ऐसा नहीं है । देखिए संस्कारविधि के कतिपय स्थल-

(क) जातकर्म संस्कार में देखिए-

आसन पर बैठ के पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे 'अयन्त इध्म' मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे।

(ख) विवाह संस्कार में-

पृष्ठ २३-२४ में लिखे (ओम् अयन्त इध्म॰) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान और

(ग) विवाह संस्कार के पश्चात् (उत्तर विधि में)

(ओम् अयन्त इध्म॰) इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे....।

इन स्थलों के अतिरिक्त समस्त संस्कारों में २२-२४ पृष्ठों के लिखे अग्न्याधान व समिदाधान का ही उल्लेख किया गया है। उपरोक्त उद्धरणों में जिस मन्त्र का उद्धरण देकर ऋषि ने बार-बार समिदाधान लिखा है, उसे प्रक्षेप बताना नितान्त ही ना समझी की बात है और विवाह की उत्तरविधि में तो ४ मन्त्रों से संख्या देकर प्रक्षेप बताने वाले की बात का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि ने स्पष्ट रूप में खण्डन कर दिया है और संस्कारविधि सामान्य प्रकरण को निष्पक्ष होकर पढ़ने से ही लेखक का मन्तव्य स्वतः ही धराशायी हो जाता है। फलतः मिथ्या भ्रान्ति फैलाकर जन साधारण को भ्रम में डालना बुद्धिमानों का कार्य नहीं होता है।

(3) 10 मई 93 के आर्यराष्ट्र में सम्पादक लिखता है अपनी लज्जा छिपाने के लिए धमकी देते हैं कि शास्त्रार्थ कर लो और 20 वर्ष से क्या हो रहा है किसी भी बात का उत्तर दिया हो तो आप उनके हृदय से पूछें।

समीक्षा- पाठकों को यह भली भांति विदित है कि ट्रस्ट पत्रिका के माध्यम से महर्षि दयानन्द की निर्भ्रान्त मान्यताओं का ही प्रचार किया जाता रहा है। जैसे महर्षि ने सन्धियों से रहित सृष्टि संवत् अपने ग्रन्थ में शब्दों में और संख्याओं में बड़ी एकरूपता से (1, 96, 08, 53, 093) का ही उल्लेख किया है। परन्तु कतिपय ज्ञानलवदुर्विदग्ध व्यक्ति उसे स्वीकार न करके पौराणिक मयासुर के जाल में फंस कर पथभ्रष्ट हो रहे हैं और महर्षि द्वारा प्रतिपादित सृष्टि संवत् के खण्डन में ही गौरवानुभव करते रहते हैं। जब इनसे पूछा गया कि कोई प्रमाण प्रस्तुत करो तो इसी आर्यराष्ट्र में 1985 का एक लेख छापकर 15 सन्धियों को वेद से सिद्ध करने का दुस्साहस करने चले हैं। आओ इनकी दुरभिसन्धि का पर्दाफाश करके इन 15 सन्धियों की वेदोक्त होने की परीक्षा करते हैं। इस पत्र के सम्पादक महोदय ने ऋग्वेद का एक मन्त्र दिया है-

(विश्वेदेवाः देवता)

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत्।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्॥

मन्त्रार्थ- (सहस्रधा) हजारों सूक्तों वाले अथवा सहस्रों प्रकार के मन्त्रों वाले होते हुए भी वैदिकसूक्त (पञ्चदशानि) पन्द्रह प्रकार के हैं (तत्) वह ब्रह्म (तावत् इत्) उतना है (यावत्) जितने में (द्यावापृथिवी) प्रकाशमान और अप्रकाशमान सभी लोक लोकान्तर स्थित हैं (सहस्रधा) प्रभूत शक्तियों वाला वह और (सहस्रम्) प्रभूत तथा प्रचुर है (महिमानः) उसकी महिमा (यावत्) जितना (विष्ठितम्) व्यापक है (ब्रह्म) परमेश्वर (तावती) उतनी (वाक्) वेदवाणी है,

इस समस्त मन्त्र में कहीं भी सन्धि का वर्णन नहीं है। परन्तु मन्त्र के (उक्था) पद का ही सन्धि परक अर्थ करके 15 सन्धियों का वर्णन मानने की रट लगा रहे हैं। जबकि वैदिक साहित्य तथा लोक में कहीं भी (उक्था) शब्द का सन्धि परक अर्थ आज तक कहीं भी पढ़ने या सुनने में नहीं आया। देखिए कतिपय कोषों के प्रमाण-

वामन शिवराम आप्टे के कोष में - उक्था शब्द के कथन, वाक्य, स्तोत्र, प्रशंसा, सामवेद अर्थ किए हैं।

वैदिक कोष में- उक्था, वक्तुं योग्यम् (स्तोत्रम्) ऋ॰ 1 ।10। 5 वक्तुं योग्यम् (शास्त्रम्) य॰ 15 । 10

प्रशंसनीय वचनं कर्म वा (ऋ॰ 1 । 10 । 17)

इत्यादि अनेक स्थलों में 'उक्था' शब्द के अर्थ दिखाये हैं।

व्याकरण प्रक्रिया से वच् परिभाषणे क्रिया से थक् प्रत्यय करने पर यह शब्द सम्प्रसारणादि कार्य करने पर सिद्ध होता है। जिस का अर्थ बनता है वक्तुं योग्यम्, उच्यते येन, वक्तुमर्हम् आदि।

ब्राह्मण ग्रन्थों में (उक्था) शब्द के निम्नलिखित अर्थ मिलते हैं - अन्नम् उक्थानि (कौ॰ 11, 8)

प्रजा वा उक्थानि (तै॰ 1, 8, 7, 2)

पशव उक्थानि (ऐ॰ 4, 1, गो. 30, 6, 7)

उक्थमतो सर्वाणि नामानि (शतपथ 14 ।4 ।4। 1) इत्यादि।

किन्तु पक्षपात के दुराग्रही व्यक्ति को क्या सूझी और मन्त्र का एक कल्पित मिथ्या अर्थ ही कर दिया। अब देखिए सम्पादक जी द्वारा किया मन्त्रार्थ-

(द्यावापृथिवी यावत्) देवलोक से पृथिवी लोक जितना है (तावत् इत् तत्) उतना ही यह कल्प है जो (सहस्रधा) सहस्रयुगों को धारण करने वाला, जिसमें (पञ्चदशानि उक्था) पन्द्रह सन्धियाँ है (महिमानः सहस्रधा) महत्त्वपूर्ण सहस्रयुगों वाला (यावत् ब्रह्म विष्ठितम्) जितना ब्रह्म दिन है, (तावती सहस्र वाक्) उतनी हजार युगों वाली रात्रि है। ('आर्यराष्ट्र' पत्रिका)

यहाँ (उक्था) की भांति (वाक्) शब्द का रात्रि अर्थ भी कल्पित है।

हमने सम्पादक जी के नाम पत्र लिखा था कि किसी मध्यस्थ को मानकर विचार विमर्श करें तो अच्छा रहे। उसके विरोध में लिखा है- "परास्त हुए से क्या शास्त्रार्थ करेंगे। क्या गाली देने या मारपीट करने का नाम शास्त्रार्थ है।"

ऐसी दयनीय स्थिति है "आर्यराष्ट्र" वालों की

-राजवीर शास्त्री

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति निपुण योगेश्वर श्री कृष्ण

स्व॰ श्री पं॰ चमूपति जी एम॰ ए॰

भूतिरनुभावसम्पदां भूयसी तव यदायतायति ।
गुरुभार ! भारतं वर्षमद्य मम वर्तते वशे ॥

शिशुपाल वध 14, 5

"हे भारी भार संभाले (श्रीकृष्ण) आपकी कृपा का तना बड़ा चमत्कार है कि आज भी (सारा) भारतवर्ष धिकार में है ।"

माघ-कवि ने शिशुपाल वध में युधिष्ठिर से श्री कृष्ण शब्दों में सम्बोधित कराया है– "भारी भार संभाले !" शेषण अर्थ गर्भित है । युधिष्ठिर के साम्राज्य का भार : श्रीकृष्ण ही के कन्धों पर था । कवि ने इसी भाव को में रख कर इस विशेषण का अत्यन्त भावपूर्ण प्रयोग है । परन्तु इस इंगित को समझा टीकाकार भी तो नहीं। श्रीकृष्ण पर भारत के साम्राज्य का नहीं, "विश्वंभरत्व" र लाद दिया है । कवि के सम्मुख युधिष्ठिर का ", पाण्डव साम्राज्य का निर्माता, महाभारत का "श्रेष्ठ श्रीकृष्ण था । टीकाकार की आंखों में विष्णु का र साक्षात् परमेश्वर विश्वम्भर श्रीकृष्ण। किस भाव का क औचित्य अधिक है । किस "भार" में, स्वाभाविक द के उद्गारों की दृष्टि से अधिक समयोचित " अधिक प्रकरणोचित "गौरव" है । साहित्य के मर्मज्ञ स्वयं समझें और आनन्द लें । कवि का कौशल गुरुभार !" संक्षिप्त से सम्बोधन में है । इस छः अक्षर छोटी सी पदावली में श्रीकृष्ण के जीवन का सारा सार या है ।

महाभारत की कथा पाण्डवों के संकटमय जन्म से होती है और उनके कण्टकाकीर्ण बाल्य काल तथा यों से व्याप्त युवावस्था का वर्णन कर भारतीय कवियों मर्यादा के अनुसार कि कवि की रचना सदा सुखान्त नी चाहिए, सम्पूर्ण भारतवर्ष पर युधिष्ठिर के साम्राज्य स्थापना के साथ समाप्त हो जाती है । महाभारत की समाप्ति का अवसर युधिष्ठिर का अश्वमेध है । नैक कहानी की यहीं इतिश्री हुई है ।

युधिष्ठिर से पूर्व जरासन्ध भारत के बड़े भाग का सम्राट् था । उसके साम्राज्य का साधन था पाशविक बल । वह भारत में शासन की विभिन्नता को मिटाना चाहता था । घर-घर का अपना राज्य हो और इस राज्य की अपनी राज्य-प्रणाली हो, यह उसे असह्य था । 18 भोजकुलों को उसने तहस-नहस कर दिया । यादवों के संघ को मिटा कर उसकी जगह कंस को मथुरा का एकराट् (Monarch) बनाया । कई गण राज्य (Republics) नष्ट-भ्रष्ट कर दिये । छियासी राजाओं को इस प्रकार बन्दी बना लिया और घोषणा की कि बन्दी राजाओं की संख्या सौ हो जाने पर इन्हें महादेव की बलि चढ़ाया जाएगा।

श्रीकृष्ण शिक्षा समाप्त कर अभी पितृ गृह में आये ही थे कि उनके दृष्टिगोचर यह स्थिति हुई। इस अल्पवयस्क अवस्था में उन्होंने अपने घर की फूट को किस बुद्धिमत्ता से मिटाया और कंस को मारा तथा जरासन्ध की सेनाओं को बारम्बार पराजित कर किस दूरदर्शिता तथा कार्य कुशलता से संघ की फिर से स्थापना की, संसार के राजनैतिक इतिहास में यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा मनोरम घटना है ।

मगध साम्राज्य के दांतों तले अपनी मथुरा की राजधानी को सुरक्षित न समझ कर श्रीकृष्ण ने वृष्णियों और अन्धकों के सत्रह कुल द्वारिका में जा बसाये और वहीं यादव संघ की राजधानी स्थापित कर दी । इस प्रकार अपनी घर की चिन्ता से मुक्त होकर श्रीकृष्ण ने अपने जीवन का लक्ष्य समूचे भारत को जरासन्ध के पंजे से छुड़ाना और उसे आर्य-साम्राज्य या दूसरे शब्दों में आत्म निर्णय के मौलिक सिद्धान्त पर आश्रित भारतवर्ष के छोटे-बड़े एकराट्, बहुराट् संघ, श्रेणी, सभी प्रकार के राज्यों के संगठन (Commonwealth) की छत्रछाया में लाना निश्चित किया । यही वह "गुरुभार" था जिसके "वहन" का बीड़ा श्रीकृष्ण ने उठाया । इस गुरुभार के कार्य के सफतलापूर्वक निबाह देने के कारण कवि ने श्री कृष्ण को "ऊढगुरुभार" कहा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांचों पाण्डव श्रीकृष्ण के फुफेरे भाई थे। उनसे इनकी पहली भेंट वन ही में हुई। अर्जुन ने ब्राह्मण के वेष में द्रौपदी का स्वयंवर जीता था। परास्त क्षत्रिय उपद्रव कर रहे थे। श्रीकृष्ण की आंखों में पाण्डवों की वीरता जंच गई और पाण्डवों को श्रीकृष्ण की अचूक नीति निपुणता तथा आपत्ति में ठीक समय पर आड़े आने वाली सहायता का पूरा भरोसा हो गया।

धृतराष्ट्र से आधा राज्य पाने, इन्द्रप्रस्थ में नई राजधानी बसाने, खाण्डव वन को जला कर उस सारे प्रान्त को मनुष्यों के रहने योग्य बनाने इत्यादि सभी कार्यों में श्रीकृष्ण पांडवों के एक मात्र अगुआ, एक मात्र आधार थे। अर्जुन और सुभद्रा के विवाह ने हृदयों की इस गांठ को और भी पक्का-नितान्त अटूट कर दिया। अनन्य मित्रों की यह जोड़ी कृष्ण-युगल अर्थात् "दो कृष्ण" कहलाने लगी।

युधिष्ठिर ने राजसूय की ठानी। जरासन्ध का वध बिना खून की एक भी अनावश्यक बूंद गिराये हो गया। इन सभी कार्यों में श्रीकृष्ण की अगाध नीति-निपुणता ने गजब के जौहर दिखलाये। अब क्या था? पांडवों ने भारत का दिग्विजय किया। दिग्-दिगन्तरों के राजा राजसूय में सम्मिलित हुए। आगे इन राज्यों की नामावली तथा चित्र दिया गया है। समस्त भारत अफगानिस्तान तथा चीन के कुछ भाग समेत उसमें समाविष्ट हैं। युधिष्ठिर सम्राट् हो गये। कृष्ण की मनःकामना पूरी हुई।

कृष्ण यज्ञ में अर्घ के पात्र माने गये। उन्हें अपनी बलबुद्धि का भरोसा था। भीष्म ने अर्घदान के लिए इनका प्रस्ताव करते हुए स्पष्ट कहा था कि उपस्थित राजाओं में कोई वीर्य में, विद्या में, किसी भी गुण में इनके जोड़ का नहीं। इस एक उक्ति ने राजाओं को आगबबूला कर दिया। कृष्ण राजा न थे। राज निर्माता थे। ये सम्भवतः राजाओं की दिव्य सत्ता **(Divinity of Kings)** के सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। इन्होंने कंस का वध स्वयं किया था और जरासन्ध को भीमसेन से मरवा दिया था। राजा लोगों में इनकी इस उच्छृङ्खलता के कारण असन्तोष था। शिशुपाल ने इस असन्तोष का प्रकाश यहीं यज्ञ के अवसर पर ही खुले शब्दों में कर दिया। क्रोध का मारा वह शिष्टता की सभी सीमाओं का उल्लंघन कर गया जिसका दण्ड कृष्ण ने उसे सुदर्शन चक्र के एक घुमाव से हाथों हाथ दे डाला। शिशुपाल सुदर्शन के एक ही वार में खेत रहा।

यज्ञ हो गया परन्तु राजाओं का विरोध चाहे उस समय के लिए दब गया हो, शान्त नहीं हुआ। उल्टा तीव्र हो उठा। दुर्योधन की पाण्डवों से पुरानी लाग थी। उसने असन्तुष्ट राजाओं से मिल कर षड्यंत्र किया। एक सभा रची। उसमें पाण्डवों को निमन्त्रित कर युधिष्ठिर और शकुनि में जुए का मैच करवा दिया। युधिष्ठिर अपने साम्राज्य, अपने भाई, यहां तक कि अपनी धर्मपत्नी तक को हार गया। जुआ तो जाहिर का बहाना था। वास्तव में साम्राज्य उसी समय शकुनि के दांव पर हारा जा चुका था जब श्रीकृष्ण को अर्घ-प्रदान हुआ था और शिशुपाल का वध किया गया था।

पाण्डव बारह वर्ष के लिए वनवास और एक वर्ष के लिए अज्ञात-वास में चले गये। इससे पूर्व भी वे वनवास कर चुके थे। उस वनवास की समाप्ति द्रौपदी के विवाह पर हुई थी और उनका फल द्रुपद की मैत्री था। इस बार के वनवास का अन्त अभिमन्यु और उत्तरा के विवाह में हुआ। इससे विराट् जैसा सम्पत्तिशाली राष्ट्र पाण्डवों की पीठ पर हो गया। कौरवों से राज्य लौटाने की मन्त्रणा मत्स्यराज विराट् की सभा ही में हुई।

कृष्ण चाहते थे, युद्ध न हो। यह जानते हुए भी कि दुर्योधन हठी है और उसके मन्त्री शकुनि, दुःशासन और कर्ण हैं जो उसे कभी सीधे रास्ते पर न आने देंगे, ये हस्तिनापुर गये और विदुर के मेहमान हुए। कोई यह न कहे कि कृष्ण ने शक्ति रहते हुए भी युद्ध नहीं टाला। इन्होंने सन्धि करा देने का पूरा प्रयत्न किया। समझाया, बुझाया, डराया, धमकाया। इस सारे प्रयत्न का फल केवल यह हुआ कि दुर्योधन अन्तर्राष्ट्रीय नीति के सभी नियमों पर पानी फेर कर उलटा उन्हें ही कैद करने के मनसूबे बांधने लगा। इनकी नारायणी सेना का कुछ भाग कृतवर्मा की अध्यक्षता में हस्तिनापुर में विद्यमान था। कृतवर्मा दुर्योधन के पक्ष में था ही, परन्तु कृष्ण का पकड़ा जाना उसे भी कहां सह्य हो सकता था? सेना-समेत सभा के द्वार पर आ डटा। कृष्ण ने दूत के कर्तव्य का पालन किया। वे शान्त रहे। नहीं तो वहीं तलवार चल जाती। धृतराष्ट्र के सामने उन्होंने यह प्रस्ताव जरूर रखा कि दुर्योधन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...की चाण्डाल-चौकड़ी समेत पाण्डवों के हवाले कर ...। दुर्योधन कृष्ण के समझाये भी नहीं समझा। लड़ाई हुई। ...भारतवर्ष कुछ इस तरफ, कुछ उस तरफ युद्ध में प्रवृत्त ...। बहुत खून-खराबा हुआ। सभी राजकुल तबाह हुए। ...होने पर युधिष्ठिर ने अश्वमेध किया। उसके लिए फिर ...जय हुआ। इस दिग्विजय में रक्तपात न करने विशेष- ...राजाओं पर तलवार न चलाने का विशेष ध्यान रखा गया। ...के अनुभव ने इस बार विजेताओं को पूरा सावधान ...दिया था। यहां तक कि यज्ञ के आरम्भ में श्रीकृष्ण ने ...ठर को अर्जुन द्वारा संदेश दिया कि इस बार अर्घदान ...झगड़ा नहीं करना। श्रीकृष्ण की ओर से यह संदेश- ...में यह उनका आदेश था, निमर्मता की पराकाष्ठा थी। ...पेय असफल राजसूय की सफल पुनरावृत्ति थी। ...उन्होंने राजसूय में ब्राह्मणों के पांव धोये थे और राजसभा ...लिया था। अश्वमेध में वे इस प्रकार के सभी कार्यों ...रहे। यह थी उनकी अहंकार-शून्यता। गीता में कही ...अनासक्ति ॥

महाभारत के युद्ध के 36 वर्ष पश्चात् तक श्रीकृष्ण ...रहे। उन्होंने भारत को जरासन्ध के अत्याचार-युक्त ...सत्तात्मक साम्राज्य (Empire) से निकाल कर ...के आत्मनिर्णयमूलक आर्य साम्राज्य (Com-monwealth) के सूत्र में संगठित किया। उन्होंने इस ...को फूलते फलते देखा। यही भुवन-भावन हमारी ...भारत-भावन, श्रीकृष्ण की वह अद्भुत विभूति थी ...आगे युधिष्ठिर या उसे अगुआ बना कर समूचा भारत, ...शक हुआ और अब तक है। इसी हेतु कवि ने उन्हें ...भार" कहा। सञ्जय ने सच कहा था -

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ 42, 77

"जहां योगेश्वर कृष्ण हैं, जहां धनुर्धर अर्जुन हैं, वहां ...है, विजय है, अटूट [illegible] दृढ़ धारणा है।"

शान्ति पर्व में कहते हैं -

सर्वे योगा राजधर्मेषु चोक्ताः। शान्ति॰ 62, 32

"सभी योग राजधर्म में कहे हैं।" कोष में भी कहा

"योगः संहननोपायध्यानसंगतियुक्तिषु।"

महाभारत में "योग" शब्द का प्रयोग नीति तथा उपाय के अर्थ में हुआ है। स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं -"योगः कर्मसु कौशलम्।" द्रोण ने कहा, युधिष्ठिर का निग्रह "योग" से होगा, अर्थात् उपाय से। भीष्म के शब्दों में सब योगों का एक योग राजधर्म है। श्रीकृष्ण उसी के ईश्वर, उसी के पारंगत पण्डित, उसी की मूर्त प्रतिमा थे। वे इसी से "योगेश्वर" कहलाये। सचमुच एक साम्राज्य (Common-Wealth) की स्थापना से बड़ा और कौन सा योग हो सकता था। इसी योग का फल "श्रीः, विजय, विभूति, ध्रुवनीति" है, यह है संक्षेप में श्रीकृष्ण का सार्वजनीन जीवन जिसे महाभारतकार ने श्रीकृष्ण का योग कहा है।

श्रीकृष्ण के इसी सार्वजनीन का वर्णन ही महाभारत में किया गया है। योगेश्वर कृष्ण के इस योग का लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण उल्लेख किया है। जन्म, विवाह, अपने कुल में स्थिति, वानप्रस्थ, देहान्त इत्यादि निजी जीवन की बातों पर भी महाभारत में बिखरे संकेतों का संग्रह कर उनका विस्तार पुराण आदि की सहायता से किया गया है। महाभारत श्रीकृष्ण की सबसे पहली जीवनी है। वह जिन विषयों में चुप है, उनके सम्बन्ध में भी दूसरे प्रकरणों में आये निर्देशों द्वारा मधुर प्रकाश डालती है। हमने महाभारत के इन निर्देशों को प्रदीप बना पौराणिक वृत्तान्तों का मौलिक भाव समझने का प्रयत्न किया है। एक पृथक् अध्याय भी श्रीकृष्ण के पुराण-कथित जीवन के अर्पण कर दिया है। पुराणों ने अधिक महत्त्व श्रीकृष्ण के जन्म तथा बाल्यकाल को दिया है। इसे उन्होंने एक चमत्कारपूर्ण अलौकिक घटना बना दिया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वास्तविक महत्त्व तो महापुरुषों के सार्वजनिक जीवन का ही हो सकता है। बाल्यकाल इस अद्भुत प्रौढ़ावस्था के अद्भुत चमत्कार के कारण स्वयं चमक उठा करता है "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की कहावत किसी के 'होनहार' सिद्ध होने पर चरितार्थ की जाती है। श्रीकृष्ण के सार्वजनिक जीवन की छटा मानव है, बाल्यकाल की दिव्य। ऐसा होना स्वाभाविक था। प्रो॰ भाण्डारकर की इस कल्पना से कि श्रीकृष्ण का वास्तविक नाम वासुदेव था, कृष्ण उनके गोत्र का नाम था, उनके पिता के लिए वसुदेव तथा उनकी माता के लिए देवकी नाम पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से गढ़ लिया गया, हम सहमत नहीं हो सके। पार्जिटर महाशय ने पौराणिक वंशावलियों का ऐतिहासिक महत्त्व बड़ी योग्यता से प्रमाणित किया है। उनकी सम्मति में ये वंशावलियां कृत्रिम नहीं हैं। यह हमारा मत है। वसुदेव का नाम पुराणों में आई प्रत्येक वंशावली में आया है। महाभारत में स्वयं वसुदेव के सम्बन्ध में कई स्वतन्त्र उल्लेख हैं और वहां उनका नाम वसुदेव ही है। हमारे मत में कृष्ण वसुदेव के पुत्र थे, इसीलिए वे वासुदेव कहलाये। आगे चल कर वासुदेव मानो उनका निज नाम हो गया। उसकी स्वतन्त्र व्युत्पत्तियां होने लगीं। इसी से पीछे के साहित्य में इस नाम का अधिक उपयोग भी पाया जाता है।

श्रीकृष्ण संसार के सामने उस समय आते हैं जब वे अपने कुल की आन्तरिक फूट को मिटाकर कंस का वध करते हैं। उस समय उनकी आयु इतनी अवश्य होगी कि आहुक अक्रूर जैसे प्रौढ़ पुरुषों को विवाह के नाते आपस में एकीभूत कर दें। इससे पूर्व वे क्या करते थे ? हमारे विचार में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। यही कल्पना कलकत्ता-युनिवर्सिटी इतिहासाध्यापक श्रीयुत हेमचन्द्र राय चौधरी एम० ए० की है। छान्दोग्योपनिषद् में एक श्रीकृष्ण देवकी पुत्र का वर्णन है। उसने घोर आंगिरस से उपदेश लिया था। चौधरी महाशय उस उपदेश की तुलना गीता के केन्द्रीभूत उपदेश से कर कहते हैं, ये वही यादव कृष्ण हैं। इनके गुरु घोर आंगिरस नाम के ऋषि थे। शतपथ में एक स्थान पर नक्षत्रों की एक विशेष स्थिति का उल्लेख है। ज्योतिष शास्त्र की गणनाओं से इस स्थिति का काल वही निश्चित होता है जो अन्य साधनों से महाभारत का। शतपथ और छान्दोग्य तो समकालीन माने ही जाते हैं। इससे उक्त कल्पना को और पुष्टि मिलती है। परन्तु महाभारत में घोर आंगिरस का नाम कहीं नहीं आया। हो सकता है उपनिषत्कथित कृष्ण और हों और महाभारत के कर्णधार कृष्ण और। तो भी श्रीकृष्ण की वह आयु शिक्षोपार्जन में बीती होगी, इतना अनुमान दुरूह नहीं।

शिक्षाकाल वृन्दावन के आसपास ही बीता होगा और वृषासुर, हयासुर (पागल बैल तथा जंगली घोड़े) का वध उसी प्रांत में किया गया होगा। गोवर्धनधारण की काव्यमयी घटना- जो गोवर्धन पर्वत पर गोपों की बस्ती बसाने और सप्ताह भर रात-दिन जागकर उसे बाढ़ में, बरसात में मानो अपनी हथेली पर थामे रहने का कवितापूर्ण वृत्तान्त है- यह घटी होगी।

रुक्मिणी से विवाह द्वारवती में जा बसने के पश्चा[त्] हुआ है। भोजकट के निकट आकर रुक्मिणी का भाई [...] विवाह में सहमत हो गया है। अतः इसे "राक्षस विवाह" नहीं कह सकते। विवाह के पश्चात् पति-पत्नी का पुत्र [...] प्राप्ति के लिए बारह वर्ष ब्रह्मचर्य-पूर्वक हिमालय के दाम[न] में तपस्या करना गार्हस्थ्य जीवन का आदर्श संयम है।

यादव राष्ट्र में पहले तो शाल्वराज के आक्रमण [...] समय और अन्त में साधारण रूप से राजाज्ञा द्वारा मदिराप[ान] का निषेध श्रीकृष्ण के नैतिक ध्येयों का उज्ज्वल प्रमाण [...] श्रीकृष्ण मदिरापान के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने इसके लि[ए] प्राणदण्ड निश्चित किया।

महाभारत के युद्ध की कुछ घटनाओं के सम्बन्ध [...] कहा जाता है कि इनमें श्रीकृष्ण ने कूटनीति का प्रयोग कि[या] उदाहरणतया शिखण्डी को आगे कर अर्जुन से उसकी अ[...] में भीष्म को मरवा दिया। हमने महाभारत के प्रमाणों से इ[स] घटना पर विस्तृत विवेचन किया है। शिखण्डी वीर था उसकी गणना पाण्डव पक्ष के महारथियों में स्वयं दुर्योधन [...] की है। भीष्म का वध उसी ने किया था। भीष्म उसके [...] का प्रतिकार करने में असमर्थ हो गये। कारण कि अर्जुन [...] शिखण्डी की सहायता कर रहा था अपनी धनुर्विद्या [...] अद्भुत कुशलता से उनके प्रत्येक धनुष को ज्योंहि वे उ[...] हाथ में लेते और उस पर चिल्ला चढ़ाते, झटपट तोड़ दे[...] था। भीष्म ने अर्जुन की इसी चतुराई को ध्यान में रख [...] कहा था कि मैं शिखण्डी के तीरों से नहीं मरा, यह तीर वास्त[व] में अर्जुन के हैं। यह प्रंशसा लाक्षणिक थी। भीष्म ने अर्जुन पर शक्ति का वार किया। अतः वह ओट में तो था ही न[हीं] सहायता भीष्म की भी और कौरव वीर कर रहे थे। ऐसा कर[ना] उस समय की लड़ाई में विहित था।

द्रोण, कर्ण तथा दुर्योधन की मृत्यु का स्पष्टीकरण [...] महाभारत ही के श्लोकों से तत्तत् प्रकरण में कर दिया ग[या] है। इन प्रसंगों में श्रीकृष्ण का दोष है या नहीं ? पाठक स्व[यं] निर्णय करें। वे अंहिसा और सत्य के पूरे पक्षपाती थे। [...] उनका जीवन भी इन गुणों के सांचे में ढला हुआ था ? इस[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय घटनाओं के गम्भीर अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है ।

श्रीकृष्ण के शील का पता इस बात से लगता है कि व्यास, धृतराष्ट्र, कुन्ती तथा युधिष्ठिर आदि बड़ों से वे जब मिले हैं, सदा उनके चरणों को छूते रहे हैं । धृतराष्ट्र को नमस्ते कहते हैं । महाभारत काल में नमस्ते शब्द का प्रयोग अभिवादन के समय अन्यत्र भी किया गया है ।

सन्ध्या और हवन के श्रीकृष्ण पूरे निष्ठावान् थे । दूतकर्म पर जाते हुए रास्ते में सांझ हो गई । ये सन्ध्या के लिए ठहर गए । हस्तिनापुर में प्रातः काल सभा में जाने से पहले सन्ध्या तथा अग्निहोत्र से निवृत्त हुए हैं । अभिमन्यु के वध के दिन सायं काल अपने शिविर में जाने से पूर्व कृष्ण और अर्जुन दोनों ने सन्ध्या की है । युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र की दिनचर्या में भी सन्ध्या और हवन का सर्वोत्कृष्ट स्थान है । इससे उस समय की धार्मिक निष्ठा पर उज्ज्वल प्रकाश पड़ता है ।

माता पिता के प्रेम की अवस्था यह है कि युधिष्ठिर के पास रहते हुए जब भी घर की इच्छा हुई है, हमेशा यात्रा का यही हेतु बताया है कि पितृपादों के दर्शन करने हैं । इस प्रकार श्रीकृष्ण के चरित्र में निजी और सार्वजनिक जीवन के आदर्श उत्कर्षों का एक अद्भुत समन्वय पाया जाता है । देश की चिन्ता में कुल के हित को हाथ से नहीं जाने देते, और कुल के हित का सर्वोच्च साधन वैयक्तिक पवित्रता को समझते हैं । महाभारत का युद्ध ठन गया । पाण्डवों के कर्णधार श्रीकृष्ण थे । उधर यादवों की सहानुभूति दोनों पक्षों में बंट गई । बलराम ने बल दिया कि दुर्योधन की सहायता करो । कृतवर्मा आदि स्पष्ट उस ओर हो ही गए । इस समय श्रीकृष्ण की नीति-निपुणता काम आई । वे अर्जुन के सारथि हो गये। ऐसे पांडवों के अग्रणी बने रहे । परन्तु फिर उन्होंने निशशस्त्र रहने की प्रतिज्ञा कर ली । इससे अपनों पर हाथ उठाने का अवसर भी न आने दिया । सेना कुछ कृतवर्मा के साथ दुर्योधन की ओर हो गई, कुछ चेकितान और सात्यकि के साथ पांडवों की ओर । दुर्योधन और अर्जुन के सिरहाने पैताने आ बैठने की बात निरा बच्चों का बहलावा है । इस महत्त्व के नैतिक प्रश्नों का निर्णय सिरहाने पैताने के आकस्मिक घटनाओं से नहीं हुआ करता । इस जरा से निर्णय में भी श्रीकृष्ण की अपूर्व बुद्धिमत्ता अपना पूर्ण प्रकाश दिखा रही थी ।

इस नीति के पुतले, शील की प्रतिमा, सदाचार के अवतार, वेद विद्या के सागर, आदर्श साम्राज्य निर्माता, शूरशिरोमणि, भारत भावना श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द लिखते हैं -श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है । उनका गुण कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है । जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त, बुरा काम, कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा । (सत्यार्थप्रकाश 15वीं बार, एकादश समुल्लास, पृ० 356 ।

ऋषि के इस मार्मिक निर्देश से सबसे पूर्व क्रियात्मक रूप से लाभ उठाने का श्रेय श्रीबंकिमचन्द्र चैटर जी को है। उन्होंने "कृष्णचरित्र" नामक पुस्तक लिखी । वह महाभारताश्रित श्रीकृष्ण की सबसे पहली जीवनी है । उसके पश्चात् कुछ छोटी मोटी और भी पुस्तकें लिखी गई हैं । परन्तु वे बंकिम की कृति को नहीं पहुँचतीं । श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र की सामग्री के सम्बन्ध में श्रीबंकिमचन्द्र ने एक नियम निर्धारित किया । उनका कहना है कि-

असल बात यह है कि जिन ग्रन्थों में निर्मूल अस्वाभाविक और अलौकिक बातें जितनी अधिक मिल गई हैं, वे उतने ही नये हैं । इसी नियम के अनुसार आलोचना करने योग्य जितने ग्रन्थ हैं, उनका क्रम इस प्रकार स्थिर होता है- (1) महाभारत का पहला तह, (2) विष्णु पुराण का पांचवां अंश, (3) हरिवंश, (4) श्रीमद्भागवत ।

यह क्रम दूसरे शब्द में उनकी प्रामाणिकता का है । बंकिम महाशय की कृति मुख्यतया श्रीकृष्ण पर लगाये गए दोषों का निराकरण है । इससे लेखक की वर्णन शैली पर स्वभावतः एक बन्धन आ गया है । बंकिम बाबू का कृष्ण-चरित्र घटनाओं का स्वाभाविक चित्र-चित्रण इतना नहीं रहा, जितना प्रत्येक घटना के नैतिक औचित्य का पक्ष पोषण हो गया है । सफाई के वकील की वक्तृता की तरह इसका रंग स्वाभाविक इतिहास का सा नहीं रह सका । तो भी बंकिम बाबू का अनथक परिश्रम उनकी सुन्दर सूझ-सहेतुक ऐतिहासिक गवेषणा, सुलझा हुआ स्पष्ट चरित्र-चित्रण कुछ ऐसे गुण हैं जो प्रत्येक पाठक को उनकी कृति पर मोहित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेते हैं। हमारा बंकिम बाबू से बहुत स्थानों पर मतभेद है। कई घटनाओं को उन्होंने असम्भव समझा। कुछ और को प्रचलित परम्परा के अनुसार सत्य स्वीकार कर सहेतुक भी सिद्ध कर दिया है। परन्तु हमने कवि की वर्णन शैली को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न स्थानों पर आये भिन्न-भिन्न वृत्तान्तों का समन्वय कर ऐसी कुछ घटनाओं का स्वरूप ही और स्थिर किया है, कतिपय ऐसे मतभेद पाद टिप्पणियों में दिखा दिये गये हैं।

इतिहास के विद्यार्थियों के लाभार्थ हमने जहां अपनी प्रत्येक उक्ति के लिए प्रमाण उपस्थित किए हैं, वहां युधिष्ठिर की राज्य-प्रणाली तथा महाभारत के युद्ध प्रकार पर अलग-अलग अध्याय भी लिख दिये हैं। नगरों का जो चित्र महाभारत में आया है, बिन्दु विसर्ग सहित ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है। तत्कालीन अभिवादन, पूजा प्रतिष्ठा आदि शिष्टाचार का भी महाभारत ही के शब्दों में उल्लेख किया है। युधिष्ठिर की सभा में लाये गये उपहारों का एक मोटा सा विवरण भी दे दिया है। इससे महाभारत की सभ्यता का एक मूर्त चित्र आंखों के सामने आ जाता है। आये हुए राजाओं में इन जातियों के अतिरिक्त जो स्पष्ट भारत की हैं, यवन, चीन, बर्बर, रोमक भी आये हैं। युद्ध में भी इन जातियों के सम्मिलित होने का उल्लेख है। चीन तो सम्भवतः प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा के साथ आये हों। उसकी फौज में चीनी पाये जाते हैं। परन्तु बर्बर क्या अफ्रीका के थे और रोमक क्या रोम के या यवन, बर्बर और रोमक भी भारत में आकर बस गये थे? यह प्रश्न अभी समाधान चाहते हैं।

अन्तिम अध्याय में हमने अन्य देशों के परम्परागत पौराणिक इतिहासों से कुछ ऐसे राजाओं की कथाएँ उद्धृत कर दी हैं, जो भारत के पुराण कथित बाल-गोपाल की कथा से मिलती जुलती हैं। इतिहास तथा पुराण के तुलनात्मक अध्ययन करने वालों के लिए ये कथाएँ विशेष रुचिकर होंगी।

गीता का उपदेश श्रीकृष्ण के जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। सच तो यह है कि वह अंग महत्ता में अपने अंगी से भी आगे बढ़ गया है। संसार के इतिहास में कृष्ण के जीवन का उतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना उनकी गीता का। इस पुस्तक में हमने "विश्व रूप" की व्याख्या के नाते उसकी ओर केवल संकेत मात्र ही किया है। परिशिष्ट आदि में कुछ लिख देना तो गीता की महत्ता का अनादर करना होता। समय मिलने पर गीता के अर्पण एक स्वतन्त्र ग्रन्थ दिया जायेगा।

कृष्ण का जीवन किस नैतिक परिस्थिति में बीता, इसका ज्ञान महाभारत के वृत्तान्त के नैतिक अनुशीलन से प्राप्त हो सकता है। वह एक कष्ट साध्य कार्य है। महाभारत एक जटिल समाज का वर्णन करता है। उसमें विदुर जैसे शील के अवतार भी हैं जिनके सम्बन्ध में लिखा है कि इनके सदाचार ने संसार की इमारत को थामा हुआ है, भीष्म जैसे आत्मत्यागी नीति तत्त्व के अथाह सागर भी हैं, और दुर्योधन जैसे हठी, मूर्त मत्सर तथा दुःशासन जैसे निर्लज्ज शालीनता के शत्रु भी। सच तो यह है कि महाभारत में सदाचार तथा दुराचार के भिन्न-भिन्न प्रकार के रंगबिरंगे नमूने हैं। गन्दी से गन्दी बुराइयां और प्रशस्त से प्रशस्त भलाइयां महाभारत में वर्णित हैं। कारण कि यह एक वास्तविक समाज का चित्र है -एक ऐसे समाज का जो सभ्य था, समुन्नत था, समृद्ध था। महाभारतकार की मानव समाज पर दृष्टि बड़ी गहरी-वास्तविकता की थाह तक पहुँचने वाली प्रतीत होती है। हम [illegible] विस्तृत उल्लेख न कर दो ऐसे संदर्भ पाठकों के सम्मुख रखेंगे जो तात्कालिक नैतिक आदर्शों के सार हैं। पहला आदर्श संशप्तकों की शपथों का है। ये त्रिगर्त के राजा थे। इन्होंने अर्जुन को मुख्य युद्ध से हटा कर एक गौण पृथक् लड़ाई में जा जुटाया था। इस लड़ाई में प्रवृत्त होने से पूर्व इन्होंने कुछ शपथें खाईं। जो निम्नलिखित हैं -

कवच पहिने, घी मले, कुशा उठाये, मौर्वी की मेखला बांधे, हजारों और लाखों का दान देते हुए .... प्रज्वलित अग्नि के सम्मुख वह यह प्रतिज्ञा करने को खड़े हुए। जो गति झूठों, ब्रह्मघातियों, मद्य पीने वालों, गुरुतल्पगामियों, ब्राह्मण का धन हरने वालों, राजा की चोरी करने वालों, याचक का हनन करने वालों, किसी के घर को आग देने वालों, गोघातकों, अपकारियों, ब्रह्मद्वेषियों, अपनी स्त्री को ऋतु काल में मोह-वश वीर्यदान न देने वालों, श्राद्ध में मैथुन करने वालों, अमानत में खयानत करने वालों, पढ़ी विद्या का नाश करने वालों, नपुंसक से लड़ने वालों, दीन के पीछे दौड़ने वालों, नास्तिकों, अग्नि और माता का त्याग करने वालों की होती है, वह हमारी हो यदि हम अर्जुन को मारे बिना लौट आयें या उसकी क्रूरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...द्ध से लड़ाई से विमुख हों। (द्रोणपर्व अ॰ 17 । श्लो॰ 25-34।)

ये गतियां बुरी मानी जाती थीं। प्रत्येक सदाचारी वीर ...गतियों से बचता था। इसके विपरीत कुछ गतियां ऐसी ...के वीरों के लिए वांछनीय थीं। उनका परिगणन सुभद्रा ...आशीर्वाद में है। हतपुत्रा सुभद्रा अपने इकलौते पुत्र ...मन्यु की मृत्यु से व्याकुल सुभद्रा, जब जमीन उसके पैरों ...से निकले जाती है, आसमान कोई ठौर-ठिकाना देता ...ई नहीं देता उस समय की अशरण सुभद्रा कृष्ण के गले ...कर रोती है। कृष्ण उसे ढाढस बंधाते हैं। कहते हैं, पिता ...पति की, पुत्र की और सबसे उतर कर भाई की वीरता ...लांछित न कर। अभिमन्यु को वीरगति प्राप्त हुई है वह ...जिसके लिए हम सब आकांक्षा कर रहे हैं। सुभद्रा शोक ...वहीं छोड़ देती है, क्या उसे अभिमन्यु की सुगति पर ...था? आखिर मां ही तो थी। अपने उठे हुए हाथों के ...के बिना पुत्र का इतने ऊंचे स्थान पर पहुँच जाना कैसे ...समझती? यदि कोई और कसर अभिमन्यु की वीरता ...थी तो उसे सुभद्रा के उठे हाथों, अविरल आशीर्वादों ...कर दिया है। कहती है यज्ञ करने वालों, दानशील, ...सिद्धि को प्राप्त हुए ब्राह्मणों, पुण्य तीर्थों का सेवन कर ...ब्रह्मचारियों, उपकार मानने वालों, यशस्वियों, गुरु की ...करने वालों, हजारों का दान देने वालों की जो गति होती ...मेरे लाल वह गति तेरी हो।

युद्ध में पीठ न दिखाने वाले शूरों, शत्रु को मार कर ...ने वाले वीरों की जो गति होती है, वह तेरी हो। यज्ञ ...जारों का दान करने वालों, अशरणों को यथेच्छा शरण ...करने वालों, दीन ब्राह्मणों की सुध लेने वालों, ...सकों की जो गति होती है, हे मेरे लाल वह गति तेरी ...।

उग्रव्रतधारी मुनि ब्रह्मचर्य से जिस गति को पहुँचते हैं, ...पत्नीव्रतों की जो शाश्वत गति होती है, चारों आश्रमों ...पुण्य आचरणों से जो गति धार्मिक राजा की होती है, दीनों ...कृपा करने वालों, सब पर सदा दया रखने वालों, चुगली से बचे हुओं की जो गति होती है, हे मेरे लाल वह गति तेरी हो।

व्रतियों, धर्मशीलों, गुरुपूजकों, अतिथि को खाली न लौटाने वालों की जो गति होती है, हे मेरे पुत्र वह गति तेरी हो।

शोक की आग से जले हुए, आपत्ति के समय धैर्य धारण करने वालों की जो गति होती है, हे मेरे लाल वह गति तेरी हो।

जो सदा अपने माता पिता की सेवा करते हैं, और अपनी स्त्री में रत रहते हैं, जो ऋतुकाल में ही अपनी पत्नी के साथ सहवास करते हैं और परस्त्री का ध्यान तक नहीं करते, उन (संयमियों) की गति को, हे मेरे लाल तू प्राप्त कर।

ईर्ष्या से बचे हुए, सब प्राणियों से दया-पूर्वक व्यवहार करने वालों, किसी का हृदय न दुखाने वालों, क्षमाशीलों की जो गति होती है, हे मेरे लाल वह गति तेरी हो।

मांस, मद्य, दंभ, झूठ से बचे हुए अहिंसाशीलों की जो गति होती है, हे मेरे पुत्र, वह गति तेरी हो।

लज्जाशील, शास्त्रों के जानने वाले, जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ पुरुषों की जो गति हो हे सुभद्रा के लाल वह गति तेरी हो। द्रोणपर्व 78, 19-34

यह अभिमन्यु के गुणों की स्मृति थी। जो स्मृति साधारणतया एक करुण विलाप का रूप धारण करती, श्रीकृष्ण की कालोचित चेतावनी से एक अमर आशीर्वाद बन गई। सुभद्रा के उस स्वाभाविक उद्गार ने उस समय की वीर माताओं के हृदयों की कामनाओं को एक आदर्श मंगलेच्छा के सांचे में ढाल कर सदा के लिए सुरक्षित कर दिया है। यही आदर्श उस समय के नीतिमानों, समाज संचालकों, नीतितत्त्व के उपदेशकों और आचार्यों का था। श्रीकृष्ण के चरित्र को इन्हीं आदर्शों की कसौटी पर परखना होगा। पाठक परख। निष्पक्ष होकर परख। सोना तेरे सम्मुख है। इसे जांच। इसे आंक। खरा हो तो ले जा। नहीं तो सुवर्णकार को लौटा दे। आंकने से और नहीं, सोने का ज्ञान तो बढ़ ही जायेगा।

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या भौतिक विज्ञान भी आत्मा और ईश्वर की सत्ता को मानेगा?

विवेकभूषण दर्शनाचार्य

आज के भौतिक विज्ञान ने अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है हम भौतिक वैज्ञानिकों के परिश्रम की प्रशंसा करते हैं, कि उनके प्रयासों से आज मानव को मशीन युग में अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं और अनेक कष्ट दूर हुए हैं। यद्यपि यह सर्वसम्मत बात है कि प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्ति की प्रत्येक चेष्टा का उद्देश्य दुःख से छूटना और सुख को प्राप्त करना होता है। आधुनिक विज्ञान के प्रयास (नये नये आविष्कार) भी इस नियम का अपवाद नहीं हैं। अर्थात् वैज्ञानिकों के प्रयत्न भी मानव समाज को दुःख से छुड़ाने और सुख की प्राप्ति कराने के लिए ही हैं। फिर भी आज भौतिक विज्ञान इतना उन्नत हो जाने पर भी, क्या कारण है कि मानव दुःखों से पूर्णतया छूट नहीं पा रहा और पूर्ण व स्थायी सुख को प्राप्त नहीं कर पा रहा ? हमें इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना होगा।

हमारी दृष्टि में इसका कारण है-वैज्ञानिकों द्वारा आत्मा और ईश्वर नाम के द्रव्यों की सत्ता को स्वीकार न करना और इन द्रव्यों के गुण-कर्म-स्वभाव को न जानना।

भौतिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में जगत् का मूलतत्त्व ऊर्जा माना जाता है। उसी से आगे चलकर क्वार्क्स, फिर इलैक्ट्रान, प्रोटीन, न्यूट्रान आदि बनते हैं और सम्पूर्ण जगत् का विस्तार हो जाता है।

हम यहां वैज्ञानिकों से कुछ प्रश्न करना चाहेंगे। इन प्रश्नों का उद्देश्य है-सत्य की खोज करना (जो कि विज्ञान का भी उद्देश्य है) परन्तु प्रश्न उठाने से पूर्व कुछ उन नियमों का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, जिन्हें भौतिक विज्ञान आज भी स्वीकार करता है। जैसे कि-

(1) इस संसार का मूल तत्त्व ऊर्जा है। जो कि जड़ है।

(2) मूल तत्त्वों की विशेषताओं में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यदि परिवर्तन हो जाए, तो उन्हें मूल तत्त्व नहीं माना जा सकेगा।

(3) भौतिक विज्ञान केवल उन्हीं तत्त्वों की सत्ता को स्वीकार करता है, जिन्हें आंखों से या यन्त्रों से देखा जा सके अथवा बुद्धि से स्वीकार किया जा सके।

(4) अभाव से भाव नहीं हो सकता इत्यादि। (उपर्युक्त नियम श्री प्रो॰ सत्यदेव वर्मा जी ने, वैज्ञानिकों की ओर से स्वीकार किए। प्रो॰ वर्मा जी गुजरात विश्वविद्यालय के एक प्रबुद्ध वैज्ञानिक हैं और विश्वविद्यालय में भौतिक विभाग के अध्यक्ष तथा विज्ञान विभाग के निदेशक हैं।

अब हम सत्य की खोज के उद्देश्य से भौतिक वैज्ञानिकों के समक्ष कुछ प्रश्न उपस्थित करते हैं।

प्रश्न- (1) भौतिक विज्ञान उन तत्त्वों की सत्ता को भी स्वीकार करता है, जो बुद्धि से जाने जा सकते हैं, भले ही आंखों या यन्त्रों से न देखे जा सकें। जैसे कि- ऊर्जा, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति आदि। क्वार्क्स नामक सूक्ष्म द्रव्य भी अभी तक किन्हीं यन्त्रों के माध्यम से देखे नहीं जा सके हैं। फिर भी विज्ञान इनकी सत्ता को स्वीकार करता है। अर्थात् पत्थर आदि भारी पदार्थ पृथ्वी की ओर आकर्षित होते हैं। इस आकर्षण रूपी कार्य के आधार पर पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण के नाम से एक शक्ति की सत्ता स्वीकार की गई। ठीक इसी प्रकार से हम आप सब सोचते विचारते हैं। अनेक प्रकार की विद्याओं को सीखकर विद्वान् हो जाते हैं। तो यहां प्रश्न होता है कि इन विद्याओं को सीखने वाला द्रव्य कौन सा है ? भौतिक विज्ञान के अनुसार तो मूल तत्त्व ज्ञान से रहित है। और तत्त्वों की विशेषताओं में परिवर्तन भी नहीं हो सकता, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि जड़ (ज्ञान रहित) मूल तत्त्व से विद्याओं को सीखने वाले चेतन (ज्ञान सहित) द्रव्य की उत्पत्ति हो गई। जब हमें विद्याओं को सीखने वाला सोचने समझने वाला तत्त्व व्यवहार में मनुष्य आदि के रूप में उपलब्ध है, तो एक चेतन (ज्ञानवान्) तत्त्व भी हमें मूल तत्त्व के रूप में अवश्य ही स्वीकार करना होगा। जो कि विचार पूर्वक कार्य करता है। मोटर, रेल, घर आदि बनाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र अपने अनेक प्रयोजन सिद्ध करता है । ऊर्जा नामक त्त्व में ऐसी क्षमता सिद्ध नहीं होती और न ही वैज्ञानिक में ऐसी क्षमता मानने को तैयार हैं । हम इस ऊर्जा से चेतन मूल तत्त्व को आत्मा कहते हैं ।

प्रश्न-(2) इसी प्रकार से ब्रह्माण्ड में हम देखते हैं, भी जगह (परमाणु में, सौरमण्डल आदि में) हमें स्था दिखाई देती है । ब्रह्माण्ड का मूल तत्त्व ऊर्जा तो जड़ से रहित) है । वह तो ऐसी व्यवस्था और नियम बना सकता । इन नियमों और व्यवस्थित रचनाओं के लिए बुद्धिमान् (ज्ञानवान्) तत्त्व को स्वीकार करना ही जो ऊर्जा, क्वार्क्स और इलैक्ट्रान आदि द्रव्यों को णुओं तथा रासायनिक द्रव्यों (हीलियम, आक्सीजन, जन आदि) के रूप में व्यवस्थित कर सके । यदि इस के लिए हम यह सोचें कि मनुष्य के रूप में उपलब्ध न पदार्थ आत्मा ने यह व्यवस्था बनाई होगी, तो यह क नहीं है । क्योंकि किसी भी मनुष्य का ऐसा सामर्थ्य रखता, जो अरबों आकाश गंगाओं तक फैले विशाल ड की व्यवस्था कर सके । परिणाम स्वरूप हमें एक ऐसे चेतन (ज्ञानवान्) मूल तत्त्व की सत्ता माननी होगी, जो ब्रह्माण्ड की रचना और व्यवस्था कर सके । ऐसे वाली मूल तत्त्व को हम ईश्वर कहते हैं । इसकी सत्ता वीकार किये बिना सृष्टि की रचना का प्रश्न सुलझ नहीं ।

कोई भी जड़ वस्तु ज्ञानपूर्वक गतिशील होकर किसी के रूप में उपस्थित नहीं हो जाती । जैसे कि वृक्ष से ी के टुकड़े स्वयं कटकर और बुद्धिपूर्वक जुड़कर मेज-के रूप में नहीं आ जाते । उन्हें मेज कुर्सी के रूप में के लिए चेतन कर्ता (बढ़ई) की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार से इस ब्रह्माण्ड के मूलतत्त्व ऊर्जा और र्स आदि ज्ञानशून्य होने से स्वयं बुद्धिपूर्वक मिलकर ट्रान, प्रोटोन आदि के रूप में उपस्थित नहीं हो सकते।

उनको इस स्थिति में लाने के लिए भी बढ़ई के समान एक ज्ञानवान् तत्त्व की आवश्यकता होगी और वह भी एक मूल तत्त्व ही होगा । क्योंकि उसकी विशेषताएं ऊर्जा और आत्मा से भिन्न हैं । उसी मूलतत्त्व को हम ईश्वर कहते हैं। यदि ईश्वर की सत्ता को न माना जाए, तो हमारा प्रश्न है कि ऊर्जा से क्वार्क्स तथा इलैक्ट्रान, प्रोटोन आदि पदार्थ किसने बनाए ? जबकि सभी वैज्ञानिक मानते हैं कि सृष्टि की रचना बुद्धिपूर्वक है और ऊर्जा आदि मूलतत्त्व बुद्धि से शून्य (ज्ञानरहित) हैं ।

विश्व की समस्याओं को सुलझाने के लिए हमें विश्व के सम्पूर्ण तत्त्वों का अध्ययन करना ही होगा । विश्व के सम्पूर्ण तत्त्व उपर्युक्त विवेचन के अनुसार तीन ही सिद्ध होते हैं । इन तीनों का विस्तृत विवरण वेद और साहित्य (भारतीय वैदिक दर्शनों एवम् उपनिषद् आदि ग्रन्थों) में उपलब्ध होता है । इन ग्रन्थों में इन तीन तत्त्वों के नाम हैं । ईश्वर, आत्मा और प्रकृति । वैज्ञानिक लोग भौतिक विज्ञान में केवल प्रकृति नामक एक मूल तत्त्व का अध्ययन करते हैं परन्तु शेष दो तत्त्वों की उपेक्षा कर देने से हम यह समझते हैं कि जीवन की सभी समस्याओं का समाधान नहीं हो पाएगा । मनुष्य की जो स्वाभाविक इच्छा है कि "मैं दु:खों से पूर्णतया छूटकर स्थायी और पूर्ण सुख की प्राप्ति कर सकूँ।" इसकी पूर्ति के लिए हमें अवश्य ही ईश्वर और आत्मा के बारे में जानना होगा । क्या भौतिक वैज्ञानिक लोग इन दो तत्त्वों के सम्बन्ध में जानने के लिए भारतीय वैदिक साहित्य का अध्ययन करेंगे ? और क्या संसार के अन्य लोगों को भी वैदिक साहित्य का अध्ययन करने का परामर्श देंगे । ऐसा करने से मानवता का बहुत बड़ा हित होगा । आशा है, वैज्ञानिक लोग उक्त प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार करेंगे और जो अपने विचार हमें भेजना चाहें, उनके विचार निम्नलिखित पते पर सादर आमन्त्रित हैं

[दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन विकास क्षेत्र रोजड़ सागरपुर, जि॰ सावरकांठा, गुजरात-383307]

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीक्षा

1. मैंने ऋषि दयानन्द को देखा (ऋषि दयानन्द के प्रत्यक्षदर्शियों के संस्मरणों का रोचक संग्रह) सम्पादक-डा॰ भवानीलाल भारतीय । **प्रकाशक तथा पुस्तक प्राप्ति स्थान-दयानन्द अध्ययन संस्थान, रत्नाकर,** 8/423 नन्दनवन, जोधपुर (राजस्थान) मूल्य-10 रुपये ।

वे व्यक्ति बड़े भाग्यशाली हैं, जिन्होंने महर्षि दयानन्द के दिव्य शरीर के दर्शन किये तथा उनके व्याख्यान सुनने का सुअवसर प्राप्त किया था । इस पुस्तक में ऐसे पच्चीस व्यक्तियों के संस्मरणों का संग्रह किया गया है । इनमें अनेक भारत के महाराजा, विद्वान्, लेखक, पत्रकार, उच्च कोटि के विरक्त संन्यासी, वेदभाष्यकार व्यक्ति हैं, जिन्होंने ऋषि दयानन्द को जैसा देखा जाना तथा समझा वैसा ही उद्‌बोधक शैली में अभिव्यक्त किया गया है । इनमें ईसाई जगत् के डा॰ टी॰ जे॰ स्काट, प्रो॰ मोनियर विलियम्स जैसे विचारकों तथा मुस्लिम मत के मुन्शी इमदाद हुसैन और महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी हैं, जिन्होंने साम्प्रदायिक दीवारों को भी लाघंकर निष्पक्ष विचार व्यक्त किये हैं । प्रत्येक धार्मिक एवम् ऋषि भक्त के लिए संग्रहणीय है ।

2. वेद और वेदार्थ- लेखक-डा॰ ज्वलन्तकुमार शास्त्री प्राध्यापक- संस्कृत विभाग महाविद्यालय अमेठी। **प्रकाशक- वैदिकप्रकाशन,** 7115 गली पहाड़ वाली, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-6, मूल्य-25 रुपये ।

इस पुस्तक को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में वेदों का पूर्ण परिचय दिया गया है । जैसे- वेदों का महत्त्व, वेदों की संख्या, वेदों की शाखाएँ, ऋग्वेद की प्राचीनता, ऋग्वेद का स्वरूप, वेदरक्षा के प्रयत्न, वेदार्थ का महत्त्व, वेदार्थ की विभिन्न पद्धतियाँ, वेदों के भाष्यकार आदि का विशद विवेचन किया गया है । और-

दूसरे खण्ड में वेदों पर किये गये विभिन्न आक्षेपों के सप्रमाण उत्तर दिए गए हैं । इन आक्षेपकर्त्ताओं में पाश्चात्य विद्वान् अंग्रेजों के मानसपुत्र भारतीय तथा साम्यवाद से प्रभावित व्यक्ति हैं । जैसे-आर्यों में नैतिकता का अभाव था, उपासना के क्षेत्र में आर्यों में अनेक देवी देवताओं की पूजा होती थी, इत्यादि । विद्वान् लेखक ने वेदों की अन्तः साक्षी से वैदिक मन्त्रों के प्रमाणों से बहुत ही युक्ति युक्त उत्तर दिया है । साम्यवादी डांगे को लेखक ने अति उत्तम उत्तर दिया है। "आज के सुसभ्य (सुधरे)) युग में जो स्वैर एवम् उच्छृङ्खल स्त्री पुरुष सम्बन्ध का वातावरण उत्पन्न करना चाहते हैं जो शायद जंगली समाजों में होगा। वेदों की साक्षी देकर लेखक ने जो वैदिक उत्तम विवाहों की व्यवस्था दिखाई है, वह तो बहुत ही आदर्श एवं पठनीय है । यम-यमी सूक्त पर किए आक्षेपों का भी अच्छा उत्तर दिया है । और वैदिक कालीन सभ्यता की उदात्त भावनाओं को दिखाकर पाश्चात्य विद्वानों की भ्रान्तियों का भली भांति निवारण किया है ।

इसके तृतीय खण्ड में वैदिक वाङ्मय की व्यापकता तथा महत्त्व, आस्तिक दर्शनों का आधार वेद, महर्षि दयानन्द की वैदिक मान्यताएं, यज्ञ और यजुर्वेद, वेदार्थ में व्याकरण का महत्त्व, वेदांगों में व्याकरण की प्रधानता, वेदार्थ में ऋषि की उपयोगिता, (मतभेद के साथ), अन्य कुछ आवश्यक समीक्षाओं के साथ, स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य में अशुद्ध पाठों पर विचार, रामायणकालीन वैदिक संस्कृति और वेद सब सत्य विद्याओं का मूल, इत्यादि विषयों पर सप्रमाण विचार किया गया है । पुस्तक के संग्रह में विद्वान् लेखक का भूरि श्रम श्लाघनीय है तथा पुस्तक संग्रहणीय एवम् उपादेय है।

राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद मन्त्रों के प्रारम्भ में ऋषिनामों को

वेदार्थ में सहायक मानने वाले डा॰ ज्वलन्तकुमार तर्काभासों पर विचार-

'वेद और वेदार्थ 'नामक पुस्तक में 'वेदार्थ में ऋषि उपयोगिता नामक एक पृथक् ही प्रसंग बनाया है । इस का मुख्य लक्ष्य ट्रस्ट के ग्रन्थों में छपी अथवा लेखों में प्रतिपादित मान्यता का ही खण्डन करना है । कहीं-कहीं भ्रष्ट भाषा के प्रयोग में भी लेखक ने संकोच नहीं किया जैसे (क) आर्य जगत् में केवल अष्टाध्यायी से समस्त संसार पर विजय करने वाले लोग भी हैं। (ख) ये दोनों पाठ हैं। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ने कोई निरुक्त छापा हो, जिसमें यह पाठ हो, यह और बात है । (ग) क्या यह स्पष्ट ज्ञान नहीं है। (घ) मैं ऐसे पण्डितों का खण्डन नहीं करूँगा जो उत्तर देने में दस मूर्खताएं और कर बैठते हैं इत्यादि।

महर्षि दयानन्द की ऋषियों के विषय में स्पष्ट मान्यता - आज के युग में महर्षि दयानन्द का स्थान वेद-भाष्यकारों में सर्वोच्च है । उन्होंने अपने गुरु के आदेश से समस्त ग्रन्थों का स्वाध्याय करके आर्ष व अनार्ष को भली प्रकार परखा था। तत्पश्चात् उन्होंने जीवन के अन्तिम वर्षों में अपनी निर्भ्रान्त मान्यताओं की स्थापना करके उनके अनुसार अपना वेद-भाष्य लिखा था । उनके भाष्य में एक भी स्थल नहीं है, जिससे उनकी मान्यताओं का विरोध होता हो या खण्डन होता हो । वेदमन्त्रों पर उद्धृत ऋषिनामों के विषय में उनकी यही अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है । महर्षि के वेद भाष्य में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है, जिसके अर्थ में ऋषि नाम की सहायता ली गई हो । महर्षि के विरुद्ध मान्यता रखने वाला कोई भी विद्वान् आज तक उनके वेदभाष्य से निकाल कर एक भी मन्त्र नहीं दिखा सका है । "जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका, तब प्राचीन ऋषि [illegible] पर विचार करने लगे, फिर उनमें से जिस जिस मन्त्र का अर्थ जिस ऋषि ने प्रकाशित किया उस उस का नाम उसी उसी मन्त्र के साथ स्मरण के लिए लिखा गया है ।" (ऋग्वेदादि भाष्य॰)।

जहाँ तक व्याकरण के ज्ञान से संसार को विजय करने की लालसा की बात है वह भी लेखक का महाभ्रम है । लेखक को कभी अवसर मिले तो अपने भ्रम को दूरकर देख ले । और जो व्यक्ति इस अपने ग्रन्थ में स्वयं लिख रहा है-(क) वेदार्थ करने में व्याकरण की महती उपयोगिता एक स्वर से स्वीकार करते हैं । 163पृ॰ (ख) वेदांगों में व्याकरण प्रधान है तथा वेदार्थ करने में उससे महत्त्वपूर्ण सहायता ली जाती है ।(161 पृ॰) उसे व्याकरण ज्ञान से घृणा क्यों ? क्या इसलिए कि लेखक व्याकरण से स्वयम् अनभिज्ञ है । इसलिए उसकी उपयोगिता जानते हुए भी उससे पृथक् रहना चाहता है ।

और निरुक्त के पाठ के विषय में बात यह है कि 'ऋषयो मन्त्रदृष्टयः मन्त्रान् सम्प्रादुः' यह पाठ भी महर्षि लिखित सत्यार्थप्रकाश का है, हमारा नहीं । पुनरपि ट्रस्ट के माथे इसलिए लगाया जा रहा है कि उसे बदनाम किया जाये। यह तो आपकी असूयावृत्ति का ही द्योतक है । और इस निरुक्त के दो स्थानों के पाठ को यह कहकर उपहास उड़ाना कि यह निरुक्त का पाठ नहीं है, ट्रस्ट ने ही ऐसा छाप दिया हो , यह आपका वाक् छल ही तो है । और दुर्जन तोष न्याय से इस पाठ को हमारा ही मान लिया जाये तो प्रस्तुत प्रसंग में क्या कमी आपने देखी ? क्या ऋषि मन्त्रार्थ में सहायक बन गये? आपके कितने ओछे एवं घृणा के द्योतक ये शब्द हैं " निरुक्त का पाठ गढ़ा----कुछ अन्यों ने पाठ गढ़ा, यह दोनों पाठ भ्रष्ट हैं" ।

इस बात को अजमेर में आपके गुरु विश्व जी से भी मैंने अजमेर शताब्दी पर आपके समक्ष पूछा था । तब तो आप तथा आपके गुरु जी ने कोई उत्तर नहीं दिया था । अब इस पुस्तक को लिख कर उत्तर देने चले होंगे ।

लेखक के लेख में एक अन्य भ्रान्ति-लेखक ने अपनी लिखी बातों पर भी पूर्वापर का ध्यान नहीं रक्खा । जिसे पूर्वापर का भी ध्यान न रहे उसे क्या कहा जाये ।

ऋषि शब्द मन्त्रार्थ में सहायक होते हैं । इसमें कोई भी प्रमाण न पाकर एक अनार्ष वचन उद्धृत कर दिया-'अर्थज्ञान ऋषिज्ञानं भूयिष्ठमुपकारकम् ।' अर्थात् वेदार्थ ज्ञान में ऋषि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ज्ञान बहुत उपकारक है। इस विषय में आपने लिखा है- -वैंकट माधव सायण से पूर्ववर्ती है। इनमें 200-250 वर्षों का अन्तर है। इसमें यह तो भूल हो सकती है कि हमें इन दोनों के कालक्रम में भूल हो गई किन्तु इससे यह वचन आर्ष कैसे हो सकता है? जिसे आपने अनेक बार दिखाने का प्रयास किया है। और इसमें हमने किसे और कैसे धोखा दिया है?

लेखक की अधूरी मान्यता पर विचार- लेखक लिखता है कि "ये ऋषियों के नाम दो प्रकार के हैं-एक मधुच्छन्दा आदि ऋषि नाम व्यक्तिगत अर्थात् निजी हैं जिनका मन्त्रार्थ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।---- परन्तु इन ऋषि नामों में कुछ नाम ऐसे हैं जो मन्त्रार्थ के कारण बाद में प्रसिद्ध हुए और उन ऋषियों के जो व्यक्तिगत नाम थे वे प्रचार में नहीं रहे।

समीक्षा- महर्षि के पक्ष को कुछ तो आपने भी मान लिया, एतदर्थ आप का धन्यवाद। परन्तु यह भी आप का निजी मत है, अपने पक्षधरों से प्रथम परामर्श तो कर लेते जो प्रत्येक मन्त्र के ऋषि को मन्त्रार्थ में घसीट रहे हैं। दूसरे प्रकार के जो ऋषि नाम हैं वे गुणों के कारण गौणिक हैं। उन ऋषियों ने जिस विद्या का प्रचार किया अथवा जिन मन्त्रों के अर्थ का साक्षात्कार किया, उस विद्या अथवा किसी गुण के कारण वे प्रसिद्ध हुए। इस में महर्षि की मान्यता में क्या दोष रहा। उस विद्या या गुण का तो मन्त्र में वर्णन है ही। किन्तु प्रश्न तो ऋषि नाम के मन्त्रार्थ में सहायता का है। उससे वेदार्थ जानने में क्या सहायता मिली? लेखक ने ऐसे ही उर्वशी और पुरुरवा का वेद मन्त्रों में वर्णन पढ़कर उन्हें ऐतिहासिक नहीं माना है। यह भी लेखक की भ्रान्ति है। क्योंकि वेद मन्त्र के पद के रूप में इनका अर्थ यौगिक ही होगा। प्रकरणानुसार और जिन के ये नाम प्रसिद्ध हुए, उन्हें ऐतिहासिक मानना ही पड़ेगा। मन्त्रगत पदों को ऋषिनामों के साथ जोड़ना और उन्हें मन्त्रार्थ में सहायक मानना सर्वथा भ्रान्त धारणा है। एक ही शब्द मन्त्र में पठित है तो वह प्रसंगानुसार अर्थ का द्योतन करेगा, किन्तु ऋषि का नाम प्रसिद्ध होने पर वह ऐतिहासिक पुरुष का ही बोध करायेगा, इस रहस्य को हमें भली भांति समझ लेना चाहिए। इसी प्रसंग में लेखक ने जो 181 पृष्ठ पर यह लिखा है-"मन्त्रों के ऋषियों के नामों का अर्थ किया जावेगा तो वे ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं रहेंगे। विचित्र तर्क है।" ऐसी शंका तो मैंने करी नहीं। क्या यह धोखा देना नहीं है?

लेखक का ऐसा मानना भी युक्ति युक्त नहीं कि 'वैंकट माधव को स्वामी दयानन्द ने कहीं प्रमाण नहीं माना' इस पर आपने यह दर्शाने का प्रयास किया यदि कोई उसने ठीक बात कही है तो उसे मानने में क्या दोष है? दो विरोधी मान्यताओं में दोनों सत्य कभी नहीं हो सकतीं।

क्या आप दोनों को सत्य मानते हैं, यह तो बड़ी अनर्थमूलक बात है सत्य भी ठीक है और असत्य भी। और 'उल्टा चोर कोतवाल को दण्डे' लोकोक्ति के अनुसार अपने विपक्षी को ही धमका रहे हो-"मूर्ख को समझाया जा सकता है, विद्वान् को भी समझाया जा सकता है, पर ज्ञान लव दुर्विदग्ध को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता है।" (180 पृ०)

और आप ने 'सर्वप्रथम जिन को साक्षात्कार हुआ यह सर्वप्रथम किस शब्द का अर्थ है' यह पूछा है। इस प्रश्न से तो स्पष्ट हो गया है कि आप यह पूछकर महर्षि दयानन्द के लेख पर आक्षेप कर रहे हैं। हमें तो निरर्थक ही घसीटना चाहते हो। क्योंकि प्रथम या सर्वप्रथम तो ऋषि के शब्द हैं। यह प्रश्न आपकी नासमझी का ही परिचायक है। क्योंकि मन्त्रार्थ का दर्शन प्रथम ही होगा, तभी उस दर्शन कर्त्ता का नाम उसके साथ जुड़ेगा। जैसे कोई यह पूछे कि विमान का आविष्कार किस ने किया है। यद्यपि परवर्ती अनेक वैज्ञानिकों के नाम विमान की खोज को बढ़ाने में या परिष्कृत करने में आ सकते हैं किन्तु मूल आविष्कारक को ही विमान का आविष्कारक माना जायेगा। इसी प्रकार मन्त्रद्रष्टा ऋषि वही होगा जो प्रथम द्रष्टा होगा। इतनी सरल सुगम बात को भी जो न समझे उसे क्या कह सकते हैं?

और 184 पृ० पर-'देवता और ऋषि दोनों को आप विषय ही समझते हैं। विषय से अतिरिक्त भी कुछ नहीं होता क्या?' यह आपका प्रश्न भी निरर्थक है। विषय से भिन्न कुछ और भी होता हो, क्या उसका कोई नामकरण नहीं है, जिसे आप बता नहीं सकते। इसी प्रकार (185पृ० पर) 'यज्ञ देवता मानने पर यज्ञपरक अर्थ नहीं हो सकता' लेख भी मिथ्या है। सम्भव है इसमें प्रेस की त्रुटि रह गई हो।

आपने लिखा है -"महर्षि दयानन्द ने मन्त्रों के देवता छन्द तथा ऋषि बदल दिये हैं। स्पष्टतः उनका परिवर्तन अर्थभेद के कारण है।" यह भी स्वयं साध्य कोटि में होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दिग्ध है। इसी प्रकार 'यथेन्द्रशत्रु: स्वरतोऽपराधात्' का ...वेद के 22 सहस्र मन्त्रों पर किया जाता है। यह कथन सन्दिग्ध होने से ठीक नहीं। वेदों में कुल मन्त्र संख्या 22 ... नहीं है। और महभाष्य का "विश्वामित्रस्तपस्तेपे" ...स्थल भी प्रामाणिक नहीं हो सकता। क्योंकि व्याकरण ...में तत्कालीन व्यवहार में आने वाले लोक के उदाहरण ...दिये हैं। जैसे - 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या:' अर्थात् पांच ...वाले प्राणी भक्ष्य हैं। क्या उन्हें खा लेना चाहिए। इसी ...विश्वामित्र के प्रसंग में विश्वामित्र ने तप किया, वह ...बन गया, यह बात तो सिद्धान्त से विरुद्ध नहीं है। परन्तु ...मित्र के तप करने से पिता, पितामह आदि भी ऋषि ...गये, यह बात वैदिक सिद्धान्त से विरुद्ध होने से मान्य ...हो सकती। क्योंकि कृतकर्मों का फल स्वयं ही भोगा ...गा, अन्य को नहीं। और इससे विश्वरथ का विश्वामित्र ...में आर्षप्रमाण भी नहीं बनता।

इसी प्रकार इस पुस्तक में कतिपय अन्य स्थल भी विचारणीय हैं। जैसे-त्रिविध प्रक्रिया। वेदार्थ में त्रिविध प्रक्रिया को स्वीकार (44-48 पृ०) करके (पृ० 149 पर) उसके विरुद्ध भी लिखा है। उन्होंने मन्त्रों के विविध या चतुर्विध प्रक्रियाओं में वेद भाष्य किए हैं। और त्रिविध प्रक्रिया भी महर्षि दयानन्द की मान्यता से विरुद्ध है क्योंकि ऋषि लिखते हैं -

" वेदों के सब मन्त्र तीन प्रकार के अर्थों को कहते हैं। कोई परोक्ष अर्थात् अदृश्य अर्थों को कोई प्रत्यक्ष अर्थात् दृश्य अर्थों को और कोई अध्यात्म अर्थात् ज्ञान गोचर आत्मा और परमात्मा को। उनमें परोक्ष अर्थों के कहने वाले मन्त्रों में प्रथम पुरुष------एवं प्रत्यक्ष अर्थ के कहने वालों में मध्यम पुरुष------तथा अध्यात्म अर्थ के कहने वाले मन्त्रों में उत्तम पुरुष ॥" (ऋ० भा० भू० प्रश्नोत्तर विषय)

आशा है कि विद्वान् लेखक पुन: विचार करने का प्रयास करेंगे।

–राजवीर शास्त्री

□□□

एक नवीन वेदान्ती से शास्त्र चर्चा

–उत्तमचन्द्र शरर

पिछले दिनों एक साधु आर्यसमाज में आकर रहने ...समाज वालों के पूछने पर उन्होंने स्वयं को समाज ...के गुरु होने का परिचय दिया। समाज में वे रहे परन्तु ...के दैनिक सन्ध्या हवन, व्याख्यान से सर्वथा अलग। ...का पता करने समाज पहुंचा। मैंने देखा कि यह महात्मा आर्यसमाज शालीमार बाग में भी रह रहे थे। तब वहां के ...जी ने बताया था कि यह पौराणिक साधु हैं।

वार्तालाप में वे धमाके से बोले कि अब आर्यसमाज ...हो चुका। अब इस के विद्वान् हमारे साथ बातें करते ...हैं, उनके पांव थरथराते हैं जैसे वे रेत पर खड़े हों। ...सोचा चलो आज इनकी विद्वत्ता से लाभ उठा लें। अत: ...कि आप को आर्यसमाज के किस सिद्धान्त से मतभेद ...अकड़ के बोले -" मैं तो सत्यार्थप्रकाश की एक एक ...का खंडन कर सकता हूँ।" जरा स्वमन्तव्याम-मन्तव्यप्रकाश को ही देख डालो। मेरी उत्सुकता बढ़ी और बाबा जी को समाज के कमरे में बिठा कर ऋषि लिखित प्रथम मन्तव्य ईश्वर सम्बन्धी पढ़ा और पूछा कि इससे आपको क्या मतभेद है ? बोले यहाँ ईश्वर को सर्वज्ञ कहा गया है। जैसे वे नहीं मानते थे। क्या कार्य आप कल करेंगे ईश्वर उसे आज जानता है ? मैंने उत्तर में कहा कि ईश्वर का ज्ञान अपरिवर्तनशील एवम् एक रस है, वह काल की सीमा से परे है। ईश्वर के लिए भूत भविष्यत् तथा वर्तमान का बन्धन नहीं है। यह बन्धन जीवों के लिए है क्योंकि वे एकदेशी तथा काल के बन्धन में हैं। उनका पुन: आग्रह हुआ कि जो कार्य अभी नहीं हुआ क्या उसे ईश्वर जानता है, मैं ने कहा वह यही जानता है कि कार्य नहीं हुआ, जो जैसा अब है ईश्वर उसे वैसा ही जानता है। घबरा कर के वह थोड़ा सा आत्मलीन होने का नाटक करने लगे, पुन: नेत्र खोलकर बोले, आत्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो सदा पवित्र और निर्लेप है और व्यापक भी है आप क्या मानते हैं ? बात ऋषि के मन्तव्य से हट गई । मैंने जीव के लक्षण-'इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख एवं ज्ञान', न्याय, दर्शन के सूत्र से बताये । बोले ज्ञातृत्व तो जीव में है अत: इस में स्वयं स्वरूप से पवित्रता है । पाप राग द्वेष चिन्ता के संयोग से हो जाता है और वह भी आत्मा में नहीं चित्त में ही होता है । मैंने पूछा कि चित्त जड़ है या चेतन ? बोले जड़ है मैंने कहा कि जड़ में राग द्वेष कैसा ? यह तो आत्मा में ही सभंव है, जो चेतन है। बोले यदि चित्त न हो तो आत्मा को राग द्वेष का भाव कैसे? यह तो चित्त का धर्म है ? मेरा प्रश्न था कि हत्या तलवार करती है या करने वाला व्यक्ति ? यदि तलवार दोषी हो और आपकी सरकार हो तो हत्यारे के स्थान पर तलवार को फांसी लगा दी जावे । तिलमिला कर बोले आप की बात बेहूदा है, मैंने कहा आप संन्यासी हैं मानसिक संतुलन क्यों खोते हैं ? मैं आप के कथन के लिए यह शब्द प्रयोग न करूंगा, क्योंकि आप मेरे समाज में बैठे हैं । हां मुझे इस बात का खेद है कि चर्चा किसी सभ्य व्यक्ति से न हो सकी।

एक बार पुन: ध्यान का नाटक किया, नेत्र खोल फिर बोले आत्मा तो व्यापक है उस में राग द्वेष कैसा ? मैं पूछ बैठा आत्मा एक है या अनेक । बोले अनेक । मैंने कहा कोई उदाहरण दीजिये कि अनेक वस्तुएं सर्वव्यापक हों । बोले चित्त एकदेशी है उसे राग द्वेष जागता है। मैं ने कहा न तो आप वेदान्त को समझते हैं जो केवल ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करता है और न आप दयानन्द के सिद्धान्त को समझते हैं । काश आप ने सत्यार्थप्रकाश के सप्त समुल्लास के यह शब्द पढ़े होते-

प्रश्न- अन्त:करण चलता फिरता है या नहीं ?

नवीन वेदान्ती-चलता फिरता है ।

प्रश्न- अन्त:करण से साथ ब्रह्म भी चलता फिरता है? या स्थिर रहता है ?

नवीन वेदान्ती-स्थिर रहता है ।

प्रश्न- जब अन्त:करण जिस जिस देश को छोड़ता है उस उस देश का ब्रह्मअज्ञान रहित और फिर जिस-जिस देश को प्राप्त होता है उस उस देश का ब्रह्म अज्ञानी होता होगा। वैसे क्षण में ज्ञानी और अज्ञानी ब्रह्म होता होगा, इससे बन्ध और मोक्ष भी क्षण-भंगुर होगा और जैसे अन्य के देखे का अन्य स्मरण नहीं कर सकता, वैसे कल की देखी-सुनी हुई वस्तु का ज्ञान नहीं कर सकता, क्योंकि जिस समय देखा या सुना था वह देश दूसरा और काल भी दूसरा, जिस समय स्मरण करता, वह दूसरा देश और काल है।

जो कहो कि ब्रह्म एक है तो सर्वज्ञ क्यों नहीं ? जो कहो कि अन्त:करण भिन्न है इससे वह भी भिन्न-भिन्न हो जाता है, तो वह जड़ है उस में ज्ञान नहीं हो सकता।

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास)

वस्तुत: ऋषि का तर्क अकाट्य है अभी तक तो कोई आचार्य ऋषि के तर्क का प्रतिवाद नहीं कर पाया। खेद है उन पुरोहितों पर जो आर्य पुरोहित कहलाते हैं और ऐसे साधु नामधारी लोगों को अपना गुरु कहते हैं जो ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का विरोध करने में विद्वत्ता मानते हैं, और उस से बढ़कर खेद है, उन सभा समाजों पर जो इस प्रकार के लोगों को अपना पुरोहित बना समाज में ही पाखंड को पनपने का अवसर देती हैं।

□□□

विशुद्ध-मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोकरहित हिन्दी भाष्य, प्रक्षिप्त श्लोकों की सप्रमाण एवं अन्त:साक्षी पूर्वक समीक्षा सहित और विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

१. वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवम् अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी।
२. प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित एवम् विशेष स्थलों पर समीक्षा सहित।
३. अवैदिक एवम् असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों तथा मनु की मौलिक मान्यताओं से युक्त।
४. महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यात श्लोकार्थों से अलंकृत।
५. अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति' की भाँति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

ट्रस्ट के माध्यम से आप जो महर्षि दयानन्द के सत्य सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं वह बहुत ही स्तुत्य है। क्योंकि आर्य जिनके पास अथाह सम्पत्ति है, वे ऋषि के मिशन का प्रचार न करके आपस में लड़ाई भगड़े में ही सम्पत्ति को बरबाद कर रही हैं। मैं आप के ट्रस्ट के कार्यों से बहुत प्रभावित हूँ।

आचार्य राजदेव आर्य,
प्राचार्य आर्य गुरुकुल एरवा कटरा (इटावा) उ॰ प्र॰

दयानन्द सन्देश का **सरलयोग से ईश्वर साक्षात्कार** नामक विशेषांक समय पर हस्तगत हुआ। बड़े मनोयोग से इसका स्वाध्याय किया। इसमें योग के विषय में इतनी सार्थक और रचनात्मक सामग्री है एतदर्थ आप बधाई के पात्र हैं। इस अंक के लिए स्वामी सत्यपति जी की साधना तथा पुरुषार्थ प्रशंसा के योग्य हैं।

भगवान देव चैतन्य
190/ एस. 3 सुन्दर नगर (हि॰ प्र॰)

आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार में तथा विरोधियों के आक्षेपों का उत्तर देने में दयानन्द सन्देश जो कार्य कर रहा है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसके लिए आप तथा धर्मपाल जी बधाई के पात्र हैं। **उत्तमचन्द्र शरर, पानीपत**

इस बार जो विशेषांक आपने भेजा है वह बहुत ही प्रशंसनीय तथा उपादेय है। एतदर्थ हृदय से आभार प्रदर्शन करता हूँ। मानव जीवन का जो मुख्य लक्ष्य है उसे इस अंक में हमारे समक्ष बहुत ही सरलता से रक्खा है।

-नारायण सरस्वती

आपका पत्र आर्य जगत् में बहुत ही उच्च कोटि की सामग्री पाठकों के लिए उपलब्ध कराता है। अतः बार बार धन्यवाद है। मई-जून 93 का अंक (सरलयोग से ईश्वर साक्षात्कार) बहुत ही उपयोगी है।

करण सिंह आर्य
पूनम कालोनी, कोटा (राज॰)

सरल योग से ईश्वर साक्षात्कार यह विशेषांक बहुत ही उपयोगी लगा। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये उतनी ही थोड़ी है। अल्पशिक्षित व्यक्ति भी इससे लाभ उठा सकते हैं। लेखक की समझाने की शैली बहुत अच्छी है।

दिनेश कुमार चौरसिया, नया बाजार,
साहिबगंज (बिहार)

□□□

शुभ सूचना

समस्त आर्यसज्जनों को सूचित किया जाता है कि आर्य जगत् के विख्यात विद्वान् प्रसिद्ध व्याख्याता एवं कवि आचार्य श्री ओंकार मिश्र प्रणव शास्त्री एम. ए. कृत वेद वैचित्र्य ग्रन्थ (112 पृष्ठ) जिसका मूल्य 100 रु॰ है, वह आगामी वेद प्रचार सप्ताह तक 70 में प्राप्तव्य है। इस ग्रन्थ में मान्य श्री शास्त्री जी ने वेद के विचित्रता वाले 22 मन्त्रों की व्याख्या अत्यन्त रोचक सरस सुबोध गम्य शैली में सरल भाषा में की है। इच्छुक सज्जन डाकव्यय सहित 80 रु॰ प्रेषित कर रजिस्टर्ड डाक से ग्रन्थ प्राप्त कर सकते हैं। **विश्वनिधि मिश्र एम. ए.**
शास्त्री सदन, राम नगर (कटरा) आगरा-६ (उ.प्र.)

आर्यसमाज के प्रचार एवं प्रसार के लिए वैदिक साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका सर्वथा असन्दिग्ध है। वर्तमान समय में वैदिक साहित्य के प्रकाशन के क्षेत्र में एकमात्र आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली का स्थान निःसन्देह सबसे ऊपर है, जिसने महर्षि दयानन्द प्रणीत साहित्य को अल्पतम मूल्य में सर्वसाधारण को सुलभ कर प्रशंसनीय कार्य किया है इसके लिए सम्पूर्ण आर्य जगत् ट्रस्ट का ऋणी है।

यह खेद की बात है कि वर्तमान में आर्यसमाज के प्रचार व प्रसार के लिए यद्यपि बहुत सी संस्थाएँ बनी हुई हैं। इन संस्थाओं के पास सभी प्रकार के साधनों की उपलब्धता है पर वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तदनुकूल कार्य करने में सर्वथा असफल रही हैं। उन संस्थाओं से सम्बन्धित लोग आत्मप्रशंसा के लोभ में आर्यसमाज के आन्दोलन में गतिशीलता प्रदान करने में सर्वथा अयोग्य प्रमाणित हो रहे हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में आर्ष प्रकाशन ने अपने कार्यों के द्वारा एक छोटा सा दीपक प्रज्वलित किया है जो आज अन्य लोगों के लिए मशाल के रूप में प्रकाशस्तम्भ का काम कर रहा है। इस सभा की शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

दयाराम पोद्दार, छोटा नागपुर आर्य प्रतिनिधिसभा, रांची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

गीता का चक्रव्यूह

डा. रामकृष्ण आर्य, सत्यार्थ रत्न, सिद्धान्त शास्त्री, विद्या वाचस्पति, मेडिकल अफसर, अति. प्रा. स्वा. केन्द्र कारोमकर, जौनपुर

(च) गीता महाभारत का मौलिक अंश नहीं है। "राजा भोज ने अपने संजीवनी नामक इतिहास में लिखा है कि व्यास जी ने ४४०० उनके शिष्यों ने ५६०० श्लोकों युक्त कुल १० हजार श्लोकों में महाभारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में २० हजार हो गया था। राजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय में २५ हजार और मेरी आधी उम्र में ३० हजार श्लोक युक्त महाभारत ग्रन्थ मिलता है। जो ऐसे ही प्रक्षेप किया जाता रहा तो एक समय महाभारत एक ऊँट का बोझा हो जायेगा।" (स॰प्र॰ समु॰११) और हम देखते हैं कि इस समय महाभारत में १ लाख से भी अधिक श्लोक हैं। अतः सिद्ध है कि महाभारत में काफी मिलावटें हुई हैं। उन्हीं मिलावटों में से गीता भी एक है। महाभारत में प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर 'इति महाभारत' लिखा मिलता है लेकिन गीता में 'इति श्रीमद् भगवद्गीतासु' लिखा रहता है जो कि चोर की दाढ़ी में तिनका है।

नोट:-गीता धूर्त की रचना है प्रामाणिक ग्रंथ नहीं। देखो-

कलिमल ग्रसेउ धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रंथ॥
दंभिन निज मत कल्प कर, प्रगट किये बहुपंथ॥
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संयुत ज्ञान विवेक॥
ते न चलहिं नर मोह बश, कल्पहिं ग्रंथ अनेक॥

- तुलसीदास

इसका तात्पर्य यह है कि जब महाभारत के बाद वेदरूपी सूर्य अस्त हो गया तो अन्धकार में धूर्तों ने जनता को लूटने के लिए नये-नये मत-पंथ-सम्प्रदाय चलाये। किसी ने वैष्णव मत चलाया तो किसी ने अन्य मत। जब वैष्णव मत के किसी धूर्त की खोपड़ी पर अपना अलग मत चलाने का भूत सवार हुआ तो उसने अर्जुन को मोह और कृष्ण द्वारा उपदेश का ताना-बाना बुना और गीता की रचना की तथा कृष्ण पंथ चल पड़ा।

देखो, जिस प्रकार पुराणकर्ताओं ने जनता को ठगने के लिए अनेकों हथकंडे अपनाये हैं उसी प्रकार गीताकार ने भी कृष्ण पंथ चलाने के लिए कोई भी हथकंडा नहीं छोड़ा। गीताकार के हथकंडे इस प्रकार हैं-

१- कृष्ण ईश्वर के अवतार थे और गीता उन्हीं का उपदेश है। गीता ४ । ६

२-जो लोग कृष्ण को ईश्वर नहीं मानते और नहीं भजते वे मूर्ख, दुष्ट, नीच तथा राक्षस हैं। गीता ७ । १५

३- कृष्ण को भजने तथा गीता पढ़ने वाले पापों से छूट जाते हैं। गीता १८ । १६, ६६

४- गीता में सदा सदा के लिए मुक्ति का प्रलोभन दिया है। गीता १८ । १६ व १५ । १६

५- गीता को वेद से भी श्रेष्ठ लिखा है। गीता २ । ४६

६- गीता को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए गीताकार ने उसे महर्षि व्यास की रचना महाभारत में मिला दिया। (महा भी. प. अ. २५-४२)

७- गीताकार ने एक और चाल चली है। उसने गीता की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए और कई श्लोक गढ़कर महाभारत में मिलाया है। देखिए, युधिष्ठिर के राज्यारोहण के पश्चात् कृष्ण के द्वारिका प्रस्थान करते सम्य अर्जुन निवेदन करते हैं-"हे कृष्ण मैं गीता का उपदेश भूल गया हूँ, पुनः सुनाइये।" कृष्ण उत्तर देते हैं-" हे अर्जुन उस समय मैंने योगयुक्त होकर ज्ञान दिया था। अब मुझे भी उसका पूरा-पूरा स्मरण नहीं रहा।" महा. आ. प. १६ । ९-१३

वास्तव में उपर्युक्त ७ हथकंडे गीता रूपी चक्रव्यूह के ७ फाटक हैं। महर्षि दयानन्द को कोटिशः धन्यवाद जिन्होंने पंच परीक्षा रूपी एक ऐसा हथियार दिया है जिसके द्वारा ७ फाटक या लाख फाटक हों पैटर्न टैंक की भांति टूटते नजर आयेंगे। नीर क्षीर विवेकी परम हंस महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज गीता को प्रामाणिक नहीं मानते थे।

उन्होंने गीता को कहीं भी प्रामाणिक नहीं माना है। उन्होंने गीता को अप्रामाणिक ग्रंथों की कोटि में रखकर उसका खंडन किया है। प्रमाण-

(क)" महर्षि दयानन्द गीता को त्रिदोष का सन्निपात बतलाते थे।"

-बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय कृत महर्षि दयानन्द चरित्र भाग 2 । पृ. 203।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी ने कहा गीता प्रामाणिक नहीं है।"
...राम रचित स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र पृ. ५५०

सहजानन्द- "वेद व्यास सूत्र, भागवत पुराण, (महाभारत में कहा हुआ) विष्णु सहस्रनाम, भगवद्गीता, विदुरनीति (स्कंदपु. और वैष्णवखंड में कहा हुआ) वासुदेव माहात्म्य और धर्म शास्त्रों में याज्ञवल्क्य स्मृति आदि ८ सच्छास्त्रों का प्रमाण मुझे अभीष्ट है।

महर्षि दयानन्द द्वारा समीक्षा- "भागवतादि पुराण, ...रत में विष्णु सहस्रनाम और भगवद्गीता आदि का ही ...र्थ स्वीकार करना तथा दूसरे श्रेष्ठ ग्रंथों का त्याग। ...व माहात्म्य, याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरी टीका का ही ... पूर्वमीमांसादि शास्त्रों का तथा मनुस्मृति का त्याग करने ...द्ध होता है कि सहजानंद अविद्वान् था।" शि.प. ध्वान्त- ...त।

देखो यहाँ महर्षि दयानन्द ने वेद, व्याससूत्र तथा विदुर ...को छोड़कर गीता सहित सब ग्रंथों का खंडन किया है ...गीता को अप्रामाणिक ग्रंथों की कोटि में गिना है।

शंका- यदि महर्षि दयानन्द ने गीता को अप्रामाणिक माना है तो सत्यार्थ प्रकाश में उसका प्रमाण क्यों दिया है?

समाधान- स्वामी जी ने गीता की कुछ बातें वेदानुकूल देखकर लिख दिया है। जैसे- **'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्'** स. प्र. भू.

इसी प्रकार स्वामी जी ने १० उपनिषदों के अतिरिक्त सभी उपनिषदों को अप्रामाणिक माना है परन्तु उनमें भी यदि कोई वेदानुकूल बात मिल गई है तो उसको लिखा है जैसे- "स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः" (स. प्र. समु.१) देखो वेदानुकूल सच्ची बात कहीं से भी लिखी जा सकती है। क्या अच्छी बातें ग्रहण कर लेना अनुचित है? यदि स्वामी जी ने गीता की एक दो बात वेदानुकूल देखकर लिख दी तो इससे गीता प्रामाणिक नहीं हो सकती। और स्वामी जी ने कैवल्य उपनिषत् का प्रमाण दिया है तो क्या उसे भी प्रामाणिक मानते हैं? मैं कहता हूँ पुराण, कुरान बाइबिल आदि किसी भी ग्रंथ में वेदानुकूल सच्ची एवम् अच्छी बातों का प्रमाण दिया जा सकता है परन्तु वे ग्रंथ प्रामाणिक कदापि नहीं हो सकते।

॥ शमित्योम् ॥

□□□

आया हूँ शरण तिहारी मैं

अज्ञान दूर कर दो मेरा
आया हूँ शरण तिहारी मैं ।
अभिमान चूर कर दो मेरा
आया हूँ शरण तिहारी मैं ॥
सबने मुझको ठुकराया है
पीड़ा दे मुझे रुलाया है ।
अपमान दूर कर दो मेरा
आया हूँ शरण तिहारी मैं ॥
भोगों में सब कुछ भूल गया
मैं वेदों के प्रतिकूल गया ।
सन्मार्ग में बढ़े अब पग मेरा
आया हूँ शरण तिहारी मैं ॥
जल थल नभ में है तू ही तू
फूलों में तेरी ही खुशबू ।
नित ध्यान धरूं मैं प्रभु तेरा
आया हूँ शरण तिहारी मैं ॥

अब एक तुम्हारी आशा है
प्रभु दर्शन की अभिलाषा है ।
सर्वस्व तुम्हें मेरा अर्पण
आया हूँ शरण तिहारी मैं ॥
दिन रात रहूँ भजता तुझको
हे नाथ सहारा दो मुझको ।
तव चरणों में चित हो मेरा
आया हूँ शरण तिहारी मैं ॥
"हरि" सादर करता है विनती
तव भक्तों में हो मम गिनती ।
ओंकार सिवाय सहाय नहीं
आया हूँ शरण तिहारी मैं ॥
अज्ञान दूर कर दो मेरा
आया हूँ शरण तिहारी मैं ।
अभिमान चूर कर दो मेरा
आया हूँ शरण तिहारी मैं ॥

हरि कुमार रामलाल साहू, पुस्तकाध्यक्ष-आर्य समाज, सुभाष नगर, बिलासपुर (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

तुलसीकृत रामायण-समीक्षा

पं॰ छाजूराम शर्मा शास्त्री, विद्यावाचस्पति

२७-श्रीराम समदर्शी कैसे?

गोरखपुर गीता प्रेस से प्रकाशित मध्यम साइज सटीक रामचरित मानस में श्रीराम को समदर्शी बताया है। वहाँ लिखा है–

'समदरसी मोहि कह सब कोऊ'

'कह बाली सुनु भीरु-प्रिय समदरसी रघुनाथ'

चूंकि तुलसीदास जी की दृष्टि में श्री राम परमात्मा थे। अतः परमात्मा को समदरसी बताना तो बिल्कुल सही विचार है। क्योंकि, सभी जीवों को उन्हीं ने जन्म दिया है। सब उनके हैं और वे सबके हैं। परन्तु, यहाँ सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि श्री तुलसीदास जी ने जन्म से ही श्री राम के समदरसी न होने का समर्थन भी कर दिया है जो उनके विचारों के ही विरुद्ध कथन है। देखिये–

'विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार'

वे लिखते हैं कि परमात्मा ने ब्राह्मण, गाय, देवता तथा साधुओं के हित वा रक्षा के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया। आश्चर्य है कि सर्वशक्तिमान् होकर परमात्मा ब्राह्मणादि की रक्षा नहीं कर सकता और उसे अल्पशक्तिमान् मनुष्य के रूप में आ कर उनकी रक्षा करनी पड़ती है। क्योंकि मनुष्य हो कर तो वे एक सीमित शक्ति का ही प्रयोग कर सकते हैं। संसार में अन्य जीव भी तो परमात्मा के ही सन्तान हैं। उनकी रक्षा के लिए वह अवतार क्यों नहीं लेता? जब यह पक्षपात है, तो फिर श्री राम समदर्शी कैसे हुए? यह तो सौतेला व्यवहार है कि परमात्मा केवल गौ, ब्राह्मण सन्त आदि का ही हिमायती है। सन्त या साधु शब्द से आजकल भगवे वस्त्रधारी लंगोट बन्द साधुओं को समझा जाता है। जो कि ठीक नहीं है, क्योंकि साधु शब्द आर्य शब्द का ही पर्यायवाची शब्द है। सभ्य, सज्जन भी उसी के नाम हैं। अमर कोश में लिखा है–

'महाकुलकुलीनाः सभ्यसज्जनसाधवः'

इससे स्पष्ट है कि श्रेष्ठ पुरुष गृहस्थी भी साधु ही है। गृहस्थी सभी वर्णों में हैं। फिर, तुलसीदास जी ने क्षत्री वैश्य और शूद्र वर्ण के सज्जन लोगों की उपेक्षा करके केवल ब्राह्मण के हितार्थ ही परमात्मा का अवतार क्यों माना? कुत्ता, सूअर, हाथी, बकरी, भेड़, शेर गीदड़ आदि की उपेक्षा करके गौ के लिए ही अवतार क्यों लिया गया?

इसके अतिरिक्त तुलसीदास जी ने सन्तों के जो लक्षण लिखे हैं, उसके अनुसार कोई बिरला ही सन्त विश्व में हो सकता है। शेष तो असन्त ही ठहरते हैं। उदाहरण के लिए –

विरति विवेक विनय विग्याना । बोध अथारथ वेद पुराना ॥

दम्भ मानमद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग काऊ ॥

षट् विकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥

अमित बोध अनीह मित भोगी । सत्य सार कार्य कोविद जोगी ॥ इत्यादि

आज के युग में इन गुणों से युक्त होने का कौन दावा कर सकता है? क्या इन घूमने वाले साधुओं में ये गुण घटते हैं? रामायण में जिन विश्वामित्र, अगस्त्य आदि ऋषियों की चर्चा आती है, तुलसीदास जी के अनुसार वे भी सन्त पद पर खरे नहीं उतरते। फिर वे कौन से सन्त रहे कि जिनको असन्त सता रहे थे और उनकी रक्षा के लिए परमात्मा को मनुष्य बनना पड़ा? फिर गौ ब्राह्मण व सन्त क्या आज नहीं सताये जा रहे? अब वह अवतार क्यों नहीं ले रहा? किसी जाति वा वर्ण विशेष के लिए ही परमात्मा का अवतार लेना उसे न तो समदर्शी ही सिद्ध करता है और न न्यायकारी। जिन असन्तों के विनाश के लिए परमात्मा को मनुष्य बनना पड़ा, वे असन्त भी तो श्री राम ने ही उत्पन्न किये थे। सब कुछ उन्हीं की प्रेरणा से हो रहा है। जीव तो परवश है। केवल परमात्मा ही स्वतन्त्र है। फिर पापी जीवों का क्या अपराध है। देखिये–

होइ है सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहि साखा॥

अथवा- राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करे अन्यथा अस नहिं कोई॥

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

'परवस जीव स्ववस भगवन्ता॥ इत्यादि।

इसका अर्थ यह हुआ कि श्री राम परमात्मा ही कुछ मनुष्यों को कुबुद्धि दे कर पाप कराते हैं उन्हीं के विनाश के लिए वे अवतार लेते हैं। निष्पक्ष पाठक सोचें कि फिर अपराधी कौन हुए?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री राम अन्तर्यामी भी नहीं

श्री राम ने सुना कि भरत जी ससैन्य चित्रकूट की ओर आ रहे हैं तो प्रसन्नता के साथ वे चिन्तित भी हुए कि सेना के साथ आने का क्या कारण है। वे नहीं समझ पाये कि भरत के सेना सहित आने का क्या कारण है। सुनि रामहि भा अति सोचू। अर्थात् श्री राम बड़े सोच में पड़ गये। तुलसीदास जी का यह श्रीराम की सर्वव्यापकता और सर्वान्तर्यामी होने पर पानी फेरना है। एक ओर उनको उरप्रेरक, सर्वज्ञादि विशेषण देना। और उनकी व्याकुलता तथा सन्देहजनक मनोदशा का वर्णन करना दोनों ही परस्पर विरुद्ध लेख हैं। श्री राम को ईश्वर सिद्ध करने के लिए तुलसीदास जी बुद्धिजीवियों की दृष्टि में सफल नहीं हुए। हां, भोले वा अज्ञ लोगों पर ही उनका प्रभाव है। क्योंकि, उनकी अतर्क्य बुद्धि तुलसीदास जी की चतुराइयों का पता लगाने में सर्वथा अक्षम है।

इसी प्रकार श्रीराम मोह से भी मुक्त नहीं हो पाये। क्योंकि जनक जी के बाग में जब सीता गौरी पूजने सखियों के साथ आयीं तो वहां श्रीराम सीता को देख कर मोहग्रस्त हो गये और लक्ष्मण से सीता की सुन्दरता की सराहना करने लगे जब कि परमात्मा काम, क्रोध, मोहादि से रहित होता है। राम के अन्दर परमात्मा के लक्षण किस प्रकार घटते हैं? ईश्वर के लक्षण तो ये नहीं हैं। तुलसी बाबा ही इसको जानें। हम इससे सहमत नहीं है।

तुलसीदास जी का भुलक्कड़पन

सीताहरण के अवसर पर रावण-जटायु का युद्ध हुआ। रावण जटायु को अंग भंग व घायल करके सीता को वायुयान से लंका को ले गया। जब राम सीता की खोज में आगे बढ़े तो जटायु को मरणासन्न दशा में देखा। कारण पूछने पर मरने से पूर्व जटायु ने राम को बताया-

लंकापति यह गति कीन्हीं। तेहि खल जनक सुता हर लीन्हीं॥
लै दच्छिन दिसि गयेउ गुसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥

समीक्षा- यहां राम को पता चल गया कि सीता को लंका का राजा दक्षिण दिशा को ले गया है। लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि जब राम लक्ष्मण सहित वर्षा ऋतु व्यतीत कर चुके तो वही राम लक्ष्मण से यों कह रहे हैं-

वर्षा गत निर्मल ऋतु आई। सुधि न तात सीत की पाई॥
एक बार कैसेहु सुधि जानौं। कालहु जीत निमिष महं आनौं॥

जब जटायु द्वारा राम को पता चल गया कि सीता को रावण ले गया है तो वे आगे चल कर लक्ष्मण से ऐसा क्यों कह रहे हैं कि हे लक्ष्मण! वर्षा ऋतु बीत गई, लेकिन सीता की सुधि व उसका पता अभी तक नहीं चला? उन्हें तो सीधे लंका की ओर प्रस्थान कर देना था अथवा सुग्रीव द्वारा वानर सेना की सहायता से लंका में सीता का पता लग सकता था। फिर राम ने सीता की खोज के लिए सुग्रीव से कह कर चारों दिशाओं में वानरों को क्यों भेजा? श्रीराम को चाहिये था कि वे सुग्रीव को स्पष्ट बता देते कि वानरों को कहीं भी भेजने की आवश्यकता नहीं है। सीता रावण के यहीं लंका में है। अत: लंका की ओर चलने का प्रबन्ध कीजिये।

पाठक विचार करें कि तुलसीदास जी ने पूर्वापर प्रसंग को देखे बिना ही कितनी भूल कर दी। लेकिन अन्धविश्वासी रामायण के पाठक हमारे इस कथन पर आपत्ति प्रकट करेंगे। वे कहेंगे कि हमने तुलसीदास जी की रहस्यमयी बात को समझा नहीं है। अब वे ही बतायें कि इसमें क्या रहस्य है?

३०. क्या मारीच श्रीराम का हाथा?

रावण सीता हरण में सहायतार्थ मारीच के पास पहुँचा। मारीच राम के बल को जानता था कि इस कार्य में राम द्वारा मेरा मरना निश्चित है। अत: इच्छा न होते हुए भी रावण द्वारा विवश किये जाने पर वह चल पड़ा। और पंचवटी पर कृत्रिम सुवर्णमय हिरण का रूप धर कर वहाँ विचरने लगा। जब राम ने उस को बाण मारा तो तुलसीदास जी लिखते हैं

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥
अन्तर प्रेम तासु पहचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना॥

अर्थात् मरने से पूर्व मारीच ने लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा। फिर मन में श्रीराम का स्मरण किया और प्राण त्याग दिये। श्रीराम ने उसके अन्दर के प्रेम को पहचान लिया। उसे वह उत्तम गति प्रदान की जो मुनियों के लिए भी मिलनी कठिन है।

समीक्षा- विचारणीय है कि मारीच सीताहरण में रावण के लिए पूर्ण सहायता कर रहा है और उसके किसी भी व्यवहार से यह प्रकट नहीं होता कि वह श्रीराम से प्रेम करता है। फिर राम ने उस के आन्तरिक प्रेम को कैसे पहचान लिया जिससे उसे उत्तम गति दी। राम के विचार शून्य भक्त कहेंगे कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्यामी थे। इससे मारीच के प्रेम को जान लिया। लेकिन हम श्रीराम के अन्तर्यामी न होने का सप्रमाण खण्डन कर चुके हैं। अत: यह उत्तर भी गलत सिद्ध हो गया। यदि मारीच का राम से आन्तरिक प्रेम होता तो यह लक्ष्मण को न पुकार कर श्रीराम को रावण के सीताहरण का भेद खोल देता। इससे सीताहरण न होता और रावण अवश्य वहीं मारा जाता और मारीच बच जाता। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। मरते मरते भी मारीच रावण के उद्देश्य को सफल बना गया। स्पष्ट है कि मारीच रावण का विश्वासपात्र व्यक्ति था। उसका राम के प्रति कोई आन्तरिक प्रेम नहीं था। यदि होता तो उसके व्यवहार से क्या राम उस प्रेम को नहीं समझते? फिर वे उसे बाण ही क्यों मारते। अत: तुलसीदास जी ने स्वेच्छा से कल्पना करके यह बे सिर पैर की बात लिख डाली कि राम ने मारीच को मुनि दुर्लभ उत्तम गति दी। सच तो यह है कि मारीच रावण के निकृष्ट पाप कर्म में सहायक बनने के कारण अधोगति को ही प्राप्त हुआ। किन्तु जिनके मस्तिष्क में तुलसीदास जी के मिथ्या अवतारवाद का जादू सवार है वे इस बात पर कभी विचार ही नहीं कर सकते। उनको राम ने नहीं अपितु तुलसीदास जी ने ही हर प्रकार से नचाया है कि जिन्हें सत्य भी असत्य दिखाई देता है।

३१- तुलसीदास जी की संकीर्णता

समस्त पौराणिक जगत् में तुलसीदास जी को हिन्दूजाति हिन्दू संस्कृति के रक्षक एवं दलितोद्धारक के रूप में स्वीकार किया जाता है। उनको दार्शनिक, गम्भीरचिन्तक लोक नायक युगद्रष्टा कवि शिरोमणि आदि गुणों से युक्त स्मरण किया जाता है। आइये अब इस बात पर भी दृष्टिपात करें कि उक्त कथन में कितनी सच्चाई है।

जब हम रामचरितमानस का साद्यन्त अध्ययन करते हैं तो उनके काव्य में अनेक स्थानों पर अन्तर्विरोध पाया जाता है। कोई भी गम्भीर चिन्तक हो, उसका चिन्तन सार्वभौमिक होता है। उसके चिन्तन में विश्वव्यापी सत्य का प्रकाश होता है। वह किसी वर्ग वा जाति विशेष के हि[illegible] लेकर चिन्तन नहीं करता। चाहे भले ही उसकी बात उस युग के लोगों के गले न उतरे। परन्तु कुछ काल के पश्चात् उसे सर्वमान्यता प्राप्त हो जाती है। तब इस दृष्टि से श्री तुलसीदास जी पूर्ण खरे चिन्तक सिद्ध नहीं होते। यह बात हम अपनी कल्पना से अथवा दुराग्रह से नहीं करते। उनका काव्य स्वयम् इस सत्यता की पुष्टि कर रहा है।

तुलसीदास जी ने अपने मानस में गौ ब्राह्मण और सन्तों का सर्वाधिक पक्ष लिया है अन्यों का नहीं। इससे सिद्ध है कि वे जातिभेद के विशेष समर्थक पोषक तथा ब्राह्मण संस्कृति के संरक्षक रहे हैं। नायक भी थे तो केवल ब्राह्मणों के, दलित वर्ग के नहीं थे। पक्षपात के साथ उन्होंने स्थान स्थान पर अपने मानस में इस बात की चर्चा की है, क्योंकि राम ने जन्म ही इन तीनों (गौ ब्राह्मण और सन्तों) के लिए लिया था। देखिये कुछ उदाहरण-

जय सुर विप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी।
गो द्विज धेनु हितकारी। कृपासिन्धु मानुष तन धारी॥
अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। विप्रधेनु हित संकट सहहीं॥

उन्होंने ब्राह्मणों को भूसुर अर्थात् पृथ्वी के देवता कहा है। वे लिखते हैं -

दोहा- **मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।**
मोहि समेत विरंचि सिव बस ताके सब देव॥
(अरण्य का.)

ऊपर की चौपाइयों का अर्थ तो स्पष्ट है। दोहा में बताया है कि मन वचन और कर्म से कपट त्याग कर जो ब्राह्मणों की सेवा करता है तो मुझ सहित ब्रह्म शिव आदि सभी देव उसके वश में हो जाते हैं।

ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम। (सुन्दर का०)
पुण्य एक जग महुं नहिं दूजा। मन क्रम वचन विप्र पद पूजा॥
(उत्तर का०)

(क्रमशः)

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्द सन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आप से भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं-

१०१. श्री प्राचार्य दयानन्द कालेज मु. पो. जि. लातूर (महाराष्ट्र)
१०२. श्री प्राचार्य वैद्यनाथ कालेज मु.पो. परली बैजनाथ जि. बीड (महाराष्ट्र)
१०३. श्री प्राचार्य लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय मु.पो. धर्माबाद नान्देड़ (महाराष्ट्र)
१०४. श्री रामाराव वैंकट राव वधूलकार विद्यानगर परली बैजनाथ जि. बीड (महाराष्ट्र)
१०५. श्री आचार्य गुरुकुल वैदिक संस्कृत विद्यालय रामलिङ्ग धाराशिव (महाराष्ट्र)
१०६. श्री रामचन्द्र जी शर्मा विवेकी राम मार्ग, बड़ी बाग गाजीपुर (उ.प्र.)
१०७. श्री प्रमोद कुमार गुप्ता s/o श्री सुमेरचन्द गुप्ता म. न. 50, पहाड़ी धीरज दिल्ली
१०८. श्री विमल भूषण जी गुप्ता जी.सी. ट्रांसपोर्ट मलिक लेन कलकत्ता W.B.
१०९. श्री महीपाल सिंह मेधार्थी आर्य चिकित्सालय आर्य समाज मंदिर महेन्द्रगढ (हरि.)
११०. श्री चन्द एण्ड सन्स पैट्रोल पम्प सोहना गुड़गाँव (हरि.)
१११. श्री रमेश बहादुर सिंह राठौर खोपोली रायगढ (महाराष्ट्र)
११२. श्री छजाराम जयदेव दु. न. 111 धान मंडी श्री गंगानगर (राज.)
११३. श्री रामावतार अग्रवाल 53UB जवाहर नगर दिल्ली-7
११४. श्री अंशुमान द्विवेदी 1 ली गांव टनलेम शान्ता कुञ्ज बम्बई (महाराष्ट्र)
११५. श्री रामफल कान्तिप्रसाद जनरल मर्चेंट 51 चंडी रोड हापुड़ (उ.प्र.)
११६. श्री शिवकुमार जी नेगी ग्राम रामपुर लाल पानी कोटद्वार (गढ़वाल)
११७. मा. आजाद पुरुषार्थ c/o नेता जी आर्य पुस्तकालय जि. रोहतक
११८. S.G.Medakkor Gopal Kunj Civil Line NIZAMABAD (AP)
११९. श्री मंत्री जा आर्य समाज, C-494 नवाडेरा, भरूच (गुजरात)
१२०. श्री रणसिंह J.E. 27A नवमानक नगर धैंधाखेड़ा लखनऊ (उ.प्र.)

—धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रजिस्टर्ड नं. DL 11315/93
आर. आर. नं. २५५८७/७३
Post in Delhi PSO Indraprastha
on 2-3/8/93

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगस्त १९९३

बिना टिकट भेजने का लाइसन्स नं.
यू (डी. एन.) १४४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

योगदर्शन-भाष्यम्

(महर्षि व्यास-भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द वयाख्योपेत)

व्याख्याता: **आचार्य राजवीर शास्त्री**

★ योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
★ व्यास-भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
★ महर्षि-दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
★ दर्शनों के परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
★ क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियाँ
★ अनेक चित्त निर्माण, इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

विशेष जानकारी के लिए सूची-पत्र मँगायें

१२०० सैंकड़ा
फुल कपड़ा जिल्द
सत्य के प्रचारार्थ
अजिल्द १०००/ सैंकड़ा
सत्यार्थ प्रकाश
घर घर पहुंचाएँ
सफेद कागज़ सुन्दर छपाई
शुद्ध संस्करण वितरण करनेवालों के
लिए प्रचारार्थ
आकार { 23x36 ÷ 16 पृष्ठ 420 की दर
अजिल्द १०/जिल्द PVC ११/फुल कपड़ा जिल्द १२/-
आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट
455, खारी बावली, दिल्ली-6 दूरभाष :- 238360 : 233112

श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा. ....
जिला ....

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११० ००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

★ ओ३म् ★

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अक्टुबर, १९९३

वर्ष २१ : अंक १२
दयानन्दाब्द : १६९
विक्रम संवत् : आश्विन २०५०
सृष्टि संवत् : १,९६,०८,५३,०९४

संस्थापक : स्व॰ दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय
"दयानन्दसन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-११० ००६
दूरभाष : २३८३६०, २३३११२

एक प्रति २.५० रु॰
वार्षिक शुल्क २५)
आजीवन सदस्यता २५०)
विदेश में ११००)

इस अंक के लेख

❑ आर्यसमाज बनाई २
❑ वेदोपदेश ३
❑ साहित्य-समीक्षा ४
❑ सृष्टि संवत् विषय पर सार्वदेशिक सभाप्रधान के झूठ का पर्दाफाश ५
❑ यज्ञविधि में परिवर्तन कराने वाले विद्वानों के विरुद्ध कार्यवाही के सम्बन्ध में ६
❑ सत्यार्थप्रकाश एक मूल्यांकन ७
❑ पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ १०
❑ राजनीति से धर्म को हटाने से पूर्व कुछ विचारणीय प्रश्न ११
❑ राष्ट्रीयता ही धर्मनिरपेक्षता का विकल्प १३
❑ धर्म : धर्मनिरपेक्षता और राजनीति १६
❑ राष्ट्रहित में जीना सुन्दर राष्ट्रहित में मरना सुन्दर १८
❑ संस्कारविधि के विरुद्ध अनर्गल प्रचार १९
❑ इस्लाम पर वैदिक प्रभाव २३
❑ तुलसीकृत रामायण-समीक्षा २५

'सत्यार्थ प्रकाश' अजिल्द ... जिल्द ग्यारह सौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज बनाई

धर्म का हो व्यवहार जगत् में पाप पड़े न दिखाई ।
इसीलिए मेरे प्यारे ऋषि ने आर्यसमाज बनाई ॥
विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवः, कहे ऋग्वेद यह सुनो सभी ।
श्रेष्ठ विद्वज्जन सदाचारी को कहा आर्य ऋषिराज ने अभी ॥
आर्य जनों से विनय मेरी, अपनाएं इसे पहले आप सभी ।
वाणी कम व्यवहार अधिक हो सफल हों तब उपदेश सभी ॥
यम नियमादि योग अंगों को जो लेंगे अपनाई । इसीलिए-
पानी में रहते प्यासों पर, दया मुझे आती है ।
आज वैद्य ही रोगी है पर, औषधि नहीं भाती है ॥
ज्ञाता की कब दवा लिये बिन बीमारी जाती है ।
बिडम्बना ! ये समाज अब बिन चले ध्येय चाहती है ॥
ऋषि सिद्धान्तों की शव यात्रा लखि आती मुझे रुलाई ।
ऐ उपदेशक, ओ पदवाले, हे समाज के कर्णधार रे !
तेरा ऋषि से क्या नाता है, सत्य भावना से विचार रे ॥
मानव तन और वेद ज्ञान पा, जीती बाजी को न हार रे ।
कपट, कुटिलता, दुश्चरित्रता पथ के काँटों को बुहार रे ॥
सरल हृदय, कोमल सुभावना में ये अति दुःखदायी ।
ज्ञाता को पापांश अधिक है, दण्ड अधिक पाता है ।
सुगमोत्तम पथ पाय चले ना, वो कैसा ज्ञाता है ॥
नियमभंग से दुरुपयोग है, बुरा सुना जाता है ।
हाथ जोड़ कर विनय करे, सबसे सबका भ्राता है ॥
'गुणग्राहक' ऋषि को न विसारो, हे ऋषि के अनुयायी ।
इसीलिए मेरे प्यारे ऋषि ने...॥

रामनिवास गुणग्राहक
गाँव-सूरौता, पत्रालय अव्वार,
जनपद-भरतपुर (राज॰) ३२१००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
—महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- चक्रवर्ती साम्राज्य की प्राप्ति के लिए धनुर्वेद का विज्ञान और क्रियात्मक ज्ञान बहुत आवश्यक है।

भारद्वाजः ऋषिः। वीराः देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
पुनस्तमेव विषयमाह ॥ वीर राजपुरुष क्या करें, यह फिर उपदेश किया जाता है ॥

ओ३म्- **धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।**
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम॥ (यजु॰ २९।३९)

पदार्थः- (धन्वना) धनुरादिशस्त्रास्त्रविशेषेण (गाः) पृथिवीः (धन्वना) (आजिम्) सङ्ग्रामम्। आजाविति संग्रामनाम निघं॰ २।१७) (जयेम) (धन्वना) शतघ्न्यादिभिः शस्त्रास्त्रैः (तीव्राः) तीव्रवेगवतीः शत्रूणां सेनाः (समदः) मदेन सह वर्तमानाः (जयेम) (धनुः) शस्त्रास्त्रम् (शत्रोः) अरेः (अपकामम्) अपगतश्चासौ कामश्च तम् (कृणोति) करोति (धन्वना) (सर्वाः) (प्रदिशः) दिशोपदिशः (जयेम) ॥

सपदार्थान्वयः- हे वीराः ! यथा वयं यद् (धनुः) शस्त्रास्त्रम् (शत्रोः) अरेः (अपकामम्) अपगतश्चासौ कामश्च तम् (कृणोति) करोति तेन (धन्वना) धनुरादिशस्त्रास्त्रविशेषेण (गाः) पृथिवीः (आजिम्) संग्रामं च (जयेम) (धन्वना) शतघ्न्यादिभिः शस्त्रास्त्रैः (तीव्राः) तीव्रवेगवतीः शत्रूणां सेनाः (समदः) मदेन सह वर्त्तमानाः (जयेम) (सर्वाः) (प्रदिशः) दिशोपदिशः (जयेम) तथा यूयमप्येतेन जयत ॥

भावार्थ- हे वीरो ! जैसे हम लोग-जो (धनुः) शस्त्र-अस्त्र (शत्रोः) शत्रु को (अपकामम्) कामनारहित (कृणोति) करता है, उस (धन्वना) धनुषादि शस्त्र-अस्त्र विशेष से (गाः) पृथिवी और (आजिम्) संग्राम को जीतते हैं (धन्वना) शतघ्नी (तोप) आदि शस्त्र-अस्त्रों से (तीव्राः) तीव्र गति वाली शत्रुओं की (समदः) हर्षित सेनाओं को (जयेम) जीतते हैं (धन्वना) उक्त शस्त्रास्त्रों से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा उप दिशाओं को (जयेम) जीतते हैं, वैसे तुम भी इस धनुष आदि से शत्रुओं को जीतो ॥

भावार्थः-यदि मनुष्याः धनुर्वेदविज्ञानक्रियाकुशला भवेयुस्तर्हि सर्वत्रैव तेषां विजयः प्रकाशेत। यदि विद्याविनय-शौर्यादिगुणै-र्भूगोलैकराज्यमिच्छेयुस्तर्हि किमप्यशक्यं न स्यात् ॥

भावार्थ- यदि मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान और क्रिया में कुशल हैं तो सर्वत्र ही उनका विजय प्रकाशित हो। यदि विद्या-विनय और शौर्य आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य की इच्छा करें तो कुछ भी अशक्य नहीं है ॥

'दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर से उद्धृत,
व्याख्याता-**श्री आचार्य सुदर्शनदेव**

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-समीक्षा

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्रों का विवेचन- लेखक-**डा॰ सत्यदेव आर्य,** भू॰ पू॰ निदेशक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा (राजस्थान),

प्रकाशक-श्रीमती परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, अजमेर।

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान- वैदिक पुस्तकालय, केसरगंज, अजमेर।

मूल्य : दस रुपये मात्र।

प्रस्तुत पुस्तक का विद्वान् लेखक ने अपने गहन स्वाध्याय एवं महर्षि के मन्तव्यों के गहन चिन्तन के आधार पर प्रणयन किया है। इस पुस्तक में ईश्वरस्तुति, प्रार्थना एवम् उपासना के भावों को समझा कर भक्ति के क्षेत्र में यह समझाने का प्रयास किया है कि ईश्वर भक्ति तब तक अधूरी है, जब तक उपासक उपास्य के गुण, कर्म स्वभावों को अपने गुण कर्म स्वभाव में ढालने का प्रयास नहीं करता है। उपासना का अर्थ भी यही है प्रभु के अतिशय निकट हो जाना, तन्मय हो जाना और उसके सच्चे सखा बनने का पूर्ण प्रयत्न करना। सखा भाव की भक्ति ही सच्ची वेदोक्त भक्ति है। इसी प्रकार परमेश्वर की सृष्टि में ईश्वरीय सृष्टि की विचित्र रचनाओं को देखकर उसकी अलौकिक कृतियों की अनुभूति करके उसमें तन्मय हो जाना। प्रार्थना उसी की करना जो अपने अथक पुरुषार्थ से प्राप्त न हो सके। प्रार्थना और पुरुषार्थ में चोली दामन के सदृश साथ है। बिना पुरुषार्थ के प्रर्थनाएँ अभिमानादि दोषों का निवारण कर सकें तो ठीक है, अन्यथा निरर्थक हो जाती हैं। लेखक द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक मन्त्रार्थ मनन व चिन्तनीय है।

2. वार्त्तिक प्रकाश : व्याख्याता- **श्री आनन्द प्रकाश मेधार्थी** डिमाई आकार, सुन्दर छपाई, पृष्ठ ७२+४८=५५२

प्राप्तिस्थान- आर्यसमाज मन्दिर, न्यू बोइनपल्ली, सिकन्दराबाद (आन्ध्र प्रदेश) पिन-५०००११, मूल्य-२००) रुपये।

व्याकरण पढ़ने पढ़ाने वाले छात्रों तथा अध्यापकों को यह पढ़कर प्रसन्नता होगी कि पाणिनीय अष्टाध्यायी पर महर्षि कात्यायन विरचित वार्त्तिकों की विस्तृत व्याख्या छपकर तैयार हो गई है जिसमें वार्त्तिकों का प्रसंग सहित अर्थ उदाहरण, सिद्धि तथा शंका-समाधान आदि सरल सुगम संस्कृत भाषा में समझाया गया है। पुस्तक के अन्त में वर्णानुक्रम से वार्त्तिक सूची और प्रारम्भ में वार्त्तिक मूल पाठ भी दिया गया है। यह पुस्तक अष्टाध्यायी महाभाष्य काशिका और सिद्धान्त कौमुदी के क्रम से पढ़ने-पढ़ाने वाले सभी छात्रों अध्यापकों के लिए परमोपयोगी है।

—राजवीर शास्त्री

समय की पुकार

1. धर्म और मजहब के अन्तर को समझा जाये।
2. भारत के संविधान में से मजहब परक (जैसे अनुच्छेद ३०) भेद डालने वाली धाराओं को बदला जाये।
3. एक राष्ट्रधर्म का निश्चय करके राजनीति में उसका समावेश कराया जाये।
4. राजनयिकों के अन्तर्गत भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए उनकी कथनी और करनी के भेद को दूर किया जाये।
5. सभी देशवासियों के लिए एक समान आचारसंहिता बनायी जाये। देश के कानून प्रत्येक नागरिक के लिए बिना भेदभाव के लागू किये जायें।

—राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि-संवत् विषय पर सार्वदेशिक सभा प्रधान के झूठ का पर्दाफाश

श्री रघुनाथ आर्य (आर्यसमाज बेतिया) का १५ अगस्त ९३ का पत्र मिला। उत्तर में विनम्र निवेदन है -

दयानन्दसन्देश में महर्षि दयानन्द की निर्भ्रान्त सत्य मान्यताओं का ही प्रचार प्रसार किया जाता है। आप ने सृष्टि-संवत् विषय में सार्वदेशिक सभा के प्रधान जी का उत्तर भी साथ में भेजा है। इस विषय में हमारा स्पष्ट उत्तर है-

सार्वदेशिक सभा का प्रधान महर्षि दयानन्द भवन में बैठकर और आर्यसमाजों के मंचों से एड़ी उठा उठाकर तो महर्षि दयानन्द का जय घोष लगाता है, परन्तु वैसे महर्षि दयानन्द की सत्य मान्यताओं का विरोध करता रहता है। उनके झूठ का पर्दाफाश उनके ही इस पत्र से हो रहा है, क्योंकि-

(क) महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में जो सृष्टि-संवत् लिखा है, वही हमें मान्य है, क्योंकि वह सत्य है। और इसकी पुष्टि हम २०-२५ वर्षों से निरन्तर कर रहे हैं।

(ख) अनेक बार सार्वदेशिक सभा को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा गया है। परन्तु ये महर्षि दयानन्द के लेख के विरुद्ध बोलने का साहस आज तक नहीं कर सके।

(ग) इस पत्र में भी सभा प्रधान होकर झूठ बोल रहे हैं, यह पढ़कर अत्यन्त आश्चर्य होता है। पिछले दिनों श्री भारतीय जी की अध्यक्षता में जो बैठक हुई थी, उसमें सृष्टि-संवत् विषय पर विचार ही नहीं किया गया। मैं स्वयम् उस बैठक में उपस्थित था।

(घ) सभा प्रधान व धर्मार्यसभा के अध्यक्ष अब भी यदि इस विवाद का निर्णय कराना चाहें तो हम सहर्ष तैयार हैं, महर्षि दयानन्द सच्चे हैं अथवा सार्वदेशिक सभा, यह निर्णय हो जायेगा।

सभा प्रधान का पत्र यहाँ दे रहे हैं

—राजवीर शास्त्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

श्री रघुनाथ आर्य जी

सप्रेम नमस्ते।

आपका पत्र प्राप्त हुआ। आपने सृष्टि सम्वत् के विषय पर लिखा है कि किसे सही मानूं। सूचनार्थ है कि जो सृष्टि सम्वत् सार्वदेशिक पत्रिका में १,९७,२९,४९,०९४ प्रकाशित किया जा रहा है यही ठीक और सही है। इसके अलावा जो लोग अपने हिसाब से परिवर्तन करके प्रकाशित करते हैं वह ठीक नहीं है आप इसी को प्रमाणित सृष्टि सम्वत् मानें।

आपको यह बताना भी आवश्यक है कि आज से ३० वर्ष पूर्व सार्वदेशिक सभा की धर्मार्य सभा ने महात्मा नारायण स्वामी के जमाने में अपनी बैठक में १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ हजार ९४ सृष्टि सम्वत् का समर्थन किया था, अभी पिछले दिनों सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के धर्माधिकारी डा॰ भवानीलाल भारतीय की अध्यक्षता में धर्मार्य सभा की बैठक हुई थी उसमें भी एक अरब सत्तानवे करोड़ सृष्टि सम्वत् का समर्थन किया गया था। इसके अलावा कुछ लोग एवं पत्रिकाएं अब भी एक अरब छियानवे करोड़ सृष्टि सम्वत् लिखते हैं यह उनकी गलती है।

भवदीय

आनन्दबोध सरस्वती

प्रधान

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञविधि में परिवर्तन कराने वाले विद्वानों के विरुद्ध कार्यवाही के सम्बन्ध में।

आर्यसमाज सीतापुर (उ. प्र.) के मन्त्री जी का पत्र

श्रीमन्नमस्ते,

आर्यसमाज सीतापुर में "वेद प्रचार सप्ताह" (दिनांक २.८.९३ से ११.८.९३) के अवसर पर अन्य विद्वानों के साथ आचार्य विद्यादेव त्रिवेदी, खैरागढ़, जनपद-आगरा भी आमंत्रित किये गये थे। उन्होंने अपने उपदेशों के बीच "यज्ञविधि" में कुछ परिवर्तन बताये हैं, जिनसे शंका उत्पन्न होती है, जिन्हें निवारण करने की कृपा करें। वे निम्न प्रकार हैं :-

१. आचार्य विद्यादेव जी ने बताया कि यज्ञारम्भ में अग्न्याधान के बाद जिन मंत्रों से तीन समिधाएँ लगायी जाती है, उनमें "ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा०" मन्त्र से समिधा नहीं लगानी चाहिए। यह वेदमंत्र नहीं है, और यह प्रक्षेप हुआ है। उक्त मंत्र आश्वलायन गृह्य सूत्र का मंत्र है। महर्षि जी ने इसका विधान नहीं किया है और न ही आर्ष ग्रन्थों में इसका विधान है। अत: शेष ३ मंत्रों से ३ समिधाएँ लगानी चाहिए।

(२) आचार्य विद्यादेव जी ने उपरोक्त मंत्र से दी जाने वाली पाँच घृताहुतियाँ देने को भी मना किया है तथा "वेद प्रचार सप्ताह" के दौरान पाँच घृताहुतियाँ नहीं लगाने दीं।

(३) जल सिंचन के पश्चात् जिन मंत्रों से उत्तर दिशा तथा दक्षिण दिशा में आहुति देने का प्रावधान संस्कारविधि में दिया गया है, उनके विपरीत पहले दो-तीन दिन "ओं प्रजापतये स्वाहा" से उत्तर दिशा में तथा "ओम् इन्द्राय स्वाहा" से दक्षिण दिशा में आहुतियाँ डलवाईं तथा दो-तीन दिन बाद "ओं सोमाय स्वाहा" से उत्तर तथा "ओम् अग्नये स्वाहा" से दक्षिण दिशा में आहुतियाँ डलवाईं।

जब इस प्रश्न को मैंने उठाया तो उन्होंने कहा "मुझ से भूल हो गई।" इसी बीच "दयानन्द सन्देश" मासिक पत्रिका में आपका लेख देखने को मिला और हमने आचार्य विद्यादेव जी को दिखाया। वे उससे सहमत नहीं हुए। वे "रामलाल कपूर ट्रस्ट" की छपी "संस्कारविधि" दिखाने लगे, जिसमें नीचे लिखा गया है कि "ओम् अग्नये स्वाहा" तथा "ओं सोमाय स्वाहा" भूलवश नीचे ऊपर हो गये हैं। जब हम लोगों ने पूछा कि यदि "परोपकारिणी सभा, अजमेर" की छपी पुस्तक में प्रक्षेप किया गया है तो फिर किस प्रेस की छपी पुस्तक सही है। इस पर आचार्य जी बोले किसी प्रेस की पुस्तक सही नहीं है। मैं सही विधि की पुस्तक छपाना चाहता हूँ। मैंने कहा-आपकी यह बात कैसे मान ली जाय कि जो विधि आप बता रहे हैं वह प्रामाणिक है। वे बोले-महर्षि की लिखी हुई पाण्डुलिपियाँ देख लो। मैंने पूछा-यह कैसे संभव है। वे बोले-मैं विद्वान् हूँ, मेरे साथ अजमेर चलिए, मैं दिखाऊँगा। मैंने कहा-यदि मैं व्यक्तिगत रूप से इस बात से सहमत या सन्तुष्ट हो भी जाऊँ और यह मान भी लूँ कि आपका कथन सत्य है तो विश्व भर की आर्यसमाजों में चलने वाली यज्ञविधि, जो प्रचलित है, कैसे बदली जा सकेगी। इस पर आर्यसमाजों का दुर्भाग्य बताकर वे मौन रहे।

□□□

पाठकों की सेवा में

उपर्युक्त पत्र के सन्दर्भ में विनम्र निवेदन है-

(क) "दयानन्द सन्देश" के अगस्त ९३ के अंक में मैंने एक लेख लिखा था, उसमें सब बातें स्पष्ट कर दी हैं।

पाठक वहाँ देखकर निर्णय कर सकते हैं।

(ख) आचार्य विद्यादेव त्रिवेदी आर्य राष्ट्र पत्रिका के टोल के ही एक सदस्य हैं।

(ग) जिन स्थलों पर वे महर्षि कृत संस्कारविधि में प्रक्षेप बताते हैं, यदि हिम्मत रखते हैं तो शास्त्रार्थ कर सकते हैं।

(घ) इसी अंक में भी ज्वलन्तकुमार शास्त्री का लेख भी छपा है, उससे भी पाठक संशय दूर कर सकते हैं।

—राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यार्थप्रकाश : एक मूल्यांकन

-डा॰ सत्यव्रत राजेश
दयानन्द नगरी, ज्वालापुर, हरिद्वार

डा॰ चन्द्रभानु जी अकिंचन एक छात्र को शोध करा रहे थे। उन्होंने उस छात्र को निर्देश करते समय अनेक ग्रन्थों को पढ़ा। किन्तु जब उन्हें सत्यार्थप्रकाश मिला तो कहने लगे कि मैंने रात-दिन एक करके जो मैंने उपलब्ध किया उससे अनेक गुणा ज्ञान इस एक पुस्तक में मिला। मेरा दुर्भाग्य रहा कि मैंने इस ग्रन्थ को पहले नहीं पढ़ा। वस्तुतः सत्यार्थप्रकाश ज्ञान का भण्डार है। हितोपदेश में शास्त्र की परिभाषा दी है-

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥

शास्त्र अनेक सन्देहों की निवृत्ति करने वाला, परोक्ष ज्ञान का दर्शक तथा सब का आन्तरिक नेत्र है। जिसके पास शास्त्ररूपी नेत्र नहीं है वह वस्तुतः आँखें रहते भी अन्धा है। शास्त्र के समस्त लक्षण सत्यार्थप्रकाश में घटते हैं। उसे पढ़ाने से अनेक प्रकार के सन्देहों की निवृत्ति होती है। जगत् कैसे बना, कहाँ बना तथा मरने के बाद जीव की क्या गति होती है, आदि अनेक अप्रत्यक्ष तथ्यों का उद्घाटन होता है तथा ज्ञानचक्षुओं को खोलने में वह पूर्ण शक्त है। अतः कहा जा सकता है कि सत्यार्थप्रकाश न पढ़ने वाला ज्ञान के क्षेत्र में अन्धा है।

सन्देह-निवारक

समस्त सत्यार्थप्रकाश को पढ़ जाइये, उसमें एक पृष्ठ भी ऐसा न मिलेगा जिसमें सन्देहों की निवृत्ति न हो। अनेक धार्मिक उलझनों में पड़े व्यक्तियों ने सत्यार्थप्रकाश से मार्ग तलाशा। सत्य को हस्तामलकवत् दिखाने में सत्यार्थप्रकाश अप्रतिम है। इसे पढ़कर ऐसा लगने लगता है मानो व्यक्ति अन्धकार से प्रकाश को पा गया हो। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के प्रार्थी इसे अवश्य पढ़ें, मार्ग मिलेगा।

एक बार एक युवक ने जो विद्युत् विभाग में काम करता है, बताया कि मैं आर्यसमाजी कैसे बना। उसने बताया कि मैं गाँव का रहने वाला हूँ। धर्म की ओर मेरी रुचि बचपन से ही थी। हमारे गाँव में शिवालय था। मैं प्रतिदिन मन्दिर में जाता, शिव के दर्शन करता तथा उस पर जल चढ़ाता। कुछ समझ आने पर किसी को 'शिव शिव', किसी को 'जयगोपाल' किसी को 'जय गणेश देवा' तथा किसी को 'जय माता की' आदि कहते सुनकर मेरे बाल-मन में यह भाव जगा कि इनमें असली और सच्चा भगवान् कौन है ? एक दिन हमारे गाँव में एक साधु आए। वे भाँग-सुलफा पीते तथा अपने निकट आनेवालों को पिलाते थे। मैं उनकी इस बात को तो न करता था, फिर भी एक दिन उनके पास जाकर मैंने उनसे निवेदन किया कि महाराज, मेरे मन में यह शंका है कि असली भगवान् कौन-से हैं ? वे शैव थे। उन्होंने बतलाया कि असली तथा सबसे बड़े भगवान् शिवजी हैं। सब देवता उनके आगे हाथ जोड़ते तथा त्राहि माम्-त्राहि माम् करते हैं। सभी उनकी पूजा करते हैं। भगवान् राम ने भी लंका पर चढ़ाई करने से पहले उनकी पूजा की थी। राम जी तो विष्णु के अवतार थे। जब विष्णु को भी विजय-प्राप्ति के लिए शिव का आश्रय लेना पड़ा तो इसमें क्या सन्देह रह जाता है कि सब से बड़े शिव जी ही हैं। और देवता तो थोड़ा देते हैं, किन्तु शिव जी तो औघड़ दानी हैं। सब-कुछ अपने भक्तों में बाँट देते हैं अपने पास कुछ भी नहीं रखते। उनकी बातों का मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं पक्का शिव-भक्त बन गया तथा बताए मन्त्र 'ओं नमः शिवाय' का श्रद्धा से जाप करने लगा। अब मैं निश्चिन्त था।

किन्तु शायद मेरे भाग्य में शान्ति नहीं थी। हुआ यह कि हमारे गाँव में मुखिया ने देवी का जागरण कराया। धार्मिक अनुष्ठान समझकर मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। रात-भर देवी के गुणों को सुनकर मैं अभिभूत हो गया। न जाने भजनों तथा प्रवचनों द्वारा देवी की कितनी महिमा गाई गई। बिन बेटे वालों को माँ ने बेटे दिए, निर्धनों को धन से भर दिया, भक्तों की आपत्ति में रक्षा की, मरों को जिलाया, असुरों का संहार किया। क्या अद्भुत महिमा है देवी माँ की। मैंने तो किसी देवता की इतनी महिमा पहली बार सुनी थी। प्रातः जागरण समाप्त होने पर मैं मण्डली के अध्यक्ष से मिला और उनके सामने सच्चा भगवान् कौन है, यह प्रश्न रखा। उन्होंने मुझसे ही पूछा कि माँ बड़ी होती है या बच्चे ? मैंने कहा कि माँ ही बड़ी होती है। वे बोले कि माँ देवी है या शिव आदि ? मैंने कहा कि देवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ ही है। उन्होंने बताया कि शिव का माहात्म्य भी शक्तिरूपिणी माँ के कारण ही है। यदि शिव में से शक्तिरूपिणी 'इ' निकाल दें तो शिव शव रह जाता है। और पता है शव किसे कहते हैं? लाश को। बताओ, लाश भी कुछ कर सकती है? जब उनके साथ शक्तिरूपी 'इ' लग जाता है तब वह शिव बन जाता है तथा लोगों द्वारा पूजा जाता है। अतः असली तत्त्व देवीरूपी शक्ति है। वही सच्ची है, महान् है और असली है।

उसकी बातें सुनकर मुझे बहुत पश्चात्ताप हुआ अपनी पूजा पर। इतने दिन तक मैंने शिव की भी उपासना की। देवी मैया का धन्यवाद है कि उसने अपनी कृपा से अपने सच्चे रूप का दर्शन कराया। सचमुच देवी की महिमा अपार है, तभी तो उनके भक्त सारी रात गाते हुए नहीं थकते। बाद में तो पता चला कि वे शराब पीकर गाते हैं, किन्तु उस समय तो शेरोंवाली ही मेरी आराध्य बन गई थी। सच्चा साथी मिलने पर गुड़ियों से कोई क्यों खेले? मैं माँ का भक्त तथा प्रचारक बन गया। रिश्तेदारों में भी जाता तो वहाँ सब को देवी के गीत सुनाकर उसके भक्त बनाने का प्रयत्न करता।

मेरा यह उन्माद एक वर्ष भी पूरा न कर सका कि उसको एक अन्य झटका लगा। हमारे गाँव में ब्राह्मणों के यहाँ एक संन्यासी आए। वे किसी का पकाया अन्न भी नहीं खाते थे। अपना भोजन अपने हाथ से बनाते थे। विद्वान् भी थे। संस्कृत में बात कर सकते थे। उनके व्याख्यान होते थे जिसमें वे विष्णु भगवान् के महत्त्व को दर्शाते थे। कैसे भगवान् ने मोहिनी रूप रखकर असुरों से अमृत की रक्षा की। यदि वे ऐसा न करते तो असुर अमृत पीकर अमर हो जाते। कैसे अवतार धारण करके असुरों का संहार किया तथा स्वभक्तों की रक्षा की। कैसे चक्र सुदर्शन से राहु का सिर काट डाला, आदि।

एक दिन मैं उनके चरणों में उपस्थित हुआ और अपनी समस्या उनके सामने रखी कि महाराज, असली भगवान् कौन हैं जो सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हों? मेरी बात सुनकर वे हँसे और बोले कि भगवान् भी अनेक हैं? मैंने उनसे कहा कि शिव जी, गणेश, देवी आदि अनेक हैं। वे बोले कि ये सब देवता तो कहे जा सकते हैं, भगवान् नहीं। भक्तों की रक्षा और असुरों का संहार करने के लिए भगवान् ने अनेक अवतार लिये, क्या आप बता सकते हैं कि वे अवतार किसके थे? मैंने कहा कि विष्णु भगवान् के थे। बोले कि जिसके ये अवतार हुए वह असली हुआ या दूसरे?

मेरी आँखों से पर्दा हट गया। वस्तुतः गणेशदेवा, महादेव और देवी ये देव ही तो हैं, भगवान् कहाँ हैं? सभी कथा वाचक भी बतलाते हैं कि सृष्टि का पाप मिटाने, भक्तों का उद्धार करने और असुरों का संहार करने के लिए भगवान् ने जो मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध के अवतार लिये अथवा कल्कि अवतार लेंगे वे सब विष्णु के ही तो थे। वास्तव में विष्णु ही भगवान् हैं। क्षीर सागर में शेष-शय्या पर लेटे हुए, लक्ष्मी जिनके चरण दबा रही हैं, ऐसे भगवान् को छोड़कर अन्य की पूजा करना कहाँ की बुद्धिमानी है? जिस लक्ष्मी के पीछे संसार भागता है वह उनके चरणों की चेरी है। सच कहते हैं लोग कि गुरु किसी विद्वान् को ही बनाना चाहिए। विद्वान् न मिलने के कारण मैं अभी तक देवताओं के ही पीछे भटकता रहा। अब पता चला असली भगवान् का। असली भगवान् तो विष्णु जी ही हैं। मैं अभिभूत हो गया।

किन्तु यह अभिभूत होने का भूत भी अधिक समय नहीं रहा। मैं कार्तिक की पूर्णिमा को हरिद्वार गया। वहाँ एक दुकानदार के पास अनेक स्तोत्रों की पुस्तकें थीं। मैंने विष्णु स्तोत्र माँगा। उसने दे दिया। सस्ता ही था? १ रुपये मूल्य का। मैंने सस्ते देखकर दसों स्तोत्र ले लिये। देखने में हर्ज भी क्या है। क्या पता किसी में कोई काम की बात मिल जाए?

उनमें से जिसका भी स्तोत्र पढ़ता, वही अधिक महत्त्वशाली लगता। मैं अच्छे चक्कर में पड़ा। यदि विष्णु स्तोत्र ही खरीद लेता तथा औरों के न लेता तभी अच्छा था। किन्तु क्या करूँ। मेरा दुर्भाग्य, जो सस्ते के चक्कर में सारे खरीद लाया। उनमें चण्डीदेवी, वैष्णवदेवी तथा सन्तोषीदेवी की महिमा देखो तो वे सब को पीछे छोड़ दें। मैं तो किंकर्तव्य विमूढ हो गया। किसकी स्तुति करूँ और किसे छोड़ूँ, मैं यह निर्णय न कर पाता। अच्छे हवन करते हाथ जले।

फिर मैंने सोचा कि कोई नाराज न हो, एक दिन एक स्तोत्र का पाठ करता तथा दूसरे दिन दूसरे का। इस प्रकार सभी की बारी आ जाती थी। मुझे भी सन्तोष हुआ कि चलो सभी प्रसन्न रहेंगे कि हमारा भी भक्त है। मुझे भी प्रसन्नता हुई कि परमात्मा ने मेरी मुश्किल हल कर दी। किन्तु यह मानसिक शान्ति भी अधिक समय तक स्थिर न रही। एक दिन मेरे मन में आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि सब कहते हैं कि भगवान् एक है और मैं अनेक देवताओं की स्तुति करता हूँ। इनमें जो सच्चा होगा क्या वह नाराज न होगा कि यह मुझे भी अन्यों के बराबर मानता है? राजा और चपरासी को यदि बराबर सम्मान दिया जाए तो क्या राजा को बुरा न लगेगा? अच्छी मुसीबत गले डाली। किसी को न पूछते तो अच्छा था। अपने शिव जी पर जल चढ़ा आते थे, किसी का छोटे-बड़े का झगड़ा था और न डरने-भटकने का। पर अब तो ये आफत गले बाँध ली है। अब तो भगवान् ही इससे पार करें। मैं प्रत्येक आनेवाले से पूछता, किन्तु सब पहले की भाँति उलझाते, समाधान कोई न करता। सब अपने-अपने आराध्य देव को बड़ा बतायें। मैं तो चिन्ता में सूख गया।

किन्तु एक दिन मेरे भी भाग्य जगे। हमारे गाँव की एक लड़की का विवाह एक आर्यसमाजी परिवार में हुआ। उनका विवाह-संस्कार भी निराला था। न उन्होंने गणेश का पूजन किया और न नवग्रहों का। यज्ञ हुआ और प्रत्येक विधि की बड़ी सुन्दर व्याख्या की। मैं आर्यसमाज से प्रेम तो न रखता था क्योंकि मुझे बताया गया था कि ये नास्तिक तथा झगड़ालू होते हैं। न ये राम को मानते हैं न कृष्ण को, न देवी को न गणेश को, न शिव को और न विष्णु को। किन्तु हमारे गाँव में पहला ही आर्यसमाजी संस्कार था, अत: देखने के लिए गाँव के स्त्री-पुरुष जुड़ आए थे। उनमें श्रद्धालु कम थे, तमाशा देखनेवाले अधिक। संस्कार के समय बड़ी शान्ति रही। बच्चे भी चुपचाप थे। कोई बोलता तो वे उसे बाहर जाकर बात करने को कह देते। संस्कार से सारा गाँव प्रभावित हुए बिना न रह सका। सब की जबान पर एक ही बात थी कि ऐसा संस्कार हमने जीवन में नहीं देखा। हमें तो अब पता चला कि विवाह में वर-वधू के क्या कर्तव्य होते हैं। लाजाहोम, सप्तपदी आदि का क्या महत्त्व है। बस एक बात की आलोचना तो करते थे कि इन्होंने परिक्रमाएँ चार ही कराईं, सात नहीं। बाद में पता चला कि गृह्यसूत्रों में चार ही परिक्रमाओं का उल्लेख है। सम्भवत: उन्होंने सप्तपदी के स्थान पर सात परिक्रमाओं को ले लिया हो। फिर भी उस संस्कार की गाँव भर में धूम रही तथा महीनों वही चर्चा का विषय रहा।

एक दिन मेरे मन में आया कि मैं कभी उन आर्य सज्जन से मिलूँ। शायद उनके पास इस समस्या का कोई समाधान हो। मुझे किसी की नास्तिकता से क्या लेना, वे बात तो बुद्धिपूर्वक करते हैं। मैं उनसे कह आया कि चाचा जी, जब आपके यहाँ वे आर्यपुरुष आएँ तो मुझे सूचित करा देना, मुझे उनसे कुछ पूछना है। एक दिन फिर गाँव में शोर मचा कि वे आर्य सज्जन आए हैं। वे लड़की को छोड़ने आए थे। मुझे पता चला तो मैं प्रात: ही पहुँचा। परिवार के मुखिया से पूछा कि वे कहाँ हैं तो उन्होंने बतलाया कि ऊपर छत पर सन्ध्या कर रहे हैं। मेरे मन को झटका सा लगा। नास्तिक और सन्ध्योपासन। कुछ अजीब सा लगा। मैं देखना चाहता था कि ये सन्ध्या कैसे करते हैं। मैं गृहस्वामी से पूछकर तथा उनके द्वारा चुपचाप रहने का आदेश पाकर ऊपर गया। वे नयन मूँदे, ध्यानमग्न हुए कुछ मन्त्र बुदबुदा रहे थे। अच्छा लगा। मैं भी छत पर बैठकर उनकी मन्त्र विहीन नकल करने लगा। मुझे तो उन पर श्रद्धा हो आई। जब वे उठे तो मैंने उनके चरण-स्पर्श किए और पूछा आप क्या कर रहे थे? उन्होंने कहा कि सन्ध्योपासन। मैंने पूछा कि लोग तो कहते हैं कि आर्यसमाजी नास्तिक होते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि हम परमपिता परमात्मा की वेदवाणी को प्रमाण मानते हैं, तथा उसी के अनुसार कार्य करने का प्रयास करते हैं। सन्ध्योपासन भी हम वेद तथा ऋषियों की पद्धति से करते हैं। अन्य लोग मनमाने ढंग से पुराणों को प्रमाण मानकर पूजादि करते हैं। हम वैसे नहीं करते, अत: वे हमें नास्तिक आदि कहकर बदनाम करते हैं। मैंने पूछा कि आप राम-कृष्ण आदि को क्यों नहीं मानते? वे हँसकर बोले कि राम-कृष्ण को न माननेवालों की आर्यपर्व पद्धति में जन्माष्टमी, सीताष्टमी तथा रामनवमी के पर्व मनाने का उल्लेख भी देखा है या सुनी बात कह रहे हो? मैंने बताया कि लोग यही कहते हैं कि आर्यसमाज रामकृष्णादि को नहीं मानता, अत: मैंने पूछ लिया। उन्होंने कहा कि वेद में भगवान् को तो अकायम् अर्थात् शरीर धारण न करने वाला कहा है। शरीरधारी तो जीव होता है परमात्मा नहीं। उसी के अनुसार हम राम-कृष्ण आदि को अपने मान्य ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं तथा वे लोग भगवान् का अवतार मानते हैं। हमारे द्वारा उन्हें परमात्मा न मानने के कारण वे हम पर यह आरोप लगाते हैं कि आर्यसमाज उन्हें मानता ही नहीं। मैंने पूछा कि क्या राम-कृष्ण भगवान् के अवतार नहीं थे? उन्होंने कहा कि अवतार का अर्थ उतरना होता है। उतरना एकदेशी का तो हो सकता है, सर्वव्यापक का नहीं। दूसरे, क्या कोई ऐसा काम है जिसे परमात्मा न कर सके? वह तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वशक्तिमान् है । सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय जैसे महान् कार्य वह बिना किसी की सहायता के तथा बिना शरीर धारण किए करता है, तब क्या किसी व्यक्तिविशेष को मारने के लिए उसे अपना नियम तोड़कर शरीर धारण करना पड़ा ? सृष्टि की प्रलय तो बिना शरीर धारण किए करे तथा रावण-कंसादि को मारने के लिए उसे शरीर धारण करना पड़े ? तोड़ने से तो निर्माण कार्य कठिन होता है । भव्य भवन का निर्माण सब नहीं कर सकते, किन्तु उसे तोड़ सब सकते हैं । अतः अवतार मानने पर परमात्मा में अपूर्णता माननी पड़ेगी । उन्होंने अन्य तर्क और प्रमाण भी दिए ।

बातें करते हुए हम नीचे आ गए । उनके बैठने पर मैंने उनसे कहा कि बहुत दिन से मेरे मन में एक शंका है । वह यह कि सब से बड़ा भगवान् कौन सा है ? वे बोले कि मैं आपके प्रश्न को समझा नहीं । मैंने खुलासा करते हुए कहा कि मेरा प्रश्न यह है-शिव, ब्रह्मा, विष्णु-देवी आदि में बड़े कौन हैं ? वे कहने लगे कि मुफ्त ही पूछना चाहते हो ? मैंने कहा कि जो आप चाहें ले लें किन्तु इस झंझट से मेरा पिण्ड छुड़ा दें। इसने मुझे सुखा दिया है । मैं आजीवन आपका आभारी रहूँगा। उन्होंने कहा कि यह बताने का शुल्क पाँच रुपया लगेगा । मैंने कहा कि चाहे पचास रुपया ले लो, पर इस भूत से मेरा पीछा छुड़ाओ । वे बोले कि इससे भी आपका पिण्ड छूट जाएगा तथा भूत से भी । मैंने पाँच रुपये दिए और उन्होंने थैले से निकालकर सत्यार्थप्रकाश दिया कि यह अज्ञान-जनित लाखों रोगों की एक ही औषध है ।

मैंने घर आकर सत्यार्थप्रकाश पढ़ा तथा मुझे अपनी मूर्खता पर बहुत हँसी आई । जिनके छोटे बड़े होने के भेद से मैं घबरा रहा था वे तो एक ही परमात्मा के गुणवाचक विभिन्न नाम हैं। उसे कल्याण करने से शिव (शिवु कल्याणे) व्यापक होने से विष्णु (विष्लृ व्याप्तौ) जगत्क्रीड़ा आदि के कारण देव या देवी आदि कहते हैं । जो शंका मैं वर्षों से मन में पाले फिरता था, जिसका कोई समाधान नहीं मिल रहा था, वह सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास ने ही हल कर दी ।

इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश ने हजारों अँधेरे जीवनों में प्रकाश भरा । कैसा भी संशय मन में हो उसका समाधान सत्यार्थप्रकाश में कहीं न कहीं मिल ही जाता है ।

क्रमशः

वेदप्रकाश से साभार

□□□

पाठकों के पत्र तथा सम्मतियाँ

आपके ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित मनुस्मृति (अनुसन्धानयुक्त) वास्तव में इस शताब्दी की महान् कृति है । एतदर्थ व्याख्याता प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं ।

-रमेशचन्द्र सक्सेना (जिला जज)
बी ६९, शास्त्री नगर, मेरठ

दयानन्दसन्देश आर्य जगत् की सर्वोत्तम पत्रिका है । इसके माध्यम से महर्षि के सिद्धान्तों का प्रचार किया जाता है, यह बहुत उत्तम बात है । महर्षि सत्य के प्रचारक थे । इस पत्रिका में कहीं कहीं अंग्रेजी भाषा के अंकों को देखकर खेद भी होता है । अतः यथासम्भव हिन्दी के ही अंक छपें तो अच्छा रहे ।

-महेन्द्रप्रताप आर्य
पहाड़पुर (आर्यनगर), वाराणसी

मुझे दयानन्दसन्देश का सदस्य बने १० वर्ष पूरे हो गये हैं । अगस्त ९३ के अंक में छपा भौतिक विज्ञान भी आत्मा और ईश्वर की सत्ता को मानेगा । लेख बहुत अच्छा लगा । मैं उसका शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता । ऐसे लेख प्रकाशित कर हमारी ज्ञान वृद्धि करते रहें । आज के वैज्ञानिक युग में ऐसे लेखों की महती आवश्यकता है ।

ग्राहक संख्या : वी १६३
हर्षदेव पार्क, बुद्ध विहार, दिल्ली

अगस्त ९३ का अंक प्राप्त हुआ । आर्य राष्ट्र का आप ने जो उत्तर दिया है, तदर्थ धन्यवाद करता हूँ । 'विज्ञान भी आत्मा और ईश्वर की सत्ता मानेगा' यह लेख अति उत्तम है । इसी प्रकार वेदान्ती से शास्त्र चर्चा और गीता का चक्रव्यूह लेख भी अतीव उपयोगी है ।

श्रीकृष्ण आर्य
आर्यसमाज सुल्तानपुर-पट्टी

मैं दयानन्दसन्देश का ग्राहक हूँ । आर्य जगत् में यह पत्रिका पाठकों के लिए उच्च कोटि की सामग्री उपलब्ध कराती है, अतः बारम्-बार धन्यवाद करता हूँ ।

करणसिंह आर्य
कोटा (राज०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति से धर्म को हटाने से पूर्व कुछ विचारणीय प्रश्न

भारत सरकार धर्म को राजनीति से अलग करने के लिए प्रतिबद्ध है, यह उसका दुराग्रह एवं भ्रान्ति है। जब कि महात्मा गांधी ने 6 अप्रैल 1924 के नवजीवन नामक साप्ताहिक पत्र में यह स्पष्ट कहा था-

मेरे निकट धर्म शून्य राजनीति का कोई मूल्य नहीं है। राजनीति धर्म की अनुचरी है। धर्महीन राजनीति को फांसी के तुल्य समझना चाहिए। वह आत्मा का नाश कर देती है।

राष्ट्रपिता गान्धी की इस चेतावनी की खिल्ली आज वे लोग ही उड़ायें, जो महात्मा गान्धी की जय जयकार करते रहते हैं, और उनकी समाधि पर जा जा कर पुष्पाञ्जलि देते रहे हैं, क्या यह बड़ी विडम्बना नहीं है।

धर्म क्या है ? उसको पृथक् करने से पूर्व सरकार को उसे समझने का प्रयास करना चाहिए। यथार्थ में विभिन्न मजहबों के उपद्रव से दुःखी होकर सरकार भुलावे में मजहबपरस्ती को दूर न करके जीवन में अतीव महत्त्वपूर्ण धर्म तत्त्व से पृथक् कर देना चाहती है। इसलिए प्रथम धर्म की परिभाषा व महत्त्व को समझना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा कहीं ऐसा न हो जाये कि सरकार ही बाद में पछताने लगे कि हम तो धोखा खा गये। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति और समाज को सुव्यवस्थित रूप से चलाने का है। धर्म जिसे आप कह रहे हैं, उसको दूसरे शब्दों में नैतिकता, नागरिकता, भी कह सकते हैं। धर्म किन्हीं बाह्य चिह्नों का या पूजापद्धति का नाम नहीं, अन्यथा धर्म शास्त्रकार ऐसा कभी नहीं कहते-

धर्म एकोऽनुगच्छति।

अर्थात् मरने के बाद और कोई चीज मृतक के साथ नहीं जाती केवल धर्म ही साथ जाता है।

1. **श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।**
   आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
2. **धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः॥**

अर्थात् धर्म का सार यही है कि व्यक्ति जो जो कार्य अपने प्रतिकूल हों, उन्हें दूसरों के लिए भी न करे, अथवा जीवन में जिसको धारण किया जाये। धर्म तो प्रजा को धारण करता है। अथवा

1. **यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**
2. **दशकं धर्मलक्षणम्॥ (मनु०)**

अर्थात् जिससे मनुष्य की लौकिक व पारलौकिक उन्नति एवं विकास होता है उसे धर्म कहते हैं। अथवा धैर्य रखना, क्षमा करना, मन को वश में रखना, चोरी न करना, शुद्धि रखना, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि को बढ़ाने वाले आहारों का ही ग्रहण करना, और नशीले बुद्धिनाशक शराब का त्याग करना, विद्या पढ़ना, सत्य बोलना, क्रोध न करना, अहिंसा का पालन करना, इत्यादि धर्म के दश लक्षण हैं, जिनसे धर्म जाना जाता है।

उपरोक्त धर्म की परिभाषाओं में से भारत सरकार किसको छोड़ना चाहती है ? क्या उसे धर्म इसलिए अच्छा नहीं लगता कि धर्म मनुष्य की उन्नति व विकास में परम सहायक है ? क्या सरकार को मानव की उन्नति व विकास के साधन धर्म की आवश्यकता नहीं है ?

धर्म निरपेक्षता का दुष्परिणाम- आज देश में सब से अधिक पतन चरित्र का हुआ है। यह बहुत चिन्ता का विषय है ? चरित्र का पतन होने से देश का भविष्य भयंकर खतरों से भर गया है। सरकार कुछ क्षेत्रों में भौतिक दृष्टि से उन्नति देखकर चाहे प्रसन्न रहे, किन्तु चरित्रहीन देश कभी उन्नत नहीं होते हैं। और चरित्र के पतन का मुख्य कारण सरकार की **धर्म-निरपेक्ष नीति है।** सत्य ही कहा है-

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

भ्रान्ति क्यों और कैसे हुई- यथार्थ में धर्म-शब्द का पर्यायवाची शब्द अंग्रेजी भाषा में नहीं है। इसलिए अंग्रेजी भाषा के विद्वानों ने धर्म का अनुवाद रिलीजन मजहब करना आरम्भ कर दिया। धर्म का सत्यार्थ गौण हो गया। दुर्भाग्य यही रहा। हिन्दी के लेखक भी धर्म का प्रयोग रिलीजन मजहब के अर्थ में ही करने लगे। राजनीति से धर्म का अलग करना बहुत ही गलत और विनाशकारी होगा। विश्व के नेता स्टालिन और हिटलर ने भी धर्म को दुत्कारा था, जिसका भयंकर परिणाम सर्वविदित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म और मजहब में अन्तर- धर्म जीवन-रक्षक है तो मजहब विघातक है। धर्म मनुष्य की उन्नति एवं विकास में परम सहायक है तो मजहब मनुष्य की विवेकशक्ति को कुण्ठित करके उसके पतन का कारण बन जाता है। धर्म कहता है कि राजा प्रजा के हित में ही सोचे और काम करे, चाहे उन कार्यों से अपना अहित भी हो। राजा को ऐसे कार्य कभी नहीं करने चाहिए जो अपनी मर्जी के हों और प्रजा हित में नहीं हों परन्तु मजहब के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि वह मजहबी बातों को प्रजा पर बलात् लादे, चाहे उसके लिए कुछ प्रजा के लोगों की हत्या ही क्यों नहीं करनी पड़े। इस्लाम इसका ज्वलन्त उदाहरण है। मजहब में गुरुडम होता है जिसके अनुसार मनुष्य की विचारने की शक्ति को कुण्ठित कर दिया जाता है। और धर्म खुले रूप में यह घोषणा करता है-

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मः वेद नेतरः ॥

अर्थात् जो तर्क की कसौटी पर खरा उतरे उसे धर्म कहते हैं। आज कांग्रेस तथा दूसरे राजनीति के दलों में स्पष्ट ही मजहबपरस्ती छा गई है, जिसके कारण कोई व्यक्ति कितना भी दुराचरण करता रहे उसका कोई विरोध करने की हिम्मत नहीं करता, जब तक वह अपने अनुकूल रहता है। और किसी मतभेद के कारण जब वही व्यक्ति उस दल से पृथक् हो जाता है तो कितना भी सदाचारी श्रेष्ठ पुरुष क्यों न हो किन्तु दल के लोग उसकी इतनी बुराई करते हैं, तब तो सत्य भी झूठ और झूठ भी सत्य हो जाता है। अभिप्राय यह है दल में रहने वाला व्यक्ति बुरा भी अच्छा है और दल से बाहर जाकर अच्छा भी बुरा हो जाता है। यह अच्छे बुरे की कसौटी बड़ी घातक है। जो दोष मजहबपरस्ती में होते हैं वे ही आज राजनीति में प्रवेश कर गये हैं। मजहब परस्ती भी यही सिखाती है जो अपना गुरु पैगम्बर या उनकी तथाकथित धर्मपुस्तक कहती है, वही सत्य है, उनसे भिन्न सब मान्यताएँ गलत हैं।

यथार्थ में मजहब और मजहबपरस्ती बुरी और देश की उन्नति में विघातक है, धर्म नहीं। राजनीति से उसे ही हटाना चाहिये। परन्तु देखा यह जा रहा है कि सत्तासीन दल ही सब से अधिक मजहबपरस्ती को बढ़ावा दे रहा है। अलीगढ़ और देवबन्द जैसे मुस्लिम विद्यालय उसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, केन्द्रीय सहायता से चलने वाले इन शिक्षा संस्थानों में राष्ट्रीयता का सर्वथा अभाव दिखाई दे रहा है, इनमें पढ़ने-पढ़ाने वाले क्या पढ़ा रहे हैं, क्या सिखा रहे हैं, उनसे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वहाँ ऐसे विषैले वृक्ष पल रहे हैं जो अलगाववाद व मजहबपरस्ती को खुले रूप में बढ़ावा दे रहे हैं। क्या भारत सरकार इनकी अनदेखी करके अपने उत्तरदायित्व से मुख मोड़ सकती है? उर्दू एक भाषा है, उससे हमारा कोई विरोध नहीं है, किन्तु जम्मू-कश्मीर जैसे प्रदेशों में इसलिए उर्दू को राजभाषा बनाया गया है कि इससे एक मजहब वाले प्रसन्न होंगे, जबकि उस प्रदेश के 12 प्रतिशत ही लोगों की भाषा (1991 की जनगणना के अनुसार) उर्दू है। इसी प्रकार साहबानो के केस में देश के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की अवहेलना करके सरकार ने उसे खुले आम दुत्कार दिया। क्योंकि ऐसा करने से उस मजहब के कुछ कट्टरपन्थी लोग सन्तुष्ट हो जायेंगे।

धर्म का दुरुपयोग कौन कर रहा है- सत्तासीन पार्टी धर्म का दुरुपयोग रोकने के लिए कानून बनाना चाहती है। किन्तु उसे अपने गिरेबान में झाँककर भी देखना चाहिए कि सब से अधिक धर्म का दुरुपयोग सत्तासीन पार्टी कर रही है। जैसे-

(क) अपनी कुर्सी बचाने के लिए समय समय पर मुस्लिम कार्डों का सहारा लेना और कभी हिन्दु कार्डों का।

(ख) चुनाव के दिनों में घोषणाएँ करना कि जिससे एक वर्ग विशेष को लाभ मिले और उनके वोट हमारी झोली में आ जायें।

(ग) जामा मस्जिद के इमाम बुखारी से फतवा दिलवाना।

(घ) हिन्दू धर्म के ठेकेदार शंकराचार्य तथा तान्त्रिक का आशीर्वाद प्राप्त करना।

(ङ) मुस्लिम बहुल इलाकों में मुसलमानों को ही चुनाव मैदान में उतारना।

(च) ईसाई बहुल नागालैंड मिजोरम जैसे प्रदेशों में बाईबिल पर आधारित राज्य बनाने की घोषणा करना।

(छ) केरल जैसे मुस्लिम बहुल प्रदेशों में कट्टरवादी मुस्लिम लीग से समझौता करना। और जुम्मे की छुट्टी घोषित करवाना।

(ज) हिन्दू बहुल प्रदेशों में सोमयज्ञ आदि का आयोजन करना।

शेष पृष्ठ १७ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीयता ही धर्मनिरपेक्षता का विकल्प

—डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

गत कुछ समय से देश में निरन्तर धर्मनिरपेक्षता की चर्चा हो रही है। ११ मार्च ९३ को राष्ट्रपति के अभिभाषण पर बहस के उत्तर में प्रधानमंत्री पी० वी० नरसिंहराव ने घोषणा की कि 'धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र' की रक्षा के लिए संविधान में संशोधन होंगे। अयोध्या की घटनाओं के बाद धर्मनिरपेक्षता की रक्षा को अपनी पहली प्राथमिकता बताते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि धर्म को चुनावी राजनीति में हम इस्तेमाल नहीं होने देंगे। ८५ प्रतिशत लोग हिन्दू हैं, लेकिन लोगों को धार्मिक आधार पर नहीं बंटने दिया जा सकता। दिलचस्प बात यह है कि जो प्रहार प्रधानमंत्री भाजपा पर कर रहे हैं, वही प्रहार भाजपा प्रधानमंत्री, उनके दल तथा अन्य सभी दलों पर करती है। वह धर्म निरपेक्षता का नहीं, छद्म धर्मनिरपेक्षता का विरोध करती रही है, और आज भी कर रही है। उसका कहना है जिस प्रकार ८५ प्रतिशत हिन्दुओं को धर्म के आधार पर केवल मतों के लिए संगठित करना गलत है, उसी प्रकार १५ प्रतिशत अल्पसंख्यकों को भी धर्म के आधार पर एक करके भी उनके मतों को बटोरना अनुचित है।

धर्म निरपेक्ष लोकतंत्र की रक्षा के लिए प्रधानमंत्री अथवा सरकार कब किन संविधान संशोधनों को प्रस्तुत करेगी, पता नहीं है, पर भाजपा संविधान की उन सब धाराओं को उद्धृत करती रही है जिसके कारण देश धर्म के नाम पर विभाजित होता रहा है। उसका कहना है कि धारा ३०ए, ३७०, ३७१ हिन्दू कोडबिल तथा अल्पसंख्यक धर्मावलम्बियों के व्यक्तिगत कानूनों के अतिरिक्त संविधान में सामाजिक संस्कृति की स्वीकृति वे कारण हैं, जिनसे देश धर्म के नाम पर बंटता है। **यदि देश में धर्म निरपेक्ष लोकतंत्र की स्थापना करनी है तो उक्त धाराओं को हटाकर कुछ संविधान संशोधन करने होंगे।** संविधान की मूलभावना जाति, वर्ण, पन्थविहीन लोकतन्त्र की है। उक्त सभी व्यवस्थाएं संविधान की इस भावना में बाधक हैं। इन्हीं सब व्यवस्थाओं के कारण ही अल्पसंख्यक बहुसंख्यक की सोच उत्पन्न हुई है। अल्पसंख्यक आयोग का गठन कर इसी सोच को और अधिक सुदृढ़ किया गया है।

धर्म स्थिरता का द्योतक

प्रधानमंत्री को कहना चाहिए था कि हम संविधान में से सेकुलरिज्म अथवा धर्म (पंथ) निरपेक्षता शब्द को हटाकर धार्मिक राज्य की घोषणा करेंगे क्योंकि **धर्म ही साम्प्रदायिक मनोवृति को नष्ट करता है। धर्म से ही राज्य स्थिर होता है। जिस संविधान की शपथ ईश्वर के नाम पर ली जाती है, वह संविधान धर्म से निरपेक्ष कैसे हो सकता है।** धर्म उन शाश्वत नियमों का नाम है जो मनुष्य को जीवित रखते हैं। जब संविधान के हिन्दी अनुवाद के सैकुलरिज्म का अनुवाद धर्मनिरपेक्षता के स्थान पर पन्थ निरपेक्षता किया गया तो कुछ लोग प्रसन्न हुए। सोचा कि अब धर्म की सत्ता हो गयी। पर पन्थ निरपेक्षता शब्द से और भ्रान्तियां उत्पन्न हुईं। पन्थ को संकीर्ण मान लिया गया। पर वास्तविकता यह है कि प्रत्येक पन्थ मत अथवा सम्प्रदाय में धर्म की ही उनके प्रर्वतकों द्वारा की गयी व्याख्याएं हैं। सम्प्रदायों अथवा मतों के प्रवर्तक सर्वथा निष्पाप व निश्छल होते हैं। सच्चा मत चाहे किसी हिन्दू महात्मा का हो, महात्मा बुद्ध, ईसा, मुहम्मद या नानक का हो, हम से यह मांग करता है कि हम घृणा और हिंसा का मुकाबला शान्ति और सम्मान के साथ करें। विश्व के सभी पन्थ अपनी उच्चावस्था में हमसे यह अपेक्षा करते हैं कि हम एक दूसरे से विनम्रता मैत्री और भ्रातृत्व की दृष्टि से व्यवहार करें।

वामपन्थी विचारकों व राजनीतिक दलों द्वारा पन्थ अथवा धर्मनिरपेक्ष की व्याख्या इनका सर्वथा निषेध करके, इन्हें समाप्त करने की, की जाती रही है। अब इस व्याख्या में थोड़ा परिवर्तन हुआ है। देश के अल्पसंख्यक पन्थों के प्रति उदारता तथा बहुसंख्यकों के मत के प्रति घृणा उसका अर्थ किया जाता है। पर यह राष्ट्र की एकता के लिए घातक दृष्टि है।

रूढ़ि एवम् अन्धविश्वास

पन्थ निरपेक्षता का यह अर्थ कि राज्य किसी भी पन्थ में दखल नहीं देगा, राष्ट्र के विकास की दृष्टि से अनुचित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक प्रकार की रूढ़ि व अन्धविश्वास को नष्ट करे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करे। किसी भी पन्थ में अन्धविश्वास अथवा अवैज्ञानिकता है तो उसे दूर करना राज्य का ही कर्त्तव्य है। पन्थ के सिद्धान्तों व उनके कर्मकाण्डों में दखल न होने की नीति से उन उन पन्थों में अनेक कमियां आज तक बनी हुई हैं। यहां इस तथ्य का उल्लेख भी आवश्यक है कि साम्प्रदायिक तनाव का कारण धर्म अथवा पन्थ को बताना गलत है। सत्य यह है कि साम्प्रदायिक तनाव राजनीतिक कारणों से ही होते हैं। बदनाम धर्म होता है, लाभ राजनीतिज्ञ उठाते हैं। धार्मिक हिन्दू और धार्मिक मुसलमान अपने कर्मकाण्डों व अन्य कट्टरताओं से जुड़े रहने पर भी पारस्परिक वैमनस्य से दूर रहते हैं। ये राजनीतिज्ञ होते हैं जो कि दोनों सम्प्रदायों को परस्पर भिड़ा कर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। यह स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं कि सम्प्रदायों के तथाकथित धार्मिक नेता भी धार्मिकता का लबादा ओढ़े रहते हैं। असल में वे राजनीति के ही खिलाड़ी हैं वे अपने को धार्मिक कहकर भी धर्म का राजनीतिक उपयोग करते हैं।

पन्थ निरपेक्ष नीति होते हुए भी देश में राजनीतिक नेता सभी पन्थों के समारोहों में मुख्य अतिथि बनकर जाते हैं। यह उनके प्रति तुष्टिकरण का प्रमाण है। पर उन समारोहों में निमंत्रित राजनीतिक नेता इसे सर्वधर्म समभाव बताते हैं। महात्मा गांधी, डॉ॰ राधाकृष्णन तथा अनेक आधुनिक राजनीतिज्ञ पन्थ का अर्थ सर्वधर्मसमभाव ही करते हैं। यदि पन्थ निरपेक्षता का अर्थ सर्वधर्मसमभाव है तो पन्थ निरपेक्षता के स्थान पर संविधान में सर्वधर्मभाव शब्द रखने में क्या आपत्ति है? और उन सभी धाराओं को हटाने व इसमें समुचित संशोधन करने में क्या आपत्ति है जो सर्वधर्मभाव की भावना के विरुद्ध है।

सभी सम्प्रदायों के धर्मग्रन्थों में प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से यह कहा गया है कि भक्ति और निष्ठा जहां अपने सिद्धान्त के प्रति हो, वहां मानवता के प्रति भी होनी चाहिए। कोरी अपने सिद्धान्त के प्रति व्यक्त निष्ठा अंततः दूसरे सम्प्रदाय के प्रति द्वेष-वृत्ति जागरित करती है और यह द्वेष-वृत्ति हृदय की संकुचित अवस्था का दुष्परिणाम है हृदय की यह संकुचित अवस्था ही पाप है। 'स्व' का जितना अधिक विस्तार होता जाता है, व्यक्ति उतना ही उदार बनता है और वह उतना ही पुण्य का भागी बनता है। मनु और याज्ञवल्क्य भिन्न विश्वासियों की प्रथाओं का आदर करने का उपदेश देते हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा था कि ऐसा कभी मत सोचो या कहो कि तुम्हारा अपना धर्म ही श्रेष्ठ है। दूसरों के धर्म को कभी अस्वीकार मत करो ..... बल्कि उनमें से जो आदर योग्य है, उसका आदर करो। जो लोग धर्म को दूसरे देशों में ले जाने वाले थे अशोक उन्हें अपने एक स्तम्भ में निर्देश देता है–'याद रखो कि तुम प्रत्येक जगह आस्था की कुछ जड़ें और सत्य विचार पाओगे, ध्यान रहे कि तुम उन्हें प्रोत्साहित करो, नष्ट नहीं।' जैन सम्प्रदाय में स्याद्वाद के सिद्धान्त के द्वारा इसी सहिष्णुता व सब के सत्य के अन्वेषण के सिद्धान्त को ही स्वीकार किया गया है।

धर्म शिक्षा की अनिवार्यता

दूसरे धर्म अथवा पन्थ की उन्हीं बातों व अन्य धर्मावलम्बियों के विश्वासों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी ठीक जानकारी हो। आधुनिक युग में धर्म निरपेक्षता का नारा लगाने वाले लोगों ने यह भी प्रचारित किया कि धर्म या धर्मों (मतों) की शिक्षा पर रोक लगा दी जाए। यहां तक तमाशा हुआ कि गंगा व गौ पर लिखे पाठों को भी पाठ्यक्रम में रखने से इन्कार किया गया क्योंकि इनका सम्बन्ध किसी धर्म विशेष से है। लेखक का मत है कि धर्म अथवा धर्मों की शिक्षा राष्ट्र में अनिवार्य होनी चाहिए। विभिन्न मत पूर्ण सत्य का प्रतिनिधित्व भले ही न करें, किन्तु वे सत्य के उन विभिन्न पक्षों और धारणाओं का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं जिनमें कि लोग विश्वास करते रहे हैं, वस्तुतः वे एक ही सत्य की विविध ऐतिहासिक अभिव्यक्तियां हैं। उनका (उनसे किसी एक का नहीं वरन् सब का) अध्ययन हमें एक सार्वभौम सत्य की ओर ही ले जाता है। अपने मत के स्वरूप को ठीक प्रकार से समझने के लिए आवश्यक है कि हम जहाँ अपने मत का अध्ययन करें, वहाँ विभिन्न मतों का भी गहन अध्ययन करें, क्योंकि वे सभी एक ही संस्कृति के मूल्यवान् अंग हैं। उन सबका अध्ययन करके ही व्यक्ति उन मतों में विद्यमान धर्म के समान तत्त्वों का अन्वेषण कर सकेगा। उनके गहन अध्ययन से ही व्यक्ति सत्य के विभिन्न रूपों का साक्षात्कार कर सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब व्यक्ति को यह सैद्धांतिक व संवैधानिक अधिकार दिया गया है कि वह अपनी रुचि के अनुसार किसी भी मत के प्रति आस्था व्यक्त कर सकता है तब यह और भी अधिक आवश्यक है कि उस देश के नागरिक को कम से कम उस राष्ट्र में प्रचलित धार्मिक मतों का दार्शनिक स्तर तक का अध्ययन करने की पूर्ण सुविधा प्रदान की जाए। प्रत्येक छात्र को धर्म के सामान्य तत्त्वों के अध्ययन के साथ विभिन्न मतों की शिक्षा दी जाए। ऐसे पाठ्यक्रम तैयार करवाए जाएं जिनमें प्रत्येक मत से सम्बद्ध लेख हों। **ये लेख उस मत के धर्माचार्यों से ही लिखवाए जाएं ताकि उन्हें यह शिकायत न रहे कि उनके मत को ठीक प्रकार से प्रस्तुत नहीं किया गया। प्राथमिक कक्षाओं में नैतिक एवम् चारित्रिक गुणों के विकास की शिक्षा तथा माध्यमिक एवं उच्चतर कक्षाओं में विभिन्न मतों की अनिवार्य शिक्षा व्यक्ति को विवेकपूर्ण धर्म का प्रयोग करने में सहायक सिद्ध होगी।**

वर्तमान व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति विभिन्न मतों का अध्ययन नहीं करता। परिणाम यह होता है कि वह अपने मत को भी ठीक प्रकार से नहीं जानता। वह उनके बाह्य कर्मकाण्डपरक रूप से ही परिचित होता है। उसकी उस कर्मकाण्ड के प्रति अन्ध श्रद्धा तो होती है पर उसका विवेक सम्मत अभिप्राय वह नहीं जानता। दूसरे मतों से सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण सुनी-सुनाई बातों के आधार पर उसका अनावश्यक रूप से बिना तर्क के खण्डन करता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि से मत को मानने का अधिकार देने का यह अर्थ नहीं है कि वह अपने पिता के मत को ही माने। **जन्म के आधार पर व्यक्ति पर मत थोपने की प्रणाली तर्कसंगत नहीं कही जा सकती। किसी मत विशेष में उसकी रुचि तभी जागरित हो सकती है अथवा अनेक मतों में से अपने लिए किसी एक मत का चुनाव वह तभी कर सकता है जब प्रत्येक मत की उसने विस्तृत शिक्षा प्राप्त की हो। इस प्रकार धर्म के मूल तत्त्वों को जान लेता है वहां वह विभिन्न सम्प्रदायों के सम्बन्ध में ठीक जानकारी प्राप्त कर साम्प्रदायिक विद्वेष से भी बच जाता है।**

धर्मनिरपेक्षता के दुष्परिणाम

हमें यह स्वीकार करना होगा कि धर्मनिरपेक्षता की नीति हमारे देश में असफल रही है। धर्मनिरपेक्षता की नीति के रहते हुए साम्प्रदायिक संघर्ष हुए हैं, परस्पर अविश्वास बढ़ा है। देश में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का प्रश्न खड़ा हो गया है। **हम धर्मनिरपेक्षता से देश की शान्ति चाहते थे, वह हमें नहीं मिली। हमारा लक्ष्य धर्मनिरपेक्षता नहीं हो सकता, हमारा लक्ष्य देश की शान्ति व उसकी उन्नति है।** पिछला अनुभव यह बताता है कि धर्मनिरपेक्षता की जितनी चर्चा की जाएगी या संविधान में संशोधन कर उसका पालन जितना कठोर किया जाएगा उतना ही तनाव बढ़ेगा । उसके विपरीत धर्मनिरपेक्षता के स्थान पर धार्मिक राज्य बनने से देश अधिक समुन्नत होगा।

राष्ट्रीयता की कसौटी

हमारी कसौटी राष्ट्रीयता है, धर्मनिरपेक्षता नहीं। पर विचित्र विडम्बना यह है कि जो लोग राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद की बात करते हैं उन्हें साम्प्रदायिक कहा जाता है। आलोचकों का कहना है कि वोटलोलुप राजनीति को हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई को एकता या उनकी राष्ट्रीयता रास नहीं आती और प्रच्छन्न द्विराष्ट्रवाद को बनाए रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता की दुहाई दी जाती है। **अभी केरल में यह मांग हुई है कि जहां ५० प्रतिशत से अधिक बच्चे मुसलमान हैं वहां साप्ताहिक अवकाश शुक्रवार को हो। यह भी कहा गया है कि स्कूलों में मुस्लिम शिशुओं को नमाज अदा करने का समय दिया जाए। जिन राजकीय विद्यालयों में ५० प्रतिशत से अधिक मुसलमान बच्चे हैं उनका नाम राष्ट्रीय मुस्लिम विद्यालय रख दिया जाए।** यदि उनकी मांग मान ली जाए तो हिन्दू, सिख, ईसाई भी इसी प्रकार की मांग करेंगे और तब राष्ट्रीय हिन्दू विद्यालय को किस प्रकार साम्प्रदायिक कहा जा सकेगा।

करणीय क्या है?

राष्ट्रीयता के लिए यह आवश्यक है कि हमारा संविधान व वातावरण ऐसा हो जो भारत में भूगोल, जन-धर्म व संस्कृति के प्रति निष्ठा जागरित करे। भारत के गौरवपूर्ण इतिहास पर प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से गर्व कर सके। भारत के महापुरुष सभी के लिए आराध्य हों । **हमारा यह निश्चित मत है कि धर्मनिरपेक्षता नहीं, राष्ट्रीयता हमारा लक्ष्य है।** उसी लक्ष्य को प्राप्त करने का ही हमें प्रयत्न करना चाहिए। इसी लक्ष्य के लिए ही संविधान में यदि कुछ परिवर्तन अपेक्षित हों तो उनको करना चाहिए।

(आर्यजगत् से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म : धर्मनिरपेक्षता और राजनीति

शुद्ध धर्म तो एक है, छिलके हुए अनेक।
छिलके तो निःसार हैं, सार धर्म का देख ॥

इस संदर्भ में कोई भी बात करने से पहले यह समझ लेना अति आवश्यक है कि धर्म शब्द का आशय क्या है? क्योंकि कोई भी शब्द तब महत्त्वहीन हो जाता है जब उसका आशय अन्यथा समझ लिया जाता है। कुल मिलाकर शब्दों के प्रयोग के प्रति उचित ध्यान न देने से कठिनाइयां बढ़ जाती हैं और इसका अधिक समय तक उपयोग होते रहने पर भ्रमित आशय को जनसाधारण और समाज उसको ठीक समझने लगता है जिसके कारण सही अर्थों को पुनः लाना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। यही कारण है कि आज हमारा बुद्धिजीवी वर्ग भी धर्म के वास्तविक अर्थ को उदित करने में सफल नहीं हो पा रहा है।

आखिर धर्म है क्या?

धर्म है सत्य, निसर्ग, जो सार्वजनीन है (जिसको ब्रह्माण्ड के सब प्राणी ग्रहण करते हैं) सार्वकालिक है (भूतकाल में भी था, वर्तमान में भी है, भविष्य में भी होगा) सार्वदेशिक है (जो ब्रह्माण्ड के चप्पे-चप्पे में व्याप्त है जिससे हमें सृष्टि की अनुभूति प्राप्त होती है) ये सभी तत्त्व धर्म भी धारण करता है। सृष्टि में जो कुछ भी दृश्य अथवा अदृश्य हैं सभी का धर्म निश्चित है। पृथ्वी, सूर्य की परिक्रमा करेगी यह पृथ्वी का धर्म है। मन विचार शून्य नहीं हो सकता क्योंकि विचार करना मन का धर्म है। इसी प्रकार जल का धर्म गीला करना, अग्नि का धर्म जलाना, सूर्य का धर्म प्रकाश देना है। यदि ये तत्त्व अपने धर्म के विरुद्ध कार्य करना आरम्भ कर दें तो सृष्टि का लोप हो जाएगा। इसलिए भारतीय दर्शन की मान्यता है कि धर्म ही सृष्टि का प्राण-सत्य है।

धर्म को समझने के लिए इस रहस्य को समझना आवश्यक है कि विदेशी भाषाओं में इसका कोई पर्यायवाची शब्द नहीं है। रिलीजन, मजहब आदि इसके अर्थ को प्रकट नहीं करते। धर्म न मन्दिर में निवास करता है, न मस्जिद में, न चर्च में, न गुरुद्वारे में। धर्मात्मा वह नहीं है जो सन्ध्या-हवन करता है, नमाज पढ़ता है, रोजे रखता है, मीठी वाणी बोलता है और सरस उपदेश देता है। यह ठीक है कि इसका कुछ लाभ अवश्य हो सकता है लेकिन वो धर्मात्मा नहीं हो सकता। धर्मात्मा वह है जो धर्म, सत्य, सदाचार, न्याय पर स्थित है। धर्मात्मा धन से बिकता नहीं है। शासन से डरता नहीं है, दुःख से घबराता नहीं है, मृत्यु से डरता नहीं है और प्रत्येक परिस्थिति में एकमात्र धर्म ही धर्मात्मा की रक्षा करता है।

मानव धर्म :

मानव धर्म या समाज के सन्दर्भ में धर्म का अपना एक रूप है। यूं तो सृष्टि में अनेक जीव-जन्तु अथवा प्राणी हैं। जिस जीव का जो धर्म है उससे ही वह अपना अस्तित्व सिद्ध करता है। मानव भी एक जीव है और धर्म-विहीन मानव मात्र पशु है। आहार-विहार, निद्रा, मैथुन ये सब तो पशु भी करते हैं। मानव एक विशिष्ट प्राणी है। अतएव इन्द्रियभोग से ऊपर उठकर जो वृत्तियां प्रकाशित होती हैं इन वृत्तियों को धारण करने वाले को ही हम मानव मानते हैं। चिन्तन, ध्यान, सद्वृत्ति और मनन के द्वारा ही मनुष्य को मनुष्यता स्थापित करनी होती है।

धर्मनिरपेक्षता :

भारत जैसे धर्म परायण देश में धर्मनिरपेक्ष शब्द न हिन्दू को, न मुसलमान को, न सिख को, न ईसाई को ही सम्पूर्ण स्वीकार होगा। कठिनाई वहां होती है जब हम धर्म की विदेशियों द्वारा दी गयी व्याख्या को ही जीवन समझने लगते हैं। आज से कुछ वर्ष पहले पश्चिमी विद्वान् यही कुछ सिद्ध करना चाहते थे। इंग्लैंड और यूरोप के अनेक विद्वानों ने भारत को एक असभ्य और पिछड़ा देश सिद्ध करने की चेष्टा की थी, जब हम गुलाम थे। अतएव इसका सही रूप से प्रतिकार भी नहीं कर सके किन्तु उन दिनों में भी वन्दनीय महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द ने जब विश्व को वैदिक ग्रन्थों की वास्तविकता से अवगत कराया तो विश्व स्तब्ध रह गया और उन्होंने भारत के प्रति नमन किया किन्तु अब ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय आत्महत्या करने के लिए उतारू हो गये हैं और देश को अपनी ही भूलों के अतीत के अन्धकार में पहुँचाना चाहते हैं, जहाँ विश्व वैदिक ग्रन्थों, वेदों को एक बार फिर गड़रियों का गीत गाकर सम्बोधित करें। इसी सन्दर्भ में यह कहना अनुचित न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…ा कि यदि भारत के संविधान की रचना अंग्रेजी में न होकर …नी हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा में हुई होती तब शायद …त दूसरी होती और धर्मनिरपेक्षता जैसे शब्दों की जगह पन्थ …मजहब निरपेक्ष शब्द होते।

…नीति :

भारतीय राजनीति में दो ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने …नीति को सदैव उच्च आदर्शों पर स्थापित किया और कभी …धर्म को रिलीजन या मजहब नहीं माना। उनमें एक थे …ृपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन और दूसरे थे राष्ट्रपिता महात्मा …धी। उनके आदर्श के विपरीत आज की भारतीय राजनीति …त, कपट, अराजकता तथा संकीर्णता से गृहीत हो चुकी है। …परिस्थितियों में राजनीति में धर्म शब्द का सही आशय में …ोग होना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है फिर भी प्रयत्न तो …या जाना ही चाहिए कि हम धर्म और सम्प्रदायों का उपयोग …जनीतिक लाभ के लिए न होने दें। सबसे दुखद स्थिति यह …कि आज के राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी में बहुत …तर हो गया है। देश की प्रगति के लिए जिम्मेदार विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका होती है किन्तु यह सभी बहुधा पथ से विचलित हो चुकी हैं। आज के राजनीतिज्ञों का मुख्य उद्देश्य केवल ओछे हथकंडों द्वारा जनता को विभाजित कर सत्ता में आकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना है। इसे प्राप्त करने के लिए वह समाज और राष्ट्र के हितों के विरुद्ध कार्य करने में भी संकोच नहीं करते।

राजनीति केवल एक शासन प्रणाली ही नहीं है बल्कि वह एक जीवन-पद्धति है जिसका प्रतिपालन आचार्य चाणक्य और विदुर जैसे विद्वानों ने किया है। जिसके पालन करने से सबके मान-सम्मान एवं हितों की रक्षा होती है और साथ-साथ समाज के लोगों का आर्थिक संरक्षण एवम् उन्नति का संवर्धन सुगम हो जाता है। समय आ गया है जब सब बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों एवं न्यायविद मिल-बैठकर धर्म, धर्मनिरपेक्षता और राजनीति जैसे शब्दों की उचित व्याख्या करें, जिससे कि राजनीति और समाज में फैला हुआ कोहरा सदा के लिए छंट जाए।

—रविप्रकाश कंसल

□□□

…ृष्ठ १२ पर का शेष

(झ) सरकारी खजाने से करोड़ों रुपया हज यात्रा पर व्यय …रना अथवा जामा मस्जिद मरम्मत के नाम पर सहायता करना।

इस प्रकार धर्म के दुरुपयोग का खतरा बताने वाले स्वयं …ष्टाचार, सांसदों या विधायकों को भ्रष्ट तरीकों से खरीदना …ादि राजनीतिक-अपराधीकरण के ही नमूने हैं। धर्म जो …जनीति को नियन्त्रित कर भ्रष्टाचार से मुक्ति दिला सकता है, उसे ही विक्षिप्त की भांति पुष्पमाला को सर्प समझ कर पृथक् फैंकने का दुस्साहस किया जा रहा है जो कि अत्यन्त निन्दनीय है।

सर्वे सन्तु सुखिनः। वसुधैव-कुटुम्बकम्। मित्रस्य चक्षुषा भूतानि समीक्षन्ताम् जैसे धार्मिक आदर्शों को दुत्कारा जा रहा है, यह बहुत ही गर्ह्य है।

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र हित में जीना सुन्दर राष्ट्र हित में मरना सुन्दर

भारतवासियों एक होकर प्रगति पथ पर पग धरना सुन्दर ।
राष्ट्रहित में जीना सुन्दर राष्ट्रहित में मरना सुन्दर ॥ टेक ॥
स्वर्ग भूमि है भारत भव्य विशाल प्राणों से प्यारा है,
सुखद सलोना कोना-कोना दिव्य मनोरम सारा है ।
पतित पावनी गंगा, यमुना सरस्वती की यहीं धारा है,
जन्म मिला यहाँ प्रभु कृपा से अति सौभाग्य हमारा है ।
अस्तु ! देश की समस्याएँ हल प्यार से पल-पल करना सुन्दर।
राष्ट्रहित में जीना, सुन्दर राष्ट्रहित में मरना सुन्दर ॥ १ ॥
आदि सृष्टि के प्रथम मानव ने जन्म यही पर पाया है,
आर्यावर्त के शुचि उत्संग में खेला, जिया, खाया है ।
परिमल देकर सुमनों जैसा विश्व बाग महकाया है,
शुभ कर्म और धर्म के बल पर विश्व-गुरु कहलाया है ।
आज देश की दुरंत व्यथा का विघ्न हो आगे हरना सुन्दर ।
राष्ट्रहित में जीना सुन्दर राष्ट्रहित में मरना सुन्दर ॥ २ ॥
विश्व वसुन्धरा का है पल-पल आर्यावर्त मुस्कान अहा,
बल-बुद्धि, विद्या, विवेक का देता रहा कवि दान महा ।
हर खुशियों का राज-समाज है निर्मल कान्ति वितान महा,
शुभ सीख, अकाट्य लेख का भारत है पहचान महा ।
आज उसी पावन भारत में अपने आप सुधरना सुन्दर ।
राष्ट्रहित में जीना सुन्दर राष्ट्रहित में मरना सुन्दर ॥ ३ ॥
जागो ! बंधकर एक सूत्र में नवयुग का निर्माण करो,
भारतवासी भाई-भाई आपस में नहीं लड़ो-मरो ।
देश प्रेम से ओत-प्रोत हो राष्ट्र व्यथा का विघ्न हरो,
राष्ट्रहित में यथाशक्ति जन-जन मिलकर सहयोग करो ।
प्रेम-श्रद्धा, विश्वास, आज से सत्य-धर्म, शुभ धरना सुन्दर ।
राष्ट्रहित में जीना सुन्दर राष्ट्रहित में मरना सुन्दर ॥ ४ ॥
देशसुरक्षा निज भी रक्षा अब आगे टालो नहीं,
सोचो-समझो अंगुली निज अग्नि में डालो नहीं ।
भूलकर भी निज स्वार्थ सर्वत्र सम्भालो नहीं,
कुचल डालो सर्प खुद आस्तीन में पालो नहीं ।
कर आत्मनिरीक्षण आज सभी को दुष्कर्मों के डरना सुन्दर ।
राष्ट्रहित में जीना सुन्दर, राष्ट्रहित में मरना सुन्दर ॥ ५ ॥
जीवन नाम सदा चलने का कभी न पीछे हटने का,
रुकना, झुकना, चुकना भी नहीं साहस कर आगे चलने का ।
अलगाव कायरता, आलस तज अब भी है समय सम्भलने का,
राष्ट्रधर्म एक धर्म सभी का राष्ट्र धर्म में पलने का ।
कर देश सेवा कवि बाबूराम सहज भाव से तरना सुन्दर ।
राष्ट्रहित में जीना सुन्दर, राष्ट्रहित में मरना सुन्दर ॥ ६ ॥

बाबूरामसिंह कवि, सुगर मिल बगोली, कल्याण नगर, पो. मारोली बाजार, जि. बलसाड (गुजरात)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारविधि : के विरुद्ध अनर्गल प्रचार

डॉ॰ ज्वलन्तकुमार शास्त्री
एम॰ ए॰ पी॰ एच॰ डी॰, प्राध्यापक संस्कृत विभाग,
रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमेठी (उ॰ प्र॰)

आजकल कुछ आर्य विद्वान् अपनी विद्वत्ता दिखाने के ाए संस्कारविधि के विरुद्ध मनमाने आरोप या अनर्गल प्रचार लगे हुए हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती का एक अनुयायी था सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा का एक सदस्य होने के नाते कुछ आर्य विद्वानों द्वारा संस्कारविधि के विरुद्ध प्रचारित छ अवधारणाओं के निराकरण के लिए यह लेख लिख रहा ।

1. पीलीभीत के प्रसिद्ध 'पुरोहित' उपाधि प्राप्त पं॰ द्रदेव जी सम्पादक 'आर्य राष्ट्र' का मत है कि अयन्त इध्म ात्मा॰ मन्त्र से न तो समिदाधान करना चाहिए और न इस मन्त्र पंच घृताहुति ही देनी चाहिए। क्योंकि संस्कारविधि के तलेख में 'अयं त इध्म आत्मा॰' मन्त्र हाशिये में किसी ने ढ़ा दिया है। 9 नवम्बर 1992 ई॰ के 'आर्य राष्ट्र' में 'इस त्र को प्रेस कापी में बढ़ा दिया गया है' यह लिखा है। र्थात्- 'हस्तलेख में यह मन्त्र ही नहीं' यह अर्थ निकला। ० मई १९९३ ई॰ के 'आर्य राष्ट्र' में पुरोहित श्री इन्द्रदेव ी ने किसी गृह्यसूत्र का वचन उद्धृत करके यह भी लिखा कि समिदाधान तथा जल प्रोक्षण से पूर्व आहुतियाँ नहीं होनी ाहिए। इन लोगों के कुप्रचार का कुपरिणाम यह हो रहा है किसी-किसी आर्यसमाज में 'अयं त इध्म आत्मा॰' मन्त्र समिदाधान नहीं हो रहा है। आर्यसमाज गोविन्दनगर, 'वेद न्दिर कानपुर' के श्री ओमप्रकाश आर्य (प्रधान) का एक क्तव्य 'आर्य राष्ट्र' ९ नवम्बर १९९२ ई॰ के अंक में यह पा है कि 'मैं आज से यज्ञ में 'अयं त इध्म आत्मा॰' मन्त्र समिधा नहीं चढ़ाऊँगा। क्योंकि संस्कारविधि में एक मन्त्र "एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें।" यह लिखा है। ी आर्य जी का तात्पर्य है कि जब एक-एक मन्त्र से लिखा तब दूसरी समिधा दो मन्त्रों को बोलकर क्यों दी जाती है? श्री ओमप्रकाश आर्य इस निष्कर्ष या परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह 'अयं त इध्म॰' मन्त्र संस्कारविधि में प्रक्षिप्त है।

समाधान- महाभाष्यकार पतञ्जलि लिखते हैं 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्' अर्थात्- व्याख्यान द्वारा विशेष बोध हो जाता है, सन्देह से आर्ष वचन को अप्रामाणिक नहीं बताना चाहिए। पहले संस्कारविधि के हस्तलेख को लें। (१) हस्तलेखों में ऋषि द्वारा निरीक्षण या संशोधन करते समय हाशिये पर अनेक पाठ बढ़ाये गये हैं और वे पाठ पूर्ण प्रामाणिक हैं। साधारण जनता में ये प्रचारक यह प्रवाद फैला रहे हैं कि मात्र यही एक मन्त्र हाशिये में बढ़ाया गया है, जबकि तथ्य दूसरा है। संस्कारविधि या सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रंथों में सैकड़ों पाठ हाशिये में पुनर्निरीक्षण करते समय ऋषि द्वारा या ऋषि की प्रेरणा से लेखकों द्वारा बढ़ाये गये हैं। फिर यह बावेला इसी 'अयं त इध्म॰' मन्त्र को लेकर क्यों मचाया जा रहा है? (२) दूसरी बात हाशिये में बढ़ाया गया पाठ और अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। अर्थात् उस पाठ के बिना लेख अधूरा हो जाएगा इसलिए कोई लेखक हाशिये पर पाठ बढ़ाता है। (३) हम सभी लेखकों को यह अनुभव है कि लेख लिखते समय कुछ बातें शीघ्रता में छूट जाती हैं। दुबारा लेख पढ़ते समय न्यूनता प्रतीत होती है, तभी संशोधन या लेख को पूर्ण करने के लिए हम सभी लेखक हाशिये में कुछ पाठ बढ़ाते हैं। सभी प्रेस के या प्रकाशन से जुड़े व्यक्तियों लेखकों के लिए यह सामान्य बात है और अनुभव सिद्ध है।

(४) संस्कारविधि में यह मन्त्र प्रक्षिप्त तब माना जाएगा जब इस मन्त्र का अग्रिम पाठ से विरोध होगा। जब कि वस्तु स्थिति यह है कि संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण से अन्यत्र अनेक स्थलों में 'अयं त इध्म॰' मन्त्र से समिदाधान का उल्लेख है? आक्षेपकर्ताओं ने सम्पूर्ण संस्कारविधि को ध्यान से पढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता तो यह आरोप न लगाते। द्रष्टव्य- (क) संस्कारविधि के विवाह प्रकरण में पूर्व विधि के अन्तर्गत लिखा है- पृष्ठ २३-२४ में लिखे (ओम् अयन्त इध्म॰) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान (संस्कारविधि पृष्ठ-१३५ आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट षष्ठ संस्करण) संस्कारविधि के सभी प्रमाण इस लेख में आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित षष्ठ संस्करण से दिये जायेंगे।

(ख) संस्कारविधि के विवाह प्रकरण में ही उत्तरविधि में लिखा है-'(ओम् अयन्त इध्म॰)' इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान करके (पृष्ठ १५१)?

(ग) पुन: उत्तरविधि में ही लिखा है- पृष्ठ २३-२४ में लिखे प्रमाणे (ओम् अयन्त इध्म॰) इत्यादि चार मन्त्रों से समिदाधान होम दोनों जने करके (संस्कारविधि: पृष्ठ १५४)।

अत: तीन ही मन्त्रों से तीन समिदाधान करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इन स्थलों में ये पाठ हाशिये पर नहीं हैं। बिना हाशिये के मूल में ही इन पाठों को किस आधार पर पूर्वपक्षी प्रक्षिप्त बतायेगा? हमने यहाँ पर 'अयं त इध्म॰' मन्त्र द्वारा समिदाधान का स्पष्ट उल्लेख सामान्य प्रकरण के अतिरिक्त तीन स्थलों का दिखाया है तथा पूर्वपक्षी के आरोप के उत्तर में संख्या वार (१) से (४) तक समाधान प्रस्तुत किये हैं। बुद्धिमान् के लिए इशारा काफी है किन्तु ज्ञानलवदुर्विदग्ध को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता है। भर्त्तृहरि जी लिख गये हैं- ब्रह्मापि तं नरं रञ्जयितुं न शक्त:।

(२) एक दूसरे पुरोहित पं॰ वेदभूषण जी (अध्यक्ष अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान हैदराबाद) ने यह तर्क दिया है कि ब्रह्मचारी को प्रजा की कामना नहीं होती अत: 'अयं त इध्म॰' मन्त्र जिसमें प्रजा की कामना की गई है, द्वारा पंच घृताहुति नहीं देनी चाहिए। इनका यह भी मत है कि चूँकि इस मन्त्र से आहुति का विधान पंचमहायज्ञविधि में नहीं है अत: किसी को भी 'अयं त इध्म॰' मन्त्र द्वारा पंच घृताहुति नहीं देनी चाहिए। हैदराबाद के ही पं॰ गंगाराम जी इनके बहकावे में आ गये हैं। उन्होंने अपने 'वर्णाश्रम पत्रक' पत्रिका में पं॰ वेदभूषण जी के पुरोहित शिविर का बुलेटिन बनाकर हजारों की संख्या में आर्य समाजों को भेजकर वेदभूषण जी के मत के प्रचार में योगदान किया है।

(१) पं॰ वेदभूषण जी ने भी सम्यक् रूप से सम्पूर्ण संस्कारविधि का अध्ययन नहीं किया है। अन्यथा वे यह नहीं कहते कि ब्रह्मचारी 'प्रजाकाम' नहीं होता। वेदारम्भसंस्कार में ब्रह्मचारी जिन मन्त्रों से तीन समिधाएँ वेदिस्थ अग्नि में छोड़ता है उन मन्त्रों में प्रजा की प्रार्थना की गई है। प्रजा शब्द इन्द्रियों के लिए भी प्रयुक्त होता है। 'ओम् अग्नये समिधमाहार्षं ̇ ̇ ̇मेधया वर्चसा प्रजया पशुभि ब्रह्मवर्चसेन ̇ ̇ ̇' (संस्कारविधि : पृष्ठ ८६)

(२) वेदारम्भसंस्कार में ही ब्रह्मचारी जिस मन्त्र से परमेश्वर का उपस्थान करता है उस मन्त्र में तीन बार प्रजा की कामना की गई है-'ओम् मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु। ̇ ̇ ̇' (संस्कारविधि पृष्ठ ८७)

इस प्रकार प्रजा की प्रार्थना वाले छ: मन्त्र हैं जिसकी प्रार्थना ब्रह्मचारी वेदारम्भसंस्कार में करता है।

(३) ब्रह्मचारी द्वारा प्रजा की प्रार्थना का यह तात्पर्य नहीं है कि अभी ही उसको प्रजा की प्राप्ति हो जाए। यह सम्भव भी नहीं है क्योंकि अभी तो वह गुरुकुल या आचार्य कुल में उपनयन संस्कार द्वारा प्रविष्ट हुआ है। उपनयन के बाद उसका वेदारम्भसंस्कार भी हो रहा है। अल्पवयस् होने के कारण वह सन्तानोत्पादन योग्य भी नहीं है। किन्तु भविष्य में गृहस्थाश्रम में जाकर वह सन्तानोत्पादन करेगा। प्रजा की प्राप्ति उसको होगी। इस निमित्त बल, वीर्य का संचय तो उसे अभी से ही करना है। ब्रह्मचर्याश्रम में बल, वीर्य को वह न गवाँये क्योंकि उसे गृहस्थाश्रम में पूर्ण नीरोग और बलवान् पुत्र-पुत्री को प्राप्त करना है। यहाँ प्रजा-प्रार्थना का यही तात्पर्य है।

(४) वेदारम्भसंस्कार में प्रजा की प्रार्थना में 'अहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया' मन्त्र-पाठ में तो 'अहम्' अर्थात् 'मैं' एकवचन का प्रयोग है तथा 'मयि मेधां मयि प्रजां' मन्त्र में भी 'मयि' अर्थात् 'मुझ में' एकवचन का ही प्रयोग है। किन्तु पञ्चघृताहुति या प्रथम समिदाधान के मन्त्र 'ओम् अयं त इध्म॰' मन्त्र में 'अस्मान् प्रजया पशुभि' द्वारा अस्मान् अर्थात् हम सब को प्रजा पशु आदि से वृद्धि हो की प्रार्थना की गई है। अत: यह मन्त्र ब्रह्मचारी गृहस्थ तथा वानप्रस्थ सभी बोल सकते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सभी को इस 'ओम् अयं त इध्म०' मन्त्र द्वारा समिदाधान या पञ्चघृताहुति देनी चाहिए ।

(५) प्रजाकाम ब्रह्मचारी नहीं होता इस लिए यह मन्त्र वह बोले, दुर्जनतोषन्याय से यदि मान भी लिया जाए तो संन्यासी वित्तैषणा त्याग चुका होता है फिर वह 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' मन्त्र पाठ क्यों करे ? क्योंकि इस मन्त्र में ' धनैश्वर्यों के स्वामी' होने की प्रार्थना की गई है । इसलिए यह कहा गया कि-'उपायं चिन्तयन् प्राज्ञः तथाऽपायमपि चिन्तयेत्' ।

(६) पञ्चमहायज्ञविधि में 'अयं त इध्म आत्मा०' मन्त्र से आहुति का विधान नहीं है, इसलिए इस मन्त्र से आहुति नहीं देनी चाहिए । इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पञ्चमहायज्ञविधि में ईश्वरस्तुतिप्रार्थना-उपासना के ८ मन्त्र नहीं हैं, फिर प्रार्थना के ८ आठ मन्त्र क्यों बोलते हैं ? पञ्चमहायज्ञविधि में 'इदमग्नये प्राणाय इदं न मम' आदि पदों का भी निर्देश नहीं है, फिर इन पदों को क्यों बोला जाता है ? सत्यार्थप्रकाश में देवयज्ञविधि में आचमन तथा 'सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा' तथा 'अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा' आदि मन्त्र भी नहीं हैं । फिर इन मन्त्रों से प्रातः और सायं आहुतियाँ क्यों दी जाती हैं ?

(७) इस सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण यह है कि दैनिक यज्ञ या संस्कारों के सम्बन्ध में 'संस्कारविधि' मुख्य ग्रंथ है, इसलिए यज्ञ का पूर्ण विधान 'सामान्य प्रकरण' के अन्तर्गत 'संस्कारविधि' में किया गया है । 'सत्यार्थप्रकाश' तथा 'पञ्चमहायज्ञविधि' में सामान्य निर्देश मात्र है । दैनिक ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत 'सन्ध्या' का पूर्ण विधान 'पञ्चमहायज्ञविधि' में मिलता है । 'संस्कारविधि' में सन्ध्या का वर्णन प्रसङ्गतः गृहाश्रमप्रकरण' के अन्तर्गत मिलता है मुख्यतः 'सन्ध्या' की विधि पञ्चमहायज्ञविधि में मिलती है, अतः सन्ध्या का प्रचलन महर्षि दयानन्द के समय से ही पञ्चमहायज्ञविधि के अनुसार होता आया है । संस्कारविधि का मुख्य विषय यज्ञ-अग्निहोत्र तथा संस्कारों की पूर्ण विधि का वर्णन करना है ।

(८) जहाँ तक पं० इन्द्रदेव जी के इस कथन का प्रश्न है कि किसी गृह्यसूत्र के वचन के अनुसार जल प्रोक्षण से पूर्व आहुतियाँ नहीं देनी चाहिए तो अग्निहोत्रविधि को उसी गृह्यसूत्र के विधान के अनुसार क्यों नहीं वे कर लेते ? संस्कारविधि या उसके लेखक ऋषि दयानन्द सरस्वती के प्रति आस्था ही नहीं है तो अग्निहोत्र ही क्यों सभी संस्कार किसी गृह्यसूत्र के अनुसार वे कर लें और अपने अनुयायिवर्ग में उसी एक गृह्यसूत्र का प्रचलन करें करावें, व्यर्थ में 'संस्कारविधि' के साथ छेड़-छाड़ क्यों करना चाहते हैं ? गृह्यसूत्रों का अध्ययन संस्कारविधि को स्पष्ट या पुष्ट करने के लिए होना चाहिए संस्कारविधि के खण्डन के लिए नहीं । आर्यसमाज को अपने आचार्य स्वामी दयानन्द सरस्वती में पूर्ण आस्था है । स्वामी दयानन्द ने संस्कारविधि को वेद और वेदानुकूल आर्ष ग्रंथों के अनुसार बनाया है, किसी विधि को किसी एक गृह्यसूत्र के अनुसार तो दूसरी विधि को किसी दूसरे गृह्यसूत्र के अनुसार भी रखा है। किसी गृह्यसूत्र विशेष का एकान्तिक प्रमाण स्वामी जी ने नहीं माना । जैसे- (१) प्राचीन याज्ञिक प्रक्रिया के अनुसार आहुति के पश्चात् यजमान त्याग के लिए 'इदमग्नये' (अभिप्रेत देवतापद का प्रयोग) अथवा 'इदं न मम' वाक्य का प्रयोग करते हैं । अर्थात् त्याग अर्थ के बोध के लिए इनमें से एक वाक्य का प्रयोग किया जाता है । परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सर्वत्र 'स्वाहा' के पश्चात् 'इदं न मम' दोनों वाक्यों का प्रयोग किया है । फिर पं० इन्द्रदेव प्रभृति जन स्व अभिमत यज्ञविधि में 'इदमग्नये' या 'इदं न मम' ही बोला करें, दोनों वाक्यों को क्यों बोलते हैं ?

(२) पारस्कर, गोभिल आदि गृह्यसूत्र के अनुसार जल प्रोक्षण में 'अदितेऽनुमन्यस्व' से दक्षिण में, 'अनुमतेऽनुमन्यस्व' से पश्चिम में, 'सरस्वत्यनुमन्यस्व' से उत्तर में तथा 'देव सवितः प्रसुव०' मन्त्र से चारों ओर जल छिड़कने का विधान है । स्पष्टतः ऋषि दयानन्द सरस्वती ने यहाँ इन मन्त्रों से जल छिड़कने में दिशा परिवर्तन किया है और हमें अपने आचार्य (दयानन्द सरस्वती) का यह परिवर्तन पूरी तरह मान्य है । उसी प्रकार स्वामी दयानन्द द्वारा यज्ञियविधि में पूर्वाचार्यों द्वारा अभिमत विधि से भिन्न अन्य विधियों का निर्देश भी पूरी तरह मान्य है । जो किसी एक विधि विशेष में किसी एक गृह्यसूत्र विशेष की विधि की दुहाई देते हैं, उन्हें फिर उसी गृह्यसूत्रकार का निर्देश सभी जगह मानना चाहिए । संस्कारविधि को उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घसीटने का प्रयास बन्द कर देना चाहिए।

(३) इसी प्रकार ऋषि दयानन्द सरस्वती ने विवाह संस्कार में लाजाहुति का विधान पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार स्वीकार किया है, गोभिलगृह्यसूत्र के अनुसार नहीं। गोभिल के अनुसार लाजाहुति के प्रथम मन्त्र से एक बार आहुति देने के बाद प्रदक्षिण क्रम से परिक्रमा की जाती है, फिर २ दूसरे मन्त्र से आहुति देकर २ दूसरी परिक्रमा तथा ३ तीसरे मन्त्र से आहुति देकर तीसरी परिक्रमा की जाती है। जबकि पारस्कर के मतानुसार लाजाहुति के तीन मन्त्रों में एक-एक मन्त्र से एक-एक बार थोड़ी-थोड़ी धाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित इन्धन पर दे के 'सरस्वति प्रेदमव॰' मन्त्र को बोल कर अपने दायें हाथ की हस्तांजलि से वधू की हस्तांजलि पकड़ के 'तुभ्यमग्रे॰' तथा 'कन्यला पितृभ्यः॰' मन्त्रों को पढ़कर यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करें। पुनः दो बार इसी प्रकार अर्थात् लाजाहुति की ३ तीन परिक्रमाएँ करनी हैं।

(४) यही उत्तर 'अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा' को 'आघारावाज्याहुति' तथा 'प्रजापतये स्वाहा। इन्द्राय स्वाहा' को 'आज्याभागाहुति' मानने वाले ऋषि दयानन्द की सम्मति के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। कुछ पण्डित गृह्यसूत्रों के अनुसार या श्रौतसूत्रों के अनुसार 'प्रजापतये स्वाहा। इन्द्राय स्वाहा', को 'आघारावाज्याहुति' तथा 'अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा', को 'आज्यभागाहुति' नाम देना चाहते हैं और इनका स्थान भी परिवर्तन करना चाहते हैं। अर्थात् 'प्रजापतये' से उत्तर में तथा 'इन्द्राय' से दक्षिण में एवम् 'अग्नये सोमाय' से बीच में आहुति देना मानते हैं। स्पष्ट ही यह अनुचित है और स्वामी दयानन्द अभिमत नामकरण तथा स्थान ही उचित है।

□□□

धर्महीन राजनीति कैसी होगी ?

जब तक राजनीति पर धर्म का नियन्त्रण रहता है, तभी तक राजनीति लोक-कल्याणकारी रहती है। धर्महीन राजनीति वाराङ्गना के सदृश अस्थिर दुर्नीति हो जाती है।

—आचार्य चाणक्य

धर्म विधेयक का कांग्रेस द्वारा ही विरोध

पूर्व केन्द्रीय मन्त्री और वरिष्ठ कांग्रेसी नेता श्री माखनलाल फोतेदार ने धर्म और राजनीति विधेयक को केन्द्र सरकार द्वारा जल्दी में उठाया गया कदम बताया है। उन्होंने कहा- राजनीति को धर्म से अलग नहीं किया सकता।

१३ सितम्बर ९३ के नवभारत टाइम्स से

'सत्यार्थप्रकाश' घर घर क्यों पहुँचायें

'सत्यार्थप्रकाश' वह ज्योतिःपुञ्ज है, जिसके प्रकाश में अज्ञान भागता है, पाखण्ड छिप जाता है, अन्याय रोता है और अधर्म सिर छिपाता फिरता है। जिसने भी इसे पढ़ा, वह जीवन भर उसके गीत गाता रहा और उसका प्रचार करता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम पर वैदिक प्रभाव

दयानन्द, पं० लेखराम और सर सैय्यद अहमद खाँ

प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु, वेद सदन अबोहर-152116

ऋषि दयानन्द की शिष्य परम्परा के पुराने आर्य पुरुषों की अनूठी विशेषता थी कि वे वैदिक सिद्धान्तों पर तो मनन करते ही थे, साथ ही साथ अवैदिकमत पंथों का भी स्पर्शी ज्ञान प्राप्त करने का पूरा यत्न किया करते । धरती तल पर वैदिक धर्म के अनुकूल व कूल जो कुछ भी लिखा जाता था उसका पुराने समाजियों को ज्ञान होता था । अपने विरोध में ी गई सब पुस्तकों व लेखों का उत्तर दिये बिना चैन न आता था परन्तु अब तो सभाओं व समाजों ऐसे लोग छा गये हैं जिनको स्कूलों का व्यापार कर व भाड़े की दुकानें बनाकर कमाने खाने की क रुचि है । फिर भी पं० लेखराम जी के मिशन लिए श्रद्धा रखने वाले लोगों को प्रेरित करने के लिए यह लेख लिख रहा हूँ ।

(१) गत बीस तीस वर्षों में मुसलमानों द्वारा प्रकाशित त्य में वैदिक धर्म के अनुकूल व प्रतिकूल क्या लिखा गया से जानने को पदलोलुप आर्यसमाजी लीडरों ने कुछ प्रयास हीं किया । हमारे बड़ों ने आज से साठ या सौ वर्ष पूर्व छपे का अवलोकन करके समाज को उसका लाभ पहुंचाया । सैय्यद अहमद खाँ कब जन्मे, कहाँ कहाँ रहे और उनका कब हुआ इन बातों को भी आज हमारे कई भाई बताते ते रहते हैं । वे महर्षि दयानन्द से कब-कब और कहाँ कहाँ इसकी भी चर्चा लेखों में पढ़ी जाती है ।

सर सैय्यद अहमद खाँ के लेख व साहित्य फिर से प्रकाशित गये हैं और उन पर बहुत कुछ लिखा भी गया है । उसे पढ़ उन पर वैदिक धर्म की छाप के बारे में हमारे लोगों ने कुछ लिखा । यह बात सिद्ध करती है कि आर्यसमाज बहुत पिछड़ है जिन्हें पं० लेखराम व स्वामी दयानन्द का मिशन प्यारा है सिर जोड़कर इस दिशा में पुरुषार्थ करना होगा ।

मैं गत दो वर्ष से इस्लामी साहित्य का विशेष अध्ययन कर हूँ । वैसे तो बाल्यकाल से रक्तसाक्षी पं० लेखराम जी से लगाव होने के कारण मैं मुसलमानों के ग्रन्थ पढ़ता रहा इन दिनों सर सैय्यद अहमद खाँ के लेखों व उनकी जीवनी अध्ययन कर रहा था तो मुझे यह देखकर हार्दिक प्रसन्नता कि सर सैय्यद अहमद खाँ पर न केवल महर्षि के साहित्य का प्रभाव था प्रत्युत धर्मवीर पं० लेखराम के साहित्य की भी उन पर गहरी छाप थी । इस तथ्य को कोई भी मौलाना नहीं झुठला सकता कि सर सैय्यद अहमद खाँ ने वीर विप्र लेखराम के ग्रन्थों का अध्ययन किया था ।

सर सैय्यद अहमद खाँ के जीवनी लेखक यह स्वीकार करते हैं कि वे बहुत पढ़ा करते थे परन्तु उनका साहित्य इस बात को प्रमाणित करता है कि वे दूसरे विद्वानों के सद्विचारों को निःसंकोच स्वीकार तो कर लिया करते थे परन्तु अपने लेखों में ऐसे ग्रन्थों व विद्वानों के नाम नहीं दिया करते थे ।

आर्य मनीषी पं० चमूपति जी ने ठीक ही तो लिखा है कि "सर सैय्यद ने ऋषि के बहुत से सिद्धान्तों को स्वीकार किया है परन्तु उन्हें नाम कुरानी दिया है ।" आचार्य चमूपति जी ने अपनी मौलिक व खोजपूर्ण पुस्तक "चौदहवीं का चाँद" के अन्त में सर सैय्यद अहमद खाँ पर महर्षि दयानन्द की छाप को संक्षेप से दिया है । आज इस लेख में मैं इस विषय में कुछ और विस्तार से लिखूँगा ।

(२) आप यह स्वीकार करते हैं कि हज़रत ईसा बिना पिता के नहीं जन्मे थे । उनसे पूछा गया कि फिर उनको कुरान में 'इब्ने मरय्यम' क्यों कहा गया है । सर सैय्यद का उत्तर था कि अब भी तो कई व्यक्ति अपनी माँ के कारण प्रसिद्ध होते हैं ।

हमारे युग में राजीव व संजय अपनी माता के कारण ही प्रसिद्धि को प्राप्त हुए । यह सब जानते हैं । पाठकों को यह भी बता दें कि उनसे यह प्रश्न लाहौर के ही एक मुसलमान ने पं० लेखराम जी के बलिदान के कुछ समय पश्चात् पूछा था । सर सैय्यद ने पं० लेखराम जी की युक्ति दे कर प्रश्नकर्त्ता को सन्तुष्ट व तृप्त किया । यह तर्क पं० लेखराम जी से पहले किसने दिया? यह सूझ पं० लेखराम की ही थी । हमें हर्ष है कि सर सैय्यद को पण्डित के साहित्य ने लाभान्वित किया । हम चाहते हैं कि मुसलमान इस प्रवृत्ति को अपनावें । इसी में उनका व सब मनुष्यों का भला है ।

(२) एक मुसलमान रफीक दिलावरी बहुत अच्छे विद्वान् लेखक हुए हैं । आपने अपने एक ग्रन्थ में पं० लेखराम जी की एक घटना दी है । मिर्जा गुलाम अहमद ने जब अपने नबी होने का ढोल पीटना आरम्भ किया और चमत्कार दिखाने की डींगें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारने लगा तो पं० लेखराम जी कादियाँ में उसके इलहामी कोठे पर पहुँच गये और कहा कुरान में तो मोजजा चमत्कार शब्द ही नहीं। कुरान में किसी चमत्कार के दिखाने की बात नहीं। मिर्जा जी ने कहा कि कुरान में यह शब्द है। पण्डितजी ने अपने थैले में से कुरान निकाल कर उसके आगे धर दिया और कहा कि दिखाओ कहाँ है। मौलाना रफ़ीक दिलावरी लिखते हैं कि मिर्जा यह शब्द न दिखा सके। पण्डित लेखराम का कथन सत्य था।

सर सैय्यद अहमद खाँ ने भी चमत्कारों के बारे में वही कुछ लिखा है जो पं० लेखराम जी ने अपने ग्रन्थों में लिखा है। कुछ प्रमाण व युक्तियाँ वही दी हैं जो पं० लेखराम के साहित्य में हम पढ़ते हैं। हमें हर्ष है कि सत्य के लिए अपने सीने का लहू देकर पं० लेखराम जी ने सच्चाई का बोलबाला कर दिया।

(३) सर सैय्यद अहमद खाँ स्पष्ट लिखते हैं कि चमत्कार नबुव्वत (PROPHET HOOD) की कोई कसौटी नहीं है? यह ठीक है कि पुराने मौलवी चमत्कारों से ही नबी की शान नबुव्वत को मानते आए हैं।

(४) उन्हें कर्नाटक के कई मौलवियों ने लिखा था कि आपकी तफ़सीर (कुरान का भाष्य) प्रत्येक मुसलमान के हृदय पर ऐसे ही प्रकाश डालता है जैसे कि अंधेरी रात पर सूर्य का। आज तक इस्लाम में बुद्धि का प्रवेश उपयोग वर्जित था कभी यह न सोचा गया कि अनहोनी (असम्भव) कैसे सम्भव हो सकती है। हिन्दु तो मनुष्य के ऊपर हाथी का सिर लगाए तो यह सब मिथ्या परन्तु हमारे यहाँ मुसलमानों में इससे भी विचित्र व मनघड़न्त बातें मौलवियों को कभी दिखाई ही नहीं दीं। ऐसी ऐसी गंदी बातें जमी हुई थीं'''।

(५) मैंने कई बार अपने लेखों व व्याख्यानों में यह घटना बताई है कि कुरान के एक भाष्यकार मौलाना सनाउल्ला जी हज करने गये तो आपने वहाँ 'श्याम पत्थर' को बोसा (चुम्बन) न दिया तो उस पर बड़ा शोर मचा था। मौलाना ने तब कहा था कि क्या इसके बिना हज पूरा नहीं होता। यह सब कुछ ऋषि का जादू था, परन्तु सर सैय्यद अहमद खाँ ने तो मौलाना सनाउल्ला की हज यात्रा से बहुत पहले काले पत्थर को चूमना, काबा की परिक्रमा व मक्का आदि से सम्बन्धित कई रीतियों को मूर्तिपूजा बताकर इनका विरोध किया। यह इस्लाम का आर्यसमाजी संस्करण नहीं तो क्या है? कोई मौलाना भले ही सर सैय्यद की इन व्याख्याओं को 'शुद्ध इस्लामी' माने, हमें कोई आपत्ति नहीं, परन्तु सच्चाई यही है कि पं० लेखराम द्वारा शुद्ध किया गया इस्लाम है। इस इस्लाम का हम स्वागत करते हैं क्योंकि यह वेद के रंग में रंगा हुआ है।

(६) मौलाना हाली ने एक से अधिक बार सर सैय्यद के विरोधी मौलवियों के इस आक्षेप की चर्चा की है कि आयतों के जो अर्थ खुदा को सूझे और न रसूल को और न बाद के मुस्लिम विद्वानों व भाष्यकारों को''' । सर सैय्यद अहमद खाँ ने ऋषि की संगत की रंगत ग्रहण कर मुसलमानों की भारी सेवा की है। धन्य थे ऋषिवर दयानन्द जिनकी कृपा से सर सैय्यद आदि को आयतों के वे अर्थ सूझे, जो न तो अल्लाह को सूझे, न रसूल को सूझे, न सुहाबा को सूझे और कुरान के पुराने भाष्यकारों को सूझे। आसमान गये शैतान से इस्लाम की जान छूटी, फरिश्तों व कदर (प्रारब्ध), हूरों व जन्नत तथा दोज़ख सब की परिभाषाएँ बदल गईं।

(७) ऋषि की सबसे बड़ी देन जिसे सर सैय्यद ने स्वीकार किया है वह यह है कि धर्म की सच्चाई को परखने की कसौटी यह है कि उसमें कुछ भी सृष्टि-नियम व ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव के विपरीत न हो। पाठक यह पढ़कर चकित होंगे कि सर सैय्यद ने भी यह दोनों बातें स्वीकार की हैं। यदि सैय्यद अहमद खाँ अंग्रेजों के हत्थे न चढ़ते तो देश व मुसलमानों का बहुत हित होता परन्तु वे तो अंग्रेज की सेवा में रहे थे। सारा जीवन अंग्रेज से पैंशन लेते रहे।

(८) सर सैय्यद पर ऋषि का रंग कितना गहरा चढ़ा यह उनके इन शब्दों से स्पष्ट है, ''स्वयं परमात्मा हमारे पीछे पड़ा है कि यदि हम छोड़ना भी चाहें तो नहीं छूटता। इसी प्रकार हम भी परमात्मा के ऐसे पीछे पड़े हैं कि यदि प्रभु स्वयं भी चाहे तो हम को छोड़ नहीं सकता।''

महर्षि ने सर्वशक्तिमान् व 'कादिर मुतलिक' पर अपने वेदोक्त मौलिक विचार इस अनूठे ढंग से रखे कि निष्पक्ष विद्वान् इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। ईश्वर का वेदोक्त स्वरूप स्वीकार कर सर सैय्यद ने बड़े साहस का परिचय दिया।

(९) सर सैय्यद ने जीवित पत्नी के होते दूसरे विवाह को भी उचित नहीं माना, परन्तु आज तो वोटों की राजनीति करने वाले धर्मनिरपेक्षता का ढोंग रचने वाले राजनेता मुसलमानों को कुरीतियों के कीचड़ से निकलने ही नहीं देते।

(१०) सर सैय्यद यह भी मानते हैं कि मुसलमानी शासकों के राज्य में मुसलमानों को भी धार्मिक स्वतन्त्रता नहीं रही।

(११) सर सैय्यद यह भी मानते हैं कि इस देश के मुसलमान भी हिन्दोस्तान के नागरिक के नाते हिन्दू ही हैं। हमारी जाति एक है। अब तथ्य यह है कि धर्मनिरपेक्षता के नाम पर वोटों के भूखे राजनेता मुसलमानों में पृथकता की भावनाएँ भरकर घृणा द्वेष की खेती कर रहे हैं। सत्य की हत्या व देश का नाश हो रहा है। आज स्वामी श्रद्धानन्द सरीखे शूर तेजस्वी प्रतापी संन्यासी की आवश्यकता है जो परमेश्वर को अपने अंग संग जाने व माने। न कि अंग रक्षकों की छाया में सांस लेवे। □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे

तुलसीकृत रामायण समीक्षा

—पं० छाजूराम शर्मा शास्त्री, विद्यावाचस्पति

तुलसीदास के दार्शनिक ज्ञान की परीक्षा-

परवश जीव स्ववश भगवन्ता ।

अब आगे इस पीछे लिखी अर्ध चौपाई पर विचार कीजिये क सिद्धान्तानुसार मनुष्यात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है । चाहे छे करे वा बुरे करे । परन्तु उस कर्म के फल भोगने में वह न्त्र नहीं है । हाँ यदि मनुष्य किसी का गुलाम है तो वह तया स्वतन्त्र नहीं है । उसे अपने स्वामी की इन्छानुसार काम ा पड़ता है । वह स्वतन्त्र विचार रख कर उसके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकता । इसी प्रकार कोई भी मनुष्य ति विरुद्ध अथवा अपने राज्यविधान के विरुद्ध कार्य करने स्वतन्त्र नहीं है । यदि वह ऐसा करता है तो वह राजदण्ड प्राकृतिक दंड से बच नहीं सकता । प्राकृतिक दंड क्या अग्नि, जल जैसे दोनों ही प्राणियों के जीवन आधार हैं। न यदि उनका दुरुपयोग किया जायेगा वा असावधानी जायेगी तो न केवल उसे कष्ट भोगने पड़ेंगे अपितु उस य की मृत्यु भी हो जायेगी । विरुद्ध भोजन करने से शरीर ना प्रकार के रोग हो जाते हैं । विष खाने से मृत्यु हो जाती यही प्राकृतिक दंड है । परन्तु मनुष्य ऐसा करने में स्वतन्त्र परिणाम कुछ भी हो । तब तुलसीदास जी के परवश वा न्त्र का क्या अर्थ हुआ । उनके अनुसार इसका अर्थ है-

होई है सोई जो राम रचि राखा ।
राम कीन्ह चाहहिं सोई होई, सबहिं नचावत राम गुसाईं ।

सभी जीव राम के अधीन हैं । जो राम करना चाहते हैं होता है अतः वे ही हर जीव को नाच नचा रहे हैं ।

यहाँ विचारणीय है कि जब सब क्रियाएँ रामाधीन ही हो हैं तो जीव स्वयं ही परवश हो गया । वह स्वतन्त्र कर्ता हुआ । यदि वह दान देता है तो राम की इच्छा से, अन्य उपकार कार्य करता है तो राम की प्रेरणा से और यदि चोरी, डाका, ल, व्यभिचार आदि कुकर्म करता है तो भी राम के देशानुसार ही करता है । ऐसी दशा में शुभ-अशुभ कर्मों का फल भोगने वाला जीव न रहेगा । कर्ता भोक्ता सब राम रूपी ईश्वर ही होंगे । हम पूछना चाहते हैं कि फिर संसार में जीव सुख-दुःख क्यों भोग रहे हैं ? क्या कोई तुलसी भक्त इसका विज्ञान सम्मत विश्लेषण कर सकते हैं ? जो वे कहें कि जी नहीं, राम केवल शुभ कर्मों की ही जीव को प्रेरणा देते हैं । तब दूसरे पक्ष में इसका अर्थ हुआ कि अशुभ कर्म जीव स्वच्छा से करता है । ऐसा अर्थ करने पर उनके ही सिद्धान्त की हानि होती है, क्योंकि उपर्युक्त चौपाइयों से उसका खण्डन हो जाता है । जब हम मनुष्यों को अच्छा बुरा सब कुछ करते देखते हैं तो सबहिं नचावत राम गुसाईं । इत्यादि चौपाइयां निरर्थक सिद्ध हो गईं । सच यह है कि जीव का कर्म करना स्वभाव है । अपने मानस ग्रन्थ में तुलसीदास जी एक स्थान पर तो यह स्वीकारते हैं कि सब कुछ राम की इच्छा से हो रहा है और दूसरे स्थान पर यह लिखते हैं f

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा ।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा ॥

यही नहीं उनके राम भी यह घोषणा कर रहे हैं कि-

करें जो कर्म पाव फल सोई ।
निगम नीति अस कहे सब कोई ॥

राम ने स्वयं लक्ष्मण को कहा है कि हम वन में अपने किन्हीं पाप कर्मों का फल भोग रहे हैं । जब तुलसी के राम ही कर्मफल स्वीकार कर रहे हैं तो वे सब को कैसे नाच नचा सकते हैं । जब कि स्वयं जीव कर्मफल भोग रहे हैं । जीवों को कर्मफल देने वाले फिर राम कौन होते हैं ? वेदानुयायियों का तो मत यह है कि कर्म फल ईश्वराधीन है । जीव तो केवल कर्म करने में ही स्वतन्त्र है । लेकिन वे ऐसा नहीं मानते कि ईश्वर ही सब को नाच नचा रहा है । अन्यथा सम्पूर्ण दायित्व ईश्वर पर ही होगा ।

तुलसीदास जी के परवश शब्द का जो अर्थ है वह स्वामी दयानन्द जी ने दसवें नियम में स्पष्ट कर दिया है । उसके अनुसार मनुष्य सामाजिक सर्वहितकारी नियमों के पालने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो समाज से बंधा रहेगा, मनमानी नहीं कर सकेगा लेकिन अपनी व्यक्तिगत उन्नति वा प्रत्येक हितकारी नियम पालने में वह स्वतन्त्र रहेगा। स्वतन्त्रता की एक सीमा होनी चाहिये। यदि हमारी स्वतन्त्रता किसी अन्य की स्वतन्त्रता में बाधक है तो ऐसी हानिकारक स्वतन्त्रता को समाप्त कर देना चाहिये। क्योंकि स्वतन्त्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है जैसा कि कुछ लोग समझते हैं। यह विशुद्ध लोक तन्त्र का नियम है। मर्यादित स्वतन्त्रता ही सर्वहितकारी हो सकती है। इसके बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं। ज्ञातव्य है कि तुलसीदास जी ने सब जीवों को ईश्वर राम की कठपुतली बना कर उन्हें सब प्रकार से राम का मोहताज बना दिया है। मानो उनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता ही न हो। जब अच्छा बुरा विचारने के प्रेरणा स्रोत ही राम हैं तो जीव कुछ भी कर सकने योग्य नहीं हैं। क्योंकि तुलसी की दृष्टि में वह ईश्वर का अंश मात्र है। सर्वं खल्विदं ब्रह्म सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है और कुछ नहीं। इस सिद्धान्त को मानने वाले जब यह सोचेंगे कि हम कुछ नहीं कर रहे। हमारे शरीर से सब कुछ राम ही करा रहे हैं। हम तो निमित्त मात्र हैं तो उन्हें पापों से भय क्यों होगा? क्योंकि वह पाप भी राम ईश्वर ही करा रहे हैं।

उनके लिए तुलसीदास जी लिखते हैं-स्ववश भगवन्ता, भगवान् स्वतन्त्र है। उसके ऊपर कोई नहीं। वह जो चाहे सो करे। कुरान का भी यही उसूल है कि खुदा जिसको चाहे सजा दे जिसे चाहे इनाम दे उसकी मर्जी है। कुरानी-पुरानी दोनों का एक मत है। चोर-चोर मौसेरे भाई। जो ईश्वर वा खुदा अपनी मर्जी से जीवों को सजा व इनाम देता है और कर्मों के अनुपात से नहीं देता तो वह खुदा ही नहीं है।

वह कोई खूंखार बादशाह है, उसे ईश्वर नहीं कह सकते।

भगवान् के स्वतन्त्र होने का भी यह अर्थ नहीं है कि वह जो चाहे सो करे। भगवान् वही करता है जो उसे करना चाहिये। उसे क्या करना चाहिये? जगत् के संचालन के लिए उसने कुछ अपरिवर्तनीय नियम बनाये हैं। जैसे राजा अपने देश का विधान बनाता है। वह स्वयं उस विधान के विपरीत आचरण नहीं करता, नाहीं उसे करना चाहिये। वैसे ही भगवान् भी अपने बनाये विधान के विपरीत स्वतन्त्रता से कुछ भी नहीं कर सकता। उसकी विशाल प्रकृति नियमबद्ध है। कान सुन ही सकते हैं देख नहीं सकते। आँखें देख सकती हैं सुन नहीं सकतीं। यह प्राकृतिक नियम है। क्या कभी इसके विरुद्ध होते किसी ने देखा वा सुना है। बबूल के वृक्ष से आम और गेहूँ से कभी जौ वा चना नहीं उत्पन्न हो सकता। तो इन नियमों का नियामक ही स्वतन्त्र होने के कारण जो चाहे सो क्यों कर सकता है। वह तो सब कुछ नियमों के अन्तर्गत ही करेगा। इसलिए तुलसीदास जी के स्ववश शब्द का अर्थ जो इच्छानुसार करते हैं वह असत्य है। मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है। उसने संसार में बड़े-बड़े आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाये हैं। परन्तु असम्भव कार्य न ईश्वर करता और न मनुष्य करता। दोनों अपने-अपने कार्य ही कर सकते हैं। ईश्वर वृक्ष पैदा कर सकता है। लेकिन उसे काट छील कर तख्ते, मेज, कुर्सियां नहीं बना सकता और यह काम मनुष्य का है, वह बना लेता है लेकिन वह वृक्ष पैदा करके उस पर इच्छानुसार पत्ते-फूल-फल पैदा नहीं कर सकता। क्योंकि वह उसका काम नहीं, ईश्वर का है।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि जो काम ईश्वर कर सकता है वह मनुष्य नहीं कर सकता और जो मनुष्य कर सकता है वह ईश्वर नहीं कर सकता। आज तो मनुष्य इतना आगे बढ़ गया है कि वह प्राकृतिक पदार्थों से नाना प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करके ईश्वर को चुनौती दे रहा है, कहता है कि हमें ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। विज्ञान के प्रकाश में आज का मानव अपने कर्तव्य पर गर्व करता है। फिर भला तुलसीदास जी के उपर्युक्त सिद्धान्त को वह क्यों स्वीकार करेगा? उसकी मान्यताएँ तो अन्धकार के घटाटोप में ही सफल हो सकती हैं। जिनकी आँखें खुली हैं वे ज्ञान के प्रकाश में स्वयम् अपना अभीष्ट मार्ग खोज लेते हैं। इसलिए हमने देखा कि तुलसीदास जी का दार्शनिक ज्ञान दर्शनशास्त्रों और वेदों के बिल्कुल विरुद्ध है। तब न तो वे दार्शनिक कहे जा सकते और न गम्भीर चिन्तक। वे एक बात का मंडन करते हैं तो दूसरे स्थान पर उसी का खंडन कर देते हैं। जिसके कई उदाहरण हम दे चुके हैं। शेष रामायण परिचय पुस्तक से देख सकते हैं।

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजीवन सदस्यों की सूची

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्द सन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है। जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आप से भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २५०/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं, आपसे प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूँगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है, उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं–

१४१. श्री शिववरदान सिंह ग्राम अशरफाबाद पो॰ चन्दापुर जि॰ राय बरेली-(UP)
१४२. श्री आचार्य धर्मवीर जी विद्यालंकार 2/29, आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर - (UP)
१४३. श्री महेन्द्रपाल जी आर्य J. E. सी. टी. बोर्ड बुलन्दशहर-(UP)
१४४. श्री बंगाली राम कोली स्वर्णकार झलकारी नगर, अलवर रोड, अजमेर-(राज॰)
१४५. G. Venu Gopal Arya H. No. 8-46/9, New Municipal Colony, Hyd-60 (AP)
१४६. व्यवस्थापक जी वैदिक पुस्तकालय एवं वाचनालय ग्राम सुराणा पो॰ गीरपुर जि॰ महेन्द्रगढ़ (हरि॰)
१४७. श्री खूबानी प्रापर्टी डीलर A/73 बापू बाजार, जयपुर -(राज॰)
१४८. D. A. Joshi Plot No. 2, Primary Scholl PALANPUR ,(GUJARAT)
१४९. श्री धर्मवीर जी त्यागी S/o श्री मुलकी राम त्यागी, हशवाला, करनाल (हर॰)
१५०. श्री जगन्नाथ रेड्डी वडलूर कामारेड्डी निजामाबाद- (AP)
१५१. श्री मंत्री जी आर्यसमाज पिलानी (राज॰)
१५२. श्री सत्यपाल जी आर्य रामनारायन यादव, ग्राम गौद पो॰ कृष्ण नगर जि॰ महेन्द्रगढ़
१५३. श्री धर्मेन्द्र कुमार आर्य, श्री विपिन बिहारी, आर्य नगर ऊंटारी पलामू (बिहार)
१५४. ROHTAK Engineering Works Barsil Distt. Keonjhal (Orissa)
१५५. श्री सुरेशचन्द्र S/o श्री शिवरतन, मु. पो. चिचौली जिला बेतूल (MP)
१५६. श्री मेघराज जी आर्य C/o राजेन्द्र स्पिनिंग मिल्स E-Y/3 इंडस्ट्रीयल एरिया, पानीपत
१५७. श्री पदमसिंह आर्य, मु॰ पो॰ दतियाना, जि॰ मु॰ नगर- (U.P.)
१५८. श्री बी. एम. अरोड़ा डी-27, महानगर विस्तार, लखनऊ - (U.P.)
१५९. श्री राकेश शर्मा RZ-90/0 ब्लाक, न्यू रोशन पुरा, दिल्ली-४३
१६०. श्री अम्बालाल लल्लु भाई रानेर ब्राह्मण विजय सोनीवाडा रोड, पाटण-(गुजरात)

–धर्मपाल आर्य, मंत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस्टर्ड नं. DL 11315/93
ार. आर नं. २५५८७/७३
ost in Delhi PSO Indraprastha
n 2-3/10/93

अक्तूबर १९९३

बिना टिकट भेजने का लाइसन्स नं.
यू (डी. एन.) १४४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

विशुद्ध-मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोकरहित हिन्दी भाषा, प्रक्षिप्त श्लोकों की सप्रमाण एवं अन्तःसाक्षी पूर्वक समीक्षा सहित और विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

१. वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवं अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए उपयोगी।
२. प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित एवं विशेष स्थलों पर समीक्षा सहित।
३. अवैदिक एवं असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों तथा मनु की मौलिक मान्यताओं से युक्त।
४. महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यात श्लोकार्थों से अलंकृत।
५. अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति' की भाँति।

विशेष जानकारी के लिए सूचीपत्र मंगायें

श्री सेवा में
ग्राम.........
डा.........
जिला.........

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिंटर्स, गली कासिम जान, बल्लीमारान, दिल्ली-११० ००६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक मुखपत्र

दयानन्द-सन्देश

का

ऋषिबोध विशेषांक

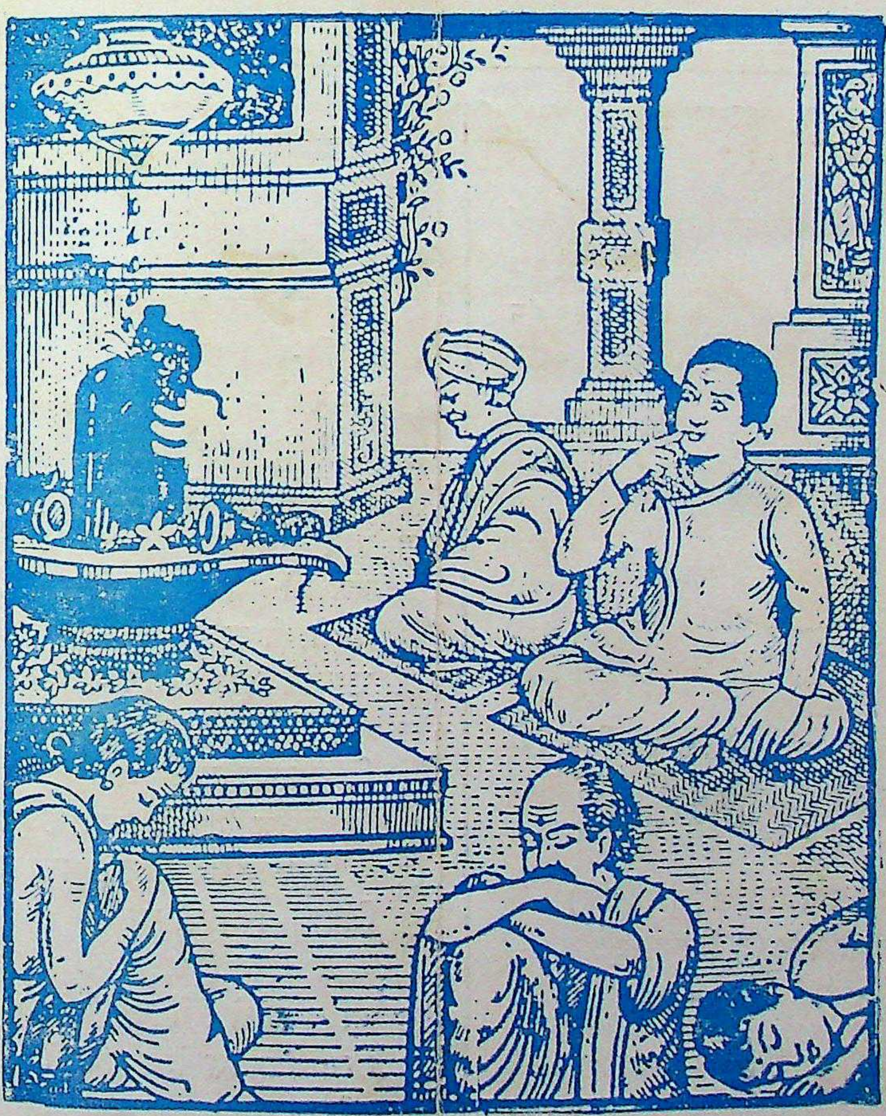

महाशिवरात्रि की वह घटना, जिससे—
बालक मूलशङ्कर को सच्चे शिव को खोजने की प्रेरणा मिली।

फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी, सं० २०४८ — २ मार्च, १९९२

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ ओ३म् ❀

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मार्च, १९९२

वर्ष : २० । अंक । ४
दयानन्दाब्द । १६७
विक्रम संवत् : फाल्गुन, २०४८
सृष्टि संवत् । १,९६,०८,५३,०९२

संस्थापक : स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : यशपाल आचार्य

कार्यालय "दयानन्द सन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

एक प्रति २.०० रुपये
वार्षिक शुल्क २०)
आजीवन सदस्यता २००)
विदेश में ५०१)

इस अङ्क के लेख

	पृष्ठाङ्क
☐ वेदोपदेश	१
☐ सदा शैवी रात्री परमसुखदात्री भवन्तु न	४
☐ महर्षि-बोधामृत	५
☐ अमर बोध	१५
☐ लो ! आ गई शिवरात	१६
☐ विश्व का सबसे बड़ा महापुरुष	१८
☐ वीर सावरकर	२१
☐ जड़ की पूजा जड़ता है	२३
☐ योगी की अमर कहानी	२४
☐ राष्ट्रीय एकता और दयानन्द	२५
☐ स्वामी तेरी वाणी अनमोल	२८
☐ दिव्य द्रष्टा दयानन्द	२९
☐ शिवरात्रि के सन्देश को न भूलो	३२
☐ ऋषि-बोध पर्व और हमारा दायित्व	३४
☐ शिवरात्रि आर्यों की	३६
☐ बोध दिवस है आया	३७
☐ भक्ति के क्षेत्र में चार बाधाएँ	३८
☐ सत्यार्थप्रकाश के प्रकाश में	४०
☐ पथिक	४४

अजिल्द नौ सौ रुपये, कपड़ा जिल्द एक हजार रुपये और सजिल्द ग्यारह सौ रुपये सैकड़ा में 'सत्यार्थप्रकाश' प्राप्त करें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❋ ओ३म् ❋

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥ (महर्षि दयानन्द)

वेदोपदेश——

ईश्वर का सच्चा स्वरूप इस मन्त्र में बताया है। वह ईश्वर कैसा है? कहां रहता है? क्या वह सज्जनों की रक्षा के लिए अवतार या जन्म लेता है? इत्यादि सभी प्रश्नों का समाधान इस मन्त्र में पढ़िए।

दीर्घतमाः ऋषिः। आत्मा (परमात्मा) देवता। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

पुनः परमेश्वरः कीदृश इत्याह ॥
परमेश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया जाता है ॥

ओ३म् स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

(यजु० ४०।८)

पदार्थः—(सः) परमात्मा (परि+अगात्) सर्वतः व्याप्तोऽस्ति (शुक्रम्) आशुकरं सर्वशक्तिमत् (अकायम्) स्थूल-सूक्ष्म-कारणशरीररहितम् (अव्रणम्) अच्छिद्रम्=अच्छेद्यम् (अस्नाविरम्) नाड्यादिसम्बन्ध-बन्धरहितम् (शुद्धम्) अविद्यादिदोषरहितत्वात् सदा पवित्रम् (अपापविद्धम्) यत् पापयुक्तं पापकारि पापप्रियं कदाचिन्न भवति तत् (कविः) सर्वज्ञः (मनीषी) सर्वेषां जीवानां मनोवृत्तीनां वेत्ता (परिभूः) यो दुष्टान्=पापिनः परिभवति=तिरस्करोति सः (स्वयम्भूः) अनादिस्वरूपो यस्य संयोगेनोत्पत्तिर्वियोगेन विनाशो, मातापितरौ गर्भवासो, जन्मवृद्धिक्षयौ च न विद्यन्ते (याथातथ्यतः) यथार्थतया (अर्थान्) वेदद्वारा सर्वान् पदार्थान् (वि+अदधात्) विशेषेण विधत्ते (शाश्वतीभ्यः) सनातनीभ्योऽनादिस्वरूपाभ्यः स्वस्वरूपेणोत्पत्तिविनाशरहिताभ्यः (समाभ्यः) प्रजाभ्यः ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यद्ब्रह्म (शुक्रम्) आशुकरं सर्वशक्तिमद् (अकायम्) स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीररहितम् (अव्रणम्) अच्छिद्रम्=अच्छेद्यम् (अस्नाविरम्) नाड्यादिसम्बन्ध-बन्धरहितम् (शुद्धम्) अविद्यादिदोषरहित्वात् सदा पवित्रम् (अपापविद्धम्) यत् पापयुक्तं पापकारि पापप्रियं कदाचिन्न भवति तत् (परि+अगात्) सर्वतो व्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्तोऽस्ति, यः (कविः) सर्वज्ञः (मनीषी) सर्वेषां जीवानां मनोवृत्तीनां वेत्ता (परिभूः) यो दुष्टान्=पापिनः परिभवति=तिरस्करोति सः (स्वयम्भूः) अनादिस्वरूपः परमात्मा, यस्य संयोगेनोत्पत्तिर्वियोगेन विनाशो, मातापितरौ, गर्भवासो, जन्म-वृद्धिक्षयौ च न विद्यन्ते। (शाश्वतीभ्यः) सनातनीभ्योऽनादिस्वरूपाभ्यः स्व-स्वरूपेणोत्पत्ति-विनाशरहिताभ्यः (समाभ्यः) प्रजाभ्यः (याथा-तथ्यतः) यथार्थतया (अर्थान्) वेदद्वारा सर्वान् पदार्थान् (वि+अदधात्) विशेषेण विधत्ते। (सः) परमात्मा एव युष्माभिरुपासनीयः ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल, सूक्ष्म, और कारण शरीर से रहित है (अव्रणम्) छिद्र रहित अर्थात् जिसके टुकड़े नहीं हो सकते (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के बन्धन से रहित है (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र है (अपापविद्धम्) जो कभी भी पाप से युक्त, पाप करने वाला और पाप से स्नेह करने वाला कभी नहीं होता है, वह (परि×अगात्) सर्वत्र व्यापक है, जो (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) सब जीवों की मनोवृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप वाला, जिसकी संयोग से उत्पत्ति और वियोग से विनाश नहीं होता, जिसके माता पिता कोई नहीं, और जिसका गर्भवास, जन्म,[1] वृद्धि और क्षय नहीं होते हैं। वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्वरूप वाली, अपने स्वरूप की दृष्टि से उत्पत्ति और विनाश से रहित (समाभ्यः) प्रजा के लिए (याथातथ्यतः) यथार्थता से (अर्थात्) वेद के द्वारा सब पदार्थों का (व्यदधात्) अच्छी तरह से उपदेश करता है। (सः) वह परमेश्वर ही तुम्हारे लिए उपासना करने योग्य है ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः! यद्यनन्तशक्तिमद्, अजं, निरन्तरं, सदामुक्तं, न्यायकारि, निर्मलं, सर्वज्ञं, सर्वस्य साक्षि, नियन्तृ अनादिस्वरूपं, ब्रह्म कल्पादौ जीवेभ्यः स्वोक्तैर्वेदैः शब्दार्थसम्बन्ध-विज्ञापिकां विद्यां नोपदिशेत्तर्हि कोऽपि विद्वान् न भवेत् न च धर्मार्थकाममोक्षफलं प्राप्तुं शक्नुयात्। तस्माद् इदमेव सदैवोपाध्वम् ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! यदि अनन्त, शक्तिशाली, अजन्मा, अखण्ड, सदा से मुक्त, न्यायकारी, पापरहित, सर्वज्ञ, सबका द्रष्टा, नियन्ता और अनादि स्वरूप वाला ब्रह्म सृष्टि के आदि में स्वयं प्रोक्त वेदों के द्वारा शब्द अर्थ और सम्बन्ध को बतलाने वाली विद्या का उपदेश न करे, तो कोई भी विद्वान् न बन सके और न धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप फल को प्राप्त कर सके। इसलिए इस ब्रह्म की उपासना सदा किया करो ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(स पर्यगात्) वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण है (शुक्रम्) सब जगत् का करने वाला वही है (अकायम्) वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता क्योंकि वह अखण्ड, अनन्त और निर्विकार है, इससे देह धारण कभी नहीं करता। उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। (अव्रणम्) वह अखण्डैकरस, अच्छेद्य, निष्कम्प और अचल है, इससे अंशांशीभाव भी उसमें नहीं है क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता, अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर को कोई आवरण नहीं हो सकता। (शुद्धम्) वह परमात्मा सदैव निर्मल, अविद्यादिदोषों, तथा जन्म-मरण, हर्ष-शोक, क्षुधा-तृष्णादि दोषोपाधियों से रहित है। शुद्ध की

---

१. समस्त पौराणिक जगत् में ईश्वर के अवतारवाद व साकारवाद की मिथ्या कल्पना वेदविरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य है क्योंकि वेद में इसका निषेध है। (सं०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना करने वाला शुद्ध ही होता है और मलिन का उपासक मलिन ही होता है (अपापविद्धम्) परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता, क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है। (कविः) त्रिकालज्ञ (सर्ववित्) महाविद्वान्, जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता (मनीषी) सब जीवों के मन का साक्षी, सबके मन का दमन करने वाला है, (परिभूः) सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सबसे ऊपर विराजमान है (स्वयम्भूः) जिसका आदिकारण माता-पिता उत्पादक कोई नहीं है, किन्तु वही सबका आदिकारण है।

(याथातथ्यतो०) उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परम हितार्थ उपदेश किया है।··· विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है।······सर्वोत्कृष्ट विद्या का दान परमेश्वर ने अवश्य किया है। अतः वेद से भिन्न कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है, वैसा ही वेद का पुस्तक भी है। अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत वेदतुल्य वा अधिक नहीं है।

(आर्याभिविनय २।२)

[इस मन्त्र की व्याख्या ऋ०भा०भू० के 'वेद नित्यत्वविषय' तथा 'ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य०' विषय में, 'सत्यार्थप्रकाश के सप्तम व अष्टम समुल्लासों में भी द्रष्टव्य है। सं०]

['दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर' से उद्धृत]
व्याख्याता—**आचार्य सुदर्शन देव**

मूर्तिपूजा अभिशाप है, ईश्वरपूजा नहीं

—महर्षि दयानन्द

१. जो सब जगत् में व्यापक है, उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा=परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है।
२. जब वेदों से निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो, तो पापी क्यों नहीं ?
३. मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिस में गिरकर चकनाचूर हो जाता है।
४. जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़बुद्धि हो जाता है। मूर्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचारशक्ति घट जाती है। विवेक के बिना न वैराग्य और वैराग्य के बिना न विज्ञान, विज्ञान के बिना शान्ति नहीं होती।
५. मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्यावर्त में निकम्मे पुजारी भिक्षुक, आलसी पुरुषार्थरहित क्रोड़ों मनुष्य हुए हैं।
६. वेदों में पाषाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन-विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।

(स०प्र० ११वां समु०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा शैवी रात्री परमसुखदात्री भवतु नः

कियत्यो नो जाता जगति शिवरात्र्यौ ननु पुरा,
कियद्भिर्नाकारि प्रथितशिवरात्रीव्रतविधिः ।
परं सा काऽप्यासीद् व्रतिवर ! जगन्मंगलकरी,
सवित्री ज्ञानाममृतफलदात्री तव यते ॥१

हे व्रत धारण करने वालों में श्रेष्ठ संन्यासिन् ! संसार में आप से पूर्व न जाने कितनी शिवरात्रियाँ बीत चुकी हैं और कितने शिवभक्तों ने इस प्रसिद्ध शिवरात्रि के व्रत को रक्खा है, यह भी नहीं बताया जा सकता। परन्तु जिस शिवरात्रि के दिन आप ने व्रत रक्खा, वह तो कुछ समस्त जगत् का कल्याण करने वाली विचित्र शिवरात्रि सिद्ध हुई है क्योंकि यह शिवरात्रि विविध ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली और सच्चे शिव के स्वरूप का बोध कराने से अमृत (मोक्ष) रूप फल को देने वाली है।

परब्रह्मप्राप्तौ विमलनिगमाप्तौ सहचरी,
मुनेरन्तर्नेत्राम्बुजदलकुलोल्लासनकरी ।
तमो रक्षोहन्त्री सुकृतपदनेत्री तनुभृताम्,
सदा शैवी रात्री परमसुखदात्री भवतु नः ॥२

मुनिवर दयानन्द के ज्ञाननेत्र-कमलदल को विकसित करने वाली यह शिवरात्रि परब्रह्म की प्राप्ति में और पवित्र वेद ज्ञान की प्राप्ति में परम सहायक हुई है और यह समस्त अज्ञानरूपी राक्षसी का विनाश करने वाली तथा मानव शरीरधारियों के लिए धर्म-मार्ग को दिखाने वाली है। ऐसी यह कल्याण करने वाली शिवरात्रि हम सभी के लिए सुख देने वाली होवे।

इदानीं त्वद्भक्ताः श्रुतिकृतिषु रक्ताः प्रतिपुरम्,
त्वदादिष्टं कार्यं विमलमनसाऽऽयं विदधतः ।
जनानार्यीकुर्वन्त्यनुदिनमहो वैदिकवचः
प्रभावात् सङ्कल्पस्तव फलति कल्पद्रुम इव ॥३

हे ऋषिवर ! इस समय आपके भक्त आर्यजन वेदोक्त कार्यों को प्रत्येक नगर व ग्राम में जन-जन तक पहुंचाने में लगे हुए हैं। अविद्या व पाखण्डों को हटाने वाले तुम्हारे द्वारा बताए हुए उत्तम कार्यों को शुद्ध मन से कर रहे हैं। वैदिक ज्ञान के प्रभाव से प्रतिदिन अनार्यों को आर्य बना रहे हैं। आश्चर्य तो यह है कि आप का दृढ़ संकल्प कल्पवृक्ष की भांति उत्तरोत्तर सफल होता जा रहा है।

प्रबोध्याग्निं प्रातः प्रतिदिवसमार्याः सुहविषा,
यजन्तः कस्तूरीप्रमुखसुरभिद्रव्यनिवहैः ।
लसन्मन्त्रोद्घोषाः पवनगतदोषापहरणम्,
वितन्वाना लोकं विगतगदशोकं विदधते ॥४

हे शिवरात्रि पर सच्चे शिव का बोध प्राप्त करने वाले ऋषिवर ! तुम्हारे सद्ज्ञान से प्रभावित आर्यजन प्रतिदिन प्रातः वेला में अग्न्याधान करके उत्तम (पुष्टिकारक, रोगनाशक और सुगन्ध प्रदान करने वाली) हवि से श्रेष्ठतम यज्ञों का अनुष्ठान कस्तूरी आदि सुगन्धयुक्त सामग्री के साथ कर रहे हैं। और साथ ही पवित्र वेदमन्त्रों का गान करते हुए वातावरण के दोषों को दूर कर रहे हैं, जिससे समस्त लोक रोगमुक्त होकर सुख प्राप्त कर रहा है।

[श्री आचार्य मेधाव्रत कृत 'दयानन्दलहरी' से]

भेद भावना के भेदभाव को मिटाके सत्य,
विश्वबन्धुता के वैदिक मन्त्र उचारते।
सतत सहाय बने दीनहीन प्रेमियों के,
अशेष अविद्या क्लेश कष्टशूल निवारते ॥
धर्मधनी मानवों में ज्ञान की जगा के ज्योति,
संस्कृति सुधार - सुधा संस्कृत सुधारते।
'प्रणव' निडर चले ऋषि विश्व-प्रांगण में,
सत्यं शिवं सुन्दरं की सरिता प्रसारते ॥

[कविवर 'प्रणव' शास्त्री]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि - बोधामृत

[सच्चे शिव की खोज में महर्षि ने जो बोध प्राप्त किया, उसका सत्यस्वरूप और उसकी महती आवश्यकता]

आजकल आस्तिक जगत् में ईश्वर की सत्ता मानने वालों में अत्यधिक भ्रामक विचार बन चुके हैं। सभी ये तथाकथित ईश्वर-भक्त अपने कल्पना प्रसूत भगवानों को बनाकर एक-दूसरे की निन्दा में लगे हुए हैं। ऐसे भ्रान्त तथा भटके हुए लोगों के लिए ही वेद में कहा गया है—

न तं विदाथ य इमा जजान ।।

अर्थात् हे ईश्वर भक्तो ! तुम ईश्वर को मानते तो हो, किन्तु उसे जानते नहीं। ईश्वर के सत्य स्वरूप को ही जानने के लिए एक पवित्रात्मा मूलशंकर पैतृक सम्पत्ति व पारिवारिक जीवन का त्याग करके बीहड़ वनों व पर्वतों की उपत्यकाओं तथा हिंस्र शेर चीते आदि से व्याप्त भयंकर मार्गों पर निर्भय होकर विचरता रहा और उसने सच्चे शिव को योगियों से जानकर ही उसके सत्यस्वरूप को विश्व के भ्रान्त लोगों के समक्ष रखा है—

'ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी चाहिए।' (द्वितीय नियम)

ईश्वर की इस परिभाषा से भी जिन लोगों की भ्रान्ति समाप्त नहीं हुई, उनको वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों[1] व युक्तियों से समझाकर निरुत्तर कर दिया। आज का 'ऋषिबोधोत्सव' हम सभी ईश्वर भक्तों को यह प्रेरणा दे रहा है कि हमें भी ईश्वरीय सत्यस्वरूप को समझकर ईश्वर विषयक भ्रान्तियों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

आज तक आस्तिक जगत् में कोई भी ईश्वर के विषय में ऐसी विशुद्ध परिभाषा नहीं कर सका है। यदि सभी ईश्वर-भक्त ऋषिकृत ईश्वरीय-निर्भ्रान्त सत्यस्वरूप को स्वीकार कर लेवें तो ईश्वर विषयक सभी भ्रान्तियां स्वतः ही दूर हो जाएं। परन्तु ईश्वर-भक्तों ने ही ईश्वर के विषय में इतनी भ्रान्तियां व मिथ्या ज्ञान फैला दिया है, जिसके कारण आज ईश्वर के स्वरूप को समझना ही बहुत दुष्कर हो गया है।

१. जैसे—स पर्यगात्० (यजु० ४०।८) मन्त्र से ईश्वर का स्वरूप समझाते हुए ऋषि लिखते हैं— वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान्, जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन स्वयं सिद्ध परमेश्वर......। अकाय अर्थात् वह कभी शरीरधारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, नाडी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि। (सत्यार्थ० सप्तम समु०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन शास्त्रों में ईश्वर का स्वरूप—आस्तिक दर्शनों के स्वाध्याय करने से स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानन्द ने समस्त दर्शनकार ऋषियों की मान्यताओं का बड़ा ही आदर किया है और ऋषि के ग्रन्थों में कहीं भी दर्शनकारों से लेशमात्र भी विरोध नहीं है। योगदर्शन में लिखा है—ईश्वर अविद्यादि क्लेशों से, कुशल-अकुशल, इष्ट-अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से सर्वथा रहित है, सांसारिक भोगों से सदा असम्बद्ध है, ईश्वर स्थूल सूक्ष्म तथा कारण शरीर रूपी बन्धनों से सदा मुक्त है। जिसका ज्ञान निर्भ्रान्त है जो सृष्टि के आरम्भ में वेद-ज्ञान देने से आदि गुरु है, जिसके ज्ञानादि गुण अनन्त हैं। वह कभी भी कालादि से सीमित न होने से शाश्वत सत्ता है।[1]

योगदर्शन की भांति वेदान्तदर्शनकार ऋषि भी लिखते हैं—ईश्वर सृष्टि का रचयिता, धर्त्ता व प्रलयकर्त्ता है। शास्त्र=वेद ज्ञान देकर जीवों पर परम अनुग्रह करने वाला है। ईश्वर के दिये वेद ज्ञान तथा सृष्टि-रचनादि कार्यों में परम समन्वय है अर्थात् कहीं भी वेद और सृष्टि में विरोध नहीं है। ईश्वर में आस्था, विश्वास रखने वाला ही मोक्ष का अधिकारी बनता है, अन्यथा नहीं। ईश्वर परम सूक्ष्म चेतन सत्ता है। ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप है, और वह पिता की भांति सब जीवों को आनन्द देने वाला है। ईश्वर सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वव्यापकादि गुणों से जीवों से भिन्न सत्ता है। जीव-ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करने वाले नवीन वेदान्ती लोग वेदान्त दर्शन से सर्वथा विरुद्ध मान्यता रखते हैं। उन्हें वेदान्ती कहना भी वेदान्त का उपहास ही करना है।[2]

इसी प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान-स्रोत स्वरूप उपनिषदों में भी ईश्वर को सर्वव्यापक सत्ता माना है। अपाणिप्रादो जवनो गृहीता० और न तस्य कार्यं करणं च विद्यते० (श्वेताश्वतर०) के मन्त्रों की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपने शक्तिरूप हाथ से सबका रचन, ग्रहण करता है। पग नहीं, परन्तु व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं, परन्तु सब को यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं, तथापि सबकी बातें सुनता……उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं।

परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं, न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया है। (द्र० स० प्र० सप्तम)

आस्तिक जगत् में ईश्वर विषयक भ्रान्तियां—

१. सर्वव्यापक को एकदेशी बताना—ईश्वर की भक्ति के क्षेत्र में यह सब से महान् भूल हुई है। जिसकी सत्ता जगत् के कण-कण में व्याप्त है, उसको भुलाकर लोगों ने उसे अपने समान एकदेशी बना दिया है। जो ईश्वर सर्वज्ञ भाव से समस्त प्राणियों के कर्मों का परम साक्षी व ज्ञाता है। और सभी के शुभाशुभ कर्मों के फलों की व्यवस्था भी कर रहा है, उसे हिन्दू, ईसाई व मुसलमानों ने एकदेशी बना दिया है। कोई उसे वैकुण्ठवासी बताता है तो दूसरा क्षीरसागर का निवासी, कोई उसे पांचवें आसमान पर बताता है तो दूसरा सातवें आसमान पर। कितने आश्चर्य की बात है कि ईश्वरभक्ति करने वाले पृथिवी पर रहते हैं, किन्तु ईश्वर को पृथिवीवासी नहीं मानते। भक्तों से आराध्यदेव बहुत दूर रहता है। ये तथाकथित नकली भक्त इसलिए शोर मचा-मचाकर अपनी भक्ति का ढोंग करने में लगे हैं, क्योंकि वह इनसे दूर है। इनका वह दूरस्थ ईश्वर इनके कर्मों को न जानने से कैसे कर्मानुरूप सुख-दुःख की व्यवस्था करता होगा?

---

१. द्र० योग० समाधि० २४-२७ सूत्र।
२. द्र० वेदान्त० (१-१-२ से १७ सूत्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो ये ही जानें, परन्तु ये झूठा स्वांग ही कर रहे हैं। तथ्य यह है जो सर्वव्यापक सत्ता नहीं है, वह न तो सर्वज्ञ हो सकता है और नहीं सच्चा न्यायकारी। इसीलिए इन नकली भक्तों ने अपने-अपने इन माने हुए ईश्वरों की सहायता के लिए फरिश्ते, दूत, पैगम्बर आदि की मिथ्या कल्पनाएं करके अपना ढोंग जाल फैलाने का प्रयास किया है।

२. **अवतारवाद की मिथ्या कल्पना**—भक्ति के क्षेत्र में समस्त पापों का संवर्धन व पोषण करने वाली अज्ञानग्रस्त कल्पना है—अवतारवाद। आस्तिक जगत् में जैनादि नास्तिकों की देखादेखी अवतारवाद की कल्पना हुई और आज तो इस कल्पना का विशाल व सुदृढ़ साकार रूप हो गया है, कि इसके विरुद्ध यदि कोई कुछ कहने का साहस भी करता है तो उसे ही परम नास्तिक माना जाता है। हिन्दू तो इस साकारवाद के चंगुल में बुरी तरह ग्रस्त हो गया है। परन्तु स्वार्थ व पक्षपात के चश्मे को उतार कर देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि यह भक्ति के क्षेत्र में सब से बड़ी बाधा है और समस्त अनर्थों का मूल कारण है। कुछ विचारणीय तर्क—(क) जिस ईश्वर को अज=अजन्मा आदि कहा है, वह यदि जन्म लेता है तो वेदादि शास्त्र तो झूठे ही कहलायेंगे। फिर तो आस्तिकता का दृढ़ स्तम्भ ही धराशायी हो जायेगा? (ख) जन्म-मरण जब तक है, तब तक मोक्ष नहीं होता और ये दुःखों के मूल कारण हैं। यदि ईश्वर भी जन्म लेकर नव मास तक गर्भस्थ-पीड़ा को भोगता है तो ऐसा क्यों? (ग) और जो सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अनन्तादि गुणों वाला है, वह अवतार लेकर एकदेशी होने से इन गुणों वाला तो नहीं हो सकता। अतः परस्पर ही ईश्वर के स्वरूप में विरोध होने से उन ईश्वरीय गुणों को त्यागना पड़ेगा। जो कि अवतारवादियों को भी मान्य नहीं हो सकता। महर्षि-दयानन्द के कतिपय सबल तर्क एवं अवतारवाद पर आक्षेप पढ़िए—(प्रश्न) जो ऐसा है तो संसार में २४ ईश्वर के अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं? (उत्तर) वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रमजाल में फंसकर ऐसी-ऐसी अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं।'

दुष्टों के संहार के लिए भी अवतारवाद की अनावश्यकता बताते हुए ऋषि लिखते हैं—'जो ईश्वर अवतार धारण किए बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है, उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़े के समान भी नहीं।... जब चाहे, उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। ... और भक्तजनों के उद्धार करने के लिए जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं। क्योंकि जो भक्त जन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है।...और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जो कोई अनन्त आकाश को कहे कि 'गर्भ में आया' वा 'मूठी में धर लिया' ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता। क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है, इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसा ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां हो सकता है, जहां न हो।" (स०प्र० सप्तम०)

आद्य शंकराचार्य ने भी 'परापूजा' में कहा है—'पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्'। अर्थात् जो सर्वत्र विद्यमान है, उसका आवाहन तथा जो सब का आधार है उसका आसन कैसे सम्भव है। परन्तु इन अवतारवादियों ने ईश्वर की कैसी दुर्दशा की है, जिसे कहा नहीं जा सकता। कोई इनसे पूछे कि शूकर, मत्स्य तथा कच्छप जैसे अवतारों ने किस भक्त की रक्षा तथा किस राक्षस का संहार किया है? तो इनको मौन रहने के सिवाय अन्य कोई उपाय ही नहीं सूझेगा। आंख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों ने अपना स्वार्थ साधन के लिए धार्मिक जनता को तरह-तरह के चमत्कार दिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर ठगने के प्रयास किए हैं। अब तो अवतार तक ही बात सीमित नहीं रही है, अब तो अपने को भगवान् ही कहने लगे हैं, जो चुनाव मैदानों में भी हारते फिरते हैं।

सर्वशक्तिमान् ईश्वर को अशक्त व कंगाल बना दिया—ये तथाकथित नकली उदरम्भरि भक्त ईश्वर के विषय में जब कोई प्रश्न उठता है कि यह तो सृष्टिक्रम के विरुद्ध है, ऐसा तो सम्भव नहीं, तब ये कहते देखे गये हैं कि 'समर्थ को न दोष गोसाईं' वह जो कुछ चाहे कर सकता है, जन्म भी ले सकता है, बिना माता-पिता के संयोग के गर्भधारण भी कर सकता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। ऐसे कुतर्की लोगों को उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं—'जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो, वैसा नहीं। किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ यही है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् (जगत्) उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है ···जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान् होकर चोरी व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुःखी भी हो सकता है? जैसे ये काम ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के विरुद्ध हैं तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है, यह कभी नहीं घट सकता। (स०प्र० सप्तम०)

इसलिए ईश्वर को शाश्वत व्यवस्था तथा उसके गुण, कर्म, स्वभाव को समझकर मिथ्या कल्पनाओं को छोड़कर ही भक्ति का क्षेत्र स्वच्छ बन सकता है। ईश्वर की व्यवस्था बड़ी ही अटल है, उसका उल्लंघन कोई योगी, वैज्ञानिक व सम्राट् भी नहीं कर सकता। और उनमें लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं कर सकता है। पुनरपि इन अवतारवादियों ने कुमारियों के पुत्र, अगस्त्य ऋषि का समुद्र को पी जाना, पहाड़ों को हाथ पै उठाना जैसी मिथ्या बातें दिखाकर भोली-भाली जनता को भ्रान्तियों में डाल रखा है।

ईश्वर के विषय में एक अन्य महाभ्रान्ति—ईश्वर की सत्ता न मानने वाले जैनमत के अनुसार जीव ही साधना करके ईश्वर बन जाता है, परमार्थ में ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है। इसी प्रकार जीव भी ईश्वर का ही अंश है और अज्ञानवश ही शरीर धारण करता है इसमें प्रथम पक्ष में अनेक दोष आते हैं। जैसे अनादि ईश्वर के न मानने पर तीर्थंकरों के शरीरों की रचना किसने की थी। क्योंकि संयोग करने वाले ईश्वर के अभाव में संयोग से बनी यह सृष्टि कभी बन नहीं सकती और जो एकदेशी अल्पज्ञ, परिमित सामर्थ्यवाला जीव है, वह कभी भी सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता। और ईश्वर को न मानने पर शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीवों की सुख-दुःख की व्यवस्था कभी नहीं हो सकती। कोई भी जीव स्वयं दुःख प्राप्त करना, नारकीय योनियों में जन्म लेना नहीं चाहता, अतः कर्मफलदाता ईश्वर को स्वीकार करना ही पड़ेगा। जो जैनी ईश्वर को नहीं मानते, और उनके तथाकथित ईश्वर निष्क्रिय हैं, उन्हें विचार करना चाहिए कि यह विशाल ब्रह्माण्ड बिना बनाये तो नहीं बना है, इसको बनाकर नियमित रखने वाला कौन है? ईश्वर की व्यापकता पर यह दोष भी निराधार है कि यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो सब जड़ वस्तुएं चेतन क्यों नहीं हो जातीं। क्योंकि व्यापक और व्याप्य एक कभी नहीं हो सकते। व्याप्य एकदेशी और व्यापक सर्वदेशी है। जैसे आकाश सब में (पृथिवी आदि में) व्यापक है, किन्तु पृथ्वी और आकाश एक नहीं हैं, वैसे ईश्वर और जगत् एक नहीं हो सकते। जैसे सब घटपटादि में आकाश व्यापक है, किन्तु घट-पटादि आकाश के समान आकाशीय गुण वाले अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदृश्य या अस्पर्श्य नहीं होते, वैसे ही ईश्वर के चेतन होने और सब में व्यापक होने से सब जड़ पदार्थ ईश्वरीय गुण वाले अर्थात् चेतन नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार एक नवीन सम्प्रदाय वाले ब्रह्मकुमारी वालों का यह आक्षेप भी निराधार है कि यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो वह मलमूत्रादि में भी मानना होगा और ईश्वर दुर्गन्ध के कारण क्या दयनीय स्थिति में नहीं हो जाता होगा। इसका समाधान भी यह है कि सूक्ष्मतम पदार्थ अपने से स्थूल में रह सकता है, जैसे अग्नि लोहे में व्याप्त हो जाती है, परन्तु स्थूल का प्रभाव अपने से सूक्ष्म में नहीं होता। अर्थात् मलमूत्र के परमाणु अपने से सूक्ष्मतम ईश्वर पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। दूसरी बात यह भी है कि जैसे मनुष्य अपनी इन्द्रियों के माध्यम से ही रूपादि गुणों का ग्रहण करता है। यदि किसी की कोई इन्द्रिय विकृत हो जाये तो वह जीव उस इन्द्रिय से ग्रहण होने वाले गुण को ग्रहण नहीं कर सकता, इसी प्रकार इन्द्रियातीत ईश्वर पर भी इन सुगन्ध व दुर्गन्ध के परमाणुओं का कोई प्रभाव नहीं होता। अतः इस प्रकार का आक्षेप अल्पज्ञ लोग करते रहते हैं। इस विषय में उपनिषत् का प्रमाण द्रष्टव्य है—

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः॥
(कठो० ५।११)

इसी प्रकार नवीन वेदान्ती यह कहते हैं कि जीव-ब्रह्म एक हो है। यह भी महाभ्रान्ति है क्योंकि जीव-ब्रह्म के अपने-अपने स्वाभाविक गुण, कर्म भिन्न-भिन्न हैं। यद्यपि जीव-ब्रह्म दोनों ही चेतन स्वरूप, अविनाशी अनादि सत्ताएं हैं, परन्तु परमेश्वर आनन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, सर्वव्यापक, कभी बन्धन में न आने वाला है और जीव आनन्द की प्राप्ति का इच्छुक, अल्पज्ञ, अल्प सामर्थ्य वाला, एकदेशी, शरीरादि बन्धन में आने वाला है। ईश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना, सब को नियम में रखना, सब जीवों के पाप पुण्यों के फल की व्यवस्था करना, इत्यादि कर्म हैं और जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन करना, शुभाशुभ कर्म करना आदि कर्म हैं। ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्तबल आदि गुण हैं तो जीव के इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख, ज्ञान, हर्ष, शोकादियुक्त होना, भूख प्यास आदि गुण ईश्वर से भिन्न हैं। अतः जीव-ब्रह्म की एकता कभी सम्भव नहीं है। कभी-कभी कुछ लोग किसी एक गुण को लेकर ही एकता की सिद्धि करने लगते हैं। जैसे—'जीवो ब्रह्मैव चेतनत्वात्' अर्थात् जीव भी ब्रह्म ही है, क्योंकि दोनों चेतन ही हैं। उनका यह कथन वैसे ही निराधार है जैसे कोई कहे कि जल भी अग्नि ही है महाभूत होने से। प्रत्येक पदार्थ के साधर्म्य और वैधर्म्य पर बिना विचार किए सत्यासत्य का निर्णय कभी नहीं हो सकता। नवीन वेदान्तियों की समीक्षा करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है—जो ब्रह्म अनन्त, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, सर्वव्यापक सत्ता है, उसमें सर्वत्र अज्ञान मानोगे तो समस्त ब्रह्म शुद्ध नहीं रह सकेगा और उसके एक देश में अविद्या मानोगे तो जहां-जहां अज्ञान होगा, वह-वह ब्रह्म अज्ञानी और अन्य ब्रह्म ज्ञानी मानना पड़ेगा। और अखण्डैकरस ब्रह्म नहीं रह सकेगा और जैसे शरीर के एक देश में फोड़ा होने से सर्वत्र शरीर में दुःख फैल जाता है, वैसे ही ब्रह्म के एकदेश में अज्ञान होने से समस्त ब्रह्म ही अज्ञानी मानना पड़ेगा, जैसे घर बनाने से पूर्व मिट्टी, लकड़ी, लोहे आदि पदार्थ आकाश ही में रहते हैं। घर बनने पर भी आकाश में ही रहते हैं, और जब घर नष्ट हो जाता है, तब भी आकाश में रहते हैं अर्थात् तीन काल में भी ये पदार्थ आकाश से भिन्न नहीं हो सकते और स्वरूप से भिन्न होने से कभी एक भी न थे, न हैं और न कभी होंगे। इसी प्रकार जीव व जगत् के पदार्थ परमेश्वर से अभिन्न होने पर भी स्वरूप से कभी एक नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते।' (स०प्र० सप्तम समु० के आधार पर)

साकार-निराकार की उलझन—ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने वालों में यह भी एक बड़ी उलझन बनी हुई है कि ईश्वर साकार है या निराकार। ये दोनों शब्द एक-दूसरे के विरोधी हैं। जैसे संयोग व वियोग, इनमें यदि संयोग है तो वियोग नहीं होता और यदि वियोग है तो संयोग नहीं होता। इसी प्रकार ईश्वर यदि साकार है तो निराकार नहीं हो सकता और यदि निराकार है तो साकार नहीं हो सकता। और यदि ईश्वर साकार हो तब तो विवाद ही समाप्त हो जाता। क्योंकि जो-जो साकार वस्तुएं हैं वे-वे दृश्य हैं और आंखों को दिखाई देती हैं। और जो दिखाई देती हैं, वे प्रत्यक्ष होने से सन्देह रहित हैं। और जिनका आकार होता है वह सुनिश्चित होता है, परन्तु देखने में आता है कि साकारवादियों ने इतने रूप ईश्वर के बना लिये हैं जो गणनातीत हैं। यह बड़ी बिडम्बना ही है कि इतनी अधिक विविधता को देखकर भक्त भ्रान्तियों में ही भटकता फिरता है कि ईश्वर कौन सा है? और विभिन्न समयों में जन्म लेने वालों के विविध रूप भी संभव हैं कि समकालीन श्रीराम, परशुराम भी ईश्वर के रूप माने जाते हैं। और संसार में ईश्वर से भिन्न पदार्थों में एक आकाश से भिन्न कोई पदार्थ ऐसा नहीं है कि जो साकार भी हो और निराकार भी। ये साकारवादी उदाहरण के अभाव में एक ही प्रमाण दिया करते हैं—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

अर्थात् जैसे अग्नि निराकार होकर पदार्थों में व्यापक होकर भी जब प्रज्वलित करते हैं तो साकार हो जाती है। परन्तु यह भी प्रमाणाभास ही है प्रमाण नहीं। क्योंकि अग्नि का अपना गुण रूप है। वह जिनमें व्याप्त होती है, वे-वे पदार्थ रूप वाले हैं और जिनमें (अपने से सूक्ष्म) व्याप्त नहीं होती वे आकाश और वायु रूपवान् नहीं हैं। अग्नि को निराकार (रूप रहित) कहना ही निरर्थक बात है। अतः इस उदाहरण से ईश्वर को निराकार व साकार सिद्ध नहीं किया जा सकता। ऋषि दयानन्द ने साकारवाद को वन्ध्यापुत्र की भांति असंभव बताते हुए लिखा है—"क्योंकि 'अज, एकपात्' 'अकायम्' इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म-मरण और शरीर-धारण रहित वेदों में कहा है। तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक, अनन्त और सुख-दुःख दृश्यादि[1] गुण रहित है, वह एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय है। और जो अचल, अदृश्य जिसके बिना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र दर्शन करने की बात कहना है।"

(स०प्र० ११ समु०)

कतिपय भक्त लोग जीवनभर तथाकथित पाषाण मूर्तिपूजा के पक्ष में यह तर्क भी देते रहते हैं—जब परमेश्वर सर्वव्यापक है तो मूर्ति में भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं? इस का समाधान करते हुए ऋषि लिखते हैं—'जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना, यह ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ाके एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो, यह कितना बड़ा अपमान है? वैसे तुम परमेश्वर का

---

१. ईश्वर दृश्य कभी नहीं होता, इस विषय में कतिपय प्रमाण देखिये—
(क) न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा ॥ (मुण्डको० ३।८)
(ख) अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यम् ॥ (माण्डुक्यो० ७)
(ग) यत्तद् अद्रेश्यम् अग्राह्यम्० ॥ (मुण्डको० १।६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प-पत्र तोड़के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिसके क्यों लगाते हो ? धूप को जलाके क्यों देते ? घण्टा-घड़ियाल ·····कूटना पीटना क्यों करते हो। तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है, क्यों शिर नमाते ? अन्न जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते ? जल में है, स्नान क्यों कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है। और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की ? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण··आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ?"

उपरोक्त तर्कपूर्ण बातें केवल महर्षि दयानन्द ने ही लिखी हों, ऐसा नहीं है। आद्य शंकराचार्य ने भी 'परापूजा' में ऐसे ही तर्कों से पाषाणादि की मूर्तिपूजा का खण्डन किया है। देखिये—

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
नित्यं तृप्तस्य नैवेद्यं ताम्बूलं च कुतो विभोः।।

अर्थात् जो ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है उसका आह्वान=बुलावा कैसे सम्भव है ? जो समस्त ब्रह्माण्ड का आधार है, उसका आसन क्या हो सकता है ? जो सदा भूख प्यास से रहित होने से आप्त काम है, उसके लिए नैवेद्य—फूल-फलादि पदार्थ कैसे सम्भव हैं ?

कुछ व्यक्ति 'सहस्रशीर्षा: पुरुष:' (यजु०) मन्त्र को उद्धृत करके साकारवाद की पुष्टि किया करते हैं। यह भी उनका महाभ्रम है। क्योंकि यहां 'सहस्र' शब्द अनन्त का वाची है। क्योंकि 'सहस्र' जगत् का वाची भी है, जिस ईश्वर में असंख्यात शिर, आंख आदि ठहरे हुए हैं, इसलिए उसके 'सहस्रशीर्षा' आदि नाम हैं।

कुछ ईश्वर के सत्यस्वरूप से अनभिज्ञ भक्त लोगों को ये पाषाण-पूजक यह कहकर भी बहकाते देखे गये हैं कि ये मूर्ति आदि तो यद्यपि जड़ (अचेतन) ही हैं, किन्तु जब हम मन्त्र बोलकर आह्वान करते हैं तब देवता इनमें आ जाते हैं, (समस्त सनातनधर्मी बड़े-बड़े विद्वान् भी इसी अज्ञान से ग्रस्त हैं, वे भी नवग्रह पूजादि के अवसर पर मन्त्र बोलकर देवताओं का आह्वान करते और विसर्जन करते देखे जाते हैं)। महर्षि ने इस पाखण्ड का भी खण्डन करते हुए लिखा है—"जो मन्त्र को पढ़कर आवाहन करने से देवता आ जाता है तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती ?·· और वह कहां से आता और कहां जाता है ? सुनो भाई ! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मन्त्र बल से परमेश्वर को बुला लेते हो तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते ? और शत्रु के शरीर में जीवात्मा को विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते ?··· वेदों में पाषाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन-विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।

(स०प्र० ११ समु०)

वेदों में तो परमेश्वर को 'अकायम्' सर्वविध शरीरों से रहित, 'न तस्य प्रतिमाऽस्ति' उस परमेश्वर की प्रतिमा=मूर्ति सम्भव ही नहीं है और जो मूर्ति मानकर पूजा करते हैं, उनकी दुर्दशा होती है, ऐसा स्पष्ट लिखा है—

'अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।'
(यजु० ४०।९)

इसकी व्याख्या में ऋषि लिखते हैं—जो असम्भूति=अनुत्पन्न अनादि प्रकृति-कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं, वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं। और जो सम्भूति=कारण से उत्पन्न हुए···पाषाण और वृक्षादि अवयव-की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल (तक) घोर दुःख रूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं।"

(स०प्र० ११ समु०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ साकारवाद के पक्षधर अपने पक्ष में प्रमाण व तर्क न देने से जब निरुत्तर हो जाते हैं, तब वे अन्य बात कहकर ही साकारवाद को जीवित करते देखे गये हैं। वे कहते हैं—हमारा मन बड़ा चंचल है, जब हम भक्ति करने लगते हैं तो यह स्थिर नहीं रह पाता। इसलिए यद्यपि हम जानते हैं कि यह मूर्ति ईश्वर नहीं है, पुनरपि मन को एकाग्र करने के लिए मूर्ति का आश्रय ले लेते हैं। अभ्यास करते-करते जब मन एकाग्र होने लगता है तब ईश्वर में ध्यान लगा लिया करेंगे। ऐसे भ्रान्त लोगों को समझाते हुए महर्षि लिखते हैं—

"साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता। क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत् सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता।··· उसी के गुण, कर्म, स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थित होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता।" (स०प्र० ११ समु०)

कुछ दुराग्रही व्यक्ति निम्नलिखित मन्त्र को बोलकर साकार भक्तों को दिलाशा देते रहते हैं।

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च॥

प्रथम तो यह वेद का मन्त्र ही नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद् के तृतीय-ब्राह्मण में यह पाठ है। और इस स्थल पर प्रसंग के अनुसार ब्रह्म शब्द परमेश्वर के लिए नहीं है, यहां प्रकृति का वर्णन है। उपनिषत् के इसी प्रसंग की साक्षी देखिये—

तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद् वायोश्चान्तरिक्षाच्च।
अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं च॥
(बृहदारण्यकोप० ३ ब्रा० २-३)

अर्थात् ब्रह्म=व्यापक प्रकृति का मूर्त्त रूप वायु और अन्तरिक्ष से भिन्न (अग्नि, जल, पृथिवी) तीन महाभूतों में है। और वायु और अन्तरिक्ष यह प्रकृति का अमूर्त्त रूप है। इसलिए इस उपनिषत् के वाक्य से ईश्वर का साकार रूप सिद्ध करना सर्वथा असंगत कल्पना ही है।

ईश्वर के नाम पर विभिन्न देवी-देवताओं की कल्पना—आस्तिक जगत् में ईश्वर के विषय में जितनी भ्रान्तियां फैली हुई हैं, उतनी अन्य किसी विषय में देखने में नहीं आतीं। जिन व्यक्तियों ने ईश्वर को एकदेशीय मान लिया है, उन्होंने ईश्वर के पैगम्बर, दूत, फरिश्ते आदि की कल्पना करके ईश्वर तक सन्देश पहुँचाने या लाने की कल्पना की है। और ईश्वर को सर्वव्यापक सर्वज्ञ गुणों से ही पृथक् मान लिया है। और ईश्वर को सर्वव्यापक व सर्वज्ञ मानने वालों ने ईश्वर के साकार रूप की कल्पना करके विभिन्न देवी-देवताओं के आकार ही बना लिये हैं। वे कितने हैं, यह गणना करना भी अति दुष्कर कार्य है। और ईश्वर के स्वरूप के विरुद्ध इनके स्वरूप व कार्यों की कल्पना करके तथा इनके मन्दिर बनाकर अपने-अपने देवों की प्रशंसा या माहात्म्य बताकर ही शान्त नहीं होते, प्रत्युत एक दूसरे की निन्दा भी करने लगे हैं, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न पुराणों के पोथों की रचना हुई। परन्तु मनुष्य स्वभाव से विरोध व कलहप्रिय न होने से इनसे बचना चाहता है, परिणामस्वरूप वर्तमान में एक दूसरे की निन्दा न करके सभी के समक्ष नतमस्तक होकर सभी की पूजा करने लगे हैं।

परन्तु निष्पक्ष भक्त कभी तो यह सोचता ही है कि मैं क्या कर रहा हूं? क्या ये सभी ही ईश्वर हैं, इन सभी की पूजा क्या ईश्वर की पूजा है? हम जब ईश्वर को सृष्टि का रचयिता मानते हैं, हम मनुष्यों के शरीरों की रचना भी ईश्वर ही करता है और समस्त ईश्वरीय कार्यों में बड़ी एकरूपता पाते हैं। चाहे हिन्दू, ईसाई व मुसलमान हो, चाहे कोई भारत अथवा अमेरिका में निवास करता हो, हम देखते हैं, उस सृष्टिकर्त्ता की रचना में कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर नहीं है। यदि किसी देश का मनुष्य आंखों से देखता है तो ऐसा कभी नहीं होता कि दूसरे देश का मनुष्य कानों से देखता हो। पुनरपि हमने एक ईश्वर के स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु व शिव की कल्पना की, उनके आकार भी पृथक्-पृथक् बनाये, उनके कार्यों को भी पृथक्-पृथक् माना है। यदि कोई पूछता है कि ये क्या सभी ईश्वर हैं? तो कहते हैं कि ये सब ईश्वर की विभिन्न शक्तियां हैं। क्या किसी की शक्ति उससे पृथक् रह सकती है? ऐसा कभी सम्भव नहीं। पुनरपि मिथ्या कल्पनाओं पर अन्ध भक्तों ने विश्वास करके विभिन्न पद्धतियां प्रसिद्ध की हैं।

महर्षि दयानन्द ने ईश्वर भक्ति के क्षेत्र में इस विविधता को देखकर बहुत ही गम्भीरता से विचार किया और वैदिक मन्त्रों के अनुशीलन से यह निर्णय लिया कि यह विविधता ही ईश्वर की भक्ति में बड़ी बाधा है। ऋषि को बहुत गहन अध्ययन के बाद वेद के मन्त्रों में यह तथ्य मिला—

१. एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ॥ (ऋ०)

२. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुः० ॥ (यजु०)

३. स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः ॥

(कैवल्य उपनिषत्)

४. एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

(मनु०)

इत्यादि वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से स्पष्ट है कि एक ईश्वर के असंख्य गुणों व कर्मों के कारण गौणिक व कार्मिक नाम भी असंख्य ही हैं। महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, नारायण इत्यादि नामों की सप्रमाण व्याख्या करके स्पष्ट किया है कि ये सभी एक ईश्वर के नाम हैं। इन्हें भिन्न-भिन्न समझना महामूर्खता है। इन गौणिक नामों का स्पष्टीकरण देते हुए ऋषि लिखते हैं—

(क) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम 'ओ३म्' को कहा है। अन्य सब गौणिक नाम हैं।

(ख) 'ओ३म्' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियम कारक हैं।

(ग) जहां-जहां सर्वज्ञादि विशेषण हों, वहीं-वहीं परमात्मा और जहां-जहां इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहां-वहां जीव का ग्रहण होता है।

(घ) उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ है, उसको परमेश्वर कहते हैं। जिसके तुल्य कोई न हुआ, न है और न होगा।...जैसे परमेश्वर के सत्य, न्याय, दया, सर्व सामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं, वैसे अन्य किसी—जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है, उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी सत्य होते हैं। इसलिए मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें; उससे भिन्न की कभी न करें।

(क से घ तक, स०प्र० प्रथम समु०)

उपसंहार—इस प्रकार इस युग के महान् आस्तिक ईश्वर के परम उपासक महर्षि दयानन्द ने सच्चे शिव की खोज कठोर तपस्या, योगसाधना, योगियों के सान्निध्य एवं विद्वान् गुरुजनों व वेदादि शास्त्रों के सतत स्वाध्याय से की थी, उसको अपने ग्रन्थों व उपदेशों के माध्यम से जन साधारण तक पहुँचाने का अनवरत प्रयास किया। यह उस योगी के प्रयत्नों का ही परिणाम है कि भारत में नहीं प्रत्युत विश्व के आस्तिक क्षेत्र में हो अनेक काल्पनिक भगवानों के प्रति आस्था समाप्त हो गई और उन्हें अपने-अपने धर्मग्रंथों व अपनी पूजापद्धतियों की भूलों पर भी विचार करने को विवश होना पड़ा। परन्तु अभी तक ईश्वर के सत्य-स्वरूप का बोध न होने से पूर्णतः काल्पनिक मिथ्या बातों का उन्मूलन नहीं हो सका। आज जिस देश में ऋषि ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म लेकर सबसे अधिक प्रयास इस कार्य में किया कि लोग ईश्वर के स्वरूप को समझकर सच्चे भक्त बनें और मिथ्या पाखण्डों से बचकर सन्मार्ग के पथिक बनें। आज उसी देश में जहां पहले नकली अवतारों का ही चमत्कार था, अब तो आचार्य रजनीश, जयगुरुदेव, सांईबाबा इत्यादि के द्वारा स्वयं को ही साक्षात् भगवान् बताकर जनता-जनार्दन को पद-दलित करने का ही सतत प्रयास किया जा रहा है। सरस्वती, गायत्री आदि की मूर्त्तियां घड़कर उदरम्भरि लोगों ने धार्मिक जनता से धन बटोरने में कुछ कसर नहीं छोड़ी है। आर्यसमाज के प्रचारकों व उपदेशकों के प्रभाव से जो अज्ञान का अन्धकार समाप्त सा हो गया था, अब वह उत्तरोत्तर बढ़ने लगा है। विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे रूपों में उल्लू सम ओझल हुए साम्प्रदायिक लोग अपनी-अपनी लीला व चमत्कार फैलाने में लगे हैं। आर्यसमाज का फैलावा प्रकाश मन्द होता जा रहा है, क्योंकि हम कुर्सी, पदलोलुपता की भूख में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष के वशीभूत होकर लड़ने में ही अपनी शक्ति लगाने लगे हैं। हमारे पूर्वजों ने जो दृढ़ संगठनों की नींव रखी थी, जिस के द्वारा देश देशान्तरों तक वैदिक धर्म का प्रचार होता था, आज वे निष्क्रिय, अधार्मिक, स्वार्थी, भौतिक भोगों में आसक्त लोगों के कारण हिल चुकी हैं। हमारे सभी संगठनों में कमियां आने से जो ऋषि के अनन्य भक्त हैं, वे अत्यन्त दुःखी हैं। क्या यह 'शिवरात्रि' का पावन पर्व हम आर्यों के जीवन में क्रान्ति की ज्योति नहीं जगायेगा? क्या हम आर्य, जिन पर ऋषि का महान् ऋण है, उसको उतारने का कुछ भी प्रयास नहीं करेंगे? क्या महर्षि का अमर बलिदान निरर्थक ही चला जायेगा? ऋषि भक्तो! कुछ तो शान्त बुद्धि से विचार करो। जिस ऋषि के भौतिक शरीर को भयंकर विष देकर पापी जगन्नाथ ने समाप्त किया, उसको हम जघन्य पापी कहते हैं, किन्तु जो ऋषि भक्त ऋषि के सत्य, निर्भ्रान्त, वेदोक्त मान्यताओं का ही हनन कर रहे हैं अथवा हनन होते देख रहे हैं, ऐसे आत्मघाती जनों की जन्म-जन्मान्तरों में क्या दुर्दशा होगी? क्या कभी विचार किया है। वेद तो स्पष्ट कह रहा है— "तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥" अतः हम सभी आर्य लोग इस पावन पर्व पर आत्म-निरीक्षण करें, एक-दूसरे पर छींटाकसी छोड़कर अपने संगठनों को सुदृढ़ बनाएं और वेद का पावन सन्देश देश-देशान्तर तक पहुँचाकर फिर से अज्ञान के प्रबल अन्धकार को मिटाने में लग जायें तभी तो ईश्वर की भक्ति के क्षेत्र में फैले अज्ञान को मिटा सकेंगे। संगठन में महान् बल होता है। वैदिक धर्म के प्रकाश से अन्धकारप्रिय उल्लूसम साम्प्रदायिक लोग छिप जायेंगे अथवा समाप्त हो जायेंगे। तभी हम सगर्व उन्नत मस्तक होकर कह सकेंगे—

सवित्री ज्ञानानाममृतफलदात्री तव यते।
सदा शैवी रात्री परमसुखदात्री भवतु नः॥

(राजवीर शास्त्री)

पीते स्वयं कालकूट, औरों को पिलाते अमृत,
शूल सब संहारि 'सरल' पुष्पबीज बोते थे।
भारत के दामन में दाग कहीं दीखता तो,
ऋषिवर उन्हें पटक पटक कर धोते थे॥
दिन में दिनकर से जाज्वल्यमान तपःपूत,
पलभर भी शान्ति की न नींद कभी सोते थे।
दीन हीन दशा देख स्वजन की स्वदेश की,
सारी सारी रात देव दयानन्द रोते थे॥

[कविवर ऋषिराज तिवारी 'सरल']

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर बोध

(कविवर—"प्रणव" शास्त्री एम०ए० महोपदेशक)

धन्य धन्य गुजरात भूमि है, धन्य है, टंकारा।
धन्य धन्य है, बाल 'मूल' की अमर बोधमय ध्रुव धारा॥
नहीं ज्ञात किस जगह त्रस्त हो सूर्य सत्य का सोता था।
धर्म बिचारा दीन-हीन सा इधर-उधर ही रोता था।
मत मिथ्या का मोह निरन्तर अन्धकार ही बोता था।
जिससे ईर्ष्या, द्वेष, घृणा का साम्राज्य था विस्तारा॥१।
गई गर्त में प्रभु की पूजा, पूजी जाती प्रतिमाएं।
भोग रही थीं विषम वेदना भारत की प्रिय प्रतिभाएं।
हीरा, मोती छोड़ जौहरी थे पाषाणों में भरमाए।
जीवन की साफल्य सुधा का सूख चला मानस प्यारा॥२।
वर्णाश्रम की वरद व्यवस्था मानो रूठी-रूठी थी।
ऋषि मुनियों की मधुर मान्यता हो गई सारी झूठी थी।
सामाजिक सौन्दर्यकरण की नष्ट संजीवनी बूटी थी।
घोर निराशा कुहरे में था धैर्य फिरा मारा-मारा॥३।
नन्दन वन में आग लगी थी विहग बन्धु थे अकुलाने।
लता, वृक्ष, कलिकाएं झुलसीं झुलसे पत्ते परवाने।
शोभा के शृङ्गार स्वयं ही मन ही मन में शरमाते।
किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ था बासन्ती मौसम सारा॥४।
दयानन्द की लहरों ने कुछ जादू ऐसा कर डाला।
हरियाली छा गई बाग में और छा गया उजियाला।
मतवालों की फसलों पर भी यहां पड़ गया था पाला।
होने लगे अचानक देखो बुद्धिवाद के पौबारा॥५।
लगीं नाचने रम्य ऋचाएं अर्थों की भर-भर प्याली।
दर्शन, सूत्र समोद सजाते प्रभु-दर्शन-अर्चन की थाली।
उपनिषदों की कलिल कोकिला कूक रही थी मतवाली।
मानो अरुण-प्रिया ऊषा ने सन्ध्या को था ललकारा॥६।
प्रहरी कञ्चन भवन राष्ट्र के सहसा ही सब जाग उठे।
पारतन्त्र्य के प्रबल पाश में लगा स्वयं ही आग उठे।
पन्थाई पाखण्डी सारे हार मान कर भाग उठे।
मानव की उन्नति का गूंजा "प्रणव" गगन में जयकारा॥७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लो ! आ गई शिवरात

लेखक—श्री यशपाल जी आर्यबन्धु आर्य
निवास—चन्द्र नगर, मुरादाबाद

डढ़ सौ वर्ष पूर्व टंकारा के एक छोटे से शिवालय में एक छोटे से चूहे ने जो उछल-कूद मचायी थी, वह दिशाओं को एक नया दिशा-बोध एक नई क्रान्ति दे गई। तभी कविराज सौमित्र ने कहा था कि—

'एक मूषक ने जगाया उग्र ऊहापोह।
जन्म के संग क्रान्ति लाया सत्य का विद्रोह'॥

वस्तुतः यह घटना ऐसी थी कि जिससे समस्त दिशाओं ने एक तीव्रतर सुधारात्मक नवीन मोड़ लिया। दिनकर का यथार्थ कथन है कि—'परिवर्तन जब धीरे-धीरे आता है तो उसे सुधार कहते हैं, किन्तु वही जब तीव्र गति से पहुँच जाता है तो उसे क्रान्ति कहते हैं।' यह घटना एक तीव्रतर परिवर्तन का कारण बनी। वस्तुतः चूहे वाली इस छोटी सी घटना पर सुधार का जो भव्य भवन खड़ा किया, उसी का नाम आर्यसमाज है, जिसे एक धधकती ज्वाला का नाम दिया गया है जो कि महर्षि दयानन्द के हृदय में प्रादुर्भूत हुई थी।

बालक मूलशंकर अपने पिता के साथ शिवालय में शिव की पूजा के लिए समुपस्थित था। धीरे-धीरे सभी सो गए। यहां तक कि मन्दिर का पुजारी भी सो गया। किन्तु वह निष्ठावान् बालक निरन्तर जागता रहा, क्योंकि उसे बताया गया था कि शिव के मन्दिर में सो जाने से शिव जी रूठ जाते हैं। अतः शिव जी न रूठें, इसी उद्देश्य से वह बालक जागता रहा। तभी एक चूहा बिल में से निकला और शिव की पिण्डी पर चढ़ कर मिठाई खाने लगा। बालक मूलशंकर के मन में एक जिज्ञासा जगी, कि यह कैसा शिव है कि जो अपने ऊपर से एक छोटे से चूहे को भी नहीं भगा सकता। तब उस ने पिता को जगाया और अपनी शंका व्यक्त की। पिता ने झिड़क दिया, कि ऐसे अनास्था भरे शब्द नहीं कहा करते, पर सत्यान्वेषी बालक कब मानने वाला था। जब उसे पता चला कि सच्चे शिव नहीं, अपितु उसके प्रतीक मात्र हैं तो उसने निश्चय किया कि वह सच्चे शिव की खोज करके रहेगा और इस प्रकार बालक मूलशंकर का जागरण एक ऐसा जागरण बन गया कि जो उसे सदा-सदा के लिए जगा गया। तभी कवि ने कहा है कि—

"तुम जगे ऐसे कि फिर सोए नहीं पल भर।
प्रातः लाया रात भर का जागरण ऋषिवर॥

और सत्य तो यह है कि इस जागरण के बाद वह कभी सो ही नहीं पाया। मानो—

"इक तकमीले ख्वाब की खातिर।
उम्र भर जगता रहा कोई।"

महर्षि स्वयं ही नहीं जगे, जग को भी जगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। तभी कोटि-कोटि कण्ठ एक साथ गा उठे– "सोतों को कर गया फिर बेदार वो मस्ताना योगी।" और "धन्य है तुम को ऐ ऋषि, तूने हमें जगा दिया। सो सो के लुट रहे थे हम, तूने हमें बचा लिया।"

किन्तु आज लगता है कि ऋषि के अनुयायी सो गए हैं तभी जाति के लाल लुट रहे हैं। कोई यवन, कोई ईसाई हो रहा है। आज कहां है लेखराम? आज कहां है श्रद्धानन्द, जो शुद्धि का चक्र चलावे।

दुःख है जिसे राष्ट्र का पुरोहित बन कर जगना और जगाना था, वही आलस्य और प्रमाद की निद्रा से अभिभूत है। वरना सौमित्र को यह क्यों कहना पड़ता कि—

समय दे रहा है चुनौती पर चुनौती,
देखता हूं पीये जा रहे हैं लोग।
कैसा है पहरा चौकीदारों का,
बाग बरबाद किये जा रहे हैं लोग।।

आज चमन लुट रहा है, वतन लुट रहा है। फिर आर्य जाति जग क्यों नहीं रही। किन्तु वास्तविकता यह है कि—

जर्रे जर्रे से वतन की यह सदा आती है।
आर्यो होश में आओ वरना कजा आती है।।

और—

नहीं चेतोगे तो मिट जाओगे ऐ! हिन्दोस्तां वालो।
तुम्हारी दास्तां तक न रहेगी दास्तानों में।।

आज की शिवरात्री का यही सन्देश है कि—

मिलाओ शुद्ध दिल से शुद्ध करके लख्ते जिगरों को।
तेरे नूर नजर नजरों से पिन्हा होते जाते हैं।।

पता नहीं कविवर कुंवर सुखलाल आर्य मुसाफिर की यह चेतावनी हम क्यों भूल गये कि—

नेशन की इमारत कहीं मिसमार न हो जाये।
गुलशन में कहीं देखना पुरखार न हो जाये।।
जल्दी से जात पांत के बन्धन को तोड़ दो।
यह नुस्खये शुद्धि कहीं बेकार न हो जाये।।
उल्फत दिखाओ ऐसी अछूतों से कि कोई।
ईसाई यवन बनने को तैयार न हो जाये।।

आज की शिवरात्रि का यही सन्देश है।

कविवर सौमित्र के शब्दों में—

आज की शिवरात फिर सन्देश लाई है।
और ऐसी रात को शत-शत बधाई है।।
हर मनुज बोले, यही वर मांगता हूं मैं।
आ गई शिवरात तो लो जागता हूं मैं।।
शक्ति दो प्रभुवर! कलुष सब त्यागता हूं मैं।
हर शिवालय से कहे तम भागता हूं मैं।।
कामना जागे किसी में तो यही जागे।
मांगना चाहे मनुज तो बस यही मांगे।।
कोख दो तो मूलशंकर मातृ जैसी दो।
जन्म दो तो पुण्य भू गुजरात जैसी दो।।
प्रातः दो, ऋषिबोध के उस प्रातः जैसी दो।
रात दो तो फिर उसी शिवरात जैसी दो।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व का सब से बड़ा महापुरुष–

महर्षि दयानन्द सरस्वती

—पं० निरञ्जन देव जी इतिहास केसरी, पंजाब सभा महोपदेशक

पाठकवृन्द ! आपने अनेक महापुरुषों की जीवन गाथाएं पढ़ी और सुनी होंगी। किसी को कम और किसी को अधिक कहना, मानना और जानना उचित प्रतीत नहीं होता। फिर भी कोई कुछ कहे, मैं इस लोकाचार की परवाह नहीं करूँगा। मेरा हृदय पुकार-पुकार कर कहता है कि संसार भर के महापुरुषों में महर्षि दयानन्द की शान निराली है। अन्य महापुरुषों में किसी में एक गुण है तो किसी में दूसरा। कोई प्रभु भक्त है तो विद्वान् नहीं, कोई विद्वान् है तो योगी नहीं, कोई योगी है तो सुधारक नहीं, कोई सुधारक है तो दिलेर नहीं, कोई दिलेर है तो ब्रह्मचारी नहीं, कोई ब्रह्मचारी है तो संन्यासी नहीं, कोई संन्यासी है तो वक्ता नहीं, कोई वक्ता है तो लेखक नहीं, कोई लेखक है तो सदाचारी नहीं, कोई सदाचारी है तो परोपकारी नहीं, कोई परोपकारी है तो कर्मठ नहीं, कोई कर्मठ है तो त्यागी नहीं, कोई त्यागी है तो देशभक्त नहीं, कोई देशभक्त है तो वेदभक्त नहीं, कोई वेदभक्त है तो उदार नहीं, कोई उदार है तो शुद्ध आहार नहीं, कोई शुद्ध आहारी है तो योद्धा नहीं, कोई योद्धा है तो सरल नहीं, कोई सरल है तो सुन्दर नहीं, कोई सुन्दर है तो बलिष्ठ नहीं, कोई बलिष्ठ है तो दयालु नहीं, कोई दयालु है तो संयमी नहीं। परन्तु यदि आप ये सभी गुण एक ही स्थान पर देखना चाहें तो देव दयानन्द को देखो। निष्पक्ष होकर देखो। हृदय की आखें खोल कर देखोगे तो मेरे इस कथन की पुष्टि किए बिना नहीं रह सकोगे। उनका भौतिक शरीर और चरित्र देख कर कट्टर से कट्टर विरोधी नतमस्तक होकर उनके भक्त बन जाते थे। आप का शरीर ६ फुट लम्बा था; गौरवर्ण, सुडौल और आकृति मनमोहिनी थी। बाल मुंडे हुए होते थे। एक चादर ऊपर लेते थे एक अर्ध धोती नीचे का पहनावा था। भूमि पर पद्मासन से बैठना पसन्द करते थे। उनका उठना, बैठना, चलना-फिरना आदि सब क्रियाएं देखने वालों को भाती थीं। उनके मुख मण्डल पर तप, तेज, उदारता, गम्भीरता, धैर्य, अनुग्रह और आशीर्वाद निवास करते थे। आवाज रसीली और सुरीली थी। उच्चारण साफ और शुद्ध होने के अतिरिक्त प्रवचन इस ढंग से करते थे कि श्रोता मुग्ध हो जाते थे। उनके रसीले नेत्रों में प्रेम, कृपा, आकर्षण, रस और माधुर्य था। वे भाषण के समय प्रमाणों की झड़ी लगा देते थे। उनकी वेद विद्या, तर्क शैली और स्मरण शक्ति को देख कर बड़े-बड़े विद्वानों के चित्त पानी होते थे। उनकी प्रकृति कोमल सरल और निष्कपट थी। वे मेल मिलाप में बड़े सभ्य थे। किसी की बुराई न सुनते थे न करते थे। उनके दिल में सांसारिक चमक दमक की कोई हवस न थी, ऐसे थे महर्षि ! आनन्द कर देव दयानन्द।

बाल ब्रह्मचारी, परोपकारी, महर्षि दयानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का जन्म १८२४ ई० में टंकारा (गुजरात) में कर्षन जी तिवाड़ी ब्राह्मण के घर हुआ था। १८३८ ई० में शिवरात्रि के दिन शिव जी की विशेष पूजा के लिए वे शिवालय में पधारे। उस समय आप की आयु केवल १४ वर्ष की थी। अर्धरात्रि के समय आप ने क्या देखा कि शिव जी की मूर्ति पर चूहे उछल कूद कर रहे हैं। हैं! यह क्या? त्रिशूलधारी शिव अपनी रक्षा क्यों नहीं करते! तत्काल पिता को जगाया, सब कुछ बताया और दिखाया, फिर पूछा कि क्या माजरा है? शिव जी की यह दुर्दशा क्यों हो रही है। पिता जी ने कहा कि बेटा! यह तो शिव जी की मूर्ति है। असल शिव तो कैलाश पर्वत पर रहते हैं। मन ही मन में इस बालक ने निश्चय कर लिया कि नकली शिव को छोड़, असली शिव की खोज करूँगा और अवश्य करूँगा। तत्पश्चात् उसने शिवालय में कभी कदम न रखा। घर के अन्दर दो मौतें हुई। एक बहिन की और एक चाचा की। अब नवयुवक मूल (तत्कालीन नाम) इस सोच में पड़ गया कि मृत्यु क्या है? इस से कैसे छुटकारा हासिल किया जाए? पठन-पाठन के साथ-साथ वैराग्य की तीव्र आंधी ने मूल के मन को व्याकुल कर दिया। मृत्यु से मुक्ति और प्रभु से मिलाप, बस यही दो चीजें उसके जीवन का उद्देश्य बन गई थीं।

सन् १८४६ की बात है। माता-पिता मूल के विवाह के चक्कर में थे। आयु २२ साल की हो चुकी थी परन्तु मूल, भूलकर भी गृहस्थ में आने वाले न थे। उन का वैराग्य चरम सीमा को पहुँच गया था। उन्होंने एक दिन सायं समय यह कहते हुए कि 'फिर कभी घर न लौटूंगा' वासना समूह की पूर्णाहुति दे दी, और घर से निकल खड़े हुए। घर से तो और भी कई महापुरुष निकले परन्तु इस महापुरुष की तरह नहीं। शेष तो घर का मोह छोड़ न सके परन्तु धन्य है देव दयानन्द! जिन्होंने माता-पिता के प्रेम को, सज्जन मित्रों के सरस स्नेह को, और सब से बढ़ कर जवानी के खिले बसन्त को सर्वथा त्याग दिया। वे घर से इसलिए निकले कि सर्वथा स्वतन्त्र हो कर मृत्यु महारोग से छुटकारा पाएं और अमर जीवन प्राप्त करें।

नवयुवक मूल ने स्वामी पूर्णानन्द से संन्यास लेकर दयानन्द सरस्वती नाम पाया। १८४६ से लेकर १८६० तक घोर तपस्या की। १८६० ई० से १८६३ तक मथुरा में प्रज्ञाचक्षु एवं क्रान्तिकारी, गुरु स्वामी विरजानन्द जी महाराज से आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा पाई। १८६६ से लेकर १८७५ तक मूर्तिपूजा खण्डन आदि का कार्य जोर शोर से आरम्भ किया। १० अप्रैल १८७५ को आर्यसमाज की स्थापना की, आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् महर्षि लगभग साढ़े आठ वर्ष जीवित रहे। इतने थोड़े समय में महर्षि की निर्मल कीर्ति समुद्र पार जा पहुँची। एक भी महापुरुष ऐसा नहीं हुआ जिस का कीर्ति नाद इतने थोड़े समय के अन्दर सारे संसार में सुना गया हो।

३० अक्तूबर १८८३ ई० के दिन सायं ६ बजे अजमेर नगर में महर्षि दयानन्द ने परलोक गमन किया। आज सारे भारत में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसने महर्षि दयानन्द के दर्शन किए हों और अभी तक जीवित हो। आज से १५-२० वर्ष पहले ऐसे महापुरुषों के दर्शन कहीं-कहीं हो ही जाते थे। जिन्होंने महर्षि के दर्शन किए और प्रवचन सुने थे। १९४३ ई० में मैं दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय गुरुदत्त भवन लाहौर में प्रविष्ट हुआ। मुझे बड़ा सन्ताप रहता था और अब भी रहता है कि मेरा जन्म ऋषि काल में न हुआ। काश! मुझे उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता। उन के प्रवचन सुनता। स्पष्ट है, कि यह व्याकुलता व्यर्थ है और व्यर्थ थी। अन्त में पूज्य गुरु स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ (तत्कालीन आचार्य उप०वि०) से प्रार्थना की कि 'यदि कोई ऐसे सज्जन लाहौर पधारें, जिन्होंने महर्षि को अपनी आंखों से देखा हो तो मुझे उन से अवश्य मिलाने की कृपा करें।' स्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने स्नेह पूर्वक उत्तर दिया कि 'मुझे ध्यान रहेगा।'

ईश्वर ने मेरी सुनी। अचानक ही एक दिन स्वामी जी ने मुझे याद किया। उनके पास एक वृद्ध सज्जन बैठे थे। स्वामी जी ने आदेश दिया कि पूछ लो, जो कुछ पूछना है। इन्होंने महर्षि के दर्शन किए हैं। मेरी उत्सुकता बढ़ी, परन्तु इतने में वह सज्जन उठ खड़े हुए। कहने लगे, कि मैं रुक नहीं सकता। मेरी गाड़ी निकल जायेगी। मेरी आशा निराशा में बदल गई और मैं मौन हो गया। मेरी उदासी और स्वामी जी के संकेत को समझ कर उस महात्मा ने मुझे कहा कि मैं आप के लिए इतना कर सकता हूं कि स्टेशन जाने के लिए यहां से तांगा न लेकर शाह आलमी गेट तक पैदल चलूँ और आप वहां तक मेरे साथ चलते-चलते जो पूछना चाहें, पूछ लें। स्वामी जी महाराज ने इस प्रस्ताव को पसन्द किया और शाह आलमी गेट तक मुझे उनके साथ जाने की आज्ञा दे दी। चलते-चलते मैंने जो प्रश्न किए और उस महात्मा ने जो उत्तर दिए, वे निम्न प्रकार हैं—

प्रश्न : आप ने ऋषि के दर्शन कब किए, कहां किए और उस समय आप की आयु क्या थी ?

उत्तर : मैंने ऋषि जी के दर्शन तब किए, जब यह पंजाब पधारे। सर्वप्रथम वह लुधियाना उतरे (३० मार्च १८७७ ई०) मेरी आयु उस समय १२-१३ वर्ष की थी।

प्रश्न : स्वामी जी महाराज के भाषण कहां होते थे ? प्रवचन बैठ कर करते थे या खड़े होकर।

उत्तर : जटमल की हवेली में, उस समय स्वामी जी महाराज खड़े होकर भाषण देते थे। पीछे खड़े जन समूह को हाथ के संकेत से बैठ कर सुनने का आदेश देते थे।

प्रश्न : क्या आप उनके भाषण समझते थे। और यह भी बताएं कि महाराज के व्यक्तित्व से आप कहां तक प्रभावित हुए ?

उत्तर : यद्यपि भाषण सरल भाषा में होते थे परन्तु पूरी तरह समझना मेरे लिए कठिन था। फिर भी अपनी बुद्धि अनुसार मैं बहुत अच्छा समझा। मैं महाराज से इतना प्रभावित हुआ कि मैं उनके निकट से दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठा।

प्रश्न : क्या आप की यह इच्छा पूर्ण हुई ?

उत्तर : जी हां। मैं उनके निवास स्थान के चक्कर काटता रहा, कि अवसर मिले, भीड़ कम हो तो मैं आगे बढ़कर उनके चरण छू लूं। मुझे कहीं से भी भेंट करने के लिए फूल प्राप्त न हुए थे। फिर भी फूलों के स्थान पर मैं शीशम और बेरी आदि के पत्ते तोड़ कर ले गया था। दोपहर के समय रश कम हुआ। मैं हिम्मत करके आगे चला गया। फूलों के स्थान पर वही वृक्षों के पत्ते उनके चरणों में रख कर प्रणाम किया। महर्षि मेरे भाव को समझ कर हंस पड़े और बड़े ही मीठे शब्दों में मुझे कहा, कि बालक ! तुम क्या चाहते हो ? मैं उनके प्रभाव तले दब कर खड़े का खड़ा रह गया और कुछ भी न बोल सका। तब उन्होंने पुनः प्रेम भरे शब्द दुहराये मेरा उत्साह कुछ बढ़ा और मैंने प्रार्थना की कि "आप मुझे आर्य समाद बना दें" (आप मुझे आर्य समाजी बना दीजिए) स्वामी जी मेरे भाव को समझ कर बड़े प्रसन्न हुए।

प्रश्न : फिर क्या हुआ ? (मैंने बड़ी बेसबरी से पूछा)

उत्तर : फिर क्या हुआ ? क्या बताऊँ ! यह कह कर वे वृद्ध सज्जन चलते-चलते खड़े हो गए। उन्होंने पीछे मुड़कर मेरी ओर देखा। उनकी आंखों में अनोखी चमक थी। बड़े ही गर्व के साथ उन्होंने मुझे कहा कि विद्यार्थी भाई ! मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूं कि आप मेरे पीछे केवल इसलिए चले आए हैं कि मैंने ऋषि के दर्शन किए हुए हैं परन्तु केवल दर्शन नहीं प्रत्युत उस महापुरुष ने मेरी प्रार्थना सुनकर सस्नेह मेरी पीठ पर अपने दाएं हाथ से तीन बार थपकी दी और साथ ही फरमाया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक ! तुम तो स्वयं बने बनाये 'आर्य वीर' हो। मेरी पीठ पर ऋषि का हाथ ! मानो हनुमान की पीठ पर राम का हाथ ! अर्जुन की पीठ पर श्रीकृष्ण का हाथ ! यह कह वे महात्मा रोमांचित हो उठे ! फिर बोले, पढ़ो लिखी जनता पर उनका बे हद प्रभाव पड़ा। इतने में शाह आलमी गेट आ गया, अब मुझे वापस लौटना था और तब भी मैंने दो प्रश्न पूछ ही लिये।

प्रश्न : महाराज, अपना शुभ नाम तो बताते जाएं ?

उत्तर : मुझे लब्भूराम 'नय्यड़' कहते हैं शेष फिर कभी। अब मुझे जल्दी है।

प्रश्न : महाराज ! मैंने आप को बड़ा कष्ट दिया परन्तु यह अवश्य बता जाएं कि महर्षि के आशीर्वाद का क्या परिणाम निकला? क्या आप सचमुच 'आर्य वीर' हैं।

उत्तर : कृपया इस सम्बन्ध में अपने गुरु स्वामी वेदानन्द जी महाराज से जानकारी लें। मेरा कहना उचित नहीं।

पूज्य स्वामी वेदानन्द जी महाराज ने बताया कि उक्त महात्मा ला० लब्भुराम नय्यड़ सचमुच ही "आर्य वीर" हैं। लुधियाना में आर्यसमाज के काम को प्रगति देने में आप का विशेष हाथ है। (साबुन बाजार समाज के आप कर्त्ता धर्त्ता थे। स्वामी श्रद्धानन्द और गुरुकुल कांगड़ी के प्रति आप की अगाध श्रद्धा थी। आप ने लाखों रुपया गुरुकुल के लिए दान प्राप्त किया था।

□ ● □

२६ फरवरी, पुण्यतिथि पर—

राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाले

वीर सावरकर

जिसने राष्ट्र के स्वतन्त्र होने पर भी स्वतन्त्रता का कोई सुख नहीं भोगा, जिसने समस्त जीवन स्वतन्त्रता-संघर्ष में ही बिताया। और काले पानी की अमानवीय यातनाओं को सहकर भी लेशमात्र भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुआ तथा समुद्र में जहाज से बन्दी बनाकर ले जाते हुए नृशंस ब्रिटिश राज्याधिकारियों की आंखों में धूल झोंक-कर एवं दनादन गोलियों की वर्षा की भी परवाह न करके विशाल सागर की छाती पर भी स्वतन्त्रता की भावनाओं को दबने नहीं दिया, उस राष्ट्रभक्त वीर सावरकर की दूरदर्शी भविष्यवाणियों पर यदि हम थोड़ा भी ध्यान देते तो हमारा देश वर्तमान में फैली अशान्त हाहाकार की प्रचण्ड ज्वाला-मालाओं से बच जाता। आओ, आज उन की पुण्य-तिथि पर उनके संस्मरणों को पढ़कर अपनी भूलों पर पश्चात्ताप करें और उनकी भविष्य में आवृत्ति न हो सके, एतदर्थ कटिबद्ध हो जाएं—

१. वीर सावरकर ने अण्डमान की कालकोठरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी जब कुछ मौलाना मुस्तफा जैसे कट्टरपन्थियों की हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की हरकतें देखीं तो उनसे चुप नहीं रहा गया और उन्होंने सिंह-गर्जना करते हुए कहा था—"यदि हम ने ऊँच-नीच की भावना नहीं छोड़ी, कथित हरिजनों को समाज में बराबर का दर्जा नहीं दिया तो उनके इस्लामीकरण अथवा ईसाईकरण को कोई रोक नहीं सकता, तथा आगे चलकर देश को टुकड़े-टुकड़े होने से कोई बचा नहीं सकेगा।" और उन्होंने हरिजनोद्धार को राष्ट्रीय कार्यक्रम घोषित करके काले पानी से आकर इस कार्य को आगे बढ़ाया। और यह नारा दिया—

'धर्मान्तर-यानी-राष्ट्रान्तर'

क्योंकि वे भलीभांति समझते थे कि जिस हिन्दू का धर्मान्तरण हो जाता है, वह इस देश में रहता अवश्य है, किन्तु गीत विदेशों के ही गाने लगता है। आज उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो रही है जिसके 'नागालैण्ड' जैसे दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं

२. सावरकर देश में सैनिकीकरण के प्रबल पक्षधर थे। हमने उनके दूरदर्शी विचारों पर ध्यान नहीं दिया, जिसके कारण १९६२ में चीन के हमले में हमें पराजित होना पड़ा। सन् १९४० में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने गुप्त रूप में विदेश में जाकर आजाद हिन्द सेना का गठन करने का जब आह्वान किया, तब हमारे तत्कालीन कांग्रेसी नेताओं ने न केवल डटकर विरोध किया प्रत्युत आजाद हिन्द सेना में भर्ती होने वालों को किराये का टट्टू बताकर बदनाम भी किया। उस समय वीर सावरकर ने भारतीय जनता से अपील की थी कि भारतीय ज्यादा से ज्यादा संख्या में आजाद हिन्द सेना में भर्ती होकर देशभक्ति का परिचय देवें।

३. यद्यपि सावरकर हिन्दुत्व के परमोपासक थे, किन्तु उनका हिन्दुत्व संकुचित न होकर बहुत उदार था। वे विभिन्न उपासना-पद्धतियों के होते हुए भी भारत के प्रत्येक राष्ट्रभक्त को हिन्दू मानते थे। उनका यह सुदृढ़ विचार था कि जो इस देश में रहकर भी भारतीय संस्कृति व देश से घृणा करता है और विदेशियों के गीत गाता है, वह कोई भी हो, राष्ट्रद्रोही है। और जिसे देश के कण-कण से प्यार है, जो इस संस्कृति व सभ्यता से अपनेपन की भावना रखता है, और स्वदेश गौरव को ही आत्मगौरव समझता है, वह चाहे मुसलमान है, अथवा ईसाई है, वह भी सच्चा हिन्दू है। ऐसे राष्ट्रभक्त हिन्दुओं का ही वे सुदृढ़ संगठन चाहते थे।

(श्री शिवकुमार, पत्रकार, पिलखुवा, के लेख से संकलित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़ की पूजा जड़ता है

—कविवर भुल्लासिंह रावत,
जिला मन्त्री, आर्य उप प्रतिनिधि सभा, मथुरा

जड़ की पूजा जड़ता है।
शिशु मन मन्दिर में दीपक, रजनी भर जलता है।
होनहार बिरवान पात चमकीले होते हैं।
केन्द्रित मन के भाव बात अपनी कह देते हैं॥
संचित निधि सुयोग की पूंजी, कल्पवृक्ष बन आई है।
दृढ़ संकल्प लता तरु बनकर, लहर-लहर लहराई है॥
सुधा पान कर नन्हा पौधा कुसुमित बनता है।
जड़ की पूजा जड़ता है..............................॥१॥
तभी एक नन्हीं सी चुहिया ज्ञान रूप बन आई।
उसकी उछल कूद पर बालक की बुद्धि ठहराई॥
तन्मयता से बालक उसकी हरकत देख रहा है।
हृदय भाव चुहिया से बालक अपने जोड़ रहा है॥
तर्क श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष कर कसता चलता है।
जड़ की पूजा जड़ता है..............................॥२॥
यह कैसा शिव जिसकी छाती पर चुहिया फुदक रही है।
उर भय कोई नहीं भोग मनमाना कतर रही है॥
अखिल विश्व ब्रह्माण्ड परिधि में रवि, शशि नित्य चमकते।
पता नहीं क्यों प्यारे वे शिव चुहिया से डरते॥
मन्थन का क्रम मनमन्दिर में मक्खन बनता है।
जड़ की पूजा जड़ता है..............................॥३॥
जो अपनी रक्षा नहीं छोटी चुहिया से कर सकते।
निश्चय ही वह दिव्य शक्ति नहीं मूर्ति में हो सकते॥
भोले भाव कहानी पूरी मां को आन बताई।
तोड़ दिया झटपट व्रत थाली भोजन की अपनाई॥
कुपित हुए हैं जनक किन्तु नहीं बालक डरता है।
जड़ की पूजा जड़ता है..............................॥४॥
वही मूलशंकर आगे चल दयानन्द कहलाया।
घर-घर अलख जगाया जिसने सोता देश जगाया॥
तिल-तिल कर जल कर जिसने जग में प्रकाश फैलाया।
हाय ! निकम्मी कौम उसे ही हमने जहर पिलाया॥
"रावत" बोधोत्सव उत्सव पर कविता लिखता है।
जड़ की पूजा जड़ता है..............................॥५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगी की अमर कहानी

—पं० ताराचन्द "वैदिक"
कविस्थल जि० महेन्द्रगढ़ (हरि०)

सुनो सुनो एक योगी की अमर कहानी।
दई परोपकार में लगा सकल जिन्दगानी।
था श्री स्वामी दयानन्द ऋषि लासानी ।। टेक ।।

शिव जी पर चूहा देख ज्ञान हिये जागा।
यह शिव नहीं शिव कोई और खोज में लागा।
भागा जभी घर से किसी की ना मानी ।।१।।

बना मूलशंकर से शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी।
फिर बना दयानन्द दण्डी जग हितकारी।
भारी किया तप और त्याग थी चढ़ी जवानी ।।२।।

फिर वन पर्वत जंगलों में कष्ट उठाये।
फिर चलते चलते चल मथुरा में आये।
बनाये गुरु विरजानन्द से ब्रह्मज्ञानी ।।३।।

पढ़ वेद चले गुरु से प्रतिज्ञा करके।
पाखण्ड खण्डन किया सब जगह विचर के।
भर के रंज में पोपों ने करी शैतानी ।।४।।

ईश्वर और वेद प्रेमी था अलबेला, डेढ़ अरब दुनिया से लड़ा अकेला।
चेला चेली न था कोई सहायक प्राणी ।।५।।

करणवास में करण मारने आया, तलवार छीन दई तोड़ पकड़ बैठाया।
घबराया शर्म से हो गया पानी पानी ।।६।।

शुद्ध सरल वेदों का भाष्य बनाया, सत्यार्थ से सत्यासत्य खोल दिखाया।
बतलाया यह भी हुकूमत बुरी बिगानी ।।७।।

आये जोधपुर महाराजा समझाया, राजा ने वेश्या को जभी ठुकराया।
शर्माया हुई दुष्कर्म से बड़ी ग्लानी ।।८।।

रण्डी ने रसोइया जगन्नाथ बहकाया।
"ताराचन्द्र" उस पापी ने जहर पिलाया।
छिपाया देश का भानु करी नादानी ।।९।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय एकता और ऋषि दयानन्द

—स्वामी वेदमुनि जी परिव्राजक
अध्यक्ष — वैदिक संस्थान, नजीबाबाद (उ०प्र०)

बात सन् १९६१ के जनवरी मास की है जबकि मुझे अधिकतर महर्षि दयानन्द की शिक्षा-स्थली मथुरा नगरी के विरजानन्द वैदिक साधन आश्रम में रहने का सुयोग प्राप्त हुआ। आश्रम से एक मील की दूरी पर मथुरा-वृन्दावन मार्ग पर भारत के सुप्रसिद्ध उद्योगपति बिरला परिवार द्वारा निर्मित "आर्य (हिन्दू) धर्म सेवा संघ" के संरक्षण में एक विशाल गीता मन्दिर है। सायंकाल भ्रमणार्थ जब जाना होता तो इसी मन्दिर में लगभग एक घण्टा बिताया करता। इस मन्दिर का जो मुख्य भाग है और जिसमें योगीराज श्री कृष्णचन्द्र की मूर्ति स्थापना की गई है, उसके पीछे की ओर पांच महापुरुषों के चित्र बने हैं, जिनमें एक चित्र महर्षि दयानन्द का भी है। चित्र पर लिखा है—"जागृति और एकता" इसका तात्पर्य यह है कि आपने जागृति और एकता के लिए कार्य किया।

चित्र के साथ एकता शब्द को पढ़ते ही ऋषि के एकता के लिए किए गये कार्य मस्तिष्क में क्रमशः एक के बाद एक आने लगे और एक बार महर्षि के प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास का वह प्रकरण नेत्रों के सम्मुख आकर स्थिर हो गया, जिसमें राष्ट्रीय गठन के लिए ग्राम सभाओं से लेकर महाराज सभा तक का वर्णन किया गया है। प्रकरण क्या है? किसी राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ तथा चिरस्थायी बनाने का वास्तविक सूत्र है।

१. महर्षि लिखते हैं कि "एक-एक ग्राम में एक-एक प्रधान पुरुष को रखे, उन्हीं दस ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं बीस ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा और उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पांचवां पुरुष रखे।"

इस प्रकार के संगठनों को जिनके अध्यक्ष यह प्रधान पुरुष होंगे, महर्षि ने "राज सभा" की संज्ञा प्रदान की है। अर्थात् यह ग्राम सभा वह हुई, जो ग्राम पर राज्य करे, ग्राम का शासन चलाये। किन्तु इन ग्राम-सभाओं की सत्ता को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नहीं रखा अपितु दश ग्रामों के ऊपर भी एक प्रधान पुरुष का विधान किया जो उन दशों ग्रामों के प्रतिनिधियों की बनी "राज सभा" का अध्यक्ष होगा। उससे आगे इसी प्रकार बीस ग्रामों की, सौ ग्रामों की तथा सहस्र, दश सहस्र, लक्ष ग्रामों आदि की राज-सभाओं का भी वर्णन किया है तथा सब से अन्त में वर्णन किया है महाराज सभा का।

राष्ट्र की छोटी से छोटी इकाई अर्थात् प्रत्येक ग्राम से लेकर ऊपर तक सब को एक सूत्र में बांधने का इतना सुन्दर विधान है कि जिसमें प्रत्येक ग्राम को अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार स्व-शासन चलाते हुए भी ऊपर के संगठनों के अन्तर्गत रहने से राष्ट्रीय हित में किसी भी प्रकार की बाधा पहुँचने की सम्भावना नहीं रहती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सारी राज सभाओं की जो शिरोमणि अर्थात् सब से ऊपर की सभा होगी, वह वही होगी, जिसे हम वर्तमान में "लोक-सभा" कहते हैं और उसका प्रधान पुरुष होगा "लोक सभाध्यक्ष" "लोक सभा" और "लोक सभाध्यक्ष तक" ही महर्षि ने विचार किया हो सो बात भी नहीं वह तो आगे तक गये और इससे आगे उन्होंने जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर आये हैं, "महाराज सभा" का भी निर्देश किया है, जिसे आज कल की परिभाषा में "राज्य सभा" कहा जाता है और जिसका कार्य लोक सभा द्वारा पारित विधेयकों पर विचार करना होता है। इस "महाराज सभा" में विचार के पश्चात् ही विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए जाते हैं। इस सभा का अध्यक्ष उपराष्ट्रपति होता है।

अन्तिम राज्यसभा अर्थात् लोकसभा तथा महाराज सभा तो वर्तमान काल में भी हैं, जैसा कि महर्षि मनु और महर्षि दयानन्द ने विचार प्रस्तुत किए हैं किन्तु इनसे नीचे की स्थिति सर्वथा विपरीत है। आजकल राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता के पश्चात् जो इकाइयां हैं, उन्हें राज्य नाम दिया गया है, जिसका परिणाम हमारे सामने राज्य स्तर पर होने वाले झगड़ों के रूप में आने लगा है। और ये झगड़े हैं अधिकतर सीमा सम्बन्धी बिहार, और बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश तथा मैसूर और महाराष्ट्र आदि के। पंजाब को पंजाबी भाषी प्रदेश कहकर खालिस्तान अथवा सिखीस्तान बनाने के लिए तथा बंगाल में गोरखालैण्ड बनाने के आन्दोलन भी इसी के परिणामस्वरूप प्रारम्भ हुए हैं। कारण पर यदि गम्भीरता पूर्वक निष्पक्षरूपेण विचार करें तो इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि वह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण दिन था, जब भारत के प्रान्तों को राज्य तथा भारत को भारतीय संघ नाम दिया गया।

उपरोक्त नामकरण यह स्पष्ट करने को पर्याप्त है कि भारत एक राष्ट्र नहीं अपितु अनेक राज्यों का मिलकर बनाया हुआ संगठन है जिसे "संयुक्त राज्य" भी कहा जा सकता है। दुर्भाग्य से जिन लोगों के हाथों में राष्ट्र की बाग-डोर है, उन्होंने इस विषय में अमेरिका का अन्धानुकरण किया है। अन्धानुकरण हम इसलिए कहते हैं कि यदि थोड़ा भी बुद्धि का उपयोग किया जाता तो बात बड़ी स्पष्ट है. कि अमेरिका कोई स्वतन्त्र राष्ट्र नहीं अपितु अनेक राष्ट्रों का समूह है इसलिए उसका नाम 'अमेरिकन-यूनियन' ठीक ही है। भारत की स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। भारत अनेक राष्ट्रों का समूह नहीं अपितु एक राष्ट्र है। उत्तर प्रदेश, बिहार आदि उसके प्रबन्ध और व्यवस्था की दृष्टि से बनाये गये प्रान्त हैं, राज्य नहीं, जब राज्य नाम दिये अधिक समय नहीं व्यतीत हुआ था तभी सीमा सम्बन्धी झगड़े आरम्भ हो गये थे। जिन-जिन प्रान्तों में यह झगड़े हो रहे हैं उनमें से प्रत्येक प्रान्त की जनता दूसरे प्रान्त को विदेश तथा वहां के निवासियों को विदेशी समझने लगी है। अधिक समय बीतने पर जो परिणाम हो सकते हैं उपर्युक्त झगड़ों को दृष्टिगत रखते हुए उनका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यह असम्भव नहीं कि कुछ समय पश्चात् यह प्रश्न उग्र हो उठे कि प्रत्येक राज्य की स्वतन्त्र सत्ता है, परिस्थितियों वश उस समय एक संघ के रूप में एकत्र हुए थे किन्तु अब पृथक् होना चाहते हैं। पहले तो सीमायी झगड़े थे और अब विघटन की प्रवृत्ति प्रबल हो चुकी है, जिसका प्रमाण खालिस्तान की मांग और उसके लिए विद्रोह है।

इस प्रान्तीयता के नाम पर होने वाले झगड़ों तथा उनसे होने वाली भयंकर हानियों से बचाने व भावी विघटन की विनाशकारी प्रवृत्ति को रोकने का एकमात्र उपाय है स्वामी दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुसरण और वह यह कि समस्त प्रान्तों को जिन्हें राज्य का नाम दे रखा है समाप्त कर दिया जाये। इससे प्रथम लाभ तो यह होगा, कि प्रत्येक प्रान्तीय सरकार पर होने वाला व्यय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच जायेगा तथा दूसरा यह कि प्रान्तीयता की भावना मिटकर केवल मात्र एक भावना राष्ट्रीयता की रह जायेगी ।

इस समय कोई बिहारी है तो कोई बंगाली, कोई पंजाबी है तो कोई मद्रासी और कोई महाराष्ट्रीय है तो कोई गुजराती । भारतीय कोई दृष्टिगोचर नहीं होता । इन प्रान्तों के समाप्त होने पर न कोई बिहारी होगा न बंगाली, न पंजाबी होगा, न मद्रासी, न महाराष्ट्रीय होगा न गुजराती अपितु केवल भारतीय होंगे । वही संघीयता का वास्तविक रूप होगा, संघ नाम देने से नहीं । नाम के मूल में तो विघटन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने वाला मन्त्र निहित है ।

आवश्यकता इस बात की है कि भारत का पुनर्गठन किया जाये जिलों और उनसे निचले स्तर के गठन को तो छुआ न जाए अर्थात् उन्हें तो ज्यों का त्यों रखा जाए । जिलों से ऊपर प्रति दश जिलों को मिला कर एक क्षेत्र या कमिश्नरी बनाई जाए, जिसका अधिकारी क्षेत्राधिकारी या कमिश्नर रहे । सारे भारत को पांच भागों में व्यवस्था की दृष्टि से विभक्त किया जाये और इन भागों के नाम भाषा तथा जातीयता नहीं अपितु दिशाओं के नाम पर उत्तरी भारत, दक्षिणी भारत, पूर्वी भारत, पश्चिमी भारत तथा मध्य भारत रखे जाएं । इनमें से प्रत्येक भाग का अधिकारी प्रधान क्षेत्राधिकारी अथवा चीफ कमिश्नर हो । इन सभी चीफ कमिश्नरों का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय सरकार से हो । इस प्रकार सारा राष्ट्र व्यवस्थित-रूपेण एक सूत्र में, एक ही राष्ट्रीय सरकार द्वारा शासित होगा ।

२. दूसरा सूत्र राष्ट्रीय एकता के लिए ऋषि दयानन्द से जो हमें प्राप्त हुआ है, वह है भाषायी । भारत मां के उस सच्चे सपूत ने एक शताब्दी पूर्व ही यह जान लिया था कि किसी राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ करने के लिए भाषायी एकता परमावश्यक है । यही कारण है कि जन्म के गुजराती तथा संस्कृत के महान् पण्डित होते हुए भी उन्होंने अपने भाषणों का माध्यम हिन्दी भाषा को बनाया तथा अपने समस्त ग्रन्थ भी वेदाङ्ग प्रकाश (संस्कृत व्याकरण) को छोड़कर देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी भाषा में ही लिखे । यदि वह चाहते तो भाषण के माध्यम स्वरूप संस्कृत का प्रयोग कर सकते थे तथा लेखन के लिए संस्कृत वा गुजराती भाषा का । परन्तु महर्षि यह भलीभांति जानते थे कि एक तो हिन्दी भारत में सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली तथा लिखी जाती है । दूसरे हिन्दी की लिपि तथा वर्णमाला पूर्ण तथा वैज्ञानिक है ।

यद्यपि भारत के संविधान में भारत की चौदह भाषाएं स्वीकृत हैं तथापि भारत का हित इसी में है कि संविधान द्वारा स्वीकृत इन सभी भाषाओं की एक लिपि देवनागरी हो । इसमें भाषायी उन्माद का मूलोच्छेदन होगा, भारत के प्रत्येक क्षेत्र की जनता एक दूसरे को समझेगी तथा पारस्परिक निकटता की स्थापना हो सकेगी ।

आर्यसमाज का जो सदैव से राष्ट्रहित के कार्यों में अग्रणी रहा है यह अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है, कि वह एतद्विषयक प्रचार में पूरी शक्ति के साथ जुट जाये, जिससे जनमत जागृत हो । एक समय था जब विदेशी साम्राज्य भारत पर छाया था, तब आर्यसमाज ने निःस्वार्थ भाव से राष्ट्रीय जागरण के कार्यों में बढ़-चढ़ कर भाग लिया । यदि यह कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति न होगी कि आर्यसमाज की सारी शक्ति स्वाधीनता के मन्त्र का प्रचार करने में लगी हुई थी । यह एक ऐसा सत्य है कि जिसे भारतीय नेताओं ने ही नहीं अपितु भारत से बाहर के विदेशी विद्वानों तथा स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य ने भी स्वीकार किया ।

अच्छा हो कि स्वामी दयानन्द के इन दोनों सूत्रों के प्रचार में आर्यजन दृढ़तापूर्वक जुट जाएं तथा ऋषिवर दयानन्द के बोध-दिवस शिवरात्रि के महान् पर्व को अपने लिए जैसा कि इसे नाम दिया गया है । "बोध-रात्रि" ही समझें और उस दिन को, जब तक उपर्युक्त कार्यक्रम पूर्ण न हो जाए संकल्प दिवस के रूप में मनाया करें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल

—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेदसदन अबोहर-१५२११६

□ ★ □

वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल
जड़ से जड़ता हिलाई।
ईश्वर पूजा सिखलाई॥
तोले ग्रन्थों के बोल, वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल
ईश्वर अजर अजन्मा।
उसकी कोई न प्रतिमा॥
खोली दम्भियों की पोल, वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल
बिस्मिल रोशन बलिदानी।
स्वामी श्रद्धानन्द नामी॥
दिल्ली उनकी जय बोल, वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल
गोरे शासक घबराए।
लण्डन वाले थर्राए॥
डोले आसन अडोल, वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल
मारो छाती पै गोली।
भर दूं माँ की मैं झोली॥
अड़ गये सीने को खोल, वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल
तेरे अद्भुत दीवाने।
सारी जगती यह जाने॥
पा गये जीवन का मोल, वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल
सुध-बुध गुरुदत्त बिसराई।
तर गई उसकी तरुणाई॥
घुट्टी दे दी क्या घोल, वेदों वाले स्वामी तेरी वाणी अनमोल

कभी पंजाब में एक भजन बेदां **वालिया ऋषिया तेरे आवन दी लोड़'** बहुत झूम-झूमकर गाया गाया जाता था। इस भजन की इस पंक्ति पर विद्वानों को चाहे कुछ आपत्ति भी थी परन्तु शेष भजन बड़ा रसपूर्ण था। उसी की तर्ज पर मैंने यह गीत रचा है। इसके भाव आर्यों को प्रेरित करेंगे। **'जिज्ञासु'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य द्रष्टा ऋषि दयानन्द

—अरुण कुमार विदर्भीय
कार्यकारी आचार्य, उपदेशक महाविद्यालय टंकारा

संसार का प्रत्येक स्वाभाविक अथवा अस्वाभाविक कार्य किसी विशेष रहस्य अथवा तत्त्व का प्रकाशक होता है। परन्तु सभी मनुष्य उसे नहीं जान सकते, अथवा यों कहिए कि सभी जानने के योग्य नहीं होते, संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उनमें कुछ न कुछ असाधारण गुण हुआ करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे अपने आप को इस योग्य बनाया करते हैं कि वे संसार के असाधारण मानव प्रमाण से कुछ उच्च उठ जाएं लेकिन साथ ही उनके अन्दर ऐसी दैवी प्रतिभा हुआ करती है जो जनसाधारण में नहीं पाई जाती। उस दैवी प्रतिभा के ही कारण वह इस मानव गण में एक जाज्वल्यमान सितारे के रूप में एक साथ जगमगा जाते हैं और कभी-कभी उस प्रतिभा की एक राशि किसी विशेष अघटित घटना के रूप में न केवल उनकी जीवनधारा को ही परिवर्तित कर देती है किन्तु इस विश्व के विशाल प्रांगण में एक ऐसा दृश्य उपस्थित कर देती है कि जो मानव समाज की विचारधारा को ही परिवर्तित करके विश्व इतिहास की एक अमर वस्तु बन जाती है।

...कौन जानता था कि एक वृद्ध रोगी और मरने वाला मनुष्य अपने मूक उपदेश से गौतम को अमर बुद्ध बना देगा ? कौन जानता था कि कलिंग के युद्ध में अनेक हताहतों को देख कर एक नृशंस अत्याचारी राजा अशोक संसार प्रसिद्ध धर्म प्रिय प्रियदर्शी बन जायेगा ? कौन जानता था कि मकड़ी के जाले वृक्ष की टहनियों के बीच में देखकर होवार्ट के मस्तिष्क में नदियों और समुद्रों के ऊपर पुल बनाने का विचार उत्पन्न होगा ? कौन जानता था कि आग पर चढ़ी हुई बटलोई के ढक्कन को हिलता हुआ देख कर जेम्स वाट वाष्प शक्ति का महान् आविष्कार कर सकेगा जो आज संसार के समस्त रेल, जहाज और मशीनों का संचालन कर रहा है ? कौन जानता था कि एक उड़ती हुई पतंग को देख कर विद्युत शक्ति का आविष्कार फ्रेंकलिन के मस्तिष्क की उपज बनेगा, इंग्लैण्ड के सभी फलों के बागों में फल पकने के बाद हमेशा से ही पृथ्वी पर टपकते हैं, सभी लोग उन्हें देखते भी रहे हैं परन्तु न्यूटन से पहले किसी ने भी यह नहीं सोचा कि इस प्रकार उनके जमीन पर ही गिरने का क्या कारण है ? इसी प्रकार सदा ही पूजन आदि के समय अनेक बार मूर्तियों पर भाग दौड़ मचाने वाले मोटे-मोटे चूहों को देखते हुए भी किसी मूर्ति-पूजक के हृदय में वह उथल-पुथल और विचार नहीं उत्पन्न हुआ, जो बालक मूलशंकर के मन में आज से १५० वर्ष पूर्व शिव पूजन के समय हुआ था। किसने सोचा था कि शिवलिंग पर चढ़ते हुए एक छोटे से चूहे को देखकर मूलशंकर के मस्तिष्क में एक ऐसा विचार विप्लव उठेगा जो उसे संसार का महान् सुधारक ऋषि दयानन्द बनाकर रहेगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सब घटनाएं बहुत साधारण थीं, जो प्रतिदिन प्रत्येक मनुष्य के सामने घटती रहती हैं लेकिन सभी उनको ग्रहण नहीं कर सकते, लेकिन दिव्य आत्माओं के सम्मुख जब वही घटनाएं उपस्थित होती हैं तो वे महान् परिवर्तन उपस्थित कर जाती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे शब्दों की लहरें समस्त आकाश में सब काल में सर्वत्र समान रूप से वर्तमान रहती हैं लेकिन सभी मनुष्य उनको नहीं सुन सकते, जिनके पास शब्दग्राहक रेडियो होता है वही उनको सुन सकते हैं।

…महामुनि यास्काचार्य ने 'ऋषि' शब्द की व्याख्या करते हुए निरुक्त में लिखा है कि 'ऋषिः दर्शनात्' "क्रान्तदर्शनो भवति" अर्थात् ऋषि वह है जो कि अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों को भी देखता है। यूं तो छोटे से छोटे जन्तु से लेकर मनुष्य तक सब ही प्राणी देखते हैं क्योंकि देखना चक्षु का धर्म है तो भी देखने में ऋषि की विशेषता यह है कि उसकी दृष्टि सामान्य मनुष्यों की दृष्टि की अपेक्षा बहुत व्यापक होती है। सामान्य मनुष्य तो कार्य को देखकर कारण का अनुमान करते हैं परन्तु ऋषि वह है जो कारण को ही देखकर भविष्य में होने वाले कार्य का अनुमान कर साधारण लोगों को आने वाले महान् कष्टों से सचेत कर सच्चे मार्ग का संदर्शन कराता है। जो महामानव इस कार्य को जितना ही सूक्ष्म दृष्टि से देखता है वह उतना ही महान् ऋषि कहलाने का अधिकारी होता है।

उन्नीसवीं सदी में स्वामी दयानन्द जी महाराज भी ऐसे ही ऋषि हो गए हैं। उनकी दृष्टि इतनी विशाल थी कि वे अब से ११४ वर्ष पूर्व ही आने वाली विपत्तियों की ओर संकेत कर उनके समाधान का अपूर्व साधन अपने लेखों एवं उपदेशों में वर्णन कर चुके हैं। वे आने वाली विपत्तियां अक्षरशः सत्य हुईं पर संसार ने उनकी वाणी की उस समय उपेक्षा की पर समय पड़ने पर इधर-उधर हाथ मारने आरम्भ किये और महाकवि तुलसीदास की यह उक्ति चरितार्थ हुई "का वर्षा जब कृषि सुखाने।"

यदि संसार ने ऋषि दयानन्द की बात को स्वीकार किया होता तो आजकल की प्रायः सभी राजनैतिक तथा सामाजिक विपत्तियां जो कि आज भारत के बड़े से बड़े नेता को विक्षुब्ध किए हुए हैं, आने से पहले ही टल जातीं।

… ऋषि दयानन्द ने सब से पूर्व यह अनुभव किया था कि भारत की अनेक आपदाओं का मूल कारण पराधीनता है और वे ही सबसे पहले महापुरुष थे, जिन्होंने इन पराधीनता की बेड़ियों को काट डालने का प्रयास किया था। स्वराज्य शब्द की व्याख्या जो ऋषि महाराज ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में की है, वह शताब्दी के बीत जाने पर भी अक्षुण्ण रूप से स्थिर है और कोई भी नेता उससे आगे नहीं बढ़ सका। ऋषि दयानन्द जी का स्वराज्य हुल्लड़बाजी, हिंसा तथा घृणा पर आधारित नहीं है। उनके अनुसार स्वराज्य का महल प्रेम, दया, ब्रह्मचर्य तथा सामाजिक सुधारों की सबल सीढ़ियों के ऊपर चुना हुआ है। जब तक भारतीय या अन्य किसी देश के वासी अपने सामाजिक दुर्गुणों का परित्याग कर सदाचारी नहीं होते उनके लिए स्वतन्त्रता या उससे उत्पन्न होने वाली सुख समृद्धि केवल स्वप्न समान ही है। आज हमें स्वराज्य तो प्राप्त है परन्तु हम स्वतन्त्र नहीं हैं। जकड़े हैं हम पाश्चात्य संस्कृति के फन्दे में, एवं सामाजिक दुर्गुणों के जाल में। बाल, विवाह, वृद्ध-विवाह, मूर्तिपूजा, सती-प्रथा आदि ऐसी बहुत सी कुरीतियों की ओर ऋषि ने संकेत किया था। परन्तु उस समय उनकी उपेक्षा की गई और अब भी की जा रही है। सम्प्रति बुद्धिजीवी अनुभव कर रहे हैं कि इन दुर्गुणों के रहते हुए स्वतन्त्रता के स्वप्न देखना मृग-तृष्णा से कम नहीं है।

…ऋषि दयानन्द ने यह भी अनुभव किया था कि देश को स्वाधीनता के लिए यहां की जातियों में परस्पर मैत्रीभाव होना अत्यन्त आवश्यक है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विशेषकर हिन्दू मुस्लिम एकता तो होनी ही चाहिए। ऋषि दयानन्द ने इस बात के लिए सबसे पहले प्रयत्न किया था। लार्ड लिटन के समय जब दिल्ली में महारानी विक्टोरिया का दरबार हुआ था उस समय ऋषि दयानन्द ने दिल्ली में ही एकता सम्मेलन का आयोजन किया था। इस सम्मेलन में बंगाल के श्री केशवचन्द्र सेन, बम्बई के गोपालराव हरि देशमुख, मुसलमानों के एकमात्र नेता सैय्यद अहमद तथा अन्य बहुत से महानुभाव सम्मिलित हुए थे। यह वह समय था जब कि किसी को यह बात सूझी भी नहीं थी कि देश की उन्नति के लिए हिन्दू मुस्लिम एकता होनी आवश्यक है। ऋषि दयानन्द ने उस समय ही सर सैय्यद अहमद के व्यवहार से अनुभव कर लिया कि जिस समय तक मुसलमानों के हृदय में भारतवर्ष के लिए प्रेम और भारतीय सभ्यता के लिए सहानुभूति तथा भारत के दुःख में दुःख तथा सुख में सुख की भावना उत्पन्न नहीं होती उस समय तक हिन्दू-मुस्लिम एकता केवल विडम्बना है। यही कारण था कि वह सर्वप्रथम एकता सम्मेलन असफल रहा। इसके अनन्तर ऋषि दयानन्द ने शुद्धि के आन्दोलन को उठाया और शुद्धि के द्वारा मुसलमानों में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का प्रचार करने का उद्योग किया। इसी कार्य को स्वामी दयानन्द के पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द व पं० लेखराम आदि ने आगे चलाया और सम्प्रति आर्यसमाज भी इस ओर अपनी दृष्टि रखे हुए है। अब भी भारत में ऐसे नेता विद्यमान हैं जो एकता सम्मेलनों में विश्वास रखते हैं और सोचते हैं कि मुसलमान अरब भूमि से प्रेम रखते हुए तथा अरबी सभ्यता के गीत गाते हुए और यह कहते हुए "मेरे मौला मदीना बुला ले मुझे" भारत की रक्षा के लिए बलिदान करने में उद्यत हो सकते हैं। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक तथा महात्मा गांधी ने मुसलमानों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाने के लिए हिन्दू हितों को ठुकराते हुए ब्लैंक चैक्स देने का विचार प्रदर्शित किया था, परन्तु हिन्दू-मुस्लिम समस्या सुलझने के स्थान में दिन प्रतिदिन उलझती ही गई। इन सब दृश्यों को देखकर अधिकांश राष्ट्रीय नेता यह मानने लगे हैं कि इस समस्या का समाधान एकता सम्मेलनों से नहीं हृदय के परिवर्तन हुआ करते हैं।

...तीसरी समस्या अछूत कही जाने वाली जातियों की है। अब से १०९ वर्ष पहले ऋषि दयानन्द ने बतलाया था। अछूतपन पाप है, 'मनुष्य मात्र जन्म से एक हैं और उनके गुणों से ही छुटाई बड़ाई हो सकती है, किसी को अछूत कहना उसके साथ बड़ा अत्याचार है। अछूत कही जाने वाली जातियां हिन्दू जाति का अंग हैं। ऋषि दयानन्द ने कहा था कि इस अछूतपन को दूर करो नहीं तो हिन्दू जाति का यह प्रधान अंग-भंग हो जायेगा। ऋषि की यह आवाज बहरे कानों के ऊपर पड़ी। हिन्दुओं ने उपेक्षा वृत्ति से काम लिया। उसका परिणाम आज हमारे सामने है। हजारों हरिजनों का सामूहिक धर्मान्तरण हो रहा है। ऋषि दयानन्द की बात पर ध्यान न दिया तो इससे जो हानि होगी उसकी तो कल्पना भी अत्यन्त भयंकर है,—सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में ब्रह्म समाज तथा प्रार्थना समाज का खण्डन करते हुए ऋषि लिखते हैं—'इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं। खानपान विवाह आदि का नियम भी बदल दिया है। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही उसकी पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा करते हैं, तथा एक ओर ऐसे स्थान में लिखते हैं कि, देखो! अपने देश के बने हुए जूतों को आफिस और कचहरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं, इतने ही में समझ लो कि अपने देश के बने जूतों का वे कितना मान करते हैं। इत्यादि बहुत से ऐसे वाक्य हैं जो ऋषि दयानन्द के स्वदेश प्रेम, स्वदेश ममता तथा संस्कृति के उज्ज्वलतम प्रमाण हैं। वस्तुतः देश के इतिहास से, सभ्यता से, संस्कृति से, वेषभूषा से तथा भाषा से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम ही देश प्रेम है। जो कि ऋषि दयानन्द के हृदय में कूट-कूट कर भरा हुआ था। आज के नेता केवल स्वदेशी वस्त्र धारण को ही स्वराज्य का मूल समसमझते हैं, चाहे उनकी भाषा विदेशी हो, भाव विदेशी हों, पहरावा विदेशी हो और यहां तक कि सभ्यता भी विदेशी हो। कपड़ा खद्दर का हो चाहे सिलाई में पतलून ही क्यों न हो और चाहे टोप ही हो पर खद्दर का हो, इनकी देशभक्ति पूरी हो जाती है।

...दूसरों के एक भी मिल के तार को घृणा से देखने वाले अपनी मोटर को प्रेम करते हैं। ऋषि दयानन्द इस भावना के विरुद्ध थे और शुद्ध स्वदेशीय भाव, वेशभूषा और सभ्यता के अभिमानी थे। ऋषि दयानन्द भारतीय प्राचीन सभ्यता के पुजारी थे और उसे ही वे भारत के उत्थान का कारण समझते थे। जिस समय तक भारत के माननीय नेताओं में इस भावना का उदय नहीं होता उस समय तक भारत के सुदिन बहुत दूर हैं।... समय आयेगा जब लोग ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व को समझेंगे और यह जानेंगे कि ऋषि दयानन्द ने नव भारत के निर्माण में किस प्रकार अपने जीवन को स्वाहा किया है। वस्तुतः इतिहास ही इस बात का साक्षी होगा। सम्भवतः नव भारत के अभ्युत्थान मन्दिर में लोग अपने प्रमाद से ऋषि दयानन्द का नाम न लिखें पर ऋषि दयानन्द उस मन्दिर के वह सुदृढ़ नींव है जिसके ऊपर कि वह मन्दिर सुन्दर रूप में स्थित होगा और अपनी परिचर्या से सारे भूमण्डल को सुख और शान्ति का उपदेश देगा। किन्तु यह सब तब होगा जब भारत ऋषि दयानन्द की दिव्य दृष्टि को अनुभव करेगा।

आर्यो ! शिवरात्रि के सन्देश को न भूलो

यह मैं आर्यसमाजियों से नहीं कह रहा आर्यों से कह रहा हूं। स्वर्गीय श्री पं० इन्द्र जी वेद वाचस्पति ने एक बार कहा था—"आर्य बनो, आर्यसमाजी न बनो।" वह दूरद्रष्टा थे इसलिए देख सकते थे कि आर्यसमाज की क्या दशा हो रही है। यह उनके समय में ही प्रारम्भ हो गई थी। इसलिए वह देख सकते थे कि आर्यसमाज किधर जा रहा है, यदि आज वह जीवित होते और देखते किस प्रकार आर्यसमाज के नेता आर्यसमाज को एक ऐसे मार्ग पर ले जा रहे हैं जो धीरे-धीरे इसके अस्तित्व को ही समाप्त कर देगा तो वह कह देते कि मैंने तो पहले ही कहा था कि आर्य बनो आर्यसमाजी न बनो।

आर्य बनने के लिए आर्यसमाजी बनना आवश्यक नहीं है परन्तु आर्यसमाजी बनने के लिए आर्य बनना आवश्यक है। जो आर्य नहीं है वह आर्यसमाजी भी नहीं हो सकता। जब पण्डित इन्द्र जी ने यह कहा था कि आर्य बनो आर्यसमाजी न बनों तो वह भी शायद यही समझते थे कि यदि आर्यसमाज के सभी सदस्य आर्य बन जाएं तो संभव है आर्यसमाज का सुधार हो जाये और अब हम जब आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का बोध उत्सव मनाने जा रहे हैं तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम यह समझने का प्रयास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें कि वह किस प्रकार का आर्यसमाज बनाना चाहते थे। यदि हम आज से ५० वर्ष पीछे चले जाएं और उस समय के आर्यसमाजियों को देखें, विशेषकर उस समय के आर्यसमाजी नेताओं को, तो हमें पता चल जायेगा कि हमारा कितना पतन हुआ। आज हमारे पास कोई स्वामी श्रद्धानन्द नहीं है। कोई महात्मा हंसराज भी नहीं है। कोई स्वामी सर्वदानन्द नहीं है। कोई महात्मा नारायण स्वामी नहीं है। कोई आचार्य रामदेव नहीं है। कोई पं० चमूपति नहीं है। चारों तरफ देखा जाये तो निराशा ही निराशा दिखाई देती है। इसका यह अर्थ भी नहीं कि आज आर्यसमाज में योग्य, कर्मठ और त्यागी व्यक्ति नहीं हैं। आज भी आप को ऐसे आर्यसमाजी जगह-जगह मिल जायेंगे। परन्तु हर जगह उन्हें पीछे धकेलने की कोशिश हो रही है और आगे वह लोग आ रहे हैं जिनमें न योग्यता है न जनता पर उनका कोई प्रभाव है। यदि कोई व्यक्ति परिश्रम करके आगे आ भी जाता है तो किसी न किसी ढंग से उसे पीछे धकेल दिया जाता है यह एक पुरानी कहावत प्रसिद्ध है कि—नकली सिक्का हमेशा असली सिक्के को बाहर निकाल देता है और स्वयं चलने लगता है, आर्यसमाज में नकली सिक्कों का बोलबाला है। यही कारण है कि आर्यसमाज की वह प्रतिष्ठा नहीं रही जो पहले थी। इसलिए शिवरात्रि के दिन जब हम अपने उस महान् नेता को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए इकट्ठे होंगे तो सब से पहला काम जो हमें करना चाहिए वह यह कि हम अपने अन्तःकरण से यह प्रश्न करें कि क्या हम उस कर्त्तव्य को पूरा कर रहे हैं जो महर्षि ने हमारे ऊपर डाला था। देश की वर्तमान परिस्थितियों में आर्यसमाज पर बहुत बड़ा दायित्व है। आज चारों ओर से ऐसे तत्त्व सिर उठा रहे हैं जो देश की एकता और राष्ट्रीयता को कमजोर करना चाहते हैं, उनका सबसे अधिक आक्रमण आर्यसमाज पर होता है कई आर्य भाइयों और बहनों ने दूरदर्शन पर तमस नाम का एक धारावाहिक नाटक देखा होगा जो कुछ समय से दिखाया जा रहा है। इसमें भी यह बताने का प्रयास किया जा रहा है कि १९४७ में जो कुछ हुआ था उसके लिए बहुत कुछ आर्यसमाज जिम्मेदार था। जबकि वास्तविक स्थिति यह थी कि जो कुछ उस समय हुआ था वह मुस्लिम लीग ने करवाया था। आर्यसमाज ने उसके षड्यन्त्र के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई थी। उस का श्रेय आर्यसमाज को मिलना चाहिए था वह तो नहीं मिला परन्तु जो कुछ हुआ उसकी जिम्मेदारी आर्यसमाज पर डाली जा रही है। आवश्यकता इस बात की थी कि हमारे देश का आर्यसमाज इसके विरुद्ध आन्दोलन करता। आज कई स्थानों पर भारतीय जनता पार्टी या राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वालों ने तो प्रदर्शन किए हैं परन्तु आर्यसमाज की ओर से दो चार स्थानों पर ही प्रदर्शन हुआ और इस विषय में भी नेतृत्व की ओर से लोगों को नहीं बताया गया कि उन्हें क्या करना चाहिए।

कहने को तो बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन सुनने वाला कौन है। अब आर्यसमाज में हीं कई दरबारी पैदा हो गए हैं। जिस संस्था में ऐस व्यक्ति आगे आ जाएं वह संस्था फिर आगे नहीं बढ़ सकती। इसीलिए सम्भवतः पण्डित इन्द्र जी ने कहा था कि आर्य बनो, आर्यसमाजी न बनो लेकिन आर्यसमाज हमारे पास महर्षि दयानन्द की एक धरोहर है। इसकी स्थापना वह कर गये थे। इस-लिए भी आवश्यक है कि इसे बचाने के लिए हम जो कुछ भी कर सकते हैं हमें करना चाहिए। शिवरात्रि पर्व पर हमें यह संकल्प करना चाहिए कि आर्यसमाज की पवित्रता की सुरक्षा के लिए हम से जो कुछ भी हो सकेगा हम करेंगे। उस के लिए यदि हमें बड़े से बड़ा त्याग करना पड़े तो वह भी हम करेंगे। आर्यसमाज किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं है। इसे बनाने के लिए शहीदों ने अपना खून दिया। बड़े-बड़े संन्यासियों ने तप, त्याग और अपना बलिदान दिया। तब कहीं जाकर यह इतनी बड़ी संस्था बनी है यदि अब किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण से विघटन का शिकार हो जाती है या कुछ लोगों के स्वार्थ के कारण यह बदनाम हो जाती है या कमजोर हो जाती है तो इतिहास आर्यसमाजियों को कभी क्षमा नहीं करेगा। जो कुछ बिहार में हुआ। उत्तर प्रदेश में हुआ, देहली में हुआ और अब पंजाब में हुआ इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्यसमाज किधर जा रहा है। इसकी लोकतान्त्रिक परम्पराओं को समाप्त करके इसमें तानाशाही का युग प्रारम्भ हो रहा है। यदि इसे न रोका गया तो कहना कठिन है कि अन्त में इसका क्या रूप बनेगा। शिवरात्रि के पावन पर्व पर हम सब ने अपने इस महान् गुरु आचार्य और नेता के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करनी है। वह इस से बढ़कर और कोई नहीं हो सकती कि हम यह संकल्प करें कि जिस प्रकार का आर्यसमाज महर्षि बनाना चाहते थे, जिस आर्यसमाज के लिए स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज जैसे त्यागी तपस्वी नेताओं ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। आर्यसमाज के उस स्वरूप को किसी भी स्थिति में बदलने नहीं दिया जाएगा। यह पहले के समान ही गंगा की तरह पवित्र और पावन संस्था रहेगी। इसे किसी प्रकार के भ्रष्टाचार से प्रदूषित नहीं होने दिया जाएगा। यही एक सन्देश है जो हम ने घर-घर पहुँचाना है।

—वीरेन्द्र
(प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब)

ऋषि-बोध पर्व और हमारा दायित्व

—आचार्य वेदव्रत अवस्थी, लखनऊ

वर्तमान परिस्थिति—

प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि के दिन हम ऋषि-बोध पर्व हर्षोल्लास से मनाते और ऋषि गुणगान करते हैं, विशाल शोभायात्राएं निकालकर संगठन का प्रदर्शन करते हैं, अगले वर्ष को और उल्लास से मनाने, ऋषि की कल्पना के अनुरूप भारत के निर्माण का संकल्प लेते हैं। परन्तु इस पर हम शायद चिन्तन नहीं कर पाते कि कौन सी ऐसी हमारी भूल है कि हम ऋषि की कल्पना का भारत नहीं बना पा रहे। निश्चय ही आज हर व्यक्ति संकुचित विचारधारा का परित्याग कर विकसित विचारों का पोषक अपने को प्रदर्शित करता है, बहुत सी पुरानी मान्यताएं ढह गयी हैं। हमें अब किसी का छुआ खाने में परहेज नहीं, किसी के साथ उठने बैठने में परहेज नहीं है। परन्तु इतने से छुआ-छूत, जाति-पांति का भेद मिट नहीं गया। विपरीत इसके आज जाति-पांति का भेद तो देश में आतंकमय वातावरण बना रहा है। आज नारी भी अशिक्षित नहीं है। शिक्षा का खूब प्रसार है परन्तु नारी का शोषण आज भी बन्द नहीं है। आज नारी हत्याएँ, नारी प्रताड़ना जितनी विकराल रूप में फैल रही है पहले ऐसा कभी नहीं रहा। आज विज्ञान भी चरमोत्कर्ष पर है, वैज्ञानिक प्रतिभाएँ खूब चमक रही हैं परन्तु विश्व में चारों ओर आज अशान्ति और भय का साम्राज्य फैल रहा है।

यह परिस्थितियां हमारे गम्भीर चिन्तन की अपेक्षा रखती हैं। महर्षि दयानन्द ने घोर अज्ञानान्धकार के युग में वेद-ज्ञान की ज्योति से जगत् को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित किया था। हम प्रकाशित पथ पर भी अपने को नहीं चला पा रहे। महर्षि दयानन्द ने आर्य को परिभाषा में सर्वतोदात्त चिन्तन को प्रमुखता दी है। आर्य का अर्थ ज्ञान और गमन-प्राप्ति) ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए सार्वभौम सुख शान्ति का संनियामक है। अतः हमारा दायित्व बनता है कि हम आर्य की मर्यादा की संस्थापना में अपने को समर्पित कर दें।

आज जिधर भी दृष्टि जाती है सभी ओर स्वार्थान्धता, पद लिप्सा, जातीय, दलीय, साम्प्रदायिक भेदभाव चरमसीमा पर पहुंच रहा है। देश विघटन के कगार पर खड़ा है। भाई भाई के खून का प्यासा हो रहा है। धर्म विघटनकारी स्वरूप लेता जा रहा है। राजनीति मंच के नेता देशसेवा, देश-रक्षा, देशसमृद्धि के नाम का कलेवर ओढ़ कर देश को संस्कृति, मर्यादा की संरक्षा के बदले अपने निज स्वाथ को चाहना में उसे नष्ट कर रहे हैं।

धर्म जो सुख शान्ति का मूल आधार है उसे साम्प्रदायिक स्वरूप देकर देश को धर्मनिरपेक्ष बनाने का नारा दे रहे हैं। ये नेता धर्म का अर्थ साम्प्रदायिकता, दकियानूसोपन रीति रिवाज और जड़ता मान बैठे हैं। स्वयं भी पारिवारिक कार्यों में इसी स्वरूप में उसका प्रयोग करके धार्मिक अनुष्ठान मान बैठते हैं।

महर्षि के महत्वपूर्ण कार्य—

महर्षि स्वामी दयानन्द ने महाशिवरात्रि की पावन वेला में सच्चे शिव के साक्षात्कार से अपने राष्ट्र को सुख समृद्धि से परिपूर्ण बनाने का व्रत लिया और उस व्रत की सम्पूर्ति हेतु न जाने कितनी कठिनाइयां, यातनाएं झेलीं, परन्तु जो उन्हें दिव्य-प्रकाश की किरण मिली उससे दिग्दिगन्त को प्रकाशित कर दिया। अपना आत्मोत्सर्ग करके भी देश को जड़ता, गुरुडम, पाखण्ड से उबारा था। उनके अन्तिम श्वास ने गुरुदत्त जैसे नास्तिक वैज्ञानिक को परम आस्तिक बना डाला था। अज्ञान तिमिर का नाश करके वेदज्ञान से सम्पूर्ण राष्ट्र को आप्लावित कर दिया। जिस वेदवाणी को विदेशी कुचक्रियों ने गडरियों के गीत कहकर अनादृत किया था उस वेदवाणी को विश्व का शाश्वत ज्ञान विज्ञान का केन्द्रबिन्दु प्रतिष्ठापित करके सम्पूर्ण विश्व में उसके अनुसन्धान की धारा प्रवाहित करा दी।

महर्षि ने जिस तप और साधना से सच्चे शिव के दर्शन किए, उस तप साधना के द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति के लिए शिव-साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त किया। मत्थाटेक जीवन को मानवतानाशक बताकर "क्या, क्यों और कैसे" की कसौटी पर (तर्क की तराजू पर तौलकर) सत्यासत्य ज्ञान का उद्बोधन दिया। एकमात्र परमपिता परमेश्वर पर आस्था लाने का निर्देशन दिया। निश्चय ही जो प्रभु का विश्वासी होता है उसे कुछ भी गलत करने से भय स्वतः ही होता है क्योंकि अपराध करने की स्वाभाविक प्रक्रिया परोक्ष में होती है। परमात्मा सर्वत्र, सदैव विद्यमान और मेरी कुटेवों को तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा है ऐसा भान होने से वह अपराध करने से भय खाता है और उनसे बचता है—इस चिन्तन की दिशा दी।

हमारा कर्तव्य—

आइये, इस पावन पर्व पर हम अपने अन्दर झांककर देखें क्या हम ऋषि की मर्यादाओं, ऋषि प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों के अनुरूप अपने को बना रहे हैं, उन्हें आत्मसात् कर रहे हैं। क्या हमारी प्रभु पर अटूट आस्था है क्या कहीं हम में परमात्मा-भक्ति का ढोंग तो नहीं चढ़ रहा। क्या हम में भी कहीं स्वार्थलिप्सा, पदलिप्सा, दलबन्दी की मनोभावना तो नहीं पनप रही। क्या कारण है कि हम देश को सुखी सम्पन्न बनाने का नारा लगाने के बाद भी उसे वैसा नहीं कर पा रहे, क्या कारण है 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष पूर्ण नहीं हो रहा। हम जब आत्मनिरीक्षण करेंगे तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन दोषों का मूल शायद हम में ही विद्यमान मिले। शायद हमारी प्रभुभक्ति की आस्था अस्थिर हो और उसी से स्वार्थ हम पर हावी हो जाता हो और हम आत्मोन्नति से वंचित होकर देश की अभ्युन्नति में बाधक बन रहे हों।

निश्चय ही हमारा यह आत्मनिरीक्षण का संकल्प हमें खरा सोना बनाएगा और हम अपने दोषों का परित्याग करके शुद्ध पवित्र जीवन जीकर परमात्मा पर अटूट आस्था लेकर उसकी इस सम्पूर्ण सृष्टि को सुखी समृद्ध बनाने में सहायक बनेंगे। स्वय सच्चे आर्य बनकर सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाने का हमारा संकल्प पूर्ण हो सकेगा।

□□□

शिवरात्रि आर्यों की

—रामकृष्ण आर्य "निशंक" एम०ए०
सी-३, गोविन्द नगर, कानपुर

शिवरात्रि आर्यों की बोधकारिणी बनी।
बोधकारिणी बनी॥

आदेश पिता का पाल बाल सुलभ चाव से।
शिवरात्रि व्रत लिया था बड़े श्रद्धा भाव से॥
शिव का स्वरूप तात ने बतलाया तात को।
जगाकर बिताया यत्न से था सारी रात को॥
निद्रा-निमग्न सब हुए जड़कारिणी घनी।
शिवरात्रि आर्यों की० ॥

उस बाल मूल को तभी अचरज दिखा था एक।
मूषक चढ़ावा खाने व आने लगे अनेक॥
सोचा यह कैसा कौतुकी शंकर महान् है।
रक्षा का नहीं कर रहा कोई निदान है॥
वह रात्रि मूल के लिए भवतारिणी बनी।
शिवरात्रि आर्यों० ॥

श्रद्धा समाप्त हो गई जड़मूर्ति से तभी।
पूछा जगा के तात से शंकाएं थीं सभी॥
पर हल नहीं मिला हृदय विचार भर लिया।
ढूंढूंगा अपने ईश को यह प्रण था कर लिया॥
तेरी दया हर भांति आर्योद्धारिणी बनी।
शिवरात्रि आर्यों० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोध दिवस है आया

—राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति,
मुसाफिरखाना, सुल्तानपुर (उ०प्र०)

卐 □ 卐

बिखराती नव रश्मि बोध की,
लायी है शिवरात्रि सुपावन।
जागृत ज्योति जगी है भरपूर-
बोध-रात्रि आयी मनभावन।
आज जगाने महिमण्डल को-
नव विहान हर्षाया।
बोध दिवस है आया।

दयानन्द जैसे ऋषिवर को-
जगा दिया था बोध दिवस ने।
पाखण्डों का ढहा दुर्ग था-
भारतमाता लगी बिहसने।
वेदों का झण्डा धरती पर-
पावन फिर लहराया।
बोध दिवस है आया।

आओ! हम सब करें प्रतिज्ञा,
मानवता का उद्धार करेंगे।
मानवता के हित में ही हम-
सदा जियेंगे तथा मरेंगे।
मानवता का है विजय ध्वज-
जन जन ने फहराया।
बोध दिवस है आया॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति के क्षेत्र में चार प्रमुख बाधाएं

—डा० गंगाप्रसाद विद्यार्थी,
एम०ए० पी-एच०डी० जबलपुर सिटी

समस्त हिन्दू (आर्य)समाज को सच्चा ईश्वर भक्त बनाना है तो चार बातों को हटाना प्राथमिक रूप से अनिवार्य है—

१. **मूर्तिपूजा** — समस्त जड़ पूजा को जड़ मूल से मिटाना होगा। जब तक जड़ पूजा किसी न किसी रूप में प्रश्रय पाती रहेगी, तब तक सच्ची ईश्वर भक्ति या प्रभु-प्रेम का अंकुर भी नहीं उगेगा। या तो प्रकृति को पूज लो, या फिर परमेश्वर को। गायत्री जप से सिद्धि मिलती है, यह भी एक प्रकार का अन्धविश्वास ही है। महर्षि दयानन्द ने कहीं अपने किसी भी ग्रन्थ में ऐसा एक बार भी नहीं लिखा है। गायत्री मन्त्र का मानस जप, अर्थ सहित ही करना चाहिए, 'तज्, जपस्, तद्, अर्थ-भावनम्' (योगदर्शन समाधिपाद १।२९)। इस स्तुति रूप जप से प्रभु में प्रीति उत्पन्न होगी, जिससे जीवन निर्मल बनेगा। इसके अतिरिक्त किसी भौतिक लाभ धन, पुत्र, समृद्धि इत्यादि की प्राप्ति या अन्य सिद्धि की कामना या आशा करना मूढ़ता ही होगी। आर्यसमाज में भी बहुत से लोग लोकैषणा के शिकार होकर लच्छेदार व मोहक भाषणों से अन्ध श्रद्धा ही उत्पन्न करते रहते हैं। लौकिक यश की कामना भी प्रभुभक्ति में बाधक ही है। जब तक कोई भी मूर्ति तुम्हारे मन में है, तब तलक निराकार, सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान् ईश्वर की भक्ति का उदय तुम्हारे मन में हो ही नहीं सकता। अपने मन को बहकाने और ईश्वर को झुठलाने से क्या लाभ ?

२. **अवतारवाद**—भारत में प्रत्येक महापुरुष को भगवान् का अवतार समझने की कुप्रथा प्रचलित है। फिर चाहे वे राम हों या कृष्ण, बुद्ध हों या महावीर, शंकराचार्य हों या दयानन्द, साईं बाबा हों या महात्मा गांधी। महापुरुषों ने अनेकों अद्भुत कार्य किए हैं, परन्तु इसी कारण उन्हें ईश्वर का अवतार समझने लगना महामूर्खता है। गुरु को भी भगवान् के समान या उनसे भी बड़ा बनाने का मूर्खतापूर्ण पाखण्ड भी गुरुभक्तों ने कालान्तर में अपनी प्रतिष्ठा कराने के लिए ही प्रचलित किया है। इस लौकिक गुरुपूजा में उस सर्वथा अलौकिक व सबके गुरु जो सभी स्थानों में व सभी कालों में सहज ही उपलब्ध है की अवमानना (निरादर) का भाव निहित है। सर्वपूज्य ईश्वर की पूजा को छोड़कर छुटभइयों की पूजा का मोहपूर्ण ढोंग क्या कभी भी उचित हो सकता है। अरे भोले भाइयो! इन लौकिक मनुष्य रूप गुरुओं की पूजा बन्द करके उस परम गुरु परमेश्वर की पूजा प्रारम्भ करो। 'स एष सर्वेषाम् अपि गुरुः कालेन अनवच्छेदात्'। (योगदर्शन समाधिपाद १।२६) गुरुओं का मान करना या उनके उपकारों का वर्णन करना तो सर्वथा उचित है। जीवित गुरु का सम्मान करना और उसकी सेवा करना भी उचित व स्पृहणीय है, परन्तु ईश्वर पूजा को छोड़कर या ठुकराकर केवल गुरुपूजा या गुरु की स्तुति ही करते रहना सर्वथा अनुचित व त्याज्य प्रथा है। गुरु के गुण ही न गाते रहो, उनकी जय ही न बोलते रहो, स्वयं में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके गुणों को धारण करो और उन्होंने जो कार्य किए हैं उन्हें निरन्तर आगे बढ़ाओ। यही सच्ची गुरुभक्ति व गुरु पूजा है। गुरुपूजा व अवतार पूजा को समाप्त करके सभी कालों व सभी स्थानों में सहज ही उपलब्ध परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना में लगो और इन्हीं का प्रचार भी करो, यही प्रभुमिलन का एकमात्र मार्ग है।

३. **चमत्कार**—जब तक हम अति मानवी व्यापारों को अतिरंजित कर, असम्भव बातों की सीमा के भी पार पहुंचाते रहेंगे और चमत्कारों (करामातों) में अन्धश्रद्धा व अन्धविश्वास करते रहेंगे, तब तक हम वेद, शास्त्र और ऋषिवाणी को भी झुठलाते रहेंगे। ऐसी बातों में विश्वास करके जिनको हमारी तर्कपूर्ण बुद्धि कभी भी स्वीकार नहीं कर सकती, हम अन्धश्रद्धा व अन्धभक्ति के मिथ्या आडम्बरों में ही फंसे रहेंगे और सत्य की किरण उस मिथ्याडम्बर के कुहासे को चीर कर हमारे मन व मस्तिष्क में कभी भी प्रवेश न पा सकेगी। अतएव करामातों को सत्य समझना, उनमें विश्वास करना और उनका कथन करना उनका दुष्प्रचार ही है। इनको बिना त्यागे, सत्य के दर्शन कभी भी नहीं हो सकते। सत्य ही परमेश्वर है वह सच्चिदानन्द अर्थात् सत् चित् व आनन्द स्वरूप ही है। अतएव सत्य को ग्रहण करना और असत्य को सर्वांश में त्यागना ही होगा। इसके बिना किसी भी प्रकार सुगति नहीं हो सकती।

४. **जगत् के मिथ्या होने का अन्धविश्वास**—जगत् जो प्रत्यक्ष सत्य है, उसे मिथ्या कल्पनाओं के आधार पर स्वप्नवत् या ऐन्द्रजालिक नगर अर्थात् जादूगर के प्रदर्शन के तुल्य या मृगमरीचिकावत् समझना एक अत्यन्त अवैज्ञानिक, तर्कहीन व मिथ्या धारणा है। इस अन्धविश्वास के जन्मदाता या प्रस्तोता आदि शंकराचार्य कहे जाते हैं, अर्थात् उनके पहले तो यह जगत् सत्य था परन्तु उनके द्वारा वेदान्त पर किए गए 'शारीरक भाष्य' ने सब उलट पुलट कर दिया। शंकराचार्य ने तो जैनाचार्यों को परास्त कर वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के लिए जैनियों के तर्कों को काटने की यह युक्ति रखी थी, परन्तु हम मूल अर्थात् वैदिक धर्म को छोड़कर युक्ति के ही भ्रमजाल में फँस गए। और दूसरों को भी इस मिथ्या भ्रमजाल में फंसाने का प्रयत्न करते रहते हैं। वास्तव में तो इस आधुनिक अद्वैतवाद को शंकराचार्य के प्रमुख शिष्यों ने भी सर्वांश में सत्य नहीं माना है और 'वेदान्त शास्त्र' की अपनी अलग-अलग व्याख्याएं की हैं।

जीव तो त्रिकाल में भी ईश्वर नहीं हो सकता, न तो वह कभी ईश्वर था, न है और न कभी हो सकेगा। माया कभी भी ईश्वर पर हावी नहीं हो सकती। अज्ञान कभी भी ईश्वर के एक अंश को भी आच्छादित नहीं कर सकता। जीव ही कभी ज्ञानी और कभी अज्ञानी की भांति आचरण करता है और अपने कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से फल भोगता है। ईश्वर कभी भी पाप नहीं करता वह तो 'अपापविद्धम्' है (यजुर्वेद अध्याय ४० मंत्र ८)। जीव एकदेशी, अल्पज्ञ व अल्प शक्ति वाला है, परन्तु परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् है, दोनों के गुणों व लक्षणों में महान् अन्तर है। दोनों को एक या एक समान कहना महामूर्खतापूर्ण, नितान्त असत्य तथा सर्वथा तर्क व प्रमाण विरुद्ध है।

जब तक हमारा मन व बुद्धि इन चार बातों अर्थात् १. मूर्तिपूजा या जड़ पूजा, २. अवतारवाद, ३. चमत्कारवाद और ४. आधुनिक अद्वैतवाद के मिथ्या भ्रमजालों से छुटकारा नहीं पायेगा, तब तक हम सच्ची ईश्वरभक्ति की ओर भी उन्मुख नहीं हो सकेंगे।

□ ● □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यार्थप्रकाश के प्रकाश में

—भगवानदेव 'चैतन्य', एम०ए०, साहित्यालंकार
१६० एस-३, सुन्दरनगर-१७४४०२ (हि०प्र०)

गत शताब्दी में अनेक समाज सुधारक हुए—जिनके कालान्तर में अलग-अलग मत व सम्प्रदाय चल पड़े। मगर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने साफ शब्दो में यह घोषणा की है कि मेरा कोई भी नया मत चलाने का बिलकुल भी लक्ष्य नहीं है। वे सही अर्थों में मानव के वास्तविक पालक और पोषक थे। उनकी प्रतिभा बड़ी ही विलक्षण थी। यही कारण है कि वे मान अपमान को एक ओर रखकर केवल मानवता के प्रचार व प्रसार में आजीवन लगे रहे और अन्त में परोपकार के पथ पर ही "प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो" कहकर आहुत हो गए।

महर्षि दयानन्द एक ऐसे युग में इस धरा पर अवतरित हुए, जब चारों ओर मानव जाति को समाप्त करने के षड्यन्त्र स्वयं मानवों द्वारा ही किए जा रहे थे। आपस में वैर विरोध, अन्धविश्वास, पाखण्ड और अधर्म का सर्वत्र साम्राज्य था। धर्म के राग तो अवश्य अलापे जाते थे, किन्तु धर्म एक रूढ़िवाद के दायरे में सिमट कर रह गया था। वेदों का पठन-पाठन कल्पना की बातें थीं। नारी जाति की गरिमा पांव की जूती कहलाने तक गिर चुकी थी। वह मात्र भोग की वस्तु रह गई थी। जातिवाद का जहर अपने पूरे यौवन पर आकर फुफकार रहा था। हम पराधीनता की बेड़ियों में किंकर्त्तव्य विमूढ़ से होकर लाचार और असहाय बने हुए थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ऐसे ही विकट समय में अपनी चहुंमुखी प्रतिभा का प्रयोग करके इन सभी समस्याओं पर एक साथ ही प्रहार करते हुए समूचे विश्व के सामने डटकर खड़े हो गए। धर्म के नाम पर चलने वाली सभी दुकानों की उन्होंने जड़ें हिलाकर रख दीं। उन्होंने धर्म को पोथियों और पोपों की कैद से मुक्त करके उसे क्रियात्मकता की ओर मोड़ा। वेदों के पठन-पाठन का प्रचलन कराकर उन लोगों को चौंका कर रख दिया जो कहते थे कि वेद को तो शंखासुर चुराकर ले गया है। वेद ज्ञान के समक्ष आडम्बर और पाखण्डों की पोलें खुलने लगीं तथा अज्ञानान्धकार छिन्न-भिन्न होने लगा। इस बात का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को ही जाता है कि मैक्समूलर जैसे पाश्चात्य विद्वानों के हृदय में भी वेद के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई जो वेदों को मात्र गड़रियों के गीत कहा करते थे। महर्षि दयानन्द जी का दर्शन किसी विशेष जाति, क्षेत्र, सम्प्रदाय या राष्ट्र के लिए नहीं था बल्कि वे तो "वसुधैव कुटुम्बकम्" को कार्यान्वियन करने वालों में थे। उनका लक्ष्य था "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"—अर्थात् सारे संसार संसार को श्रेष्ठ बनाना। नारी जाति को उन्होंने दयनीय दशा से ऊपर उठाते हुए पूजनीय अवस्था तक पहुँचाया। यह जो हम अपने राष्ट्र में आज नारी को प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ते हुए देख रहे हैं। यह सब उस परम कृपालु देव दयानन्द के प्रयासों का ही सुफल है। आज उन लोगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नारी उत्थान का पक्षधर बताते हुए देखा जा सकता है जो उस समय महर्षि जी का विरोध करते थे। जाति-पांति को समाप्त करने के लिए उन्होंने रचनात्मक कदम उठाए। उनकी दृष्टि में मानव मात्र की केवल एक ही जाति थी—"मनुष्य"।

महर्षि दयानन्द जी की विचारधारा इतनी सरल, अकाट्य, हृदयग्राही और वैज्ञानिक है कि उसको गहराई से समझ लेने पर हर किसी का कायाकल्प हो सकता है। आजकल आम तौर पर देखा जाता है कि वर्तमान आर्यसमाजों में आर्यसमाज के मान्य सिद्धान्तों की चर्चा नहीं हो पाती है बल्कि सिद्धान्तहीनता की बातें भी कई बार मंचों पर से सुनने को मिलती हैं। उसका सब से बड़ा कारण यही है कि लोगों ने महर्षि जी के ग्रन्थों का स्वाध्याय व उन पर मनन करना छोड़ दिया है। महर्षि जी ने हमें इतने विलक्षण ग्रन्थ दिए हैं कि उनकी मौजूदगी में कोई भी मत एवं मज़हब की डींग नहीं हांक सकता है। यूं तो महर्षि दयानन्द जी द्वारा रचित प्रत्येक ग्रन्थ का एक-एक वाक्य अद्भुत है मगर "सत्यार्थप्रकाश" में इनका दार्शनिक पक्ष भली प्रकार से समझा जा सकता है। यह एक ऐसा अमर ग्रन्थ है कि इसके स्वाध्याय से कितने ही लोगों ने अपने जीवनों को निखार कर कुन्दन बना लिया। इसे जितनी बार पढ़ा जाए उतनी ही बार इससे कोई न कोई नया रत्न प्राप्त होता है। इसलिए कई लोगों ने अनेकों बार इस ग्रन्थ का स्वाध्याय किया है। यह एक ऐसा अनमोल हीरा है जिसका कोई मूल्य नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि इसमें विश्लेषित रहस्यों को समझकर अपने जीवन में धारण किया जाए क्योंकि महर्षि जी का धर्म, पोथियों में रखकर पूजने के लिए नहीं है बल्कि जीवन को सुजीवन बनाने के लिए है। यदि इस ग्रन्थ की मान्यताओं को प्रत्येक व्यक्ति हृदय में धारण करके चले तो आज जितने भी मत, मज़हब और सम्प्रदाय चल पड़े हैं उनका समूल नाश होकर एक ऐसे सार्वभौमिक धर्म की स्थापना हो सकती है जो समूचे विश्व में मानवता का प्रसार करने में सक्षम सिद्ध हो सकता है। प्रेम और सौहार्द का ऐसा वातावरण तैयार हो सकता है जहां सभी एक सत्यता के पक्षधर बनकर इस धरती को स्वर्ग बना सकते हैं।

इस अमर ग्रन्थ की रचना चौदह समुल्लासों में की गई है। प्रथम दस समुल्लासों में वैदिक मान्यताओं के आधार पर ईश्वर, ब्रह्मचर्य, बाल-शिक्षा, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आदि का वर्णन तथा राजनीति, वेद, मोक्ष, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि का विवेचन किया गया है। यह विवेचन सार्थक और ग्राह्य ही नहीं बल्कि वेदानुमोदित होने से ईश्वरीय भी है। मण्डनात्मक समुल्लासों के बाद अन्त के चार समुल्लासों में महर्षि जी ने खण्डनात्मक विवेचन किया है। ईसाई, मुसलमान, सिक्ख, हिन्दू ही नहीं बल्कि तत्कालीन छोटे-मोटे प्रत्येक सम्प्रदाय का कच्चा चिट्ठा महर्षि जी ने अपनी अतुल प्रतिभा और वेद-ज्ञान के अनुसार खोलकर रख दिया है। यह लोगों को कड़ुवा तो लग सकता है मगर यह कड़ुवाहट किसी रोग के शमनार्थ पी गयी दवाई की कड़ुवाहट के समान ही समझनी चाहिए ताकि स्वस्थता प्राप्त की जा सके। मगर देखा यह भी गया है कि लोगों ने इसे इस कड़ुवाहट के कारण कुदृष्टि से भी देखा है मगर इसमें दवाई की श्रेष्ठता की तो कोई हानि नहीं होती है उल्टा रोगी ही घाटे में रहता है। जिसे दवाई ही अच्छी न लगे उसे भला स्वस्थता कहां से प्राप्त हो सकती है। महर्षि जी ने इस ग्रन्थ में समस्त सत्यों को उद्घाटित किया है। अत: असत्य तो इसके समक्ष तिलमिलायेगा ही। कुछ लोगों ने अपने-अपने सम्प्रदायों की कूपमण्डूकता में ही डूबे होने के कारण इस ग्रन्थ की आलोचना भी की है। मगर जिसने भी खुले मस्तिष्क से इसका स्वाध्याय किया उसके हाथ तो मानो ईश्वर, धर्म, मोक्ष आदि के सभी द्वार खुल गए। इसे खण्डन का पिटारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने वाले वास्तव में इसलिए घबरा जाते हैं क्योंकि इसके प्रकाश में उनके आडम्बर नष्ट होकर उनकी धर्म के नाम पर खोली गयी दुकानें बन्द होने से उनकी भौतिक हानि होती है। सत्यार्थ-प्रकाश में खण्डनात्मक कटुता अपने बच्चे को हृदय से चाहने वाली मां की प्यारी झिड़की के समान है। जिस बच्चे ने इस झिड़की की महत्ता को समझ लिया उसने अपना जीवन बना लिया और जिसने मां की इस दुलारमयी झिड़की को अनसुना कर दिया या इससे नाराज होकर अलग बैठ गया उसने मानो अपना जीवन बर्बाद कर दिया।

इस लघु लेख में इस अनमोल ग्रन्थ के प्रत्येक समुल्लास पर प्रकाश डालना यहां पर सम्भव नहीं है मगर इसकी सार्वभौमिकता और उत्कृष्टता तथा मानव हितैषी पक्ष को स्पष्ट करने के लिए भूमिका पर थोड़ी सी चर्चा करनी आवश्यक है ताकि उन लोगों को इसकी विलक्षणता का आभास हो सके जो इसे देखने मात्र से ही अपने नाक मुंह सिकोड़ लेते हैं। लोगों को भ्रम है कि इस ग्रन्थ में महर्षि जी ने पक्षपात से काम लिया है। मगर उसके भूमिका में ही लिखे शब्दों का जरा अवलोकन कर लें—"मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसका मिथ्या ही प्रतिपादित करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान पर असत्य और असत्य के स्थान पर सत्य का प्रकाश किया जाए, किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना ही सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इस-लिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।"

महर्षि जी द्वारा लिखित उपरोक्त शब्द मनन करने योग्य हैं तथा इसी से इस बात का अनुभव किया जा सकता है कि "सत्यार्थप्रकाश" का मुख्य उद्देश्य क्या है। वे किसी प्रकार के द्वेषवश किसी भी मत या सम्प्रदाय की पुष्टि के लिए उचित अनु-चित तर्क देने के पक्ष में नहीं थे। वास्तव में मानव मात्र की भलाई करने के लिए ही उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की है। अलग-अलग बंटी हुई मानवता को एक सूत्र में पिरोने का लक्ष्य भी उनके सामने था। वे सही अर्थों में मानव हितैषी थे। भूमिका में ही वे लिखते हैं– "परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुःखाना वा किसी की हानि का तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को जानकर मनुष्य सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।" वे चाहते थे कि यदि प्रत्येक विद्वान् अपने-अपने दायरे को, अपनी एषणाओं को मध्ये नजर रखते हुए न बढ़ाकर समूची मानवता की उन्नति पर ध्यान दे तब ही प्रत्येक हृदय में मानवता के अंकुर प्रस्फुटित हो सकते हैं···'यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्ष-पात छोड़कर सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से बर्तें-वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। "महर्षि दयानन्द जी की इस मान्यता को आज भी यदि मानकर प्रयास किया जाये तो समूचे राष्ट्र का ही नहीं विश्व का कल्याण हो सकता है। महर्षि जी ने अपने जीवन में इस प्रकार के एक सर्वधर्म सम्मेलन के कार्यान्वयन का प्रयास भी किया था मगर सत्य के प्रदीप के समक्ष आने में सभी ने आनाकानी की और इस प्रकार एक सार्वभौमिक धर्म की स्थापना करने से महर्षि को वंचित कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविकता यह है कि यदि इस प्रकार की एकता स्थापित हो जाए तो उन लोगों की दुकानें बन्द हो जाती हैं जिन्होंने अलग-अलग मजहब एवं सम्प्रदाय चलाकर अपने-अपने हलवे-माण्डे का प्रबन्ध करा रखा है और सैकड़ों लाखों चेले चेलियां अपनी सेवा के लिए तैयार कर रखी हैं। अपने-अपने राजनैतिक या गद्दीधारी बनने के स्वार्थों ने ही ये दीवारें खड़ी कर रखी हैं। इसलिए महर्षि दयानन्द जैसा कोई मानवहितैषी या टूटी फूटी मानवता को जोड़ने वाला कोई पैदा होता है तो ये ही अपनी अपनी गद्दियां सलामत रखने वाली एषणाओं से आकण्ठग्रस्त लोग विरोध करना आरम्भ कर देते हैं क्योंकि मानवता की छिन्न-भिन्नता और अज्ञानता का बना रहना ही इनके अस्तित्व का आधार है। मगर महर्षि दयानन्द ऐसे विलक्षण महापुरुष थे जो व्यक्ति के विचारों को पूर्णरूप से स्वतन्त्र रखकर उसे विकसित होने का अवसर प्रदान करना अपना लक्ष्य समझते थे। बाबा वाक्यं-प्रमाणम्' की पद्धति उन्हें स्वीकार नहीं थी। उन्हें यह भी विश्वास था कि उनके द्वारा उद्घाटित कटु सत्य को पचा पाना हर किसी के बस की बात नहीं, इसलिए वे लिखते हैं—"···श्रोता व पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देखकर इस ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें। इसमें यह अभिप्राय रखा गया है कि जो जो सब मतों में सत्य बातें हैं, वे वे सभी में अविरुद्ध होने से उनको स्वीकार करके जो जो मत मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन उन का खण्डन किया है ··"। महर्षि दयानन्द की शिक्षाएँ देश, काल और क्षेत्रवाद के दायरों से बहुत ऊपर हैं। किसी प्रकार का पक्षपात उन्हें छू तक भी नहीं गया है—"···यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं, तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूं, वैसे ही दूसरे देशस्थ व मत वालों के साथ भी बरतता हूं···मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता, तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता। परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं, क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाकर वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है, वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानि मात्र करता रहता है वह मानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।" महर्षि जी के इन शब्दों में 'विश्वबन्धुत्व तथा जीओ और जीने दो' का अमर सन्देश निहित है। यह ग्रन्थ आज भी सम्प्रदायवाद, देशी-विदेशी, गोरे-काले, ऊंच-नीचे, तेरे-मेरे के संकुचित दायरों से हमें बाहर निकालने की क्षमता रखता है।

महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों और आर्यसमाज संस्था के प्रति लोगों में अनेक प्रकार की भ्रांतियां फैली हुई हैं। लोग दूर दूर से ही सुनी सुनाई बातों या पूर्वाग्रहों के कारण दूर भाग जाते हैं। मगर आवश्यकता इस बात की है कि हम मिशनरी की भावना से कार्य-क्षेत्र में उतरें। हमें अपने व्यक्तिगत कार्यों से भी बढ़कर आर्यसमाज के कार्यों को प्राथमिकता देनी चाहिए, मगर जिस बात की सब से बड़ी आवश्यकता है उसकी ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। वह यह है कि हमें महर्षि प्रणीत ग्रन्थों का बड़ी ही बारीकी के साथ अध्ययन, चिन्तन और मनन करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो हम किसी भी अन्य व्यक्ति को प्रभावित करने की क्षमता नहीं रख सकते हैं। आजकल के युग में बहुत ही तार्किक होने की आवश्यकता है। बड़े धैर्य और लगन के साथ कार्य करने की आवश्यकता है। अज्ञानता को भी हमें एक रोग की दृष्टि से देखना चाहिए और ऐसे रोगी को बड़े ही साहस और लगन के साथ ठीक करने की आव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यकता है। आरम्भ में भले ही कोई हमारी बातों का बुरा भी मान जाएगा, मगर जब उसे दयानन्द के ज्ञान की आंख मिल जाएगी तो वही हमें लाख धन्यवाद भी देगा। हमें निःस्वार्थ भाव से निरन्तर कर्मपथ पर आरूढ़ रहना है और सत्यार्थप्रकाश के प्रकाश में 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का सपना साकार करना है।

पथिक

पथिक चला जा रहा था
एक अनजान डगर पर
चहुं ओर अंधियार था
उस सुनसान डगर पर
दिल उदास था, बदहवास था न कहीं प्रकाश था
बादल कारे-अंधियारे छाए-पाए थे नगर पर
और पथिक-चल रहा था
उसी अनजान डगर पर।

चहुं ओर अविद्या के कारण
महाघोर अन्धकार था
लोभ-मोह-ईर्ष्या घृणा का
दशों दिशाओं में राज था
सारा आर्यावर्त्त, मिला था गर्त, दुःख की चढ़ी पर्त
आर्यसमाज पे, प्यार के साज पे
खिजां आई रूप मनोहर पर
और पथिक चला जा रहा था
उसी अनजान डगर पर।

एक तरफ देखा था पथिक ने
एक शोर था मचा हुआ
लोगों की भीड़ में देखा पथिक ने
एक भोर का तारा सा निकला हुआ
नाम दयानन्द आनन्दकन्द, था हाथों में वेद और दंड
वेद पढ़ाए सुनाए ईश के राग,
आग की चलते हुए डगर पर
फिर पथिक वापस आया था
उस भूली हुई डगर पर।

भूला हुआ मार्ग सब को
दिखलाया स्वामी ने
वेदों का उद्धार जगत् में
करवाया स्वामी ने
पाखण्डियों को उखाड़ा-पछाड़ा, गढ़ पाप का उखाड़ा
बोया सत् का बीज-चीज अनोखी चोखी मिली
उस सौदागर पर
पथिक मन में फूला नहीं समाया 'राजेन्द्र'
जब आया था वैदिक डगर पर॥

आर्यवीर राजेन्द्र सिंह
मु० पो० बादली,
जनपद रोहतक, (हरियाणा प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्द सन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आप से भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २००/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं। आप से प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूंगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है उनके नाम और स्थान क्रमश: प्रकाशित किए जा रहे हैं—

४४१. श्रीमती आर्य प्रिया भवन नं० ८१ सैक्टर २१ए चण्डीगढ़-१६००२२
४४२. श्री ईश्वरचन्द पटेल जे०एम० हाई स्कूल कोमना जि० काला हांडी (उड़ीसा)
४४३. श्री सत्तमलाल बर्मा जे०एम० हाई स्कूल कोमना जि० काला हांडी (उड़ीसा)
४४४. Chigale S.R. Hindi Asst. H.No. 16–19 New Mirjal Guda, Hyderabad (AP)
४४५. श्री बाबूराम कवि सुगर मिल मारोली कल्याण नगर जि० बलसाड़ (गुजरात)
४४६. श्री प्रधान जी, आर्यसमाज करचुलि गंजाम (उड़ीसा)
४४७. श्री सुदेश कुमार रावल १३४५ए अरबन स्टेट-२ हिसार (हर०)
४४८. ब्र० ईश्वरसिंह आर्य मु०पो० कौल जि० कुरुक्षेत्र (हर०)
४४९. श्री बलवीरसिंह S/o श्री हरदयालसिंह मु०पो० कतलहेड़ी जि० करनाल (हर०)
४५०. प्रो० सत्यपाल जी आर्य S/o श्री जुगतिराम ग्राम काकडोली जि० भिवानी (हर०)
४५१. श्री बाबूलाल जी आर्य सोनारों की बड़ी गवाड़ बीकानेर (राज०)
४५२. श्री बहादुरमल जी २२ राजविलास कालोनी बीकानेर (राज०)
४५३. श्री इन्द्रसिंह जी आर्य रामपुर कुंडल जि० सोनीपत (हर०)
४५४. श्रीमती स्नेह मेहरा मंगला अपार्टमेंट ब्लाक G कालका जी नई दिल्ली-१४
४५५. श्रीमती सरला देवी नानपारा हाउस, लढौर मंसूरी (उ०प्र०)
४५६. श्री प्रवीण कुमार जी ५५८-५५९ तुराब नगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)
४५७. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज मु०पो० कारंजा (लाड) जि० अकोला (MR)
४५८. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज चन्द्रपुरी, गाजियाबाद (UP)
४५९. श्री सुधांशु देव पुत्र श्री पं० रूपचन्द आर्यसमाज श्रृंगार नगर आलम बाग लखनऊ
४६०. श्री अरुण प्रताप शर्मा S/o श्री पार्थराम शर्मा रमवा रोड आरा जि० भोजपुर (बिहार)

—धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/92 मार्च, १९९२ बिना टिकट भेजने का लाइसेंस नं०
आर०आर० नं० २५५८७/७३ यू० (डी०एन०) १४४
Post in Delhi PSO Indraprastha Licenced to post without prepayment
on 2, 3/3/92 Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या **अवश्य ही** लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुंचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो मास बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया कर।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

योगदर्शनभाष्यम्

महर्षि व्यास भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द (व्याख्योपेत)

व्याख्याता : राजवीर शास्त्री

१. योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
२. व्यास भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
३. महर्षि दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
४. दर्शनों के परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
५. क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियां, अनेक चित्त निर्माण इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

११००/ सैंकड़ा
सत्य के प्रचारार्थ
फुल कपड़ा जिल्द
अजिल्द ९००/ सैंकड़ा
सत्यार्थ प्रकाश
घर घर पंहुचाएँ
सफेद कागज़ सुन्दर छपाई
शुद्ध संस्करण वितरण करने वालों के
आकार 23×36"÷16 पृष्ठ 420 की दर लिए प्रचारार्थ
अजिल्द ९/ जिल्द PVC १०/- फुल कपड़ा जिल्द ११/-
आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
455, खारी बावली, दिल्ली-6 दूरभाष:- 238360 : 233112

श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा० ....
जिला ....

मुद्रक : वैदिक प्रेस, कैलाशनगर, दिल्ली-११००३१ फोन २२४६६४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अप्रैल, १९९२

वर्ष : २०	:	अंक : ६
दयानन्दाब्द	:	१६८
विक्रम संवत्	:	चैत्र, २०४९
सृष्टि संवत्	:	१,९६,०८,५३,०९३

संस्थापक	:	स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक)	:	राजवीर शास्त्री
प्रकाशक	:	धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक	:	यशपाल आचार्य

कार्यालय "दयानन्द सन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

एक प्रति २.०० रुपये वार्षिक शुल्क २०)
आजीवन सदस्यता २००)
विदेश में ५०१)

इस अङ्क के लेख

	पृष्ठाङ्क
वेदोपदेश	१
पाठकों के पत्र	३
मैं आर्य वीर मतवाला हूं	४
आर्यो ऋण ऋषि का चुकाते चलो	५
सुभाषित-रत्न-संचयः	६
पं० युधिष्ठिर मीमांसक का दुराग्रह	७
श्लाघनीय कार्य में भी दोषदर्शन	१३
त्याग और श्रद्धा का उदाहरण	१५
प. गुरुदत्त जी की निर्वाण-शताब्दी	१६
महर्षि महिमा	२१
अमर शहीद का आर्यों को सन्दे[illegible]	२२
ऋषि का सुन्दर स्वप्न	२३

अजिल्द नौ सौ रुपये, कपड़ा जिल्द एक हजार रुपये और सजिल्द ग्यारह सौ रुपये सैकड़ा में 'सत्यार्थप्रकाश' प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात्ताप

हमने भूल की है तेरी मूर्त्ति बना ।
निराकार जो अजर-अजन्मा-निर्विकार-न्यायकारी ।
सर्वेश्वर-सर्वज्ञ-विधाता, विपुल ज्ञान भण्डारी ।
हृदय बीच सद्ज्ञान उदित कर,
निज स्वत्व देता जाना, तेरी मूर्ति बना ॥
रमा हुआ कण-कण में है जो, उसकी प्रतिमा कैसी ?
काट-छांट, घिस-पीट, कूटकर, प्राण प्रतिष्ठा कैसी !
हम झुक जायें भले तेरे आगे,
पर तू रहता तना, तेरी मूर्त्ति बना ।
नित-नित नई-नई वस्तु जो है समक्ष आंखों के ।
देख-देख जग सीख-सीख उड़ रहा बिना पांखों के ।
जिसका पारावार-नहीं मूरख,
सीमा दी कैसे बना, तेरी मूर्त्ति बना ॥
राम-कृष्ण शिव-विष्णु-ब्रह्मादिक हैं माने अवतार ।
हँस-गरुड़-हस्ती-नन्दी सम वाहन किये सवार ।
यह परिवहन-वहन नहीं होगा, जब लौं मन न बना । तेरी मूर्ति बना ॥
चन्दन-पुष्प-ताम्बूल-अच्छत, अरु रोली का टीका ।
तुम सम्पूर्ण मूर्त्ति में व्यापक, सदृश अंग बिन फीका ।
ज्ञान-चक्षु अब खुले 'मरुत' के, दयानन्द-प्रेरणा । तेरी मूर्ति बना ॥
बन्द किये ताले के अन्दर, फिर डर हो हमें कैसा ?
नहीं देखने वाला कोई, कर लें चाह मन जैसा ।
पाप पंक में धंस रहा जीवन, बीत रहा-सुदिना । तेरी मूर्ति बना ॥
खींचते हैं कमजोर को सभी, जिनमें शक्ति भरपूर ।
जड़ सिर्फ-सत्, चेतन सत्-चित्, फिर भी है मजबूर ।
यह अज्ञान-विज्ञान के युग में, है आश्चर्य-सना । तेरी मूर्ति बना ॥
धन्ना भक्त ने मूर्ति बना कर, भेंट रखी आगे को ।
जब तक नाथ न भोग करेंगे, कष्ट मिले काये को ।
किस तरह विवश-प्रगट हुए थे तुम, अब लौं मन न माना । तेरी मूर्ति बना ॥
घण्टा कर्ण ने कर्ण छेदकर, टन-टन बांध लई घण्टी ।
तब तक नाथ न माथ झुकेगा, जब तक हाथ रही बन्सी ।
नाम-रूप इस तरह-द्रोह का,
बहुत बड़ा साधन है बना, तेरी मूर्त्ति बना ॥

—सत्यदेव प्रसाद 'मरुत'
प्रेमनगर, नेमदारगंज, (नवादा, बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥ (महर्षि दयानन्द)

वेदोपदेश--

राष्ट्र की उन्नति के लिए ब्रह्मशक्ति और क्षत्रशक्ति का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है।

श्रीकामः ऋषिः। विद्वद्राजानौ (ब्राह्मणक्षत्रियौ) देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय का उपदेश किया जाता है ॥

ओ३म् इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ (यजु० ३२।१६)

पदार्थः—(इदम्) (मे) मम (ब्रह्म) वेद, ईश्वर-विज्ञानं, तद्वत्कुलम् (च) (क्षत्रम्) राज्यं, धनुर्वेद-विद्या, क्षत्रियकुलं (च) (उभे) (श्रियम्) राज-लक्ष्मीम् (अश्नुताम्) प्राप्नुताम् (मयि) (देवाः) विद्वांसः (दधतु) धरन्तु (श्रियम्) शोभां लक्ष्मीं च (उत्तमाम्) अतिश्रेष्ठाम् (तस्यै) श्रियै (ते) तुभ्यम् (स्वाहा) सत्याचरणया क्रियया।

अन्वयः—हे परमेश्वर! भवत्कृपया हे विद्वन्! तव पुरुषार्थेन च स्वाहा मे ममेदं ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुतां यथा देवा मय्युत्तमां श्रियं दधतु तथा-ऽन्येष्वपि। हे जिज्ञासो! ते तुभ्यं तस्यै वयं प्रयते-महि।

सपदार्थान्वयः—हे परमेश्वर! भवत्कृपया हे विद्वन्! तव पुरुषार्थेन च (स्वाहा) सत्याचरणया क्रियया (मे) मम (इदम्) (ब्रह्म) वेद, ईश्वर-विज्ञानं, तद्वत्कुलं च (क्षत्रम्) राज्यम्, धनुर्वेदविद्या, क्षत्रियकुलं च (उभे) (श्रियम्) राजलक्ष्मीम् (अश्नु-ताम्) प्राप्नुताम्। यथा (देवाः) विद्वांसः (मयि) (उत्तमाम्) अतिश्रेष्ठाम् (श्रियम्) शोभां लक्ष्मीं च (दधतु) धरन्तु तथाऽन्येष्वपि। हे जिज्ञासो! (ते) तुभ्यम् (तस्यै) श्रियै वयं प्रयतेमहि।

भावार्थ—हे परमेश्वर! आपकी कृपा से और हे विद्वान्! तेरे पुरुषार्थ से (स्वाहा) सत्याचरण रूप क्रिया से (मे) मेरा (इदम्) यह (ब्रह्म) वेद, ईश्वर का विज्ञान और उनसे युक्त ब्रह्मकुल (च) और (क्षत्रम्) राज्य, धनुर्वेद की विद्या तथा क्षत्रियकुल (उभे) दोनों (श्रियम्) राजलक्ष्मी को (अश्नुताम्) प्राप्त करें। जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (मयि) मुझ में (उत्तमाम्) अतिश्रेष्ठ (श्रियम्) शोभा और लक्ष्मी को (दधतु) स्थापित करें, वैसे अन्यों में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें। हे जिज्ञासु ! (ते) तेरे लिए (तस्यै) उक्त श्री की प्राप्ति के लिए हम प्रयत्न करें।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः । ये मनुष्याः परमेश्वराज्ञापालनेन, विदुषां सेवया, सत्कारेण, सर्वेषां मनुष्याणां मध्याद् ब्राह्मण-क्षत्रियौ सुशिक्ष्य, विद्यादिसद्गुणैः संयोज्य, सर्वेषामुन्नतिं विधाय स्वात्मवत् सर्वेषु वर्तेरन्, ते सर्वपूज्याः स्युरिति।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञापालन से, विद्वानों की सेवा एवं सत्कार से, सब मनुष्यों में से ब्राह्मण और क्षत्रिय को सुशिक्षित करके, विद्या आदि शुभ गुणों से संयुक्त कर सबकी उन्नति करके अपने आत्मा के तुल्य सब से बर्ताव करते हैं, वे सब के पूज्य होते हैं।

['दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर' से उद्धृत]
व्याख्याता — **आचार्य सुदर्शन देव**

● ▫ ●

दयानन्द सन्देश के स्वामित्व आदि का विवरण

१. प्रकाशन स्थान	—	२ एफ, कमलानगर, दिल्ली-७
२. प्रकाशन की अवधि	—	मासिक
३. मुद्रक का नाम	—	वैदिक प्रेस
क्या भारतीय है ?		भारतीय
पता		वैदिक प्रेस, कैलाशनगर, दिल्ली-३१
४. प्रकाशक	—	धर्मपाल आर्य
क्या भारतीय है ?		भारतीय
पता		२ एफ कमलानगर, दिल्ली-७
५. सम्पादक	—	राजवीर शास्त्री
क्या भारतीय है ?		भारतीय
पता		भूपेन्द्रपुरी, मोदीनगर (उ०प्र०)
६. स्वामित्व	—	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
		२ एफ, कमलानगर, दिल्ली-७

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपरोक्त समस्त विवरण सत्य है।

दिनांक १० अप्रैल १९९२

हस्ताक्षर
(धर्मपाल आर्य)
प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नववर्ष की शुभकामनाएँ

(चैत्र शुक्ला प्रतिपदा २०४९)

नूतन वर्ष अभिनन्दन हो, शुभ सफल सदा मंगलमय हो।
कर्म न कोई ऐसा हो, जिस से किसी का अमंगल हो॥

सभी दुःख दारिद्र्य से तर जावें, और मनोवाञ्छित फल जावें।
वसन्त सन्त से जीवन को पा, मुदित मन स्वस्थ तन कर पावें॥

धर्म-कर्म ही जीवन हो, हर गृह के जन सुखी मन हो।
हर मन-मन्दिर के आंगन में, उत्सव ही उत्सव निशदिन हो॥

(ज्ञानार्थी)

पाठकों के पत्र तथा कामना

तन मन धन से सब करें, आर्यजन सहयोग।
दयानन्द-सन्देश को, पढ़ें पूर्ण मनोयोग॥
पूरा हो यह योग, निरन्तर बढ़ता ही जाये।
इसकी अद्भुत छवि, जन जन को हर्षित करवाये॥
कहे 'जिन्दल अन्जान' यही आशा हर जन से।
देते रहो सहयोग इसे, यह हरे अज्ञान धरा से॥

—सत्यप्रकाश 'अन्जान'
अपर बाजार, मोदी नगर

मैं आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट के कार्यों से अति प्रसन्न हूं और भविष्य में भी आशा करता हूं कि इसी प्रकार सब कार्य सुचारु रूप से होता रहेगा प्रभु ट्रस्ट को चिरायु करे ताकि एकमात्र वैदिक धर्म के सत्यासत्य निर्णयार्थ प्रस्तुत कर हम सभी आर्यजनों को लाभान्वित करता रहे। साथ ही मेरा एक सुझाव है कि आप जैसे अब तक अनेक विशेषांक निकालते रहे हैं, उसी प्रकार 'वृक्षों में जीव है, या नहीं' जैसे विवादास्पद विषयों पर भी विशेषांक प्रकाशित करें तो अच्छा रहे।

—रघुनाथ आर्य, चित्ताबियां निकल रोड,
२४ परगना, बंगाल

मैंने अनेक मासिक पत्रिकाएं एवं साप्ताहिक पत्र पढ़े हैं, जो अखबारों की भांति सूचनाओं, विज्ञापनों अथवा व्यक्तिगत प्रशंसाओं से ही भरे मिलते हैं। किन्तु 'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका तो मुझे आकाशीय तारों में चन्द्रमा की भांति सुन्दर लगी जिसमें विज्ञापनों का तो सर्वथा अभाव ही है और लेख भी वैदिक सिद्धान्तों के पोषक हैं। आप को ईश्वर चिरायु करे, यही मेरी कामना है।

—शिवनारायण आर्य
मुहाली, सीहोर (म०प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं आर्य वीर मतवाला हूँ

मैं आर्य वीर मतवाला हूं।
मेरे शोणित का यह उबाल द्योतक है मेरे पौरुष का।
मुझको नन्हा मत समझो रे कल बीत चुका है शैशव का॥
मेरे उर उठती तरुणाई अम्बर में आग लगा देगी।
आंधी तूफानों में भी यह इक हाहाकार मचा देगी॥
मैं प्रलय समर को धरती पर धधकती भीषण ज्वाला हूं।
मैं आर्य वीर......

ऋषि दयानन्द बनकर मुझको विष माहुर पीना भाता है।
राणा प्रताप सा शौर्य प्रबल मुझ में नवक्रांति जगाता है।
मेरी चाहत है वीर शिवा बन केसरिया लहराने की।
बन्दा बैरागी का सोया गर्वित अभिमान जगाने की॥
मैं हल्दी घाटी से निकला अरि के शोणित का नाला हूँ।
मैं आर्य वीर......

मैं राय हकीकत सा बालक सिर अपना कटवा सकता हूँ।
बन फतहसिंह जोरावरसिंह तन अपना चिनवा सकता हूँ॥
श्री कृष्णचन्द्र सी युद्धनीति आदश राम का मुझ में है।
वीराभिमन्यु हूं मत भूलो गौरव सुनाम का मुझ में है॥
मैं फूलों का उपहार नहीं मैं सर्प दंश की माला हूं।
मैं आर्य वीर......

मैं यूं तो मानव अन्तर में चिर शान्ति जगाया करता हूं।
यदि शान्ति पराजित होती है तो क्रान्ति मचाया करता हूं॥
मैं आंखों से जलधार नहीं अंगार बहाया करता हूं।
मैं 'आर्य वीर दल' का नभ में केतन लहराया करता हूं॥
मैं वसुधा से उत्पन्न हुआ इन भूचालों का पाला हूं।
मैं आर्य वीर......

चेतन है जब तक मेरा तन मैं जड़ पाखण्ड मिटाऊँगा।
सिन्दूर पोंछने वालों को फिर अच्छा सबक सिखाऊँगा॥
कितने ही जाल रचे कोई गद्दार नहीं वो पाएगा।
इस पुण्य भूमि पर पापों का विस्तार नहीं हो पाएगा॥
मैं पाप-यवनिका चीर बढ़ा 'बेनाम' धर्म का भाला हूँ।
मैं आर्य वीर मतवाला हूँ।

—मयंक सोलंकी
६/१२२ शक्ति हाउस, पीपल का चौक,
बारां-३२५२०५ (राज०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यो ऋण ऋषि का चुकाते चलो

वेद वाणी जगत् में गुंजाते चलो।
आर्यो ऋण ऋषि का चुकाते चलो ॥

शान्ति का सन्देश सब संसार को देता है वेद।
शरण जो आता है उसका क्लेश हर लेता है वेद।
नाव जीवन की अगम-भव-सिन्धु में खेता है वेद।
परम-पावन-प्रेम-प्रभु का उर में भर देता है वेद।
यही सन्देश सबको सुनाते चलो ॥......

प्रेम प्रत्येक प्राणी से करना सिखाता है वेद।
भावना भ्रम-भेद की उर से भगाता है वेद।
कपटता-कटुता-कुटिलता को मिटाता वेद है।
सत्य-शुभ-सन्मार्ग सब जग को दिखाता वेद है।
वेद ही के सदा गीत गाते चलो ॥......

ईश्वरीय ज्ञान की यह अमृतधारा वेद है।
अति पुरातन प्राच्य संस्कृति का दुलारा वेद है।
अविद्या तम में भटकतों का उजाला वेद है।
नाना मत दीपों में उज्ज्वल रवि हमारा वेद है।
वेद की ज्योति निशि-दिन जलाते चलो ॥......

आर्यों का वेद ही प्रिय पूज्य प्राणाधार है।
प्राण तन का, नैन की ज्योति सकल सुखसार है।
सृष्टि के कर्त्ता विधाता का परम उपहार है।
शान्तिदाता सुखप्रदाता ज्ञान का भण्डार है।
खुद पढ़ो वेद सबको पढ़ाते चलो ॥......

है नहीं बाइबिल कुरान जैसी कहानी वेद में।
किस्से कल्पित की नहीं बिल्कुल निशानी वेद में।
जगत् के कल्याणहित है प्रभु की वाणी वेद में।
धर्म-कर्म उपासना की विधि पुरानी वेद में।
वेदों को स्वत: प्रमाण बताते चलो ॥......

चाहो सुख सच्चा अमर तो शरण आओ वेद की।
मिथ्या सब ग्रन्थों को तजकर ध्वनि गुंजाओ वेद की।
दूर कर अज्ञान तम ज्योति जलाओ वेद की।
दुन्दुभि "कवि इन्द्र" घर घर में बजाओ वेद की।
अपना कर्त्तव्य निश्चय निभाते चलो ॥

—डा० इन्द्रदेवसिंह, विष्णुपुरा कलां, सारण, बिहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभाषित-रत्न-संचयः

(१)

मनसि वचसि काये, पुण्यपीयूषपूर्णाः,
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्यनित्यं,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

(नीतिशतक)

(१)

जिन के मन, वचन तथा शारीरिक कर्मों में पुण्यरूपी अमृत भरा हुआ है, जो अपने परोपकारमय कर्मों से तीनों लोकों के प्राणियों को तृप्त करते रहते हैं और जो दूसरों के छोटे छोटे गुणों को भी पर्वततुल्य समझकर कहते रहते हैं तथा जो अपने आप में ही सन्तुष्ट रहते हैं, ऐसे सत्पुरुष कितने हैं?

(२)

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः,
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥

(वैराग्य)

(२)

कोई साधु कहता है—हे सांसारिक ऐश्वर्यों में मस्त मनुष्य! हम तपस्वी वृक्षों की छालों को धारण करके और तुम रेशमी वस्त्रों से सन्तुष्ट हो। हम दोनों के सन्तोष में तो कोई अन्तर नहीं है। परन्तु याद रखो दरिद्र वह होता है जिसकी इच्छाएँ अधिक बढ़ी हुई हैं। मन के सन्तुष्ट होने पर कौन धनवान् है और कौन दरिद्र?

(३)

वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितं,
द्रुमालये पत्रफलाम्बुसेवनम्।
तृणानि शय्या परिधानवल्कलं,
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥

(३)

हिंसक सिंहादि पशुओं से घिरे वनों में रहना, वृक्षों के नीचे ही घर बनाकर रहना, जंगली पके फलों अथवा जल ही से निर्वाह करना, घास पर ही शयन करना और वृक्षों की छाल से शरीर को ढकना तो अच्छा है, किन्तु अपने भाई बन्धुओं के मध्य धनहीन होकर रहना अच्छा नहीं है।

(४)

प्रिया न्याय्यावृत्तिर्मलिनमसुभङ्गे ऽप्यसुकरं,
असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥

(नीतिशतक)

(४)

सत्पुरुषों के ये स्वाभाविक कर्म होते हैं—धर्मानुकूल प्रिय जीविका करना, प्राणान्त की सम्भावना होने पर भी धर्मविरुद्ध मलीन कार्य न करना, दुर्जनों से कभी प्रार्थना न करना, निर्धन मित्रों से भी याचना न करना, आपत्काल में भी अपने आदर्शों पर स्थिर रहना, और महापुरुषों के बताये मार्ग पर ही निरन्तर चलते रहना। इन तलवार की धार के समान तीव्र व्रतों पर चलने के लिए सत्पुरुषों को किसने आदेश दिया है? अर्थात् किसी ने नहीं। पुनरपि वे अपने स्वभाववश इन व्रतों का पालन करते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि,
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं,
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ।।

चार कर्म मनुष्य को भयरहित करते हैं, किन्तु उनको ठीक ढंग से न करने पर भय भी देते हैं। मान के लिए हवन करना, मौन धारण करना, विद्याध्ययन करना। इनके करने में मान-बड़ाई के भाव को छोड़ देना चाहिए।

□ □

वेदवाणी के फरवरी १९९२ अंक में छपे लेख का उत्तर—

पं० युधिष्ठिर मीमांसक का दुराग्रह

यह सत्य है कि परोपकारिणी सभा अजमेर महर्षि दयानन्द सरस्वती के हस्तलेखों को सुरक्षित रखने और उनके अनुसार शुद्धतम ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिए अधिकृत है।

सभा के वर्तमान अधिकारियों का यह कर्त्तव्य है कि इसके माध्यम से प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों का सूक्ष्मेक्षिका से निरीक्षण करे। पहले क्या हुआ है, क्यों हुआ है, इत्यादि की विशद समालोचना करने की अपेक्षा अब यह दृष्टि रक्खी जा रही है कि महर्षि दयानन्द की मान्यता और लेख के विरुद्ध उनके नाम से कुछ भी न छपे। सत्यार्थप्रकाश सदृश महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को सर्वप्रथम उसी शृंखला में प्रकाशित किया गया है।

परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ३७वें संस्करण पर श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक को घोर आपत्ति है, सो किसी व्यक्ति को आपत्ति होने के कारण से सभा सत्य को छुपा नहीं सकती, जब कि उसका पता लग गया हो। यदि सत्य को इसीलिए प्रकट न किया जाये कि असत्य का बहुत व्यापक प्रचार हो गया है, यह सबके मन में घर कर गया है तो महर्षि दयानन्द जी मूर्तिपूजा, सायण, महीधरादि के वेदभाष्यों, अनार्षग्रन्थों और नाना मतमतान्तरों का खण्डन नहीं करते। वे तो सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहते थे। यह उनके जीवन में पदे-पदे देखा जा सकता है।

अस्तु! परोपकारिणी सभा के पास सत्यार्थ-प्रकाश की दो हस्तलिखित प्रतियां हैं। उनका प्रकार यह है कि एक प्रति महर्षि दयानन्द जी ने बोलकर लेखक से लिखवाई थी। इस प्रति को वे स्वयं देखकर शुद्ध भी कर चुके थे। इसी संशोधित प्रति से ही द्वितीय प्रति तैयार कराई गई। यह द्वितीय प्रति प्रकाशित करने के लिए प्रेस में भेजने की दृष्टि से तैयार कराई गई थी और यह भी सत्य है कि इस द्वितीय प्रति में भी महर्षि दयानन्द कृत संशोधन विद्यमान हैं किन्तु ये संशोधन पूरे ग्रन्थ में नहीं हो पाया था।

दोनों प्रतियों में भेद— जब एक प्रति से दूसरी प्रति तैयार की जाती है तो स्पष्ट है उसे प्रथम प्रति के सदृश ही होना चाहिए। भेद केवल वहीं होना चाहिए जहां महर्षि जी ने स्वयं अपने हाथ से कुछ काटा हो अथवा कुछ नया जोड़ा हो। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त दोनों प्रतियां मूलरूप से एक ही होनी चाहिएं। कहीं-कहीं प्रकाशित प्रूफ में भी फेरबदल हुआ करता है, सो ऐसा इस ग्रन्थ में अति स्वल्प है। यह प्रेस प्रति और छपी प्रति के मिलान करने से निश्चय हो गया है। यदि उन प्रतियों में पर्याप्त भेद है तो उसका कारण जानने का यत्न करना चाहिए सो सभा ने इसका कारण जाना और जानने के पश्चात् भूल का पता लगा लिया। यह भेद निम्न प्रकार का है—

१. प्रतिलिपि करते समय छुटे हुए पाठों का।

२. बोलकर लिखाते समय लेखक से छुटे शब्द और मात्राओं का।

३. एक प्रति के वाक्य का भाव लेकर नये रूप में पूरे-पूरे सन्दर्भ परिवर्तित करने का।

४. सर्वथा नये वाक्य डालने का।

५. जानबूझकर वाक्य छोड़ने का।

इस का कारण यह है कि मूल प्रति से जब लेखक ने दूसरी प्रति बनाई तो लिखते-लिखते बीच-बीच में अपने शब्द भी डालता गया। ये शब्द इतनी चतुराई से डाले गये हैं कि विद्वान् लोग भी उनको तब तक नहीं जान पाते, जब तक कि दोनों प्रतियों को अक्षरशः नहीं मिलाया जाये।

सत्यार्थप्रकाश के इस ३७वें संस्करण में सभा ने यही मार्ग अपनाया है कि प्रतिलिपि कर लिखते-लिखते प्रमादवश या जानबूझकर महर्षि के मूल लेख को छोड़ता है वा उचित शब्द, वाक्य, भाव आदि का अकारण परिवर्तन करता है, वहीं-वहीं मूलप्रति (जिसे पं० युधिष्ठिर जी रफ कापी कहते हैं) का आश्रय लिया है। ऋषि दयानन्द जी के स्वहस्त के संशोधन सभी प्रकाशित किए गए हैं। इससे इस ३७वें संस्करण में भाषा, भाव, शब्द, वाक्य रचना आदि सर्वथा ही ऋषि दयानन्द कृत प्रकाशित किये हैं। ऋषि की भाषा इतनी सुगम है कि उस पर किसी भी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

जिस किसी जिज्ञासु महानुभाव को इस विषय में शंका हो वह दोनों प्रतियों को देखकर निश्चय कर सकता है। हमारे यहां ऋषि के सभी ग्रन्थों को देखने की सभी के लिए सुविधा दी गई है। कोई लुकाव छुपाव नहीं है।

महर्षि दयानन्द जी अहर्निश जनहित के अनेक कार्यों में संलग्न रहते थे। जैसे वेदभाष्य करना, उपदेश करना, शास्त्रार्थ करना और शंकासमाधान करना तथा अन्य ग्रन्थ-लेखन तथा पत्रादि लिखना लिखाना। इन कार्यों में अति व्यस्त रहने के कारण वे दोनों प्रतियों को अक्षरशः नहीं मिला पाये। और न कभी किसी विद्वान् संशोधक को इस विषय में सन्देह ही हो पाया कि दोनों प्रतियों में इतना मूलभूत अन्तर भी हो सकता है। सामान्यतया यही सोचते रहे कि एक प्रति से ज्यों की त्यों दूसरी प्रति बनाई गई है।

इतने स्पष्टीकरण के पश्चात् पं० युधिष्ठिर जी के लेख में की गई आपत्तियों और आक्षेपात्मक बातों का समाधान किया जाता है।

१. पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार रफ कापी और प्रेस कापी दोनों पर ऋषि दयानन्द के पर्याप्त संशोधन हैं अर्थात् प्रेस कापी भी ऋषि दयानन्द ने पूरी तरह छपने से पूर्व देखी थी।

इसके लिए हमारा कथन है कि ऋषि जी ने इनको देखा अवश्य था परन्तु दोनों को अक्षरशः मिलाया नहीं था, अन्यथा इतनी गड़बड़ की ओर उनका ध्यान अवश्य जाता और छुटे हुए पाठों को भी इस प्रति में अवश्य जुड़वा देते। मूल पाठ से न देखकर छुटे पाठों की सर्वत्र संगति लगाने की चेष्टा की है, यह संगति कई स्थलों पर अस्तव्यस्त-सी हो गई है जबकि मूल प्रति का पाठ अति सरल और सहज स्वाभाविक है। यह परिवर्तन करने का कार्य ऋषि के प्रतिलिपिकर्त्ता लेखक ने किया है। जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि श्री मीमांसक जो की भी यही मान्यता है कि मुन्शी समर्थदान के अतिरिक्त अन्य सभी व्यक्ति हृदय से प्रायः कुटिल थे। इस विषय की चर्चा महर्षि दयानन्द जी भी यत्र तत्र अपने पत्र व्यवहार में करते रहते थे। इसे मीमांसक जी भी जानते हैं।

२. मुन्शी समर्थदान के अनुसार……कापी में गड़बड़ी बहुत आती है, असम्बद्ध भाषा बहुत आती है।

यहां ध्यातव्य है कि ऐसी शिकायतें मूल प्रति में नहीं हैं। यदि मुन्शी जी प्रेस कापी के साथ मूल प्रति को भी देखते रहते तो उनको ऐसी शिकायतें करने का अवसर ही नहीं आता और आज जो कार्य १०७ वर्ष के उपरान्त करना पड़ा है यह शुभ कार्य मुन्शी समर्थदान ही कर देते।

३. पाण्डुलिपि (रफ कापी) को मूल प्रति कहना क्या उचित है?

पं० युधिष्ठिर जी को शोध कार्य करते हुए लगभग ५०-६० वर्ष तो हो ही गये होंगे। परन्तु आश्चर्य है कि ये अभी तक यह नहीं समझ पाये कि मूल प्रति और रफ कापी में कोई अन्तर नहीं होता। इसी से अनुमान लगा लीजिए कि इनका शोध कार्य कैसा है। ये तो केवल टिप्पणीकार हैं। इनके द्वारा सम्पादित सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में टिप्पणियों की भरमार है। उनमें सैकड़ों टिप्पणियां नितान्त व्यर्थ हैं। इनसे केवल ग्रन्थ का कलेवर ही बढ़ता है।

मूल प्रति से छापने के लिए जो प्रतिलिपि की जाती है वह मुद्रण प्रति कहाती है। इन्हीं को लोग रफ कापी और प्रेस कापी कह देते हैं। क्या पाण्डुलिपि मूल प्रति नहीं कहलाती? भारत में सहस्रों हस्तलिखित ग्रन्थ मिलते हैं, वे सभी पाण्डुलिपि नाम से व्यवहृत होते हैं। पाण्डुलिपि विज्ञान पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। यदि मीमांसक जी उन्हें ही पढ़ लेते तो इस भ्रम में तो न रहते।

४. ऋषि दयानन्द के आदेश के अनुसार मुन्शी समर्थदान द्वारा लिखी गई सब टिप्पणियां हटा दी गयीं।

टिप्पणियां लिखने का "आदेश" ऋषिवर ने नहीं दिया था अपितु कामाचार था, यथेष्ट था। यह उन्हीं के शब्दों से स्वतः सिद्ध है। जैसे—"जहां जहां उचित समझो, वहां वहां नोट दे देना। तथा जो तुमको विचारपूर्वक नोट देना हो सो भी देते जाना।"

इससे स्पष्ट है कि ये टिप्पणियां ऋषि दयानन्द जी की स्वयं की लिखी न थीं। यदि ये टिप्पणियां अत्यावश्यक होतीं तो ऋषि स्वयं ही इनको लिखवा देते, जैसे कि उनकी टिप्पणी चतुर्थ और चतुर्दश समुल्लास में विद्यमान हैं। मुन्शी समर्थदान जी को जहां अपने विचारानुसार नोट देना था, वह दे दिया। न देने पर भी ऋषि दयानन्द जी का भाव स्पष्ट है। कालान्तर में ये अनृषि कृत टिप्पणी आदि ऋषिकृत माने जाने लगेंगे। अतः हमने ऋषि के ग्रन्थ में अन्य किसी भी व्यक्ति के शब्द, भाव, भाषादि नहीं रक्खे।

५. ऋषि दयानन्द के आदेश के अनुसार मुन्शी समर्थदान ने भाषा में जो शब्दादि बदले थे, उन्हें हटा दिया।

यद्यपि ऐसा नहीं हुआ है। पुनरपि भाषा बदलने के लिए भी महर्षि जी ने 'आदेश' नहीं दिया। यहां भी कामाचार है, यदि आवश्यकता हो तो बदल देना। अक्षर, मात्रादि की अशुद्धि को शुद्ध करना तो सम्पादक का मुख्य कार्य है ही। मूलप्रति में ऋषि की अपनी भाषा है, उससे भाव अत्यन्त स्पष्ट हो जाते हैं। जहां नहीं होते वहां किसी ने आज तक टिप्पणी की ही नहीं। वैसे भी इस समय तक महर्षि जी की भाषा भलीभांति मंज गई थी। इसके लिए वे स्वयं लिखते हैं—"मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था। अब इसको अच्छे प्रकार भाषा के व्याकरणानुसार जानकर अभ्यास भी कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया है। इस समय इसकी भाषा पूर्व से उत्तम हुई है।''

मुन्शी समर्थदान के लिए लिखने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि कहीं कोई पद ऐसा रक्खा गया हो जिससे भाषा असम्बद्ध दीखती हो अथवा वाक्य रचना संगत न होती हो तो उसे शोध लिया करो। बोलकर लिखाते समय ऐसी सामान्य बात हो ही जाया करती हैं। स्वयं लिखते समय भी ऐसा होना स्वाभाविक है। यद्यपि मूल प्रति में ऐसे स्थल अति न्यून हैं। हां! प्रेस कापी में अवश्य गड़बड़ है, इसीलिए महर्षि दयानन्द ने मुन्शी समर्थदान के लिए यह लिखा।

परोपकारिणी सभा ने ऋषि शैली को ज्यों का त्यों सुरक्षित रखते हुए महर्षि दयानन्द को मूलरूप से अमर कर दिया। क्या इसी शुभ कार्य को श्री मीमांसक जी ऋषि आदेशों पर पानी फेरना कहते हैं?

ऋषि वाक्यों पर पानी तो मीमांसक जी फेर रहे हैं। इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। जैसे इनके द्वारा सम्पादित सत्यार्थप्रकाश शताब्दी संस्करण में हजार के लगभग टिप्पणियां दी हैं। तृतीय समुल्लास में 'यह जन्म से करना चाहिए' इस वाक्य में जन्म पद पर बहुत बड़ी टिप्पणी लिखकर मीमांसक जी यह सिद्ध करने का असफल प्रयास कर रहे हैं कि यहां गुरु से होने वाले द्वितीय जन्म से अभिप्राय है। मीमांसक जी यदि मूल प्रति उठाकर देखने का कष्ट कर लेते तो ऐसी भयंकर ऋषिघाती भूल कदापि न करते। 'मूल में पाठ है—'यह जप मन से करना चाहिए' प्रतिलिपि करने वाले से 'जप' का 'प' छूट गया और 'यह जमन से करना चाहिए' यह ऐसा वाक्य बन गया। ऋषि जी ने इसको पढ़ा और 'जमन' को अशुद्ध समझ कर 'जन्म' कर दिया। मीमांसक जी इसी को शुद्ध मान बैठे। यह है इनकी सम्पादन कुशलता। क्या यह भी मिलान करके छापा है? क्या ऐसे स्थलों के लिए दोनों प्रतियों को देखना अनुचित था? ऐसी टिप्पणी तो कोई अनाड़ी सम्पादक ही दे सकता है जो ऋषि के अर्थ का अनर्थ करने वाली है। इससे सिद्ध है कि ऋषि जी ने भी शीघ्रतावश मुद्रण प्रति देखभर ली थी, उसे मूलप्रति से नहीं मिलाया गया।

६. श्री पंडित जी के अनुसार यह सब गड़बड़ हुई है एक व्यक्ति को संशोधन का अधिकार देने के कारण। धर्मसिंह कोठारी ने रफ कापी और प्रेस कापी से यथावत् मिलान करके पाठभेद इकट्ठे करके पं० भगवद्दत्त और पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के सम्मुख रखकर उनके निर्देशानुसार शुद्ध किया, मूल कापी से मिलान नहीं किया, यह लिखना असत्य है।

किन्तु वास्तविक सत्यता यही है कि इससे पूर्व किसी भी व्यक्ति ने दोनों प्रतियों का अक्षरशः मिलान करके सत्यार्थप्रकाश नहीं छपवाया। यदि मिलान करके छपाते तो यह भारी श्रमसाध्य कार्य अब कदापि नहीं करना पड़ता। कोई भी सुहृद् जन दोनों प्रतियों से इसकी परीक्षा कभी भी कर सकता है। पं० भगवद्दत्त जी आदि ने कहीं-कहीं नाममात्र का मिलान किया है।

इधर तो एक व्यक्ति को संशोधन का अधिकार देने पर मीमांसक जी आपत्ति कर रहे हैं और उधर आप लिखते हैं—"सत्यार्थप्रकाश शताब्दी पर विशिष्ट संस्करण प्रकाशित करने के लिए योजना बनाई जो शुद्धता की दृष्टि से सर्वोत्तम होवे, इस कार्य को मैंने स्वयं किया।"

क्या मीमांसक जी यहां (अजमेर में) अकेले कार्य नहीं कर रहे? क्या इनका कोई सम्पादक मण्डल था जो ये देवकरणि जी पर आक्षेप कर रहे हैं? क्या आप ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो अकेले ही सब काम ठीक कर सकते हैं और कोई नहीं हो सकता? आप से अधिक सूक्ष्मेक्षिका और तीक्ष्ण बुद्धि रखने वाले लोग भी इस भूतल पर लाखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग हैं। और आगे भी होते रहेंगे।

७. १४वें समुल्लास में काटी हुई आयतें नहीं छापनी चाहिए थीं।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि महर्षि दयानन्द जी ने बहुत सोच विचार कर ही ये आयतें समीक्षा सहित लिखी थीं। सो उनके गूढ़ भाव को न समझ कर समर्थदान जी ने इनको काट दिया और यह लिख दिया कि कि ये आयतें अथवा इनका भाव पहले आ चुका इसलिए काट दी गईं।

यहां मुन्शी समर्थदान और पं० महेशप्रसाद मौलवी इस बात को भूल गये प्रतीत होते हैं कि ऋषि जी ने ये आयतें कुरान के पुनरुक्त दोष को दर्शाने के लिए लिखी थीं। वे चौदहवें समुल्लास के अन्त में लिखते हैं—"और पुनरुक्त दोष का तो कुरान जानो भण्डार ही है।" इस वाक्य की रचना तभी सार्थक हो सकती है जबकि ऋषिवर पहले कुरान के पुनरुक्त दोष दर्शा चुके हों। अतः पुनरुक्त आयतें और और उनकी समीक्षाएं नहीं काटनी चाहिए थीं। इसीलिए सभा ने ये आयतें पुनः जोड़ कर पहले हुई भूल का समाधान कर लिया है।

विशेष—श्री मीमांसक जी व्यर्थ ही इस समस्या में फंस गये हैं कि पहला फार्म दुबारा छपा है, साधारण जन इसे नहीं समझ सकते, परन्तु मुझ जैसे व्यक्ति से यह नहीं छिप सकता।

हम अपने प्रेस में अपनी सुविधानुसार ग्रन्थ छाप रहे हैं, हमारा मैटर कितने पृष्ठों में आ सकता है उसे कहां छापना है, यह हमारा काम है, इस अनावश्यक विषय को लेकर व्यर्थ में ही सिर-दर्द लेने की मीमांसक जी को आवश्यकता नहीं है। यह कोई वेद के सिद्धान्त की तरह गूढ़ रहस्यात्मक बात नहीं है। इस व्यर्थ के विषय को लेकर मीमांसक जी ने अपने लेख में आधा पृष्ठ काला कर लिया। सिरदर्दी तो इनको वहां होनी चाहिए थी जहां प्रथम संस्करण सत्यार्थप्रकाश के हस्त लेख से श्लोक लेकर अपने शताब्दी संस्करण में अशुद्ध छाप दिये। क्या यही शुद्धता का सम्पादन कौशल है? मूल ग्रन्थ तो देख तो लिया होता।

लेख के शीर्षक में अवाञ्छनीय परिवर्तन किये जाने का उल्लेख करके उदाहरण एक भी नहीं दिया। मूल प्रति में दशम समुल्लास के भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण में कोई आपत्तिजनक बात नहीं थी। परन्तु प्रतिलिपि कर्त्ता ने उसमें 'नीच' 'चमार' आदि शब्द डाल दिए, क्या यह परिवर्तन वाञ्छनीय है? इस पर तो मीमांसक जी ने कोई आपत्ति नहीं उठाई। ऐसे शतशः उदाहरण दिये जा सकते हैं। ऐसे पद मूल ग्रन्थ को प्रतिलिपि करते समय डालने से ऋषि दयानन्द की गरिमा ही नष्ट होती है। अतः सभा ने मूल ग्रन्थ को प्रकाशित करके जगत् का महान् उपकार किया है। इस शुभ कार्य से मीमांसक जी को ईर्ष्या-द्वेष नहीं करना चाहिए। यह विद्वानों का लक्षण नहीं है।

यदि मीमांसक जी में साहस और योग्यता है तो वे एक भी उदाहरण ऐसा दिखा दें जहां हमने महर्षि दयानन्द के मूल ग्रन्थ में परिवर्तन करके छापा हो। यदि आप अस्वस्थ हैं तो भगवान् आप को शीघ्र स्वास्थ्य एव दीर्घायु करे। तब तक आप अपने किसी सुयोग्य शिष्य से यह कार्य करवा सकते हैं। लग हाथ यह भी सिद्ध कर लिया जाये कि मूल ग्रन्थ कौन सा है। क्योंकि आप तो मुद्रण प्रति को ही वास्तविक मानते हैं, जबकि विद्वानों की दृष्टि से देखा जाये तो उसमें पर्याप्त प्रक्षेप किए हुए हैं।

और मीमांसक जी १९९१ में छपे इस संस्करण को मजाक बताते हुए जो जलाने की बात कहते हैं। सो ऐसे पवित्र ग्रन्थ को जलाना तो ज्ञानद्वेषी राक्षसों का कर्म है। यदि जलाना ही है तो आप ने ऋषि ग्रन्थों पर जो टिप्पणियों का असह्य भार लाद रक्खा है, उसे जला डालिये महर्षि दयानन्द पर आक्षेप करने वाली "मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द और उनका कार्य" नामक पुस्तक को भस्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात् कर दीजिए। इससे भी सन्तुष्टि न होती हो तो आग लगा दीजिए अपनी उस पुस्तक को जिसमें ऋषि दयानन्द के स्वसृवंश आदि के विषय में झूठ व भ्रामक पुलिन्दा एकत्र कर रक्खा है।

लेख के अन्त में अन्य मतावलम्बियों को भड़काने का भी कुप्रयास किया गया है। अपने को विद्वान् और ऋषि दयानन्द को सब से अधिक समझने का दम्भ भरने वाले मीमांसक जी की अन्तश्चेतना की यह पहचान है। ईश्वर इनको सुबुद्धि दे।

ज्ञात हो कि इस संस्करण को मूलप्रति तथा प्रतिलिपि से मिलान करने वाले हमारे सहयोगी श्री विरजानन्द दैवकरणि श्री मीमांसक जी के पास भी २-३ बार गये और चिन्त्य स्थलों के लिए उनका परामर्श भी लिया। इसी समय एक बार श्री मीमांसक जी ने यह भी कहा कि यह कार्य होना तो चाहिए था, किन्तु अब नहीं। अपितु १०७ वर्ष पहले होना चाहिए था। यदि अब कर रहे हो तो जो पाठ प्रथम प्रति से प्रतिलिपि करते समय प्रेस कापी में छूट गये हों उन्हें ही जोड़ दिया जाये। शेष जो वृद्धि लेखक ने कर दी उसे न हटाया जाये। यह बात सम्पादन कला की दृष्टि से अनुचित थी सो हमारे संशोधक महोदय ने इसे अस्वीकार कर दिया।

इनसे अतिरिक्त स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, स्वामी सर्वानन्द जी, स्वामी ओमानन्द जी, पं० विशुद्धानन्द जी, पं० राजवीर जी शास्त्री आदि से भी कई स्थलों के विषय में विचार-विमर्श किया है।

हमें लगता है कि हमारे इस शुद्ध संस्करण से श्री मीमांसक जी का सारे जीवन का परिश्रम ही व्यर्थ हो गया है, उनकी सैकड़ों टिप्पणियां निरर्थक हो गई हैं, इसीलिए वे बौखलाये हुए हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि श्री मीमांसक जी आर्यसमाज के चतुर्थ नियम को क्रियान्वित रूप देने का साहस करके दिखायें, इसी में उनकी विद्वत्ता है।

श्री मीमांसक जी को सम्भवतः यह ज्ञात नहीं है कि हमने जिस व्यक्ति को यह शुभ कार्य दिया है उनका दर्जनों ग्रन्थों के सम्पादन का २० वर्ष का क्रियात्मक अनुभव है। कई सौ वर्ष पुराने सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थों को आद्यन्त पढ़ने, देखने, परीक्षण करने का भी अनुभव है। प्राचीन मुद्रा और शिलालेखों के अधूरे लेखों की संगति लगाने का दीर्घकालीन अनुभव है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट आर्ष प्रणाली से गुरु चरणों में बैठकर शास्त्र चिन्तन लम्बे समय तक किया है। साथ ही आप की सभी विशिष्ट रचनाएं भी गम्भीरता पूर्वक पढ़ी हैं। ऐसे व्यक्ति को अयोग्य और सम्पादन कला से अनभिज्ञ मानना स्वयं अपनी मूर्खता प्रकट करना है। यदि आप की भूलें दिखाने लग गए तो एक पूरा पोथा बन जायेगा। उनका उत्तर देते विराम नहीं ले पायेंगे। इसलिए ईश्वर के लिए आर्यसमाज पर दया करें और कलह को न बढ़ाएं।

अन्त में परोपकारिणी सभा सभी आर्य महानुभावों और प्रकाशकों और संस्थाओं से नम्रता पूर्वक आग्रह करती है कि भविष्य में इसी संस्करण का प्रचार-प्रसार और प्रकाशन किया जाये, जिससे एकरूपता बनी रह सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लाघनीय कार्य में भी दोष दर्शन क्यों ?

फरवरी १९९२ के 'वेदवाणी' पत्र में श्री पंडित युधिष्ठिर मीमांसक जी का 'ऋषि-भक्त आर्य जनता सावधान' नामक लेख पढ़कर आश्चर्य हुआ। क्योंकि परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित जिस 'सत्यार्थप्रकाश' के विषय में पण्डित जी के विचार इस प्रकार हैं—

(क) सत्यार्थप्रकाश के वैदिक यन्त्रालय से छपे संस्करणों में भी अनेक बार पाठ बदल गये।

(ख) सत्यार्थप्रकाश में तो इतने अधिक परिवर्तन व मुद्रण दोष हुए हैं कि यदि हम सब का टिप्पणी में संग्रह करते तो उनका आकार न्यूनातिन्यून सत्यार्थप्रकाश का एक तिहाई हो जाता।

(द्र० 'मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द और उनके कार्य' पृ० ३७)

और ऐसे ही विचार कुछ अन्य विद्वानों से भी सुनने में आये हैं। अर्थात् आर्य जनता की इस मांग पर कि सत्यार्थप्रकाश में पाठ संशोधन किए जाएँ, इसमें बहुत अशुद्धियां हैं। परोपकारिणी सभा ने मूलप्रति से मिलाकर 'सत्यार्थप्रकाश' का ३७वां संस्करण प्रकाशित कर दिया। क्योंकि छपते-छपाते जो इस ग्रन्थ में त्रुटियां हो गई थीं, उनका निराकरण करने का यही स्वच्छ उपाय हो सकता था। परन्तु पण्डित जी ने इसको देखकर धन्यवाद तो सभा का किया नहीं, किन्तु आर्य जनता से सावधान रहने की अपील कर बैठे और यहां तक लिख बैठे कि इस संस्करण को जला देना चाहिए। ऐसे कठोर शब्द लिखकर पण्डित जी क्या चाहते हैं, यह तो वे ही जानें किन्तु पण्डित जी अपने पूर्व लिखे और इस लेख की बातों को मिलाकर तो देखें कि कहीं मतिभ्रम तो नहीं हो गया है ?

आप ने इस लेख में मुन्शी समर्थदान को ऋषि दयानन्द के प्रति विशेष श्रद्धा रखने वाला लिखा है। और आगे यह भी लिखा है—मुन्शी समर्थदान ने ऋषि दयानन्द की आज्ञा के बिना सत्यार्थप्रकाश में स्वयं कुछ हस्तक्षेप नहीं किया। और इससे पूर्व मुन्शी समर्थदान के विषय में यह लिखा है—'मुन्शी समर्थदान से यह साधारण भूल कैसे हुई, यह हमारी समझ में नहीं आता।'

(द्र० मेरी दृष्टि में० पृ० ४०)

इसका अभिप्राय यह है कि आप की दृष्टि में मुन्शी समर्थदान कितना भी चाहे ऋषि भक्त था, किन्तु उसने भी भूलें की थीं। परन्तु परोपकारिणी सभा ने अब पाण्डुलिपि से मिलान करके जो सत्यार्थप्रकाश छापा है, उसके विषय में निम्नलिखित करुण-क्रन्दन क्यों—

'इस धींगामुश्ती से जहां मुन्शी समर्थदान द्वारा किया गया सारा परिश्रम नष्ट हुआ, वहीं ऋषि दयानन्द के आदर्शों पर भी पानी फेर दिया गया।'

अब पण्डित जी शान्तमना विचार तो करें कि 'सत्यार्थप्रकाश' का पाण्डुलिपि से मिलाकर प्रकाशन सभा का क्रूर व्यवहार है, अथवा इसके छपने से आप के प्रकाशन में दी गई टिप्पणियों का पर्दाफाश होने से आप ने जो क्रूर व्यवहार किया था, उसका उजागर होना तो कहीं आप के दुःख का कारण नहीं है।

आप इस लेख में एक अन्य भ्रान्ति भी पैदा कर रहे हैं कि सभा के द्वारा जिस पाण्डुलिपि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलान करके यह अमर ग्रंथ छापा गया है, उसे आप रफ कापी कहकर आर्य जनता को भ्रान्ति में क्यों रख रहे हैं? पाण्डुलिपि और रफ कापी दोनों भिन्न बातें हैं। और इस प्रकाशन के सभा के कार्य को आप पौराणिक विद्वान् पं० कालूराम के द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश से अधिक निन्दनीय बता रहे हैं, यह कैसी बिडम्बना है। आप ने अपने इस लेख में सभा के मूल कापी की उपेक्षा के वाक्य को भी असत्य बताया है। दुर्जनतोष न्याय से आप की बातों को सत्य भी मान लिया जाये कि इससे पूर्व भी मूल कापी को भी देखा गया था, जब आप यह स्वीकार कर रहे हैं कि मूल प्रति और मुद्रण प्रति दोनों को ऋषि दयानन्द ने देखकर पर्याप्त संशोधन किये थे, फिर आप जिस मूल प्रति से मुद्रण प्रति को तैयार किया गया है, उसे प्रामाणिक मानने के लिए क्यों उद्यत नहीं हो रहे हैं? क्या इनमें आप अन्तर मानते हैं? यदि ऐसी कोई भ्रान्ति है तो फिर भी मूल प्रति ही प्रामाणिक माननी चाहिए। क्योंकि मुद्रण प्रति में तो लेखक की भूलें भी हो सकती हैं, मूल प्रति में नहीं।

(राजवीर शास्त्री)

भारतीय नववर्ष पर शुभकामनाएं

आए स्वर्णिम नवल प्रभात

—राधेश्याम 'आर्य'

सत्य-धर्म की विजय पताका, पुनः पृथिवी पर लहरे।
शान्ति सफलता समरसता का ध्वज भूमण्डल पर फहरे।।
मृदुल सरोवर में जगती के खिले मनुजता का जलजात।
आए स्वर्णिम नवल प्रभात।।

द्वेष-ईर्ष्या हिंसा का तम, यथा शीघ्र हो क्षत विक्षत।
फैले नव आलोक धरा पर ज्ञान हमारा हो अक्षत।।
कटुता कल्मष तथा घृणा की, दनुजता पर हो वज्र निपात।
आये स्वर्णिम नवल प्रभात।।

शोषण-उत्पीड़न धरती का हो समाप्त, अन्याय अनय।
नई दिशा फिर हमें प्राप्त हों, हो भू पर मनुजत्व विजय।।
सारे मानव इस धरती के सत्कर्मों में हों निष्णात।
आए स्वर्णिम नवल प्रभात।।

सौम्य सुखों की तथा समृद्धि की निर्मित हो मंगल सी आशा।
जगे जवानों के अन्तर में परहित करने की अभिलाषा।।
हर्षित हो फिर वसुन्धरा यह पुलकित हो जन जन का गात।
आए स्वर्णिम नवल प्रभात।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग और श्रद्धा का अनुपम उदाहरण

—गजानन्द आर्य

इस बार परोपकारिणी सभा के ऋषि मेले पर एक ऐसे व्यक्ति के दर्शन हुए जिनके त्याग और श्रद्धा के स्वरूप को जानकर आदर से नत-मस्तक हो गया। पं० आशानन्द भजनीक की चर्चा करना चाहता हूँ। ९१ वर्षीय वृद्ध भजनोपदेशक में आज भी ऋषिभक्ति का सागर उमड़ पड़ता था जब अपनी बुलन्द आवाज में श्रोताओं को ऋषि जीवनी की पवित्र धारा में स्नान करवाते थे। उनकी मस्ती में नकलीपन की बू नहीं थी बल्कि बड़ा पवित्र लगा वह व्यक्ति जब उनको ऋषि उद्यान की ऊबड़-खाबड़ और कांटेभरी भूमि में नंगे पांव घूमते देखा। मैंने उनसे नंगे पांव चलने का कारण पूछा तब मेरी ऋषि-भक्ति बहुत छोटी लगने लगी। कहने लगे—बेटा! इस भूमि पर मेरे ऋषि की अस्थियां बिखरी पड़ी हैं। अत: इस पर जूते पहन कर चलना मुझे अच्छा नहीं लगता। श्रद्धा से ओत-प्रोत यह भावना सचमुच में त्याग सिखाती है। ऋषि के गीत गा-गाकर, जीवन को तपस्वी व मितव्ययी बनाकर इस मानव ने एक लाख रुपयों की पूंजी एकत्र की। इस पूंजी को भी समर्पित कर दिया ऋषि की उत्तराधिकारिणी सभा को। इदन्न मम के उदाहरण से आहुति देने वाले हम आर्य लोग जरा कल्पना तो करें इस त्याग की।

सभा को प्राप्त इस सात्विक दान से ऋषि उद्यान का प्रवेश द्वार निर्मित होगा। प्रवेश द्वार निर्माण की परिकल्पना तथा पं० आशानन्द जी को सभा को दान के लिए दान की प्रेरणा में सभा के प्रधान श्रद्धेय स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का महत्त्वपूर्ण योगदान है। द्वार की भव्यता के लिए स्वामी जी महाराज की विशेष रुचि है। निश्चय ही प्रवेश द्वार सुन्दर बनाया जायेगा। किन्तु सुन्दर बनाने में एक लाख रुपये की राशि पर्याप्त नहीं है। कुछ और धन इस कार्य के लिए जुटाना होगा। इस के लिए धन जुटाना बहुत अधिक कठिन नहीं है। जहां धनी-मानी सज्जनों से उद्यान में कमरे बनाने के लिए आश्वासन मिला है, वहां द्वार निर्माण में भी सहयोगी मिल सकते हैं। किन्तु हम चाहते हैं कि पं० आशानन्द जो जैसे त्यागी, तपस्वी, श्रद्धालु जनों की पवित्र कमाई का अंशदान द्वार निर्माण के लिए मिल जाये ताकि महाभारत के नेवले की तरह हमारा यह द्वार आधा ही स्वर्णिम न होकर पूरा पूरा सुनहरा लगे।

दृष्टान्त: सर्वोत्तम यज्ञ का—

महाभारत के चक्रवर्ती सम्राट् महाराजा युधिष्ठिर ने एक राजसूय यज्ञ किया। वह बृहद् यज्ञ सम्भवत: उस समय अनुपम था। देश-देशान्तरों में उस यज्ञ की बहुत चर्चा थी। यज्ञकर्ताओं को अपनी दानशीलता पर अभिमान न आ जाये इसके लिए यह कहानी महाभारत में आती है—

एक नेवला था। उसका आधा अंग सुनहरा था और आधा बदरंग था। महाभारत के यज्ञ से कीचड़ भरी मिट्टी में वह नेवला लोटपोट हो रहा था। किसी ने नेवले से लोटपोट होने का कारण पूछा। नेवले ने उत्तर दिया कि मैं एक यज्ञ में लोटपोट होकर आया हूं वहां का कीचड़ इतना कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि पूरे शरीर में नहीं लग सका किन्तु जितना लिपटा उतना यह शरीर सुनहरा हो गया है। बाकी मेरा यह आधा शरीर ज्यों का त्यों है। उस जैसी यज्ञीय मिट्टी की तलाश में मैं यहां आया था। सुना था बहुत बड़ा यज्ञ हुआ है अवश्य ही मैं सुनहरा हो जाऊँगा। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ।

पूछने वाले ने आश्चर्यचकित होकर महाभारत से भी महान् यज्ञ को जानने की इच्छा व्यक्त की। तब नेवले ने बताया—किसी गांव में एक निर्धन ब्राह्मण परिवार रहता है। कई-कई दिनों तक भर-पेट भोजन की व्यवस्था परिवार को नहीं होती। ब्राह्मण-ब्राह्मणी और एक पुत्र और पुत्रवधू चार प्राणियों के इस परिवार को एक दिन कुछ भोजन प्राप्त हुआ। हाथ मुंह धोकर यह परिवार भोजनार्थ बैठा ही था कि एक अतिथि आ पहुँचा। भूखे अतिथि के सत्कार में ब्राह्मण ने अपना भोजन अतिथि देवता को समर्पित कर दिया। भूखे अतिथि की भूख शान्त न होने पर ब्राह्मणी ने अपना अंश अतिथि को भेंट कर दिया। अतिथि फिर भी भूखा रहा तब छोटे से ब्राह्मण पुत्र और पुत्रवधू ने भी अपना हिस्सा समर्पित कर दिया। अतिथि की भूख शान्त हुई। आशीर्वाद देकर विदा हुआ। बहुत दिनों से भूखा ब्राह्मण परिवार जल का आचमन करके सो गया। अतिथि और आतिथेय द्वारा गीली हुई उस जमीन पर मैं लेटा तब मेरा यह शरीर सोने जैसा हो गया। बाकी का यह शरीर उस उस जैसे सर्वत्यागी यज्ञ की धूलि से ही सुनहरा बनेगा। यह किसी ने बताया है और मैं उस यज्ञ की तलाश में घूमता फिरता हूँ।

सर्वत्यागी यज्ञ की तुलना में महाभारत का वह बृहद् यज्ञ छोटा प्रतीत होने लगा।

—मन्त्री

श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर

◘

तरुण-तपस्वी, परम मनस्वी मुनिवर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी की

निर्वाण-शताब्दी

एक प्रबल कुशाग्र बुद्धि, अनथक परिश्रमी, उदात्तमना, मुनिवर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का नाम तो प्रायः समस्त आर्य जगत् में प्रसिद्ध है किन्तु उनके जीवन तथा कार्यों के विषय में बहुत कम आर्य बन्धु परिचय रखते हैं। इस प्रखर बुद्धि बाल का जन्म २६ अप्रैल १८६४ को मुलतान (वर्तमान में पाकिस्तान में) जिले में श्री रामकृष्ण के घर पर हुआ। उनके पूर्वजों में एक राजा जगदीश ने देश व धर्म की रक्षा हेतु अपना शीश दिया था, अतः उनके वंशज 'सिरदाना' नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। ऐसे गौरवशाली परिवार में जन्म लेने वाले इस मेधावी बालक का जन्म का नाम मूला रखा गया। उस समय यह कौन जानता था कि यही बालक भविष्य में मूल (मूलशंकर) का शिष्य बनकर अपना सर्वस्व बलिदान कर देगा। आपकी उच्च शिक्षा लाहौर में हुई, जहां विज्ञान विषय में आपने एम० ए० कक्षा उत्तीर्ण की।

पं० गुरुदत्त के नाम को पढ़कर प्रायः उन्हें जन्म से ब्राह्मण समझा जाता है, परन्तु ब्रह्मणेतर कुल में जन्म लेकर भी गुरुदत्त गुण, कर्म एवं स्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव से सच्चे ब्राह्मण थे। आपके बुद्धि वैभव का अनुमान इसी से ही लगाया जा सकता है, ये जिस पुस्तक को एक बार पढ़ लेते थे, उसे दुबारा पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती थी। प्रान्त भर की देश की परीक्षा (मैट्रिक्यूलेशन) में आपका पांचवां स्थान था। कालिज में भी पढ़ते हुए कोई छात्र उनकी बराबरी नहीं कर सका था।

२० जून १८८० में आपने आर्यसमाज में प्रवेश लिया। आर्यसमाज में प्रवेश पाकर आपने वेद के मर्म को और महर्षि दयानन्द की मान्यताओं को समझने का अत्यधिक प्रयास किया। इसके लिए संस्कृत भाषा का भी अध्ययन प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे संस्कृत को समझने का ही नहीं, प्रत्युत धारा प्रवाह बोलने का भी आपका अभ्यास हो गया था। आपने धीरे-धीरे पाश्चात्य दर्शन एवं विज्ञान का विशेष अध्ययन बड़ी रुचि से कर लिया। डार्विन और वेन की पुस्तकें तो आपने खूब पढ़ी थीं। यूरोप के विकासवाद तथा अनीश्वरवाद के प्रभाव से आप भी बच न सके। सन् १८८१ और १८८२ का आपका समय नास्तिकता से पूर्ण ही रहा।

जीवन में महान् परिवर्तन—सन् १८८३ के अक्टूबर मास में ऋषि दयानन्द की भयानक बीमारी का समाचार देशभर में फैल गया। श्रद्धालु आर्य पुरुषों के हृदय कांप उठे। उनका अपने आचार्य दयानन्द के प्रति अत्यधिक विश्वास कि हमारे आचार्य कम से कम १०० वर्ष तो अवश्य जीवित रहेंगे, इस दुःखद समाचार से उनकी समस्त आशाओं पर कुठाराघात हो गया। स्थान स्थान से आर्य लोग अजमेर की ओर दर्शनार्थ जाने लगे। लाहौर आर्यसमाज ने आपको ला० जीवनदास के साथ अजमेर भेज दिया। गुरुदत्त जी इससे पूर्व अर्धनास्तिक ही बन चुके थे। पाश्चात्यों के विज्ञान के प्रभाव ने आपके हृदयस्थ ईश्वर विश्वास की जड़ों को ही हिला दिया था। ऋषि की मृत्यु का दृश्य आपने बहुत ही ध्यान से देखा। जिसका आपके कोमल हृदय पर बड़ा आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। आपने देखा कि एक आस्तिक ईश्वर का सच्चा भक्त अत्यधिक शारीरिक पीड़ाओं को सहन करता हुआ पर्वत तुल्य धैर्य रखे हुए है और बड़ी शान्त मुद्रा से मृत्यु का आलिंगन कर रहा है। इस करुणापूर्ण दृश्य ने गुरुदत्त के हृदय में श्रद्धा और विश्वास को पुनः उत्पन्न करा दिया। उनके हृदय-मन्दिर में ईश्वरीय विश्वास व श्रद्धा की ज्योति पुनः प्रकाशमान हो उठी। इस ऋषि के मृत्यु-दृश्य ने नास्तिक हृदय के मरुस्थल में भी आस्तिकता की सरस्वती प्रवाहित कर दी। इस १९ वर्षीय युवक ने देखा कि सचमुच ही ईश्वर की सत्ता अवश्य है। और ईश्वर की प्राप्ति के लिये योग व ब्रह्मचर्य का महत्त्व भी समझ में आने लगा। और उन्हें यह भी समझ में आया कि साधारण लोग जिस मृत्यु को महान् दुःख समझते हैं, उसे एक योगी प्रिय प्राप्ति का आनन्द समझ रहा है। और उस ऋषि के अतुलनीय तेज व धैर्य को देखकर मानो इस युवक को कोई खोई हुई अमूल्य वस्तु मिल गई।

अजमेर से लौटकर जब गुरुदत्त जी लाहौर पहुँचे, तो आप अपना समस्त समय ऋषि-दयानन्द के मन्तव्यों को क्रियान्वित करने में ही लगाने लगे और आर्यसमाज के तत्कालीन प्रधान लाला साईंदास के दांये हाथ बनकर कार्य करने लगे। आर्य प्रमुखों ने ऋषि की यादगार में डी० ए० वी० कालेज की स्थापना का संकल्प लिया। पंजाब विश्वविद्यालय में एम० ए० परीक्षा में सर्वाधिक अंक पाने वाले पं० गुरुदत्त जी की धाक पूरे प्रांत में फैली हुई थी। आपने इस संस्था के लिए कितना घोर परिश्रम किया, यह वर्णन नहीं किया जा सकता। इस संस्था के माध्यम से आप वैदिक धर्म की शिक्षा का प्रसार करना चाहते थे। आप का विचार था कि इस संस्था को वेद-वेदाङ्गों के पठन पाठन का केन्द्र बनाया जाये। इसके लिए धन इकठ्ठा करने के लिए एक भिक्षा मण्डली बनायी और स्थान-स्थान पर जाने आने में इतने अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यस्त हो गये कि आपका स्वास्थ्य भी खराब हो गया। स्थान स्थान पर जाकर भाषण देना, इस संस्था के प्रसाद के लिए प्रयास करना, समय पर न खाना-पीना और न सोना और न विश्राम करना। आप के भाषणों में भी बड़ी विलक्षणता होती थी। सारे देश में इस संस्था की धूम मचाकर इसकी चहुँमुखी उन्नति कराई। परन्तु आपके साथियों ने इस संस्था को उद्देश्यानुरूप चलाने में आपका साथ नहीं दिया, इससे वे अत्यन्त दुखी भी रहने लगे।

वेदों व योग का दीवाना—पं० गुरुदत्त को योग की धुन तो विद्यार्थी काल से हो थी। जहां भी इन्हें योग की चर्चा होती दीखती अथवा योगी का पता लगता, वहीं जाकर योग विषयक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया करते थे। एक बार प्राणायाम का अभ्यास करते हुए माता ने देखा कि गुरुदत्त नासिका छिद्र को बन्द करके सांस को बाहर भीतर रोक रहा था। यह देखकर माता ने नाराजगी भी प्रकट की। परन्तु आप अपनी धुन के इतने पक्के थे कि लोग इन्हें पागल समझने लगे थे। अजमेर में जाकर ऋषि के मृत्यु-दृश्य को देखकर तो योग सीखने की इच्छा और अधिक बढ़ गई। इसके लिए योगदर्शन का भी स्वाध्याय किया। पण्डित जी की डायरी के पन्नों से भी उनकी योग-साधना विषयक जानकारी मिलती है। और योग-साधना में बाधक समझकर आपने गवर्नमेण्ट कालिज का प्रोफेसर का पद भी छोड़ दिया था। सहयोगी हितैषी मित्रों के समझाने पर भी आपने उनकी एक भी बात न सुनी। यह प्रथम ही अवसर था कि इतने बड़े पद को योग सीखने में बाधक समझकर किसी भारतीय ने छोड़ा हो।

आपकी दूसरी धुन थी वेदों के अर्थ समझने की। वेदों पर आपकी अत्यधिक श्रद्धा हो गई थी। निरन्तर वेदभाष्यों का स्वाध्याय करते रहते थे। एक विज्ञान के प्रोफेसर की इस धुन को देखकर सभी साथी चकित हो जाते थे। इसी धुन में आप को ऐसा आभास हुआ कि वेदार्थ समझने के लिए अष्टाध्यायी बहुत सहायक होगी। फिर तो क्या, अष्टाध्यायी को हो पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और धीरे धीरे आपके जो साथी थे, मा० दुर्गादास, ला० जीवनदास, मा० आत्माराम आदि सभी के हाथों में अष्टाध्यायी की पुस्तक दिखाई देने लगी। यदि एक भी दिन किसी कार्यवश इसके पढ़ने में नागा हो जाती तो पण्डित जी को अत्यधिक पीड़ा होती थी। धीरे धीरे अष्टाध्यायी के साथ वेदार्थ दीपक निरुक्त का भी स्वाध्याय करने लगे और वेदार्थ समझने का पूर्ण प्रयास करने लगे। एक आर्य पत्रिका में छपी सूचना से यह भी स्पष्ट होता है कि आपने डी० ए० वी० कालिज की शिक्षा से असन्तुष्ट होकर उपदेशक क्लास चलाने का भी निर्णय लिया, जिसमें आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा दी जाये। इस कार्य में कुछ समय तक विवाद भी होता रहा, परन्तु अन्त में विजय आपकी हुई। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को उपदेशक क्लास चलानी पड़ी।

वैदिक साहित्य का प्रकाशन

(१) वैदिक संज्ञा विज्ञान—इस पुस्तक का प्रकाशन वेदों के अर्थों को समझने के लिए किया गया था जो कि आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में उपयोगी समझकर रक्खी गई थी। यह ग्रन्थ पहले आर्यपत्रिका के अंकों में छपता रहा, बाद में उसको पुस्तक रूप में भी छापा गया।

(२) उपनिषद् भाष्य—आपने ईश, मुण्डक व माण्डूक्य उपनिषदों का भाष्य भी छपवाया था। इससे आपकी बढ़ती हुई आध्यात्मिक प्रवृत्ति का भी बोध होता है। एक अद्वैतवादी संन्यासी अच्युतानन्द जी से पण्डित जी उपनिषदों का पाठ पढ़ा करते थे। आपकी प्रखर बुद्धि का स्वामी जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आपको शिष्य का ही अनुयायी बनना पड़ा। और स्वामी जी पूर्णतः आर्यसमाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रैतवाद के समर्थक बन गए।

(३) वैदिक मैगजीन—आपने इस पत्रिका का प्रकाशन जुलाई १८८९ में प्रारम्भ किया। इससे पूर्व आर्य पत्रिका में आपके लेख छपते रहते थे। अंग्रेजी के विद्वान् आपके लेखों को बहुत रुचि से पढ़ते थे। योरुप का कोई भी विद्वान् वैदिक साहित्य के विषय में जो भी आक्षेप करता या कुछ भी प्रमाण रहित लिखता था, पण्डित जी उसका सप्रमाण उत्तर इस पत्रिका के माध्यम से दिया करते थे। यह वैदिक मैगजीन अन्य पत्रिकाओं की भांति नहीं थी, इसमें वेद, उपनिषत् तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों की व्याख्याएँ छपती थीं। वैदिक सिद्धान्तों पर ही लेख छपते थे अथवा विरोधियों के उत्तर छपते थे। यह पत्रिका इस प्रतिभाशाली युवक की महीने भर की दिमागी कसरत का ही परिणाम रूप होती थी। आपकी लेखन शैली बहुत ही प्रबुद्ध होने से अतीव प्रभावशाली होती थी। आप जो कुछ भी लिखते थे उसमें पूर्ण विश्वास, तर्क संगत और प्रमाणपुष्ट करके लिखते थे। आपके लेखों में दार्शनिकता की सी सावधानता और धार्मिक पुरुषों की भांति निश्चयात्मकता होती थी। यह पत्रिका शिक्षित युवकों के लिए तो एक धर्म पुस्तक ही बन गई थी। पाठक बन्धु इस पत्रिका के एक एक अंक के लिए लालायित रहते थे और इसके लेखों को ब्रह्मवाक्य की भांति पढ़ने लगे थे।

इनके अतिरिक्त वेद मन्त्रों की वैज्ञानिक व्याख्या परक और प्रो० मैक्समूलर, प्रो० मोनियर विलियम्स आदि के द्वारा किये वेदों के आक्षेपों का उत्तर देने के लिए आपने दर्जनों ग्रन्थ लिखे थे। जिनको विदेशी विद्वानों ने भी अत्यधिक सम्मान दिया था।

बिन खिले ही मुरझा गये

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी इस युग के द्वितीय शंकराचार्य थे। आपका जीवन भी २६ वर्ष तक ही रहा। १९ मार्च १८९० ई० को प्रातः ७ बजे इस दयानन्द ऋषि के सच्चे शिष्य ने ईश्वर का स्मरण करते हुए इस भौतिक शरीर को त्याग दिया था। इस थोड़े समय में इतने अधिक कार्यों का भार अपने कन्धों पर रखकर कार्यक्षेत्र में उतरना, जिनको करने की क्षमता न होते हुए भी इस धुन के धनी तरुण तपस्वी ने शरीर के साथ घोर अन्याय किया, जिसके कारण स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला गया। लोग ऐसा कहते हैं कि 'वैदिक मैगजीन' पत्रिका के लेखन में जब ये लगते थे तब कई कई दिन तक घर से बाहर नहीं निकलते थे। निरन्तर ४८-४८ घण्टों तक नींद व भोजन का त्याग कर लेखन के कार्य में लगे रहते थे। कार्याधिक्य के कारण तो स्वास्थ्य खराब हो ही गया, साथ ही एक अन्य कारण बना। योग साधना का कार्य किसी अनुभवी गुरु के सान्निध्य में ही करना चाहिए, किन्तु आपने स्वयं ही प्राणायामादि का अभ्यास करना चाहा, उसका भी दुष्परिणाम शरीर पर पड़ा। जिसके कारण इस आर्यों के होनहार युवक को क्षयरोग ने आ घेरा, जो चिकित्सा करने पर भी ठीक नहीं हो सका।

इस प्रकार एक आस्तिक महात्मा, निर्भीक धर्मात्मा, विमलात्मा, गम्भीर अनुसन्धाता, अनेक भाषाओं का वेत्ता, धुरन्धर विद्वान् व पत्रकार, समाजसेवी कार्यकर्ता, भारतीय संस्कृति व सभ्यता का प्रबल पोषक, युवकों का पथ-प्रदर्शक, उपदेशक, शास्त्रार्थ-विजेता पण्डित गुरुदत्त अपने जीवन की पावन सुगन्ध से विधर्मियों को भी मोहित कर गया और बहुत अल्प समय में ही आर्यजनों को बिलखता छोड़ कर परमपिता परमात्मा की अशरण-शरण में चला गया।

प्रेरणाप्रद जीवन संस्मरण

१. वैदिक सिद्धान्तों पर दृढ़ आस्था के धनी—प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जो कुछ मनुष्य उपदेश करता है, उस पर आचरण बहुत कम होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परन्तु पण्डित जी मन, वचन, कर्म में सदा एकता रखते थे। वे पक्के आर्य थे। जैसा वे कहा करते थे, उस पर पूर्णतः आचरण भी करते थे। आपके पिताजी का निधन हो गया। बिरादरी के लोगों ने वेद विरुद्ध तेरहवीं आदि करने के लिए बहुत बल दिया, यहाँ तक कि बिरादरी से बहिष्कार करने की धमकियाँ दीं, परन्तु यह आर्यवीर चट्टान की भांति अड़ गया और वेद विरुद्ध एक भी क्रिया नहीं होने दी। इस बात का बहुत प्रभाव हुआ और हजारों युवकों ने इससे एक प्रेरणा ली।

इसी प्रकार एक बार आप बीमार हो गये। डाक्टरों ने मछली का तेल सेवन करने के लिए कहा। सम्बन्धी और सहयोगियों ने भी बड़ा आग्रह किया। किन्तु इस सिद्धान्तों पर दृढ़ आस्था रखने वाले युवक ने सभी को यह कहकर निरुत्तर कर दिया—क्या मैं मछली का तेल अथवा मांसाहार करके अमर हो जाऊँगा? एक न एक दिन तो मरना ही है। फिर वेद विरुद्ध वस्तुओं का सेवन क्यों करूँ? मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता।

२. धन के प्रति लेशमात्र भी आकर्षण नहीं—संसार में दो बड़े आकर्षण हैं—काञ्चन और कामिनी। इनके वशीभूत विरक्त संन्यासी, वीर योद्धा तथा बड़े बड़े सम्राट् भी देखे गये हैं। ये दोनों इतने प्रबल कारण हैं जिनके वशीभूत होकर मनुष्य बड़े से बड़े अन्याय, पाप या अकर्तव्य को भी कर बैठता है। परन्तु इस युवक को ये प्रलोभन लेशमात्र भी अपने पथ से विचलित नहीं कर सके। क्योंकि 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' के पवित्र संस्कारों के कारण धन को तो आप धूल की भांति समझते थे। अंग्रेजी राज्य में किसी कालिज का प्रोफेसर पद मिल जाना सरल नहीं था और भारतीयों के लिए गवर्नमेण्ट कालिज का यह पद तो दुर्लभ ही था। परन्तु इस आर्यवीर ने अपने कार्यों में सर्विस को बाधक समझकर अपने सहयोगियों व सम्बन्धियों के मना करने पर भी प्रोफेसर पद का त्याग कर दिया और अपना पूरा समय जन सेवा में लगाने लगे। आपने धन की लालसा पर एक पुस्तक भी लिखी थी। आप अन्य जनों से भी यही कहा करते थे—जगत् के समस्त ऐश्वर्य का स्वामी तो परमेश्वर है, उसका त्यागपूर्वक ही भोग करना चाहिए। और जो ईश्वर पर आस्था रखता है, उस भक्त को तो धन की लालसा होनी ही नहीं चाहिए।

३. जाति पांति के भेदभाव से दूर—हम संसार में देखते हैं विशेषकर भारतवर्ष में, हमारी एकता व संघटन के कार्यों में एक सबसे बड़ी बाधा है—जाति-पांति का भेदभाव। यद्यपि भारतीय संस्कृति में जन्म से प्राप्त जाति-पांति को न मानकर गुण, कर्म, स्वभाव, पर ही विशेष बल दिया जाता है, परन्तु इस समय हम सभी जाति पांति के कारण इतने अधिक विभक्त हो गये हैं जिनके कारण गुणवत्ता, विद्वत्ता, कुलीनता योग्यता आदि को पीछे धकेल दिया गया है। परन्तु ऋषि भक्त पण्डित जी के जीवन में यह दोष बिल्कुल भी न था। वे तो कहा करते थे कि अपने पुत्रों का विवाह गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार ही करेंगे और इसीलिए जाति सूचक कोई शब्द अपने नाम के साथ नहीं लगाते थे। श्री मास्टर आत्माराम अमृतसरी ने लिखा है कि पं० गुरुदत्त आर्यों को जाति सूचक शब्दों को लगाने से रोकते थे।

४. मांसाहार के प्रबल विरोधी—यद्यपि डी० ए० वी० कालिज के अधिकारियों व कार्यकर्ताओं में इस विषय में बड़ा मतभेद था, पुनरपि पण्डित जी शुद्ध शाकाहारी थे। जब कोई व्यक्ति उनके सामने कहता था कि क्षत्रियों के लिए तो मांसभक्षण अत्यावश्यक है, तब पण्डित जी प्राचीन और वर्तमान वीर जातियों के उदाहरण देकर इस वेद विरुद्ध एवं स्वास्थ्य नाशक मिथ्या मत का बड़ी योग्यता से प्रतिवाद किया करते थे।

इस प्रकार निरभिमानी, विनम्र, सुशील, निर्धनों के हितैषी, विलक्षणवक्ता पं० गुरुदत्त के गुणों का वर्णन कहां तक करें? क्योंकि—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

संकलयिता : राजवीर शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि-महिमा

टेक-- कैसे हे ऋषिवर ! गुण तेरे,
इस जिह्वा से गाएं हम ।
तेरे ही मार्ग पर चलकर,
सच्चे सुख को पाएं हम ।।

सोते थे हम पड़े यहां पर,
गहरी निद्रा में सारे ।
तूने ही थे स्वामी सब के,
दुःखड़े आकर के टारे ।।
उतरे ना ऋण तेरा चाहे,
निज की भेंट चढ़ाएं हम ।। कैसे हे…

औरों के दुःख दूर करण तूने,
अपने सुख को छोड़ा था ।
माता और पिता से तूने,
अपना नाता ही तोड़ा था ।।
मिले न त्यागी तुम सा कोई,
ढूंढें और ढुंढाएं हम ।। कैसे हे…

खा-खाकर के बर्फ हिमालय
की कंदराओं में फिर कर ।
खोज करी थी सच्चे शिव की,
भालू सिंहों से घिरकर ।।
झेले संकट ऐसे तूने,
सुनकर भी भय खाएं हम ।। कैसे हे…

अमृत देकर हम को तूने,
विष का घूंट चढ़ाया था ।
थैली दे निज हत्यारे को,
मरके 'निडर' बनाया था ।।
तेरे उपकारों को सुनकर,
अचरज में भर जाएं हम ।। कैसे हे…

—पं० फूलचन्द शर्मा निडर
लोहड़ बाजार, भिवानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज के स्थापना दिवस पर—

एक अमर शहीद का एक बलिदानी की चिता पर आर्यों को सन्देश

६ मार्च १८९७ का दिन भारत के इतिहास में बहुत ही अभागा था, जिस दिन भारत के एक वीर लाल ने भारत की एकता और अखण्डता के लिए जो शुद्धि-चक्र चलाया था, उस कार्य को बहुत बड़ा धक्का लगा। पण्डित लेखराम जी ऋषि दयानन्द की पावन जीवनी लिख रहे थे कि एक कट्टर परस्ती मदान्ध मुसलमान ने एकान्त अवसर पाकर पेट में छुरा मारकर लेखराम जी की जीवनलीला समाप्त कर दी। उस वीर की अन्तिम यात्रा का वर्णन करते हुए एक लेखक ने लिखा था—

"वीर की अर्थी के साथ सहस्रों मनुष्यों का तांता लग रहा था। लाहौर के नर नारी इस निर्भीक युवक के बलिदान पर अत्यन्त क्षुब्ध थे। आर्यवीरों में बहुत जोश व उत्साह का दृश्य अवर्णनीय ही था। मानो इस वीर के बलिदान ने सोतो सिंह तुल्य आर्य जाति को जगाकर नया जीवन ही दे दिया था।"

इस श्मशान की प्रचण्ड अग्नि ने मानो आर्य जाति के समस्त भेदभावों को भस्म कर राख बना दिया था। उस समय ज्वालामुखी के तुल्य उठती हुई उमंगों से पूर्ण आर्य जाति को महात्मा मुन्शीराम ने सम्बोधित करते हुए जो कुछ कहा था, वह आज की स्थिति में भी वैसे ही शिक्षाप्रद व प्रेरणाप्रद है—

'हम सब को चाहिए कि हम इस वीर की चिता के समीप खड़े होकर यह प्रतिज्ञा करें कि हम आपस की फूट को हटाकर प्रेमपूर्वक मिलकर काम करेंगे। यदि फूट का त्याग नहीं किया तो इस वीर के बाकी कार्यों को पूरा करना सम्भव नहीं होगा।'

आर्यसमाज के स्वर्णिम युग की झांकी

आर्यसमाज के बढ़ते हुए प्रभाव का वर्णन एक विदेशी विद्वान् की लेखनी से पढ़िए—

(क) मुझे एक आग दिखाई पड़ती है जो कि सर्वत्र फैलती जा रही है। असीम प्रेम की आग जो कि समस्त द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है।

(ख) अमेरिका के मैदानों, अफ्रीका के विस्तृत जंगलों, एशिया के उन्नत पहाड़ों और यूरोप के विशाल राज्यों में इस भयंकर आग की ज्वालाओं को स्पष्ट देखा जा रहा है। यह आग सनातन आर्य धर्म को स्वाभाविक पवित्र दशा में लाने के लिए एक भट्टी में थी, जिसे 'आर्यसमाज' कहते हैं। यह आग भारतवर्ष के एक महान् योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशित हुई थी। हिन्दू और विधर्मी मुसलमान आदि सभी इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिए चारों ओर से दौड़े, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैलने लगी।

(ग) इस फैलती हुई आग से रोग के स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आरोग्य, झूठे विश्वास की जगह तर्क, पाप के स्थान में पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह समता, नरक के स्थान में स्वर्ग, दुःख के स्थान में सुख, भूत-प्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य हो जायेगा। मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हूं।

—एण्ड्रयूज जैक्सन डेविस

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति आर्यसमाज के इतिहास (प्रथम भाग) में लिखते हैं—१९वीं शताब्दी के मध्य में भारत पर दो संकट आये हुए थे—एक ओर अन्धकारपूर्ण रूढ़िवाद था तो दूसरा हेतुवाद के पर्दे में छिपी घोर नास्तिकता। महर्षि ने सब विषयों को बुद्धि की कसौटी पर कसकर रूढ़िवाद के रंगीन दुर्ग की दीवारें तोड़ी थीं और एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर में विश्वास की रक्षापंक्ति बनाकर मानसिक नगरी को उजड़ने से बचाया था।

□□□

ऋषि का एक सुन्दर स्वप्न

—डा० पुष्पावती, एम०ए०, पी-एच०डी०

आर्यसमाज क्या है? संक्षेप में उत्तर दें दिव्य अनुभूति एवं मानव विकास की चरम सीमा प्राप्त एक ऋषि हृदय का एक स्वप्न था। ऋषि हृदय की भावना व विचार के अतिरेक का सम्मिश्रण था। वे समग्र विश्व के कल्याण का चित्रण कर रहे थे। मानव जाति के इतने पुण्य अर्जित नहीं थे कि वे सुदीर्घ काल तक इस धारा को सुवासित करते हुए मानव कल्याण के कार्यक्रम को पूर्ण कर जाते। फिर भी उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना कर दी, जिसका मुख्य लक्ष्य था "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"।

वास्तव में वे 'आर्यसमाज' के रूप में ही समग्र विश्व को देखना चाहते थे और इसके लिए आर्यसमाज की व्यवस्था वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार होना उनका मन्तव्य था। अतः आर्य सदस्य की आन्तरिक व्यवस्था वर्णाश्रम के अनुसार ही होनी चाहिए थी अर्थात् आर्यसमाज में प्रवेश लेने के समय ही आर्यसमाजी का वर्ण उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार निर्धारित कर दिया जाना चाहिए था और तदनुसार समाज में उसका स्थान निश्चित कर दिया जाना चाहिए था और वर्णानुसार ही हमारी अर्थ-व्यवस्था (अर्थ रखने का अधिकार तथा अर्थवितरण की प्रणाली) भी होती।

इस वैदिक समाज का एक जीवित जाग्रत उदाहरण आर्यसमाज के रूप में जनता के सामने आ जाता, जिसके आधार पर आगे चलकर विश्वभर के नागरिकों की समाज-व्यवस्था की जा सकती और वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था की उपादेयता स्वयं सिद्ध हो जाती। वर्तमान समय में सामाजिक विशृंखला का मूल कारण वर्ण सांकर्य ही है। वैदिक वर्णाश्रम के उपरोक्त क्रियात्मक रूप के द्वारा विश्व भर के सामने एक ऐसी समाज-व्यवस्था स्पष्ट हो जाती जिसमें सामाजिक विषमताओं व विभीषिकाओं को कोई स्थान न होता जिनकी अग्नि में वर्तमान विश्व दुःखी व अशान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहा है और जन्मगत जाति व धन व इनसे उद्भूत समस्याओं का निराकरण तो स्वयमेव हो जाता। इससे भारतीय लोकतन्त्र में भी स्वच्छता व सुदृढ़ता आ जाती।

दूसरे वेदार्थ की दिशा में भी हमें क्रान्तिकारी मोड़ देना है। वह यह कि वेद मन्त्रों का सामान्य शब्दार्थ कर देने की अब तक की प्रचलित प्रणाली पूर्णतः सन्तोषजनक नहीं है। मन्त्रों की अनेकार्थता को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। इसके लिए मन्त्रार्थकर्ता को स्वभावतः एक दिशा अपनानी होगी और उसी दिशा में मन्त्रार्थ का प्रतिपादन करना होगा। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न रुचियां होती हैं, भिन्न-भिन्न अनुभव होते हैं तो जब विभिन्न व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि व योग्यता के अनुसार एक ही मन्त्र के प्रसंगानुकूल विभिन्न अर्थ रखेंगे तो वेद की विशालता का बोध होगा, तभी वेद से हम सच्चे रूप में लाभ भी उठा सकेंगे और तभी हमारा यह दावा कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, सिद्ध भी होगा।

ऋषि दयानन्द ने अपने वेद-भाष्यों में मन्त्रों की अनेकार्थता का संकेत दिया है। उसकी सुस्पष्ट अभिव्यक्ति शेष है। इसी उपक्रम में वेदमन्त्रों के वैज्ञानिक अर्थ भी अपने आप सामने आ जाएँगे, और वैज्ञानिक आधार पर प्रतिपादन से वेद समग्र विश्व की निधि स्वतः ही बन जायेगा। वेदज्ञान की सार्वभौमिकता, सार्वकालिकता का हमारा दावा भी विश्व को मान्य हो जायेगा।

विगत शताब्दी आर्य विचारों व मान्यताओं के प्रचार की शताब्दी थी। ईश दया से इसमें हम सफल हुए हैं। आज विश्व के प्रत्येक भाग में आर्य-समाज स्थापित हैं। दूसरी शताब्दी का आरम्भ हम ने वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था की क्रियात्मकता तथा वेदार्थ की वैज्ञानिक व अनेकार्थकता के साथ करना है, यही ऋषि का स्वप्न था जिसे आर्यों को पूरा करना है। विश्व पटल पर दुःख दैन्य व अशान्ति का नर्तन आर्यसमाज को इस ऋषि स्वप्न को शीघ्र ही पूरा करने के लिए तीव्रतर आह्वान कर रहा है—

आर्यो! झिझको नहीं, बढ़े चलो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्द सन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आप से भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २००/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं। आप से प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूंगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किए जा रहे हैं—

४६१. श्री सहस्त्रपाल जी (बाग वाले) ग्राम शेरपुर जि० गाजियाबाद (उ०प्र०)
४६२. श्री पांचीलाल नत्थू जी आर्य मु०पो० कुवड़िया जि० खरगौन (म०प्र०)
४६३. श्री ज्ञानेश्वर जी चौधरी D.S.I.D.C. कम्पलेक्स फेस II ओखला औद्योगिक क्षेत्र दिल्ली
४६४. श्रीमती चित्रा जी चौधरी C-34 फ्रैंड्स कालोनी ईस्ट नई दिल्ली
४६५. श्री बद्रीनारायण S/o श्री भानुप्रताप जी राठौड सब्जी मण्डी रोड बारां (राज०)
४६६. आर्यसमाज स्वामी श्रद्धानन्द भवन विश्वेश्वर पुरम बंगलौर
४६७. श्री केसरसिंह साखयान राज० मा० विद्यालय दादरियाड़ जि० चम्बा (Hp)
४६८. श्री डा० प्रमोद जी आर्य सु० श्री डा० सत्यदेव जी आर्य S.B. 161 बापूनगर जयपुर (राज०)
४६९. Sh. D.K. Arya 53/A 21 Varadawan Thane (MR)
४७०. श्री कमल मतवाला जी गुप्ता प्रेस कसेरा बाजार होशंगाबाद (MP)
४७१. श्री श्यामनन्दन जी वर्मा मन्त्री आर्यसमाज छपरा सर्वोदय नगर जि० सारण (बिहार)
४७२. श्री कृष्ण भारती आर्य म० नं० 55 गली मन्दिर वाली पालम रोड डाबड़ी मैन नई दिल्ली
४७३. श्री हरीशचन्द्र स्नेही मंडलपति जिला अध्यक्ष आर्य वीर दल भगतपुरा सोनीपत (हर०)
४७४. श्री यशपाल जी शास्त्री ग्राम मदाना खुर्द पो० मदाना कलां जि० रोहतक (हरि०)
४७५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज मन्दिर जौनपुर, किला रोड, जौनपुर जि० जौनपुर (UP)
४७६. श्री अनिल कुमार जी शर्मा पक्का कटरा पो० आंवला जि० बरेली (उ०प्र०)
४७७. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज अल्मोड़ा जि० अल्मोड़ा (उ.प्र.)
४७८. श्री रतनशीडी वेलाणी 11 मातृछाया 57 अरुणोदय सोसाइटी के सामने बड़ौदा
४७९. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज गांधी धाम (कच्छ; म०द० मार्ग गांधी धाम
४८०. श्री विनय कुमार जिन्दल 13 गांधी मार्केट मोदी नगर जि० गाजियाबाद (UP)

—धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/92
आर०आर० नं० २५५८७/७३
Post in Delhi PSO Indraprastha
on 2, 3/4/92

अप्रैल, १९९२

बिना टिकट भेजने का लाइसंस नं०
यू० (डी०एन०) १४४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या **अवश्य ही** लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें यदि अंक न पहुंचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रैपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

विशुद्ध - मनुस्मृति

(प्रक्षिप्त श्लोकरहित हिन्दी भाष्य, प्रक्षिप्त श्लोकों की सप्रमाण एवं अन्तःसाक्षी पूर्वक समीक्षा सहित और विशुद्ध मानवधर्म प्रकाशन)

१. वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित एवम् अपरिपक्व बुद्धि वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी।
२. प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित होने पर भी अध्याय या प्रकरण के अन्त में प्रक्षिप्त समीक्षा सहित।
३. अवैदिक एवम् असंगत श्लोकों से रहित होने से वर्णाश्रम धर्मों के विषय में भ्रान्त धारणाओं से रहित।
४. महर्षि दयानन्द द्वारा व्याख्यात श्लोकार्थों से अलंकृत।
५. अन्य विशेषताएँ 'मनुस्मृति' की भांति।

विशेष जानकारी के लिए सूचीपत्र मंगायें।

श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा० ....
जिला ....

मुद्रक : वैदिक प्रेस, कैलाशनगर, दिल्ली-११००३१ फोन २२४६६४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Duplicate

ओ३म्

दयानन्द सन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जून, १९९२

वर्ष : २०	।	अंक : ८
दयानन्दाब्द	।	१६८
विक्रम संवत्	:	ज्येष्ठ, २०४९
सृष्टि संवत्	:	१,९६,०८,५३,०९३

संस्थापक	:	स्व० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक)	:	राजवीर शास्त्री
प्रकाशक	:	धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक	:	यशपाल आचार्य

कार्यालय "दयानन्द सन्देश" (मासिक)
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

एक प्रति २.०० रुपये — वार्षिक शुल्क २०)
आजीवन सदस्यता २००)
विदेश में ५०१)

इस अङ्क के लेख

पृष्ठाङ्क

- वेदोपदेश — १
- मीमांसक जी अपने लिखे पर विचार करें — ३
- साहित्य-समीक्षा — ६
- नशों से हानि — ७
- सात माताएँ — ८
- आर्यसमाज पर प्रहार बन्द करें — ९
- पाठकों के पत्र, प्रामाणिक अनुवाद — १०
- आर्य भाषा की ओर दृष्टि — १३
- ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव — १४
- योग सम्बन्धी सिद्धियां — १७
- आर्यसमाज क्या है उसने क्या किया ? — २०

अजिल्द एक हजार रुपये, कपड़ा जिल्द ग्यारह सौ रुपये और सजिल्द बारह सौ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक काल की झलक

卐 ● 卐

सुनी जो कहानी अश्वपति महीपाल की।
बात है कमाल की यह बात है कमाल की ।।टेक।।

एक दिन कुछ ऋषि ब्रह्मविद्या को तलाश में,
चल करके आये अश्वपति के पास में,
राजा ने भोजन की कही ऋषियों ने टाल की ।।१।।

करते हैं संकोच ऋषि राजा ने विचार किया,
राज्य अन्न दूषित जान भोजन से इन्कार किया,
पवित्रता जताने को बात कही इस ढाल की ।।२।।

कहे महाराज मेरी प्रजा में चोर नहीं,
ब्लैक करने वाला नहीं, और रिश्वतखोर नहीं,
मिले नहीं सूरत कहीं मद्यपी चाण्डाल की ।।३।।

अग्निहोत्र करे ना जो ऐसा इन्सान नहीं,
मिलेगा नर-नार कोई मूर्ख अविद्वान् नहीं,
यत्र तत्र सर्वत्र ही स्वर्ग पड़ताल की ।।४।।

व्यभिचारी ना पुरुष रहे व्यभिचारिणी नार क्यों,
फिर भोजन के लिए आप करते हैं, इन्कार क्यों,
'ताराचन्द' देखना यह झलक वैदिक काल की ।।५।।

—पं० ताराचन्द वैदिक,
कविस्थल, महेन्द्रगढ़ हरि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ ओ३म् ❀

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥ (महर्षि दयानन्द)

वेदोपदेश--

एकमात्र उपासना के योग्य परमेश्वर का सत्य-स्वरूप

स्वयम्भू ब्रह्मा ऋषिः। हिरण्यगर्भः (परमात्मा) देवता। निचृत् पंक्तिः छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
वह परमेश्वर कैसा है, फिर वही उपदेश किया गया है ॥

ओ३म् न यस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा-
यस्मान्न जातऽइत्येषः ॥ (यजु० ३२।३)

पदार्थः—(न) निषेधे (तस्य) परमेश्वरस्य (प्रतिमा) प्रतिमीयते यया तत्परिमापकं=सदृशं तोलनसाधनं प्रतिकृतिराकृतिर्वा (अस्ति) वर्त्तते—(यस्य) (नाम) नामस्मरणम् (महत्) पूज्यं बृहत् (यशः) कीर्तिकरं धर्म्यकर्माचरणम् (हिरण्यगर्भः) सूर्यविद्युदादिषदाधिकरणः (इति) (एषः) अन्तर्यामितया प्रत्यक्षः (मा) निषेधे (मा) मां जीवात्मानम् (हिंसीत्) हन्यात्=ताडयेत्=विमुखं कुर्यात् (इति) (एषो) प्रार्थना प्रज्ञा वा (यस्मात्) कारणात् (न) निषेधे (जातः) उत्पन्नः (इति) (एषः) परमात्मा ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यस्य (महद्) पूज्यं बृहद (यशः) कीर्तिकरं धर्म्यकर्माचरणं (नाम) नामस्मरणम् (अस्ति) वर्त्तते, यः (हिरण्यगर्भः) सूर्यविद्युदादिपदाधिकरणः (इति, एषः) अन्तर्यामितया प्रत्यक्षः यस्य (मा) मां जीवात्मानं (मा) न (हिंसीद्) हन्यात् ताडयेत्=विमुखं कुर्यात् (इत्येषा) प्रार्थना प्रज्ञा वा (यस्मात्) कारणात् (न) न (जातः) उत्पन्नः (इत्येषः) परमात्मा उपासनीयोऽस्ति। (तस्य) परमेश्वरस्य (प्रतिमा) प्रतिमीयते यया तत् परिमापकं सदृशं तोलनसाधनं प्रतिकृतिराकृतिर्वा (न) (अस्ति) न वर्त्तते ॥

यद्वा पक्षान्तरम्

हिरण्यगर्भ इत्येष (२५।१०-१३) उक्तोऽनुवाको मा मा हिंसीद् इत्येषोक्ता (१२।१०२) ऋग्, यस्मान्न जात इत्येष (८।३६-३७) उक्तोऽनुवाकश्च यस्य भगवतो नाम महद्यशोऽस्ति, तस्य प्रतिमा नास्ति ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जिसका—(महत्) पूज्य एवं बड़ा (यशः) कीर्ति करने वाले धर्मयुक्त कर्मों का आचरण (नाम) नाम-स्मरण है, जो (हिरण्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भः) सूर्य, विद्युत् आदि पदों का आधार (इत्येषः) और जो अन्तर्यामी होने से प्रत्यक्ष है। जिसकी—(मा) मुझ जीवात्मा को (मा, हिंसीत्) न मारे=न ताडना करे, विमुख न करे (इति, एषा) यह प्रार्थना वा प्रज्ञा है। (यस्मात्) जिस कारण से (न) नहीं (जातः) उत्पन्न हुआ (इत्येषः) यह परमात्मा उपासनीय है। (तस्य) उस परमेश्वर की (प्रतिमा) प्रतिमा=जिससे मापा जाये=उसके सदृश तोलने का साधन, प्रतिकृति अथवा आकृति (न) नहीं (अस्ति) है।

अथवा दूसरा अर्थ

'हिरण्यगर्भ इत्येष०' यह (२५।१०-१३) कहा हुआ अनुवाक, 'मा मा हिंसीत्०' यह (१२।१०२) कही हुई ऋचा और 'यस्मान्न जात०' यह (८।३६-३७) कहा हुआ अनुवाक जिस परमेश्वर का महान् यश गा रहा है, उसकी प्रतिमा नहीं है।

भावार्थः—हे मनुष्याः! यः कदाचिद् देहधारी न भवति। यस्य किञ्चिदपि परिमाणं नास्ति। यस्याज्ञापालनमेव नाम स्मरणमस्ति। य उपासितः सन्नुपासकान् अनुगृह्णाति। वेदानामनेकस्थलेषु यस्य महत्त्वं प्रतिपाद्यते। यो न म्रियते, न विक्रियते, न क्षीयते, तस्यैवोपासनं सततं कुरुत। यद्यस्माद् भिन्नस्योपासनां करिष्यन्ति, तर्ह्यनेन महता पापेन युक्ताः सन्तो भवन्तो दुःखक्लेशैर्हता भविष्यन्ति॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो कभी देहधारी नहीं होता, जिसका कोई परिमाण नहीं है, जिसकी आज्ञा का पालन ही नाम-स्मरण है। जो उपासना करने से उपासकों पर अनुग्रह करता है। वेदों में अनेक स्थानों पर जिसके महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है, जो न कभी मरता है, न कभी विकारयुक्त होता है, और न कभी क्षीण होता है, उसी परमेश्वर की उपासना सदा किया करो। यदि इससे भिन्न की उपासना करोगे तो महान् पाप से युक्त होते हुए आप लोग दुःखों और क्लेशों से पीड़ित होते रहोगे।

अन्यत्र व्याख्यात—न तस्य प्रतिमा अस्ति (य० ३२।३) जो सब जगत् में व्यापक है, उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा, परिमाण, सादृश्य वा मूर्ति नहीं है। (स०प्र० ११ वां समु०)।

(न तस्य) पूर्ण=जो किसी प्रकार से कम नहीं, (अज) जो जन्म नहीं लेता, और निराकार=जिस की किसी प्रकार की मूर्ति नहीं, इत्यादि लक्षणयुक्त जो परमेश्वर है। जिसकी आज्ञा का ठीक-ठीक पालन और उत्तम कीर्तियों के हेतु जो सत्यभाषणादि कर्म हैं, उनका करना ही जिसका 'नाम-स्मरण' कहाता है। (हिरण्यगर्भ०) जो परमेश्वर तेजवाले सूर्यादिलोकों की उत्पत्ति का कारण है। जिसकी प्रार्थना इस प्रकार करनी होती है कि—(मा मा हिंसी०) हे परमात्मन्! हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा कीजिए। कोई कहे कि इस निराकार, सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना क्यों करनी चाहिए तो उत्तर यह है कि—(यस्मान्न०) अर्थात् जो परमेश्वर किसी माता-पिता के संयोग से कभी न उत्पन्न हुआ, न होता और न होगा, और न वह कभी शरीर धारण करके बालक, जवान और वृद्ध होता है, (न तस्य०) उस परमेश्वर की प्रतिमा अर्थात् नाप का साधन तथा प्रतिबिम्ब वा सदृश अर्थात् जिसकी तस्वीर कहते हैं, सो किसी प्रकार नहीं है। क्योंकि वह मूर्तिरहित, अनन्त, सीमा रहित और सब में व्यापक है।

इससे निराकार की ही उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिए। कदाचित् कोई शंका करे कि-शरीरधारी की उपासना करने में क्या दोष है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यह बात समझ लेनी चाहिए कि—जो प्रथम जन्म लेके शरीर धारण करेगा और फिर वह वृद्ध होकर मर जायेगा, तब किसकी पूजा करोगे ? इस प्रकार मूर्ति-पूजन का निषेध वेद से सिद्ध हो गया। (ऋ०भू० ग्रन्थप्रामाण्य०)

['दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर' से उद्धृत]
व्याख्याता – आचार्य सुदर्शन देव

(१) क्या पाषाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं नहीं। मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है।

(२) इसलिए सर्वथा पाषाणादि मूर्ति-पूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे।

(स०प्र० ११वां समुल्लास)

श्री मीमांसक जी अपने लिखे पर शान्तमना विचार करें

श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक के वेदवाणी के अंकों में क्रमश: चार लेख छपे हैं, जिनकी भाषा बहुत ही आक्रोश-पूर्ण एवम् उत्तेजित है। महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों पर आर्यजगत् की अनन्य आस्था है। उस आस्था के प्रति ऐसी आक्रोश पूर्ण भाषा बहुत आघात पहुँचाने वाली है। पण्डित जी की भाषा के कतिपय स्थल पढ़िए—

(क) ऋषि दयानन्द के आदेशों पर भी पानी फेर दिया गया।

(ख) सभा ने जैसा क्रूर व्यवहार किया है वैसा तो······विरोधी पं० कालूराम ने भी नहीं किया।

(ग) इस संस्करण को जला देना चाहिए।

(घ) कोई विरोधी न्यायालय में मुकदमा चला सकता है।

(ङ) १०५ वर्ष पश्चात् ऋषि दयानन्द की दूसरी बार हत्या, इत्यादि।

पण्डित जी के ये लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी छपे हैं। अत: आर्यजनों के समक्ष एक जटिल प्रश्न उत्पन्न हो गया है कि क्या परोपकारिणी सभा ने कोई ऐसा जघन्य कार्य किया है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य जनता को पण्डित जी धोखा दे रहे हैं—

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश की जो मूल प्रति बोलकर लिखवाई थी, वह परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है और उसी के आधार पर जो प्रेस कापी बनाई गयी थी वह भी सभा में सुरक्षित है। पण्डित जी मूल कापी को रफ कापी बताकर आर्य जनता को धोखे में डालने का प्रयास कर रहे हैं, यह उनकी मान-मर्यादा के भी अनुकूल नहीं है। इसके अतिरिक्त पण्डित जी की बात उनके लेख से भी गलत सिद्ध हो रही है। पण्डित जी लिख रहे हैं—

'इससे पूर्व भी ३४वें संस्करण के लिए श्री धर्मसिंह कोठारी ने रफ कापी से यथावत् मिलान किया, पाठभेद इकट्ठे किए और श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु तथा श्री पं० भगवद्दत्त जी के सम्मुख रखकर उनके निर्देशानुसार संशोधन किया था।'

(फरवरी ६२ की 'वेदवाणी')

विचारणीय प्रश्न—(१) जिसे पण्डित जी 'रफ कापी' कहते रहते हैं, क्या कोई रफ कापी से भी मिलान किया करता है? इसका अभिप्राय यह है कि पण्डित जी द्वारा लिखी रफ कापी ही मूलप्रति है।

(२) और जब इससे पूर्व भी मूल प्रति से मिलान कर संशोधन होता रहा है, और पण्डित जी उस समय सभा में ही बैठे हुए थे। पण्डित जी हमारे इस प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें कि तब और अब में क्या अन्तर आ गया है कि जो आप इतना आक्रोश प्रकट करने में लगे हो। इसका अभिप्राय यह है कि यदि उस समय संशोधन का कार्य आप की सम्मति या देखरेख में अथवा जानकारी में होता रहा तब तो ठीक था और अब आप की सहमति के बिना हुआ है, यही आप के आक्रोश का मूल कारण है। यद्यपि इस बार भी श्री विरजानन्द जी आप के पास विचार-विमर्श के लिए जाते रहे हैं? क्या मानापमान को लेकर उठा वह प्रश्न इतना अधिक पत्र-पत्रिकाओं में उछालना उचित कहा जा सकता है? अथवा आप के दुःख का कारण एक अन्य भी है कि आप महर्षि-दयानन्द के ग्रन्थों को प्रामाणिक शुद्ध संस्करण कहकर छापते रहे हैं और उनमें हजारों टिप्पणियां देते रहे हैं। क्या सभा के इस कार्य से आप की उन तथाकथित मिथ्या व काल्पनिक टिप्पणियों पर पानी फिरना ही आप के दुःख का मुख्य कारण तो नहीं है? पण्डित जी! थोड़ा शान्तमना होकर विचार तो करें?

सत्यार्थप्रकाश के नवीन प्रकाशन पर आपत्ति क्यों?

महर्षि के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश पर अन्य विद्वानों के भी ऐसे विचार सुनने में आते रहे हैं कि इसमें संशोधन होने चाहिए, क्योंकि इसमें छपते-छपते भी बहुत सी अशुद्धियां छप रही हैं। और स्वयं मीमांसक जी के भी ऐसे विचार रहे हैं देखिये—

(क) सत्यार्थप्रकाश के वैदिक मन्त्रालय से छपे संस्करणों में भी अनेक बार पाठ बदले गये।

(ख) सत्यार्थप्रकाश में तो इतने अधिक परिवर्तन व मुद्रण दोष हुए हैं कि यदि हम सब का टिप्पणी में संग्रह करते तो उनका आकार न्यूनातिन्यून सत्यार्थप्रकाश का एक तिहाई हो जाता।

(मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द और उनके कार्य)

ऐसी स्थिति में परोपकारिणी-सभा के पास यही उपाय हो सकता था कि मूलप्रति से मिलान करके सत्यार्थप्रकाश को छापा जाये। परन्तु अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि पण्डित जी को सभा का यह प्रशंसनीय कार्य भी अच्छा नहीं लगा। पाठक स्वयं ही विचार करें कि इसमें सभा का क्या दोष है? और आश्चर्य यह है कि पण्डित जी अपने लेखों में एक भी स्थल ऐसा दिखाने में असमर्थ रहे हैं जिसमें महर्षि के मन्तव्यों से विरुद्ध दिखाया गया हो। दिखाएं भी कैसे क्योंकि उनका लक्ष्य तो विरोध के लिए ही विरोध करना था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशी-समर्थदान की वकालत क्यों ?

इसमें किसी को लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि मुंशी-समर्थदान महर्षि के अनन्य भक्त थे। उनसे ऋषि ने भाषा की अशुद्धियों अथवा असम्बद्ध-भाषा के दोषों को दूर करने को कहा था। परन्तु उनके विषय में भी पण्डित जी की कैसी भावना रही है, यह उनके शब्दों में ही पढ़िए—"मुंशी-समर्थदान से यह साधारण भूल कैसे हुई, यह हमारी समझ में नहीं आता।"

और ऐसा लिखा ही नहीं है, प्रत्युत उनकी अशुद्धियों को दिखाया भी है। यदि मुंशी जी की अशुद्ध टिप्पणियां इस प्रकाशन से दूर हो गई हैं तो उनका पश्चात्ताप क्यों ? और मुंशी जी की टिप्पणियां क्यों दी गई थीं, उनका लक्ष्य क्या था ? स्वयं पण्डित जी ने दो लक्ष्य लिखे हैं—

(१) महर्षि द्वारा लिखे मत-मतान्तर के खण्डन में कठोर शब्दों को नरम बनाना (२) और ऋषि की भाषा में प्रयुक्त उर्दू फारसी के शब्दों को आर्यभाषा में लिखना।

यदि पण्डित जी के लेख पर ध्यान से विचार करें तो इस नवीन प्रकाशन से मुंशी जी की टिप्पणियां हटाने से क्या क्षति होगी। मुंशी जी की जो-जो भूलें थीं वे तो दूर हो जायेंगी ही, और महर्षि द्वारा उपयुक्त कठोर शब्द अथवा उर्दू फारसी के शब्द रह जाएंगे। इससे क्या महर्षि की मान्यताओं में कुछ परिवर्तन हो जायेगा ? यदि वे ऐसा समझते हैं तो उनकी उनके लेखानुसार भी भूल ही है। इसलिए पण्डित जी का यह लिखना सर्वथा निराधार है—'इस धींगामुश्ती से जहां मुंशी-समर्थदान द्वारा किया गया सारा परिश्रम नष्ट हुआ है, वहां ऋषि दयानन्द के आदेशों पर भी पानी फेर दिया।'

श्री मीमांसक जी की मिथ्या बातों पर विचार—

१. पण्डित जी लिखते हैं—सभा ने सत्यार्थप्रकाश में से कुछ अंश निकाल कर और संशोधित किए हुए पदों को वापस प्रक्षेप करके ऋषि-दयानन्द के आदेशों का साक्षात् उल्लंघन करके कितना भारी अपराध किया है।

(फाल्गुन वेदवाणी)

२. परोपकारिणी सभा के अधिकारियों पर... 'वह जिस डाल पर बैठा था उसी को काट रहा था' सर्वथा चरितार्थ होती है। क्योंकि ३७वें संस्करण के प्रकाशन से पूर्व प्रकाशित ३६ संस्करण अप्रामाणिक हो गये। (फाल्गुन० वेदवाणी)

३. परोपकारिणी-सभा के अधिकारियों ने न केवल हत्या ही की, अपितु सत्यार्थप्रकाश के लेखन-मुद्रण सम्बन्धी सम्पूर्ण इतिहास पर पानी फेर दिया। (चैत्र २०४१, वेदवाणी)

४. सत्यार्थप्रकाश में १०० साल के पश्चात् जो परिवर्तन किया, उसका उदाहरण मात्र प्रस्तुत किया था। (फाल्गुन वेदवाणी)

समीक्षा—पाठकगण आर्य बन्धुओ ! उपर्युक्त मीमांसक जी की बातों में कितनी सच्चाई है, आप स्वयं ही विचार कीजिए। सभा द्वारा मूल प्रति से मिलान करके 'सत्यार्थप्रकाश' में से क्या-क्या भूलें दूर हो सकती हैं, छपते छपते जिन भूलों व अशुद्धियों को स्वयं मीमांसक जी बताते रहे हैं, क्या उनका दूर हो जाना कोई दुष्कृत्य कहा जायेगा ? और कुछ अंश निकालने की बात कहकर क्या आर्यजनता को पण्डित जी धोखा नहीं दे रहे हैं ? ऋषि के मूल लेख के जनता के समक्ष आने से पिछले संस्करण अप्रामाणिक कैसे हो जाएंगे ? जिस सभा ने आर्यजनता को समय-समय पर उठने वाली मांग को देखकर और अतीव परिश्रम करके सत्यार्थप्रकाश का शुद्ध संस्करण छापा है, उसे भारी अपराध वा हत्या कहना क्या पण्डित जी की विक्षिप्तवत् मनःस्थिति का बोध नहीं करा रहा है ? मुंशी-समर्थदान की टिप्पणियां हट जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पूर्व हटाई आयतों का पुनः प्रकाशित होने के अतिरिक्त परिवर्तन का उदाहरण एक भी न देकर परिवर्तन दिखाने का ढोंग करना क्या भ्रान्त धारणा नहीं है ? और पण्डित जी ने श्री विरजानन्द जी से इस शुद्ध संस्करण की आवश्यकता को स्वयं स्वीकार किया और यह कहा कि यह पवित्र कार्य १०७ वर्ष पहले होना चाहिए था। किन्तु यह कार्य तब न होकर अब हो गया तो काल के विलम्ब से ही यह कार्य इतना घृणित क्यों ?

(राजबीर शास्त्री)

साहित्य-समीक्षा

वेद और उसकी वैज्ञानिकता—लेखक—श्री आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, भूतपूर्व आचार्य एवं कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। प्रकाशक—श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। पृष्ठ संख्या-४४७। मूल्य ३००/-

आर्यजगत् के प्रख्यात विद्वान् अनेकों पुस्तकों के कुशल लेखक नाम से सभी आर्य सुपरिचित हैं। आचार्य जी जीवनभर सतत स्वाध्यायनिरत एवं पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विद्वानों के अध्ययन व अनुसन्धानों पर सूक्ष्म-विवेचन करते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य जी ने इसके नाम के अनुरूप ही वेदों की वैज्ञानिकता पर स्वस्थ एवं सारगर्भित विवेचन किया है। यह ग्रन्थ १५ अध्यायों में विभक्त है। इसमें वेदों पर पाश्चात्य विद्वानों के मिथ्याक्षेपों का सयुक्तिक सहज उत्तर देकर वेदों के प्रति अनास्था के भावों को हटाकर वेदों के गौरवपक्ष को प्रकाश में लाया गया है। साथ ही सायण, महीधर आदि मध्यवर्ती भारतीय वेदभाष्यकारों की भी मिथ्या मान्यताओं पर सयुक्तिक विचार किया गया है। आधुनिक युग के वेदों के महान् मर्मज्ञ विद्वान् व भाष्यकार महर्षि दयानन्द की वेदविषयक समस्त मान्यताओं को विज्ञान सम्मत सिद्ध कर उनकी सम्यक् पुष्टि की गई है। वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है, वेद का ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ही चार ऋषियों को मिला, वेदों के काल विषयक विभिन्न पक्षों पर सुन्दर विवेचन कर यथार्थ काल निर्णय, वेद-भाष्य की शैलियां, वैदिक देवता, वेदमन्त्रों के ऋषि, वेदों की संख्या, क्या ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद हैं, अथर्ववेद की प्राचीनता, वेदों में पुनरुक्ति दोष, वेदों में ऐतिहासिक पक्ष, वेद सब सत्य विद्याओं पुस्तक है, वेद में जादू-टोने एवम् अश्लीलता पर विचार, वेद धार्मिक ग्रन्थ हैं, वेद के पठन-पाठन पर मानवमात्र का अधिकार, ऋषि-दयानन्द की वेदभाष्य शैलियों का परवर्ती भाष्यकारों पर प्रभाव इत्यादि विभिन्न विषयों पर बहुत ही विवेचनात्मक उपयोगी, मननीय विवेचन आचार्य जी ने किया है। प्रत्येक वेद-भक्त, जिज्ञासु, अनुसन्धाता एवं वैदिक स्वाध्याय करने वाले मनीषी पुरुष को इसका स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। आचार्य जी की विद्वत्ता, वेदविषयक आधिकारिक योग्यता एवं जटिल विषय को भी सुबोध करके विषय-प्रतिपादन की दक्षता को स्वयं इस पुस्तक का पाठक ही समझ सकता है। परम-पिता परमात्मा ऐसे वेदमनीषी, वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् पुरुषों को दीर्घायुष्य तथा उत्तम स्वास्थ्य देवें, यही हार्दिक कामना है।

(राजबीर शास्त्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नशों से महान् हानि

□□□

पन्द्रह करोड़ की भारत में, देशी शराब लग जाती है।
छत्तीस करोड़ की अमरीका, इंग्लैण्ड से भी आ जाती है।।

चोरी-चोरी बनती है जो इन खेतों और मकानों में।
सब का अन्दाजा है कितना, पूछो जाकर के थानों में।।

सात करोड़ का सुलफा और गांजा पी जाते भारत वाले।
चार करोड़ भारत में रहते हैं अफीम के मतवाले।।

छब्बीस करोड़ का तम्बाखू और सिगरेट बीड़ी पी जाते हैं।
कुछ सूंघते हैं, कुछ खाते हैं, कुछ पान में इसे चबाते हैं।।

तीन करोड़ की भांग पिएं, शिव जी की जय कहने वाले।
लाखों ही पोस्त पीते हैं, इस भारत में रहने वाले।।

एक साल में नशों के अन्दर, अस्सी करोड़ फुंक जाता है।
इतने में तो एक नया भाखड़ा डैम बनाया जाता है।।

जो चाहते हो कल्याण अपना, इनको न मुंह लगाओ तुम।
ना जीवन को बरबाद करो ना धन को राख बनाओ तुम।।

हैं ऊँट के जैसे अंग टेढ़े, कोई सीधा नजर न आता है।
'नन्दलाल' नशे सब गन्दे हैं, ना कोई लाभ पहुँचाता है।।

———

ऐ शराब! तूने अक्सर कौमों को खाके छोड़ा।
जिस घर में सिर उठाया, उसको मिटा के छोड़ा।।

राजाओं के राज्य छीने, शाहों के ताज छीने।
गर्दनकशों को अक्सर नीचा दिखाके छोड़ा।।

तम्बाखू, गांजा, भांग, अफीम, चरस पोस्त और शराब।
हे मित्रो! देखो, विचारो, हैं नशे सारे खराब।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात माताएँ

(तर्ज—बच्चो तुम तसवीर हो कल के हिन्दुस्तान की ।।)

सदा सात माताओं का तुम, नाम प्रेम से लिया करो ।
हैं पूजा के योग्य जगत् में, इनकी पूजा तुम किया करो ।।

पहली माता जगदम्बा, परमेश्वर को बतलाया है ।
सृष्टि का पालक रक्षक वह, संहर्ता जो कहलाया है ।।
प्रातः सायं एकान्त में तुम, प्रभु नाम का अमृत पिया करो ।।१।।

जिसने हमको यह जन्म दिया, जिसकी गोदी में खेले हैं ।
सदा हमारी खातिर जिसने कष्ट हजारों झेले हैं ।।
उस स्नेहमयी जननी की सेवा, कर्त्तव्य समझकर किया करो ।।२।।

जिस प्यारी धरती माता ने, प्यार दिया आधार दिया ।
खान-पान पहरान दिया है, रत्नों का भण्डार दिया है ।।
तुम अपने बलिदानों से इसके जख्मों को सिया करो ।।३।।

वेदज्ञान गायत्री माता के, हम पर ऐहसान बड़े ।
जिसके सद्ज्ञान से बने सदा ऋषि-मुनि इन्सान बड़े ।।
उस पावन ज्ञान फैलाने को निज तन मन धन सब दिया करो ।।४।।

गौ माता ने दूध पिलाकर फिर हम सब को हो पाला है ।
कृषि जगत् में सब से ज्यादा अपना हिस्सा उसने डाला है ।।
गो-माता की रक्षा हेतु तुम हर पल प्रयास किया करो ।।५।।

मातृभाषा व मातृ-सभ्यता माताएँ भी हरदम याद रहें ।
हमें सदा आबाद किया है ये भी सदा आबाद रहें ।।
'पथिक' प्रेम और श्रद्धा से तुम, इन सबका आदर किया करो ।।६।।

माता किसे कहते हैं और उसका महान् उपकार

'यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता' परमेश्वर का नाम माता इसलिए है कि वह भी जन्म देने वाली माता की भांति समस्त प्रजा का पालन-पोषण कर सुख देता है और सदा उन्नति चाहता है। जितना माता अपनी सन्तानों पर प्रेम व उनका हित चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं।

यं क्लेशं मातापितरौ सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ।। (मनु०)

अर्थात् माता पिता सन्तान के उत्पादन, पालनादि में जो कष्ट उठाते हैं उसका प्रत्युपकार निरन्तर सौ वर्षों में करते रहने से भी नहीं हो सकता। इसलिए असली माताओं की सदा पूजा करनी और सन्तोषी, वैष्णव आदि कल्पित माताओं की पूजा छोड़ देनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकालोक आर्यसमाज पर प्रहार करना बन्द करे

सनातन धर्म के अनुयायी वैसे तो एकता की बात करते रहते हैं, किन्तु अपनी कथनी से सर्वथा विपरीत करनी पर लेशमात्र भी ध्यान नहीं देते। आश्विन २०४८ में 'लोकालोक' पत्र का एक शताब्दी-विशेषांक प्रकाशित हुआ है। यह पत्र आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द के विरुद्ध हमेशा ही विष-वमन करता रहता है। यथार्थ में इस पत्र के सम्पादकों की रोजी-रोटी ही इस बात से चलती है कि वह आर्यसमाज के प्रति विष-वमन करता रहे। इस पत्र में छपे कतिपय प्रसंग पढ़िए—

(क) आर्यसमाजियों के असंख्य शास्त्रार्थों में दान्त खट्टे किये। (लोका० १९ पृ०)

(ख) दयानन्दी छायाग्रस्त रोगियों के लिए तो आप सिद्धहस्त वैद्य थे।

(ग) आर्यसमाज के धुरन्धर विद्वान् श्री पं० व्यासदेव शास्त्री ··· —आदि विद्वानों के साथ आपके अनेकों शास्त्रार्थ हुए और वादी सदैव पराजित हुए। (लोका० २१ पृ०)

(घ) श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी आदि प्रमुख नेताओं ने विज्ञापन-पत्र निकाले कि दौड़ियो-दौड़ियो कलियुगी भीम आया।

इत्यादि बातें अपने सनातनी पण्डितों की प्रशंसा में लिखी हैं। परन्तु स्वयं ही ऐसी मिथ्या आत्म-श्लाघाओं से क्या होता है? जबकि प्रत्यक्ष में इनकी कायरता, पलायन वृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है। यदि ये सनातनधर्मी नेता संवत्, मास, तिथि एवं स्थान आदि लिखकर लेख लिखते तो इनकी पोल शीघ्र ही खुल जाती। क्योंकि बिना पैंदी के लोटे की भांति डगमगाने वाले तथा भारतवर्ष में समस्त मिथ्या-पाखण्डों को फैलाने वाले जो तथाकथित सनातनधर्मी ठेकेदार सदैव शास्त्रार्थ से पलायन कर मुंह छिपाते रहे हैं, वे अपने अन्धभक्तों को झूठी मूठी बातों से कब तक रिझाते रहेंगे? क्या ये अपने तथा अपने पूर्वज पं० माधवाचार्य के कार्यों को भूल गये हैं? जो कुछ वर्ष पूर्व ही घटित हुए हैं? क्या आपातकालीन स्थिति में सम्पन्न बदरखा (मेरठ) का शास्त्रार्थ स्मरण नहीं है, जहां से भागकर पं० माधवाचार्य ने दिल्ली में ही मुंह छिपाया था। और पुरानी सब्जी मण्डी (दिल्ली) का शास्त्रार्थ भी स्मरण नहीं रहा, जिसमें पं० प्रेमाचार्य भरी सभा में ही झूठ बोलते हुए पकड़े गये थे? एक जिल्द में दो पुस्तकें रखकर लेखक का नाम पूर्व पुस्तक का और विषय दूसरी पुस्तक का पढ़ते हुए पकड़े गये थे? और भरी सभा में विवाद खड़ा होने पर सनातनी विद्वान् ने ही आप की पोल खोलकर रख दी थी और दूसरे दिन स्वामी दयानन्द के नाम से छपी पुस्तक का जब उद्धरण पढ़ने लगे, तब भी विवाद खड़ा होने पर अध्यक्ष के हाथ में से चील की भांति झपटकर पुस्तक छीनने वाला क्या सनातनधर्मी प्रेमाचार्य का भाई नहीं था। यदि लेशमात्र भी शर्म होती तो भरी सभा में हुई इस बेइज्जती के फलस्वरूप कहीं डूब मरता। परन्तु जिसकी नाक ही कट गई हो, ऐसे बेशर्म लोगों को शर्म कहां? और आर्यसमाज के दिग्गज विद्वानों की पराजय छापकर विजेता बनने की भूख नहीं मिटी है तो शास्त्रार्थ समर में उतरने का साहस करो और फिर देखो कि विजेता कौन है? समस्त पुराण पन्थियों को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि—महर्षि-दयानन्द का एक भी शिष्य जब तक धरातल पर रहेगा, वह अकेला भी अभिमन्यु की भांति पाखण्डों के दलदल में धंसे समस्त पुराण पन्थियों के छक्के छुड़ाता रहेगा।

(राजवीर शास्त्री)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घायु का कारण शाकाहार है

जर्मन के वैज्ञानिकों ने ग्यारह वर्षों तक निरन्तर परीक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला है—

(क) शाकाहारी मांसाहारी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और दीर्घायु होते हैं।

(ख) मांस का सेवन कैंसर के खतरों को बढ़ावा देता है। क्योंकि मांस के भक्षण से आंतों में गैलिक नामक अम्ल की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है, जिससे कैंसर होता है।

(हीडलबर्ग स्थित जर्मन कैंसर अन्वेषण केन्द्र और २ अप्रैल के राष्ट्रीय सहारा में प्रकाशित, प्रेषक—श्रीकृष्ण आर्य, सुल्तानपुरपट्टी (उ०प्र०)

पाठकों के पत्र और सम्मतियाँ

'दयानन्द-सन्देश' पत्रिका नियमित रूप में मिलती रहती है। मैं इसका नियमित पाठक हूँ। मार्च मास का ऋषिबोधामृत विशेषांक तो बहुत ही शिक्षाप्रद व प्रेरक रहा है। इसमें छपा 'ऋषिबोधामृत' लेख बहुत ही अच्छा लगा। इस लेख को मैंने ५-६ बार पढ़ा। बहुत ही आनन्द आया। इस लेख में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन जिन शब्दों में किया गया है, वह बहुत ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी है। इस अंक में छपे अन्य लेखों का संग्रह भी यद्यपि बहुत अच्छा एवम् उपयोगी है परन्तु ऋषिबोधामृत लेख तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसे पढ़ते-पढ़ते ही मन को आनन्द मिलता है। यह पत्रिका इसी भांति वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार करती रहे, यही मेरी मनोकामना है। 'धर्म और साम्प्रदायिकता' जैसे विषयों पर भी लेख लिखें तो अच्छा रहे।

(ग्राहक संख्या आर-२६३, ११/६ बंगला मुहल्ला, मण्डी)

क्या इसे प्रामाणिक अनुवाद कहा जा सकता है

—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेदसदन अबोहर-१५२११६

सम्भव है कि आर्य जनता व आर्य विद्वानों को कुछ पता हो कि श्री रामचन्द्र जी 'वन्देमातरम्' ने 'Spot light on truth' नाम से एक अंग्रेजी ग्रंथ की रचना की है। इसके मुखपृष्ठ पर ही पुस्तक के इसी नाम के ऊपर अंग्रेजी में यह छपा है स्वामी दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश अंग्रेजी में टिप्पणियों सहित। यह ग्रन्थ बढ़िया कागज पर हैदराबाद से छपा है। सार्वदेशिक के प्रधान जी के नाम से आरम्भ में इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास पर डेढ़ पृष्ठ की एक अंग्रेजी भूमिका भी छपी है। इस भूमिका में यह लिखा है कि 'यह सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद है।' ऐसा कथन सभा प्रधान के गौरवानुरूप कदापि नहीं है। श्रीमान् डा० भवानीलाल जी भारतीय के ग्रन्थ लेखक कोश की समीक्षा करते हुए मैंने 'वैदिक रवि' भोपाल में लिखा था कि अपने ग्रन्थ में डा० भारतीय ने इस अंग्रेजी ग्रंथ को 'सत्यार्थप्रकाश' का प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद' लिखा है। यह बात ठीक नहीं है। मैंने Sport light on truth के गुण दोष पर कुछ नहीं लिखा, केवल इतना ही तो लिखा कि यह सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद नहीं है। प्रामाणिक अनुवाद कहना तो और भी महा भयंकर भूल है।

मेरी समीक्षा छपते ही माननीय श्री वन्देमातरम् जी का सार्वदेशिक के पैड पर सार्वदेशिक के लिफाफे में एक अंग्रेजी पत्र मुझे प्राप्त हुआ। यह पत्र वैदिक रवि में भी छपा है। इसकी प्रतिलिपि भारतीय जी को भी भेजी गई। मैंने समीक्षा में लिखा था कि 'सत्यार्थप्रकाश में कहीं भी ऐसा नहीं आता कि 'स्वामी दयानन्द ने कहा, स्वामी जी इस पर हैरान होते हैं, स्वामी जी प्रमाण देते हैं, स्वामी जी असहमति प्रकट करते हैं, स्वामी जी व्याख्या करते हैं।' जिस ग्रन्थ में ऐसी भाषा हो, क्या उसे ऋषि दयानन्द का ग्रन्थ कहा जायेगा ?

श्रीमान् वन्देमातरम् जी ने अपने अंग्रेजी पत्र में मुझे एक शब्दकोश का प्रमाण देकर समझाया कि VERSION (अनुवाद) क्या होता है। उनका मत है कि अन्य पुरुष में भी बात कही जा सकती है। मैंने उनसे विनती की कि यह शब्दकोष मेरे लिए तो प्रमाण है नहीं। अन्य मत वालों ने भी इस शैली में अपने किसी मान्य ग्रन्थ का अनुवाद नहीं किया, और किया हो तो बतावें ? किसी पुराने व नये आर्य विद्वान् को भी यह शैली न सूझी।

इस पर वन्देमातरम् जी ने सार्वदेशिक सभा के वरिष्ठ उपप्रधान के रूप में मुझे हिन्दी में एक और पत्र लिखा है। इसमें यह लिखा गया है कि आप ने मेरे पत्र व ग्रन्थ को ध्यान से पढ़ा ही नहीं। साथ ही भारतीय जी के पत्र का प्रमाण दिया है कि वह लिखते हैं कि मैं आप के पत्र व ग्रन्थ को समझ ही नहीं सका। दोनों के कथन की ध्वनि स्पष्ट है कि मुझे अंग्रेजी भाषा का इतना ज्ञान ही नहीं होगा।

मैं एक अल्पज्ञ जीव हूं। विदेशी भाषा पर मेरा कोई पूर्ण अधिकार है, यह मेरा दावा नहीं, 'परन्तु मेरी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी व उर्दू रहा है। अंग्रेजी पढ़ी भी है और अंग्रेजी में पढ़ाया भी है। सभा प्रधान जी ने इस ग्रन्थ की भूमिका लिखी है। यदि वे इस ग्रन्थ को समझ सकते हैं तो मैं तो फिर भी थोड़ी सी अंग्रेजी जानता हूं।'

मेरा कोई पूर्व आग्रह नहीं। मैंने ग्रन्थ का कोई दोष नहीं दर्शाया। केवल इतना ही तो कहता हूं कि वह ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद नहीं। प्रामाणिक अनुवाद कहकर तो दूसरों को भ्रमित करना है। मैं आर्य जनता से व आर्य विद्वानों से विनती करता हूं कि वह इस अंग्रेजी में अनूदित सत्यार्थप्रकाश के बारे में भ्रान्ति को दूर करें। जो सत्य है सो कहें। मेरी भूल है तो मुझे बतावें। श्रीमान् वन्दे मातरम् जी की भूल है तो उन्हें कहें कि वह अपनी हठ छोड़ें। 'समरथ को नहीं दोष गोसाईं' इस किंवदन्ती के अनुरूप बड़े नेता भूल नहीं मानते।

एक अन्य महा भूल—

१. ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका लिखी है।

२. ऋषि ने एकादश समुल्लास की एक अनुभूमिका लिखी है।

३. ऋषि ने द्वादश समुल्लास की भी अनुभूमिका लिखी है।

४. ऋषि ने त्रयोदश समुल्लास की भी अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका लिखी है।

५. महर्षि ने चतुर्दश समुल्लास की भी एक अनुभूमिका लिखी है।

अब आदरणीय वन्दे मातरम् जो अपने ग्रन्थ का इन पांचों अनुभूमिकाओं से मिलान करके बतावें कि क्या उन्होंने सचमुच इनका अनुवाद अपने ग्रन्थ में दिया है? श्रीमान् भारतीय जी भी जो लिख चुके सो लिख चुके अब यदि सत्य को ग्रहण करने के पक्ष में हों तो वे भी देख लें कि क्या इन पांचों का अनुवाद इस ग्रन्थ में मिलता है? अन्य विद्वान् भी जो अंग्रेजी जानते हैं, इतना कष्ट अवश्य करें।

सत्यार्थप्रकाश पर लाहौर में (सिन्ध आन्दोलन) दो अभियोग चलाए गये। तब आर्यसमाज ने ये दोनों कैसे जीते। इसका एक मुख्य कारण यही था कि ऋषि ने चतुर्दश समुल्लास की अनुभूमिका में लिखा है कि जिनको मेरे द्वारा दिये गये आयतों के अनुवाद पर आपत्ति हो वे पहले मौलवियों के अनुवाद का खण्डन करें। मौलवियों के नाम वहां नहीं दिये। आर्य विद्वानों ने वे सब तफसीरें (कुरान के भाष्य) खोज लिए थे और अब वे दोनों भाष्य मेरे पुस्तकालय में हैं। वन्दे मातरम् जी इतने ऐतिहासिक महत्त्व की यह भूमिका छोड़ गये। इसमें और क्या-क्या मर्म की बातें हैं, यह 'चौदहवीं का चांद' पुस्तक या मेरी पुस्तक 'महर्षि का ऐक्यवाद' में पढ़ लीजिए।

मनुष्य पाप क्यों करता है? ईसाई मुसलमान इसका दोष शैतान को देते हैं। अन्य मतावलम्बी भी इस प्रश्न का उत्तर देने में उलझे से हैं। किसी के सामने ठोस दार्शनिक, वैज्ञानिक उत्तर नहीं। महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है, "मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।"

पूज्य प० रामचन्द्र जी देहलवी व पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी तो ऋषिवर के इन मार्मिक वाक्यों पर मुग्ध थे। संसार की एक पहेली का, एक उलझे प्रश्न का कितने सुन्दर शब्दों में ऋषि ने उत्तर दिया है। हमारे वन्दे मातरम् जी ने न जाने क्यों ऋषि की इन अद्भुत सारगर्भित भूमिकाओं को काट दिया और फिर भी कहते हैं कि उनका ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद है। उन्होंने एक शब्दकोश का प्रमाण दिया है, उनकी बात झुठलाने के लिए मैं तीन शब्दकोशों का प्रमाण दे सकता हूं परन्तु इससे लाभ क्या?

मनुस्मृति में यदि आवे कि मनु कहता है तो ऐसा श्लोक प्रक्षेप माना जायेगा। भविष्य में प्रश्न खड़ा होगा कि सत्यार्थप्रकाश का प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद उपाध्याय जी वाला है या वन्देमातरम् जी का दोनों की सामग्री ही नहीं मिलती। क्या उत्तर देगी सार्वदेशिक सभा? सभा प्रधान जी के नाम से छपी भूमिका किस की है? हमने तो उनके मुख से आज तक कभी वाल्टेरी रूसू के नाम सुने ही नहीं। सभा के प्रधान जी पर ही हम निर्णय छोड़ते हैं कि वह बतावें कि क्या इस ग्रन्थ को वह प्रामाणिक अनुवाद मानते हैं? कुछ विद्वानों के मत मेरे पास हैं। क्या अन्य विद्वान् भी मौन तोड़ेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य-भाषा की ओर एक दृष्टि

—महेन्द्र प्रताप यादव
पहाड़पुर (आर्यनगर), हेतमपुर, वाराणसी

आर्य-भाषा को वर्तमान समय में हिन्दी के नाम से पुकारा जाता है। यह हिन्दी शब्द हिन्दू शब्द से बना है। हिन्दू शब्द सबसे पहले अवेस्ता में आया है। अवेस्ता २६५० वर्षों की है। पारसीक साहित्य में भी हिन्दू शब्द मिलता है। इसके बाद प्राचीन अरबी कवि लाबी की कविता में हिन्दुतन मिलता है। भारत देश में इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कुतबुद्दीन ऐबक ने आर्यों के लिए किया। अविरल यही नाम पुकारने से हम अपने अभिज्ञात नाम को भूल गये। यह हिन्दू शब्द विदेशी है तथा अर्थ भी ठीक नहीं है। अतः यह नाम हमें अग्राह्य है। जब हमारा नाम हिन्दू हुआ तो हमारी भाषा हिन्दी कहलायी। हमारा नाम आर्य है तो हमारी भाषा आर्य-भाषा हुई तथा आर्य-भाषा कहने से हम अपने अतीत तथा धर्म से जुड़े भी रहेंगे और आर्य शब्द का अर्थ भी सुन्दर है। आस्तिक सभ्य तथा विज्ञ जनों को आर्य कहते हैं। आर्य-भाषा की आकर भाषा संस्कृत है। संस्कृत भाषा प्राचीनतम, धनाढ्यतम तथा वैज्ञानिकतम है। जिसको कभी सर्वश्रेष्ठ मानकर धार्मिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान होते रहे हैं। संस्कृत स्थान विशेष, जाति विशेष वा सम्प्रदाय विशेष की भाषा नहीं वरन सम्पूर्ण मानव जाति की आदि भाषा है।

अपने देश, समाज, धर्म तथा व्यक्ति निज की उन्नति के लिए सर्वप्रथम अपने राष्ट्र की मातृभाषा का ज्ञानी बनना चाहिए तथा उसे सर्वश्रेष्ठ स्थान देना चाहिए। साथ ही देशदेशांतर वा द्वीप-द्वीपान्तर जाने वालों अथवा सम्पर्क करने वालों को अथवा इच्छुक जनों को अन्य देशस्थ भाषाएं भी सीखनी चाहिए। अन्य देशस्थ भाषा, विद्या तथा कला को सीखने में कोई दोष नहीं है। परन्तु विदेशी भाषा को स्वराष्ट्र भाषा कहना तथा मातृभाषा में विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि करना पड़े तो उस शब्द को अपनी मातृभाषा की प्रकृति के अनुकूल कर ग्रहण करना चाहिए। मातृभाषा में स्वदेशी शब्दों का प्रयोग करने पर तथा स्वराष्ट्र की भाषा होने पर स्वीय भावना उत्पन्न होती है जिससे अपना विकास होता है। स्वभाषा में विदेशी शब्दों वा अंकों का प्रयोग करने से स्वभाषा का विकास रुक जाता है। अपनी मातृभाषा अकिंचन दीखने लगती है। जिससे मातृभाषा के प्रति हीन भावना उत्पन्न हो जाती है, जो कि साक्षात् मृत्यु की द्योतिका है। अतः सभी भारतीयों को आर्य-भाषा जो भारत की वर्तमान राष्ट्रभाषा है को महत्त्व देकर गौरवान्वित होना चाहिए। व्यवहार में लाने से ही भाषा सशक्त बनती है। अपनी भाषा अर्थात् आर्यभाषा तथा नागरी लिपि में आंग्ल अंकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। समय पर चेत जाना अच्छा होता है। कुछ लोगों का आक्षेप है कि आर्यभाषा में सभी भाषाओं के पर्याय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषकर वैज्ञानिक शब्दों के पर्याय नहीं मिलते हैं। परन्तु यह कथन मिथ्या है क्योंकि जिसकी आकर भाषा संस्कृत हो, वह भाषा अकिंचन हो ही नहीं सकती है। इस समय संस्कृत हिन्दी के लिए मातृ-स्थानवत् है। विश्व में संस्कृत के समान पूर्ण, वैज्ञानिक तथा समर्थ कोई भाषा हुई ही नहीं। इसके शब्द जितने विस्तृतार्थ तथा गाम्भीर्य लिये हैं उतना किसी भी भाषा में नहीं हैं। जब अधूरी भाषाओं से वैज्ञानिक शब्द गढ़े जा सकते हैं तो पूर्ण भाषा में भी गढ़े जा सकते हैं। निराधार शब्द नहीं गढ़े जाते हैं। शब्द निर्माण व्याकरण तथा भाषा प्रकृति के अनुकूल किया जाता है उदाहरण के लिए फास्फोरस शब्द को ही लें—

फास्फोरस=भास्वर, फास्फेट=भास्वीय, फास्फाइड=भास्येय, फास्फिन=भास्वि, फास्फोनिक=भास्वयिक, फास्फोरिक = भास्वरिक, फास्फोरिक एसिड=भास्वरिक अम्ल।

इसी प्रकार अन्यान्य शब्द न मिलने पर नियमतः शब्द-निर्माण कर लेना चाहिए।

प्रश्न—क्या आप लोग वालपुक, एस्पिरेण्टो तथा इण्डियन न्यूट्रल की तरह नई कृत्रिम भाषा बनाना चाहते हैं। भाषाओं की अपनी प्रकृति तथा अपने व्याकरण होते हैं। ये कोई मेज, कुर्सियां नहीं हैं कि इन्हें गढ़ा जायेगा। देखिये कुछ भाषाएं कृत्रिम होने से महत् प्रयास करने पर भी नहीं चल सकीं।

उत्तर—ये उक्त भाषाएँ महत् प्रयास करने पर भी नहीं चल सकीं ऐसा क्यों ? उक्त भाषाएँ पूर्णतः कृत्रिम थीं। भाषा तो प्राकृतिक होती है यह सभी जानते हैं। भाषा के नवीन शब्दों का निर्माण उसी भाषा के शब्दों के योग, शब्द संक्षेपों के प्रत्ययों वा उपसर्गों का प्रयोग करके साधार उस भाषा की प्रकृति तथा व्याकरण के अनुरूप किया जाता है तथा उस वैदेशिक शब्द की यथार्थ व्याख्या के अनुरूप शब्द निर्माण किया जाता है। यथा—

बल्व के लिए विद्युद्दीप (विद्युत्+दीप), मलेरिया=मशकज्वर, रेडियम=विषीद्युत्, पैराफिन=मृद्वसा, एस्बेस्टस=अदह, ऐक्सरे=अस्थिनगम, टायर=परिचक्र, निकोटीन=गरतमाल इत्यादि।

क्या वानस्पतिक (पादपीय), जन्तुवीय तथा औषधीय नव निर्मित नामों को नहीं सुनते ? निर्मित शब्द छोटे तथा गम्भीर होने चाहिए। संस्कृत नव शब्द निर्माण के लिए भी पूर्ण सक्षम है। जब वैदेशिक शब्द के पर्याय आर्य भाषा के न मिलें तो अन्य भारतीय भाषाओं में ढूंढना चाहिए जब उनमें न मिले तब अपभ्रंश, प्राकृत, लौकिक संस्कृत तथा वैदिक संस्कृत में क्रमशः ढूंढें। जब न मिले तब ही शब्द निर्माण करना चाहिए।

□ ● □

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवादि पर विचार

—महेन्द्र प्रताप यादव, पहाड़पुर (आर्यनगर), हेतमपुर, वाराणसी

ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश ये सब परमपिता परमात्मा के गौणिक नाम हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने कायाकल्प करने वाले अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में यह सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव (शिव) नाम के ऐतिहासिक महापुरुष भी हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। 'कालान्तर में इन लोगोंके स्मरणार्थ राजासनों के नाम पड़ गये। जो उन पर बैठता, वही ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव हो जाता था।' ये राजासन महाभारत काल तक चलते रहे। कालान्तर में समाप्त हो गये। इसी प्रकार इन्द्र, कुबेर तथा जनकादि राजासन तथा वसिष्ठ, विश्वामित्र, नारद इत्यादि देवर्षि-आसन भी थे। जैसे पुराणियों में शंकराचार्य, गोरखनाथ तथा कीनाराम इत्यादि के आसन (पीठ) चल रहे हैं। प्रथम इन्द्र त्वष्टा के पुत्र थे। इसी प्रकार कुबेर विश्रवा के तथा जनक निमि के पुत्र थे। इतिहास के अतिरिक्त विष्णु, शिव तथा गणेश रूपक तथा प्रतीक भी हैं। नवीन पुराणकारों ने प्रतीक रूपक तथा इतिहास के रूप में वर्णन कर अनर्थ कर डाला। आइये इन पर पृथक्-पृथक् स्वल्प बुद्धि से विचार करें।

ब्रह्मा

ये आदि सृष्टि में उत्पन्न हुए थे। इनकी पत्नी का नाम सरस्वती था। ब्रह्मा के उपरान्त अन्य ब्रह्मा पुष्कर के राजा थे। ब्रह्मा तथा सरस्वती चारों वेदों के ज्ञाता की उपाधि थी। ये चारों वेद उनके ४ मुंह के समान थे। ब्रह्मा नाम के राजा भी होते रहे तथा प्रजा में भी चारों वेदों के ज्ञाता को ब्रह्मा कहा जाता था। आदि ब्रह्मा विराट् के पिता थे। ब्रह्मा का रूपक नहीं मिलता है।

विष्णु

विष्णु के पिता का नाम विराट् तथा पत्नी का नाम लक्ष्मी था। ये तिब्बत के वैकुण्ठ के राजा थे। इतिहास के अतिरिक्त विष्णु राष्ट्र का प्रतीक है। आर्ष ग्रन्थ में 'राष्ट्रं वै विष्णुः' कहा गया है। विष्णु के ४ हाथ हैं जिनमें क्रमशः शंख, चक्र, गदा तथा पद्म हैं। विष्णु कमल पर खड़ा रहता है। शिर के ऊपर सर्प रहते हैं तथा सर्पों पर सोता है तथा लक्ष्मी उसका पैर दबाती है। यह क्षीर सागर में सोता है। शंख घोषणा वा विजय, चक्र प्रगति का, गदा आयुध का, पद्म (कमल) धन का प्रतीक है। सर्प कड़ी सुरक्षा का, लक्ष्मी धन का, दबाना पुष्टि का, पैर आधारशिला का तथा क्षीर सागर आस-पास के देश का प्रतीक है। इन प्रतीकों को इतिहास के विष्णु से पृथक् रखना चाहिए। ऐतिहासिक विष्णु के पास गरुड (गरुड सदृश) विमान था। कहीं आने जाने के लिए गरुड का प्रयोग करते थे।

शिव

शिव अग्निष्वात्ता के पुत्र थे। इनकी पत्नी का नाम दुर्गा तथा पार्वती था। दुर्गा वा पार्वती के विमान का नाम व्याघ्र या सिंह यान था। प्रथम शिव भूटान के राजा थे इसलिए इन्हें भूतनाथ कहा जाता है। इन्होंने सुनीति, धर्म, सच्चाई तथा सच्चरित्रता इन गुणों से युक्त होकर ३६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के कारण रुद्र की उपाधि प्राप्त की थी। प्रथम शिव की राजधानी कैलास थी। अन्य शिव काशी तथा कन्नौज के भी राजा थे। शिव अत्यन्त ज्ञानी थे जिससे उनकी ज्ञानाक्षि खुल गयी थी। मनुष्य में ज्ञानाक्षि को ही तीसरी आंख कहते हैं। जब ज्ञानाक्षि खुलती है तो काम भस्म हो जाता है। काम का कोई देवता नहीं होता, वरन कामवासना को ही काम कहा गया है। शंकर जी ने अपनी कामवासना को जीत लिया था। शिर से जलधारा का तात्पर्य ज्ञान की धारा से है अर्थात् वे हर समय ज्ञान रस प्रवाहित करते रहते थे। विभूति धारण का तात्पर्य शंकर जी बड़े ऐश्वर्य वाले थे तथा योगाभ्यास से अनेक विभूतियों को प्राप्त किए थे। शिर पर चन्द्रमा का तात्पर्य बड़े शान्त स्वभाव के थे। सर्प धारण का तात्पर्य वे विपत्ति सहने वाले थे। ये दानी, तपस्वी तथा अप्रतिम शक्तिशाली थे। इनके पास पाशुपतास्त्र तथा शूलायुध या शूलास्त्र थे। इनके पुत्र गणेश तथा कार्तिकेय थे। गणेश मनुष्य थे उनका मुख हाथी के समान नहीं था। कार्तिकेय छहों शास्त्रों (दर्शनों) के ज्ञाता थे। ये ही शास्त्र उनके ६ मुंह थे। शिव मनुष्य थे। सर्प, चन्द्रमा, गंगा (जल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा) तथा विभूति चित्र में दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके शरीर पर ये चीजें नहीं थीं। उनमें आन्तरिक गुण थे। तीसरी आंख का होना भी गुण था न कि शंकर जी के पास तीन आंखें थीं। उनके पास भी हमीं लोगों के समान दो आंखें ऊपर से थीं। भीतर ज्ञान की तीसरी आंख खुल गयी थी। पौराणिकों ने तो शिव जी को जो ऐतिहासिक महापुरुष हुए थे उन्हें डमरू, त्रिशूल, सर्प, चन्द्रमा, गंगा, विभूति तथा तीसरी आंख प्रदर्शित कर मदारी वा बरुआ बना दिये हैं। ऐसे चित्र देखकर प्रबुद्ध वर्ग में शंका उत्पन्न हो जाती है कि ऐसा विचित्र व्यक्ति भी कभी हुआ था वा नहीं। ऐसे रेखांकनों से अबुद्ध वर्ग में पाखण्ड तथा प्रबुद्ध वर्ग में घृणा भी उत्पन्न हो सकती है। यहां तक ऐतिहासिक राजा शिव के विषय में लिखा गया है। अब शिव के रूपक को लिखा जा रहा है। इतिहास तथा रूपक को पृथक् रखना चाहिए।

शिव परमात्मा को कहते हैं। शिव सबका आदि कारण है। उसका वंश कोई नहीं है। वह अपने आप अकेला है। इसी से वह दिगम्बर कहलाता है। सत्, रज तथा तम ही त्रिशूल तथा सोना, चांदी तथा लोहे के त्रिपुर हैं। जिनसे बने जीवात्मा, स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरों में रहता है। मोक्षावस्था में परमात्मा इन शरीरों को नष्ट कर देता है। जिससे उसे त्रिपुरारि कहते हैं। धर्म ही वृषभ है। धर्म ही आनन्द की वर्षा कराता है। शिव (परमात्मा) वृषभारूढ़ (धर्मारूढ़) है। जो धर्माचरण करता है वह आनन्द को प्राप्त करता है। नाना कर्म ही उसकी जटाएँ हैं। वेदत्रयी ही उसके नेत्र (ईक्षण शक्ति) हैं। यह शिव का रूपक हुआ। रूपक तथा इतिहास पृथक्-पृथक् होते हैं।

गणेश

ये शिव जी के पुत्र थे। इनका सम्पूर्ण आकार मनुष्यवत् था ये मनुष्य थे। इतिहास के अतिरिक्त गणेश (गण=गणराज्य, ईश=स्वामी) राष्ट्राध्यक्ष का प्रतीक है। गणेश (राष्ट्राध्यक्ष अर्थात् सम्राट्) के वर्णन में निम्नलिखित बातें वर्णित की जाती हैं—

तीखी आंखें, बड़े-बड़े कान, लम्बी नाक, भारी पेट तथा निचले भाग में मूषक निम्न के प्रतीक हैं—

राष्ट्राध्यक्ष को चाहिए कि शत्रुओं पर तीखी आंखें रखें अर्थात् प्रत्येक कार्य को सावधानी से देखें लम्बे कान अर्थात् शत्रुओं की बात सुनते रहें, लम्बी नाक अर्थात् हानिकारक पदार्थ को दूर फेंक कर दूर का लाभ कर पदार्थ ग्रहण करना, भारी पेट अर्थात् सभी प्रकार की बातें जानकर पचा लेना तथा अपने नीचे मूषक अर्थात् गुप्तजन रखना जो शत्रुओं की रहस्यमय बातों को मुष (चुरा) करके ले आएँ। राष्ट्राध्यक्ष को गणेश के वर्णन के अनुरूप बनना चाहिए। गणेश पूजन का तात्पर्य राष्ट्राध्यक्ष (सम्राट्) के आज्ञा के अनुरूप चलना है, देशभक्ति करना है। सभी जनों को विशेषकर आर्यजनों को चाहिए कि वे इतिहास, रूपक तथा प्रतीक को पृथक्-पृथक् रखकर सत्यासत्य से जनता को अवगत करावें।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव के विषय में महर्षि का चिन्तन

विष्णु वैकुण्ठ में रहने वाले थे और वहीं उनकी राजधानी का नगर था। महादेव कैलाश के रहने वाले थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदारखण्ड में वर्णन किया गया है। हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।

इस समय भी भरतखण्ड में हमारे कथन का प्रमाण मिलता है। देहली में इन्द्रप्रस्थ नामी स्थान था, वहां इन्द्र का राज्य था। पुष्कर और ब्रह्मावर्त्त में ब्रह्मा ने राज्य किया। काशी, उज्जैन और हरिद्वार आदि में महादेव जी का राज्य था। ('उपदेशमञ्जरी' के दशम उपदेश से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग सम्बन्धी सिद्धियां : एक विवेचन

—ज्ञानेश्वरार्य दर्शनाचार्य, दर्शन योग महाविद्यालय
आर्यवन विकासक्षेत्र, रोजड, प० सागपुर, जिला साबरकांठा, गुजरात, पिन-३८३३०७

योगदर्शन के द्वितीय भाग में विशेष रूप से सिद्धियों का प्रकरण है। सिद्धि का अर्थ है योगाभ्यास के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली उपलब्धि। योगदर्शन में अनेक प्रकार की सिद्धियों का वर्णन है। जनसामान्य इन सिद्धियों के सम्बन्ध में जानने को उत्सुक रहता है कि इन सिद्धियों का वास्तविक स्वरूप क्या है तथा क्या ये उपलब्ध हो सकती हैं? यद्यपि इन सिद्धियों का विषय पर्याप्त गवेषणा की अपेक्षा रखता है और इनका अन्तिम निर्णय तो वे लोग ही कर सकते हैं जो इनकी प्राप्ति के लिए लम्बे काल तक पुरुषार्थ एवं अभ्यास करते हों। मोक्ष-प्राप्ति में अनेक सिद्धियां बाधक एवं अनावश्यक होने के कारण हमने इनकी प्राप्ति के लिए परिश्रम करना और समय लगाना उचित नहीं समझा। इसलिए प्रत्येक सिद्धि का प्रत्यक्ष पूर्वक अन्तिम निर्णय तो हम नहीं दे सकते, परन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा उल्लिखित सत्यासत्य के निर्णय की पांच कसौटियों पर अपनी वर्तमान की योग्यता, अध्ययन, अभ्यास आदि के आधार पर हम योगसिद्धियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

विद्वान् लोग इस विषय में पक्षपात रहित होकर विचार करें। जो हमारी त्रुटि हो उसको हमें अवश्य ही बतावें। प्रमाणों से जो बात सत्य सिद्ध जायेगी, उसका ग्रहण और जो असत्य सिद्ध होगी उसका परित्याग करने के लिए हम सर्वदा उद्यत रहेंगे।

इन योग सम्बन्धी सिद्धियों को स्थूल रूप में चार श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—

१. सम्भव कोटि
२. असम्भव कोटि
३. परीक्षा कोटि
४. विकल्प कोटि

१. सम्भव कोटि—जो सिद्धियां, विधि पूर्वक अनुष्ठान करने पर साधक को प्राप्त हो जाती हैं, वे सम्भव कोटि में हैं। यथा मन, इन्द्रियों का वश में आना, शारीरिक एवं मानसिक बल-विशेष को प्राप्त करना, मान-अपमान, सहना, समाधि लगाना, ईश्वर से विशेष ज्ञान, बल निर्भयता आदि गुणों को प्राप्त करना इत्यादि।

असम्भव कोटि—जो सिद्धियां किसी भी प्रकार से किसी भी व्यक्ति को कदापि प्राप्त नहीं हो सकतीं वे असम्भव कोटि में हैं। यथा सृष्टि की रचना करना, अरबों खरबों वर्षों की आयु होना, ईश्वर के समान सर्वज्ञ होना इत्यादि।

३. परीक्षा कोटि—जिन सिद्धियों के विषय में, बिना परीक्षा के न तो यह कहा जा सकता है कि यह सम्भव हैं, और न ही अब तक के ज्ञान के अनुसार निषेध किया जा सकता है कि यह नितान्त असम्भव हैं, ऐसी सिद्धियां परीक्षा कोटि में हैं। यथा हजारों मील दूर स्थित वस्तुओं को जानना, पानी पर चलना, पिछले जन्मों को जानना इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. विकल्प कोटि—जिन सिद्धियों की उत्पत्ति शरीर में मानना तो सम्भव नहीं, किन्तु वे सिद्धियां योगी के चित्त (=मन) में तो पैदा हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सिद्धियों की व्याख्या यदि सृष्टि-क्रम के अनुकूल की जाये तो सम्भव हो सकती हैं। और यदि सृष्टि क्रम के विरुद्ध की जाये तो वे सत्य नहीं मानी जा सकतीं, ऐसी सिद्धियां विकल्प कोटि में हैं, यथा बौद्धिक स्तर पर आकाश में उड़ना तो सम्भव है, परन्तु स्थूल शरीर सहित संयम मात्र से आकाश में उड़ना असम्भव है।

आध्यात्मिक जगत् में योग सम्बन्धी जो मान्यताएँ आजकल प्रचलित हैं, उनमें से कुछ का परिगणन हम यहां कर रहे हैं—

१. योगी चलते-फिरते, खाते-पीते तथा परोपकार आदि उत्तम कार्यों को करते समय दिनभर समाधि में रह सकता है। (सम्भव कोटि)

२. योगी इन्द्रियों से रूप रस आदि विषयों का सेवन करते हुए, विषयों में सुख नहीं लेता है। जीवन निर्वाह मात्र के लिए खाना-पीना आदि कार्य करता है। (सम्भव कोटि)

३. योगी समस्त प्राणियों के प्रति वैर भाव का त्याग करके, पक्षपात रहित होकर निःस्वार्थ भावना से सबके कल्याण के लिए कार्य करता है। (सम्भव कोटि)

४. योगी प्रकृति से उत्पन्न संसार के समस्त पदार्थों को बौद्धिक स्तर पर अनित्य देखने में समर्थ होता है। (सम्भव कोटि)

५. योगी अपने मन को उसी प्रकार अधिकार पूर्वक चलाता है जैसे सर्कस में साईकल चलाने वाला अधिकार पूर्वक साईकल चलाता है। (सम्भव कोटि)

६. योगी अन्न, जल, शाक, फल, दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों का प्रयोग किये बिना ही, केवल वायु सेवन करता हुआ १५-२० वर्षों तक भी जीवित रह सकता है। (असम्भव कोटि)

७. योगी स्थूल शरीर से आकाश में पक्षियों की तरह उड़ सकता है। (असम्भव कोटि)

८. योगी बिना नाव के भरी हुई नदी के पानी पर पैरों से चलता है और डूबता नहीं है। (परीक्षा कोटि)

९. योगी जलते हुए अंगारों पर नंगे पांवों से लम्बे काल (एक घण्टे) तक खड़ा रह सकता है और चल सकता है, किन्तु उसके पांव जलते नहीं हैं। (असम्भव कोटि)

१०. योगी भूमि पर खड़ा हुआ अंगुली से चन्द्रमा को छू सकता है। (असम्भव कोटि)

११. योगी भूमि में, स्थूल शरीर से वैसे ही डुबकियां लगाता है, जैसे गोताखोर पानी में। (असम्भव कोटि)

१२. पूर्ण अहिंसक योगी के प्रति समस्त प्राणी वैरभाव त्याग देते हैं। (असम्भव कोटि)

१३. समाधि अवस्था में योगी के हाथ, पांव, सिर आदि काट देने पर भी उसको दुःख नहीं होता और समाधि लगी रहती है। (असम्भव कोटि)

१४. योगी फल, फूल, मिठाई सोना, चांदी, घड़ी, पैन इत्यादि इच्छित वस्तुएँ बिना उपादान कारण के तत्काल बना देता है। (असम्भव कोटि)

१५. योगी अपने स्थूल शरीर को पर्वत के समान भारी, विशाल तथा वायु के समान हल्का तत्काल बना लेता है। (असम्भव कोटि)

१६. योगी अदृश्य हो जाता है और स्पर्श, गन्ध आदि गुणों से भी रहित हो जाता है। (परीक्षा कोटि)

१७. योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता है तथा अपने शरीर में वापस लौटकर पुनः जीवित हो जाता है। (असम्भव कोटि)

१८. योगी अनेक प्रकार के शरीरों का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकता है और एक साथ उन शरीरों को धारण करके उनसे विभिन्न कार्यों को कर सकता है। (असम्भव कोटि)

१९. योगी भूत, भविष्यत् की सभी बातों को जान सकता है। (असम्भव कोटि)

२०. योगी दूर स्थित वस्तु (भारत में बैठा हुआ अमेरिका में स्थित वस्तु को) जान सकता है। (परीक्षा कोटि)

२१. योगी की आयु लाखों करोड़ों वर्षों की हो सकती है। (असम्भव कोटि)

२२. योगी द्रव्यों को बदल सकता है, अर्थात् अग्नि को पानी, साँप को लकड़ी, मनुष्य को कबूतर बना सकता है। (असम्भव कोटि)

२३. योगी शक्तिपात करके या सिर पर हाथ धर कर दूसरे की समाधि लगवा कर ईश्वर का साक्षात्कार करा देता है। (असम्भव कोटि)

२४. योगी परमात्मा के समान सर्वज्ञ हो जाता है, अर्थात् वह सब कुछ को जान लेता है तथा अपनी इच्छानुसार नयी सृष्टि भी बना सकता है। (असम्भव कोटि)

२५. योगी अपने पिछले जन्मों को जान लेता है। (परीक्षा कोटि)

२६. योगी यह जान लेता है कि अब मेरा अगला जन्म नहीं होगा, मैं प्रकृति के बन्धन से सर्वथा छूटकर स्वतन्त्र हो जाऊँगा। (सम्भव कोटि)

२७. योगी यह जान लेता है कि चित्त पर गुणों का अधिकार (भोगों में प्रवृत्ति) समाप्त हो गया है। (सम्भव कोटि)

सब सज्जनों, विशेषकर विद्वानों का यह कर्त्तव्य बनता है कि योग विषयक निराधार, मिथ्या, कल्पित, तर्क-प्रमाण विरुद्ध मान्यताओं का खण्डन तथा वास्तविक मान्यताओं का मण्डन करें। क्योंकि इन अज्ञान तथा स्वार्थ से उत्पन्न योग विषयक कल्पित मिथ्या विचारों से मनुष्य-समाज अन्धविश्वास तथा पाखण्ड के गहरे अन्धकार में चला गया है और जा रहा है।

योग सम्बन्धी गलत धारणाओं के कारण आज हजारों लाखों व्यक्तियों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक शक्तियां व्यर्थ ही नष्ट हो रही हैं। सच्चे योगाभ्यास के स्थान पर मिथ्या को अपनाकर वे स्वास्थ्य, सुख, शान्ति, ज्ञान-विज्ञान, बल आदि को प्राप्त न करके, उनके विपरीत रोग, दुःख, अशान्ति अज्ञान, निर्बलता आदि दोषों को प्राप्त हो रहे हैं। और साथ ही पठित बुद्धिजीवी वर्ग, तर्क, युक्ति, प्रमाण, विज्ञान की संगति से रहित काल्पनिक बातों का योगाभ्यास में समावेश देखकर, योगाभ्यास समाधि, ईश्वर साक्षात्कार, मुक्ति इत्यादि आध्यात्मिक विषयों का विरोधी बन गया है।

जिनका योग से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसे असम्भव एवं कष्ट साध्य क्रिया कलापों व सिद्धियों को योग के अंगरूप में जुड़ा देखकर, जन सामान्य यह मानने लगा है कि योग तो हमारे लिए असम्भव है, हम सांसारिक लोग ऐसे योग को अपना नहीं सकते। ऐसी योग सम्बन्धी मिथ्या धारणाओं के कारण सत्य योग विद्या का भी लोप हो गया तथा होता जा रहा है। इसलिए इन योग सम्बन्धी मिथ्या मान्यताओं का निराकरण अवश्य ही करना चाहिए जिससे मानव समाज उपर्युक्त हानियों से बचे तथा विशुद्ध योगविद्या को अपना कर लाभ उठा सके।

योग के क्षेत्र में प्रचलित भ्रान्तियों के सम्बन्ध में स्वामी सत्यपति परिव्राजक कृत 'योग मीमांसा' (प्रकाशक—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ४५५, खारी बावली, दिल्ली-६) पुस्तक का भी अध्ययन करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज क्या है और उसने क्या किया ?

—पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक

महर्षि दयानन्द—

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३) हैं जिनकी गणना संसार के महानतम शिक्षकों और उद्धारकों में होती है जिन्होंने संसार के लोगों की अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर जाने में सहायता की।

आर्यसमाज नया पन्थ नहीं—

आर्यसमाज कोई नया पन्थ, सम्प्रदाय अथवा धर्म नहीं है। उसके प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने स्पष्टत: कहा है कि आर्यसमाज की स्थापना करके उन्होंने कोई नवीन पन्थ नहीं चलाया अपितु प्राचीन वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, सभ्यता और परम्परा की पुन: स्थापना की है। उन्होंने स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखा है—

"मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूं जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना व मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।"

उनका उद्देश्य केवल यह था कि समय बीतने के साथ-साथ सच्चे सनातन धर्म और उसके अनुयायियों में जो अवैदिक बातें, अन्ध परम्पराएं, रूढ़ियां और सामाजिक कुरीतियां आ गई हैं उन्हें दूर किया जाये और विशुद्ध वैदिक धर्म जन-साधारण के समक्ष रखा जाये। इसी कार्य की पूर्त्यर्थ महर्षि दयानन्द ने १८७५ ई० में बम्बई में, प्रथम आर्यसमाज की स्थापना चैत्र सुदि १ सम्वत् १९३२ में की।

उसके बाद स्वयं स्वामी जी ने लाहौर, फर्रुखाबाद, मेरठ, रुड़की, लखनऊ, दिल्ली, अजमेर आदि में आर्यसमाजों की स्थापना की। वह जहां जाते, व्याख्यान देते और शास्त्रार्थ करते थे वहीं समाज की स्थापना हो जाती थी। उनके निर्वाण के पश्चात् तो समाजों की स्थापना का तांता ही लग गया।

व्यापक क्षेत्र—

महर्षि दयानन्द की एक बड़ी विशेषता यह थी कि वह प्रत्येक व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी उन्नति चाहते थे। वह चाहते थे कि व्यक्ति और समष्टि के शरीर, मन और आत्मा सब स्वस्थ हों और सब एक ही परिवार के सदस्यों के रूप में प्रभु की छत्रछाया में मिलकर प्रेमपूर्वक रहें और एक-दूसरे की उन्नति योगक्षेम और रक्षा में योगदान करते रहें। उन्होंने स्वयं इस बात पर बल दिया और बाद में आर्यसमाज ने अपने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक सभी प्रकार के कार्यक्रमों में और सुधारों में इस बात का ध्यान रखकर उसे मूर्त्त रूप देने का यत्न किया। इस प्रकार आर्यसमाज को विश्व आन्दोलन का रूप मिला। स्वामी जी महाराज मुख्यत: देशवासियों को अपनी तथा देश की हर प्रकार की उन्नति और योगक्षेम के लिए आर्यसमाज में प्रविष्ट होने और उसके साथ मिलकर काम करने की प्रेरणा दिया करते थे। उन्हें आर्यसमाज का भविष्य बड़ा उज्ज्वल दीख पड़ता था और उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं।

आधार शिला—

आर्यसमाज की आधार-शिला वेद, वैदिक शिक्षाएँ, शाश्वत, वैज्ञानिक, दार्शनिक, सार्वभौम, उदात्त वैदिक सिद्धान्तों से समन्वित सत्यार्थप्रकाश तथा स्वामी जी के उपदेश व मन्तव्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि ने 'वेदों की ओर चलो' का बिगुल बजाया था। हिन्दू जाति वेदों की भक्त थी। उन्हें ईश्वरकृत मानती थी पर वेद हैं क्या और उनमें है क्या ? वह न जानती थी। एक विशेष वर्ग के अतिरिक्त न तो कोई उन्हें देख सकता था, न सुन सकता था। पढ़ने की बात तो अलग रही। स्त्रियां, शूद्र एवं तथाकथित पतित जन वेदों और यज्ञादि के पास न जा सकते थे। ऋषि को वेद बाहर से मंगाने पड़े। सायण, महीधर, तथा पाश्चात्य विद्वानों ने उनके जो भाष्य किए और जिनका प्रचलन जारी था, वे अश्लील, अनर्गल, काल्पनिक और भ्रान्त थे जिनसे वेदों की प्रतिष्ठा को बड़ा आघात लगा था। स्वामी जी ने उनका भाष्य किया, जिसके विषय में योगी अरविन्द जी ने कहा था कि दयानन्द ने वेद भाष्य की कुंजी दी। उन्होंने वेदों में निहित समस्त ज्ञान-विज्ञान पर से पर्दा उठाया। वेदों का अन्तिम भाष्य कोई क्यों न हो उसकी विशिष्ट शैली प्रदान करने का सर्वप्रथम श्रेय दयानन्द को प्राप्त रहेगा। महर्षि ने वेदों के द्वार सर्वसाधारण के लिए खोले। इस महान् कार्य का आदर करते हुए सुप्रसिद्ध फ्रेंच मनीषी रोम्यां रोलां ने ठीक ही कहा था कि वह दिन युगान्तरकारी था, जिस दिन एक ब्राह्मण (स्वामी दयानन्द) ने वेदों के बन्द द्वार जाति, वर्ग, नस्ल, रंग, मजहब, क्षेत्र और लिंग के भेद-भाव के बिना सब के लिए खोले थे। महर्षि तथा आर्यसमाज के प्रचार के कारण आज कोई भी व्यक्ति वेद पढ़ सकता है, यज्ञोपवीत पहन सकता है और यज्ञ कर सकता है। आर्यसमाज के तीसरे नियम में ऋषि ने वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना आर्यों का परम धर्म बताया है।

वैदिक धर्म—

वैदिक धर्म ईमान का विषय नहीं है। यह जीवन की एक विशिष्ट पद्धति है। यह धर्म वैज्ञानिक व दार्शनिक है और एकमात्र कर्मकाण्ड तक ही सीमित नहीं है। यह मानव की महत्ता और उपयोगी प्राणियों की रक्षा का विधान करता और वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक मानव जीवन के सभी पहलुओं के विकास और विशिष्टता का विधान करके लोगों को आर्य (श्रेष्ठ) बना के जो अपनी, परमात्मा और समाज की दृष्टि में ऊँचा उठा होता है। संसार को सुखमय बनाने की स्थिति पैदा करता है। वैदिक संस्कृति त्याग प्रधान है और उस का केन्द्र विन्दु आत्मिक विकास और सौन्दर्य है।

आर्यसमाज का स्वरूप—

आर्यसमाज एक आस्तिक समाज है जिसकी आस्था वेद के ईश्वर पर है। आर्यसमाज के प्रथम नियम ईश्वर को सब जगत् का मूल सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, अजर, अमर, दयालु, न्यायकारी आदि गुणों से युक्त बताते हैं। वह अभाव से सृष्टि की उत्पत्ति नहीं करता, ना ही अपने जैसे दूसरे ईश्वर की रचना करता और नहीं सृष्टि नियम के विरुद्ध कोई काम करता है।

आर्यसमाज का आधार तर्क है इसलिए वह धार्मिक अन्धविश्वासों को नहीं मानता। वह अवतारवाद, मूर्ति-पूजा, रूढ़िगत कर्मकाण्ड, यन्त्र, मन्त्र, जादू, टोना, मोजिजे, कृत्रिम देवी देवताओं आदि में विश्वास नहीं रखता, आप्त विद्वान् एवं परोपकारी जनों को देवता मानता है। मुक्ति के लिए किसी बिचौलिए की आवश्यकता से इन्कार करके मनुष्य को अपने ही पुरुषार्थ से, निर्भ्रान्ति ज्ञान तथा शुद्धाचरण से मुक्ति प्राप्त करनी होती है। पापों को क्षमा नहीं किया जाता। अच्छे बुरे कर्म का फल ईश्वर की व्यवस्था में भोगना ही पड़ता है। स्वर्ग नरक स्थान विशेष नहीं है। अत्यधिक सुख की अवस्था स्वर्ग और दुःख की अवस्था नरक है। तीर्थ, गुरुओं आदि से पापों का क्षय नहीं होता। जीवित माता-पिता की सेवा करना ही श्राद्ध है।

आर्यसमाज का धर्म मन्दिरों तक सीमित नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अपितु वह व्यक्ति और समष्टि के साथ सर्वत्र तथा सदा रहने वाली वस्तु है। आर्यसमाज मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान और प्रत्येक दशा में धर्म का पालन करना चाहिए। सत्य उच्च आचरण का आधार है इसलिए ऋषि ने आर्यसमाज के नियमों में कहा है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदैव उद्यत रहना चाहिए। और सब काम धर्मानुसार सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिए।

सामाजिक क्षेत्र में आर्यसमाज मनुष्य मात्र की आत्मिक समता में विश्वास रखता है। उसकी दृष्टि में जन्मना कोई किसी से ऊँचा या नीचा नहीं। प्रत्येक को उन्नति करने का अधिकार है। वर्ण-व्यवस्था अन्य कारण से नहीं अपितु गुण, कर्म से होती है। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त कर उन्नति करने का पुरुषों के समान ही अधिकार है। अस्पृश्यों और दलितों को भी अन्यों के समान ही ऊँचा उठने का अधिकार है।

आर्यसमाज का कार्य—

स्त्रियों, अनाथों, दलितों और असहायों की रक्षा, सहायता, गुरुकुलीय तथा लोक शिक्षा प्रसार की दिशा में आर्यसमाज ने प्रशंसनीय कार्य किया है। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह के उन्मूलन एवं वयस्क तथा विधवा विवाहों के प्रचलन में आर्यसमाज का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा। अस्पृश्यता निवारण, स्त्रियों के उद्धार एवं शिक्षा प्रसार के कार्य का व्यापक रूप से आदर हुआ है। तभी श्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था।

"आर्यसमाज ने लड़कों और लड़कियों की शिक्षा, स्त्रियों की दशा के सुधार और दलितों को ऊँचा उठाने की दिशा में बड़ा अच्छा कार्य किया।"
(डिस्कवरी आफ इण्डिया)

आर्यसमाज पर आक्षेप किया गया है कि इसने हिन्दू धर्म को संकुचित कर दिया है परन्तु महर्षि दयानन्द ने सुनिश्चित सिद्धान्त कायम करके उसके गौरव को बढ़ाया था। महर्षि और आर्यसमाज के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए सर हर्बर्ट रिस्ले ने ने कहा था—

"आर्यसमाज शिक्षित हिन्दुओं के सामने सुनिश्चित सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिसका मूल स्रोत वेद और आर्य परम्पराएँ हैं। आर्यसमाज सामाजिक और शैक्षणिक उन्नति की ऐसी योजनाएं प्रस्तुत करता है जिसके बिना वास्तविक उन्नति सम्भव नहीं।"

सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री श्री अमरनाथ झा ने आर्यसमाज के शिक्षा कार्य का मूल्यांकन करते हुए डी०ए०वी० आन्दोलन और संस्कृत के पुनरुद्धार की दिशा में हमें आर्यसमाज का योगदान अद्भुत बताया था। भारतीयों के पश्चिम की विचारधारा और संस्कृति के प्रबल प्रवाह में बह जाने और उन के बौद्धिक सन्तुलन के लुप्त हो जाने के भय के निवारण में, जबकि आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीय संस्कृति, हिन्दी, हिन्दूदर्शन शास्त्र को बर्बर एवम् असभ्य काल की यादगार मानने लगे थे, आर्यसमाज की एक देन बताकर उन्होंने उसके शिक्षा कार्य का निम्न प्रकार अभिनन्दन किया था—

"यदि आज भारत के शिक्षित वर्ग में श्रद्धा की भावना और बौद्धिक कौतूहल की प्रवृत्ति पाई जाती है तो उसका बहुत बड़ा श्रेय आर्यसमाज को प्राप्त है जिसने बड़े साहस के साथ मिशनरी भावना से अपना मार्ग बनाया है।

मानव कौन है—

इस प्रसंग में ऋषि दयानन्द द्वारा की गई मनुष्य की परिभाषा ध्यान देने योग्य है—

मनुष्य उसी को कहना जो कि मननशील होकर स्वात्मवत् दूसरों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा, निर्बल और गुणातीत क्यों न हो, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती समर्थ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यायकारियों के बल का तिरस्कार सर्वदा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दु:ख प्राप्त हो। चाहे प्राण भले ही चले जावें परन्तु इस मनुष्य रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकाश)

ऋषि ने आजीवन इसके अनुसार आचरण किया और आर्यसमाज के अगणित कार्यकर्त्ताओं ने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में इसके अनुसार आचरण करते हुए घोर यातनाएँ सहीं, त्याग और बलिदान किए। अनेकों को मौत के घाट उतरना पड़ा। इन्हीं विशेषताओं और मिशनरी भावनाओं के कारण अपने अस्तित्व की और अधिकारों की रक्षा के लिए आर्यसमाज को पटियाला, धौलपुर, हैदराबाद और सिन्ध आदि में फिर भीषण परीक्षणों में से गुजरना पड़ा, उनमें वह पूर्णत: सफल हुआ। आर्यसमाज के वर्चस्व और विस्तार में जो अमित वृद्धि हुई वह अलग रही।

राजनैतिक क्षेत्र—

आर्यसमाज, यद्यपि सार्वभौम आन्दोलन है तथापि हिन्दू समाज और भारत में उसका प्रादुर्भाव होने से इन दोनों के प्रति उसके विशेष दायित्व हैं। हिन्दू समाज को परिष्कृत करके उसे श्री राजगोपालाचार्य के शब्दों में भले व्यक्तियों के रहने योग्य बनाने का उसे श्रेय प्राप्त रहा। शुद्धि और दलितोद्धार एवम् अस्पृश्यता निवारण के कार्य से उसके संघटन को दृढ़ किया गया। भारत भारतीयों का है और वह संसार का शिरमौर रहा है यह उद्‌बोधन देकर देशप्रेम की अमिट ज्योति जगाई।

राजनीतिक क्षेत्र में आर्यसमाज 'स्वराज्य' का पक्षपाती है। स्वराज्य और स्वदेशी का नारा सर्वप्रथम आर्यसमाज ने ही दिया था। आर्यसमाज ऋषि के इस कथन में आस्था रखता है कि 'हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होगा उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें इसलिए जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता।"

"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

(सत्यार्थप्रकाश ८वां समुल्लास)

भारतीय स्वराज्य की प्राप्ति में ऋषि का तथा आर्यसमाज का योगदान बेजोड़ रहा। उसने इस आन्दोलन में या इस महायज्ञ में जितनी आहुति दी उतनी अन्य कोई समाज न दे सका। देश को परखे हुए नेता, कार्यकर्त्ता और क्रान्ति देने में वह अग्रणी रहा। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी, पंजाब केशरी लाला लाजपतराय जी, श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, श्री रामप्रसाद बिस्मिल, श्री मदनलाल धींगरा, श्री भाई परमानन्द जी, सरदार भगतसिंह, गेंदालाल दीक्षित प्रभृति महानुभाव आर्यसमाज की ही देन थे। तभी कांग्रेस के इतिहासकार श्री सीताभि पट्टारमय्या ने राष्ट्र सेवा के लिए महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता और महर्षि दयानन्द को राष्ट्र-पितामह की पदवी प्रदान की थी।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आर्यसमाज के तथा देश के दीवाने आर्यों का अभिनन्दन करते हुए कहा था—"संगठित कार्य, दृढ़ता, उत्साह, त्याग और समन्वयात्मकता की दृष्टि से आर्यजनों और आर्य-समाज की समता और कोई नहीं कर सकता।"

आर्यसमाज ने अपने संगठन को प्रजासत्तात्मक रूप देकर सदाचार और निष्काम भावना पूर्वक कार्य करने की परिपाटी डालकर जहां अपने संगठन को दृढ़ किया और उसे लोगों की स्पर्धा और प्रशंसा का पात्र बनाया वहां देश को विशुद्ध सार्वजनिक जीवन भी प्रदान किया। आर्यसमाज ने उन सभी कार्यों का आयोजन किया जो भारत को स्वराज्य की ओर ले गये और उसे एक सुदृढ़ और समृद्ध राष्ट्र बना सकते हैं। राष्ट्रीय एकता के लिए आर्यसमाज धर्म, सभ्यता, संस्कृति और भाषा की एकता को आवश्यक समझता है उसकी मान्यता है कि बिना उसके राष्ट्र में ऐक्य नहीं हो सकता। आर्यसमाज ने पश्चिमी सभ्यता के चकाचौंध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालने वाले भौतिकवाद का त्यागवाद के समन्वय से दृढ़ता के साथ सामना किया। जन साधारण के सामने भोगवाद की पोल खोलकर रख दी और भारत को विधर्मियों तथा विदेशी संस्कृतियों के चंगुल में फंसने से बचाया और स्वराज्य की प्राप्ति में आत्मिक संकल्प की वरीयता प्रतिपादित की। आर्यसमाज ने ही महात्मा गांधी के मार्ग को प्रशस्त किया था। आर्यसमाज के कार्यक्रमों का यथा—राष्ट्र-भाषा हिन्दी, अस्पृश्यता निवारण, दलितोद्धार, गोरक्षा, शराबबन्दी आदि का भारतीय संविधान में स्थान प्राप्त होना क्या कम महत्व की बात है। हिन्दी को राष्ट्रसंघ की एक भाषा बनाने की संगठित मांग सर्वप्रथम आर्यसमाज ने ही उठाई है। (देखें सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन मारीशस का प्रस्ताव अगस्त १९७३)।

ग्रन्थों की दृष्टि में—

श्री आर०एम० परनेल ने थियोसीफीकल न्यूज ऐंड नोट्स लन्दन (जून १९५५) पत्रिका में आर्यसमाज का परिचय इस प्रकार दिया था—

आर्यसमाज धर्म, शान्ति, सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य और निरामिष भोजन पर अवलम्बित समाज रचना का प्रतिपादन करता है। दस नियमों को स्वीकार करने वाला और उन सिद्धान्तों को स्वीकार कर आचरण में लाने वाला (जिनकी स्वामी दयानन्द ने वेदों के आधार पर अपने ग्रन्थों में व्याख्या की है) कोई भी व्यक्ति आर्यसमाज में प्रविष्ट हो सकता है। वार्षिक चन्दा सदस्यों की आय का शतांश होता है।

एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन्स में ई० रोमस्टल हाइक पृष्ठ १७९ पर आर्यसमाज का परिचय इस प्रकार देते हैं—

स्वामी दयानन्द ने १८७५ में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की जो आस्तिक समाज है। दयानन्द वेदों को निर्भ्रान्त ईश्वरीय ज्ञान मानते थे। आर्यसमाज का वैधानिक 'मन्तव्य ईश्वर सब सत्य विद्याओं का आदि मूल' है। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और नित्य है। एकमात्र उसी की उपासना करनी चाहिए। वेद सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं। आर्यजन विधवा-विवाह के पक्ष में हैं। बाल-विवाह, जात-पांत, मांस, शराब नशे और मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं। हवन, यज्ञ आदि संस्कारों को करते हैं। आर्यसमाज में गुरुडम प्रचलित नहीं है।

आर्यसमाज 'वेदों की ओर चलो' आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करता है जिसके संस्थापक वेदों से निकालकर ऐसी बात प्रकाश में लाये हैं जिनको आधुनिक जगत् में मान्यता प्राप्त है। उन्होंने वेदों के आधार पर एकेश्वरवाद को सिद्ध कर बहुदेवतावाद की मान्यता की निस्सारता प्रतिपादित कर दी है। आर्यसमाज कर्मफल और मुक्ति में विश्वास रखता है। आवागमनके चक्र से छूट जाना मुक्ति है।

दयानन्द उच्चकोटि के राष्ट्रवादी थे। उनका आर्यसमाज आन्दोलन भारत में आधुनिक राष्ट्रीयता का कारण और कार्य रहा है।

आर्यसमाज के प्रति लोगों के आकर्षण के निम्नलिखित कारण हैं—

१. वेदों की पुन: प्रतिष्ठा २. एक परमात्मा की पूजा ३. वेदों की अपौरुषेयता ४. जन्मना जात-पांत का खण्डन ५. दलितोद्धार ६. समाज सेवा ७. अपने उद्योग से प्रत्येक व्यक्ति को अधिक से अधिक ऊँचा उठने की मान्यता ८. भारत भारतीयों का है सर्वप्रथम इस आवाज का उठाना ९. देश-प्रेम के भावों को भरना।

उपसंहार—आर्यसमाज ने भोग और त्याग, धर्म और बुद्धि, आदर्श और व्यवहार, लोक-परलोक, विश्वास और तर्क, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता में समन्वय स्थापित करके व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को भव्य दिशा प्रदान की है और मनुष्य को सच्चे अर्थ में मनुष्य बनाने का सत्प्रयत्न किया और सुधार की भाषा में सोचना और करना सिखाया।

आर्यसमाज का मानवमात्र को आह्वान है—

'वैदिक तरु की शिशिरच्छाया
के नीचे हे मानव आओ।
पीकर श्रुति पीयूष सनातन
निज मानस के ताप मिटाओ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यह लिखते हुए अतीव हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष "दयानन्द सन्देश" पत्रिका का मूल्यांकन करने वाले ऐसे सदस्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है जो इस पत्रिका के आजीवन सदस्य बने हैं। आप से भी विनम्र प्रार्थना है, बारम्बार पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के झंझटों से बचने के लिए २००/- रुपये भेजकर आजीवन सदस्य बनें। यह पत्रिका महर्षि दयानन्द के सन्देश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पहुँचाये इसके लिए हम आपका सहयोग चाहते हैं। आप से प्रार्थना है कि आप प्रयत्न करके अधिक से अधिक ग्राहक बनावें। अगर अधिक ग्राहक बनाने में आप असमर्थ हैं तो कम से कम एक ग्राहक तो अवश्य बनाने की कृपा करें जिसके लिए मैं आपका आभारी रहूंगा। इस पत्र के वैदिक सिद्धान्तों में गोता लगाकर जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की है उनके नाम और स्थान क्रमशः प्रकाशित किए जा रहे हैं—

५०१. श्री हरदेवसिंह जी तिबड़ा रोड मोदीनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)
५०२. श्री द्वारिकानाथ जी मेहरा 144/9 गली जतां लाहौरी गेट अमृतसर-६ (पंजाब)
५०३. श्री बलवीर सिंह जी चक्की वाले मु०पो० दुल्हेड़ा जिला रोहतक (हरि०)
५०४. श्री मन्त्री जी, आर्यसमाज तिमारपुर दिल्ली-54
५०५. श्री नाहर जी आर्य E-74 कर्मपुरा नई दिल्ली-15
५०६. श्री चेतनप्रकाश जी 46 प्रोफेसर कालोनी बाल समन्द रोड हिसार (हरि०)
५०७. श्री सुभाषचन्द सत्यपाल राठौर व्यंकटेशनगर जि० नांदेड़ (M.P.)
५०८. श्री अनूपसिंह (भगत जी) म० नं० 186 ग्राम करहेड़ा पो० मोहन नगर गा०बाद
५०९. श्री प्रवीण बजाज देवीदयाल बजाज बजाज पैलेस इन्दरी जि० करनाल
५१०. श्री बीरेन्द्र देव शर्मा, आर्य भवन इन्द्रा कालोनी जि० सोनीपत (हर०)
५११. श्री योगेन्द्रसिंह जी आर्य, आर्य इलैक्ट्रिक वर्क्स रोहाना मिल्स मु०नगर (U.P.)
५१२. श्री सीताराम देवांगन जी म० नं० E.W.S. 230 वैशालीनगर जि० दुर्ग (M.P.)
५१३. श्री परशुराम जी शुक्ल शुक्ला उद्योग शाहबाद (U.P.) जि० हरदोई
५१४. श्री उदयसिंह जी आर्य S/o श्री रामकिशन सैनी 1232/1 आनन्दपुरा जि० रोहतक (हरि०)
५१५. श्री सूबेदार करतारसिंह आर्य (कोषाध्यक्ष) म० नं० 437/15 देवीपुरा जि० सोनीपत
५१६. श्री अशोककुमार जी गुप्त सु० श्री कुंजलाल जी आर्य मु०पो० सिरसौद जि० शिवपुरी
५१७. श्री नरेशपाल जी आर्य 2405/181 तालाब रोड त्रिनगर दिल्ली-35
५१८. श्री संजयकुमार जी आर्य 1/7743 गली नं० २ बाबरपुर रोड शाहदरा दिल्ली-32
५१९. श्री अभयकुमार जिन्दल आरा मशीन डिबाई जि० बुलन्दशहर (उ०प्र०)
५२०. श्री शुभराम जी आर्य म० नं० 279 पूठ कलां दिल्ली-41

—धर्मपाल आर्य, मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० DL 11315/92
आर०आर० नं० २५५८७/७३
Post in Delhi PSO Indraprastha
on 2, 3/6/92

जून, १९९२

बिना टिकट भेजने का लाइसेंस नं०
यू० (डी०एन०) १४४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १० तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मंगायें, यदि अंक न पहुंचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक प्रेषण दो माह बाद आरंभ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें यदि कोई त्रुटि हो तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है कृपया अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

योगदर्शनभाष्यम्

महर्षि व्यास भाष्य सहित, हिन्दी भाष्य तथा महर्षि दयानन्द (व्याख्योपेत)

व्याख्याता : राजवीर शास्त्री

१. योग के विषय में प्रचलित समस्त संशयों का निवारक।
२. व्यास भाष्य के संदिग्ध स्थलों पर विशेष अनुशीलन।
३. महर्षि दयानन्द की व्याख्याओं से विभूषित।
४. दर्शनों के परस्पर समन्वय परक विशेष व्याख्या।
५. क्या आयु निश्चित है, जीवात्मा का स्थान, अणिमादि सिद्धियां, अनेक चित्त निर्माण इत्यादि विवादास्पद स्थलों की विशेष व्याख्या।

श्री सेवा में..........
ग्राम..........
डा०..........
जिला..........

मुद्रक। वैदिक प्रेस, कैलाशनगर, दिल्ली-११००३१ फोन २२४६६४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Entered in Database

Signature With Date
24/12/04

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar